आर्यमित्र

आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश का साप्ताहिक मुख-पत्र

संपादक—

स्नातक, शिरोमणि एम. ए.

शिवरात्रि का संदेश

(श्री धर्मदेव जी विद्यामार्त्तण्ड)
गुरुकुल काङ्गड़ी



शिवरात्री सन्देश महान् ।
करो एक ईश्वर का ध्यान ॥

[१]

जो शङ्कर सुशान्ति का मूल,
जो हरता है मन का शूल ।
उसे भूलना भारी भूल
करो उसी का नित गुणगान ॥

[२]

सर्व व्यापक जो है नाथ
जो रहता है सबके साथ ।
सब में देखो उसका साथ ।
होगा दुःखों का अवसान ॥

[३]

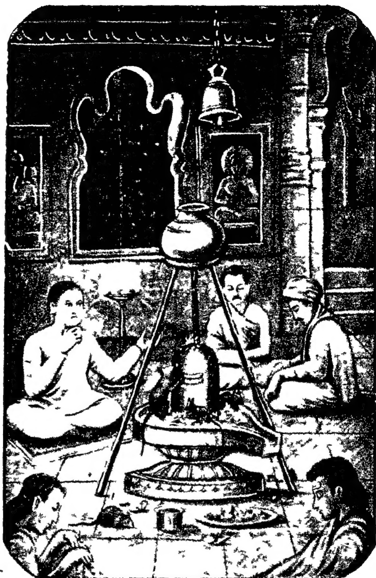
करो सदा उसकी ही पूजा
पूजायोग्य न कोई दूजा ।
मूढ़ वही जिसे उसे न बूझा ।
करो भक्तिरस का नित पान ॥

[४]

जो इक परमेश्वर को छोड़,
लें न अन्य से नाता जोड़ ।
देता बन्धन उसके तोड़ ।
वह शङ्कर आनन्द निधान ॥

[५]

सुनो वेद का यह सन्देश
फैलाओ फिर देश विदेश ।
ध्याओ उसको जो परमेश ।
करो शान्ति शाश्वत सुख भान ॥



सब लोग सोते थे पर अवशिष्ट आधीरात थी ।
दैवात् ज्ञानाधार को, सूझी विलक्षण बात थी ॥
शिवलिंग के चावल चबाकर एक चूहा चल दिया ।
फिर दूसरे ने भी वहाँ आकर, वही करतब किया ।
यह देख कर पूछा पिता से, खोल दी सारी कथा ।
क्यों पूजना शिवलिङ्ग का, समझी गई अच्छी प्रथा ?
'जो मूर्ति अपना आखु से भी त्राण कर सकती नहीं ।
वह मिट्टी शंकर हो हमारे दुःख भी हर सकती नहीं ।

—डा० हरिशङ्कर शर्मा डी०लिट्

ओ३म्

ऋषि-बोधाङ्क

वर्ष ६२ **आर्यमित्र** अङ्क ८

लखनऊ, रविवार, फाल्गुन २, शक १८८१ फाल्गुन कृष्ण ६ वि० सवत् २०१६

२१ फरवरी १९६० ई० दयानन्दाब्द १३५, सृष्टि सवत् १९७०८४९०६०



महर्षि दयानन्द सरस्वती

अमर-ज्योति

[प्रणव शास्त्री फिरोजाबाद]

टङ्कारा की अमर ज्योति है तुमको बारम्बार प्रणाम।
दिव्य दया आनन्द सघन हे तुमको बारम्बार प्रणाम॥
कञ्चन कलश उठा लाये ऋषि बोध सुधा से भरा हुआ।
जादू सा पद छिड़क दिया यह विश्व बाग था हरा हुआ॥
लगे झूमने बेल विटपवन वन में आई लहर ललाम।
युग निर्माता पुण्य प्रदाता तुमने युग निर्माण किया॥
दुख द्वन्द्वों के दल को दलकर जगती का कल्याण किया।
भूतल के सब देव जानते तेरा यजन निरा निष्काम॥
वे ˘ अभिमान समुज्वल शास्त्रों को सम्मान मिला।
मानवता को प्राण सत्य शुभ संस्कृति को स्थान मिला॥
प्रगति प्राप्त कर प्रेम प्रथा से हुए अलकृत आठो याम।
'प्रणव' पिता के अमर तुम अमर तुम्हारी वाणी है॥
है समाज आलोक अमर जो लोक-लोक कल्याणी है॥
अमर तुम्हारा कीर्ति गान है उपकारों का पूर्ण विराम।

वेदोपदेश—

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो न स्येदुर प्रिये त निदध्म।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥३०॥

(न तन्वे) हमारे शरीर के लिये (शुद्धा) साफ (आप) पानी (क्षरन्तु) भरें (न य स्येदु) हमारा जो कफ पसीना आदि है (त) उसे (अप्रिये) नापसद पर (निदध्म) डाल दते हैं। (पृथिवी) हे पृथिवि (पवित्रेण) पवित्र—साफ करने के उपकरण—से (मा उत्पुनामि) म अपने को पूत करता हूँ।

बहता रहे सदा पावन जल हम सबके शरीर क हित,
अप्रिय वस्तु डालें हम उसपर जो कि हमारा हो अनहित
रक्खें पृथ्वी को मार्जनि से स्वच्छ और पावन हम नित।

यास्ते प्राची प्रदिशो या उदीची
यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्य चरते भवन्तु
मा निपप्तं भुवने शिश्रियाण ॥ ३१ ॥

(ते या प्रदिश प्राची) तेरी जो दिशायें आगे हैं, (या उदीची) जो ऊपर हैं (भूमे या ते अधरात) हे भूमि जो तेरी नीचे है (याश्च पश्चात) और जो पीछे हैं (ता) वे सब (चरते मह्यम्) विचरने वाले मेरे लिये (स्योना) सुखदायक (भवन्तु) होवे (भुवने शिश्रियाण) भुवन पर आश्रित हुआ मैं (मा निपप्तम्) गिरू नहीं।

जहाँ कहीं मैं घूम माता, घर समान हो वे मेरे
नीचे ऊपर पूरब पच्छिम के सम्पूर्ण भुवन तेरे
इस दुनियाँ की सभी वस्तुओं का मैं नित उपभोग करूँ,
किन्तु न नीचे कभी गिरूँ माँ! किन्तु न नीचे कभी गिरूँ।

सम्पादकीय-

आर्यसमाज की योग-साधना में बाधायें



संसार में प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए तीन आवश्यक बातें अपेक्षित होती हैं। वे हैं—योग्यता, क्षमता और लगन।

महर्षि दयानन्द जब कर्मक्षेत्र में उतरे तो उन्होंने अपने को योग्यता की कसौटी पर कसा। कार्यारम्भ का साहस किया। पर अपनी कमियों का अनुमान लगा उन्होंने और कठोर साधना की और तब उन्होंने अपने पाखण्ड खंडन रूपी प्रचार रथ को सरपट दौड़ता पाया। कोई उनके मार्ग में बाधक बनने का साहस न कर सका। परिणाम जो हुआ वह इतिहास ने देखा, देश ने देखा और हम आज सुन रहे हैं।

योग्यता के पश्चात् उन्होंने शारीरिक आत्मिक और जन सम्पर्क सम्बन्धी सर्वाङ्गीण क्षमता का अर्जन किया और अपने लोकोपकार के महान् उद्देश्य की पूर्ति में वे इस लगन के साथ चिपटे कि उन्हें अपने तन बदन की भी सुध न रही। जब उनसे किसी ने पूछा कि आपको काम-वासना ने कभी नहीं सताया। उत्तर में महर्षि ने कहा "मैं कार्य में इतना व्यस्त रहता हूँ कि मन को उधर जाने का अवसर ही नहीं देता" महर्षि ने जिस दिन से गुरु दीक्षा ली और गुरु चरणों में नतमस्तक हो आशीर्वाद लिया, उस दिन से जब तक जिये अपने लक्ष्य के लिए जिए और वह लक्ष्य था मानव जाति को सत्य का पथ बतलाना और परोपकार में रत रहना।

अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होने अनथक परिश्रम किया। वे संसार की बहती धारा को रोक कर उसके प्रवाह को लौटाने के लिये प्रयत्नशील रहे और आज सारा ससार उनकी तपस्या के आगे नतमस्तक है। और उनके उपकारों के गीत गाता है।

उस महान् ऋषि ने मानवता के समुद्धार का दायित्व अपने मानस पुत्र आर्यसमाजको सौपा था। आर्यसमाज का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने महर्षि निर्दिष्ट कार्यक्रम को पूर्ण करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया, पर आज हमारे जीवन में थकान और मिथ्याभिमान की भावनायें व्याप्त हो रही हैं। हमारी इन कमजोरियों का कारण हमारी अपूर्ण साधना ही है।

हम अपूर्ण योग्यता के साथ आर्यसमाज में प्रवेश करते हैं। हमारे पास जोश अधिक होता है, होश (विचार शक्ति) कम। थोड़े समय में जोश का जलजला ठण्डा पड़ जाता है और हम परस्पर एक दूसरे के दोषों का छिद्रान्वेषण आरम्भ कर देते हैं। आर्यसमाज में आते समय हमारी योग्यता पूर्ण न थी और उसमें आने के बाद हम ने कुछ क्षमता उत्पन्न करने के स्थान पर अपनी शक्ति का उपयोग विघटन की ओर लगाना आरम्भ कर दिया फलतः सघटन दृढ़ होने के स्थान पर दुर्बल और शक्तिहीन होने लगता है। लगन का जहाँ तक प्रश्न है वह एक विशेष प्रकार के अवसर पर तो दिखाई पड़ती है। या तो स्थानीय उत्सवों, या प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सम्मेलनों के अवसरों पर, बाकी समय हम में से अधिकाँश समय "फुरसत नहीं" का बहाना कर अपने लौकिक कार्यों में जुटे रहते हैं। परिणाम यह होता है कि समाज जन सम्पर्क से दूर जा पड़ता है।

आप इस चित्रण को निराशा का चित्रण कह सकते हैं, परन्तु आत्मनिरीक्षण की वेला में हमें वास्तविकता की खोज अवश्य करनी होगी।

योग्यता क्षमता और लगन के अभाव में किसी व्यक्ति की उन्नति असम्भव है। समुदाय की उन्नति का प्रश्न तो उससे भी अधिक कठिन है।

इन तीनो कमियो का परिणाम हमारे सामने है कि आर्यसमाज की योग-साधना अपूर्ण हो रही है। यदि हम चाहते हैं कि महर्षि के अनुयायियो का समुदाय सफलता प्राप्त करे तो हमें अपने जीवनो का आत्म-निरीक्षण करना होगा। व्यक्तिगत ही नहीं समष्टिगत रूप से भी सभी बाधाओं और कमियो को दूर करना होगा।

योग दर्शन के एक सूत्र में योग की सफलता में जो बाधायें उपस्थित हो जाती हैं उनका इस प्रकार उल्लेख है।

(१) व्याधि [बीमारी] (२) स्त्यान [चचलता] (३) संशय (४) प्रमाद (५) आलस्य (६) अविरति (७) भ्रांति-दर्शन [भ्रम] (८) उपलब्ध भूमिकत्व [ढिल मिलपन होना] (९) अनवस्थित्व चित्तक [एक सी स्थिति न रहना]

आज सामयिक परिस्थितियों में अपूर्ण योग्यता, अपूर्ण क्षमता और लगन के अभाव में ऊपर के सारे व्यवधान आर्यसमाज की योग साधना में बाधक बन कर आ उपस्थित हुए हैं।

इन व्यवधानो का सामाजिक अर्थ में विस्तार से वर्णन करना यहा अपेक्षित है न सम्भव। फिर भी हम उनका सकेत मात्र में उल्लेख कर अपना अभिप्राय स्पष्ट करेंगे।

व्याधि—आर्यसमाज में जो सदस्य आते है, उनका दृष्टिकोण सुलझा हुआ होने पर भी उनके पारिवारिक सबध जात बिरादरी, धार्मिक सम्प्रदायों से सम्पर्क, राजनैतिक दलों के साथ समीपता आदि ऐसी कठिनाइयाँ हैं कि वे सदस्यो क आर्यसमाजी मन को दुविधा में डाले रहती हैं। कोई भी कार्य करते समय सदस्य आर्यसमाज के दृष्टिकोण को मुख्य न समझ कर अपने सम्पर्क वालो पर उसका क्या प्रभाव पडेगा इसे मुख्यता देता है। परिणाम वही है, जो शारीरिक रूप से व्याधिग्रस्त का होता है, चाहते हुए भी कार्य नहीं कर पाता।

स्त्यान—योगी का मन यदि चचल न हो तो योग सिद्धि उसका स्वय वरण करेगी। पर चित्त की चचलता उसे उस सौभाग्य से काफी समय तक वचित रखती हे। इसी प्रकार आर्यसमाज के सदस्यो और सघटन दोनो की मानसिक स्थिति कभी किसी राजनैतिक दल का साथ देने की ओर कभी किसी दल का सहारा लेने को बनी हुई है। आज यह आन्दोलन चलाना ठीक है, कल उसी के सम्बन्ध में विरोध भी गूजने लगता है। ससार पूछता है कि आर्यसमाज का कौन सा पक्ष है अपनी इस चचलता के कारण राष्ट्रिय आन्दोलन के समय भी हम निश्चित न हो सके, आज हम सर्व श्री लाला लाजपतराय भाई परमानन्द स्वामी श्रद्धानन्द बिस्मिल भगतसिंह और अनेकों बलिदानियो को अपने परिवार का अग बताकर गर्व अनुभव कर लें पर हमारी अस्थिर नीति के कारण वे हमसे जितने सहयोग की आशा करते थे, वे न पा सके। आज भी युवक दल सघटन से उचित और निश्चित नेतृत्व की आकांक्षा रखता है, पर क्या हम दे पा रहे हैं।

संशय—जैसे किसी व्यक्ति का सशय उसकी सफलता में बाधक होता है, वैसे ही हमारे अधकचरे सदस्यों अपूर्ण योग्ता के अधिकारियो का दृष्टिकोण सशयात्मक बना रहता हे। आज सस्थाओ की बाढ है, चन्दा जमा किया बहुमत बनाया और अधिकार प्राप्त कर लिया पर मन का चोर कि आर्यसमाज में रहूँ या नहीं सदैव छुपा रहता है। ऐसी सशयात्मक स्थिति में समाज की गाड़ी कैसे आगे बढ़े, पहले बहुत से लोग विदेशी शासन के कृपापात्र बने रहने के लालच से और आज राजनैतिक पार्टियो द्वारा साम्प्रदायिक सस्था माने जाने के भय से सशयात्मा बने रहते हैं। बहुत से मौका पा छोड़ बैठते हैं बहुत से अपना चोर छुपाये रहते हैं। इस सशय स्थिति का परिणाम आर्यसमाज के कार्यक्रम की प्रगति पर पड़ता है।

प्रमाद—योगी भी यदि अनियमित जीवन रक्खे तो योग कैसे सफल हो पर आर्य जन चाहते हैं कि बड़े जोर शोर के साथ सभा सम्मेलन हो प्रस्ताव पास हों पर उसके बाद लम्बा विश्राम किया जाय। प्रेरणा के स्थान पर प्रमाद घर कर लेता है, और काम शिथिल पड़ जाता है। प्रस्ताव और निश्चय धरे रह जाते हैं।

आलस्य—यह विघ्न भी इसी प्रकार है। समाज व राष्ट्र की दैनन्दिन की समस्याए मुह बाये खड़ी रहती हैं। जनता सच्चे नेतृत्व की हमसे आशा रखती हे पर हम केवल सन्ध्या हवन प्रचारोपदेश के आगे नहीं बढ़ना चाहते। ऐसे मौकों पर हमारी शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं और बुद्धि कुण्ठत। इम सारी समस्याओ का दायित्व सरकार और राजनैतिक दलो के ऊपर डाल आराम से मुह ढककर सो जाना चाहते हैं क्या इस शुतुरमुर्ग की नीति से हम नेतृत्व क अधिकारी बन सकते हैं। जनता हमें छोड़ दूसरो का पल्ला पकड समस्याओ का समाधान क्यों न ढू ढेगी।

अविरति (लोलुपता) इसको सामाजिक अर्थों में पदलिप्सा की भावना मान सकते हैं। लोकोपकार के महान् कार्य में पद एक साधारण महत्त्व की चीज है। पर आज हमारे सघटन में पद का महत्त्व बढ़ गया है। और उसके विकार ने आर्यसमाज की तपस्या को भग कर दिया है। क्या इस पदलिप्सा के सघर्ष में रत समाज दूसरों को निष्पक्ष रहने का सन्यास धर्म निभा सकता हैं। आर्यसमाज मानव जाति में सन्यास के गौरव और दायित्व को पूर्ण करने के लिये बनाया गया है।

भ्रान्ति दर्शन (भ्रम) का आर्यसमाज के पक्ष में यह अर्थ है, कि देश की राजनैतिक सामाजिक परिस्थि-

तियों में हमारे सदस्य और नेतृत्व दोनो भटक जाते हैं। कौन सी बाते देश और जाति के कल्याण के लिये उपयोगी है या अनुचित। इन बातों का निर्णय शुद्ध-बुद्धि से करने में हम असमर्थता अनुभव करते हैं। उदाहरणार्थ शिक्षा के क्षेत्र में आज हम अपनी सफलता का ढोल बजाते फिरते है, और स्कूलों की सख्या बढ़ाने की दौड़ में अग्रणी बनें रहना चाहते है। परन्तु क्या आज की शिक्षा व्यवस्था हमारे दृष्टिकोण के तनिक भी पक्ष में है, क्या उससे देश का चरित्र और इतिहास दूषित नहीं हो रहा। क्या हम अश्लील साहित्य को प्रतिबन्धित और सहशिक्षा को निषिद्ध कराने में तत्पर हैं, या सहयोग देकर बढ़ावा दे रहे हैं। उस भ्रम का कौन मूलोच्छेदन कर पा रहा है। आर्षशिक्षा व गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रशंसा के पुल बाँधते हम नही अघाते। पर जो गुरुकुलत्व की ओर बढ़े उन्हे भी हम भ्रमित हो उस दशा मे नहीं रख पा रहे। क्या उस भ्रम का उन्मूलन आर्यसमाज के मस्तिष्क से हो पायेगा।

उपलब्ध भूमिकत्व–हम समाज और देश की गतियो में अपने विचारानुसार थोड़ा बहुत भी विकास देखकर आत्म सन्तोष की साँस लेने लगते हैं। पर क्या हम दलितोद्धार, नारी जागरण, सस्कृत समुद्धार, पाखण्ड खण्डन आदि अनेक क्षेत्रो में वास्तविकता का अभाव दृष्टिगोचर होता नहीं देखते। सास्कृतिक अभ्युत्थान और धर्म निरपेक्षता के नाम पर समाज जिस भौतिक और लौकिक जीवन का उपासक बन रहा है, तब भी हम थोड़ी बहुत सफलताओं को अपने परिश्रम का फल बताकर आत्म सन्तोष की साँस लेरहे हैं। इसे आत्म प्रवञ्चना ही कहा जायगा।

अनवस्थित्वचित्तक हम एक काम को हाथ में लेते हैं, और उसे बीच में ही अधूरा छोड़कर दूसरा आन्दोलन या कार्य हाथ में उठा लेते हैं। हमारे मन में स्थिरता और साधना की क्षमता नहीं है, तभी यह हो रहा है। हम सस्थाओ पर सस्थाए खोलने में गर्व अनुभव करते हैं। हर एक आदमी सघटन और अनुशासन की मर्यादाओं की उपेक्षा कर अपनी ढपली अपना राग बजाता हुआ ऋषि दयानन्द के नाम की अलग बजाना आरम्भ कर देता है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य और सामाजिक परतन्त्रता में सघर्ष चलता है। और दलबन्दी आरम्भ होती है, अनुशासन हारता है। समाज की नैय्या मंझधार में फसी रह जाती है।

कहाँ तक लिखा जाय हम कृण्वन्तो विश्वमार्यम का स्वप्न लेते हैं। पर सच पूछा जाय तो अभी हमारे मनो, घरो, परिवारों और व्यवहारो में भी आर्यत्व नहीं आ सका है।

महर्षि दयानन्द ने शिवरात्रि पर आत्मबोध प्राप्त किया। हम सब भी शिवरात्रि पर कर्म बोध का ज्ञान प्राप्त कर सके। और उन्हीं की भाँति योग्यता क्षमता और लगन के साथ ससारोपकार के लक्ष्य की ओर बढ़ सकें। यही उस महामानव के प्रति हम सब की व्यक्तिगत और सामूहिक सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। ★

महर्षि-लेखनी की प्रेरणा

[ले०--श्रीमती सावित्रीदेवी जी रस्तोगी साहित्यरत्न,मेरठ]

ले सत्य शक्ति का अवलम्बन, ले तर्कों की तीखी कटार।
अतुलित भुजबल से,भूषित हो,निर्भय भावोका कर प्रचार।
ले शक्ति विजयनी विश्व व्यापिनी,शाँति सुधा रस प्रेम धार।
अत्याचारी मानव गण के, नत मानस में करती सुधार।
सद्धर्म भाव का सबल ले, निज देश जाति का कर विचार।
जग के कोने में पहुँचाने, विधवाओं का क्रन्दन पुकार।
जननी का सा ले मधुर प्रेम, दलितो को गले लगाने को।
बढ़ चली लेखनी दयानन्द की, भ्रम का भूत भगाने को॥

लो उसी लेखनी का सबल, हो वेदो का जग में प्रचार।
जो पतित पावनी है ऐसी, जैसी गगा की विमल धार।
चल दो टोली टोली बनकर, केसरिया बाना पहन चलो।
लो ध्वजा धर्म की हाथों में, पथ कटक करते बहन चलो।
बन जाओ बन्दा बैरागी, बन जाओ पडित लेखराम।
बन जाओ वीर शिवा जी सम,बन जाओ श्रद्धानन्द महान्।
वैदिक सिद्धात अमर व्यापें, जग से छलछन्द मिटाने को।
बढ़ चली लेखनी दयानन्द की, भ्रम का भूत भगाने को॥

गुरु-गौरव



[श्री डा० हरिशङ्कर शर्म्मा जी 'कविरत्न' डी० लिट्]
प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश

★

सौराष्ट्र देश महिमा मंडित,
गुजरात भूमि गौरव शाली।
अति उज्वल ज्योति जगी जग में,
बन गया विश्व वैभव शाली।

विज्ञान विभाकर उदय हुआ,
अज्ञान महातम भगा दिया।
दो दुखद मृत्यु - घटनाओं ने,
सोते मानस को जगा दिया।

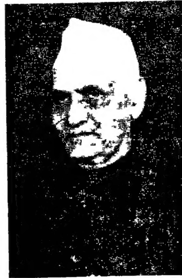
शिवरात्रि,धन्य शिवरात्रि हुयी,
जब अक्षत-आखु प्रसंग हुआ।
उद्बुद्ध कर्म्म - सनद्ध हुए,
तम तोम तुम्हारा भंग हुआ।

तुम बाल ब्रह्मचारी, जागे
जग उठी सुप्त जनता सारी।
अधिकार जगे, व्यवहार जगे,
जग उठे भाव मंगलकारी।

क्षण भंगुर जीवन है, जग है,
यह विश्व-विलास विनश्वर है।
ध्रुव-ध्येय विनश्वर जीवन का,
अखिलेश्वर है अज अक्षर है।

यह भ्रान्त भावमय भौतिकता
अस्थिर मोहकता ममता है।
जीवन निष्काम कर्म साधन,
जीवन निर्ममता-समता है।

जीवन का लक्ष्य लोक-सेवा,
तप-त्याग आत्म निर्भरता है।
संघर्ष-विजय उत्कट विराग,
मृत्युंजय उच्च अमरता है।



श्री पं० हरिशङ्कर जी शर्मा

संकीर्ण साधना नष्ट हुई,
निजता परता का भाव गया।
परिवार, ग्राम, गृह, त्याग दिये,
वसुधा कुटुम्ब बन गया नया।

तुम सत्य-साधना साथ लिये,
चल दिये ईश आराधन को।
उस परमतत्त्व के दर्शन को,
परलोक-लोक-हित-साधन को।

तप-तप कर कंचन-सी काया,
उज्ज्वल, सतेज सम्पुष्ट हुई।
मन दृढ़ता से सम्पन्न हुआ,
सब हृदय भावना पुष्ट हुई।

वेदों की विश्रुत वाणी का,
वसुधा भर पर विस्तार किया।
मृत जाति-जननि के पिंजर में,
नवजीवन का संचार किया।

पीड़ित पुकार, व्याकुल-विलाप,
सुनसब आशान्वित-अभय किये।
कल्याण-पथ के पथिक बने,
कल्याणपूर्ण उपदेश दिये।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

मस्तिष्क तर्क का प्रेरक है,
श्रद्धा हृदयों की रानी है।
दोनों का शुद्ध समन्वय ही,
गौरव की अमर कहानी है।
सम्मानपूर्ण जीवन जग में,
अमरत्व गर्वमय गौरव है।
अपकीर्ति मृत्यु का रुद्र रूप,
अभिशाप, पाप, रुज, रौरव है।
सद्धर्म उसी का रक्षक है,
जो धर्म्म-कर्म्म कर जाता है।
आदर्श युक्त जीवन-जहाज,
भवसागर को तर जाता है।
मानव-मानव में भेद भाव,
विष-रूप दुःख का दाता है।
सब एक पिता की सन्तति हैं,
जो त्राता विश्व-विधाता है।
गुण-कर्म-कसौटी पर कसकर,
जो जैसा व्यक्ति उतरता है।
वह वैसा ही कर वर्ण ग्रहण,
जीवन-सरिता को तरता है।
कर्मों के बन्धन में बंधकर,
नर-नारी जन्म बिताते हैं।
मरने पर निज-निज कर्म रूप,
फिर जन्म यथाविधि पाते हैं।
सर्वज्ञ, स्वयंभू, रूप हीन,
सच्चिदानन्द परमेश्वर है।
वह जन्म-मरण बाधा विमुक्त,
विभु विश्वनाथ, विश्वम्भर है।
ऋषि वीतराग, तप-तेज पुंज,
आलोक अलौकिक दान दिया।
सतर्क समन्वित श्रद्धा दे,
निगमागम ज्ञान प्रदान किया।
दुर्दम्भ-दुर्ग पर वज्र-रूप,
निर्भय प्रतिवादि भयंकर थे।
पीड़ित, प्रताड़ितो दलितों को,
तुम दयानन्द शिवशंकर थे।

निस्पृह, निरीह, अविचल, अकाम,
निस्वार्थ निडर ध्रुवध्यानी थे।
बल-ब्रह्मचर्य अक्षय कोष,
तुम धर्म-जाति-अभिमानी थे।
हे आप्त काम, हे धैर्य धाम,
अपकारी का उपकार किया।
तुमने विष-दाता दानव को,
कुछ दण्ड न दे उपहार दिया।
पत्थर ईंटों की वर्षा तुम,
अति शान्त भाव से सहते थे।
सर्वत्र स्वतन्त्र विचरते थे,
नित निर्भय भाषण करते थे।
जनता को अमृत-दान दिया,
पर स्वयं घोर विष-पान किया।
तुम अमर हुए मर कर स्वामी,
सब जीवों का कल्याण किया।
तुम थे 'स्वराज्य' के सूत्रधार,
'सत्याग्रह' में प्रिय प्राण दिये।
तुम मरे धर्म की वेदी पर,
निज देश जाति के लिए जिये।
तुम भारतीय सभ्यता स्रोत,
संरक्षक पुण्य पुजारी थे।
तुम आर्य सभ्यता सु-प्रतीक,
आदर्श उच्च अधिकारी थे।
तुम भीष्म रूप, तुम भीमनाद,
तुम ब्रह्म-ज्ञान, गुण आकर थे।
तुम परिव्राट, वैभव विराट्,
वर वैदिक धर्म दिवाकर थे।
तुमने गुरु चरणों को छूकर,
जो असिधारा व्रत धारा था।
जीवों का सुदृढ़ सहारा था।
वह जीवन लक्ष्य तुम्हारा था।
ओ टंकारा की ज्वलित ज्योति,
तू कभी नहीं बुझने वाली।
तुझ से जगमग यह जगतीतल,
तुझसे भारत गौरव शाली।
(लेखक की महर्षि महिमा से उद्धृत)

ऋषि की फुलवाड़ी

(ले०- श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा जी एम०एल०सी० प्रधान मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश)

ऋषि दयानन्द का अवतरण ऐसे नैराश्यपूर्ण समय में हुआ था, जबकि भारतवर्ष घोर अन्धकार से आच्छादित था। उस समय देश मे मत मतान्तरो की आधी चल रही थी, वेदों का असली स्वरूप बदल दिया गया था। भारतवासी अपनी सस्कृति से विमुख हो रहे थे। पाश्चात्य वेष-भूषा का आधिपत्य हो रहा था। इस देश का उस समय कोई धनी धोरी दिखाई नही देता था। विषमता अपनी चरम-सीमा तक पहुँच रही थी। ऊँच नीच का प्रश्न जोरो से चल रहा था। हमारे ही भाई, अछूत कहकर बहिस्कृत किये जा रहे थे। उन्हें विधर्मी अपने में मिलाकर बडे प्रसन्न हो रहे थे। कौम के लाखो लाल ईसाई और मुसलमान बन रहे थे। छोटी-छोटी बालिकाओं के विवाह करके देश के मनुष्य अपनेको प्रसन्न समझते थे। विधवाओं को पुन विवाह करने का आदेश न था। पुरुष अपने छह-छह विवाह कर लेते थे। स्त्रियों और अछूतो को वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। अछूतो की तो परछाई भी सवर्णों पर पड जाती, तो उन्हें स्नान करना पड़ता। कहीं-कहीं तो ऐसा था कि अगर कोई सवर्ण जा रहा है, और मार्ग में अछूत मिल गया तो वह दूर से आवाज देकर पृथक खड़ा हो जाता था। अज्ञान और अविद्या का चारो ओर ताण्डव हो रहा था। बालक दयानन्द जब सच्चे शिव की खोज में निकले, और मथुरा में गुरु विरजानन्द की सेवा में पहुँचे, तो उन्होने देश की स्थिति का चित्र गुरु के सामने रखा। विरजानन्द जी शिष्य की विचारधारा समझ गये, और उन्होंने दयानन्द को जब निष्णात बना दिया, तो यही उपदेश दिया कि दयानन्द जाओ, तुम देश में फैली हुई अविद्या को मिटाओ, और भारत वासियों को वेद का सच्चा स्वरूप दिखाओ। अज्ञानान्धकार में कराहते हुए भारतीयों को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करो। गुरु की आज्ञा पाकर दयानन्द निकल पडे, और उन्होने हरद्वार के कुम्भ पर पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड दी। विचार कीजिए उस तेजस्वी महर्षि दयानन्द की दृढ़ता को, लाखो कट्टर पथी साधु सन्यासियो के बीच में कैसी हिम्मत दिखाई, उन्होने यह विचार नहीं



श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा जी एम०एल० सी०, मन्त्री सभा

किया कि यह कट्टर पथी हमारे ऊपर पिल पडे तो हमारी हड्डियां भी न बचेंगी। वाहरे ऋषि तुम्हारी वीरता का कितना गुण-गान किया जाय। तुम्हारे सामने जो आया, नत-मस्तक हो गया। अपनी मूर्त्तियाँ गगा में बहा दीं। तुम्हारे ज्ञान भानु के सामने कोई न आ सका, तुम्हारे ब्रह्मचर्य के तेज से किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह तुम्हारे सामने आता। तुम जहाँ-जहाँ गये, तुमसे जो शास्त्रार्थ करने आया, वह तुम्हारी विद्वत्ता के सामने ठहर ही न सका। तुमने थोडे से ही समय में देश में

(शेष पृष्ठ ८ कालम १ पर)

दीक्षा महायज्ञ के ब्रह्मापद से श्री आचार्य बृहस्पति जी का संक्षिप्त अभिभाषण

स्थाणुरयं भारहार किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थं, येऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञान धूतपाप्मा की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार भास्काचार्य ने वेदवाणी के अर्थ को ही उस वेद लता का पुष्प और फल कहा है। और ये पुष्प और फल 'याज्ञ देवते पुष्पफले देवता ध्यात्मे वा' के अनुसार यज्ञ, देवता और अध्यात्मे ही हैं। अर्थात् अध्यात्मतत्त्व तक पहुँचने के लिये देवता मध्यस्थ हैं। जिनके माध्यम से, और सिद्धि से, दूसरे यज्ञ कर्मों के फल स्वरूप मानव को ऐहिक अभ्युदय और निश्रेयस की प्राप्ति रूप आत्मा का कल्याण एवं परमात्मा का साक्षात्कार होता है। और इसी में मानव जीवन की चरितार्थता है।


श्री आचार्य बृहस्पति जी शास्त्री

महर्षि दयानन्द स्वयं भी इसी आदर्श के साक्षात् जीवित जाग्रत प्रतीक थे। अब आइये, ऋषि की दीक्षा नगरी मथुरा में आज तारीख २४ दिसम्बर से २७ दिसम्बर ५९ तक मनाई जाने वाली 'महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी समारोह' के अवसर, उसी महर्षि द्वारा अरणि मन्थन द्वारा वर्ष पूर्व शाहपुरा में प्रज्वलित की हुई यज्ञाग्नि से अग्न्याधान करके, वैदिक मन्त्रों द्वारा 'दीक्षा महायज्ञ' का अनुष्ठान करके अपने में भी उक्त देवताओं को सिद्धि करें—अर्थात् ज्ञान, व्रत, दीक्षा, दक्षिणा श्रद्धा और सत्य आदि दैवी गुणों को धारण करके दैवी सम्पत् के स्वामी बनें। 'सत्य वै देवा, अनृत मनुष्या'

विदुषा मनुचर —
आचार्य बृहस्पति शास्त्री, ब्रह्मा 'दीक्षामहायज्ञ'

(पृष्ठ ७ कालम २ का शेष)

नव-जागृति उत्पन्न कर दी। तुम्हारा ध्यान अपनेदेश में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने के लिए गया तो तुम्हारे हृदय में अपने देश को आज़ाद करने की भी सूझी। तुमने ही सबसे पहले कहा कि— 'अपना राज्य विदेशी राज्य से अच्छा होता है" तुमने बताया कि अपने देश का राजा कैसा हो मन्त्री कैसा हो, सैनापति कैसा हो, इनके क्या क्या कर्त्तव्य हो। हे ऋषि तुमने देश की आजादी का जो नुस्खा बताया, उस नुस्खे को महात्मा गांधी, लाला लाजपतिराय, महात्मा श्रद्धानन्द जी आदि नेताओं ने प्रयोग किया, और उसके अनुसार देश आज़ाद हुआ। तुमने जो कार्य आर्यसमाज को सौंपे, आर्यसमाज, वे उन्हें किया, और अब उन्हीं को अपनी स्वतन्त्र सरकार ने अपने हाथ में लेकर आर्य समाज का हाथ बटाया है। आज देश में आर्यसमाज की शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। विधवाश्रम, अनाथाश्रम, कन्या विद्यालय, गुरुकुल आदि संस्थाओं के द्वारा देश का महान् कल्याण हुआ है। आज जिधर देखो, उधर ही आर्यसमाज का बोलबाला है। आर्य-समाज की महान् शक्ति का प्रदर्शन अभी मथुरा में विश्व ने देखा। अपने नेताओं की आवाज पर, गुरु दयानन्द के नामपर सारे देश का आर्यसमाजी टूट पड़ा। लोग आर्य समाज की शक्ति को देखकर दंग रह गये। हर व्यक्ति यही कहता सुनाई दिया कि ऋषि की फुलवाड़ी फूल रही है। उसके सौरभ से चारों दिशाएं सुवासित हो रही हैं।



जलता दीपक

(ले०—श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली)

एक जलते दीपक से अनेक दीपक जलाये जा सकते हैं। परन्तु वही दीपक जलाये जा सकेंगे, जिनमें तैल और बत्ती की व्यवस्था होगी। केवल तैल और बत्ती का उपस्थित होना ही पर्याप्त नहीं है। उनमें समन्वय होना चाहिये। यदि तैल अत्यधिक हुआ और बत्ती बहुत छोटी तो दीपक नहीं जलेगा। इसी प्रकार यदि बत्ती बहुत बड़ी और मोटी है, और तैल बहुत थोड़ा है, तो भी दीपक नहीं जलेगा। इस साधारण घटना से हमें यह शिक्षा लेनी है कि यदि किसी महान् पुरुष के जीवन से हमें शिक्षा लेकर अपने जीवन को उज्वल बनाना है, तो हमारे अन्दर ज्ञान और कर्म में समन्वय होना चाहिये। इल्म और अमल दोनों चाहिये। बिना ज्ञान के ज्ञान की उपलब्धि नहीं होगी। और बिना चरित्र के ज्ञान निष्फल होगा।

महर्षि दयानन्द की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। उन्होंने शिव-रात्रि को एक साधारण-सी घटना देखी, और उससे उन्हें बोध प्राप्त हुआ। उनके शिव की पत्थर की मूर्ति से अश्रद्धा और सच्चे शिव की प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा जाग्रत हुई।

जितना बड़ा और महान् बोध हुआ, उतना ही उस बोध के प्रकाश में ऋषि ने पुरुषार्थ और परिश्रम करके सच्चे शिव के स्वरूप को समझा। सन्ध्या की विधि में अन्त के दो मन्त्र बड़े लाभदायक और महत्त्वपूर्ण है। गायत्री मन्त्र बोध का प्रतीक है। बुद्धि की तीव्रता और विशालता के लिये प्रार्थना है। बुद्धि के प्राप्त होते ही एक प्रकार का अहंकार और अभिमान उत्पन्न होता है। संसार में जितने नास्तिक हुये हैं, वह बहुधा ज्ञानियों में ही हुये है, चाहे वे पदार्थ विज्ञान वाले हों, चाहे तत्त्व विज्ञान वाले हों। इसलिये गायत्री में बुद्धि की प्रार्थना



श्री बाबू पूर्णचन्द जी एडवोकेट

की और बुद्धि में प्रकाश आया। और अभिमान की भावना से सुरक्षा के लिये समपर्ण मन्त्र को अन्त में स्थान दिया गया है। समर्पण मन्त्र को नमस्कार मन्त्र भी कहते हैं। और यह मन्त्र ऐसा सुन्दर है कि इसमें एक बार नहीं ४ बार भिन्न-भिन्न रूप से सच्चे शिव को भिन्न-भिन्न नामों से नमस्कार की गई है। इसका प्रयोजन यह है कि महर्षि दयानन्द नित्यप्रति सायकाल

और प्रात काल ईश्वर उपासना में बैठकर, यह घोषणा करते थे, कि सच्चे शिव को जान लिया है, मानलिया है, और पहचान लिया है। प्रत्येक सध्या करने वाले को भी इसी प्रकार से भाव अपने अन्दर रखने आवश्यक हैं।

ऋषि का समय जीवन बोध और ज्ञान के विस्तार से ओत प्रोत है। मथुरा में गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठकर ऋषि ने सच्चे वैदिक धर्म सम्बन्धी बोध को प्राप्त किया, और उस बोध के प्रकाश में, समस्त जीवन वेदों के प्रचार में लगा दिया। शिवरात्रि को महर्षि के अन्दर एक जागृति उत्पन्न हुई, उस जागृति को उत्तेजना गुरु विरजानन्द की दीक्षा से हुई। गुरु विरजानन्द एक महान् जलते हुए दीपक थे। उनसे बहुत शिष्यों ने पढ़ा और ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु महर्षि दयानन्द अकेले एक ऐसे शिष्य निकले। जिन्होंने अपने जीवन रूपी दीपक को गुरु विरजानन्द के दीपक से ऐसा प्रज्वलित किया कि जिसके प्रज्वलित हो जाने से ससार से अन्धकार का निराकरण होना सभव हो गया।

सम्प्रति बिजली का युग है जिस प्रकार, और जिस विधि से बिजली का उत्पादन और प्रयोग होता है, उससे भी हमें उपर्युक्त प्रकार की ही शिक्षा प्राप्त होती है। बिजली के उत्पादन और प्रयोग के निम्नलिखित मुख्य अग हैं।

(अ) पावर हाउस या उत्पादन केन्द्र।

(ब) उत्पादन केन्द्र से विद्युत पहुँचाने के लिए तार और खम्भे।

(स) जहाँ विद्युत का प्रयोग होना है, वहाँ प्रयोग की व्यवस्था, जिसे फिटिंग कहते हैं।

(द) जिस स्थान पर प्रयोग होना है, उसका उत्पादन केन्द्र से सम्बन्ध या कनैक्शन होना चाहिए।

(र) समय पर प्रयोग के लिये शिक्षा और तत्परता होनी चाहिए। उपर्युक्त विधि से यह बात समझ में आ सकती है, कि विद्युत से प्रयोग की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए फिटिंग सबसे अधिक अनिवार्य है। जिसमें फिटिंग नहीं होगा, वह विद्युत के उपलब्ध होते हुए भी प्रकाशित न हो सकेगा।

महर्षि ने चार बातों पर बल दिया। शिक्षा, संस्कार, यज्ञ और योग। शिक्षा और सस्कार से फिटिंग होता है, और भावनाएं मर्यादित होती हैं, और स्वभाव ठीक होता है। योग से ईश्वर रूपी प्रकाश पुज से सबध जुड़ जाता है। और अब शिक्षा, सस्कार और योग से एक व्यक्ति तैयार हो जाता है, तो उसका सारा जीवन यज्ञमय होता है। वह दूसरों के उपकार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तत्पर रहता है।

ऋषि बोधोत्सव को यदि सफलता पूर्वक मनाना है, तो जलते दीपक और बिजली घर दोनो को अपने सम्मुख रखकर ज्ञान की वृद्धि और कर्म की पवित्रता के लिये उद्यत हो जाना चाहिए। यदि इस प्रकार की भावना आर्य-जगत् के अन्दर नहीं होती तो ऋषि उत्सव मनाना भी एक रूढ़ि और परम्परा का रूप धारण कर लेगा।

पर्व का न मनाना बड़ा अपराध है। परन्तु उससे भी बड़ा अपराध यह है कि पर्व आया, मनाया गया, धूम धाम हुई, भजन गाये और उपदेश हुआ, परन्तु इस सब प्रक्रिया का क्रियात्मक जीवन पर कोई प्रभाव नही हुआ। महर्षि के जीवन से सबसे बड़ी शिक्षा चरित्र-निर्माण है। बिना नैतिक उत्थान के न स्वराज्य से लाभ होगा और न अर्थ सचय से। और न सामाजिक दशा परिवर्तन से। सबसे आवश्यक कार्य व्यक्ति का निर्माण है, और व्यक्ति के निर्माण का मुख्य आधार उसकी आत्मिक दशा को सुधारना है। आत्मा का सुधार परमात्मा के सम्पर्क में आकर ही होता है। आत्मा और परमात्मा अत्यन्त निकट हैं। दोनों हृदय-मन्दिर में विराजते हैं। आत्मा जब मन के द्वारा इन्द्रियों के सहारे बाहर के जगत् में उलझ जाता है, तो उसकी दशा चिन्ताजनक हो जाती है। जब वह बाहर के जगत् के प्रपंच से बचकर अपने अत्यन्त समीप ईश्वर को जानने और मानने लगता है, इसका ही नाम बोध है, और सच्चा ज्ञान है। यह अभ्यास की चीज है। इस शिक्षा को शिवरात्रि में हम ग्रहण कर लें तो फिर हमारा समस्त जीवन सफल और सुखमय होगा।

आर्यसमाज के सिद्धान्त—

मूल और गौण

(ले०—श्री प० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०)

हर एक सस्था, सभा या समाज के दो प्रकार के नियम होते है। एक मौलिक, दूसरे गौण, गौण को मूल और मूल को गौण समझ लेने से निरन्तर लड़ाई झगड़े हुआ करते हैं। प्राय कलह की जड़ यही अविवेक है। मूल का अर्थ तो सभी जानते हैं। मूल वृक्ष का वह भाग है जिस पर समस्त वृक्ष के जीवन का आश्रय है। मूल के सींचने से वृक्ष जीवित रहता है। उसके कटने या सूखने से वृक्ष नष्ट हो जाता है। 'गौण' शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये। गौण पाणिनि व्याकरण के अनुसार 'गुण' का तद्धित रूप है। परन्तु याद रखना चाहिये कि गुण शब्द के भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न भिन्न अर्थ हैं। अष्टाध्यायी में ह्रस्व अकार, ए और ओ को गुण कहा है वैशेषिक में ६ पदार्थों में से एक गुण है जो द्रव्य के आश्रय रहता है। जैसे पृथिवी का गुण गंध है और आकाश का शब्द। जब 'गुण' से गौण' तद्धित बनाते हैं तो 'गुण' का यह अर्थ नहीं लेते वहाँ 'गुण' कर्म या यज्ञ शास्त्र का विषय है। वहाँ 'द्रव्य' शब्द का भी भिन्न अर्थ है। यज्ञ के लिए कुछ मुख्य चीजें आवश्यक होती हैं जिनको द्रव्य कहते हैं। कुछ मुख्य तो नहीं हैं परन्तु मुख्य द्रव्यों के सहकारी हैं। उनका नाम गुण है। जैसे घी मुख्य द्रव्य है, परन्तु जिस पात्र में घी रक्खा जाता है वह गुण है। घी के बिना यज्ञ नहीं हो सकता। परन्तु पात्र पीतल का हो या सोने का या मिट्टी का, यह यज्ञों का दौना मात्र है। यह बात गौण है। गौण में विकल्प हो सकते हैं मुख्य में नहीं। विवाह सस्कार में वर-वधू मुख्य या मूल हैं। पुरोहित आदि गौण।

हमने यहाँ 'गौण' शब्द की इतनी व्याख्या इसलिए की है कि हमारे आगे के वक्तव्य में भ्रान्ति न हो।

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द थे। उन्होने आर्यसमाज के सिद्धान्तो को जानने के लिये हमको तीन चीजें दी हैं। (१) आर्यसमाज के दस नियम, (२) स्व मन्तव्यामन्तव्य (३) सत्यार्थप्रकाश आदि अन्यान्य ग्रथ। इनमें देखना यह है कि मुख्य कौन है और गौण कौन। कभी-कभी विरोध का आभास होने लगता है वहा अधिक मान्य क्या है यह प्रश्न उठ खड़ा होता है। अत यह विचार आवश्यक है।

आर्यसमाज का मूल है आर्यसमाज के दस नियम। समाज का सदस्य होने के लिए भी ऋषि ने इन्हीं की स्वीकारी को आवश्यक माना है। इन दस नियमों की बनावट भी कुछ ऐसी है कि आर्यसमाज की विशेषता का ज्ञान हो जाता है। इन नियमो के तीन विभाग हैं, पहले में पहले दो नियम हैं। जो ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं। आस्तिक या ईश्वरवादी सस्थायें तो सैकड़ो हैं। जिनसे आर्यसमाज का मेल नहीं है। ईश्वर के गुणों का विस्तृत वर्णन इसी विशेषता के लिए किया गया है। दूसरे विभाग में तीसरा नियम है। वेद के मानने वाले अन्य भी हैं। परन्तु आर्यसमाज के वेद की भावना भिन्न है। वेद हर आर्यसमाजी के दैनिक जीवन का अग है। वह केवल पूजने के योग्य प्राचीन या सतयुग की वस्तु नहीं है। तीसरे विभाग में शेष सात नियम हैं। जिनसे आर्यसमाज की सार्वभौमिकता तथा विश्वव्यापित्व पर बल दिया गया है। तात्पर्य यह है कि यदि आप हिंदुओ

के समान ईश्वरवादी भी हैं और वेद के मानने वाले भी, परन्तु यदि आप इसका सम्बन्ध मनुष्य मात्र के कल्याण से नहीं जोड़ सकते तो आप आर्यसमाज के वास्तविक अर्थ को नहीं समझे। इस बात को भी अधिक सम्पुष्ट करने के लिए आर्यसमाज के दस नियमों में इन चीजों का सर्वथा अभाव है —प्रथम स्वामी दयानन्द या किसी अन्य ऋषि, गुरु या संस्थापक का नाम नहीं। सभी ऋषियों की यह विशेषता थी। कि वेदोपदेश करने में वह अपने व्यक्तित्व को सर्वथा अलग रखते हैं। कुरान में बार-बार यह शब्द आता है 'कुल''(अर्थात् हे मुहम्मद तू बता कि ईश्वर ऐसा है इत्यादि)। मुहम्मद और ईसा के व्यक्तित्व का पग-पग पर उल्लेख मिलता है। आर्यसमाज के नियम सोच विचार कर इस दौर्बल्य से मुक्त हैं। हमारे दूसरे नियमों में देश या काल की ओर भी संकेत नहीं है। इसलिये आर्यसमाजके मूल सिद्धान्त यही दस नियम हैं। इनमें विकल्प नहीं।

दूसरे स्वमन्तव्यामन्तव्य। यह आर्यसमाज के मुख्य सिद्धान्त नहीं हैं। इनको सर्वथा गौण मानना पड़ेगा। गौण चीजें उपकारक तो होती हैं कारक नहीं होती। व्याकरण में आठ कारक माने जाते हैं, परन्तु वस्तुत कारक तो एक ही है, अर्थात् कर्त्ता। (स्वतन्त्र कर्त्ता) अन्य तो उपकारक मात्र हैं। ('उप' उपसर्ग पर विचार कीजिये)। 'राम ने रावण को मारा'। कर्त्ता राम है। 'मारना' क्रिया का मुख्य भार इसी के ऊपर है। 'धनुष से मारा' या 'लङ्का में मारा' यह तृतीया या सप्तमी कारक केवल उपकारक हैं, मारने के अन्य साधन भी हो सकते थे और अन्य स्थान भी। इसी प्रकार स्वमन्तव्या-मन्तव्य' का स्थान भी नियमों की अपेक्षा गौण है। 'नियमों की अपेक्षा' इस वचन को याद रखिये। अन्यथा भ्रान्ति हो जायगी) ऋषि ने नाम भी बहुत सोच-समझ कर रक्खा था। न तो इनका नाम 'आर्यसमाज के सिद्धान्त' रक्खा, न वैदिक सिद्धान्त, न आर्यसमाज के नियम। इनमें आर्यसमाज का नाम तक नहीं। न दस नियमों में इनका उल्लेख है। आप पूछेंगे कि स्वमतव्या-मन्तव्य है क्या? ऋषिवर से पूछिये। उनका नामकरण ही अर्थों का पूर्णतया द्योतक है।'मतव्याश्च अमन्तव्याश्च= मतव्यामन्तव्या '(द्वन्द्व समास)। स्वस्य स्वमतव्यामन्तव्या =स्वमंतव्यामन्तव्या (षष्ठी तत्पुरुष समास)। अर्थात् स्वामी जी महाराज की अपनी निज की, वैयक्तिक मान्यतायें।

आप शायद इस व्याख्या को सुनकर चौंकेंगे कि क्या ऋषि की वैयक्तिक मान्यतायें वैदिक मान्यता में या आर्यसमाज की मान्यतायें नहीं हैं। आप शायद इसमें ऋषि का लाघव या अनादर भी समझें। परन्तु ऐसी आशंका उन्हीं लोगों को हो सकती है जो ऋषि दयानद को वैदिक ऋषियों की कोटि में से निकाल कर मुहम्मद, ईसा, नानक, दादू, बुद्ध आदि मतमतान्तरों के प्रवर्त्तकों की कोटि मे घसीटना चाहते हैं। यह ऋषि का गौरव नहीं, लाघव है। 'स्व' शब्द के प्रयोग से ऋषि का तात्पर्य ही यह है कि कोई आँख बन्द करके उनके पीछे न चले। न उनको गीता के कृष्ण के समान ईश्वर का स्थानापन्न समझे न ईश्वर का भेजा हुआ देवदूत। वेद स्वत प्रमाण हैं। ईश्वरोपदेश स्वत प्रमाण है न स्वामी दयानद न उनके ग्रंथ। वह आर्यसमाज को अपने या अपने नाम के पीछे लगाना नहीं चाहते, न इनकी बुद्धियों पर ताला डालना चाहते है। यह काम तो सभी आधुनिक मत प्रवर्त्तकों ने किया है। ऋषि दयानन्द इस निर्बलता से बहुत ऊँचे थे।

फिर शायद आप पूछें कि 'स्वमतव्यामन्तव्य' लिखने की क्या आवश्यकता थी। यह एक बारीक प्रश्न है। यदि स्वमन्तव्यामन्तव्य न लिखा जाता तो लोग ऋषि दयानन्द के समस्त ग्रन्थों के आत्मा को न समझ सकते। और वह शायद उन ग्रन्थों में दिये गये मुख्य और गौण में विवेक न कर सकते। स्वमतव्यामन्तव्य उन ग्रन्थों में आये हुए शब्दों की तालिका है। उदाहरण के लिये जहाँ कहीं'नियोग'शब्द आया हो वहाँ नियोग के वही अर्थ लेने चाहिये जो 'स्वमतव्यामन्तव्य में दिये हैं। नियोग के अर्थ तो बहुत से हो सकते हैं। और नियोग के नियम भी भिन्न भिन्न स्मृतियों में बहुतसे हो सकते हैं। इसी प्रकार'उपासना'शब्द का ऋषि दयानन्द को एक विशेष अर्थ अभिप्रेत है। उसका अन्यथा अर्थ हो सकता है।

परन्तु ऋषि के ग्रन्थों को समझने के लिये वही अर्थ लेना आवश्यक है। अन्यथा भ्रान्ति होगी। इसी प्रकार 'आर्य्यावर्त्त'। ऋषि ने अपने ग्रन्थों में जहाँ 'आर्य्यावर्त्त' शब्द का प्रयोग किया है वह उसी अर्थ में किया है जो "स्वमंतव्य" में दिया है। इस शब्द के अर्थ 'राजनैतिक' कारणों से बदल भी सकते हैं। परन्तु ऋषि के ग्रन्थो में वही अर्थ लेना चाहिये।

अब रहे ऋषि के शेष ग्रन्थ। वह एक बहुत बड़ा बन है। उसमें मुख्य, गौण और गौणो में भी तारतम्य के साथ कम गौण और अधिक गौण सभी आ जाते हैं। उसमें अपने अतिरिक्त दूसरे ऋषियो या मान्य पुरुषो के निज मतो के उद्धरण भी हैं। कहीं-कहीं कहानियाँ भी हैं, और कहीं कहीं सुनी-सुनाई और बिना जाँची हुई बातें भी हैं। जैसे कुछ भारतीय राजो की बशावली या उनके राज काज की अवधि 'कुछ अटकलें भी हैं जैसे जगन्नाथपुरी के विषय में एक साधु की बताई हुई कुछ बातो पर अटकल' वहाँ स्पष्ट लिखा है कि शायद ऐसा होगा। इन समस्त ग्रथो के सभी बचन, सभी शब्द, सभी कथानक, या अन्य पुस्तको के दिये हुये सभी प्रमाण न तो ऋषिवर के मतव्य ही थे न इन को आर्यसमाज के सिद्धान्त ही कहा जा सकता है। जो कोई स्वामी दयानन्द के ग्रथो के हर बचन और हर शब्द को तुल्य प्रामाण्य प्रदान करता है, वह ऋषि के मुख्य अभिप्राय को नहीं समझा। वह ऋषि का वास्तविक आदर भी नहीं करता और आर्यसमाज के लिये उलझनें उत्पन्न कर देता है। याद रखना चाहिये कि शास्त्र से शास्त्रकार बड़ा होता है। शास्त्र शास्त्रकार की भावनाओ का एक स्थूल और सकुचित रूप है। वेद में कहा है "पादोऽस्य विश्वा भूतानि"। मशीन का बनाने वाला मशीन से बहुत ऊँचा है। कालिदास रघुवन्श से बहुत बड़ा था। ऋषि दयानन्द अपने ग्रथो से बहुत बड़े थे। उनके मस्तिष्क को समझने के लिये उन सूक्ष्म विचारों की खोज करनी होगी जो उनके ग्रथों में समष्टि रूप से ओत प्रोत हैं। हमारे सामने बहुत-सी शकायें इसलिये उठती हैं कि हम इन तीन चीजो अर्थात् (१) १० नियम (२) स्वमतव्यामन्तव्य (३) और शेष ग्रथो के वास्तविक मूल्य का अकन करने मे असमर्थ रहते हैं। और उनको भेदक भित्ति की उपेक्षा कर जाते हैं। यदि हम चाहते हैं कि आर्यसमाज सार्वभौम हो जाए और उसका भविष्य उज्ज्वल हो तो आर्यसमाज को विचार स्वातन्त्र्य का मान करना होगा यदि ऐसा नहीं करेंगे तो साम्प्रदायिकता और पारस्परिक कलह बढेगी। मेरी समझ में मुख्य-गौण विवेक आर्यसमाज के नेताओ के लिये चिन्त्य-तम समस्या है।



ब्रह्म-ज्योति

ज्योति अखण्ड निरजन की, भरपूर प्रशस्त प्रकाश रही है।
दिव्य-घटा निरखी जिसने, उसने दुविधा भ्रम की न गही है॥
सिद्ध विलोक बखान रहे, सब ने छवि एक अनन्य कही है।
तू कर योग निहार चुका, अब शकर जीवन मुक्त सही है॥

परमात्मा सर्व-शक्तिमान् है

जिसने सब लोक रचे सबको, उपजाय, बढाय विनाश करे।
सबका प्रभु, साथ रहै सबके, सबमें भरपूर प्रकाश करे॥
सब अस्थिर-दृश्य दुरें दरसे, सब का सब ठौर विकास करे।
वह शकर मित्र हितू सब का, सब दु:ख हरे न हताश करे॥

—महाकवि शकर

'स्वराज्य' और 'सुराज्य' के द्रष्टा—

स्वामी दयानन्द

(श्री सुरेशचन्द्र वेदालङ्कार एम० ए०,एल० टी०, डी० बी० कालेज, गोरखपुर)

स्वामी दयानन्द के जन्मकाल तक लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष में अंग्रेजो का शासन स्थापित हो चुका था। जो प्रदेश बचे थे वहां भी धीरे-धीरे अंग्रेजों की स्थिति दृढ़ हो रही थी। १८५७ई० के बाद तो राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तथा धार्मिक सभी दृष्टियों से भारत का पतन हो गया था। राजनैतिक पराजय उतनी भयंकर वस्तु नहीं, जितनी सांस्कृतिक पराजित मनोवृत्ति और १८५७ से पहले से ही दूरदर्शी अंग्रेजों ने मानसिक दृष्टि से भी भारतीयों को गुलाम बनाने का कार्य



श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालङ्कार

प्रारम्भ कर दिया था। इस वस्तु को देखकर स्वामी दयानन्द जी ने सबसे पहले 'स्वराज्य' की आवाज उठाई। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा "गन्दे से गंदा स्वदेशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से कहीं अच्छा है"। बात यह है कि गंदा स्वदेशी राज्य चाहे कितनी भी गंदगी फैलाये वह मानसिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से तो हमें गुलाम नहीं बनायेगा। परन्तु विदेशी राज्य अपनी जड़ों को जमाने के लिए राष्ट्र को भाषा, संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से गुलाम बनाने का प्रयत्न करेगा, और भारतवर्ष में हो भी यही रहा था। श्रीमती बेसेंट ने १९ वीं सदी के भारत का जो हाल देखा था, वह काफी दर्दनाक था। "लोग आस्तिकता और नास्तिकता के बीच झटके खा रहे थे। आधिभौतिकता की बाढ़ के मारे राष्ट्र का जीवन विश्रृंखलित हो गया था अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग हक्सले, मिल और स्पैंसर के अनुयायी हो रहे थे। किन्तु अपने साहित्य का उन्हें बिल्कुल ज्ञान न था। वे अपने अतीत से घृणा करते थे अत भविष्य के विषय में उनका कोई विश्वास नहीं था। वे अन्धे होकर अंग्रेजों के तौर तरीकों की नकल कर रहे थे एव अपने कला कौशल और शिल्प का विनाश करके अंगरेजी असबाबों से अपना घर सजा रहे थे। राष्ट्रिय जोश का उनमें लेश भी नहीं था। राष्ट्रिय जीवन की गति बताने वाली कोई भी क्रिया उनमें दिखाई नहीं देती थी। यह सदिग्ध था कि भारतीय हृदय में कोई धड़कन भी शेष है या नहीं" यह थी भारत की वास्तविक स्थिति।

स्वामी दयानन्द ने इस पतन को देखा। और इसके कारणों को दूर कर स्वराज्य की स्थापना और सुराज्य का निर्माण भी अपने सामने रखा, और उन्होंने स्वराज्य की स्थापना का भार श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को सौंपा। तथा स्वयं राजपूताने के राज्यों में जाकर स्वतन्त्रता की भावना भरने का प्रयत्न किया। देश के मानसिक पतन को रोकने के लिए उन्होंने राष्ट्रिय शिक्षा की योजना

बनाई और यह कार्य उन्होने अपने दूसरे शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द को सौंपा। शिक्षा तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद सबसे अधिक आवश्यक बात यह थी कि जनता में आई आत्म-हीनता की भावना कैसे दूर की जाय। और इसके लिए स्वय प्रयत्न किया। और इस कार्य को आगे चलाने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। आप शायद यह लेख पढ़कर यह सोचने लगें कि मैं स्वामी दयानन्द के कार्य-कलाप को एव कार्य-क्षेत्र को संकुचित कर रहा हूँ। पर बात यह नहीं। उनकी विश्व-व्यापिनी दृष्टि ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्देश्य अपने सामने रखा हुआ था। और उन्होने अपने जीवन के अन्तिम समय तक उसी के लिए कार्य भी किया। परन्तु उसका प्रारम्भ उन्होंने अपने घर से किया और इसीलिए रूढ़ियों और गतानुगतिका में फसे हुए भारतवासियों की कड़ी निन्दा की। और उन्हें बतलाया कि तुम्हारा धर्म पौराणिक सस्कारों की धूल में छिप गया है। इन सस्कारों की गन्दी पर्तों को तोड़फेंको। तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म है। जिसपर आरूढ होने से तुम फिर विश्वविजयी हो सकते हो। और यह बात नहीं कि स्वामी जी का प्रभाव न पड़ा हो। आर्यसमाज के प्रभाव में आकर बहुत से हिन्दुओं ने मूर्तिपूजा छोड़ दी, बहुतों ने अपने घरके देवी देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़कर बाहर फेंक दिया। श्राद्ध बन्द होगया। अवतारवाद की समाप्ति हुई। अछूत पन मिटा। स्वदेशी की भावना आई। स्त्रियों को समानाधिकार और शिक्षा मिली, तथा राष्ट्रिय चेतना जाग्रत हुई। हम 'स्वराज्य' की ओर बढे। हिंसात्मक या अहिंसात्मक राष्ट्रिय-आन्दोलन में प्रत्येक आर्यसमाजी ने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की। और यह अत्युक्ति न होगी कि ६०-६५ प्रतिशत आर्यसमाजियों ने उसमें भाग लिया। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल आदि कितने ही नाम गिनाये जा जा सकते हैं। इस प्रकार स्वराज्य' हुआ। परतु 'स्वराज्य' के बाद 'सुराज्य' की आवश्यकता भी स्वामी जी ने अनुभव की थी।

'सुराज्य' के लिए उन्होंने व्यक्तिगत चरित्र की उन्नति की ओर ध्यान देने और अपने अन्त करण या आत्मा की आवाज के अनुसार चलने को कहा। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश के ६ वें समुल्लास में आत्मा की आवाज के अनुसार चलने की बात बहुत जोरदार शब्दों में कही है। यह आत्मा की आवाज क्या है? इसे यदि मैं सरल शब्दों में कहूँ तो यह मनुष्य का अपने ऊपर अपना बन्धन है। भारतीयभाषा का शब्द शास्त्र का एक-एक शब्द एक-एक भावना का द्योतक होता है। १९४७ की १५ अगस्त को जब भारत को स्वतन्त्रता मिली। अंग्रेजी पत्रों और व्यक्तियों ने अपने यहाँ से 'इण्डिपैण्डैन्स' की घोषणा की। परन्तु हिन्दी पत्रों ने तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने 'स्वतन्त्रता' या 'स्वाधीनता' की सूचना दी। दोनों में अन्तर है। इण्डिपैण्डैन्स शब्द का अर्थ है 'अनधीनता' अर्थात् किसी के अधीन न रहना। इसका अर्थ स्वाधीनता नहीं। स्वाधीनता का तो अंग्रेजी अनुवाद होगा 'सेल्फ डिपैण्डैन्स' अब अनधीनता और स्वाधीनता पर विचार कीजिए। जो व्यक्ति 'अनधीन' होगा वह उच्छृंखल हो जायगा, और वह उस दशामें रेलमें बिना टिकट की यात्रा अपना धर्म समझेगा, सड़कपर, आम-रास्तों पर जनता को सुविधाओं के लिए बनी वस्तुओं को उठाकर अपने घर ले जायगा, सार्वजनिक स्थानों को गन्दा करके रोग फैलाएगा, काम के समय आराम करेगा, अनुचित साधनों से धन कमाकर अपनी भलाई के सामने दूसरों के अनिष्ट की परवाह न करेगा। अनियंत्रण अनुशासनहीनता उसको नहीं अखरेगी और परिणामत अधिकांश व्यक्तियों के ऐसा होने पर देशोद्धार और राष्ट्र निर्माण की योजनाए समाप्त हो जायगी। विचारिए आज क्या ऐसा नहीं हो रहा है? बाध बन रहे हैं और बनने से पहले वे टूट जाते हैं, क्यों? दवायें बन रही पर नकली पदार्थों की मिलावट से वे रोगियों के प्राण ले रही हैं, क्यों? घी, दूध, तेल सभी वस्तुओं में मिलावट है। देश स्वराज्य के बाद तो और भी पतन को जा रहा है यह ऐसा लोगों का अनुमान है। क्यों? क्योंकि हमने स्वराज्य के बाद अनधीनता तो पाई पर स्वाधीनता नहीं। स्वामी जी महाराज ने इसी 'सुराज्य' को लाने के लिए

'आत्मा की आवाज' 'स्व' का बन्धन आवश्यक रखा। ठीक है, आपको चोरी करते हुए, घूस लेते हुए, गन्दगी फैलाते हुए किसी दूसरे ने नहीं देखा, पर परमात्मा तो देख रहा है। उससे बचने का उपाय है, अपनी आत्मा की आवाज सुनो, और अनुभव करो कि यह कार्य ठीक नहीं। उस दशा में तुम स्वयं को सुखी और देश को सुराज्य की ओर ले जा सकते हो। इस प्रकार यदि हम राष्ट्र को सुराज्य की ओर ले जाना चाहते हैं, तो स्वामी जी का 'स्वाधीनता' का उपदेश हमें हृदयङ्गम करना होगा। आज भी अनधीनता के रूप में न सोचकर स्वाधीनता के रूप में हमें सोचना होगा। और अपने पर लगाया हुआ यह आत्मबन्धन राष्ट्र और जाति के लिए तथा विश्व के लिए भी एक मार्ग प्रशस्त करेगा। यही शिवरात्रि का स्वामी जी महाराज का सन्देश है। जो न केवल व्यक्ति बल्कि राष्ट्र के लिए सुनने की बात है। आज महान् उपकारक विश्व को आर्य (संकुचित अर्थ में नहीं) बनाने के उत्सुक और प्रेरक महर्षि का गुणगान हम किन शब्दों में करें, नहीं समझ पा रहे हैं। सचमुच हे स्वामी!

सबने देखे विद्वेष गरल, तूने देखा अमृत प्रवाह।
सबने बड़वानल लिया, लिया तूने करुणा सागर अथाह।
नर के भीतर की दुनिया में, हे कहाँ अवस्थित देवालय।
सदियों में कभी कभी कोई मरमी पाता जिसका परिचय॥

पूज्य गुरुवर! कितना उपकार मानव का तूने किया है।
कैसे श्रद्धाञ्जलि अर्पित करूं। मैं नहीं समझ पाता हूँ।

तेरा विराट यह रूप, कल्पना पट पर नहीं समाता है।
जितना कुछ कहूँ, मगर, कहने को शेष बहुत रह जाता है।
लज्जित मेरे विचार, तिलक माला भी यदि ले आऊँ मैं।
किस भांति उठू इतना ऊपर? मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं।
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उंगलियां न छू सकती ललाट।
वामन की पूजा किस प्रकार पहुँचे तुम तक मानव विराट्।



परमात्मा की महत्ता

हे शंकर कूटस्थ अकर्त्ता, तू अजरामर-अत्ता है।
तेरी परम-शुद्ध-सत्ता की, सीमा-रहित-महत्ता है॥
जड़ से और जीव से न्यारा, जिसने तुझको जाना है।
उस योगीश-महाभागी ने, पकड़ा ठीक ठिकाना है॥

हे अद्वैत, अनादि, अजन्मा, तू हम सबका स्वामी है।
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता-अविचल अन्तर्यामी है॥
भक्ति भावना की ध्रुवता से, जो तुझको अपनाता है।
वह विद्वान्-विवेकी-योगी मनमाना सुख पाता है॥

हे आनन्द महासुखदाता, तू त्रिभुवन का त्राता है।
मुक्तक माता, पिता हमारा, मित्र सहायक भ्राता है॥
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरंतर लेता है।
तू उस प्रेमाधार-पुत्र को, मन्त्र-बोध-बल देता है॥

मैं समझता था कहीं भी, कुछ पता तेरा नहीं।
आज शंकर तू मिला तो, अब पता मेरा नहीं॥
शंकर स्वामी एक है, सेवक जीव अनेक।
वे अनेक हैं एक में, वह अनेक में एक॥

विश्व विलासी-ब्रह्म का, विश्व-रूप सब ठौर।
विश्वरूपता से परे, शेष नहीं कुछ और॥
होना सम्भव ही नहीं, जिसमें सैक निरेक।
जाना उस अद्वैत को, किसने बिना विवेक॥

जिसकी सत्ता का कहीं, नादि, न मध्य, न अन्त।
योगी हैं उस बुध के, विरले सन्त महन्त।
सर्व शक्ति-सम्पन्न है, स्वगत-सच्चिदानन्द।
भूले भेद, अभेद में, मान रहे मतिमन्द॥

स्वामी सब संसार का, वह अविनाशी एक।
जिसके माया जाल में, उलझे जीव अनेक॥
—महाकवि शंकर

आज भी यह विचार दृढ़ है कि आर्यसमाज के सांस्कृतिक और सामाजिक ढाँचे को तो ज्यों का त्यों सुरक्षित रहने दिया जाये। आर्यसमाजियों को जो इधर रुचि रखते हैं उन्हें संघठित रूप दिया जाय। मेरा अपना विचार है कि यदि मेरठ महासम्मेलन में कोई निर्णयात्मक पग उठा लिया गया होता तो आज आर्यसमाज की युवा शक्ति बिखरती नहीं। परन्तु आज भी अगर एक दृढ़ निर्णय ले लें तो अभी बहुत कुछ नहीं बिगड़ा है। आर्यसमाज के नेता पंजाब का भाषा सत्याग्रह और मथुरा की दयानन्द दीक्षा-शताब्दी देखकर भी यदि आर्यसमाज की शक्ति का अनुमान नहीं लगा पाते तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है। मेरठ में राजनीति वाले प्रस्ताव पर एक उपसमिति बना दी गई थी। इस बार मथुरा में भी आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्तियों ने फिर इस विषय को राजार्य सम्मेलन में उठाया। मेरठ से मथुरा तक इतना तो अन्तर हुआ है कि श्री महाशय कृष्ण जी और माननीय घनश्यामसिंह जी गुप्त तो इन विचारों के हो गये हैं, कि राजनीति में आया जाये। परन्तु रूप उसका क्या हो यह अभी वह नहीं सोच पा रहे हैं।

आर्यसमाज में ऐसा भी कुछ तत्व है, जो आज भी राजनीति को वारांगना (वेश्या) या कीचड़ में हाथ डालना आदि कहकर दूर रहने का परामर्श देता है परन्तु इनमें तीन प्रकार के व्यक्ति हैं, एक तो वह जिनका मस्तिष्क ही इस दिशा में कभी काम नहीं करता, केवल सिद्धान्तवाद अथवा शास्त्र चर्चा को ही आर्यसमाज समझ बैठे हैं। इस बात को वह भूल जाते हैं "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्त्तते" अपना राज्य और अपना धर्म इन दोनों का भी अभिन्न सम्बन्ध है। दूसरे फिर आर्यसमाज स्वयं तो एक संगठन ही है कोई धर्म तो है ही नहीं। धर्म के जिस शुद्ध और परिष्कृत रूप को आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ने हमें बताया है, उसमें राजनीति को भी धर्म से अलग नहीं रखा गया। सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में महर्षि दयानन्द जी ने जहाँ इसकी चर्चा आरम्भ की है, वहाँ "राजधर्मान् व्याख्यास्याम" ऐसा लिखा है। दूसरे व्यक्ति वह हैं जो सरकारी नौकरी में अथवा सरकारी अधिकारियों के कृपा-पात्र बने रहने में ही जिनका हित है। तीसरे और भी एक इस विचार के विरोधी हैं। यह वह लोग हैं जिनका इस तरह के कुछ राजनैतिक संगठनों से लगाव है, जो उनके प्रति अपनी वफादारी बनाये रखने के लिए ही यह परामर्श देते हैं कि राजनीति से दूर रहा जाये। दुःख की बात है कि इस समय कांग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट तक हमारे इस संगठन में हैं। कुछ प्रत्यक्ष हैं और कुछ अप्रत्यक्ष हैं। अच्छा हो हम इन अप्रत्यक्ष काम करने वाले मित्रों से भी सावधान रहें।

कुछ ऐसे भी आर्य जन हैं जो सचमुच ही बिना किसी अन्य कारण के पवित्र भाव से यह अनुभव करते हैं कि कहीं उधर जाने से हम अपने प्रमुख लक्ष्य से भटक तो नहीं जायेंगे? सम्भव है कि सीमा तक वह ठीक भी सोच रहे हों, परन्तु बड़ी नम्रता से ऐसे महानुभावों से मेरा निवेदन है कि कुछ ऐसे भी समय आते हैं जब बड़े-बड़े महात्माओं को भी परिस्थितियों ने मार्ग बदलने पर विवश किया है। समर्थ गुरु रामदास को परिस्थितियों ने ही पुकारा था कि किसी शिवा जी की पीठ पर हाथ रख कर उसे तैयार करें। बन्दा बैरागी को माला छोड़ कर स्वयं फर्रुखसियर के आगे तलवार पकड़नी पड़ी थी। और इसी तरह के यह सब कारण थे जो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भारत के प्रथम क्रान्तिकारी श्याम जी कृष्ण वर्मा को लन्दन में छात्रवृत्ति देकर भारतीय स्वाधीनता का शंख फूकने भेजा था। एक समय ऐसा था जब धर्म के शुद्ध स्वरूप की रक्षा के लिए आर्यसमाज ने शास्त्रार्थ किया। ऐसा भी एक समय आया जब लाठी-गोली और छुरों के भी सामने आर्य नेताओं ने किये। कभी सत्याग्रह युद्ध में भी हम कूदे। समय के अनुसार अपनी रीति-नीति में हम हेरफेर करते रहे हैं। परन्तु आज की परिस्थिति हमें पुकार पुकार कर कह रही है कि हम राजनीति की उपेक्षा न करें। संस्कृति सभ्यता और धर्म को अंग्रेजों के समय उतना खतरा नहीं था, जितना आज है। धर्म निरपेक्षता के नाम पर जो वातावरण आज चल रहा है उससे साम्यवाद के लिए रास्ता तैयार होता जा रहा है। कभी चोटी और जनेऊ के लिए हमारे पूर्वज लड़े थे, आज

बहाव में आकर नई पीढ़ी उन्हें वह स्वय उतरती जा रही है। धर्म का मजाक उड़ाया जाता है उसे पिछड़े युग की बात कह कर अजायब घर की वस्तु बतलाया जाता है। स्कूलों, कालेजों में कहीं नाममात्र को भी थोड़ा धार्मिक क्रम था तो उसे कानून से छुड़वा दिया गया। उधर इस धर्म निरपेक्षता का लाभ उठाकर भारत की अराष्ट्रिय प्रवृत्तियाँ फिर पनप रही हैं। पाकिस्तान की तरह विदेशी ईसाई पादरी अरबों रुपया बहाकर फिर से देश को एक नये सकट के द्वार पर ले जा रहे हैं। हमारी राष्ट्रिय सरकार धर्म निरपेक्षता के नाम पर यह सब देख रही है। यों भी आज की कांग्रेस जिसकी केन्द्र में और प्रान्तों में सरकार है, वह गाँधी, तिलक और मालवीय जी की कॉंग्रेस नहीं रही। उसमें भी बहुत से कम्युनिस्ट घुस गये हैं। आज के कम्युनिस्टों और कांग्रेस में इतना ही अन्तर है कि वह विदेशी कम्युनिज्म को मानते हैं और इनका स्वदेशी कम्युनिज्म है। कॉंग्रेस के उच्चतम नेता यदि यह सोचते भी हैं कि कभी शासन हमारे हाथ से अगर जाये तो फिर वह ही सभालें। भले ही परिस्थितिवश वह इस बात को न कहते हों परन्तु उनके मन में यह चोर छिपा हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में कर्त्तव्य तो हर भारतीय सस्कृति के उपासक का है, कि वह सगठित हों और देश के लिए दलीय भावनाओं से ऊपर उठ कर विचार करें, पर आर्य समाज का दायित्व तो विशेष है। स्वस्थ सगठनों का यह चिह्न भी है, कि वह अपने लक्ष्य को न भूलते हुए समय के साथ अपनी रीति-नीति में परिवर्त्तन करते रहते हैं। गम्भीरता से इस विषय पर भी आज हम एक बार फिर से सोचें। यह बात दूसरी है कि उसका रूप क्या हो? सिद्धान्त यदि यह बात सब मान लेते हैं तो रूप अवश्य सोच लिया जायेगा। अमरशहीद स्वा० श्रद्धानन्द जी ने आज से ३० वर्ष पूर्व यह भविष्यवाणी लिखित रूप में की थी, कि एक ऐसा भी समय आयेगा, जब आर्यसमाज को राजनैतिक शुद्धि भी करनी पड़ेगी? मेरी सम्मति में आज वह समय आ गया है, जब स्वामी जी की उस भविष्यवाणी को सार्थक करने के लिए हम कमर कसें। हमारे अधिक से अधिक साथी सदनों और बवान सभाओं में पहुँचें और मूक एव त्रसित मानवता का सही प्रतिनिधित्व करें। राजनीति के बेलगाम दौड़ते जा रहे घोड़े को सयम और विवेक की लगाम लगायें।



शंकर सर्वाधार है

मगल मूल महेश, दूर अमंगल को करे।
ब्रह्म विवेक दिनेश, मोह महातम को हरे॥

शकर स्वामी के सुने, शकर नाम अनेक।
मुख्य सर्वतोभद्र है, मगलमय ओमेक॥

मुख्य नाम है ईश का, ओमनुभूत प्रसिद्ध।
योगी जपते हैं इसे, सुनते हैं सब सिद्ध॥

ओमक्षर के अर्थ का, धरले ध्यान पवित्र।
बोध बना देगा तुझे, अमृत मित्र का मित्र॥

शकर सर्वाधार है, शकर ही सुख धाम।
शकर प्यारे मन्त्र हैं, शकर के सब नाम॥



ब्रह्मचर्य का महत्व

[दोहा]

रहे जन्म से मृत्युलों, ब्रह्मचर्य-व्रतधार।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार॥
बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार।
शकर होता है वहाँ, सबका सर्व-सुधार॥
(स्वामी दयानन्द सरस्वती)
विज्ञान-पाठ, वेद पढ़ो, को पढ़ा गया।
विद्या-विलास, विज्ञ वरों, का बढ़ा गया॥
सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया।
आनन्द सुधा, सार दया, का पिला गया॥
अब कौन दयानन्द, यती के समान है।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य की महान् है॥

—महाकवि शकर

दयानन्द विचार दोहन

[ले० श्री प० नरेन्द्र जी हैदराबाद]

शिवरात्रि के पवित्र अवसर पर युग प्रवर्त्तक महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र में से उन प्रमुख घटनाओ को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कि उनके सारे जीवन की बीती घटनाओ में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन्हीं घटनाओ ने मूल जी को—दयानन्द और दयानन्द को महर्षि के पद पर आसीन किया। सत्य ही है महापुरुष ही ससार की महती घटनाओ के प्रवर्त्तक होते हैं, जो स्रोत समाज की मूलभीति तक को हिला देते हैं, जो स्रोत समाज के शरीर मे नई शक्ति का सचार कर देते हैं। महापुरुष ही एसे स्रोतो के उत्पादक होते हैं। महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र रूपी समुद्र से उन उन रत्नो को बीन कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा हे जिसकी आभा और तेज से हम अपने जीवनो को आलोकित कर सकें। और हम इस विचार दोहन में महर्षि के स्पष्ट रूप से दर्शन कर सकेंगे, और यह विचार दोहन सब के लिये लाभकारी होगा।

निर्भयता और सत्य

(१) १८६६ ई० में जब कि स्वामी जी लाहौर ठहरे हुये थे, और उन्होंने अपने प्रबल आन्दोलन को चला रखा था तब काश्मीर पति महाराज रणवीर सिंह ने प० मनफूल द्वारा स्वामी जी से अनुरोध किया था कि "आप मूर्तिपूजा के विरोध में कुछ न कहे। यदि आप ऐसा करें तो मैं अपना धनागार आपको समर्पित कर दूगा।" परन्तु दयानन्द ने इसका क्या उत्तर दिया? आपने निर्भयता के साथ सत्य के प्रचार से न डिगते हुये प० मनफूल से "कहा मै वेद प्रतिपादित ब्रह्म को सन्तुष्ट करू गा, न कि काश्मीरपति को"। महाराजा का प्रलोभन मुझे अपने सत्य के मार्ग से नही हटा सकता। आप ऐसी बात फिर मेर सामने न कहिये।

(२) १८६९ ई० में जबकि काशी में महाशास्त्रार्थ का आन्दोलन हो रहा था काशी का एक प्रसिद्ध पडित, एक दिन रात्री के समय दयानन्द के पास आया और उनसे प्रार्थना की कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो काशी की पडित मण्डली एकत्र हो कर आपके गल मे जयमाला पहनायेगी, और आपको हिन्दुओ का अन्यतम अवतार मानलगी। उत्तर में महर्षि ने कहा 'मैं यह कुछ नहीं चाहता,' म तो वेद प्रतिपादित सत्य के प्रचार के लिये आया हूं।



— श्री प० नरन्द्र जी —

(३) दिल्ली के निकटवर्ती किसी स्थान के एक सेठ ने स्वामी जी के पास आकर विनयपूर्वक यह प्रार्थना की महाराज मैं यह लाख रुपया आपको भेंट करता हूँ, आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें। सेठ के इस अनुरोध को सुनकर स्वामी जी के ओठो पर मुस्कान-सी आ गई, और आपने कहा, प्रलोभन मुझे निर्भयता साहस, पराक्रम और सत्यपथ से विचलित नहीं कर सकता। आप यहाँ से चले जाइये।

(४) ज्वाला प्रसाद नामक एक ब्राह्मण जो फर्रुखाबाद का निवासी था। एक दिन एक—वाम मार्गी ब्राह्मण को अपने साथ लाकर स्वामी जी के सम्मुख कुर्सी डालकर बिठा दिया और वह व्यक्ति उन्हे दुर्वचन कहने लगा। जिसका महाराज पर कुछ भी असर न पड़ा। परन्तु उस दुष्ट का दुर्व्यवहार महाराज के भक्तो को असह्य हुआ और उन्होने उसे खूब पीटा। यह बात महाराज को जब मालूम हुई तो, स्वामी जी ने कहा कि "हम से यदि हाकिम पूछेगा तो हम तो जो सत्य है वही कहेंगे। चाहे वह तुम्हारे अनुकूल हो या प्रतिकूल पडे। हम इस प्रकार के व्यवहार को उचित नहीं समझते।"

(५) लाला जगन्नाथ ने एक दिन स्वामी जी से कहा कि आप पर आक्रमण की सम्भावना है, इसलिये अच्छा होगा कि आप विश्रान्त क नीचे के भाग में रहने लगिये वह सुरक्षित है। स्वामी जी ने कहा कि "यहाँ तो आप मेरी रक्षा कर लेंगे, परन्तु अन्यत्र कौन करेगा? मैं ने आज तक अकेले ही भ्रमण किया है। और आगे भी करूँगा। कई बार मेरे प्राण हरण की चेष्टा की गई परन्तु सर्व रक्षक परमात्मा ने सर्वत्र मेरी रक्षा की और भविष्य में भी वही करेगा। सत्य के प्रचार में बाधायें आती ही हैं। आप चिन्ता न करें।

(६) महारानी विक्टोरिया के ज्येष्ठ पुत्र एडवर्ड सप्तम भारत वर्ष में भ्रमण करने के लिये आये थे, उस समय भारत के वाईसराय लार्ड नार्थ ब्रुक ने बाबू केशव चन्द्र सेन से कहा कि वे स्वामी जी से मिलना चाहते हैं। स्वामी जी से कहा गया तो उन्होंने कहा कि "लार्ड नार्थ ब्रुक हमारे पास आयेंगे। हम सन्यासी हैं उनसे मिलने नहीं जायेंगे, हमारा द्वार प्रत्येक के लिये खुला है।"

ये और ऐसी ही निर्भयता, सत्यता और आस्तिकता की घटनाय महर्षि के जीवन में सव्याप्त हैं। शिवरात्रि ने उस महान् आत्मा को शकर के गुणो से युक्त कर दिया। नव निर्माण और अन्याय का प्रतिकार कर वे अपने जीवन को सत्य शिव सुन्दरम् के लिये समर्पित कर गये। हम आर्यों पर उनके स्वप्नो की पूर्ति का दायित्व है। शिवरात्रि हमारे लिये बोध और उद्बोधन का सन्देश दे रही है।



❀ कृपा की कामना ❀

अनुकम्पा आनन्द की, जब होगी अनुकूल।
तब ही होगे जीव के, कष्ट विनष्ट समूल॥
अज, अद्वितीय, अखण्ड, अक्षर, अर्यमा अविकार है।
अभिराम, अव्याहत, अगोचर अग्नि अखिलाधार है।
मनु, मुक्त, मगलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है।
करतार तारक है तुही, यह वेद का उपदेश है।
—महाकवि शकर

शिव शंकर-दयानन्द

(ले० —श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी, महारानी रोड, इन्दौर)

वह मूल शकर था, चैतन्य था, दयानन्द था। सरस्वती था, स्वामी था, सन्यामी था परिव्राट था। दण्डी था, योगी था, योगिराज था तपस्वी था। मनीषी था, ऋषि था, महर्षि था। ब्रह्मचारी था, ब्रह्मवेत्ता था, ब्रह्मनिष्ठ था, ब्रह्मानन्दी था। अग्नि था, तेजस्वी था वर्चस्वी था, ब्रह्मवर्चस्वी था।

इस धरातल पर शकर होकर आया था। शकर के मूल की खोज कर गया और दयानन्द बनकर अपनी दया ससार पर कर गया। जहर का प्याला पिलाने वाले को भी दया का प्याला पिला गया। नश्वर देह के मोह को त्याग कर हँसते हँसते प्रसन्नता से, परम प्रभु के प्रेम में मस्त होकर ब्रह्मानन्द में विलीन हो गया। एक जीवन, एक क्रान्ति, अतीत के गुण गौरव का एक मधुर लक्ष्य, एक महान् आशा का सचार, एक अद्भुत जीवन ज्योति इस युग में अनन्त समय के लिये छोड गया।

वह शकर था—निस्सन्देह शकर ही था। प्राणिमात्र के कल्याण के लिये, विश्व के ही कल्याण के लिये, उसकी अमर साधना थी। उसके जीवन का एक-एक क्षण इसकी पूर्ति में लगा।

हम जिस धरातल पर हैं, उससे बहुत ऊँचाई पर वह था। वह चैतन्य था। शुद्ध चैतन्य ही था। उसने हमारे अन्दर चैतन्य का सचार किया। हमारी जाति, हमारे देश, हमारे धर्म, हमारे कर्म में निस्तेजता, प्राण हीनता और मलिनता गहरी जड़ें जमा चुकी थी। उस शुद्ध बुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी ने अपने ब्रह्मवर्चस् तेज से हमारे जीवन एव धर्म कर्म को चैतन्य, तेजोमय एव ब्रह्म से वेद से सयुक्त कर दिया। उस चैतन्य, ब्रह्मचारी से चेतनता एव प्राण प्राप्त कर आज हम जीवित हैं, गौरव शाली है। अपनी जाति, धर्म और देश की सामाजिक, सास्कृतिक और राजनैतिक निस्तेजता को त्यागकर जीवन एव चैतन्यता का अनुभव कर रहे हैं और दूसरो को भी अब हमारी तेजस्विता का भान होने लगा है। आज विश्व की आँखें हमारी ओर भी किसी आशा से किसी महान् सन्देश को प्राप्त करने के लिये लगी हुई हैं।

वह सरस्वती था—वेद विद्या का अपार और अथाह समुद्र था। काशी की पडित मण्डली ने उसकी थाह लेना चाही। परन्तु वे सब उसकी गहराई को पहुँच न सके। मत मतान्तरों के विद्वानों ने भी अनेक बार उनके अगाध ज्ञान की थाह लेना चाही। उनके ज्ञान सागर मे गोते लगाये—परन्तु वे अपने प्राण बचाकर भाग खड़े हुये। वह खारा समुद्र नहीं था, अपितु अत्यन्त सरसवान् समुद्र था। उसके पास जो आता वह तृप्त होकर ही जाता था।

वह स्वामी था, विश्वनाथ मन्दिर का वैभव काशी नरेश ने अर्पण करने को प्रार्थना की, उदयपुर महाराजा ने नाथद्वारा की गद्दी उनके चरणो मे अर्पित की—परन्तु वह लोभ लालच से विचलित होने वाला नहीं था। भय से विकम्पित होने वाला नहीं था—मृत्यु से भी विचलित होने वाला नहीं था— मृत्युजयी था—आत्म स्वामी था—अपना ही स्वामी नही था—अपनी वृत्तियो का ही स्वामी नही था अपितु ससार का स्वामी था। ससार का स्वामी होने पर भी एक लगोटधारी, सर्वहुत,

सर्वस्व त्यागी सन्यासी था। राजा, महाराजा और सम्राटों की कृपा की उसे इच्छा नहीं थी। राजा, महाराजा और सम्राट् उसकी कृपा की आकांक्षा करते थे। वह सम्राटों का भी सम्राट्-परिवाट् था। जिसकी चारो दिशायें ही रक्षक थी और परम प्रभु ही उसका मन्त्रदाथा।

वह योगी था। उसने तपस्या से अपने शरीर, मन एवं अन्त करण को पवित्र किया था। पवित्रान्त करण में वह नित्य ब्रह्म का दर्शन किया करता था। ब्रह्म से नित्य योग-मेल-मिलाप किया करता था। ब्रह्म के आनन्द में नित्य निमग्न रहता था। अतएव निर्भय था। निर्भ्रम था, नि शक था। उसके चारों ओर आनन्द का ही साम्राज्य था—आनन्द का ही सागर हिलोरें मार रहा था। ब्रह्म का तेज, ब्रह्मवर्चस् उसके मुख मण्डल पर दैदीप्यमान था। ज्ञान और तेज की रश्मिया उससे प्रस्फुटित होती रहती थीं। वह कभी न थकने वाला एव विश्राम न करने वाला था। वह सदा जात था, जागरुक था, और सबको जगाने वाला था। सबको प्रबुद्ध करने वाला था।

योग साधना में रत रहकर अपना ही उद्धार करने वाला वह नहीं था। वह योगिराज था। भोगों की लालसाओं के पर्वत उससे टकराकर चकनाचूर हो जाते थे। अज्ञान, अविद्या के भयकर प्रलयकारी तूफान वहाँ शान्त हो जाते थे। लोभ एव लालच की कीचड़ वहाँ जाकर शुष्क चट्टान हो जाती थी और उस परम तेजस्वी को अपने पङ्क में निमग्न न कर सकी थी, वह त्याग में अनुपम था, तपस्या में अनुपम था, ज्ञान में अनुपम था। अनुपम वक्ता था, उसकी वक्तृत्व शक्ति सभी को मोह लेती थी। उसकी अद्वितीय तर्कना शक्ति युगों से पड़े हुए रुढ़िग्रस्त विचारों को पल मात्र में छिन्न भिन्न कर देती थी। आचार्य शकर अपने प्रखर तर्क से जो कार्य नहीं कर सके—बुद्ध अपनी तप साधना से जो न कर सके--शिवा जी अपनी रणचातुरी से जो काम नहीं कर सके, कविगण एवं भक्त मडली अपने अमर गीतों से जो कार्य न कर सकी, वह कार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विश्वकल्याण के लिये कर दिया। इसलिये आज हम उसके कृतज्ञ हैं, उसके आगे नतमस्तक हैं। उसकी मधुर स्मृति को पुन सजीव बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

उसी महर्षि की आज बोधरात्रि है। यह मगलमयी-शिवरात्रि है। महाशिवरात्रि है। नि सन्देह यह महा-शिवरात्रि अपने नाम के अनुसार अत्यन्त कल्याण कारिणी और मगलमयी भी सिद्ध हुई। यदि महर्षि दयानन्द सरस्वती को इस रात्रि में बोध न हुआ होता तो यह शिवरात्रि नहीं अपितु अशिवरात्रि ही रह जाती, और मानव जाति महान् अन्धकार के गर्त में ही निमग्न रह जाती। महर्षि धन्य हैं, जिन्होंने हमें उबारा उनके उपकार हम कभी न भूल सकेंगे।

महर्षि-महिमा

(लेखक श्री प्रकाश चन्द्र जी 'कविरत्न,' अजमेर)

[यह कविता प्रकाशचन्द्र जी तथा उनके शिष्य पियूष जी द्वारा दयानन्द दीक्षा-शताब्दी मथुरा में गायी गयी थी]



यूं तो कितने ही महापुरुष हुए दुनिया में।
कोई गुरु देव दयानन्द सा देखा न सुना॥

छोड़ माता पिता घर द्वार धन खजाने को।
चल दिया धार के व्रत ब्रह्मचर्य वाने को॥

लगी दिल में थी लगन ऐसी ही दीवाने को।
होती दीपक से जैसे प्रीति है परवाने को॥

भटका जग में वो खोज सत्य की लगाने को।
न मिला आह! उसे कितने दिनों खाने को॥

कभी मरुथल किया तै, बन कभी काँटो वाला।
कभी बरफानी पहाड़ी कभी नदी नाला॥

हुआ लथपथ लहू से तन पड़ा पाऊँ छाला।
फैंके पत्थर किसी ने साप विषैला काला॥

खड्ग चमकाया किसी ने तो किसी ने भाला।
दिया नादानों ने कितनी ही बार विष-प्याला॥

फिर भी पीछे न हटा सत्य का वो मतवाला।
आज यूं मुंह से कह रहा है हर अदना, आला॥

यूं तो कितने ही महापुरुष हुए दुनिया में।
कोई गुरु देव दयानन्द सा देखा न सुना॥

पाला हनुमान पवन सुत ने ब्रह्मचर्य था बस।
अपने स्वामी श्री रामचन्द्र के रिझाने को॥

सुना है पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था।
पृथ्वी से नाम क्षत्रि वश के मिटाने को॥

पाला था ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह ने भी।
अपने पितु शानतनु के सुखी बनाने को॥

किन्तु गुरुदेव दयानन्द ब्रह्मचारी ने।
पाला था ब्रह्मचर्य जग के दुख मिटाने को॥

दीन दुखियों की दशा देख दुखी होता था।
सारा जग चैन से सोता था तब वो रोता था॥

विश्व कल्याण के साधन सभी सजोता था।
एक पल भी वो कभी व्यर्थ को न खोता था॥

योगी जो आठ पहर ध्यान मग्न रहते हैं।
देख स्वामी की तपस्या वो यही कहते हैं॥

यूं तो कितने ही महापुरुष हुए दुनिया में।
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना॥

मारते मान रहे मिथ्याचार मण्डी के।
वेद-अनुयायी थे रक्षक थे ओ३म् झण्डी के॥

पूर्ण प्रतिद्वन्द्वी रहे पातकी पाखण्डी के।
निराले शिष्य थे गुरु विरजानन्द दण्डी के॥

जैसे कवि अपने मधुर छन्द पर निछावर है।
जैसे प्रेमी चकोर, चन्द पर निछावर है॥

भृङ्ग अरविन्द के मकरन्द पर निछावर है।
तैसे दिल मेरा दयानन्द पर निछावर है॥

जिसने मृत आर्य जाति को पुन जिलाया है।
खुद जहर खाके वेद अमृत हमें पिलाया है॥

धैर्य, विधवा अनाथ, दलितो को दिलाया है।
जिसने बिछुडे हुओ को हम से फिर मिलाया है॥

उस दयानन्द पै बलिहार क्यों न जायें हम।
क्यों? न उसके लिए सर्वस्व निज चढ़ायें हम॥

आर्य बन सच्चे क्यो न उसका ऋण चुकायें हम।
क्यो? न श्रद्धा से गीत ये 'प्रकाश' गायें हम॥

यूं तो कितने ही महापुरुष हुये दुनिया में।
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना॥



'व्रतेन दीक्षामाप्नोति'

ऋषि के स्वप्न को साकार करने के लिये दीक्षा शताब्दी का सन्देश

(ले०—श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालकार)

प्राय हम लोग व्रत धारण और दीक्षा को एक समझते हैं, यह किसी अश तक ठीक भी है। परन्तु यदि व्रत और दीक्षा सर्वथा एक वस्तु होते तो वेद यह क्यों कहता कि व्रत से दीक्षा को प्राप्त होता है। व्रत और दीक्षा में भेद है। वह भेद क्या है? परमात्मा को साक्षी करके धारण किया हुआ सकल्प व्रत कहलाता है, परन्तु उस व्रत धारणा की लोक-साक्षिक घोषणा को दीक्षा कहते हैं। व्रत तो एकान्त में भी धारण किया जा सकता है, परन्तु दीक्षा सब दुनिया के सामने ली जाती है। व्रत और दीक्षा में यही भेद है, जो डाल पर लटके आम में तथा पक कर टपके आम में। आम चाहे पक कर टपकें चाहे, आँधी के झटके से अथवा तोड़ने वाले के झटके से। जब तक वह डाल पर लटका है, तब तक अत्यन्त मधुर रस से भरा होने पर भी खाने के काम में नहीं आ सकता।

आर्य पुरुषो! आप सबने मथुरा शताब्दी पर एकत्रित होकर यह दीक्षा ली—"वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना और शिक्षा के क्षेत्र में गुरु-शिष्य परम्परा के आदर्शों के अनुसार राष्ट्र का निर्माण करेंगे"।

मैने गुरुकल कॉंगडी में रहते हुए वर्णाश्रम धर्म की महिमा को श्री आचार्य रामदेव जी की कृपा से कुछ-कुछ समझा। फिर स्नातक होने के पश्चात् दो वर्ष लगातार एकाग्रचित से इस पर चिन्तन किया। सन् १६२७ ई० में कायाकल्प नामक पुस्तक इस विषय पर प्रकाशित की तथा वर्णाश्रम संघ की स्थापना की।

मेरे हर्ष का वारापार नहीं रहा जब मैने शताब्दी के दीक्षा पत्र में राष्ट्र निर्माण के लिए वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था का इतना स्पष्ट उल्लेख पाया।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान तथा मन्त्री भी (जहाँ तक मुझे स्मरण है) शताब्दी के इस दीक्षा समारोह में उपस्थित थे, और यह व्रत उन्होंने भी दोहराया। इस अवस्था में मेरा यह प्रस्ताव है कि अब सारे आर्यजगत् को अपनी सारी शक्ति इस महान् कार्य की पूर्ति में लगा देनी चाहिये, नहीं तो दीक्षा शब्द का अर्थ ही कुछ नहीं। इस दीक्षा का एक अश तो वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है, तो दूसरा अश अनुशासन से।

शब्द इस प्रकार हैं—हम सब आर्य जन आर्यसमाज के सगटन की महत्ता और अनुशासन को दृष्टि में रखते हुए निश्चय करते हैं कि, सदैव अनुशासन का पालन करते हुए पारस्परिक सहयोग और प्रेम के जीवन का निर्माण करेंगे।

सार्वदेशिक सभा के प्रति आर्य जनता में आज तक राज भक्ति से भी बढ़कर गहरी भक्ति रही है। आज तक आर्यसमाज ने जो भी सफलता प्राप्त की है, उसका रहस्य यह अनुशासन भक्ति ही है। सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना है कि वह आर्यसमाज के इस रचनात्मक कार्य को हाथ में ले। आर्य जनता अपनी अनुशासन भक्ति का परिचय दे। फिर देखिए कि हम विजय यात्रा में किस प्रकार घाटी पर घाटी जीतते हुए आगे बढ़ते हैं।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

ऋषि के जीवन से प्रेरणा

(ले०—श्री स्वामी अभेदानन्दजी महाराज)

मनुष्य के आन्तरिक गुणो को विकसित करने दबी हुई शक्ति को उभारने सुप्त चेतना को जगाने तथा एक शब्द में मनुष्य को पूर्ण बनाने, को शिक्षा कहते हैं। जिन जिन विधियो और उपायो से मनुष्य के गुणो का विकास और वृद्धि हो उन्हे शिक्षा के अन्तर्गत मानना चाहिये। हमके भीतर शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक तीनो प्रकार की उन्नति छिपी हुई है।

एसे नियम जिनके आधार पर समाज में रहता हुआ मनुष्य व्यक्तिगत सुख समृद्धि और शान्ति प्राप्त करके लोक हित का भी साधन कर सके सदाचार कहलाता है। सदाचार की शक्ति ही समाज को उत्कर्ष के शिखर पर चढाती है और इसका अभाव ही उसे पतन के गर्त में गिरा देता है।

शिक्षा और सदाचार का गहरा सम्बन्ध है। वास्तव में दोनो का पृथक् करण ही असम्भव है। वर्तमान शिक्षा क्रम में दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद सा हो गया है, या टूटता जा रहा है। अक्षर ज्ञान मात्र को ही शिक्षा माना जा रहा है। आज ग्राम के लोगो को अशिक्षित माना जा रहा है, यद्यपि उनके अनेक गुणों को हमें अपनाना चाहिये। आज के ग्रामीण भाई की सादगी और सचाई का एक शहर के वातावरण में पोषित व्यक्ति उपहास उड़ाता है, परन्तु याद रहे हमे भी सुन्दर और उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य रखने के लिये निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। सबसे पूर्व तो अपने शरीर की बनावट (जिसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश का मिश्रण एक तुले नपे अनुपात में है) को यथावत् समझना, दूसरे उक्त तत्त्वो का प्रयोग यथा शक्ति, बुद्धि पूर्वक करते रहना।

जलका प्रयोग—पीने तथा नहाने धोने आदि में अच्छी प्रकार निसकोच करना। ३/४ भाग हमारे शरीर में जल का है। ३—४ सेर पानी का पीना प्रतिदिन आवश्यक है।



श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज

अग्नि का प्रयोग— सूर्य का ताप प्रात काल लेना।

वायु का प्रयोग—खुले बदन रहना, ढील वस्त्र पहनना इत्यादि।

आकाश का प्रयोग—आकाश का सन्देश है कि सभी कार्यों में एतदाल रखना किसी की इति न करना

इसलिये भोजन इत्यादि में विशेष ध्यान देना आवश्यक है। शास्त्र हमें सिखाता है कि हमें क्या करना चाहिये, परन्तु एक शिक्षित और सदाचारी मनुष्य हमें सिखाता है, कि किसी कार्य को हमें किस प्रकार करना चाहिए। उसी प्रकार मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना भी अति आवश्यक है, इसके अभाव में सदाचार की दीवार कभी खड़ी न हो सकेगी।

मानसिक शिक्षण में तो सबसे बड़ी बात मन की चञ्चलता दूर करना है। जैसे जैसे मन एकाग्र होता चला जायगा हमारी मानसिक तथा सकल्प शक्ति दृढ़ होती जायगी, जिससे हम अपने निश्चय और निर्णय पर दृढ़ बने रहेंगे। अपने निश्चय और सकल्पो को सम्पूर्ण विघ्न और बाधाओ का सामना करते हुये, पूरे करना ही आध्यात्मिक शक्ति का चमत्कार है। आत्मा अमर है ऐसी दीक्षा शास्त्र देते चले आ रहे हैं परन्तु अभ्यास के द्वारा जब तक दीक्षा को व्यवहार या अपने आचरण से न साबित कर सकें, तब तक हमारी आध्यात्मिक शिक्षा मानो हुई ही नही। देश और कालानुसार अनेक गुरु और आचार्य मानव के सामने आये हैं, और आयेंगे भी, परन्तु हमारे सभी आचार्यों ने मूल गुरु परमात्मा-देव को ही माना है। क्योंकि पूर्ण, सत्य, बाहर भीतर एक रूप, अपरिवर्त्तनशील अटल, एक मात्र सत्ता उसी की है। वह ओत-प्रोत है, अपने बाहर और भीतर प्रत्येक जड़ चैतन्य में उसकी उपस्थिति का साक्षात् अनुभव करना ही मनुष्य का परम लक्ष्य है। क्योंकि ऐसी अवस्था प्राप्त करके ही मनुष्य अपने जैसे अन्यो को जानने और मानने में समर्थ होगा। अपना अभिमान जो आदमी को सदैव नीचे ले जाता है, समाप्त होगा। और आत्मा बोल उठेगा कि मेरे लिये कोई पराया नहीं है।

को मोह क शोक पकत्वमनुवश्चत

तू आइना है मेरा, मैं आइना हूं तेरा।

मुझ से जहूर तेरा, मुझ में जहूर तेरा॥

है वे खुदी ही जिससे होता है कुर्ब हासिल।

गायब जो आप से हो, पावे वह पार तेरा॥

व्रतेन दीक्षा माप्नोति

(पृष्ठ २६ का शेष)

आर्य पुरुषो! इस आन्दोलन को अपनाओ। मेरी आर्यसमाजों से अत्यन्त सानुरोध प्रार्थना है कि वे अपने अपने समाज से एक प्रस्ताव इस रूप में सार्वदेशिक सभा के पास पारित करके भेजें।

"यह समाज निश्चय करता है कि सार्वदेशिक सभा वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना के कार्य को तुरन्त अपने हाथ में ले और इसके लिये क्रियात्मक पग उठाए"।

हमने अब तक झूठी वर्ण व्यवस्था का खण्डन किया। सच्चे ब्राह्मण क्षत्रियादि उत्पन्न करने के लिये कुछ नहीं किया है। गुरुकुलों की स्थापना करके चार वर्ण तथा चार आश्रमों में से एक ब्रह्मचर्याश्रम के उद्धार का यत्न किया, किन्तु वह कार्य पूरी वर्णाश्रम व्यवस्था के बिना पूरा नहीं हो सकता। अब वर्त्तमान गुरुकुलो का वर्ण व्यवस्था के साथ कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं दीखता, हमें इस तरीके में परिवर्त्तन करना होगा। चेतो ओर वर्णाश्रम व्यवस्था के उद्धार में रात-दिन एक करके लग जाओ, यही दीक्षा-शताब्दी का सन्देश है और ऋषि के प्रति कर्त्तव्य पालन।



सच्चा आत्मदर्शी या सच्चा आस्तिक सहज अनुभूति से बोलता रहेगा—

करता मैं दर्दमन्द तबीबो से क्या रुजू।

जिसको दिया था दर्द बड़ा वह हकीम था॥

आस्तिकता की यह और ऐसी उत्कृष्ट भावनाओं तक पहुँचना ही शिक्षा-दीक्षा और चरित्र की सफलता है। सा विद्या या विमुक्तये का यही अर्थ है। महर्षि दयानन्द इसी पथ के आदर्श पथिक थे, उन्होने जो बोध प्राप्त किया उसे तर्क की कसौटी पर कसा, दीक्षा की अग्नि में तपाया और परोपकार में अपना जीवन समर्पित कर दिया। उस महामानव की स्मृति मनाने का यही सर्वोत्तम उपाय है कि हम उसके आचार सम्बन्धी सन्देश को जीवन में साकार बनायें। शिवरात्रि हम सब के लिये भी आज इस बोध के लिये बोधरात्रि बन कर आयी है।



ऋषि-बोध

[श्री चन्द्रपालसिंह जी 'मयङ्क' एम० ए०, एल० एल० बी०, साहित्यरत्न, कानपुर]



बीज अन्ध-विश्वास अवनि आध्यात्मिक लग-लग कर,
भारत-भू में वृद्धि प्राप्त रत था उस काल निरन्तर।
जिसने उसे समूल नष्ट कर, ज्ञान-वेलि कर रोपित,
देश-मध्य सत्यार्थ प्रकाशित करके थी कर दी द्युति॥

"गुण से रहित"—मूर्त्ति की पूजा को जिसने तज कर,
सच्चे "शिव" की प्राप्ति-हेतु था यत्न किया नित जुटकर।
ऋषियों का आदर्श सत्य करके जिसने दिखलाया,
सत्य-ज्ञान की ज्योति तमाच्छादित भारत में लाया॥

सन्यासी, योगी, त्यागी, तपसी औ परोपकारी,
देश-भक्त, पण्डित प्रकाण्ड, था धर्म ब्रह्म का चारी।
"विरजानन्द" तपस्वी का जो शिष्य भक्त था अनुपम,
जिसके जीवन का सुलक्ष्य था अतिशय श्रेष्ठ महत्तम॥

उस पवित्र ऋषिवर की स्मृति का दिवस श्रेष्ठतम आया,
जिसने था कर्त्तव्य-ज्ञान का पावन पथ दिखलाया।
ऋषि का ज्ञान-लाभ दिवसोत्सव आओ मुदित मनाएँ,
उस महान् ऋषि के चरणों में श्रद्धा कुसुम चढ़ाएँ॥

है न इति श्री इतने से ही कर लें सन्तोषार्जन,
ऋषि का पावन स्वप्न सत्य कर दें मिलकर हम सब जन।
आर्य्यवर्त्त को हम सब सच्चा आर्य्य-देश बनावें,
आर्य्य सुसंस्कृति की सुन्दर सुछटा जग में फैलावें॥

जन-जन के मन सत्य धर्म की सुप्रतिष्ठा हो जावे,
कलुष-कालिमा मानवता की पूर्णतया धो जावे।
ऋषि के सच्चे अनुयायी हम सबको आर्य बनावें,
ऋषि बोधोत्सव सत्यार्थों में समझो तभी मनावें॥

महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी की सफलता के लिये लोक नेताओं के सन्देश

महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी सफलता की कामना करता हूँ।

नई दिल्ली ३-१२-५६ —जवाहरलाल नेहरू

❀ ❀ ❀

महर्षि दयानन्द जैसे महापुरुष के स्मृति समारोह की सफलता चाहता हूँ।

नई दिल्ली १५ १२-५६ —राधाकृष्णन

❀ ❀ ❀

महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी स्मारक के लिए मैं हार्दिक शुभ कामना करता हूँ।

नई दिल्ली १२-१२-५६ —गोविन्द बल्लभ पंत

❀ ❀ ❀

महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी की सफलता के लिए महाराजाधिराज नैपाल अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

राजदरबार नैपाल, ८-१२-५६ —पुष्पराज (महाराजा नैपाल के निजी सचिव)

❀ ❀ ❀

सत्यमेव जयते राज भवन-चण्डीगढ़

महर्षि दयानन्द आधुनिक भारत के निर्माताओं में एक हैं,और उनका स्थान बहुत ऊँचा है। हतप्रभ, प्रज्ञाहत हिंदू समाज के पुनरुत्थान के लिए १६ वीं शताब्दी में जिन्होने कुछ कदम उठाये, उनमें दयानन्द श्रेष्ठतम व्यक्ति है। वैदिक सस्कृति को आधुनिक अनुभव की भाषा में रखकर एक नया स्रोत हिन्दू सस्कृति का उन्होंने उत्पन्न किया हे हिन्दू जाति का आत्मगौरव, आत्मअभिमान और प्रतिष्ठा बढ़ाई। भोगोन्मुख और स्वार्थनिष्ठ जनता को त्याग तपस्या का सन्देश दिया। सस्कृत विधा के लिए जो कार्य स्वामी दयानन्द जी ने किया उसकी बराबरी और कोई न कर सका। दयानन्द जी यथार्थ महर्षि थे, मार्ग दर्शक थे और महान् थे उनके प्रति मैं यह श्रद्धांजलि प्रस्तुत करता हूँ। दि० ३-१२-५६ —न० वि० गाडगिल

❀ ❀ ❀

सत्यमेव जयते राज्यपाल शिविर, उत्तरप्रदेश

राज्यपाल उत्तरप्रदेश, ७ दिसम्बर १६५६

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि स्वामी दयानन्द दीक्षा शताब्दी महोत्सव के अवसर पर विरजानन्द वैदिक अनुसन्धान भवन की स्थापना होने जा रही है। मै आशा करता हूँ कि यह सस्था महर्षि दयानन्द के समान धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों को विनष्ट करने में प्रकाश स्तम्भ की भांति पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

मैं उत्सव की सफलता क हेतु अपनी शुभ कामनायें भेजता हूँ। —वी०वी० गिरि, उत्तरप्रदेश

❀ ❀

सत्यमेव जयते राज भवन त्रिवेन्द्रम

गवर्नर आफ केरल दि० ४-१२-५६

मुझे यह जानकर हर्ष है कि आगामी २६ से २७ दिसम्बर तक महर्षि दयानन्द जी की दीक्षा शताब्दी का समारोह मथुरा में सम्पन्न हो रहा है। आधुनिक भारत के निर्माण में महर्षि दयानन्द जी का बड़ा उच्च स्थान है। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रो में उन्होने एक क्रान्ति पैदा कर दी और सुषुप्त हिन्दू समाज को जाग्रत किया, यह अत्यन्त उचित है, कि ऐसे महान् पुरुष की दीक्षा शताब्दी का समारोह बड़े उत्साह से मनाया जा रहा है। यह सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि महर्षि के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द की स्मृति में वैदिक अनुसन्धान भवन का शिलान्यास आदरणीय राष्ट्रपति के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हो रहा है। इस शुभ अवसर पर महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए मैं आशा करता हूँ कि महर्षि के जीवन से और उनकी धार्मिक सेवाओ से प्रेरित होकर उनके अनुयायी और धार्मिक जनता इतोधिक्य समाज और देश सेवा करेगी। —रामकृष्णराव

सत्यमेव जयते — गवर्नर कैम्प वाल्टाइर

गवर्नर आन्ध्रप्रदेश — १४ दिसम्बर १६५६

महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी महोत्सव के सुअवसर पर मैं अपनी श्रद्धा के तुच्छ फूल महर्षि और उन महान् गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी के कर-कमलों में भेंट करता हूँ।

इन दोनों महान् आत्माओं का ऋण यह देश कब चुका सकता है। महर्षि दयानन्द जी ने वास्तव में मर रही जाति को यमराज के अत्यन्त भयानक जबड़ों से खींच निकाला, और निकाला भी इस सुन्दरता से कोई छोटा-सा अंग भी हीन-क्षीण न हुआ हो। जो प्रोग्राम महर्षि ने देश की स्वाधीनता के लिए देश के आगे वर्षों पहले रखा था। उसी प्रोग्राम पर चलकर देश आगे उन्नत हुआ, अभी देश को उस प्रोग्राम पर के शेष भाग को भी पूरा करना है। महर्षि तो सारे ससार को एक कुटुम्ब के समान समझते थे, इसलिए तो सारे ससार की उन्नति उनका ध्येय था, और इसी का प्रचार उन्होने किया। महर्षि का जीवन और उनके काम इतने महान् है, कि उनका वर्णन भी पूरी तरह करना कठिन है। हम तो केवल ईश्वर को धन्यवाद ही कर सकते हैं कि दयानन्द भारत में पैदा हुए।

महर्षि विरजानन्द का ऋण तो मनुष्य जाति कभी भी चुका नहीं सकती, क्योंकि उन्होने ही सच्चे प्रभु भक्त को बनाया और बनाकर उसको मनुष्य सेवा में अर्पण कर दिया, देश और मनुष्य जाति का कितना प्रेम दण्डी जी के महान् हृदय में भरा था, उचित है कि आज के शुभ अवसर पर हम विचार करे कि भारत में विरजानन्द जैसे गुरु और दयानन्द जैसे शिष्य कैसे उत्पन्न किये जा सकते हैं। इनकी बड़ी आवश्यकता है, उतने महान् न सही मगर ऐसे तो हो जो दिल से उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलने का यत्न करें। भगवान् हमारे सहायक हो, और हमारे दिलो को फेर।

—भीमसेन सच्चर

❀ ❀ ❀

खाद्य तथा कृषि मन्त्री भारत सरकार — नई दिल्ली दि० १-१२ १६५६

यह जानकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आगामी २४ से २७ दिसम्बर तक मथुरा में महर्षि दयानन्द-दीक्षा-शताब्दी समारोह मनाया जा रहा है। तथा महर्षि के गुरु दण्डी विरजानन्द की स्मृति में "विरजानन्द व वैदिक अनुसधान भवन का शिलान्यास भी राष्ट्रपति जी के द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है। नतमस्तक हो मैं अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुये शताब्दी समारोह की सफलता के लिए शुभ-कामना भेजता हूँ। —एस० के०पाटिल

❀ ❀ ❀

सत्यमेव जयते — एम० आर० २०६४—५६

रेल मन्त्री भारत सरकार — नई दिल्ली ५-१२ ५६

जब-जब धर्म का वास्तविक स्वरूप अन्ध-विश्वासो, रूढ़ियों और परम्पराओं से आच्छन्न होकर विकृत हो जाता है, तब-तब किसी महापुरुष का प्रादुर्भाव होता है, जो इस आवरण को छिन्न-भिन्न कर डालता है। ऐसे आवरण को दूर करने के लिए ही महापुरुषों का जन्म होता है। इन महापुरुषो में महर्षि दयानन्द की भी गणना है जिनका दीक्षा शताब्दी समारोह गत सौ वर्षों में उत्पन्न हुई सुषुप्तावस्था को दूर करने में सहायक सिद्ध होगा, एव विरजानन्द वैदिक अनुसन्धान भवन इनका अनुपम साधन बनेगा, ऐसे शुभ अवसर पर मैं भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। —जगजीवन राम

सत्यमेव जयते — ६ अकबर रोड, नई दिल्ली

दि० १६ दिसम्बर १६५६(२५ अग्रहायण,१८८१)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि २४ दिसम्बर से २७ दिसम्बर तक महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी समारोह सम्पन्न होने जा रहा है। उक्त समारोह में सम्मिलित होने का उस दिन यथासम्भव प्रयास करूगा। निमन्त्रण के लिए धन्यवाद, समारोह की सफलता के लिए हार्दिक शुभ-कामनायें। —राजबहादुर

पंजाब सरकार | चीफ मिनिस्टर
गवर्नमेन्ट आफ पंजाब, | पंजाब चन्डीगढ,

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि २४ से २७ दिसम्बर तक मथुरा में महर्षि दीक्षा-शताब्दी समारोह बड़े धूम-धाम से मनाया जा रहा है।

क्रांति द्रष्टा स्वामी दयानन्द जी इस युग के एक महान् समाज सुधारक और उदार चेता तथा उत्प्रेरक मानस्वी हुये उन्होंने समाज में व्याप्त ऊँच नीच छूत छात अन्ध विश्वास के उन्मूलन में अपूर्व योग दिया है। अत ऐसे महान् सन्त की स्मृति में जो अनुसन्धान भवन का शिलान्यास भारतीय गुणगरिमा के मूर्तिमान स्वरूप राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के कर कमलों से हो रहा है।

इससे महर्षि दयानन्द जी के विचारों एव सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार एव अनुसन्धान से सफलता प्राप्त होगी और इस समागमन में उपस्थित सब महानुभाव एक उदात्त भावना लेकर लौटेंगे। और वसे देश में व्याप्त अस्पृश्यता को जड़ मूल से उखाने में और अधिक दृढता ओजस्विता से कार्य करेंगे, ऐसी मुझे आशा है। —प्रतापसिंह

❀ ❀ ❀

चन्द्रभानु गुप्त | लखनऊ
पत्र० स० १४१० | दिसम्बर १, १९५९।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महर्षि दयानन्द जी के पूज्य गुरु दण्डी विरजानन्द जी की स्मृति में "विरजानन्द वैदिक अनुसन्धान भवन" का शिलान्यास राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होने जा रहा है।

महर्षि दयानन्द जी हमारे देश की उन महान् आत्माओं में से हैं, जिन्होंने देश की सुषुप्त सम्मानिक धार्मिक तथा राष्ट्रिय भावनाओं को जाग्रत करके पुन देश में मर्यादा स्थापित करने का प्रयास किया स्वय कष्ट सहन करके दूसरे को बचाना उनका ध्येय था। अपने को विष देनेवाले व्यक्तियों को न केवल बचाने की इच्छा की अपितु उसे मार्ग व्यय देकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने वाले महापुरुष ससार में विरले ही हुआ करते हैं। ऐसी विभूतियाँ हमारे देश में समय-समय पर जन्म लेती रही और उनके जीवन की ऐसी घटनायें हमें प्रेरणा प्रदान करती रही हैं।

मैं इस प्रयास की अत्यन्त सराहना करता हूँ और आशा करता हूँ कि इसके तत्त्वावधान में वैदिक अनुसन्धान तथा शोध कार्य कुशलतापूर्वक होगा। —चन्द्रभान गुप्त

❀ ❀ ❀

सत्यमेव जयते | ३३ फिरोजाबाद रोड न्यू दिल्ली

यह मालूम कर कि महर्षि दयानन्द का दीक्षा-शताब्दी समारोह महोत्सव २४ दिसम्बर से मनाया जा रहा है, प्रसन्नता हुई।

महर्षि दयानन्द जी ने अपने कार्यों द्वारा भारतीय समाज को जितना अधिक प्रभावित किया, उतना आधुनिक काल के कदाचित किसी सत ने नहीं। यह वजह हुई कि बापू ने अपने जीवन में ऐसे बहुत से काम उठाये और उन्हें आगे बढ़ाया था, जो महर्षि ने आरम्भ किये थे।

एक सनातन धर्मी और मूर्तिपूजक हिन्दू होते हुये भी महर्षि दयानन्द जी की सेवाओं की मैं सराहना ही करता हूँ तथा उनकी पूज्य स्मृति में श्रद्धा और आदर से उन्हें प्रणाम करता हूँ।

आपका आयोजन सफल हो और लोगों को यह बतलाने में समर्थ हो कि हमारे ऋषियों, मुनियों, महर्षियों और महात्माओं ने हमारे लिए क्या-क्या किया और उनका हमारे लिए सन्देश क्या है।

मैं भी २४ ता० को मथुरा पहुँच रहा हूँ सम्भवत. आयोजन में सम्मिलित हो सकू।

दि० ५-१२-५९ —गोविन्द दास लोक सभा सदस्य

शिवरात्रि

(लेखक—डा० मुंशीराम जी शर्मा, एम०ए०, डी० लिट्०)

मेरे देश ! देखते आये कितनी तमोलेपिका रजनी।
कितने सन् सन् स्वन निशीथ के मोहमयी स्वप्निज जन-शयनी।
कभी तमिस्रा में सन्तानित दुग्ध-धवल ज्योत्स्ना अभिरामा।
कालकूट-कालिमा खिलावे ज्यों पीयूषमयी मधु श्यामा।।
देखे हैं तुमने गौरव गिरि स्नात चन्द्रिका में यशोमयी।
देखी है भ्रमराली चुम्बित विकच कमल कलिका मनोजयी।
आये तव पथ में बनयात्री स्फटिक-शिलाशायी राघव से।
निशाचरी कुज्झटिका फटती जिनके भीषण धन्वा रव से।।
देखे तुमने शेष सयमी निशा-जागरणकारी क्रम से।
विजित इन्द्रजित सा पराक्रमी वीरव्रती जिनके सयम से।
लौकिक दिवा निशा थी जिनको निशा दिवा में परिचय पाती।
तम-रज से ऊपर जब सत में जाग्रति की वेला आ जाती।।
तब तुमने देखे हैं योगी, सनन साधना-निरत वियोगी।
काल जयी, अन्तक के अन्तक, शकर सदृश विषम विष भोगी।
वैभव में तन भस्म रमाये, शक्ति सहित, रति-रहित अकामा।
झलमल ज्योतिर्मय त्रिनेत्र से जिनको राका बनी त्रियामा।।
देखे हैं राजर्षि जनक से और बुद्ध से विश्व-विरागी।
देही थे, फिर भी विदेह वे, बने लोक सुख-हित सुख-त्यागी।
देखी है वह रात्रि सो रही यशोधरा जिसमें यशस्विनी।
घेर रही है जिसे चतुर्दिक पुत्र वित्त-यश की [illegible]नीकिनी।।
उसे छोड़, चल दिये विपिन को मुक्ति मार्ग के वे अभिलाषी।
काया से कृश, पुष्ट मनन से, पर वाणी से सूनृत भाषी।
आर्य चतुष्टयशील जगाया, दुख में सुख की खिली प्रभा सी।
वह भी थी शिवरात्रि विश्व की, वे थे मगल-पथ विश्वासी।।
मेरे देश ! बुद्ध फिर आये, पारतन्त्र्य से मुक्ति दिलाने।
मेरे देश ! राम फिर पाये सीता-स्वाधीनता मिलाने।
वे शिव, वे शंकर फिर प्रकटे अपना नाम मूलशकर ले।
सचमुच मगलमयी बनी थी वह शिवरात्रि शिवा सबल से।।
मेरे देश ! तुम्हरा शंकर दयानन्द का रूप दिखाकर।
तुम्हें अमर कर गया सदा को विष पी पर हित सीख सिखाकर।
तेरे रघुवर, तेरे शकर, तेरे गौतम, तेरे मोहन।
बार-बार आते इस भूपर हो जिससे चैतन्यारोहण।।
चमक उठें आर्यत्व विश्व को स्वस्ति शान्ति का दे आश्वासन।
दूर दस्युता हो मानव से, दुरित दुर्गुणों का निष्कासन।
पुन अवतरित हो स्वर्गिक सुख, भूतल का शीतल अन्तस्तल।
पावन शिव त्रयोदशी भर दे यही भाव हृदयों में निर्मल।।

ऋषि बोध

(श्री कविवर 'प्रणव' शास्त्री, फीरोजाबाद)

ऋषि बोध प्रभाकर की किरणें
तम तोम का जाल नसाने चलीं
मन-मानस में मधु माधव-सी
कृति कज कली विकसाने चलीं
शुचि हर्ष हिलोर अछोरन से
कर जोर हिया हुलसाने चलीं
सर साल रसाल सुधारन की
सुख धार-सुधा सरसाने चलीं ॥

मन मजुल मूल की भूल भगी
कुल रूढि रुठी-सी ठगी-सी रही
उर अकुर एक नवीन उगा
प्रभु पावन प्रीति पगी-सी रही
अविवेक प्रथा की व्यथा न रही
शुभ सत्य की साध सगी-सी रही
शिवरात्रि बनी शिवदात्री महा
नव-जीवन ज्योति जगी सी रही ॥

हृद तन्त्रियाँ साध स्वर क्रम को
एक राग नया ही बजाने लगीं
शुचि साधन स्वप्न समुन्नति के
शत स्वर्णिम साज सजाने लगीं
व्रत सयम शील समुज्वलता
भवभूति विभूति लजाने लगीं
वर वेद विनोद की वाटिकाएं
मकरन्द लुटाने खजाने लगीं ॥

मत पन्थ अलीक विदारन को
बल विक्रम वृन्द की वारणा है
धृति धर्म सुकर्म प्रसारण की
दृढ भावन की ध्रुव धारणा है
उपकार असीम सिखाती रही
प्रिय प्रेम मयी एक पारणा है
यह आर्यसमाज धराञ्चल में
ऋषिराज की वन्द्य विचारणा है॥

❀ दयानन्द प्रशस्ति ❀

(रचयिता—श्री रामचन्द्र रेड्डी शास्त्री बी० ए०)

कोटि-कोटि शतकोटि वन्दनाञ्जलियो के स्वामिन् !
दयानन्द ! निगमेन्दु सिन्धु । आनन्द कन्द ! स्वामिन् !!
कमल कलोसा हृदय तुम्हारा, धैर्य और सन्तोष भरा ।
सयम और आरोग्य मुक्त तव गात्र ओज का कोष भरा ।
हर्ष शोक, अपमान-मान, चिरद्वन्द्व मुक्त ! विरहिन् ।।
तेरी दिव्यता देव दुर्लभा, अमितानन्त प्रभा,
सुमना तुझे घेर खड़ी है विद्वद् भ्रमर सभा ।
सन्त जनो के सजीवन ! जनरजन ! अनुरागिन् !!
तेरा मानस मान सरोवर, निर्मल मुक्तागार,
राजहस पाते थे आकर शान्ति शुक्ति का सार ।
श्रद्धानन्दन ! आशास्पन्दन ! मुक्त मार्ग गामिन् !!
निगमागम की धर्म नीति ले, राजनीति राजा मनु की,
उपनिषदों की मधुर गीति ले, पूर्ण प्रीति भारत जन की ।
तुम आये, हम धन्य हो गये, नरवर ! निष्कामिन् !!
तेरे तर्क के तीर जब चले, सदा सुधा में सने चले,
तेरे ज्ञान के बहे न भस्वर, विमल कर्म के सुमन खिले ।
दयान्याय की ससृति तुम थे, सत्य धर्म धारिन् !!
सत्यान्वेषक ! सस्कृतिपोषक ! हे सुललित मतिमन् !
तापस तल्लज ! राष्ट्र धर्म-ध्वज ' वुद्ध जन प्रियदर्शिन् !
ऋग्यजु सामाथर्व चतुर्भुज ! स्थित प्रज्ञ ! योगिन् !!
तेरी राह में रोडे बन कर पडे कई पर टिके कहाँ ?
तुझे रोकने चले घने पर सभी भगे कब रुके यहाँ ?
सीना ताने चला जब चला, सद्गुरु ! समदर्शिन् !!
तेरे बाट पर कई बटोही बटुक चले फिर चले चले,
विकट कष्ट थे, निकट इष्ट थे, सभी पार कर चले चले ।
गोली तोले खन्जर झेले, शिष्य तेरे स्वामिन् !!
जाने कैसे दर्शन पाये तेरे प्रीति पगे,
परमहस ! मेरे यतीन्द्र ! तुम सब जग के थे सगे ।
हाला पीकर अमृत बाँटा, तुमने उपकारिन् !!
दलित जाति की दीन दशा पर बजा जब तेरा टकारा,
मिटी मोह की सब कारा, बज उठा शुद्धि का झकारा ।
हुङ्कारा ही तेरा सुनकर भगे पोप हे दिग्विजयिन् !!
तव प्रवचन का अक्षर-अक्षर आज मेरा है टकारा,
तेरे स्तवन में जहाँ फिरूँगा, वहीं सुनूगा टकारा ।
टकारा है रोम रोम मम, टकारा के सन्यासिन् !!

तिथि और नक्षत्रों के देवता

(ले० श्री प० शिवदयालु जी मेरठ)

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सस्कार विधि के अन्तर्गत नाम करण प्रकरण में तिथि तथा नक्षत्रो के देवताओं का वर्णन किया है, और तिथि तथा नक्षत्र के साथ उनके देवताओ के नाम से आहुति देने का भी विधान किया है।

वेद मन्त्रा के साथ जो देवताओ का विधान किया गया है, उसकी सगति तो देवता से तात्पर्य मन्त्र के



श्री प० शिवदयालु जी

विषय से है, इसके द्वारा हो जाती है। किन्तु तिथि और नक्षत्रो के देवताओं के सम्बन्ध में वह सगति लगती प्रतीत नही होती।

क्या तिथि और नक्षत्रो के यह प्रचलित देवता वैदिक हैं, यह भी विचारणीय है। ऋग्वेद में द्युस्थानी देवताओ की सूची में विष्णु, भग, अर्यमन्, सवितृ, मित्र, वरुण, पूषन् की गणना है जो क्रमश तृतीया तिथि एव श्रवण नक्षत्र, पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अनुराधा, शतभिषजू तथा रेवती नक्षत्रो के देवता कल्पित किये गये हैं।

अन्तरिक्ष स्थानी देवताओ में रुद्र (शिव) वायु, इन्द्र, आप, अजएकपात्, अहिबुर्धन्य की गणना की गई है। जो क्रमश एकादशी तिथि व आर्द्रानक्षत्र, द्वादशी तिथि व स्वाति नक्षत्र ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़, पूर्वा भाद्रपद उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रो के देवता कल्पित किये गये है।

पृथवी स्थानीय देवताओ में सोम अग्नि, बृहस्पति की गणना की गई है। जो क्रमश पचमी तिथि व मार्ग शीर्ष नक्षत्र, कृत्तिका एव पुष्य नक्षत्रो के देवता कल्पित किये गये है।

पुनर्वसु नक्षत्र का देवता अदिति है, जो स्त्री है। तथा द्वितीया तिथि का देवता त्वष्ट भाव वाचक देव माना जाता है। इसी प्रकार विश्वेदेवा जो अमावास्या के देवता है वह अनेक है एक नहीं और अनिरुक्त हैं। रोहणी नक्षत्र का देवता प्रजापति (ब्रह्म) और मूल नक्षत्र का देवता निऋ ति (राक्षस) भी भाववाचक ही माने जाते हैं।

विशाखा नक्षत्र का देवता चन्द्राग्नि है अर्थात् चन्द्र और अग्नि दो सम्मिलित देवता हैं। इस युगल का वर्णन वेद में उपलब्ध नहीं। हाँ इन्द्राग्नि का वर्णन अवश्य है।

अष्टमी तिथि तथा धनिष्ठा नक्षत्र का देवता वसु है। वसु सख्या में ८ हैं। अश्लेषा नक्षत्र का देवता सर्प कल्पित किया गया है। जिसकी गणना निऋ ति (राक्षस) की भाँति कहीं भी वेद में देवताओ की श्रेणी में नहीं की

गयी है। इसी प्रकार यहाँ कुमार, मुनि, काम, पितर, आदि को भी गणना देवताओं में की गई है, जो विचारणीय है।

वैदिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत तो इन कल्पित विग्रहवान् देवताओं को स्थान ही नही है। यह सब देवता वाचक शब्द प्राय या तो प्रधान रूप से ब्रह्म के वाचक हैं, या विशेष विशेष भौतिक तत्त्वो एव शक्तियों के बोधक हैं। अत यह एक अनुसन्धान का विषय है कि अमुक तिथि व नक्षत्र के साथ देवता रूप में अमुक-अमुक की आहुति क्यों दी जाये।

सर्प तथा निर्ऋति (राक्षस) को देवता मानने में क्या प्रयोजन है यह भी विचारणीय है।

ग्रह सूत्रो के अन्तर्गत नक्षत्रो के सम्बन्ध में शुभाशुभ की कल्पना विद्यमान् है। संस्कार विधि में उद्धृत निम्न सूत्रो से यह बात सर्वथा स्पष्ट है —

उदगयन आपूर्यमाण पक्षे पुण्ये नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदान विवाह ॥ १ ॥ आश्वलायन

अर्थात्—उत्तरायन शुक्लपक्ष पुण्य नक्षत्र में चूडाकर्म, उपनयन, गोदान तथा विवाह सस्कार किये जानेचाहिये।

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ २ ॥ गोभिल

अर्थात्—पुण्य नक्षत्रमें विवाह सस्कार करना चाहिये।

स्वामी जी महाराज ने विवाह प्रकरण में इन सूत्रो को उद्धृत किया है किन्तु व्याख्या करते हुये पुण्य नक्षत्र से तात्पर्य प्रसन्नता का दिन अर्थ किया गया है। वास्तव में पुण्य नक्षत्र का यह अर्थ नही है, क्योंकि स्वामी जी महाराज को नक्षत्रों में शुभाशुभ की कल्पना अभीष्ट ही नहीं है। अत उन्होंने स्वतन्त्रा पूर्वक यहाँ अपना मत व्यक्त किया है। स्वामी जी स्वय महान् आचार्य थे, वह पूर्व आचार्यों से सर्वांश में सहमत हों यह आवश्यक भी नहीं है। फलित ज्योतिषाचार्यों ने अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरा भाद्रपद तथा रेवती नक्षत्रों को शुभ माना है। श्रवण को वृद्धिकारक कहा गया है। कृत्तिका, आर्द्रा, आश्वलेषा, पूर्वा फाल्गुन, विशाखा तथा पूर्वा भाद्रपद को अशुभ कहा है। भरणी को नाशक, मघा को शोकद मूल नक्षत्र को क्षय कारक और पूर्वाषाढ एव उत्तराषाढ को हानिकारक माना है। यह मान्यता सर्वथा अवैदिक है। अत इन नक्षत्रों के आधार पर लगन मुहूर्त का विचार करना भी भ्रान्त धारणा है।

नक्षत्रो के स्वामी अर्थात् देवता, उनकी जाति, मुख आदि की कल्पना भी शुभाशुभ कल्पना की भाँति सर्वथा भ्रान्त है, और त्याज्य है। तथा कथित अशुभ नक्षत्रो में जन्मादि होने के कारण नाना प्रकार के दान पुण्य का विधान और क्षत्र के अशुभ प्रभाव का मार्जन ठगविद्या से भिन्न कुछ नहीं प्रतीत होता।

अत नामकरण संस्कार में तिथि और नक्षत्र देवता के नाम से आहुति देना ही कोई महत्त्व नहीं रखता। आर्य विद्वानो को इस दिशा में विशेष विचार करना चाहिये।

गवर्नमेन्ट, आफ राजस्थान — जयपुर, राजस्थान

सत्यमेव जयते — दिसम्बर १०, १९५९

महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी महोत्सव तथा इस अवसर पर विरजानन्द वैदिक अनुसन्धान भवन के शिलान्यास का शुभ सम्वाद प्राप्त कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ।

महर्षि दयानन्द देश की उन महान् विभूतियो मे से थे जिन्होंने अत्यन्त आवश्यकता के समय अवतरित होकर देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा धार्मिक प्रवृत्तियो को नया मोड़ तथा नया जीवन प्रदान किया, वेदों के गहन अध्ययन पर बल देते हुए महर्षि ने धर्म के व्यापक स्वरूप तथा जीवन के समय शुद्धि तथा सत्यता के सिद्धान्तो के पालन का सकल्प ही इस अवसर पर महर्षि के प्रति पवित्रता श्रद्धाजलि है। आशा है विरजानन्द वैदिक अनुसधान भवन वैदिक अध्ययन तथा अनुसधान को प्रोत्साहित कर महर्षि दयानन्द तथा दण्डी स्वामी विरजानन्द की पुण्य स्मृति में सर्वथा उपयुक्त सस्था सिद्ध होगी।

समारोह की सफलता के लिये शुभ कामनायें अर्पित हैं। —मोहनलाल सुखाड़िया मुख्य मन्त्री

दयानंद के समय भारत की दशा

कवित्त [रच०—श्री कुसुमाकर जी, फीरोजाबाद]

[१]

एक अखिलेश को भुलाते हुए जा रहे थे,
विश्व में अनेक अखिलेश पुजने लगे।
देश में मची थी अभिवादनों की भारी धूम,
जय जय राम, राधेश्याम, भजने लगे।
एक धर्म ग्रन्थ का न आदर रहा था कहीं,
विविध विचारों के समाज सजने लगे।
लजने लगे थे, ऋषियों के नाम-धाम वश,
आर्य्य-सभ्यता की मर्यादा तजने लगे।

[२]

कोई कहता था 'वेद' गीत हैं गडेरियों के,
कोई भूत प्रेत की कहानी बतलाता था।
कोई कहता था—जन्त्र मन्त्र तन्त्र धारियों के,
कोई 'वाम पन्थ' का कुपथ दिखलाता था।
कोई नरमेध- पशुमेध, अश्वमेध लिए,
कोई मानवों के कल-काव्य से मिलाता था।
कोई कहता था वेद देश से गये हैं दूर,
कोई इतिहास का स्वरूप सिखलाता था।

[३]

'देव भाषा' 'नागरी'गुणागरी को भूल सभी,
उर्दू—अंग्रेजी को सहर्ष पढ़ने लगे।
ऋषि मुनियों के सद् ग्रन्थ सरिता में फेंक,
मिथ्या कल्पना से भरे ग्रन्थ गढ़ने लगे।
भूल भव्य - भावना, दुकूल दूसरों का थाम,
वेद-प्रतिकूल मत-माथे मढ़ने लगे।
योरोपीय - रंग - अंगराग को लपेट अंग,
ओप भरे आनन, सचोप चढ़ने लगे।

[४]

हो रही घृणा थी जन जन से प्रत्येक मन,
भिन्नता की भंग कूट कूट के भरी गई।
छुआ-छूत जाति-पाँति के हो पविपात से ही,
एकता लता भी नित्य सूखती हरी गई।
फूट के फबीले फल फूल-फूल खाए, तब—
शीश दासता की असिधार भी धरी गई।
प्रीति-रीति खोई थी,प्रतीति अन्ध होनेलगी।
करके अनीति सुख सम्पति हरी गई॥

[५]

पाँव के तले की जूतियाँ हैं महिलायें सभी,
पुरुष सगर्व कर रहे थे खड़े अपमान।
शिक्षित बनाना आर्य्य-जाति का कलंक महा,
शूद्र हैं गंवार, ताड़ने का करते बखान,
जकड़ चुकी थी मातृ-शक्ति दासता के दाम,
वारि बन्धुओं का हो रहा था सूर्य भासमान।
बाल विधवाओं की विकल वेदना के शूल—
खटक रहे थे, कर रहे थे हमें सावधान।

[६]

प्यारे ऋषि तुमने कहा था दृढ़ता के साथ,
केन्द्र सत्य विद्या का है वेद ईश्वरीय ज्ञान।
विष युक्त अन्न हैं समस्त ग्रन्थ मानवों के,
वेद ही स्वतः अवशेष परतः प्रमान।
ज्ञान, कर्म, यज्ञ की विशेषता बखानते हैं,
उन्नत 'उपासना' का सत्य रचते विधान।
प्रभु का निदेश है पवित्र विश्व-वासियों को,
मानव इसी के अनुकूल बनना महान्॥

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, सेन्ट्रल आफिस 18 विन्डरसोर पलेस, नई दिल्ली

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मथुरा में महर्षि दयानन्द दीक्षा-शताब्दी समारोह मनाया जा रहा है। महर्षि दयानन्द हमारे देश के महान् विभूतियों में से थे, उनके सन्देश से हमारे समाज को नई जागृति मिली, मेरा यह विश्वास है कि महर्षि दयानन्द जी के जीवन से हम सभी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं, उनकी चारित्रिक दृढ़ता और विद्वत्ता की इस देश को सदा आवश्यकता रहेगी। मैं आयोजन की सफलता के लिए शुभ कामना करता हूँ।

दि० १-१२-५६ —अशोक मेहता



दिव्य दयानन्द



[स्व० कविराज श्री प० नाथूराम शकर शर्मा 'शकर']

जहाँ घोषणा राम के नाम की है
जहाँ कामना कृष्ण के काम की है
अहिसा जहाँ शुद्ध बुद्धार्य की है
प्रशसा जहा शकराचार्य की है
वहाँ दैव ने दिव्य योगी उतारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे

अनायास चेता गया एक चूहा
गिरी भूल, ऊँची चढी उच्च ऊहा
जडी भूत भूतेश की भक्ति भागी
महादेव के प्रेम की ज्योति जागी
उठे इष्ट की ओर सीधे सिधारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

हितू, बन्धु,माता,पिता, मित्र छोडे
लगे मुक्ति की खोज मे, बन्ध तोडे
भले भाग त्याग, गही योग शिक्षा
फिरे देश मे मागते धर्म भिक्षा
बने भद्रिका भारती के दुलारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

टिका टेक ठाना उसी ठौर जाना
जहाँ ठीक पाना सुनाथा ठिकाना
मिले योगियो से निकाली कचाई
मिटा अन्ध विश्वास सूझी सचाई
कहाए बृजानन्द के शिष्य प्यारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

मनो भावना साधना मे मिला दी
सुधा ध्यान को धारणा की पिला दी
समाधिस्थ हो ब्रह्म मे लौ लगाई
मिली सम्पदा सिद्धियो की न भाई
टिके एकता मे मिटा भेद सारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

निहारी महा चेतना की महत्ता
उसी मे जुडी जान ली जीव सत्ता
उघारी उपादान की योग माया
जगज्जाल मे तीन का मेल पाया
बसे विश्व की विश्वता मे न न्यारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

रहे आदि से अन्त लों ब्रह्मचारी
पढी वेद विद्या, अविद्या बिसारी
कहा सज्जनो से बनो स्वर्ग भोगी
भजो सच्चिदानन्द को मुक्ति होगी
न होना कभी आलसी यो पुकारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

छुआ छूत के छद्म की छेक छाया
मिटा दी मतो की महा मोह माया
दिखा दोष पाखण्ड का खोज खाया
खलोपाड खोटे खलो का बिगोया
प्रमादी पछाड किसी से न हारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

प्रसादी सदा प्रेम की बाटते थे
घृणा से किसी को नहीं टाटते थे
सजीला सदाचार को जानते थे
न चोखा किसी चिह्न को मानते थे
कभी वस्त्र धारे कभी थे उघारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

न खाता किसे काल कूटस्थ अत्ता
बही सिन्धु मे बूद की भक्ति मत्ता
दिया न्याय का नीचता ने बुझाया
दया और आनन्द का अन्त आया
दिवाली हुई हाय होली पजारे
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ।।

ओ३म्

साप्ताहिक **आर्य मित्र** ऋष्यंक

अवैतनिक सम्पादक–उमेशचन्द्र स्नातक एम० ए०

वर्ष ६२ | लखनऊ रविवार कार्त्तिक १, शक १८८२, कार्त्तिक शुक्ल ३, वि० २०१७, २३ अक्टूबर १९६० ई०, दयानन्दाब्द १३६, सृष्टि सवत् १९७२९४९०६१ | अंक ३९–४०

वैदिक प्रार्थना

यस्या गायन्ति नृत्यन्ति भूम्या मर्त्या व्यैलबा ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्या वदति दुन्दुभि ।
सा नो भूमि प्रणुदता सपत्ना नसपत्न मा पृथिवी कृणोतु ॥

(यस्या) जिस (भूम्या) भूमि पर (व्यैलबा) मुखर (मर्त्या) मर्द (गायन्ति नृत्यन्ति) गाते नाचते है, (युध्यन्ते) लडते हैं, (यस्या) जिस पर (आक्रन्द) कोलाहल है, (यस्या दुन्दुभि वदति) जिस पर मारू बाजा बजता है, (सा भूमि न सपत्नान्) वह भूमि हमारे प्रतिद्वन्दियो को (प्रणुदता) परे ठेल दे, (मा) मुझे (पृथिवी असपत्न कृणोतु) पृथिवी शत्रुहीन करे।

मौजी मुखर मर्द करते हैं गायन और नृत्य जिस पर,
जिस पर होते घोष अनेको, जिस पर होते युद्ध प्रखर,
औ' वीरो को करती है जिस पर दु दुभि-ध्वनि उत्तेजित,
करे नाश रिपुओ का पृथिवी, करे हमे वह शत्रु-रहित।

—राजनाथ पाण्डेय एम०ए०

विश्व-विभूति



ओ टकारा की ज्वलित ज्योति,
तू कभी नही बुझने वाली।
तुझ से जगमग यह जगतीतल,
तुझ से भारत गौरवशाली।

—हरिशङ्कर शर्म्मा डी०लिट्

सम्पादकीय

आर्यत्व के महान् दायित्व की पूर्ति

★

आर्य ईश्वर पुत्र के आधार पर प्रत्येक आर्य अपने मे जिस गौरव की अनुभूति करता है या कर सकता है, उसका कोई धार्मिक,जातीय या साम्प्रदायिक आधार न है और न होना चाहिये, अपितु आर्यत्व गुणवाची शब्द है, जो मानव के सर्व श्रेष्ठ गुणों से युक्त हो वही सच्चा आर्य है। आर्य ही ईश्वर पुत्र है इसके कहने का यह अर्थ कदापि नही कि ससार के अन्य प्राणी ईश्वर के पुत्र नही है अपितु इसका यही भाव लिया जाना चाहिये कि जैसे एक लौकिक पिता अपने उस पुत्र को अधिक स्नेह और प्यार देता है जो अन्य पुत्रो की अपेक्षा श्रेष्ठ और सद्गुण सम्पन्न हो। इसी प्रकार ईश्वर आर्यत्व के विशिष्ट गुणो से युक्त व्यक्तियों पर अपनी कृपा का वरद हस्त रखता है और उन्हे अपने सदेश प्रसार का दायित्व सौपता है।

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना कर हम सबको आर्यत्व की महान् थाती (धरोहर) वेद ज्ञान राशि सौपी है। आर्य समाज के सदस्यों को प्रभु के ज्ञान सन्देश वेद का पालन करने और प्रचारित करने का दायित्व ऋषि ने सौंपा था। परन्तु उस दायित्व की पूर्ति केवल ग्रन्थ सग्रह सकलन और प्रकाशन मात्र से ही नही हो सकती। उस दायित्व की पूर्ति आचरण द्वारा ही सम्भव हो सकती है। मनु ने इसी भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा था "आचार हीन न पुनन्ति वेदा" वेदो क महा विद्वान् रावण का दूषित जीवन मनु के इस कथन का साक्षी है।

आज हम महर्षि के जीवन की अन्तिम घडियो का स्मरण कर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कर रहे है। परन्तु क्या हमारे चरित्रों म ऋषि के चरित्र जैसी आस्तिकता, मनसा वाचा कर्मणा पवित्रता, और विरोध का सामना करने की निर्भीकता, परोपकारिता दया आदि गुणों की विशेषताओ का विकास हो रहा है या हो सकेगा। यह प्रश्न चिन्ह हम से उत्तर माग रहा है।

यदि हम अपने को सच्चे ऋषि भक्त सच्चे आर्य और सच्चे ईश्वर पुत्र कहलाना चाहते है, तो हमे ऋषि की इन पक्तियो का ध्यान पूर्वक मनन करना चाहिए।

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यो के सुख-दु ख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे, और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सामर्थ्य से धर्मात्माओ की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यो न हो, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश अवनति अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियो के बल की हानि और न्याय के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम मे चाहे उसको कितना ही दारुण दु ख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले ही जावे परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

महर्षि जीवन पर्यन्त उपर्युक्त मानवीय आदर्श की व्यावहारिक व्याख्या करते रहे। उन्होंने अपने उदात्त चरित्र द्वारा अपने शत्रुओ और विरोधियो के हृदयो पर भी विजय प्राप्त की। अपने प्रति अपराधियो को क्षमा वीरस्य भूषण के अनुसार क्षमा प्रदान की, सत्ता के लोभ से सदा अछूते रहे तथा सन्यास धर्म के लौकैषणा त्याग व्रत का सदव पालन करते रह। इसी व्रत की पालना मे उन्हे विष-पान करना पडा। पर वे सत्य धर्म से विमुख हो लोक-सग्रह के प्रभावी आकर्षण में न फसे। निन्दन्तु नीति निपुणा की दृष्टि मे रखते हुए उन्होने सत्य का सत्य रूप मे प्रस्तुत करते रहने का साहसपूर्ण कार्य किया। उस महामानव के चरित का एक-एक पृष्ठ महान् ग्रन्थ से अधिक पवित्र और गम्भीर है।

इस सबका उल्लेख करने का यही अभिप्राय है कि हम ऋषि निर्वाण की स्मृति वेला मे ऋषि चरित का अनुसरण करने का व्रत ग्रहण करे।

आज प्राय निराशावादी बन्धु पूछते और कहते हैं कि अब हमे क्या करना है। ऋषि और आर्य समाज का कार्य पूर्ण हो चुका। जो बन्धु ऐसा विचार रखते हैं उनके सम्बन्ध मे हमारी

प्रधान सभा का दीपावली-सन्देश

भारतीयो के सब ही पर्व यो तो हसी खुशी और प्रसन्नता के वर्धक है, परन्तु दीपावली और होली का उनमे एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन दोनो ही पर्वों पर नई फसले भी घरो और बाजारो मे पहुँच जाता है। इसलिये घर का और देश का भरा हुआ वातावरण भी प्रसन्नता को बढाने मे सहायक होता है। सास्कृतिक भाषा मे इसी से इन अवसरो पर किये जाने वाले यज्ञ "नवसस्येष्टि यज्ञ" कहे जाते थे। ऋतु परिवर्त्तन के कारण घरेलू वातावरण भी बदल जाता है।



श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री, सभा प्रधान

कार्तिकी अमावस्या (दीपावली) ३० अक्टूबर १८८३ ई० को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपनी भौतिक लीला समाप्त की थी। आज ठीक सतत्तर वर्ष उस पुण्यात्मा को विदा लिये हुए हो गये। इसलम्बी अवधि मे हमने अपनी कितनी यात्रा ते की है और कितनी अभी शेष है ? थोडा सोचे। दीपावली के दिन छोटे छोटे दीपको की लौ अपने पीछे खडी उस दिव्य ज्योति की ओर सकेत कर रही है, जो सदा ही "उठो और कल्याण मार्ग के पथिक बनो" का सदेश दे रही है।

—प्रकाशवीर शास्त्री ससद् सदस्य
प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश

यही सम्मति है कि वे ऋषि मिशन और आर्यसमाज को नहीं समझ सके है।

आर्यसमाज का कार्य न केवल भारत के लिए अपितु समस्त ससार के लिये है, और यह मिशन न केवल १९ वी और २० वी शताब्दी के लिये आरम्भ हुआ, अपितु इसका कार्य 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' होता रहेगा। मानव प्रकृति के त्रिगुणात्म स्वरूप के कारण दैवी और आसुरी वृत्तियो का सघर्ष कम अधिक बना रहेगा, तब गम्भीरतापूर्वक सोचिये हमारा कार्य समाप्त कैसे हो सकता है। आर्यत्व के इस दायित्व की अनुभूति करके ही ऋषियो ने हमे सन्देश दिया था "चरैवेति चरैवेति" चलते चलो, चलते चलो। आज आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को आगे बढ़ने का व्रत लेना होगा और ऋषि की पुण्य स्मृति मे अपनी कमजोरियो मानसिक दुर्भावनाओ, सत्ता सघर्षों दैन्यता और पलायनता की भावनाओ, अकर्मण्यता शिथिलता उदासीनता एव अश्रद्धा के कल्मष को नष्ट कर हृदय को आर्यत्व की पवित्रता से पुनीत कर अपने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ना होगा। जो आर्यत्व के महान् गौरव की रक्षा मे असमर्थ है, वे ईश्वर पुत्र के महान गौरव के अधिकारी नही रह सकते। प्रत्येक आर्य सदस्य को निर्णय करना होगा कि वह इस गौरव रक्षा के लिए क्या कर रहा है। निर्णय की गम्भीरता ही उस महा मानव के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी।



महर्षि की आशा पूर्ण करो



[श्री प० प्रेमचन्द्रजी शर्मा एम०एल०सी०, मन्त्री आ०प्र० नि० सभा, उत्तर प्रदेश]

महर्षि दयानन्द महामानव थे। उन्होने अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए कठोर साधना और तपस्या की थी। वे, अपना जीवन सार्थक कर गये। वे मृत्यु ञ्जय बन गये।

उन्होंने विश्व से अज्ञान, अन्याय, अभाव को समाप्त करने के लिए अपने जीवन का समर्पण किया था। वे चाहते तो अकेले मात्र सुख का आनन्द प्राप्त करते। पर उन्हे मानवता के उद्धार की चिन्ता थी। वे विश्व प्रेम के उपासक थे और मानव मात्र नही प्राणी मात्र की रक्षा और उन्नति के लिए चिन्तित थे। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे अपने सन्मार्ग पर दृढ रहे उन्हे अपनी तपस्या पर विश्वास था, और वे यह अनुभव करते थे कि उनके सहयोगी आर्य जन उनके वेद-मार्ग का प्रचार और प्रसार अच्छी प्रकार कर सकेंगे। अपने इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने लिखा था —

जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्य समाज' के साथ मिल कर उसके उद्देश्यानुसर आचरण करना स्वीकर कीजिए, नही तो कुछ हाथ न लगेगा। हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा। उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिल कर प्रीत से करे। इसीलिए जसा आर्यसमाज आर्यावत देश की उन्नति का कारण है, वसा दूसरा नही हो सकता। यदि इस समाज का यथावत सहायता देवे तो बहुत अच्छी बात है क्यो कि समाज का सौभाग्य वढाना समुदाय का काम है—एक का नही"। 'सत्यार्थप्रकाश'।

इस प्रकार महर्षि के मानस पुत्र रूप मे आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य पर आजीवन एक गम्भीर उत्तर दायित्व रहता है। महर्षि ने जिन समस्याओ की पूर्ति के लिये आर्यसमाज की स्थापना की थी, वे सामयिक नहीं थी। देश की अवनति अवस्था का उन्हे मार्मिक दुख था और वे एक विश्व नागरिक के रूप मे यह भी अनुभव करते थे, कि भारत ही विश्व मे शान्ति



श्री प० प्रेमचन्द्र जी शर्मा सभा मन्त्री

की स्थापना कर सकता है, भारत ही भटकती मानवता का, अध्यात्म की प्रेम गगा मे स्नान कर शान्ति सुख प्रदान कर सकता है। इस आशा पूर्ति के लिये उन्होंने साहित्य निर्माण किया और भारतीय एवं वैदिक वाङ्मय पर जो स्वार्थवाद का आवरण व्याप्त था, तथा जिससे वदिक मत को भूल कर सकडो मत मतान्तरो का व्यामोह सव्याप्त था, उसे समाप्त किया। शास्त्रो मे प्रक्षेप वाद तथा वेदो के शुद्धार्थ प्रतिपादन की शैली ने अज्ञान रात्रि को, समाप्त कर ज्ञान सूर्य का प्रकाशित कर दिया।

महर्षि ने वेदिक मत के आदर्श सिद्धान्तो, अपनी प्रगल्भतापूर्ण रचनाओ और मार्ग दर्शन द्वारा आर्य जनो का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। हमने महर्षि की आशाओ के अनुरूप उनके उत्तराधिकार को स्वीकार किया। एक आँधी की भाति आर्य समाज की विचार

धारा सारे देश मे छा गइ। विदेशो मे इग्लैण्ड, फ्रास, अमेरिका ने आर्यसमाज की तीव्र शक्ति को अनुभव किया। आर्य समुदाय अपने पथ पर उत्साह और योजना पूर्वक आगे बढ़ता गया। हमने जो मार्ग स्वीकार किया उसमे कही विश्राम का अवसर नहीं था। आणविक शक्ति की तरह निरतर गति और प्रगति होनी चाहिये थी।

भारत की राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्ति तक हम जिस उत्साह और उल्लास के साथ कर्त्तव्य पथ पर बढ़ते रहे, इतिहास मे उसे सदैव स्मरणीय श्रेष्ठ स्थान प्राप्त रहेगा। पर आज हमारी गति मन्द और शिथिल ही नहीं चिन्तनीय बन रही है। हमे सदैव आशावादी रहना चाहिये। परन्तु जो शिथिलता और त्रुटियाँ हमारे सघटन मे आ गयी है, उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी गाडी पटरी से उतर चुकी है, उसे पटरी पर लाकर दूसरो के उपकार का दायित्त्व आज की पीढी का पूर्ण करना है।

कोई व्यक्ति या समुदाय अपने पूर्वजो की गौरव शाली थाती (सम्पत्ति) पर गर्व करते हुए अपने गौरव और महत्त्व नही बनाये रख सकता, जब तक कि उसकी इकाइयो और उसका नेतृत्त्व कर्त्तव्य परायण न हो। केवल यह कहते रहने से कि महर्षि इतने महान् थे, आर्य समाज ने यह किया, वह किया, हमारा कार्य समाप्त नही हो जाता, अपितु अब तक के लोगो ने जो कुछ किया उसके बाद हमारा कर्त्तव्य आरम्भ होता है। क्या कभी हमने सोचने का प्रयत्न किया है कि आर्य समाज के मिशन की सफलता के लिये हमे व्यक्तिगत रूप से क्या करना है? इसी प्रश्न के उत्तर मे आर्यसमाज का भविष्य निहित है।

महर्षि दयानन्द के समय मे धार्मिक जगत् मे सत्ता का सघर्ष व्याप्त था। समाज पर उसी का नियन्त्रण था, जिसका धर्म पर। आज परिस्थिति मे यह परिवर्त्तन है कि राजनैतिक जगत् मे सत्ता का सघर्ष चल रहा है, और सामाजिक, धार्मिक एव सास्कृतिक जगत् पर उसी का अधिकार है, जिसका राजनीति पर। इस परिस्थिति मे आर्य समाज को महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। आज भारतीय गौरव की रक्षा का प्रश्न पराधीनता के युग से भी अधिक गम्भीर बना हुआ है। राजनीति और अर्थवाद की चकाचौंध मे, प्राचीन नैतिकता, धर्म, सस्कृति की उच्चतम भावनाये समाप्त हो रही है, और देश मे विद्वेष, सघर्ष, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, चोर एव द्यूतकर्म, मद्यपान, हिसा आदि दुर्गुण भारत की महत्ता को ग्रस रहे हैं। इन सबसे भारत की रक्षा का दायित्व एकमात्र आर्यजनो पर ही है। हम इस देश को आर्यावर्त्त कहते है, क्या हमारे आर्यावर्त्त का यही स्वरूप होना चाहिये।

महर्षि अपना काम कर गये। हमे मार्ग दिखा गये उनकी जीवन ज्योति अमर है। उनकी निर्वाण ज्योति हमे कर्त्तव्य का स्मरण कराने आयी है।

अभी हमने दीक्षा शताब्दी पर उनके जीवन का अनुकरण करने का व्रत लिया था क्या हम व्रत का पालन कर रहे है? यदि हमसे भूल हुई है, तो निराश होने की जरूरत नही। आओ! हम सब मिलकर एकबार पुन आर्य समाज के कार्य और ऋषि मिशन को पूर्ण करने का व्रत धारण करे। यही ऋषि निर्वाण का सन्देश है—यही महर्षि के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी।



बहराइच जिला आर्य सम्मेलन

स्थान—इकौना आर्यसमाज

तिथियाँ—२४ से २८ अक्टूबर सन् ६०

अध्यक्ष—श्री आचार्य बृहस्पति जी शास्त्री

वेदशिरोमणि प्रधान आ०प्र०नि० सभा उ०प्र०

सम्मेलन उद्घाटन कर्त्ता

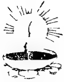
श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा जी एम० एल० सी०

मन्त्री आ० प्र० नि० सभा उत्तर प्रदेश

यह सम्मेलन इकौना आर्यसमाज की रजत जयन्ती के अवसर पर सम्पन्न होगा।

इस अवसर पर २॥ हजार आहुतियो से बृहद् यज्ञ भी किया जायगा।





काशी शास्त्रार्थ



[लेखक—युवराज श्री रणजयसिह जी एम० एल० सी० अमेठी राज्य भू०पू० प्रधान आर्य प्र० सभा उत्तर प्रदेश]

वैदिक धर्म का प्रशस्त प्रचार एव प्रचलित पाखड का प्रचण्ड खण्डन करते हुए स० १६२६ वि० मे महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जब सस्कृत विद्या के केन्द्र काशी पहुँचे तब वहा कोलाहल मच गया और सर्वत्र चर्चा का यह विषय बन गया कि एक ऐसा सन्यासी आया हुआ है जो वेदो का प्रकाण्ड पण्डित



श्री युवराज रणजयसिह जी

है तथा काशीस्थ समस्त विद्वानो को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान दे रहा है। कहता है कि प्रतिमा पूजन और मृतक श्राद्ध वेद विहित नही है।

तत्कालीन काशी नरेश महोदय ने काशी के विख्यात विद्वान् महानुभावो से अनुरोध किया कि उक्त सन्यासी अर्थात् महर्षि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करे किन्तु काशीस्थ विद्वानो ने तदर्थ तैयारी करने के लिए १५ दिवस का समय मागा। अन्ततोगत्वा कार्तिक शुक्ला द्वादशी को अमेठी राज्य के आनन्दबाग मे ६० सहस्र जनता की उपस्थिति मे शास्त्रार्थ हुआ जो निस्सन्देह अपूर्व था। काशीनरेश महोदय सभापति का सुन्दर सिहासन सुशोभित कर रहे थे।

एक ओर काशी के सभी दिग्गज विद्वान स्वामी विशुद्धानन्द, पण्डित बाल शास्त्री पण्डित शिवसहाय राम, पण्डित माधवाचार्य, श्री वामनाचार्य, श्री देवदत्त शर्मा, श्री जयनारायण शुक्ल वाचस्पति, श्री चन्द्रशेखर त्रिपाठी, श्री राधामोहन तर्क वागीश, श्री दुर्गादत्त, श्री बस्तीराम दुबे, श्री काशीप्रसाद शिरोमणि, श्री हरिकृष्ण श्री अम्बिकादत्त व्यास, श्री घनश्याम, श्री ठाकुरदास, श्री हरदत्त दुबे, श्री भैरवदत्त, श्रीधर शुक्ल, श्री विश्वनाथ मैथिल, श्री नवीननारायण तर्कालकार, श्री मदनमोहन शिरोमणि, श्री कलाशचन्द्र शिरोमणि, श्री सेवकृष्ण वेदान्ती, श्री गणेश श्रोत्रिय, श्री धनीराम नारायण शास्त्री और श्री देवधर नृसिह शास्त्री प्रभृति तथा दूसरी ओर बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द अकेले।

शास्त्रार्थ सस्कृत भाषा मे हुआ था और दिन भर चला था। सायकाल जब देखा गया किसी प्रकार से महर्षि स्वामी दयानन्द निरुत्तर नही हो रहे है अपितु उनके प्रश्नो का उत्तर देना असम्भव हो रहा है तब काशीस्थ विद्वानो की लाज बचाने के लिए एक विचित्र चाल चली गयी।

एक फटा पुराना कागज का टुकडा श्री स्वामी दयानन्द को दिया गया। उन्होने श्री स्वामी विशुद्धानन्द से कहा आप ही पढ़ दीजिए। स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा सेवक न होने से वे पढ़ नही सकते। अन्धेरा होने लगा था। एक लालटेन मगायी गयी। लालटेन का शीशा धूम्र आच्छादित था और जो उसे लिये हुए था वह जान बूझकर उसे हिला रहा था। उस अल्प प्रकाश मे महर्षि स्वामी दयानन्द उसे पढ़ने का प्रयास करने लगे कि काशी के पण्डित गण दर दरकर न्न

पडे और पौराणिक जनता ने हल्ला मचा दिया।

महर्षि उसे पढ़कर उत्तर देने लगे परन्तु फिर सुनता कौन है, सब लोग भाग खडे हुए। वाराणसी नगर के कोतवाल श्री रघुनाथप्रसाद के पूछने पर कि यह क्या हो रहा है, सभापति महोदय ने चुपके से कहा कि फिर क्या आप चाहते हैं काशी की नाक कट जाय।

दूसरे ही दिन महर्षि दयानन्द ने विज्ञापन प्रकाशित किया। समाचार-पत्रों में महर्षि की जीत छपी। स्वय काशी नरेश महोदय ने स्वामी जी महाराज के पास जाकर स्पष्ट स्वीकार किया परन्तु कुछ दिनों के उपरान्त। बाबा जवाहरदास जो काशीस्थ प्रतिष्ठित विद्वान् थे वे प्रारम्भ से ही महर्षि की जीत समझ रहे थे।

स्वामी जी महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए फिर काशीस्थ विद्वान कभी सामने नही आये। स्वामी जी ने ६ बार काशी जाकर ललकारा परन्तु उन लोगों ने साहस नहीं किया। स्वामी विशुद्धानन्द के शिष्य श्री राधाकृष्ण आचार्य (जो हमारे सस्कृत भाषा के गुरू थे) बतलाते थे कि उक्त ऐतिहासिक शास्त्रार्थ के पश्चात् जब जब महर्षि दयानन्द काशी पधारे तब तब विद्वज्जन केवल अपने प्रमुख शिष्य विद्यार्थियों का प्रश्नोत्तर आदि के लिए भेजते रहे और उन्हें यह आदेश रहता था कि स्वामि दयानन्द जी महाराज के मुख से यदि कोई सस्कृत शब्द तनिक भी अशुद्ध निकले तो तत्काल उन्हें टोक दिया जाय जिसके उपस्थित सज्जन समझे कि काशी के विद्यार्थी तक स्वामी जी की त्रुटियाँ पकड लेते हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जी महाराज इतने भारी विद्वान् थे कि कभी एक भी शब्द ऐसा न बोले जो व्याकरण की दृष्टि से टोकने योग्य रहा हो।

आर्यसमाज के ही नही काशी के इतिहास मे कदाचित वैसा शास्त्रार्थ उससे पूर्व न हुआ होगा। उस अद्वितीय शास्त्रार्थ के महत्त्व को सभी पक्ष के विद्वान् मानते हैं। स्वर्गीय श्री महेशप्रसाद जी आलिम फाजिल का सुझाव था कि काशीस्थ आनन्दबाग में उक्त शास्त्रार्थ की स्मृति मे एक पत्थर लगवा दिया जाय। अखिल भारतीय सनातन धर्म पण्डित महासभा मे भी तदर्थ प्रस्ताव पास हुआ है। उसके अध्यक्ष श्री पण्डित गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी तथा स्वर्गीय श्री महेशप्रसाद जी के यही विचार थे कि उस पत्थर पर स्वामी दयानन्द जी महाराज एव शास्त्रार्थ मे भाग लेने वाले काशीस्थ प्रमुख विद्वानो के शुभ नाम सवन् तथा तिथि आदि अकित रहे परन्तु हार जीत किसी की न लिखी जाय जिससे उसका महत्त्व सबके लिए सदा एक समान रहे।

लेखक ने आनन्दबाग मे उक्त शास्त्रार्थ की स्मृति मे 'काशी शास्त्रार्थ वेदी' बनवा दी है। अब उस पर पत्थर लगाकर उसका अनावरण करना शेष है, जिस पर विचार करने के लिए विद्वान महानुभावो से सादर प्रार्थना है।



अन्तरंग सभा की आवश्यक बैठक

३० अक्टूबर १९६०

गोमती की बाढ से सभा के मुख्य कार्यालय भवन आर्यमित्र व प्रेस को जो क्षति पहुची है उस परिस्थिति पर विचार एव निश्चय करने के लिये ३० अक्टूबर को प्रधान जी के आदेशानुसार अन्तरग सभा की बैठक होगी। सभी सदस्यों से प्रार्थना है कि पधारने की कृपा कर अनुगृहीत करें।

—उमेशचन्द्र स्नातक

मुख्य उपमत्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

नम्र-निवेदन

आर्यमित्र का ऋष्यक निकालने मे इस बार हमे जिन कठिनाइयो का सामना करना पडा है, उसका अनुमान इसी से लग सकता है कि प्रेस पानी मे डूबा होने के कारण दूसरे प्रेसो मे छपाई करानी पडी है। इस अक के लिए जिन लेखक बन्धुओ ने अपनी रचनाये भेजी हैं, उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए उन सभी सहयोगियो से क्षमा प्रार्थना करते हैं, जिनकी रचनाये स्थानाभाव और इस सकट स्थिति मे हम नहीं छाप सके। जैसा भी बन सका अक आपके समक्ष है।

भवदीय

उमेशचन्द्र स्नातक एम० ए०

सम्पादक आर्यमित्र

आर्य बन्धु इस संकट में आर्थिक सहयोग प्रदान कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें

लखनऊ मे १० अक्तूबर को सभा के मुख्य कार्यालय नारायण-स्वामी भवन मे बाढ़ का पानी भर जाने के कारण सभा भवन की मुख्य कोठी की नीव मे पानी पहुँच गया और सभा भवन की दीवारो और छतों में दरारें पड गयी हैं। सभी कर्मचारी यज्ञशाला में निवास कर रहे हैं। प्रेस की मशीने पानी में डूबी पडी हैं। प्रेस का कार्य शीघ्र आरम्भ हो सकना कठिन है।

सभा-भवन को क्षति पूर्ति के लिये काफी आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी। सभी आर्य-बन्धुओं, समाजो के अधिकारियों, सभा के अधिकारियो, अन्तरग सदस्यो से अपील है कि वे इस सकट स्थिति मे सहायता प्रदान कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

आर्यसमाज द्वारा लखनऊ बाढ़ पीड़ितों की प्रसंशनीय सहायता

लखनऊ की अभूतपूर्व बाढ़ मे सत्रस्त बाढ़ पीडित बन्धुओ की सहायता का कार्य ११ अक्टूबर से माल-रोड पर आर्यसमाज का शिविर स्थापित कर प्रारम्भ कर दिया गया था।

आर्यसमाज गणेशगज के मन्त्री श्री चन्द्रदत्त जी तिवारी एम० ए० अपने सहयोगियो तथा डी० ए० वी० कालेज लखनऊ के १५० से अधिक अध्यापक व छात्रो सहित सेवा कार्य मे सलग्न हैं। कालेज की एन० सी० सी० की यूनिटे साहस और तत्परता के साथ सेवा सहायता मे सलग्न हैं। कालेज के तैराक अध्यापको ने नदी पार सकट ग्रस्त भाइयो को अपने सिरो पर रख कर खाद्य सामग्री पहुँचाई।

आर्यसमाज शिविर की ओर से बाढ़ पीडितो को खाद्य सामग्री वितरण करने के लिए छपे हुये राशन कार्डों का प्रयोग किया जा रहा है। इस व्यवस्था की सभी ने प्रशसा की है। शिविर की ओर से ३००० से अधिक व्यक्तियो को कार्डों पर खाद्य सामग्री वितरित की जाती है।

शिविर का दैनिक व्यय इस प्रकार है —५ बोरा आटा, २ बोरा दाल, २ बोरा चावल, ३ टीन मिट्टी का तेल, १ मन शक्कर, १ मन दूध, ५० मन लकडी, नमक, मिर्च ममाला, सब्जी आदि। इसके अतिरिक्त दोनों समय चाय और नाश्ता भी बाँटा जाता है।

वस्त्र वितरण का कार्य भी श्री प्रि० सन्तोषकुमारी जी प्रिन्सिपल बालिका विद्यालय के सहयोग व सरक्षण मे सम्पन्न हो रहा है। २००० आदमियो को वस्त्र बाटे भी जा चुके है।

चिकित्सा के लिये भी २ घण्टे होम्योपैथ चिकित्सक शिविर में बैठते हैं।

श्री तिवारी जी तो दिन–रात सहायता-सामग्री सग्रह तथा धन-सग्रह कार्यों मे सलग्न रहते हैं। उनके साथ आर्यसमाज गणेशगज के सम्मानित अन्तरग सदस्य सर्व श्री भगवानप्रसाद जी, चन्द्रभाल जी दुवे, प्रज्ञामित्र जी शास्त्री, विष्णुकुमार जी अवस्थी भी हर समय कैम्प मे ही उपस्थित रहते हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के मुख्य उपमन्त्री श्री उमेशचन्द्र स्नातक एम० ए० भी कैम्प की व्यवस्था व परामर्श के लिए जाते रहे। सभा के कार्यकर्त्ता श्री बाबूराम जी, श्री राजबहादुर जी, श्री नारायणगोस्वामी जी भी जाते आते रहते हैं।

जनता का आर्यसमाज शिविर को अच्छा सहयोग प्राप्त हो रहा है, फिर भी प्रत्येक आर्य बन्धु का कर्त्तव्य है कि इस सहायता कार्य मे यथा-शक्ति सहयोग प्रदान करे।

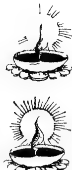
आर्यसमाज का दूसरा शिविर आर्यसमाज हसनगज व नगर आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओ की देख-रेख में कार्य कर रहा है। श्री डा० प्रकाशचन्द्र जी, श्री ब्रह्ममित्र जी शास्त्री फैजाबाद रोड व कुतुबपुर मे चिकित्सा कार्य कर रहे हैं।

बाढ़ पीड़ित केन्द्रो मे जो आर्य बन्धु सेवा कर रहे हैं, वे सब आर्य जगत् की बधाई के पात्र हैं।



महर्षि जीवन का सार--

उपदेशेन वर्तामि



[ले०—श्री डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल अध्यक्ष 'भारतीय विज्ञान' विभाग बनारस विश्वविद्यालय]

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्महो कचन

मैं उपदेश से बरतता हूँ, किसी को आज्ञा नही देता। अर्थात् मेरे जीवन के द्वारा मेरा उपदेश प्रगट होता है, वाणी के अनुशासन के द्वारा नहीं। भावार्थ यह हुआ कि कर्म के द्वारा दिया हुआ महत्वपूर्ण उपदेश ससार मे सर्वश्रेष्ठ है, वाणी के द्वारा यह करा, यह न करो, की रीति से कही हुई बात उतनी ग्राह्य नही होती।

इस सृष्टि का निर्माता सृष्टि रचकर सृष्टि की एक एक बात से मौन उपदेश दे रहा है। मेघों की अव्यक्त ध्वनि द द द से, उपनिषद् का ऋषि उपदेश सुनता है—

दत्त-दमयत-दयध्वम् अर्थात् दान दो, आत्म सयम करो और प्राणियो पर अनुकम्पा करो।

मेघ का सारा जीवन व्यवहार एक महान् उपदेश है। बिना वाणी से कहे कर्म से मिलने वाला उपदेश शत गुणित और सहस्र गुणित होता है। इस प्रकार सृष्टि व्यवहारो से मिलता हुआ अनादि अनन्त उपदेश प्रतिक्षण हमारे पास आ रहा है—

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः एवा मे प्राण मा बिभेः॥

जैसे सूर्य और चन्द्र न मन से डरते हैं, न शरीर से न्यून होते हैं जैसे नियन्ता ने कर्म पथ मे उन्हे ठहरा दिया है वैसे ही बरतते हैं—ऐसे ही मेरा प्राण भी उनसे अभय की शिक्षा ले।

जीवन उपदेश की तूष्णीभाषा है। अथवा यो कहे कि मौखिक उपदेश तो एक या दो भाषाओं मे एक व्यक्ति दे सकता है। किन्तु जीवन के उपदेश की भाषा सार्वभौम है। ससार के मानवो की जितनी भाषायें है वे सब जीवन की ही व्याख्या करती है। जीवन के द्वारा दिये गये उपदेश को वे सब शब्दो के बिना कहे पकड लेती हैं। किसी भाषा कवि ने कहा है—

"कामा जोग कथनि के कहे।
निकसे घिउ न बिना दधि मथे॥

योग तो साधन की वस्तु है उसका मुह जबानी जमा खर्च किस काम का। बिना मथे दही या दूध मे से मक्खन नही निकलता। करनी और कथनी मे बहुत अन्तर है। करनी का प्रभाव मन पर पडता है कथनी का नहीं। जिस कथन के पीछे जीवन का सत्य नही है वह निस्तेज है, बुझी हुई अग्नि की तरह राख मात्र है। जीवन मे उपदेश के अनुसार बरताव करने से ही उसमे चिनगारी पैदा होती है। नोआखाली के हिंसा से भरे हुए वातावरण मे उस दावानल का आचमन करने के लिए जब गाधी जी अकेले कूद पडे तो किसी ने उनसे उपदेश मागा तो उन्होने लिख कर दिया—"आमार जीवनेइ आमार वाणी।" मेरा जीवन ही मेरी वाणी है। स्वामी दयानन्द का ब्रह्मचर्य व्रत उनका तपःपूत जीवन, उनका ज्ञान प्रदीप्त ऋषित्व मानव के लिए तूष्णीं भावेन जो उपदेश देता है वह सैकडो पोथो और व्याख्यानो से सभव नही। वह जीवन की अग्नि के प्रकाश से प्रकाशित है। उसमे प्राणो की हवि दी गई है। सच्चा उपदेश इसी प्राण हवि को चाहता है। उपदेशक कहता है—मै स्वय हवि हूँ। (हविरस्मि नाम)

उसका मन इस स्थिति की प्राप्ति या अप्राप्ति का स्वय साक्षी है। यदि सत्य की अग्नि की एक चिन

[शेष पृष्ठ ११ पर]

वेदों के प्रति महर्षि की प्रेरणा क्यों ?

[श्री प० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर]

भारतीय विचारधारा के अनुसार विद्याये दो प्रकार की हैं।

(१) परा (२) अपरा

अपरा वेद विद्या ऋग्, यजु साम, अथर्व के रूप म।

परा 'यया तदक्षरमधि गम्यते'

परा वह विद्या है जिससे अक्षर अविनाशी पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाय।

जसे नदी के दो किनारे होते है। 'आर' अर्थात् इधर का किनारा पार' अर्थात् दूसरी ओर का किनारा अथातो ब्रह्म जिज्ञासा वेदान्त दर्शन का सूत्र हैं

इस सूत्र मे स्पष्ट कहा गया हैं कि अथेति वेदाध्ययननानन्तरम् अर्थात् वेदो के अध्ययन के पश्चात् ब्रह्म जिज्ञासा।

इससे स्पष्ट है वदो की चरमसीमा है वेदो का पार अथवा वेदो का सिद्धान्त।

तज्जलानिति शान्त इत्युपासीत् (वेदान्त सूत्र) अर्थात् यह सृष्टि 'तज्ज' उस परमात्मा से उत्पन्न हुई 'तज्ज' यह सृष्टि उसी म लीन हो जाती है। तदन अर्थात् यह सृष्टि चराचर रूप उसी म स्थिर रहती है। अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति प्रलय का हेतु परमात्मा है। शम दमादि साधन सम्पन्न होकर शान्त मन से उसी को जानने की चेष्टा करनी चाहिए।

वेद के विषय म सब शास्त्रकार ब्राह्मणकार सब उपनिषत्कार एक मत है कि अन्त म वेदो का तात्पर्य यही है वेदो म तैंतीस जड देवताओ का वर्णन है पर उनम चेतना शक्ति है उसी पर ब्रह्म की।

समस्त वेद जिस पद का कहते है जिस पद की प्राप्ति के लिये सब ऋषि मुनि महात्मा तप का आश्रय लेते हैं वही ता वह पद है जिसके विषय मे थोडा सा निर्देश करके वेद चुप हो जाते हैं। जिसके विषय मे



आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री

ब्रह्मज्ञानी भी कहते है कि—

न शक्यते वर्णयितु तदा गिरा।
स्वय तदन्त करणेन गृह्यते॥

अर्थात् वह वाणी का विषय नही है जो उसके विषय मे कोई कुछ कह सके, वह स्वसवेद्य है। अर्थात् अन्तर्मुख स्वान्त करण से ही जाना जाता है।

ब्रह्म की अनिर्वचनीयता के विषय मे पाश्चात्य और पौरस्त्य पण्डितो मे भिन्न भिन्न विचार हैं। बाहर से भीतर को जाना और भीतर इसका साक्षात्कर करके फिर वाह्य जगत् के ऊपर दृष्टि डालना। इसलिये भारतीय ब्रह्मज्ञानियों ने कहा—

यतो यतो निवर्तते ततस्तत प्रमुच्यते। निवर्तनाद्धि सर्वत न वेत्ति दुखमण्वपि, मन जिस जिस विषय से हटता जाय उधर-उधर से छूटता जाता है। इस तरह

हटते हटते जब-जब अन्तर्मुख हो जाता है साक्षात् आत्म दर्शन हो जाते हैं, तब उसको अणुमात्र भी दुख नही होता।

यह साक्षात्कार सस्कारो पर निर्भर है। जिनके पूर्व जन्म के तीव्र सस्कार हो और इस जन्म मे भी तीव्र उपाय हो वे सहज ही मे आत्म अथवा परमात्म दर्शन कर लेते है।

पूर्व जन्म के सस्कार	इस जन्म के उपाय
(१) मृदु सस्कार	(१) मृदु
(२) मृदु सस्कार	(२) मध्यम
(३) मृदु सस्कार	(३) तीव्र
(४) मध्यम सस्कार	(४) मृदु
(५) मध्यम सस्कार	(५) मध्यम
(६) मध्यम सस्कार	(६) तीव्र
(७) तीव्र अधिमात्र सस्कार	(७) मृदु
(८) तीव्र सस्कार	(८) मध्यम
(९) तीव्र सस्कार	(९) तीव्र

इसीलिए गीता ने कहा है कि—

शनै शनै निवर्तेत। बुद्धया प्रतिगृहीतया।
आत्मसस्थ म कृत्वा। न किञ्चिदपिचिन्तयेत्।

ससार से धीरे धीरे हटना चाहिये, बुद्धिपूर्वक हटना चाहिये। और इस प्रकार हटते-हटते मन को आत्मा मे रख कर अर्थात् आत्मा के साथ रखकर परब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

इस योग्यता के लिए ही आश्रम व्यवस्था की श्रेणियाँ हैं। साधारण जन के लिये धर्म शास्त्र का आदेश है—आश्रमादाश्रमम् गच्छेत्।

जो तीव्र सस्कारी जीव हैं वे वैराग्य की भावना जागृत होते ही ससार से विरक्त हो सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वेद की चरमसीमा ब्रह्म है। जिसका आरम्भ ब्रह्म जिज्ञासा से और समाप्ति ब्रह्म प्राप्ति मे होती है।

जो ब्रह्म की बाते करता है वह ब्रह्म को नही जानता। जो उसको जानता है वह कह नही सकता वह तो गूंगे का गुड है। वस्तुत ब्रह्म एक पहेली है, जो पहेली बूझने गया वह फिर इधर का नही रहा, जिसने उधर को झाका वह फिर इधर कहाँ ?

वेदो की इस शिक्षा के महत्त्व को इस युग मे महर्षि दयानन्द ने सबसे अच्छी प्रकार जाना और दूसरो को उससे परिचित कराया।

ऋषि चाहते थे कि उन्होने वेदो द्वारा जिस रहस्य को प्राप्त किया है उसे दूसरे भी समझ और जान सके इसीलिये ऋषि ने मर्यादा बनायी "वेदो का पढना पढ़ाना सब आर्यो का परम धर्म है' वेदो के साथ मन माने अर्थ कर जो अत्याचार किया गया उससे वेद माता की रक्षा महर्षि ने की। महर्षि ने हमे वेदो के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया, वेद जीवन की व्याख्या हैं जीवन से परे की कोई चीज नही।

आर्य जनो पर वेदोन्नति का महान् दायित्व है यद्यपि आज वेदो का नाम लेने का एक फैशन चल पडा है पर महर्षि की स्मृति हमे "को वेदानुद्धरिष्यति" के गम्भीर उत्तरदायित्व की प्रेरणा दे रही है। वेदो के सम्बन्ध मे हमारे सब प्रयत्न हो यही प्रत्येक आर्य की महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि हो सकती है।

उपदेशेन वर्तामि

[पृष्ठ ९ का शेष]

गारी भी जीवन की वेदी मे नही डाली जा सकी तो जीवन मे स्थूल (भौतिक ऐश्वर्यरूपी) समिधाओ का चाहे जितना ऊँचा ढेर लगा हो, उसमे प्रकाश उत्पन्न नही हो सकता। जीवन के स्थूल उपकरणो की समिधाओ को सत्य की अग्नि से ज्योति मे परिणित करना ही जीवन की सच्ची सफलता है। सत्य मे नियुक्त जीवन सबको खीचता है कोरा आज्ञावाद रुचिकर नहीं होता। कोरे उपदेश की गति तो ऐसी है जैसे—

उर्ध्व बाहुविरोम्येष नहि कश्चिच्छृणोति मे।

ऊँची बाह उठाकर धर्म की पुकार कर रहा हूँ, लेकिन कोई सुनता ही नही।

महर्षि दयानन्द के पवित्र जीवन की घटनाये जीवित उपदेश बनकर हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है हम साधना के बिना सफलता चाहते हैं उन्होंने साधना के द्वारा सफलता प्राप्त की हम भी सफलता के लिये ऋषि जीवन का अनुकरण करे सफलता हमारा वरण करेगी। महर्षि-निर्वाण का यही पवित्र सन्देश है।

आदर्श मानव दयानन्द

[रच०—श्री प्रकाशचन्द्र कविरत्न, आर्यसमाज अजमेर]

गुरु देव ऋषि दयानन्द, आदित्य ब्रह्मचारी,
बैठे थे गगा तट पर, था दृश्य मनोहारी।

इतने मे एक नारी, दुर्दैव की सतायी,
प्रिय पुत्र का लिए शव, रोती बिलखती आयी।

था मास नही तन पर, बस सूखी हड्डियाँ थीं,
आखें धँसी हुई थी, गालो पैं झुर्रियाँ थीं।

मुरझाया हुआ मुख था, बिखरे थे केश सारे,
थे पाँव लडखडाते, मग मे क्षुधा के मारे।

ढकने को लाज तन की, कपड़ा नही था पूरा,
बेटे की लाश पर भी था हा ! कफन अधूरा।

थी एक ही तो रुस पर, जर्जर मलीन साडी,
हाथो से वही उसने, थी बीच मे से फाडी।

साडी का एक टुकडा, उसने पहन लिया था,
और दूसरे से अपने, सुत का कफन किया था।

आधा कफन भी उसने, सुत लाश से उतारा,
फिर वे कफन बहाया, गगा मे पुत्र प्यारा।

अति करुणा पूर्ण ऋषि ने, जब दृश्य यह निहारा,
आँखो से लगी बहने, आँसू की प्रबल धारा।

चाचा के मरण पर भी, आँसू न एक निकला,
भगिनी के निधन पर भी आँसू न एक निकला।

देखी दुखी, दरिद्रा, जब एक देश नारी,
रोये, वो विकल होकर, परमार्थ के पुजारी।

सोचा लगे थे जिनके ठट, वस्त्र अन्न धन के,
हा ! शोक, आज उनको, लाले पडे कफन के।

बन्धन मे ग्रस्त करते, क्रन्दन है देश के जन,
मैं कर रहा हूँ बैठा, एकान्त मोक्ष चिन्तन।

मैं मोक्ष का अकेला, आनन्द न चाहूँगा,
कल्याण पथ करोडो, मनुजो को बताऊँगा।

व्रत ब्रह्मचर्य सेवा, का प्रिय पुनीत धारा,
जग-ताप मिटाने को, जीवन 'प्रकाश' वारा।

लखनऊ में गोमती नदी में भीषण बाढ़ !

आर्य्य प्रतिनिधि सभा का नारायणस्वामी-भवन नष्ट

अक्तूबर के प्रथम सप्ताह की भीषण वर्षा के कारण लखनऊ मे गोमती नदी मे भयकर विनाशकारी बाढ़ आ गयी। जिससे आधा लखनऊ शहर जलमग्न हो गया। अचानक बाढ़ के आ जाने से गोमती नदी का बॉध टूट गया, जिसने विनाशकारी दृश्य उपस्थित कर दिया। इस बाढ से छोटा-बडा, कोई न बच सका। सरकार के अनेक कार्यालय, वडे आदमियो की कोठियाँ और गरीबो के मकान सब डूब गये।

आर्य प्रतिनिधि सभा का नारायणस्वामी भवन एकदम पानी मे घिर गया। चारो ओर ३ ३, ४-४ फुट पानी हो गया। समस्त क्वार्टरो मे पानी भर गया। किरायेदार छोड-छोड कर सभा भवन के हाल मे और कमरो मे आ गये। कुछ अपने वाल-बच्चो को लेकर भाग गये।

आर्य भास्कर प्रेस मे पानी घुस गया, और मशीने व मोटर पानी मे दब गये। आर्य्यसम्राट् छप रहा था, वह छपना बन्द हो गया। कोठी मे पानी के प्रवेश की आशका से रात को १ बजे व्यवस्थापक जी ने प्रेस मे से सब छपे और बिना छपे कागज तथा आवश्यक सामान निकाला, और कार्यालय मे ले गए। इसलिए वे नष्ट नहीं हो सके।

पानी की तेजी ने नारायणस्वामी-भवन की दीवाले हिला दी। जिससे समस्त सभा भवन मे दरारे पड गयीं। सब कमरे खिल गये। भवन का प्रत्येक कमरा नष्ट हो गया। सब कर्मचारी अपने-अपने कमरे छोड कर यज्ञशाला पर पहुँच गये। पानी ने पूर्व और दक्षिण की दीवार तोड़ दी जिससे पानी बाहर निकल उठा। दो तरफ से पानी आता था, और एक तरह से निकलता था।

नरही बाजार, हजरतगज बाजार, आस पास की सडको पर तीन-तीन, चार-चार फुट पानी चल रहा थ। नरही और हजरतगज मे नावे चल रही थीं। रक्षा का भार फौज को सौंपा गया था। फौजी ट्रक बाढ़ मे घिरे लोगो को ढोते थे, और हवाई जहाज खाने पीने का सामान ऊपर से घिरे लोगो को डालते थे। इस मे बहुत-सा पानी मे ही गिर जाता था।

इस अवसर पर आर्यसमाज गणेशगज ने अपना कैम्प खोलकर दूध भोजन, कपड़ा आदि बांटकर प्रशसनीय सेवा की है।

अब बाढ़ घट रही है, पानी का आना जाना बन्द है। मगर कोठी मे पानी भरा हुआ है। सभा भवन का प्रत्येक कमरा नष्ट हो गया है, केवल हाल बचा है। सभा को अब इसके बनाने के लिए हजारो रुपया चाहिए। कार्यालय और प्रेस का काम बन्द है, यह अङ्क दूसरे प्रेसो मे छपवा कर भेजा जा रहा है। अगला अङ्क ३० अक्तूबर का बन्द रहेगा। ६ नवम्बर का अङ्क अगर बाहर प्रवन्ध हो सका तो निकालने का प्रयत्न किया जायगा। आर्यसमाजो को और आर्य पुरुषो को तुरन्त सभा को धन भेजकर इस समय सभा की सहायता करनी चाहिए।

--प्रेमचन्द्र शर्मा एम० एल० सी०
मन्त्री

अनुपम ज्योति के प्रेरणा स्फुलिंग

[ले०—श्री कु० कृष्णाकपूर एम० ए० एल०टी०, इलाहाबाद]

दीपमालिका का पावन पर्व नवजीवन का नवोत्साह लिए जीवन मे उल्लास की नव रेखाये अकित करने हेतु हम लोगो के मध्यस्थ आ गया। आज का पर्व हम वैदिक धर्मावलम्बियो के मानस-पटल पर एक अभिन्न स्मृति सजग करता है। आज के दिवस ही भारत की महान् विभूति, ज्योतिपुज देव दयानन्द विश्व के रगमच से तिरोहित हुई थी। वस्तुत वह अपूर्व ईश्वर-निष्ठा, आत्म-विश्वास, अखण्ड ब्रह्मचर्य,अनुपम आत्म-त्याग स्वदेशानुराग और दिव्य आभाओ से परिपूर्ण जगमगाते हुए ज्योतिपुज थे, जिसका प्रकाश युगानु युग तक अक्षुण्ण रहेगा। यह दीपमालिका हमे उस महापुरुष की जीवन गत महत्त्वपूर्ण घटनाओ का स्मरण दिलाती है—

उस ज्योतिपुज का पहला स्फुलिग 'प्रभु मे अटूट विश्वास' के रूप मे हमारे सम्मुख आता है। उनकी जीवन की घटनाये "न अस्य क्षीयन्त ऊतय" अर्थात् प्रभु की रक्षा सामर्थ्य का कुछ अन्त नही पाया जा सकता, के तथ्य मे अक्षरश विश्वास करती प्रतीत होती है। मगलमय विभु की रक्षा सामर्थ्य मे तो उन्हे लेशमात्र भी सन्देह न था, हो भी कैसे प्रभु के अनन्य भक्त का तो सर्वत्र मित्रत्त्व की दृष्टि का ही जो आभास मिलता है।

दूसरा स्फुलिग 'मातृभाषा के प्रति अनुराग' के रूप मे प्राप्त होता है। वेद के तथाकथित मन्त्र 'इला सरस्वती मही तिस्रो देवीं मही भुव । बर्हि सीदन्त्व स्रिध", अर्थात् मातृभाषा, मातृ-सभ्यता और मातृ-भूमि यह तीन देवियाॅ कल्याण करने वाली है। अतएव हमारे अन्त करण मे न भूलती हुए बैठे, मे महर्षि की पूर्ण आस्था थी। आस्था ही नहीं,बल्कि जीवन में इसे पूर्णतया जहाॅ उतारा वहाॅ इसका प्रचार भी किया। उनकी विचारधारा तो ऐसी थी कि "जो इस देश का अन्न खाकर, जल पीकर तथा सास लेकर इस देश की आर्य भाषा को नही जानता, वह धर्म का भी पालन करता है या नहीं, इसमे भी सन्देह है।" अन्यत्र उदयपुर मे एक सज्जन के प्रश्न का उत्तर देते हुए भी इस प्रसग की दिशा का स्पर्श करता हुआ सकेत हमे उपलब्ध होता है कि "एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर कार्य है। सब उन्नतियो का केन्द्र ऐक्यभाव है। जहाॅ भाषा, भाव और भावना मे एकता आ जाए, वहाॅ समुद्र मे नदियो की भाति सब सुख एक-एक करके स्वय प्रवेश करने लग जाते हैं।" ऐसी थी ऋषिवर की भावनाये। तथाकथित उद्देश्य पूर्ति हेतु पूर्णतया वह प्रयत्नशील भी रहे। आत्मत्याग की तो वह साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। किसी प्रकार का कोई प्रलोभन उन्हे अपने पाश मे बाॅधने की सामर्थ्य कैसे कर सकता था क्योकि वह "हिरण्मयेन पात्रेण सत्य-स्यापिहित मुखम्" के तत्त्व को पूर्णतया समझते थे और प्रभु की महती अनुकम्पा से यह आवरण सत्य धर्माय दृष्टये" उठ गया था, उन्हे तो सर्वत्र प्रकृति मे अपने प्रिय प्रभु की आभा, ज्योति दृष्टिगत होती थी और इस प्रभुज्योतिक का प्रकाश योगानुभूति से अनुभव कर वे स्वय प्रकाशवान् ज्योतिपुज हो उठे।

उनके ज्योतित जीवन से विभिन्न स्फुलिग सर्वत्र, विभिन्न विषयो पर अपनी आभा विकीर्ण करते प्रतीत होते हैं। वेदरूपी गाय का अमृतमय दुग्ध पानकर जहाॅ वह महातेजस्वी परिव्राट दयानन्द बने, वहाॅ उन्होने मृत्युञ्जयपद को प्राप्त भी किया और मृत्यु दृश्य भी गुरुदत्त जैसे नास्तिक के हृदय मे एक विद्युत सचार कर गया। उसने अन्तर मे प्रश्न किया कि इस जीवन की अवसानबेला मे मत्रोच्चारण करते करते इनके मुखडे पर मुस्कराहट क्यो है ? यह मुस्कराहट ही मानो गुरुदत्त के लिए समस्या बन गई। वह सोचता है कि कोढ़ी का जिसका शरीर गल रहा है जिसे किसी प्रकार का सुख नही और जो जेल खाने में कैद है, पूछा जाये कि इन सारी विपत्तियो और कष्टो से छूटने के लिए क्या मरना चाहते हो, तो मरने

का नाम सुनकर वह भी कानो पर हाथ रखता है। मृत्यु इतनो भयावनी है। वही मृत्यु इस महान् पुरुष के सम्मुख उपस्थित है परन्तु वह इस प्रकार मुस्करा रहा है, मानो किसी बिछुडे हुए से मिलाप हो गया। स्वामी जी की मुस्कुराहट क्या थी मानो वह विद्युत थी जो पंडित गुरुदत्त के हृदय मे गिरी और उसमे जो कुछ नास्तिकता का कूडा करकट जमा हो रहा था, उसको उस ज्ञान विद्युत धारा ने भस्म कर दिया। तत्पश्चात् गुरुदत्त एक उच्च श्रेणी का आस्तिक बन गया।

दीपमालिका के पर्व पर महर्षि का निर्वाण दिवस हमे अभिनव सन्देश देता है। एक कवि के अनुसार—

"बलिदान तुम्हारा अमर ऋषि,
नित नई प्रेरणा देता है।
नस नस मे बिजली सी चमका,
कर्त्तव्य की ओर बढ़ाता है।
तुम अमर हुए और भारत मे,
नव जीवन का सचार किया।
अपना सर्वस्व निछावर कर,
भारत का पुनरुद्धार किया।
युग युग के अत्याचारो से,
पीडित जननी की हरी पीर।
लो श्रद्धांजलि हे अमर वीर,

इस प्रकार—

"देकर हमको अमर दीप वह,
चला कभी फिर आने को।
हमे जलाये रखना है यह,
जग को आर्य बनाने को।"

यह 'अमर दीप' क्या है, एव 'इसे जलाये रखना है जग को आर्य बनाने को', हमारे समक्ष एक प्रश्न उपस्थित करता है। दीपमालिका के दिन सायकाल हम कोटि कोटि दीपो से अपने अपने गृहो को प्रज्वलित करेंगे। पर यह क्षणभगुर दीप कुछ प्रकाश कर तमिसा मे हमे छोड देगे। बुझ जायेगे यह भौतिक दीप, किन्तु जलता रहेगा वह देव दयानन्द का अमर ज्ञान प्रदीप। जो कितने ही निष्प्रभ दीपो को जलाने की क्षमता रखता है, जो युग-युगान्तर तक अनेकों हृदयों मे ज्ञान स्फुलिंग डालकर मार्ग निर्देशन करने मे सामर्थ्य सम्पन्न रहेगा।

आज का निर्वाण दिवस हमे यही अभिनव सन्देश देता है कि उस अमर दीप ज्योतिपुंज देवदयानन्द की ज्ञान-ज्योति से नव आभा, आलोक, प्रेरणा, प्राप्त करें। एव मगलमय, ज्योतिर्मय प्रभु से प्रार्थना करे, कि उस अनुपम ज्योतिपुंज देवदयानन्द की ज्ञान ज्योति से हमे एक नया स्फुलिंग, हमारे अन्तर मे नूतन जागृति और चेतना का सचार करा करके ही इस दीपमालिका को हमसे विदा दिलाइये।

महर्षि दयानन्द

—ओकारनाथ मिश्र 'स्वदेश'
लखीमपुर, खीरी

★

सेवक थे स्वामी थे
सखा थे शूर सेनापति,
साहसी स्वतन्त्र थे
'स्वदेश' सदाचारी थे।
दीन दुखी आरत के, मातृ-भूमि भारत के,
पावन परम पद पकज पुजारी थे॥
लाज हिन्द की थे सर—
ताज हिन्दुओ के रहे,
विजयी विशाल वीर—
वर व्रतधारी थे।
द्रवित दया से दयानिधि थे दयानन्द थे,
धन्य जननी के लाल बाल ब्रह्मचारी थे॥
प्रखर पराक्रमी
प्रवर महापण्डित थे
प्रचुर प्रभा से पूर्ण प्रबल प्रवाल थे।
भासमान भारत के भाग्य थे भरत थे कि,
भक्त भारती के
भव्य भावुक विशाल थे।
द्रवित दया से दयानिधि थे दयानन्द कि,
धारे शीश चारु चन्द्रिका को चन्द्रभाल थे।
वीर बलवान गुन—
वान थे महान् थे कि
आर्यमा समान आर्य माँ के आर्य-लाल थे॥

ऋषि जीवन के प्रभावशाली अन्तिम क्षण

[नास्तिक गुरुदत्त आस्तिक बन गये]

सन् १८८३ मे जैसे ही महर्षि दयानन्द की अस्वस्थता का समाचार लाहौर पहुचा, आर्य जनो मे चिता व्याप्त हो गयी। देश की अन्य बडी बडी आर्यसमाजो की भाति लाहौर आर्यसमाज की ओर से श्री ला० जीवन दास जी और श्री प० गुरुदत्त जी को प्रतिनिधि रूप मे स्वामी जी की सेवा मे अजमेर भेजा गया। यद्यपि गुरुदत्त जी का नम्बर इस सम्मान के लिये बहुत पीछे आता क्योंकि वे अभी १६ वर्ष के ही थे। परन्तु ज्ञान अनुभव, प्रभाव और लगन मे वे इतने बढे चढे थे कि वह सबके नेता गिने जाते थे। गुरुदत्त लाहौर आर्यसमाज के क्षेत्र मे छोटे दार्शनिक (Young Philosopher)और होनहार नवयुवक के नाम से प्रतिष्ठित थे।



श्री प० गुरुदत्त जी विद्यार्थी

गुरुदत्त अजमेर पहुचे। ऋषि के इलाज मे भाग लेते रहे। ऋषि का आराम न हुआ, न हुआ। सारा शरीर फुन्सियो से भर गया। शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, प्रत्येक साँस के साथ सख्त पीडा हो रही थी। इतना भारी कष्ट और मुह से 'आह' तक का न निकलना सचमुच आश्चर्य की बात थी। गुरुदत्त भी चकित थे। बडे ध्यान और कौतूहल पूर्ण दृष्टि से ऋषि की ओर देखते। समझ मे न आता था कि यह अद्भुत् महान व्यक्ति किस प्रकार का है? इतना कष्ट और फिर शान्त। ब्रह्मचर्य, योग और ईश्वर विश्वास का क्रियात्मक सन्देशवाहक अपना असर लाया। गुरुदत्त मे एक तीव्र परिवर्त्तन दृष्टिगोचर हुआ। जिस समय ऋषि प्राणायाम द्वारा अपने प्राणो को त्यागने वाले थे ठीक उस समय ऋषि के अन्तिम शब्द यह थे" "हे दयामय! हे सर्व शक्तिमान ईश्वर! तेरी यही इच्छा है! तेरी इच्छा पूर्ण हो। अ हा! तैंने अच्छी लीला की।" यह सुन गुरुदत्त मन्त्र मुग्ध से रह गये। उन पर जादू का सा असर हुआ। उन्हे जो चीज न्यूटन और बेकन के अध्ययन ने न दी, जो वस्तु वह डार्विन और स्पेन्सर से प्राप्त न कर सके, वह वस्तु उन्हे ऋषि दयानन्द की मृत्यु ने प्रदान की।

गुरुदत्त ने देखा कि एक ईश्वर विश्वासी मनुष्य किस शान्ति के साथ जीवन लीला समाप्त कर सकता है, और मृत्यु मे भी ईश्वर की महिमा को देख सकता है। महर्षि के इस ईश्वर विश्वास का गुरुदत्त पर अमिट प्रभाव पडा। गुरुदत्त भी ईश्वर विश्वास के रग मे रग गये, यह रग अमिट था। गुरुदत्त चले थे ऋषि का रोग नाश करने पर इसके विपरीत ऋषि ने गुरुदत्त के सशय रोग का बीज नाश कर दिया। जो गुरुदत्त सशयशील वृत्ति और नास्तिकता के भावो के साथ अजमेर पहुचे, वे अजमेर से पक्के ईश्वर विश्वासी आस्तिक बन कर लौटे।



वैदिक-युग में—
पशु-वलि प्रथा नहीं थी



(गौतम बुद्ध की एक साक्षी)

[ले०—श्री प० गंगाप्रसाद जी एम० ए०, रि० चीफ जज, भू० पू० प्रधान सार्वदेशिक सभा]

महात्मा गौतम बुद्ध उस युग मे हुए जब इस देश मे यज्ञों मे हिंसा की जाती थी। उन्होंने अपनी शिक्षाओं के द्वारा अहिंसा का प्रचार किया। अहिंसा का प्रभाव इतना अधिक हुआ कि पशुबलि बिल्कुल बन्द हो गई, पर इसी प्रभाव मे यज्ञ पद्धति भी समाप्त हो गई। वास्तव मे गौतम बुद्ध का यज्ञों से कोई विरोध नही था, उनका विरोध तो यज्ञो मे होने वाली हिंसा से था। उनका यह हिंसा विरोध उचित था। महात्मा गौतम बुद्ध ने स्वय यह स्वीकार किया है कि वैदिक समय मे गौ का वध या पशुवलि नही होती थी, और इस प्रकार उन्होंने यज्ञो मे पशु वलि का निराकरण कर वैदिक भावना को ही पुनर्स्थापित किया था।

आज प्राय गौतम बुद्ध के यत्नो मे पशुबलि निरोध सम्बन्धी निर्देशों का आधार मान कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है, कि गौतम बुद्ध से पहले यज्ञों मे जो हिंसा की जाती थी, वह वेदानुकूल थी और इस प्रकार वैदिक युग मे यज्ञो मे हिंसा सिद्ध होती है, परन्तु यह मान्यता गौतम बुद्ध की भावना के विरुद्ध है। गौतम बुद्ध यह स्वय कहते थे कि वैदिक समय मे गौवध या पशुबलि नही होती थी। गौतम बुद्ध के इस कथन की साक्षी मे ब्राह्मण धर्म्मीय सुत्त नामक ग्रन्थ में एक कथा आती है, जिसका उल्लेख बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विद्वान् एव लेखक श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपनी 'बुद्ध चर्या' नामक पुस्तक मे किया है कथा इस प्रकार है—

श्रावस्ती मे पॉच सौ शिक्षित ब्राह्मणो का समूह महात्मा बुद्ध के पास गया, और पूछा कि वैदिक युग के ब्राह्मण गौ वध करते थे या नही? महात्मा बुद्ध ने वैदिक युग के ब्राह्मणो का बडा सुन्दर चित्र दिया। कुछ भाग इस प्रकार है, कथा के शब्दो मे बुद्ध ने कहा—

पुराने ऋषि सयमी व तपस्वी होते थे। वे स्वाध्याय धन वाले होते थे। वे ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते थे। वे तदुल, घी, तेल आदि का यज्ञ करते थे। जब तक लोक मे रहे प्रजा सुखी रही। शनै शनै राजाओं का सम्पत्ति सकलन, स्त्रिया, उत्तम घोडे, जुडे रथ, बडे मकान आदि देखकर उनमे उलटपन आ गया, तब उन्होंने लाभ किया।

तब वे मत्रो को रचकर इक्ष्वाकु के पास गये तब ब्राह्मणों के चिताये जाने पर राजा ने अश्वमेध, पुरुषमेध, बाजमेध यज्ञ किया और एक एक यज्ञ करके ब्राह्मणो का धन दिया। लोभ मे पडकर उन ब्राह्मणों की तृष्णा बढी, वे मत्र रचकर फिर इक्ष्वाकु के पास गये, तब ब्राह्मणों से प्रेरित होकर रथप्रभ राजा ने अनेक सौ व हजार गौ यज्ञ मे हनन की, जो न पैर मारती थी, न किसी अग से मारती थीं, तथा जो घडे भर दूध देती थी, उन्हे सीग पकड कर शस्त्र से राजा ने मारा। तब देवता, पितर, इन्द्र असुर, राक्षस चिल्ला उठे कि अधर्म हुआ, जो गाय के ऊपर शस्त्र उठा।

ऐसा सुनकर उन सब ब्राह्मणो ने बुद्ध का शिष्य होना स्वीकार किया।

महात्मा बुद्ध की उपयुक्त साक्षी, कि वैदिक युग मे गौ वध नही होता था, पीछे के ब्राह्मणों ने अपने लोभ से वैदिक साहित्य मे मत्र गढ़कर मिला दिये जिनसे गौ वध होने लगा, बडे महत्व की है। सभव है कि शतपथ व ऐतरेय ब्राह्मणो मे जो पशुबलि का

(शेष पृष्ठ २८ पर)



ज्योति बुझ न सकेगी



[ले०—श्री प० रघुवीरसिंह जी शास्त्री, मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली]

गहन निराशा निशा के घने आवरण के मध्य, सिसकती, बिलखती शान्ति सत्य की छाया, आज केवल एक प्रश्न चिह्न लेकर समस्त मानव जाति के सम्मुख उपस्थित है कि शाश्वत आनन्द की प्राप्ति का जो दीप्त मार्ग, देव दयानन्द ने प्राणों की आहुति देकर, ज्योतित किया था, उस पथ पर भावी मानव सतान चल पायेगी या नहीं ? आशा की वह स्वर्णिम दीप पक्तियाँ जिनमें दयानन्द ने प्राणों की आभा से जीवन डाला था, हम उस जीवन का भी जीवित रख पायेंगे या नहीं ?

किसमे भूला है कि वर्त्तमान युग निर्माण मे शाति का सत्य का, आनन्द और ज्ञान का प्रशस्त पथ अकेले दयानन्द ने दिखाया था। उस महा मानव ने जाति पाति के दुर्गम गढो को गिरा कर, सकीर्णता की थोथी दीवारे मिटाकर, अज्ञान, अधकार के चक्र मे भटकती करोडो आत्माओ को उवार कर पावन प्रेम की एक ऐसी अमृत गगा प्रवाहित की थी जिससे धरती के समस्त पाप ताप, कष्ट, क्लेश नष्ट हो, युग का अभिनव अभ्युदय आरम्भ हुआ था।

पश्चिम के छिपने सूर्य को उदय का प्रतीक मान जब भौतिकवादी विनाश-मार्ग पर सारा देश तीव्र गति से दौडने पर तत्पर था तब सत्य का उद्घोषक देव दयानन्द ही था जिसने हमारे नेत्र खोल प्रात के उगते हुए सूर्य की लाली से प्रखर अध्यात्मवाद की मजुल किरणो से हमारे अन्तर को पूरित कर, उसमे जीवन की शाति की सच्ची आधारशिला स्थापित की थी। उस महर्षि ने राह दिखायी, ज्ञान दिया, प्रेरणा भरी और दीपमालिका के दिन जब अगणित दीप भारत-वसुन्धरा पर टिमटिमा रहे थे विदा ली। उनकी विदाई बलिदान का वह गौरवपूर्ण अध्याय है जिसकी तुलना विश्व इतिहास के पृष्ठो के खोजने से भी न मिलेगी। परन्तु आज विचारणीय यह है कि क्या उनके बलिदान की पावन स्मृति मे हम उनके अनुयायी उन्हे स्मरण करने का अधिकार भी रखते है या नही ?

क्या अपने महान् गुरु विश्व उन्नायक देव दयानन्द के जीवन के अन्तिम चरणो की स्मृति हमारे हृदयो मे उनके द्वारा आरम्भ किये महान् लक्ष्य को पूर्ण करने की भावना भर सकेगी, या नहीं ?

उठाकर देखिये चारो ओर अपनी दृष्टि, प्रतीत होगा कि समस्त धरती का बल आज दयानन्द के आदेशो को मिटाने चला आ रहा है। भौतिक वाद के प्रवाह का अनधड, जाति पाँति की लहरे सिर उठाये घूम घुमडकर बढती हुई आज हमे, दयानन्द के अनुयायियो को चुनौती दे रही है।

किन्तु सोचिये क्या कर रहे हैं आप स्थिति का सामना करने के लिए ? सच्चे हृदय से विचार तो कीजिये।

इस दीपमाला के दिन समस्त दयानन्द के अनुयायियो को अपने हृदय मन्दिर और समाज मन्दिर मे बैठकर सोचना होगा कि वे चाहते क्या है ? महर्षि के आदर्शों का जीवन या उनकी समाप्ति !

अब वह समय आ गया है जब हमे अपने कर्त्तव्य का निश्चय करना ही होगा ! देरी या उदासी से कार्य चलेगा नहीं। मार्ग केवल दो हैं। एक वह जिसे दयानन्द ने दिखाया था, दूसरा वह जिस पर आज सारा ससार भागा जा रहा है। इसलिए अविलम्ब निश्चय कीजिये कि आप जीवन चाहते है या मृत्यु ? विजय वरण करना या हार से ही प्यार करने की ठान ली है ?

सोचिये अपना उत्तर दायित्व समझिये और सकल्प कीजिए कि हम दयानन्द के शिष्य किसी भी

मूल्य पर ऋषि के महान् लक्ष्य को अधूरा न रहने देंगे और जो निराशा, प्रमाद, त्रुटिया हम मे आ गई हैं उनकी दीपमाला के दिन यज्ञ मे आहुति दे, नये उत्साह एव विश्वास के साथ भव्यभावी निर्माण मे लगते हुए हम सभी सच्चे हृदय एव ऊँचे स्वर से घोषणा करे कि 'दयानन्द की ज्योति कभी बुझ न सकेगी। चाहे जो भी क्यो न हो, जो उसे मिटाने का यत्न करेगा, उसे स्वय समाप्त होना पडेगा।

धरती को स्वर्ग बनाने के लिए सत्य शान्ति और न्याय की विमल पताका जन मन पर लहराने के लिए विजय दयानन्द के दिव्य सदेश की होगी।

हमे विश्वास है कि सम्पूर्ण आर्य हृदय मे नया विश्वास भर, आगे निरतर आगे बढने का निश्चय कर कार्य क्षेत्र मे अवतरित होगे। यही ऋषि के प्रति हमारा सच्चा शिष्यत्व होगा। ———

महर्षि के कार्य

आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया॥
डाला सुधार वारि, बढी बेल मेल की।
देखो समाज-फूल फबीले खिला गया॥ आनन्द०
काटे कराल जाल अविद्या अधर्म के।
विद्या-वधू को धर्म-धनी से मिला गया॥ आनन्द०
खोली कहाँ न पोल ढके ढोंग ढोल की।
ससार के कुपन्थ मतो को हिला गया॥ आनन्द०
'शङ्कर' दिया बुझाय दिवाली का देह का।
कैवल्य के विशाल वदन मे बिला गया॥ आनन्द०

—श्री नाथूराम शकर जी शर्मा, 'शकर'

हर घर में पूरा दवाखाना मुफ्त

वैदिक युग में पशु-वलि प्रथा नहीं थी

(पृष्ठ २६ का शेष)

वर्णन है, वह इसी प्रकार के ब्राह्मणो की करतूत हो। बहुत से आर्यबन्धु इस दोष को वाम मार्गियो पर लगाते हैं। जो भी तथ्य हो यह खोज का विषय है पर गौतम बुद्ध की उपर्युक्त साक्षी से यह सिद्ध और स्पष्ट है कि वैदिक युग मे गौ वध नहीं होता था। यह साक्षी आर्य समाज की मान्यताओ के अनुरूप है और वैदिक युग की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रबल प्रमाण है। इस प्रमाण द्वारा उन आरोपो पर आर्य समाज का पक्ष विजय पाने मे समर्थ है जिनमे प्राचीन वैदिक युग को दोषपूर्ण एव निम्न कोटि का सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है।

हमे इस बात को स्वीकार करने मे कोई हिच किचाहट नही होनी चाहिए कि प्राचीन भारत म बुद्ध के समय और उनसे पूर्व भी बहुत सी बुराइया आ गई थी, जिनमे यज्ञो मे हिसा और गौवध की दूषित प्रथाये भी थीं।

जहा गौतम बुद्ध ने अपने प्रचार द्वारा उपर्युक्त बुराइयो को दूर करने का सफल प्रयास किया वहा उनके प्रचार ने प्राचीन स्वरूप के प्रति सर्वथा उपेक्षा भी उत्पन्न कर दी। महर्षि दयानन्द को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होने अपने पाखड खण्डन एव अवैदिकता विरोधी आन्दोलन द्वारा वैदिक युग की मान्यताओ को शुद्ध स्वरूप मे प्रचलित किया। यज्ञो मे हिसा नही होनी चाहिए, यह ठीक है, पर इसका यह अर्थ नही कि जीवन से यज्ञ पद्धति ही समाप्त कर दी जाय। इस प्रकार हम देखते है कि गौतम बुद्ध जिस सच्चाई को जानते और मानते हुए भी व्यावहारिक रूप न दे सके, महर्षि दयानन्द ने उसके लिए पूर्ण प्रयत्न किया। इस युग मे महर्षि दयानन्द की प्रेरणा से ही ईश्वर के नाम पर होने वाली पशुवलि समाप्त हो सकी है, और जो कुछ शेष है उसके समाप्त होने की आशा है। इस उपकार के लिए प्रत्येक भारतीय महर्षि के प्रति सदैव कृतज्ञ रहेगा। हम भी वैदिक युग की मान्यताओ को प्रसारित एव प्रचारित करने मे क्रियात्मक योगदान दे सके, यह हमारी महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी। ———



वंगाल की क्रान्तिकारी विचारधारा पर—
महर्षि दयानन्द का प्रभाव पड़ा था



[ले०—श्री प० दीन बन्धु जी शास्त्री, आर्यसमाज कलकत्ता]

१८७० के प्रयाग कुम्भ मे बगाल के श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामी दयानन्द जी को बगाल आने का निमन्त्रण दिया था। उस समय बगाल मे जो सामाजिक सुधार तथा धार्मिक आन्दोलन चल रहे थे, उन सबकी महर्षि दयानन्द के विचारों म विशेष रुचि थी। १८७२ के दिसम्बर मास मे स्वामी जी कलकत्ता पहुचे। कलकत्ता के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उनका शानदार स्वागत किया।

म० देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने दोनो पुत्रो, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर और हेमेन्द्रनाथ ठाकुर को स्वामी जी की सेवा मे अर्पण कर छोडा था। कविवर रवीन्द्र जी इस सारे वातावरण की स्मृति रखते थे, महर्षि दयानन्द के उन्होंने चरण स्पर्श किये थे। महर्षि को उन्होंने वेद मन्त्र सुनाये थे। महर्षि ने उन्हे यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया था। श्री केशवचन्द्र सेन से स्वामी जी को बहुत स्नेह था, पर खेद भी था कि केशवचन्द्र सेन ईसाइयत की ओर बहुत झुके हुए थे और सस्कृतज्ञ नहीं थे। हाँ, केशवचन्द्र सेन जी की दो बातो को वस्त्रधारण करना, और हिन्दी मे भाषण देना, स्वामी जी ने प्रेम से मानकर, तदनुसार आचरण करना आरम्भ कर दिया था। स्मरण रहे कि राजा-राममोहन राय और केशवचन्द्र सेन दोनो सुधारको ने अपने अपने समय मे अपने अपने विचारो को हिन्दी मे प्रकाशित किया था। अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प० रामचन्द्र शुक्ल ने ४२६ और ४२७ पृष्ठ पर लिखा है कि राजाराम मोहनराय ने वेदान्त सूत्रो के भाष्य का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया और 'बगदूत' नामक सवादपत्र भी हिन्दी मे निकाला। वास्तव मे भारत की एकता स्थापित करने मे उत्तर प्रदेश की 'शौरसेनी प्राकृत' पिछले डेढ़, दो हजार वर्ष



श्री प०दीनबन्धु जी शास्त्री

से अखिल भारतीय भाषा का काम करती आई है। हिन्दी का आन्दोलन कोई नया नही है वह चाहे प्राकृत रूप मे हो, या अपभ्र श मे, या हिन्दी मे, उर्दू मे या हिन्दुस्तानी रूप मे, ब्रजभाषा या खडी बोली के रूप मे। जो कोई भी अखिल भारतीय दृष्टि रखेगा वह इसी बोली का आश्रय लेगा। ईसाई, मुसलमान, अग्रेज, सरदार, इतर प्राचीन लोग सब अपनी-अपनी बोली के बाद हिन्दी से ही परिचय पाना अनिवार्य समझते रहे है। यह मध्यदेश भारत का हृदय है और चिरकाल से इसका स्वामी भारत का सम्राट बनता रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् सस्कृतज्ञ, बग भाषा गद्यशैली प्रवर्त्तक, समाज सुधारक, दयालु और सुशील ईश्वर-

चन्द्र विद्यासागर और स्वामी दयानन्द जी परस्पर प्रेमाबद्ध थे, परस्पर बडामान प्रदर्शन करते थे। दयानन्द जी के कहने पर कि आप वैदिक धर्म प्रचार कीजिए, ईश्वरचन्द्र जी ने कहा था इस शरीर से तो न होगा अगले जन्म मे देखा जायगा। बग गद्य के लेखक और पत्रकार अक्षय कुमार दत्त जी स्वामी से समय समय पर अलाप करते थे। योगी अरविन्द घोष जी के नाना राजनारायण बसु स्वामी जी के बडे भक्त थे, और प्राय उनसे चर्चा करते थे। श्री अरविन्द घोष की माता अपने पितामह से स्वामी जी के सम्मान के लिए क्या क्या भाव लाई होगी, उनकी उहा कठिन नही। श्री अरविन्द, दयानन्द, बकिम चन्द्र और लोकमान्य तिलक के कार्यो की भूरि भूरि स्तुति करते थे, और प्रत्यक्ष हा स्वय भी प्रभावित थे। भू देव मुखोपाध्याय अपने समय के शिक्षा शास्त्री थे और बिहार मे हिन्दी की प्रवर्त्तना इन्होने ही की थी। स्वामी जी बहुत से सुधारको और विद्वानो से मिलकर कलकत्ते के सस्कृत कालेज मे वेद शिक्षा योजना पर विचार करते रहे। राजा राजेन्द्रलाल मित्र अपने समय के बडे विद्वान् थे। प्रसिद्ध आई० सी० एस०, विद्वान् अनुवादक, प्रबन्ध कुशल श्री रमेशचन्द्र दत्त भी स्वामी जी के साथ इतिहास, वेद आदि पर आलाचना करते रहे। डा० महेन्द्रलाल सरकार अपने समय के विज्ञान के अन्वेषक थ। प्रतापचन्द्र मजूमदार ब्रह्म समाज के देश देशान्तरो मे लब्ध। प्रतिष्ठ उपदेष्टा थे। ये भी स्वामी जी से मिलते रहे। कविराज गगाधर चरक के टीकाकार थे। लालबिहारी देव प्रसिद्ध पादरी और वर्धमान के महराजा वनविहारी कपूर भी चर्चा करते रहे। हेमचन्द्र चक्रवर्ती तो शिष्य रूप से साथ रहकर स्वामी जी से चिरकाल तक योग और उपनिषद् का अभ्यास करते रहे। इसी प्रकार मन्मन्थनाथ चौधरी भी। ताराचरण तर्करत्न और महेशचन्द्र विद्यारत्न से तो स्वामी जी का शास्त्रार्थ ही हुआ। ताराचरण को सबने लज्जित किया। स्वामी जी मुर्शिदाबाद और वर्धमान तक गये। इन दिनो समय निकाल कर स्वामी जी ग्रन्थ रचना भी करते रहे। नाना स्थानो पर उपदेश भी देते थे। इस दीर्घ यात्रा मे कलकत्ता और बगाल के मुख्य मुख्य व्यक्ति सम्पर्क मे आये। श्री रामकृष्ण जी परमहस से भी स्वामी जी का अनेक बार साक्षात्कार हुआ। सत्यान्वेषी जानते है कि पहले पहल रामकृष्ण जी परम हस दयानन्द जी से प्रभावित थे। यदि कोई पूरी खोज करे तो इन पाच मास के कार्य की स्वय एक छोटी सी पुस्तक लिखी जा सकती है। बगाल के इन विशिष्ट व्यक्तियो के अपने लेखो, पुस्तको, परस्पर सवादो, तत्कालीन समाचार पत्रो, अग्रेजो की गाष्ठियो, गवर्मन्ट के विवरणो वाइसराय के सेक्रेटरी आफ स्टेट के प्रति भेजे हुए गुप्त डिसपेचो तथा पडितो के पटनो आदि मे से स्वामी दयानन्द जी के इस कार्यकाल के विषय मे प्रभूत सामग्री एकत्र की जा सकती है। कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष श्री उमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय जी स्वामी जी से भेट करते रहे थे। महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के साथ और उसके सर्गियो के साथ स्वामा जी का घना सम्पर्क था। स्वामी जी के कहने से श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने बोलपुर विश्वभारती बनने से पहले शाति निकेतन मे प्रतिदिन होम करने के लिए एक वेदपाठी श्रोत्रिय नियत कर रखा था। वास्तविक रूप मे आदि ब्रह्म समाज के सस्थापक श्री देवेन्द्र ठाकुर तथा उनके परिवार और आर्य समाज के सस्थापक स्वामी दयानन्द जी के विचारो म बहुत समानता थी। स्मरण रहे, स्वामी दयानन्द जी के वैदिक पाठशाला खोलने की प्रेरणा देवेन्द्र जी से करते रहे और विश्वभारती शाति निकेतन का मूल नाम ब्रह्मचर्य आश्रम था। भारत के विषम काल मे भारत के सुधारको के साथ परिचय और विचार करके स्वामी दयानन्द जी ने ऐसे ऐसे विशेष व्यक्तियो को प्रभावित किया, जिन व्यक्तियो ने भारत के अनेक विध आन्दोलनो मे प्रमुख भाग लिया। भारत की वर्त्तमान स्वतन्त्रता मे जिन आन्दोलनो और कार्यकर्ताओ ने भाग लिया उन पर स्वामी जी का प्रभाव पाठक अच्छी प्रकार अनुभव कर सकते है। (आदि ब्राह्म समाज के उपदेशक श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती की डायरी "दयानन्द प्रसग" के आधार पर)।

विश्व को एक बनाने वाले आर्यजन एक बनें

[ले०—श्री रामबहादुर जी मुख्तार पूरनपुर अधिष्ठाता शिक्षा विभाग आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश]

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने जीवन काल में एक नारा लगाया था "संसार के विद्वानों एक हो जाओ" दूसरा प्रयत्न किया था कि "संसार में प्रचलित जितने धर्म हैं, उनमें जो सर्वमान्य सिद्धान्त हैं, उनको एक जगह छांट लिया जाय। तदनुसार धार्मिक सिद्धान्तों का सब समान रूप से पालन करें" दोनों बातों में एक ही भेद छिपा था और वह था, समस्त संसार को एक सूत्र में बांधना। सभी मत मतान्तर रूपी मणियों को एक धागे में पिरोना और विभिन्नता मिटाकर एक रूपता स्थापित करना। जिससे वास्तविक सुख, शान्ति तथा प्रेम का चहुं ओर साम्राज्य हो। परन्तु उन्हें इन दोनों प्रयत्नों में सफलता नहीं मिली। क्यों? व्यक्तिगत स्वार्थ प्रतिष्ठता, मान व गुरुडम का धक्का पहुंचता था।



श्री रामबहादुर जी मुख्तार

आज कांग्रेस जैसी महान् राजनीतिक संस्था में जो छीछालेदर देखने में आ रही है, उसका एकमात्र कारण व्यक्तिगत स्वार्थ, सत्ता का प्रलोभन तथा आपसी ईर्षाद्वेष ही तो है।

आज देश में जो बेचैनी, भ्रष्टाचार, निराशा, भय आदि बढते जा रहे हैं इनका कारण यही तो है कि प्रत्येक अपने ही व्यक्तित्व को बढाने के लिये अनुचित उपायों को काम में ला रहा है। परिणाम स्वरूप अपूज्यों का मान और पूज्यों का अपमान बढ रहा है।

यदि संसार के विद्वान् एक हो जाते तो क्यों चीन भारत की सीमा का अतिक्रमण करता। क्यों पाकिस्तान बनता और फिर क्यों वह काश्मीर के एक भाग को दबाता, क्यों आईजन होवर को जापान में पदार्पण करने से वहाँ की जनता रोकती, क्यों अमरीका में ख्रुश्चेव का जाना वहाँ की जनता नापसन्द करती, क्यों एक देश दूसरे को सन्देह व शंका की दृष्टि से देखे?

यदि समस्त धर्मों के सर्वमान्य सिद्धान्तों का एकत्रीकरण होकर समान रूपेण उनका अवलम्बन स्वीकार कर लिया जाता तो क्या धर्मों के नाम पर होने वाली लड़ाइयां सदा के लिये समाप्त न हो जाती?

यदि यह सब कुछ हो जाता तब तो वास्तव में बहुत बड़ा कार्य हो जाता; हमें इस एकता के लिये तो कार्य करना ही है पर उससे पहले आज आर्य समाज के सम्बन्ध में एक इसी प्रकार के नारे की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है और वह है "आर्यसमाज के कर्णधार एक हो जायें।"

आर्य समाज ने सारे विश्व को आर्य बनाने की प्रतिज्ञा ली हुई है। समस्त ससार मे प्रेम की गगा बहाने का पावन व्रत लिया हुआ है। आर्य समाज के अपने सिद्धान्त एक है, जो सार्वभौम है। और विश्व-कल्याणकारी हैं। इन्ही सिद्धान्तो को लेकर उसने जन्म लिया और उन्ही के प्रचार व प्रसार के लिये उसके सारे प्रयत्न व उद्योग है। परन्तु फिर भी विभिन्नता अन्दर ही अन्दर पनप रही है, और कभी कभी प्रकट रूप भी धारण कर लेती है। समान सिद्धान्तो के मानने वालो मे यह प्रतिकूलता कैसी, विश्व मे शान्ति स्थापित करने वालो मे यह अशान्ति कैसी ? इसके दो कारण हो सकते है (१) कार्य प्रणाली के सम्बन्ध मे विचारो की भिन्नता। (२) अधिकार लिप्सा।

पहला कारण अवगुण नहीं है। यह तो मनुष्य स्वभाव के अनुकूल ही है, परन्तु बुद्धिमानो का काम है कि एक स्थान पर बैठ कर प्रेम पूर्वक वाद विवाद करके देश धर्म तथा जाति एव ससार का हित सम्मुख रखकर बहुमत से जिस निश्चय पर पहुँचे, उस पर एक मना होकर प्राण-पण से जुट जावे। आर्यसमाज के इतिहास मे ऐसे अनेक उदाहरण है कि जब इस प्रकार कार्य किया गया। विजय श्री ने चरण चूमे। इसी निमित्त तो आर्य समाज की स्थान स्थान पर समितियाँ हैं, उप प्रतिनिधि सभाये और प्रदेशीय सभाये है तथा केन्द्र मे सार्वदेशिक सभा है। इस का विधान प्रजातन्त्रात्मक है। विचारो की विभिन्नता को एक रूपता मे परिवर्तित करने के लिए समुचित साधन है। परन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि हम को कही पथ भ्रष्ट होने लगे हैं। और विघटन की अनेकता की भावना हम मे बढ़ रही है। क्या आर्यसमाज के लिए यह लज्जास्पद नहीं है। क्या आर्य समाज के कर्णधार आपसी मनमुटाव मिटाने के लिए एक स्थान पर बैठकर प्रेम पूर्वक वार्तालाप द्वारा किसी निश्चय पर पहुचने मे असमर्थ हो गये है। मै समझता हूँ कि यह कोई कठिन कार्य नही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि समय रहते हम चेत जाये और हम नारा लगाये "आर्य समाज के कर्णधार एक हो जाये"। ऋषि निर्वाणोत्सव पर यदि ऋषि भक्त सच्चे हृदय से ऋषि को श्रद्धाजलि अर्पित करना चाहते हैं,तो उनको श्रद्धाजलि यही है कि सब एक मना होकर आपस मे बैठकर विवादो को निपटा ले।

दूसरा कारण—अधिकार लिप्सा—मेरी सम्मिति मे अवगुण है। यदि मनोमालिन्य पद लिप्सा के लिए है तो इसका निराकरण केवल व्यक्तिगत आत्म निरीक्षण से हो सकता है। ऋषि निर्वाणोत्सव पर प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह ईश्वर को साक्षी करके अपने सम्बन्ध मे विचार करे कि जो भी कोई पारस्परिक विवाद होते है, या है। इसके पीछे अपने लिए कोई पद प्राप्त करना तो नही है अथवा किसी को पद से च्युत करने की अभिलाषा तो नहीं है या वह अनुचित रूप से पद पर आरूढ तो नही है ? यदि उत्तर हाँ मे मिले तो प्रत्येक अपने पर निमन्त्रण करे, और जो पदाधिकारी हैं उन्हे यथा सम्भव पूरा सहयोग दे। ताकि समाज का कार्य आगे बढे और यदि स्वयम् किसी पद पर हैं तो उनके कर्त्तव्यो के पालन करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दें। जो पदाधिकारी नहीं है उनका पूरा सम्मान करते हुए सहयोग प्राप्त करने की भावना रखे। प्रत्येक व्यक्ति इस सुनहरे नियम को अंगीकार करे कि अपने अवगुण देखे व अन्यो के सद्गुणो को निहारे, ता बेडा पार है।

अत आइये ! आज ऋषि निर्वाणोत्सव पर जब कि दीपावली के कारण घरों को स्वच्छ किया जाता है, हम ऋषि से ज्योति प्राप्त कर अपने मन मन्दिरो को शुद्ध और पवित्र बनाये। जो उल्टे रास्ते पर चले गये हैं वे पुन सीधे मार्ग पर आ जाये। जो शक्ति विघटन के कार्य मे लग रही है वह सगठन व प्रेम की धारा प्रवाहित करने मे लगे। यही ऋषि के प्रति प्रत्येक आर्य की सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

ऋषि दयानन्द का आर्ष दर्शन

[लेखक—श्री विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०,
सचालक, विश्वेश्वरानन्द वदिक शोध सस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर]

मनुष्य-मनुष्य मे भेद क्या है ? नदी तट पर दो व्यक्ति खडे हैं। एक इतना ही लाभ उठाता है कि नदी में नहाता अथवा कपडे धो लेता है। उसके दूसरे साथी की मानसिक तरगे शीतल समीर के सपर्क से उठती हुई निर्मल नीर की तरगो के साथ कल्लोल करने लगती है, उसे जल-प्रवाह की प्रथमावस्था, वह पर्वतीय दृश्य, वह सुन्दर वन और वह विविध वन मृगो का इधर-उधर कूदना-फादना—ये सब उस सूक्ष्म दृष्टि के सम्मुख से मानो होकर जा रहा है। उनका मन उधर लग चुका है, आतरिक नेत्र खुल गये है, भूत वर्त्तमान की और वर्त्तमान भविष्य की गोद मे खेलता चला जा रहा है।

२—पूर्णचन्द्र की सुहावनी, चादनी और घटाटोप अन्धकार मयी अमावस्या की रात्रि मे भिन्न भिन्न व्यक्तियो को भिन्न भिन्न भावो का भान होता है। तारो भरा गगनतल ज्योतिर्विद्या विशारदो के सामने विलक्षण ही रूप धारण किये होता है। यह सारी बात क्या है ? सर्व धर्म-कर्म के परम मर्मो की प्रकाशक परम पवित्र वेदवाणी क्या सुन्दर तथा यथार्थ रूप मे इस भेद के वास्तविक भेद को खोलती है।

"अक्षण्वन्तः कर्णवन्त. सखायो मनोजवेष्वसमा-बभूवु" ऋ १०,७१,७ आकार, रूप और रग के भेद मनुष्यो के वास्तविक भेदक नहीं, वरन् मन के वेग से ही मनुष्यो के तारतम्य का अन्तिम निश्चय हो सकता है। आखो को देखकर और कानो से सुनकर जिन व्यक्तियो के हृदय पटल मे विशेष प्रतिभा मूलक भावो का सचार नहीं होता वे साधारण कोटि मे पशुवृत्ति से जीवन निर्वाह करते हैं। परन्तु जो बाहिर के आवरण का छेदन कर वस्तु के वस्तुत्व के दर्शन की लालसा से उत्तेजित हो, निरन्तर अन्तर्मुख रह सकते हैं, वे महा पुरुष सर्व प्रकार से पूज्य और श्रेष्ठ होते हैं। जिस ओर वे अपनी मनोवृत्ति को प्रेरित करते हैं, उसी ओर अप्रतिहत रूप से उनका मार्ग खुलता हुआ चला जाता है। वे सार्वत्रिक प्रेम से परिपूर्ण होकर उन्हे धारण करते और मनुष्य मात्र के लिए प्रकाशित करते हैं।

३—ये ऋषि कहलाते हैं। उन्होने धर्म को प्रत्यक्ष कर लिया होता है। ऋषि बनने के लिए सूक्ष्म बुद्धि और अन्तर्वृत्ति की अपेक्षा है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ऋषि सर्वथा नूतन तत्व का आविष्कर्त्ता ही हो। वस्तुत ससार मे ऐसी नवीन घटना है भी कौन सी ? धार्मिक विज्ञान तथा सामाजिक सभ्यता का विकास उत्तरोत्तर नही वरन् चक्र क्रम से ऊपर और नीचे जाने वाला है। अत जो व्यक्ति लुप्त हुई अथवा नूतन सर्वहित कारक, सत्य, विज्ञानमय उन्नति की विधियो का प्रकाश करता है, वह ऋषि है। ऋषि होने के लिए शाब्दिक परिवर्त्तन अथवा क्वाचित्क त्रुटियो से कोई अन्तर नहीं पड सकता। इसके साथ ही ऋषि होना निर्भ्रान्त होना नहीं है। वह अवस्था केवल सर्वज्ञ ब्रह्म को ही प्राप्त है। मानुष दर्शन तथा आर्ष दर्शन मे केवल तारतम्य का भेद है। दर्शन की सत्यता को व्यवहार मे लाने से ही पता लगता है। यदि ससार उस दर्शन से उन्नत होता है, तो वह सत्य दर्शन है, अन्यथा भ्रमयुक्त है।

४—इन ऊपर के अर्थो मे श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज सच्चे ऋषि हुए हैं। आरम्भ से ही उनकी बुद्धि सूक्ष्मता की ओर झुकी हुई थी। मूषिक क्रीडा मन्दिरो मे बहुतो ने कई बार देखी होगी, परन्तु उसका यथार्थ प्रभाव मूल शकर के प्रत्यग्र, कोमल, हृदय-अकुर पर ही पडा। मृत्यु किस घर ने नही हुई और कौन ऐसा सौभाग्यवान् है, जिसके देखते देखते उसका

कोई न कोई प्रेम-पात्र आन की आन में न चल बसा हो। परन्तु जो स्थिर परिणाम पुञ्ज स्वामी दयानन्द को इस जीवन तत्त्व और मृत्यु रहस्य की गवेषणा से उपलब्ध हुआ और जो शाश्वत स्वभाव और कठिन वैराग्य का आनन्द उन्होंने पाया, वह ऋषियों के ही भाग्य में आता है।

५—उन्होंने सर्वांगपूर्ण, सर्वोन्नतिमूलक, सर्वमंगलप्रद, सर्व वैषम्य विनाशक, अनादिधर्म के दर्शन किए। उनकी विद्या और तपस्या फल लाई। परन्तु आदित्यवत् प्रकाशमान होते हुए भी वह सदा यही कहते रहे कि मैं कोई नवीन, अघटित अपूर्वबात नहीं कहता। जब से वेद विद्या का लोप-सा हो गया था, संसार में नाना प्रकार के मतों के प्रचार के कारण वास्तविक धर्म के स्वरूप को समझना कठिन हो गया था। कोई संसार का भ्रम और मिथ्या बतलाता, कोई संसार को ही सर्वश्रेष्ठ समझता, कोई कर्म पर बल देता, तो कोई उसे जड़ से उड़ाना चाहता था। कोई देवी देवताओं की पूजा सिखाता और कोई मनुष्यों के ही सामने मस्तक घिसवाता था। कोई बुद्धि का उपासक और कोई बुद्धि का शत्रु था। इस व्याकुलता के काल में आप दयानन्द ने 'ऋषिपु प्रविष्टाम्' (ऋ० १०, ७१, ३) अर्थात् ऋषियों ने जिन तत्त्वों का दर्शन किया था, उन्हीं का पुन साक्षात् किया और उसके प्रचार के लिए वे कटिबद्ध हुए।

६—लोग कहते हैं, वेद सब ग्रन्थों से अति प्राचीन ग्रन्थ है। अत, आधुनिक साहित्य के सामने उसकी क्या गणना हो सकती है? आज संसार ने समस्त प्रकार से जीवन के प्रत्येक सामुदायिक तथा वैयक्तिक विभाग में, ज्ञान, विज्ञान और कला कौशल के प्रताप से अतिमात्र उन्नति कर ली है। यह विकास क्रम इसी प्रकार आरम्भ से चल रहा है। कल से आज उत्कृष्ट है, और आज से आने वाला दिन अच्छा होगा। परन्तु इस विषय में महाराज दयानन्द ने क्या सुन्दर उपदेश किया है। वैज्ञानिक उन्नति सीधी चाल छोड़ चक्रगति में चला करती है। जैसे मनुष्य के दिन एक समान नहीं होते, वैसी ही जातियों और सभ्यताओं की भी अवस्था है। अत, वेद पुराना हो या नवीन, इस विचार को छोड़कर उसकी शिक्षा को परीक्षा के अनन्तर ग्रहण करो।

७—काली अन्धेरी रात्रि थी, जिसके मृत्यु नाद को गुंजाने का सौभाग्य ऋषि दयानन्द को प्राप्त हुआ। वह सच्चा वीर योद्धा था। उसे अपने दिव्य प्रकाश को पैदा करने के लिए कितना तुच्छ तप करना पड़ा—यह कौन नहीं जानता? सारी आर्य प्रजा का जीवन, यदि तुच्छ राख था भी, तो बुझी हुई राख के समान हो चुका था। कहीं हिलाने से कोई छोटी चिंगारी भी शायद दिखाई पड़ जाती हो, पर उसकी दशा इतनी निःसत्व हो चुकी थी कि बाहिर की साधारण वायु ही उसे शान्त कर देने के लिए पर्याप्त थी। स्वामी जी महाराज ने अपने दिव्य जीवन के यज्ञ में यौवन की आहुति डाल दी। उनका तप, उनका त्याग उनकी विद्या, उनका योग, उनकी शक्ति और उनका ब्रह्मवर्चस् बल सब के सब इस यज्ञ में चरु बने।

८—प्रकाश हुआ अन्धकार निवृत्त हुआ। सहस्रों वर्षों से सोते हुए प्राणियों के कानों में, घर घर जाकर महान जयकार घोषणा की और हम सबको जगाया। इस समय इस जागृति का प्रभाव देश के चारों कोनों में फैलता हुआ दिखाई दे रहा है। इस समय इस वीर घोषणा की गाज दूर दूर से आ रही है। आर्य-सभ्यता, आर्य-संस्कृति, आर्य धर्म, आर्य संगठन और अन्य इसी प्रकार के शब्द सर्व साधारण की जिह्वा पर हैं। आज ऋषियों की भूमि में आर्य-ज्योति फिर से चमकती हुई प्रतीत होती है। आज 'रामराज्य' की परिभाषा फिर से राजनैतिक नेताओं के विचार का आदर्श बन रही है। आज साम्यवाद को सामाजिक मर्यादा का प्राण समझा जा रहा है। आज दलितोद्धार को धर्म का अंग बनाया जा रहा है। आज गौ और अनाथ और अबला की पुकार सुनी जाने लगी है। आज अपनी प्यारी मातृभाषा के प्रयोग में, पूज्य देववाणी की सेवा में और वेदमाता की आराधना में लज्जा नहीं, वरन् गौरव का भाव उत्पन्न होता जा रहा है। पर यह आरम्भ था, समाप्ति

वैदिक विनय

ओ३म सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा मर्य इव स्व ओ क्ये ।।

मनुज अपने घर मे ज्यो रहे चरे गौएँ ज्यो जौ का खेत ।
हृदय रम जाओ त्यो नाथ, बना लो अपना इसे निकेत ।।

ओ३म यच्चिद्धि ते विशो यथा, प्रदेव वरुण व्रतम, मिनीमसि द्यविद्यवि ।।
ऋ० १-२५-१

वरुण हम अविवेकी दिन रात किया करते है जो व्रत भग ।
क्षमा को कर अपनी सतति पिता, उबारो हम कर्मो के सग ।।

ओ३म यद् वीळाविन्द्र यत स्थिरे यत पर्शाने पराभृतम, वसु स्पार्हं तदाभर ।।
ऋ० ८ ४५ ४१

परम ऐश्वर्ययुक्त हे इन्द्र, हमे दो ऐसा धन स्पृहणीय ।
वीर दृढ स्थिर जन चिन्तनशील जन, लेते है जिसे स्वकीय ।।



ओ३म् आ त वत्सो मन यमत् परमा ... सधस्थात । अग्ने त्वा कामये गिरा ।
ऋ० ८ ११ ७

उठ रही ... ... का ... ... ।
... ... ।
तुम्हारे वत्सल ... ... कामना ... ।
... ... विवश ... ... तक भव न श्रान्त ।।
दूर से दूर भले तुम ... ... किन्तु समीप ।
विरत कब तक चातक ... स्वाति से मुक्ता भरता सीप ।

—डा० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' एम०ए० पी एच०डी०

[पृष्ठ २६ से आगे]

... बीज डालना है, फल उतारना नहीं । इसके महत्त्व का बखान निराशावादियों तथा हठधर्मियो को जगाने के लिए है, आगे के लिए पुरुषार्थ रोकने के लिए नहीं । इस का विस्तार कार्य कर्त्ताओं का उत्साह बढ़ाने के लिए घर बैठ कर फूलने के लिए नहीं । अभी उपर्युक्त मार्ग को खोलना तथा उसे सिरे तक पहुँचाना शेष है । क्या हमने आर्य भाषा को अपने नित्य के जीवन के प्रोग्राम मे लाना आरम्भ कर दिया है ? क्या ऋषियो के वचनो को श्रद्धा पूर्वक मनन करते हुए, हम उन्हे अपने जीवन का अग बना रहे हैं ? क्या हम वेद विद्या की सेवा तथा अनुसन्धान के लिए अपने जीवन को लगा रहे हैं ? क्या मन, वचन और कर्म से हम सत्य के भक्त बन रहे हैं ? क्या हमारे अडौस पडोस मे हमारे सुखी रहते हुए कोई दीन दुखी और अपाहिज भूखो राते तो नहीं काट रहा ? क्या हमारी गली मे कोई अनाथ और अबला अन्दर ही अन्दर तो नहीं घुल रहे ? क्या हमने सच्चे लौकिक और पारलौकिक स्वराज्य के लिए तैयारी आरम्भ कर दी है—इन सब प्रश्नो का उत्तर हम देना होगा ?

---

५० आर्य औषधालय विद्यालय

खोलने की स्कीम सफल बनाने के लिए दो अनुभवी प्रभावशाली प्रचारक स्थाई विचार वाले जीवन भर के लिये चाहिए । प्रारम्भ में १२५) से ३००) माहवार तक देंगे । हमारे ही कामो की लगन के साथ करना होगा, अन्य विकल्प साथ न रखने होंगे । शीघ्र लिखें या आवें ।

पता—सिद्धि सागर प्राणाचार्य
बाहुबलि औषधालय, ललितपुर (झाँसी) उ० प्र०

विकासवाद विषयक भ्रान्तियां

[लेखक—श्री प० गगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०, प्रयाग]

आज से ठीक सौ वर्ष पूर्व जब ऋषि दयानन्द अपने मन्तव्यों और उद्देश्यों को सुव्यवस्थित करने मे यत्नशील थे। इग्लैण्ड देश का एक युवक वैज्ञानिक जिसका नाम था डार्विन, सामुद्रिक यात्रा मे द्वीपस्थ प्राणिवर्ग की आकृतियो तथा प्रकृतियो का वैज्ञानिक निरीक्षण कर रहा था। जिससे वह अपने विकासवाद की आधारशिला को सुदृढ कर सके। उसने अनेक प्रकार के पशु-पक्षियो के नमूने एकत्रित किये और वैज्ञानिक ससार के समक्ष उनको रखकर यह सिद्ध करने का यत्न किया कि इस सृष्टि मे एक सुव्यवस्थित क्रमिक शृखला है। वस्तुये तथा प्राणिवर्ग एक दूसरे से पृथक् और असम्बद्ध नहीं हैं। उनमे ऐसा ही सादृश्य है, जैसा एक माता पिता की दूरस्थ सन्तान मे हुआ करता है।

इसी सिद्धान्त का नाम विकासवाद है। अर्थात् ससार मे कोई घटना अकस्मात् और असम्बद्ध नहीं होती। कारण–कार्य की एक शृखला है, जिसके आधीन एक वस्तु दूसरी वस्तु मे परिवर्तित हुआ करती है। इससे पूर्व यूरोप के धार्मिक जगत् का यह विश्वास था कि सर्व शक्तिमान् परमेश्वर केवल अपनी इच्छामात्र से बिना किसी उपादान या निमित्त के जगत् बना देता है, ईश्वर कहता है 'भव' (अरबी मे कहते हैं 'कुन') और ईश्वर का हुक्म पाते ही चीज उत्पन्न हो जाती है। यह सिद्धान्त सर्वथा अवैज्ञानिक है, विज्ञान जादू नहीं, जादू का विरोधी है। माली बाग मे गुलाब का फूल उगाता है। जादूगर सभा के मच पर चुटकी बजाकर गुलाब उत्पन्न कर देता है। धार्मिक जगत् की दृष्टि मे ईश्वर भी एक जादूगर था। जब यूरोप मे विज्ञान ने उन्नति की तो वैज्ञानिक लोग जादू जैसी निरर्थक बात को कैसे स्वीकार करते? हर कार्य के कारण को खोजने की प्रवृत्ति बढ़ी और विकासवाद इसी प्रवृत्ति का फल था। चार्ल्स डार्विन से पहले एरेस्मस डार्विन, बफन, लामार्क आदि कई विद्वानो ने इसी दिशा मे प्रयत्न किया था और कई सिद्धान्तो की कल्पनाये की थी। परन्तु पुष्कल सामग्री जुटाने का श्रेय चार्ल्स डार्विन को है। इसीलिये विकासवाद का डार्विन को पितामह कहते हैं।

डार्विन की सामग्री का निरीक्षण करते ही वैज्ञानिक और धार्मिक दोनो क्षेत्रो मे खलबली मच गई। वैज्ञानिक लोग तो आनन्द से परिपूरित होकर वैज्ञानिक सिद्धान्तों के सुव्यवस्थित करने मे लग गये और शनै शनै मनुष्य जीवन के प्रत्येक विभाग मे विकासवाद का सिद्धान्त प्रचरित और समानित हो गया, परन्तु धार्मिक जगत् मे घृणा, क्रोध और पक्षपात का तूफान उठ खडा हुआ क्योंकि ईसाई और इस्लाम आदि सेमेटिक धर्मों की आधारशिला तो एक ऐसे ईश्वर की कल्पना है जो सब कुछ है और सब कुछ कर सकता है, अर्थात् एक बहुत बडा कुशल और सफल जादूगर 'सभी भक्ति मार्ग ऐसा ही मानते हैं'। ईसाई पादरियों ने विकासवादियों का विरोध किया और घोर विरोध। यदि डार्विन चार-सौ वर्ष पूर्व हुआ होता तो शायद रोम के पोप की आज्ञा पाकर उसको जीवित जला दिया जाता। परन्तु पिछली कई शताब्दियो के धर्म-विज्ञान महाभारत ने धर्म को परास्त करके विज्ञान को बल युक्त कर दिया था। अत एक ओर तो वैज्ञानिक अपना अनुसधान का कार्य्य करते रहे। दूसरी ओर पादरियो ने अनेक प्रकार की ऊट-पटांग पुस्तके लिखकर जनता को भड़काना आरम्भ किया कि डार्विन मनुष्य की उत्पत्ति ईश्वर से न मानकर बन्दर से मानता है।

भारतवर्ष के लिए विकासवाद नया नहीं था। सांख्य-दर्शन मे कपिल ने सृष्टि के क्रमिक विकास को

बड़ा अच्छा वर्णन किया है। शतपथ आदि में भी आकाशाद्वायु । वायोरग्नि इत्यादि क्रम का उल्लेख है। परन्तु भारतवर्ष का आधुनिक धार्मिक क्षेत्र तो उतना ही विज्ञान विरोधी है, जितने ईसाई या मुसलमान। इसलिए मर्कट गोत्र सम्बन्धी मत का भारतवर्ष में विरोध हुआ। और आश्चर्य की बात यह है कि आर्य समाजी विद्वान् भी इस चक्कर में फस गये। स्वामी दयानन्द ने कपिल का विकासवाद स्वीकार किया है। वह निरीश्वर सांख्य के विरोधी है, सेश्वर सांख्य के नहीं। वह विकासवाद का विरोध नहीं करते। विकास वाद के निरीश्वर अंग का विरोध करते हैं परन्तु आर्य समाजी विद्वानों ने ईसाइयों के विकास विरोधी साहित्य को पढ़कर और विकास-वाद को न समझकर एक प्रकार का भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इस विषय में सबसे अधिक भ्रमोत्पादक पुस्तक है "वैदिक सम्पत्ति" जिसका एकमात्र गुण यह है कि वह बड़ी मोटी पुस्तक है और उसमें विकासवाद विरोधी उद्धरण बहुत से है। हमारे बहुत से लेखक और व्याख्याता घड़ी दो घड़ी में उस पुस्तक से दो चार चटकीले उद्धरण लेकर अपने उत्तेजना युक्त व्याख्यानों की सामग्री प्राप्त कर लेते है इससे जनता का मनोरंजन हो जाता है। परन्तु यह प्रकट नहीं होता कि वैदिक धर्म और प्रचलित तथा बहु सम्मानित विकासवाद में कहां समानता है और कहां भेद। आजकल के वैज्ञानिक जगत् में विकासवाद के विरोध के कोई चिह्न पाये नहीं जाते। हां इतना अवश्य है कि उनको पूर्व मान्यताओं में क्या कठिनाइयां पड़ रही है, इसकी उनमें अनुभूति है और वह वैज्ञानिक रीति पर इन कठिनाइयों को दूर करने का यत्न कर रहे है। इसको आप विकासवाद की पराजय नहीं कह सकते। यों कहना चाहिये कि विकास-वाद के सिद्धान्तों का भी विकास हो रहा है।

विकासवादी ईश्वर और जीव की सत्ता स्वीकार नहीं करते। हर एक वैज्ञानिक इन दो शब्दों से भयभीत होता है। कछुवे का काटा कठौती का डरता है। ईश्वरवादियों के हाथों विज्ञान ने बहुत कटु अनुभव प्राप्त किये हैं। परन्तु यह भी सत्य ही है कि बिना आध्यात्मिक सत्ता को स्वीकार किये केवल भौतिकवाद से काम नहीं चलता। परन्तु आर्यसमाज में जो धारणा है वह भी गलत है। वह भी 'ईश्वर नाम' के प्रलोभन में वैदिक सिद्धान्तों को विस्मृत करके पादरियों के चेले बन गये है। स्वामी दयानन्द या वैदिक धर्म न तो भौतिकी के विरोधी है न विज्ञान के। यह विरोधी है अनीश्वरवाद और अ-जीववाद के। परन्तु साथ ही यह उस ईश्वरवाद के भी विरोधी हैं, जिसमें ईश्वर जादूगर या मायावी है, और केवल इच्छा मात्र से सब कुछ कर सकता है। यह तो हुई स्वामी दयानन्द और वैदिक धर्म की बात। रहे हम आर्यसमाजी। यह तो गम्भीरता से विचार ही नहीं करते। किसी चमकीले खिलौने के पीछे लग पड़ते हैं। इस छोटे से लेख में मैंने संकेत मात्र ही लिखा है। और 'आर्यमित्र' के सम्पादक जी के विशेष आग्रह पर। मैंने "फिलासफी आफ दयानन्द", "रीजन एण्ड रिलीजन", "लाइफ आफ्टर डथ" आदि पुस्तकों में प्रसगानुसार इस पर कुछ लिखा है।

गुरुकुल वृन्दावन का महोत्सव

गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा) का वार्षिक महोत्सव दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में बड़ी धूम-धाम से मनाया जायगा। उत्सव की तैयारियां अभी से शुरू हो गयी हैं। इस अवसर पर कई सम्मेलन भी होंगे।

—नरदेव स्नातक एम० पी०
अधिष्ठाता गुरुकुल-वृन्दावन

आवश्यकता

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के लिये एक ऐसे प्रचारक की आवश्यकता है, जो मथुरा जिलान्तर्गत ग्रामीण जनता में गुरुकुल के उद्देश्यों, नवीन बालकों को प्रवेश तथा धन संग्रह के कार्य का प्रचार कर सके। न्यूनतम वेतन पर कार्य करने वाले महानुभाव निम्न पते पर पत्र व्यवहार कर।

—नरदेव स्नातक एम० पी०, मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (मथुरा)



देव दयानन्द की देन



[ले०—श्री प० शिवदयालु जी मेरठ]

ऋषि दयानन्द नि सन्देह १९ वी शताब्दी का महान् क्रान्तिकारी पारदर्शी, सत्य का खोजी युग पुरुष था। दयानन्द ने ससार के सब ही मत सम्प्रदायों में सक्रिय विविध हलचल पैदा कर दी है। दयानन्द ने भारत के महान् भूत का और आर्य



श्री प० शिवदयालु जी

सस्कृति का सम्यक् दर्शन किया था। अपने समय के पर पादाक्रान्त भारत को भी उसने अच्छी प्रकार देखा था।

दयानन्द ने भारतीय साहित्य और विशेष कर आर्ष साहित्य का भलीभाति मन्थन किया था। सच्चे शिव की खोज मे दयानन्द ने घर बार छोड़ा, पूर्ण विरक्त और सन्यासी बन देश के कोने कोने में सत्य की खोज में घूमा।

पर्वतो की कन्दराओ म आसीन साधु सन्तो की सेवा मे सत्य ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त उपस्थित हुआ असत्य से कभी समझौता करना उस ऋषि ने न जाना। सत्य और नग्न सत्य का ही डके की चोट, उसने अपने जीवन तक को खतरे मे डालकर सदा प्रचार किया।

ऐसे उस ऋषिराज दयानन्द की विश्व के लिए सबसे बडी देन "बुद्धिवाद एव मानववाद की प्रतिष्ठा है।"

ससार के सब ही मत, पन्थ, सम्प्रदायों के रिलिजन फेथ और मजाहिब के प्रवर्त्तको ने बुद्धिवाद की निरन्तर अवहेलना की है।

'मम सत्य" अथवा "मामेव शरण व्रज मन्त्र मोक्षयिष्यामि मा शुच' अर्थात् मेरी शरण म आओ मै सर्व पापो से तुमको निजात दिला दू गा और जो कुछ मै कहता हूँ बस वही सत्य है। इत्यादि नारे इन लोगो ने लगाये हैं। और यह भी कहा है कि मुझ से पूर्व जितने ऋषि पैगम्बर हुए है, सब अकिंचन थे। जो मै जो कुछ कहता हूँ वह ही एकमात्र पूर्ण सत्य है और मै ही पूर्ण सत्य का अन्तिम सन्देश हूँ। अत मेरे पर आख मीच कर विश्वास ले आओ। इस प्रकार की बाते निश्चय ही अन्ध विश्वासो की जननी हैं।

दयानन्द वह पहला व्यक्ति था जिसने स्पष्ट कहा कि मै जो कुछ कहता हूँ वह अपनी ओर से नही अपितु ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त ऋषि मुनियों ने जो कुछ कहा है मैं तो केवल उसका प्रचार करता हूँ। मेरे कथन को तर्क की कसौटी पर कसो और यदि वह खरा उतरे तो ही उसको मानना। दयानन्द ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि सत्य तो सनातन है उसको किसी मत या मजहब की सीमा मे बाधकर नहीं रखा जा सकता। सत्य तो ईश्वरीय ज्ञान है और उस पर किसी मत प्रवर्त्तक की मुहर भी नहीं लगाई जा सकती।

(शेष पृष्ठ ३७ पर)



महर्षि दयानन्द के—
अग्निहोत्र-आदेश का प्रत्यक्ष लाभ



[ले०—कविराज श्री रत्न कर जी शास्त्री आयुर्वेद शिरोमणि इटावा]

धार्मिक परिपाटी में होने वाले अनुष्ठानों को ढोंग और निरर्थक कहने की प्रथा सी चल गई है। विशेष कर जिन्हें आधुनिक साइन्स का जरा सा भी ज्ञान हो, वे प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान को ढोंग, अवैज्ञानिक और अन्ध परम्परा कहने में संकोच नहीं करते। मैं यह लेख उन्हीं व्यक्तियों के लिये विशेष रूप से लिख रहा हूँ जिन्हें हवन तथा यज्ञ की परम्परा निरर्थक लग रही है।

प्रायः फारवर्ड लोगों को भारतीय परम्परा के धार्मिक अनुष्ठान बिना विचार ही अवैज्ञानिक और अन्ध कहने की बान सी है। मैं चाहता हूँ कि मेरे निम्न प्रयोगों पर वे अग्निहोत्र अथवा दैनिक यज्ञ का प्रत्यक्ष लाभ अनुभव करें।

मैंने विद्यार्थी जीवन में हवन यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ा था तब उसका काल्पनिक रूप ही समझा जा सका था। वह भी लौकिक नहीं पारलौकिक। परन्तु आयुर्वेद का विद्यार्थी होने के कारण आज तक का जीवन नित्य प्रति रोग और चिकित्सा के चिन्तन में ही व्यतीत होता गया। गत ३० वर्ष में विद्यार्थी जीवन की अनेक कल्पनायें परीक्षण की कसौटी पर कसी गई।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि हवन नित्य कर्म है। उसमें (१) पौष्टिक (२) मिष्ट तथा (३) रोगनाशक द्रव्य आहुति के रूप में डाले जाना चाहिए। चरक और धन्वन्तरि के अनुसार इन तीनों का चिकित्सा की दृष्टि से निम्नप्रकार विभाजन कर सकते हैं—

(१) पौष्टिक—	रसायन द्रव्य—	Nutritive
(२) मिष्ट—	तर्पणद्रव्य	Tonical
(३) रोगनाशक—	रोगघ्नद्रव्य	Curative



[रत्नाकर जी शास्त्री]

कल्पना [illegible] विभिन्न [illegible] विशेषताओं में विभा[illegible]।

मैंने [illegible] हवन [illegible] महानुभावों से पूछा — आप जो नित्य अग्निहोत्र करते हैं इससे क्या लाभ हुआ? किसी ने कहा मेरी मनःकामना पूरी हुई। किसी ने कहा, शुद्ध [illegible] विद्यमान है। ८० वर्ष [illegible] आयु से आजतक [illegible] करते हैं। उनके पवित्र अनुभव में [illegible] परन्तु [illegible] अनुभव के रूप में नाच मैं [illegible] प्रयोग कर रहा हूँ आप इनका प्रयोग कर सकते हैं।

(१) [illegible] (P[illegible] [illegible] भयानक रोग है। इसमें फुफ्फुस [illegible] श्लेष्म [illegible] है। अथवा रुकावट के कारण [illegible] दोनों दशाओं में रोगी फुफ्फुसों की वेदना से आक्रान्त रहता है। ज्वर

भी रहता ही है । धीरे धीरे स्थिति क्षय की बन जाती है। एलौपैथी मे जल निस्सारण से लेकर शोक निवारण तक इलाज करने मे प्राय ६ मास से १ वर्ष का समय लगता है। तो भी पूर्ण स्वस्थ होता है, इस मे सन्देह ही रहता है। प्रतिदिन अग्नि होत्र इस प्लूरिसी की अचूक दवा है।

(२) दुष्ट प्रतिश्याय (Rhinitis) दूसरा दुखदायी रोग है। इस मे नासिका के अन्दर त्रिकुटी के आस पास श्लेष्य कला मे शोथ होता है। श्वास प्रश्वास मे अत्यन्त कष्ट होता है। रोगी मुह से श्वास ले पाता है। नित्य अग्नि होत्र करने वाले यह नही जानते कि दुष्ट प्रतिश्याय क्या है।

(३) मस्तिष्क कला शोथ (Eneephalitis) इस रोग मे मस्तिष्क शोथ के कारण शिरोवेदना रहती है। स्मरण और विचार शक्ति क्षीण होकर नेत्र ज्योति भी कम हो ती है। कभी-कभी ज्वर तथा बेहोशी की अवस्था भी हो जाती है। अग्निहोत्र का दैनिक प्रयोग इस सकट से मुक्ति प्रदान करता है।

(४) श्वास प्रणाली प्रदाह (Bronchitis) चौथा वह रोग है जो आये दिन हमारे समाज को दुखी करता है। इसम श्वास की नली मे सूजन होकर नित्य खासी रहती है। श्वास बढ जाता है। न्यूमोनिया बन जाता है। धीरे धीरे फेफडो से रक्त और मवाद आने लगता है। गले मे दर्द से कभी कभी खासते-खासते कै भी हो जाती है। ज्वर हल्का हल्का रहता है। प्रति दिन का अग्निहोत्र इस शत्रु को परास्त करता है।

(५) अवसाद (Alleogy) पाँचवी बाधा है, जो स्नायुमण्डल की शिथिलता से उत्पन्न होती है। अवसाद युक्त रोगी गिरा पडा सा रहता है। निर्जीव तथा निस्तेज शरीर के कारण कार्यक्षमता जाती रहती है। रोगी मे साहस तथा प्रफुल्लता नहीं रहती। नित्य का अग्निहोत्र इस सकट का अव्यर्थ प्रतीकार है।

मैने यहा इन पाच रोगो पर अग्निहोत्र के सफल परीक्षण लिखे हैं। जिन्हे अग्निहोत्र की धार्मिक किन्तु वैज्ञानिक परम्परा पर आस्था न हो वे इन रोगो पर अग्नि होत्र का परीक्षण करें। चिकित्सा के भारी खर्च से ही नहीं, जीवन के भारी सकटो से भी आप अनायास बच सकते हैं। आपके घर का अग्निहोत्र पडोसियो को भी स्वास्थ्य प्रदान करेगा, इसमे सन्देह नहीं। अग्निहोत्र करने वाले का घर 'सेनेटोरियम' से बढ़कर है।

देव दयानन्द की देन

[पृष्ठ ३० का शेष]

ससार के मत मजहबो ने सकुचित दायरे खेचे हुए हैं। जो भी उन दायरो मे आ जावे वह श्रेष्ठ, धर्मात्मा और मोक्ष का अधिकारी है, और जो न आवे वह निकृष्ट, पापी और नरकगामी होगा। इन्हीं सकुचित दायरो के कारण मानव जाति मे विद्वेष घृणा निन्दा का विस्तार हुआ है। शत्रुता बढ़ी है, और भयकर रक्तपात हुआ है।

इन मतो की कृपा से ही मतान्धता का जन्म हुआ है जिसने सोते मानवता पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया।

दयानन्द ने कहा—'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्' अर्थात् मित्र की दृष्टि से ससार के सर्व प्राणियो को देखो अर्थात् प्राणीमात्र की सेवा और रक्षा करना अपने जीवन का पावन लक्ष्य बनाओ।

ऋषि दयानन्द ने "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का वैदिक सन्देश ससार की सब ही जातियो को सुनाया और बतलाया कि ससार की सब ही जातियाँ रूप रग आदि भेदो को त्यागकर समान रूप से ज्ञान प्राप्त करने, स्वतन्त्र जीवन बिताने और वैभवशाली बनने का अधिकार रखती हैं। मानव जीवन की परम साधना भी यही हो कि प्रत्येक मानव स्वय श्रेष्ठ दैवी गुणो से युक्त होकर आर्य बने और अन्यो को आर्य बनावे।

बडी से बडी मूर्ख, बरबर जगली जाति तक को आर्य बनाने का सन्देश अपने युग के श्रेष्ठ माने जाने वाले मानवो को दयानन्द ने दिया है।

आओ ! इस पुण्य निर्वाण पर्व पर उस ऋषि की दिव्य देन को भली-भाति अपने जीवन-पट पर अकित करने का व्रत धारण करे।

ऋषि की याद दिलाने

जिसने स्वयं पिया विष अमृतधारा हमें पिलायी है।
उसी ऋषि की याद दिलाने आज दीवाली आयी है॥
पाखण्डों की घोर घटा में जो बिजली बनकर चमका,
कुकृत्यों की कलुष कालिमा पर जो घन बनकर बरसा,
युग युग का धो पाप पंक की जिसने सही सफाई है,
उसी ऋषि की याद
पीडित मानवता के आँसू पोंछे जिसने त्राण दिया,
भौतिकता से भीत विश्व को फिर अध्यात्म ज्ञान दिया,
ईति भीतिम् से शून्य स्वस्ति वेदों की राह दिखाई है,
उसी ऋषि की याद
मिथ्यावादी न देते थे पढ़ने का अधिकार हमें,
पैर की जूती कह ठुकराता यह निष्ठुर संसार हमें,
मातृशक्ति की जिसने फिर मिटती मर्याद बचाई है,
उसी ऋषि की याद
जिसके पावन दया दान से कोई भी न रहा वंचित,
क्या विधवा, अनाथ, पददलित, अछूत जाति से निष्कासित,
जिसने गौओं के हित में 'गोकरुणानिधि' रचाई है,
उसी ऋषि की याद
मिथ्या सम्प्रदायवाद के गढ को भू पर सुला दिया,
दलबन्दी के दल दल को दल पथ को समतल बना दिया,
जिसने हाथ रखा नाड़ी पर दवा अचूक बनाई है,
उसी ऋषि की याद
जिसने जीवन से जीना मृत्यु में मरना सिखा दिया,
प्राण बचाए घातक के आदर्श अनूठा दिखा दिया,
जिसने श्रान्त क्लान्त प्राणों को शान्ति अमर पहुंचाई है,
उसी ऋषि की याद
मेरी श्रद्धा थक जाती है जब ऋषि के गुण गाती हूँ,
भाव कोष रीता हो जाता शब्द अभाव ही पाती हूँ,
कविता कामिनी कान्त कवि शंकर ने गरिमा गाई है,
उसी ऋषि की याद

—कु० सुशीलादेवी आर्या प्रभाकर एम० ए० नरवाना



महर्षि दयानन्द की जय



[ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, प्रधान आर्य सार्वदेशिक सभा, दिल्ली]

स्वामी दयानन्द का लक्ष्य वैदिक धर्म का पुन प्रचार करना था। और वैदिक धर्म की विचारधारा को सार्वजनिक जीवन का आधार बनाना था। यदि विचार की दृष्टि से देखा जाये तो जो वर्त्तमान समय मे भारत का विधान है, उस पर कई अशो मे ऋषि दयानन्द की छाप है।

शिक्षा के क्षेत्र में—

शिक्षा-जगत् में ऋषि शिक्षा को निशुल्क और अनिवार्य बनाना चाहते थे और धार्मिक शिक्षा को शिक्षा का आवश्यक अग मानते थे। आज सिद्धान्त रूप से यह बाते मान ली गई हैं। और अब नतिक और धार्मिक शिक्षा के लिये भी केन्द्रीय सरकार क्रियात्मिक पग उठाने के लिये बाध्य हुई है। शिक्षा के सम्बन्ध मे महर्षि दयानन्द सह-शिक्षा के बिल्कुल विरुद्ध थे। भारत मे पहले स्त्रियो की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं था। पौराणिक स्त्री-शिक्षा का विरोध करते थे। स्वामी दयानन्द के प्रभाव और आर्यसमाज के प्रचार के कारण स्त्रियो मे शिक्षा का प्रचार आरम्भ हुआ और अब तो पूर्ण रूप से प्रचलित है। परन्तु महर्षि ने यह आवश्यक आदेश दिया था कि बालक और बालिकाओं की शिक्षा पृथक्-पृथक् होनी चाहिये। शिक्षा की दौड-धूप मे इस आवश्यक चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। और दशा शोचनीय होती जा रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के जगत् मे जितना उजाला है, वह सब स्वामी दयानन्द के प्रभाव से है और जितना अन्धकार है वह उनके आदेश की अवहेलना से है।

समाज सुधार के क्षेत्र में—

ऋषि दयानन्द सामाजिक व्यवस्था को ठीक रखने के लिये वर्ण और आश्रम की मर्यादा को आवश्यक मानते थे और इसका ही उन्होंने प्रचार किया। जन्म की जातियो का उन्होने बहिष्कार किया और यह सिद्ध किया कि जन्म से कोई जाति नहीं होती और न जन्म सूचक जातियाँ माननीय है। ऋषि का यह आदेश मान लिया गया है और विधान का अग है, परन्तु दुःख यह है कि सिद्धान्त रूप मे स्वामी जी की बात स्वीकार कर लेने पर भी क्रियात्मक रूप मे उस की अवहेलना ही हो रही है। देश मे जातिवाद के कारण बडा भयकर सघर्ष चल रहा है। यदि व्यावहारिक जीवन मे जातिवाद का अन्त हो जाये तो सारे भारत मे एकता का प्रचार हो सकता है। इसी प्रकार स्वामी जी ने अछूतपन के कलक को मिटाने के लिये भरसक प्रयत्न किया और यह सिद्ध किया कि सब मानव बराबर है, उनमे न कोई नीच है न उच्च। स्वामी जी के प्रभाव के कारण अछूतोद्धार और दलितोद्धार का कार्य सफलता पूर्वक चला और अछूतपन का कलक मिटने लगा। विधान मे यह भी मानलिया गया है और यह निश्चय कर दिया गया है कि किसी के अछूत होने के कारण उसके जीवन निर्वाह के मार्ग मे कोई बाधा नहीं डाली जा सकती। इस सम्बन्ध का कानून भी बन गया है। परन्तु इस क्षेत्र मे भी बडी भूल की जा रही है। अछूत जातियो की सूची बनाकर और उनको हरिजन होने के आधार पर विशेष सुविधाये मम्बरी और नौकरी के लिए मिलने से अछूतपन मिट नहीं रहा है परन्तु एक स्थाई रूप धारण कर रहा है। जब हरिजन या अछूत समझे जाने वाले भाइयो को अछूत बने रहने मे अपना लाभ दीखता है तो अपने का अछूत कहने मे और समझने मे सकोच नहीं करते अपितु गर्व अनुभव करते हैं। कुछ ऐसी जातियाँ भी हैं जो अछूत नहीं थीं, अब अछूतों की सूची मे अपना नाम लिखाना चाहती है। हरिजनो के साथ पिछडी जाति का भी एक प्रसग चल पडा है। उससे भी बड़ी हानि हो रही है। राष्ट्रिय सरकार एक ओर

जन्म की जातियों का बहिष्कार कर रही है और दूसरी ओर अपने सचालन का आधार उन को बना रही हैं। जब सिद्धान्त और व्यवहार मे इतना भेद होता है, तभी बडी हानि होती है। इसी लिए स्वामी दयानन्द मन वचन और कर्म मे समानता चाहते थे।

राजनैतिक क्षेत्र में—

स्वामी दयानन्द प्रजातन्त्र के पोषक थे परन्तु वह यह मानते हुये भी कि सम्मति का अधिकार सब को है, इस बात पर बल देते थे कि व्यवस्था केवल धार्मिक विद्वानों की व्यवस्था के आधार पर ही हो सकती है। इस आवश्यक आदेश की भी अवहेलना की जा रही है, और प्रजातन्त्र की आड में दल बन्दी फैल रही है और कलह का विस्तार हो रहा है। यदि ऋषि दयानन्द के आदेश को समझ कर प्रजातन्त्र की व्यवस्था हो तो राजनीति के जगत में भी धर्म और शान्ति का साम्राज्य हो सकता है।

धर्म के सम्बन्ध मे दृष्टिकोण—

स्वामी दयानन्द धर्म को सारे जीवन का आधार मानते थे। वह बिना धर्म के विचार किए हुए जीवन का कोई कार्य सफल होना नहीं मानते थे। अर्थ और काम जीवन के लक्ष्य हैं मोक्ष भी एक महान् लक्ष्य है परन्तु धर्म के बिना अर्थ और काम की व्यवस्था नही है। ऋषि दयानन्द ने धर्म की आवश्यकता पर बल दिया और अब उनके इस प्रभाव से राष्ट्र के सचालक भी धर्म की आवश्यकता अनुभव करने लगे है। परन्तु कमी यह है कि धर्म का असली स्वरूप उनके सम्मुख नहीं है, वह धर्म के स्थान में सम्प्रदायों को समझने लगते हैं, और सम्प्रदायवाद से जो हानि हो रही है उससे डर कर धर्म की ही अवहेलना करने लगते है। आवश्यकता इस बात की है कि धर्म के स्वरूप को समझा जाये, धर्म न केवल सारे भारत को परन्तु सारे ससार को एक सूत्र मे बाध सकता है। यदि इस आदेश का पालन नहीं किया गया तो बडी हानि होने की सम्भावना है।

विश्व-प्रेम—

इस समय आवश्यकता ससार की जय बोलने की है। केवल जय-हिन्द से काम नहीं चलेगा। स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के छटे नियम मे ससार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य बताया। उनका लक्ष्य विश्व प्रेम था, देश प्रेम नही। आज फूट की अग्नि धधक रही है। सारा ससार जल रहा है। हमे स्वामी दयानन्द की जय के साथ सारे ससार की जय बोलना सीखना चाहिए तभी ससार में सुख और शांति का साम्राज्य हो सकता है।

युग-द्रष्टा महर्षि दयानन्द के प्रति

[रचयिता—लक्ष्मीकान्त गुप्त बी० ए०, कोटा]

चहुँ ओर आतक फैला दासत्व, आडम्बर, अनुदारता, उद्दडता का कुप्रभाव सव्याप्त था। दम्भ, दौर्बल्य, आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष, मालिन्य, मद, मोह ने घेरा जमा रखा था। कुरीतियाँ जडता एव प्रमाद का साम्राज्य फैला था—ऐसी अविद्या की तिमिर रात्रि मे तुम जीवन ज्योति बनकर आये।

अमर ज्योति, तुम सत्य व्रत साधना हेतु शान्ति क्रान्ति के दूत थे। मानवता की मूर्त्त थे। सरलता, साहस, सौजन्य तथा पवित्रता के प्रतीक थे। स्वतत्रता के मत्रदा, पतितोद्धारक तुम देश हितैषी थे।

विश्व विभूति, वैदिक सिद्धान्तो का पुन स्मरण करा, श्रद्धा की वीणा बजाई तथा तप्त हृदय को शीतल दान किया। अज्ञान अधेरी को आच्छादित कर—विश्व आलोकित कर—दीपावली की अमा-रात्रि मे तुम चिर निद्रा मे लीन हो गये—यही है तुम्हारी श्रेष्ठता!

महायोगी, तुम्हे शत् शत् प्रणाम!



विश्व शांति का वैदिक मार्ग

(अय लोको जालमासीच्छक्रस्यमहतो महान् (अथर्व)

[ले०—श्री प० बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ बरेली]

सम्पूर्ण विश्व म शान्ति स्थापित करने के लिये श्री सुन्दरलाल आदि ने शान्ति परिषद् स्थापित कर रक्खी है जिसके प्रधान पद से कलकत्ते म उहान वह भाषण दिया जिससे म नतीय प्रध न मन्त्री का हृदय भी क्षुब्ध हो उठा। शान्ति के नाम पर न्यद्रनी चीन का बढ़ावा ? यह कसी शान्ति ? विश्व म शान्ति सुरक्षा के लिये कभी पेरिस म सभा होती है कभी न्यूयार्क म। पर सब जगह वही दाव पच चले जाते हैं कि हम ही सर्वोपरि बने रहें।

जब तक ससार की बागडोर राजनैतिक मार्ग गरा के हाथ म रहेगा शान्ति कहा और कैसे हो सकता है ? जिनक मन अस तुष्ट और अशान्त हों जो महत्वाकांक्षा के घोड़ा पर चढ़ भाग रहे हैं और विश्व पर धूल उड़ा रहे हैं उनसे शान्त सुखमय वातावरण की आशा ! 'इ खयालस्त मुहालस्त जनू' यह विचार असभव और पागलपना है। सुख शान्ति का उपाय एक ही है जो वेद बताता है—

'सहृदय सामनस्यमविद्वेष कृणोमि व ।
अन्योअन्यमभिहर्यतवत्स जातमिवाघ्न्या । (अथर्व)

सहृदय बनो अपने कष्ट के समान अन्यो के कष्ट का भी समझे सबक मनोभावो की कद्र करो अपन मन के अनुकूल ही सबका चलाने का यत्न मत करो। खुदाई फौजदार मत बनो। अनेक मता ने खुदाई फौजदार बनकर प्रजा का मारा काटा पर सफलता से दूर रहे। ईश्वर के नाम पर शान्ति स्थापित करने के नाम पर मतवालो ने तलवार चलायी 'कतले आम किया पर ससार एकमत न हो पाया। कुछ निराश व्यक्तियो ने इसे दुःख रूप मानकर त्याग देने का कहा पर यह त्यागा उनसे भी नहीं गया। चेले चेलियों की भीड़ म ही वे रहे आए मर। यह ससार है विलक्षण जाल। वेद के शब्दो म महान् इन्द्र जाल तो फिर इससे छूटना दुस्तर ?



—लायक—





क्यों सुरझे यहि जाल परि कत कुरंग अकुलाय।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहे त्यों त्यों अरुझत जाय ॥

कहां नहीं सुलझता यह जाल ? सुलझे कहाँ से सिरा मिले तो सुलझे।

फिलसफी की बहस म उसका पता मिलता नहीं
उर का सुलझा रहे है पर सिरा मिलता नहीं।

इस जाल का सिरा तो उसी की शरण म जाकर मिल सकता है जिसका कि यह जाल है। उस महान् इन्द्र (ऐश्वर्यवान् प्रभु) का भुलाकर अभिमानी जीव अपने का जब तक सब कुछ समझता रहेगा तब तक इस जाल म पड़ा तडपेगा। साम्यवाद समाजवाद गांधीवाद और मार्क्सवाद चाहे जितने वाद हो विवाद हो बढ़ायगे जब तक ब्रह्मवाद की शरण में नहीं आयगा। ब्रह्मवाद अभिमान का दूरकर आत्म चिन्तन की ओर ले चलता है। आत्मचिन्तन से साम्मनस्य पैदा होता है। दूसरो के अधिकारों की रक्षा का भाव होता है। सह अस्तित्व(Co-3xi3tancel) की भावना दृढ होती है।

द्वेष रहित बनो। किसी के वैभव का देखकर जलो मत। मुदित बनो। और एक दूसरे का इस प्रकार प्रेम करो जैसे गौ अपने बछड़े को प्रेम करती

है। यह सौहार्द की सुगन्धी समीर बहायेंगे क्या ये अहम्भाव में मस्त राजनैतिक नेता ?

आजकल आत्म चिन्तन, धर्मभाव, प्रभु चर्चा सर्व गुण दूर भगा दिये गये केवल राजनीति, केवल अधिकारवाद, तमोगुणी नेताओं के कारनामे यही सामग्री सर्वत्र व्याप रही है। किसी समाचार पत्र को उठाओ ख्रुश्चेव, आइक, लुमुम्बा, इन्हीं की चर्चा। इन्हीं के गुणावगुण का गान। अशान्ति की धूल सब में फैल गयी। ईसा के चेले अफ्रीकन सरकार वाले भी हैं। पर जो पादरी वहां सम मानवता का प्रचार करता था, उसे निकाल दिया उन्होंने। उनकी दृष्टि में गोरे ही विश्व में जीने के अधिकारी हैं और नहीं। यदि ईसा मसीह भी उनके राज्य में आ पहुँचे तो उन्हें भी दुबारा सूली पर चढ़ना पड़े।

गीता के अनुसार य आसुरी वृत्ति सम्पन्न, संसार को बन्धन में ही जकड़ रहे हैं। द्वेष से द्वेष ही तो उपजेगा। (निबध्नाति आसुरीमता)

मत मतान्तर, प्रान्त, देश, जाति, रंग इन सबके भीतर एक आत्म-तत्व का दर्शन है। सुन्दर भावनाओं को पकड़ना है। सब के कल्याण की कामना करना है। एक मानव धर्म को अपनाना है। मानव सब जीवों में बड़ा है, अतः सब जीवों की रक्षा करे। उसके नेतृत्व में सब ही सुख से रहें यह है व्यापक स्वरूप अहिंसा का। वेद भगवान् कहते हैं—

"मित्र की दृष्टि से मैं सब जीवों को देखूं और मित्र की दृष्टि से सब जीव मुझे देखें" (मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्) मजदूर वर्ग, किसान वर्ग, पूंजी वाले और बुद्धिजीवी केवल इन तक ही सीमित न रहो किन्तु जीवमात्र की ओर लखो। वेद भगवान् का यह व्यापक दृष्टिकोण सह-अस्तित्व को दृढ़ करेगा। द्वेष की दुर्गन्ध से उत्पन्न वे रोग जिन्हें राजनैतिक मदारी बढ़ा रहे हैं, तब ही दूर होंगे जब व्यापक दृष्टिकोण बढ़ेगा।

पर यह दृष्टिकोण कैसे हो। इस धूल धक्कड़ में कौन सुझाये कल्याण का मार्ग ? कल्याण मार्ग सुझाना उन महात्माओं का काम है जो स्वार्थ से रहित हो चुके हैं। ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"यदि सभा में (राज्य सभा) में मतभेद हो तो बहुपक्षानुसार मानना और सम पक्ष में उत्तमों की बात स्वीकार करनी और दोनों पक्ष वाले बराबर उत्तम हों तो वहाँ सन्यासियों की सम्मति लेनी। जिधर पक्षपात रहित सर्व हितैषी सन्यासियों कि सम्मति होवे वहाँ उत्तम समझनी चाहिए" (संस्कार विधि)

सन्यासी से तात्पर्य स्वामी जी का केवल कपड़े वाले सन्यासी से नहीं है। रेखांकित शब्दों में स्वामी जी ने सन्यासी के लक्षण भी कह दिये। "पक्षपात रहित सर्व हितैषी"

आज कहाँ है ऐसे महापुरुष ? सन्यासी केवल ब्राह्मण ही बन सकता है। जब ब्राह्मण ही नहीं तो सन्यासी कहाँ ? आज तो वैश्य और शूद्र प्राय ही जगत् हो रहा है। आश्रम व्यवस्था क्या है ? मनुष्यत्व की निर्माणशाला। भौतिक पदार्थों की अनेक निर्माण शालायें बनती जा रही हैं पर मनुष्य बनाने का निर्माण शालायें (गुरुकुल) कहाँ हैं ? आज के विद्यालयों में शिक्षा है उच्चकोटि का ज्ञान विज्ञान सिखाया जाता है पर उस ज्ञान विज्ञान को संयम में रखना, लोकहित में ही प्रयुक्त करना इसका अभ्यास कराया जाता था गुरुकुलों में।

जनकल्याण की भावना वाले व्यक्ति स्वयं तो अब भी अनेक उत्पन्न हुए। प्रत्येक देश में जन्मे। कौलिजों में से भी निकले और घर पर ही बैठे भी बने। पर यह पूर्व संस्कारों के कारण कतिपय व्यक्ति टाल्स्टाय गान्धी, श्रद्धानन्द, हंसराज, नारायणस्वामी आदि प्रकट हुए। मनुष्य समाज में व्यवस्थित रूप से ऐसे अनेक जन ब्राह्मण त्यागी तपस्वी विद्वान् जन तैयार हों उनका उपाय वर्णाश्रम व्यवस्था ही है।

इस महान् इन्द्रजाल से मुक्तिपाने, अशान्त राजनैतिक झन्झटों से बचकर सुव्यवस्थित जीवन बनाने का उपाय एक ही है कि मनुष्य अहम्भाव को छोड़कर करोड़ों वर्ष के अनुभूत कल्याणकारक मार्ग वेदोपदेश को अपनाये। सहृदयता, सांमनस्य, अविद्वेष और सर्वहित करण। विश्वमैत्री यही वेदोपदेश फैलाने के लिये वर्षों तप करते हुए ऋषि दयानन्द ने दीपावली पर प्राणोत्सर्ग किया था। जगत् के हितैषी ऋषि को प्रणाम हो प्रणाम हो।

राष्ट्रिय शिक्षा प्रणाली का आदर्श—

गुरुकुल शिक्षा-पद्धति




[ले०—श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार, उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय]

१—राष्ट्रिय शिक्षा तथा गुरुकुल का अभिप्राय

अन्य राष्ट्रिय शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल आन्दोलन का इतिहास दो कालों में विभक्त है। स्वतन्त्रता से पहले का काल और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का काल। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले के युग में गुरुकुल आन्दोलन को जनता और राष्ट्रिय नेताओं से इतना अधिक सहयोग और शक्ति मिली थी, कि उन दिनों प्रत्येक नेता गुरुकुलों में आना तथा देखना अपना कर्तव्य समझता था। यद्यपि गुरुकुलों का सञ्चालन आर्यसमाज द्वारा हो रहा था, किन्तु रचना का स्वरूप इस प्रकार का था कि विदेशों से आने वाले शिक्षा विशेषज्ञ भी अपनी भारत यात्रा उस समय तक अधूरी समझते थे, जब तक वे गुरुकुलों के दर्शन न कर लें। वस्तुतः उस समय यह उचित ढंग का एकमात्र राष्ट्रिय शिक्षा आन्दोलन समझा जाता था। असहयोग आन्दोलन के दिनों में भारतीय नेताओं ने इस बात का प्रयत्न किया कि वे राष्ट्रिय शिक्षा संस्थाओं को चलाएं। इन सब ने गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली का अनुसरण किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। यह कहा जाता है कि अब हमारे देश की बाग डोर हमारे हाथ में आ गई है, हम इस स्थिति में हैं कि अपनी शिक्षा पद्धति का निर्णय इच्छानुसार कर सकें। इस समय शिक्षा क्षेत्र में होने वाली सभी कार्यों को राष्ट्रीय शिक्षा कहा जाना चाहिए, किसी संस्था या प्रणाली विशेष को ऐसा दावा करने का अधिकार नहीं कि केवल उसी को राष्ट्रिय कहा जाना चाहिए। कुछ अंशों में यह सत्य भी है। जो शिक्षा पद्धति राष्ट्र के सीधे नियन्त्रण में हो और उसे किसी अन्य शक्ति द्वारा ऊपर से न थापा गया हो, वह शिक्षा पद्धति निश्चित रूप से शब्दार्थ की दृष्टि से राष्ट्रिय है



श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार

किन्तु वास्तव में आज हम भारत में जिस पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं, वह राष्ट्रिय नहीं क्योंकि यह शिक्षा पद्धति हमारे देश की नहीं है। यदि यह राष्ट्रिय है, तो केवल शब्द की दृष्टि से इसे ऐसा मानना चाहिए न कि भावना की दृष्टि से अंग्रेजों के आने के बाद भारत की शिक्षा पद्धति में हमने क्या परिवर्तन किये हैं। गुरु शिष्य के सम्बन्धों में इतना अधिक तनाव है

कि अनुशासन समस्या निरन्तर बढती जा रही है। चरित्र-निर्माण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। शिक्षण के कार्य का अध पतन हो गया है, उसने स्वयं अपनी मजबूरी के लिए सघर्ष करने वाले मजदूरों के पेशे का रूप धारण कर लिया है। क्या यही राष्ट्रिय शिक्षा है। राष्ट्रिय शिक्षा के लिये वस्तुत राष्ट्रिय भावना से ओत-प्रोत होना आवश्यक है। ऐसी विशेषता रखने वाली शिक्षा को ही राष्ट्रिय कहलाने का अधिकार है। अंग्रेजों से विरासत में पाई हुई उस शिक्षा-पद्धति को राष्ट्रिय नही कहा जा सकता, जो न तो ब्रिटेन मे है और न ही अन्य देशोंमें पाई जाती है।

मेरी दृष्टि मे इस समय प्रचलित शिक्षा स्वय इसलिये राष्ट्रिय नहीं हो सकती क्योंकि इसका सचालन अब हमारे हाथो मे है। राष्ट्रिय शिक्षा मे कुछ राष्ट्रिय विशेषताए होनी चाहिए। हमारी वर्त्तमान शिक्षा मे उसका शोचनीय अभाव है। इसके अतिरिक्त मेरा यह भी कहना है कि ये राष्ट्रिय विशेषताए वर्त्तमान समय मे गुरुकुल शिक्षा-पद्धति मे विद्यमान हैं, और स्वतत्रता प्राप्त हो जाने के बाद भी गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के इस दावे को कोई चुनौती नही दी जा सकती कि उसके अनुसार चलने वाली सस्था राष्ट्रिय शिक्षा सस्था कही जानी चाहिए। इस समय यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि भारतीय शिक्षा मे किन विशेषताओ का राष्ट्रिय कहा जाना चाहिए। वास्तविक राष्ट्रिय शिक्षा को मुख्य विशेषताए निम्नलिखित हैं—

(क) भारतीय शिक्षा पद्धति गुरुकुल शिक्षा कहलाती थी—गुरुकुल शिक्षा-पद्धति के इतिहास की गहराई मे जाने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु हमारे साहित्य का सामान्य परिचय रखने वाले व्यक्ति भी भी यह जानते हैं कि प्राचीन भारत मे शिक्षा देने वाली सस्थाओं को गुरुकुल कहा जाता था। हमारे शिक्षा-शास्त्रियों ने जिस शिक्षण-पद्धति का विकास किया था, उसे गुरुकुल का नाम दिया गया। अत भारत मे यही शिक्षा-पद्धति प्रचलित थी, अत गुरुकुल पद्धति ही हमारे देश की राष्ट्रिय शिक्षा-पद्धति कहलाने का अधिकार रखती है।

(ख) गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र मे एक पद्धति का नाम है, किसी विशेष सस्था का नाम नही है। गुरुकुल शब्द एक शिक्षा पद्धति को सूचित करता है न कि किसी विशेष सस्था को। जसे शिक्षा मे एक बुनियादी पद्धति है, वैसे ही इसमे गुरुकुल-पद्धति है। गुरु का अर्थ पढाने वाला शिक्षक है और कुल परिवार को कहते है। गुरुकुल पद्धति परिवार से गहरा साम्य रखती है, इसमे गुरु पिता का स्थान ग्रहण करता है और शिष्य पुत्र का। गुरुकुल पद्धति मे लडका अपने माता पिता के छोटे कुल से पृथक् होकर के गुरु और उसके शिष्य के विशाल कुल का सदस्य बनाया जाता है। इसका यह अभिप्राय है कि गुरु और शिष्य मे वसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए जैसा एक परिवार मे पिता और उसके पुत्र मे होता है। शिक्षा के क्षेत्र मे यह सर्वथा नवीन दृष्टिकोण है, और हमारी समूची राष्ट्रिय शिक्षा-पद्धति की आधार शिला यही दृष्टिकोण होना चाहिए।

(ग) गुरुकुल का अभिप्राय एक जीवन भी एक पद्धति है न कि कोई पाठ्यक्रम या पढाई जाने वाली पुस्तक। सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि गुरुकुल का अर्थ वेदो, शास्त्रो तथा संस्कृत साहित्य की शिक्षा देना है और उसमे आधुनिक विषयो का स्थान नहीं होता। यह विचार सत्य नही है। गुरुकुल सरल जीवन और उच्च विचार पर बल देने वाली एक जीवन पद्धति है। इसका किन्हीं पुस्तकों या भाषाओ से कोई सम्बन्ध नही है। संस्कृत का ज्ञान रखने वाला एक पण्डित भी अगुरुकुलीय जीवन बिता सकता है और पश्चिमी ज्ञान का प्रकाण्ड पण्डित गुरुकुलीय जीवन पद्धति का अनुसरण कर सकता है। इसलिये गुरुकुल कागडी विश्व विद्यालय तथा अन्य गुरुकुलों ने इस शिक्षा-पद्धति के अनुसार छात्रों में गुरुकुलीय जीवन भरने का प्रयास किया है। जब यह गुरुकुलीय जीवन तथा गुरुकुल का दृष्टिकोण हमारी शिक्षा मे ओतप्रोत हो जायगा तभी हमारी शिक्षा-पद्धति राष्ट्रिय बनेगी, यह अन्य किसी प्रकार से सभव नही है।

(घ) ब्रह्मचर्य अथवा चरित्र निर्माण गुरुकुल शिक्षा-पद्धति की आधार शिला है। गुरुकुल के जीवन

म मूर्त रूप ग्रहण करने वाला भारतीय शिक्षा का राष्ट्रिय रूप इसके ब्रह्मचर्य के आदर्श म सर्वोत्तम रूप म व्यक्त हाता है। ब्रह्मचर्य अविवाहित जीवन तक सीमित नहीं है, किन्तु यह अपने व्यापक अर्थ म अपने मे चरित्र निर्माण के समूचे क्षेत्र का समावेश करता है। वर्त्तमान समय म हमारी शिक्षा राष्ट्रिय इसलिये कहा जाता है कि इसका सचालन राष्ट्रिय नेताओं के हाथ म है। इसम चरित्र निर्माण की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता अत यह गुरुकुल पद्धति के राष्ट्रिय प्रतिमान के अनुसार नहीं है। राष्ट्रिय शिक्षा चरित्र निर्माण के मूल आधार पर प्रतिष्ठित होना चाहिये। गुरुकुल पद्धति की मुख्य विशेषता—गुरु और शिष्य के अहर्निश घनिष्ठ सम्पर्क द्वारा चरित्र का निर्माण करना है।

(ड) शिक्षा के क्षेत्र म गुरुकुल एक आदोलन है—शिक्षा के क्षेत्र म गुरुकुल के विचार का श्रीगणेश एक नई विचारधारा और नये आन्दोलन के रूप म हुआ। यह जनता म इतना लोकप्रिय हुआ कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहिले के युग म प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चे को गुरुकुल म ही शिक्षित कराना चाहता था। उस समय जो व्यक्ति किसी शिक्षा संस्था को राष्ट्रिय ढंग से चलाना चाहता था वह गुरुकुल के रूप म ही सोचता था। गुरुकुल शब्द के साथ आने वाले सभी विचार हमारी राष्ट्रिय शिक्षा के मूल तत्त्व हैं।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की उपर्युक्त विशेषताओं का हमारी वर्त्तमान शिक्षा पद्धति म पूर्ण अभाव है। अतएव यह बात पूरे बल के साथ कही जा सकती है कि यद्यपि शिक्षा की नीति का निर्माण हमारे हाथों म है, किन्तु अभी तक हमने शिक्षा की वास्तविक राष्ट्रिय पद्धति का ग्रहण नहीं किया। यत गुरुकुल आन्दोलन के अन्तर्गत चलने वाली संस्थाएं इन राष्ट्रिय आदर्शों को व्यावहारिक रूप प्रदान कर रही हैं, अत उन्होंने अपना राष्ट्रिय स्वरूप अक्षुण्ण रखा है और भारतीय शिक्षा पद्धति के कर्णधारों को उन पर गम्भीर विचार करना चाहिये। महर्षि निर्वाण की स्मृति वेला म प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है कि वह उनके गुरुकुल शिक्षा प्रणाली सम्बन्धी मार्गदर्शन से प्रेरणा ले और गुरुकुल आन्दोलन का क्रियात्मक समर्थक बन राष्ट्रिय शिक्षा को आदर्श बनावें।

———

एक दीप बुझ गया

एक दीप बुझ गया इसी दिन, अनगिन जीवन दीप जलाकर !
वह प्रकाश लेकर आया था, अन्धकार कैसे रह पाता !
ऐसा-वैसा दीप नहीं था, एक झकोरे मे बुझ जाता !
झञ्झानिल भी मुग्ध रह गया, जिसकी दीपित ज्योति शिखा पर !
एक दीप बुझ गया इसी दिन, अनगिन जीवन दीप जलाकर !

विघ्नों ने दी जिसे बधाई, शूलों ने सत्कार किया था।
दुनिया के दुर्व्यवहारो ने, विष का ही उपहार दिया था !
अवरोधो की अन्ध दृष्टि ने, स्वागत किया उपल बरसाकर !
एक दीप बुझ गया इसी दिन, अनगिन जीवन दीप जलाकर !

उत्पातो की आग देखकर, जिसे हो गई पानी-पानी !
रोडे भी रोपडे भूल पर, मृत्यु प्राण लेकर पछतानी !
पत्थर भी पत्थर न रह सके, फूल बने सिर से टकराकर !
एक दीप बुझ गया इसी दिन, अनगिन जीवन दीप जलाकर !

वेद विभा से तिमिर ध्वस्त कर, जले दीप-से, निर्भय होकर !
तेरी इच्छा पूर्ण हो गयी, प्रभु की इच्छा मे लय होकर !
नयी ज्योति भर रहे युगों से, दीप-दीप मे तुम मुस्काकर !
एक दीप बुझ गया इसी दिन, अनगिन जीवन दीप जलाकर !

—लाखनसिंह भदौरिया, मैनपुरी

★ ★ ★

आ गयी दीपावली

आर्य संस्कृति दीप चमके आ गयी दीपावली ।
वह चले श्रुति सोम झरने आ गयी दीपावली ॥
स्वाध्याय सौरभ जग उठा फिर 'धर्म' मर्यादा बढी ।
अज्ञान का तम तोम हरने आ गयी दीपावली ॥
उच्चरित हो 'ओ३म्' पर घर पारिवारिक यज्ञ में ।
उल्लसित हृत्तार झनने आ गयी दीपावली ॥
सबके घरो में एक जैसे दीप ज्योतित हो रहे ।
एकात्मता का पाठ पढ़ने आ गयी दीपावली ॥
वायु मण्डल शुद्ध करने लग गये जल जल दिये ।
निःस्वार्थ सेवा भाव भरने आ गयी दीपावली ॥
राम के आदर्श का ऋषिराज के ध्रुव सत्य का ।
सच्चरित शुचि सार करने आ गयी दीपावली ॥
आ गयी वह आर्य प्रेरक आज गुरु बलिदान तिथि ।
शक्ति पर नवधार धरने आ गयी दीपावली ॥

—धर्मचन्द्र वर्मा 'धर्म' लखनऊ



दीपावली का दिव्य संदेश



ले०—आचार्य श्री रमेशचन्द्रजी शास्त्री, विद्याभास्कर, भारतीय विद्या प्रतिष्ठान, अजमेर

दीपावली प्रति वर्ष आती है। भविष्य में भी युग युगान्तर तक आती रहेगी। इसके आवागमन में किसी प्रकार की बाधा पड़ने वाली नहीं है। करोड़ों स्त्री पुरुष इस पर्व को बड़े उत्साह एवं उल्लास के साथ मनाते हैं। आन्तरिक प्रसन्नता की जैसी लहर इस पर्व पर देखने को मिलती है, वैसी अन्य पर नहीं मिलती।

दीपावली के साथ अनेक मधुर तथा कटु स्मृतियाँ हमारे समाज की बँधी हैं। लाखों वर्ष से मनाए जाने वाले पर्व के साथ ऐसा होना सम्भव ही है। हमें तो इस बात पर विचार करना है कि हम दीपावली क्यों मनाते हैं? दीपक जलाकर प्रसन्नता का अनुभव क्यों करते है?

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अन्धकार से भागकर प्रकाश की ओर बढ़ता है। मनुष्य ही क्या, उल्लू को छोड़कर सभी प्राणी प्राय प्रकाश की ओर बढ़ो देखे जाते हैं। उल्लू तो उल्लू है, यदि वह भी प्रकाश की ओर बढ़ता तो फिर उसे उल्लू ही कौन कहता? इसका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य प्रकाश से दूर भागता हो उसे उल्लू ही कहना चाहिये। बात भी ऐसी ही है।

दीपावली पर दीपक जलाकर अमावस्या की घोर अन्धरात्रि का अन्धकार दूर किया जाता है। यह तो हमारी भौतिक व्यवस्था है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान का दीपक जलाकर हम अपने आध्यात्मिक अज्ञानान्धकार को दूर भगाने का प्रयत्न करें, यह इस पर्व का तात्विक भाव है। वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध वाक्य—"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमयेति" का भी यही भाव है। हम सतत् असत्य से सत्य की ओर बढ़ते रहें। अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ते रहें। मृत्यु से अमृत की ओर बढ़ते रहें।

'असत्य से सत्य की ओर बढ़ना' साधन है, इसके बिना हमारा अज्ञान अन्धकार नष्ट नहीं होगा अर्थात् सत्य के द्वारा हम अपने आत्मा में ज्योति उत्पन्न करें। जब हमारे भीतर ज्योति जग जाएगी तभी हम मृत्यु से दूर हट कर अमृत की प्राप्ति कर सकेंगे। अमृत की प्राप्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। यह अमृत उसे तब मिलेगा जब वह सत्य के द्वारा ज्योति प्राप्त कर लेगा। सत्य के बिना प्रकाश नहीं और प्रकाश के बिना अमृत नहीं।

दीपावली का भौतिक प्रकाश मार्गदर्शक है। जहाँ जहाँ दीपक जलता है, मार्ग का अन्धकार वहाँ से हट कर दूर चला जाता है। इसी प्रकार सत्य आध्यात्मिक प्रकार का प्रतिष्ठाता है। सत्य के बिना आत्मा में प्रकाश नहीं हो सकता।

दीपक में स्नेह तैल होता है, जो जलता है और प्रकाश की सृष्टि करता है। स्नेह-प्रेम के बिना प्रकाश नहीं। आत्मा में प्रेम नहीं तो राग द्वेष आकर बैठ जायेंगे, वे आत्मा को कभी प्रकाश की ओर न बढ़ने देंगे। इस कारण आत्मा में प्रेम की ज्योति को प्रज्वलित करना मानव का मुख्य कर्त्तव्य है। वह प्रेम व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत होना चाहिये। एकत्व से अनेकत्व की ओर ले जाने वाला होना चाहिये। महात्मा बुद्ध के सन्देश—"बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" में यही समष्टिगत प्रेम परिलक्षित है। सन्त कबीर तो प्रेम के बिना किसी का पाण्डित्य मानने के लिये तैयार नहीं। "ढाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय" सचमुच ये ढाई अक्षर इस जीवन के सार रूप हैं।

दीपावली के अवसर पर ... । अन्धकार से हटकर प्रकाश की ओर ... हटकर समष्टि प्रेम की ओर बढ़ना । मृत्यु से हटकर अमृत की ओर बढ़ना ।

हम भारतीय इन महान् सन्देशों को ... वर्षों से अपने जीवन में उतारते आ रहे हैं और संसार को सुनाते आ रहे हैं । भगवान् महावीर स्वामी और महर्षि दयानन्द ने दीपावली के दिन ... उत्सर्ग करके यही पावन सन्देश ... था । क्या आज का पीड़ित मानवता इन सन्देशों को सुनेगी ? क्या आज का ... इस सन्देश को समझेगा ? क्या आज का ... इन सन्देशों का पालन करेगा ? यही प्रश्न ... जिनका आज हम उत्तर देना है ।

———

आर्य शिक्षा संस्थाओं को सूचना

सभा की ओर से जो ... आर्य ... प्रस्तुत आर्य शिक्षा संस्थाओं को भेजा गया है ... शिक्षा संस्थाओं के अधिकारी ... उसका किसी प्रकार का परिवर्तन न करें । जिन बातों के सम्बन्ध में मतभेद प्रतीत होता हो सभा की ओर से शिक्षा विभाग से उनके सम्बन्ध में पत्राचार किया जा सकता है ।

भवदीय —

रामबहादुर मुख्तार

अधिष्ठाता शिक्षा विभाग

उत्तरप्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा

पूरनपुर—जिला पीलीभीत

पुत्र गुणपति ... पुत्र ... गुणवान होने पर पिता को अनुपम सुख होता है ।

पिता को अपनी सन्तान की पवित्रता से जितना ठटक पड़ती है उससे अधिक अन्य किसी बात से नहीं । किसी के भाग्योदय होने पर ही उसे गुणी पुत्र प्राप्त होते हैं । पुत्रों के पास विद्या, धन तथा सुचरित्र होने पर पिता ही नहीं समस्त सम्बन्धियों को दिव्य सुख और दिव्य हर्ष प्राप्त होता है । × ×

नास्ति खलस्य मित्रम् ।

धूर्तका कोई मित्र नहीं होता । सज्जन से दुर्व्यवहार करने वाला खल बन्धुहीन होता है । मित्रता का गुण सज्जनों में ही होता है। दुर्जन सज्जनों से वैर करके अनिवार्य रूप से बन्धुहीन होकर मित्र द्रोही बन जाता है । × ×

जाति रक्षक महर्षि

[लेखक—श्री इन्द्र वर्मा एम०ए० रामनगर, ननीताल]


लेखक—



यों तो समय समय पर भारत मे, अनेक महान् विभूतिया जन्म लेती ही रहती है, किन्तु महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का जन्म लेना भारत के लिये एक विचित्र एव चिरस्थायी घटना है। स्वामी जी का जन्म एसे समय म हुआ था, जब कि भारत का स्थिति बड़ी ही दयनीय था। हिन्दू समाज पतन की ओर अग्रसर था। छुआछूत, साम्प्रदायिकता, मुस्लिम जाति के अत्याचार, विधवाओं की दयनीय स्थिति, बाल विवाह आदि अनेक कुरीतिया से समाज म त्राहि त्राहि मची हुई थी। चारो ओर अविद्या रूपी अन्धकार के बादल मडराये हुय थे। भारत की भोली भाली जनता को कोई सहारा देने वाला भी न था। चारो ओर से एक ही आवाज आती थी 'भारत की नाव सकट मे है'। माना इसी सकटग्रस्त नाव का बचाने एव किनारे लगाने के लिये प्रभु ने महर्षि को ससार मे जन्म दिया हो।

महर्षि ससार में आये। ससार की समस्याओं का अध्ययन करने का अवसर उन्हे भारत मे मिला और अन्त मे उन्होंने ससार के कल्याण के लिये 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नारा लगा सम्पूर्ण हिन्दू (आर्य) जाति को चेतन कर दिया। यदि महर्षि ने उस सकट के समय भारत का यह मुग्ध-मत्र न दिया होता तो सम्भव था कि भारत से हिन्दू (आर्य) जाति सदैव के लिये नष्ट हो जाती। अत आज हमारा हिन्दू समाज महर्षि का ऋणी है और रहेगा।

महर्षि दूरदर्शी थे। वह जानते थे कि उनके पश्चात् सम्भवतया उनका मुग्ध-मत्र ससार से ओझल हो जाय। अत उन्होंने यह आवश्यक समझा कि भारत में एक स्थायी सस्था की स्थापना कर दी जावे जो उनके उद्देश्य की पूर्ति एव हिन्दू समाज की रक्षा कर सके और जिसको उन्होंने किया था [illegible]। सबसे प्रथम बम्बई में सन १८७५ म इसी उद्देश्य से एक सस्था की स्थापना की गई जिसको 'आर्यसमाज' अर्थात् 'आर्यों का समाज' नाम दिया गया। आज आर्यसमाज की शाखाये भारत में सर्वत्र एव अनेक अन्य देशो मे भी है। स्वामी जी ने इस सस्था के दश नियम भी निर्धारित किए जिनसे कि आज प्रत्येक आर्य भली भाँति अवगत है।

अत आज दीपावली के अवसर पर प्रत्येक आर्य भाई का कर्तव्य हो जाता है कि वह घर की स्वच्छता के बाद अपने घर में यज्ञ करे। उस महर्षि का गुणगान करे, आर्यसमाज के दश नियमों को पढकर उस पर मनन करे, तथा सायकाल अपने घर पर दीप मालाओं का सुशोभित कर हर्षित हो और अपने भाइयो को यथा सभव मिष्ठान वितरित करें। आज के दिवस प्रसन्नता से वृहद यज्ञ करना अत्यन्त उपयोगी होता है क्योंकि वर्षा काल मे घर मे जितनी गन्दगी हो जाती है, वह दूर हो जाती है। तथा कीड़े मकोड़े तथा मच्छर आदि जो पैदा हो जाते हैं, वह सभी नष्ट हो जाते हैं। आज के दिवस ऐसा करने से वर्ष भर स्वास्थ्य लाभ होता है तथा घर धन धान्य से परिपूर्ण रहता है। इसके अतिरिक्त आज हमारा यह भी कर्तव्य हो जाता है कि हम आर्य समाजो में यज्ञ कर सम्पूर्ण हिन्दू समाज को दीपावली के सही महत्त्व को जैसा कि स्वामी नारायण जी ने अपनी 'पर्व पद्धति' पुस्तक में लिखा है, समझायें और उन्हें जुआ, शराब आदि कुरीतियों से बचने की ओर प्रेरित करें। ———

ऋषि दयानन्द का राजनैतिक संदेश

[ले०—श्रीमती सुशीलादेवी जी विद्यालङ्कृता भूतपूर्व मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, म०द० आन्ध्र]

जिसका मन आजाद है वह गुलाम होकर भी आजाद है, पर जिसका मन ही गुलाम वह आजाद भी गुलाम है, ऐसा ऋषि का विश्वास था। अत भारत की मानसिक मुक्ति के लिये सबसे पहिले अंग्रेजो और अंग्रेजियत से लोहा लेने के लिये अंग्रेजी के मुकबिले हिन्दी को खडा किया तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के मुकाबिले मे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को, उनकी भारतीय राजनीति का यह एक अपूर्व और कभी न भुलाई जा सकने योग्य देन थी। स्वय गुजराती होते हुए भी अपने ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे, हिन्दी को आर्य भाषा का नाम देकर गौरवान्वित कि"। विदेशी सुराज से अपना राज्य जैसा भी हो अच्छा है। इसका प्रचार किया, स्वदेशी का मूलमन्त्र दिया। यह स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा ऋषि के द्वारा दिये गये मन्त्र थे, जिस पर आगे जाकर महात्मा गाधी ने भाष्य किया और जिनके आधार पर भारत स्वतन्त्र हो सका।

ऋषि के जीवन का बहुत बडा भाग रियासतों मे घूम घूमकर राजाओ के हृदय मे स्वदेश प्रेम की ज्योति जगाने म व्यतीत हुआ। आज इतिहास की खोज करने वालो का विचार है कि प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध के सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह के सूत्रधार भी स्वामी दयानन्द ही थे। उनके वेद भाष्य के हर मत्र के आखिर मे चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य की स्थापना का प्रबल सकल्प झलकता है। सत्यार्थ प्रकाश का तो पूरा छठा समुल्लास ही राजधर्म पर लिखा गया है। एक तरफ सामाजिक कूटनीतियो पर कुठाराघात करते थे। दूसरी ओर राजनीति को भी मानव हित साधिका बनाना ऋषि का लक्ष्य था। धर्म और राजनीति दोनो अलग अलग नहीं दोनों मिलकर ही मानव का कल्याण कर सकते हैं। शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा इन चारों के संयोग का नाम ही मनुष्य है। मनुष्य की उन्नति का मतलब है शरीर का बल बढ़े, मन की शक्तियो का विकास हो। बुद्धि की वृद्धि हो और आत्मिक शक्तियाँ भी बढे। इसीलिये पुरुषार्थ भी चार ही माने गये है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। शरीर के लिए अर्थ मन के लिए काम बुद्धि के लिये धर्म और आत्मा के लिए मोक्ष है। इन चार मे आर्य सस्कृति की जीवन के प्रति सम्पूर्ण विचार धारा प्रतिबिम्बित हो जाती है। मनुष्य की सब प्रकार की इच्छाए इनके अन्दर आ जाती हैं। शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये अर्थ की आवश्यकता है मानसिक आवश्यकताओ के लिए काम की। यह दोनो मानव जीवन के आवश्यक अग हैं। पर यह ही सब कुछ नहीं क्योकि हमारे जीवन का लक्ष्य सिर्फ अर्थ और काम का सम्पादन मात्र नहीं। आज की सभ्यता अर्थ और काम प्रधान सभ्यता है। इसी से जितने भी नये नये वाद निकल रहे है अर्थ का आधार ही बनाकर चलते है, पूजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, इनका देख कर आज का विचारक समझता है, मनुष्य की असली समस्या आर्थिक है, पैसे की गुत्थी सलझ गई तो सब गुत्थियाँ सुलझ जायगी। पर आर्य सस्कृति का दृष्टि कोण यह है कि पैसे का प्रश्न हल होने पर भी मनुष्य की असली समस्या हल नहीं हो सकती। मनुष्य केवल शरीर नहीं। शारीरिक भूख के शान्त हो जाने बाद कोई और भी भूख है जिसे शान्त करना है। हम शरीर नहीं आत्मा है। ससार की वास्तविक सत्ता केवल प्रकृति की नहीं जिसके रहस्यो का खोलने के लिये आज का वैज्ञानिक मतवाला हो रहा है। वह प्रकृति ही सब कुछ नहीं परमात्मा है, जो इस रगमच का वास्तविक सूत्रधार है। ससार में वे व्यक्ति महान् आत्मा बन सके जिन्होने अर्थ और काम का अपना लक्ष्य न मानकर साधन माना। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' को अपने जीवन का लक्ष्य मानकर चले। जीवन का

लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है। शरीर और मन से मुक्ति चाहिए। शरीर और मन के द्वारा ही। यह ऐसी पहेली है जिसे हमारे ऋषि आदि काल से हल करते आये है एक तराजू लो एक पलडे पर अर्थ काम को रखो। एक पर मोक्ष को। तराजू की डंडी धर्म के हाथ मे पकड़ा दो। तब तुम मोक्ष के भागी बन सकते हो उस मुक्तावस्था के मोक्ष की बात जो ऋषियो के जीवन का लक्ष्य थी, छोड दीजिए। शायद आपको रुचिकर न लगे, पर मोक्ष का सादा-सा अर्थ है दुःखो से मुक्ति, दुःखों से छुटकारा। यदि धर्मपूर्वक अर्थ और काम का भोग किया जाय तो सासारिक दुःखो से मोक्ष मिल सकता है महामुनि वेद व्यास लिखते हैं।

ऊर्ध्व बाहुविरोम्येष, न च कश्चित्छृणोतिमाम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च, स धर्म कि न सेव्यते॥

यह थी ऋषियो की जीवन योजना, अर्थ और काम का सम्पादन कैसे हो। उत्पन्न पदार्थों का सवि-भाजन किस प्रकार हो, यह काम है राजनीति का। पर जब कि उसकी डोरी धर्म के हाथो न होगी, तब तक राजनीति मुक्तिदायिनी कैसे बन सकती है ? ऋषि दयानन्द आर्य संस्कृति के पुजारी, आर्य संस्कृति के पुनरुद्धारक थे। वे मानव जाति के कल्याण के लिए इसी आर्य विचारधारा का प्रचार करना चाहते थे। वे जानते थे कि मानव भौतिकवादी लहरो मे बह गया तो लक्ष्य तक न पहुच सकेगा। राजनीति अंधी है यदि धर्म उसका मार्ग-दर्शन न करे। हमारा राष्ट्रिय गान था।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्। आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुसप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाःसभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो भिवर्षतु फलवत्योन औषधयः पच्यन्ताम्ः योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ 'यजुर्वेद'

हमारे राष्ट्र मे ब्राह्मण तेजस्वी हो, क्षत्रिय शूरवीर हों, भर-भर कर दूध देने वाली गाये हो, भारी-भारी बोझ ढोने वाले बैल हो। शीघ्रगामी घोड़े हों, गांव-का पथ-प्रदर्शन करने वाली नारी हों, युवा और वीर सन्तान हो, सर्वत्र विजय हो, बादल समय पर बरसे फल-फूल धन-धान्य से सब समृद्ध हो हम सबका योग-क्षेम हो, कल्याण हो, हम सबकी सब तरह की समृद्धि हो।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' यही हमारी सामूहिक प्रार्थना थी। आज तो भारत एक सेक्युलर स्टेट है। हिन्दी मे इसे धर्म निरपेक्ष राज्य कहते हैं। सच पूछिये तो यह नामकरण ही गलत है। इसे सम्प्रदाय निरपेक्ष मजहब निरपेक्ष कहिये तो चल सकेगा। पर निवेदन है राज्य को धर्मनिरपेक्ष राज्य मत कहिये। इस धर्म निर-पेक्षता का ही परिणाम है कि सब को सब तरह की आजादी है। अधर्माचरण, अधर्म,व्यवहार छाया हुआ है, सरकार जानती है, प्रजा का नैतिक स्तर गिर रहा है, हमारे माननीय मन्त्रियो को कष्ट होता है, व्यापार मे, बाजार मे,सरकार मे भ्रष्टाचार देखकर। यह पैसा बुद्धि ही हमारे पतन का कारण है। अर्थ और काम की ओर धर्म के हाथों न रहने से ही सर्वत्र हाहाकार मचा है। विश्व शान्ति के जितने नारे लगते हैं, विश्व शान्ति उतनी दूर खींचती जा रही है,धर्म निरपेक्षता के कारण धर्म की अन्य व्याख्यायें छोड दीजिये सीधी सी व्या-ख्या है धर्म की अपने से उच्च शक्ति पर विश्वास आस्तिकता, ऐसा विश्वास सदा मनुष्य को पाप से बचाता है। पर आज तो राजनीति के दलदल मे फस कर आस्तिकता और ईश्वर विश्वास की मान्यतायें, डावांडोल हो रही है। अर्थ और काम ही सब कुछ है। उनके लिए सब कुछ कुर्बान किया जा सकता है। फिर दुखो से छुटकारा कैसे हो। ऋषि दयानन्द इसी विचार की प्रतिष्ठा मानव समाज और राजनीतिज्ञों मे करना चाहते थे। वे चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य की स्था पना इसीलिए नहीं चाहते थे कि वे साम्राज्यवादी या साम्राज्य लोभी थे। जिसने अपने पिता की जायदाद पर ठोकर मारी। काम से बचने के लिए जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया। ऐसे अर्थ और काम निरपेक्ष महात्मा को अर्थ और काम का आक र्षक नहीं होता। वे तो आर्य साम्राज्य के विस्तार द्वारा आर्य संस्कृति की त्याग प्रधान विचारधारा का प्रचार

[शेष पृष्ठ ४८ पर]



ऋषि का धन्यवाद करो



[लेखक—श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज, आचार्य गुरुकुल घरौण्डा]

पाठक वृन्द ! अरबों वर्ष पुराने ससार के वैदिक धर्मी पथिक को मत-मतान्तरो की मदिरा मे मस्त मत वालों ने पथ-भ्रष्ट कर दिया । जैसे धूर्त बालक किसी सुमार्ग के यात्री को कुमार्ग पर लगा देते हैं और सुदूर देश में जाने पर यदि कोई सज्जन उचित मार्ग बता दे तो उचित मार्ग बताने वाले का यात्री धन्यवाद करता है । इसी प्रकार मत मतान्तरो में विभक्त मानव को ऋषि दयानन्द जी महाराज का धन्यवाद करना चाहिए । क्योकि सृष्टि के आदि से महाभारत पर्यन्त सबका एक ही धर्म था । जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, सिक्खादि मतो के प्रवर्तको ने वर्णाश्रमी वैदिक धर्मी को पथ-भ्रष्ट कर मत मतान्तरो की मदिरा पिला दी । महाभारत पर्यन्त रीति रिवाज, धर्म मर्यादा, विवाह, शादी दैनिक दिनचर्यादि एक ही प्रकार के थे । ससार के सभी सज्जन पुरुष अपने को आर्य मानते थे । और मिलते समय 'नमस्ते कहते थे । वेद ही सबका मान्य ग्रन्थ था । और ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक एक ही मानते थे । उसकी उपासना का प्रकार भी वेदानुकूल ही था । क्योकि लगभग तीन सौ साढ़े तीन सौ वर्ष से पूर्व कोई सिक्ख न था। और न चौदह सौ वर्ष से पहले कोई मुसलमान था । उन्नीस सौ साठ (१६६०) से पहले कोई ईसाई न था । लगभग तीन हजार वर्ष से पूर्व कोई जैन और बौद्ध न था । तो प्रश्न होता है कि सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध और जैनादि मत-प्रवर्त्तको के माता-पितादि क्या थे । क्योंकि जब तक तत्तत् मतो के सचालको का जन्म भी नहीं हुआ था । अत एक ही उत्तर है कि ससार में सभी सज्जन पुरुष आर्य नाम से विख्यात थे । और दुष्ट जनो को अनार्य, म्लेच्छ और दस्यु आदि कहते थे । सिक्खों के दशम गुरु, गुरु गोबिन्द-सिह जी ने अपने आपको अपनी साखियो मे आरज (आर्य्य) धर्म का रक्षक कहा है । पंजाब में पुराने लोग 'य' को 'ज' कहते हैं । और जैन बौद्ध ग्रन्थों मे सभ्य पुरुषो को 'आर्य्य' शब्द से सम्बोधित किया गया है । देखो 'मज्झिम निकाय' में स्वय बुद्ध जी कहते हैं हे भिक्षुओ ! आर्य्यों के दर्शन से वञ्चित, आर्य्य धर्म से अपरिचित, आर्य्य धर्म मे अविनीत पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर समझता है इत्यादि अनेक प्रमाण दिए जा सकते है जैन धर्म के 'तत्वार्थाधिगमसूत्र' अध्याय तीन सूत्र पन्द्रह मे दो ही प्रकार के मनुष्यों का वर्णन आया है । 'आर्य्याम्लेच्छाश्च' अर्थात् एक आर्य्य और अन्य म्लेच्छ इसका भाष्य करते हुए भाष्यकार लिखते हैं 'द्विधा मनुष्याभवन्ति आर्य्या म्लेच्छाश्च' अर्थात् मनुष्य दो प्रकार के होते हैं एक आर्य्य और दूसरे म्लेच्छ । जैन भाईयो ने अपना नाम जैन कैसे रख लिया है ? जब कि उनके धर्म ग्रथ मे श्रेष्ठ जनो को आर्य्य ही कहा है । और इसके भाष्य मे आगे 'इक्ष्वाकुवशियो' को तथा 'यादवा' को भी आर्य्य वर्णन किया है । और छ प्रकार के आर्यों का वर्णन है । अत जैन भाई स्वय निर्णय करे कि वह अपने को आर्यों मे गिनते हैं अथवा म्लेच्छों मे । अत यदि वह अपने को श्रेष्ठ मानते हैं तो उन्हें अपने को आर्य्य ही कहना चाहिए । अपने धर्म शास्त्र की आज्ञा की अवहेलना करना सज्जनो का काम नहीं ।

तथा श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को गीता अध्याय मे दो श्लोक दो मे अनार्य कह करके उपालम्भ दिया है । 'अनार्य जुष्टम्' अर्थात् हे अर्जुन तुझे यह अनार्यों जैसा मोह कैसे उत्पन्न हो गया । और महाराज रामचन्द्र को बाल्मीकि रामायण में स्पष्ट आर्य्य वर्णन किया है 'आर्य्य' सर्व समश्चैव सदेव प्रिय दर्शन ' मूल रामायण श्लोक १६ । महर्षि बाल्मीकि के पूछे जाने पर ऋषिराज नारद ने जहाँ राम के अनेक गुणो का वर्णन किया है वहाँ राम को 'आर्य्य' अपने समय का श्रेष्ठ पुरुष कथन किया है । और ऋग्वेद मण्डल चार सूक्त २६ भगवान् स्वय कहते हैं कि मैंने सर्व

आर्यों !!




करोड़ों जले दीप मिट्टी के चाहें
तुम्हें ज्ञान दीपक जलाने पड़े गे ॥
युगों-से जलाते रहे दीप-माला अमा रूढ़ि काली नहीं मात खाती।
नहीं स्नेह सौजन्य का विन्दु पाते यहाँ द्वेष ईर्ष्या खड़ी मुस्कराती ॥




सुधा स्नेह-धारा बहाने से पहिले
खड़े दुर्ग दुर्जन हिलाने पडे गे ॥१॥
मनो मन्दिरों की पड़ी शून्य वीथी सुमित्रत्त्व के गीत सोये पडे हैं।
बजे वीण कैसे कहो जागरण की सभी उन्मने तार खोये पड़े हैं ॥




सुनो, राष्ट्र 'कल्याण' गाने से पहिले
लगे तार सब ही मिलाने पडे गे ॥२॥
दयानन्द की दिव्य निर्माण वेला हमे वर्ष में आ आकर जगाती।
सुधी कर्मवीरो डटो काय पथ में' यही सत्य सन्देश सबको सुनाती ॥




विजय गन्ध गौरव लुटाने से पहिले
महात्याग पाटल खिलाने पड़े गे ॥३॥

—कविवर "प्रणव" शास्त्री एम० ए०, फीरोजाबाद

प्रथम यह भूमि आर्य्य को दी है 'अह भूममदद दार्य्याय' अर्थात् मैंने यह भूमि निर्माण करके आर्य्य को दी है। और निरुक्त में तो 'आर्य्य' ईश्वरपुत्र है यह स्पष्ट लिखा है। संस्कृत साहित्य में सर्वत्र श्रेष्ठ जनों को आर्य्य ही कहा है। और शिला लेखों पर भी आज तक आर्य्य ही लिखा है, और काशी के विश्व नाथ मन्दिर के प्रवेश द्वार पर अभी तक भी यह अंकित है कि 'आर्य्य धर्मेतराणा प्रवेशोऽत्र निषिद्ध' अर्थात् जिनका आर्य्य धर्म नहीं है वह इसमें प्रविष्ट न हों। और मनु आदि धर्मशास्त्रों में इस भूखण्ड को आर्य्यावर्त्त कथन किया है।

अंग्रेजों ने इस देश का नाम इंडिया रखा, मुसलमानों ने हिन्दुस्तान, राजा भरत के नाम पर भारतवर्ष पड़ा किन्तु महर्षि ने हमें स्मरण कराया कि इस देश का वास्तविक नाम आर्यावर्त्त था और होना चाहिये। साथ ही विश्व में श्रेष्ठ पुरुषों की संज्ञा के रूप में आर्य्य शब्द की सहस्र स्थापना कर विश्व को नवीन दृष्टिकोण दिया।

ऋषि दयानन्द का राजनैतिक सन्देश

[पृष्ठ ४६ का शेष]

कर मानवमात्र को सुखी बनाना चाहते थे। छठे समुल्लास के सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम में वे लिखते हैं कि मनुस्मृति, शुक्रनीति, विदुर प्रजागर और महाभारत के शान्ति पर्व आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माडलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ति राज्य स्थापित करे और यह समझे कि "वय प्रजापते प्रजा अभूम) हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा है। प्रभु हमारे हाथ से सत्य न्याय की प्रतिष्ठा करावे। इन वाक्यों में ऋषि दयानन्द की सम्पूर्ण राजनीति की झलक स्पष्टरूप से प्राप्त होती है। उनका पूर्ण विश्वास था कि "जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता है। जब दुष्टाचारी होते हैं, तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। भगवान् हमे सद्बुद्धि दे। भारतीय राजनीति की उन्नति अवनति का मूल्यांकन भी इसी सूत्र द्वारा किया जाना चाहिये।

वेद का रहस्य प्रकाशित करने के कार्य में—



महर्षि दयानन्द का महत्व



(ले०—श्री प० दा० सातवलेकर जी, स्वाध्याय मण्डल, पारडी जि० सूरत-गुजरात)

वेद की रहस्यमयी पद्धति

वेद और अन्य धर्म ग्रन्थों में धर्म-प्रतिपादन की शैली' का एक महान् भेद है. वह भेद समझने के बिना अन्य ग्रन्थ तो समझ मे आजायगे, पर वेद मन्त्रों का रहस्य समझ में नहीं आयेगा। स्वल्प शब्दो में उस 'वेद के प्रतिपादन की शैली का विचार' इस लेख में करना है।

'विश्व, मानव समाज और मानव व्यक्ति इन तीन क्षेत्रों का उपदेश एक ही स्थान मे वेद देता है !!! ऐसी पद्धति उपदेश देने की वेदो में, ब्राह्मण ग्रन्थो मे और उपनिषदो में दीखती है। किसी अन्य धर्म ग्रथ में ऐसी पद्धति नहीं है।

विश्व का दृश्य

मनुष्य विश्व की ओर देखता है, तो अपने पाव के नीचे पृथवी है, सिर पर आकाश है और इन दोनो के मध्य में अन्तरिक्ष दीखता है। हर एक मनुष्य भूलोक, अन्तरिक्षलोक और द्युलोक ये तीन लोक देखता है। इसको 'त्रिलोकी' कहते हैं। इस त्रिलोकी मे सम्पूर्ण विश्व आ जाता है।

द्युलोक में सूर्य, नक्षत्र, सप्तर्षि आदि देवताये हैं, अन्तरिक्ष में चन्द्र, वायु आदि देवतायें हैं और भूमि पर अग्नि, जल, वृक्ष, पर्वत आदि देवतायें हैं। प्रत्येक लोक में ग्यारह-ग्यारह देवताये हैं। तीनो लोको मे मिलकर तैंतीस देवतायें हैं। इन तैंतीस देवताओ का मिलकर यह सम्पूर्ण विश्व बना है। इसको 'दैवी जगत्' या 'आधिदैविक विश्व' कहते हैं।

जो देवतायें इस त्रिलोकी में हैं, उनका ही वर्णन वेद में है, इस कारण वेद में 'आधिदैविक ज्ञान' है ऐसा कहा जाता है। आधिदैविक ज्ञान, आधिदैविक विद्या,



श्री प० दामोदर सातवलेकर जी

या विश्वविद्या इनका भाव एक ही है। विश्व मे नैसर्गिक स्थिति मे जो पदार्थ रहते हैं, उनका यह ज्ञान व्यक्त रीति से वेद में है। विश्व की ओर ऊपर ऊपर से देखने पर देखने वाले के मन में जो विश्व का साक्षात्कार होता है वही आधिदैविक ज्ञान है। मनुष्य पृथिवी पर खडा रहे और नीचे से ऊपर तक देखे तो उसकी दृष्टि मे पृथिवी, अग्नि, जल, वृक्ष, पर्वत, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र दीखते हैं। ये ही वेद की देवताये हैं। इनका वर्णन ही वेद मे स्थूल दृष्टि से देखने वालों के आखों से दीखता है, यहां आधिदैविक ज्ञान स्थूल दृष्टि वालो को वेद देता है। यह एक भाग हुआ।

व्यक्ति के शरीर में देवगण

अब मनुष्य के शरीर की ओर देखिये। वेद कहता

है कि—

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा विभेजिरे।
अथर्व १०। ७। ७३॥

सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते॥
अथर्व ११। ८। ३२॥

'जिसके अंग में तैंतीस देव गात्र—अवयव—बन कर रहे हैं। सब तैंतीस देवता इस मनुष्य के शरीर में गौवें गोशाला में रहतीं हैं उस तरह रहती हैं।'

इस वेद के कहने से मानव शरीर में सब ३३ देवतायें रहीं हैं। और शरीर के अवयव बन कर रहीं हैं। यह सिद्ध होता है। पर बुद्ध धर्म मत के अनुसार यह शरीर पीप विष्ठा-मूत्र का दुःखदायी गोला है। यह विचार प्रचलित था। उस कुविचार को भूलना और अपना शरीर देवताओं से परिपूर्ण है, यह वेद का कहना मानना लोगों को कठिन था।

सूर्य आंख में रहा है, अग्नि मुख में है, वायु नासिका में है, इन्द्र बाहुओं में, चन्द्रमा हृदय में, आपतत्व शिस्न में, पृथिवी पांवों में इस तरह अपने शरीर में तैंतीस देवों का निवास है, अर्थात् इस शरीर का एक एक अवयव एक-एक देवता का बना है। इस तरह सम्पूर्ण मानवी शरीर देवताओं का बना है।

जैसे विश्व में तैंतीस देवतायें हैं, उसी प्रकार और उसी क्रम से मानव शरीर में भी तैंतीस देवतायें हैं। सिर में द्यु लोक है और वहां द्यु लोक की देवतायें हैं, गले से नाभी तक का भाग अन्तरिक्ष लोक है और उसमें मध्य स्थान का देवता गण है, और नाभी से नीचे पृथिवी लोक है और यहां पृथिवी स्थान की देवतायें हैं। इस तरह अपने शरीर में त्रिलोकी है और त्रिलोकी की देवतायें यहां हैं।

इस रीति से सम्पूर्ण विश्व अंश रूप से अपने शरीर में है। विश्व में जो है वह सब अंशरूप से शरीर में है। विश्व के ज्ञान को 'आधिदैविकज्ञान' कहते हैं। और एक व्यक्ति के शरीरान्तर्गत ज्ञान को 'अध्यात्म-ज्ञान' कहते हैं। वेद का ज्ञान देने की पद्धति इस निसर्ग की पद्धति के अनुसार ठीक वैसी ही है। आधिदैविक ज्ञान के मन्त्र ही अध्यात्मज्ञान का बोध कराते हैं। सर्वसाधारण विद्वान् लोगों को यह बात समझने में आनी कठिन होता है।

और एक तीसरी कठिनता है कि व्यक्ति में जो गुण होते हैं, समाज में वे ही गुण 'गुणी' के रूप में रहते हैं। इसकी तालिका ऐसी बनती है—

विश्व में देवता	व्यक्ति में गुण	समाज में गुणी
१ अग्नि	१ वाणी	१ वक्ता, उपदेशक
२ इन्द्र	२ बल	२ बलवान, वीर
३ वायु	३ प्राण	३ दीर्घजीवी
४ सूर्य	४ तेजस्विता	४ तेजस्वी
५ पर्वत	५ स्थिरत्व	५ स्थान पर स्थिर रहने वाला वीर

इस प्रकार विश्व में देवता, व्यक्ति के शरीर में उनके गुण और समाज या राष्ट्र में उन गुणों से युक्त गुणी मनुष्य होते हैं। इन तीन स्थानों पर वेद मन्त्र का भाव देखना होता है। यही वेद मन्त्रों के अर्थ का रहस्य है। यह रहस्य ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में अनेक स्थानों पर अनेक उदाहरणों को देकर स्पष्ट किया है। इसी को (१)आधिदैविक, (२)आध्यात्मिक और (३) आधिभौतिक अर्थ कहते हैं। वेद का यह रहस्य यदि किसी भाष्यकार के ध्यान में प्रथम व्यापक दृष्टि से आया हो तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के ध्यान में आया था, ऐसा हम स्पष्ट रीति से कह सकते हैं। इनके भाष्य में प्रायः प्रत्येक देवता के मन्त्रों का अर्थ करने में इन्होंने इन तीनों रहस्यों के अर्थों की ओर पढ़ने वालों का ध्यान आकर्षित किया है। और अनेक मन्त्रों के अर्थ इस रीति से करके भी बताये हैं। आज के जमाने में प्रथम रहस्य अर्थ का दर्शन करने के लिये यदि किसी का आदर करना हो, तो वह सम्मान महर्षि श्री दयानन्द सरस्वती जी को ही सरलतया प्राप्त हो सकेगा।

योगी श्री अरविन्द जी

महर्षि जी का भाष्य प्रकाशित होने से पश्चात् अनेक विद्वानों को यह दिव्य दृष्टि इस भाष्य के अवलोकन से प्राप्त हुई। योगी श्री अरविंद घोष जी ने इस भाष्य से वह रहस्यमयी दिव्य दृष्टि प्राप्त की और

[शेष पृष्ठ ५२ पर]

निर्भीक दयानन्द

[रच० श्री कुसुमाकर जी, साहित्य रत्न फीरोजाबाद]



श्री कुसुमाकर जी

भारत का सन्त था, महन्त था महान् एक—
भारतीयता का वह विमल वसन्त था।
कामना अनेक लिए।
विमल विवेक लिए।
जी म एक टक लिए—
'जीवन की ज्योति जगती म फिर से जगे।
पर्यटन कर। हु—
देखा, राजवर्ग पडा घोर अन्धकार म।
वासना विलासिता के अशुचि अगार म।
'सुन्दरी सुरा' के सुखदायक दुलार म
मादक मनोभव के मद अभिसार म।
हृदय विदारक दशा का देख दयानन्द—
विकल हुए थे, कल चित्त म नहीं थी पलक
विद्युत के वेग से चरण बढन लगे,
चित्त म अनेकों चरुचय चढन लगे।
जग म कहावत है जनता नहीं कौन ?
"जैसा भूमिपाल हो, प्रजा का वही चाल हो।
उज्ज्वल भरा हो जग-जीवन का ताल—
तब मानस मराल भी सु भुक्ति मुक्ति पाता है।
लेके इसी लक्ष्य का।
अदम्य उत्साह का।
'वाह' की न कामना,न स्वार्थ भरी चाह हो।
दौड़े गये राज्य जोधपुर म प्रबोध का—
शोध को, सुधार को, अनोखे अनुराध को।
सुन आगमन नृप होकर मगन मन—
उल्लसित भाव से, सु सज्जित प्रासाद म—
ले गए समादर, बिठाया सर्वोच्च-मञ्च—
उच्च - उपदेश से हिये को भरने लगे।
यतिवर बोले—
"प्रिय राजन् सुनो दे कान—
राज्य को बना दो स्वर्ग धाम अभिराम तुम-
चालक बनो, परन्तु पालक प्रजा के रहो।
घालक बना न कभी, दीन हीन जनके" ॥
कहके 'तथास्तु'। चरणों को चूम 'तेज' पुञ्ज।
भक्ति भावना से राजनीति पढने लगे।
प्रीति की प्रतीति से प्रभाव बढन लगे।
किन्तु उनका था प्रेम नन्हीं' नर्त्तकी से महा—
अवसर देख एक दिन इसी बीच म—
प्यार से बुलाया, भव्य भाव दरसाया—
किन्तु ऋषि से चुराया, जो रहस्य गोपनीय था।
ऋषि का नियम भी महान् वर्णनीय था।
उठ ब्रह्म वेला म महर्षि नित्य जाते थे।
ब्रह्म लीन होते थे उपत्यका म शैल की।
लौटकर आते थे पभात रात बीते पर।
किन्तु एक दिन—
लौटे शीघ्र महलो के मध्य।
देखी, वर प्राङ्गण मे शिविका सजीली एक।
"बोले—यह क्या है ?
ऋषि आने की—सुनी जो पद—चाप तो
तुरन्त भूप—कांपे कदली से—
या विकम्पित थे बेत से।
चपल उपेन्द्र पर अनेक पड़ने लगे।
मानव मृगेन्द्र थे शृगाल से बिहाल बन।

लज्जित वसुन्धरा के अङ्क गढ़ने लगे।
प्रेयसी को इंगित किया कि तुम जाओ शीघ्र।
बैठ गई, त्वरित अतृप्त पालकी में जब—
झुक गई—जैसे ही,
लपक अवनीन्द्र ने—
विह्वल हो अपने सु-अश को लगा दिया।
सोच कर मेरा प्रेम-प्याला छलके नहीं।
नियतित हो न कहीं धरणि कठोर पर।
देख दुष्कृत्य, भोह ऋषि की कमान हुई।
भ्रुकुटि मरोड़-बल उन्नत ललाट पर।
फड़क उठे थे रद पुट, रक्तवर्ण नयन।
भड़क उठा था ज्वालामुखी शैल क्रोध का।
तड़िता से तड़प, गरज कहने लगे।
"भूमिपाल! तुमको न शर्म है, हया है कुछ,
ऐसी वे हयाई क्यों बताओ शीश धारली।"

'तेज सिंह' होके कुतियों का करते हो साथ।
सन्तति तुम्हारी शार्दूल क्या बनेगी कहो?
कुछ तो विचारो कर्म भूप का यही है भला?
सुन के दहाड़ दयानन्द की दवङ्ग भूप-
लज्जित, नमित पश्चात्ताप करने लगे।
होगा अपराध न भविष्य में कभी भी देव।
माँग-माँग क्षमा, अश्रु भरने लगे।
धन्य दयानन्द! निर्भीकता को धन्य तेरे-
सत्ताधारियों के भी सिंहासन हिला दिए।
स्वार्थ हीन संयम-सुधा के भरे घूँट कटु।
मृतक बने थे, नव-जीवन दिला दिए।
सन्त हो तो ऐसा हो।
महन्त हो तो ऐसा हो।
देव-दिव्य लोक में निनाद गूँजने लगा।
पुण्य भी पवित्र प्रेम-दीप पूजने लगा।

महर्षि दयानन्द का महत्व

(पृष्ठ ५० का शेष)

अंग्रेजी भाषा में वेद मन्त्रों का रहस्य अर्थ बताने के लिये पर्याप्त लेख लिखे हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के विषय मे तथा उनके वेदभाष्य के विषय मे योगी श्री अरविन्द जी ने जो अनुपम आदर बनाया है, वैसा आदर उसने किसी भी दूसरे विद्वान के सबध मे नहीं बनाया। श्री कपाली शास्त्री आदि अनेक विद्वानों ने उसके पश्चात् वेद का रहस्य अर्थ बताने का प्रयत्न किया। इन सबको जो दिव्य प्रकाश मिला वह महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाष्य से ही मिला, ऐसा हम कह सकते हैं। इसीलिये आधुनिक काल में 'ऋषि' यह पदवी स्वामी दयानन्द जी को मिली वह योग्य ही है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों के इस रहस्य पूर्ण अर्थ की ज्योति से भारत को प्रकाशित करके, भारत के द्वारा सपूर्ण जगत् को प्रकाशित करने का जो कार्यक्रम भारत के सामने रखा, और आर्यसमाज स्थापना करके जो उपक्रम किया, वह उपक्रम वहाँ तक ही रह गया है। वेदो का प्रकाशन, वेदानुवादों का विश्व की भाषाओं में प्रकाशन, भारत में तथा अन्यान्य देशों में वेद प्रचारार्थ वेद के यथार्थ ज्ञानी उपदेशक भेजना, इत्यादि उनके अनेक कार्य वैसे ही रहे हैं। पाठकों का ध्यान इस कार्य की ओर खींच कर हम इस लेख को यहाँ, महर्षि जी के विषय में आदर व्यक्त करके, समाप्त करते हैं।



प्रभु, जग का कण-कण ज्योतिर्मय कर दो

(ले०—श्री सुरेशचन्द्र वेदालकार एम० ए० एल० टी०, डी० वी० कालेज गोरखपुर)

दीपावली का पर्व अपना महत्त्व रखता ही था। इतिहास की विचित्रता यह है कि इस गौरव शाली आनन्ददायक सास्कृतिक इतिहास मे भविष्य मे अनेकानेक शृखलाये आवद्ध होती गई। इसी दिन भारतीय सस्कृति के अमर स्तम्भ, भक्तराज, सेवा के आदर्श, ब्रह्मचर्य के पालक हनुमान का जन्म हुआ जिनकी वीरता, त्याग तप और वलिदान सदा ही चिरस्मरणीय आदर्श रहेगे।



श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालकार

इसीदिन भगवान् रामचन्द्र १४ वर्ष का बनवास समाप्त कर, दुष्टता, अन्याय और अत्याचार के प्रतीक अन्धकार के उपासक रावण को समाप्त कर, सत्रस्त, मानवमात्र को भयमुक्त कर अपनी राजधानी अयोध्या में पधारे थे। उनके लौटने से सारा देश प्रसन्नता एवं आनन्द से फूल उठा था। इसी खुशी मे चारों दिशाओं मे ज्योति के, पुण्य के, और आनन्द के सूचक दीप जले थे।

जेन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी का यही निर्वाण दिवस था।

भारतीय आध्यात्मिक पुनर्जागरण के अधिष्ठाता स्वामी रामतीर्थ ने भी आज ही के दिन अपने को परमतत्व में लीन कर दिया था।

आधुनिक भारत ही नहीं विश्व को स्फूर्ति, चेतना और जागृति देने वाले महर्षि दयानन्द ने भी इसीदिन आत्म बलिदान कर आजीवन ज्ञान प्रसार करने के व्रत को इस अनुपम पुर्णाहुति से पूर्ण कर इस सास्कृतिक पर्व का महत्त्व और भी बढ़ा दिया।

उपर्युक्त घटनाओ पर विचार करने से हमे यह सोचना है कि वह कौन सी विचारधारा या प्रेरणा जो इस पर्व के साथ सम्बन्धित है। तो हमे मालूम पडेगा कि वह भावना है, मनुष्य अपने म शक्ति की स्थापना करे तब उसका मार्ग आनन्दमय एव प्रकाशमय होगा। दीपक की जलती बत्तियाँ हमें सिखाती है, कि ऐ मानव यदि तू जीवन का आनन्दमय बनाना चाहता है, तो अपने मे इतनी शक्ति पैदा कर कि तू अपने को जलाकर पथभ्रष्टो का मार्ग दिखा दे।

स्वामी रामतीर्थ, महावीर स्वामी और दयानन्द स्वामी ने यही तो किया। स्वामी दयानन्द से पूर्व देश की आभ्यन्तरिक शक्ति का ह्रास हो चुका था। और जब भीतरी शक्ति मे कमी होने लगती है, तभी राष्ट्रों का अन्त होता है। आर्य जाति दूसरो का अनुकरण कर पतन के कगारे पर खड़ी थी। जीवन की, जीवटता की, साहस की एक प्रतिमा सामने आई और उसने देश को ही नहीं, विश्व को सत्यार्थ प्रकाश का पाठ

पढ़ाया। चारों ओर उसके विरोधी थे, परन्तु उन विरोधियों की उसने जरा भी परवाह न की और आर्यों के समाज की स्थापना की। आज भारत की स्वतंत्रता और जागृति का प्रथम श्रेय इसी महर्षि को है। परन्तु बन्धुओं, आज इस पावन दिन पर विचारना है कि हम कहीं उस मार्ग से भ्रष्ट तो नहीं हो गए। कहीं रास्ता तो नहीं भूल रहे है ?

आज दूसरों के सुधार की बात तो बहुत दूर चली गई, हम आपस में इतने उलझ गए कि हमारी शक्ति विश्रृंखलित हो गई। यदि आज हमारी जरा भी श्रद्धा अपने इस संस्थापक और नेता के प्रति है तो मैं आज प्रत्येक आर्य समाजों से यह अपील करूंगा कि वह इस पवित्र दिवस पर त्याग, बलिदान एवं स्वाधीनता की भावना पर विचार करें और यह निश्चय करें कि हम अपने स्वार्थों को दूर कर परार्थ की ओर झुकेंगे। पदों का लोभ हम नहीं करेंगे। हम सच्चे अर्थों में आर्य बनने का प्रयत्न करेंगे।

आर्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह सुस्त, आलसी और कामचोर नहीं होता। वह तो जीवन का एक ही उद्देश्य समझता है 'चरैवेति चरैवेति' कार्य करो कार्य करो और जीवन में आगे बढ़ो। का प्रगाम पथो वयम्'। याद रखो, जितना से हम उतनी प्राप्ति होगा जितना कार्य को धन का हम पूजा लगायेंगे। यह पूजी लगाना जिन्दगी के संकटों का सामना करना है। उसके उस पन्ने को उलटकर पढ़ना है जिसके सभी अक्षर फूलों से नहीं कुछ अंगारों से भी लिखे गये है। इसलिए यदि प्रकाश की ओर जाना चाहते हो तो जहाँ हमें महर्षि के जीवन से कर्म की शिक्षा लेनी है, वहाँ संकटों का सामना करने के लिए दीपक की जलती बत्ती के समान अपने को बलिदान करने की प्रेरणा भी लेनी है। यह छोटे-छोटे पद, यह संस्थायें और इनके साथ लगी हुई सम्पत्ति का प्रलोभन-आज हमें कितना नीचे गिरा रहा है। यह हम सब जानते ही हैं। तो आइए कर्म और बलिदान दूसरे शब्दों में स्वार्थ-त्याग की शिक्षा लेकर दीपक के इस प्रकाश में अपनी अन्तरात्मा की कालिमा, पाप और अन्धकार को दूर करें। पारस्परिक निम्न कोटि की दलबन्दियों को समाप्त कर हम और आप स्वनिर्माण के साथ राष्ट्र में, समाज में शक्ति का संचार करने का निश्चय करें। यही सच्ची महर्षि के प्रति श्रद्धांजलि होगी। यदि हम यह निश्चय कर लेंगे तो हमारा मार्ग प्रशस्त होगा। अन्धकार विलीन होगा। प्रकाश की किरणें दिखाई देगी। आप इस निश्चय के साथ अपने अन्तःकरण में अवश्य सुनेंगे—

शक्तिशाली हो विजयी बनो,
विश्व में गूँज रहा जय-गान।
डरो मत अरे अमृत सन्तान,
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।।
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

अन्त में हम कवि के शब्दों में भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि —

जन मन में चिर शान्ति सरलता,
स्नेह सिक्त हो दिव्य मधुरता।
अमर प्रेम हो भव्य शीलमय,
व्यापे दिशि-दिशि सुकृत सरसता।
अग-बन्ध जर्जर कर जननी—
क्षण-क्षण पुलकित सब कर दो।
घृणा द्वेष प्रतिकार भावना,
और विषमता कलुष कामना।
हर लो जग से हे दुःखहारी,
जन मन की राग वासना।
आत्म ज्योति से ज्योतित हो मन,
पल-पल मंगलमय कर दो।
प्रभु ! जग का कण-कण ज्योतिर्मय कर दो ॥



महर्षि दयानन्द के पुनीत कार्य

ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का पाठ पढ़ाने आये
जिस दिव्य शक्ति से भू पर कोमल,
कलित कुसुम खिलते हैं।
हो समाधिस्थ जिससे योगी मन-
मन्दिर मे मिलते हैं।

वे मृदुल हृदय के सिंहासन पर उसे बिठाने आये,
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का पाठ पढ़ाने आये॥

जब विधवाओं की अश्रु धार निज,
वक्षस्थल धाती थी।
नैराश्य निशा मे मना भावना,
उनकी जब सोती थी।

वे दया और आनन्द उन्हें दे, दुख मिटाने आये।
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का पाठ पढ़ाने आये॥

जब शंकर स्वामी के अनुयायी,
स्वयम् ब्रह्म बनते थे।
जब नास्तिकता के घृणित पंक में,
आर्य स्वयम् सनते थे॥

वे द्वैतवाद के शुभ्र-स्रोत का, वेग बहाने आये।
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का पाठ पढ़ाने आये॥

हमने ऋषियों की पुण्य-भूमि पर,
बीज पाप के बोये।
जो अपने प्यारे बन्धु आप ही,
विधर्मियो में खोये॥

वे उन वियुक्त स्वजनो को सादर, कंठ लगाने आये।
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का, पाठ पढ़ाने आये॥

निज स्वार्थ अन्ध विश्वास लिये जब,
जड़ पूजन होता था।
पौराणिक घोर श्याम रजनी में,
जब भारत सोता था॥

वे निगम ज्ञान रवि हृदय बसाकर, उसे जगाने आये।
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का, पाठ पढ़ाने आये॥

जब मृतकों को भी शरीर पर
पिंड दिये जाते थे।
जब स्वर्ग भेजने के ठेके भी,
यहां लिये जाते थे।

वे कर्म भोग का राग प्रमुख ही, हमें बताने आये।
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का पाठ पढ़ाने आये॥

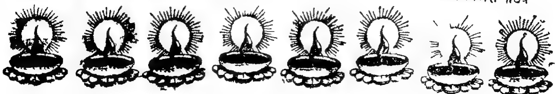
नर भक्ति भावना हृदय से,
जब रूठी जाता था।
निज वेद धर्म की मर्यादा ही
जब टूटी जाता था॥

वे गौतम मुनि का धर्म चक्र ले उसे चलाने आये।
ऋषि दयानन्द, वेदोक्त धर्म का, पाठ पढ़ाने आये॥

जब परतन्त्रता पाश देश के,
कलित कंठ में आया।
जब विदेशियों के दासानल ने
आर्योद्यान जलाया॥

वे शुभ स्वातन्त्र्य सुधा सिंचन से, उसे बुझाने आये।
ऋषि दयानन्द वेदोक्त धर्म का, पाठ पढ़ाने आये॥

—जयजगदीश पाण्डेय



विश्व-कल्याण की वैदिक भावना

[लेखक—विद्यामार्त्तण्ड डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री, ज्योतिराश्रम, वाराणसी]

"भद्र-भद्र न आ भर" (ऋग्० ८।६३।२८) इस प्रकार भद्र-भावना का मधुर संगीत वेदों में यत्र-तत्र सुनाई देता है। उसी के आधार पर विश्व-कल्याण की भावना को वैदिक पद्धति में नीचे के पद्यों में प्रकट किया गया है।

भद्रं भद्रं सर्वतो नः समेयाद्,
भद्रा वाचः सुमनसो वदेम।
भद्रं मनो भद्रकामाय भूयात्,
कामे कामे नो भद्रं विरोचनाम् ॥१॥

हमें सब ओर से केवल भद्र अथवा कल्याण ही प्राप्त होवे।

हम सद्भावनाओं से युक्त होकर कल्याणमय वाणी को ही बोलें।

विशुद्ध विचारों से युक्त हमारे मन की कामनायें भी कल्याणमय हों।

हमारी प्रत्येक कामना में कल्याण का प्रकाश हो॥

ग्रामे ग्रामे नो भद्रं विराजताम्,
भासतां भद्रं समितौ सभायाम्।
भद्रं राज्येषु विश्वतः समृध्याद्,
भद्रं पृथिव्या प्रथतां समन्तात् ॥२॥

हमारे ग्राम-ग्राम में भद्रभावना सुशोभित हो।

हमारी समितियों और सभाओं में उसका प्रकाश हो।

राज्यों में सब ओर से भद्र-भावना की वृद्धि हो।

और इस प्रकार समस्त पृथ्वी पर उस का विस्तार हो।

परस्परं भद्रं समाचरन्तो,
न मायिनो मानुषीणां प्रजानाम्।
आतन्वन्तः शिवतातिं वरिष्ठाम्,
इहैव लोकेऽमृतमाभजेम ॥३॥

हम निश्छल भाव से परस्पर कल्याण का आचरण करते हुए और मानव-मात्र के लिए श्रेष्ठ मङ्गल का विस्तार करते हुए इसी लोक में अमृतत्व का सेवन करें।

विप्राः कवयो भद्रवाचो भवन्तो,
भद्रं राजानो राज्यधुरं वहन्तः।
भद्रं गुरौ शिष्यमाणा वसन्तो,
भद्रं वयं सर्वत आवदेम ॥४॥

हमारे कवि सात्त्विक विचारों से युक्त होकर कल्याणमय वाणी का प्रसार करने वाले हों। शासक लोग कल्याण के आदर्श से प्रेरित होकर राज्य का शासन करें। गुरु और शिष्य का पारस्परिक सम्बन्ध भी कल्याणमय हो। इस प्रकार हम सब अपने चारों ओर कल्याण का ही वातावरण उपस्थित करदें।

भद्रं नः करोत्वनिशमन्तरिक्षं,
भद्रं नो वायुः पवमानः प्रवातु।
भद्रं भद्रं द्यावापृथिव्यौ भवेताम्,
भद्रं मरुतो वृष्टिवाहा भवन्तु ॥५॥

अन्तरिक्ष हमारे लिए कल्याणकारी हो। पवित्रता-धायक वायु हमारे लिए कल्याणकारी हो कर चले। द्युलोक और पृथिवी लोक हमारे लिए सदा मंगलकारी हों। मरुद्गण भी वृष्टि द्वारा विश्व का कल्याण करें !!!

शिक्षा-क्षेत्र में आर्यसमाज



[श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा साहित्यालंकार एम० ए०, डी० लिट्० अजमेर]

आर्यसमाज जिस प्रकार समाज सुधार, स्वदेशी प्रचार अछूतोद्धार एव राष्ट्र भाषा प्रसार म अपने जन्म काल से ही सदैव अग्रणी रहा है। जिसकी सराहना पूज्य महात्मा गाधी जी तथा नेता जी सुभाष चन्द्र बोस जैसे महानुभावो ने मुक्त कठ से की थी, उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे भी आर्यसमाज ने नवीन भारत में वह सुचारु मार्ग प्रदर्शन किया है कि जिसका वर्णन भविष्य के इतिहासकार और विशेषत शिक्षा विशेषज्ञ युग युगान्तर तक करते रहेंगे।

शिक्षा क्षेत्र मे आर्यसमाज के मार्ग दर्शन को हम मुख्यत तीन भागो मे वर्णन कर सकते हैं —

(१) जब भारत प्रगाढाज्ञानान्धार के गर्त मे पतनोन्मुख हो रहा था, विदेशी सरकार भारतीयो को लार्ड मैकाले के शब्दो मे अग्रेजी शिक्षा के द्वारा रग और रक्त को छोडकर शेष सब बातो मे पूर्णत अग्रेज बनाने पर तुली हुई थी तथा अग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय अपने बाह्य रूप रग ढग, आचार व्यवहार मे अपने भारतीय वेश परिधान खान पान, धर्म कर्म को तिलाजलि देते चले जा रहे थे—देश मे स्थान स्थान पर अग्रेजी के स्कूल, कालेज खुलते चले जा रहे थे, उस समय आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नितान्त नूतन प्रयोग करने का निर्देश दिया और वह था गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रचलन। ऋषि के पश्चात् आर्यसमाज के तत्कालीन नेताओ ने एक नहीं, अनेक गुरुकुलो की स्थापना की और प्राचीन आर्ष प्रणाली को नवीन ढाचे में ढालकर गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन, महाविद्यालय ज्वालापुर तथा अन्य अनेक गुरुकुलो की स्थापना की जिनका अनुकरण आगे चलकर ऋषिकुलों और अनेक विद्यापीठों ने किया जो आर्यसमाज के पथ प्रदर्शन का पक्का प्रमाण है।



श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० डी० लिट्

चाहे वे गुरुकुल आर्य भाइयो की उच्च आशाओ को पूर्णत फलीभूत करने मे किसी किसी अश में सफल न हो पाये हो, किन्तु यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि आर्यसमाज के इन गुरुकुलो ने आर्य समाज को तथा देश को जितने उच्चकोटि के विद्वान् दिये हैं, उतने भारत की कोई एक अन्य सस्था देश को आज तक नही दे सकी। "Simple living and high thinking", 'सादा जीवन,उच्च विचार' का जो आदर्श इस गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने देश के सम्मुख रखा वह राष्ट्रिय कार्यकर्त्ताओ के लिए भी सदा अनुकरणीय रहा है और रहेगा।

(२) ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज ने सर्वप्रथम हिन्दी को राष्ट्र-भाषा घोषित किया तथा सर्वप्रथम अपनी पाठशालाओं, गुरुकुलों और स्कूलो मे हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाने में व्यावहारिक रूप दिया, वह सदैव स्मरणीय रहेगा। पजाब मे तथा अन्य स्थानों में आर्यसमाज को सस्थाओ को हिन्दी माध्यम के कारण अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा किन्तु फिर भी वह दृढ़ रहा।

ससार इस बात का साक्षी है कि जिस हिन्दी माध्यम को आर्यसमाज ने सर्वप्रथम अपनाया था, भारत स्वतन्त्र होने पर उसी प्रदेशीय या हिन्दी भाषा के माध्यम को अब समस्त देश मे भारत सरकार घोषित कर चुकी है।

(३) गुरुकुलो तथा सस्कृत पाठशालाओ के अतिरिक्त पाश्चात्य सभ्यता की लहर को रोकने के लिये एव अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव को कम करने के लिये आर्यसमाज ने डी० ए० वी० स्कूलो और कालेजो की स्थापना कर देश के नवयुवको को भारतीयता और धार्मिकता की ओर प्रवृत किया। यदि इस समय ब्रिटिश राज्यकाल मे इस प्रकार के स्कूल कालेज न खोले जाते तो आज भारत की नवयुग पीढ़ी न मालूम कहाँ से कहाँ पहुचती ? जब हमारी सस्कृति और सभ्यता ही उठ जाती तो इस देश का क्या बनता ?

बुलबुल ने आशियाना चमन से उठा लिया।
उसकी बला से बूम रहे या हुमॉ रहे॥

(४) आर्यसमाज ने अपने शिक्षणालयो मे धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य रूपेण प्रमुख स्थान दिया जो नैतिक-शिक्षा का आधारभूत सिद्ध हुई। हमारी वर्त्तमान धर्म-निरपेक्ष सरकार ने आज धर्म-शिक्षा को विद्यालयो से बिल्कुल ही भले ही उडा दिया है परन्तु राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा श्री राजगोपालाचार्य तथा हमारे उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन जैसे मान्य मनीषी महानुभाव अब भी यह अनुभव करते हैं कि धर्म-शिक्षा स्कूलो में अवश्य होनी चाहिये। भारत के समस्त विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियो का जो गत सम्मेलन खडग बासला मे हुआ था उसमे भी यह निश्चय किया गया कि छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को कम करने के लिये स्कूलो कालेजों मे धर्म-शिक्षा अनिवार्य कर दी जावे। यह है आर्यसमाज के शिक्षा-क्षेत्र मे पथ प्रदर्शन का एक और पक्का प्रमाण।

इस प्रकार यद्यपि आर्यसमाज ने बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) पर तथा बाल शिक्षण आदि अभिनव परीक्षण नही किये परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। इसीलिए सन् १९२७ के गुरुकुल कांगड़ी के महोत्सव पर महात्मा गाधी जी ने ये उद्‌गार प्रकट किये थे कि "शिक्षा के क्षेत्र म ईसाई मिशनो के पश्चात् आर्यसमाज का अतीव विस्तृत एव सराहनीय कार्य रहा है।" इसी प्रकार श्री०रगा ने अमेरिका की मिस-मेयो की पुस्तक(मदर इण्डिया) के उत्तर मे जो (फादर इण्डिया) नाम का ग्रन्थ लिखा था, उसमे आर्य-समाज-की शिक्षण सस्थाओं की मुक्त कठ से सराहना की थी। इस प्रकार भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में आर्यसमाज का मार्ग-दर्शन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। ——

हर्ष में विषाद

दीपावली ठौर-ठौर दीपको की पाति सजा,
अमा निशा का है तम तोम हर डालती।
नभ के सितारे देती धरा पर है उतार,
काज अचरज का महान कर डालती॥
सब ओर राग रग है बिखेरती, परन्तु
हर्ष मे विषाद की प्रभा भी भर डालती।
ऋषि दयानन्द की प्रयाण-तिथि होके हत-
भागी शुभ्र अक पै कलक धर डालती॥
दिव्य ज्योति वाले दयानन्द ऋषि इसी दिन,
दीपमालिके! लिये थे जग से तू ही ने छीन।
तेरे मृत्तिका के लघु दीपो की बिसात ही क्या,
प्रकृति-नटी के भी हुये थे दीपगण क्षीण॥
धरती आकाश हाय! रोपडे थे शोक से औ'
तारे व "मयक" सभी दुःख से हुये मलीन।
"स्वामी दयानन्द"धरती से क्या गये कि मानो,
अखिल धरा ही सब विधि हुई दीन-हीन॥

—चन्द्रपालसिंह "मयक" एम० ए०, कानपुर

हे सुख के दाता स्व प्रकाश स्वरूप सबको जानने हारे परमात्मन् ! आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानो को प्राप्त कराइये। और जो हम म कुटिल पापाचरण रूप मार्ग है, उससे पृथक कीजिय। इसलिए हम नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी अस्तुति करते हैं कि आप हमका पवित्र करें।

× × ×

हे परम गुरा परमात्मन् ! आप हमका असत् मार्ग से पृथक् कर सन्मार्ग म प्राप्त कीजिये। अविद्यान्धकार का छुडाकर विद्या रूप सूर्य को प्राप्त कीजिये। और मृत्यु रोग से प्रथक करके माक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कीजिये।

× × ×

जब सन्यासी मार्ग म चले तब इधर उधर न देख कर नीचे पृथ्वी पर दृष्टि रख के चले। सदा वस्त्र से छान कर जल पिये। निरंतर सत्य ही बोले। सर्वदा मन से विचार के सत्य का ग्रहण कर असत्य को छोड देवे।

× × ×

छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दु ख नश्यति।

जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है,वैसे ही पाप को छोड़ने से दु ख नष्ट होता है।

× × ×



आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर
के
कुछ प्रमुख प्रकाशन



चारो वेद सरल हिन्दी अनुवाद सहित—सम्पूर्ण १४ जिल्दो मे, मूल्य ११२) रु०, उत्तम छपाई, सफेद चिकना कागज, डबल क्राउन १६ पेजी के सुलभ आकार मे, प्रत्येक जिल्द पूरे कपडे की बधी हुई, सुनहरी अक्षरों सहित है। सामवेद १ जिल्द ८) रु०, अथर्ववेद ४ जिल्द ३२) रु०, यजुर्वेद २ जिल्द १६) रु०, ऋग्वेद ७ जिल्द ५६)।

महर्षि जीवन चरित्र—श्री देवेन्द्रनाथ जी द्वारा सग्रहीत व पडित घासीराम जी मेरठ द्वारा अनुदित। दोनो भाग सजिल्द व अनेको घटना-पूर्ण चित्रो से युक्त। कवर पर महर्षि का तिरगा चित्र आर्ट पेपर पर मूल्य ८) रु० प्रति भाग।

क्या वेद में इतिहास है ?—लेखक प० जयदेव जी शर्मा विद्यालकार। युक्ति एव खोजपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ—मूल्य २।) रु०।

कर्म-मीमांसा—ले० आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री। पुस्तक मे नीति के मूल तत्त्व, आपद्धर्म, कर्त्तव्य और अधिकार,नीति और विधान नीति आदि पर मौलिक तथा सारगर्भित सामग्री है। नवीन तथा सशोधित सस्करण। मूल्य २।) रु०

सन्मार्ग-दर्शन—ले० स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, लेखक की हिन्दी मे लिखी हुई यही एकमात्र पुस्तक है। बुक साइज ६०० पृष्ठ, सजिल्द मूल्य केवल ४) रु०।

वेदांग प्रकाश के शुद्ध संस्करण—सधि विषय १) रु०, आख्यातिक ४) रु०, धातुपाठ ।।=),वर्णोच्चारण शिक्षा ≋), नामिक ।।।), सौवर ।=), पारिभाषिक ।।), गणपाठ ।।=), अव्यार्थ ।), कारकीय ।।=), सामासिक ।।=), उणादिकोष आदि अन्य भाग भी छप रहे हैं।

दयानन्द वाणी—भूमिका लेखक पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज। पुस्तक मे महर्षि के वचनो व उपदेशो को उत्तमोत्तम ढग से सग्रहीत किया है। टाइप बडा, कवर दो रगों का, पृष्ठ सख्या २४०, मूल्य केवल १।।) रु०।

दयानन्द वचनामृत—लेखक महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती। सुललित भाषा मे, महर्षि के जीवन की अद्भुत झाकी तथा उनके सुन्दर वचनो के सग्रह के साथ-साथ कवर पर सुन्दर तिरंगा चित्र मूल्य ।=)।

भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद् की विद्यारत्न, विद्या विशारद विद्यावाचस्पति आदि परीक्षायें मण्डल के तत्वावधान में प्रतिवर्ष होती हैं, इन परीक्षाओ की समस्त पुस्तके अन्य पुस्तक विक्रेताओं के अतिरिक्त हमारे यहाँ से भी मिलती हैं।

वेद व अन्य आर्ष ग्रन्थों का सूचीपत्र तथा परीक्षाओं की पाठ्यविधियुक्त मंगावें।

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः सधर्मः (वैशेषिकदर्शन)

जिस मानवोचित कर्त्तव्य पालन से ऐहिक अभ्युत्थान तथा मानसिक कल्याण दोनों हो वही धर्म है। मनुष्यो के भोजन, आहार, निद्रादि पशुओ के ही समान हैं। मनुष्यो में धर्म ही पशुओ से विशिष्ट वस्तु है। धर्महीन मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है।

× × ×

विद्या ददाति विनय विनयाद्याति पात्रताम्। पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं तत सुखम्

विद्या से विनय, विनय से पात्रता, उससे धन, उससे सुख प्राप्त होता है। सन्मार्ग से आई हुई विद्या मनुष्य को विनय सिखाय देती है। × ×

सर्वेषा भूषण धर्मः

सत्य निष्ठा या स्वकर्त्तव्य पालन ही मनुष्यमात्र का भूषण है। सत्य या कर्त्तव्य से हीन मनुष्य मनुष्यताहीन, श्रीहीन असुर है।

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। —वेद

× × ×

जो मुक्ति चाहे वह जीवन मुक्त अर्थात् जिन मिथ्या भाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है, उनको छोड़ सुख स्वरूप फल को देने वाले सत्य भाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

—ऋषि दयानन्द

× × ×

नास्तिको वेद निंदकः ॥मनु॥

जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है, वह नास्तिक कहाता है।

जो देहधारी है, वह सुख-दुःख की प्राप्ति से पृथक कभी नहीं रह सकता। और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्व व्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है, तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता।

× × ×

(मत पढ़ो—यदि परोपकार के लिये दिल में स्थान न हो)

–'दमा' और पुरानी खांसी के रोगियों ध्यानपूर्वक पढ़ो–

हमारी "चित्रकूट बूटी" ने तो विदेशों मे भी हलचल मचा दी है

पढ़ो ... ... देखो लोग क्यों कहते हैं !

श्री गुरसरनसिंह पो० बक्स २०४३ एनकोन (Ancone Czone) मे लिखते हैं मेरी स्त्री को दमा हो गया था जो यहाँ "पनामा" मे इलाज पर सैकड़ों रुपया खर्च किया परन्तु कोई लाभ न हुआ। अकस्मात ही भाई सुचासिंह द्वारा आपकी दवा "चित्रकूट बूटी" मिल गई। वाह रे औषधि ! एक मात्रा ही जादू की तरह से काम करती है। सैकड़ों रुपया खर्च करने पर जो लाभ न हुआ था, वह इस दवा की एक मात्रा से ही हो गया। परमात्मा आपके कार्यालय की दिन रात उन्नति करे। जिसमे गरीबों का भला हो। मैं पाँच डालर सेवा में भेजता हूँ। आप किसी धर्म कार्य मे लगा दें। अधिक क्या लिखे !

(२) श्री बाबूराम कान टेबिल नम्बर १४ थाना खास रोहतक से लिखते हैं कि मैंने आपसे सन् १९५० में जो ३ खुराक दमे खासी की दवा मगाई थी। यथार्थ में उन्होंने जादू की तरह से काम किया है। कृपाकर पुड़िया इस साल भी जल्दी से भेज दें, परमात्मा आपको सदा जिन्दा रखे जो इस तरह पर जनता की भलाई होती है।

(३) नरेन्द्रसिंह बेदी असिस्टेन्ट सर्जन बावेल डिस्पेंसरी जिला गुड़गावा से लिखते हैं—पिछले साल श्रीमती हरबन्स कौर ने आपकी चित्रकूट बूटी सेवन की थी। एक ही मात्रा मे आश्चर्यजनक लाभ हुआ कृपा करके एक पुड़िया इस साल जल्दी से और भेजे।

(४) श्री रामसुन्दर भगत मु० मोहनपुर पो०खवासपुर जि० भागलपुर से लिखते हैं आपकी दवा 'चित्रकूट बूटी' से आश्चर्यजनक लाभ हुआ। कृपया दो खुराक और भेज दें।

(५) श्री गौरी शकर अध्यापक ग्राम कोपवा पो० जैदपुर जिला बाराबकी से लिखते हैं। १० साल से एक रोगी दमा से तड़फ रहा था। आप की दवा चित्रकूट बूटी की एक ही मात्रा ने उसकी जान बचा दी। यथार्थ मे यह दवा अमृत तुल्य है। अधिक कहाँ तक लिखा जावे। बस दवा से प्रति वर्ष हजारों स्त्री पुरुष लाभ उठाते हैं। यदि आप इस रोग से तड़प रहे हो तो मुफ्त मे इधर-उधर पैसा बरबाद न करके किसी भी "पूर्णमासी" को एक मात्रा इसकी सेवन करके आश्चर्यजनक गुण देखें। यदि रोग अधिक पुराना हो तो लगातार ३ पूर्णमासी सेवन करे। जड़ से रोग कट जावेगा। यहाँ आश्रम मे सब को यह दवा मुफ्त (धर्मार्थ) दी जाती है। बाहर मगाने पर केवल ३॥) रु० विज्ञापन रजिस्ट्री आदि का खर्च भेजना पड़ता है। जल्दी मनीआर्डर भेज कर मगाले जिसमे आने वाली पूर्णमासी पर सेवन कर सकें। इस दवा की वी० पी० नहीं भेजी जाती है क्योंकि वी० पी० कभी-कभी बहुत देर से मिलती है। यदि पूरा कोर्स ३ खुराक एक बार मगावे तो ६॥) भेजें। अनेक अमीर आदमी अपने नाम से गरीबों को मुफ्त (धर्मार्थ) बाटने के लिये दर्जनों खुराक मगाते हैं उनके लिये रिआयती रेट कम से कम १२ पैकट ३२॥) रु० है। जल्दी मगाकर हर समय घर मे रखे।

नोट—'आर्यमित्र' के ग्राहकगण ऊपर लिखे अनुसार रुपया मनीआर्डर से "आर्यमित्र" को भेजकर रसीद हमारे पास भेज देने से हम दवा तुरन्त रजिस्ट्री से भेज देंगे। यह रुपया केवल विज्ञापन छपाई खर्च मात्र है। आपको 'आर्यमित्र' की सहायता का पुण्य भी प्राप्त होगा। एक पन्थ दो काज वाला परोपकारी कार्य है।

पता—रायसाहब के० एल० शर्मा रईस आश्रम ६० "जगाधरी" (E.P)

महर्षि दयानन्द
आर्यत्व की एक साकार व्याख्या
—स्वर्गीय श्री अरविंद

ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और उनके कार्यों मे हम स्वत स्फूर्ति निश्चित प्रयत्न और प्रबल रचना की उस शक्ति को पाते हैं, जो पूर्ण स्पष्टता, सत्य और ईमानदारी के आन्तरिक तत्व से आती है।

किसी व्यक्ति का अपने मन मे साफ होना, अपने प्रति दूसरो के साथ पूर्णतया सच्चा और सरल होना और अपने कार्य की परिस्थितियो तथा साधनो के साथ पूरे तौर से ईमानदार होना यह हमारी टेढी, पेचीदी और लडखडाने वाली मनुष्य जाति मे एक दुर्लभ देन है। आर्य' कार्यकर्त्ता की यही भावना होती है, और तेजोमय सफलता पाने का यह एक निश्चित रहस्य है। क्योकि प्रकृति अपने दरवाजे पर हमेशा एक स्पष्ट सच्चे और पहचानने योग्य खटखटाने को पहचान लेती है, और परिणाम मे वैसी ही पूरी सजगता और पूरे यत्न के साथ उत्तर देती है।

परिणामत यह उचित ही है कि उस महान आचार्य की आत्मा अपने अनुयायियो पर अपना चिन्ह अपनी निशानी छोड सकी और भारत मे ऐसी संस्था विद्यमान हो सकी, जिसके बारे मे यह कहा जा सके कि जब कभी कोई ऐसा काम दिखाई देगा जो आवश्यक हो और उचित हो तो उसे करने के लिए आर्य समाज के मनुष्य आगे आयेगे, साधन मिलेगे और वह काम अवश्य पूर्ण होगा।

सत्य एक सरल सी वस्तु लगती है, फिर भी अत्यन्त कठिन है। सत्य ही वैदिक शिक्षा का मूल मन्त्र था। आत्मा मे सत्य, दृष्टि मे सत्य, इरादे मे सत्य और क्रिया मे सत्य क्रियात्मक सत्य 'आर्यत्व एक आन्तर निष्कपटता और दृढ़ सत्य हृदयता, स्पष्टता और वाणी तथा कर्म मे स्फुट उदात्तता यह आर्य नैतिक्ता का स्वभाव रहा है। इस प्रकार का स्वभाव शुद्ध और अविकृत शक्ति का रहस्य है और इस बात का चिन्ह है, मनुष्य प्रकृति से बहुत परे नहीं हट गया है। यही ईश्वर के पुत्र 'दिवस्पुत्र' का और सत्व है, उसके सच्चे पुत्र होने का प्रमाण है। यही वह छाप थी, जिसे दयानन्द अपने पीछे छोड गये और यही उनका अपना चिन्ह और प्रतिभा होनी चाहिए, जिसके द्वारा कि कोई कार्य 'यह उनसे प्रवर्तित है' इस रूप मे पहचाना जा सके।

ईश्वर करे उनकी भावना शुद्ध, अविकृत, तथा अपरिवर्तित रूप से भारत मे काम करे और उस वस्तु को फिर से हमे देने मे सहायक हो, जिसकी हमारे जीवन मे अत्यन्त आवश्यकता है, अर्थात् शुद्ध शक्ति, उच्च स्पष्टता, सूक्ष्मदर्शी आँख, सिद्धहस्तता तथा श्रेष्ठ और प्रभुत्त्वपूर्ण सत्यता।

वाज-सूक्तम्

अर्थात् वैदिक शक्ति-साधना

(लेखक—श्री डा० मङ्गलदेव शास्त्री, उपकुलपति, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय)

वैदिक धर्म की दृष्टि से वाज, बल, या शक्ति की प्रार्थनाओं का बड़ा महत्त्व है।

उन्हीं प्रार्थनाओं के आधार पर, एक ही स्थान में शतशः मन्त्रों की उत्कृष्ट भावनाओं के एकत्रीकरण के उद्देश्य से, वैदिक छन्द, शब्दावली, शैली और विचार धारा के अनुसार, निम्नलिखित वाज-सूक्त की रचना की गई है। हिन्दी अनुवाद और भावार्थ के साथ उसे हम पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं—

वाज-सूक्तम्

वाजस्य नु प्रसवे त महान्त—
मिन्द्र देव वृत्रहन्तारमीडे।
विश्वकर्माण मघवानमुग्र
साय प्रातर्मनसा वज्रहस्तम् ॥ १ ॥

अर्थात्, वाज या शक्ति की प्रेरणा के उद्देश्य से मैं, साय और प्रात, स्तोत्र द्वारा वृत्र अथवा बाधक शक्तियों के निवारक उस महान देव इन्द्ररूप परमात्मा की स्तुति करता हूँ, जो विश्वकर्मा, मघवा (ऐश्वर्यशाली), उग्र और वज्रहस्त है।

यस्ते वाजो निहितो वाजपते
अग्नौ सूर्ये वायावथ स्रोत्यासु।
तेन नो वाजिन् वाजवतो विधेहि॥(यजुषी रचना)

अर्थात्, हे शक्ति के एकमात्र स्रोत परमात्मन्! जो आपकी अनन्त शक्ति अग्नि में, सूर्य में, वायु में और प्रवहणशील नदियों में कार्य कर रही है, भगवन्! उससे आप हम सब को शक्तिशाली बनाइए।

आज विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि वायु आदि भौतिक पदार्थों में अनन्तानन्त शक्ति निहित है और उसका उपयोग भी विश्व के व्यावहारिक हित के लिए किया जा सकता है।

इसी सिद्धान्त का विवरण नीचे की ऋचा में किया गया है—वाजेन सूर्यस्तम आभिनत्ति
वाजेन वायुस्तरसा प्रवाति।
वाजेन विद्युद् द्योतते सशब्द
वाजेन नद्यः प्रवहन्ति वेगात् ॥ ३ ॥

अर्थात्—
वाज से ही सूर्य अन्धकार को दूर करता है,
वाज से ही वायु बल पूर्वक चलता है।
वाज से ही विद्युत् कड़कड़ाहट के साथ चमकती है,
और वाज से ही नदियां वेग के साथ बहती हैं॥

वाजेन वीरा विजय लभन्ते
वाजेनेन्द्रो जायते वृत्रहन्ता।
वाजेन विश्व रुचमादधाति
वाज विना परितो वर्तते तम ॥ ४ ॥

अर्थात्, बल द्वारा ही वीरजन विजय को प्राप्त करते हैं। बल या शक्ति द्वारा ही समुन्नति-शील व्यक्ति (इन्द्र) अपने लक्ष्य की समस्त बाधाओं (वृत्र) को दूर करता है। बल और शक्ति के होने पर समस्त संसार दीप्ति से युक्त अर्थात् रोचक प्रतीत होता है। और शक्ति के अभाव में निर्बल व्यक्तियों को अपने चारों ओर अन्धकार ही अंधकार फैलता हुआ दीखता है।

वाज पृथिव्या दिवि चान्तरिक्षे
वाजो विश्व भुवनमाविवेश।
आधींश्च व्याधींश्च निवारयन्तो
वाजेन शत्रून् सहसा जयेम ॥ ५ ॥

अर्थात्, वाज पृथ्वी, द्युलोक और आन्तरिक लोक में विद्यमान है। वाज समस्त सृष्टि में प्रारम्भ से ही व्याप्त रहा है। हम अपने मानसिक कष्टों और शारीरिक व्याधियों को निवारण करते हुए वाज से समस्त आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं पर सहसा विजय लाभ करें।

वाजो हि मा सर्ववीर करोतु
सर्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्।
वाज पुरस्तादुत पृष्ठतो मे
सर्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ६ ॥

अर्थात्, मेरे सब पुत्र पौत्रादि बल से युक्त हों और मैं बलशाली होता हुआ समस्त दिशाओं में विजय प्राप्त करूँ। मेरे सामने बल हो और मेरे पीछे भी बल हो इस प्रकार बल से युक्त होकर मैं समस्त दिशाओं में सफलता और समृद्धि को पाऊँ।

अवैतनिक सम्पादक—उमेशचन्द्र स्नातक, शिरोमणि एम. ए.

ओ३म्

साप्ताहिक **आर्य मित्र** ऋष्यङ्क

वर्ष ६३ | लखनऊ रविवार कार्तिक १४, शक १८८३, कार्तिक कृष्ण १२, वि० २०१८ | ५ नवम्बर १९६१ ई०, दयानन्दाब्द १३७, सृष्टिसंवत् १९७२९४९०६२ | अङ्क ४३

'वैदिक धर्म्म'

(श्री डाक्टर हरिशंकर जी शर्म्मा डी० लिट्)




'वैदिक धर्म्म' विश्व-व्यापी है, क्यों संकीर्ण बनाएँ हम,
कल्याणी वाणी ऋषियों की, सब को क्यों न सुनाएँ हम।
वैदिक धर्म्म प्रेम का प्रेरक, वैर वृत्त का नाशक है,
मानव धर्म्म दिवाकर है वह, उज्ज्वल ज्ञान-प्रकाशक है।

विश्व बन्धुता भर हृदयों में सदाचार का ओर बढ़े,
'मानवता' के उच्च शिखर पर, सुदृढ़ धारणा धार चढ़े।
जो चरित्र की कड़ी कसौटी पर, पहले कस जाते हैं,
वही वीरवर भ्रान्तजनों को, शुभ सन्मार्ग सुझाते हैं।




'ब्राह्मण' ज्ञानी उठे, देश का मोह-तिमिर, अज्ञान हरे,
'क्षत्रिय' अत्याचार मिटाकर, सत्याचार प्रचार करें।
'वैश्य' अभाव दूर कर सबका, जीवन-वस्तु प्रदान करें,
'शूद्र' लोक की सच्ची सेवा करने में अभिमान करें।

कर्म्म-योग में हँस हँस संकट सहना 'तप' कहलाता है,
तजना पड़े धर्म्महित जो कुछ, वही 'त्याग' पद पाता है।
'त्याग तपस्या' रुष्ट हो गये, आओ, इन्हें मनाएँ फिर,
'त्यागी' और 'तपस्वी' बनकर, एक बार दिखलाएँ फिर।




शुभ संकल्प युक्त सब मन हों, तन परिपुष्ट अरोगी हों,
धन का स्रोत धर्म्म-ध्रुवता हो जन न विलासी भोगी हों।
स्वार्थवाद का भूत भयंकर, कभी न विश्व-विघातक हो,
दानवता का दम्भ न मौलिक मानवता का पातक हो।

ऋषि-शोणित से सिंचित होकर जो फुलवारी फूल रही,
वैदिक वायु विकम्पित देखो, झुक झूमर-सी झूल रही।
जिसकी सुखद सुगन्ध विश्व को, बना रही है मस्ताना,
मिटने कभी न देना उसको, चाहे तुम खुद मिट जाना।




★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★



सम्पादकीय

विश्ववादी दयानन्द

महर्षि दयानन्द महापुरुष थे इस मान्यता के पीछे किसी प्रकार का आग्रहवाद नहीं है अपितु यह एक यथार्थ तथ्य है। महर्षि का दृष्टिकोण भारत की उन्नति तक ही सीमित न था अपितु उनके मस्तिष्क में विश्व हित ही सर्वोपरि था।

विश्व इतिहास का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि इस युग में राजनीति में गाधीजी ही ऐसे व्यक्ति थ जिन्होने उनकी भाति विश्ववादी दृष्टिकोण का प्रचार किया। अर्थशास्त्र के आधार पर एक दृष्टिकोण मार्क्सवाद ने अवश्य उपस्थित किया लेकिन उसके साथ भौतिकवाद और हिंसात्मक भावना सम्बद्ध है। इस कारण वह मानवता के उच्च आदर्शों की पूर्ति म सहायक नहीं हो सका। धार्मिक क्षेत्र मे भ। महात्मा ईसा और मुहम्मद साहब का विश्व के बड़े मानवो म गिना जाता है, लेकिन इनकी मान्यता के पीछ तलवार की शक्ति का बल अधिक है, अन्धानुकरण एव व्यक्ति पूजा का विचार उन्होंने अधिक फैलाया। इनसे पूर्व गौतम बुद्ध का धार्मिक प्रेरणा विश्व म गूज अवश्य लेकिन उनके अहिंसा सन्देश ने मानव का अकर्मण्य बना दिया।

इन सबके विपरीत महर्षि दयानन्द अपनी स्थापनाओं, धारणाओ, अपने आन्दोलनों एव सर्वहितकारी दृष्टिकोण के कारण एक समीक्षक की दृष्टि में विश्वमहापुरुष की उच्चतम पदवी के सर्वथा योग्य प्रतीत होते हैं। महर्षि के विश्व व्यापी दृष्टिकोण का हम विभिन्न रूपा में इस प्रकार देख सकते हैं—

१—मानव जाति एक है—

जन्म, लिंग, जाति, स्थान आदि विशेष के कारण कोई छोटा बड़ा नहीं है। उन्होंने भारतवर्ष के लोगों का आर्यत्व का जा पाठ पढ़ाया वह इसलिए नहीं कि आर्य रूप में वे श्रेष्ठ बनकर ससार के अन्य मानवों का सतायें अपितु उनकी शिक्षा का आधार यह था कि आर्यावर्त निवासियों पर मानव जाति के उद्धार का विशेष दायित्व है।

२—सारे संसार का एक ही ईश्वर है—

इस विचार का प्रचार करते हुये उन्होंने सम्प्रदायवादी मनावृत्तियों का पुरज़ोर खण्डन किया। उनका विश्वास था कि सम्प्रदायवाद की धारणा मानवता के लिए विनाशकारी है और इसी विश्वास की पुष्टि के लिए उन्होंने विश्वके विविध सम्प्रदायों का तुलनात्मक विवेचन सत्यार्थप्रकाश मे किया और इस प्रकार विश्व के सम्मुख बहुदेववाद, अथवा पृथक् देववाद, पैगम्बरवाद का खण्डन कर अपनी धारणा का प्रमाणित किया। इसी प्रसग म मूर्तिपूजा का भी उन्होने खण्डन किया क्योकि मूर्तिवाद सम्प्रदायवाद का एक विशेष आधार है।

३—संसार उपकार की भावना

महर्षि ने अपने विचारो के प्रसार के लिये आर्य समाज की स्थापना की और आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य ससार का उपकार करना निर्धारित किया। यदि उनका दृष्टिकाण तनिक भी सकुचित होता ता वे इस परिभाषा का अनेक प्रकार से सकुचित कर सकते थे।

४—व्यक्ति और समाज

महर्षि का दानो की उन्नति में ही मानव जाति का हित दीखता था। इसी आधार पर उन्होने सारी मानव जाति के लिये व्यक्तिगत उन्नति के लिये आश्रम व्यवस्था का और समष्टिगत उन्नति के लिये वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन और समर्थन किया। वे न पूँजीवाद के समर्थक थे और न व्यक्ति की हत्या कर समाजवाद के समर्थक थे।

५—यथायोग्य व्यवहार का समर्थन

ऋषि ने योग्यता के आधार पर सामाजिक व्यवस्था का निरूपण किया। इसी सूत्र के भाष्य मे यह भी कहा जा सकता है कि मानव जाति के हित के लिये हिंसा और अहिंसा अर्थात् दण्डनीति का यथोचित उपयोग किया जाना चाहिये। तुष्टीकरण नीति मानवता के लिये सदैव घातक सिद्ध होती है।

६—प्रजातन्त्र का समर्थन

ऋषि ने अपने विचारो और लेखो के प्रति ऊहापोह करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को दी है।

(शेष पृष्ठ १६ पर)



मन के दीपक



[रच०—कविवर "प्रणव" शास्त्री, एम ए, फीरोजाबाद

मिट्टी दीपक छोड़ साथियो,
मन के दीप जलाओ ॥
सभी जानते रवि किरणों ने भूपर स्वर्ण बिखेरा
निद्रित तन्द्रित सुमन-भाल को दे दे प्यार सवेरा
किन्तु, कई स्थल हैं ऐसे जहाँ न किरणें पहुँची
वहाँ हृदय की व्यापकता से
अन्तर्ज्योति जलाओ ॥ १ ॥

यद्यपि निर्मल स्रोत सलिल को बहती अविरल धारा
तप्त धरा पर तृषित जनों को मिलता बहुत सहारा
किन्तु, अनेकों चातक फिर भी प्यासे ही रह जाते
बन सावन घनश्याम - घटा—
प्रिय, उनको सलिल पिलाओ ॥२॥

प्रकृति प्रेयसी योगदान से पृथिवी पाट रही है
बिना भेद के प्रति क्षण कण सबको बाँट रही है
किन्तु शतो कङ्काल मृत्यु का मन्दिर झाँक रहे हैं
देकर जीवन दान यशस्वी
उनको शीघ्र जिलाओ ॥ ३ ॥

ऋषिवर का सन्देश यही है सभी समुन्नति पावें
दया लिए आनन्द भवन मे निर्भय बढ़ते जावें
प्रणव-भक्ति से शक्ति दाहिनी ले अनुरक्ति सजेगी
सत्य ज्ञान से मिथ्या मत के
कोटिन कोट हिलाओ ॥ ४ ॥

जलाना एक दिया

[रच०—श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर]

आ गई है दीवाली,
ले आओ दिये,
ले आओ तेल,
बनाओ बाती,
जलाओ दिये—
कुछ घर में,
कुछ छज्जे पर,
कुछ जीने मे
कुछ छत पर भी
रख दो—
कि जागे प्रकाश
भागे अंधियारा,
मान हो भग
मानिनी अमा का,
जो कहती है—
अब प्रकाश कहाँ ?
हाँ सुनो,
भूलना मत,
जलाना एक दिया,
मानव के मन में भी,
प्रकाश का केन्द्र यह,
भरा है अन्धेरे से—
एकदम घटा टोप !
तभी तो निर्माता मन,
नाश का विधाता हुआ,
रचता है ऐटम बम,
सजता है युद्ध साज,
प्यार की खिलारी छोड़,
करता है शीत युद्ध
भूल ही चला है वह—
जीवन का आदि राग—
'मैं तो को, तू मो को—
तेरा मैं, मेरा तू !'



'ऋषि-उत्सव' का महत्व

[पूज्य श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज, प्रधान, सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा]

[आशा है आर्यजन अपने नेता पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज के उपर्युक्त विचारो पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देंगे और महर्षि के आदर्शों का जीवन में धारण कर आर्य समाज के गौरव को बढ़ायेंगे । —सम्पादक]

महर्षि दयानन्द की पुण्य स्मृति मे, दीपावली के दिन, प्रति वर्ष ऋषि उत्सव बडे उत्साह एवम् समारोह से मनाये जाते हैं। प्रत्येक आर्य्य और आर्य्य समाज इस पवित्र पर्व में बड़ी सलग्नता से सम्मिलित होना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझता है। वस्तुत यह बडे हर्ष और सतोष की बात है। ऋषि दयानन्द की पवित्र स्मृति में जो कुछ किया जाय थोडा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आधुनिक भारत के निर्माण का सूत्रपात महर्षि दयानन्द द्वारा ही हुआ। सबसे पूर्व उन्होने ही भारतीय स्वाधीनता के लिए सर्व-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया। वैदिक सस्कृति, वदिक सभ्यता, वैदिक साहित्य, भारतीय भावना, राष्ट्रोद्धार, अस्पृश्यता निवारण बुद्धिवाद, महिला द्वार इत्यादि कल्याणकारी विषयो पर सर्व प्रथम अपने विमल विचार प्रकट करने वाले महर्षि दयानन्द ही थे। सुधार सम्बन्धी किसी भी दिशा की ओर दृष्टिपात कीजिए, सर्वत्र आपको महर्षि दयानन्द की ही परिष्कृत विचार धारा दिखायी देगी। उन्ही का पवित्र सकेत दृष्टिगत होगा।



श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज

ऋषि दयानन्द द्वारा प्रवर्तित, उनकी प्रतिनिधि सस्था आर्य्य समाज ने भी 'जनजागरण' की दिशा म, प्रशसनीय काम किया। ऐसा कोई समाज, समुदाय या सम्प्रदाय नहीं जो आर्य्यसमाज की विचार धारा से, किसी न किसी प्रकार प्रभावित न हुआ हो। विधर्म्मी लोगो पर भी आर्य समाज की गति विधियो का पर्याप्त प्रभाव पड़ा, फलत सैकड़ो सहस्रो विधर्म्मियो ने अपने मत त्याग कर, आर्य्य जाति का सेवक सहायक बनना उचित समझा। यह उस समय की बात है, जब आर्य्य समाजों और आर्य्य भाई बहनो की सख्या वर्त्तमान सख्या की समता म, बहुत ही कम थी। ज्यो ज्यो हमारी और हमारे आर्य समाजो की सख्या बढ़ती गई, त्यों त्यों हममें कार्य शक्ति कम होती गई, अधिकार-लिप्सा और पद-लोलुपता की अभद्र भावना ने आर्य्य समष्टि से स्नेह सहयोग की सद्भावना कम करने में बहुत सहायता दी।



तो क्या आर्य्य समाजो की अथवा आर्य्यों की सख्या वृद्धि कोई बुरी बात है ? कदापि नहीं ! मैं तो कहता हूँ। जितनी सख्या वृद्धि हो उतनी ही सतोष जनक है। जब "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" हमारा उद्देश्य है। तब सख्या वृद्धि के विरुद्ध क्यो कर आवाज ऊँची की जा सकती है। हा, आवश्यकता इस बात की

(शेष पृष्ठ १६ पर)

आर्य्यसमाज सैद्धान्तिक राजनीति में भाग ले!

नैतिक-नागरिक जागरण आवश्यक है।

[ले०—श्री डाक्टर हरिशङ्कर जी शर्म्मा डी०लिट्]

हमारे देश में 'स्वराज्य' तो हो गया, पर 'सुराज्य' नहीं हो पाया। सुराज्य का अर्थ है सुख, समृद्धि, शान्ति, सदाचार, समता, स्नेहशीलता आदि की वृद्धि 'गणतन्त्र' का आधार है—समता, स्वतन्त्रता और बन्धु भावना। स्वराज्य के सम्बन्ध में, महात्मा गांधी के जो स्वप्न थे वे साकार तो हुए ही नहीं, वर्त्तमान परिस्थिति में, उनके साकार होने की सम्भावना भी नहीं है। दिनों दिन भ्रष्टाचार की वृद्धि हो रही है। जिस जनता का राज्य बताया जाता है, आज वह अपने चुने हुए प्रतिनिधियों की दासी या सेविका बनी हुई है। उसके केवल तीन कर्त्तव्य हैं—कर-दान, मत-दान और स्वागत गान। स्वतन्त्र देश की जनता गुलामो की तरह अपने दिन बिता रही है। उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर ही सन्त विनोबा लिखते हैं—

> "जैसे बेवकूफ बादशाह और उसका वजीर विद्वान् और ज्ञानी होता है न। बादशाह की चोटी और दाढ़ी, जो भी हो, वह वजीर के हाथों मे ही रहेगी। वह बादशाह तो नाम मात्र का है, क्योंकि वह मूढ़ है। भले ही उसे सिंहासन पर बिठा दिया गया हो, फिर भी वह भेड़ासन है। नाम मात्र का बादशाह पर गुलाम होकर बैठा है। हिन्दुस्तान की जो डिमोक्रैसी (लोकतन्त्र) है, उसकी हालत ऐसे ही बादशाह की सी है। इस लिए सारे देश का दारोमदार उसका उद्धार करना या डुबाना आज चन्द लोगों के हाथों में है। यानी हमने डिमोक्रैसी के नाम पर सारी सत्ता चन्द लोगो के हाथों में दे दी है, और 'डिमोक्रैसी' 'डिक्टेटर शाही' बनी हुई है।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सन्त विनोबा वर्तमान 'लोकतन्त्र' मे स्पष्ट रूप में "डिक्टेटर शाही" का ही भयानक एवम् भोंडा रूप देख रहे हैं। जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि गण अपने चुनने वाली जनता



श्री डा० हरिशङ्कर जी शर्म्मा

को गुलाम समझते हैं, और जनता स्वयम् अपने को ऐसा ही ख्याल करती है। न 'समता' है, न 'स्वतन्त्रता' और न बन्धु भावना। सुख-समृद्धि और शान्ति का तो दुर्भिक्ष-सा ही है। मार काट, चोरी जारी, हत्या-काण्ड, भ्रष्टाचार का बाजार बुरी तरह गर्म है। ग्रामो में भले ही शिक्षा की कमी थी, परन्तु पचायतो राज्य प्रणाली ने उनमें बिरादरीवाद को भी बुरी तरह जगा दिया है। मत-दान के समय नगरों में भी मत-पन्थों एव जाति बिरादरीवाद का विष बुरी तरह फैल जाता है, परन्तु थोड़े दिनों बाद लोग उसे भूल जाते हैं, क्योंकि सब लोग अपने अपने काम धन्धों में लगे होते हैं। नगरो की अपेक्षा ग्रामो में बेकारी बहुत है, अतएव वहा मत-दान के समय का भेद-भाव, वैर विरोध बदल जाता है। महात्मा गाधी ने बिलकुल ठीक कहा है–'अच्छे शासन की कसौटी धन जन वृद्धि नहीं,बल्कि चरित्र-निर्माण है। अर्थात् लोकतन्त्र



में उच्चतम गुणों बुद्धिमत्ता, सच्ची दार्शनिकता और धार्मिकता का प्रादुर्भाव होना चाहिए। साथ ही स्वतन्त्र और प्रगतिपूर्ण मानवता का विकास भी। धर्म्म के बिना राजनीति कूड़ा करकट तथा गन्दगी है।"

वर्त्तमान शासन को 'धर्म्म' शब्द से कुछ चिढ सी हो गयी है। वह मत, मजहब या सम्प्रदायवाद को 'धर्म्म' समझने की भयंकर भूल कर रहा है। हाल में हमें, दिल्ली के शिक्षा मन्त्रालय की ओर से प्रकाशित इस आशय की एक सूचना पढ़कर बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ कि छात्रों के लिए नैतिक शिक्षा को जो पाठ्य पुस्तके लिखी जायें, उनमें 'ईश्वर' का नाम कहीं न आना चाहिए। यदि यह समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है, तो कितनी अविवेक पूर्ण, बेजोड और बेढगी भावना है। महात्मा गाधी तो कहते हैं कि मैं अन्न के बिना जीवन बिता सकता हूँ, परन्तु परमपिता परमेश्वर की प्रार्थना बिना एक क्षण भी नही रह सकता। हम तो समझते हैं, स्वतन्त्र भारत के शासक गण गाधी जी की जय तो बोलते हैं, परन्तु उनके विचारो का बहिष्कार करते हैं।

आर्य्यसमाज कुछ दिनो से कोई विशेष आन्दोलन नहीं कर रहा। वह जो कुछ कर चुका है, वह सर्वथा सराहनीय है। मेरी राय में तो स्वतन्त्र भारत में उसे सैद्धान्तिक राजनीति मे प्रवेश करना चाहिए। अर्थात् व्यावहारिक राजनीति को कानूनी करिश्मो से निकाल कर धर्म्म धाम मे भी प्रविष्ट कराना आवश्यक है। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता दिलाने वाला धर्म्म है, उसी धर्म्म से 'स्वराज्य' सुराज्य मे परिणत हो सकेगा। कौन नहीं जानता कि सत्य अहिंसा और तप त्याग जिनके माध्यम से हम स्वतन्त्र हुए, धर्म्म के मूल सिद्धान्त हैं। इन्हीं मौलिक तत्त्वो का राष्ट्रिय जीवन में प्रवेश करने से सार्वजनिक कल्याण-पथ उन्मुक्त होगा और सुख समृद्धि तथा शान्ति की विशुद्ध भावना जाग्रत् हो सकेगी। आर्य्यसमाज को अपनी सारी शक्ति का प्रयोग एतदर्थ ही करना चाहिए। यदि देश में धार्मिकता का प्रचार होने से अनुकूल मगल मूल परिस्थिति उत्पन्न हो सकी तो कितना बड़ा कार्य होगा।

जो लोग कहते हैं कि आर्य्यसमाज को राजनीति में नहीं पडना चाहिए, वे ठीक कहते हैं। प्रचलित राजनीति (Current Politics) मे सामुदायिक रूप से आर्य्यसमाज का भाग लेना हमारी कल्पना के भी बाहर है, परन्तु सैद्धान्तिक राजनीति मे धर्म्म भावना का प्रचार-प्रसार करना आर्य्यसमाज के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य्य है। आर्य्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह निर्भय और निष्पक्ष भाव से, अपने स्वतन्त्र देश की जनता को बतावे कि धर्म्म क्या है? नैतिकता किसे कहते हैं? इनके अभाव में भ्रष्टाचार चोरी जारी, मारकाट आदि की वृद्धि किस प्रकार होती है। स्वतन्त्र राष्ट्र में नागरिकों के क्या कर्त्तव्य एवम् अधिकार हैं? 'जनतन्त्र' जनता का राज्य क्यो कहा और आज राज्य करने वाली जनता अपने ही चुने प्रतिनिधियों की कैसी गुलाम बनी हुई है।

इस प्रकार के प्रचार से देश की बड़ी सेवा होगी। नैतिकता का उदय होकर सुख, शान्ति समृद्धि की वृद्धि होगी। इस प्रकार आर्य्यसमाज अपने स्वर्गीय नेता श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की निम्नलिखित भविष्य वाणी को चरितार्थ कर सकेगा जो उन्होंने अब से ३६ वर्ष पूर्व की थी—

जहां धार्मिक और सामाजिक उन्नति क्षेत्र में भारत प्रजा को दयानन्द के पीछे चलकर ही कल्याण मार्ग सूझा है, वहां राजनैतिक क्षेत्र मे भी भारतवासियो को ऋषि दयानन्द के बतलाये मार्ग पर ही चलना पडेगा।"

ऋषि दयानन्द का बतलाया मार्ग वही है, जिसे महात्मा गाधी ने अपने निम्नलिखित शब्दो मे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है—

मेरे नजदीक धर्म्म विहीन राजनीति कोई चीज नहीं है। धर्म्म के मानी वहमों और द्वेष करने वाला और लड़ने वाला धर्म्म नहीं बल्कि विश्व-व्यापी सहिष्णुता का धर्म्म। मैं धर्म्म से भिन्न राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकता। धर्म्म तो हमारे हरएक कार्य में व्यापक होना चाहिए। धर्म्म का अर्थ कट्टर पन्थ नही बल्कि विश्व की सुख-शान्ति सम्पन्न राजनैतिक व्यवस्था।







आर्यसमाज की वर्तमान दशा का आलोचनात्मक अध्ययन—

अनागत-चिन्तन

[ले०—श्री प० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

आर्य्य समाज के भविष्य को उन्नतशील बनाने के लिए मुझे इस वर्तमान काल में तीन बात चिन्तनीय प्रतीत होती हैं। (१) मान्यताओं का परीक्षण (२) पर नीति (फारेन पालिसी) में परिवर्तन (३) गृह नीति (होम पालिसी) का परिपालन। प्रत्येक के विषय में संक्षेप से विचार करना है।

मान्यताओं का परीक्षण—

मेरी धारणा ऐसी है कि हमारे पूर्वजो ने ऋषि दयानन्द के शरीरान्त के पश्चात् आत्म त्याग, उत्साह और तत्परता से जब कार्य्य आरम्भ किया तो मन्तव्यों को निश्चित करने के लिये उनके पास पुष्कल सामग्री न थी, सत्यार्थप्रकाश, संस्करण विधि तथा अन्य ग्रन्थ वर्तमान रूप में विद्यमान न थे और अधिक प्राचीन न थे। ऋषिवर के मौखिक व्याख्यानो के जो संस्कार उस समय के नव वयस्क कार्य्यकर्त्ताओं के मस्तिष्क में बने रहे उनकी विद्युत् शक्ति उनको आगे बढाती रही। उस समय जो मान्यतायें बन गईं वह अगली पीढी के के लिये घटापथ या राज मार्ग बन गई। उनमें कुछ पुरानी परम्पराओं के अवशिष्ट भाग थे जो मूलत त्यागने से रह गये थे। कुछ उस युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के कारण मनोवैज्ञानिक कारणों से स्वत बन गई थीं। कुछ स्वामी जी महाराज के खण्डनात्मक व्याख्यानो से ले ली गई थीं। जब आप के ग्रन्थ उपलब्ध होने लगे तो हमने उनका अध्ययन भी उन्हीं मान्यताओं के आधार पर किया और कालान्तर में वे मान्यतायें सीमट की सड़क के समान सुदृढ हो गई। जब विपक्षियो से हमको शास्त्रार्थ करने पडे तो इन मान्यताओं को कूट पीट पर अधिक मजबूत बनाने की आवश्यकता पड़ी। हमने ऋषि के ग्रन्थों के शब्दो का ऊपरी दृष्टि से पढ़ा। उन शब्दों में प्रान्त प्रान्त जो आत्मा था वह हमारी दृष्टि से ओझल हो गया। इसलिए आजकल यदि कोई नया प्रश्न उपस्थित होता है तो वह धातु और प्रत्यय तक ही सीमित रह जाता है। यही कारण है कि दिन प्रतिदिन हमारी धारणाओं में पौराणिकता का पुट लगता चला जा रहा है। और प्राचीन भारतीय संस्कृति की रक्षा के नाम पर हम उन मौलिक सिद्धान्तों को भूलते चले जा रहे हैं जिनके आधार पर ही वैदिक धर्म विश्वव्यापी हो सकता था। और जिन के परित्याग पर वह आशायें विलीन सी होती चली जा रही हैं, यहाँ मैं कुछ की ओर संकेत करता हूँ —



श्री प० गगाप्रसाद उपाध्याय एम०ए०

(१) तीसरे समुल्लास में श्री स्वामी महाराज ने सत्यासत्य के निर्णय की कुछ कसौटिया दी हैं। जिनमें ८ प्रमाण सम्मिलित हैं। यहाँ प्रश्न यह है कि शब्द प्रमाण का उन मे क्या स्थान है ? क्या शब्द प्रमाण या आप्त वाक्यों की मान्यताओं में प्रत्यक्षादि का भी कुछ मान है या नहीं। जहा कहीं ऐसा लिखा है कि श्रुति के लिए कोई अतिभार नहीं है वहा क्या स्वामीजी महाराज को यह शब्दश मान्य





है अथवा आप्तवाक्यो के माननीय या अमान नीय होनेके लिए भी कुछ ऊहापोह की गुञ्जायश है। इस विषय मे हम लोग शकर या अन्य विद्वानों के कितने अनुगामी हैं और ऋषि दयानन्द के कितने। साधारण लोग इसकी उपेक्षा कर सकते हैं परन्तु जो यह चाहते हैं कि आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों के उद्यान में पौराणिक झाड़झंकार फिर न उग उठें जिसके कारण एक वेद मत के अनेक मत हो गये उनको सतर्क होने की आवश्यकता है।

(२) हमारी पद्धति में याज्ञिक युग की भावनायें बडे वेग से घुस रही हैं। उन सूक्ष्म विचारधाराओं के परीक्षण की आवश्यकता है जो साधारण जनता को प्रलोभन में डाल रहे हैं और हमारा पुरोहित वर्ग उन पौराणिक रूढ़ियों को प्रोत्साहन दे रहा है जिनके उन्मूलन के लिए 'यज्ञ'को सीमित करने की आवश्यकता है।

(३) वेद के विषय में अभी हम इसी उलझन में पडे हैं कि वेदभाष्य की शैलियो में कौन सी शैली यथार्थ है। हमारी महासभाओं में जब वेद-सम्मेलन होते हैं तो वेद का कोई ऐसा रूप हमारे सामने नहीं आता जो विश्व के लोगो का ग्राह्य हो सके। हिन्दी और सस्कृत में तो हम मूल शब्दो या उनके पर्य्यायो को ज्यों का त्यो रखकर अनिश्चितता के दोष को छिपा सकते हैं। परन्तु यदि किसी विदेशी भाषा में अनुवाद करना हो तो भावो के व्यक्त करने में कठिनाई होती है क्योकि स्वय लेखको के मन मे वह भाव व्यक्त नहीं हैं।

(४) वैदिक समाजवाद क्या है यह समस्या अभी तक निश्चित नहीं हो सकी। वर्ण और आश्रम को क्या रूप दिया जाय कि वह विश्व व्यापी हो सके यह टेढ़ा प्रश्न है।

परनीति–

अब थोड़ा सा परनीति (फारेन पालिसी) पर विचार कीजिये, आर्य्य समाज से इतर सस्थाओं का आर्य्य समाज से क्या सम्बन्ध होना चाहिये जिससे आर्य्य समाज के विश्व धर्म होने में सहायता मिले। इस विषय में मुझे हमारी वर्तमान नीति आमूल चूल दूषित प्रतीत होती है। आर्य्यसमाज कामच, आर्य्य समाज का प्रेस, आर्य्यसमाजके आन्दोलन, आर्य्य समाज के नारे, आर्य्य नेताओं की मनोवृत्तियां और आर्य्य जनता की प्रमतियां बड़े उच्च स्वर से पुकार कर कह रही हैं कि हमारी पर नीति (फारेन पालिसी) वही है जो सैकड़ों वर्षों से सामान्य हिन्दुओं की थी और जिसके कारण न केवल दूसरे देशो में अवैदिक मतों ने जन्म लिया अपितु उन्होंने अवसर पाकर वैदिक सस्कृति को प्रनष्ट भी कर दिया। इस विषय में साठ साल पहले हम सबसे आगे थे। और यह आशा पड़ती थी कि हम ससार में वैदिक धर्म फैला सकेंगे, परन्तु अब तो कई सस्थायें हमसे अधिक उदार हैं और इसलिये उनका अधिक मान है, हम प्रतिक्रियावादियों के पजे में हैं। हम वर्तमान साम्प्रदायिक उलझनों में इतने उलझ गये हैं कि विदेशी ईसाइयों को भारत से कैसे निकाला जाय, प्रतिक्रियावादी पाकिस्तानियो से हिन्दुओं को कैसे बचाया जाय, इसका ही हमें अधिक चिन्ता है परन्तु यह चिंता किंचित भी नहीं है कि मुसलमानों के विचारों में परिवर्तन करने के लिये क्या उपाय सोचे जाँय और विदेशो में आर्य्य समाज की आवाज कैसे पहुचाई जाय। जो चिंता हिन्दुओं को दो सहस्र वर्षों से रही वह आज भी है। इसलिये 'शुद्धि' आन्दोलन तो अभी का मर गया। इच्छामात्र बनी है, केवल इच्छाओ से तो काम नहीं चलता। क्या यह सभव है कि देहली के कुछ मुसलमान स्वय सार्वदेशिक सभा के कार्य्यालय में आकर यह माग करे कि आप हमें शुद्ध कर लीजिये। हम आर्य्य होना चाहते हैं ? जब तक आर्य्य समाजी मुसलमान को और मुसलमान आर्य्य समाजी को अपना कट्टर शत्रु समझता है तब तक क्या यह सभव है कि निकट भविष्य या दूरस्थ भविष्य में कभी जादू से ऐसा समय आ सकता है कि सहयोग-विरोधिनी प्रवृत्तियाँ कम हो जाँय ? इसी प्रकार जब तक विदेशों में यह धारणा पक्की होती रहेगी कि भारत मे आर्य्य समाज एक ऐसी सस्था है जो ईसाइयों का फूटी आख से भी देखना नहीं चाहती उस समय तक आर्य्य समाज के मिशन को विदेश में सफल होने की क्या आशायें रक्खी जा सकती हैं ? और क्या वर्तमान अन्तर्जातीय वातावरण में

(शेष पृष्ठ १५ पर)





आर्यसमाज और उसका भविष्य

[ले०—श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री एम० पी०, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश]

संसार के अधिकाश महान् पुरुषो तथा नेताओं ने अपना उत्तराधिकार अपने किसी मनोनीत शिष्य का सौंपकर ही इस ससार से प्रयाण किया, किन्तु आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने अपना उत्तराधिकार किसी एक व्यक्ति का न सौंपकर एक सस्था आर्यसमाज को दिया, यह एक ऐतिहासिक घटना है। इससे यह प्रकट होता है कि ऋषि दयानन्द का मन्तव्य इतना विशाल था कि वह अपने अल्पकालिक सामाजिक जीवन म किसी एक व्यक्ति में वह योग्यता परिलक्षित न कर पाये, अथवा उन्होने सिद्धान्तत इसे उचित न समझा। कुछ भी हो आर्यसमाज ही ऋषि दयानन्द का वास्तविक उत्तराधिकारी है। उसी की कार्य प्रणाली पर ऋषि दयानन्द के मन्तव्य की सफलता या असफलता निर्भर है।



श्री प० प्रकाशवीर शास्त्री ससद सदस्य

आर्यसमाज के नियमो के छठे नियम मे ऋषि ने आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य ससार का उपकार करना रक्खा है। कदाचित इसी कारण आर्यजन एक देशीय राजव्यवस्था से विमुख हो अन्तर्देशीय बनना चाहते हैं, किन्तु क्या यह आवश्यक है कि राष्ट्रिय अथवा अन्तर्राष्ट्रिय बनने के लिए मनुष्य पारिवारिक न रहे। परिवार, ग्राम, राष्ट्र तथा ससार की सद् स्यता क्या एक ही स्थान और काल में सम्भव नहीं है? दूसरी विचारणीय बात यह है कि मनुष्य की सामर्थ्य स्थान और काल से प्रतिबन्धित है, उसके प्रयत्न अकस्मात् सार्वदेशिक नही हो सकते? क्या आर्यसमाज का धर्म प्रचार कार्य अनायास ही सार्वदेशिक रूप धारण कर सका था? अपने मन्तव्य म वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक अवश्य था किन्तु उसके मौलिक रूप का विकास क्रमश ही हुआ है। इसी प्रकार एकदेशीय राज व्यवस्था को ठीक कर अन्तर्देशीय जगत् में विस्तार क्रमश ही किया जा सकता है। यदि महर्षि दयानन्द का राजव्यवस्था में आर्यसमाज का प्रवेश इष्ट न होता तो वह सत्यार्थ प्रकाश मे राजधर्म विषयक छठा समुल्लास न लिखते और न अष्टम् समुल्लास में दुख के साथ अकित करते—"अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशो के राज्य करने की कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त्त मे भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है—"

प्रचलित राजनीति में आर्यसमाज का प्रवेश करना तो वास्तव में अचिन्त्य है क्योंकि वह उचित नहीं है, किन्तु क्रमश सैद्धान्तिक राजनीति को स्पष्ट कर अपनी ही क्रियात्मक राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश आर्यसमाज के लिए अपरिहार्य है, नहीं तो ऋषि के उपर्युक्त शब्द 'आर्यों के आलस्य, प्रमाद" आज भी यथातथ्य हो जायेंगे। अतः आर्य विद्वानो का कर्त्तव्य है कि वह वैदिक साहित्य का मन्थन कर राजधर्म की समय की आवश्यकता के अनुरूप व्यवस्था दें, और राजन्य वर्ग का देश म वैदिक राष्ट्र के आविर्भाव के लिए प्रेरित करें।





महर्षि दयानन्द का जीवन दर्शन—वेद

(ले०—श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा एम० एल० सी०, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उ० प्रदेश)

आधुनिक भारत के प्रणेता और निर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रात स्मरणीय नाम ने पिछले दिनों भारतीय गणतन्त्र की लोक सभा को आन्दोलित कर समग्र राष्ट्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। ससद् ने निश्चय किया कि राष्ट्र निर्माताओं की पवित्र परम्परा मे उनके चित्र की भी स्थापना और प्रतिष्ठा होगी।

ऋषि दयानन्द को लोग विभिन्न रूपो मे देखते हैं यथा दार्शनिक, योगी, विद्वान् सुधारक, क्रान्तिकारी, भक्त, त्यागी, वक्ता, राजनीतिज्ञ गोभक्त, परोपकारी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, वेदोद्धारक आदि।

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन मे राष्ट्र निर्माण के अनेको कार्य किये। स्वराष्ट्र, स्वसस्कृति, स्वभाषा, स्वधर्म, स्वराज्य का दर्शन ऋषि दयानन्द की कृतियो म इतना अधिक है कि अफ्रीका से आने पर महात्मा गांधी ने जब स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए भारत का दौरा किया तो वह अनायास कह उठे कि मैंने जहाँ जहाँ आर्यसमाज देखा वहा अपना क्षेत्र पहले से तयार पाया।

मानव सस्कृति क्या है किसी को इसका ज्ञान नहीं है, सबको दिग्भ्रम हो रहा है। निकट अतीत म भारत की आध्यात्मिक परम्परा के अनहद नाद ने विश्व का ध्यान आकृष्ट किया था। आध्यात्मिक क्षेत्र की "अहिंसा" क्षात्रोचित परिधान धारण कर गाधी जी के साथ राजनीति में अवतीर्ण हुई और चकित विश्व ने प्रथमवार अन्धकार में डूबते हुए भौतिकवाद के लिए आशा की प्रखर रश्मि उद्‌भूत होते देखी। किन्तु ऋषि दयानन्द का उद्‌घोष "कृण्वन्तो विश्व मार्यम्" की वाणी मे बोलता रहा है। महाभारत काल के बाद प्रथमवार प्रसुप्त राष्ट्रीय मानस म चेतना उत्पन्न हुई। "अहिंसा" भारतीय सस्कृति की ही अपूर्व देन है जिसका मूल स्रोत 'आर्ष सस्कृति' हो है जिसका सन्देश सुनने के लिए आज ससार



श्री प० प्रेमचन्द जी शर्मा

उत्कंठित और तृषित है तथा जिसके बिना वह महा विनाश की घडिया गिन रहा है। ऋषियो ने जिस सस्कृति के दर्शन किये वहा विश्व वरणीय सस्कृति पूर्वकाल मे सर्वश्रेष्ठ थी, और आज भी है। ऋषियो ने जिस धर्म का साक्षात्कार किया वह देश और काल के साँचे म सीमित नहीं है वह विश्व म व्याप्त प्रात ऐसे नियम हैं जो सृष्टि के और मानव के जीवन के आधार भूत हैं। अग्नि, वायु, आदित्य, अगिरा, वशिष्ठ विश्वामित्र, गौतम, कपिल, कणाद आदि ऋषियो की परम्परा के द्वारा वेद विद्या का आरम्भ और विस्तार हुआ।

उसी महती परपरा मे ऋषि दयानन्द थे, उन्होने वेद के लिए जो कुछ किया उस ऋण से ससार उऋण नहीं हो सकता। सच्ची राष्ट्रीयता की जननी मानव सस्कृति का दर्शन इस युग में प्रथम बार महर्षि दयानन्द ने ही कराया। वेद विद्या की जो मान्यता भारतीय मानस में पुन प्रतिष्ठित हुई उसका अधिकांश श्रेय महर्षि दयानन्द का ही है। उनका सबसे महत्त्वपूर्ण और स्थाई दर्शन वेदो के विषय में ही था, जो मानव के मानस लोक का सूर्य है। "वेद सब विद्याओं का पुस्तक है" यह उक्ति ऋषि दयानन्द ने ही आधुनिक

(शेष पृष्ठ १४ पर)





महर्षि के वेदभाष्य को समझने के लिए उनके दृष्टिकोण को समझें

[ले०—आचार्य श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री]

जहां आज बाहर के विद्वान् महर्षि के वेदभाष्य की प्रशंसा कर रहे हैं उसको वेदार्थ का एक प्रशस्त मार्ग बतला रहे हैं वहाँ हमारे कार्य भाइयों में ही कुछ लोग समय समय पर अपनी विपरीत धारणा बनाकर त्रुटियां प्रदर्शित करते हैं। मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि महर्षि ने जो भी वस्तु कही है वह यथार्थ तत्वपूर्ण है। उसमे कोई त्रुटि नही। यह हमारी बुद्धि का दोष है कि हम उसे अच्छी तरह नहीं समझ पाते हैं। रघुवंश जैसी पुस्तक को पढने के लिए यत्न की आवश्यकता है परन्तु दयानन्द के भाष्य का लोग बिना यत्न के ही समझना चाहते हैं। महर्षि के समस्त ग्रन्थों को आद्योपान्त पढे नहीं और वेदभाष्य का उससे पूर्व ही हस्तामलक करना चाहते हैं। वेदार्थ में महर्षि का अपना एक दृष्टिकोण है और यह दृष्टिकोण ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि द्वारा स्वीकृत एवं प्रदर्शित दृष्टिकोण है—नया नहीं। जब तक इस दृष्टिकोण को नहीं समझ लिया जाता तब तक उनके वेदभाष्य को समझने मे भी काठिन्य बना रहेगा। यही कारण है कि इस दृष्टिकोण को समझे बिना जब कोई व्यक्ति महर्षि के भाष्य को पढ़ता है तो उसे स्थल-स्थल पर शंकायें और कमियाँ दिखलाई पडती हैं। कई सज्जन तो यह कह बैठते हैं एक ही 'गो' पद के किरण, पृथिवी और इन्द्रिय आदि अर्थ क्यों लगा दिये गये। कई स्थलों पर उन्हें अति प्रसिद्ध पदों का उल्टा अर्थ जो अप्रसिद्ध है दिखलायी पडने लगता है। 'गोमेध' पद को ही लीजिये। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में इसका अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर अन्न, इन्द्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना लिखा है। लोगों को इस पर आश्चर्य होता है। परन्तु जितना ही वैदिक साहित्य का गूढ़ अध्ययन किया जावे महर्षि की बातें ठीक ही सिद्ध होती हैं। गार्ग्यायण के नाम से मद्रास के ब्रह्मवादिन् प्रेस से सन् १९१५ मे प्रणवाद नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसके तीसरे प्रकरण के छठे तरङ्ग में गोमेध की व्याख्या इस प्रकार मिलती है। ग्रन्थकार कहता है—"गोमेधस्तावच्छब्दमेध इत्यवगम्यते। गौर्वाणी मेधया संयोजमिति तदर्थात्। शब्द शास्त्रज्ञानमात्रस्य सर्वेभ्य: प्रदानमेव गोमेधो यज्ञ:"। अर्थात् गोमेध शब्दमेध है—ऐसा जानना चाहिए। "गो" अर्थात् वाणी का जिसने मेधा से संयोजन हो वह ही इसका अर्थ है। शब्द शास्त्र ज्ञान मात्र का सबको देना गोमेध यज्ञ है, गार्ग्यायण की यह अर्थ शैली प्रकट करती है कि गोमेध संबंधी अर्थ निराधार नहीं है।

महर्षि के भाष्य में आदित्य और रुद्र आदि पदों के भिन्न और अप्रसिद्धार्थ को देखकर लोग कह देते हैं कि यह क्या लिख डाला। परन्तु यह ज्ञात हो कि वेदार्थ की उत्तम प्रक्रिया यही रही है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे आदित्य और रुद्र के शतश: अर्थ दिये गये हैं। रुद्र जहाँ अग्नि, प्राण, आत्मा, परमात्मा आदि अनेकार्थों को देता है वहां यह आदित्य के अर्थ को देने वाला है। आदित्य सूर्य की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और भिन्न भिन्न गुणों एवं कार्यों के कारण उसके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। उदाहरणार्थ जैमिनीय उपनिषद् के निम्न वाक्यों को लिया जा सकता है। (हे आदित्य! त्व) व्युषि सविता भवस्युदेष्यन् विष्णु रुद्यन् पुरुषः, उदितो बृहस्पतिरभिप्रयन् मघवेन्द्रो वैकुंठो माध्यन्दिने भगोऽपराह्ण उग्रो देवो लहितायन् अस्तमिते यमो भवसि। अस्नसु सोमो राजा, निशायाम्पितृराज स्वप्ने मनुष्यान् प्रविशसि पयसा पशून् विरात्रे भवो भवसि अपरात्रेऽङ्गिरा अग्निहोत्रवेलाया भृगु.॥ जै० उप० ४।५।१-३। अर्थात् आदित्य उषा काल मे सविता है, उदय के लिये जाता हुआ वह विष्णु कहलाता है, उदय होता हुआ वह पुरुष है। उदित हो जाने पर वही बृहस्पति और चढ़ता हुआ मघवा इन्द्र वैकुण्ठ है। मध्याह्न मे उसका नाम भग और अपराह्न मे





है। लाल होता हुआ वह देव है और अस्तमन वेला मे उसे यम कहा जाता है। तदनन्तर गाधूलि मे वह सोम राजा है और रात्रि में पितृराज है। विरात्र मे वह भव कहलाता है और अपरात्र मे अगिरा कहा जाता है। वही अग्निहोत्रवेला मे भृगु कहा जाता है। इसी प्रकार सूर्य एव दूसरे अर्थों का देने वाले पद अग्नि की विभिन्न अवस्थाओं के भी द्योतक पाये जाते हैं। ब्राह्मण ग्रथो में इनके उदाहरण मिलते हैं। इस स्थिति मे स्वभावत महर्षि का किया अर्थ सर्वथा ठीक ही है। जब तक इसका परिज्ञान नहीं होता है तब तक महर्षि द्वारा किये गये अर्थों को देखने पर मन मे सदेह उठ खडा होता है।

वेदार्थ सबधी महर्षि के दृष्टिकोण को समझने में निम्न वस्तुओ के परिज्ञान एव प्राप्ति की आवश्यकता है—

१—वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्यविद्याओ का पुस्तक है।

२—वेद के सभी शब्द यौगिक हैं और इनमे किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास नही है।

३—देवता मत्रो के प्रतिपाद्य विषय अथवा विनियुक्त विषय हैं और ये तीन प्रक्रियाओ मे अर्थ को लिए होते हैं और 'देवता' इसलिए कहलाते हैं कि ये केवल मत्रो के अर्थ ही नही, अर्थपति हैं।

४—वेदार्थ अध्यात्म, अधिदैव, अधियज्ञ प्रकरणो मे होता है। अत यही प्रकरण हैं। श्री प० सातवलेकर जी के बताये प्रकरण नहीं।

५—लोक और शास्त्र मे व्युत्पन्नता।

६—"ऊह" बल की सम्पन्नता।

साधारणत इन उपर्युक्त वस्तुओ से महर्षि का दृष्टिकोण समझ में आ जाता है। यौगिकवाद आदि के विशेष परिज्ञान और समस्त वैदिक शब्दो में कोई भी इतिहास व्यक्ति विशेष का नहीं है— इसका विशेष वर्णन मेरी बृहत्पुस्तकों-वैदिक इतिहास विमर्श और वैदिक ज्योति मे देखे।

वेद मन्त्रो का अर्थ करते समय कुछ और आवश्यक बातो का ध्यान रखा जाता है। यास्काचार्य ने इनका अपने ग्रन्थो मे पल्लवन किया है और महर्षि के भाष्य मे इन नियमो का प्रयोग पाया जाता है।



वेद के पदोके निर्वाचन भिन्नार्थकता के द्योतक हैं। यास्कीय निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थो से इसका परिज्ञान होता है। कई पद ऐसे हैं जिनके स्वर सस्कार आदि आपातत· अवगत हो जाते हैं और निर्वाचन सरलता से हो जाता है। परन्तु अनवगतस्वर सस्कार वाले में अनेकशः पद हैं जिनका निर्वाचन बहुत विचार के साथ करना पड़ता है और वह रघुवश और सारस्वत एव सिद्धान्त कौमुदी के अध्ययन से नहीं हो सकेगा।

१—"त्व" वेद मन्त्रों में अनेक स्थलों पर आया है। यह "त्व·" के रूप में भी प्रयुक्त है और "त्वम्" के रूप में भी शब्द का प्रयोग पाया जाता है। यह पद "निपात" भी है और सर्वनाम भी है। ऐसी अवस्था में स्वर का बहुत-सा विचार खड़ा हो जाता है। यह नाम है अथवा निपात है—इसको जानने का प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसे पद को पद जाति न ज्ञात होने वाला "पद" कहा जाता है।

२—कई पद ऐसे हैं जिनका अभिधेय अवगत नहीं होता है। उदाहरणार्थ यजुर्वेद २१।४३ वें मत्र का "शिताम्" पद है। इसका निर्वाचन यास्क ने निरुक्त ४।३ पर किया है और शाकपूणि गालव और तट्टीकि आचार्यों के मत भी दिये हैं।

३—कभी ऐसा होता है कि स्वर अनवगत होता है। 'वने न वायो न्यधापि चाकन्' उदाहरण के रूप मे ग्रहण किये जा सकते हैं। ये पद ऋग्वेद १०।२६।१ मत्र के हैं। यहाँ पर शाकल्य पदकार ने 'वायो' का पद 'वा' 'य'—ऐसा पढ़ा है। दूसरा 'वि' का पुत्र मान का 'वाय' एक पद बन जाता है। इसका निर्णय करने मे स्वर की विवेचना करनी पड़ती है। यास्क ने निरुक्त ६।२८ पर इस पर विचार किया है।

४—कई पद ऐसे हैं जिनका सस्कार ज्ञात नहीं होता है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद १।१६३।१० मंत्रस्थ 'ईर्मान्तास' पद का लिया जा सकता है। मत्र में यह अश्व का विशेषण है। परन्तु अश्व से सूर्य के वर्णन मे यह प्रयुक्त है। यहाँ पर यह सूर्य का वर्णन करता है अथवा अश्व का वर्णन करता है—इसका सस्कार साधारणतया अवगत नहीं हो पाता। यहां पर प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान दुरूह है। यत्न करने पर ज्ञात होता है।



५—कहीं-कहीं पदों में गुण का परिज्ञान नहीं होता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद १।१६६।६ के क्रिव र्दती पद को लिया जा सकता है। यास्क ने इसकी व्याख्या करते हुए साथ मे ऋग्वेद ४।३०।२६ मन्त्रस्थ करूलती पद को भी लिया है। अत इस पद से भग का ग्रहण किया जावे अथवा पूषा का। भग का पूर्व से प्रकरण है। ये दो पक्ष खडे होते हैं। पूषा है भी अदन्तक=बिना दांत का है। यहाँ पर किसको गौण और प्रधान माना जावे और अर्थ निकाला जावे, इसका विशद विचार करना पड़ता है। तथा निरुक्त शास्त्र की शरण लेनी पड़ती है।

६—कभी कभी विभाग का परिज्ञान नहीं हो पाता। उदाहरणतः ऋग्वेद ५।३६।१ के 'मह्नेना' पद का लिया जा सकता है। यहाँ पर मत्र मत्र में कहा गया है कि हे इन्द्र मुझे महनीय धन दे। 'मेहना' का एक पद मानने पर महनीय=प्रशस्त धन अर्थ होगा। और अनेक पद मा+इह+ना मानने पर "मेरे पास जो नहीं है" वह धन अर्थ होगा। परन्तु इस विभाग का आपाततः परिज्ञान यहाँ पर नहीं हो पाता है।

७—कभी कभी दो पदों के मध्य मे होने वाले विक्षेप का परिज्ञान नहीं हो पाता है। ऋग्वेद२।४१।२० मत्र में 'द्यावा न. पृथिवी' पद पड़े हैं। यहाँ पर 'द्यावा पृथिवी' ऐसा एक पद मान कर अर्थ किया जावेगा। परन्तु मध्य मे 'न' पद के आने से यह ज्ञान सरलता से नहीं हो पाता। इसी प्रकार शुन शेप के अर्थ को देने वाला 'शुनश्चिच्छेप' पद है।

८—कभी-कभी अध्याहार का परिज्ञान नहीं हो पाता। इसका उदाहरण ऋग्वेद १।१७४।२ मत्र का 'दन·' पद है। यह 'दानमनस' पद से बना है अर्थात् 'दानमनस्' को 'दनस्' आदेश होकर यह पद बना है अतः अर्थ करते समय इसका अर्थ 'दानमनस्' करना चाहिए। परन्तु शब्द को देखकर यह आपातत· ज्ञात नहीं होता है।

९—कभी क्रम का परिज्ञान नहीं हो पाता। ऋग्वेद ४।३३।५ मत्र इसका उदाहरण है। यहाँ पर यह कठिनाई से ज्ञात हो पाता है कि यहाँ पर दो का अथवा बहुत का वर्णन है।

१०—कभी-कभी व्यवधान का ज्ञान नहीं हो पाता। ऋग्वेद ७।३६।२ में "वायु· पूषा स्वस्तये नियुत्वान्" यहा पर वायु और पूषा के मध्य "चकार" का व्यवधान है पर यह साधारणतया ज्ञात नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त निम्न बाते ध्यान के योग्य हैं —

१—एक पद को दो पद कर दिया है। ऋग्वेद १०।२७।२२ मे "पुरुषाद." पद है—यहाँ पर "पुरुषान् अदनाय "करके व्याख्या की जाती है।

२—दो पदो को एक कर दिया जाता है। ऋग्वेद ३।३१।२ में सनितु निधानम् पद हैं। यहाँ पर "गभनिधानीम्" करके अर्थ किया जाता है। यास्क ने ऐसा ही किया है।

३—आख्यात को नाम बना दिया जाता है। अर्थात् क्रिया को संज्ञा बना दिया जाता है। ऋग्वेद ८।६६।३ मे "भक्षत" पद है। इसको "विभदयम.ण" करना पड़ता है।

इस प्रकार ये शास्त्र के नियम हैं जिनको जानकर ही ऋषि का दृष्टिकोण वेदार्थ के विषय में आना जा सकता है। जब तक इनका परिज्ञान न हो तब तक पदे पदे ऋषिभाष्य के समझने में कठिनाई बनी रहेगी।

।। आओ दीपमालिके आओ ।।

जगतीतल को दिव्य बनाने।
अपने हाथो इसे सजाने।।
सौख्य सम्पदा घर घर लाने।
दिव्य ज्योति ले आओ।।
।। आओ दीपमालिके आओ।।
अन्तर्दीप जलाती आओ।
नव प्रकाश फैलाती आओ।।
।। आओ दीपमालिके आओ।।
जय के गीत सुनाती आओ,
धर्म ध्वजा फहराती आओ।
भारत माता के प्राङ्गण में।
दीन हीन मानव अर्पण मे,
आज अनन्त आरती करने,
अगणित दीप सजाओ।
।। आओ दीपमालिके आओ।।

—मुकुटबिहारी लाल वैद्य





प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो

[ले०—श्री आनन्द स्वामी जी सरस्वती]

दीप मालिका का दिवस भारत के लिए एक ऐतिहासिक दिवस है। जैनियो, बौद्धो, हिन्दुओ और आर्यसमाजियो के लिए भी। आज से ७८ वर्ष पूर्व अजमेर में इसी दिन एक ऐसी घटना घटी जिसे देख कर नास्तिक भी आस्तिक बन गये! जगत् गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द ने युक्तियों द्वारा पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी को आस्तिक बनाने का यत्न किया पर वह न बन सका। विष ने स्वामी जी के शरीर के रग-रग में भयकर वेदना उत्पन्न कर रखी थी परन्तु तपस्या और सहनशीलता की मूर्ति दयानन्द इसे प्रकट नहीं करते थे, उन्हे पता लगा कि अब अन्तिम घडी आ पहुँची है, उठ कर बैठ गये। मन्त्र उच्चारण करने लगे उपस्थित लोगो से पूछा कौन सा दिन और कौन तिथि है? और सब पीछे खडे हो जाओ। और खिड़कियाँ खोल दो। ऊँची ध्वनि से गायत्री मन्त्र का जप किया। नेत्र खोले इधर उधर देख कर कहने लगे "वाह प्रभु! कैसी लीला दिखाई! तेरी इच्छा पूर्ण हो" तीन बार कह कर श्वास हमेशा के लिये छोड दिये। नास्तिक गुरुदत्त खड़ा यह दृश्य देख रहा था। जिसे ऋषि की युक्तियाँ आस्तिक न बना सकीं थीं वह यह दृश्य देख कर वह आस्तिक बन गया।

'पीछे खडे हो जाओ' के शब्द बतलाते हैं कि मृत्यु के समय ऋषि ने सदेश दिया कि मेरे दिखलाये वैदिक मार्ग पर चलते जाना और वैदिक धर्म का द्वार सबके लिए खोल देना। आज के दिन चिन्तन करो कि क्या महर्षि के इस अन्तिम सन्देश को हमने पूरा करने का कोई यत्न किया? यदि कोई त्रुटि दिखलाई देती है तो आज उसे पूर्ण करने का व्रत धारण करो।

महर्षि दयानन्द का जीवन दर्शन-वेद

(पृष्ठ १० का शेष)

काल मे की। मध्यकालीन आचार्य प्राय गीता, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थो पर रुक जाते थे, किन्तु प्रस्थानत्रयी के उस पार जो वेदो का ज्ञान समुद्र है वहा तक पहुचने का आग्रह ऋषि दयानन्द ने ही किया। वेद और वैदिक सस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा के लिए सच्चे सेनानी की भांति जीवन भर सघर्ष किया।

ऋषि दयानन्द के समक्ष भारत के और भारतेतर सभी मत और सम्प्रदाय थे, जिनका ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था। वह चाहते तो किसी भी सम्प्रदाय के महन्त बन कर जीवन सुख चैन से व्यतीत कर सकते थे किन्तु उन्होने कष्टो और आपत्तियो का सहना उचित जाना। अन्त मे गरलपान कर अपना बलिदान भी कर दिया। यह क्यो? महात्मा गान्धी ने गाली खाकर क्यों प्राण दिये, तथा अनेको सन्त क्यो सूली पर चढ़ गये? क्यों कि मानवहित उन्हे जीवन से अधिक प्रिय था। महर्षि दयानन्द ने भी जहर का प्याला इसलिए पिया कि उन्हे मनुष्य की आत्मिक स्वतन्त्रता या मनुष्यता अधिक प्रिय थी। उन्हे विश्वास था कि वेदों का सन्देश मानव मात्र के लिये है और वही मानव सस्कृति का मूल है। उसकी ज्योति के बिना भटका हुआ मानव कदापि मार्ग पर नहीं आ सकता। भौतिक जगत के आलोक पुञ्ज सूर्य के समान मानस जगत का सूर्य वेद ही है, जिसके स्वत प्रमाण के बिना चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार है। मानव की मर्यादाओ, उसके कर्त्तव्यो का जितना विशद और सुस्पष्ट वर्णन वेदों ने किया है उतना अन्यत्र नहीं है। वेद ससार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। वेद विद्या सृष्टि विद्या का दूसरा नाम है। इन विद्याओ का अपरिमित विस्तार है।

अन्तरंग अधिवेशन की सूचना

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरग सभा का साधारण अधिवेशन १८ नवम्बर १९६१ दिन शनिवार श्रीसर्वदानन्द साधुआश्रम (पुल काली नदी) जिला अलीगढ़ मे होना निश्चित हुआ है। आशा है कि सर्व सदस्य गण नियत समय पर पधार कर अनुगृहीत करेंगे।

नोटः—साधु आश्रम अलीगढ़ से अतरौली राह पर १० मील पर स्थित है। —प्रेमचन्द्र शर्मा सभा मन्त्री





काशी शास्त्रार्थ



[रचयिता—युवराज श्री रणञ्जयसिंह एम० एल० सी०]

काशी मे हलचल, मच गयी सन्यासी एक,
दयानन्द आये हैं, जिनकी ललकार है।
विद्वज्जन शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध करें,
मूर्त्ति पूजन वैदिक सिद्धान्तानुसार है।
ईश्वर निराकार कभी, होता साकार नहीं,
लेता न 'रणजय' अजन्मा अवतार है।
शास्त्रार्थ हुआ, पण्डित काशी के परास्त हुए,
मानना ही पडा विद्या स्वामी में अपार है ॥१॥

[पृष्ठ ८ का शेष]

यह कभी सम्भव हो सकेगा कि भारत सरकार विदेशी ईसाइयों के आने पर पुराने जमाने के समान कोई पाबन्दी लगा दे। और यदि किसी प्रकार ऐसी पाबन्दियाँ लगा भी दी गई तो आर्य्य प्रचारकों के साथ बाहर वालों का क्या बर्ताव होगा और भारतीय ईसाइयों की प्रगतियां कैसे रोकी जा सकेंगी। सामाजिक उत्सवों में शान्ति-प्रकरण के पाठ करने से तो शान्ति स्थापित न हो सकेगी जब तक कि अशान्त वातावरण में शान्ति के बीज बोने का प्रयत्न नहीं होता। क्या आर्य्यसमाज की वर्तमान प्रगतियों को देखते हुए कोई कह सकता है कि अमुक अशान्त वातावरण की अशान्ति को कम करने के लिए आर्य्य समाज ने यह विधि निकाली ? इसके विपरीत तो सभी को दृष्टिगोचर होता है। यह हमारी परनीति (फारेन पालिसी) का फल है कि लोग हमसे डरते तो हैं हमारी ओर आकर्षित नहीं होते। यह रोग इतना बढ़ गया है कि हमारी गृह नीति (होम पालिसी) पर भी इसका प्रभाव है और एक नेता दूसरे नेता से तथा एक विद्वान् दूसरे विद्वान् से शंकित रहता है और प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में साधारण जनता को उत्तेजित करने की धुनामुनी जारी रहती है।

गृहनीति –

तीसरी बात है गृहनीति का परिपालन। मुझे आर्य समाज के नियम-उपनियम या विधान आदि में कोई विशेष त्रुटि दिखाई नहीं पड़ती। आर्य्यसमाज का विधान उस विधान से सर्वथा भिन्न है जो प्राचीन मठों के थे। वर्तमान वातावरण उनके अनुकूल है भी नहीं। सार्वजनिक वातावरण में यही सम्भव था। परन्तु इस विधान का परिपालन नहीं हो रहा। इसमें अधिकतर दोष तो हमारी परनीति (फारेन पालिसी) का है। कहावत तो यह है कि 'इस घर को आग लग गई घर के चिराग से' (भञ्झा प्रेरित गेह-दीप-शिखया गेह गत भस्मताम्) परन्तु घर के चिराग पर पर्दा करने वाले तो बाहर से घुस आते हैं। आर्यसमाज के नेताओं में से कोई एक भी ऐसा नहीं जो किसी न किसी राजनीतिक दल के प्रभाव में न हो और जो आर्य्यसमाज को उस दल के पीछे घसीटने में सहायक न हो। प्रश्न यह नहीं है कि हम किस तेजी से दौड़ रहे हैं प्रश्न यह है कि हम किस दिशा में दौड़ रहे हैं और चालीस पचास वर्ष पीछे हम कहां होंगे। योग दर्शन का सूत्र है "हेयं दुःखमनागतम्।" भविष्य में आने वाले दुःख को हटाने का यत्न करो। अतीत तो चला गया। उसके लिये रोने से क्या लाभ ? और वर्तमान तीव्र गति से अतीत बन रहा है। अनागत परोक्ष है। सबसाधारण की दृष्टि से ओझल है। और हम उसकी ओर झांकने से डरते हैं कि कहीं हमारी मान्यताओं को धक्का न लगे। तो क्या आँखें बन्द करके अपने को परिस्थिति की लहरोंपर छोड़ दें। और कहते रहे 'ईश्वर भेज देगा उधर जायगे?"

★





(पृष्ठ २ का शेष)

उन्होंने आर्यसमाज के नियमों में आदेश दिया कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। यदि आज के प्रजातन्त्र में यह सत्य निष्ठा हो तो प्रजातन्त्र के नाम पर होने वाला दुराग्रह समाप्त हो जाय। महर्षि दयानन्द ने राज्य-व्यवस्था की दृष्टि से भी प्रजातन्त्र का विशेष महत्व प्रदान किया है। राजा के निर्वाचन और सभा समितियों के संघटन का आधार उन्होंने जनमत ही स्वीकार किया है। यही नहीं उन्होंने सामाजिक हित को प्राथमिकता प्रदान करते हुए आदेश दिया है कि सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालन में सब परतन्त्र रहें। इस प्रकार अधिनायकवादी मनोवृत्ति को उन्होंने अपने दृष्टिकोण में अल्पांश में भी स्वीकार नहीं किया।

७-जीवन का सांस्कृतिक आधार

महर्षि मानव जीवन लक्ष्य को भौतिकवाद से ऊपर समझते थे उन्होंने ऐहिक एवं पारलौकिक दोनों के समन्वय को जीवन का आदर्श बनाया था। वह अभ्युदय और निश्रेयस दोनों की सिद्धि के लिये मानव जाति और अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना चाहते थे।

इन तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक कारणों से हम यह मानने के लिये विवश हैं कि महर्षि दयानन्द मानवता का सर्वाङ्गीण विकास चाहने और करने वाले महापुरुष थे।

महर्षि के पवित्र स्मरण दिवस पर हमें अपने हृदयों का अन्धकार नष्ट कर अन्तस को महर्षि के महान् आदर्शवादी ज्ञानालोक से आलोकित करना चाहिये। महर्षि ने अपनी कठोर साधना द्वारा मानवता को दिव्यामृत प्रदान किया उसका सार्वजनीन प्रसारण महर्षि के अनुयायियों का नैतिक दायित्व है।

अवकाश सूचना

सदैव की भांति दीपावली की छुट्टी के कारण आर्यमित्र का अंक ४४ दि० १२ नवम्बर का बन्द रहेगा। अब अगला अंक १६ नवम्बर का निकलेगा। पाठक व एजेंट नोट कर लें।

—गोपालदत्त शास्त्री एम० ए०
सह० अधिष्ठाता

'ऋषि उत्सव का महत्व'

[पृष्ठ ४ का शेष]

आवश्य है कि संख्या वृद्धि के साथ साथ हम में धर्म्मिकता, कर्म्मण्यता, नैतिकता, सदाचारादि सद्गुणों की भी वृद्धि हो। हम जो सोचें, जो कहें और जो करें उसमें सत्य का सुन्दर समावेश रहे। हम अधिकारों अथवा पदों पर प्राण न देकर सच्चे, सुदृढ़, सदाचारी और धार्मिक कार्यकर्त्ता सिद्ध हों और सदा-सर्वदा सोत्साह सेवा-कार्य में सलग्न रहें। आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय, चिन्तन और मनन करें। केवल स्वाध्याय नहीं, प्रत्युत महापुरुषों की कल्याण-कारिणी शिक्षाओं को अपने जीवन में भी ढालें। सदुपदेशों अथवा पुण्यमय आदेशों को कार्यरूप में परिणत करना ही चरित्र या नैतिकता है।

महर्षि दयानन्द महात्मा थे। वे मन, वचन, कर्म तीनों में एक थे। वे जो सोचते वही कहते और जो कहते उसी के अनुसार करते थे। हम लोग ऋषि के भक्त हैं। हमारा भी कर्त्तव्य है कि हम सदैव ऋषि के चरण चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करें। यह ठीक है कि सब लोग ऋषि नहीं हो सकते, और न यह सम्भव ही है, परन्तु फिर भी महर्षि निर्देशित शुभ दिशा में चल कर, हम अपने को 'आर्य या 'मानव' तो अवश्य बना सकते हैं। इस समय सबसे अधिक आवश्यकता 'आर्य्य' बनने अर्थात् 'मानवता' को अपनाने की है। 'मानव' या 'आर्य्य' बनने के लिये कर्त्तव्य निष्ठा, सदनुष्ठान, आदि सदाचार की आवश्यकता है। अपने को 'आर्य्य' कहने या लिखने मात्र से कोई कभी आर्य्य नहीं बन सकता। आर्य्य तब ही बनेगा जब आर्यत्व को मन, वचन एवं कर्म्म से अपनायेगा। इसी का नाम आचरण या चरित्र है और इसी की शिक्षा हमारे महान् आचार्य महर्षि दयानन्द ने सदा दी है। यदि हमें सच्चे अर्थ में ऋषि उत्सव मनाना है तो हमें ऋषि के आदेशों और उपदेशों को सद्भावना पूर्वक क्रियात्मक रूप देना होगा अर्थात् उन्हें दृढ़ता से पालन करना पड़ेगा। तभी हम अपने को सच्चा 'ऋषि-भक्त' या 'आर्य्य' कह सकेंगे और उसी अवस्था में हमारा 'ऋषि-उत्सव' मनाना समुचित तथा सार्थक सिद्ध होगा।





कर्त्तव्य

—जय जगदीश पाण्डे

★

दयानन्द गुणगान वैदिक धरा पर,
हमीं जो न गाए तो फिर कौन गाए।
असद्धर्म से पूर्ण जब मातृ भू पर,
अविद्या निशा कालिमा छा रही थी।
तपस्वी प्रज्ञानन्द गुरु धाम से तब,
समुज्वल प्रभामय उषा आ रही थी।
उसी ज्ञान का छत्र विश्वम्भरा पर
हमीं जो न छाए तो फिर कौन छाए,
दयानन्द गुणगान वैदिक धरा पर,
हमीं जो न गाए तो फिर कौन गाये।
कपिल ने जहाँ साख्य सिद्धान्त देखा,
जहां व्यास ने दिव्य वेदान्त पाया,
जहा से हमें ज्ञान गीता मिली थी,
जहा से विषद् न्याय का तर्क आया।
व्रती के बताये उसी वेद पथ पर,
हमीं जो न आवे ता फिर कौन आवे,
दयानन्द गुणगान वैदिक धरा पर,
हमीं जो न गावें तो फिर कौन गावे।
विधर्मी हुए वेद को त्याग कर जो,
उन्हे शुद्धि का मन्त्र ऋषि ने बताया,
भुला के उसे ही अनाचार में जो,
पड़े हैं अचेतन न सद्धर्म पाया।
उन्हीं में सुधा प्राण सचार करने,
हमीं जो न जाये तो फिर कौन जाए
दयानन्द गुणगान वैदिक धरा पर,
हमीं जो न गाए तो फिर कौन गाए।
उपासक बने जो यहां रूढ़ियों के,
जिन्होंने बढ़ाई घटा शोक की है,
अकर्मण्यता के निशा आवरण में,
न रेखा जहाँ दिव्य आलोक की है।
वहीं तो निगम ज्ञान दीपक जलाने,
हमीं जो न जावें तो फिर कौन जावे।
दयानन्द गुणगान वैदिक धरा पर,
हमीं जो न गावे तो फिर कौन गावे।

राष्ट्र पितामह—

महर्षि दयानन्द

[ले०—श्री अनन्तशयनम आयगर, अध्यक्ष लोक सभा]

मैं दुनिया के अनेक देशो में घूमा हूँ। किसी देश मे सन्तोष नहीं है। पाश्चात्य नागरिकता मे शान्ति नहीं है। हमारा देश हरदम सन्तोषी और शान्तिवाहक रहा है। मनुष्य और पशु मे क्या भेद है। धर्म ही वह तत्व है, पर सच्चा धर्म क्या है? धर्म के लिये सेवा और त्याग चाहिए। सस्कृति का मूल आधार सेवा और त्याग है। बुद्ध ने भी वही किया। राजकुमार होकर भी ससार के कल्याण के लिए परिवार छोड दिया—और विशाल परिवार बनाया। सेवा के आदर्श अपनाकर ही उन्होने मानवता को आगे बढ़ाया। दयानन्द ने भी ससार कल्याणार्थ गृह त्याग और कुटुम्ब त्याग किया था। आज देश को फिर बुद्ध और दयानन्द की आवश्यकता है।

दयानन्द की भावना त्याग और सेवा की थी, आर्यसमाज की भी एक भावना है प्रेम और समष्टि भाव की, इस भावना का देश विदेश सर्वत्र विकास होना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने वेदमत्रो पर विशेष बल दिया था। आज हमे दयानन्द का वेद भाष्य सुनाना चाहिए और उसका गौरवपूर्ण स्वागत करना चाहिए। स्त्रियो को भी वेद-पाठ करना चाहिए। महर्षि ने हमारी स्त्रियों को वेद-पाठ का अधिकार न देने की भूल का सुधार किया। हमे देश के कोने-कोने में वेद घोष गुँजा देना चाहिए, हिमालय से कन्याकुमारी तक ही नहीं विश्व मे सर्वत्र वैदिक नाद गूँजना चाहिए।

भारत देश के राष्ट्र पिता गाधी जी हैं तो महर्षि दयानन्द राष्ट्र पितामह हैं दयानन्द हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियो के और स्वाधीनता आन्दोलन के आद्य प्रवर्त्तक थे। उन्हीं के चरण चिन्हों पर गांधी जी ने आगे कार्य करने का यत्न किया था।







वैदिक धर्म विश्व का धर्म कब बनेगा ?

(ले०—श्री दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मडल पारडी)



वास्तव मे वैदिक धर्म सम्पूर्ण विश्व का धर्म, सब मानवो का धर्म है, पर वह इस समय किसी के आचरण मे नहीं है। महर्षि आये, उन्होने चुने हुए लागो को आर्यसमाज की दीक्षा दी और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" की वेदाज्ञानुसार विश्व भर मे वैदिक धम प्रसार करने की प्रेरणा उन्हे दी।

"वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है, वेद का पढना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है" यह नियम भी आर्यसमाज के नियमो म महर्षि ने समाविष्ट कर दिया था, जिससे कि उनकी वैयक्तिक उन्नति हा सके। इस नियम के बनाने म महर्षि का यही उद्देश्य था कि हर आर्य के घर मे चारो वेद रहे और प्रत्येक आर्य वेद पाठ प्रतिदिन किया करे। और इस तरह सम्पूर्ण वेद ज्ञान के साथ प्रत्यक आर्य अच्छी तरह परिचित हा।

परन्तु अब तक प्रत्येक आर्य के घर मे वेद प्रविष्ट नहीं हा पाये, अत प्रतिदिन वेद का पाठ करने का जा "आर्यों का परम धर्म है" उसका पालन किसी आर्य से नहीं हा पाया, और महर्षि से वैदिक ज्ञान की जो किरण मिली थी, उससे किंचिन्मात्र म प्रकाशित होकर आर्य समझने लगे कि वे सब वैदिक धर्मी बन गये और विश्व में वैदिक धर्म का प्रचार करके जगदुद्धार का कार्य वे कर सकते हैं।

आर्यों का कार्यक्रम–

समाज म जाना, वहा व्याख्यान सुनना, चन्दा दना, वार्षिकोत्सव करना, आर्य सम्मेलन करना, प्रचार की धूम का बतान वाले विज्ञापना का छापना इन सब दिखानके कार्यों म ही आर्योंने अपने कार्य की इतिश्री समझ ली है। पर वस्तुत देखा जाये ता उनके घरो म भी, जो इन उत्सवो म बडे जार शार से कार्य करते हैं, वेदो की पुस्तके नहीं



श्री प० सातवलेकर जी

होगी, और यदि होगी भी, तो उस पर धूल की पर्ते चढ गई होगी। यद्यपि वे सब 'वेदो का पढना पढाना सब आर्यों का परम धर्म है' इस नियम का मानते हैं, पर उस प्रकार का आचरण वे कभी नहीं बनाते।

परम पूज्य महर्षि ने जो परम धर्म के पालन का नियम बनाया था, वह केवल नियमावलि की शोभा के लिए नहीं था। परमधर्म वह होता है कि जिसका अनिवार्य रूपेण पालन हा। इस परम धर्म का जो पालन करेंगे, वे ही वैदिक धर्म का विश्व मे प्रचार कर सकेंगे। जितने इस परम धर्म का पालन करनेवाले हैं, वे ही महर्षि के सच्चे अनुयायी हैं, अन्य ता केवल नामधारी हैं। नामधारी आर्यों से विश्व भर में वैदिक धर्म का प्रचार होना दुःसाध्य ही नहीं नितान्त असभव है। अत सर्वप्रथम आर्यों को सच्चे आर्य बननेका प्रयत्न करना चाहिए।





संस्कृत भाषा सीखना–

पहली बात यह है कि सब आर्यों को संस्कृत भाषा का अध्ययन करना चाहिए। संस्कृत भाषा जगत् की सभी भाषाओं की अपेक्षा आसान है। इसलिए थोडे से परिश्रम से ही यह भाषा सीखी जा सकती है। वह आर्य है, इतना कहने मात्र से मालूम हो जाये कि वह संस्कृत भाषा जानता है। संस्कृत न जानने वाला आर्य न समझा जाए। साधारणत: बोलने पढ़ने और लिखने लायक संस्कृत छ महीने मे आ सकती है। आवश्यकता केवल इस बात है कि वह प्रतिदिन एक घंटा इस भाषा को दिया करे।

संस्कृत के बिना वेद का पढ़ना, पढाना हो ही नहीं सकता। अत आर्यों को संस्कृत सीखकर ही संस्कृत प्रचार का कार्य करना चाहिए। अत प्रत्येक आर्यसमाज को चाहिए कि वह संस्कृत का प्रचार सर्वप्रथम अपने सदस्यो मे करे। कोई भी आर्यसमाजी या आर्यसमाज का प्रचारक संस्कृत ज्ञान के बिना न रहे। इन सबको इतनी संस्कृत अवश्य आनी चाहिए कि समय पडने पर वे संस्कृत मे बोल भी सके। इतना संस्कृत भाषा का ज्ञान तो अवश्यमेव होना चाहिए।

वेद की पुस्तकें घर घर में हों–

दूसरी बात यह है कि प्रत्येक आर्य के घर मे वेद के ग्रंथ अवश्य हो। मूल्य की दृष्टि से मूल चार वेद आजकल २०) मे प्राप्य हैं। पर इतना भी मूल्य एक साथ न दे सकने वाले आर्यो के लिए विभागश: मूल्य किस्तो पर पुस्तको के मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रत्येक आर्यसमाज अपने सभासदो की संख्या के अनुसार वेद ग्रंथ खरीदे, उन ग्रन्थों को अपने सभासदों में बेचे और उनके विभागश: मूल्य वसूल करे। वेदानुवाद के ग्रन्थो का भी इसी तरह प्रचार हो सकता है। इस प्रकार हर आर्य के घर मे वेद रह सकते हैं और उसका पाठ भी वे कर सकते हैं। और इस प्रकार प्रत्येक आर्य परम धर्म का पालन कर सकता है।

आर्य प्रतिनिधि सभायें तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा इस दिशा मे कदम उठाये और वेदो का अनुवाद मुद्रित करके उसका घर-घर म प्रचार करें। लाभ का दृष्टि मे न रख कर केवल लागत व्यय मे ही इन्हे बेचे। यह काम पुस्तक विक्रेता या प्रकाशक नहीं कर सकते क्योकि लाभ के बिना कार्य करना उनके लिए असम्भव है। अत सब आर्य सभाये मिलकर वेद मुद्रण फड जमा करके इस कार्य को करे।

वेदानुवाद के ग्रन्थ–

वेदानुवाद के ग्रन्थों को प्रकाशित कर लागत मूल्य मे या लागत से भी कम मूल्य मे आर्यों में बेचे जाये।

वेद मत्रो की पुस्तक अलग हो और उनके अनुवाद के ग्रन्थ पृथक् हो। यह अनुवाद भारत की १६ भाषाओ में हो और वह छापे जायें। यदि सम्भव हो तो अंग्रेजी में भी हो। प्रचार के लिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बिना होने वाला प्रचार बे बुनियाद के मकान जैसा है। पुस्तको के बिना वैदिक धर्म का प्रचार हो ही नहीं सकता।

आर्य सदस्य और पदाधिकारी–

आर्य समाज के तथा प्रतिनिधि सभाओं के सदस्य तथा पदाधिकारी संस्कृत भाषा बोलने वाले तथा वेद का नित्य पाठ करने वाले ही होने चाहिए अन्यथा उनको 'आर्य' कहना एक महज धोखा ही होगा।

उपदेशक की योग्यता–

आर्यसमाज के उपदेशक संस्कृत मे उत्तम व्याख्यान दे सकें, इतनी योग्यता उनमे होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त हिन्दी तथा जिस प्रान्त मे वे कार्य करें, उस प्रान्त की भाषा उन्हे आनी चाहिए। वेद के कम से कम २००० मन्त्र उनको कण्ठस्थ होने चाहिए। साथ ही उनके अर्थ का ज्ञान भी होना चाहिए। वे उपदेशक दूसरे धर्मों पर आक्रमणात्मक प्रवृत्ति न अपना कर अपने वेद ज्ञान की विशेषताओ को लोगो के सामने रखे।

इस तरह यदि वैदिक धर्म का प्रसार हुआ तो वह धर्म कभी न कभी पृथ्वी पर के सब देशो में फैलेगा। और विश्व मे शान्ति का साम्राज्य होगा।

———





ऋषि की रचना-सत्यार्थ-प्रकाश

(ले०—श्री प० उदयवीर जी शास्त्री, गाजियाबाद)

अतीतकाल के लोककर्त्ता व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिये सर्वोत्तम लौकिक साधन उनकी रचनाओं का अध्ययन है। कपिल का साक्षात्कार करने मे किसी सीमा तक उस समय हम अवश्य सफल होते दिखाई देते हैं, जब उनके अगाध गम्भीर कृति जलधि मे गहरा गोता लगा जाते हैं। प्रत्येक आर्य जन महर्षि दयानन्द के दर्शन के लिए सदा उत्सुक रह सकता है। उसको उत्सुकता के शमन के लिये सरल उपाय है ऋषि की रचनाओं का विवेक पूर्ण अध्ययन। यदि हम प्रत्येक पद पंक्ति और के अर्थ, अभिप्राय एव रहस्य का समझे बिना ही पढते चले जायेंगे, तो निश्चित रूप से हम उस दिव्य आत्मा के दर्शन में पूर्ण सफल न होंगे।

महर्षि की रचना—

उस साहित्य का कलेवर विशाल है जिसकी रचना ऋषि दयानन्द ने की। सर्वत्र देश मे अपने विचारों के प्रचार की भावना से भ्रमण करते रहने की अवस्था मे ऋषि का अत्यल्प अवकाश मिल पाता था, जब वे ग्रन्थ लेखन का कार्य कराते थे। वेदों के भाष्य, वेदांगों के व्याख्यान, कर्मकाड, सन्ध्या उपासना, सामाजिक व्यवहार आदि अनेक विषयों पर ऋषि ने छोटे बडे दर्जनों ग्रन्थों की रचना की। जो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सख्या चालीस के लगभग है, अनेक शास्त्रार्थों का विवरण इनके अतिरिक्त है, तथा अनेक ग्रन्थ अभी अजमेर मे अमुद्रित अवस्था मे सुरक्षित बताये जाते हैं। सहस्रों वर्ष पूर्व जो भारतीय समाज प्रत्येक प्रकार से अति उन्नत अवस्था मे था, वह अपनी सामाजिक शिथिलता, प्रमाद पारस्परिक सघर्ष तथा अन्य जिन कारणों से अवनति की ओर बढते हुए ऋषि के प्रादुर्भाव से पूर्व तक पूर्ण विकृत हो चुका था उन अवनति के कारणों को दूरकर समाज को उसी पूर्व उन्नत अवस्था मे ले जाने की उत्कट भावना ऋषि के हृदय मे जागरूक थी। उनके साहित्य में अनेकानेक स्थलों पर गहरी भावना के साथ वे उद्‌गार प्रकट हुए दृष्टिगोचर होते हैं जिनसे भारतीय समाज व राष्ट्र की सर्वाङ्गीण हीन अवस्था से उनके हृदय में व्याप्त गम्भीर क्लेश का अनुभव होता है। उनकी जितनी भी साधारण या उच्चकोटि की रचना हैं वे सब राष्ट्रिय भावना से ओत प्रोत हैं। अब से एक शती पूर्व जब ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य पूर्ण मध्याह्न में तप रहा था, अपने देशी राज्य या स्वराज्य का नाम लेना भी राज विद्रोह समझा जाता था, इस तरह की भावनाओं के लिए राज-दण्ड का भय पदे पदे बना रहता था, ऐसे समय में ऋषि ने अपने साहित्य में सच्चे स्वराज्य का खुला वर्णन किया।

सत्यार्थ-प्रकाश—

ऋषि की समस्त रचनाओं मे सत्यार्थ प्रकाश अपना विशेष महत्त्व रखता है। समाज का कोई ऐसा अग नहीं, जिसके अभ्युदय के लिए इस ग्रथरत्न मे उपाय एव विविध विधानों का वर्णन न किया गया हो। ऋषि की समस्त भावनाओं का यह सर्वोच्च एव सच्चा स्पष्ट प्रतीक है। हिन्दी तथा अन्य देशी एव विदेशी वभिन्न भाषाओं मे तीन लाख से भी अधिक प्रतियां इसकी प्रकाशित हो चुकी हैं इस भावना से मैं यह नहीं लिख रहा, कि यह हमारे लिए कोई सन्मान की बात है, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ रत्न की इतने लम्बे समय मे इतनी प्रतियों का प्रकाशित होना एक साधारण बात समझनी चाहिए। फिर भी इससे ग्रथ की चतुरस्र उपयोगिता स्पष्ट होती है।

ऋषि रचना में सन्देह—

पिछले दिनों अन्य समाजो की ओर से ऐसे सन्देह उत्पन्न किये जाते रहे हैं, कि वर्तमान सत्यार्थ-





प्रकाश ऋषि दयानन्द की रचना नहीं है। उन्होने अपने जीवनकाल मे जो सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित एव प्रकाशित कराया था, वह इससे भिन्न है। ऋषि के देहावसान के अनन्तर आर्यसमाजियो ने उस सत्यार्थप्रकाश को बन्द कर दिया, और दूसरा सत्यार्थप्रकाश बनाकर ऋषि दयानन्द के नाम से प्रकाशित करा दिया गया। वही सत्यार्थप्रकाश आजकल आर्यसमाज में प्रचलित है और उसी को वह अपना मान्य ग्रन्थ मानता है।

जब आर्यसमाज ने ऋषि के जीवन काल मे प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के सर्वप्रथम संस्करण का पुन. मुद्रण कराना रोक दिया, तब कतिपय ऐसे व्यक्तियो ने जिनका आर्यसमाज से व्यावहारिक विरोध था— उसे पुन. प्रकाशित कराया, पर वह एक बार ही मुद्रित होकर रह गया, फिर भी उससे अनेक व्यक्तियो को वर्तमान सत्यार्थप्रकाश की ऋषि रचना के विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाने के लिए प्रोत्साहन मिला।

उक्त सन्देह सर्वथा निराधार–

सत्यार्थप्रकाश की रचना के विषय मे उक्त विचार सर्वथा निराधार एव मिथ्या हैं। ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर यह प्रमाणित होना सम्भव नहीं, कि ऋषि के देहावसान के अनन्तर आर्यसमाजियो ने वर्तमान सत्यार्थप्रकाश को स्वय लिखवाकर प्रकाशित करा दिया। अभी तक उपलब्ध साधन इस विचार के सर्वथा विपरीत हैं।

इस बात को प्रस्तुत विषय के सभी ज्ञाता अच्छी तरह जानते हैं, कि सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण मुरादाबाद निवासी राजा श्री जयकृष्णदास जी के द्वारा प्रकाशित कराया गया था। राजा महोदय ने ऋषि के प्रवचनो व उपदेशो से प्रभावित होकर उनसे निवेदन किया था, कि इन प्रवचनो को महाराज लिपि बद्ध करा दें तो उन्हे मुद्रित कर प्रकाशित करा दिया जाय जिससे भविष्य में भी जनता लाभ उठा सके। इसी के फलस्वरूप ऋषि ने लेखक द्वारा अपने उन विचारो को लिपिबद्ध कराया, जो उन्होने प्रवचनो मे प्रकट किये थे। वह पाण्डुलिपि श्री जयकृष्णदास जी को मुद्रणार्थ दे दी गई। उसके प्रकाशित होने पर यह मालूम हुआ कि उसमें कुछ ऐसे विचार सम्मिलित कर दिये गये हैं, जो ऋषि ने न लिखाये, न प्रवचनों में प्रकट किये और न उनको वाञ्छनीय थे। जब ऋषि को इस बात की सूचना मिली, तो उन्होंने उन विचारो का प्रतिवाद किया, जो उनकी भावनाओ के प्रतिकूल, प्रकाशक अथवा उनके सलाहकारो की प्रेरणा से मिला दिये गये थे।

ऐसी स्थिति में ऋषि का यह सकल्प होना सभव है, कि सत्यार्थप्रकाश का अगला संस्करण शोधकर स्वय प्रकाशित कराया जाय। प्रथम संस्करण १९३२ विक्रमी सवत् में प्रकाशित हुआ, और १९३६ विक्रमी सवत् में वर्णोच्चारण शिक्षा के अन्तिम पृष्ठ पर सत्यार्थ प्रकाश का द्वितीय संस्करण छपाने की प्रथम सूचना प्रकाशित कराई गई। दूसरी सूचना सवत् १९३८ विक्रमी में सन्धि विषय के अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशित की गई। इस अन्तराल काल मे सभवत: ऋषि सत्यार्थ प्रकाश के सशोधित द्वितीय संस्करण की पाण्डुलिपि तैयार कराने में यथावसर सलग्न रहे। ऐसा प्रतीत होता है, कि सवत् १९३८ तक वह पाण्डुलिपि लिखी जाकर प्राय पूर्ण हो चुकी थी क्योंकि विक्रमी सवत् १९३९ के भाद्रमास से पाण्डुलिपि का प्रारम्भिक अश छपने के लिये भेजना प्रारम्भ कर दिया गया था। ऋषि के जीवनकाल मे सत्यार्थ प्रकाश के सशोधित द्वितीय संस्करण का कितना भाग मुद्रित हो चुका था, यह ऋषि के निम्नलिखित पत्र व्यवहार से स्पष्ट होता है।

१—उपर्युक्त द्वितीय सूचना के कुछ मास अनन्तर भाद्रवदी १ मगलवार, सवत् १९३९ विक्रमी [२९ अगस्त १८८२] को ऋषि ने एक पत्र मेवाड़राज उदयपुर से वैदिक मन्त्रालय के प्रबन्ध कर्त्ता मुन्शी समर्थदान को लिखा, उसका प्रसग मे अभिलषित अश इस प्रकार है—

'आज सत्यार्थ प्रकाश को शुद्ध करके ५ पृष्ठ भूमिका के और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास के भेजे हैं, पहुँचेगे।"

इससे स्पष्ट होता है, कि ऋषि के निर्वाण काल से लगभग एक वर्ष दो मास पूर्व सत्यार्थप्रकाश





के सशोधित द्वितीय सस्करण की प्रेस कापी तैयार की जाकर मुद्रण के लिये प्रेस मे भेजनी प्रारम्भ कर दी गई थी। निश्चित ही समस्त सत्यार्थ प्रकाश [सशोधित द्वितीय सस्करण] की पाण्डुलिपि इस समय से पूर्व लिखी जा चुकी होगी।

ऋषि के निर्वाण काल से लगभग एक मास पूर्व तक ऋषि का जो पत्र व्यवहार वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक मुन्शी समर्थदान के साथ हुआ है, उससे स्पष्ट हो जाता है, कि ऋषि सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय सस्करण को कितनी जल्दी प्रकाशित कराना चाहते थे। वे इसके लिये बराबर प्रेरणा करते रहे और सत्यार्थप्रकाश का अपेक्षित हस्तलेख लगातार भेजते रहे। यह तभी सभव था, जब ग्रन्थ का समस्त लेख उनके पास तैयार हो। प्रबन्धक के साथ हुए पत्र-व्यवहार के जिन अशो से यह स्पष्ट होता है, उन्हे पाठक 'ऋषि के पत्र और विज्ञापन' के निम्नलिखित पृष्ठो मे देख सकते हैं—३७३, ३७६, ३७८, ३८८, ४०४, ४२६, ४४७, ४४७-४८, ४८२, ४८४, ४८७, ५००, ५०४, ५१२।

इस विषय का सबसे अन्तिम पत्र आश्विन १३, शनिवार सवत् १९४० विक्रमी [२९ सितम्बर १८८३] का लिखा गया है, जो ऋषि के निर्वाण काल से लगभग एक महीना पूर्व का है। उस पत्र से निश्चय होता है, कि ऋषि के जीवन काल मे सत्यार्थ प्रकाश का कितना अश छप चुका था, और कितना मुद्रण के लिये शेष था। उस पत्र का प्रसग मे अभिलषित अश इस प्रकार है—

"और ३२० से लेके ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थ प्रकाश का भेजते हैं संभाल लेना।"

तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थ प्रकाश के त्रयोदश समुल्लास के ५९ वें समीक्षा तक मे पूरा हुआ है। इससे स्पष्ट होता है, कि यहा तक का सत्यार्थ प्रकाश का भाग ऋषि के जीवन काल मे मुद्रित हो चुका था। शेष भाग और स्वयन्तव्यामन्तव्य ऋषि के देहावसान के अनन्तर छपे हैं, पर इनका हस्तलेख पहले से तैयार था, यह निश्चित है। इसलिये यह सर्वथा निराधार एव उपहासास्पद है, कि वर्तमान सत्यार्थ प्रकाश की रचना ऋषि के देहावसान के अनन्तर आर्य समाजियो ने कर ली है।



सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन—

आर्य समाज के क्षेत्र में धार्मिक भावना से यदि किसी ग्रन्थ का सबसे अधिक अध्ययन होता है, तो वह सत्यार्थ प्रकाश है। पर यह खेद के साथ लिखना पड़ता है, कि वह अध्ययन या पाठ जितना धार्मिक भावना से होता है, उतना उसमें प्रतिपादित गभीर अर्थों या तत्त्वों को वास्तविक रूप मे समझने की भावना से नहीं होता। ऋषि की वास्तविक आत्मा तक पहुँचने अथवा उसके आन्तर दर्शन के लिए ऐसे अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् सन्यासी दिवगत श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने इस दिशा में सर्व प्रथम प्रयत्न किया, और ऐसे अध्ययन के फलस्वरूप उन्होने सत्यार्थप्रकाश पर अत्यन्त विद्वतापूर्ण टिप्पणी लिखीं। इस सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश का स्थूलाक्षरो में 'विरजानन्द वैदिक सस्थान' गाजियाबाद ने प्रकाशन किया है।

अब अन्य अनेक विशेषताओ के साथ इसका तृतीय सस्करण प्रकाशित हुआ है। सत्यार्थ प्रकाश के समस्त सस्करणो मे अभी तक अनेक पाठ सन्दिग्धरूप मे छपते चले आ रहे हैं। इस ग्रन्थ के इतने अधिक सस्करणो के प्रकाशित होने पर भी इस प्रकारके पाठो के विषय में कभी कोई विवेचन प्रस्तुत नहीं किया गया। सत्यार्थप्रकाश के इस स्थूलाक्षर सटिप्पण सस्करण में प्राय ऐसे समस्त पाठो के विषय मे यथा-मति विवेचन प्रस्तुत किया गया है। चाहे कहीं पाठ अस्पष्ट हैं, या आपाततः कहीं असामञ्जस्य प्रतीत होता है, सबको यथार्थ रूप मे लाने का यत्न किया गया है।

इस सस्करण की दूसरी विशेषता यह है कि पाठक को इसमें मुद्रण की कोई भी अशुद्धि नहीं मिलेगी। इतने विशाल ग्रन्थ में कौन-सा विषय कहा वर्णन किया गया है, इसका पता लगाना बड़ा कठिन होता था, कोई विस्तृत विषय सूची अभी तक तैयार नहीं की गई थी, इस सस्करण मे, इस न्यूनता को भी पूरा कर दिया गया है। प्रमाणरूप से उद्धृत वाक्यो वा सन्दर्भों की अकारादि क्रम से सूची के अतिरिक्त,



ऋषि की प्रेरणा—प्राणिमात्र की सेवा

(ले०—श्री छोटेलाल सत्यपाल जी, अधिष्ठाता मादक द्रव्य निषेध विभाग, आर्य प्र० सभा उ०प्र०)

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति,यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ॥

जिसका मन से ध्यान किया जाता है उस ही का वाणी से बोला जाता है,उसको ही कर्म मे करता है और जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है।

स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए दिल्ली मे एक सम्मेलन हुआ और मदुराई में कांग्रेस सम्मेलन मे भारत की एकता पर बल दिया गया और प० जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय एकता पर बड़े भावपूर्ण विचार व्यक्त किये। गांधी जयन्ती को बडी धूम धाम से मनाने की तय्यारियां हो ही रही थीं कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रो मे साम्प्रदायिक दगा हो गया। और भारत मे दुःख और लज्जा की लहर दौड़ गई—

आर्यसमाज इस दुर्घटना को बड़ी चिन्ता से देखता है और समस्त भारतवासियो के सामने महर्षि दयानन्द की उस मानवता को रखना चाहता है जो ऋषिवर ने सवत् १९३९ मे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका के अन्तिम पैरा से एक पैरा पहले व्यक्त किये हैं।

"जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो ससार में बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जाय।"

गत ससद अधिवेशन के समय अलीगढ़ विश्व विद्यालय के सम्बन्ध में उप समिति की रिपोर्ट हम लोगों के सामने आ चुकी है परन्तु उसे कार्यान्वित न करने के कारण ही ऐसी दुर्घटना सामने आई।

ऋषि ने हमको बताया है "इस हानि ने जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्यारी है सब मनुष्यों को दुःख सागर मे डुबा दिया है"। आज अलीगढ़ काड से उत्तर प्रदेश को जो कलक लगा है केन्द्र और प्रदेश का सारा शासन उससे व्याकुल है—

आज देव दयानन्द को शासक भूल रहा है और शासित उसकी उपेक्षा कर रहे हैं इन दोनो वर्गों को हा हम को मन, वचन, कर्म से यह दिखाना है कि आर्य समाज का जन्म मानव कल्याण के लिये है और वह राष्ट्रिय एकता की प्राण पण से रक्षा करने को तैयार है और भाषावाद, जातिवाद तथा विघटनकारी तत्वो से बहुत दूर है। वह तो एक ईश्वरवाद, वेदों के पवित्र सन्देश, का वाहक है जिसको महर्षि ने अपने जीवन के अन्तिम समय तक निभाया और यह कहकर प्राण छोडे "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

आर्यो आओ और अपने कर्तव्य का पालन करो ऋषि ऋण चुकाओ और देश को जगाओ—

"राष्ट्रे वय जागृयाम्"

और याद रक्खो 'सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिये"। ऋषि की प्राणीमात्र के लिये यह बडी भारी देन है। अन्त मे प्रार्थना है कि सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से हम सब को बल दें कि हम लोग वेद पथ पर चलकर प्राणिमात्र के सुख मे वृद्धि कर सकें। महर्षि के स्मृति दिवस पर यदि हम मानव सेवा का व्रत लें तो यही उस महानात्मा के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

एक विस्तृत विषय सूची ग्रन्थ के अन्त मे जोड़ दी गई है। सत्यार्थ प्रकाश मे वर्णित छोटे से छोटा विषय भी इस सूची के आधार पर सरलता से मूल ग्रन्थ मे निकाला जा सकता है।

यह सब होने पर भी सत्यार्थप्रकाश के गभीर अध्ययन की अभी अत्यधिक अपेक्षा है। यह ऐसा ग्रन्थ है, जितना ही इसे मथा जायगा, उतना ही अधिक अमृत प्राप्त होगा। सुना है,श्रीमती परोपकारिणी सभा ने इधर ध्यान दिया है, और सत्यार्थप्रकाश पर इस दृष्टि से कार्य किये जाने की योजना प्रारम्भ की है। मेरा समस्त आर्य जनो से नम्र निवेदन है,कि ग्रन्थ के गम्भीर अध्ययन से आत्म शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करें, और ऋषि के उद्बोधक आन्तरिक नाद को समझने तथा वहां तक पहुँचाने का प्रयत्न करें।





दीनबन्धु दयानन्द



[रचयिता—श्री प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न, अजमेर]

दिन वे बरसात के थे
हुई दल दल थी विकट
फसा था एक कृषक
वृद्ध का जिसमें शकट
किये उस कृषक ने थे
यत्न रह रह के बडे
बैलो की पीठ पै भी
डण्डे बहुतेरे जडे
आंखो में प्राण हुए
पसीनों में हुआ तन
निकला फिर भी न सकट
बना अगद का चरण
श्याम आंचल निशा का
व्योम पर छाने लगा
अपने नीड़ो की तरफ
पक्षी दल जाने लगा
मेघ भी गर्ज उठे
गाव था दूर बहुत
हुआ वह दीन कृषक
चिंता मे चूर बहुत
श्री दयानन्द यती
उसी क्षण आय अधर
देख बैलो की व्यथा
उठी करुणा की लहर
आंखो से अश्रु के कण
गय मोती से ढुलक
पक मे उतर पडे
न रुके एक पलक
सोहता ऋषि का था यूँ
गात अति गौर विमल
पक के मध्य मे ज्यो
सोहता लाल कमल
गाडी के जूए म वे
बला के साथ लगे
क्षुब्ध हताश कृषक
दीन के भाग्य जगे
ज्योंही सहयोग प्रबल
ऋषि के भुज बल का हुआ
उन थके बैलो का भी
भार कुछ हलका हुआ
गाडी के साथ ही फिर
दोनो के पाव हिले
अधमरे प्राणियों को
मानो नव प्राण मिले
पीठ पर हाथ फिरा
बैलो को प्यार किया
खींच गाडी का विकट
कीच से पार किया
होके हर्षित वो कृषक
चरणों में ऋषि के पडा
बोला यूँ जोड़ के कर
किया उपकार बडा
किया उपकार न कुछ
बोले ऋषिवर ये वचन
देख दुख ग्रस्त इन्हे
हुआ व्याकुल मेरा मन
मुक्त कर दुख से इन्हे
अपना दुख दूर किया
शान्ति आनन्द से उर
अपना भरपूर किया।






दिवाली और दयानन्द

रच०—श्री डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार एम ए. डी. लिट्, अजमेर)

[१]

दीप माला का दिव्य स्वरूप, झलकता दीप ज्योति के बीच।
मनाते पर्व प्रजा सह भूप, नित्य स्वातन्त्र्य वृक्ष को सींच॥
वर्ष का वणिज ब्याज व्यापार, लगाते थे व्यापारी आज।
दीनता दूर देश से टार, सजाते थे सब वैभव साज॥

[२]

दिवाली की वह काली रात, छिपाया जिसने भारत भानु।
कलित कलिका पै था आघात, ललित लतिकाएँ पै क्रूर कृशानु॥
जलाकर दीप लगाते खोज, कहाँ है हा ! वह भारत - लाल।
बिलखती माता है बिन ओज, कहाँ है मानस मञ्जु मराल॥

[३]

"दया" का दिया बुझाकर आप गये "आनन्द" भवन के द्वार।
सहें हा ! हम कैसे सन्ताप ? दीर्घ दारुण है दैवी मार।
दिवाली को कर प्राणोत्सर्ग, दिया ऋषिवर ने पावन पाठ,
ग्रहण कर ले शिक्षा जन वर्ग, न मारे कायरता का काठ।

[४]

अवनि पै अर्क होत जब अस्त, अमातम ढके अखिल आकाश,
जला घर घर में दीप गृहस्थ, प्रतापी पाते पुण्यप्रकाश।
इसी विधि वैदिक "सूर्य" स्वरूप, छिपा स्वामी का जीवन आज,
जगत् में घर-घर दीपक रूप, करो संस्थापित आर्यसमाज॥

[५]

लहे स्वातन्त्र्य वृक्ष फल फूल, दासता रहे देश से दूर,
ज्ञान गुण गौरव हो अनुकूल, गर्व का गढ़ हो चकनाचूर॥
हमारे घर आकर प्रति वर्ष, दिवाली देती यह सन्देश।
"सूर्य" सम ही वैदिक उत्कर्ष, रहे स्वाधीन हमारा देश॥

—"सूर्य"




सत्य का दूत दयानन्द

आज स्वामी दयानन्द का निर्वाण दिवस है। स्वामी दयानन्द की मृत्यु का दिन है। मृत्यु ? मैं भूल गया, स्वामी दयानन्द की मृत्यु तो हो ही नहीं सकती। कहीं सत्य मरण को प्राप्त हो सकता है ? यदि सत्य की मृत्यु नहीं हो सकती तो



लेखक

स्वामी दयानन्द सत्यवादी का भी मरण असम्भव है। उन्होंने ससार म जहा असत्य देखा खडन किया और जहा उन्होंने सत्य दखा, जिसे सत्य समझा उसका मडन किया। उन्हे सत्य और केवल सत्य क प्रति भक्ति थी, सत्य के प्रति श्रद्धा थी और सत्य स्वरूप परमात्मा के प्रति विश्वास था। इसीलिए उन्होने सत्यार्थ प्रकाश किया और 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा। उन्होंने विश्व का सदेश दिया "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने म सदा उद्यत रहना चाहिए।" यदि हम अपनी जीवन यात्रा म सत्य साधनों को बिना अपनाये सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे तो उसमें हमें सफलता नहीं मिलेगी, यदि हम सत्य को छिपाने का प्रयत्न करेंगे तो हमें जीवन में, समाज में कठिनाई का अनुभव करना होगा। असत्य पर आश्रित होकर समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करने के कारण कांग्रेस सरकार का जगह जगह कठिनाइया उठानी पड़ रही हैं। साम्प्रदायिक समस्याओं का हल, भाषावार प्रान्तों की समस्या का समाधान बिना सत्य का प्रकट किए सभव न ी। उपनिषदों म भी कहा है—

सत्यमेव जयते नाऽनृतम् ।
सत्येन पन्था विततो देवयान ॥

सत्य व्यापक है। धर्म और अधर्म और कुछ नहीं, अटल सत्य नियमों का पालन धर्म और विरोध अधर्म है। कभी कभी चमकते हुए सोने के ढकन से सत्य का मुँह ढका रहता है। जो मनुष्य इस सत्य को अनुभव कर लेते हैं वे सदा सन्माग का चुनते हैं। हमारे आज के नायक स्वामी दयानन्द का यह सत्य सिद्ध था। उन्होंने उसी सत्य की प्राप्ति के लिए घर छोडा, गृहस्थ छोडा, सत्य की खोज म जगह जगह धक्के खाय, जगलो म काटो से लोहू लुहान हुए सभाओं म उन पर पत्थरों का वर्षा हुई, मार्ग म उन पर साप फेंके गए भोजन म विष दिया गया, गालिया सहीं परन्तु सत्य का प्रचार न छोडा। एक राजा ने उनसे कहा कि आप मूर्ति पूजा का खडन छोड़ दीजिए और राज्य ले लीजिये परन्तु स्वामी दयानन्द का इस पार्थिव राज्य की क्या आवश्यकता थी ? उनका तो विश्व में ही साम्राज्य था। "जिसका कछु नहिं चाहिए सोई शाहंशाह"।

यदि स्वामी जी के कार्यों का हम सक्षेप से कहे तो असत्य, चोरी, भोग विलास और चमक दमक म फैले हुए ससार को सत्य, नैतिकता, सयम, ब्रह्मचर्य, त्याग और बलिदान का पाठ पढ़ाया। उन्होंने विश्व का प्रेम म र्ग म फसने के स्थान पर श्रेय मार्ग का सदेश दिया। उन्होंने स्वार्थान्ध जनता का वेद का यह सदेश दिया— शेष पृष्ठ २७ कलम १

(सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम ए एल०टी० डी० बी० कालेज, गोरखपुर)





ऋषि दयानन्द की कसक

[ले०-श्री रामेश्वरदयाल गुप्त बी एस सी विशारद,]
अन्तरग सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

गोरखपुर जिले मे कलसिया एक स्थान है। कनिङ्घम ने वहाँ के टीलो की खुदाई करके दो स्तूपो का पता लगाया था। एक स्तूप म गौतमबुद्ध के दात एक डिबिया मे सुरक्षित निकले थे। एक टीले के नीचे आयताकार कमरा निकला जिसमे गौतम बुद्ध की मनुष्य कद मूर्त्ति लेटी हुई मुद्रा म है। यह उनके महापरिनिर्वाण का दृश्य है। साथ ही उनके मुख्य शिष्य आनन्द रोने की मुद्रा मे हैं। जातको मे कथा आई है कि गौतम बुद्ध ने कहा—"आनन्द दुःख न करो। मैने जिन आर्य सत्यो का उपदेश दिया है उन्हे लेकर चारो दिशाओ म फैलाओ। मै सदा तुम्हारे साथ हूँ।" यह भगवान् गौतम बुद्ध का स्वप्न था। गौतम बुद्ध ने कोई पुस्तक न लिखी। उनके स्वर्गारोहण के बाद ४० वर्ष महास्थविर मौग्दालायन आदि को बौद्ध दर्शन की स्थापना करने और साहित्य प्रस्तुत करने मे लगे। यह सब हा सकने मे बौद्धों की ४ विशाल सभाये कालान्तर मे हुई। पहली बृहत्सभा तो राजगिरि म हुई जिसका प्रधान नालन्दा का कुल पति था। राजगिरि की गुफाओ मे वे स्थान अब भी सुरक्षित हैं। दूसरी सभा वैशाली मे महास्थविर यश के सभापतित्व मे हुई जबकि स्थविरवादी तथा महासाघिक विभेद परिपक्व हुये। यह बुद्ध के स्वर्गवास के लगभग १०० वर्ष बाद हुई थी। अशोक के समय तक १२ निकाय बौद्धों के बन चुके थे। अशोक ने गुरु तिष्य (उपगुप्त) के प्रधानत्व मे तीसरी बृहत्सभा बुलाई। उसमे २ हजार बौद्ध निष्कासित किये गये थे। अशोक के राज्यकाल का वह १७ वां वर्ष था और उसे बौद्ध हुए तब केवल ६ वर्ष हुये थे। उस सभा मे बौद्ध धर्म के द्वीप द्वीपान्तर तथा देश-देशान्तर प्रचार की योजना बनाई गई थी। और विद्वानो को निम्न प्रकार विदेश भेजा गया था :—

१—महारक्षित	यौन लोक (यवन देश)
२—मज्झन्तिक	काश्मीर तथा गान्धार
३—महादेव	महिस मण्डल (मैसूर)
४—थेर रक्षित	बनवास (उत्तरी कन्नारा)
५—योनक धर्मरक्षित	अपरान्तक (कोकण)
६—महाधम्म रक्षित	महाराष्ट्र
७—थेर मज्झिम और कश्यप	हिमवत (हिमालय प्रदेश)
८—थेर सोण व उत्तर	सुवर्णभूमि (जावा आदि)
९—महामहिन्द्र [महेन्द्र]	लका (सिंहल)-(महावश)

इनम से प्रत्येक विद्वान् के साथ ४ और सहायक विद्वान् भेजे गये थे। महारक्षित के २ शिष्य ईस्तीन तथा थेराथून फिलिस्तीन तथा मिश्र मे जाकर बसे थे। ईसा मसीह इन्हीं के सम्पर्क मे आये थे।

अपने धर्म को फैलाने की आदत हिन्दुओ में नहीं रही है। परन्तु उसे भारतीय आदत नहीं कहा जा सकता है। क्योकि बौद्धो ने योजना बद्ध प्रचार द्वारा समूचे यूरेशिया, यूनान, मिश्र, चीन व जापान को बौद्ध बना लिया था। बौद्धो के सम्पर्क और प्रभाव से स्थापित ईसाई धर्म मे ईसा के जन्म व चमत्कार की सब कथाये बुद्ध जन्म की कथाओ से ली हैं और मिश्नरी धर्म होने की सारी परम्पराये बौद्धो से ली हैं अतः घर छोड लगनशील पादरियो न उसे सम्पूर्ण योरुप, अमरीका व एशिया मे फैला दिया और भारत के धर्म निष्ठ तोरण को भी भेद दिया जहाँ का उद्घोष था।

स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः।

आज देश मे एक करोड़ ईसाई हैं। और यही



यदङ्ग अशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत् सत्य मङ्गिरः।

अर्थात् समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए आत्म-बलिदान, धन बलिदान और तन बलिदान करने वालो का सदा कल्याण होता है। काश, आज हम स्वामी जी के इन उद्देश्यो पर चलकर सच्चे अर्थों मे उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते। ★



कथा इस्लाम की है। उम्मी (निरक्षर) पैगम्बर ने भी अपने धर्म को फैलने वाला बनाया। उन्होंने तो कोई साहित्य भी नहीं सूजा। उनकी मृत्यु के १३वर्ष बाद खलीफा उमर ने जैद नामक विद्वान् से कुरान सकलित करवाई। परन्तु वे धर्म के लिये युद्ध व जिहाद करने वालो का एक दस्ता छोड गये थे। इन जिहादियो ने इस्लाम को भी विश्व धर्म बना दिया। आज परिस्थिति यह है कि विश्व मे सबसे अधिक ईसाई फिर बौद्ध फिर मुस्लिम तथा अन्त मे हिंदू फिर एनीमिस्ट (प्रकृति पूजक) हैं।

हमारे फैलाव की शृखला टूट गई है। अपने त्रैतवाद के महान् सिद्धान्तो के फैलाव की बात दिल ही में रह गई। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने प० गुरुदत्त तथा मूलराज प्रभृति सज्जनो को मरते समय अपने पास बुला भेजा था। बड़े कष्ट से उन्होंने कहा था "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। तूने अच्छी लीला की।" उनका मानस पुत्र आर्यसमाज शैशव मे था। और उस पौधे को सींचने का काम वे हम सब पर छोड़ गये। उस समय के वे मनीषी सज्जन धम्मपाल कश्यप और आनन्द की कोटि के हैं। उनकी अपनाई हुई पद्धति से हमारी सख्या भारतवर्ष मे लगभग एक करोड़ हो गई है जो ईसाई या सिक्खो या जैनो या कम्युनिस्टो मे से प्रत्येक से अधिक है। परन्तु अब काम अवरुद्ध-सा हो गया है। हमारे मनीषी चले गये देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर मे लगनशील प्रचारक गये। परन्तु विदेशो मे हमारा सारा कार्य क्षेत्र प्रवासी हिन्दुओ तक ही सीमित है। स्थानीय (नेटिव लोगो) मे तो हमने कार्य का सूत्रपात ही नहीं किया है। इधर भारतवर्ष के महाराष्ट्र, आन्ध्र, मैसूर, केरल मद्रास, उड़ीसा, त्रिपुरा मे दो एक बड़े शहरो को छोड़कर हमारा कार्य नगण्य है। कहीं कहीं एकाध आर्यसमाज नक्षत्र टिमटिमाता है,वह भी उन परिश्रमशील पजाबियो द्वारा जो व्यापार वा नौकरी के कारण सुदूर भागो मे गये हैं और अपने साथ साथ आर्य समाज की कसक हृदय मे लेकर गये हैं। इस प्रकार तो स्वामी जी महाराज की कसक पूरी नहीं होगी।

समय आगया है कि बौद्धो की तरह विश्वव्यापी फैलाव की योजना बन ही जावे। निश्चय है कि हमारे पास २-४दर्जन व्यक्ति अवश्य हैं जिनको दुनियां बाटी जा सकती है। इधर देश में प्रचार-प्रसार के लिये अनिवार्य भरती होनी चाहिये। अर्थात् प्रत्येक आर्य समाजी के लिए एक वर्ष प्रचारार्थ भिक्षाटन द्वारा देना लाजिमी करार दे दिया जावे। प्रतिनिधि सभाये ऐसे व्यक्तियो को भारत के मानचित्र से एक-एक गाव सौंपते जावें। हमारो युवक और वृद्ध छटपटा रहे हैं कि उन्हे कुछ काम दिया जावे। हमारे पदाधिकारी ऊँचे उठे और युग की मांग पूरी करें क्योकि छान्दोग्य उपनिषद में कहा है—

उक्थ प्राणो वै उक्थ।
क्षत्रं प्राणो वै क्षत्रं।
यजुः प्राणो वै यजुः।
साम प्राणो वै साम।

प्राणवान वा जीवित व्यक्ति या समाज की यही पहिचान है कि वह बढ़े, विजातीय द्रव को अपने में आत्मसात् करे, सगठित होकर एक भाग के दुख को सबका दुख समझे और बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा करे। हम जीवित समुदाय हैं और हमें जीवित रहना है। दुनिया को देने को हमारे पास कुछ है और इसीलिये कुछ वर्षों तक हमारा नारा होना चाहिये प्रसिवध्वम्। फैल जाओ। क्या हम ऋषि की आशा को पूर्ण करेगे आज की दीप-ज्योति अपने प्रकाश मे ऋषि के सच्चे सदेश वाहको की खोज कर रही है।

प्रचेतन

यथा वायुश्चान्तरिक्ष च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राणमा बिभेः एवामे प्राण मा रिषः॥
यथा वीरश्चवीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवामे प्राणमा बिभेः एवामे प्राण मा रिषः॥

जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं और न कभी क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण तुम भी न डरो, न क्षीण हो।

जैसे वीर और वीरत्व न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण तुम भी न डरो और न कभी क्षीण हो। —शौनक सहिता





"शिव और विष्णु ऋषि दयानन्द की दृष्टि में"

(ले०—श्री आचार्य भद्रसेन जी अजमेर)

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ऋषि दयानन्द ने पाखण्ड मतो, विचारों और मिथ्या देवी, देवताओं का खण्डन किया है। किन्तु इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि उन्होने सत्य विचारो, सच्चे देवो तथा महापुरुषों का चाहे वे किसी भी धर्म के हो, उतने ही प्रवल शब्दो मे समर्थन किया है, (जितना कि पाखण्डमतो तथा नाममात्र के देवी देवताओ का खण्डन), किन्तु खेद से लिखना पड़ता है कि स्वाध्यायहीन आर्य पुरुषो ने प्रत्येक बात को जो कि उनकी समझ में नहीं आती पाखण्ड और पोपलीला का नाम दे दिया है। जिन महापुरुषों के विकृत स्वरूप का तथा उनके ईश्वरीय स्वरूप का ऋषि ने खडन किया, आर्य पुरुषों ने उनकी सत्ता और महत्ता से भी इन्कार कर दिया। और यदि किसी ने उनके सम्मुख उनका नाम भी ले लिया तो उसे पाखण्डी और पोप कहकर उसका उपहास करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि जहा हम दूसरो के अप्रिय तथा सब बातो का खण्डन करने वाले कहलाये, वहा उन महापुरुषो के जीवन आदर्श से हम जो उच्च-शिक्षायें तथा प्रेरणायें मिलती थीं, उनसे भी वंचित रह गये। उदाहरण के तौर पर शिव और विष्णु को ही ले लीजिये। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ऋषि दयानन्द ने पौराणिक स्वरूप के शिव और विष्णु का खण्डन किया है। उनके ईश्वरीय अवतार होने का भी निराकरण किया है। उनके नाम से बनाये गये शिव पुराण और विष्णु पुराण का भी प्रबल शब्दो मे प्रत्याख्यान किया है। इन सबके बावजूद भी ऋषि ने शिव और विष्णु की सत्ता और महत्ता से कहीं इन्कार नहीं किया। प्रत्युत प्रबल शब्दो में उनकी सत्ता का समर्थन तथा उनके निवास स्थान आदि का भी मनोहारी शब्दों मे वर्णन किया है।

ऋषि ने पूना नगर में १५ व्याख्यान दिए। उनमें ६ व्याख्यान केवल प्राचीन भारतीय इतिहास विषय के थे, जो कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा अमृत के प्राचीन महापुरुषों की गौरव गरिमा का विषद तथा मार्मिक वर्णन करने वाले हैं। ऋषि ने इतिहास परक अपने पहिले व्याख्यान मे ही कहा—

"ब्रह्मदेव का पुत्र विराट्, विराट के पुत्र विष्णु सोमसद थे। और अग्निष्वात्त का पुत्र महादेव (शिव जी) थे। विष्णु और महादेव आगे चलकर ब्रह्मा के साथ त्रिमूर्ति के रूप मे मुख्य देवता करके प्रसिद्ध हुए।" यहा शिव और विष्णु की सत्ता को महर्षि ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।

अब जरा उनके निवास स्थान का ऋषि के मुख से मनोहारी वर्णन सुनिये। 'मन्द सुगन्ध और शीतल वायु जहा चल रही है। रमणीय वनस्पतिया जहा उगी हैं। जहा पर स्फटिक के सदृश निर्मल झरनो का जल बह रहा है ऐसे हिमालय की ऊँची चोटी पर विष्णु निवास करने लगे। इसी को बैकुण्ठ भी कहते थे। फिर दूसरे हिमाच्छादित भयकर ऊ चे प्रदेश मे महादेव वास करने लगे। जिसे कैलाश भी कहते थे।'

इसमे जहा ऋषि ने शिव और विष्णु के निवास स्थान का सुन्दर वर्णन किया, वहा विष्णु लोक, बैकुण्ठ लोक आदि कोई अलौकिक वस्तु न होकर विष्णु के निवास स्थान हिमालय के ऊँचे सुरम्य शिखर का नाम ही बैकुण्ठ था, यह भी ऋषि ने स्पष्ट शब्दों मे प्रकट कर दिया है।

अब जरा इनके धार्मिक ग्रन्थो का वर्णन ऋषि के मुखारविन्द से सुनिये। ऋषि सत्यार्थ प्रकाश के बारहवें समुल्लास मे जैनियो के धर्म ग्रन्थो के इस लेख का कि केवल तीर्थङ्करो द्वारा सचालित जैन धर्म ही मनुष्यो का उद्धार करने वाला है। अन्य हरि (विष्णु) हर (शिव जी) आदि का धर्म ससार का उद्धार करने वाला नहीं, उत्तर देते हुए लिखते हैं—

"भला यह हरि हर आदि महापुरुषो





की कम निन्दा है कि जिनके ग्रन्थ* देखने से पूर्ण विद्या और धार्मिकता पाई जाती है। उनको बुरा कहना, और अपने महा असम्भव बातों के कहने वाले तीर्थङ्करों की स्तुति करना।''

और तो क्या कई आर्य पुरुष, यहां तक कि आर्य विद्वान् भी श्रीकृष्ण की भी निन्दा करते नहीं थकते। जिस श्रीकृष्ण महाराज की ऋषि ने अपने ग्रन्थों में भूरि भूरि प्रशंसा की, जिनको सत्यार्थ-प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में ऋषि ने योगिराज और जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक भी बुरा कर्म न करने वाला लिखा जिनके विषय में सत्यार्थ प्रकाश के बारहवें समुल्लास में जैनियों की इस बात का उत्तर देते हुए कि-''जितने भी जैनियों के तीर्थङ्कर आदि हैं, वे सब स्वर्ग को गये, और श्रीकृष्ण आदि सब नर्क को गये'' ऋषि लिखते हैं—

''भला कोई बुद्धिमान पुरुष विचारे कि इनके साधु गृहस्थ, तीथङ्कर आदि जिनमें बहुत से वेश्यागामी, परस्त्रीगामी, चोर आदि जैन मतस्थ तो स्वर्ग और मुक्ति को गये और श्रीकृष्णादि महाधार्मिक महात्मा सब नरक को गये भला यह कितनी बुरी बात है'' । यहां ऋषि दयानन्द ने श्रीकृष्ण को महाधार्मिक और महात्मा लिखा है। ऐसे ऋषि के परम आदर के पात्र श्रीकृष्ण महाराज को भी कई आर्य विद्वान् तो समाज की वेदी पर ही अपने व्याख्यानों में बुरा भला कहने लग पड़ते हैं जिसका कि जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी कभी तो जनता में आर्यसमाज के प्रति मिथ्या भ्रम न फैल जाए मुझे उठकर उनके व्याख्यान का प्रतिवाद भी करना पड़ता है। ऐसे व्याख्यानों को सुनकर ही लोगों के अन्दर यह धारणा बैठ गई है कि आर्यसमाजी तो सब का खण्डन करते हैं। और किसी भी देवी देवता को नहीं मानते। अन्त में मेरी आर्य पुरुषों तथा आर्य विद्वानों से प्रार्थना है कि वे खण्डन-मण्डन के विषय में ऋषि की शैली को अपनायें। अर्थात् जहाँ वे शिव आदि महापुरुषों के नकली स्वरूप का तथा उनके अवतार होने का निराकरण करें, वहां उनकी सत्ता तथा महत्ता और उनके असली स्वरूप को ही न समाप्त कर दें। प्रत्युत उनके वास्तविक स्वरूप को जनता के सम्मुख रखें। जिससे जहाँ हम तथा अन्य जनता उनके जीवन से उत्तम शिक्षाएँ तथा प्रेरणायें प्राप्त करें, वहाँ लोगों के अन्दर जो यह धारणा बैठ गई है कि आर्यसमाजी सबका खण्डन करते हैं और किसी को भी नहीं मानते, यह गलत धारणा भी दूर हो जाए।

—

*पाठक कहीं ''शिवपुराण'' और 'विष्णुपुराण' को ही शिव तथा विष्णु के ग्रंथ न समझ लें। वे तो उनके नाम से अन्य पण्डितों ने बनाये हैं। हो सकता है स्वामी जी महाराज ने शिव तथा विष्णु महाराज के स्वरचित ग्रन्थों का भी कहीं अवलोकन किया हो।



धर्म का सन्देश



तुम बढ़े युगपति ! समझकर,
ग्रीष्म को मधु मास।
कण्टकों पर तुम चले,
धर अधर पर मृदु-हास।

कर दिया तन मन समर्पण,
विश्व के निज हेतु।
गा रहा गाथा तुम्हारी,
'ओ३म्' का प्रिय केतु।

तुम न थे मानव, महा-
मानव सकल निष्काम,
ले रहा है और लेगा।
विश्व, ऋषिवर नाम।

हे दया-आनन्द, कर
आनन्द को सकेत।
तुमने दिया इस लोक को,
वेद धर्म-का सन्देश।

—ओंकार ८४७ अहियापुर, इलाहाबाद



आर्यों ! दीपावली पर दीक्षा लो



(ले०—श्री भगवानदेव जी गुरुकुलीय, सदस्य सार्वदेशिक आ प्र सभा पाटन)

जैनियों का कोई पवित्र दिन था। नगर मे एक बड़ा भारी जलूस निकाला गया। जैन सम्प्रदाय के स्त्री पुरुषों का उत्साह उस जलूस मे देखने लायक था। तरह तरह के रंगीन कीमती वस्त्र धारण किये हुए वे लोग सड़क पर आगे बढ़ते जा रहे थे। उनके आगे उस सम्प्रदाय के साधु, स्त्री-पुरुष थे। उनके त्यागी लिबास तथा अनुयायियों के रंग बिरंगे विलासी लिबास को देखकर मैं आश्चर्य में अवश्य पड़ा, परन्तु ज्योंही जलूस आगे बढ़ा त्योंही मैंने एक सुन्दर सजी हुई विक्टोरिया में एक नवजवान खूबसूरत कन्या को देखा, जिसका गुलाबी मुखड़ा कवि के शब्दों में चांद को भी शर्माता था। पूछने पर मुझे बताया गया कि "यह एक करोड़पति सेठ की एकमात्र कन्या है जो 'दीक्षा' ले रही है।" दीक्षा लेने के पश्चात् यह साधु जीवन बिताएगी और जैन धर्म का अध्ययन करके उसका प्रचार करेगी।"

इसी प्रकार जैन नवयुवक आदि भी दीक्षा लेते हैं जिनको दीक्षा देते समय असंख्य स्त्री पुरुष बड़े उत्साह के साथ एकत्र होते हैं और उनका शानदार जलूस निकाला जाता है।

दयानन्द के वीर सैनिक बनने तथा दयानन्द का काम पूरा करने वालो ! दीपावली के पुण्य पवित्र पर्व पर जिस दिन हमारे ऋषि ने मोक्ष पद प्राप्त किया—तुम अपने हृदय, घर और समाजो को टटोलो कि आपने अथवा आपके बच्चों ने या आपकी समाज मे कितनी संख्या मे लोगो ने "दीक्षा" लेकर दयानन्द का काम पूरा करने की कोशिश की ?

कुछ समय पूर्व मथुरा में "दीक्षा-शताब्दी" मनाई गई। लाखो अपने आपको ऋषिका 'अनुयायी' और 'आर्य' कहलाने वाले वहाँ एकत्र हुए। लाखो रुपये खर्च किये गये। इन पंक्तियों के लेखक को भी उस अवसर का देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दीक्षा शताब्दी प्रोग्राम की समाप्ति पर जब मैं वापिस अपने निवास स्थान पर लौटा तब मुझसे एक प्रतिष्ठित जैन भाई ने पूछा—पण्डित जी ! आप इतने दिन कहाँ गये थे ? मैने उत्तर दिया—'मथुरा मे दीक्षा शताब्दी थी-वहाँ गया था !' तब उस जैनी महाशय ने जिज्ञासु भावना से पूछा—'कितने लगो ने दीक्षा ली ?' यह शब्द सुनकर मेरा मस्तिष्क चकराने लगा—कि यह पूछ क्या रहा है और मैं उसे जवाब क्या दूँ !' आखिर मैंने उससे कहा—"मेरे देखने मे एक ने भी नहीं।" तब उस जैनी महाशय को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे ? दीक्षा शताब्दी में एक ने भी दीक्षा नहीं ली ?" मैंने उनसे कहा—'हमारे गुरुवर ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने गुरु के चरणों में रहकर जब ज्ञान प्राप्त करके दीक्षा ली थी-उसको सौ वर्ष पूरे होने आये थे इसलिये यह प्रोग्राम रखा गया था।'

मैंने जैनी महाशय को उत्तर तो दे दिया, परन्तु मेरा मन विचार सागर मे डूब गया। आँखो के चारो ओर मुझे दीक्षा ! दीक्षा !! दीक्षा !!! शब्द दिखाई देने लगा। आत्मा ने कहा—हम लकीर पीटते चले जा रहे हैं धीरे धीरे हमारे अन्दर भी पौराणिको के अनुसार अन्धविश्वास घर करता जा रहा है—हम लकीर के फकीर बनते जा रहे हैं। जैसे पौराणिक, महापुरुषों की मूर्तियाँ सामने रखकर अन्ध श्रद्धा से उन्हें भगवान मानकर पूजते हैं तथा जयन्तियाँ मनाते हैं—उनका सा जीवन अपना बनाने की कोशिश नहीं करते—यही हालत आजकल के आर्यसमाजियो की बनती जा रही है।

आर्यसमाज का ढोल पीटने वालो ! वैदिक धर्म की जय बोलने वालो ! जब तक आप बौद्ध, जैन तथा नारायण स्वामी सम्प्रदाय के अनुसार सच्ची 'दीक्षा' लेकर विश्व की विभिन्न भाषाओ को सीखकर संसार के कोने कोने मे फैल न जाओगे, तब तक न विश्व आर्य बन सकेगा और न आप दयानन्द का काम पूरा कर सकोगे—न वैदिक धर्म की जय होगी। नारे भले ही लगाते रहो। गीत भले ही गाते रहो !! परन्तु होने का कुछ नहीं।





एक दिन एक आर्यसमाजी घर पर भोजन कर रहा था। बच्चा बीमार था, अचानक उन्हें पता लगाकि पासवाले गाँव मे एक हिन्दू यवन मत स्वीकार कर रहा है। भोजन तथा बीमार बच्चे को छोड़ कर वह चूड़ीदार पैजामा तथा सर पर पगड़ी बाधे हुए व्यक्ति उस गाँव की ओर जाने के लिये ट्रेन मे सवार हुए। ट्रेन उस गाँव की छोटी स्टेशन होने के कारण नहीं रुकी। चलती गाड़ी मे से वह कूद पड़े। दौड़कर उस व्यक्ति के घर पर पहुँचे जो यवन मत स्वीकार करने के लिये तैयार बैठा था। आते ही उस पगड़ी पहने हुए व्यक्ति ने उस सज्जन से पूछा—"आप को आर्य (हिन्दू) धर्म में ऐसी कौन सी कमी दिखाई दी जो आप यवन मत स्वीकार कर रहे हो?" यवन मत स्वीकार करने वाले व्यक्ति ने कहा—यह मैं फिर बताऊँगा, पहले आप यह बताइये कि आपके यह बुरे हाल क्यों हैं? कपडे फटे हुए, सारा शरीर घायल यह सब कुछ क्यो?" मुस्कराकर उस पगड़ी वाले ने कहा—"सुना था आप यवन मत स्वीकार कर रहे हो, तब ट्रेन में बैठकर आपको समझाने के लिये आ रहा था। ट्रेन स्टेशन छोटी होने के कारण रुकी नहीं–समय हो चला था, इसलिये चलती ट्रेन मे से कूद पड़ा, जिसका यह परिणाम है।" यह बात सुनकर यवन मत स्वीकार करने वाले हिन्दू का हृदय पलट गया। उन्होंने कहा–"जिस धर्म में आप जैसे जान पर खेलने वाले महान् व्यक्ति हैं उस धर्म को मैं कभी नहीं छोड़ूँगा।"

पाठको! यह और कोई नहीं पगड़ी पहने हुए धर्मवीर पंडित लेखराम थे। जिसको एक यवन ने विश्वासघात करके खंजर से खून किया था। इस घटना के पश्चात् सारे शहर पर आर्यसमाज का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहा थोडे ही दिनों मे एक सुन्दर आर्य समाज मन्दिर बन गया और वह शहर आर्य समाज का एक गढ़ बन गया।

चादनी चौक के चारो ओर सगीने थीं। जन-समूह आगे बढ़ने की कोशिश मे था। गोरा पलटन गोलिया छोड़ने की तैयारी मे थी। जलूस रुक गया। इतने मे एक विशालकाय, तेजस्वी आँखो वाला गेरुएवस्त्र धारण किये हुए—एक सन्यासी आगे बढ़ा, छाती के बटन खोलते हुए उस विशाल-काय सन्यासी ने गोरा पलटनको ललकारा-'चलाओ गोली।' सन्यासी की गर्जना क्या थी, मानो शेर की गर्जना हुई। जैसे जगल में शेर गर्जना करता है तो छोटे-छोटे जानवर इधर-उधर जान बचाकर भागते हैं। यही हाल सन्यासी की गर्जना से हुआ। चारों ओर सन्नाटा छा गया। गोरा पलटन की सगीनें झुक गई, रास्ता साफ हो गया। जलूस शान के साथ आगे बढ़ा। यही क्रान्ति वीर सन्यासी श्रद्धानन्द था। जिसने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके देश को असख्य देश भक्त नौजवान पैदा करके दिये हैं–और दे रहा है जिसका एक मतान्ध मुसलमान ने गोली मार कर खून किया था। उस सन्यासी की कर्मवीरता तथा तप के प्रताप के कारण ही आज भारत की राजधानी दिल्ली में सवा सौ से भी अधिक आर्यसमाजें हैं।

जब तक आर्यसमाज में स्वामी श्रद्धानन्द, प० लेखराम, महात्मा हसराज, लाला लाजपतराय, प० गुरुदत्त, भाई परमानन्द, नारायणस्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, आत्माराम अमृतसरी जैसे त्यागी वीर, जान पर खेलने वाले महारथी थे तब तक आर्यसमाज का बोल बाला था। किसी की हिम्मत नहीं होती थी उसकी ओर आख उठाकर देखने की; परन्तु आज कल हमारा दिन प्रति दिन पतन होता जा रहा है। हम अकर्मण्य होते जा रहे हैं। इसका कारण सिर्फ एक है, और वह है—"पूर्वजो के अनुसार जीवन समाज को समर्पित न करना।"

आप यदि ऊँचा उठना चाहते हो तो अपना जीवन आज ही निर्भय होकर निस्वार्थभाव से समाज को अर्पण कर दो। और अपने गुरु तथा अन्य पूर्वजों के समान पाखण्ड खण्डनी पताका लेकर धर्म युद्धके क्षेत्र मे उतर आओ अवश्य आप अपने पूर्वजों के समाज ऊँचा उठांगे और आपकी कीर्ति बढ़ेगी। आप ऊँचा उठेंगे तो आपकी समाज अपने आप ऊँचा उठेगी। तो आर्यो! आओ, आज ऋषि निर्वाण दिवस पर अपना जीवन समाज को अर्पण करने के लिए 'दीक्षा' लें। वह दीक्षा जिससे हम अपना तथा जग का





ऋषि दयानन्द और कुरान शरीफ

(लेखक—श्री बिहारीलाल जी शास्त्री, बरेली)

आर्य जाति के विद्वानों में ऋषि दयानन्द जी ही वह प्रथम विद्वान् हैं, जिन्होने मुसलमानो के मौलिक मान्य ग्रन्थ, कुरान शरीफ का खण्डन किया। जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, द्वैत, अद्वैतवाद के परस्पर खडन में आर्य विद्वानों ने पर्याप्त ग्रथ लिखे। खूब बढ़चढ़ कर एक ने दूसरे के सिद्धान्तो का खण्डन किया पर इस्लाम पर लेखनी उपर्युक्त किसी भी मत के विद्वान् ने नहीं चलायी। सम्भवत इसका कारण पहले



लेखक

इस्लाम का ज्ञान न होना और पश्चात् मुसलमानी शासन की कठोरता रही होगी। ऋषि दयानन्द ने क़ुरान शरीफ की युक्तियुक्त आलोचना निर्भय होकर करी।

इस पर कुछ आर्य जाति के ही लोग स्वामी जी की निन्दा करते हैं। हिन्दू मुस्लिम एकत्व की मृग-तृष्णा के शिकार ये नेता नामधारी मुसलमानी मत के खण्डन को कठोरता समझते हैं, परन्तु इनका ध्यान कभी इस तथ्य की ओर नहीं जाता कि स्वामी जी ने लेखनी से खडन किया पर क़ुरान ने तो अपने समय के मतो का तलवार से उन्मूलन करने का आदेश दिया और लाखों व्यक्ति इस उपदेश के कारण क्रूरतापूर्वक बध कर डाले गये। ऐसी हिंसा प्रेरक पुस्तक को ऋषि ने यदि बुद्धि की कसौटी पर कसा तो इससे मानव-मात्र का कल्याण ही होगा।

कुरान शरीफ का प्रचार जब मुहम्मद साहब के द्वारा प्रारम्भ हुआ तो मुख्य रूप से हजरत ने मूर्त्ति पूजा का विरोध किया। उनकी सब जाति मूर्त्ति पूजक थी। इनका विरोध बढते बढ़ते युद्ध मे परिणत होगया, अनेक युद्ध हुए। कभी किसी की कभी किसी की हार जीत होती रही। अन्तिम विजय हजरत की हुई।

जब मुसलमानी सेना शक्तिशाली हो गयी। तब मूर्त्ति पूजकों के अतिरिक्त यहूदी और ईसाइयो का भी विरोध प्रारम्भ कर दिया गया। कुरान शरीफ के निम्न वाक्य देखने चाहिये। 'मुसलमानो मुश्रिकों के अतिरिक्त इन' किताब वालो से (भी) जो लोग न खुदा पर (पूरा) ईमान रखते हैं और न प्रलय के दिन पर, और न उन वस्तुओ को हराम जानते हैं जिन्हे ख़ुदा और उसके रसूल ने हराम कर दिया है। (जैसे शरीब व सुअर) और न सच्चे धर्म पर (अर्थात् इस्लाम धर्म)

(पृष्ठ ३२ का शेष

कल्याण कर सकें। जब हम दीक्षा लेकर बौद्ध भिक्षुओ के अनुरूप भू मण्डल पर वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए निकल पडेगे तभी हम वास्तव में सच्चे दयानन्द के वीर सैनिक कहला सकेगे। दयानन्द का काम पूरा कर सकेंगे !! विश्व को आर्य बना सकेंगे !!! अन्यथा नहीं।

इसलिए दीपावली पर ऋषि की आत्मा तुमसे पुकार पुकार करके कहती है—आर्यो! दीक्षा लो! दीक्षा लो !!! वैदिक (मानव) धर्म का प्रचार करने के लिए दीक्षा लो। ★





को स्वीकार करते हैं उनसे (भी) लडो यहातक कि यह (आधीन और) जलील होकर(स्वय अपने) हाथ से (तुमको) कर देने लगे।'

सूरते तोबा ख्वाजा हसन निजामी का अर्थ पृ० २६८ आयत के मौलवियो ने यही अर्थ किये हैं। चाहे जिस भाष्य मे देखो यही अर्थ मिलेगे।

अब ध्यान दीजिए कि 'जो खुदा पर पूरा ईमान नहीं रखते उनसे लडो' यह है ईश्वरीय आज्ञा, तो यह निश्चय कौन करेगा कि खुदा पर पूरा ईमान कौन रखता है कौन नहीं ?

यहूदी, ईसाई कहेगे मुसलमानो का पूरा ईमान नहीं, मुसलमान कहते हैं उक्त दोनो का पूरा ईमान नहीं। पूरे अधूरे ईमान को तो ईश्वर ही जान सकता है।

हराम हलाल भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायो के भिन्न-भिन्न हैं। हिन्दू जिन वस्तुओ को हराम समझते हैं तो मुसलमान उन्हे हलाल समझते हैं। चीनी सब पशु पक्षी कीडे मकोडो को खाने मे दोष नहीं मानते पर मुसलमान "कछुए" "चूहे" नहीं खा सकते। इसी पर कतल की आज्ञाये दी जाने लगे तो ससार मे कभी शान्ति न रहे। पर कुरानी खुदा इसी पर तलवार चलवाता है और पूरी तरह पर फेल रहता है। आज सुअर और शराब के खाने पीने वाले ससार मे सबसे अधिक हैं।

खुदा का काम तो यह था कि हराम और हलाल वस्तुओ के दोष तथा गुण बताकर मनुष्यो को उनका निषेध करता और विधि बताता। तलवार का प्रयोग तो असफल रहा।

इसीलिये स्वामी जी महाराज कुरान को ईश्वरी उपदेश नहीं मानते। और खडन करते हैं।

उक्त आयत मे गैर मुसलमानों को तब तक कतल करने का आदेश है जब तक कि वे जजिया न देने लगे। और जजिया देने वालो को "जलील" (अधम नीच) कहा गया है। मुसलमानो की आधीनता मे मे गैर मुसलमान जजिया दे और जलील बने तो ऐसे राज्य का कौन गैर मुसलमान पसद करेगा। यहाँ भी अल्लाहमियाँ का उपदेश फेल रहा। इस्लामी राज्य दुनिया के बहुत थोडे भाग पर है और उसमे भी गैर मुसलमान बहुत कम हैं और जो हैं वे "जजिया" नहीं देते। इस्लाम में गैर मुसलमानो पर शासन करने की उदारता नहीं। इस्लामी शासन पूरा साम्प्रदायिक शासन होता है।

प्राय. मौलवी मौलाना कहा करते हैं कि इस्लाम मे सब मनुष्य बराबर हैं। "अखवते इस्लाम" (इस्लामी भाईचारा) का डका पीटा जाता है। पर यह बात कतई झूठ है। "अखवते इस्लाम" से मौलवियों का मतलब है केवल मुसलमानो से। मुसलमान-मुसलमान सब बराबर है। भाई भाई हैं पर गैर-मुसलमान चाहे कितना ही योग्य हो भाई या बराबर का नहीं माना जा सकता। देखो कुरान सूरते तोबा भाष्य ख्वाजाहसन निजामी पृष्ठ २६८।

"ईमानदारो ! मुश्रिक (तो अपने कर्मों व वचनो व विश्वासो के कारण बिलकुल गन्दे और) अपवित्र हैं इसलिये यह लोग इस वर्ष के (सन् ६ हिजरी) बाद से आदरणीय मस्जिद (अर्थात काबे के स्थान) के समीप (तक) न आये।"

यहाँ विचार करिये कि जो काबा खुदा का घर कहा जाता है उसके पास तक सब धर्म वाले नहीं जा सकते। मुसलमान कितना ही मैला कुचैला और आचारहीन हो काबे मे जा सकता है, मगर पवित्र से पवित्र और सदाचारी हिन्दू काबे के पास तक नहीं जा सकता। यह है कुरान की शिक्षा जो मानव-मानव मे घृणा उत्पन्न करती है।

इसकी तुलना मे पवित्र वेद भगवान् हैं जो कहते हैं—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
"मै प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखूँ"
"यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मेवाभूद्विजानतः"

ज्ञानी के लिये सब प्राणी आत्म समान होने चाहिये। रामायण में कहा है—

सियाराम मय सब जग जानी,
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।

अब न्याय कीजिये घृणा, भेद, मारकाट की शिक्षा ईश्वरीय उपदेश है या सबका आत्मवत् समझने का उपदेश। सब मे भगवान् का प्रकाश देखने वाला

(शेष पृष्ठ ३६ पर)





दीपावली

(रचयिता—श्री दयाशङ्कर मिश्र, "सूर्य" पत्रकार, चौक फतेहपुर)

जहाँ पर दुधमुही भी बच्चियाँ विधवा कहाती हों ?
दिनों में खेलने खाने के जो सदमे उठाती हों ?
जहाँ अबलायें लाखों रक्त के आँसू बहाती हों ?
जहाँ दुर्भाग्य की दुःसमय-लतायें लहलहाती हों ?
सुखद सौभाग्य श्री से जो अभागा देश खाली हो ?
जहाँ काली अमावस हो, वहाँ कैसे 'दिवाली' हो ?

[२]

जहाँ गृह लक्ष्मियाँ अधिकार में अपमान पाती हों ?
सतत् सम्मान के स्थान में ठुकरायी जाती हों ?
निराशा की निविड निशि में दुखद्-जीवन बिताती हों ?
अभागा हर्ष स्थल में भी मातम ही मनाती हों ?
घिरी रहती हो नित सौभाग्य पर जिनके घटा काली ?
मनायें वे दुखित ललनायें कैसे "सूर्य" 'दीवाली' ?

[३]

अभागे रंक ! पूजा लक्ष्मी जी की करें कैसे ?
क्षुधा ज्वाला से पीडित हैं, कहो जीवन धरे कैसे ?
न घर में तेल दीपक है, भयंकर तम हरें कैसे ?
निराशा से तरें कैसे, कहो धीरज धरें कैसे ?
जलाकर दीप मालायें दिखायें कैसे उजियाली ?
दर भी हो जहाँ खाली, वहाँ कैसे हो 'दीवाली' ?

[४]

रमा कैसे रमे, जब कि सभी व्यापार चौपट हैं ?
मिलावट, चोर बाजारी से सब बाजार चौपट हैं ?
कमाकर पेट भरने के जहाँ आधार चौपट हैं ?
कुशल कैसी जहाँ पर न्याय के अधिकार चौपट हैं ?
जहाँ वाणिज्य के स्थान में केवल दलाली हो ?
जहाँ निकला दिवाला हो, वहाँ कैसे 'दिवाली' हो ?





[५]

करे क्या अर्चना, 'श्री' तो जलधि उस पार जा बैठी ?
रमा रम्यस्थली म आज आकर रुकता बेठी ?
जहाँ सम्पन्नता थी दीनता आसन जमा बेठी ?
अभागी मातृ भू गृहयुद्ध मे सर्वस्व गवा बेठी ?
पतन लखकर हमारा पीटते हो शत्रु अब ताली ?
मनाये देश फिर दुखप्रद दशा मे कैसे 'दिवाली' ?

[६]

जहाँ हस्ती की किश्ती के लिये तूफान छाया हो ?
देश के सामने जीवन मरण का प्रश्न आया हो ?
कौम पर जालिमों ने दिन-दहाडे जुल्म ढाया हो ?
विधर्मियो ने हडपने का जिन्हे बीडा उठाया हो ?
जहाँ असमय म जीवन पुष्प हरता हो निठुर माली ?
मनाये वे दुखित माताये कैसे आज 'दीवाली' ?

[७]

जगत म पूर्ववत् सम्मान जब तक पा नहीं सकते ?
अनय अपमान के दृढ दुर्ग जब तक ढा नहीं सकते ?
पतन के पार जब तक आत्म बल पर जा नहीं सकते ?
पुन खाई हुई सौभाग्य श्री को ला नहीं सकते ?
अकिंचन् की तरह तब तक मना सकते न खुशियाली ?
'विजय श्री' पायेगे जिस दिन, उसी दिन हागी 'दीवाली' ?

(पृष्ठ ३४ का शेष)

"अखबते इन्सनी" मानवमात्र म भाईचारा सिखा सकता है या वह मत जो कि केवल मूर्ति पूजा के कारण नेक से नेक मनुष्य को गन्दा बता वे, मुशरक कहे ? कौन मानव धर्म कहलाने योग्य है ? क्या मुसलमान कब्र, ताजिये, अलम, सगे अस्वद (काला पत्थर) नहीं पूजते ? फिर ये गन्दे क्यो नहीं ? केवल हिन्दू ही गदा क्यो ?

कुरान शरीफ की इस अमानवतावादी, मनुष्यों म घृणा द्वेष फेलाने वाली शिक्षा के कारण ही स्वामी जी न इसे ईश्वरीज्ञान नही माना और डटकर खडन किया। ★





गीता—ऋषि दयानन्द की दृष्टि में

[ले०—श्री प० राजेन्द्र जी अतरौली, अलीगढ़]

आर्य समाज मे ऐसे बहुत लोग हैं, जिनमे कई विद्वान् भी हैं जिनको या तो यह भ्रम है कि ऋषि दयानन्द गीता को एक प्रामाणिक ग्रथ मानते थे, या वे अपनी मान्यता ऋषि की आड़ लेकर आर्यसमाज पर थोपना चाहते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व मेरे विचार और लेखो की आलोचना करते हुए ऐसा ही एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमे ऋषि को बीच में लाकर गीता की प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उसका उत्तर मैं 'आर्योदय' और 'आर्यवीर', जालधर म दे चुका हूँ। ऐसे ही कुछ पत्र मुझे अन्य आर्य विद्वानो के भी प्राप्त हुए हैं।

इस सम्बन्ध मे दो प्रश्न उठाये जाते हैं। (१) ऋषि दयानन्द ने गीता की कथा की और उसे पढ़ाया। (२) सत्यार्थ प्रकाश और सस्कार विधि मे गीता के प्रमाण दिये हैं। इन दोनो पर सक्षेप मे यहा विचार प्रस्तुत करता हूँ—

१—ऋषि दयानन्द ने सवत् १९१९-२० वि० मे स्वामी विरजानन्द जी के यहा शिक्षा समाप्त की। स० १९२४ मे हरिद्वार कुम्भ पर प्रचार आरम्भ करने से पूर्व वह दो वर्ष आगरा रहे और शेष दो वर्षों मे ग्वालियर, जयपुर, पुष्कर, अजमेर आदि स्थानो मे भ्रमण, प्राप्त धर्म ग्रन्थों का अध्ययन और उस समय के अपने विचारानुसार शास्त्र चर्चा करते रहे। आगरा में उन्होने गीता की कथा की और उसे एक सज्जन को पढ़ाया भी। वह इन दिनों सूर्य को अर्घ्य देते थे, शिव सहस्रनाम, दुर्गा सप्तशती को मानते थे और देवी भागवत का मडन करते थे। रुद्राक्ष की माला पहनते थे और उसका प्रचार करते थे जिसे पीछे आकर गुठली और रुद्र की आँख कहकर उपहास करने लगे थे। स० १९३१ मे लिखे गये सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम सस्करण के अन्त में ऋषि का निम्न विज्ञापन इस पर अच्छा प्रकाश डालता है। वह लिखते हैं—"मैने अपने घर में कुछ वेद का पाठ और विद्या भी पढ़ी। फिर नर्मदातट मे दर्शन शास्त्रों को पढ़ा। फिर मथुरा मे श्री स्वा० विरजानन्द सरस्वती दण्डी जी से पूर्ण व्याकरणादिक विद्याभ्यास किया जो बडे विद्वान् थे। उनके पास रह कर सब शका समाधान किये। फिर मथुरा से आगरा नगर मे दो वर्ष स्थिति की। वहा ऋषि मुनियो के सनातन पुस्तक और नवीन पुस्तक भी बहुत मिले। उनको विचारा। फिर ग्वालियर मे स्थिति की। वहा भी जो-जो पुस्तक मिले उनका विचार किया। जहा-जहा मुझको शका रह जाती उनका स्वामी जी (दण्डी विरजानन्द) से उत्तर यथावत् पाया। फिर पुस्तको को देख के एकान्त मे जाके विचार किया। अपने हृदय मे शका और समाधान किये। सो यह ठीक ठीक निश्चय हृदय मे हुआ कि वेद और सनातन ऋषि-मुनियो के शास्त्र सत्य हैं।" आगे ऋषि लिखते हैं कि मनुष्यो को इन्हीं का अध्ययन करना चाहिये। अन्य ग्रन्थों के लिये वह कहते हैं—'न इनका पढ़े न पढ़ावे न इनको देखे क्योकि इनको देखने वा सुनने से मनुष्य की बुद्धि बिगड जाती है। इससे इन ग्रथो को ससार मे रहन भी न दे तो बहुत उपकार हो। (ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृ० २१)।

यह लम्बा उद्धरण यहा इसलिए दिया है कि जिस समय ऋषि दयानन्द ने आगरा म गीता की कथा की उनके धार्मिक विचार अनिश्चित थे। यदि उस समय के विचारो को प्रमाण माना जाय, तो सिद्धान्त सम्बन्धी बहुत सी उलझनें उठ खडी होंगी। स० १९२४ मे हरिद्वार कुम्भ के पश्चात् कर्णवास (बुलन्दशहर उ० प्र०) निवास काल मे वहा के स्वर्गीय प० भूमित्र शर्मा के मतानुसार वह उस समय गीता के अ० ७, १०, ११, १२ और शेष अध्यायों के अनेक श्लोकों को प्रक्षिप्त मानने लगे थे। यही विचार ऋषि ने स० १९२६ मे अपने मिर्जापुर निवास के समय प्रकट किये थे।





सम्वत् १९२७ मे वह गीता को त्रिदोष सन्निपात से उपमा देने लगे थे और कहते थे कि इसमें कहीं कुछ है, कहीं कुछ है। (प० देवेन्द्रनाथ लिखित वृहद् जीवन चरित्र पृ० २०३ २०४)। हरिद्वार कुम्भ स० १९३६मे अवतारवाद खण्डन पर व्याख्यान देते समय एक पौराणिक पडित के गीता के 'यदायदाहि धर्मस्य' श्लोक का प्रमाण प्रस्तुत करने पर उन्होने 'गीता को कल की राड' कहकर उसका प्रमाण अस्वीकार किया (देखो 'आर्यवीर' जालन्धर अगस्त १९६१ 'गीता और ऋषि दयानन्द'। अन्त मे अपनी जीवन लीला समाप्त करने से दो वर्ष पूर्व स० १९३८ मे रियासत बनेड़ा के राजा गोविन्दसिंह को उनके गीता का प्रमाण प्रस्तुत करने पर भी यही उत्तर दिया कि 'हम गीता का प्रमाण नहीं मानते आप वेद का कोई प्रमाण दीजिये' (प० देवेन्द्रनाथ कृत वृहद् जीवन चरित्र पृ० ६५० ६५१)। यहाँ हमने ऋषि दयानन्द के गीता सम्वन्धी वे सभी विचार जो समय समय उन्होने व्यक्त किये क्रमबद्ध प्रस्तुत किये हैं। इनसे स्पष्ट है कि ऋषि के गीता सम्बन्धी विचारो मे क्रमश परिवर्त्तन होता रहा और अन्त मे वह उसे अप्रमाणिक और अमान्य मानने लगे थे।

२—ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश और सस्कार विधि मे गीता के कुछ श्लोक उद्धृत किये है, इसलिये वह प्रामाणिक है, यह एक ऐसी युक्ति है जो हमारे गीता पोषक विद्वानो के पक्ष की निर्बलता को प्रत्यक्ष कर देती है। ऋषि ने सत्यार्थ-प्रकाश मे गीता के पाच उद्धरण दिये हैं, इन्हीं मे से दो श्लोक सस्कार विधि में भी दुहराये हैं। सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका मे गीता (१८ ३७) का श्लोकार्ध देकर एक सर्वमान्य सत्य का, जो गीता का एकाधिकार नहीं है, उल्लेख किया है। समुल्लास ४ मे गीता के दो श्लोक ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण धर्म के (१८ ४२, ४३) दिये हैं और वे भी मनुस्मृति के प्रमाणो के पश्चात्। जहा मनु ने वेद पठन पाठन, यज्ञ और दान, कर्त्तव्य कर्म बताये हैं वहा गीता इनका नाम तक नहीं लेता। इस प्रकार गीता की वर्ण धर्म व्याख्या जहा अधूरी है वहा वह यह भी सिद्ध करती है कि गीता की दृष्टि मे वेदाध्ययन और यज्ञकर्म कोई महत्व नहीं रखते। गीता को वेद समर्थक मानने वाले हमारे विद्वानो की आखे खोलने के लिये यह भी एक प्रमाण है। समुल्लास ८मे,'नासतो विद्यते भावोनाभावो विद्यते सतः' इत्यादि, (गोता २ १६) देकर एक अन्य सर्वमान्य दार्शनिक सत्य का निरुपण किया है, इसके लिए भी गीता के एकाधिकार की दुहाई पीटना महत्वहीन है। शेष दो श्लोक पूर्व पक्ष की ओर से प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका ऋषि ने वेद विरुद्ध कहकर खण्डन किया है। पहला श्लोक समुल्लास ७ में, 'यदायदा हि धर्मस्य' (गीता ४ ७) अवतारवाद का है। दूसरा समु० ६ मे, 'यद्गत्वा न निवर्त्तन्तेतद्धाम परममम॥' (गीता १५ ६) मात्र से पुनरावृत्ति न होना विषयक है। वर्णधर्म सम्बन्धी (गीता १८ ४२ ४३) उपर्युक्त यही दो श्लोक सस्कार विधि मे मनु के श्लोको के पश्चात् उद्धृत हैं।

यदि इस प्रकार के उद्धरणो को लेकर किसी ग्रथ की प्रमाणिकता सिद्ध करना है तब उन शेष ग्रथो के सम्बन्ध मे क्या होगा जिनके उद्धरण सत्यार्थप्रकाश मे दिये हैं और जिनको कभी आर्यसमाज ने प्रामाणिक नहीं माना। उन ग्रथो के नाम सुनिये—चाणक्य नीति के २ उद्धरण, वृत्त चाणक्य ३, भोज प्रबन्ध—१, सिद्धान्त शिरोमणि १, तन्त्र श्लोक १ मैत्र्युपनिषद् १, एक उपनिषद् वचन (प्रतीक नहीं है।) एक अन्य श्लोक जिसका प्रतीक नहीं है। अन्त मे 'स्वमन्तव्यामन्तव्य' मे भर्तृहरि शतक १, जिसे सस्कार विधि मे भी दिया है। सस्कार विधि मे एक जाबालोपनिषद् का भी उद्धरण है।

अतएव किसी ग्रन्थ मे दिये गये अन्य ग्रथों के उद्धरणो के आधार पर यह कहना कि वह ग्रथ लेखक को पूर्णतया मान्य थे, एक उपहासजनक युक्ति है। इन उद्धरणो के सम्बन्ध मे ऋषि ने क्या लिखा है, यह इस युक्ति की निसारता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगा—विज्ञापनम् १४, क्रम स० ८३ पृ० ९४, ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन मे लिखा—"सबको विदित हो कि जो जो बाते वेदो की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातो को नहीं। इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश और सस्कार विधि आदि ग्रन्थो मे गृह्य सूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं,





दयानन्द-दिवाकर

उस रजनी में भारत भू की गौरव की गरिमा सोई थी।
तभी पिशाचिन बनी विदेशी गौरव, गरिमा छाई थी॥
भारत भू आक्रान्त बनी सदियों से पराधीन ये थी।
अत्याचारों, अन्यायों से विधवा बनी विलखती थी॥

पराधीनता रजनी से तदनन्तर तभी प्रभात हुआ।
आर्य-संस्कृति के प्राङ्गण में दयानन्द रवि उदित हुआ॥

सदियों से सोये भारत में वैदिक धर्म प्रचार किया।
आर्य-संस्कृति हिन्दी भाषा, भारत गौरव गान किया॥
भारत और विश्व में फले सभी मतों का नाश किया।
सभी असत्यों का खण्डन कर जग में वेद प्रचार किया॥

आर्य संस्कृति का तदनन्तर जग में परम प्रकाश हुआ।
भारत ही क्या जगती भर में दयानन्द रवि दीप्त हुआ॥

भारत में एक नई क्रान्ति की नई चेतना जाग उठी।
'स्व-राज्य' और 'सु राज' प्राप्ति की एक प्रेरणा जाग उठी॥
विश्व बनाओ आर्य, भावना भारत भर में तभी मची।
किन्तु कहीं से तब तक भारत अभाग्य रजनी आ पहुँची॥

देव दयानन्द इस रजनी का चन्द्र दे गये 'आर्यसमाज'।
जिसका पूर्ण उदय होने से पूर्व कर गये स्वयं प्रयाण॥

—आदित्यपालसिंह आर्य वीर, नर्वदातट, होशंगाबाद (म०प्र०)

व उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिए लिखे हैं उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का मान्यित प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ, इत्यादि।"

ऋषि के उपर्युक्त शब्द हैं, यह किसी ननुनच की अपेक्षा नहीं रखते। यदि इतने पर भी गीता का प्रमाण कोटि में रखने की कोई हठ करता है, तो हम उसे आर्यजनता के न्याय पर छोड़ते हैं। एक बात और लिखकर हम इस लेख का समाप्त करते हैं। ऋषि दयानन्द के प्रामाणिक ग्रन्थों की दो सूची उपलब्ध हैं। एक कानपुर और दूसरी बम्बई में दिये गये विज्ञापन की। इन दोनों में गीता का कहीं उल्लेखमात्र तक नहीं है। महाभारत का है किन्तु वह किस रूप में—

(१) कानपुर—महाभारतम् २१,तत्र शिष्टाना जनाना लक्षण निसन्ति॥ दुष्टाना जनानाञ्च। अर्थ इसमें शिष्ट और दुष्टजनों के लक्षण दिये गये हैं।

(२) बम्बई—महाभारत को इतिहास मानते हैं।

उपर्युक्त दोनों सूचियों से स्पष्ट है कि ऋषि ने महाभारत तक का केवल एक नीति और इतिहास ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है, धर्म ग्रन्थ रूप में नहीं। तब गीता के प्रामाण्य का तो कोई प्रश्न ही नहीं रहता। महाभारत में इतना प्रक्षेप हुआ है कि उसका महत्व पुराणों से अधिक नहीं रह गया। इस तथ्य को ऋषि ने भी सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास में स्वीकार किया है। अतएव गीता का ऋषि दयानन्द की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है, यह निर्विवाद है।











गीत—

दीप मालिके

(रच०—श्री कुसुमाकर जी, फिरोजाबाद)



अमा की घोर निशा में रमा! तुम्हारे नयन लजीले क्यों?

लोक में विदित यही अपराद,
शीश पर है पापो का भार।
लगी मुख पर कालिख की रेख,
न जिसका हो सकता परिहार।
घृणा की घटा उठीं घनघोर,
न कोई करता जी भर प्यार।
उलूकों के वाहन पर बिठा,
किया कैसा जग ने सत्कार।
'विष्णु के चरण चापती रहीं, भाव मन के गर्वीले क्यों?

निखिल जगती में है तम-तोम,
व्योम से बरसें 'अनृत'-अगार।
'अभावों' का है प्रबल प्रकोप,
'अनय'का उठता भीषण ज्वार।
'अविद्या' की बहती वातास
भरा भूतो मे भ्रष्टाचार।
आपदाओं के दीपक दाम,
द्वेष को ज्योतित करते द्वार।
अल रहा नैतिक-नीड़ निरीह,खिलौने खील सजीले क्यो?

दीप - माला में कैसे, शोक!
द्यूत क्रीड़ा, तस्कर व्यापार।
अधम धर्मों की लेकर आड,
सुरक्षा, संस्कृति का संहार।
दम्भ - दानवता की है जीत,
मजु मानवता की है हार।
तुम्हारे पुण्य - पर्व पर राष्ट्र,
पतन की पकड़े है पतवार।
ग्रथियों के कसने के समय, तुम्हारे बन्धन ढीले क्यो ?

विश्व मे नास्तिकता का नृत्य,
निरन्तर होने लगा निशङ्क,
किया 'शंकर' ने तीव्र विरोध,
बैठकर विमल वेद पर्य्यङ्क।
तुम्हीं ने कमले! ले करवाल,
किया क्यो क्रूर भृकुटि को वङ्क।
हुआ है किसका तुमसे त्राण,
करे स्वागत क्यो राजा रङ्क।
'वीर जन गण से पूछो आज,तुम्हारे लोचन गीले क्यो?

राम मे मैं हूँ, मुझ मे राम'
'तीर्थ' ने दिया दिव्य-सन्देश।
'तत्त्व एकत्व' सिखाया शुभ्र,
'द्वैत' का रहे न मन में लेश।
देख तुम सकीं न दृग से दृश्य,
दिया भक्तो को कलुषित क्लेश।
ले गई अनुपम विमल विभूति,
रहेगी शाश्वत स्मृति शेष।
तुम्हारा यह नृशस व्यवहार वचन फिर भी तरजीले क्यो?

विश्व के वैभव को दुत्कार,
किया जिसने था जीवन-दान।
धर्म का सत्य दिखाया रूप,
सुनाया 'गुरु—गौरव' का गान।
पिला स्वातन्त्र्य-सुधा का सार,
किया हँस हँस कर विष का पान।
हर्ष का कैसा पावन - पर्व,
हुए कितने दीपक निर्वान।
'दया-आनन्द' विहीन विलोक,लोक मे भाव हठीले क्यो?

नोट—ऐसा मुझे ध्यान है कि शंकराचार्य, महावीर, रामतीर्थ, स्वा० दयानन्द चारो का निधन दीपावली के दिन ही हुआ था।





एकता की भावना–भावना की एकता

(लेखक—श्री बा० पूर्णचन्द्र, एडवोकेट, भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा)



आजकल देश में अनेक प्रकार की फूट प्रचलित है भाषा के आधार पर संघर्ष हो रहा है, जातिवाद पर भी कलह आधारित है। राजनीति के क्षेत्र मे प्रान्तवाद प्रचलित है, यह जितने विवाद हैं, इनका यदि मिटाना है या समाप्त करना है तो इनके सम्बन्ध म मौलिक दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है। यह प्रचलित विवाद जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है अपना स्थान विशेष रूप से राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में रखते हैं।

प्रजातन्त्र और वोट–

प्रजातन्त्र में किसको अधिकार मिलेगा इसका निर्णय वोटों की सख्या पर आधारित रहेगा जिसको अधिक वोट मिलेंगे वह प्रबन्ध करने का अधिकारी होगा दूसरे शब्दों मे मन्त्री बनेगा, राज्य का अधिकारी बनेगा और विधान बनाने का अधिकार भी उसको प्राप्त होगा। यह सब अधिकार बड़े आकर्षक हैं।

वोट और गुटबन्दी–

अधिक वोट प्राप्त करने के लिये गुटबन्दी या दलबन्दी बडी रोचक और आकर्षक विधि है। यदि एक एक वोटर से सम्पर्क प्राप्त किया जाये तो बडा कठिन प्रतीत होता है। प्रसार के यत्न के लिये दलबन्दी को रूप देना पड़ता है इस रूप का ही नाम जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद और प्रान्तवाद है। कभी कभी जन्म सूचक जातियों के आधार पर वोटरो का अपील करके उनका एक गुट या दल बना लिया जाता है और उस कृत्रिम आधार पर वोट प्राप्ति का यत्न किया जाता है।

प्रजातन्त्र के सम्बन्ध मे जब तक वोट की मात्रा पर और सख्या पर सफलता आधारित मानी जायेगी उस समय तक गुटबन्दी किसी न किसी रूप मे प्रचलित रहेगी। यदि इस प्रकार की गुटबन्दी को बन्द करना है, तो प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में भी कोई नवीनरूप पर विचार करना होगा।



श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट

प्रजातन्त्र और उम्मीदवार–

यदि प्रजातन्त्र के आधार पर निर्वाचनों के कारण जो सघर्ष बढ रहा है उसे समाप्त करना है या मर्यादित करना है तो वोट देने वाले और मागने वालों में कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिये। जो निर्वाचन मे किसी क्षेत्र के लिये खडा हो उसके लिये शिक्षित होना और सदाचारी होना आवश्यक माना जाये। कम से कम शिक्षा इतनी होनी चाहिये कि वह वाद विवादों में समझकर भाग ले सके। यदि कुछ सम्पत्ति की भी शर्त हो तो अच्छा होगा। सम्प्रति हरएक वोटर उम्मीदवार बनकर खडा हो सकता है, उसमे योग्यता और अयोग्यता का कोई आधार नहीं रहता यदि कोई आधार रहता है तो केवल इस बात का कि कौन अधिक वोट सग्रह कर सकता है। और इसी आधार पर बहुधा टिकट दिये जाते हैं और इससे ही गुटबन्दी और कलह बढ़ती है।

प्रजातन्त्र और सद्भावना–

सम्प्रति जो प्रजातन्त्र का रूप प्रचलित है वह केवल सख्या पर आधारित है परन्तु प्राचीन समय के लेखक,





वर्तमान काल तक जितने राजनीति के विशारद और विशेषज्ञ हुए हैं उन सबका आधार यह रहा है कि सम्मति प्राप्त करने का अधिकार केवल बुद्धिमानों और सदाचारियों को प्राप्त होना चाहिए। मनु के आधार पर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के ६ समुल्लास में यह प्रतिपादित किया है कि १०० मूर्खों के मुकाबले पर ८० धार्मिक विद्वानों की सम्मति माननीय होनी चाहिए। इसी प्रकार की सम्मति प्लेटो, सोकरटीज और प्रास के रुजिया की है। अमेरिका के प्रसिद्ध विचारक विल डरान्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मैनसन्स औफ फिलासफी में लिखा है कि "डिमोक्रेसी टू बी सक्सेस फुल शुड बी फूल प्रूफ" अर्थात् प्रजातन्त्र की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि वह मूर्खों से सुरक्षित रहे। इसी प्रकार अमेरिका के प्रसिद्ध राजनैतिक विज्ञान के विशारद लार्ड ब्राइस ने लिखा है कि "रिपब्लिक्स फलेरिश वेयर वरचूअस प्रिवेल"। आश्चर्य यह है कि जब सब विशेषज्ञों की सम्मति है कि सम्मति का अधिकार ज्ञानवान, शिक्षित और सदाचारियों को ही मिलना चाहिए, हमारे देश मे स्वराज्य प्राप्ति की नई उमग के कारण प्रजातन्त्र को घोर रूप मे प्रचलित किया गया है और केवल आयु के आधार पर सम्मति देने और सम्मति मांगने का अधिकार आधारित किया गया है, और जब इस प्रणाली के कारण फूट बढ रही है तो उसके मौलिक कारणों पर विचार न करके ऊपर से विचार किया जा रहा है। और यह आशा की जा रही है कि रोग का निराकरण हो जायेगा। जो सर्वथा निराधार है।

देश प्रेम या विश्व प्रेम–

राजनैतिक क्षेत्र मे परस्पर प्रेम की भावना उत्पन्न करने के लिये केवल देश प्रेम की भावना पर्याप्त नही हैं। देश प्रेम के साथ साथ विश्व प्रेम की भावना आवश्यक है। विज्ञान के आविष्कारो ने सारे विश्व को एक सूत्र में बाध दिया है। देश और काल की सीमाये समाप्त सी हो गई हैं, एक देश का दूसरे देश पर प्रभाव पड रहा है और इसलिये यदि विश्व प्रेम या ससार प्रेम की भावना का सचार आरम्भ से नागरिको के हृदय मे होगा तो उनके अन्दर सार्वजनिक प्रेम की भावना स्थायी रूप में बनी रहेगी, यदि केवल देश प्रेम की भावना का सचार हुआ तो वह भावना सीमित होकर प्रान्त या नगर तक सीमित हो जाती है और यही सकुचित भावना प्रान्त वाद का रूप धारण कर लेती है।

विश्व प्रेम और ईश्वर की सत्ता में विश्वास–

विश्व प्रेम के साथ-साथ विश्व के विधाता, सचालक और व्यवस्थापक ईश्वर के सबध में भी आस्तिक भावना नागरिको के हृदय मे रहेगी तो न केवल एक देश के नागरिको मे आपस में परन्तु सारे देशों के नागरिको और प्राणियो के साथ एक सार्वजनिक प्रेम की स्थापना का आधार हो जायेगा। और इसी प्रसग मे यह भी आवश्यक है कि जहा देश प्रेम के लिए 'वन्देमातरम' या 'जन मन गण' का प्रयोग आवश्यक समझा जाता है, सबसे आरम्भ मे हर अवसर पर ईश्वर की वन्दना किसी न किसी रूप मे अवश्य करनी चाहिए। तथा पृथ्वी माता की वन्दना होनी चाहिए।

एकता की भावना–

एकता की भावना उत्पन्न करने के लिये बडे प्रयत्न हो रहे हैं। सरकार ने एक आयोग की नियुक्ति की हुई है और विचार के लिए सम्मेलन बुलाये जा रहे हैं। एकता की भावना के अभाव मे द्वेष का भावना उत्पन्न हो रही है।

साथ ही प्रजातन्त्र के आधार पर निर्वाचन पद्धति के कारण द्वेष की अग्नि और भी भड़क रही है, जिसको बुझाने का यत्न हो रहा है। इसके लिए यह आवश्यक है कि एकता की भावना लाने से पूर्व भावना की एकता उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए।

भावना की एकता–

भावना की एकता के सम्बन्ध मे विचार करने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि भावनाओ का सम्बन्ध मनुष्यो के हृदय या मन से है, मन ही सकल्प और विकल्प के उत्पन्न होने का स्थान है और यदि मानसिक जगत् की व्यवस्था विधि पूर्वक हो जाये तो वह भावनाओ की एकता की व्यवस्था हो

(शेष पृष्ठ ४७ पर)





दीपावली और द्यूत निषेध

[ले०—श्री डा० हरिदत्तजी शास्त्री एम ए अध्यक्ष संस्कृत विभाग, डी ए वी कालेज कानपुर]

देश के विभिन्न भागो मे विभिन्न परम्पराओ के होते हुए भी दीपावली पर्व की सांस्कृतिक एव आध्यात्मिक आत्मा एक है, यह पर्व समस्त देश-वासियो के लिए एक नूतन उल्लास एक नवीन चेतना और एक जीवित स्फूर्ति एव राष्ट्रीय एकता का अमर सन्देश लेकर प्रति वर्ष आता है। अधकार मे, आलोक की सृष्टि करने वाला यह महान पर्व तमोमयी तमिस्रा मे तिरोहित हमारे जीवन तथा राष्ट्र को नव ज्योत्सना से आलोकित कर दे, यही प्रभु से प्रार्थना है। साथ ही जुए की जो बुरी आदत है जिसके कारण कौरव पाण्डव कुलो का तथा अन्य कुलो का विनाश हुआ, एव जिसका नग्न वर्णन ऋग्वेद ने इस प्रकार किया है कि पढ़ते हुए दिल थर्रा उठता है। वह बुरी आदत अब हमसे दूर हो जाय यह भी कामना है। जरा ऋग्वेद के जुआरी की कैसी बुरी दशा दिखाई है उसे देखिये। जाया तप्यते कित वस्य हीना।

माता पुत्रस्य चरत क्व स्वित्॥
ऋणावा विभ्यद्धमिच्छ मानो।
ऽन्येषामस्तमुप नक्त मेति॥

अर्थात् जुआरी की स्त्री घर मे बैठी पछताती है कि न मालूम आज मेरा पति कितना हार कर आयेगा क्योकि वह उसके आभूषण छीनकर जुआ खेलने के लिए गया है। इसी प्रकार जुआरी की माता भी पछताती है कि न मालूम मेरा पुत्र किस दशा मे होगा। वह उसके कुमार्ग से हटाने का जब प्रयत्न करती है तब जुआरी पुत्र उसे मार कर घर से बाहर निकाल देता है। वह बेचारी घर-घर मे भटकती हुई घूमती है। और उसका पुत्र जब घर के बर्तन भाडे बेच चुकना है तब मकान गिरवी रखकर दूसरे से कर्ज लेता है। और कर्जदारो से डरता हुआ कुडकी करने वालो से मुँह छिपाता हुआ, घर से बाहर रहता है, भोजन का कुछ ठिकाना नहीं, भूखा रहकर दिन काटता है। जब रात मे सब सो जाते हैं तब वह डरता डरता अपने घर आता है—बोली बदल कर आवाज लगाता है, रास्ते मे मिलने वालो से मुँह छिपाता है। घर पर आने पर देखता है कि कर्जदारो ने उसके घर की कड़ियां भी उतरवा ली हैं, और उसकी स्त्री व बच्चे भूख से तड़प रहे हैं पर वह व्यसनी इतना होने पर भी अपनी आदत से बाज नहीं आता।

अगले मत्र मे जुआरी की भयकर दुर्दशा का वर्णन ऋग्वेद का मत्र ध्वनित कर रहा है।

स्त्रिय दृष्ट्वाय कितव ततप,
न्येषा जाया सुकृत च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे! हे बभ्रून,
सो आने रन्ते वृषल पपाद॥ ऋक्

यह जुआरी जब दूसरे के परिवारों को हरा-भरा देखता है। तथा उनके परिवार को हँसी-खुशी मे घूमता पाता है तो बहुत दु खी होता है—इसी प्रकार उनके घरो को सजा हुआ देखकर व लिपा पुता देखकर दु.खी होता है और बेचारा अपनी आदतों से इतना मजबूर है कि दिन निकलते ही जुआरियों की टोली में पुन. खडा हो जाता है और वहा पर पुनः पासे फेंकता है जिसका फल मिलता है हार और अपमान। घर बिक जाता है वह सड़क के किनारे अग्नि जलाकर जाडे की रातें काटता है। ठिठुरता है वर्षा पड़ने पर घर के बिक जाने के कारण दूसरों की दीवालों के सहारे सारी राते बिता देता है, ऐसे अनर्थकारी, श्रुति-स्मृति निषिद्ध जुए का प्रचार दिवाली के दिनों में खुले आम होता है, जिसके निषेध के लिए वेद का यह अर्थवादात्मक वर्णन है।

आशा है दीवाली के पावन दिन ये जुआरी व चोर इससे कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करेंगे। राष्ट्र को द्यूत की इस बुराई से मुक्त करने का सक्रिय प्रयत्न करना प्रत्येक राष्ट्र हितैषी का परम कर्तव्य होना चाहिये।



महर्षि-महिमा



[रच०— श्री लाखनसिह भदौरिया, मैनपुरी]

सत्य से जन्मे, हुए तुम सत्य में लयमान !
बन गया जीवन तुम्हारा सत्य का अभियान !

एक मूषक ने जगाया, उग्र ऊहापोह,
जन्म के सग क्रान्ति लाया, सत्य का विद्रोह,
बाध पायी थी नहीं, पितु मोह की जजीर।
मातु की ममता बहाती रह गई दृग-नीर !
तुम छुपाये पीति गगा, बन गये चट्टान !
था तुम्हारे सामने, इस विश्व का कल्याण !

व्यष्टि के व्यक्तित्व मे, बाधे समष्टि विवेक,
तुम युगो के बाद आये, एक केवल एक !
क्रान्तिदर्शी दृष्टि झाकी, पार युग के पार !
सृष्टि की सुख-शान्ति का सपना लिए साकार!
देश के अन्तिम पतन मे तुम प्रथम उत्थान !
पूर्व के उगते अरुण, मध्याह्न के दिन मान !

वेद की गगा मरुस्थल मे गई थी सूख !
था तिमिर वह व्याप्त,भूपर थी न एक मयूख !
थे घुटन मे मनुजता के छटपटाते प्राण,
कर रहा था विश्व, वैदिक वायु का आह्वान !
तुम उदय के साथ लाये, प्राण का पवमान !
पा गये जिससे पुन निष्प्राण भी नव प्राण !!

वर लिए अभिशाप सारे, तज दिये वरदान !
विश्व को अमृत पिलाकर, खुद किया विष पान !
फूल बाटे विश्व को, पा शूल के प्रतिदान !
हैं तुम्हारे अनगिनत, अहसान पर अहसान !
भूल सकता कौन तुमको देव, श्रद्धावान ?
तुम हुए माँ भारती के क्रान्ति पुत्र, महान !



महर्षि की भविष्यवाणी की सफलता

(ले०—श्री मोहनलाल जी मोहित, लापेनीर सेपियेर मौरिशश)

महर्षि दयानन्द जी वेदोक्त सत्य धर्म के प्रचार-प्रचारक और असत्य कल्पित मत पंथों के विपुल विदारक थे। वेद धर्म जो उच्चतम मानवता का पोषक तथा सर्व प्राणिमात्र का हित रक्षक है, उसके ही प्रचार एवं प्रसार में महर्षि ने अपना सर्वस्व बलिदान किया।

सत्य धर्म के प्रचारार्थ महर्षि को असिधारा पर चलना पड़ा था। सत्य व्रत के परिपालन में उनको अनेक संकट सहने पड़े, विरोधियों का विरोध एक तरफ और दूसरी ओर से रजवाड़ों का प्रलोभन, दोनों सम्मिलित वारों का प्रतिवाद करना महर्षि दयानन्द का ही काम था। महर्षि सत्य पथ पर अचल और अडिग रहे तथा बड़ी निर्भीकता से आगे ही बढ़ते रहे। धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में आपकी अनुपम प्रतिभा थी। साथ ही ऋषि का दृष्टिकोण उदार और विशाल था। "सत्यमेव जयते" पर आपका अटूट विश्वास था। तभी तो सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में ऋषि ने लिखा है "मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य, सत्य अर्थ का प्रकाशन करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना, सत्य अर्थ का प्रकाशन समझा है। पुनः आगे मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है। इन कथित पंक्तियों में महर्षि ने विश्व मानव के कल्याणार्थ सत्य का ग्रहण और असत्य परित्याग का स्वर्गीय सन्देश दिया है।

और अवैदिक कुप्रवृत्ति का ऋषि ने प्रबल खण्डन भी किया है। निम्न अवैदिक प्रवृत्तियों का खण्डन है, जैसे मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, बाल विवाह, बहु विवाह, बहु देवतावाद, अनार्ष शिक्षा प्रचार, स्त्री शिक्षा का अभाव, छुआछूत, जन्म जात से वर्ण धर्म, मतपन्थ का आडम्बर, अनुदार हृदय, मिथ्याभिमान इत्यादि। और इन सद् प्रवृत्तियों का मण्डन किया है, अग्निहोत्रयज्ञ, माता पिता गुरू आदि की श्रद्धापूर्वक सेवा-शुश्रूषा, युवा विवाह, एकेश्वर पूजा, एक पत्नीव्रत, अनिवार्य शिक्षा प्रचार, बालक बालिका की, गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था, मानवमात्र से सद्व्यवहार, उदार एवं विशाल मानव धर्म का प्रचार इत्यादि।



श्री मोहनलाल जी मोहित

उपर्युक्त विषयों पर महर्षि दयानन्द जी का खण्डन-मण्डनात्मक प्रचार का प्रबल प्रभाव पड़ा है। भारत का गत पौन शती का धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक इतिहास साक्षी है। धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में तो युगान्तरकारी क्रान्ति हुई। राजनैतिक जगत का काया कल्प ही हो गया। धर्मोपदेश और शिक्षा प्रचार से धर्मान्धता और मतपथों का दुराग्रह अब नहीं रहा। धर्म का ढोंग रचकर धाधलेबाजी का समय समाप्त हो गया। भारतीय जनता नव जागरण युग में हैं, स्वतन्त्र भारत बाल भानु के आकाश-प्रकाश के स्वच्छ-सांस्कृतिक सुखद समीर में श्वास लेने लगा है।

अन्ध विश्वास की नींव उखड़ चुकी है, उनमें सदविवेक आने लगा है। उन्हें निश्चय हो गया है कि सत्यविश्वास, सतर्क विचारयुक्त सद्व्यवहार ही धर्म का मूल है। साहित्यिक क्षेत्र में भी स्वार्थ साधन की





लीपापोती और अतिशयोक्ति का युग चला गया। वर्तमान में प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक अध्याय, परिच्छे. तथा प्रति पृष्ठ के प्रकरण पंक्ति और शब्द पर सतर्क छानबीन करने के लिये समर्थ समालोचक तैयार रहते हैं। इस प्रकाश के युग में समर्थ समालोचक की तर्क तलवार से स्वार्थ की गर्दन की खैरियत नहीं रही।

राजनैतिक जगत् में युगान्तरकारी परिवर्तन हो रहे हैं। प्रत्येक देश और लघु उपनिवेश भी बन्धन मुक्त होकर स्वतन्त्रता के आकाश प्रकाश में वायु वेग से प्रगति चाहता है। और यह है भी ठीक क्योंकि स्वतन्त्रता मानव समाज का जन्म सिद्ध अधिकार है।

आज से एक शती पूर्व महर्षि दयानन्द ने भविष्य वाणी की थी कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" इस अनुपम स्वर्गीय सत्य का प्रत्येक देश के विकसित हृदय और परिष्कृत मस्तिष्क, विवेकशील मानव एक शती के अन्दर ही ऋषि की वाणी में अपनी भौतिक मुक्ति अनुभव करने लगे हैं। इसी प्रकार आगामी एक शती में महर्षि दयानन्द का अध्यात्म मार्ग विश्व धर्म का अध्यात्म मार्ग होगा, ऐसा अनेक योगात्माओं का आदेश है।

एकता की भावना ...

(पृष्ठ ४२ का शेष)

जायेगी। हृदय के जगत् की व्यवस्था के लिये यह समझ लेना आवश्यक है कि वहाँ तक न राजनियम की पहुंच है और न लोक नियमों की। यह दोनों प्रकार के नियम बाहरी जगत तक अर्थात किये हुए काम या कही हुई बात तक प्रभाव रख सकते हैं। बात कहने या काम करने का विचार हृदय जगत् में आरम्भ होता है और वहां केवल दैविक नियम ही लागू हो सकते हैं। हृदय मन्दिर ही वह स्थान है जहां ईश्वर और जीव का समन्वय है और वहीं से सारे जीवन की प्रणाली सचालित और मर्यादित होती है।

परस्पर की कलह को मिटाने के लिये यह आवश्यक है कि भावना की एकता लाई जाये और उसके लिए मनुष्य के स्वभाव को मर्यादित किया जाये। यह धर्म और राजनीति और नैतिक शास्त्र का प्रश्न है। केवल राजनीति जगत में इस पर विचार करने के लिए और मनोविज्ञान और धर्म के दृष्टिकोण से विचार करना होगा, उपरोक्त रीति से विचार किया गया तो समस्या का समाधान स्थाई रूप से हो जायेगा।



—आर्यसमाज नानापेठ, पूना का निर्वाचन निम्नप्रकार हुआ—

प्रधान—श्री डी० जी० बन्धु

मन्त्री—श्री दशरथ श्रोत्रि

—आर्यसमाज वजीरगंज, गोंडा का नवीन निर्वाचन श्री कृष्णाष्टमी को निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान—श्री रामहेत आर्य

मन्त्री—श्री रामजियावनलाल आर्य

आर्यसमाज औरंगाबाद पो० गढ-मीरपुर जिला सहारनपुर का चुनाव—

प्रधान—रोठूसिंह

मन्त्री—मा० मोहब्बतसिंह

कोषाध्यक्ष—पितम्बरसिंह





उत्सव समाचार—

आर्यसमाज दीवानहाल का ७७ वां वार्षिकोत्सव

आर्य समाज दीवानहाल दिल्ली का ७७ वा वार्षिक महोत्सव दिनाक १-२ व ३ दिसम्बर को समारोहपूर्वक गाधी मैदान मे सम्पन्न होगा। इस अवसर पर अनेक महत्वपूर्ण सम्मेलनों का आयोजन किया जायेगा, जिनमें देश के गण्य मान्य साधु महात्मा तथा विद्वान् नेता पधारेंगे।

उत्सव से पूर्व दिनाक २३ नवम्बर से आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री आचार्य कृष्ण जी महाराज वेद विषयक कथा किया करेंगे।

आर्य समाज दीवानहाल का नगर कीर्त्तन का जलूस अपनी विशालता और भव्यता की दृष्टि से समस्त भारत मे प्रसिद्ध है। इस वर्ष यह जलूस ता० २६ नवम्बर को राजधानी के मुख्य मुख्य बाजारो में से होकर निकलेगा। —रामगोपाल मत्री

संस्कार समाचार—

—आर्यसमाज भारत नगर गाजियाबाद के तत्वाधान मे आर्यसमाज के पुस्तकाध्यक्ष श्री उल्फतरायजी के सुपुत्र का नामकरण सस्कार दि० ८ १० ६१ को श्री प० तीर्थराम जी के आचार्यत्व मे समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ।

बालक का नाम चि०सुशीलकुमार रखा गया। उपस्थित सज्जनो ने बालक को शुभाशीर्वाद दिया।

—सत्यपाल उपमत्री





आर्यसमाज को महान् दायित्व पूर्ण करना है

[ले०—श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ, कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर]

मनु भगवान् कहते हैं—

फल कतकवृक्षस्य, यद्यप्यम्बु निवारकम्।
न नाम-ग्रहणादेव, तस्य वारि प्रसीदति॥

निर्मली का बीज गदले जल को शुद्ध करने की शक्ति रखता है पर खाली निर्मली, निर्मली के नाम लेने से तो गदला जल स्वच्छ नहीं होता। उस निर्मली के बीज को रगड़कर स्वच्छ जल में घोलकर उस गदले जल में मिलाना पड़ता है तब कहीं गदला जल थाड़ी देर में स्वच्छ होने लगता है, तब कहीं गदले जल का गाद नीचे बैठने लगता है।

हम आर्य समाजी

अभिमान के मारे अपनी प्रशसा अपने आप अपने मुख से कहने, अपनी ही लेखनी से लिखने में नहीं अघाते हैं। अपनी प्रशसा मे कहे गये उद्गारो को सुनकर फूले नहीं समाते हैं। अपनी भूतकाल की क्रियाओ पर मस्त हैं पर यह नहीं समझ रहे हैं कि हमारा भूत कितना ही महान् क्यों न रहा हो हमारा भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है-हमारा वर्तमान हमारी उन्नति मे सहायक नहीं हो रहा है—यह सब विचारणीय है-क्या हमारे आचरण "कृण्वन्तो विश्व मार्यम्" के अनुरूप हैं। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के लिए कितनी शक्ति अपेक्षित है? यह भी कभी सोचा।

क्या खबर है कि

हमारे सम्मुख कितना बड़ा काम पड़ा हुआ है। यह माना कि ससार के अखण्ड खण्ड पाखण्डो के टुकड़े टुकड़े करने में हमने बड़ा काम किया। वह तो एक निषेधार्थक काम था।

अब क्रियात्मक

काम सामने है। यदि वैदिक धर्म को क्रियात्मक विश्व व्यापी सार्वभौम धर्म बनाना है तो अपने बालकों को वेदशास्त्रो की शिक्षा दो। उनको अच्छे



—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री—

वेदज्ञ, दर्शन शास्त्री बनाओ। आर्यसमाज के पास बौद्ध धर्मानुयायियो के सदृश सहस्रो आर्यभिक्षु सन्यासी विद्वान् पण्डित हो और वे श्रद्धापूर्वक त्याग तपस्या द्वारा वदिक धर्म के प्रचार के लिए चारो दिशाओ मे फल तब होगा सार्थक हमारा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का नारा, उद्घोष या महानाद— .

अब तो

हमारा समाज छोटी छोटी बातो मे अपनी शक्ति खर्च कर रहा है।

आर्यों में

तीन प्रकार की शक्ति का सचय हो तब "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" बने। आर्य लोग शरीर से बलवान् बन, आर्य लोग मन से दृढ प्रतिज्ञ हो, आर्य लोग





सम्मिलित प्रयत्नशील हों, आज लोग पूर्ण प्रेम अध्यात्मभाव और अध्यात्मशक्ति सम्पन्न हों, 'संगच्छध्वं' साथ चलें, 'संवदध्वम्' एक स्वर हों, "सं वो मनांसि जानताम्" एक मन हो जैसे "देवा भागम्" हमारे पूर्वजो के अतिपूर्वज और उनके भी अतिप्राचीन पूर्वज करते थे। हमारा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" तब सफल होगा जब हमारे "समानी व आकूतिः" हमारे अभिप्राय एक से हों, जब हमारे हृदय "समाना हृदयानि वः एक से हों, समानमस्तु वो मनः" हमारे मन एक से हो और हों हमारा वेदोद्धार के लिए 'यथा वः सुसहासति' एकत्र बैठकर होकर दृढ़ विचार करने की दृढ़ भावना।

यह युग है विज्ञान युग

यह युग है विज्ञान युग—वह भी पाश्चात्य ढंग का। यह विज्ञान युग, भौतिकवाद को सिर पर लेकर नंगा नाच नाच रहा है। लोगो को नास्तिकता की ओर ले जा रहा है, संसार को "महती विनष्टि" महा विनाश की ओर ले जा रहा है। देखते नहीं कि संसार किस प्रकार अशान्ति का अखाड़ा बनने जा रहा है—यह विज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रयोग से जो बात सिद्ध हो उसी को मानता है। हमारे सम्मुख इस विज्ञानवाद की चंचलता और भौतिकवाद के कलह उग्ररूप पकड़ कर आ रहे हैं। इन सबको हमें शान्त करना है। असली सत्य क्या है, कहाँ है, किसमे है इत्यादि का सत्य स्वरूप हमें संसार के सम्मुख रखना है—असली सुख क्या है, कहाँ है, किस प्रकार मिलेगा यह हमें अशान्त संसार को समझाना है जो कि आँख मूँदकर भौतिकवाद के पीछे दौड़ रहा है। इस कोरे भौतिकवाद की हम तभी कमर तोड़ सकेंगे जब हम अध्यात्मशक्ति प्रवण होंगे और तभी समस्त संसार हमारी ओर आकृष्ट होगा। तभी हमारा नारा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" सफल होगा।

हमें संसार को छान्दोग्योपनिषद् के शब्दों में स्पष्ट बतलाना है कि हे संसारी लोगो! सुख सच्चा सुख है सच्चे बड़े सुखस्वरूप भगवान् मे जिसको 'भूमा' कहा जाता है, क्योंकि वह सबसे बड़ा है। उसी की ओर आना है। सांसारिक छोटे छोटे पदार्थों के पीछे पड़े हुए भौतिकवादियो, इन छोटे छोटे पदार्थों में सच्चा सुख कहां। उस "भूमा" को जानना हो तो आओ वेदों की ओर क्योंकि अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों वेदों ही से सिद्ध होंगे। छान्दोग्योपनिषद् का वाक्य इस प्रकार है—"यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः" ऋषि दयानन्द के मिशन का यही चरम लक्ष्य था उसी को सफल बनाना आर्यों का पवित्र कर्तव्य है।

आओ दीपावलि आओ!

आओ दीपमालिका पहिने, सोई अन्तस्थली जगावो।
आवो दीपावलि आओ
अन्ध तिमिर का वक्ष चीर कर
उत्पीडन की दुखद पीर हर
जगमग जगमग जगती सारी
आकर तुम चमकाओ—आओ
वह रामराज्य की पावन स्मृति
होती नहीं कभी जो विस्मृत
महाशक्ति का रूप अडिग ले
नव साहस भर लाओ। आओ
रुद्रा तमसो मा ज्योतिर्गमय
होती असत पर सत की विजय
बन प्रकाश स्तम्भ अडिग तुम
कण-कण पुन जगाओ—आओ
ऋषि का यह बलिदान पर्व है
ज्योतित जिससे विश्व सर्व है
सन्देश अटल ज्योतिर्मय उनका
अणु अणु तक पहुचाओ—आओ
उद्यान विश्व अविरल यह फूले
वैभव सम्पत्ति घर घर झूले,
शक्ति सुधा मकरद पयोनिधि
कण कण मे सरसाओ—आओ
उच्च निम्न का भेद हटे सब
नाम असित वैषम्य मिटे अब
दे आलोक नवल जगती को
भटकी राह दिखाओ—आओ

—गिरिजाशङ्कर शुक्ल "शङ्कर"



महर्षि दयानन्द का देवत्व

असत्य का खण्डन भी आवश्यक

(ले०—श्री प० धर्मदेव जी विद्या मार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ)
प्रधान सार्वदेशिक धर्मार्य सभा—गुरुकुल कागड़ी

ऋग्वेद ७ ६६-१३ में एक मन्त्र आता है, जिसमे देवो का लक्षण इन महत्त्वपूर्ण शब्दों में बताया गया है।

"ऋतावान ऋत जाता ऋतावृधो घोरासो अनृत द्विष.।" अर्थात् देव (ऋतावान) सत्य का व्रत धारण करने वाले (ऋत जाता) सत्य के कारण प्रसिद्ध (ऋतावृध.) सत्य को सदा बढ़ाने वाले—सत्य के समर्थक और (घोरास. अनृत द्विष.) असत्य व झूठ के घोर द्वेषी विरोधी, असत्य का प्रबल खण्डन करने वाले होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो मे 'सत्यमयाउदेवा" (कौषीतकी ब्राह्मण २।८) "सत्य संहिता वै देवा" (ऐत० १ ६) "विद्वांसोहि देवा" (शतपथ ३ ७ ३ १०) इत्यादि वचन पाये जाते हैं। जिनमे सत्यनिष्ठ विद्वानो को देव के नाम से पुकारा गया है। परन्तु वेद मे सत्य के समर्थन के साथ असत्य का घोर खण्डन भी विद्वानो का कर्त्तव्य बताया गया है। महर्षि दयानन्द पर वेदोक्त देवो का यह लक्षण पूर्णतया चरितार्थ होता है। इसी देवत्व से प्रेरित होकर महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश लिखा जिसकी प्रारम्भिक भूमिका मे उन्होने स्पष्ट कहा कि—"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन, सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है—अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य, और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।

इसलिए विद्वान् आप्तो का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वय अपना हिताहित समझ कर, सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द मे रहें।" इत्यादि।

महर्षि दयानन्द के अनुयायी आर्यों के अन्दर यह सत्य के मण्डन और असत्य के खण्डन की भावना पहले जितनी प्रबल थी अब उतनी प्रबल प्रतीत नहीं होती। पुराने आर्य सत्य सिद्धान्तो को जानने के लिए स्वाध्याय किया करते थे। और असत्य के निराकरणार्थ मौलिक व लिखित शास्त्रार्थ आदि साधनों का आश्रय लेते थे, जिससे पाखण्ड की अधिक वृद्धि न होने पाती थी और ऐसा करने से लोगों को भी भय व सकोच होता था।

लेकिन अब एक तो आर्यों मे स्वाध्याय की प्रवृत्ति कम हो गई है जिससे बहुत से लोगो को तो सिद्धान्तो का ज्ञान ही नहीं है। और जिनको है उनमे से बहुत कम के अन्दर यह योग्यता और लगन है कि वे असत्य और पाखण्ड का युक्ति युक्त खण्डन निर्भयता से कर सकें। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश मे असत्य तथा पाखण्ड की वृद्धि होती जा रही हैं। क्योंकि अब लोगो को प्राय आर्यसमाज जैसी सस्था का भय नहीं रहा जो निर्भयता से असत्य का खण्डन करेगी, और आवश्यकतानुसार शास्त्रार्थ के लिए ललकारने मे भी सकोच न करेगी।

कितनी ही पाठ्य तथा अन्य पुस्तको व पत्रिकाओ में वेद, वैदिक धर्म, वैदिक सस्कृति तथा प्राचीन शास्त्र आदि विषयक अशुद्ध बातें निशङ्क लिखी जाती हैं, और आर्य विद्वानों द्वारा, उन पुस्तको और लेखों की प्राय· उपेक्षा के कारण पाठको और युवक वर्ग मे भ्रम फैलता है यह उचित ही है कि मतभेद होने पर भी, कटु कठोर और चुभने वाले अनुचित शब्दों का प्रयोग न किया जाय। किन्तु युक्तियुक्त प्रभावजनक शब्दो में सप्रमाण असत्य और पाखण्ड का निवारण भी आवश्यक कर्त्तव्य है चाहे वह कुछ अप्रिय भी लगे।

अत मै सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के,सर्वसम्मति





'कर्णवन्तः! श्रूयताम्'

[ले०—श्री प० रामनारायण जी शास्त्री, आर्यनगर बिन्दकी]
[सदस्य आ०प्र० सभा, उत्तरप्रदेश]

परम कारुणिक ज्ञान के स्रोत प्रभु ने मानव मात्र के लिए अपनी पवित्र कल्याणी वाणी(वेद) द्वारा अनेकों सुखद सदेश देते हुए कहा है कि "श्रुधिश्रुतश्रद्धेयम् तेवदामि" (अथर्व) "हे श्रवण शक्ति वाले मानव ! सुन, अगर तू दिव्य उपदेशों को सुन सकता है। मैं तुझसे श्रद्धेय वचन कहता हूँ" परमपिता परमेश्वर नाना प्रकार की सृष्टि से अपने प्यारे पुत्रो के लिए निरन्तर उपदेश दे रहा है और देता रहेगा किन्तु हम कर्णवन्त होकर भी बधिर हैं। ठीक ही है "उतत्व· पश्यन्न ददर्शा वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्" ऐसे हम सहस्रो हतभाग्य मनुष्य हैं जो देखते हुए नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते, तो फिर जिसकी यह स्थिति हो जाय, कैसे सुने और कौन सुनाये। यह तो बडा भयकर रोग है उसकी चिकित्सा भी कसे की जाय, क्योकि जो औषधि दी जाती है वह उसके भीतर ही नही पहुँचती, उसे तो वह वमन कर देता है बाहर निकाल देता है, ऐसी स्थिति मे रोग असाध्य या दु साध्य सा प्रतीत होता है। हा यदि औषधि अन्दर पहुँचने लगे और औषधि पच जाय तो रोगी रोगमुक्त होकर स्वस्थ भी हो सकता है और वह कुछ काम भी कर सकता है।

अत· औषधि प्रवेश (उपदेश ग्रहण) का प्रयत्न सर्वप्रथम आवश्य है।

आज हम बड़े बड़े उपदेश व्याख्यान कथाएं प्रवचन आदि सुनते हैं परन्तु उस पर आचरण नहीं करते, सुन कर, समझ कर भी उसकी उपेक्षा (अनसुनी) कर पालन नहीं करते। तो फिर उत्तम से उत्तम उच्चकोटि के विद्वान् महात्माओं का उपदेश हमारे लिए क्या लाभ पहुचायेगा।

पाठकगण विचार करें कि यह कितना भयकर सक्रामक रोग है जो कि निरन्तर द्रुतगत्या प्रवृद्ध होता जा रहा है। प्राय· समस्त विश्व के मानव विशेषकर भारतीय जनता तो इस रोग का शिकार ही हो चुकी है। और धीरे-धीरे आर्य गण भी इससे प्रभावित हो रहे हैं।

समय-समय पर अनेक अनुभवी चिकित्सक विद्वान् सुधारक आये, अपनी अपनी रामबाण औषधिया (उपदेशो) का सेवन कराया, पर क्षणिक लाभ के पश्चात् रोग पूर्वापेक्षयापुनरपि उग्रतर दिखाई देने लगा।

भगवान् गौतम बुद्ध, शंकराचार्य, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाधी आदि वैद्य आये जो भारत को निरोग करना चाहते थे पर औषधियां वमन होकर बाहर निकल गई फिर कौन स्वस्थ हो सकता है ?

ऐसी ही दशा हमारे आर्यसमाज की भी हो रही है। उत्सव महोत्सव जयन्तियां आर्य महा सम्मेलनादि होते हैं उच्चकोटि के धुरन्धर विद्वान्, महात्मा वैतनिक-अवैतनिक प्रचारक, उपदेशक, महोपदेशक गण पधारते हैं अपनी अमोघ औषधियो (अमृतोपदेशो) का प्रयोग भी करते हैं पर क्या जनता पर कोई असर पड़ रहा है ? क्या उसका सुधार हो रहा है ? नहीं। "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यो दवा की"।

दु·ख तो इस बात का है कि चिकित्सक स्वय रोग ग्रस्त सा होता हुआ दिखाई दे रहा है। आर्यसमाज

से गत ८ अक्टूबर को नई देहली मे निर्वाचित प्रधान के रूप मे समस्त आर्य विद्वानो का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, कि वे युक्तियुक्त सप्रमाण यथा सम्भव कोमल किन्तु स्पष्ट प्रभावोत्पादक शब्दों द्वारा, असत्य और पाखण्ड के खडन करने मे सङ्कोच न करें। असत्य का निराकरण भी देवत्व का एक आवश्यक अग है।





जैसी संस्था में यह बधिरपन का रोग आ जाय तो फिर कौन चिकित्सा करेगा ।

इसलिए उपदेश, प्रवचन अन्त:करण की पोषक महौषधिया हैं इनके सेवन के बिना समाज जीवित नहीं रह सकता, तो फिर इसकी क्या चिकित्सा होनी चाहिए, इस विषय में वेद भगवान् कहते हैं "सश्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेनविराधिषि" सम्पूर्ण सामाजिक पुरुष मिलकर परमात्मा से प्रार्थना करें कि हम (श्रुतेन) जो कुछ सुनें, उससे सयुक्त हो सगत हो जायें वह हमारे शरीर में (जीवन) मे व्याप्त हो जाय । और जो कुछ भी सुने हैं उससे "मा विराधिषि" हम वियुक्त (पृथक्) न हो जायें । उपर्युक्त भव्य भावनाए भर-कर उपदेश का वमन न करें किन्तु अपने रोम-रोम मे उसे व्याप्त कर लें तभी कल्याण हो सकेगा ।

अतः हे आर्यो ! हम उपदेश ग्रहण की आदत बनावें । कोई भी उपदेश या प्रतिनिधि सभाओं की आज्ञाए हमारे लिए उपेक्षणीय न बने, विचार करे कि एक समय वह था जब कि लोगो ने मूक प्रकृति से उपदेश ग्रहण किया था । क्या आप नही जानते कि न्यूटन को एक वृक्ष से गिरने वाले फल ने, भगवान बुद्ध को जर्जरास्थि वाले वृद्ध ने, अनुपम सन्देश सुनाए थे जिन्हे सुनकर और ग्रहण कर वे ससार के महापुरुष कहलाये ।

जीवन की साधारण घटना भी अनोखा उपदेश देकर चली जाती है परन्तु हम अन्धे और बधिर हो जाते हैं जो कि न देखते हैं और न सुनते हैं ।

इसी दीपमाला के दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती की अन्तिम झाकी नास्तिक गुरुदत्त को आस्तिकता का उपदेश देकर चली गई, श्री गुरुदत्त विद्यार्थी का अन्त:करण परमात्मा की अखण्ड ज्योति से प्रदीप्त हो गया । जो अब तक अन्धेरा था सब दूर हो गया । आओ आर्यो ! इस ऋषि निर्वाण पर एक बार पुन: ऋषि की जीवन लीलाओ (घटनाओ) को कर्णवन्त: होकर अध्ययन करे सुने सुनाए, और उनके दिव्योपदेशो का अमृत पान कर आचरण मे लावें, तभी हमारा, हमारे समाज, एव राष्ट्र का कल्याण होगा । महर्षि ने यही उपदेश ग्रहण करने का अन्तिम सदेश "कर्णवन्तः श्रूयताम्" देकर निर्वाणपद प्राप्त किया ।★





क्रियात्मक आदर्शवादी दयानन्द

(ले०—श्री प्रो० रंगा एन० पी० आन्ध्र)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ! क्या यह एक साधारण परिब्राजक सन्यासी का नाम है ? क्या कारण है कि हिन्दुस्तान के करोड़ों पुरुष उसकी पूजा करते हैं यद्यपि वह आत्मा दिवगत हो चुकी है। ऋषि ने कौन-सा अपूर्व काम किया ? उसकी पूजा करने से क्या लाभ ? यह प्रश्न उस अनजान विदेशी यात्री के अन्दर उठेंगे जो ससार में भ्रमण करता हुआ इस आर्य भूमि में पदार्पण करेगा। मेरा उत्तर यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती किसी परिब्राजक का नाम नहीं है अपितु वह एक 'शक्तिमान विचार' का प्रतीक है। स्वामी दयानन्द की पूजा की जाती है, क्योंकि उसकी पूजा करना सत्य की पूजा करना है, वेदों की पूजा करना है, भूतकाल में और "भूत" के द्वारा वर्तमान मे जीना है, तथा न केवल भारत के अपितु मनुष्य जाति के भविष्य के लिए वर्त्तमान को ऊँचा उठाना है। ऋषि को समझने का अर्थ यह है कि किस प्रकार मनुष्य सर्वोत्तम रीति से अपने को देश की, नहीं नहीं मनुष्य जाति की सेवा के लिए उपयुक्त बना सकता है।

जिस धर्म का स्वामी दयानन्द ने प्रचार किया, वह कोई नया मत नहीं है अपितु वह उतना ही पुराना है जितनी कि बर्फ को ढकी हुई चोटिया। यह वह है जो कि मनुष्यो को बनाने वाला है, यह वह धर्म नहीं है जो कि केवल आदर्शों को बताता है, अपितु उनका धर्म आदर्शों को क्रियात्मक रूप मे चरितार्थ करना सिखाता है, आप उन आदर्शों के सौन्दर्य को अपने क्रियात्मक जीवन में अनुभव कर सकते हैं। जड़वादी लोग स्वामी दयानन्द को केवल आदर्शवादी के रूप में भले ही समझे पर मैं तो उन्हे क्रियात्मक आदर्शवादी समझता हूँ, क्योंकि उनका रात्रि का स्वप्न दिन की सचाई है! भारतवर्ष! तू उन आदर्शों का स्वप्न देख। एक बार उस ऋषि के सुन्दर विचारो का स्वप्न देख और उनमे मग्न हो जा ! तब तू अपने को शक्तिशाली, बलवान अजेय राष्ट्र बना सकेगा।



स्वामी दयानन्द भारतवर्ष की वर्त्तमान आध्यात्मिक क्रान्ति के जन्मदाता हैं। किताबी पडितो ने उनके स्वरूप को नहीं समझा, परन्तु सच्चाई का उपासक वह ऋषि, प्रत्येक भलाई का मित्र तथा प्रत्येक पाप और असत्य का शत्रु था। उन्हें लोगों ने क्यों नही समझा ? कारण कि ऋषि को वे ही समझ सकते हैं जो कि उनकी शिक्षाओ पर चले। उन शिक्षाओं के द्वारा वे मनुष्य जाति मे ईश्वरी शक्ति का अनुभव करने में समर्थ हो सकते हैं। स्वामी दयानन्द सकुचित अर्थों में देश भक्त नहीं थे। वह सारी मनुष्य जाति के उपदेशक थे और थे मनुष्य जाति के उत्थान के लिए, पर उनका यह विश्वास था कि जो शक्ति मनुष्य जाति को उठा सकती है वह भारतवर्ष में है, इसलिए उन्होने भारतवर्ष को ब्रह्मचर्य का पवित्र, उच्च तथा नियमित जीवन बिताना सिखाया जिसके द्वारा मनुष्य उस शक्ति को प्राप्त करता है जो शक्ति एक बार सूर्य, चन्द्र और सितारो को भी हिला सकती है और उस शक्ति का वह मनुष्य जाति के अधिक से अधिक जिन्ने की अधिक से अधिक भलाई के लिए उपयोग कर सकता है।

मुझे कारावास में सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब मैंने 'स्वराज्य का रहस्य' सत्यार्थ प्रकाश मे पाया। अगर यह हमारी प्राचीन जाति 'सत्यार्थ प्रकाश' की शिक्षाओ के अनुसार चले तो इस पृथ्वी की कोई शक्ति हमारी स्वाधीनता को नहीं मिटा सकती। सत्यार्थ प्रकाश हमें आन्तरिक स्वराज्य प्राप्त करने की शिक्षा देता है और वह तपस्या, सयम या एक शब्द मे 'ब्रह्मचर्य' के द्वारा प्राप्त होता है। एक बार जहाँ आन्तरिक स्वराज्य मिला बाह्य साम्राज्य अपने आप सुरक्षित रहेगा। स्वतन्त्रता और पवित्रता का आधार ब्रह्मचर्य ही है, जिसे कि ऋषि ने स्त्री और पुरुष दोनों के लिये आवश्यक बताया है। हमारे बच्चे

(शेष पृष्ठ ६१ पर)



जर्मनी में दीवाली -

पश्चिमी जर्मनी यात्रा के मनोरंजक अनुभव

(लेखक—श्री प्रेमनारायण अग्रवाल)

पश्चिमी योरोप के देश भारत की अपेक्षा बहुत अधिक सम्पन्न, एवं विकसित हैं और विज्ञान के नवीतम आविष्कारों का वहां खूब उपयोग किया जाता है। जब कोई भारतीय इन देशों में भ्रमण करने जाता है तो उसे विभिन्न प्रकार की अनेकों अजीबो गरीब अनुभव होते हैं। कितनी ही मनोरंजक, आश्चर्यजनक और ज्ञानवर्धक बातें देखने मे आती हैं। उनमे अनेक चीजें ऐसी हैं जिनको हम अपने देश में भारत में चालू करके देश के चतुर्दिक विकास मे सहयोग दे सकते हैं। इनमें कुछ सरकार कर सकती है औ कुछ जनता। न अकेली सरकार और न अकेली जनता यह सब कुछ कर सकती है। दोनो के सहयोग से ही यह सब हो सकेगा क्योकि यह बहुत व्यापक और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है।

प्रसिद्ध है। इसके सबसे ऊपर के भाग को टेलिविजन वाले काम में लाते हैं। उसके नीचे के भाग में दर्शकों के लिए स्थान है जिससे वह चारो ओर घूम फिर कर स्टुटगार्ट शहर का प्राकृतिक दृश्य देख सके। यहा पर एक दूरबीन भी लगा दी गई है जिसमे पैसे डालकर आप देख सकते हैं। भारत मे दिल्ली के कुतुबमीनार, आगरे के ताजमहल आदि की मीनारो आदि पर दूरबीनें लगाने की आवश्यकता है जिससे दर्शक लोग उन पर चढ़कर वहा से शहर आदि का दृश्य देख सके। फिर अपनी अपनी दूरबीने लाने की आवश्यकता नहीं है। विदेशी यात्रियो को आकर्षित करने के अनेक उपायों मे यह भी हमे भारत मे चालू करना पड़ेगा।

इसके नीचे के भाग मे एक रेस्टोरेन्ट है जिसमे आप खा पी सकते हैं। चाय काफी फलो के रस से

श्री अग्रवाल जी ने पिछले ५ वर्षो मे योरोप, अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया के २५ देशो की व्यापक यात्रा की है। जर्मनी की जिन बातो ने उन्हे आकर्षित किया उनमे से कुछ इस लेख मे पढ़िये।

जर्मनी इन देशों में सबसे अधिक सम्पन्न है और विज्ञान मे आगे बढ़ा हुआ है। वहा हमे अन्य देशो की अपेक्षा यह चीजे ज्यादा और पग पग पर देखने को मिलती हैं हमने योरोप अफ्रीका और पश्चिमी के २६ देशों की व्यापी यात्रा की है पर पश्चिमी जर्मनी में जो विविधता देखने को हमे मिली वह अन्य कहीं भी नहीं। इनमें से कई देशों की हमने दो दो बार यात्रा की है और उनके विभिन्न पहलुओ का देखने समझने की चेष्टा की।

स्टुटगार्ट का टेलीविजन टावर—

स्टुटगार्ट जर्मनी का एक अत्यन्त सुन्दर शहर है जो चारों ओर घिरी हुई पहाड़ियों के बीच के मैदान मे व आसपास की पहाडियों पर बसा हुआ है। यहां का टेलिविजन टावर देशी विदेशी सभी यात्रियो का आकर्षण का केन्द्र है। यह दो तीन कामों के लिए

लगाकर सुस्वादपूर्ण भोजन भी कर सकते हैं। इसमे खिडकियो के पास बैठकर आप भोजन करने के साथ बाहर के नैनाभिराम दृश्यावलि से मन प्रसन्न भी कर सकते हैं। इस मीनार की तली में चढ़ने से पूर्व भी एक रेस्टोरेन्ट है। दर्शकों की सुविधा व उनके आनन्द का पूरा करने के लिये इनका होना जरूरी है। यही नहीं इस टावर पर चढ़ने के लिए आप लिफ्ट इस्तेमाल कर सकते हैं जिससे ऊपर चढ़ने की थकान से बच सके।

भारत में इस प्रकार के कोई भी मीनार नहीं बनाई गई है जो सदियो से कायम हैं उनको भी आधुनिक युग की दूरबीन जैसी मामूली सुविधाओ से अभी तक सुसज्जित नहीं किया गया है।

गलियों भर दीपावलि—

भारत मे हम वर्ष में एक बार अपने घरों,





कार्यालयों, सार्वजनिक स्थानो को दीपमालिका या बल्बों की रोशनो से जगमगाते हैं। परन्तु यारोप के देशों मे गर्मियो भर दीपावलि जैसी रोशनो की जाती है क्योंकि इस समय वहा हजारो विदेशी यात्री घूमने फिरने आते हैं। उनके मनोरंजन के लिए अनेक मनबहलाव के साधन खासतौर पर प्रस्तुत किये जाते हैं। देशवासी भी इनसे प्रसन्न होते हैं और इस समय वह भी अपने ही देश के विभिन्न भागो में भ्रमण करते हैं।

जर्मनी है तो औद्योगिक देश और उसकी भारी विदेशी आय का प्रमुख साधन उसके कल कारखाने हैं फिर भी वहा की सरकार व जनता ने विदेशी यात्रियो से होने वाली आमदनी की उपेक्षा नहीं की है। जर्मनी का यात्रा उद्योग भी खूब विकसित है और बीसियो हजा विदेशी यात्री यहा विभिन्न कार्यों के लिये आते हैं। गर्मियो मे यहा की रोशनी किसी अन्य देश से कम नहीं होती। कहीं कहीं तो यह बहुत अच्छी और आकर्षक होती है। जर्मनी के वैभवशाली और प्रसिद्ध नगर बर्लिन की छटा देखते ही बनती है। यहा की सबसे अधिक लोकप्रिय आकर्षक और फैश नेबिल सड़क कुर्फ्रटेन्डम है। द्वितीय महायुद्ध मे बिस्मार होने पर इसे फिर नये सिरे से बनाया गया है। इसके दोनों ओर की आलीशान इमारते गृह निर्माण कला के नवीनतम आविष्कारो और विचारो की परिचायक हैं। वह आधुनिक ढग क साजासामान से लैस हैं। सड़क के बीचोबीच हरियाली और विभिन्न प्रकार की फूलो की क्यारियाँ बनाई गई हैं, जो प्रत्येक स्त्री पुरुष का मन मोह लेती हैं। सारी सड़क अत्यन्त सुन्दर ढग से बनाई सजाई गई है। विदेशी यात्रियो के लिये तो बहुत आकर्षण हैं। हमारा मन तो दिन भर इसकी सैर करते रहने को चाहता रहा। यहाँ दिन भर घूमने पर भी थकावट नहीं आई और न मन ऊबा।

रात्रि के समय भी यह कम आकर्षक नहीं है। यहा की रोशनी सारे ठाठ बाट को नये रूप म प्रकट कर इसकी अर्धरात्रि का नया सौंदर्य प्रदान करती है। अनेक यात्री रात्रि के समय का आनन्द लेते और इसकी छटा देखने आते हैं।



मानव-उर दीपक जलें सहित ये लिए कामना-ज्वाल

(रचयिता—श्री आदित्यपालसिंह आर्य)

वैदिकता स्नेह समेत सदा ये श्रद्धा-बाती डाल।
मानव उर दीपक जले सहित ये लिये कामना ज्वाल ॥

(१)

कि दयानन्द ऋषिराज।
तुमने दिया बुझा निज आज ॥
अपना जीवन सूर्य समान।
पाया जन्म मरण से त्राण ॥
तुम्हारा ही प्रकाश ऋषिराज।
करता हमे प्रकाशित आज ॥

(२)

कि ये दीपावलि दीप।
जलाये स्वामी-मृत्यु समीप।
देने आश्वासन ये काश।
तुमने किया जो वेद-प्रकाश ॥
उसकी नहीं बुझेगी ज्वाल।
रहेगी ये जलती चिरकाल ॥

(३)

कि कन्धों पर लेते हम भार।
बनेगा आर्य सभी ससार ॥
बनायेंगे हम विश्व समाज।
ऋषिवर का ही आर्यसमाज ॥
करेंगे विश्व का वैदिक धर्म।
मिटाके सभी ये प्रचलित धर्म ॥

(४)

कि मिटेंगे सभी क्लेश, विद्वेश।
बनेगे सुखी विश्व के देश ॥
अत्याचार, अभाव मिटेगा।
ज्ञान ज्योति का सूर्य उगेगा ॥
बनेगा विश्व शांति-साम्राज्य।
होगा तभी आर्य-साम्राज्य ॥

देता रहे सम्बल सदा प्रभु इतना, ये स्थिर रहें।
आवे भयकर वायु झोंके तदपि ये जलते रहें ॥



सौ वर्ष पश्चात् भी जहां के तहां

(ले०—कु० सुशीला पण्डित, सगरिया बडौदा)

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में महर्षि जी ने हमारे सामने प्रचलित अन्ध विश्वासो से होती हमारी सन्तानों की बरबादी तथा इन विश्वासो को हम क्यो न माने, इस पर बडा ही स्पष्ट प्रकाश डाला



कु० सुशीला पण्डित बडौदा

है। फिर भी वर्तमान युग के नर नारी कर्म, पुरुषार्थ और सत्य मार्ग छोड़कर प्रारब्ध, गुणों का प्रभाव तथा कुशकाओं को लेकर मत्र, जाप, व्रत, तत्र, भूत, प्रेत, डाकिनी आदि के भ्रमजालो मे फसकर, अपने आपको अधिक सुखी बनाना चाहते हैं।

अज्ञानी, अनपढ़ लोगो के लिए तो आज तक कहा जाता था कि वैद्यक शास्त्र, पदार्थ विद्या तथा विज्ञान आदि के पढ़ने, सुनने और विचारो से वे लोग रहित होते थे, अनभिज्ञ होते थे, अतः बीमारियो को भूत प्रेतादि का कारण बताते थे और योग्य उपचार के स्थान पर धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, स्वार्थी लोगो पर विश्वास करके अपनी और घर वालो की बरबादी करते थे, परन्तु आजकल तो पढे लिखे, अनुभवी, थोडा सा भी सकट या बीमारी आ गई कि दोनो तरफ ही अपने को फसा रखते हैं। एक तरफ अच्छे से अच्छा उपचार चल रहा होता है तो दूसरी तरफ देवी, देवताओ की मानता, ब्राह्मणो, ज्योतिषियों के चक्र मे या झाड फूक, मत्र देने वालो के पीछे अपना विश्वास भी खो बैठते हैं और धन भी लुटाते हैं। इतने से ही उनका पूरा नहीं पडता, एक ऐसी अशान्ति और वहम मन मे पैदा कर लेते हैं कि उसके चक्कर से छूटना तो अलग रहा, एक प्रकार का ऐसा लोभ हो जाता है कि प्रत्येक आने वाला व्यक्ति ही उनकी दृष्टि मे यदि थोडा सा भी उपरोक्त अन्धविश्वास प्रगट करने वाली बातो का अनुयायी निकला तो वे अपना भविष्य सुधारने वाला ही उसे समझ बैठते हैं। इन पढे लिखो का क्या कहा जावे? आँख से अन्ध और ज्ञान से विमुख हो उन्हे अपना उद्धारक वही लोभी, स्वार्थी दिखाई देता है। एकबार तो इस फन्द मे फसकर उनकी बुद्धि और ज्ञान पर पर्दा ही पड जाता है। समाचार पत्र, साप्ताहिक और मासिक भी वे वही खरीदते हैं, जिनमे उनका भविष्य लिखा हो।

ऐसे ज्योतिर्विदाभासो के कारण स्वस्थ मनुष्य भी अपना स्वास्थ्य गवा बैठता है। जन्म पत्री तथा कुण्डली उनके लिए जीवन दान बन जाती है, और वे ग्रहो के प्रताप के पीछे शान्तिपाठ, व्रत, दान, पूजा आदि मे चोरी चोरी से लग जाते हैं, अनेक रगो के पत्थर ही उनके उत्कर्ष और कल्याण के सूचक बन जाते हैं।

ज्योतिषी जी भी घर और आसामी देखकर गिरगिट की तरह रग बदलते किसने अनुभव न किये होगे? एक ही ग्रह अच्छे बताकर यदि व्यक्ति पर अपना अच्छा प्रभाव बता रहे हैं तो दूसरे बुरे ग्रह उनकी कुण्डली के दूसरे घरों में प्रविष्ठ हो गये हैं, बताना इनका सहज स्वाभाविक नित्य प्रति का धम है।

अनेको निर्बल दु खी मनवालो की बीमारी के कारण और मृत्यु के कारण ऐसे लोग बनते हुए





देखकर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। मृत्यु मुख या अपने सकटो से बचने के लिये मत्र का जप और ब्राह्मणो की शाति दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। धागा, डोरा और यन्त्र बनाकर ऐसे लोगों को लूटना यह एक इन लोगो की कूटनीति बनती जा रही है।

इनको और इनके पीछे पागल हुए ज्ञानी लोगो से पूछा जाय कि क्या कोई व्यक्ति और उसकी शक्ति, मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से कभी किसी को बचा सकते हैं ?

इसीलिये महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है कि इन मिथ्या बातो से बचने के लिए बाल्यावस्था ही में सतानों के हृदयो मे ऐसे सस्कार और उपदेश डाल दे कि जिससे स्वसतान किसी के भ्रमजाल मे पडके दु ख न पावे।

अपनी कमजोरियो और त्रुटियो को छिपाना, अपने आचरण और व्यवहार पर विचार न कर सकना, कर्तव्य विमुख होना और अधिक पुरुषार्थ न करना पड़े अतः घर बैठे धन भी मिले, प्रेम भी मिले और शान्ति भी मिले इसके स्वप्न लेना किसको बुरा लगता है। मानसिक आवेगो को सीधे मार्ग पर न ले जाकर यह क्षणिक सुख देने वाली विधि ने आज न पढे लिखो को छोड़ा है, न वैद्य डाक्टरो को और न ही आर्यों को।

हमारे राष्ट्र में बाल-मृत्यु सबसे अधिक होती है। शिशु पालन और बाल मनोविज्ञान का ज्ञान तो हमारे से कोसो दूर है, पर जो कुछ वैद्यकीय सहायता हमे प्राप्त होती है, वह भी अधिकाश में हमारे विश्वास से दूर होती जाती है। या तो ज्योतिषी ने ग्रह और नक्षत्र ही ऐसे बता दिये होते हैं कि बच्चा या तो बीमार ही रहेगा या मृत्यु हो जावेगी या फिर बच्चो को नजर लगना, छाया पड़नी, किसी मरे हुए सम्बन्धी की आत्मा भूत प्रेत बनकर खाने को घूमती है, चैन नहीं लेने देती। ऐसी ऐसी अनेको बातो ने माताओ को अधा बना रखा है। दवाई, इलाज के पीछे खर्च किये हुए सैकड़ो रुपये भी एक बार नहीं दिखाई देते, जबकि नजर उतारनो, धागे डोरे,मत्र और झाड़-फूक करवा के बीमारी को काबू में लाया गया इस प्रभाव के नीचे अन्य इलाज और उपचार तो गौण समझे जाते हैं। और प्रचार भी इसी बात का किया जाता है कि मिन्नत मानने या नजर उतारने पर ही बच्चे ने आँखें खोलीं या हसा। ऐसे उदाहरण प्रत्येक स्थान और वातावरण में दिखाई देते हैं।

यदि ऐसा ही सब बुद्धिशालियों को ठीक लगता हो तो आज स्वतत्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात् जिस देश में असख्य ऐसे व्यक्ति हो जो ग्रहो और नक्षत्रो के द्वारा भविष्य को सुधार सकते हैं वे वर्तमान अनेक आपत्तियो को सहज ही दूर कर देश का भारी उपकार कर सकते हैं। स्वय भी दर-दर न भटक अपनी शक्ति से अपने को लाभान्वित कर सकते हैं–पर ऐसा सोचने और समझने की हमारी बुद्धि नष्ट होती जा रही है।

हम महर्षि जी की इस पुण्य तिथि पर अपनी श्रद्धाजंलि अर्पित करने के पूर्व क्या आर्य परिवारो तथा शिक्षित भाई बहिनो से यह आशा कर सकते हैं कि वे ऐसी बातो और घटनाओं पर विचार करते समय बुद्धि को थोड़े से कष्ट पडने पर विचलित न होने दे और महर्षि के बताये सत्य मार्ग पर विश्वास करके चले।



जीवन

आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मन प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहु विषया तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

इस शरीर रूपी रथ में आत्मा रथी है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोडे हैं और विषय उनके विचरने के मार्ग हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता से आत्मा भोग करने वाला है। जो प्रज्ञा सपन्न होकर सकल्पवान मन से इन्द्रियों को सुमार्ग पर प्रेरित करता है, वही उस गन्तव्य तक पहुँचता है, जहाँ आत्मा चिरकाल तक अलौकिक आनन्द का अनुभव करता रहता है। —कठोपनिषद्







सार्वदेशिक धर्मार्य सभा का निर्वाचन

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा का तीन वर्ष के लिए निर्वाचन ता० ८-१० ६१ को दयानन्द भवन सार्वदेशिक सभा कार्यालय में सम्पन्न हुआ। जिसमे उत्तर-प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, बंगाल, बिहार, गुजरात आदि के ३०प्रतिष्ठित विद्वानो ने भाग लिया।

तीन वर्ष के लिए निर्वाचन इस प्रकार हुआ :—

१—प्रधान श्री प धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड (देवमुनि जी) ज्वालापुर।

२ उपप्रधान—श्री आचार्य बृहस्पति जी, देहरादून।

३ मंत्री—श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी 'व्यास' देहली।

४. उपमंत्री—श्री आचार्य राजेन्द्रनाथजी शास्त्री, देहली।

अन्तरंग सदस्य

५ श्री आचार्य प० वैद्यनाथ जी

६ श्री प० उदयवीर जी शास्त्री, गाजियाबाद।

७ श्री डा० हरिदत्त जी शास्त्री, एम०ए० पी० एच० डी०, कानपुर।

८ श्री प० भीमसेन जी शास्त्री, एम० ए०, देहली।

९ श्री आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री एम० ए०, रायबरेली।

१०. श्री प० जगदेव जी सिद्धान्तशास्त्री, पंजाब।

११. श्री स्वामी सत्यमुनि जी, पंजाब।

१२ श्रीमती प्रभावतीजी, गु०कांगड़ी

१३ श्री ठा०अमरसिंह जी, कलकत्ता

१४. श्री प.ओ३मप्रकाश जी, खतौली

१५. श्री आचार्य रामानन्दजी बिहार

—आचार्य विश्वश्रवाः





प्रान्तीय आर्यवीर दल की कार्य-समिति की बैठक

१६ अक्तूबर १९६१ को सीतापुर मे प्रान्तीय आर्य वीर दल की कार्य समिति की बैठक प्रान्तीय सचालक वेदप्रकाश आर्य की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुई। समिति ने सर्व सम्मति से सीतापुर के प्रसिद्ध आर्यवीर श्री रघुनाथसिंह आर्य, एम० ए० को प्रान्तीय सचिव के पद पर नियुक्त किया। एक निश्चय के अनुसार प्रान्त भर के मडलपतियो (जिला सचालको) की नियुक्ति पर विचार किया गया तथा तय किया गया उनकी सूची क्रमश 'आर्यमित्र' मे प्रकाशित की जावे। समिति ने दो प्रस्ताव भी पारित किये। एक प्रस्ताव के अनुसार मुस्लिम विश्व विद्यालय अलीगढ़ पर प्रतिवन्ध लगाने की भारत सरकार से माग की गई। दूसरे प्रस्ताव के द्वारा ईसाइयो की अराष्ट्रीय गतिविधियो से सजग रहने की चेतावनी दी गई। कार्य समिति ने 'द्वारा' के शिविर में पूर्ण सहयोग करने का निश्चय किया।

—अशोककुमार आर्य
का० मत्री कृते सचालक
आर्य वीरदल उ० प्रदेश

वैदिक धर्म का स्वरूप

[ले०—श्री साहू हरिप्रसाद जी, कोषाध्यक्ष सभा]



श्री साहू हरिप्रसाद आर्य कोषाध्यक्ष

संसार के मतान्ध लोगो ने जिसका नाम धर्म रक्खा है उसका नाम सम्प्रदाय है। धर्म की परिभाषा तो शास्त्र ने निम्न प्रकार से की है। "अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः" अर्थात् जिसके द्वारा संसार मे रहते हुए सुख प्राप्त हो और अन्त मे परम गति प्राप्त हो वह धर्म है।

संसार मे पापाचार और अत्याचार कराने वाले जो सम्प्रदाय हैं—वे धर्म नहीं। और सम्प्रदाय का अर्थ है स्वार्थी लोगो का चलाया हुआ मार्ग। जिस प्यारे वैदिक धर्म ने संसार के अबाध प्राणियो को मानव, आर्य, और ऋषि बनाया उसका सन्देश वेद वाक्य "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के आदर्शानुसार सुख शान्ति का स्थापित करने के लिए संसार के कोने-कोने मे पहुंचाया जाय। इसी वैदिक धर्म के अनुयायी भक्तो के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—

धर्मावतार महाराजा रामचन्द्र के राज्य शासन का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम राज्य नहि काहु ह व्यापा॥

इसी प्रकार राजा अश्वपति भी अपने शासन काल मे गर्व के साथ कहता है कि मेरे राज्य मे कोई अन्यायी, दुराचारी ज्वारी, शराबी और मूर्ख नहीं है। वह शान्ति का साम्राज्य था। महात्मा बुद्ध की महान् आत्मा ने राज्य के सुख एश्वर्य का छोडने का विचार इसी धर्म जिज्ञासा के कारण किया और केवल एक कमण्डलु लेकर ही संसार का कल्याण का मार्ग दिखाया। धर्म धुरीण श्री स्वामी शंकराचार्य जी और भगवान् कुमारिल ने इसी के लिए जीवन की आहुति लगाई। महर्षि दयानन्द ने इसी धर्म की दीक्षा से दीक्षित होकर हँस हँस कर जहर खाया और अपने जहर देने वाले का जेल जाने से रोका तथा अपने पास से धन देकर उसके प्राणों की रक्षा की। आह! संसार का स्वर्ग बनाने वाले पावन वैदिक धर्म तुमने ही तो महर्षि का इतना उदार और विशाल हृदय बना दिया कि जिसका दूसरा उदाहरण उपस्थित करने मे आज संसार असमर्थ है।

आर्यसमाज रामपुर का उत्सव आर्य समाज रामपुर का ६१ वॉ वार्षिकोत्सव रविवार १२ नवम्बर से १४ नवम्बर सन् ६१ तक मनाना निश्चित हुआ है।

तुम मानव नहीं देव हो, दयानन्द हो!

देदीप्यमान था मुखार मण्डल
तेज था प्रचण्ड ब्रह्मचर्य का
तप था उसका भी
पर नही दूर जनरव से आह्वान था विश्व का
उस दयानन्द की प्रशस्ति थी चहु ओर
गूंज थी दशो दिशा

× × ×

सुनकर नाम दयानन्द का
आई नारी लेने दया उसकी
रूप था अटूट पास उसके भी, मद था सौन्दर्य का
कामना थी पुत्र रत्न दयानन्द सा
लेकिन सुन उत्तर दयानन्द का
स्तब्ध मौन लौट चली
मन मे ही श्रद्धा का हार लिये—
कहा दयानन्द ने—
चाहिये पुत्र तुम्हे
जो सम दयानन्द हो
तव माता! समझ लो—
दयानन्द का ही तुम निज पुत्र।'
गदगद् हो फूट पडी माता
न मिली कही उसे ऐसी ममता
धन्य हो दयानन्द
तुम मानव नहीं देव हो, दयानन्द हो।

—मदनमोहन अजमेर

एक पंथ दो काज

आप अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा शादी ब्याह,

आदि के लिए चिंतित होते हैं.

राष्ट्रीय बचत योजना में धन लगाने से-

आपकी चिन्ता बहुत कुछ कम हो सकती है

राष्ट्रीय बचत योजना में-

व्यक्ति और समाज दोनों का हित निहित है।

अल्प स० ७

श्रेष्ठ हवन सामग्री

आप और हम सब आर्य [illegible] हैं [illegible] धार्मिक कृत्य [illegible] स्थान सर्वोपरि है। हमारा निरन्तर यह [illegible] सब प्रयुक्त होने वाले सभी पदार्थ शुद्ध [illegible] उपयोग हवन सामग्री तैयार करते रहे हैं। [illegible] प्राप्त अनुभवों के आधार पर हम [illegible] का प्रयास कर रहे हैं।

अतः श्रेष्ठ हवन - सामग्री और इसके अतिरिक्त धूप आदि सम्बन्धित आवश्यकताओं के लिये सदैव हमारी सेवायें प्राप्त कीजिए।

निर्माता—दी इण्डियन हर्ब्स रिसर्च एण्ड सप्लाई क. (रजि०)

लक्ष्मी निवास, शारदा नगर, सहारनपुर

बाबूराम भारती द्वारा भगवानदास न आर्य भास्कर प्रेस ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित

आर्यमित्र

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महा बलवान और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे।

— महर्षि दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश

...सूर्य उगा है उदय...

...आर्य देश में ईसा...



स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू का जन्म-दिवस



भारतीय स्वातन्त्र्य समर के महान सेनानी स्व० पंडित जवाहरलाल नेहरू जी का १४ नवम्बर को ७५ वाँ जन्म दिवस बड़े समारोह के साथ देश के कोने कोने में मनाया गया। भारत की स्वाधीनता के इतिहास में नेहरू का नाम सदा अमर रहेगा। नेहरू जी भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री थे और जिस दिन से देश स्वतन्त्र हुआ उस दिन से लेकर अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक वह प्रधान मन्त्री रहे। हम अपने स्वर्गीय प्रधान मन्त्री के लिए इस वर्षगाँठ के अवसर पर अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर अर्पित करते हैं

भारत केसरी ला० लाजपतराय का बलिदान-दिवस

१७ नवम्बर मंगलवार को भारत के महान स्व० नेता ला० लाजपतराय जी का देहावसान दिवस है। साइमन कमीशन के बहिष्कार करने के कारण पुलिस की लाठियों से गहरी चोट लग जाने के कारण आज के दिन उनका बलिदान हुआ था। ला० लाजपतराय की आर्यसमाज के मुख्य नेताओं में गणना की जाती है। आर्यसमाज को ला० लाजपतराय जी पर गर्व है। मिस मेयो की मदर इण्डिया नामक भ्रान्त पुस्तक का मुँहतोड़ उत्तर ला० लाजपतराय जी ने अनहैप्पी इण्डिया नामक पुस्तक द्वारा दिया था। हम श्रद्धेय स्व० नेता के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं।

आवश्यक सूचना

सभा के भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस की मशीन काम करने में आनाकानी करने लगी है कायाकल्प की दृष्टि से उसको खोला जा रहा है अतः आर्यमित्र का आगामी अङ्क हम प्रकाशित न कर सकेंगे। अब अगला अङ्क ६ दिसम्बर का प्रकाशित होगा।

—शिवदयालु मुख्योपमन्त्री

आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ

ओ३म्

साप्ताहिक आर्यमित्र — ईसाई मत समीक्षाङ्क

वर्ष ६६ | लखनऊ रविवार मार्गशीर्ष १ शक १८८६, मार्गशीर्ष कृ० ३ वि० २०२१
२२ नवम्बर सन १९६४ ई०, दयानन्दाब्द १४०, सृष्टि संवत १,९७,२९,४९,०६५ | अङ्क ४६

सम्पादकीय—

बम्बई विश्व कैथोलिक ईसाई सम्मेलन का विरोध क्यों

बम्बई के कैथोलिक परिषद के आयोजन प्रसंग ने आर्य समाज के कार्यक्रम को एक विशेष गति प्रदान की है। सार्वदेशिक सभा ने समस्त आर्यजगत और देशवासियों से अपील की है कि २९ नवम्बर को ईसाई प्रचार निरोध दिवस मनाया जाय।

इस दिवस की सामयिक उपयोगिता सुस्पष्ट है आर्य समाज पर यह दोषारोपण किया जाता है कि वह दूसरों को अपना प्रचार नहीं करने देता परन्तु यह बात तथ्य के सर्वथा विरुद्ध है। आर्यसमाज तो सत्य की खोज के लिए सबको अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता देता है और उसके लिए संघर्ष करता है। परन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यदि कोई बुद्धि के दरवाजों को बन्द रखने का प्रचार करता है तो आर्यसमाज उसको कैसे सहन कर सकता है। इस लिये आर्यसमाज ईसाई प्रचारकों से माँग करता है कि वे धर्म की बातों को सच्चाई और बुद्धि की कसौटी पर उतार कर दिखावें, इसी प्रकार आर्यसमाज की दूसरी आपत्ति धर्म परिवर्तन के लिये अनैतिक पद्धति के विषय में है। प्रलोभन द्वारा किसी के विचारों को खरीदना धर्म प्रचार नहीं है। पहले ईसाई धर्म प्रचार के लिये शक्ति का उपयोग किया जाता था। आज धन और अन्य प्रलोभनों का भारत की गरीब जनता की मजबूरियों का नाजायज फायदा उठाकर वे मानव सेवा नहीं कर रहे अपने धर्म को कलंकित कर रहे हैं। आर्यसमाज की तीसरी आपत्ति ईसाई मिशनरियों के प्रचार से भारतीय राष्ट्रीयता को पहुँचाने वाले आघात के सम्बन्ध में है। ईसाई धर्म को स्वीकार करने वाला यदि भारत राष्ट्र के प्रति अपनी निष्ठा खोकर पोप के आदेश को ही प्रमुखता देता है तो भारतीय राष्ट्र विपत्ति में फँस जायगा। अभी १ करोड़ ईसाई हैं जिनकी राष्ट्र भक्ति संदिग्ध है। नागालैण्ड, गोवा और केरल की पृथकतावादी मनोवृत्ति के पीछे ईसाई धर्म की घुट्टी ही काम कर रही है। इन सैद्धान्तिक विरोधों के आधार पर आर्यसमाज विश्व कैथोलिक परिषद् के बम्बई अधिवेशन का विरोध करता है। इस अधिवेशन द्वारा ईसाई धर्म की विशेषता की छाप भारतवासियों के हृदयों पर बठाने का दुष्प्रयत्न किया जा रहा है।

भारत धर्म-निरपेक्ष राज्य है भारत सरकार को इस पर किसी धर्म को विशेष प्रोत्साहन देने का अधिकार नहीं रह जाता परन्तु भारत सरकार ने इस सम्मेलन के आयोजन में उदारतापूर्ण सहयोग देकर एक विचित्र स्थिति अपनायी है। अब भारत सरकार दूसरे किसी धर्म या सम्प्रदाय के आयोजन में सरकारी सहयोग देने से कैसे पीछे हट सकेगी और सबको सहयोग देकर एक दूसरे के विरुद्ध आलोचना में सहायक बनेगी। पता नहीं प्रधान मन्त्री श्री शास्त्री जी के पास इसका क्या उत्तर है परन्तु यह निश्चित समझिये कि संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को आधार इसीलिये माना था कि सरकार पर उनकी धर्मों की जिम्मेवारी न रहे पर हो ठीक उल्टा रहा है कभी बुद्ध जयन्ती का नाटक है तो कभी ईसाई सम्मेलन। भारत सरकार कह सकती है कि हिन्दुओं के पर्वों समारोहों में भी सरकार पूर्ण सहयोग देती है। इस प्रकार के सहयोग की सुविधा सबको

समान मिले इसमें कोई आपत्ति नहीं है परन्तु कोई बताये कुम्भ मेले के लिये रियायती टिकट जारी करने की किसी ने मांग की या सरकार ने जारी किये, अपितु भीड़भाड़ कम करने दृष्टि से सरकार ऐसा करती रहती रही कि जनता सफर के प्रति उत्सुक न हो सफाई और सुरक्षा तो सरकार का दायित्व है इसमें धार्मिक सहायता का कोई सम्बन्ध नहीं। पता नहीं सरकार ने किस आधार पर ईसाई सम्मेलन के लिये विशेष सुविधा देने का निश्चय किया।

ईसाई सम्मेलन में पोप का आगमन यदि राजनैतिक है तो यह धर्मनिरपेक्ष नीति के विरुद्ध है और यदि धार्मिक है तो पोप को भारत के ईसाईकरण की मांग करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता क्योंकि ईसाईकरण की पद्धति अराष्ट्रीय और अनैतिक है।

आर्यसमाज ईसाई धर्म के अन्धविश्वास पूर्ण सिद्धान्तों के विरुद्ध ईसाई धर्म गुरु पोप और उनके अनुयायियों को शास्त्रार्थ के लिए सादर निमन्त्रित करता है परन्तु धन और दूसरे तरीकों से ईसाई प्रचार का विरोध करता रहेगा।

●

दैनिक जागरण का आर्यसमाज पर आरोप

कानपुर से प्रकाशित होने वाले दैनिक जागरण ने अपने १४ नवम्बर के अंक में कैथालिक ईसाई विश्व सम्मेलन के विरोध में चल रहे आर्यसमाज के अभियान को धार्मिक "असहिष्णुता एवं संकीर्णता का द्योतक बतलाया है।"

हम समझते हैं कि रोमन कैथोलिक चर्च, जिसके महापुरोहित श्री पोप महोदय हैं, के स्वरूप एवं उसकी गतिविधियों से अनभिज्ञ होने के कारण तथा गत चार शताब्दियों में गोआ क्षेत्रों में कैथोलिक पादरियों द्वारा जो अमानुषिक अत्याचार किये गये हैं और सारे भारतवर्ष में हरिजनों, आदिवासियों आदि को ईसाई बनाने में जिस छल, कपट भय एवं लोभ आदि साधनों का खुलकर प्रयोग किया गया है उनके प्रति आंख मूंद लेने और धर्मनिरपेक्षता के यथार्थ रूप को न समझने के कारण ही जागरण में यह लेख छपा है। इस लेख के उत्तर में सभा के माननीय उपप्रधान श्री विद्याधर जी का लेख पाठक आगामी अंक में पढ़ेंगे।

—सम्पादक

चीन में बौद्ध धर्म की जड़ें उखाड़ने की चीन की कुत्सित चेष्टा

पता चला है कि चीन सरकार ने सारनाथ (भारत) में होने वाले ७ वें विश्व बौद्ध सम्मेलन में अपने यहां के प्रतिनिधि सम्मिलित होने से मना कर दिया।

चीन में बौद्ध धर्म के दमन का नूतन प्रमाण है। विश्वस्तसूत्र से पता चला है कि चीन में अधिकांश बौद्ध विहारों को कारखानों फौजी बैरिकों एवं राजनीतिक सभा भवनों में परिवर्तित कर दिया गया है। साथ ही चीनी नेताओं द्वारा दम भरा जाता है कि वह धर्म का पूरा आदर करते हैं।

चीन सरकार ने एक कठपुतली बौद्ध संघ बनाया हुआ है जिसका एकमात्र काम चीनी नेताओं की हां में हां मिलाना है।

सारनाथ सम्मेलन में प्रतिनिधि भेजने से चीन को इसका भय है कि कहीं उनकी दमन नीति का दूसरे देशों के बौद्ध प्रतिनिधियों के सामने उनकी दमन नीति का पर्दा न उघड़ जाय।

सरकारी काम-काज में हिन्दी की उपेक्षा कब तक ?

आगामी गणतन्त्र दिवस के समय से सरकारी कामकाज में राष्ट्र भाषा हिन्दी के पूर्णतया प्रयोग करने की घोषणा की जा चुकी है। हिन्दी भाषा भाषी सब कार्यों में तो हिन्दी का ही प्रयोग किया जायेगा ऐसा आश्वासन भी दिया गया है। किन्तु हम देखते हैं कि इस दिशा में जो पग उठाये जा रहे हैं वह बहुत मन्द हैं। आश्चर्य का विषय है कि कई वर्ष से सन १९६५ से हिन्दी राष्ट्र की व्यावहारिक भाषा होगी यह निश्चय किया जा चुका है और अहिन्दी भाषा-भाषी सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने का आयोजन किया जा रहा है किन्तु अभी तक ६ लाख कर्मचारियों में से अभी तक केवल १ लाख २६ सहस्र को ही हिन्दी सिखाई जा सकी है और हिन्दी की अन्तिम परीक्षा तो केवल ३५२६१ ने ही उत्तीर्ण की है तथा टंकन व शीघ्र लिपि में क्रमशः ३३९६ तथा ५६० कर्मचारी ही पास हुए हैं।

(न० भा० टा० १३-१४ नवम्बर)

अराष्ट्रीय ईसाई मिशनरी प्रचार निरोध

बम्बई में कैथोलिक विश्व परिषद् के आयोजन ने आर्यसमाज के अराष्ट्रिय ईसाई प्रचार निरोध आन्दोलन की वास्तविकता सिद्ध कर दी है। ऋषि दयानन्द ने अपने युग में विदेशी धर्मों द्वारा भारतीय राष्ट्रियता पर होने वाले आक्रमणों का सामना किया था, आर्यसमाज सदैव राष्ट्र को इस खतरे से सावधान करता रहा, सरकार के कानों में भी आयसमाज ने अपने विचार गुंजाये पर देश की उदासीन जनता और धर्मनिरपेक्षता के नाम पर राष्ट्रघातक वर्गों को सन्तुष्ट करने वाली सरकार सचेष्ट न हुई बम्बई की कैथोलिक विश्व परिषद ने खतरे को बिलकुल हमारे सामने लाकर खड़ा कर दिया है।

आयसमाज धर्म प्रचार की स्वतंत्रता का समर्थक है, धर्म परिवर्तन एक वैचारिक परिवतन होता है लेकिन यदि उस परिवर्तन के पीछे विवशता या प्रलोभन छिपे हों तो वह धर्म परिवर्तन नहीं शोषण और स्व य सा ना ही होगी। भारत की निर्धन जनता को ब्रिटिश राज्य में ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रलोभन देकर भारत विरोधी बनाया गया और आज स्वतन्त्र भारत मे भी मिशनरी देश की गरीबी और खराब परिस्थितियों का लाभ उठाकर भारतवासियों को ईसाई बनाकर भारत विरोधी बन रहे हैं। आर्यसमाज मिशनरियो की इस नीति का घोर विरोधी है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे ईसाई धर्म की जो समीक्षा प्रस्तुत की थी वो तर्क दृष्टि से आज तक ईसाई धर्म के सरक्षक उसका उत्तर नहीं दे सके हैं। आज भी आर्यसमाज ईसाई धर्म गुरुओ से उस समीक्षा का उत्तर चाहता है। क्या ईसाइ ों के धमगुरु वैचारिक एव बौद्धिक दृष्टि से आर्यसमाज के चेलेंज को स्वीकार करेंगे? यदि ऐसा हो सके तो आयसमाज उसका स्वागत करेगा परन्तु यदि धर्म को पोप के वाक्यो तक ही सीमित रखना मजूर है तो आयसमाज ऐसे धम प्रचार का सदैव विरोध करेगा। क्योंकि आज के बौद्धिक युग मे पोप और उनका गुरुडम विज्ञान, विवेक और अनुसधान भावना के सवथा विपरीत है।

राष्ट्रीय विचारधारा के सरक्षक रूप मे आर्यसमाज ने अपना उत्तरदायित्व अनुभव करते हुए बम्बई कैथोलिक विश्वपरिषद् के अवसर पर देशव्यापी अभियान आरम्भ कर देशवासियों को वस्तुस्थिति समझाने का निश्चय किया है।

आर्य जगत् की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा ने २९ दिसम्बर को ईसाई प्रचार निरोध दिवस मनाने की देशवासियों से अपील की है और आर्यसमाजों को प्रेरणा की गई है कि वे सार्वजनिक सभाओ का आयोजन तथा साहित्य वितरण करें।

सावदेशिक सभा के मन्त्री श्री ला० रामगोपाल जी ने ईसाई सम्मेलन के दुष्परिणामों की ओर देश वासियों का ध्यान आकृष्ट करते हुये बताया कि ईसाई प्रचार निरोध दिवस के अवसर पर सार्वजनिक सभाओं में माग की जायगी कि—

१—सरकार विश्व ईसाई सम्मेलन को किसी प्रकार का सहयोग न दे।

२—सम्मेलन का कार्यक्रम आकाशवाणी द्वारा प्रसारित न किया जाय।

३—पोप द्वारा उपहार रूप में २६ लाख रुपये की जो सामग्री दी जा रही है उसे सीधे प्रधान मन्त्री सहायता कोष मे दे दिया जाय।

४—गोवा मे गिरजाघरो के जीर्णोद्धार पर सरकारी व्यय न किया जाय।

५—ईसाई सम्मेलन के अवसर पर विदेशी शराब तथा गोमांस के विशेष प्रबन्ध की व्यवस्था न की जाय।

६—विदेशों से आने वाले प्रतिनिधियों को चुगी मे कोई छूट न दी जाय।

७—बम्बई ईसाई सम्मेलन के लिये रेल किराये में रियायती सुविधा न दी जाय।

सावदेशिक सभा के प्रस्ताव मे बताया गया है कि ईसाई सम्मेलन के दुष्परिणाम स्वरूप भारत मे ईसाई मिशन और अधिक सक्रिय हो जायगा जो पहले से ही भारत की अखण्डता और राष्ट्रीयता के लिये बड़ा खतरा बना हुआ है। इसलिए आर्यसमाज को देशव्यापी आन्दोलन का निश्चय करना पड़ा है। सम्मेलन के अवसर पर विशाल पैमाने पर प्रचार का प्रबन्ध किया जा रहा है, साहित्य वितरण के साथ साथ आयसमाज के प्रमुख वक्ता शास्त्रार्थ महारथी प्रचारक एव कायकर्ता बम्बई मे उपस्थित रहेंगे। ●

श्री नरेन्द्र जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण का—

भारत के प्रधान मंत्री के नाम खुला-पत्र

सेवा में, माननीय प्रधान मन्त्री जी
भारत सरकार, सादर नमस्ते !

२८ नवम्बर ६४ ई० को बम्बई नगर में विश्वव्यापी ईसाई महा सम्मेलन की ३८ वीं बैठक होने जा रही है। इस ईसाई कांग्रेस मे एक लाख कैथोलिक पादरियों के भाग लेने के साथ-साथ आदरणीय पोप महोदय का इसमे भाग लेने के लिए भारत पधारना निश्चित हो गया है। इस सम्बन्ध में बम्बई नगर मे दिया गया आपका वक्तव्य पढ़ा हृदय को बड़ा आघात पहुंचा।

इस बात को आपकी सेवा में स्पष्ट करने की जो धृष्टता कर रहा हूं आशा है आप उसके लिए क्षमा करेंगे। कदापि मेरा यह दृष्टिकोण नहीं कि बम्बई मे आयोजित ईसाई सम्मेलन न हो। क्योंकि हमारे देश मे ईसाइयों को अपने धर्म के प्रचार की स्वतन्त्रता उसी प्रकार दी जानी चाहिये जिस प्रकार आर्यसमाज या अन्य धर्म वालों को अपने प्रचार की स्वतन्त्रता सारे संसार मे मिली है। परन्तु यह सम्मेलन भारत मे उस समय हो रहा है जबकि गोवा तथा नागालैंड आदि की जटिल समस्यायें अभी पूर्णरूप से सुलझ नहीं पायी हैं। यह बात आपको विदित ही है कि एक समय से ईसाई मिशनरियो ने भारत की गरीबी का अनुचित लाभ उठाकर अशिक्षित लोगों को धन का प्रलोभन देकर एवं अपने शासनकाल मे उन्हें ईसाई धर्म में शामिल करने के लिये किस तरह का कार्य किया था। वस्तुतः यह प्रवृत्ति निकृष्टतम भ्रष्टाचार है। मेरे इस कथन की पुष्टि "नियोगी कमीशन" की रिपोर्ट से और अधिक हो जाती है।

बम्बई नगर मे आपने जो वक्तव्य दिया है, वह भारत सरकार के सम्प्रदाय निरपेक्ष नीति के सर्वथा विपरीत है ऐसा मैं अनुभव कर रहा हूं। यह सम्मेलन पूर्णतया धार्मिक है और इसका उद्देश्य समस्त एशियाखण्ड मे इस सम्मेलन द्वारा ईसाई मत के प्रचार की योजना बनाना है। इस प्रकार के सम्प्रदायिक सम्मेलन मे सरकार की ओर से आयोजन का प्रबन्ध करना व सारे सरकारी स्कूल, कालेजों (चाहे वे ईसाई मिशनरियों द्वारा ही क्यों न चलाये जा रहे हों) को बन्द करने का आदेश देना किसी भी रूप में उचित नहीं है। आदरणीय पोप महोदय का आगमन भारत यात्रा की दृष्टि से न होकर मात्र ईसाई कांग्रेस में शामिल होना है। इस अवसर पर सरकार तथा सार्वजनिक रूप से उनका प्रबन्ध व स्वागत करना न केवल न्यायविरुद्ध है प्रत्युत यह भारत सरकार की नीति के सर्वथा विपरीत है। भारत सरकार को समय रहते अपनी नीति के प्रतिकूल किये जाने वाले कार्य की ओर ध्यान आकर्षित कराये जाने पर भी यदि वह इस ओर तनिक ध्यान न देकर उलटे आलोचकों अथवा सलाहकारों पर किसी प्रकार का आरोप लगाये और अपनी प्रशासनिक कमजोरी को उदारता व बन्धुत्व की भावना के आड़ मे छुपाने लगे, मैं समझता हूं कि यह प्रवृत्ति हमारी सरकार के लिये अशोभनीय है।

एक बार पुनः आपको मैं स्पष्ट कर दूं कि यदि आदरणीय पोप महोदय भारत सरकार के निमन्त्रण पर भारत पधार रहे हैं तो उनका इस प्रकार से स्वागत किया जाना हमारे लिये आपत्ति का कोई कारण नहीं है। परन्तु वे भारत मे निवास करने वाले ईसाइयों की प्रार्थना पर ईसाई कांग्रेस मे भाग लेने के लिये आ रहे हैं। इन्हीं सब कारणों को लक्ष्य मे रखकर आर्यसमाज इस दिशा में सरकार द्वारा अपनाये जाने वाली नीति की कड़ी निन्दा करता है जो सर्वथा वांछनीय है।

अन्त मे आप से पुनः अनुरोध करूंगा कि आप जैसे प्रभावशाली दूरदर्शी व उदारचेता नेता के रहते हुए ईसाई मिशनरियों की यह कूटनीतिक चाल हमारे देश में किसी प्रकार से सफल नहीं हो पायेगी। हमें आप पर पूर्ण विश्वास एवं गर्व है कि भारत की आत्मा को किसी तरह की चोट पहुंचे बिना हमारे देश में धार्मिकता की रक्षा होगी और भारतीय जनता की भावनाओं का पूर्ण आदर होगा। आशा ही नहीं मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप धर्म परायण भारतीय जनता के निवेदन पर अवश्य ध्यान देंगे और उचित कदम उठायेंगे।

—नरेन्द्र, प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण



सीमा के आक्रान्ताओं की अपेक्षा भीतर के आक्रमण से सावधान रहने की अधिक आवश्यकता-प्रकाशवीर शास्त्री

देहरादून ४ नवम्बर । आर्यसमाज देहरादून के ८ व वार्षिकोत्सव पर भाषण करते हुये संसत्सदस्य श्री प्रकाश वीर शास्त्री ने बम्बई में होने जा रहे विश्व ईसाई सम्मेलन का विशेष रूप से उल्लेख किया । आपने नागालैंड केरल झाडखण्ड आदि की समस्याओं का कारण ईसाई पादरियों को बताया । श्री शास्त्री ने सरकार को चेतावनी दी कि इन भीतरी आक्रान्ताओं से सावधान रहने की अधिक आवश्यकता है ।

विचित्र धर्म-निरपेक्षता

कांग्रेस सरकार की धर्म निरपेक्षता का उपहास करते हुये आपने कहा कि बुद्ध जयन्ती के अवसर पर इस धर्म निरपेक्ष' सरकार ने १।। करोड़ रुपया सरकारी कोष से व्यय किया । अब बम्बई से गोआ तक के सब गिरजों की मरम्मत सरकार अपने व्यय पर करा रही है और इस सम्मेलन के लिये लगभग १ करोड़ रुपया सरकारी कोष से व्यय किया जा रहा है । ऐसी विचित्र धर्म निरपेक्षता कदाचित किसी अन्य देश मे नहीं मिल सकती । फिर ईसाई पादरियों का यह कार्य कोई धार्मिक आन्दोलन नहीं इसके पीछे छिपी राजनैतिक आकांक्षा यह है कि भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों—नागालैंड मणिपुर त्रिपुरा छोटा नागपुर केरल आदि—मे भारत-विरोधी तत्वों को बढ़ाया जाए । इन शब्दों के साथ श्री शास्त्री ने यह भी बताया कि लाहौल और स्पिती के क्षेत्र मे सन १९५१ में जहां एक ही मुसलमान था वहां १९६१ की जनगणना मे १२८१ मुसलमान वहां पाए गये । असम में अबतक ७५ से घुस आये पाकिस्तानियों को हमारी सरकार अभी तक नहीं निकाल पाई । आपने इस बात की आशंका प्रकट की कि अब की बार चीन भारत के विरुद्ध पाकिस्तान से शरारत करायेगा ।

शक्ति सतुलन के लिये अणुबम आवश्यक

पं० प्रकाशवीर शास्त्री ने आगे चलकर कहा कि अणु पर क्षण बन्दी का नारा उसी राष्ट्र का सफल हो सकता है जिसके पास अणबम है । शक्ति सन्तुलन के लिए यह अनिवार्य है कि भारत भी अणुबम बनाए ।

श्री लंका के भारत वंशीयों की समस्या

आर्य समाजी नेता ने सरकार पर आरोप लगाया कि श्री लंका के ८।। लाख भारत वंशीय लोगों को वापस लेना स्वीकार करके उनके दुःख दूर करने के स्थान पर मार्ग खोल दिया है कि वे आगे भी भारत वंशीय लोगों को निकाल दें । भाषण के अन्त में आपने कहा कि जनता को त्याग के लिए तैयार करने हेतु सरकार को स्वयं ही उसका उदाहरण उपस्थित करना चाहिये । चीनी आक्रमण के समय जनता में उत्पन्न हुई त्याग भावना को सरकार ने स्वर्ण नियंत्रण जैसे मूर्खतापूर्ण पग उठाकर समाप्त कर दिया ।

—स्वतंत्र वाणी

ईसाई सम्मेलन विरोध

कैथोलिक ईसाई सम्मेलन के सम्बन्ध में निम्न आर्य समाजों से हमारे पास विरोध में पारित किये गये प्रस्ताव आये हैं —मेरठ सदर, पुरानी मण्डी सहारनपुर रेल बाजार कानपुर पुरानी गोदाम, गया देहरादून आर्य उप प्रतिनिधि सभा गाजीपुर तथा सम्मेलन के विरोध में अनेक वक्तव्य भी आये हैं किंतु स्थानाभाव के कारण हम उनका सार मात्र ही प्रकाशित कर रहे हैं —

श्री पं० रघुवीर सिंह शास्त्री

मन्त्री आ० प्र० सभा पंजाब

भारत प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी के ईसाई सम्मेलन मे पधारने की स्वीकृति का आधार श्री कार्डिनल ग्रेशियस जी के साथ उनकी हुई ताजी भेंट ही प्रतीत होती है जिसमें उन्हें सरकारी सहयोग की दृष्टि से विशेष योजना की गई होगी ।

श्री रामदास जी प्रधान

आ० मा० दयानन्द मालवाहन मिशन होशियारपुर

बम्बई के ईसाई सम्मेलन का मूल लक्ष्य निश्चित रूप से राजनैतिक अभिसन्धि है उसका राष्ट्र के कोने-कोने मे प्रबल विरोध किया जाना चाहिये ।

श्री दयास्वरूप जी

प्रधान सदस्य सार्वदेशिक सभा

यह ईसाई सम्मेलन भारी बलिदानों द्वारा उपलब्ध देश की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करने वाला है ।

कैथालिक पादरियों का भीषण षड्यन्त्र

भारत भूमि पर कैथालिक पादरियों के अन्तर्राष्ट्रीय महा सम्मेलन करने की अनुमति देना और उसको सफल बनाने की दृष्टि से हर प्रकार की सुविधा देना भारत में रहने वाले ६० लाख कैथालिक पन्थी देशी ईसाइयों को उद्दण्ड व उच्छृंखल बनाना है और उनकी राष्ट्र-द्रोही भावनाओं और गतिविधियों को उत्तेजित करना है।

सरकार की अदूरदर्शिता का परिणाम भारत में रहने वाले ७००० विदेशी कैथालिक मिशनरियों की कलुषित हरकतों को बढ़ावा देना और पिछड़ी हुई जातियों तथा वन्य जातियों को सामूहिक रूप से हिन्दू धर्म से पतित करने के षड्यन्त्रों को पल्लवित करना होगा।

राष्ट्रीयता एवं संस्कृति संरक्षण की दृष्टि से विदेशी मिशनों एवं मिशनरियों का, स्वतन्त्र होते ही भारत से लोप करना हमारी राष्ट्रीय सरकार के लिए नितान्त आवश्यक था जैसा कि शत्रु देश चीन ने अपनी स्वतन्त्रता के प्रथम वर्ष में ही किया और अपने देश से २९००० विदेशी कैथालिक पादरियों को बाहर खदेड़ दिया। किन्तु हमारी भोली सरकार ने इनको निकालने के स्थान पर देश में प्रश्रय दिया। इनकी कलुषित शिक्षा एवं चिकित्सा सम्बन्धी गतिविधियों में सरकार द्वारा पूर्ण आर्थिक सहयोग तक प्रदान किया गया।

इस नासमझी का ही यह स्पष्ट परिणाम है कि आज भारत में कैथालिक पादरियों की संख्या पहले से दुगुनी से भी अधिक हो गई है। तथा शिक्षक एवं चिकित्सकों के रूप में आने वाले पादरियों की संख्या को जोड़ा जाय तो इनकी संख्या पहले से सात गुनी हो गई है। इन विदेशी पादरियों ने भारत के कोने कोने में स्थापित अपने गढ़ों (पाकेटस) को दृढ़ करना आरम्भ कर दिया है तथा सामूहिक धर्म परिवर्तन के षड्यन्त्र चारों ओर रचे जा रहे हैं।

हमारी सरकार की कृपा से यह सब कुछ कुचक्र तो देश में चल ही रहा था कि भोली सरकार यह एक और पग भूल कर बैठी है कि कैथालिक पादरियों के विश्व-सम्मेलन को भारत में रखने की अनुमति प्रदान कर दी।

संसार के किसी साम्यवादी अथवा इस्लामिक राष्ट्र में तो इस अराष्ट्रीय रोमन कैथालिक मिशन को पांव धरने की भी अनुमति नहीं दी जाती फिर ऐसे सम्मेलन के वहाँ किये जाने की तो बात ही क्या ?

प्रोटस्टेन्ट ईसाई राष्ट्रों यथा अमेरिका, इंगलैंड, फ्रान्स, जर्मनी, आस्ट्रेलिया नार्वे, स्वीडन आदि ने भी पोप के सम्मेलन करने सम्बन्धी प्रस्ताव को ठुकरा दिया। रह गये कुछ हिन्दू और बौद्ध राष्ट्र जिनको फंदे में फंसाया जा सकता है। इनमें सबसे बड़ा राष्ट्र भारत ही है। जिस पर पोप ने विशेष डोरे डाले और न जाने क्या क्या सब्जबाग हमारी सरकार को दिखाए कि उसने न केवल बम्बई में सम्मेलन करने की अनुमति ही दी, अपितु इस सम्मेलन को हर प्रकार की सुविधा सहयोग प्रदान करना भी आरम्भ कर दिया। लाखों रुपया राष्ट्रीय कोष से इन सुविधाओं पर व्यय किया जा चुका है और पोप के राजकीय स्वागत की भी तयारियां हो रही हैं।

हम स्पष्ट शब्दों में सरकार की इन गतिविधियों की भर्त्सना करते हैं और चेतावनी देना चाहते हैं कि इस सम्मेलन का जो प्रतिकूल प्रभाव देश की सुरक्षा, राष्ट्रीयता एवं भारत की सांस्कृतिक सुदृढ़ता पर पड़ेगा उसका एक-मात्र उत्तरदायित्व भारत सरकार पर होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय कैथालिक महा सम्मेलन के स्थानीय संयोजकों ने अपनी अवांछनीय मनोवृत्ति का स्पष्ट परिचय अपने बुलेटिन ११-६ में निम्न प्रकार दिया है।

हमारा लक्ष्य है कि प्रभु ईसा का साम्राज्य हमारे (भारत) देश में तथा संसार भर में स्थापित हो। हम ईसा की सेना के सैनिक हैं। हम केवल अपने तक ही ईसा की जानकारी, ईसा के प्रति प्रेम और उसके प्रति भक्ति-भावनाओं से सन्तुष्ट नहीं। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि संसार के कोने-कोने में ईसा की जानकारी, उसके प्रति हार्दिक प्रेम और उसके प्रति भक्ति की भावनाएं जागृत हों। हमारे इस अभियान (विश्व सम्मेलन) का उद्देश्य विजय (भारत पर) प्राप्त करना है। यह कोष

(शेष पृष्ठ ९ पर)



रोमन कैथालिक चर्च का आन्तरिक चित्र

पोप साम्राज्य के विस्तार में सर्वाधिक हाथ दक्षिण आयरलैंड के निवासियों का है। संसार में जितने भी कैथालिक मिशनरी काम कर रहे हैं उनमें ९० प्रतिशत दक्षिण आयरलैंड के हैं अथवा वह लोग हैं जो आयरलैंड से अमरीका आदि देशों में भाग भाग कर जा बसे हैं। पोप की महापरिषद् के सदस्य जिनको कार्डिनल नाम से पुकारा जाता है अधिकतर आयरिश वंश के ही हैं। अमेरिका तथा अंग्रेजी भाषा भाषी सब यूरोपीय राष्ट्रों के कार्डिनल भी प्रायः आयरिश ही हैं।

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या आयरिश लोग विशेष रूप से ईसा के भक्त हैं अथवा उनमें त्याग की भावना विशेष है? उत्तर में प्रमाणस्वरूप से यह कहा जा सकता है कि न तो उनमें ईसा के प्रति विशेष भक्ति है और न त्याग की भावना ही। रोमन कैथालिक चर्च ने और उसके आदेश पर चलने वाली दक्षिण आयरलैंड की कैथालिक सरकार ने आयरलैंड निवासी युवक युवतियों की उन्नति के सब मार्गों को प्रायः जानबूझ कर अवरुद्ध किया हुआ है। उन के लिए आयरलैंड में उच्च शिक्षणालय भी नाममात्र को ही हैं और जो हैं उनमें दर्शन, तर्कशास्त्र, विज्ञान आदि की शिक्षा का अभाव है। चर्च द्वारा नियंत्रित इन शिक्षणालयों का एक मात्र उद्देश्य छात्र छात्राओं में कैथालिक पंथ की बुद्धि एवं तर्कशून्य मान्यताओं अन्धविश्वासों के प्रति आस्था उत्पन्न करना है। इन शिक्षणालयों में इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है कि छात्रों के अन्दर मतान्धता का अभ्युदय हो और बुद्धिवाद की किसी भी प्रकार की हवा उनको न लगने पाए।

आयरिश युवक युवतियों के विवाह सम्बन्ध भी चर्च की अनुमति से ही हो सकते हैं और चर्च जानबूझ कर उन को बड़ी आयु होने तक विवाह की आज्ञा नहीं देता। जिस का भयंकर परिणाम उनमें यौन सम्बन्धी घृणित रोगों का बहुतायत के साथ होना है।

आयरलैंड के अकेले एक अस्पताल में प्रतिवर्ष आयरिश कुमारियाएँ २१० जारज सन्तान उत्पन्न करती हैं और समूचे देश के अस्पतालों के इस प्रकार की जारज सन्तान की उत्पत्ति प्रति वर्ष ५००० के लगभग है।

भोग विलासिता तथा अनाचार का जीवन इन आयरिश युवतियों तथा युवकों को श्रम के कार्यों के सर्वथा अयोग्य बना देता है जिससे यह ग्रामों को त्यागकर नगरों की ओर अति वेग के साथ भाग रहे हैं। इनमें किसी भी प्रकार की वैज्ञानिक व औद्योगिक शिक्षा न होने के कारण यह चर्चों के द्वारों पर प्रार्थना-पत्र लेकर पहुंच जाते और प्रचारक प्रचारिका बनने की याचना करते हैं। कैथालिक चर्च इनको अल्प वेतन देकर अपने शिविरों में भर्ती कर लेने और कुछ समय अपने मन्तव्यों की शिक्षा देकर मिशनरी और नर्स बनाकर भारत, अफ्रीका तथा एशिया के बौद्ध देशों में भेज देते हैं। इंगलैण्ड आदि में उत्पन्न जारज आयरिश नवयुवकों और नवयुवतियों के लिये तो केवल एक मात्र जीविका का आधार मिशनरी व नर्स बनना ही है।

हम अपने उपर्युक्त कथन की पुष्टि में कुछ भिन्न प्रमाण प्रस्तुत करते हैं —

१—कर्क के बिशप कारनेलियस लूसी लिखते हैं—

Rural Ireland is stricken & dying & the will to marry and live on land is almost gone

अर्थात आयरलैण्ड का ग्राम्य क्षेत्र अत्यन्त पीड़ित और मरणासन्न है। विवाह करने की उनकी भावनायें नष्टप्राय हो चली हैं तथा अपने देश में रहने की उनकी आकांक्षा सर्वथा लुप्त हो रही है।

२—रफेण्डो क्लेयर लिखते हैं कि—

Non marrying or late marrying force the young women to forsake the country side

अर्थात अविवाहित रहने अथवा बहुत देर से विवाह करने की अनुमति मिलने के कारण नवयुवतियां ग्राम्य क्षेत्रों से पलायन कर रही हैं।

३—आयरलैण्ड के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मूर्धन्य नेता श्री कुल्फ्रोन महोदय इन आयरिश कैथालिक मिशनरियों के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—

These are men of low birth, low-feelings, low habits & no education

जान माइकेल का भयङ्कर विस्फोट

जान माइकेल आयरिश युवकों का महान नेता था जिसको कटुसत्य के प्रकट करने के अपराध में वहां की कैथोलिक सरकार ने देश निकाला दे दिया था और जो अमेरिका के न्यूयार्क नगर में जाकर बस गया था। वहां से उसने सिटिजन नामक साप्ताहिक-पत्र में कैथोलिकों की क्रूर अमानुषिक प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए पोप को ध्यान में रख के मन्त्र-प में लिखा है कि—

It is the germ of national perdition unfolded in a hot-bed of hell and transplanted by the band of the devil into this upper world for the ruin of human happiness

अर्थात यह पाप का गड्ढा राष्ट्रीयता का नाश करने वाला अथवा आयरिश जाति का विनष्ट करने वाला कीटाणु है जिसको नरक की धधकती अग्नि से विकसित हुआ है और शैतान के हाथों से इस उच्चतर भूमि में अर्थात स्वर्गभूमि में मानवों की सुख शान्ति के विनाश के हेतु इसको आरोपित किया गया है।

जान माइकेल की इस स्पष्टोक्ति पर किसी भी प्रकार की टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा उसकी प्राणप्यारी मातृभूमि आयरलैण्ड के निवासियों का जो क्रमिक विनाश किया जा रहा है उसका नग्न चित्र उसके मानस नेत्रों के सामने घूम रहा है। रोमन कैथोलिक चर्च राष्ट्र धर्म का स्पष्ट विरोधी है और राष्ट्रीयता को मिटाकर वह संसार में जो साम्राज्यशाही का स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता है जान माइकेल उससे अत्यन्त क्षुब्ध है। यह संसार जो स्वर्गधाम है उसका कैथोलिक चर्च नरक बनाना चाहता है और सुख-शान्ति सरसाने वाले परमात्मा के दिव्य साम्राज्य में शैतान का शासन स्थापित करना चाहता है ऐसी जान माइकेल की अन्तरात्मा की आवाज है। ईश्वर कृपा करें कि कैथोलिकों के मस्तिष्क पर से अविवेक, मतान्धता और अन्धविश्वासों का पर्दा उठ जावे और मानव को पशु बनाने सम्बन्धी अपनी कुत्सित गतिविधि को त्यागकर संसार में और अधिक पाप के भागी न बनें। —शिव'

★

अर्थात यह आयरिश प्रचारक प्रायः जाग्ज हैं। इनकी भावनायें और विचार संकुचित और तुच्छ हैं। इनके आचार निकृष्ट हैं तथा शिक्षा का तो इनमें अभाव ही रहता है।

४—आयरलैण्ड के प्रसिद्ध डाक्टर तो लेखकों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का मत था डलनशाड ने अपनी पुस्तक "दी आयरिश एण्ड कैथोलिक पावर" में निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

Irish men particularly from adolescence to marriage masturbate very frequently

अर्थात आयरिश जन कौमार्यावस्था से विवाह होने से पूर्व तक हस्तमैथुन अधिकतर करते रहते हैं।

५—डलनशाड अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३४ पर लिखता है कि—

Bulk of people in Ireland are enslaved spiritually mentally and philosophically by those who control their organisation

अर्थात् आयरलण्ड की अधिकतर जनता उनके संगठन के नियामकों अर्थात रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा आध्यात्मिक मानसिक एवं बौद्धिक अथवा दार्शनिक दृष्टि से दास बना दी गई है।

पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जबकि संसार के प्रत्येक देश की जनसंख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है, यह अभागा दक्षिण आयरलैण्ड ही रोमन कैथोलिक चर्च की कृपा से ऐसा बना दिया गया है कि जिसकी जन संख्या उत्तरोत्तर घटती पर है और इस घटनी का यदि यह ही क्रम चालू रहा तो एक व दो शताब्दी के बाद आयरलैण्ड जनशून्य हो जावेगा। दूसरे शब्दों में रोमन कैथोलिक चर्च का मेरुदण्ड ध्वस्त हो जावेगा। दक्षिण आयरलण्ड की जनसंख्या एक शती पूर्व लगभग ६५ लाख थी जो घटते-घटते अब २९ लाख से भी न्यून रह गई है।

हमारी दृष्टि में दक्षिण आयरलैण्ड के विनाश का एकमात्र उत्तरदायित्व रोमन कैथोलिक चर्च पर है जिसके महापुरोहित पोप पाल बम्बई में पधार रहे हैं। —'शिव'

कैथालिकों का आदर्श सम्राट् सालाजार

गोआ के पुण्य प्रदेश पर २० मई [illegible] ई० में सर्वप्रथम आक्रमण वास्को डे गामा के नेतृत्व में पुर्तगाली कैथालिकों का ही हुआ था। यह लोग व्यापारी बनकर आये थे और कालीकट के हिन्दु नरेश को धोखा देकर इन्होंने वहाँ अपना दुर्ग निर्माण किया और ८ वर्ष के अन्दर अन्दर गोआ पर पुर्तगाली झण्डा गाड़ दिया। गोआ पर ही नहीं मंगलोर कोचीन लंका दिव बम्बई व नागापट्टम को भी अपने आधीन कर लिया और रोमन कैथालिक ईसाई पन्थ का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

इनके प्रचार के साधन युक्ति तर्क प्रमाण उपदेश मनन आदि न थे। एकमात्र साधन था तलवार। तलवार और काल हाथों में लेकर पुर्तगाली कथालिक पादरी गांव गांव जाते और भोली शान्तिप्रिय जनता को धर्म भ्रष्ट करते। जो हिन्दु रविवार को गिरजाघर न जाए उसको कारागार में ढकेल दिया जाता। हवन संस्कार पूजा पाठ करने वालों को पकड़ कर मौत के घाट उतारा जाता। धनिकों पर भारी कर लगाया जाता और कर न देने पर उनकी सब सम्पत्ति जब्त कर ली जाती। पिता की मृत्यु पर उसकी सन्तान को कानूनन ईसाई बनाया जाता। हिन्दु मंदिरों को तोड़कर गिरजाघर बनाया जाता। यह थे कथालिकों के धर्म प्रचार के बर्बरतापूर्ण साधन जो सभ्य समाज को लज्जित करने वाले हैं।

पं० सुन्दर लाल जी ने अपनी पुस्तक "भारत में अंग्रेजी राज्य" में स्पष्ट लिखा है कि "यह लोग पुर्तगाली कैथालिक कट्टर पन्थी ईसाई थे और जिस देश पर भी इनका राज्य होता था वहाँ की प्रजा को जबरदस्ती ईसाई बनाना वह अपना धर्म समझते थे।"

पुर्तगाली गवर्नर अलफन्जो डे-सूजा ने स्वयं स्वीकार किया है कि "हम पुर्तगालियों ने [illegible] दूसरे में सलीब लेकर ही भारत में प्रवेश किया था।"

पुर्तगाल तानाशाही और [illegible] तक चला आ रहा है। आयरिश बिशप और पादरी भी तानाशाही के गीत गाते और तानाशाही प्रवृत्ति के व्यवहार में युक्त रहते हैं। सालाजार की डिक्टेटरशिप उनकी दृष्टि में ईसाइयत का आदर्श शासन विधान है जिसकी प्रशंसा गाते गाते यह कैथालिक पादरी कभी नहीं थकते।

इस सम्बन्ध में श्री ब्लनशर्ड के निम्न शब्द विचारणीय हैं —

The Irish bishops and priests still reveal many pro-fascist tendencies and many high Irish clergies praise Spanish & Portuguese dictatorship in extravagant terms. Sala Zar's Christian dictatorship is still held up as a model for Irish Catholics

अर्थात आयरिश बिशप और पादरी आज दिन भी अनेक तानाशाही प्रवृत्तियों के शिकार हैं। अनेक उच्च कोटि के आयरिश प्रचारक स्पेनिश और पुर्तगाल की तानाशाहियों की प्रशंसा करने में अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। सालाजार की ईसाइयत की तानाशाही इन आयरिश कैथालिकों की दृष्टि में आज दिन भी आदर्श शासन व्यवस्था है।

भारतीय वीरों के बलिदान से गोवा पुर्तगाली साम्राज्यशाही के अत्याचारों से मुक्त हुआ है और अब वहां के हिन्दुओं ने ठण्डी श्वास ली है। किन्तु कैथोलिक पादरियों को गोवा की मुक्ति अत्यन्त अखर रही है। सुना है पोप पाल का गोवा ले जाने का भी षडयन्त्र रचा जा रहा है जिससे वहां के कथालिकों में अवसर आने पर भारत गणतन्त्र के विरुद्ध उठ खड़ा होने की प्रेरणा दी जा सके।

—'शिव'

(पृष्ठ ६ का शेष)

भारी भ्रम में हैं जो यह समझते हैं कि यह अभियान केवल कथालिकवाद के प्रचारकों का एक पवित्र सम्मेलन मात्र है।

इस युकेरिस्ट द्वारा भारत के कथालिक पादरियों ने, जो इस सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं अपने को भारत जनता के समक्ष नग्नरूप में प्रस्तुत कर दिया है। यदि इतने पर भी हमारी सरकार की आंखें नहीं खुलती और वह समुचित पग नहीं उठाती है तो इसको विधि की विडम्बना के अतिरिक्त और क्या कहा जायगा? —'शिव'

इङ्गलैंड के बिशप जोन राबिन्सन ने—
ईसाई जगत् में भारी कम्पन उत्पन्न कर दिया

(ले०—श्री प० शिवदयालु जी मुख्य उपमन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश)

विशप महोदय ने ६० पृष्ठों की एक पुस्तक (आनेस्ट टू गाड) अर्थात ईश्वर के प्रति सत्यनिष्ठा नामक सन् १९६२ में प्रकाशित की। पुस्तक का ६००० का प्रथम संस्करण छपते ही हाथों हाथ निकल गया। द्वितीय संस्करण १०००० छपा और वह भी पुस्तक विक्रेताओं के पास पहुंचने से पहिले बिक गया। सन् ६२ के अंत मे तृतीय संस्करण ३००००० छपाया गया।

इस पुस्तक के आधार पर अमृत बाजार पत्रिका के लण्डन स्थित संवाद दाता श्री सुन्दर कबाडी ने जो अपनी डायरी भेजी है उसको लक्ष्य मे रखकर पत्रिका के जमशेदपुर संस्करण में ३१ मार्च ६३ को (फ्लीट स्ट्रीट आन बार-पाथ शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। जिससे बिशप महोदय के क्रान्तिकारी विचारों का पता चला।

अपनी इस पुस्तक मे बिशप महोदय लिखते हैं कि—

I realise that my book (Honest to God) will shake a lot of people and that many will think that it is heretical

अर्थात् मैं यह अनुभव करता हूं कि मेरी यह (ईश्वर के प्रति निष्ठा) नामक पुस्तक अनेक व्यक्तियों के विचारों को प्रकम्पित कर देगी और अनेक यह ही समझेंगे कि यह पुस्तक नास्तिकता का प्रचार करनेवाली है। आप आगे लिखते हैं कि—

I do not fully understand myself all that I am trying to say Should I have waited until my own mind was made up This is a question that always faces a Bishop But I am concerned about the damage being done by some of the outworn images which make it almost impossible for 20th century man to accept that the christian faith has any relevence for him

अर्थात् मैं स्वत इस बात को भली प्रकार न समझ सका कि क्या मुझ को उस समय तक के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए थी कि जो कुछ मैं कहने का प्रयत्न कर रहा हूं उसको उस समय तक मैं प्रकट न करूं जब तक कि मेरा मन इस सम्बन्ध मे सुदृढ़ न हो जाय। यह एक ऐसा प्रश्न है जो एक बिशप के सामने सदा उपस्थित हुआ करता है। साथ ही मैं इस सम्बन्ध में बिशप के नाते अपना कुछ उत्तरदायित्व भी समझता हूं। आज जिन ईसाइयत के इन घिसे पिटे चित्रणों द्वारा जो हानि हो रही है, मैं उसकी उपेक्षा भी नहीं कर सकता। बीसवीं सदी का मानव आज अपने आप को यह स्वीकार करने में असमर्थ पाता है कि ईसाइयत का उसके जीवन के साथ कोई सामञ्जस्य है।

४३ वर्ष की आयु का युवा पादरी धर्म के सम्बन्ध में तर्कशून्य भ्रान्त विचारों की अपेक्षा ईश्वर और स्वर्ग के सम्बन्ध मे परिमार्जित एवं तर्क सगत विचारों का अभिलाषी है। बिशप की इस भावना का आधार बुद्धिवाद के इस युग का मनोवैज्ञानिक विकसित स्तर है। आज के इस प्रकाश के युग मे धर्म सम्बन्धी कपोल कल्पित तर्क शून्य मान्यतायें केवल बालकपन के तुल्य हैं।

आज दिन चौथे आस्मान मे स्थित तथाकथित ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न करना बिशप की दृष्टि में सम्भव नहीं।

भावुक बिशप ने अपनी पुस्तक मे ईश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है। बिशप निश्चय ही सत्य का अन्वेषक है और वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि ईश्वर सम्बन्धी अनेक प्रश्नों का समाधान करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूं। अपने विचारों के अनुरूप वह परमात्मा की व्याख्या करते हुए लिखता है कि—

God is the ultimate reality, God is the ground of our being

अर्थात ईश्वर ही एक मौलिक सत्य है और ईश्वर ही हमारा जीवनाधार है।

बिशप यह भी कहता है कि मानव को अब तथाकथित स्वर्गीय पिता की मान्यता से ऊपर उठना होगा और यह मानना ही पड़ेगा कि ईसामसीह सदेह चौथे आसमान पर नहीं गया।

बिशप महोदय की इस पुस्तक ने ईसा सम्बन्धी इन विचारों को भी हिला दिया है कि वह ईश्वरपुत्र था एक सन्त के रूप में प्रकट हुआ अर्थात् उसने स्वर्ग से एक छलांग लगाई और वह पृथ्वी तल पर मानव के रूप में प्रकट हो गया।

भावुक बिशप साधारण ईसाइयों की भांति यह स्वीकार करने को भी उद्यत नहीं कि ईसा स्वयं परमात्मा अथवा परमात्मा का एकलौता पुत्र था।

"मरियम के कुमारी रहते हुए उसके गर्भ से ईसा की उत्पत्ति हुई" इस मान्यता को भी बिशप आदर देने को तैयार नहीं। जब उससे इस सम्बन्ध में पूछा गया तो उसने स्पष्ट कहा कि–'भले ही लोग मुझे नास्तिक कहें किन्तु मैं इस प्रकार के विश्वास रखने में असमर्थ हूं। बाइबिल में इस सम्बन्ध में जो प्रमाण एवं साक्षियां अंकित की गई हैं वह अपर्याप्त हैं। हम ईसा में ईश्वरीय सत्य का केवल प्रकाशमात्र देखते हैं। बाइबिल ने यह भी स्पष्ट निर्देश नहीं किया कि ईसा स्वयं परमात्मा था।"

वाग्मिक बिशप की दृष्टि में बाबा आदम तथा माता हव्वा का स्वर्ग से अवतरण होना केवल कार्टूनों में चित्रित करने वाले कथानक हैं। इनकी यथार्थता में कोई बुद्धिवादी मानव विश्वास नहीं कर सकता।

बिशप महोदय का ईसाइयों की प्रार्थना के सम्बन्ध में भी मतभेद है। आपका कहना है कि ईश्वर प्रार्थना सम्बन्धी चिकने चुपड़े परामर्श देना जिनसे आत्म संतुष्टि न होती हो बहुत सरल है किन्तु ब्रह्म सम्बन्धी जो जिज्ञासाएं परामर्शदाता व्यक्ति के मन में उत्पन्न होती हैं क्या इन परामर्शों से उसका अपना भी कभी समाधान हुआ है?

माननीय बिशप महोदय के इन विचारों से ईसाई जगत् में एक क्रान्ति उत्पन्न होगी। और ईसाई विचारकों को बाइबिल की अनेक मान्यताओं से हाथ धोना पड़ेगा। उसमें अनेक संशोधन एवं परिवर्तन करने होंगे तथा बाइबिल के अनेक कुछ अंशों को कुठाराघात एवं आवश्यकता के अनुकूल संगति लगानी होगी। यदि ईसाई जगत् के मूर्धन्य विचारक इस दिशा में सक्रिय न हुए तो जहां साम्यवादी देशों में ईसाइयत को अधचन्द्र दिया जा रहा है अमेरिका, यूरोप के बुद्धिवादी राष्ट्रों में भी उसके प्रति अनास्था का व्यापक वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। भले ही कुछ काल के लिये पिछड़े हुए देशों व जातियों में कामिनी कांचन व छल छिद्र के आधार पर ईसाइयत को जिन्दा रखा जा सके।

★

आर्य महिला सम्मेलन

दिनांक २६ व २७ अक्टूबर को मेरठ नगर में आर्य केन्द्रिय समिति मेरठ के विशाल पण्डाल में श्रीमती विद्यावती सेठ देहरादून की अध्यक्षता में प्रान्तीय महिला सम्मेलन किया गया।

यह सम्मेलन प्रान्तीय आर्य महिला मण्डल की ओर से किया गया जिसकी संचालिका महिला मंडल की मंत्रिणी श्री शकुन्तला गोयल मेरठ हैं।

सम्मेलन में प्रान्त के विभिन्न स्थानों से लगभग ५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में लगभग १००० देवियों की उपस्थिति रही। आर्य विदुषी श्री पुष्पा एम ए वाराणसी, श्री कृष्णाकुमारी लखनऊ, श्री सत्यभामा बरेली, श्री कौशल्या जी वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, श्री प्रेमसुलमायति वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, श्री माता प्रियम्वदादेवी हरदोई आदि के भाषण हुए। प्रान्त में महिलाओं को संगठित करने, धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान देने, फैशन व विदेशी भाषा, आचार व्यवहार त्यागने आदि सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये।

आवश्यकता

एक २४ वर्षीय एम. एस. सी बी एड लेक्चरर के लिए एक सुन्दर, ग्रेजुएट आर्य परिवार की (कूर्मक्षत्रिय) वधू चाहिये। पत्र-व्यवहार का पता—

बेचनसिंह, मंत्री आर्यसमाज
पो० [illegible] ([illegible])

कच्चे अन्ध-विश्वासों पर ही— ईसाइयत की आधारशिला धरी है

(ले०—श्री बिहारीलाल जी शास्त्री)

ईसाइयत की यह मान्यता है कि संसार भर के सब मनुष्य पापी हैं। क्योंकि हजरत आदम ने ईश्वर का आदेश न मानकर वर्जित वृक्ष के फल खाकर पाप किया अतः उनकी सब सन्तान में पाप का संचार वंशानुक्रम से होता रहा। और इस पाप के बोझ को नष्ट करने के लिए ईश्वर ने यसू के रूप में जन्म लेकर उस पूर्व पाप को अपने नाम के बप्तिस्मा के द्वारा दूर करने का उपाय बताया और उस पाप के फल को अपने ऊपर लेकर क्रूस का कष्ट उठाया [illegible] जो [illegible] [illegible] पाता [illegible] [illegible] उसके नाम पर [illegible] [illegible] मूल पाप निकल जाता और वह व्यक्ति अनन्त जीवन अर्थात स्वर्ग का अधिकारी होगा। परन्तु विश्वास शर्त है और वह विश्वास इस प्रकार से होना चाहिये—

क-ईसू कुमारी (अक्षत योनि) मरियम से ईश्वरीय आत्मा से उत्पन्न हुआ।

ख-वह निष्पाप और पवित्र था।

ग—उसने मनुष्यों के पाप के बदले स्वयं क्रूस का कष्ट उठाया।

घ-वह (योसू) क्रूस पर चढ़ाया गया। मरने पर गाड़ा गया और तीसरे दिन जी उठा और सदेह ईश्वर के पास पहुंच गया और अब ईश्वर के दाहिने हाथ आसन पर आसीन है।

जो व्यक्ति इस विश्वास के साथ किसी पादरी द्वारा बप्तिस्मा लेगा वह स्वर्ग जायगा। उसके सब प्रकार के पापों के फल नष्ट हो जायेंगे परन्तु विश्वास करने वालों में स्वभावतः य चमत्कारी चिह्न प्रकट होंगे।

१-वह सांपों को उठा लेगा। २-जहर खा जायगा। ३-नाना प्रकार की भाषायें बोलेगा। ४-रोगियों पर हाथ रखकर उन्हें चंगा कर देगा। (पढ़ो मारकूस का सुसमाचार अन्तिम अध्याय पूरा)

अब विचारणीय यह है कि मूर्ख पिता का पुत्र भी मूर्ख ही हो, काने का पुत्र भी काना ही हो, दुराचारी का बेटा भी दुराचारी ही हो। नास्तिक का पुत्र पौत्र आदि सब वंश नास्तिक ही होता रहे यह बात मुशाहदे (लोक प्रत्यक्ष) के विरुद्ध है। अतः आदम का सब वंश ही पापी होता [illegible] यह [illegible] [illegible] है।

यदि [illegible] [illegible] [illegible] से यह बात मान भी ली जावे तो [illegible] [illegible] से लेकर मसीह के समय तक [illegible] [illegible] जो व्यक्ति पाप सहित ही मरते रहे [illegible] [illegible] [illegible] क्या नहीं सूझा? वे व्यक्ति सब के सब स्वर्ग से वंचित रहे ईश्वर को उन पर दया क्यों नहीं आई? इतने लम्बे समय के बाद खुदा को उपाय सूझा। [illegible] अंधेर की बात?

हजरत इब्राहीम हजरत मूसा, हजरत दाऊद, हजरत सुलेमान हजरत जोन क्या सब नरक में ही गये? यदि नहीं तो जिस उपाय से ये सब स्वर्ग को गये उसी उपाय से अन्य मनुष्य भी जा सकते थे फिर ईश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

हजरत [illegible] तो मसीह के जन्म से पहले ही सदेह स्वर्ग पहुंच गये बिना बप्तिस्मा लिये ही यह ईसाइयत भी मानती है। जब [illegible] बिना योसू के बलिदान के स्वर्ग जा सकते हैं तो यसू को बलिदान देने की क्या आवश्यकता थी?

यसू [illegible] योनि मरियम से जन्मे इसका प्रमाण ईस [illegible] [illegible] [illegible] के उलझे हुए वचनमात्र हैं। हजरत [illegible] यहूदा पहले क्यों न इसी जुर्म में चीर डाला कि [illegible] [illegible] के मामले में बाधा समझते थे। ईश्वर ने [illegible] को क्यों नहीं समझाया कि मरियम मेरे द्वारा [illegible] है और [illegible] निर्दोष व्यक्ति है। यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

रहा या नहीं ?

यीसू का क्रूस पर चढ़ाया जाना भी असिद्ध और प्रमाणशून्य है। ईसाइयत का पड़ोसी मत इस्लाम मसीह का क्रूस पर चढ़ना और मारे जाना नहीं मानता। यदि मसीह क्रूस पर से ही ऊपर को उड़ जाता तो संदेह की कोई गुंजायश नहीं रहती। और कब्र से उठने के बाद जैसे छिप छिपकर चेलों से यीसू मिलता रहा वैसे ही यहूदियों के नेताओं को भी दर्शन दे देता तो उसके चमत्कार की धाक जम जाती। पर यह सब मामला गोलमोल रहा। यह सारा का सारा प्रपंच पौलूस पीटर आदि चेलों का रचा हुआ सिद्ध होता है, जिसका आधार केवल अंध-विश्वास है। भारत की निम्न श्रेणी के अशिक्षित लोगों में जैसे भूत प्रेत जाहिर पीर (गुग्गापीर) आदि की कथायें चलती रहती हैं वैसे ही कह दिया जाता इंजीलों में भरी पड़ी हैं ऐसी बातों पर बुद्धिहीन जनता ही विश्वास कर सकती है।

यदि मसीह के नाम पर बप्तिस्मा लेकर मनुष्य स्वर्ग जा सकता है तो पंचामृत पीकर, गंगास्नान करके, राम-नाम लेकर स्वर्ग क्यों नहीं जा सकता? तर्करहित विश्वास तो सब एक ही श्रेणी में रक्खे जायेंगे। चाहे वे हिन्दुओं के हों या ईसाइयों के या अन्य किसी के भी। अन्धविश्वास तो अन्धविश्वास ही है।

जैसे चमत्कार इंजीलों में यीसू के लिखे हैं वैसे ही और उनसे भी बढ़िया चमत्कार भारत के सन्तों के बताये जाते हैं तो फिर भारत के लोग उन्हें छोड़कर यीसू के पास क्यों जावें ?

अब रही विश्वास की परख तो जब तक कोई पोप पादरी बिशप आदि विष खाकर, सांप पकड़कर, हाथ फेरने से रोगियों को चंगा करके न दिखा दे तब तक ये सब अविश्वासी हैं और इन अविश्वासियों के हाथ से लिया बप्तिस्मा भी व्यर्थ ही है। अब संसार में कितने पादरी हैं जो मार्कस की लिखी कसौटी पर परीक्षा देने को तैयार हैं? क्या श्री पोपपाल छठे या उनके कार्डिनल जहर खाकर परीक्षा देने को तैयार हैं? और जब मसीह के विश्वासी पादरी हाथ फेर कर रोगी को चंगा कर सकते हैं तो ये मिशन के अस्पताल क्यों खोले गये हैं। सब डाक्टरों को छुट्टी दो दवाओं को फेंक दो और पादरियों से काम लो।

एक बात स्पष्ट कर दें कि अब कोई कोई ईसाई इंजील की उक्त बातों को आलंकारिक कह देते हैं कि जहर खाने से तात्पर्य है दूसरों का क्रोध सह लेना परन्तु इंजील का तात्पर्य ऐसा नहीं है। इंजील के मत से ये वाक्य आलंकारिक नहीं किन्तु चमत्कारिक हैं। यीसू के चेलों के कामों में वर्णन आता है कि उन्होंने ऐसे चमत्कार दिखाये। लोगों में से भूत प्रेत निकाले, अतः यह सब मसीह के मौजजों की तरह मौजजे दिखाने का ही वर्णन है परन्तु इस वैज्ञानिक युग में इंजील के सब मौजजे (चमत्कार) दब गये करामातें फेल हो गयीं। तब बप्तिस्मा और विश्वास भी फेल रहा या नहीं ?

यदि बप्तिस्मा लेने पर मन बदल जाय और व्यवहार भी उत्तम होने लगें तब तो माना जा सकता है कि बप्तिस्मे में कुछ प्रभाव है और यदि बप्तिस्मे वालों और बिना बप्तिस्मे वालों के मनों और व्यवहारों में कोई भेद नहीं है तो बप्तिस्मे में कोई प्रभाव नहीं है। और जब बप्तिस्मे में कोई विशेष प्रभाव नहीं दीखता तो कैसे मान लिया जाय कि बप्तिस्मे वाले के पाप दूर हो गये ? और कैसे समझा जाये कि वह स्वर्ग गया। हिन्दू मानते हैं कि गंगास्नान से मुक्ति मिल जायगी। मुसलमान मानते हैं रोजा करने से मुक्ति मिल जायगी इसी तरह ईसाई मानते हैं कि बप्तिस्मे से स्वर्ग मिल जायेगा। यदि ईसाई अपने पक्ष को सत्य मानते हैं तो सब हिन्दू मुसलमानों की बात भी सच मानी जायगी बुद्धि तर्क का उत्तर न हिन्दू मुसल-मानों पर है न ईसाइयों पर। यीसू का शिष्य याकूब कहता है कि कर्मों के बिना विश्वास मुर्दा है।' यदि यह बात ठीक है तो शुभ कर्म ही मुक्ति दिला सकते हैं। फिर यीसू के नाम पर बप्तिस्मा लेना गंगा नहाना आदि सब व्यर्थ रहे। वस्तुतः तो धर्म साधना का नाम है। बिना साधना के कोरे अंध विश्वासों पर भरोसा करना महा मूर्खता है। जब तक मनुष्य के जीवन में परिवर्तन नहीं होता तब तक ईसा गंगा आदि कोई भी मुक्ति या स्वर्ग नहीं दिला सकते। स्वर्ग चाहने वालों को यह आचरण करना चाहिये।

सरल स्वभाव न मन कुटिलाई,
यथा लाभ संतोष सदा ही।
कोमल चित दीनन पर दाया,
[illegible]

सबहि मानउद आप अमानी,
भरत प्रानप्रिय मम ते जानी ।।
—गोस्वामी तुलसीदास

संसार भर के ईसाई उपदेशकों में कितने हैं इस ऊपर की कसौटी पर उतरने वाले ? भारत के गैर ईसाइयों में तो ऐसे सन्त सहस्रों मिल जायेंगे फिर यहाँ पशु पक्षियों को नित्य मार कर खाने वाले पादरियों की क्या जरूरत। ईसाइयत के पास न दर्शन है न ऊँचे आदर्श, न उच्चकोटि के लोगों के चरित्र। कोरे अन्धविश्वासों पर यह ईसाइयत का किला खड़ा है। बुद्धिवाद की एक ठोकर यह सह नहीं सकता। इसलिये यूरोप में पोपों ने अनेक वैज्ञानिक, दार्शनिक और बुद्धिवादियों को मरवा डाला। विज्ञान और दर्शन की उन्नति में बाधायें डालीं। आज भी यूरोप के वैज्ञानिक, दार्शनिक और बुद्धिवादी लोग ईसाई नहीं हैं। केवल राजनैतिक और धनी व्यापारी ही ईसाइयत के पोषक हैं। इस वर्ग का सम्बन्ध सूक्ष्म दार्शनिक विचारों से होता ही नहीं।

बुद्धिवादी विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करने में ईसाइयत असमर्थ है अतः भारत का कोई भी विद्वान् हिन्दू ईसाई नहीं बना केवल मूर्ख, गरीब आलसी और समाज से तिरस्कृत लोग ही ईसाइयों में गये। ईसाइयत का साहित्य हिन्दू साहित्य की तुलना में महातुच्छ है। गीता, रामायण, श्रीमद्भागवत वेद आदि की तुलना में बाइबिल अति तुच्छ है। मसीह का चरित्र बहुत थोड़ा मिलता है और उसमें भी थोड़ा सा जोशीला चित्रण है। जबकि भगवान राम के चरित्र में मानव जीवन के लिये जरूरी सब ही आदर्श विद्यमान हैं। योशू का उपदेश इञ्जीलों में जो कुछ है गीता और बुद्ध भगवान के धम्मपद के उपदेश की धुंधली छाया मात्र है। अतः वैदिक धर्म सनातन धर्म जैन धर्म, बौद्ध धर्म सिक्ख धर्म ये सब ही आर्य धर्म ईसाई मत से ऊँचे ठहरते हैं। इनमें बुद्धिपूर्वक उपदेश भरे हुए हैं। कर्मवाद (शुभाशुभ कर्मों का महत्व) इन धर्मों की सबसे बड़ी विशेषता है। ईसाइयत केवल अन्धविश्वास और बुद्धि विरुद्ध चमत्कारों पर टिकी हुई है। अतः हिन्दुओं को कमर कसकर सार्वभौम हृदय से पूर्ण अपने धर्म का प्रचार करना चाहिये।

कैथालिक महासम्मेलन से भारत के प्रोटैस्टैन्ट ईसाई भी संक्षुब्ध

भारत सरकार ने आज तक भी देश में विद्यमान विदेशी मिशनों का राष्ट्रियकरण नहीं किया जबकि प्रभु देश चीन की सरकार ने अपनी स्वतन्त्रता के प्रथम वर्ष में ही यह कार्य दृढ़तापूर्वक सम्पन्न कर दिया था। चीन के राष्ट्रिय ईसाई चर्च का रोम के पोप के साथ कोई नाता नहीं और न वहाँ विदेशी मिशनरियों के लिये कोई ठिकाना है। किन्तु अपने देश में विदेशी मिशन निरन्तर फल फूल रहे हैं। देश के कोने कोने में इनके गढ़ सुदृढ़ होते जा रहे हैं और भारत की जनता को वेग के साथ अराष्ट्रियता का पाठ पढ़ाया जा रहा है।

माननीय जे० एस० विलियम्स महोदय ने भारत में राष्ट्रिय ईसाई चर्च की नींव डाली और अनेक स्थानों पर उसकी शाखायें भी स्थापित की। किन्तु भारत सरकार ने इस चर्च को किसी भी प्रकार की आज तक मान्यता नहीं दी। इस विदेशियों के सम्मेलन से विलियम महोदय अत्यन्त क्षुब्ध हैं और अपनी भावनायें निम्नप्रकार उन्होंने व्यक्त की हैं —

'इस प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रिय कैथालिक सम्मेलन द्वारा किसी भी प्रकार का भला होने वाला नहीं है और ना ही यह पूर्व व पश्चिम के लोगों को एक दूसरे के निकट लाने वाला है और ना ही स्वस्थ बन्धुत्व में उनको बांधने वाला सिद्ध होगा। यह केवल एक भारी शाही दरबार के रूप में सम्पन्न होगा और भारतीय जनता के मस्तिष्क पर विदेशी मिशनों की प्रभुता और शक्ति का तथा अपनी विनाशकारी ताकत की छाप लगाने वाला सिद्ध होगा। भारत निवासी शान्तिप्रिय ईसाई जनता का हित इसी में है कि इन विदेशी मिशनों पर इनके धन और इनके अराष्ट्रिय देशी एजेन्टों की गतिविधियों पर तुरन्त कड़ा प्रतिबन्ध लगाया जाय।

इस पुण्य कार्य में भारत के राष्ट्रिय ईसाई संघ का अपनी सरकार के साथ पूर्ण सहयोग होगा। इसी प्रकार के उद्गार बंगलौर मिशन के डाइरेक्टर श्री हैनरी राइलिंग ने भी व्यक्त किये हैं और पोप की सेना के भारत आक्रमण पर अपना रोष प्रकट किया है। —'मित्र'

कैथालिक चर्च ज्ञान और बुद्धिवाद का शत्रु है

कैथालिक ईसाई किसी गैर कैथालिक शिक्षणालय मे भले ही वह प्रोटस्टेन्ट मथोडिस्ट आदि किसी ईसाई चर्च से भी सम्बन्धित क्यों न हों अपने बच्चों को शिक्षा दिलाना पाप समझते हैं। अमेरिका में आयरिश कथालिकों की संख्या दो करोड़ से ऊपर है जबकि उनकी जन्म भूमि में कुल कथालिक जन संख्या घटते घटते अब २९ लाख भी नहीं रही है। अमेरिका मे कैथालिकों की यह संख्या वहां की जन संख्या का लगभग पंचमांश है किन्तु अमेरिका के उच्च शिक्षणालयों में पढ़ने वाले कैथालिक छात्र छात्राओं की संख्या केवल तीन प्रतिशत है। कारण यह है कि वहां प्रायः उच्च शिक्षणालय अमेरिका के प्रोटेस्टेंट शासन द्वारा संचालित हैं जिनमे यह अपने बच्चों को पढ़ाना पाप समझते हैं।

अमरिका मे इनके अपने जो उच्च शिक्षणालय हैं उनमे विज्ञान, दर्शन, तर्क शास्त्र आदि वर्जित हैं क्योंकि इन विषयों के अध्ययन से बुद्धिवाद की हवा लगने का भय तथा इनकी मतान्धता और इनके अन्ध-विश्वासों के दुर्गों के ध्वस्त होने की आशंका इनके चित्त मे बना रहती हैं।

रोमन कैथालिक चर्च किसी भी ऐसे ग्रन्थ को जिसमे कथालिकों के अन्ध विश्वासों तथा उसकी मनोधारणाओं की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप मे समालोचना की गई हो अपने छात्रों को पढ़ने नहीं देता। आयरलैण्ड के स्कूल कालेजों के पुस्तकालयों में ही केवल नहीं अपितु सार्वजनिक पुस्तकालयों तक मे ऐसी पुस्तकों के रखने पर चर्च की ओर से पाबन्दी लगी हुई है। दक्षिण आयरलैण्ड की सरकार ने जिन पुस्तकों को अवांछनीय नहीं समझा है और उसके सेन्सर बोर्ड ने उनको मान्यता प्रदान कर दी है। पोप का वैटिकन सिटी का सेन्सर बोर्ड उनमे से भी सहस्रों पुस्तकों को अवांछनीय घोषित कर चुका है।

बड़-बड़े विश्वविख्यात लेखकों यथा बरन ड्शा बर्ट-रैण्ड रसल अनातोले फ्रान्स, बगसन, गिब्बन तथा क्रिस्टो-फर, गोर्की आदि की लिखित पुस्तकों को भी निषिद्ध कर दिया गया है।

सुप्रसिद्ध वैबेज की "इल्यौरियल पैलेस" मैरी कोरेली की होली आर्डर", नामन लग्डुरुप का" 'साउथ विण्ड", अरनेस्ट पूल की दी हारबर' टालस्टाय की 'अन्ना करेनिना" ऐडिय ब टनकी 'गिलम्पसेज आफ दी मून", क्रिस्टोफर मार्लो की थण्डर आन दी लफ्ट',राबर्टनाथन की 'वन मोर रिवर्रिंग' आदि संग्रहणीय पुस्तकों पर भी पोपडम द्वारा प्रतिबन्ध लगाया हुआ है। ब्लनशड महोदय अपने ग्रन्थ मे यूरोप के लगभग १०० प्रसिद्ध ईसाई लेखकों तथा उनकी पुस्तकों की तालिका प्रस्तुत की है। इस समय तक रोमन कथालिक चर्च के केन्द्र वेटिकन सिटी के सेन्सर बोर्ड द्वारा ५००० से ऊपर पुस्तकों पर जो प्रायः ईसाई विद्वानों द्वारा ही लिखित हैं प्रतिबन्ध लगाया जा चुका है।

आयरलैण्ड में किसी भी वाचनालय मे ऐसा कोई समाचार-पत्र नहीं देखा नहीं पा सकते जिसमें कथालिकों की मान्यताओं की समालोचना की जाती हो अथवा उन की अप्रमाणात्मक बुद्धिवाद विरोधी अथवा मानवता के प्रतिकूल होने वाली गतिविधियों की भर्त्सना की जाती हो।

इस विज्ञान बुद्धिवाद एवं प्रकाश के युग मे रोमन कैथालिक चर्च की यह कूप मण्डूकता निश्चय विश्व के लिये अभिशाप है। —'शिव'



अजमेर में ऋषि मेला

दिनाक ७-८-९ नवम्बर को अजमेर नगर मे महर्षि स्वामी दयानन्द जी के ८१वें निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य मे समारोहपूर्वक उत्सव मनाया गया। उत्सव मे श्रीमती विद्योत्तमा यति श्री प० आनन्दप्रिय जी बडोदा प० भवानीलाल भारतीय स्वामी व्रतानन्द जी प० जगन्नाथजी उपाध्याय श्री प० सूयदेव शर्मा एम०ए० स्वामी रामेश्वरानन्द जी के भाषण तथा आर्य कन्या विद्यालय बडोदा की छात्राओं के व्यायाम प्रदर्शन हुए।

महिला सम्मेलन की अध्यक्षता आर्य सन्यासिनी विद्योत्तमायति जी ने की।

इस अवसर पर अराष्ट्रिय ईसाई निरोध सम्मेलन भी किया गया और विदेशी ईसाई पादरियो को भारत से बाहर निकालने तथा विदेशो से मिशन को मिलने वाली विपुल धनराशि पर प्रतिबन्ध लगाने की सरकार से माग की गई। राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री शिवचरणलाल जी आदि के इस सम्मेलन मे प्रभावशाली भाषण हुए।

स्वामी मेधार्थी जी की अध्यक्षता मे अथर्ववेद पारायण का सफल आयोजन, स्वामी रामेश्वरानन्द जी की अध्यक्षता मे खेल कूद प्रतियोगिता का पुरस्कार वितरण, श्री जे० के० शुक्ला जी की अध्यक्षता मे श्री कन्हैयालाल वाद प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोरक्षा सम्मेलन भी किया गया तथा एक विशाल शोभायात्रा भी दि० ८ नवम्बर को नगर मे निकाली गई और श्री ला० हसराज गुप्त प्रधान परोपकारिणी सभा के करकमलो द्वारा ओ३म ध्वजा फहराई गई।

गढमुक्तेश्वर कार्तिकी महामेले में विशाल प्रचार आयोजन

दिनाक १८ से २० नवम्बर तक गढमुक्तेश्वर मेले मे भागीरथी के तट पर जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा मेरठ की ओर से वैदिक धर्म प्रचार का विराट आयोजन किया गया। २० सहस्र जनता आर्यसमाज के पण्डाल मे भरी रहती थी।

अराष्ट्रीय ईसाई निरोध सम्मेलन का भी सफल आयोजन किया गया। जिले से कैथालिको के कुत्सित एव अराष्ट्रीय प्रचार का डटकर सामना करने का प्रण लिया गया।

अनेक आर्य विद्वानों एव श्री निरञ्जनप्रसाद, हरस्वरूप, श्री मेघनाथ जी आदि के प्रभावशाली भजनों ने जनता को कर्तव्य-पथ का स्मरण कराया।

डा० भगवद्दत्तजी एव श्री बलवीरसिंह बेधड़क जी आदि ने इस जिला प्रचार को सफल बनाने मे विशेष प्रयत्न किया।

आर्यसमाज मेरठ सदर का वार्षिकोत्सव

दिनाक १३ से १५ अक्टूबर तक आर्यसमाज मेरठ सदर का वार्षिक उत्सव श्री प० शिवदयालु जी प्रधान आर्यसमाज की अध्यक्षता मे सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। श्री प० आचार्य वाचस्पति जी, कुवर यशपाल सदस्य लोक सभा, आचार्य बद्रनाथ शास्त्री आदि के प्रभावशाली भाषण एव श्री मघनाथ जी के भजन हुए।

आर्य केन्द्रीय समिति मेरठ का उत्सव

दि० २५, २६, २७ अक्टूबर को जीमखाने के विशाल मण्डप मे नगर की समस्त आर्यसमाजों का सम्मिलित उत्सव मनाया गया ५००० की सख्या मे जनता इस उत्सव मे पण्डाल मे उपस्थित रहती थी, स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी की अध्यक्षता मे वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया गया। श्री आचार्य भगवानदेव जी आदि के प्रभावशाली भाषण एव श्री मेघनाथ ओमप्रकाश जी आदि के भजन हुए। २८ ता० को भ्रष्टाचार विरोधी जुलूस बड़े समारोह के साथ नगर मे निकाला गया।

परोपकारिणी सभा का नवीन निर्वाचन

ऋषि मेले के अवसर पर परोपकारिणी सभा का नव निर्वाचन निम्नप्रकार किया गया। श्री ला० हसराज जी गुप्त (दिल्ली) प्रधान, डा० मानकरण शारदा उपप्रधान श्री श्रीकरण शारदा मत्री, श्री चितरञ्जन वर्मा स० मन्त्री एव श्री विष्णुदत्त जी कोषाध्यक्ष निर्वाचित किये गये।

भारत प्रधान मन्त्री के प्रयाग आगमन पर स्थानीय हिंदू सभा का विरोध प्रदर्शन

दिनाक १२ नवम्बर को श्रीमती प० विजयलक्ष्मी जी के निर्वाचन अभियान मे फाफामऊ बाजार से जाते हुए प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी को काले झण्डे दिखलाए।

अन्तर्राष्ट्रीय कैथालिक सम्मेलन—

धर्म निरपेक्षता को नष्ट करने का षड्यन्त्र

(ले०—श्री रघुवीरसिंह शास्त्री मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब)

आज से कुछ सप्ताह पश्चात् ३० हजार से अधिक विदेशी कैथोलिक ईसाई मिशनरी भारत को ईसाई संस्कृति से प्रभावित करने, व अनेक राजनैनिक दुरभिसंधियों के साथ बम्बई में २८ नवम्बर से ६ दिसम्बर तक होने वाली (इन्टर नेशनल यूकेरिस्टिक कांग्रेस) अन्तर्राष्ट्रिय कैथोलिक सम्मेलन में भाग लेने पहुंच रहे हैं।

२—इनमें से बहुत से व्यक्ति ऐसे देशों से भी आयेंगे जिनकी भारत के प्रति नीति सौहार्दपूर्ण नहीं है।

३—इस कांग्रेस को भारत में आयोजित करने का मुख्य कारण केवल यही है कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है।

४—इस कैथोलिक विश्व कांग्रेस के आयोजक भारत सरकार की धर्म-निरपेक्षता की भावना का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। और भारत सरकार भी इस कांग्रेस को सफल बनाने के लिये अभूतपूर्व सुविधायें बड़ी उदारता के साथ प्रस्तुत कर रही हैं।

५—ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार इस भ्रम का शिकार हो गई है कि साधारणतया अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई वाद व विशेषतया कैथोलिक सम्प्रदाय, धर्म निरपेक्ष विचारधारा का प्रतिपादक है।

यह नितान्त असत्य है। अन्तर्राष्ट्रिय कैथोलिक सम्प्रदाय किस प्रकार भारत की धर्मनिरपेक्षता का नष्ट करने का षड्यन्त्र कर रहा है, यह निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है—

(क) संसार में केवल एक ईसाई धर्म ही सच्चा धर्म है। पोप पाल (षष्ठ)

(ख) रोमन कैथोलिकों और अन्य ईसाई सम्प्रदायों की यह धारणा है कि धर्म निरपेक्षता की विचार धारा ही उनके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, और इस विचारधारा को नष्ट करने के लिये राजनैतिक शक्ति का उपयोग करेंगे।

(सर चार्ल्स बेन्टबथ डिस्क ग्रेट ब्रिटेन) नामक पुस्तक का पृष्ठ ५७५

(ग) इस युग में ईसाईयत के सबसे प्रबल विरोधी इस्लाम, बौद्धमत या हिन्दू धर्म आदि नहीं हैं अपितु विश्वव्यापी धर्म निरपेक्ष नीति की पद्धति ही है।

डा० रफुस एम० जोन्स की येरुशलम में हुई अन्तर्राष्ट्रिय मिशनरी कौंसिल के अवसर पर घोषणा।

(घ) विश्व के अन्य भागों की भांति भारत में भी धर्म को वास्तविक खतरा धर्म निरपेक्षता की विचारधारा से ही है। विलफडमेन्स हार्ड डाक्टर आफ डिविनिटी।

केवल इतना ही नहीं बल्कि समस्त कैथोलिक संस्थायें ईसाई युवकों को प्रेरित कर रही हैं कि वे सब धर्म निरपेक्ष संगठनों और उस विचारधारा के समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में इस उद्देश्य से प्रविष्ट हो जायें कि वे उनके अन्दर रहकर धर्म निरपेक्षता की विचारधारा को छिन्न-भिन्न कर सकें। यदि इसका भी प्रमाण चाहिये तो यह लीजिये।

यह अत्यन्त आवश्यक है कि ईसाई युवक बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित हों, विद्यार्थी वर्ग व ग्रेजुएटगण लेखनी के द्वारा बहुत प्रभावपूर्ण कार्य कर सकते हैं। उन्हें दैनिक पत्रों, साप्ताहिक पत्रिकाओं में खूब लेख लिखने चाहिये। यह आवश्यक नहीं कि वह लेख विशेष रूप से ईसाईयों के सम्बन्ध में ही हों अलबत्ता उनमें ऐसे लेख लिखे जायें कि जिनसे उनका नाम लेखकों के रूप में विख्यात हो जाये और उसके बाद उनको इस प्रकार के अवसर सरलता से मिल जायें कि वे धर्म-निरपेक्षता के समर्थक पत्र पत्रिकाओं में आगे चलकर स्पष्टरूप से ईसाईयत की विचारधारा का खुलकर प्रसार कर सकें।



(लाइट आफ लाइफ) नामक पत्रिका जून १९६४ मे प्रकाशित एक लेख टू क्रिश्चियन स्टूडेण्टस एण्ड ग्रेजुएटस् शीर्षक लेख मे डेविड एच० एडेनी एम० ए०)

भारत सरकार अभी तक इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ मालूम पडती है कि अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (आल इडिया वीमेन कान्फ्रेंस) और राष्ट्रिय महिला परिषद् (नेशनल कौंसिल आफ वीमेन) मे भी ईसाई एजेण्ट अपने उद्देश्य के प्रति सक्रिय हैं । प्रमाण यह हैं —

इन ईसाइयों को उन सामाजिक नैतिक और शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों का भी समर्थन करना चाहिये जिनमे महिला सस्थायें धार्मिक आधार पर कार्य कर रही हों । क्योंकि यह भी एक ऐसा साधन बन सकता है जिसमे हम इन भारतीय महिलाओ के हृदय मे ईसाईयत के स्वर्ग राज्य की विचारधारा के प्रति आकर्षण पैदा कर सकती हैं ।

मिस गैलोमिथ क्लिमेन्ट एम०ए० प्रोफेसर आई० टी० कालेज लखनऊ, मन्त्रिणी अवध प्रदेश (शाखा आल इडिया वीमेन्स कान्फ्रेंस)

भारत में बडी सख्या मे जो विदेशी लोग अग्रेजी के प्राध्यापक कृषि तथा तकनीकी औद्योगिक सहकारी समितियो मे सलाहकार और कृषि विशेषज्ञ के रूप मे काम कर रहे हैं उनमे अधिकांश अन्तर्राष्ट्रिय कैथोलिक सम्प्रदाय के गुप्त एजेण्ट हैं । और इनकी सख्या इतनी अधिक है कि उनकी उपस्थिति भारत को राष्ट्रिय सुरक्षा के लिये खतरा बन गई है । भारत सरकार ने शीघ्र ही यदि इस विषय मे सतर्कता से काम न लिया तो इनमे स्थिति और भी विषम हो सकती है । यदि भारत सरकार इस जाल मे फसने से बचना चाहती है तो उसको अविलम्ब कुछ न कुछ कदम उठाने के लिये तैयार होना ही होगा ।

इस स्थिति मे आर्यसमाज भारत के करोडो हिन्दुओं की भावना का प्रतिनिधित्व करता हुआ मांग करता है कि--

१-सारे विदेशी पादरियों को दिसम्बर ६४ तक भारत छोडने के लिये विवश किया जाये ।

२-सारे विदेशी पादरियो की अराष्ट्रीय गतिविधियो की केन्द्रीय गुप्तचर विभाग द्वारा जाच कराई जाये क्योंकि उनकी उपस्थिति निश्चितरूप से देश के लिये खतरा बनी हुई है ।

३-विश्व कैथोलिक कांग्रेस को दी जाने वाली सरकारी व अधसरकारी सहायता व सुविधायें तुरन्त बन्द कर दी जायें ।

४-किसी भी मत के प्रचारकों को आवास के लिये स्कूल और कालेज बन्द करने की अनुमति न दी जाये ।

५-पोप पाल षष्ठ कैथोलिक सम्प्रदाय के प्रमुख की हैसियत से भारत आ रहे हैं, इसलिए किसी भी धर्म निरपेक्ष सगठन की ओर से पोप का स्वागत अवांछनीय है ।

६-यदि इस अनर्थ को अभी से न रोका गया तो भारत मे धार्मिक शान्ति के भग होने की भारी आशका है जिसका उत्तरदायित्व इस स्थिति मे पोपपाल और विदेशी ईसाई पादरियो पर होगा ।

अन्तर्राष्ट्रीय कैथोलिक सम्प्रदाय भारत सरकार की आखों मे किस प्रकार धूल झोक रहा है इसका ताजा उदाहरण वह समाचार है जो इसी मास के प्रथम सप्ताह में भारतीय समाचार पत्रों मे भ्रामक शीर्षक के अन्तर्गत छपा है —

नया हस्पताल और कालेज कैथोलिक चर्च का भारत को उपहार । हमारे निजी सम्वाददाता द्वारा, बम्बई ६ अक्टूबर । यहां होने वाली भारतीय तथा विदेशी कैथोलिक चर्च की ३८ वीं यूकेरिस्टक कांग्रेस के अवसर पर भारत को दिये जाने वाले उपहारो मे एक उपहार होगा बगलौर में मेडिकल कालेज और एक हस्पताल । कालेज और हस्पताल के भवनो के लिये मैसूर सरकार द्वारा भूमि प्राप्त की जा रही है । इनमे २० प्रतिशत गैर कैथोलिक छात्रो को स्थान देने का प्रस्ताव है ।

—हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली, ७ अक्टूबर १९६४

इस समाचार से ऐसा प्रतीत होता है कि कालेज और हस्पताल विश्व कैथोलिक सम्प्रदाय की ओर से धर्म निरपेक्ष भारत को एक उपहार के रूप मे दिया जा रहा है जिसमे केवल २० प्रतिशत स्थान गैर कैथोलिक छात्रों को देने का प्रस्ताव है । यह प्रस्ताव मात्र है और यह सीटें भी सुरक्षित नहीं की गई हैं बल्कि गैर कैथोलिक छात्रों की आड मे यह सीटें भी अन्य ईसाई सम्प्रदायों को दी जायें तो आश्चर्य नहीं, यही इस उपहार का वास्तविक

(शेष पृष्ठ २१ पर)

भारत पर पोप की चढ़ाई

(ले०—श्री जगतकुमार जी शास्त्री)

पिछले कुछ वर्षों मे, भारत मे हो रहे ईसाई मत प्रसार की ओर भारतीय नेताओ और भारतीय जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। भारत में ईसाई मत प्रसार का इतिहास लगभग चार सौ वर्ष पुराना है। और भारतीय जनता की ओर से उसके प्रतिरोध का आन्दोलन भी इतना ही पुराना है। भारत के दक्षिणी प्रदेशों मे, पूर्वी प्रदेशों मे, बिहार, मध्य प्रदेश और मध्य प्रदेश और मध्य भारत, जहा जहा भारतीय लोग कुछ अधिक सख्या मे ईसाई बने हैं, वहा वहा भारत के स्वतन्त्र होने के बाद कुछ नये नये, चौकाने वाले राजनैतिक आंदोलन भी उठे हैं। वहा पर भारतीय हितो के घातक लक्षण प्रगट हुए हैं। नाग प्रदेश का विद्रोह तो खुलकर सामने आ गया। छोटा नागपुर मे भी विद्रोह की ज्वाला भडकाई गई थी। और भी कई स्थानो पर लावा पिघल रहा है।

भारत विभाजन की दुर्घटना का पजाब और बगाल पर जो बुरा प्रभाव पडा है उससे भिन्न प्रकार का बुरा प्रभाव उन प्रदेशों मे पडा है, जहां विदेशी तत्व ईसाइयत के रूप मे भारत विरोधी सेनायें बना रहे हैं। अंग्रेजी सरकार ने भी ईसाइयो को अपने लगर का खूटा बनाने का षड्यन्त्र रचा था। उन्हें परिस्थिति से विवश होकर जाना पड़ा, परन्तु वे भी अंग्रेजी और ईसाइयत की आड मे दोबारा आने के स्वप्न देख रहे है। भारत के ईसाई मत के घटक भी येन केन प्रकारेण अपने ईसाई राज्य बनाने के कुचक्र चला रहे हैं। केरल मे तो शक्ति परीक्षा हो भी चुकी है। विदेशी रुपये और विदेशी प्रभाव का उपयोग करके भारतीय ईसाइयो की जन सख्या बढाने के जो तोड यत्न चुपके चुपके किये जा रहे हैं। वर्षों के काम दिनो मे करने के लिये कार्यकर्ताओ की सख्या भी बहुत अधिक बढ़ा दी गई है। अंग्रेजी राज्य मे भारत मे ईसाई मत प्रचार का जो नेतृत्व अंग्रेजो के हाथ मे था वह नेतृत्व आजकल अमेरीका ने ग्रहण कर रखा है। अमेरीका भारत में इन्ही क्षेत्रों में अंग्रेजों की सी स्थिति प्राप्त करने के लिए सचेष्ट है। चीन के आक्रमण के पश्चात् उसे सफलता भी मिली है।

पिछले पचास वर्ष मे ज्यों ज्यो स्वतन्त्रता का आन्दोलन बढ़ता रहा था, त्यो त्यो ही ईसाइयत के प्रचार का आन्दोलन भी जोरदार बनता गया था। पानी की तरह रुपया बहाया गया। उचित और अनुचित का विचार छोडकर सभी उपाय काम मे लाये गये। भारतीय जनता की विशेष साम्प्रदायिक स्थिति मे ईसाइयो को भी महत्व-पूर्ण स्थान मिले वह भी एक निर्णायक साम्प्रदायिक घटक बने। उलझनो मे यह नई उलझन ईसाइयत की पैदा की गई है।

यहां पाठक यह स्पष्ट रूप में जान लें कि यह सब कार्य भारत की तत्कालीन विदेशी सरकार की इच्छा योजना और उसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायता के आधार पर ही किया गया था। वह सरकार क्यो इस कार्य मे इतनी अधिक लिप्त हुई थी ? इस प्रश्न का उत्तर यह है वह भारत की स्वराज्य की माग को अधिक से अधिक समय तक टालना चाहते थे वे भारत मे अपने सहधर्मियों की सख्या बढ़ाकर, उनसे अपने स्थायित्व की आशा करते थे। तभी तो उन्होने भारतीय ईसाइयो के दिमाग मे ऐसी हवा भर दी थी, जिसके कारण बहुत से ईसाई भारत की स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले लार्ड हेस्टिग्ज, लार्ड क्लाइव और लार्ड डलहौजी प्रभृति विदेशियो को अपने सगे चाचा, बाबा, दादा मानने लगे थे। और अपने सच्चे पूर्वजो से विमुख हो गये थे।

अंग्रेज जो कुछ चाहते थे, वह तो नहीं हो सका। तथापि ईसाइयत को जितना बढ़ावा वे दे सकते थे, दे गये। अब अपने कार्य का भार बडी चतुराई से उन्होने अमरीका को सौंप दिया है। यही कारण है कि अंग्रेज तो गये, पर अंग्रेजियत नहीं गई। अमेरीका के वर्तमान गोरे निवासी अंग्रेजों और अन्य यूरोपवासियों के ही वंशज हैं।

यद्यपि अंग्रेजों, अमेरीकनों और अन्य ईसाई राष्ट्रों में राजनीति और व्यापार स्पर्धा के कारण बहुत से मतभेद भी हैं। परन्तु भारत में ईसाई मत के प्रसार में वे सभी एक और एक दूसरे के सहयोगी हैं। इस विषय में अपने अपने मतभेदों को भुलाकर काम करने की उनमें उत्तम क्षमता है। भारत सरकार की तथाकथित धर्म निरपेक्षता की नीति ने उनके पाव यहां विशेष रूप से जमा दिये हैं। भारत सरकार भी उनके विषय में कोई प्रभावपूर्ण पग उठाकर यह सिद्ध नहीं करती कि धर्मनिरपेक्षता के कोई और अर्थ भी हो सकते हैं।

भारतीय ईसाइयों ने बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको बदला नहीं है। आज भी उनके रंगढंग वे ही हैं, जो कि भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व थे। हमें कहने दिया जाय कि भारतीय ईसाइयों में राष्ट्रीय चेतना और सूझ-बूझ का अभाव है। आज भी भारतीयों से दूर हैं। वे विदेशी ईसाइयों को अपने अधिक समीप समझते हैं। इस प्रकार भारतीय ईसाई हमारे गुमराह भाई हैं। उनकी वर्तमान विचारधारा उनके लिये भारतवासियों के लिये भारी हानिकारक है। क्योंकि उनका नेतृत्व आज भी विदेशियों के हाथों में है, उनके धर्मगुरु भी विदेशी हैं, ऐसी अवस्था में वे भारत हितैषी कैसे हो सकते हैं? भारत से, भारत के इतिहास से, भारत के अध्यात्मवाद से वे अपना नाता ही नहीं तोड़ चुके, घृणा भी करते हैं।

जैसे मुसलमान विदेशी आदर्शों के भक्त होने के कारण भारत के लिये एक बड़ा खतरा सिद्ध हो चुके हैं, वैसे ही ईसाई भी भारत के लिये एक बड़ा खतरा है। भारत में ईसाइयत के प्रसार के आयोजन भारत की बाल स्वतन्त्रता के लिये घोर हानिकारक एवं अपमानजनक हैं। प्रत्येक भारत हितैषी नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह विदेशी शक्तियों द्वारा संचालित इस ईसाईमत प्रसारक अभियान को बन्द करने के लिये प्रयत्न करे। भारतीय ईसाइयों पर तब तक सतर्क दृष्टि रहनी चाहिये, जब तक कि वे अपने आपको विदेशी प्रभावों से मुक्त न कर लें। भारत के ईसाइयों की रगों में भी भारत के ही प्राचीन पुरुषों का खून है और भारतीय संस्कृति, इतिहास और भूमि पर उनका भी अधिकार है। यह हम भी मानते हैं परन्तु इस देश को और इस देश के करोड़ों वासियों के हितों को नष्ट करने का अधिकार उन्हें नहीं है। वे भारतीयता के सभी लाभों को प्राप्त करें। विदेशियों के इशारों पर नाचें नहीं।

भारतवासियों को ईसाई बनाने के लिये पादरी लोग देश, काल और पात्र भेद से अपनी नीति बदल देते हैं, नये-नये साधनों का उपयोग करते हैं, और अपने विदेशी मालिकों को सतुष्ट करने का यत्न भी करते हैं। ईसाई मत में कोई ऐसा तत्व नहीं है जो भारत में प्रचलित वैदिक-ईश्वरवाद, अध्यात्मवाद, श्रम विभाग, आश्रम-विभाग, योग विद्या, रहस्य विद्या, दर्शन और विश्व-बन्धुत्व के सार्वभौम सिद्धान्तों से टक्कर ले सके। ईसाइयों की बाइबिल और उनके मन्तव्य वेदों के मुकाबिले में ठहरने वाले नहीं हैं। ईसाइयत का इतिहास भी घृणित हत्या काण्डों से ओत-प्रोत है। वे हत्याकाण्ड, जो धर्म के नाम पर ईसाइयों ने ही ईसाइयों पर किये थे। यदि युरोप के ईसाई मतमतान्तर भारत में फैलेंगे और शक्ति प्राप्त करेंगे, तो यहां भी युरोपीय इतिहास के मध्य युग जैसे ही भीषण हत्याकाण्ड होंगे।

हमें अपने प्रचारक जीवन में ईसाइयों की शैलियों, रीतियों, नीतियों, प्रणालियों और चालों को समीप से देखने के पर्याप्त अवसर मिले हैं। उनकी प्रचार-प्रणाली का थोड़ा सा परिचय हमने भारतीय जनता के सामने प्रस्तुत किया है। उनके धार्मिक मन्तव्यों और ऐतिहासिक स्वरूप का चित्र भी हमने पृथक् पुस्तिकाओं में किया है। उनकी चालों को समझ कर हम उनके षडयन्त्रों को विफल कर सकते हैं। रोग को छोटा न जानो। शत्रु को छोटा समझ कर उसकी उपेक्षा न की जाये। पाकिस्तान और चीन से हमारा अघोषित युद्ध हो रहा है। हमारे देश में आपदकालीन स्थिति मौजूद है। फौजी और युद्धकाल के कानून लागू हैं। ऐसे संकट के समय में रोम के पोप ने भारतीय ईसाइयों को अपनी ओर फोड़कर हमारे देश पर चढ़ाई की है। हम जानते हैं कि पोप ईसाइयों का एक महन्त और गुरु है, परन्तु हम यहां उसका स्वागत कैसे कर सकते हैं। हम तो उसके आगमन को भारत के लिये घोर अशुभ समझते हैं। पोप यहां अपनी पोल लीला फैला कर हमारी संकट-काल की स्थिति से अनुचित लाभ उठाने

का यत्न करेगा ही। यदि पोप अपने आप को धर्म का मर्मज्ञ समझता है तो वह हमारे देश के पाण्डित्य को पहले अपने वश मे करे। वह वेदो की शिक्षाओं से बढ़कर कोई शिक्षा बताये। वह बुद्धिवाद की कसौटी पर बाइबिल को और उसके मन्तव्यों को कसे। विदेशी तोपों की गड़गड़ाहट और सोने चादी की झकार का जादू चलाकर वह हमारे देश के अज्ञानग्रस्त पिछडे हुए, जगल पहाड निवासियो को ही चुपके से मूण्डना क्यों चाहता ? भारतीयता के विषय में वह जानता ही क्या है ? हमे ऐसा पोप नहीं चाहिये। पोप-लीला यहा बहुत है।

आज के भारत की माग तो यह है कि भारत मे से ईसाइयत को समाप्त कर दिया जाये क्योकि वह भारतीय अध्यात्मवाद के सामने अत्यन्त तुच्छ है। इसलिये समाप्त कर दिया जाये कि ईसाई मत घोर अवैज्ञानिक मन्तव्यो को मान्यता मनवाता है। इसलिये समाप्त कर दिया जाये कि ईसाई मत का इतिहास खून खराबो से परिपूर्ण है, इसलिये समाप्त कर दिया जाये कि भारत मे इस मत का प्रसार धार्मिक आधार पर नहीं, अपितु राजनतिक स्वार्थों को साधने के लिये महाभ्रष्ट प्रणालियो के आधार पर किया गया है। इसलिये समाप्त कर दिया जाये कि इसका नेतृत्व भारत विरोधी विदेशियो के हाथ मे है। ईसाइयो की चालो को विफल बनाने के लिये भारतीय जनता क्या करे ? हम कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे, परन्तु नहीं करते। प्रत्येक भारतीयता का प्यारा अपने कर्तव्य का निश्चय अपने आप ही करे। अपनी अन्तरात्मा से प्रकाश प्राप्त करके उठे और कर्म क्षेत्र मे, धर्म क्षेत्र मे बढ़े।

मुसलमानो के विषय मे दो बातें मुख्य हैं-पहिली यह कि मुसलमानों को भी ईसाई बनाया तो जाता है, परन्तु भारत मे मुसलमानो को ईसाई बनाने का कोई अभियान इस समय चालू नहीं है। एक तो इसलिये कि मुसलमानो के ईसाई बनने की सम्भावनायें कम है, दूसरे ईसाई पादरियो का तथा उनके विदेशी मालिको को मुसलमान की ओर से इस समय या निकट भविष्य मे कोई खतरा नहीं है। उनके हितो मे टकराव नहीं है। अपने इतिहास और दर्शन की दृष्टि से तो इस्लाम और ईसाइयत एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। इस समय तो हिन्दुओ की शक्ति को घटाना और वैदिक धर्म के महत्व को मिटाना ही ईसाइयो और मुसलमानो ने अपना ध्येय बना रखा है। मुसलमानों के विषय मे दूसरी बात यह है कि हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये मुसलमान भी सैकडो वर्षों तक लगभग उन ही उपायो से काम लेते आ रहे हैं, जिनसे ईसाई काम ले रहे हैं। मुसलमान भारतीय होने पर भी भारतीय हितो की रक्षा के लिये कभी भी आगे नहीं बढ़े। वे तो सदा से ही हमारे शत्रुओं के मित्र हैं। हमे मुसलमानो की ओर से भी सावधान रहना है। ईसाइयों के प्रतिरोध के उत्साह मे मुसलमानो की ओर से होने वाले खतरों की उपेक्षा कोई भारतीय राष्ट्र का प्रेमी कर भी कसे सकता है। हमारे सामने तीन मोर्चे हैं—पाकिस्तान चीन और पोप की सेनायें। ●

(पृष्ठ १८ का शेष)

रहस्य है। विश्व कथोलिक सम्प्रदाय इतना अबोध नहीं है कि अकारण ही उपहार बाटता फिरे, जितनी अबोध इस उपहार को ग्रहण करने के लिये समुत्सुक भारत सरकार है। इस उपहार के पीछे क्या रहस्य छिपा है यह इस कैथोलिक सूचना से स्पष्ट है--

भारत सरकार मे एक उच्चस्तरीय क्रिश्चियन मेडिकल कालेज की स्थापना के लिये ईसाई पादरी इस आधार पर तीव्र आन्दोलन कर रहे है कि भारत सरकार द्वारा स्थापित सरकारी मेडिकल कालिजो मे सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक प्रभाव पैदा करने की सुविधायें नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इनमे हिन्दुओ, मुसलमानो तथा अन्य धार्मिक वर्गों को जनसख्या के अनुपात के आधार पर इस तरह प्रवेश की व्यवस्था की गई है कि ईसाइयों के लिये (अत्यन्त अल्प सख्यक होने के कारण) वहा प्रवेश का अवसर नहीं है। साथ ही मिशन हस्पतालो के लिये शिक्षित ईसाई डाक्टरो की बहुत कमी अनुभव की जा रही है और ग्रामीण क्षेत्रो मे तो उनकी बहुत ही जरूरत है।

—लेमैन फारेन मिशन इन्क्वायरी रिपोर्ट–रिथिंकिंग मिशनन्स ए लेमैन्स इन्क्वायरी आफटर १०० ईयस, पृष्ठ २०९

कैथोलिको की योजनाओं का यही भेद है। क्या भारत सरकार अब भी इन कथोलिक सम्प्रदाय को खुल खेलने की छूट देगी ? ●



ईसाईयत आर्य हिन्दू धर्म के सामने चकनाचूर!

[अमेरिका से आये सबको ईसाई बनाने के लिये मि० स्टोक्स वैदिक धर्म से प्रभावित होकर हिन्दू सत्यानन्द कैसे बन गये और जीवन भर वैदिक कैसे रहे ? हिन्दू धर्म के अद्भुत चमत्कार की एक महान् आश्चर्यजनक बिल्कुल सत्य घटना]

[लेखक–श्री भक्त रामशरणदास पिलखुवा]

यह ईसामसी के चेले पादरी तभी तक बढ़चढ़कर बातें करते हैं और तभी तक उछलते कूदते हैं जब तक इनका किसी सच्चे मुँहतोड़ उत्तर देने वाले आर्य विद्वान् से पाला नहीं पड़ता। इन ईसाई पादरियों में कोई दम खम नहीं होता। यह कलके मनमाने बिगड़े दिमागों से कल्पित बनाये गये मतमतान्तर चला अनादि काल से चले आये वैदिक धर्म के सामने कैसे टिक सकते हैं ? ईसाईयत वैदिक धर्म के सामने कैसे चकनाचूर होकर रह गई इस सम्बन्ध की एक महान आश्चर्यजनक बिल्कुल सत्य घटना हमें माननीय श्री शिवराम सेवक सम्पादक वीरभारत ने पिलखुवा हमारे स्थान पर पधारने पर सुनाई जो हम यहां पर दे रहे हैं आशा है पाठक इसे ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे। उन्होंने बताया –

अमेरिकन अंग्रेज पादरी मि० स्टोक्स हिन्दू धर्म की शरण में कैसे आये ?

यह लगभग सन् ९०२ की बात है कि अमेरिका के एक कालेज के एक प्रिंसिपल ने बाहर से तीन कोढ़ी पकड़ करके अपने कालिज में मगवाये जिनके हाथ पैरों में पीप खून, मवाद चू रहा था। इन तीनों कोढ़ियों को लाकर कालिज के अहाते में खड़ा कर दिया गया। कालिज का घन्टा बजा तो कालिज के सभी विद्यार्थी आ आकर लाइन में खड़े हो गये। प्रिंसिपल ने सबको उन तीनों कोढ़ियों को दिखाते हुये कि जिनके हाथों से पीप, मवाद, लहू टपक रहा था, पुकार कर कहा कि तुममें से ऐसा कोई विद्यार्थी है कि जो आगे आये और इन तीन इन्सानों की जिन्दगी को बचाए ? बड़े बड़े डाक्टरों की यह राय है कि यदि कोई विद्यार्थी इनके हाथों को अपना मुंह लगाकर अपने मुख से इनके लोहू और पीप को, मवाद को चूस ले, पी जाय तो इन बेचारे इन्सानों की जिन्दगी बच सकती है अन्यथा नहीं।

सब विद्यार्थियों ने यह सब बात सुनीं और सुनकर आश्चर्यचकित रह गये और सुन्न रह गये। उनमें से झट से एक विद्यार्थी यह सुनकर आगे बढ़ा और उसने तुरन्त अपने हाथों से एक कोढ़ी का हाथ अपने हाथ में पकड़कर अपना सर झुकाया और उस कोढ़ी का लोहू पीप पीने को अपना मुंह ज्योंही नीचे को झुकाया और पीने को उद्यत हुआ तो झट से पीछे से आकर तुरन्त प्रिन्सिपल ने उसे गर्दन से पकड़ लिया और फिर प्रिन्सिपल ने उससे कहा कि ऐ विद्यार्थी तुम मेरे टैस्ट में कामयाब हुए और मैं तुमसे यह चाहता हूं कि तुम अपनी सारी जिन्दगी ईसाई-मत के प्रचार के लिये वक्फ कर दो। उस विद्यार्थी ने बड़ी प्रसन्नता से उसी समय सबके सामने यह प्रण किया कि मैं प्रण करता हूं कि अपनी सारी जिन्दगी ईसाई-यत के प्रचार में लगा दूंगा। उस विद्यार्थी का नाम था मि० स्टोक्स।

मि० स्टोक्स की ड्यूटी हिन्दुस्तान में ईसाईयत के के प्रचार में लगी और वह अब अमेरिका से चला और बाम्बे में आकर उतर गया। और हिन्दुस्तान में आकर वह सुप्रसिद्ध अंग्रेज मि० दीनबन्धु एण्ड्रूज से मिला। हिन्दुस्तान का नक्शा सामने रखकर विचार किया गया कि कहां-कहां पर डेरा डाला जाय और किस इलाके में जा-जाकर ईसाइयत का प्रचार किया जाय और काम किया जाय ? अन्त में दोनों के परामर्श से यह निश्चय हुआ कि शिमले के करीब पहाड़ियों में प्रचार का सेन्टर कायम किया जाय। शिमला से लगभग १५ मील कोटखाई में आकर मि० स्टोक्स ने अपना सेन्टर कायम

किया और ईसाइयत का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। जिस स्प्रिट से उस मि० स्टोक्स नवजवान ने वहां पर काम किया वह बस उसी का हिस्सा था। यह नवजवान मि० स्टोक्स अंग्रेज पादरी अपने गले में दूध की शीशी, पानी की शीशी लटकाता और एक डिब्बे में पकी हुई खिचड़ी लेता और थैले में दवाइयां लेता और पैदल ही पहाड़ी जातियों के गांवों में पहुंच जाता और इन पहाड़ी लोगों से और बीमार लोगों से बड़े ही प्रेम से जाकर मिलता और उन्हें ईसूमसीह की गाथा सुनाता और जो बीमार होते उन्हें वह स्वयं अपने हाथों से दूध पिलाता और वह खिचड़ी खिलाता और यदि उनके पशु प्यासे होते तो उन्हें खोलकर अपने हाथों से ले जाता और उन्हें पानी पिलाकर लाता बांधता और दवा देता और उनके दुख दर्द में बड़ा काम आता। अब तो सब उससे बड़े ही प्रसन्न और बड़े ही प्रभावित हुये और धड़ाधड़ हिन्दू से ईसाई बनने लगे और बड़े जोरशोर से खूब धुआंधार इसाइयत का प्रचार होने लगा और चारों ओर उसकी बड़ी ख्याति फैल गई।

दूसरे दिन क्या हुआ ?

बहुत दिन जब इस प्रकार ईसाईयत का प्रचार करते हुये गुजर गये तो एक दिन क्या हुआ कि मद्रास के एक सन्त पूज्यपाद श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज जो भूत-पूर्व रिटायर्ड लाबल सजन थे, हिमालय की अपनी यात्रा को जा रहे थे। उधर से अंग्रेज पादरी मि० स्टोक्स साहब सपरिवार अपने बाल-बच्चों के साथ सैर करने के लिये जा रहे थे तो रास्ते में आगे उन्हें पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज मिल गये। मि० स्टोक्स साहब ने स्वामी सत्यानन्द जी महाराज से पूछा कि स्वामी जी महाराज आप कहां पर जा रहे हैं ?

उत्तर में स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने उन्हें बताया कि मैं हिमालय की यात्रा करने के लिये जा रहा हू मि० स्टोक्स ने स्वामी जी महाराज से कहा कि स्वामी जी महाराज यह एक पहाड़ी इलाका है और अब शीघ्र ही सूर्य भी डूबने वाला है और सूर्य के डूबते वक्त पहाड़ी इलाके में सफर करना बड़ी गलती है इसलिये आप रात को आज मेरी कुटिया पर रह जाओ और सुबह होने पर जहां चाहो चले जाना। स्वामी जी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और स्वामी सत्यानन्द जी महाराज रात को मि० स्टोक्स साहब की कुटिया पर ही रह गये।

ईसाइयत हिन्दू धर्म के सिद्धान्त के सामने चकनाचूर कैसे हुई ?

रात्रि को पूज्य स्वामी श्री सत्यानन्द जी महाराज ने अपने थैले में से अपनी एक गीता की पोथी निकाली और उसका पाठ करने लगे। स्टोक्स परिवार ने स्वामी जी महाराज से गीता सुनने की जिज्ञासा प्रगट की तो पूज्य स्वामी जी महाराज ने उन्हें गीता सुनाई और गीता के सम्बन्ध में काफी देर तक खूब सत्संग हुआ जिससे मि० स्टोक्स साहब और उनका सारा परिवार गीता की कथा से और स्वामी जी के सत्संग से बड़ा ही प्रसन्न और प्रभावित हुआ।

प्रात काल जब स्वामी जी महाराज नहा धोकर के अपनी हिमालय की यात्रा करने के लिये जाने को तैयार हुए तो स्टोक्स परिवार ने पूज्य स्वामी जी महाराज को घेर लिया और उनका रास्ता रोक लिया। रात के सत्संग का उनके मन के ऊपर बड़ा असर था। स्टोक्स परिवार ने पूज्य स्वामी जी महाराज से प्रार्थना की कि स्वामी जी महाराज आप हिमालय की यात्रा के लिये जा रहे हैं पर महाराज यह भी हिमालय है और यहां पर भी कोई किसी प्रकार की मोटर की रेल की खड़खड़ नहीं है और कोई किसी प्रकार का भी उपद्रव नहीं है और यहां पर बिल्कुल एकान्त जगह में कुटिया है इसलिये आप यहां पर कुछ दिन और निवास करने की कृपा करें और बाद में आप जहां जाना चाहो चले जाना।

पूज्य स्वामी जी महाराज ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और स्वामी जी स्टोक्स साहब के पास में ही ठहर गये। अब क्या था अब तो स्टोक्स परिवार में नित्य प्रति रात को गीता की कथा और सत्संग चलने लगा, ज्यों-ज्यों स्वामी जी महाराज के श्रीमुख से भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निकली गीता की कथा सुनते गये और स्वामी जी का सत्संग करते गये त्यों-त्यों उनके भाग्योदय होने गये और वह बड़े ही प्रभावित होते गये।

एक दिन पूज्य स्वामी जी महाराज ने गीता के इस फलसफे पर रोशनी डाली और प्रकाश डाला कि भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि जो मनुष्य खुद कमाकर

स्वय ही खा जाता है तो वह मनुष्य अन्न नहीं खाता बल्कि वह पाप खाता है। अब क्या था अब तो स्टोक्स साहब के सामने एक ओर हजरत ईसामसी के और दूसरी ओर भगवान श्रीकृष्ण के उपदेश सामने थे और उन्होने इस पर खूब विचार किया और आखिर गीता के फलस्फे के सामने स्टोक्स साहब को अब तो बरबस झुकना पडा और वह नवजवान मि० स्टोक्स अंग्रेज पादरी जो अपने देश अमेरिका से ईसाइयत के प्रचार के लिए कसम खाकर सबको ईसा मसीह का भक्त बनाने के लिए आया था, एकदम से उसके ऊपर आर्य धर्म का ऐसा जादू चढा कि वह अपनी ईसाइयत, ईसामसीह और बाईबिल आदि सब को ही एकदम से तिलाञ्जलि देकर और सबको ठुकरकर आर्य धर्म मे प्रवेश कर गया। आर्य धर्म के सत्य सिद्धान्तों के सामने ईसाई मत ठहर नहीं सका। अब तो जिन पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की असीम कृपा से और जिनको गीता की कथा और अद्भुत सत्सग से उनका जीवन पलटा था अब उन्हीं के नाम पर मि० स्टोक्स का नाम भी बदल कर सत्यानन्द ही रखा गया और वह आगे जाकर इतना प्रभु का अनन्य भक्त हुआ कि उसने अपनी कोठी मे ही एक मन्दिर बनवाया और उस मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए पजाब से पण्डितो को बुलवाया जिसमे प० श्री मनोहर लाल कूरिया बी० ए० और प० श्री गणेशदत्त शास्त्री जी महाराज आदि पण्डितगण वहा पर गये और बडे ठाठ-बाट से सब कार्य हिन्दू धर्मानुसार चला और जब तक हिन्दू पण्डितो द्वारा यह सब कार्य होता रहा, स्टोक्स साहब चारपाई पर नहीं सोये और जमीन पर ही सोते रहे और उन्होने भोजन भी नहीं किया, बराबर फलाहार करते रहे और उन्होंने बराबर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और मन्त्र का बराबर जप करते रहे और पूर्ण रूप से वैदिक धर्म की शरण मे आ गये और श्री कृष्ण भक्त बन गये।

आपका यह नित्य प्रति का नियम था कि आप प्रात काल उठते और बाजा तबला, झाझ, मृदग के साथ प्रभु को मिलकर प्रार्थना करते, भजन करते और गीता का पाठ करते और गदगद् हो जाते थे। इस प्रकार अपने को हिन्दू धर्म की शरण में आया हुआ देखकर वह बडी सच्ची सुखशान्ति का अनुभव करते थे। यद्यपि अब उनका पान्च भौतिक शरीर नहीं रहा कुछ दिन हुए तब उनका शरीर छूट गया है पर आज भी उनका परिवार उस प्रकार पहिले की भांति नित्यप्रति प्रात काल की बेला मे उठकर हिन्दू धर्म के अनुसार प्रभु की प्रार्थना आराधना करता है और गीता का पाठ करता है और हिन्दू धर्मानुसार चलने मे ही महान गौरव का अनुभव करता है। मैं स्वय मि० स्टोक्स साहब से मिला था और मेरी उनसे खूब बातें भी हुई थीं। यह है भारत का हिन्दू धर्म का महान आश्चर्य-जनक अद्भुत चमत्कार कि जिसने अमेरिका के इतने बड़े अंग्रेज को कि जो जीवन भर की कसम खाकर ईसाइयत के प्रचार के लिये भारत आया था पर वैदिक धर्म के तेज के सामने, गीता के तेज के सामने वह हतप्रभ हो गया और हिन्दुओं को पथ भ्रष्टकर ईसाई बनाने के बदले स्वय ही ईसामसीह के भक्त होने के बदले श्रीकृष्ण का भक्त हो गया और बाईबिल के पाठ की जगह गीता का पाठ करने लगा और गिरजे मे जाने की जगह अपनी कोठी मे वैदिक मन्दिर बना प्रभु भक्ति करने में तल्लीन हो गया।

अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्मप्रसार कांग्रेस पर पाबन्दी लगे—

हमारी धर्मनिरपेक्षता एवं हमारे समाजवाद के खिलाफ पोप का षड्यन्त्र

सभी देश-भक्त भारतीयों से तात्कालिक अपील

(ले०—ब्र० दत्तमूर्ति मधुराश्रम गोरेगाव बम्बई ६२)

अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्मप्रसार कांग्रेस पर पाबन्दी लगे। भारत पर एक बड़े पैमाने पर आक्रमण होने जा रहा है।

हमारी प्रिय मातृभूमि के सम्पूर्ण इतिहास के किसी भी अन्य आक्रमण से यह आक्रमण अत्यन्त विघातक, अनन्त गुना अधिक खतरनाक और सर्वनाशकारी होगा।

दो वर्ष पूर्व चीनियों ने भारत पर आक्रमण किया था परन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र तत्काल ही एक व्यक्ति की नाईं आक्रामकों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। प्रायश प्रतिदिन पाकिस्तानी हमारी सरहदों को पार करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु सरकार और हमारी जनता इन आक्रमकों को बाहर खदेड़ने को सदैव सज्ज है। उत्तर से आने वाले आक्रमकों के खिलाफ भारत को ससार के सभी लोकतत्री एव शांतिप्रिय लोगों का नैतिक बल प्राप्त है। उत्तर से होने वाले किसी भी आक्रमण के लिए सरकार एव जनता जागरूक है और परिणामत इस प्रकार के आक्रमण की सभावना यद्यपि वह टली तो नहीं तो भी दूर की बात हो गई है।

इस नये आक्रमण का स्वरूप—परन्तु इस नये शक्ति वाली सुनियोजित ढग से और सम्पूर्ण शक्ति के साथ किये जाने वाले महान् आक्रमण के प्रति क्या हम सजग हैं ?

बीस-तीस हजार की सेना द्वारा भारत पर आक्रमण होने जा रहा है और यह आक्रमण चौतरफा किया जा रहा है।

उनकी खुद की जबानी, भारत मे ऐसे पचमस्तम्भी क्याक लाख मनुष्य एव औरतें हैं जो उनके लिए सब कुछ करने—उन्हें नैतिक एव आर्थिक सहाय्य देने को तत्पर हैं।

और इस आक्रमण के बाबत सबसे दुखदायी स्थिति तो यह है कि सरकार और जनता उनके सिर पर मडराने वाली इस भयकर विपत्ति के प्रति जागरूक तो है ही नहीं, अपितु वे खोललाम इन आक्रामकों को स्वागत,सहाय्य और आर्थिक मदद देने जा रहे हैं। इससे बढ़कर विश्वासघात और लज्जा की बात और क्या हो सकती है कि हम उन्हीं का स्वागत करें जिन्होंने ५०० वर्ष पूर्व हमें छल रचणाओ और कत्लेआम द्वारा गुलाम बनाने के प्रयास किये और आज दुबारा भी अब वे बिलकुल उन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर आ रहे हों।

और यह आक्रमण है इस वर्ष के नवम्बर मास में बम्बई मे होने जा रही 'अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्म प्रसार कांग्रेस'। और वह है ईसाई धर्म पर मर मिटने वाले, विश्व के सभी भागो के रोमन कथोलिकों को हमारी भूमि पर सगठित करना, जिसका मूल उद्देश्य और ध्येय है 'भारत को ईसाईभूमि' और यहा के लोगों को राष्ट्रीयत्वहीन बनाना, ताकि हम कैथोलिक गिरजाघर और पुर्तगाल सहित सभी कैथोलिक साम्राज्यवादी शक्तियों के हित में गुलामों की तरह काम करते रहें।

इस कांग्रेस में आने वाले गणमान्य और ख्यातिप्राप्त व्यक्तियो का स्वरूप—ये ईसाई धर्मयोद्धा आ रहे हैं सभी दिशाओं से और सभी देशो से, यहाँ तक कि पुर्तगाल से भी। उसी कांग्रेस का अधिकृत बयान देखिये कि इन लोगों में होंगे 'गणमान्य और ख्यातिप्राप्त व्यक्ति'। सचमुच ही



होंगे–गणमान्य और ख्यातिप्राप्त व्यक्ति–गुलाम देशों की जनता को स्वतंत्रता दिलाने वालों में से नहीं, विश्व में चिरस्थायी शांति स्थापना हेतु प्रयत्नशील योद्धाओं में से नहीं, निरक्षरता और गरीबी का मूलोच्छेदन करने वाले योद्धाओं में से नहीं–अपितु होंगे–रोमन कैथोलिक ईसाई चर्च के हेतु धर्मान्ध बलात् धर्मान्तरण करने वालों में से गणमान्य और ख्यातिप्राप्त व्यक्ति साथ ही साथ प्रगतिशील विचारों के घृणा करने वालो में से, जिनको धार्मिक सहिष्णुता, लोकतंत्र के उद्देश्य, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अरुचि होगी, जिनकी दृष्टि में संसार के पददलितों की राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता होगी महज एक ढकोसला। वे गणमान्य और ख्यातिप्राप्त व्यक्ति बलात होंगे उन धार्मिक और राजनैतिक अत्याचार करने वालो के और होंगे रोमन कैथोलिक चर्च के लिए यत्नशील पुर्तगाल जैसे साम्राज्यवादियों के गुप्तचर एवं चमचे।

ये वे ही लोग हैं जिन्होंने फ्रान्को और सालाजार को सक्रिय योगदान दिया है लाखों की कत्लआम करने के लिए। ये वे ही लोग हैं जो दक्षिण वियतनाम के बुद्ध धर्मावलम्बियों के धर्मचक्र में सक्रिय योग और प्रोत्साहन करते हैं, जो हमारे नागाप्रदेश में विद्रोहियों को उकसाते हैं, जो कांगो और अंगोला और पुर्तगाल के अफ्रीकी उपनिवेशों में होने वाले अत्याचारों के लिए उत्तरदायी हैं। ये वे ही लोग हैं जो कि उस अभिशापित पुर्तगीज शासन से गोवा की मुक्ति के पश्चात् भी वहां घृणित बलात धर्मान्तरण करने वालों के आधार स्तम्भ एवं भारत में भयकर धर्मान्तरण के संस्थापक सेंट जेवियर के रंगीन चित्रों को बांटते हैं और हमारे प्राणप्रिय भगवान बुद्ध की मूर्ति को खंडित कर ठोकरें लगाते हैं। ये वे ही लोग हैं जिनके निकृष्टतम उकसाने से कन्याकुमारी में स्वामी विवेकानन्द स्मारक को गतवर्ष बिगाड़ा गया। समय ही दर्शायेगा कि ये वे ही लोग हैं जो गोवा में वर्तमान में होने वाले बम-विस्फोटों के लिये उत्तरदायी हैं। यह विशेष उल्लेखनीय है कि भारत के या विश्व के किसी भी रोमन कैथोलिक ईसाई गिरजाघर ने वियतनाम में बुद्धमतावलम्बियों के साथ किये जाने वाले धार्मिक छल या विवेकानन्द स्मारक के खंडन पर या गोवा में किये बम विस्फोटों की निन्दा करने की बाबत परस्पर चुप्पी साध रखी है। यह उनका कार्य नहीं है। उनका कार्य तो है निकृष्टतम साधनों द्वारा केवल अज्ञानी जनता का ईसाई धर्मान्तरण करना ताकि वे सेवा करें।

गुलाम बन, रोमन चर्च और साम्राज्यवादी शक्तियों की

हम सही मानों में धर्मनिरपेक्ष थे और हैं–भारत हिन्दुओं का देश है–३५ करोड़ हिन्दुओं का पैंतालीस करोड़ की जनसंख्या में से। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। इसे स्वीकार करने में कोई लज्जा की बात नहीं है। मुस्लिम दलों एवं ईसाई धर्मप्रचारकों के आक्रमणों के होने पर भी, छः सौ वर्षों के विदेशी शासन एवं बलात् धर्मान्तरण को शासकों द्वारा प्रत्यक्ष सहायता पहुंचाने पर भी एवं जिन्होंने धर्मान्तरण करना प्रमाण्य किया, ऐसे व्यक्तियों के अमानुषिक छल होने पर भी–हिन्दू धर्म की यह ठोस चट्टान प्रायः अभेद्य रही है। अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्म प्रसार कांग्रेस का उद्देश्य है इसी अभेद्य चट्टान को और उसके साथ ही साथ परिश्रमपूर्वक प्राप्त स्वतंत्रता को सुरंग लगा देना।

हम हिन्दू परम्पराओं और स्वभाव से सभी धर्मों का आदर करने वाले रहे हैं। शताब्दियों तक, हमने अपने पुरातन और पवित्र वैदिक धर्म को समृद्ध व्यापक और विशाल बनाने के लिये दूसरे किसी धर्म में जो भी श्रेष्ठतम रहा है उसे पूजा, धारण किया और अपने धर्म में आत्मसात् किया। हमने दूसरे व्यक्ति के धर्म से न कभी घृणा की है, न कभी हम डरे हैं और न कभी हमने द्वेष ही किया है। शताब्दियों पूर्व हमने सिरिया के छले गये ईसाईयों को अपनी भूमि पर आश्रय दिया है। भागते हुए यहूदी और पारसियों ने हमसे शरण मांगी है और तत्काल ही उसे पाया। हमने कभी यह आवश्यक नहीं समझा कि दूसरों का छल से अथवा उकसाकर भी धर्मान्तरण किया जाय। हमने दूसरों के धार्मिक विचारों के सम्पर्क को रोकना तब तक आवश्यक नहीं समझा जब तक कि वे घातक उद्देश्यों और शस्त्र सामर्थ्य से प्रेरित नहीं रहे। हम तो, यदि कहा जाय, सही मानों में धर्मनिरपेक्ष रहे हैं। अतएव स्वाभाविकतया हमने अपने राष्ट्रिय नेताओं को भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित करने दिया जबकि हक से हम हिन्दू राज्य मांग सकते थे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पाकिस्तान इस्लामी राज्य, लंका और ब्रह्मदेश बुद्ध धर्मीय राज्य और फिलस्तीन यहूदी राज्य बने हैं।



परन्तु हमारे नेताओं की हरदर्जे की झुकने की मनोवृत्ति के कारण और हमारे हिन्दू देशवासियों की आत्मघाती उदासीनता के कारण हमारी धर्म निरपेक्षता का ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा, खासकर रोमन कैथोलिक गिरजाघरों द्वारा, यह अर्थ लगाया जा रहा है कि यह मानो उनके उद्देश्य-भारत को ईसाई देश बनाने-के लिये उन्हें छूट है। हमारी धर्म निरपेक्षता की औदार्यपूर्ण वृत्ति का, बलात धर्मान्तरण जैसे अपने न्यस्त स्वार्थसाधन के लिये लाभ उठाकर, वे इस देश को अराष्ट्रिय बना उसको विदेशियों के धार्मिक और राजनैतिक प्रभुसत्ता मे लाना चाहते हैं। आगामी अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई धर्म प्रचार कांग्रेस इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उठाया गया कदम है।

भारत मे ही इस कांग्रेस का अधिवेशन क्यों —आज तक कभी अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई धर्म प्रचार कांग्रेसों के अधिवेशन मुख्यत कथोलिक ईसाई देशो मे हुए है। प्रथम बार ही इस कांग्रेस का अधिवेशन एक गैर कैथोलिक, गैर ईसाई, हिन्दुओं के देश मे हो रहा है। सब देशो को छोड़ कर भारत मे ही क्यो? पाकिस्तान एक उन्मत्त इस्लामी देश होने के कारण, लका और ब्रह्मदेश द्वारा अपने आपको बुद्ध धर्मावलम्बी देश घोषित किये जाने के कारण तथा वीयतनाम मे वीर बुद्धधर्मियों द्वारा रोमन कैथोलिकों को दिये जाने वाले प्रतिकार के कारण, मध्यपूर्व के इस्लामी देशों द्वारा रोमन कथोलिक धर्म के विस्तार और यहा तक कि अस्तित्व तक को जबरदस्त प्रतिकार होने के कारण जिसका पर्यवसान ट्युनिशिया मे २४००० गिरजाघरों के गिराये जाने मे हुआ, रोमन कैथोलिक ईसाई धर्म की प्रतिगामी शक्तियों का कार्यक्षेत्र और विस्तार क्षेत्र अत्यत सीमित हो गया है, इतना ही नहीं कथोलिक धर्म की एशिया की भूमि से पूर्णत लुप्त हो जाने की सम्भावनायें निर्माण हो गई हैं। कमजोर ताने-बाने स्वार्थी, भ्रष्ट नेताओं के कारण, केवल भारत ही रोमन कैथोलिक आकांक्षाओं की सकटग्रस्त नौका को आश्रयस्थल हो सकता है। तीन वर्ष पूर्व हमारे देश की राजधानी नई दिल्ली मे ही ससार के चर्चों की कौंसिल का तीसरा अधिवेशन किये जाने को हमारी सरकार ने जो मृदु दृष्टिकोण का परिचय दिया, उसी से ही वर्तमान प्रयास का उन्होंने साहस किया है। कैथोलिक प्रतिधर्मियों की केन्द्रिय मूर्ति, पोप ने इस अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई धर्म प्रचार कांग्रेस के रूप मे हमारी भूमि पर भयकर आक्रमण की योजना बनाई है और भारत के उनके पचपन्नतमो सभी कार्डिनल, आर्कबिशप एव कथोलिक धर्माध्यापक के प्रभुत्व मे रहने वाले सभी पादरी, पोप के इस साहसिक कार्य मे साथ देने एकत्रित हो गये हैं।

क्या यह कांग्रेस धार्मिक मेला है —इस अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई धर्म प्रचार कांग्रेस के स्थानीय व्यवस्थापकगण खुल्लमखुल्ला-और निलज्जतापूर्वक घोषित करते हैं। (अ ई कां बुलेटिन-भाग २६) कि उनका उद्देश्य है ईसामसीह का इस देश और सम्पूर्ण विश्व पर राज्य हो। वे ईसा की सेना हैं। उसको जानने और उसकी सेवा करने मे ही उनको सतोष नहीं है। उनकी महत्वाकाक्षा है कि वे सर्वत्र ईसा को अन्य सभी को जनवाये, उससे प्यार करवाये और उसकी सेवा करवाये। इस धर्म युद्ध के पीछे छिपी है विजयाकाक्षा। अत इस धर्मयुद्ध को धार्मिक भावना से प्रेरित सम्मेलन, यदि कोई मानता है तो वह बड़ी भारी गलती कर रहा है।

अतएव रहस्य प्रकट हो गया है। यह अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई धर्म प्रचार कांग्रेस महज ईसाई धर्मावलम्बियों का कोई पवित्र सम्मेलन नहीं है जैसा कि विशाल हृदयी यजमान को विश्वास दिलाया जा रहा है। इस कांग्रेस को भेंट देती धर्मवीरो की एक सेना। वे आ रहे हैं विजयाकाक्षा से प्रेरित हो, ईसा का साम्राज्य फैलाने (जैसा कैथोलिक देश स्पेन, पुर्तगाल और लटिन अमेरिका और ससार भर के इन कथोलिक देशो के अन्य उपनिवेशों मे फला हुआ है)। नहीं सज्जनो, हम बिलकुल गलत नहीं सोच रहे हैं।

दूसरा घोषित ध्येय जो इस अन्तर्राष्ट्रिय कांग्रेस के पीछे है वह 'कैथोलिक एकता" के निर्दोष नाम को धारण कर, हमारी भूमि पर प्रतिक्रियावादी कैथोलिक शक्तियों को सगठित करना। द्वितीय महायुद्ध पर्यन्त तक के काल मे ईसा की प्रत्येक शताब्दी मे कथोलिक धर्मानुयायी देशों मे अगणित रक्त रजित युद्ध हुये जो व्यक्त करते हैं उनका ईसा के प्रति प्यार, और "मानव के प्रति प्रेम"। उन युद्धों मे कैथोलिको की कत्ल को रोमन कैथोलिक गिरजाघरों ने न तो रोका और न रोक सकते थे। परन्तु ससार भर के





कैथोलिक पोप के सीधे आदेशों पर, जो कि उसके धार्मिक अनुयायी-कार्डिनलों, बिशपों के माध्यम से पालित किये जाते हैं, एक 'पवित्र कारण" पर एकत्रित हुए हैं और वह कारण है—लोकतन्त्रात्मक आन्दोलनों, औपनिवेशिक जनों के मुक्ति आन्दोलनों, लोगों के समाजवादी आन्दोलनों को कुचलने के लिये फ्रांको के फलगे, सालाजार के लिगिओ, मैनिमको के सिमाराक्विटा और अमेरिका के क्लुक्स क्लान को उकसाकर, प्रोत्साहित कर सुसंगठित कर रोमन कैथोलिक चर्च से, सबद्ध किये गये हैं जिनके मूर्धन्य पोप हैं।

क्या यह अन्तर्राष्ट्रिय ईसाई धर्म प्रसार काग्रेस कैथोलिकों का केवल एक धार्मिक मेला है ? हमारी भूमि पर "कैथोलिक एकता' के इस प्रदर्शन के अन्तिम उद्देश्य क्या हैं ? पोप के आदेश और प्रतिगामी तत्वों (जैसे फासिस्ट सर्वहारा शासन एवं उपनिवेशवादी शक्तियों) के सचालन और मार्गदर्शन में हमारे देश में कैथोलिकों का यह एकीकरण क्या हमारे देश की रक्षा और राष्ट्रिय एकात्मता के लिये पोषक है ? ये अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न विचित्रता से हमारे विदेश मन्त्रालय, हमारे प्रधान मन्त्री, उनके केबिनेट और देश के नेताओं की दृष्टि से ओझल हो गये हैं।

रोमन कैथोलिक चर्च की कार्यप्रणाली—कौन नहीं जानता कि कैथोलिक चर्च सिर्फ धार्मिक संस्था नहीं है अपितु संसार में सशक्त राजनैतिक शक्ति है ? सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में रोमन कैथोलिक चर्च की हस्तक्षेप की शक्ति, इस तथ्य से अनन्तगुणा खतरनाक हो जाती है कि यह किसी एक विशिष्ट देश तक ही सीमित नहीं है, कारण कोई भी देश ऐसा नहीं जहां के सामाजिक और राजनैतिक जीवन को पोप प्रभावित न करता हो। चर्च अपने कार्य क्षेत्र की सीमाओं में तो रहता ही नहीं अपितु उसकी अपनी यह सैद्धान्तिक मान्यता कि वही अकेला सत्य का धारक है, उसे अवश्यम्भावी रूप से बाध्य करती है कि वह नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी अतिक्रमण करे। अपने ध्येयों जिसका कि साम्राज्य सम्पूर्ण जगत् पर व्याप्त है, पर कार्य करते समय उसके इस दावे के कारण कि मानव निर्मित कोई भी कानून उस पर बन्धन कारक नहीं वह कैथोलिक तत्वों की विरोधी विचारधाराओं या प्रभावों के विरोध, लड़ाई यहां तक कि उन्मूलन के लिए भी, चाहे जिस प्रकार कार्य कर सकता है। (एव्हरो मैनहट्टन—२०वीं सदी के विरुद्ध कैथोलिक चर्च, पुस्तक में)।

भारत धर्म निरपेक्षता से बंधा है और उससे भी आगे समाजवाद से। ये दोनों तत्व कैथोलिक रुचि को अरुचिकर हैं। वे धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद दोनों के खिलाफ कुचाहे संसार में वे कहीं भी क्यों न हों—जीवन-मरण का प्रश्न बनाकर लड़ रहे हैं। जिस प्रकार कम्युनिस्टों का नारा है—'संसार भर के मजदूरों—पूंजीपतियों से लड़ने को संगठित हो जाओ', रोमन कैथोलिक चर्च का नारा है—'संसार भर के कैथोलिको, धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ लड़ने, भारत को ईसा का देश बनाने, समाजवाद के खिलाफ लड़ने को संगठित हो जाओ।' हमारी धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के खिलाफ इन शक्तियों के जमाव को अनुमति देकर क्या हमारी सरकार रोमन कैथोलिक चर्च के विचारों की अनुयायी बन गई है कि वह इस अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्म प्रसार काग्रेस का अधिवेशन भारत में ले और वह भी ऐसे समय में जबकि हमारे सामने राष्ट्रीय सुरक्षा और प्राप्त स्वतन्त्रता को सुदृढ़ करने से सम्बद्ध भयकर समस्यायें खड़ी हों। धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के खिलाफ हमारे इच्छित उद्दिष्टों को सुरंग लगाने, हमारी सरकार किस प्रकार इन धर्मान्धों के काफिले को इजाजत दे सकी। क्या हमारे राष्ट्रीय नेता जो इन धर्मपरिवर्तकों को आमन्त्रण देते हैं और उन्हें सभी प्रकार से अवैधानिक और गैर कानूनी ढंग से साथ दे रहे हैं—यह चाहते हैं कि उनके लड़के और लड़कियां, बहनें, मातायें और पत्नियां ईसाई धर्म अंगीकार कर लें ?

यह वस्तुस्थिति का मखौल—यह सचमुच अत्यन्त दुःखदायी है कि जिसके पीछे न्यस्त राजनैतिक षडयन्त्र, हमारी राष्ट्रीय संस्कृति, हमारी धर्मनिरपेक्षता और हमारे समाजवाद के ध्येयों का निर्मूलन जिसका ध्येय हो, इस प्रकार के धार्मिक तमाशे को, हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू जी, जो खुद को अनीश्वरवादी मानते थे और जो किसी धर्म में विश्वास नहीं करते थे, अपना आशीर्वाद प्रदान करें। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि जो धर्म और धार्मिक दलों की जब तब खिल्ली उड़ाया करते थे, जो पौराणिक कथाओं और चमत्कारों में विश्वास नहीं

रखते थे, जिनकी ख्याति विज्ञान में आस्था रखने वाले मनुष्य की तरह थी, वे भौतिकवादी नेहरू—विज्ञान के इन दुश्मनों को, जोकि हमारी भूमि पर अपने निर्जीव पौराणिक कथाओं की दिखावटों और देवदूतों के विकट चमत्कार फैलाने हेतु इकट्ठे हो रहे हैं किस प्रकार अपनी बहन विजयलक्ष्मी के मार्फत निमन्त्रण भेज सकते हैं। गांधी जी भी जिनके नाम पर वर्तमान कांग्रेसी नेता अधिकारारूढ़ हुए हैं, क्या कहते हैं- आज मैं कट्टर ईसाइयों के विरुद्ध विद्रोह करता हूं कारण मुझे पूर्ण विश्वास हो चुका है कि उसने ईसा के सन्देश को तोड़-मरोड़ कर रख दिया है। ईसा एशिया के थे जिनका सन्देश कई माध्यमों से वितरित हुआ है परन्तु अब उस धर्म को रोमन राजा का समर्थन प्राप्त हुआ। वह राजकीय धर्म हो गया और वह आज तक भी ज्यों का त्यों बना है। (हरिजन ३० ६ ३६) और स्वयं ईसा मसीह के सम्बन्ध में गांधी जी का क्या कहना है—'गौतम की दयालुता को देखिये। वह केवल मानव तक ही सीमित नहीं थी, वह सम्पूर्ण जीवनधारियों के प्रति भी थी। किसका हृदय यह सोचकर प्रेम से ओत प्रोत न होगा कि मेमना (भेड़ का बच्चा) आनन्द से उन के कन्धों पर आसीन है? सम्पूर्ण जीवधारियों के प्रति इस प्रकार का प्रेम ही ईसा के जीवन में नहीं पाते।' (सत्य के प्रयोग २-२२) स्मरण रहे उसी पवित्र गौतम को जिसका अशोक चक्र हमारा पथप्रदर्शक चिन्ह है ये कैथोलिक हत्यारे सोल्लास तिरस्कार पूर्ण अपने रंगीन चित्रों में घृणित धर्म परिवर्तक फ्रांसिस जेवियर द्वारा ठोकरें मारते हुए दिखाते हैं। चाहे शासन में रहने वाले कांग्रेसी हों अथवा सार्वजनिक जीवन में रहने वाले सभी ने अपनी आंखें मूंद रखी हैं न केवल वस्तुस्थितियों से अपितु गांधी जी के उपदेशों से भी।

कैसा है इनका मानव-प्रेम—भारत और भारतीयों को क्यों विदेशियों के लिए यजमान बनना चाहिये, जब कि उन विदेशियों के उद्देश्य और महत्वाकांक्षा हों—'हमारी पुरातन संस्कृति, हमारे प्राचीन पवित्र वैदिक धर्म, हमारी देश-भक्ति तक को नष्ट कर हमें रोमन कैथोलिक चर्च के गुलाम बनाना ताकि हम फैसिस्ट और उपनिवेशवादियों के सेवक बनें।' रोमन कैथोलिक धर्मप्रचारक, उन का सम्पूर्ण इतिहास देखिये, वाले बनावटी के प्रति कभी कृतज्ञ नहीं रहे हैं। उन्होंने नित्य ही आतिथ्य का बदला विश्वासघात, सहृदयता का बदला बर्बरता उपकारों का बदला कलंक और स्वागत का जवाब बन्दूकों से दिया है। चाहे किन्हीं भी साधनों से क्यों न हो परन्तु सदैव ही हीनतम साधनों से, बलात धर्मान्तरण उनका एकसूत्री ध्येय रहा है। अपने उद्दिष्टों को बढ़ाने हेतु वे समय के अनुरूप चाहे जिस प्रकार के बनावटीपन को धारण करेंगे—मानव प्रेम, जीवनदायक ईसा का प्रेम और क्या क्या नहीं। उनके पवित्र पिता (Holy Father) मानव प्रेम की यह शिक्षा फ्रांको और सालाजार को देते कभी नहीं देखे गये और न दक्षिण वीयतनाम में बुद्धधर्मावलम्बियों के कत्ल करने वालों को अथवा न विदेशान्तर्गत स्मारक को भ्रष्ट करने वालों को। तब वे एकाएक यह विचित्र और अज्ञात प्रेम भारतीयों को सिखाने का कष्ट क्यों उठा रहे हैं—उन भारतीयों को जो चाहे अपनी आर्थिक स्थिति से असंतुष्ट हों परन्तु अपने विशुद्ध धार्मिक दायरों में पूर्णतः सन्तुष्ट हैं? इसके बदले में कार्डिनल ग्रेशस जो कि पोप के एजेण्ट हैं दक्षिणी वीयतनाम, कांगो, अंगोला में अपने कैथोलिक बान्धवों को यह 'प्रेम' पढ़ाने क्यों नहीं जाते, यह देखकर कि उनमें इस गुण का गहरा अभाव है। कार्डिनल ग्रेशस और उनके रोमन कैथोलिक चर्च के अन्य अनुयायियों ने इस ईसाई प्रेम का तब परिचय नहीं दिया, जब ब्रिटिश शासक आजादी की लड़ाई के समय हमारे देश-भक्तों को गोलियों से उड़ा रहे थे और तब भी नहीं जब हमारे वीर सैनिक घृणित पुर्तगीज गुलामी से गोआ की मुक्ति के लिए यत्नशील थे।

ऐसे मानव प्रेम की क्यों आवश्यकता नहीं—वर्तमान भयकर समय में, भारत को आवश्यकता है अपने लोगों के लिये अन्न की, अपने औद्योगिकरण की योजनाओं में उनको फैक्टरियों के लिए मशीनों का, उत्तर से या पृथ्वी की सभी दिशाओं के आक्रमकों से लड़ने उस अपनी सेनाओं के लिए शस्त्रों की। और भारत को आवश्यकता है अपनी रक्षा की उन गुप्तचरों तोड़फोड़ करने वालों, दलालों और भड़काने वालों से भी, जिनमें से अधिकांश धर्म-प्रचारकों के रूप में आकर हमारे देश में कठिनाइयां पैदा करते हैं जैसा कि आज नागा प्रदेश, केरल और गोवा में हो रहा है। हम क्यों चाहते कि वे आकर हमें ईसा के लिए

प्रेम सिखायें जिसका मतलब होता है हमारी मातृभूमि के साथ विश्वासघात। हम नहीं चाहते कि वे हमारे देश में आयें और यहां की धर्म निरपेक्षता और हमारे समाजवाद को सुरंग लगायें और हम नहीं चाहते कि वे यहां आकर हमारे धर्म और संस्कृति को नष्ट करें।

हमारे पास हमारे निज के देवता अनन्त संख्या में हैं, जो हमें मानवता के लिये प्रेम की सीख दे सकते हैं और यदि हमें और सीखने की आवश्यकता भी है तो भी हम रोमन कैथोलिक पादरियों का जो फासिस्टों, संहारकों और हत्याकांड करने वालों के मान्य एजेण्ट हैं अपने बीच में आगमन नहीं चाहते कि वे आकर हमें प्रेम सिखायें, जो स्वयं उन्हें अज्ञात है।

आज की स्थिति में हमारा कर्तव्य—भारत के सर्व साधारण कैथोलिकों से हमारा कोई झगड़ा नहीं। हम जानते हैं कि रोमन कैथोलिक चर्च के घातक राजनैतिक और अराष्ट्रीय प्रभाव में वे आज भी हैं। जिसका कारण है हमारे शासन और सार्वजनिक जीवन में अवसरवादी, स्वार्थी नेता गणों की उपस्थिति जिनमें न तो दूरदृष्टि है और न है साहस। हमारे पड़ोसियों के नेताओं श्रीमाओ, नेविन या अयूब जैसे हमारे राष्ट्रीय नेताओं में बुद्धिमत्ता और उत्साह नहीं है, अन्यथा ये मिशनरी अपने बोरिया-बिस्तरों समेत कभी के यहां से चल दिये होते जैसा कि उन्हें लंका, ब्रह्मदेश और पाकिस्तान में करना पड़ा और हमारे देश के उन पचास लाख भाई बहनों, जो पुर्तगीज आक्रामकों द्वारा धोखा, छल और यन्त्रणाओं के कारण पिछले छः सौ वर्षों में हमसे अलग किये गये हैं, पर का रोम का विघातक प्रभुत्व समाप्त हो जाता। सभी कैथोलिक देशों में लाखों ऐसे कैथोलिक हैं यहां तक कि स्वयं रोम में, जिन्होंने पोप के अराष्ट्रीय सिद्धान्तों का शिकार बनने से इन्कार कर दिया है और हमें उम्मीद है कि हमारे देशवासी रोमन कैथोलिक सर्वप्रथम देशभक्त और बाद में कैथोलिक बनेंगे यदि पोप के एजेण्टों को शीघ्राति-शीघ्र उनके बीच में से अलग कर दिया जाय। भारत में रहने वाले कैथोलिकों से हमारा कोई झगड़ा नहीं, यदि वे अपने ईसा को अपने हृदयों, घरों और चर्चों तक ही सीमित रखें और विदेशी मिशनरियों (धर्म प्रचारकों) के चक्कर में पड़कर हमारे धर्म और संस्कृति पर अतिक्रमण न करें। अब हम और अधिक सहन नहीं कर सकते। इस 'गोमांस और शराब बोतल ईसाई धर्म' को (गांधी जी के शब्द हरिजन ६-३-३७) जिसने हमारे पचास लाख भाई बहनों का राष्ट्रीयत्व छीन लिया है।

रोमन कैथोलिकों के विघातक इरादों का पर्दाफाश:— भारतीय कैथोलिक चर्च और भारतीय कैथोलिक, विदेश की किसी संस्था से अपने आपको सम्बद्ध रखकर, धार्मिक आध्यात्मिक दृष्टि से क्यों उस रोम के पोप का स्वामित्व स्वीकार करें? क्यों उस विदेशी मुखिया के आदेशों के अनुसार राष्ट्रीय कृत्यों में रत होवें? स्वतन्त्र भारत में जब पूर्व के ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रदत्त सभी उपाधियां और सहूलियतें देशभक्त भारतीयों द्वारा स्वेच्छा से त्याग दी गई तो भारत में यह कैसे सहन किया जाता है कि कोई विदेशी धार्मिक राजनैतिक राज्य का मुखिया भारतीयों को उपाधियां प्रदान करे और उनके माफत आदेश देकर हमारे राष्ट्रीय हित के विरोध में, भारत के पचास लाख देशवासियों की अपने प्रति स्वामिभक्ति व्यक्त करवाये? भारतीय कैथोलिक पादरियों का अराष्ट्रीय कार्यों का इतिहास काफी लम्बा चौड़ा है और ये कार्य अभी भी पूर्ववत् जारी है, धन्य है रोम की यह स्वामिभक्ति। हमारी स्वतन्त्रता से पूर्व इन्हीं धर्मपीठों से यहां के कैथोलिकों को आदेश दिये जाते थे कि वे पुर्तगीजों, फ्रेंचों, ब्रिटिशों के प्रति वफादार रहें और आज इन्हीं पीठों से उन्हें आदेश दिये जाते हैं कि वे हमारे चिरकांक्षित ध्येय धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के खिलाफ कार्य करें। यह सभी भारतीय कैथोलिकों का अत्यन्त जरूरी और पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि वह भारत के कैथोलिक चर्च और रोम के पोप के इस अपवित्र गठबन्धन को समाप्त कर, पवित्र पिता के, हमारे देश के पचास लाख कैथोलिक भाई-बहनों के मस्तिष्क हृदयों पर के, घातक साम्राज्य को दूर निकाल फेंकें।

भारत के राष्ट्रीय ईसाइयों ने भारतीय राष्ट्रीय चर्च की स्थापना कर एक साहसी कदम उठाया है जिस चर्च के आर्क बिशप हैं अत्यन्त आदरणीय फादर एस० विलियम्स। कैथोलिक भी, यदि वे चाहते हैं, ईसा के सन्देशों को उनके राष्ट्रीय चर्च के माध्यम से प्रसारित कर सकते हैं, किसी प्रकार के धर्मान्तरण का सहारा न लेते हुये केवल किसी

प्रकार की भी विदेशी मिशनरियों से आर्थिक सहाय न लेते हुए और विदेशी संस्थाओं से अराष्ट्रीय स्वामिभक्ति न रखते हुये। यह तथ्य कि कार्डिनल ग्रेशस और कैथोलिक चर्च के रोम के अधीनस्थ अपवित्र बन्धनों से बचे पदाधिकारी भारतीय राष्ट्रीय चर्च के विरोध मे हैं, स्वतः ही उनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्म प्रसार कांग्रेस को बम्बई में मराने के पीछे छिपे उनके विघातक इरादों का पर्दाफाश कर देता है।

इनके थोथे तर्क —सम्पूर्ण संसार को संसार भर की प्रतिगामिता केन्द्र रोम के अधीनस्थ कर देने के विघातक प्रयत्नों के करते समय कैथोलिकों को कभी कभी टुकडो के प्रलोभन अपने निश्शक और बुद्धू शिकार के सामने डालने पड़ते हैं। इस बार कार्डिनल ग्रेशस को बड़ी तकलीफ हो रही है कि वह किस तरह भारत मे होने जा रही ईसाई धर्म प्रसार कांग्रेस के महान भौतिक लाभों को सरकार और सार्वजनिक संस्थाओं को समझाये। देखिये आध्यात्मिकता से भौतिकता की ओर प्रयाण, स्वार्थ साधन के लिए कितना थोथा तर्क– वर्तमान मे अत्यावश्यक विदेशी मुद्रा में बढ़ती होगी साथ ही साथ पर्यटन को प्रोत्साहन मिलेगा'। और दूसरे प्रलोभन भी हैं—'एक दूसरे को समझना (शायद हम सबको ईसाई बनाकर) और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग'। (जैसे आयात होगी तोडफोड़ करने वालो और बमों की–सम्भवत गोवा को उडाने)। केवल मूर्ख और देशद्रोही ही इन प्रलोभनों के शिकार हो सकते हैं।

सद्यस्थिति में हमारा पावन कर्तव्य –अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्मप्रसार कांग्रेस पोप द्वारा हमारे राष्ट्रीय मामलों मे सीधा हस्तक्षेप है, हमे समाजवाद के मार्ग से हटाने के लिये। हमारे नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्र पर फासिस्ट सर्वहारा शासन थोपने का प्रयास है। भारत को ईसाई और अराष्ट्रीय बनाने का प्रयास है।

हमारे सामर्थ्य के सभी साधनो से उसका प्रतिकार किया जाना चाहिए। भारत पर आक्रमण करने वाली इस फासिस्ट जनता पर रोक लगे। अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई धर्मप्रसार कांग्रेस पर रोक लगे—

क्यो ?

हमारी राष्ट्रीय एकात्मता की रक्षा के लिए, हमारी कष्ट प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये हमारे, समाजवाद के ध्येयो की रक्षा के लिये।



मुंबई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा

मुंबई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का ५९, ६० का वार्षिक वृत्तान्त हमारे सामने है। सभा से सम्बन्धित आर्य समाजों की संख्या १३३ है। आर्यसमाजों द्वारा अनेक बालिकाओं के शिक्षणालय संचालित हैं। सभा की ६२ ६३ की आय २६४६८ ३९ हुई है जबकि व्यय लगभग ९०००) रु० अधिक हुआ है। सभा के प्रधान श्री कान्तिलाल मोहन शर्मा तथा मन्त्री श्री वेणी भाई आर्य हैं।

सभा द्वारा भीलों मे प्रचार कार्य की विशेष व्यवस्था की जा रही है। भीलों की कन्याओं के शिक्षण के लिये शबरी आश्रम तथा बालकों के लिए बालमीक कुमार आश्रम की स्थापना की गई है। इस वर्ष प्रदेश मे अनेक स्थानो पर नवीन आर्यसमाज स्थापित किये गये हैं।



आवश्यक सूचना

आर्य जनता को यह सूचित किया जाता है कि विशेष कारणो से डी०ए०वी० इण्टर कालेज राजीपुर का समस्त प्रबन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश ने सीधे अपने हाथ मे ले लिया है और सभा प्रधान माननीय श्री मदनमोहन जी वर्मा ने प्रशासक बनना स्वीकार कर लिया है। पूर्ण विश्वास है कि अब यह आर्यसमाज की शिक्षण-संस्था प्रगति पथ पर आरूढ होगी। श्री वर्माजी ने श्री अमरनाथ जी वर्मा को सहायक प्रशासक बनाया है और पांच सज्जनो की एक काम चलाऊ समिति बना दी गई है।

—चन्द्रदत्त तिवारी सभा मन्त्री





भारतीय संस्कृति के चीर हरण की तैयारियाँ

(पोपपाल की बम्बई यात्रा का पोल)

(ले०—श्री ब्रह्मदत्त जी भारती)

वर्तमान शताब्दि मे रेडियो सच्चे और झूठे प्रचार का अति बलवान् साधन बना हुआ है। इसीलिये जब किसी देश को अपना दृष्टिकोण अपने मित्र और दूसरे लोगों के सामने रखना होता है तो वह अपने रेडियो ट्रान्समीटर से हर प्रकार के मनघड़न्त समाचार और वार्तालाप ब्राडकास्ट करके जनता के विचारों को बदलने के हेतु उसका ब्रेन वाशिंग (मस्तिष्क धुलाई) शुरू कर देता है। जो दूसरे बलवान और सतर्क देश इस ब्रेन वाशिंग की महत्ता को समझते हैं वे रेडियो के इस दुरुपयोग को विफल बनाने के लिये अपने रेडियो ट्रान्समीटर का अधिक शक्ति का प्रयोग करते हुए शत्रु के रेडियो ब्राडकास्ट की वेवलेंगथ को इतना और ऐसा गड़बड़ा देते हैं कि उसके ब्राडकास्ट कहीं से सुने नहीं जा सकते इसे तैकनीक की भाषा मे (जैमिंग) कहते हैं। इसका साधारणतया यह अर्थ है कि किसी के रेडियो ब्राडकास्ट तैकनीक की सहायता से ऐसे विफल कर दिये जाय कि वे सुने न जा सकें ऐसे ही कुछ समय हुआ इसी उद्देश्यार्थ हम ने चीन के कुछ ब्राडकास्ट जैम कर दिये थे।

इस मास के अन्त मे होने वाली कथोलिक यूकिरिस्टक कांग्रेस का चर्चा भारत के पत्र पत्रिकाओं में जोर से हो रहा है। भांति-भांति से इस कथोलिक कांग्रेस का ढिंढोरा भारतीय प्रेस मे पीटा जा रहा है। इसके साथ-साथ विश्व ईसाइयत पर यह धुन भी सवार है कि इस कांग्रेस के अहित मे सब प्रकार के लेख इत्यादि (जैम) कर दिये जायें। इसकी गतिविधियां अब इस प्रकार से चल रही हैं कि कुछ पत्रकार और सम्पादक गण इस क्षेत्र मे उन्हें सहायता और सहयोग देने के लिये विवश हो गये हैं या विवश कर दिये गये हैं या उन्होंने स्वयं ही अपनी लेखनी की स्वतन्त्रता का बलिदान दे दिया है। फलस्वरूप उन्होंने कैथोलिक कांग्रेस यूकैरिस्टिक कांग्रेस के विरोध में अपना मुंह न खोलने की कसम खा ली है। राजधानी के कुछ पत्र तो एक दो कदम और भी आगे चल रहे हैं। इस कैथोलिक कांग्रेस के हित में तो यह लोग 'सम्पादक को पाठकों के पत्र' उत्साह पूर्वक प्रकाशित करते ही हैं परन्तु उन्होंने धर्मनिरपेक्षता की आड़ लेकर दूसरी तरफ के सब विचारों के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा रखा है। यह है धर्मनिरपेक्षता की नंगी तस्वीर, जिसका ढिंढोरा देश मे इस जोर से बजाया जा रहा है कि कोई दूसरी बात कान पड़े सुनाई नहीं पड़ती।

इस उल्टे सीधे प्रोपेगण्डा का एक अद्भुत नमूना भारत की जनता के सामने बम्बई के चौपाटी मैदान में हमारे प्रिय प्रधानमन्त्री ने भी रखा। उन्होंने जनता से कहा कि इस कथोलिक कांग्रेस मे शामिल होने का उनका विचार न था किन्तु इसके विरुद्ध जो आन्दोलन हो रहा है उसे देखकर अब वह अवश्यमेव इसमें भाग लेंगे। किस मार्के की बात उन्होंने कह डाला है इसका विवरण आगे चलकर किया जायेगा। दूसरी महत्वपूर्ण बात उन्होंने यह कही कि भारतीय जनता को यह ध्यान रखना चाहिए कि पोपपाल न केवल कैथोलिक सम्प्रदाय के नेता हैं वह एक राष्ट्र के राजनैतिक प्रमुख भी है। इसलिए भारतीय जनता को उनका हार्दिक स्वागत करना चाहिए।

प्रधान मन्त्री का पहला वक्तव्य बड़े बूढ़ों की समझ मे भले ही न आय किन्तु बच्चे इसकी महत्ता को भलीभांति समझते हैं। इनका यह कहना कि सम्मेलन के विरुद्ध हो रहे आन्दोलन के कारण अब वह अवश्यमेव इस कैथोलिक कांग्रेस मे भाग लेंगे उस भोले भाले जिद्दी बालक की हठ से कुछ विभिन्न नहीं जो खांसी से पीड़ित होने पर भी गोल गप्पे खाने की हठ केवल इसलिये पकड़ लेता है कि उसके माता पिता और चिकित्सक इसका विरोध करते हैं।

पोपपाल एक ही समय मे कथोलिक सम्प्रदाय और एक राष्ट्र के अधिपति भले ही हों परन्तु वे इस समय केवल कथोलिक सम्प्रदाय के नेता के रूप मे ही भारत आ रहे है। पोपपाल और कथोलिक कांग्रेस के कमचारी भली-

अराष्ट्रीय ईसाई निरोध सप्ताह

दि० २८ नवम्बर से ६ दिसम्बर तक प्रान्त के कोने-कोने में मनाया जाय

भारत में विदेशी पादरियों के षड्यन्त्र को समाप्त करने के लिये देश की जनता जाग उठी है। २८ नवम्बर से ६ दिसम्बर तक बम्बई में होने वाले कैथालिक ईसाई विश्व सम्मेलन अर्थात् युक्रा बलिदान उत्सव से सभी राष्ट्रीय नागरिक चिन्तित हैं। इस सम्मेलन को भारत के हिन्दुओं के ईसाईकरण का भीषण षड्यन्त्र अनुभव किया जा रहा है तथा सरकार की भयङ्कर ऐतिहासिक भूल का परिष्कार करने के उपाय सोचे जा रहे हैं।

प्रतिनिधि सभा की ओर से प्रान्त के प्रत्येक आर्यसमाज से उपर्युक्त तारीखों में सामूहिक रूप में अराष्ट्रीय ईसाई निरोध सप्ताह मनाने का अनुरोध है। इस पूरे सप्ताह में जनता को इस भावी खतरे से सतर्क किया जाय और एतदर्थ सार्वजनिक सभाएँ एवं जुलूस निकाले जाय।

अराष्ट्रीय ईसाई विरोधी साहित्य जनता के हाथों में पहुंचाया जाय। सभा की ओर से भी निम्न ट्रैक्ट इस अवसर पर प्रकाशित किये गये हैं--

१--गोरे पादरियों के काले कारनामे

२--रोमन कैथालिक चर्च का नग्न चित्र

३--क्राइस्ट वरसेज क्रिश्चियेनिटी।

शिवदयालु
मुख्योपमन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा,
उत्तर-प्रदेश, लखनऊ

भाँति स्पष्ट कर चुके हैं कि पोपपाल केवल बम्बई जायेंगे और सम्भवतः एक दिन ही बम्बई में ठहरेंगे। क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं कि एक राजनैतिक प्रमुख बाहर किसी देश में पहली बार जाये और राजधानी न जाकर किसी अन्य शहर या गांव में केवल एक दो दिन रह कर अपना मुंह छिपाकर वापिस लौट जाये? इसके अतिरिक्त यह कहां का राजनैतिक शिष्टाचार है कि वह बाहर से आने वाला व्यक्ति तो इस राजधानी की ओर मुंह भी न करे और वहां के प्रधान मन्त्री और देश के दूसरे उच्च कोटि के केन्द्रीय अधिकारी विदेशी नेता को मिलने और सम्मान पत्र देने राजधानी छोड़कर बम्बई जायें? प्रधान मन्त्री के कहने के मुताबिक यदि पोपपाल राजनैतिक नेता की हैसियत से भारत आ रहे हैं तो क्या भारत सरकार इस बात की घोषणा करने की हिम्मत रखती है कि भारत के राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री भारत की राजधानी छोड़कर राजधानी से बाहर आने वाले व्यक्ति को मिलने जायें? क्या भारत सरकार यह भी स्पष्ट कर सकती है कि कैथोलिक सम्प्रदाय के यह नेता भारत राज्य के इस बम्बई शहर में दो दिन में कैथोलिक सम्प्रदाय के प्रचार के अतिरिक्त और कौन सा धर्मनिरपेक्ष राजनैतिक कार्य करेंगे? यह रहस्य किसी से अब छुपा नहीं है कि अपने एक दो दिन की बम्बई यात्रा (हम इसे भारत यात्रा कदापि नहीं मान सकते) में यह राजनैतिक नेता शत प्रतिशत अराजनैतिक कार्य ही करेंगे।

भारतीय संस्कृति के चीरहरण की तैयारियां शुरू हैं। भारतीय जनता निस्तब्धता छोड़कर आंखें खोल रही है। वह अब यह जान गई है कि विदेशी मुद्रा के लालच में भले ही और कुछ बिक जाये परन्तु हिन्दुओं का वैदिक धर्म नीलाम पर नहीं चढ़ाया जा सकता।

विश्व-ईसाई सम्मेलन

भारत के लिए एक चुनौती

(चन्द्रप्रकाश आर्य एम० ए०, द्वि० वर्ष साध्वाश्रम होशियारपुर)

आज भारत के निर्मल गगन पर विपत्ति की काली-काली घटायें छा रही हैं। एक ओर चीनी अजगर मुह फाड खडा है तो दूसरी ओर पाकिस्तानी भेडिया हमे आंखे दिखा रहा है। फिर देश की आन्तरिक अवस्था इससे भी गम्भीर है। कमरतोड महगाई घूसखोरी, भ्रष्टाचार, मिलावट आदि नाना कुरीतिया एव अनैतिकतायें राष्ट्र की जडों को खोखला कर रही हैं। इससे भी बढ़कर फिर आज बम्बई मे विश्व ईसाई सम्मेलन होने जा रहा है। भारतीय जनता इन सबसे अत्यन्त क्षुब्ध है। भारत यजन-वाणी को पावो तले रौंदा जा रहा है और उसकी छाती पर मूंग दली जा रही है।

यह वही अंग्रेज जाति है जिसने भारत के सुख और वैभव को लूट खसोट कर रख दिया और सोने की चिडिया कहलाने वाले भारत को कागज की पुडिया बनाकर रख दिया था। यह वही अंग्रेज जाति है जो आई थी व्यापारी बनकर परन्तु बन बैठी हमारे भाग्य की स्वामिनी विधात्रा। यह वही गोरी पलटन है धर्म के नाम पर जिसके काले कारनामे इतिहास के पृष्ठो पर अंकित हैं। यह वही जाति है जिसके धर्म के ठकेदारो ने धर्म की बलिवेदी पर गेलीलियो और ब्रूनो जैसे महान मनीषियो को जिन्दा जला दिया था। यही उसी धर्म की उपासक (जाति) है जिसने खूनी मेरी (ब्लडी मेरी) के रूप मे अपने विरोधियों को अग्नि की भट्टी मे झोंक दिया था। यह वही अंग्रेज सतति है जिसके अत्याचारों की दर्दनाक कहानी सुनकर धरा कांप उठती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, हृदय का स्पन्दन रुक जाता है।

यह ईसा की वही तथाकथित सन्तान है जिसने लाजपतराय पर लाठियां बरसाईं जिसने भाई परमानन्द को कारागार की काल कोठरियो मे सडाया, जिसने वीर सावरकर को असह्य कष्ट दिये। यह सम्मेलन हमें उस लक्ष्मी की याद दिलाता है जिसको अकाल मृत्यु का ग्रास बना दिया गया था। यह यूकेरिस्टिक कांग्रेस हमें भारत माता के उन महान् सपूतों मंगल पांडे और तांत्याटोपे की याद को ताजा करा देता है जिनको दिन दहाडे गोली का निशाना बना दिया गया था। यह वही ईसा की फौज है जिसके द्वारा बिस्मिल भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि अनेको वीर फांसी के सीखचों से बंधे गये थे, जिसके द्वारा अनेको माताओ की गोदियां खाली कर दी गई थीं, अनेकों बहिनों की मांगो के सिन्दूर को पोंछा गया था। ये वही ईसा के पुजारी हैं, धर्म के नाम पर पिछले दिनों जिनके बौद्ध भिक्षुओं पर ढाये गये भीषण अत्याचारों की गाथा को सुनकर आंखो के सामने अन्धकार छा गया, संसार दंग रह गया था, मानवता दहल उठी थी, स्वय ईसाइयत ने भी लज्जा के मारे सिर नीचा कर लिया था। यही नहीं पेट्रिस लुमुम्बा का हनन भी इसी जाति के करकमलों द्वारा हुआ, लंका के स्वर्गीय प्रधानमन्त्री भंडारनायक की हत्या के पीछे तो स्पष्ट ही ईसाई धर्म के तथाकथित ठेकेदार पादरियो का हाथ था। यह तथ्य तो वहां की उच्चतम-न्यायालय द्वारा भी प्रमाणित हो चुका है। गोआ के अन्दर किस प्रकार इन ईसाई धर्म के संरक्षकों ने भारतीयों पर जुल्म ढाये थे ? उनको भुलाया नहीं जा सकता। यह वही तथाकथित जाति है जिसने वर्षों तक भारत को ही नहीं अफ्रीका जैसे विशाल महाद्वीप को भी दासता की बेड़ियों मे जकड़े रखा या यू कहा जा सकता है कि समस्त संसार को ही इसने अपने आतंकों से आतंकित किया। संसार इस कटु तथ्य से भलीभांति परिचित है। स्वय बडे बडे निष्पक्ष अंग्रेज इतिहासकार अपने भाइयो के इन कुत्सित एव जघन्य कृत्यो पर पश्चात्ताप की अग्नि से दग्ध हैं।

ये आने वाले हमारे अतिथि (भाग्य) उन्ही मंकाओं के

वंशज है जिसने भारत की संस्कृति एवं सभ्यता को मिटाने के लिए ऐसी शिक्षा प्रणाली बनाई थी जिसका उद्देश्य 'Indians in blood and colour but Inglish in taste, in opinion, in moral and in intellect" था। इसी जाति के उन्नायकों एवं उत्पादकों ने वेदों को गड़रियों के गीत एवं असम्बद्ध प्रलाप कहा था।

यह वही ईसा की टोली है जिसने भारत के कला कौशल को मिट्टी में मिलाकर रख दिया था। संसार प्रसिद्ध ढाके की मलमल के उद्योग को नष्ट भ्रष्ट करके उसके स्थान पर मानचेस्टर निर्मित मलमल का प्रचलन इसी के द्वारा किया गया था। इन्हीं की अध्यक्षता में धर्म प्रचार के लिए यहां ईसाई पादरियों को खुली छूट दी गई, स्कूलों और कालिजों में अंग्रेजी की पढ़ाई अनिवार्य करके ईसाइयत का पाठ पढ़ाया गया जिसका परिणाम हम अब तक भुगत रहे हैं।

मालाबार तट पर ईसाई पादरियों का धुआंधार प्रचार करवाया गया यहां तक कि पंचम वेद की रचना की गई। ये सब इन्हीं हमारे भावी अतिथियों के भाई बन्धु थे। आज भी पैसे के बल पर ईसाई पादरियों द्वारा भारत एवं भारतीय जनता का धर्म खरीदा जा रहा है गरीबों, पिछड़े वर्गों एवं आदिवासियों को लोभ लालच देकर उन्हें ईसाई बनाया जा रहा है। राम कृष्ण की काठ की मूर्ति बनाकर और ईसा की लोहे की मूर्ति बना कर उनको अग्नि में डालकर राम-कृष्ण की मूर्ति को फूंककर भोला-भाली भारतीय जनता से कहा जाता है कि तुम्हारा भगवान् तुम्हारा इष्टदेव तो जल सकता है परन्तु देखो हमारा पैगम्बर कितना शक्तिशाली है वह अग्नि में भी नहीं जलता। इस प्रकार ओछे (तुच्छ) साधनों द्वारा ईसाइयत का डंका बजाया जा रहा है। धर्म की आड़ में राजनैतिक शिकार खेला जा रहा है। बर्मा हमसे क्यों पृथक हुआ? इन्हीं की कूटनीति के कारण!! पाकिस्तान हमसे क्यों अलग हुआ इन्हीं का दुरभिसन्धि के कारण!! आज नागा लैण्ड हमारे सामने इन्हीं की बदौलत है, इन्हीं की कृपा से है। केरल में यदि काग्रेस का मन्त्रिमण्डल नहीं ठहरता तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है? केवल एकमात्र ईसाई पादरी!! करोड़ों रुपया भारत को ईसाई बनाने के लिए आ रहा है। एक ओर कहा जाता है कि हिन्दू कम हो रहे हैं। हिन्दू आज कम न हों तो और कौन हो? समस्त संसार इनका हड़प करना चाहता है, मुसलमान सोचते हैं कि हम इन पर हमला बोलें, ईसाई चाहते हैं कि हम मैदान मार लें, पहला नम्बर हमें ही प्राप्त हो, जो कोई आते हैं सब इन्हीं पर हावी होना चाहते हैं इन्हीं की जूती इन्हीं का सिर।

फिर हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकार आने वाली ईसा की फौज के लिए सब प्रकार की सुख सुविधायें जुटा रही है ताकि उनको किसी प्रकार का कष्ट एवं पीड़ा न हो, उनके स देश में कोई विघ्न बाधा न हो। उनके लिए कोई चुङ्गी कर नहीं होगा। उनके पासपोर्ट की कोई चैकिंग नहीं होगी। देश में घूमने के लिए उनके वास्ते बाकायदा रियायती टिकट का प्रबन्ध होगा। बम्बई के विद्यालय एवं महाविद्यालय उनके स्वागतार्थ पांच सप्ताह के लिए बन्द रखे जायेंगे। महाराष्ट्र और केन्द्र सरकार उनके स्वागत निमित्त ८७ से १०० लाख तक रुपयों की भेंट चढ़ा रही है। महामान्य राष्ट्रपति उसका परिचय पत्र पढ़ने जा रहे हैं। और अब तो यह भी सुना गया है कि पूज्य भारत मां के लाल भी वहां अपनी लाली बिखेरने जा रहे हैं। यह सब कुछ क्या हो रहा है? भारत, भारतीयता तथा भारतीय जनता को एक बड़ी भारी चुनौती दी जा रही है, उनके लिए खुला चैलेंज है। आज यदि आर्यसमाज—वह आर्यसमाज जिसके संस्थापक महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र के लिए विषपान किया जिसने नई परमानन्द लाला लाजपतराय, स्वा० श्रद्धानन्द रामप्रसाद बिस्मिल जैसे वीरों और शहीदों को जन्म दिया जो देश का सतत प्रहरी है, जिसने बुराइयों से टक्कर ली है, जिसने ईसाईयत और इस्लामियत की बाढ़ से देश को बचाया है और बचा रहा है—उसका यदि कोई समारोह या सम्मेलन होता है चाहे वह सम्मेलन तीन लाख आदमियों का क्यों न हो उसे यह कहकर टाल दिया जाता है कि वह तो साम्प्रदायिक है, (सरकार किसी मत विशेष का पोषण नहीं कर सकती) उसकी सहायता तो दूर रही यह है हमारे लिए एक सामयिक चुनौती! देश के हित की मांग है, तीव्र पुकार है कि इसके (विश्व ईसाई सम्मेलन के) विरोध में तीव्र अभियान किया जाये ताकि इतिहास फिर न हमारी मूर्खता पर हंसे। ★

शुद्धि समाचार—

अ ... लू मनोहर पुत्र जोहरी जाति ...नी ग्राम नवादा पो० बराही ...० । से २ फरवरी ६४ को आर्य ... स्टेशन रोड मुरादाबाद में ...ी देवराज जी दयानन्द साल्वेशन मिशन ...शियारपुर श्री गणेशदास जी सालूजा, ...ी ब्रह्मस्वरूप भटनागर एडवोकेट तथा ...ी यशपाल जी मंत्री आ० स० सिरसी ...ादि सज्जनों की उपस्थिति में वैदिक ...म स्वीकार कर अपनी पुरानी जाति ...त्व को ग्रहण किया। नाम परिवर्तन ... रखा गया।

श्री देवदास आर्य मन्त्री के० आर्य सभा कानपुर द्वारा

—आर्यसमाज गोविन्द नगर कानपुर ... ईसाई युवती कु० कलेरा व मुस्लिम ...युवती श्री मोमना को उनकी इच्छानुसार ... ६४ को वैदिक धर्म में प्रवेश कराया ...लेरा का नाम सुषमा व मोमना का ...ाम सवित्री रक्खा गया। तत्पश्चात ...नों की इच्छानुसार उनका विवाह ...क्रमश श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव तथा ...श्री प्रेमदास नामक युवकों से आ०स० के ...पुरोहित द्वारा कराया गया।

त०कोल प्रचा० प० छाजूराम शर्मा द्वारा

—कुमारी नफीस फातिमा पुत्री सली... ...का खाँ नई बस्ती अलीगढ़ को २८ ६-६४ को शुद्ध करके निर्मलादेवी नाम रक्खा गया। यह नगरपालिका प्रायमरी पाठशाला में सहायक अध्यापिका हैं। श्री ...जलाओम महोदय को स्वयं प्रार्थनापत्र ...देकर वैदिक धर्म स्वीकार किया।

दिनांक १ ७-६४ग्राम अल्हदादपुर पो० पनटी जि० अलीगढ़ मे एक ईसाई ...ह्मा व युवक को शुद्धकर उनका विवाह संस्कार कराया।

दि० २०७६४ को ग्राम पो० महमदपुर जि० अलीगढ मे २६ ईसाई हरिजन स्त्री पुरुष बालको को शुद्ध किया।

प्रचारक—श्री शिवचरन लाल गौतम द्वारा

—२८ ६-६४ ग्रा० बरबातल, अतरौली अलीगढ़ मे २५ हरिजन ईसाई व्यक्तियो को शुद्ध किया गया।

ग्राम कल्याणपुर डा० इज्जतपुर, अतरौली अलीगढ़ मे २५ ईसाई हरिजन शुद्ध किये गये। ग्राम करबारी (अनूपशहर) जि० बुलन्दशहर में ४० ईसाई हरिजन शुद्ध किये गये।

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती गु०वै० आश्रम वेदव्यास पान पोस राउरकेला द्वारा –

—ग्राम लालदगा पो० थाना बडगा जि० सुन्दरगढ़ निवासी कल्दा किसान परिवार में १६ व्यक्ति लोटू किसान ६ व्यक्ति बहकी किसान ४ व्यक्ति टोकू किसान ८ व्यक्ति ११ ८ ६४ को वदिक धम में दीक्षित किये गये। नाम क्रमश कृष्णचन्द्र लव बलभद्र और ठाकुर रक्खे गये। उनके ४ बालकों को गुरुकुल मे आश्रय दिया गया। प० म स्कर दुतिया ग्राम बुढ़ाकटा इस इलाके मे शुद्धि का काय कर रहे है।

श्री हरिप्रसाद जी वानप्रस्थी द्वारा

ग्राम बिजौली जि० मेरठ मे कुछ मनुष्यों की भूल से ईसाइयों के गिरजे की स्थापना हुई। भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा की ओर से १९ ७ ६४ को सम्मेलन हुआ। जिसमे ११२ ईसाइयों की शुद्धि हुई तथा वानप्रस्थी श्री हरप्रसाद जी के उपदेशों से आयसमाज और आ० स० मन्दिर की स्थापना हुई।

२४ से ३१ ७ ६४ तक जिला बुलन्दशहर में वेद प्रचार की धूम मचा कर दो सस्कार श्री हरप्रसाद जी वानप्रस्थी ने कराये। एक प० राम शरण दास जी की दुकान व मकान का गृहप्रवेश सस्कार था और दूसरा प० भगाप्रसाद जी पू० मन्त्री आय सभा के बेटे का नामकरण था।

श्री डालचन्द आर्य तथा श्री हरप्रसाद वानप्रस्थी द्वारा

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा द्वारा शुद्धि सम्मेलन १९ ७ ६४ को हुआ। जिसमे १३४ ईसाइयो को वदिक धम मे दीक्षित कर पुरतन जाटव जाति सम्मिलित किया गया।

–८ ९ ८ ६४ को ग्राम शेरगढ़ी (मेरठ) में शुद्धि सम्मेलन द्वारा १७९ ईसाइयों को शुद्ध किया गया। संस्कार श्री हरप्रसाद वानप्रस्थी ने कराया।

श्री इतवारी लाल आर्य तथा श्री हरप्रसाद वानप्रस्थी द्वारा

१३ ९ ६४ को ग्राम भगवानपुर जिला सहारनपुर के शुद्धि सम्मेलन में १८८ ईसाइयों ने वैदिक धर्म की दीक्षा ली।

—आल इण्डिया दयानन्द सालवेशन मिशन होश्यारपुर के कार्यकर्त्ताओं के अथक प्रयास से अप्रैल से अगस्त १९६४ तक पांच मास में ५०४ अहिन्दुओं को वैदिक धर्म में दाखिल किया गया—पंजाब १८८ बिहार ८५ उड़ीसा १५२ म०प्र० ७८ उ० प्र० १ तथा दो अपहृत हिन्दू कन्याओं का उद्धार किया गया। जिला नैनीताल में एक छः व्यक्तियों के परिवार को ईसाई होने से बचाया गया।

—अराष्ट्रिय ईसाई प्रचार निरोध संयुक्त समिति के अनरौला (अलीगढ़) के संयोजक श्री शिवचरनलाल गौतम ने ७ ८ ६४ को ग्राम रामपुर दलपतपुर डा खेतला जि० अलीगढ़ के १७ ईसाई हरिजन स्त्री पुरुष बालकों को वैदिक रीत्यनुसार शुद्ध किया।

—अ० ई० प्र० नि० स० स० नई दिल्ली के अन्तर्गत अलीगढ़ के कार्यकर्त्ता श्री गिरीशचन्द्र आर्य द्वारा निम्न शुद्धि संस्कार हुए—१२ ६ ६४ ग्रा० पो० हमोना ६६, १६ ६ ६४ सोराई डा० ३८। योग १०४

—अ० ई० प्र० नि० स० दिल्ली की ओर से अलीगढ़ के प्रचारक काशी नाथ शर्मा द्वारा निम्न शुद्धियां हुई। ८-९ ६४ ग्राम पानेशवर पो० कौना ३ १२ ९-६४ मीरपुर पो० मीरपुर ५१ १३ ९ ६४ दोना हमीदपुर २१ १९-९ ६४ ग्राम सुजावलगढ़ पो० पिसावा २७, २०-९-६४ पिसावा २१ २१-९ ६४ जलालपुर २१।

–भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा दिल्ली के तत्वावधान में १ ११ ६४ को श्री गुलाम मुहम्मद इकबाल परिवार के ८० व्यक्तियों ने वैदिक धर्म में प्रवेश किया। शुद्धि संस्कार श्री हरिप्रसाद जी वानप्रस्थी ने कराया। शुद्धि समारोह आर्यसमाज राजेन्द्रनगर नई दिल्ली में श्री नारायणदास कपूर प्रधान सभा की अध्यक्षता में हुआ। नया नाम रामलाल आर्य रखा गया।

—भा॰ हि॰ शु॰ सभा दिल्ली के उपदेशक श्री इतवारी लाल आर्य ने ग्राम परवाना जि॰ बुलन्दशहर मे २५ १० ६४ को शुद्धि सम्मेलन में १३१ ईसाइयो को वैदिक धर्म की दीक्षा दी। शुद्धि संस्कार श्री हरिप्रसाद जी वानप्रस्थी ने कराया।

सभा उपदेशक श्री डालचन्द आर्य ने ग्राम कनोजा जिला मेरठ में २६ १० ६४ को शुद्धि समारोह का आयोजन किया। शुद्धि संस्कार श्री हरिप्रसाद जी वानप्रस्थी ने कराया जिसमे १२१ ईसाइयों ने वैदिक धर्म की दीक्षा ली।

(—ग्राम मुरादपुर कुरसी जि॰ मेरठ में २७ १० ६४ को श्री डालचन्द जी के प्रयत्न से शुद्धि सम्मेलन हुआ जिसमे ६५ ईसाइयों ने वैदिक धर्म की दीक्षा ली। शुद्धि संस्कार श्री हरिप्रसाद वानप्रस्थी ने कराया।

—आर्यसमाज अरमापुर स्टेट कानपुर
। २७ १० ६४ मगलवार को एक ईसाई
वती तथा एक मुस्लिम परिवार मे
द्वामी हिन्दू युवक का शुद्धि की गई,
पश्चात् वदिक र,ति स दोनो का
ाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न किया गया
वती का नाम रजोनासिह के स्थान पर
ाजरानी रक्खा गया तथा युवक का
ाम के० मुनी स्वामी है।

—आयसमाज जुही कानपुर मे २५-
० ६४ को एक ईसाइ दम्पति की शुद्धि
ो गई। पहले इनके पितामह क्षात्र्य
। पूर्व नाम डो डो सिह परिवर्तित
मपालसिह श्रीमती मेरी परिवर्तित
ान्ति देवी।

—आयसमाज बाबूपुरवा कानपुर मे
जीज नाम के एक मुसलमान की शुद्धि
५-८ ६४ को हुइ,नया नाम सन्तोषसिंह
रखा गया।

—अ य समाज पिम्परी कालोनी
ूना) मे एक ईसाई महिला ऐनी
ासस क शुद्ध कर सुशीलादेवी नाम
वा गया व शिवणा नामक हिन्दू युवक
वदकि पद्धति के अनुसार विवाह
ंकार सम्पन्न हुआ।

बच्चे और उनका भविष्य

(श्री दिवाकर जी)

बच्चे हमारे देश की आशा हैं। उनके कंधों पर भविष्य का भार आयेगा। इसलिये उनके जीवन पथ को प्रशस्त करना हर माता पिता का कर्तव्य है जिससे कि वे आगे चलकर कुशल नागरिक बन सकें। उनकी शिक्षा दीक्षा रहन सहन पर समुचित ध्यान दिया जाय तभी यह सम्भव होगा। बच्चों को प्यार तो सभी करते हैं किन्तु बहुधा यह देखा जाता है कि या तो बच्चों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है या इतना अधिक ध्यान दिया जाता है कि उन्हें स्वयं कुछ सोचने या करने की स्वतन्त्रता ही नहीं रह जाती फलतः उनमें परावलम्बन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और आत्म-निर्भर होने की ओर उनकी रुचि नहीं रह जाती। इसलिये बड़ी सावधानी के साथ उनकी अभिरुचि या रुझान को देखते हुए उनका पथ-प्रदर्शन करना चाहिये।

लोगों के व्यस्त दैनिक जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो यह जानकर आश्चर्य होता है कि अपने बच्चों के लिए वे कितना थोड़ा समय निकल पाते हैं। विचारणीय है कि जिनके लिए अभिभावक इतना काम करते हैं उन्हीं बच्चों के लिए वे समय नहीं दे पाते। उन्हें न बच्चों के साथ मन बहलाने का समय रहता है और न उनकी जिज्ञासाएं शान्त करने का। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों की बात तो दूर रही बहुत बड़ी संख्या में ऐसे बच्चे भी उपेक्षित रहते हैं जिनके माता पिता अथवा अभिभावक हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। जैसे हो बच्चों को चौबीस घण्टों में से कुछ सा समय अवश्य दिया जाना चाहिये। बच्चों के समय का एक अंश अनिवार्य रूप से बच्चों का भी होना चाहिये।

भारत में छात्रों के अनुशासन का प्रश्न बहुधा खड़ा होता रहता है। छात्र आन्दोलन प्रारम्भ होने पर कभी कभी शान्ति स्थापना के लिये सरकार को बल प्रयोग भी करना पड़ता है। छात्रों की अनुशासनहीनता का दोष सरकार और शिक्षा प्रणाली पर मढ़ दिया जाता है। अध्यापकों को भी दोषी ठहराया जाता है। इस सम्बन्ध में यह न भूलना चाहिये कि अधिकतर छात्रों का अधिकांश समय स्कूल कालेजों में नहीं वरन घर पर व्यतीत होता है। यदि बच्चों पर घर में अधिक ध्यान दिया जाय तो वे बड़ों का आदर करना और उनके बताये रास्ते पर चलना सीखेंगे और छात्रों में अनुशासनहीनता और उच्छृङ्खलता नहीं रह जायगी। वे अपने गुरुजनों का भी आदर करेंगे और अध्यापकों को उनका सक्रिय सहयोग मिलेगा।

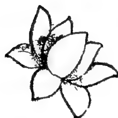
बाल कल्याण कार्य के प्रति सरकार यथासम्भव जागरूक है परन्तु भारत जैसे पिछड़े देश में अन्य सम्पन्न राष्ट्रों के समान बच्चों के लिये सुविधाओं की व्यवस्था करना सम्प्रति दुष्कर है। फिर भी जो कुछ सम्भव है वह किया जा रहा है। बच्चों में अपराध करने की प्रवृत्ति को रोकने तथा उनके प्रति होने वाले अपराधों को दण्डित करने के उद्देश्य से उत्तरप्रदेश में बाल अधिनियम बनाया गया है जो कानपुर आगरा, वाराणसी, इलाहाबाद बरेली और लखनऊ में पूरा-पूरा लागू भी हो चुका है। इसके अतिरिक्त बाल अपराधियों के न्यायालय वेल फाउन्ड्स तथा एप्रूव्ड स्कूल भी कार्य कर रहे हैं। परिगणित तथा विमोचित जातियों के बच्चों के लिये आश्रम टाइप के स्कूल भी खोले गये हैं जहां बच्चों के लिये शिक्षा आवास तथा भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था है। आगरा और वाराणसी में बच्चों के मनोवैज्ञानिक निर्देशन के लिये केन्द्र स्थापित किये गये हैं। उत्तरप्रदेश में गूंगे बहरे और अंधे बच्चों के लिये कुछ स्कूल निजी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे थे परन्तु उनमें एकरूपता न थी। अतएव ऐसी संस्थाओं के मार्गदर्शन तथा इनके एकरूपता लाने के उद्देश्य से सरकार ने आगरा तथा बरेली में गूंगे तथा बहरे बच्चों और लखनऊ और गोरखपुर में अंधे बच्चों के लिये स्कूल खोले हैं। इनमें निर्धन बच्चों के लिये भी स्कूल खोले हैं। इनमें निर्धन बच्चों को छात्रवृत्तियां देने की व्यवस्था है। आगरा और मेरठ में अनाथ और परित्यक्त बच्चों के लालन-पालन का प्रबन्ध किया गया है। प्रदेश में जगह-जगह पर बालक्रीड़ा स्थल तथा अनाथालय आदि स्थापित किये जा रहे हैं। लखनऊ में मोतीलाल नेहरू स्मारक परिषद ने एक विशाल बाल-संग्रहालय की स्थापना की है जहां बच्चों को न केवल दुनियां की विचित्र वस्तुयें दिखाई जाती हैं वरन उन्हें विभिन्न प्रकार का प्रशिक्षण भी दिया जाता है जिसमें नृत्य संगीत चित्रकला मोजे बनाना काष्ठ कला आदि सम्मिलित हैं। प्रदेश सरकार से इस संग्रहालय को वित्तीय सहायता भी प्राप्त होती है।

बच्चों के उचित लालन-पालन और उनकी सुविधाओं के लिये अभी बहुत कुछ करना शेष है और इनके लिये केवल सरकार पर अवलम्बित नहीं रहना चाहिये। सरकार तो इस दिशा में यथासम्भव प्रयत्न कर रही है। आवश्यकता इस बात की है कि माता-पिता तथा अभिभावक और समाज सेवी संस्थायें भी बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें। ★



आर्य्यमित्र









अवैतनिक सम्पादक—

मेशचन्द्र स्नातक, शिरोमणि एम. ए.

(इस प्रति का मूल्य १० पैसे

ओ३म्

साप्ताहिक आर्यमित्र ऋष्यङ्क

वर्ष ६६ | लखनऊ रविवार कार्तिक १० शक १८८६ कार्तिक कृ० १२ वि० २०२१ | अङ्क
१ व ८ नवम्बर सन १९६४ ई०, दयानन्दाब्द १४०, सृष्टि संवत १ ९७ २९,४९,०६५ | ४३-४४

ऋषि-निर्वाण




जिसने जनता के हित मे निज तनु को होम दिया है
पी तीव्र गरल की धारा वसुधा को सोम दिया है।
जननी या जनक जनो से जिसने था नाता जोडा
मिट्टी को प्यार किया था कञ्चन भवनो को छोडा ॥१॥

लहराई जिसकी जग मे गङ्गा सी पूत जवानी,
कण कण वसुधा का कहता है जिसकी अमिट कहानी।
व्रत ब्रह्मचर्य की वरदा पावन प्रतिमा प्रकटाई,
सागर भी नाप न सकता है जिसकी गुरु गहराई ॥२॥




ले ज्ञान रश्मियां स्वर्णिम भूतल पर रवि सम आया,
पाखण्ड पुरातन तमसा को पल मे दूर भगाया।
शास्त्रार्थ-समर मे निर्भय निर्द्वन्द्व नृसिंह दहाडा
अभिमानी पथ विरोधी वृन्दों को शीघ्र पछाडा ॥३॥

वेदों की ज्ञान सुधा से सींची मानवता क्यारी,
दर्शन की दीप दया से थी कुसुमा विश्व निहारी।
मिथ्या उन्मूलन करके मधुमूल मन्त्र उमगाया,
'सत्यार्थ प्रकाश" प्रभा से था सत्य सुरत्न दिखाया ॥४॥




भारत की राष्ट्रियता का था बीज हृदय मे बोया
जन मन का जागृत करके जो आज यहीं था सोया।
जिसके सिद्धान्त जगत मे निश्चित सो निधि अक्षय है,
जिसके गुरु गौरव गीतो की सरगम अमर अभय है ॥५॥

उसके निर्वाण-दिवस पर फिर क्यो न चेतना जागे
आर्यत्व स्नेह मे अवनी को क्यो न साधना पागे।
संसृति के हृदय-भवन मे श्रद्धा के दीप जलाओ,
तब सत्य रूप मे आर्यो ऋषि अनुगामी कहलाओ ॥६॥




कविवर—'प्रणव" शास्त्री एम० ए०

सम्पादकीय—

तमसोमा ज्योतिर्गमय

महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस का आर्यसमाज, भारतवर्ष और विश्व की मानव जाति के लिये एक ही सन्देश है, अभाव को नष्टकर ज्ञान का प्रकाश करो। ऋषि जीवन पर्यन्त इसी साधना में रत रहे उनके जीवन का एक-एक क्षण अज्ञान के नाश और ज्ञान के प्रसार में संलग्न रहा, ऋषि की कठोर साधना ने देशवासियों के हृदयों में वह दिव्य ज्योति जागृत की कि सोया भारत जाग उठा, बूढ़े भारत में फिर से नयी जवानी का रक्त-संचार आरम्भ हो गया और देशवासी स्वाधीनता और सुराज्य की कल्पनायें करने लगे। आर्यसमाज की स्थापना द्वारा वे विश्व-उपकार के महान् मिशन की पूर्ति करना चाहते थे परन्तु आर्यसमाज के लिये भारत की समस्या उपेक्षणीय नहीं हो सकती थी इसीलिये सार्वभौम उद्देश्य वाला संगठन होने पर भी आर्यसमाज की विशेष गति-विधियां भारतीय जीवन से सम्बन्धित रहीं और भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में एक हड़कम्प पैदा हो गया। ऋषि चाहते थे कि पहले हम अपने घर का सुधार करलें संसार का सुधार अपने आप हो जायगा इसलिये ऋषि ने पाखण्ड-खण्डन का कुठारा इस तीक्ष्णता और वेग से चलाया कि स्वार्थी और अन्यायी घबरा उठे, ऋषि को जीवन में चौदह बार विषपान करना पड़ा पर वे 'निन्दन्तु नीति निपुणा' के अनुसार अपने मिशन में अडिग रहे। अज्ञान, अन्याय, अभाव के विरुद्ध उन्होंने जो अभियान चलाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना आरम्भ काल में था आज देश स्वाधीन है पर देश का नेतृत्व मानसिक रूप से पराधीन है और पश्चिम के भौतिकवादी आकर्षण में फसकर नकलची मनोवृत्ति का प्रदर्शन कर रहा है। इस आत्म-हनन की स्थिति को समाप्त करने के लिये ऋषि दयानन्द का जीवन एक आदर्श प्रेरणा स्त्रोत है। स्वदेश, स्वभाषा, स्वसभ्यता, स्ववेशभूषा आदि के प्रति गौरव की भावना यदि समाप्त हो गयी तो भारत का बचा-खुचा गौरव भी समाप्त हो जायगा। अतः आज देशवासियों के लिये ऋषि निर्वाण-दिवस की यही प्रेरणा है कि वे राष्ट्र के लिये राष्ट्रीय जीवन-पद्धति, राष्ट्रीय रहन-सहन, आचार विचार आदि की संहिता निर्धारित करें। पश्चिम के अन्धानुकरण ने हमारी स्वतन्त्रता को स्वच्छन्दता में बदल दिया है। मर्यादा रहित जीवन प्रणाली किसी भी राष्ट्र को कभी आगे नहीं बढ़ा सकती वह राष्ट्र चाहे कितना ही महान् हो अवश्य पतनावस्था को प्राप्त होगा यही कारण है कि १८ वर्ष के राष्ट्र निर्माण के बाद देश आज भ्रष्टाचार की व्यापक दलदल में बुरी तरह फस गया है। भ्रष्टाचार दलदल से राष्ट्र को निकालने का एकमात्र मार्ग है राष्ट्र के जीवन में आस्तिकता और नैतिक मूल्यों की स्थापना। आज सब जगह समाजवाद का नारा गूंज रहा है परन्तु आत्मिक विचारधारा से अधिक समाजवाद क्या हो सकता है जिसके कारण शोषण और अन्याय सम्भव ही नहीं रह जाते, "अहिंसा प्रतिष्ठायां वैर त्यागः" जब वैर भाव ही न रहेगा तब शोषण और अन्याय ही कैसे होगा। इसलिये आज देश को सबसे अधिक आवश्यकता आस्तिक भावना के प्रसार की है।

आर्यसमाज के सभी कार्य मानव उपकार योजना के अंग हैं परन्तु उन सबके मूल में आस्तिक भावना प्रमुख है। आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य के जीवन में ईश्वर विश्वास संव्याप्त रहना चाहिये और देशवासी भी ईश्वर विश्वास को सही रूप में समझ सकें इसका प्रयत्न हमें करना चाहिये। वान्त के 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' और गंगा स्नान और कथा से पापमुक्ति वाली आस्तिकता व्यक्ति को निष्कर्मण्य और पाप मनोवृत्ति वाला बनाती है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम कर्मवाद के सिद्धान्त का प्रचार करें और कर्मफल अवश्यम्भावी है इसमें आस्था उत्पन्न करें, देश में संव्याप्त भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति में परिवर्तन आ जायगा।

आज विश्व में भय, अशान्ति और संघर्ष का जो वातावरण संव्याप्त है उस सबका कारण भी अमर्यादित और भौतिकवादी जीवन पद्धति है, महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का यदि व्यापक प्रचार और प्रसार विश्व के बौद्धिक जगत में किया जा सके तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि संसार के विचारक उससे अवश्य प्रभावित होंगे। रोमारोला और एण्ड्रयू जैक्सन जैसे विद्वानों ने ऋषि के महत्व को स्वीकार कर उनका सन्देश विश्व मानव तक पहुंचाया है।



मानव मुक्ति का प्रवर्त्तक दयानन्द



संवत १९४० वि० (३० अक्तूबर १८८३ ई०) की दीपावली की दीप-शृङ्खला को युग-पुरुष महर्षि दयानन्द के निर्वाण ने अलौकिक दीप्ति प्रदान की। विष पान से शरीर आवलों से छलछलाया हुआ था तो भी ऋषि गम्भीर मुद्रा मे वेदपाठ मे सलग्न था और अपने ही घातक, दूध मे विष देने वाले जगन्नाथ को यह कहकर क्षमा-दान दे रहा था कि 'मैं तो ससार मे मानव समाज को बधनो से मुक्त करने आया हू, तो तुझे बन्दी करके शूली पर थोडे चढ़ाऊँगा'। उसे मार्ग व्यय दिया और आशीर्वाद देकर विदा किया। तदुपरान्त यह कहकर अपने शरीर को छोडा 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो'। ससार के समक्ष यह उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया कि सत और ज्ञानी, योगी और यति अपने जीवन से देश और काल को सुरभित व आनन्दमय करता रहता है और मौत से मिटते हुए भी जीवन की जनहित रूपी सुषमा को दूषित नहीं होने देता। क्या आर्यसमाज अपने प्रवर्तक ऋषि के पद-चिह्नों पर चलकर देश और राष्ट्र पर अपना सर्वस्व न्योछावर करके उसके उन्नयन मे सन्नद्ध होगा ? यदि नहीं, तो निर्वाण दिवस मनाना व्यर्थ होगा।



मदनमोहन वर्मा प्रधान

उत्तरप्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा तथा अध्यक्ष विधान सभा

आर्यसमाज के प्रमुख अधिकारियों और विद्वानो को सम्मिलित रूप से ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि ऋषि की विचारधारा सही रूप मे विश्व-जनता तक पहुचे। इस कार्य के लिये सार्वदेशिक सभा के विदेश प्रचार विभाग मे साहित्य निर्माण का कार्य शीघ्र आरम्भ होना चाहिये। लन्दन में आर्यसमाज बनता बिगडता रहा है अब वह कब साकार रूप धारण करेगा नहीं कहा जा सकता परन्तु अब 'हिन्दू-भवन' बनने की योजना सामने आ चुकी है। आर्य समाज को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न हो कि भारतीय विचार-धारा का सही रूप मे प्रतिनिधित्व हो सके। यदि वहां भी पाखण्ड-स्वरूप प्रचलित हुआ तो भारत का अपयश ही होगा। भारत वेदो का अनुयायी है पर वेदों के सम्बन्ध में भ्रान्तिया दूर करने के लिये कोई प्रयत्नशील नहीं, इस दिशा मे भी आर्यसमाज का विशेष दायित्व है।

महर्षि निर्वाण दिवस हम आर्य जनो के लिये शुभ-संकल्प और आत्म निरीक्षण का दिवस है। हम सब सकल्प लें कि हम महर्षि के बताये पथ पर दृढ़तापूर्वक चलेंगे और भारत को आदर्श राष्ट्र बनायेंगे तथा विश्व शान्ति के लिये वैदिक सन्देश गुंजायेंगे। महर्षि ने जो कार्य हमे सौंपा है उसकी पूर्ति मे विश्राम सम्भव ही नहीं। आज की भाषा मे हमारा नारा 'आराम हराम है' और ऋषि वाणी मे हमारा मार्ग है–' चरैवेति चरैवेति चरैवेति" ★

आभार

हम "आर्यमित्र" के विद्वान् लेखकों, कवियों के आभारी हैं जिन्होने अपनी अमूल्य लेखनी का प्रसाद आर्यजगत् को दिया है। स्थानाभाव से जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके हैं आशा है वे क्षमा करेंगे। –डा राजेन्द्र, उपसम्पादक

❀ आवश्यक सूचना ❀

आर्यमित्र का यह ४३-४४ संयुक्त अंक प्रस्तुत है। जो दिनाक १ व ८ नवम्बर का है। अब अगला अंक १५ नवम्बर को प्रकाशित होगा। पाठक नोट कर लें।

—[illegible] तिवारी मन्त्री व अधिष्ठाता "आर्यमित्र"

महान् दयानन्द !

★

पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों में जिन महापुरुषों ने भारत भूमि को पवित्र किया है उनमें स्वा० दयानन्द सरस्वती का स्थान बहुत ऊँचा है। सैकड़ों वर्षों से सोये हुए हिन्दू समाज की आत्मा को उद्बुद्ध करने का

श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी

बहुत बड़ा श्रेय उनको है। उनके दार्शनिक विचारों से असहमत होना सम्भव है, वेदों की उन्होंने जो व्याख्या की है उसको बहुत से स्थलों में स्वीकार न करना सम्भव है परन्तु उनका उज्ज्वल चरित्र ज्वलन्त देश प्रेम, गम्भीर विद्वत्ता और हिन्दुओं के अभ्युदय के प्रति अनन्य निष्ठा के सम्बन्ध में दो राय नहीं हो सकतीं। यदि आज हिन्दू समाज अपनी बहुत सी रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियों को छोड़ सका है तो इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत दूर तक स्वामी जी के उपदेशों का प्रभाव है। जो लोग उनके विचारों से पूर्णतया सहमत नहीं हैं उनके हृदय में भी स्वामी दयानन्द जी के प्रति आदर की भावना है। मैं भी इस अवसर पर आपके साथ उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

—सम्पूर्णानन्द, राज्यपाल, राजस्थान

राष्ट्रोद्धारक दयानन्द !

★

हमारे देश की राष्ट्रीयता को जागृत करने में महर्षि दयानन्द की महान् देन है। वे ऐसे युग में पैदा हुए जिस युग में भारत में, पाखंड अन्धविश्वास और दासता का बोलबाला था। इस देश की आत्मा पर अनेक आघात हो रहे थे। महर्षि ने देश के कोने कोने में घूम घूम कर देश की आत्मा को जागृत करने के लिये अलख जगाया। उन्होंने नये समाज के निर्माण के लिये क्षेत्र तैयार किया और देश की स्वतन्त्रता के लिये मार्ग सुगम किया। वे व्यावहारिक राजनीतिज्ञ नहीं थे पर उन्होंने देश को राजनीति का बौद्धिक ज्ञान दिया।

महर्षि दयानन्द भारत में स्वराज्य की कल्पना करते थे और उन्होंने आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य में जहां वैदिक धर्म की आस्था को स्थिर करने का प्रयास किया वहां उन्होंने देश-भक्ति का पाठ भी पढ़ाया।

पद-दलितों को समाज में उचित स्थान मिले इसके लिए आर्यसमाज ने विशेष कार्यक्रम बनाकर कार्य किया। आर्यसमाज में सबको समान रूप से सम्मान प्राप्त है। समता तथा समानता का वास्तविक पाठ यदि किसी ने सिखाया है तो वह महर्षि दयानन्द थे। अछूतों के साथ होने वाले अमानुषिक व्यवहार को उनके प्रचार ने कुछ शिथिल किया। आज भी अस्पृश्यता का अभिशाप विद्यमान है। महर्षि दयानन्द जिस स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे, उसमें अस्पृश्यता को स्थान नहीं है। आर्यसमाज आज भी अपने कर्तव्य पालन में सचेष्ट है। महर्षि के बतलाये हुए आदर्शों पर चलकर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धा भक्ति दिखा सकते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक थे।

मैं दीपावली के इस पुण्य पर्व पर महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

—बल्देव सिंह आर्य

उपसचिव कृषि, उत्तर प्रदेश



'यथायोग्य व्यवहार'—
तलवार का जवाब तलवार से

(ले०—श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री एम०पी०, मुख्य उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश)

शान्ति सहिष्णुता और सन्तोष की भी तो एक सीमा होती है। भगवान कृष्ण ने सौ गाली पूरी होने तक तो शिशुपाल को क्षमा कर दिया था पर एक सौ एक



लेखक

होने पर सुदर्शन चक्र हाथ मे रखना भारी हो गया और शिशुपाल को हमेशा के लिये रास्ते से हटा दिया। पाकिस्तान के निर्माता भारत की उदारता को कमजोरी समझ रहे हैं। हम चाहते हैं कि दोनों देश भले पडोसियो की तरह रहना सीखें पर उन पर हमारी इस अपील का कोई खास असर नहीं होता। हमारी हर अच्छी बात को वह ठुकरा देता है और बार बार म्यान से तलवार निकाल कर डराना चाहता है। हजारों हिन्दुओ का खून बहा कर दिया गया जिसकी हवा धीरे धीरे भारत मे भी फैलने लगी। अगर वह अपनी इन आदतो से बाज नहीं आयगे तो फिर मजबूर होकर तलवार का जवाब तलवार से देना होगा। यह थे वो भाव सरदार पटेल के उन शब्दो के जो पाकिस्तानी मनोवृत्ति के नेताओ को जवाब देते हुए उन्होंने मेरठ के कांग्रेस अधिवेशन मे कहे थे। सरदार जानबूझ कर लडाई मोल लेने के पक्ष मे कभी नहीं थे परन्तु लडाई यदि सर पर लाद ही दी जाय तो उसमे बच कर भागना भी महा कायरता समझते थे। उनका अपना विश्वास था कि देश और जातियां हमेशा अपने शक्ति बल से ही सुरक्षित रहती है। इतिहास मे जब जब भी इनकी उपेक्षा की गई तब तब ही चोट लगी है। सरदार के देहावसान के बाद भारत के पडोसी राष्ट्र चीन ने अपनी कूटनीति मे भारत के कुछ शीर्षस्थ नेताओ को फसा लिया। भगवान बुद्ध और पञ्चशील की आड मे हम यह भूल बठे कि यह इस महादानव की एक चाल मात्र है। उसी चक्कर मे सेना पर अधिक व्यय और उसे आधुनिकतम हथियारों से लैस करने की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका। पर जब नेफा और लद्दाख मे एक दिन उसके इरादे खुलकर सामने आये तब फिर हमारे नेताओ ने कहा कि चीन ने विश्वासघात किया है और उसने पीछे से हमारी पीठ मे छुरा भोका है। चीनी आक्रमण के समय भारत पर हर छोटा बडा एक स्वर से यह ही कहता सुनाई देता था काश कहीं सरदार पाच सात साल और जीवित रह गये होते तो भारत का यह स्वाभिमान हिमालय की चोटियो पर इस तरह नष्ट न होता। उस चोट के लगने के बाद एक बात अच्छी हुई और वह यह कि देश फुकार कर खडा हो गया और नेता भी कहने लगे कि इस हमले ने हमारी आखें खोल दी है। परन्तु दुर्भाग्य से न तो देश की एकता का ही लाभ उठाया गया और न खुली ही आखो से दूर तक कुछ देखने की कोशिश ही की गई। परिणाम सामने है लडाई फिर सिर पर खडी है और नहीं कहा जा सकता कल क्या होने वाला है ?

भारत की साढे पाच सौ के लगभग रियासतो के विलीनीकरण का प्रश्न इतना भारी था जिसे सुलझाना सरदार के ही बस की बात थी। खून की एक बूद गिराये बिना बडे प्रेम और सद्भाव से इस तरह देश के राजाओ को सरदार ने अपने साथ ले लिया, यह उनकी सूझबूझ

का ही परिणाम था। एक-आध जगह कहीं हल्की सी हलचल यदि करनी भी पड़ी तो वो भी विवश होकर। परन्तु अकेले सरदार सारी रियासतों को भारत में दूध और पानी की तरह मिलाकर ऐसे एकाकार कर गये जैसे बहुत पहले से मानो उन्होंने कोई इसकी योजना बना रखी थी, परन्तु आश्चर्य है, सत्रह साल की लम्बी अवधि बीतने के बाद भी अभी तक भारत के सब नेता मिलकर एक काश्मीर की समस्या का समाधान नहीं कर पाये। सरदार के हाथ मे यदि यह भी बात होती तो न जाने कब का इस समस्या का भी हल हो गया होता। अब जिस ढंग से जम्मू काश्मीर की समस्या का समाधान सोचा जा रहा है उससे बात कुछ बिगड़ ही रही है बन नहीं रही। महाराज हरीसिंह जिन और कई कारणों से जल्दी ही जम्मू काश्मीर का भारत मे विलय नहीं कर सके, उनमें एक प्रमुख कारण यह भी था कि तत्कालीन भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू शेख अब्दुल्ला को उस राज्य का प्रधान मन्त्री बनाना चाहते थे। महाराज हरीसिंह ने भारत सरकार को इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ समझाया भी पर उसका कोई विशेष प्रभाव न हो सका। पर आखिरकार १९५३ मे महाराज हरीसिंह की बात सामने आई जब शेख अब्दुल्ला को उनकी भारत विरोधी गतिविधियों के कारण जेल मे डालना पड़ा। सरदार पटेल का अंतिम समय तक शेख अब्दुल्ला के सम्बन्ध मे यह विश्वास था कि यह व्यक्ति कभी भारत का वफादार नहीं हो सकता पर वह इसके लिये करते भी क्या ? क्योंकि काश्मीर ही एक ऐसी रियासत थी जिसके भारत मे मिलाने का दायित्व स्वयं श्री नेहरू ने अपने कन्धों पर ले लिया था। सरदार का यह भी विश्वास था कि जो शरणार्थी सीमा प्रान्त और पंजाब से उजड़ कर आ रहे हैं उनको भारत के सीमावर्ती राज्य मे बसने की सुविधायें दी जायें और उनके लिए वहां अच्छे कारोबार भी चलाने की व्यवस्था की जाय, परन्तु शेख के चक्कर मे वह सब भी सम्भव न हो सका। अब फिर करोड़ों रुपया उसके मुकदमे पर व्यय करने के बाद बिना निर्णय पर पहुंचे उसे फिर जेल से बाहर कर दिया है और वह निर्भय होकर काश्मीर को जनमत संग्रह की आड़ मे भारत से पृथक् करने के स्वप्न ले रहा है। वर्तमान भारत सरकार और उसके नेता काश्मीर प्रान्त के एकीकरण में बाधक संविधान की धारा ३७० को हटाने में इसलिये हिचकते हैं कि इससे विश्व जनमत हमारे खिलाफ हो जायेगा, पर सरदार देश की समस्याओं के समाधान में विश्व के जनमत की उतनी परवाह नहीं करते थे जितना अपने देशवासियों के मत का वह ध्यान रखते थे। शत्रु को तैयारियों के लिये लम्बा समय देना सरदार की नीति के विपरीत था। उनका अपना विचार था जो काम करना है उसे जल्दी ही कर लिया जाय। देर करने से उसमें और शाखा, प्रशाखा फूटने का भय है। आज या कल जब भी हो काश्मीर की समस्या का समाधान अर्थात् जो धरती इस समय पाकिस्तान के अधिकार में काश्मीर की है उसे तलवार के बल से ही लेना होगा। थाली में रखकर पाकिस्तान उपहार की तरह भारत को भेंट में वह भाग दे देगा ऐसा सोचना भी अपनी अदूरदर्शिता का ही परिचायक होगा। ठीक वह ही स्थिति लगभग चीन के सम्बन्ध मे भी है। विश्वासघात कहें अथवा अपनी राजनीतिक सूझ बूझ का अभाव उसने जब तिब्बत पर निरीह लामाओं का कत्ले-आम किया था हमें सावधान हो जाना चाहिए था। फिर जब बद्रीनाथ के पास बाराहोती में अपनी सेनायें उसने भेज दीं तब तो आंख खुल ही जानी चाहिये थी पर हमें पंचशील की हवाओं ने इतना मस्त बना दिया था जो हम यह सब सोच भी न पाये। पर क्या आज यह सम्भव है कि मुट्ठी-मुट्ठी भर लोगों के वह देश जो कोलम्बो सम्मेलन में सम्मिलित हुये थे, चीनी अणुबम की उपेक्षा करके भारत के साथ चीन के विरोध में ताल ठोंककर खड़े हो जायेंगे और कोलम्बो प्रस्ताव स्वीकार न करने पर खुलकर कहेंगे कि हम भारत के साथ रहेंगे। कैरो में हुए तटस्थ राष्ट्रों के सम्मेलन में जिन्हें अपने प्रस्तावों की पृष्ठ भूमि में बैठकर चीनी धमकी से बैठक करने तक का भी साहस न हुआ, कब तक उनके भरोसे बैठा रहा जायेगा ? चीन जब अणु-बम का विस्फोट कर चुका है तब ये कहना हम उसके विरोध में जनमत तैयार करेंगे, अपनी दुर्बलता का ही परिचय देना है। यदि अणु बम तैयार करने की शक्ति हम में है तो क्यों नहीं आत्म-रक्षा के लिए वह भी साहसिक कदम हम उठाते ? शक्ति प्रदर्शन के युग में शान्ति का जयघोष देश को ले डूबेगा। सरदार की

[शेष पृष्ठ ८ पर]



भेदभित्ति समादर



(ले०—श्री स्वा० ध्रुवानन्द जी सरस्वती)

प्रश्न—जब महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज से पूर्व अनेक सन्ध्या पद्धति-विद्यमान थीं तब श्री स्वामी जी महाराज ने एक नूतन सन्ध्या-पद्धति का निर्माण क्यों किया ?

उत्तर—(क) समस्त सन्ध्या-पद्धति आधारशून्य साधार नहीं थी ।

(ख) मन्त्रों का विनियोग निरर्थक या सार्थक नहीं था ।

(ग) उन सन्ध्या पद्धतियों में भेदभित्ति का प्रचुर प्राबल्य था ।

प्रश्न—आधार शून्य साधार का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—सन्ध्या पद्धति का क्रम यदि वेद, उपनिषद आदि से अनुमोदित है तो वह सन्ध्या पद्धति साधार है । वेद का आदेश है कि—"उपत्वा अग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि" हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म परमात्मन ! प्रतिदिन साय प्रात "नमो भरन्त" तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो" "नम श्रमभाय च" नम पूवक आपकी उपासना करें । इसमे प्रतिदिन सायकाल और प्रात काल सन्ध्या का विधान है और वह सन्ध्या नम पूर्वक हो । अपि च—

कल्पना कीजिये—स्टेशन पर पहुचने वाले व्यक्ति के लिये एक तागा ठीक हो, घोड़ा बलवान हो, और दृढ हो उसके मुख में लगाम हो, ड्राइवर दक्ष हो और अन्धा न हो । ऐसे तागे मे बैठने वाला व्यक्ति ही स्टेशन को (प्राप्तव्य स्थान को) प्राप्त कर सकता है । उपनिषद का उपदेश है कि—"आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेवतु बुद्धि तु सारथिम् विद्धि मन प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयानाहु विषयास्तेषु गोचरान्' शरीर रथ (तागा) है, इन्द्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि ड्राइवर है, जीवात्मा यात्रा करने वाला है और वेद प्रतिपादित कर्मकाण्ड ही सडक है । अर्थात् वेद प्रतिपादित कर्मकाण्ड की सड़क पर जो व्यक्ति शरीर रूपी तांगे को चलावेगा वह ही आनन्दकन्द परब्रह्म परमात्मा को पा सकेगा ।

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा निर्मित सन्ध्या पद्धति में यह ही प्रकार निहित है अतएव वैदिक सन्ध्या साधार है । आचमन से लेकर प्राणायाम तक एक प्रसग है ।



श्री स्वा ध्रुवानन्द जी

अर्थात् स्नान से शरीर शुद्धि आचमन से कण्ठ - शुद्धि, इन्द्रिय स्पर्श से इन्द्रियों मे बलाधान, मार्जन से इन्द्रिय-दोष दूरीकरण, प्राणायाम से मन की स्थिरता करना है । यहां तक एक प्रसग (प्रकरण), अघमर्षण द्वितीय प्रसग, मनसा परिक्रमा तृतीय प्रसग और उपस्थान चतुर्थ प्रकरण है । प्रथम प्रकरण मे प्रभु प्राप्ति के लिये सान्निध्य होना है (योग्य बनना है) पुन अभिमान निवारणार्थ प्रभु के गुणों का चिन्तन करना है । प्रभगुण चिन्तन ही अभिमान निवारण का असाधारण साधन है । अभिमान रहित विधि-वत याचक ही दाता के पास पहुच कर कुछ पा सकता है । इसीलिये श्री स्वामी जी महाराज ने चतुर्थ प्रकरण का नाम उपस्थान रखा है ।

(ख) विनियोग का यह अर्थ है कि जिस मन्त्र का

जो अर्थ हो उस मन्त्र को उसी अर्थ मे लगाना । विनियोग दो प्रकार का होता है । शब्दगत विनियोग और अर्थगत विनियोग । शब्दगत विनियोग उसे कहते हैं कि मन्त्र मे शब्द आया हो । शन्नोदेवी'– यह आचमन मन्त्र है अर्थात इस मन्त्र से आचमन किया जाता है किन्तु इस मन्त्र मे 'आचमन' शब्द नहीं है इसलिए शब्दगत विनियोग नहीं है अपितु अर्थगत विनियोग है । अर्थात इस मन्त्र मे ऐसा पद है जिसका अर्थ आचमन होता है । 'पीतये–पानाय–आचमनाय' आप–इम आप, श भवन्तु । अपि च–

"ऋत च सत्यञ्चाभिद्धात " इन तीनों मन्त्रों मे भी 'अघमर्षण शब्द नहीं किन्तु अघमर्षणार्थक मन्त्र लिखे हैं । यहा पर भी अर्थगत विनियोग है ।

जिस लेखक की पुस्तक मे या लेख मे अथवा जिस वक्ता के प्रवचन मे उपक्रम और उपसहार हो तो वह लेखक और वक्ता प्रशसा का पात्र समझा या माना जाता जाता है । आरम्भ का नाम उपक्रम और समाप्ति का नाम उपसहार है । लेख या प्रवचन जिस विषय को लेकर आरम्भ किया गया हो उसी विषय पर समाप्त होना चाहिये । श्री स्वामी जी महाराज द्वारा निर्मित सन्ध्या पद्धति को यह गौरव भी प्राप्त है । यथा हि–वाक वाक–उपक्रम प्रब्रवाम शरद शतम उपसहार है । करतल कर पृष्ठे उपक्रम, अदीना स्याम शरद शतम् उपसहार है ।

(ग) भेदभित्ति का प्रचुर प्राबल्य का अभिप्राय यह है—चारो वेदों की जितनी शाखायें हैं उन सब शाखाओ का समर्थन स्मृतिकारों ने किया है और निम्न प्रकार से आदेश दिया है–

येषा पारपर्यागतो वेद सपरिबृहण ।
तच्छाख कर्म कुर्वीत तच्छखाऽध्ययनन्तथा ॥

अर्थात परम्परा से जिस परिवार मे जिस वेद की मान्यता चली आई हो उस परिवार को उसी वेद की उसी शाखा का अध्ययन और उसी शाखा के अनुसार सन्ध्या आदि कृत्य करने चाहिये । अर्थात यजुर्वेदीय शाखाओ के अनुसार अपने-अपने परिवारो मे अपनी-अपनी शाखाओ का पठन पाठन करें और उन्हीं शाखाओ के अनुसार सध्या आदि करें । इतना ही भेद नहीं अपितु माध्यनदिनीय शाखा का मानने वाला परिवार कठ शाखा का, कौथुम शाखा को मानने वाला परिवार इन दोनों का न अध्ययन करे और न इनके अनुसार सन्ध्या आदि कर्म ही करे ।

ऋग्वेदीय मानव समज (मानव समूह) का यजुर्वेदीय मानव-समाज से भेद, इन दोनो का सामवेदीय मानव-समाज से भेद सामवेदीय मानव-समाज का इन दोनो से भेद, इन तीनो का अथर्ववेदीय मानव समाज से भेद और अथर्ववेदीय मानव-समाज का इन तीनो से भेद । जिस वेद की जितनी शाखा उतने ही समुदाय और उन समुदायो के धार्मिक कृत्यो मे अनेक भेदो की भित्ति (दीवार) खडी कर दी गई । इस भेद की भित्ति पर चढने वालो मे कलह कालुष्य ने ऐसी जड जमाई कि परस्पर मे घृणा ईर्ष्या और विद्वेष ने अपना स्थायी प्रबल प्रभुत्व स्थापित कर लिया । महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने देखा, सुना और सोचा कि जो आर्य जाति सृष्टि के आरम्भ मे उत्पन्न हुई हो और जिसे ईश्वरीय ज्ञान वेद समुपलब्ध हुआ हो वह जातिभेद की भयकर आंधी मे अपने गौरव को उडा रही हो और अपने गौरव को भेद के दुर्दान्त दावानल से दग्ध किये जा रही हो, इसलिए ही उसे दुरवस्था के दुर्दिन देखने पड रहे है ।

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा सन्ध्या-पद्धति मे शाखा-भेद सर्वथा त्यक्त है । भेदभित्ति का नितान्त तिरादर है और शाखाभेद का सर्वथा बहिष्कार है ।

श्री स्वामी जी महाराज ने शाखा भेदभित्ति का समादर कदापि न किया था और न करते ही थे । क्या इस निर्वाण दिन पर श्री स्वामी जी महाराज के चरण चिह्नों पर चलने वाले हम आर्य परस्पर के आन्तरिक भेद भावो को भुलाने का सकल्प करेंगे ?

(पृष्ठ ६ का शेष)

नीति यही है "तलवार का जवाब तलवार से दो" मल मनसाहत का मलमनसाहत से और अणु बम का जवाब अणु-बम से ।" एक बार यदि लडते लडते देश का बहुत बडा भाग समाप्त भी हो गया तो उस पर साहस और शौर्य के नये अकुर उत्पन्न होगे । इतिहास सुनहरे अक्षरों मे लिखेगा—राम और कृष्ण का देश, शिवा जी और प्रताप का देश, तिलक लाजपतराय और सरदार पटेल का देश अपने पूर्वजो के स्वाभिमान की रक्षा मे लडते लड़ते मर गया परन्तु उनसे झुककर कहीं समझौता नहीं किया ।"



धर्म्म और राजनीति



लेखक—श्री डाक्टर हरिशंकर शर्मा डी० लिट्

जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है,
बढ़ता अधर्म्म अन्धेर-अंधेरा छाता है।
जो लोक और परलोक सिद्धि का साधक है,
अभ्युदय और निःश्रेयस का आराधक है,
जिसको संकीर्ण भावना कभी न भाती है
जिसकी प्रभुता प्रति-क्षण पीयूष पिलाती है,
वह परमतत्व सर्वथा भुलाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।

सद्धर्म्म सदा सुख शान्ति सुधा बरसाता है,
नय-न्याय-नीति का शुभ सन्मार्ग सुझाता है,
मानवता मे वर बन्धु भाव उमगाता है,
वसुधा का वृहत कुटुम्ब रूप दरसाता है
इस विधि-विधान मे सार न पाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।

अत्याचारों से भूमि कांपने लगती है
सोती सुनीति, दुर्नीति दानवी जगती है,
तब स्वार्थ-असुर दुर्दम्म-दर्प्प दिखलाता है
निजता परता का क्षुद्र भाव भर जाता है
मानव मानवता पर विष वज्र गिराता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।

मत, पन्थ, सम्प्रदायों को धर्म्म बताते हैं,
वे अज्ञ दीप को दिनकर कह भरमाते हैं,
क्या कभी धर्म्म-प्रभुता ने युद्ध रचाये हैं,
कब सत्य-अहिंसा ने नर रक्त बहाये हैं,
विपदा वारिधि मे विश्व डुबाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।

भ्रष्टाचारों की अग्नि उग्र हो जाती है,
गुटबन्दी स्नेह-संघटन का गढ़ ढाती है,
मँहगाई दिन दिन दूनी बढ़ती जाती है,
जनता सुख शान्ति न नेक कहीं भी पाती है,
सर्वत्र दुःख दुर्दम्य दृष्टि मे आता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।



संग्राम भूमि मे तोपें आग उगलती हैं,
अगणित लोगों की देहे जीती जलती हैं,
होकर अनाथ लाखो जन घुट-घुट रोते हैं,
भूखो मर मर कर प्राण करोडो खोते हैं,
दुर्भिक्ष दुष्ट दानव मानव-दल खाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।

शासन सत्ता जब धर्म्मयुक्त हो जाती है,
बनकर विनीत अति सौम्य रूप सरसाती है,
जनता भी नैतिकता को ही अपनाती है,
तब शांतिकांति नित सुख-समृद्धि बरसाती है,
सद्भाव-स्नेह का दृढ़ गढ़ ढाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ।।



भारतीय स्वराज्य के प्रथम मन्त्र-द्रष्टा—

महर्षि दयानन्द सरस्वती

[श्री प० दीनदयाल जी उपाध्याय, प्रधानमन्त्री अखिल भारतीय जनसंघ दिल्ली]

विक्रमाब्द १९१४ के स्वातन्त्र्य समर मे हमारी पराजय के बाद जब अंग्रेजों की विजय पताका चातुरन्त भारत मे फहरा रही थी, हमारे राष्ट्र जीवन पर चतुर्दिक से मर्मान्तक प्रहार हो रहे थे और हम आत्मविस्मृत और आत्माभिमान शून्य हो निरीह भाव से अंग्रेज प्रभु की करुणाकोर को लालायित अपना सर्वस्व गवाते जा रहे थे, तब भारत के जीवन में जागृति शंख फूकने वाले जो महा पुरुष अवतीर्ण हुए उनमें महर्षि दयानन्द का स्थान अग्र गण्य है। उनके पास राष्ट्र की दुरवस्था को देखकर दुखित होने वाला सवेदनशील हृदय था, रोगों का सही निदान और उपचार करने वाले चिकित्सक की बुद्धि थी, एक सुधारक की लगन और कर्मठता तथा बुराई से जूझने वाले एक शूरवीर का साहस था और सबसे बढ़कर वह आर्ष दृष्टि थी जो विश्व के द्वन्द्व और मोहान्धकार को चीर कर सत्य का दर्शन कर सके। सत्य सेवा का सम्बल लेकर वे जीवनपथ पर बढ़े। परायों की धमकियां और अपनों की उपेक्षा, तिरस्कार और अवहेलना किसी ने उनको विच लित नहीं कर पाया। भारत के पतित और विकृत जीवन को उन्होंने समुज्ज्वल, सुसस्कृत एव सत्य प्राचीन आदर्शों के साथ जोड़ा तथा समाज में कुरीतियों से लड़ने तथा अपना जीवन श्रेष्ठ बनाने की प्रेरणा पैदा की।

धार्मिक क्रान्ति को आधारभूत मानकर उन्होंने मूलत उसी क्षेत्र मे काम किया। किन्तु जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसको अछूता छोड़ा। स्वदेशी और स्वराज्य का मन्त्र सर्वप्रथम उन्होंने ही दिया। जिनकी दृष्टिमात्र राज-नीतिक है तथा जो पश्चिम की राजनीतिक विचार धाराओं और परम्पराओं का अनुकरण ही भारत की नियति मानते हैं, वे महर्षि को एकपन्थीय अथवा धार्मिक नेता मानकर उनकी अवहेलना कर देते हैं। उन्हें न तो भारत की आत्मा का ज्ञान है और न महर्षि दयानन्द की महत्ता का।

महर्षि दयानन्द का काम अभी पूरा नहीं हुआ। स्व-राज्य के बाद तो हमारा व्यामोह और बढ़ गया है। महर्षि ने हमें बताया था कि हम उलूकवाहिनी की पूजा के स्थान पर उसे साधन मानकर ऋत की उपासना करें। पर अमावस की कालरात्रि मे आज्वल्य भास्कर का निर्वाण हो गया। हम दीपावली मनाकर अन्धकार से लड़ने का प्रयास कर रहे हैं, सत्य को छोड़कर लक्ष्मी की पूजा में लगे हैं। स्वराज्य मे स्वधर्म चला गया। आर्थिक उन्नति की आकांक्षा मे दर-दर भीख का कटोरा लेकर घूम रहे हैं, विदेशी मुद्रा अर्जन के लालच में भारत की जनता का धर्मभ्रष्ट एव राष्ट्र भ्रष्ट करने वाले मसीही पुजारियों को आमन्त्रण देकर उनके आदरातिथ्य में अपने को धन्य मान रहे हैं। आवश्यकता है कि महर्षि का वज्र घोष फिर से भारताकाश मे गूंजे। क्या आर्य बन्धु महर्षि के सन्देश को लेकर खड़े होंगे? तभी तो दीपावली की रात्रि, जिसमे महर्षि का निर्वाण हुआ, के सम्बन्ध में कवि के प्रश्न का सत्य उत्तर मिल सकेगा—

"इसे रात कहू कि प्रभात कहू ?"

दीपावली हमारे लिये घोर तमाच्छन्न रात्रि ही रहेगी अथवा नवयुग का नव-सन्देश और नव चैतन्य लानेवाली प्रतिपदा के प्रभात की पूर्ववाहिका।

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध हो जाता है तब सबके द्रष्टा ईश्वर के स्व-रूप मे जीवात्मा की स्थिति होती है।

आर्यसमाज राजनीति में भाग ले!

'महर्षि की क्या इच्छा थी?'





[श्री प० विद्याधर जी उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश]

अपने देश में अपना राज्य स्थापित करने की उत्कट अभिलाषा से युग-प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक सुधारों में सर्वतो मुखी प्रगति करते हुये अपने जीवन के अन्तिम वर्ष राजस्थान मे राजा, महाराजाओं को आत्मविद्या (परमात्मा के गुण, कर्म स्वभाव को यथावत् जानने रूप ब्रह्म-विद्या) न्याय-विद्या, सनातन दण्ड-नीति आदि का उपदेश देते हुये यह निर्देश करते रहे कि राज्य को सुचारुरूप से सचालित करने के निमित्त वैदिक विद्वानो से सम्यक्रूपेण शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। अल्प समय मे ही शाहपुराधीश महाराणा उदयपुर, भीलवाड़ा मसूदा आदि के राजा उनके श्रद्धालु भक्त बन गये। वे अपने कार्य मे सफलता की ओर अग्रसर हो रहे थे, किन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही थी। आर्यसमाज को एक बहुत बडा उत्तरदायित्व सौंपकर वे हमारे बीच से चले गये। महर्षि के देहावसान के उपरान्त आर्यसमाज के तत्कालीन कर्णधारो ने बडी श्रद्धा के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया और तदर्थ त्याग तपस्या और बलिदान की होड लग गई। स्वदेशी आन्दोलन, आर्य भाषा प्रचार, शिक्षा प्रसार, शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक सुधार, अछूतोद्धार, आदि शुभ कार्यों मे आर्यसमाज ने एक विशिष्ट ही नही, अपितु अनुपम गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त किया।

इन ईश्वर धर्म और देश के सच्चे और क्रियाशील उपासकों मे ऐसे भी थे जिनके हृदय और मस्तिष्क मे देश-भक्ति, देश की स्वतन्त्रता की भावना सर्वोपरि थी। तदर्थ वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार निरन्तर प्रयत्नशील थे। अनेकों ने देश की वेदी पर अपना जीवन सहर्ष समर्पित किया। इस दिशा में सुसगठित रूप से प्रगति करने की आवश्यकता पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के पवित्र बलिदान के उपरान्त अधिक तीव्रता से प्रतीत हुई। १९२७ मे दिल्ली मे आयोजित प्रथम आर्य-सम्मेलन का ज्वलन्त प्रश्न था, 'क्या आर्यसमाज राजनीति मे भाग लेवे ? युवको मे उत्साह का पारावार उमड रहा था। वे एक स्वर से राजनीति मे प्रवेश की अनुमति चाहते थे। किन्तु विचारशील महानुभावो ने देश तथा काल की परिस्थिति के अनुसार यही निश्चय किया कि हमे अपना क्षेत्र शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक सुधारो तक ही सीमित रखना है। इस निर्णय से क्रियाशील आर्ययुवक जिनके हृदय मे भारत माता की सेवा के निमित्त अदम्य उत्साह था अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे चले गये। जिसके परिणाम स्वरूप आज के अनेक राजनैतिक दलो के ज्येष्ठ श्रेष्ठ अग्रणी होने का श्रेय उनको ही प्राप्त है।

आर्य समाज ने सामूहिक रूप से राजनीति मे भले ही भाग न लिया हो किन्तु अगरेजी सरकार हमे हमेशा सन्दिग्ध दृष्टि से ही नहीं देखती रही अपितु प्रतिशोध रूप असख्य आर्यों को यातनायें भोगनी पड़ीं।

परमपिता परमात्मा की कृपा से देश स्वतन्त्र हुआ। और एक बार पुन आर्य युवकों मे देश-भक्ति का अदम्य उत्साह उमड पडा। वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित, उन युवकों ने अनुभव किया कि राष्ट्र की विषम समस्याओं का समाधान आर्यसमाज के पास है किन्तु उनके प्रयोग की शक्ति और सामर्थ्य नहीं। इसको प्राप्त करने के निमित्त वे क्रम से उत्तरोत्तर आगे बढ़ना चाहते हैं, अनुभवी विचारशील महानुभाओ के वरद हस्त की छत्रछाया मे।

आज महर्षि निर्वाण दिवस के अवसर पर हम साथ



महान् दायित्व पूर्ण करें !




श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा एम एल सी

आर्यसमाज का लक्ष्य कितना महान है इस पर जितना ही अधिक विचार करें हम इस परिणाम पर पहुचेंगे कि महर्षि दयानन्द चाहते थे कि उनके अनुयायी स्वार्थ से ऊपर उठकर सदैव परार्थ मे लगे रहें। ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है इस नियम ने आर्यसमाज को सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्व प्रदान कर दिया है। परन्तु उच्च लक्ष्यों और आदर्शों की पूर्तिया तो मानव ही करेंगे उनमें जसी क्षमता होगी वैसी ही सफलता मिलेगी। आयसमाज का गोरवपूण ऐतिह्य इस बात का साक्षी है कि अल्पशक्ति मे होते हुए भी हमारी लोकोपकार भावना अधिक विशाल थी और हमे सफलता भी मिली परन्तु आज हमारी शक्ति विशाल है फिर सफलता कम क्यो है इसके मूल मे यही कारण है कि हमने अपने लक्ष्य को सीमित कर लिया है और सीमित (स्थानीय एक देशीय एक दलीय होने के कारण हमारी सारी शक्ति पराथ से हटकर स्वाथ की ओर सिमटने लगी है। आर्य समाजों सस्थाओ के कार्यकारी झगडो के मूल मे कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं होते अपितु सकुचित दृष्टिकोण ही इसका कारण है। ऋषिनिर्वाण दिवस हमे महर्षि द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व का स्मरण कराने आया है। यदि हम अपने लक्ष्य को सदैव ध्यान में रक्खें तो बहुत सी बाधायें स्वय समाप्त हो जायें और दयानन्द के वीर सैनिक उत्साह के साथ कदम बढ़ाते चलें। मुझे आशा है कि निर्वाण दिवसपर हम अपनी शक्ति के अपव्यय को रोक कर परोपकार के उदात्त आदश में सलग्न रहने का सकल्प दुहरायेंगे।

—प्रेमचन्द्र शर्मा एम० एल० सी०
उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

धानी से विचार करें और राष्ट्र की आन्तरिक और वाह्य शत्रुओ से रक्षा करने के निमित्त अपनी नीति निश्चित करें। यह सत्य है कि वतमान परिस्थितियो पर नियन्त्रण कठिनता से प्राप्त किया जा सकेगा। पर्याप्त समय एव सार्वजनिक सहयोग भी अपेक्षित होगा। किन्तु हम इस अटल विश्वास के साथ आगे बढें –

ध्रुव ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पते ।
ध्रुव त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयता ध्रुवम ॥

भाव [————

परमपिता परमात्मा हमारा मार्ग प्रशस्त करे। ●

आर्यसमाज कटरा प्रयाग का ६४वां वार्षिकोत्सव

कर्नलगज थाना के सामने ता० ३ से ६ नवम्बर तक मनाया जायगा।

दिव्य सन्देश सुनाने के लिये स्वामी मुनीश्वरानन्द जी श्री प्रो० रत्नसिंह जी गाजियाबाद, प० सत्यमित्र शास्त्री जी गोरखपुर, प० शिवकुमार शास्त्री जी हरिद्वार, डा० श्रीमती पुष्पावती देवी जी पी०एच०, डी० आदि उपदेशकों तथा अच्छे २ प्रचारकों के पधारने की आशा है।



वेद के प्रति कर्तव्य पालन करें



★

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज को जो धरोहर सौंपी थी उसमें सबसे अमूल्य है वेद । महर्षि ने अपने जीवन का सबसे कीमती और अधिक भाग वेद के स्वरूप उसके मानवीय उपयोग की व्याख्या करने मे लगाया । यदि एक बार को यह कहा जाय कि आर्यसमाज की स्थापना भी ऋषि ने वेदप्रचार के लिये ही की तो कोई अत्युक्ति न होगी क्योंकि यदि वेद ज्ञान का प्रचार प्रसार ही जाय तो संसारोपकार स्वयमेव सम्पन्न हो जायगा । इस दृष्टि से आर्यसमाज के कार्यक्रम में वेद अपना विशेष महत्व रखते हैं । महर्षि ने वेदभाष्य और वेदानुसंधान की जो परम्परा आरम्भ की थी आज आर्यजगत् मे उसके लिये उतना उत्साह नहीं जितना आरम्भ मे था, आर्यसमाज का वेद प्रचार विभाग उत्सवों के भाषण की व्यवस्था में ही जुटा रह जाता है,आवश्यकता है अनुसंधान के कार्य को योजना बद्ध आगे बढ़ाया जाय । वेदों के सम्बन्ध मे फैली भ्रान्तियों का नियमित उत्तर दिया जाय । आर्य विद्वानों में महर्षि और आर्यसमाज के प्रति ऐसी निष्ठा जागृत होनी चाहिये वे सब अपने अहम् और पाण्डित्य के चक्कर मे न पड़कर अपनी ज्ञान-शक्तियों का आर्यसमाज के लिये समर्पण कर दें । आर्यसमाज की ओर से संगठित रूप से वेद सम्बन्धी समस्याओं पर विचार हो, संगोष्ठियां हों और अनुसंधानों की घोषणा हो, आर्यसमाज के इस प्रयत्न से वेद मे श्रद्धा रखने वाले अन्य वर्गों को भी बल मिलेगा ।



श्री प० चन्द्रदत्त जी तिवारी सभा-मन्त्री

ऋषि-निर्वाण दिवस हमारे लिये प्रेरणा दिवस है, यदि आर्यसमाज के विद्वान् और कर्णधार इस दिशा में सम्मिलित नीति निर्धारण कर सके तो काम आगे बढ़ेगा । साधारण आर्यजन तो वेद प्रचार मे एक सैनिक की भांति आज भी रुचि रखता है पर उपर्युक्त संगठित प्रयत्न से उसे और भी बल मिलेगा, वेद के सम्बन्ध में आर्यसमाज का दायित्व पूर्ण करना आज की पीढ़ी का दायित्व है ।

—पं० चन्द्रदत्त तिवारी

मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवें वह विद्या और जिससे तत्व स्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है ।

प्रचार प्रणाली में नवीनता लावें


श्री हरप्रसाद जी आर्य

आर्यसमाज के प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने मे योग्य उपदेशकों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और है। समय की आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुए हमें आज इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि हमारी प्रचार प्रणाली कहां तक समर्थ है। प्रचार के वैज्ञानिक साधनों का हम कितना उपयोग कर पा रहे हैं। ईसाई मिशनरियों के पास जो नवीनतम साधन सामग्री होती है उसका स्वल्पांश भी हम अपने प्रचारको को नहीं दे सकते। एक बात अवश्य है भारत की ग्राम प्रधान संस्कृति होते हुए भी आर्य समाज ग्राम प्रचार मे अधिक सफल नहीं हो सका, जबकि ईसाई मिशनरी नगर संस्कृति के प्रतिनिधि होते हुए भी ग्रामों में, अरण्यो मे प्रचार कर रहे हैं, इस मौलिक समस्या और मनोवृत्ति पर भी विचार किया जाना चाहिये। आर्यनेता श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने ग्रामों मे प्रचार की ओर अनेक बार ध्यान आकृष्ट किया है परन्तु अभी तक हम शहरी मनोवृत्ति नहीं छोड सके हैं। हमें ऐसे प्रचारक तैयार करने का यत्न करना चाहिये जो ग्राम-जीवन में अपने को समाविष्ट कर सकें। इसी प्रकार प्रचार साहित्य की कमी का प्रश्न भी गम्भीर है। हमारा उपलब्ध साहित्य काफी पुराना है और सामाजिक समस्याओं का समाधान नवीन रूप से प्रस्तुत नहीं कर पाता। इसके लिये भी हमारे विद्वानों को प्रयत्न करना होगा। ऋषि निर्वाण-दिवस के अवसर पर हमे अपनी प्रचार प्रणाली का सिंहावलोकन अवश्य करना चाहिये और शीघ्र ही नवीन रूप के साथ कार्यक्षेत्र में कदम रखना चाहिये। प्रभु हमें अवश्य सफलता प्रदान करेंगे।

—हरप्रसाद आर्य
उपमन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश

ऋषि वचनामृत

★ यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल मे कोई देश नहीं है, इस लिये इस भूमि का नाम स्वर्ण भूमि है क्योंकि यहीं स्वर्णादि रत्नो को उत्पन्न करती है। आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

★ जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको परम गति अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

★ जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और और जब दुष्टाचारी होते हैं, तब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।



वेद प्रचार का स्थायी साधन—प्रेस

प्रचार के दो सर्वमान्य साधन हैं— (१) मंच तथा (२) प्रेस। एक का प्रभाव दीर्घकालिक और स्थायी है, दूसरे का अल्पकालिक और अस्थायी। पुस्तकों के पाठक देशकाल की परिधि का अतिक्रमण कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक होते हैं किन्तु मंच के अल्पदेशीय तथा अल्पकालिक। पुस्तकों के द्वारा ही प्राचीन अध्यात्म-ज्ञान, वेदों से महर्षि दयानन्द पर्यन्त, एवं लौकिक ज्ञान विज्ञान का सम्पादन हम लोग आज भी कर पाते हैं।

यह आधुनिक छपाई तथा प्रेस का ही चमत्कार है कि संसार के बड़े बड़े पुस्तकालयों वाचनालयों तथा समाचार पत्रों द्वारा संसार की कोटि कोटि जनता प्रबुद्ध रहती है। प्रेस के द्वारा ही आज आर्यजन इस युग की महानतम विभूति महर्षि दयानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

प्रेस वह दीप है जो अपनी अक्षय ज्योति विकीर्ण करता रहता है, भूले-भटके पथिकों को मार्ग दर्शन कराता रहता है। अतः हमारा यह पावन कर्तव्य हो जाता है कि उस ज्योति स्तम्भ की सुरक्षा एवं उसका सम्वर्धन करें।



श्री निर्मलचन्द्र राठी, उपमन्त्री सभा

योरोप आदि उन्नत देशों के सक्षम प्रेसों की तो कथा ही क्या कहानी है जिनके द्वारा मानव समाज ज्ञान-विज्ञान से परिपूरित है। अपने देश में ही श्रद्धालु जनता के कीर्ति स्तम्भ 'गीता प्रेस' पर ही दृष्टिपात कीजिये। इसका धार्मिक-साहित्य प्रकाशन और वितरण क्या व्यावसायिक है? क्या उसकी मशीन किसी व्यावसायिक संस्थान की देन हैं? नहीं, वह है श्रद्धालु जनता की कर्तव्यनिष्ठा की देन, जो धर्म प्रचार के महत्व को जानती है और जो बाजार में चाहे जितनी सौदेबाजी करे धार्मिक क्षेत्र में लेन देन नहीं जानती, केवल दान ही जानती है जो 'यज्ञ' का एक अंग है—देवपूजा, संगतिकरण और दान।

आर्य जनता से यह आशा है कि वह अपने प्रेस संस्थानों को दान से सम्पन्न कर उन्हें वैदिक-साहित्य के प्रकाशन का अक्षुण्ण साधन बनायेगी। स्व० पं० भगवानदीन जी ने अपने सात्विक दान से प्रेस की आधारशिला रक्खी थी, जिसके परिणाम स्वरूप आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश का भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस स्थापित हो सका, जहां से आर्य जगत् का लोकप्रिय पत्र 'आर्यमित्र' प्रकाशित होता है किन्तु जो धनाभाव के कारण आधुनिकता की दौड़ में पिछड़ रहा है।

सुन्दर, सबल प्रेस ही महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी, जो संसार को वैदिक साहित्य बिना मूल्य वितरण कर ईसाइयों तथा कम्युनिस्टों के सार्वभौम प्रचार का प्रत्युत्तर देकर वैदिक धर्म की पताका फहरा सके।

निर्मलचन्द्र राठी

उपमन्त्री आ० प्र० सभा उत्तर-प्रदेश तथा व्यवस्थापक आर्य भास्कर प्रेस

दीपावलि का सफल पर्व हो !





(रच०—श्री 'कुसुमाकर' सा० रत्न, आर्यनगर फीरोजाबाद)

हे आर्य !

आर्य संस्कृति के प्रिय पोषक !
रूढ़िवाद के वृहतम शोषक !
स्वर्ग नरक की, धर्म-कर्म की—
पाप पुण्य की, ऊँच-नीच की—
सगुण और निर्गुण आत्मा की—
परिभाषा करने वाले—हे वेद-शास्त्र मीमांसक आर्य !!
तुमने ठेका नहीं लिया था ?
—'सकल विश्व को आर्य करेंगे।
जीवन पथ - निर्माण करेंगे।
कदाचार के केन्द्र ध्वस कर,
सदाचार का सेतु पार कर—
प्रबल प्रपंचों के पादप को—
हम समूल उन्मूलन करके—
'तमसो मा'—के पुण्य पाठ से
'ज्योतिर्मय'—जन लोक करेंगे
छल-प्रपंच पाखण्ड खण्ड कर—
नैतिकता के नीड़ सृजन कर—
मानवता - बन्धुत्व घोष से—
दस्यु दानवों की दुनियां को—
कम्पित कर भय-भीत करेंगे।
हम असत्य से वंचित करके,
सदा सत्य का सिन्धु तरेंगे।
क्या ये सब कुछ पूर्ण हुआ है ?
क्या ये प्रण था नहीं तुम्हारा ?—
—'दयानन्द ऋषि के हम सच्चे—
सेवक बनकर वेद-धर्म की ध्वजा उठायें—
भूतल को ही स्वर्ग बनाकर—मानव को ही मुक्त करेंगे।
अरे, दुर्गों के द्वार खोलकर देखो तो अलबेले आर्य ?
वाणी में कुछ और तुम्हारी करनी में कुछ और दीखता।
अभिनय करना खूब जानते।
मंचों पर चढ़कर—बालों की खाल
खींचना खूब जानते।—
'कृण्वन्तो' का स्वप्न चूर है।
दम्भ द्वेष के दीपक जलते।
दल दल के दलदल में पलते।
जातिवाद का ज्वार आ गया
जड़ता से अभिसार हो गया।
अबल 'मातृ-भाषा' का अंचल—
छिन्न-भिन्न करने को आतुर।
'परकीया' से प्यार हो गया।
जीवित है 'मस्तिष्क दासता, ?
क्या स्वराज्य का सार यही है ?
आध्यात्मिक-अभ्युदय मार्ग के—
भौतिकवाद-मृग के पीछे क्यों मद-मस्त दौड़ते फिरते ?
'अन्नम् ब्रह्म' उपनिषद् कहती—
'अन्न पूर्णा' के मन्दिर पर कङ्कालों की भीड़ खड़ी है।
भ्रष्टाचार भेड़िये भूखे मुँह को फाड़े यहां खड़े हैं।
पेट पीठ से मिला विकल हो—
एक-एक दाने को तरसा, आर्यो ! पावन देश तुम्हारा ?
जो 'गुरुता' का ढोल पीटता—
वही 'दूसरों' के सम्मुख ही—
दैन्य दीनता दिखा-दिखा कर
'सोने की चिड़िया'को लज्जित इधर कर रहा देश तुम्हारा।
महिषासुर मँहिगाई का उन्मत्त पवन सा झूम झूम कर—
शार्दूल-साहस के नख-रद तोड़ आज हुंकार भर रहा।
पद प्रभुता के मद में डूबे तुम दीपावलि जला रहे हो।
नहीं-नहीं तुम दयानन्द के उज्ज्वल यश को—
स्नेह-वर्तिका हीन वह्नि में फूंक रहे हो।
'उत्तिष्ठित'—का पाठ पुन तुम एक बार ऐसा दुहराओ।
जन जीवन का दीप जले—
तब दीपावलि का सफल पर्व हो।
तभी आर्यो तुम्हें गर्व हो !



आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य का सूत्रधार दयानंद

[ले०—श्री प० शिवदयालु जी मुख्य उपमंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश]

वैदिक आदर्शों के अनुकूल द्वीपद्वीपान्तर–पर्यन्त व्यापी अनेक श्रेष्ठ मानवों द्वारा सञ्चालित बहुपाय्य शासन का



लेखक

नाम ही आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य है। संसार में जब से भी शासन व्यवस्था स्थापित हुई विश्व की महती आर्य जाति ने तब ही से अपने व्यापक साम्राज्य की नींव डाली और युगयुगान्तर पर्यन्त इस साम्राज्य का सचालन किया।

भारतवर्ष सदा से इस आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य का केन्द्र रहा है। महाभारत एवं मैत्र्युपनिषद् के कथनानुसार इस भारत देश में मनु (वैवस्वत), पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष अश्वपति, शशबिन्दु हरिश्चन्द्र, भरत (दौष्यन्त), रघु, दिलीप, राम आदि अनेक चक्रवर्ती सम्राट् हुए हैं जिन्हों ससागरान्त भूमि पर शासन किया है।

आचार्य दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास मे स्पष्ट लिखा है कि–"स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा।" स्वामी दयानन्द एकतन्त्रवाद के घोर विरोधी थे। सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठम समुल्लास मे उन्होने लिखा है कि–' एक (व्यक्ति) को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये। यदि ऐसा किया गया तो वह अकेला राजा स्वाधीन व उन्मत्त होकर प्रजा का नाशक होता है।" स्वामी दयानन्द तो निर्विवाद "व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यते महि स्वराज्ये" अर्थात् व्यापक अनेको द्वारा सुरक्षित स्वराज्य की स्थापना के समर्थक थे।

सत्यार्थ प्रकाश के ११ समुल्लासो मे एक स्थान पर आचार्य ने लिखा है कि–"जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहां के आधीन था।" इसका तात्पर्य यह है कि रावण जिसकी राजधानी लका थी, जो आज दिन सागर मे डूबी हुई है और रावण के आधीन आस्ट्रेलिया आदि के राज्य भी बतलाये जाते हैं वह भी भारत के आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य के आधीन था। राम के काल मे लका के राजा रावण ने एक बार सर उठाया और भारतवर्ष के दक्षिण भू-भाग पर अपना आतक जमाना चाहा तब राम ने उस का निराकरण किया और अन्यायी अत्याचारी रावण का विध्वस कर लका के राज्य उसके भाई विभीषण को सौंप दिया।

चक्रवर्ती सम्राट् का यह प्रमुख कर्तव्य होता था कि यदि कोई माण्डलीक राजा अन्याय अत्याचार करने पर उतर आये और प्रजा को सताने लगे अथवा अन्य किसी माण्डलीक राजा से युद्ध करने लगे तो वह बीच में पड़कर युद्ध शान्त कराने और अन्यायी राजा को पदच्युत कर योग्यतम व्यक्ति को वहां का राजा बनवा देवें।

महर्षि दयानन्द की यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि ऋषियों की पवित्र भूमि भारत शीघ्र स्वतन्त्र हो और विदेशियों के चगुल से इसको पूर्ण मुक्ति हो और वह अपनी प्राचीन संस्कृति के अनुसार पुन एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे विकसित हो। आर्याभिविनय के प्रथम प्रकाश में मन्त्र ४३ की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि– "अस्मभ्य वरिव· सुग कृधि" अर्थात् हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को सुख से प्राप्त कराओ।"

इसी प्रकार मन्त्र ४५ की व्याख्या करते हुए ऋषि के

लिखा है—"हे सम्राट भगवन् आपकी न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होकर [हम] वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हो।"

आर्याभिविनय द्वितीय प्रकाश में 'इषे पिन्वस्व ऊर्जे पिन्वस्व, ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व" आदि मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषिवर ने लिखा है कि—'हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! (क्षत्राय) चक्रवर्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त अपनी कृपा से हम लोगों को करो। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।"

आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना के निमित्त आर्य जाति में जिन ६ गुणों की विशेष आवश्यकता है और जिन गुणों के कारण उसका चक्रवर्ती साम्राज्य युग युगान्तर पर्यन्त विश्व में तपा है उनका निदर्शन भी यहां उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या में स्पष्टरूपेण किया गया है।

विदेशी साम्राज्य को भारत से उखाड़ फेंकने की प्रबल आकांक्षा भी यहां ऋषि ने व्यक्त की है। आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश मन्त्र ४५ में 'तेजस्विनावधीतमस्तु" की व्याख्या करते हुए ऋषिवर ने लिखा है—'अन्योन्य प्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कंटक चक्रवर्ती राज्य भोगें।" द्वितीय प्रकाश मन्त्र १ की व्याख्या करते हुए लिखा है कि—"हे महाराजाधिराज! जैसा सत्य न्याययुक्त अखंडित आपका राज्य है वैसा न्याय राज्य हम लोगों को भी आप की ओर से स्थिर हो।" महान् क्रान्तदर्शी आचार्य दयानन्द ने यहां स्पष्ट शब्दों में आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य के मुख्य आधार तलवार और आज की परिभाषा में अणुबम आदि को नहीं माना अपितु सत्य और न्याय (Truth & justice) साम्राज्य के सदा से दो मौलिक स्तम्भ सत्य और न्याय ही रहे हैं। इन्हीं दो तत्वों के विशेष बल पर आर्यों ने लाखों वर्षों पर्यन्त चक्रवर्ती साम्राज्य का संचालन किया है।

मध्वार (अफ्रीका) एवं मय (अमेरिका) में हुए सम्राट् भरत (दौष्यन्त) के ऐन्द्र महाभिषेकों में लगभग १२५ राज्यों के प्रतिनिधियों ने निज राष्ट्रध्वजों के साथ उपस्थित होकर उपर्युक्त दो विशेष गुणों के कारण ही आर्य चक्रवर्ती सम्राट् के प्रति अपनी मान्यतायें व्यक्त की हैं।

ईसामसीह ने जिस Kingdom of Heaven अर्थात् स्वर्ग के राज्य की चर्चा बाइबिल में की है ऋषिवर ने उसी ईश्वरीय गुणयुक्त साम्राज्य की स्थापना की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। जब तक विश्व की राजनीति में यह दो महान् ईश्वरीय गुणों को पूरा पूरा स्थान न मिलेगा तब तक विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित हो नहीं सकती। भय, आशंकाओं का भूत राजनैतिक मस्तिष्कों को कभी सत्य और न्याय का पुजारी नहीं बनने देने वाला है। संसार के १०० से अधिक छोटे बड़े राष्ट्रों एवं राज्यों से मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई है और सह अस्तित्व के सिद्धान्त पर वह संघ विश्व में शान्ति स्थापना में निरन्तर प्रयत्नशील रहता है किन्तु उसका तेजस्वी होना नितान्त आवश्यक है। शक्तिशून्य संयुक्तराष्ट्र संघ अन्यायी अत्याचारी आततायी शासकों का दमन नहीं कर सकता केवल अनुरोध करने से कोई मानने वाला नहीं। जिस समय तक संसार के उच्च शक्तिशाली राष्ट्र सत्य एवं न्याय को अपने प्रमुख सम्बल न बनावेंगे संसार में शान्ति की चर्चा केवल चर्चा मात्र रहेगी।

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ २६६ पर लिखा है कि "वेदादि शास्त्रों की नीति से आर्यों ने भूगोल में करोड़ों वर्ष राज्य किया।" वेदादि शास्त्रों की नीति सत्य व न्याय आदि पर आधारित है जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

आर्य साम्राज्यवाद में प्रजा-शोषण के लिये भूलकर भी स्थान न था। जनता की सबसे निम्न एवं उपेक्षित इकाई के उत्थान तक में सदा प्रयत्नशील रहना आर्य राजा का धर्म बतलाया गया है। 'दरिद्रान्भर कौन्तेय" आदि घोषों में दरिद्रों का भरण-पोषण करना परम कर्तव्य ठहराया गया है।

आर्य राजा की जय दरिद्रों के पालन-पोषण एवं उनके हृदयों के जीत लेने में ही मानी जाती रही है।

वैदिक राज्य का आदर्श तो सदा यह ही रहा है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

वैदिक राज्य में किसी का शोषण नहीं, किसी का पीड़न नहीं, किसी के साथ अन्याय नहीं और किसी का वृथा पक्षपात नहीं, गुण और त्याग की ही पूजा सदा आर्य राज्य में रही है। ●



श्रद्धांजलि

दयानन्द की पुण्य स्मृति में,
श्रद्धा पुष्प चढ़ाने आया हू।
जहाँ अनगिनत जीवन पुष्प चढ़े,
निज पुष्प चढ़ाने आया हू॥

उमड़ रहा है स्रोत हृदय में,
मैं उसे बहाने आया हू।
उठ रहीं तरंगें मन मे जो,
मैं उन्हें सुनाने आया हू॥

तू महान् था हे ऋषिवर,
तू ने ससार झुकाया था।
पाखण्डों को खण्डित करके,
सत्यमार्ग दर्शाया था।
मोड़ी थी युग की धारा,
क्रान्ति का बिगुल बजाया था।
निराकार ब्रह्म की उपासना,
सन्ध्या का योग सिखाया था।

सब वेद पढ़ें और वेद सुनें,
ईश्वर का ज्ञान बताया था।
हो आर्यकरण इस धरती का,
यह विप्लवनाद गुंजाया था।
हो नाश अविद्या के तम का,
ज्योति का पाठ पढ़ाया था।
हों दूर विषमताए सारी,
सब को ही गले लगाया था।

तू ज्ञानी था, तू ध्यानी था,
तू धर्मयुद्ध सेनानी था,
तू था तपस्वी सूरज सम,
ज्योति का तू अभिदानी था।
ब्रह्मचर्ययुक्त तेजस्वी था,
फिर भी नहीं अभिमानी था।
करुणा का गहरा सागर था,
दया धर्म का दानी था।

पतितों को बनाया पावन था,
विनम्रता मे लासानी था।

कितना भी करूं गुणगान ऋषि,
फिर भी अधूरा होगा वह।
कितनी भी चढ़ाऊँ श्रद्धांजलियां,
तृप्त न होगी अन्तर की तह।

तृप्ति तो होगी तब ही,
जब कर्मों में लाऊं शिक्षा।
विषपान तजूं दुष्कर्मों का,
सत्कर्मों से पाऊं रक्षा।

श्रद्धान्जलि तो दी श्रद्धानन्द ने,
जिसने गोली खाई थी।
श्रद्धान्जलि तो दी हंसराज ने,
हंस कर व्यथा मिटाई थी।
श्रद्धान्जलि दी लेखराम ने,
जब छुरा पीठ मे खाया था।
श्रद्धान्जलि दी सुमेरसिंह ने,
हिन्दी को शीश चढ़ाया था।

श्रद्धान्जलियां दीं उन वीरों ने,
हैदराबाद मे जो शहीद हुये।
जो छोड़ घर-बार सन्यासी बने,
दिल में दुनियां का दर्द लिये।
ले 'ओम्' पताका को कर में,
वेदों के गान गुन्जाने को।
मधुमय वर्षा अमृत की कर,
धरती को स्वर्ग बनाने को।

हम करें आत्म निरीक्षण आज,
देखें अन्तर में झांक जरा।
वे षड्रिपु कहां छिपे बैठे,
जो करते हमारा अहित सदा।
हम करें प्राप्त प्रभु-शक्ति,
हम इनको मार भगायें अब।
हम दूर करें विषमताओं को,
समताओं को गले लगायें अब।

उस महान् ऋषि के प्रति,
यही श्रद्धांजलि सच्ची है।
इसमें ही है सब मर्म भरा,
इसमें ही अपनी उन्नति है।

होगा इस से ही पुन
वैदिक धर्म का सूर्य उदय।
गूजेंगी वेद ऋचायें जब,
होंगे दूर तभी सशय।

वह शक्ति दो हे दयानिधे!
मै जीवन-व्रत निभा जाऊँ।
जो चरण बढ़ रहे हैं आगे,
मैं उन्हें लक्ष्य तक पहुचा पाऊँ।





—विक्रमादित्य 'बसन्त'



संयम साधन में प्राणायाम का स्थान

(ले०—श्री आचार्य भद्रसेन जी अजमेर)

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में प्राणायाम पर बहुत बल दिया है। वे यह भली प्रकार जानते थे कि प्राणायाम मनुष्य के संयमी तथा सदाचारी बनाने का एक मुख्य तथा आवश्यक अंग है। वे यह भी जानते थे कि जीवन में संयम का अपना एक प्रमुख स्थान है। वास्तव में मानव जीवन की महान् दैवी शक्तियों का विकास होता ही संयम द्वारा है। संयम वह साधन है जो मानव जीवन को पवित्र तथा निर्मल बनाकर उसे निखार देता है, चमका देता है तथा उसे अपने वास्तविक लक्ष्य तक पहुंचा देता है। संयमी मनुष्य का जीवन एक आदर्श जीवन है। उसके जीवन में न विलासिता है, न दासता और न उच्छृङ्खलता, सरलता, सादगी तथा सौजन्यता ही उसके जीवन का एक मात्र सुन्दर लक्ष्य है।

अपनी इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि को अनिष्ट मार्ग से हटाकर उन्हें अभीष्ट मार्ग पर चलाना ही संयम है। जहां नियन्त्रित मन तथा इन्द्रियां मनुष्य को अपने अभीष्ट मार्ग पर चला कर उसके जीवन को सुखमय बना देती हैं, वहां अनियन्त्रित मन तथा इन्द्रियां मनुष्य को दुःख और अशांति के गहरे गर्त में गिराने का कारण बनती हैं। इसलिये सुखमय जीवन के अभिलाषी के लिए तथा मानव जीवन के महान् लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए संयम साधना परम आवश्यक है। संक्षेपतः जहां संयम साधना से मानव के मानस मन्दिर में सुख और शान्ति का सृजन होता है, वहां असंयम द्वारा मानव जीवन दुःख और अशान्ति का भागी बनता है।

यूं तो संयम साधन के सन्तजनों ने अपनी अपनी सूझ के अनुसार सैकड़ों साधन दर्शाये हैं। जप, तप, व्रत, उपवास, प्रभु-भजन, ये सब संयम साधन के सुन्दर उपाय हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त—

'प्राणायाम'

भी संयम प्राप्ति का एक परमोत्कृष्ट साधन है। प्राणायाम के द्वारा मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा मन पर सरलता से काबू पा लेता है। प्राणायाम के अभ्यासी को



लेखक

संयम साधना के लिए अन्य कठोर साधनों के सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्राण और मन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जहां प्राणों की अस्थिरता और चंचलता से मन भी अस्थिर और चंचल बन जाता है, वहां प्राणों की स्थिरता से मन भी चंचलता रहित और स्थिर हो जाता है। प्राणों की चंचलता मन की चंचलता का तथा प्राणों की स्थिरता मन की स्थिरता का मुख्य कारण है, इसीलिये योग ग्रन्थों में कहा गया है—

चले वाते चलं चित्तं, निश्चले निश्चलो भवेत्।

अतः जो सज्जन चित्त की चंचलता को दूर कर उसे स्थिर और एकाग्र बनाना चाहते हैं, उन्हें अपने प्राणों के स्थिर करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। जड़ जगत् में मन के दूसरे नम्बर पर प्राण ही एक ऐसी महान शक्ति है, जो कि जहां वह अत्यन्त बलवती है, वहां अत्यन्त वेगवती भी है, अतः ऐसे बलवान् तथा वेगवान् प्राणों को अनायास सरलता से अपने वशवर्ती बना लेना अति कठिन



है। उनको वश में करने का एक मात्र उपाय है। 'प्राणायाम' के द्वारा प्राण सहज में ही वश में हो जाते हैं और प्राणों के वश में होते ही मन भी सरलता से साधक के वश में हो जाता है। योग ग्रन्थों में प्राण और मन को दूध मिले जल की उपमा दी है (दुग्धाम्बुवत् सम्मिलितौ तौ तुल्य क्रियौ मानस मारुतौ)। अतः जैसे दूध मिश्रित जल की गति को वश में कर लेने से दूध की गति स्वतः ही वशवती हो जाती है, उसी प्रकार प्राणों की गति वश में होने पर मन की गति भी स्वयमेव वश में हो जाती है और मन के वश में होते ही जहां साधक को संयम साधन में सफलता मिलती है, वहां उसकी मानसिक शक्तियों का विकास भी सरलता से होने लगता है तथा इन्द्रियों के मल और दोष भी दूर हो कर वे शुद्ध तथा सत्पथ-गामिनी बन जाती हैं। इस विषय में महर्षि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में मनु का एक प्रसिद्ध श्लोक दिया है जो कि निम्न प्रकार है-

दह्यन्तेध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ण आदि वस्तुएं अग्नि में तपाने से उनके मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा प्राणों को वश में करने से इन्द्रियों के दोष भी नष्ट हो जाते हैं। 'प्राणायाम' ही वह पञ्चाग्नि है जो साधक के प्राण, अपान आदि पांचों प्रसुप्त प्राणों को जागृत कर उन्हें तेजस्वी तथा निर्मल बना देती है। यही सच्ची-

पञ्चाग्नि-पूजा

है। खेद है कि आजकल के साधुओं ने इस परम हित-कारिणी पञ्चाग्नि-पूजा का परित्याग कर अपने चारों ओर पांच प्रकार की अग्नियों को जलाकर उनके द्वारा इस पवित्र तथा अनमोल मानव देह को तपाना तथा उसे निरर्थक क्लेश पहुंचाना ही पञ्चाग्नि-पूजा समझ लिया है। अतः मानसिक तथा इन्द्रियजन्य दोषों को दूरकर संयमी जीवन बिताने के अभिलाषी को प्राणायाम का अभ्यास नित्यप्रति नियमपूर्वक अवश्य करना चाहिये।

मेरे विचार में प्राणायाम को यदि अमृत का कलश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। अनुभवी योगियों का कहना है, कि हमारे ब्रह्मरन्ध्र से सदा अमृत का झरना बहता रहता है, उस अमृत का रसास्वादन भी प्राणायाम तथा ध्यान, धारणा का अभ्यासी ही कर सकता है। जिस अमृतरस का आस्वादन कर साधक के सामने अन्य इन्द्रियों के रस फीके पड़ जाते हैं। परन्तु प्राणायाम इस अमृत का रसास्वादन तभी कराता है, तथा अमृततुल्य लाभ भी तभी पहुंचाता है, जबकि प्राणायाम के नियमों का पूर्णतया पालन करते हुए, तथा उसे किसी योग्य अनुभवी से विधिवत् सीखकर उसे पूर्ण श्रद्धा, आस्था तथा कुछ समय तक लगातार धैर्यपूर्वक किया जाए। यदि हम प्राणायाम के नियमों की अवहेलना करते हैं, तथा उसे विधिपूर्वक नहीं करते तो यह अमृततुल्य प्राणायाम भी कभी-कभी हमारे लिए हानिप्रद बन जाता है। नीचे हम प्राणायाम के अभ्यासी के लिए कुछ आवश्यक नियम दे रहे हैं। प्रिय पाठक यदि इन नियमों का पालन करते हुए प्राणायाम का अभ्यास करेंगे, तो उन्हें प्राणायाम से अवश्य लाभ होगा। उनके मन तथा इन्द्रियों के दोष और चञ्चलता दूर होकर, वे अपने जीवन को पूर्ण संयमी तथा सुखमय बना सकेंगे।

"प्राणायाम के अभ्यासियों के लिये आवश्यक नियम"

१-किसी भी प्रकार के प्राणायाम करने से पूर्व एक-बार अन्दर से श्वास को नासिका द्वारा बलपूर्वक बाहर निकाल देना चाहिये, और फिर यथाविधि पूरक आदि प्राणायाम का प्रारम्भ करना चाहिये।

२-प्राणायाम के तीन अंग हैं। पूरक-अर्थात् प्राणों को नासिका द्वारा बाहर से अन्दर भरना। कुम्भक-अर्थात् उस अन्दर भरे श्वास को यथाशक्ति अन्दर ही रोक लेना। रेचक-अर्थात् उन रोके हुए प्राणों को शनै-शनै लम्बा करके बाहर निकाल देना। प्राणायाम के उपर्युक्त तीनों अंगों को करते समय क्रमशः तीन बन्ध करने चाहिये। पूरक करते समय "मूलबन्ध" अर्थात् गुदा और मूलेन्द्रिय का ऊपर आकर्षण करना। कुम्भक करते समय "जालन्धर बन्ध" अर्थात् सिर को थोड़ा झुकाकर ठोडी को कण्ठकूप में लाकर लगा देना। रेचक करते समय "उड्डियान बन्ध" अर्थात् पेट को यथाशक्ति अन्दर ले जाना। इससे प्राणायाम के तीनों अंग सरलतापूर्वक हो जाते हैं।

३—पूरक करते समय छाती को भली प्रकार से फुलाना चाहिये, जिससे फेफड़ों के सभी हिस्से प्राणों से भली प्रकार भर जाएं।

४—श्वास शनै-शनै और लम्बा करके अन्दर लेना चाहिये, और लम्बा ही करके बाहर निकालना चाहिये।

५—प्राणायाम करते समय 'शीतली' आदि कुछ विशेष प्राणायामों को छोड़कर श्वास नासिका से ही लेना चाहिये। मुख हमेशा बन्द रखना चाहिये।

६—प्राणायाम व्यायाम आदि शारीरिक परिश्रम करने के पश्चात् दस पन्द्रह मिनट विश्राम लेकर करना चाहिये।

७—प्राणायाम खुली तथा स्वच्छ हवा में करना चाहिये। किन्तु जिस ओर से वायु के ओर के झोंके आ रहे हों, उस ओर मुख करके प्राणायाम नहीं करना चाहिये।

८—प्राणायाम के अभ्यासी को घृत, दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों तथा फलों और हरी सब्जियों का यथाशक्ति अवश्य सेवन करना चाहिये।

९—प्राणायाम करते समय जितना पेट हल्का और आतें मल से रहित होंगी, उतना ही प्राणायाम करने में सुगमता तथा अधिक लाभ की प्राप्ति होगी। अतः साधक को इस बात का पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि पेट सदा हलका और आतें मल से रहित रहें।

१०—प्राणायाम के अभ्यासी का आहार सात्विक, पौष्टिक तथा सुपच होना चाहिये।

११—यदि प्राणायाम करने वाले सज्जन प्रातःकाल योग की जलनेती तथा वस्त्रनेती, या इन दोनों में से कोई एक कर लिया करें तो बहुत अच्छा है। इन दोनों यौगिक क्रियाओं के करने से जहां जुकाम, सिरदर्द तथा नेत्र सम्बन्धी रोगों की निवृत्ति होती है। वहां नासिका के छिद्र स्वच्छ तथा मलरहित होने से प्राणायाम करने में बहुत सुगमता पड़ती है। पाठक उपर्युक्त दोनों क्रियाओं के करने की सचित्र तथा सरल विधि मेरी पुस्तक "योग और स्वास्थ्य" अथवा "प्राणायाम" में देख सकते है।

१२—प्राणायाम के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य पालन अर्थात् वीर्यरक्षा पर पूरा ध्यान देना चाहिये।

१३—प्राणायाम न तो भोजन के पश्चात् और न भूख प्यास की अवस्था में करना चाहिये।

१४—यदि शरीर में किसी प्रकार का कष्ट हो, या शरीर बहुत थका हुआ हो अथवा क्रोध, शोक, चिन्ता आदि की अवस्था हो तो प्राणायाम नहीं करना चाहिये।

१५—प्राणायाम के अभ्यासी को सदा नासिका से ही श्वास लेने की आदत डालनी चाहिये, मुख से कदापि नहीं।

१६—ज्वर आदि की अवस्था में प्राणायाम नहीं करना चाहिये।

१७—प्राणायाम से शीघ्र लाभ उठाने के लिए तथा शरीर को सदा स्वस्थ और नीरोग बनाए रखने के लिए प्राणायाम के साथ साथ योग के शीर्षासन, सर्वाङ्गासन आदि आसनों का अभ्यास भी अवश्य करना चाहिये।

आशा है संयम तथा सदाचार के अभिलाषी सज्जन प्राणायाम का अभ्यास करते समय उपर्युक्त नियमों का अवश्य ध्यान रखेंगे। केवल ध्यान ही नहीं प्रत्युत इनका तत्परता से पालन करेंगे। यदि प्रिय पाठकों ने उपर्युक्त नियमों का पालन करते हुए प्राणायाम का अनुष्ठान किया तो जहां वे पूर्ण संयमी तथा सदाचारी बनेंगे, वहां अपने शरीर को भी सदा स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग रख सकेंगे।





'अनार्य जुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्त्तिकरम्'



[विद्याभास्कर श्री प० सच्चिदानन्द जी शास्त्री एम० ए०, महोपदेशक]



श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री

भगवान कृष्ण ने मैदान से भागते हुए अर्जुन को इन उपर्युक्त-महत्वपूर्ण शब्दो से कैसा उपालम्भ दिया है। ऐ ऋषि भक्त आर्यो ! आप मे निष्क्रियता व चेतना-शून्यता कहाँ से आ गई है। आप प्रति वर्ष अपने अतीत को स्मरण कर, अपनी दुर्बलताओं को दूर करने की शपथ लिया करते हो। अन्धकार से प्रकाश की ओर अज्ञान से ज्ञान की ओर चलने की प्रेरणा सदा से अपने महा-पुरुषो से पाते रहते हो। यदि आप मे हीन भावनाओ का समावेश हुआ तो अब तुम्हे कौन बार बार जगाने आयेगा। आज आपके जागते रहने पर भी परिन्दे पर मारते घूमते हैं।

धर्म भ्रष्ट हो रहा है, माताओ-बहनो की आये दिन बेइज्जती देखने सुनने को मिलती है। अनाथो विधवाओ की आज भी दयनीय दशा का चित्र आखो के समक्ष दृष्टिगत होता रहता है। गौमाता का सूर्य की किरण फूटते ही करुण क्रन्दन कानो को विह्वल किये रहता है। सस्कृत ज्ञानमयी मा का आज भी अपमान हो रहा है इसे कौन सुनेगा, सिवाय ऋषि के इन आर्यों के अतिरिक्त। क्या तुम्हारे होते हुये इस देश की यह हीन दशा इसी प्रकार बनी रहेगी। जरा सोचो और विचारो।

यह ऋषि का वर्चस्व क्या यू ही जायगा। उनके बलिदान के पावन स्मृति में हम उनके अनुयायी उन्हें स्मरण करने का अधिकार भी रखते हैं या नही ?

अपने महान् गुरु देव दयानन्द के जीवन के अन्तिम क्षणों की स्मृति हमारे हृदयो मे उनके द्वारा आरम्भ किये महान लक्ष्य को पूरा करने की भावना भरेगी या नही ?

समस्त धरती का बल वैदिक आदर्शों को मिटाने चला आ रहा है। भौतिकवाद के प्रवाह का तूफान, जाति-पाति की लहरें फिर नर चढती हुई आज दयानन्द के अनुयायियो को चुनौती दे रही हैं।

वह समय आ गया है जब हमे अपने कर्तव्य का निश्चय करना होगा। धरती को स्वर्ग बनाने के लिये सत्य, शान्ति और न्याय की विमल पताका जन-मन पर लहराने के लिए सम्पूर्ण आर्य, हृदय मे नया विश्वास भर कार्य क्षेत्र में अवतरित होंगे और ऋषि के प्रति हमारा सच्चा शिष्यत्व होगा।

ऋषिऋण का यही पुनीत पर्व हमे उन्…ी याद दिलाता है कि हम उनके आदेश से दूर तो नही जा रहे हैं, जिससे कि भगवान कृष्ण का वह वाक्य हमे लाछित न कर सके।

'अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिमकरमर्जुन'

और यही ऋषि दयानन्द के स्मरण-दिवस पर हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।



झंडा ऊँचा रहे हमारा



[ले०—श्री रणजीत जी जिज्ञासु वानप्रस्थी, पीलीभीत]

**ओं आदित्याः रुद्राः वसवः सुनीथाः
द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञ भवन्तु देवा ऊर्ध्वं
कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ऋ. ३-८-८**

अर्थ—(सुनीथा) उत्तम नीति वाले (आदित्या) ४८ वर्ष पयन्त ब्रह्मचर्य धारण करने वाले, चारो वेदो के ज्ञाता, महाविद्वान्, आदित्य ब्रह्मचारी या नेता लोग (रुद्रा) ३६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण कर ३ व २ वेद के ज्ञाता रुद्र ब्रह्मचारी या शत्रुओ के रुलानेवाले क्षत्रिय वर्ग (वसव) २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य रखने वाले १ वेद के ज्ञाता वसु ब्रह्मचारी या धनिक वर्ग (पृथिवी) विशाल (द्यावा-क्षामा) आकाश और पृथिवी पर (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष मे (देवा) परोपकारी विद्वान् (सजोषस) तुल्य प्रीति वाले—एक लक्ष्यवान् होकर (यज्ञ) राष्ट्र रूपी यज्ञ की (भवन्तु) रक्षा करे और (अध्वरस्य) इस राष्ट्र यज्ञ के (केतुम्) झण्डे को (ऊर्ध्व कृण्वन्तु) ऊँचा करें।

व्याख्या—५ हजार वर्षों बाद चारों वेदो का ज्ञाता आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द इस राष्ट्र को और इस आर्य जाति को इसके गत गुणगौरव को पुन स्मरण कराने इसका उद्धार करने आया परन्तु दुर्भाग्य, हमने उस देव दयानन्द की देन का अनुसरण न किया, उसके बतलाये मार्ग को छोड़कर अपने को केवल धार्मिक सस्था घोषित कर राजनीति से पृथक् रहकर अपना नेतृत्व खो दिया जिसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजी शिक्षा से दीक्षित व्यक्तियों के हाथ में नेतृत्व की बागडोर चली गयी। जिसके परिणाम स्वरूप जिस स्वराज्य मे स्नेह, सद्भावना, समता, सहयोग, सुरक्षा और सब सुख सुविधाओं का श्रवण-सुखद संगीत सुनाई देता उसके स्थान पर आज पद प्रभुता, अधिकार लिप्सा, दमन, लूटमार, भुखमरी, बेकारी, साम्प्रदायिकता, अनैतिकता, अराजकता, रिश्वतखोरी, बिरादरी वाद, स्वार्थसिद्धि, चोरबाजारी, स्वजन पक्षपोषकता, निरुद्यमता, महगाई, खूरेजी आदि की भयकर बड़ी चिंघाड़ कर ताण्डव कर रही है। शासक वर्ग जनता के खून पसीने की कमाई के धन से निज विलासिता में रत है और जनता महगाई तथा अनेकों करभार से पिसी और दबी मर रही है। पाकिस्तान और चीन रूपी अजगर मुंह फाड़े राष्ट्र को निगलने में उद्यत हैं। अन्त बाह्य पक्षपाती रिपु शासन की दुर्बल और नपुसक नीति से लाभ उठाकर स्व-च्छन्द विचरते शत्रुओं के स्वागत के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। ऐसे समय मे आर्य जिसका शब्दार्थ ही यह है सब ओर से विचार पूर्वक गति करने वाले हाथ पर हाथ धरे राजनैतिक निरपेक्षता का आवरण मुह पर डाले किंकर्तव्य विमूढ़ बना बैठा रहे क्या यह हमारे आर्य नेतृवर्ग का आदेश है ? जबकि हमारे गुरुवर देव दयानन्द ने वेदशास्त्रों का सबल शस्त्र दे और अपने साहित्य तथा उपदेशों का आशीर्वाद दे हमे रणाङ्गण मे आह्वान किया है। आर्यों को सोचना है कि हम वेद व देव दयानन्द के आदर्शों पर आरूढ होते हैं या राजनैतिक निरपेक्षता के फलस्वरूप राष्ट्र को विध्वसकारी कगार पर अवस्थित करने के पापी बनते हैं। अस्तु—

उक्त वेदमन्त्र मे राष्ट्र ऊँचा उठे, उसका सर्वत्र यश विस्तीर्ण होवे इसके उपाय कहे गये हैं। आदित्य ब्रह्मचारी पूर्ण विद्वान् राष्ट्र के नेतृत्व को सभालने वाले ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग जो दुष्टों को रुलाने वाला तथा शत्रुओं का नाशक और धनिक वैश्य वर्ग और नीतिमान् लोग (सजोषस) एक आदर्श एक लक्ष्यवान् होकर राष्ट्र रूपी यज्ञ की रक्षा करें। वेद में आया है—"यज्ञो भुवनस्य नाभि" यज्ञ सारे भुवन का केन्द्र स्थल है और शतपथ में कहा है—"यज्ञोवैश्रेष्ठतमोकर्म" यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। महर्षि दयानन्द ने जहां सबको पचमहायज्ञ करने का उपदेश दिया वहां राजा के कर्मों को बताया है—'राजा सब विध राजकर्मों को ऐसी दक्षता से करे जिससे प्रजा सब

[शेष पृष्ठ ३२ पर]



श्रद्धा और आर्यसमाजी



(ले०—श्री प० बिहारीलाल जी शास्त्री)

आर्य समाजियों को आत्महीन बनाने के लिये आर्य आर्यसमाज के विरोधियो ने अब एक नया नारा



लेखक

निकाला है कि समाज मे श्रद्धा के भाव नहीं। आर्यसमाजी को यह अनुभव कराया जाता है कि तुम श्रद्धा विश्वासहीन हो। तुम्हारा समाज श्रद्धाहीन है। अत तुम धर्म और अध्यात्म से बहुत दूर हो। आध्यात्मिक बनने के लिये गुरु की शरण लो। उपनिषद भी कहती है–

'तद विज्ञानार्थंगुरुमेवाभिगच्छेच्छ्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्"

ब्रह्म ज्ञान के लिए गुरु के पास जाओ जो गुरु वेदज्ञ हो और ब्रह्म मे श्रद्धालु भी।

बस अनेक आर्यसमाजी भी आजकल के उन गुरुओ की शरण मे जा पहुचते हैं जो नये ढग के होशियार, धर्म के सौदागर हैं। जिनको उपनिषद् के अनुसार न वेद का ज्ञान है न ब्रह्म मे उनकी निष्ठा। जो अपने को ब्रह्म से भी बढ़कर बताते हैं। जो रामकृष्ण के अवतार अपने को कहते हैं। इनमे कुछ तो अग्रेजी अच्छी बोल लेते हैं अतः अग्रेजी पढे लिखे जड बुद्धि इनके चगुल मे चढ़ जाते हैं। कोई चेला इन्हें हाईकोर्ट का जज बता देता है। कोई कलक्टर समझ लेता है। पर ये होते साधारण ही हैं। कुछ गुरु नितान्त मूर्ख होते हैं। वे चेलो से कह देते हैं—

"पोथी पढ़ पढ जग मुआ पडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढै सो पण्डित होय॥

प्रेम से इनका आशय होता है केवल गुरु से प्रेम। "तन मन, धन सब अर्पन करें" यह हैं इन वचक गुरुओं के उपदेश नारियों तक को। जो सौभाग्यवती पत्नी अपना तन, मन धन पति को अर्पित कर चुकी वह अब गुरु को अर्पित करे तो "अमानत मे खयानत" है वा नहीं ? पूरी धोखेबाजी है न ? मगर यह सोचने समझने की बुद्धि यह गुरु पहले ही हर लेते हैं। "गुरु के बचन करहिं विश्वासा" का उपदेश देकर बुद्धि की गति को ठप कर देते हैं।

ऐसे गुरु आजकल अनेक हैं। खूब माल पैदा कर रहे हैं। नवाबी ठाठ से रहते हैं, और वेद शास्त्र तथा विद्वानों का उपहास करते हैं। इनके चेलों मे अधिक सख्या स्त्रियों की रहती है। कोई-कोई श्रद्धाजड़ आर्य समाजी भी इनमे पहुच जाता है। इन गुरुओं के चेले, देश जाति धर्म की समस्याओं से दूर, जनता के कष्टो से अनजान, केवल अपने ऐहिलौकिक आराम मे लग्न और पारलौकिक स्वर्ग की आशा मे मग्न गुरु मे सब कुछ चढाये हुए मस्त रहते हैं। कमाई से ये लोग निश्चिन्त होते हैं। कोई धनी या पेंशनर या फिर गुरु के शेयरहोल्डर (पत्तीदार) होते हैं। ये लोग और शराब के नशे में पड़े मस्त लोग देश और जनता के लिये एक से ही व्यर्थ हैं, मृतवत् हैं। इधर आर्यसमाजी को लीजिये। निकम्मा से निकम्मा आयसमाजी भी देश धर्म की तड़प रखने वाला मिलेगा। जनता के दुख सुख की अनुभूति उसे अवश्य रहेगी। वह जनजीवन से उदासीन नहीं मिलेगा।

इन श्रद्धालु कहाने वाले गुरुओं ने मठ बनाये, आश्रम खड़े किये, पर पूर्वी बंगाल के हिन्दू मुसलमान बनते रहे और उसका परिणाम हुआ पूर्वी बंगाल पाकिस्तान बन गया। सहस्रों हिन्दू देवियां यवनों में जाती रहीं। हरिजन ईसाई बनते रहे और ये श्रद्धालु भक्त कीर्तन और गुरुभक्ति में लीन रहे और श्रद्धाहीन जिन आर्यसमाजियों को कहा जाता है, उन्होंने सहस्रों स्त्रियों और लाखों पुरुषों को अहिन्दू होने से बचाया और इस प्रकार राष्ट्रियता की सहायता की। लाखों व्यक्तियों को अंधविश्वासों से बचाया और सहस्रों को गायत्री मंत्र पढ़ाया। लाखों को वेद विश्वासी और भारतीय संस्कृति का प्रेमी बनाया। कौन माई का लाल ऐसा श्रद्धालु हुआ है कि जिसने जीवन भर सारा समय जनता को शिक्षित करने में होम दिया हो और जनता से एक पैसा भी न लिया हो। आर्यसमाज में महात्मा हंसराज जी प० मेहरचन्द जी आदि अनेक नेता हुए हैं कि जिन्होंने सरस्वती की सेवा में सारा जीवन आहुत कर दिया है। शहीदे अकबर, प० लेखराम जी और शहीदे आज़म स्वामी श्रद्धानन्द जी की जोड़ का कौन श्रद्धालु हुआ है कि जिसने अपना धन जीवन, सुख सपत्ति और प्राण भी हिन्दू धर्म, सनातन धर्म, आर्य संस्कृति की रक्षा में भेंट कर दिये। स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी सर्वदानन्द, ब्रह्मचारी नित्यानन्द, म० नारायण स्वामी, पंडित गणपति शर्मा जैसे विद्वानों का त्याग और जनसेवा क्या सच्ची श्रद्धा नहीं है। एक हैं वे श्रद्धालु जो जनता के सुख दुख की उपेक्षा करके इस भूमि से उदासीन होकर स्वर्ग की चाह में बेचैन हो रहे हैं। दूसरा और है श्रद्धाहीन कहाने वाला आर्यसमाजी जो इसी जन्म भूमि वसुन्धरा को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

जनता बतावे कि उसका हितैषी कौन है? और जो जनता की सेवा करता है उससे ही जनार्दन प्रसन्न होंगे। तब आर्यसमाजी की श्रद्धा सच्ची श्रद्धा रही या नहीं?

आर्यसमाज के सन्यासी, उपदेशक, भजनीक जनता का बहुत कम व्यय कराकर जो उच्च कोटि के तर्क संगत विचार जनता को बांटे देते हैं, वैसे विचार ये ढोंगी गुरु सहस्रों रुपये फूंक कर भी नहीं दे पाते। आर्यसमाज के उत्सवों पर जन-जागरण के लिये जो प्रचार होता है वह लाखों रुपया नष्ट करके भी ये मुक्ति और स्वर्ग के ठेकेदार नहीं कर पाते। हमें ऐसी श्रद्धा नहीं चाहिए कि जो बुद्धिवाद को दफनाना चाहती है। जो तर्क को दूर करके ही फल-फूल सकती है। हम तो बुद्धिवाद पर परखी हुई तर्क पर तुली हुई "श्रत्–सत्यम्–धा–दधाति" सत्य के ऊपर आधृत श्रद्धा के पुजारी हैं। जन-जीवन से उपेक्षा कराने वाली, देश से अनुराग हटाने वाली बुद्धि को भेड बनाने वाली श्रद्धा हेय है निकम्मी है।

आर्यसमाज के सन्यासी जनजीवन से जुड़े हुए हैं। कर्मयोगी हैं। बडे बडे गंगोत्तरी और हिमालय के योगियों से हमारा वह सन्यासी जनता का कितना हितकारक है जो जनता को बस पांच वेद मंत्र कठस्थ कराके सध्याग्निहोत्र की ओर प्रेरित करता है। अंधविश्वासों को भगाकर राष्ट्र को स्वस्थ और बलवान् बनाने में लगा हुआ है। जनता के धन से मौज मारने वाले वे ढोंगी गुरु ऐसे जनसेवक सन्यासी का क्या मुकाबिला कर सकते हैं। प्रिय आर्य भाइयो हमारे इस लेख को पढ़कर फूल न उठिये। औरों की तुलना में आप अच्छे सही, पर ऋषि दयानन्द के गज से नापने पर आप बहुत छोटे उतरेंगे। अभी बहुत काम पड़ा है। सैकडों श्रद्धानन्द और लेखराम चाहिये इस्लाम की क्रूर कट्टरता को दूर करने के लिये। सैकडों उपदेशक चाहिये ईसाइयत के अंधविश्वास को दूर कर जनता को स्वच्छ आध्यात्मिकता की ओर लाने के लिये। कितने ही आर्यवीरों का बलिदान बलिदानी सुमेरसिंह की तरह होना है राष्ट्रभाषा को जीवित करने के लिये। हमारा स्वर्ग, मोक्ष, कल्याण सब है भारतभूमि को प्राचीन गौरव गिरि पर आरूढ करने में। हमारा लक्ष्य और ध्येय निराला है।

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नपुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां प्राणीनामार्ति नाशनम्॥"

हम न राज्य चाहते हैं न स्वर्ग न मोक्ष, केवल अन्धविश्वास से पीडित जनता को स्वस्थ सत्य मार्ग पर हमें लाना है। ध्येय कठिन है। घोर साधना की अपेक्षा है। आर्यजनो आजकल की भौतिकवाद की लहर और विलासिता की ज्वाला, भ्रष्टाचार की आंधी और राजनैतिक जादूगरों के तूफान से बचकर अपने सरल स्वच्छ जीवन से वह साधना करो जो हमसे पहले आर्य भाइयों ने की थी। व्रत धारण करो, शपथ लो, अपने जीवन को वर्तमान की

पाश



[डा० मुन्शीराम शर्मा, डी० लिट्० आर्यनगर कानपुर]

प्रभु निकटतम हैं फिर भी दिखाई नहीं देते, अनुभव मे नहीं आते और जैसे कोई अपरिचित दूरस्थ व्यक्ति सम्पर्क से पृथक रहता हो वैसे ही वे भी हम से रहते हैं। अपना होते हुए भी बिराना, निकट होते हुवे भी दूर, अन्तर्यामी होते हुए भी प्राप्ति से परे, ऐसा क्यों है ? वेद कहता है— 'प्रभु दूर भी है और समीप भी। समीप उनके



लेखक

लिये है जिसके पाश भग्न हो चुके हैं। दूर उनके लिये हैं जो पाशों मे जकडे हुए हैं। ये पाश भी दो प्रकार के होते हैं—यज्ञिय और अयज्ञिय। अयज्ञिय पाशों मे तमोगुण एव रजोगुण से सम्बन्धित दोषो की गणना है। यज्ञिय पाशो मे सत्वगुण के बन्धन हैं। जब तक हम इन तीनों पाशों से मुक्त नहीं होते, तब तक प्रभु का साक्षात करने के अधिकारी नहीं हैं। तमोगुण और रजोगुणों के बन्धनों को अयज्ञिय पाश कहा गया है, क्योंकि इनसे मानव पाप में लिप्त होता है, दुष्कर्म करता है और परिणामत पतित होता है। अघ जब पीछे पड गया तो भद्र या शुभ या कल्याण का हस्तगत करना कठिन ही नहीं असम्भव है। भद्र शुभ या सत उन्नयन की आधारशिला है। जब तक हम सत्व की स्थिति मे नहीं पहुच पाते, तब तक अधोगति ही अधोगति है। उर्ध्वगमन सत्व की अवस्था मे ही सम्भव है। इसके लिये प्राणपण से उद्योग करना पडता है। उद्योग द्वारा हम पाप के ससर्ग से हटकर, अन्य प्रकृति से विमुक्त होकर प्रकाश मे पहुचते हैं और सन्धिनी शक्ति के सहयोग द्वारा उस परम तत्व के साथ सयुक्त होने के अधिकारी बनते हैं।

वरणीय वरुणदेव के पाश व्रत भग करने वालों को सभी स्थानो और कालों मे आबद्ध कर लेते हैं। जो पाप करता है, वह इन पाशों मे जकडा जाता है। व्रत कुछ प्राकृतिक हैं और कुछ नैतिक हैं। इनमे से किसी भी व्रत को तोडने वाला दण्ड भागी बनता है। स्वास्थ्य के नियमों को न पालन करना प्राकृतिक व्रत का भग करना है। झूठ बोलना चोरी करना आदि नैतिक व्रतों के अन्तर्गत हैं। हम चाहे जितना छिपकर व्रत भग करें, पृथ्वी पर, पृथ्वी के ऊपर या उससे भी परे वरुणदेव के सहस्राक्ष स्पर्श (दूत) हमे देख ही लेते हैं। सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात' (अथ० ४-१६ ५)

वरुणदेव के पाश सैकडों और सहस्रों हैं अर्थात् अगणित हैं, पर वे सब तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। ऋ० १-२४-१५ के अनुसार ये उत्तम, मध्यम तथा अधम पाश हैं। ये त्रेधा पाश अथर्व की निम्नांकित ऋचा के अनुसार सप्तसप्त प्रकार के वर्णित हुए हैं—जे ते पाशा

नवगी से पवित्र रखने की। धर्ममार्ग कठिन है पर अन्त मे कल्याणकारक है। अपना जीवन स्वच्छ रखकर जनता को स्वच्छ बनाओ। दूसरे स्थान के स्वर्ग की उपेक्षा करके भारत भूमि को स्वर्ग बना दो यत इसको आदर्श मानकर अन्य देश भी दैवी वृत्ति की ओर बढ़ें।

"भ्रान्त भटकती जनता को वैदिक सतपथ पर लाना है।
नरक बनी भारत भू को फिर सच्चा स्वर्ग बनाना है।
कष्ट पडें, बलिदान होंय इसकी चिन्ता परवाह नहीं।
ओम ध्वजा को हिमगिरि के शिखरों पर फिर फहराना है।



वरुण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्त. । छिनन्तु सर्वे अनृत वदन्तं य सत्य वात्यतिरा सृजन्तु । (अथर्व ४ १६-६) वरुणदेव के तीन प्रकार के पाश ही सात सात प्रकार के हैं । ये सात सात प्रकार के पाश -'सप्त मर्यादा. कवयस्ततक्षु '—सात मर्यादाओं का भी स्मरण दिला देते हैं। सात मर्यादाओं का तोडना मानो सात प्रकार के पाप करना है । ये सात मर्यादायें प्राकृतिक हैं और नतिक भी । अत दो बार 'सप्त' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रकृति के क्षेत्र में इनका सम्बन्ध महत्तत्व, अहकार तथा पञ्चतन्मात्राओं से है । इन सातो को स्वस्थ रखना तथा समृद्ध करना प्राकृतिक मर्यादा है । नैतिक क्षेत्र मे इनको स्वस्थता तथा समृद्धि के सदुपयोग करने की मर्यादा है । यह उपयोग चेतना की अपेक्षा रखता है, अत नीति के अन्तर्गत आता है । पर ये सात सात प्रकार के पाश प्रमुखतया तीन ही प्रकार के हैं । प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । उसके ये तीन गुण अपने तो हैं ही, पर जब ये चेतना पक्ष पर छा जाते हैं, तो उसे भी अपने रग मे रग लेते हैं । इन्हीं के कारण जीवात्मा परमात्मा से सयुक्त होकर भी, उसका सयुजा और सखा होकर भी, उससे वियुक्त हो जाता है ।

सत्व को जो पवित्र पाश कहा गया है उसका भी एक कारण है । सत्वगुण शुभ या भद्र का प्रापक तो है, पर यह अहकार से भी मिला हुआ है । मैं सत पुरुष हू, सच्चरित्र से सम्पन्न हू, धर्मिष्ठ हू । ऐसी भावना जीव और प्रभु के बीच में आवरण का कार्य करती है । सत्व हमे उठाता है पर अहमिति से सयुक्त होकर गिराता भी है । एक अन्य दृष्टि भी है, जिसके अनुसार यह शुभ कर्मों के फल से समन्वित करके हमे भोगवादी भी बनाता है । देवताओं की स्थिति इसी प्रकार की है । वे स्वर्ग मे भोग भोगते हैं, कामचारी होते हैं, स्वच्छन्दता से सर्वत्र भ्रमण करते हैं, काल और देश दोनों का व्यवधान उनके सामने से हट जाता है । वे निर्द्वन्द्व सुख का उपभोग करते हुए विचरण करते हैं । यह स्थिति भी आर्य सस्कृति मे सर्वोत्कृष्ट स्थिति नहीं समझी गई है । देवों से नीचे पितृलोक के निवासी हैं । वे भी भोगवादी हैं । कर्म करने से दूर केवल भोग मे पड़े हुए व्यक्ति अपने भावी जीवन के लिये किसी प्रकार का अर्जन नहीं कर पाते । इसीलिए पितर और देव दोनों की स्थिति को अच्छा तो कहा गया है पर सर्वोत्तम नहीं । परमगति की सज्ञा इनसे ऊपर है ।

परम गति को कुछ ऋषियों ने व्यक्तित्व के विनाश की अभिधा प्रदान की है । व्यक्तित्व ही हमें प्रभु के साथ सयुक्त नहीं होने देता । सुषुप्ति मे हम तम और रज से दूर रहते हैं, परन्तु चेतना तो बनी ही रहती है । सप्रज्ञात समाधि में भी इसका अक्षुण्ण रहना सिद्ध है । हाँ असप्रज्ञात समाधि मे सब कुछ विस्मृत हो जाता है । मोक्ष मे इस स्थिति की पराकाष्ठा है । अत मोक्ष या ब्रह्म रूपता अपने आपको खो देना है जिसमे मैं नहीं रह पाता व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है । केवल, एकमात्र, परम तत्व रह जाता है । व्यक्तित्व के अभाव मे भूतकाल के लिए शोक मनाने तथा भविष्य के लिये मोह करने का कारण अवशिष्ट नहीं रहता । जब मैं ही नहीं रहा तो कौन विगत से चिपटेगा और कौन किसी अनागत की आकाक्षा करेगा ? जो न भूत है और न भविष्य है, केवल वर्तमान ही वर्तमान है, वही परमतत्व, ब्रह्म हमारे निखिल पुरुषार्थ का एकमात्र लक्ष्य है ।

जैसे पाश अगणित हैं वैसे ही उनसे छूटने के उपाय भी अनेक हैं–शत ते राजन् भिषज सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु । बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचै कृतचिदेन प्रमुमुग्धि अस्मत् ।। ऋ० १ २४-९ ।। राजा वरुण ! तुम्हारे पास तो पाप रूपी रोग को दूर करने के लिये सैकड़ों, सहस्रों औषधियां है जो व्यापक तथा गम्भीर प्रभाव उत्पन्न करने वाली हैं । देव ! तुम्हारी सुमति हमे भी प्राप्त हो जिससे निर्ऋति, कृच्छ्रापत्ति, घोर विपदा हमसे दूर, बहुत दूर भाग जावे । जो पाप हमने किया है और जिस पाप के कारण हम इस भयकर, विकराल क्लेश के भाजन बने हैं, उस किये हुए पाप से हमें छुडा दीजिए ।

त्वहि विश्वतो मुख विश्वत परिभूरसि अपन शोशुचदघम । अथ० ४-३३-६

प्रभो ! आप कहां नहीं हैं ? आप तो सर्वत्र विद्यमान हैं और यह जो कुछ दिखाई देता है उससे भी परे विराजमान हैं । आप ही हमारे पाप को भस्म कीजिए । द्विषोनो विश्वतोमुख अति नावेव पारय । ७। हे सर्व व्यापक ! नाव की भांति अपनी कृपा के द्वारा हमें समस्त द्वेष-रूपों से पार लगाओ । 'स न सिन्धुमिव नावा अति पर्षा स्वस्तये । ८ । जैसे नाव पर बैठकर सिन्धु को पार कर आते

(शेष पृष्ठ ३९ पर)



स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा विश्व धर्म

[ले०–श्री आचार्य रामानन्द शास्त्री, उपप्रधान बिहार सभा, पटना ४]

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की समाप्ति पर लिखा है कि 'यह सिद्धान्त भूगोल मे फैल जाय'। उन्होने अपने शिष्यो को यही आदेश दिया कि देश-देशान्तर तथा लोक-लोकान्तर मे इस त्रिकाल सत्य वैदिक धर्म को तुम कोने कोने मे फैला दो। वस्तुत आर्यसमाज की स्थापना उन्होंने इसी उद्देश्य से की थी। आर्यसमाज कोई धम अथवा पंथ नहीं है यह तो उस सगठन का नाम है जिसका उद्देश्य वैदिक धर्म को विश्व मे पुन फैलाना है। उन्होने धम की परिभाषा को नियम और उद्देश्य के समान ही सर्वजन ग्राह्य बनाया। महाराज एकादश समुल्लास मे धर्म की परिभाषा करते हुये कहते हैं कि–जिसे सब माने उसे धर्म तथा एक माने उसे अधर्म समझना। जैसे-सत्य, सदाचारादि। धर्म की यह परिभाषा देश और काल से बाधित नहीं हो सकती है। जीवनी देखने से विदित होता है कि स्वामी जी से किसी ने पूछा कि–पाप, किसे कहते हैं ? तो स्वामी जी ने यही उत्तर दिया कि–भारतीय पेनल कोड मे जो जुर्म लिखे हैं वही पाप हैं। इससे बढकर पाप की और परिभाषा क्या हो सकती है ? महाराज ने आर्यावर्त्त मे उत्पन्न मतो का खण्डन भी इसी उद्देश्य से किया है कि यह देश स्वस्थ होकर विश्व मे वैदिक धर्म को फैलावे। वस्तुत आर्यसमाज के सगठन का निम्नलिखित कार्यक्रम रहा है--

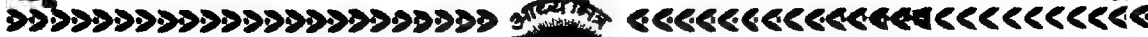
(१) निर्माणात्मक (Constructive)

(२) खण्डनात्मक (Destructive)

(३) आक्रमणात्मक (Obstructive)

प्रथम प्रोग्राम के अनुसार शिक्षा आदि का विस्तार था कि योग्य वैदिक धर्म को ठीक रीति से समझने वाले तथा जीवन में धारण करने वाले नागरिक तैयार हों। दूसरे प्रोग्राम के अनुसार हमारे प्रचारकों ने खण्डनात्मक साहित्य का निर्माण किया। वैदिक गगा मे विजातीय पदार्थ घुसकर वह इस निर्मल जल को दूषित कर रहे थे, तथा साधारण जनता उसे ही वैदिक धर्म समझ कर पान कर रही थी इसलिये इस प्रकार के खण्डनात्मक साहित्य ने वैदिक धर्म को निर्मल बनाने मे बड़ा ही सहयोग दिया। तीसरे प्रोग्राम के अनुसार धर्म की आड मे गुरुडम, एक तन्त्रवाद अथवा सम्प्रदाय विशेष, जनता की बुद्धि को कुंठित कर मानवता के प्रति घृणा फैला रहे थे, उनका खण्डन आवश्यक था। यह दूषित मनोवृत्ति आज भी विद्यमान है। जैसे—रोमन कैथोलिक धर्म के परम पवित्र पिता, वेटिकान (Vatican) के पोप ने सब धर्मों मे एकता की चर्चा करते हुए ईसाई धर्म को ही सर्वोत्कृष्ट बताया है। इससे परस्पर घृणा की उत्पत्ति सभव है। इसी साम्प्रदायिकता से दूषित होकर मुहम्मद अली साहब ने एक बार कहा था कि—एक इक्के वाला मुसलमान भी महात्मा गांधी से अच्छा है, क्योंकि वह कुरान, हजरत मुहम्मद पर विश्वास करता है। स्वामी जी ने ऐसे विचारों को मानवता के विरुद्ध समझा, इसलिये इसके लिये बौद्धिक क्रान्ति की। वस्तुत यह साम्प्रदायिक विचार सम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद से भी अधिक भयानक हैं जिसे दूर करने की चेष्टा १९ वीं शती मे कार्लमार्क्स ने की थी। इसी विचार से ऋषि ने भारत के बाहर से आने वाले मजहबों की आलोचना की—

कुछ लोगों का कहना है कि यह वैदिक धर्म कभी मिशनरी धर्म नहीं रहा है, यह स्वामी जी की देन है कि वे इस विश्वधर्म बनाना चाहते थे। किन्तु उनका यह कहना गलत है। बुद्ध और ईसा से बहुत पहले वेद धर्म प्रचारक विश्व के प्रत्येक हिस्से में गये, उन्होंने–'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस श्रुति से प्रेरणा ली। ये धर्म प्रचारक जहां कहीं गये धर्म के प्रचार के साथ ज्ञान और विज्ञान का भी प्रचार किया। तभी तो महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि भूगोल में जितनी विद्यायें फैली हैं वे सब आर्यावर्त्त देश से ही गयी हैं। "अरब और भारत के सम्बन्ध" पुस्तक के लेखक मौलाना सुलेमान नदवी ने लिखा है कि–भारत से मानवा



नामक वैद्य अरब में गये तथा उन्होंने ही आयुर्वेद के संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद अरबी जबान में किया। मौलाना यह भी स्वीकार करते हैं कि—गणित विद्या का ऋणी अरब ही नहीं अपितु सारा यूरोप सृष्टि पर्यन्त रहेगा। क्योंकि भारतीय गणित विद्या अरब से स्पेन गयी, वहा से कारडोवा यूनवंसिटी द्वारा सम्पूर्ण यूरोप में फैल गयी। जिस समय अरब अथवा स्पेन मे (Zero) की परिभाषा तथा बीजगणित की पढ़ाई पर प्रतिबन्ध था। उस समय भारतीय ऋषि ज्ञान और विज्ञान का समन्वय कर रहे थे। वे ज्ञान तथा मानव विज्ञान की उन्नति को धर्म का बाधक नहीं, अपितु धर्म का पूरक समझते थे। गीताकार कृष्ण कहते ही हैं कि—ज्ञान तेऽह स विज्ञानम् इद वक्ष्यामि अर्थात् अर्जुन! तुम्हें ज्ञान और विज्ञान की सम्पूर्ण शिक्षा दूंगा।

महाविद्वान् मक्समूलर ने कहा है कि—प्रसिद्ध तत्ववेत्ता सुकरात को आत्म ज्ञान की शिक्षा भारतीय पण्डित से प्राप्त हुई थी। पाइथागोरस सांख्य दर्शन से प्रभावित था। मैक्समूलर भाषा विज्ञान की दृष्टि से पाइथागोरस को पृथ्वी गुरु कहते हैं। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् विन्टर निनिज ने कहा है कि—प्लेटो आदि ने ईरान मे आकर भारतीय पण्डितों से अपने ज्ञान की प्रेरणा ली थी। एक सीरिया निवासी सन्त के कथन का उद्धरण देते हुये, स्वर्गीय प०जवाहरलाल नेहरू (Discovery of India) (भारत की कहानी) मे लिखते हैं कि—एक सीरिया निवासी सन्त ने यूनानियों के व्यवहार से तग होकर कहा था कि—"इन यूनानियों को अपनी विद्या का बडा घमण्ड है, इन्हे नहीं मालूम है कि भारत का ज्ञान कितना अपरिमित है और विषयों की चर्चा न कर, वे (भारतीय) एक से लेकर नव तक अक लिखना जानते हैं जो इन यूनानियो को नहीं मालूम है।"

पाठक यह न समझें कि ये भारतीय ऋषि अथवा मुनि, या धर्म प्रचारक विश्व के और धर्मों से परिचित नहीं थे। ससार मे जहा कहीं भी नूतन विचार उत्पन्न होता था, उसे तर्क की कसौटी पर कसते भी थे।

मौलाना सुलेमान नदवी कहते हैं कि—जिस समय पश्चिम भारत में (सौराष्ट्र) राजा सोमदेव राज्य करते थे कि उनके दरबार में यह चर्चा चली कि अरब में एक धर्म चला है जिसका नाम 'इस्लाम' है वह बहुत अच्छा धर्म है। इस पर किसी ने बात काट कर कहा कि नहीं, इस्लाम अपनी खूबियों से नहीं अपितु तलवार से फैल रहा है। मौलाना साहब लिखते हैं कि—एक पत्र राजा ने खलीफा के पास अरब मे भेजा तथा उसमे लिखा कि—मैंने सुना है कि आपने इस्लाम एक नया धर्म स्वीकार किया है तथा तलवार की जोर से उसे फैला रहे हैं, यदि उसे तलवार की जोर से फला रहे हैं तो उसकी मुझे चिन्ता नहीं क्योंकि उसका प्रबन्ध कर लिया है। यदि, यह धर्म बुद्धि से फैलता है तो आप एक होशियार आलकार को भेजिये कि—हमारी गोष्ठी मे इस्लाम पर विचार किया जाय। इस पत्र के अनुसार एक मौलवी कुरान का माहिर अरब के खलीफा के यहा से भेजा गया। वह जब दरबार मे आया तो भारत के पण्डित ने पूछा कि—आप किस धर्म को मानते हैं। उसने उत्तर दिया कि इस्लाम को। इस्लाम किसे कहते पुन पण्डित ने पूछा—इस्लाम वह धर्म है जो एक खुदा को सब कुछ मानता है—सर्व व्यापक सर्व शक्तिमान् आदि। भारतीय पण्डित ने तर्क किया कि तुम्हारा खुदा सर्वशक्तिमान् है तो ऐसा पदार्थ बना सकता है जो उससे न उठे। यदि हा कहता है तो भी खुदा की सब शक्तिमत्ता जाती है यदि कहता है कि नहीं तो भी उसकी शक्ति मत्ता समाप्त है। अन्त मे वह निरुत्तर होकर चला गया।

महर्षि स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि महात्मा विदुर ने अरबी मे लाक्षागृह का भेद युधिष्ठिर को बताया। इससे सिद्ध होता है कि भारतवर्ष के ज्ञानी अपने को भाषा की परिधि से दूर हटाकर सर्वभाषा मे वैदिक उदात्त विचार का प्रचार किया करते थे।

वैदिक ऋषियो तथा मुनियो से ही अनुप्राणित होकर जैन धर्म के प्रचारक हुये उनसे प्ररणा लेकर बौद्ध धर्म के प्रचारको ने बुद्ध वाणी का प्रचार किया। ईसामसीह तो भारत मे आकर पढ़े ही थे, यह प्राय निर्विवाद सिद्ध हो रहा है। क्योकि ईसामसीह की बाल्यावस्था का इतिहास मिलता है। युवावस्था मे वर्णन है कि मध्य मे वह कहा था इसका उल्लेख ईसाई ग्रन्थों मे कहीं नहीं मिलता है। इस पर लोगों का कहना है कि वे इतने दिनों तक भारत में ही पढ़ते रहे। वस्तुत. ईसाई धर्म का आधार तो



यहूदी धर्म का है तथा शिक्षा सम्पूर्ण बुद्ध धर्म की है।

निष्कर्ष यह है कि—वह वैदिक धर्म ही विश्व धर्म रहा है, इसी मे योग्यता भी है कि यह विश्व धर्म बने। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज स्थापित कर इसे अनुप्राणित कर विश्व धर्म बनाने का आदेश दिया। अत हमारी सभाओं को समाजों तथा प्रचारकों को चाहिये वेद वाणी को दिग्दिगन्त मे पहुचा दें।

अन्त मे वेदव्यास की यह वाणी उद्धृत कर इस वृत्त को समाप्त कर रहा हू।

भवन्तो बहुला सन्तु वेद प्रसार्यताम् अयम्।

महा० शा० पर्व

अर्थात् आप बहुत हों तथा इस वेद को विश्व मे फैलावें।

इस कार्य में हमारा सहयोग महर्षि दयानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगा।

●

(पृष्ठ २९ का शेष)

हैं, उसमें डूब नहीं पाते, वैसे ही कल्याण प्राप्ति के लिये आप हमें पार लगा दें। अयज्ञिय पाश भी हमे बांधे हुए हैं। इन सभी पाशो से आप हमे मुक्त करें।

अयज्ञिय पाश छुड़ाते नहीं, कस कर जकड़ लेते हैं। दोनों के नाना रूप अवनत एवं उन्नत चेतना सपन्न प्राणियों में देखे जा सकते हैं। दोनों से ही छूटना मुक्ति है अथवा चेतना गति की पराकाष्ठा है। परम तत्व प्राप्ति की स्थिति भी अशुभ एव शुभ दोनों से पृथक् है। यदि हम इस स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमे अयज्ञिय एव यज्ञिय, अशुभ एव शुभ दोनों प्रकार के पाशों से मुक्त होना होगा। वेद ने अयज्ञिय पाशों को अधम एव मध्यम और यज्ञिय पाशो को उत्तम कहा है। पाश तो पाश ही है, बन्धन तो बन्धन ही है, बेडी तो बेड़ी ही है। फिर चाहे वह लोहे की हो अथवा स्वर्ण की। कारागार तो कारागार ही है। वह चाहे प्रथम श्रेणी का हो अथवा द्वितीय या निकृष्ट श्रेणी का, बेड़ियों में जकड़ा हुआ, कारागार में पड़ा हुआ प्राणी आनन्दी नहीं कहा जाता।

झंडा ऊँचा रहे हमारा

(पृष्ठ २५ का शेष)

विश्व सुरक्षित तथा सुख समृद्धि सम्पन्न हो, राजा की राज्य कार्य की तत्परता ही उसकी संध्योपासना है" अर्थात् राज्य व राष्ट्र की सुरक्षा और बल सम्पन्न होना श्रेष्ठतम कर्म है अत राष्ट्र यज्ञ है। द्वितीय यज्ञ का भाव है कि परहित मे अपने स्वार्थ का हुत करना। राष्ट्र की सबलता के लिये यह भावना अत्यन्त आवश्यक है। अत राष्ट्रयज्ञ की सब मिलकर रक्षा करें। हमारे राष्ट्र का कोई भाग हमसे अपहृत कर छोटा न किया जाय अत (पृथिवी) शब्द कहा यानी हमारा राष्ट्र विशाल हो, हम अखण्ड भारत के निर्माता हों। हम मे प्रान्तीयता आदि के दोष न हों सारा ही भारत हमारा विशाल एक राष्ट्र है। राष्ट्र के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों का कोई कार्य ऐसा न हो जिससे राष्ट्र अपमानित हो अपितु द्योलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक मे हमारे राष्ट्र का यश व्याप्त हो। हम अन्तरिक्ष और द्यौ में वैमानिक शक्ति सम्पन्न हों, जल थल में हमारी सेना अजेय होकर यश लाभ करे। सारे ही परोपकारी और विद्वान् राष्ट्र ध्वज को एक भावना के साथ ऊँचा उठावें। ऋषि ने कहा है—"एक भाषा, एक भेष, एक भावना होने पर सागर मे नदियों के समान सारे ही सुख एकत्र हो जाते हैं।" अत हमारा झंडा सदा ऊँचा हो।

●

जो स्वतन्त्र है, वही आनन्दी है। यह स्वातन्त्र्य प्रकृति के तीनों गुणों से पृथक् होने में है। बन्धन भी प्राकृतिक ही है। जीवका अपना विशुद्ध रूप प्राकृतिक नहीं चेतन है। यह चेतन आनन्दांश से वंचित है। अत आनन्द की उपलब्धि ही मुक्ति है। अथर्व वेद के शब्दों मे—"अन्ति सन्त न जहाति अन्त सन्त न पश्यति"—जीव चिपट चिपटी प्रकृति को छोडता नहीं और निकट ही विद्यमान प्रभु को देखता नहीं, यही उसकी सबसे बडी विपत्ति है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति को छोडो और प्रभु का दर्शन करो। इसी मे कल्याण है।

●



आर्योद्देश्य



पालन करिये बस नियमों का भला चाहते हो अपना।
आवागमनों के कठिन चक्र से मुक्ति चाहते हो अपना ॥
सभी सत्य विद्या एव जिनका विद्या से होता भाव।
उन सब का ही आदिमूल केवल परमेश्वर को तू जान ॥
ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप व निराकार सर्वशक्तिमान।
परम ब्रह्म अनत अजन्मा निर्विकार है अकल अकाम ॥
सर्वेश्वर आदि अनुपम है व्यापक प्रभुवर सर्व अधार।
अजर अमर सर्वान्तर्यामी अभय शुद्ध गुरु निराधार ॥
सृष्टिकर्त्ता जगत नियन्ता दयालु न्यायकारी आदित्य।
अविराम अखण्ड अच्युत शिव अग्नि आदि कारण है नित्य
वेद सत्य विद्या की पुस्तक निशिदिन पढो-पढ़ाओ।
ईश्वरोक्त स्वाध्याय ग्रन्थ है अनुपम सुनो सुनाओ ॥
सत्य ग्रहण ही करो सर्वदा असत्यों से रहकर दूर।
सत्य प्रकाशवान हो जग मे बहू दिशा गूंजै भरपूर।
कोई कार्य करने से पहले सदा याद करो निज धर्म।
सत्यासत्य का विचार करके आरम्भ करिये अपना कर्म ॥
ससार का उपकार करना मानव ध्येय प्रधान है।
सामाजिक शारीरिक आत्मिक उन्नति का ही विधान है ॥
विश्व बन्धुमय जग को जानो यथायोग्य वर्तो सबसे।
धर्मानुसार प्रीति से रहिये प्राण रहें तन मे जबसे ॥
अविद्या के नाश हेतु अपना समस्त अर्पण करिये।
सद्विद्या के प्रचारार्थ जीवन भी समर्पण करिये ॥
अपनी ही केवल उन्नति से कभी नहीं सतोष करो।
सामाजिक व सर्वहितकारी नियमों में रहिये परतन्त्र।
प्रत्येक हितकारी नियमों मे हरेक बांधव रहे स्वतन्त्र ॥

—डा० रामफेरन आर्य एम०डी०एच०, एम०एस०सी०
(गोल्ड मैडलिस्ट) नियाजीपुर जगीगज वाराणसी।

ब्रह्म कैसा ! है तू....



●

एक अल्हड युवक नव्य वेदान्ती,
ऋषि दयानन्द के पास आने लगा।
और मै ब्रह्म, मै ब्रह्म मै ब्रह्म हू,
उच्च स्वर से यही रट लगाने लगा ॥
एक दिन फिर बताया महाराज ने,
जीव औ ब्रह्म का भेद उसको मगर।
रञ्च माना नहीं मूढ़ वो और भी,
हठ, दुराग्रह, ढिटाई दिखाने लगा ॥
फिर महाराज ने मुसकराते हुए,
जड दिया एक, उसके चपत गाल पर।
रोष खाने लगा, तिलमिलाने लगा,
व्यर्थ मारा क्यों ! हल्ला मचाने लगा ॥
वाक्य बोले महाराज, तत्काल ये,
ब्रह्म तो है अरे ! शोक दुख से परे।
ब्रह्म कैसा ! है तू जो चपत एक में,
बालकों की तरह बिलबिलाने लगा ॥

—प्रकाशचन्द्र कविरत्न अजमेर

आर्योपप्रतिनिधि सभा लखनऊ

इस सभा का मासिक अधिवेशन २५ अक्तूबर को आर्य समाज चौक मे सम्पन्न हुआ। बृहदयज्ञ, के ब्रह्मा श्री प० रामचरित्र जी पाडेय थे—सन्ध्या, भजनों के उपरान्त श्री श्यामसुन्दर जी शास्त्री का यज्ञ की महत्ता पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। सनातन धर्मी पडितों ने आज के दिन शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया था, पर कोई भी पडित आर्यसमाज से टक्कर लेने के लिए उपस्थित नहीं हुआ। सभा का आगामी मासिक अधिवेशन २९ नवम्बर को आर्यसमाज आदर्शनगर मे होगा, और अन्तरग की बैठक १ नवम्बर रविवार को शाम को ६ बजे आर्यसमाज गणेशगज मे होगी।









आर्यसमाज है क्या ?



(ले–डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार एम०ए० डी० लिट् अजमेर)

जिस आर्यसमाज ने भारत मे नव जागृति एव राष्ट्रीयता का सूत्रपात किया है, जिसको विमल विचार धारा आज जन जन के मानस को उद्वेलित कर रही है, वह आर्यसमाज क्या ? आर्यसमाज कोई नया मत, सम्प्रदाय अथवा धर्म नहीं है। उसके प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने स्पष्टतया कहा है कि आर्यसमाज की स्थापना करके उन्होंने कोई नवीन पन्थ नहीं चलाया, अपितु प्राचीन वैदिक धर्म, वैदिक सस्कृति, सभ्यता और परम्परा की पुन स्थापना की है। उनका उद्देश्य केवल यह था कि समय बीतने के साथ साथ सत्य सनातन धर्म और उसके अनुयायियों मे जो अवैदिक बातें, अन्ध-परम्परायें, रूढ़ियां और सामाजिक कुरीतियां आ गई हैं, उन्हें दूर किया जावे और शुद्ध वैदिक धर्म जनसाधारण के सामने रखा जावे। इसी कार्य को पूरा करने के लिये ऋषि दयानन्द ने सन् १८७५ मे बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी।

तथ्य यह है कि जहां भी ऋषि कुछ दिन ठहर जाते और व्याख्यान अथवा शास्त्रार्थ द्वारा अपने विचार प्रकट कर देते, लोग उनके भक्त हो जाते और आर्यसमाज की स्थापना हो जाती। ऋषि के निर्वाण के बाद तो आर्यसमाजों की स्थापना की शृखला बन गयी।

ऋषि दयानन्द की एक बड़ी विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी उन्नति चाहते थे। वे चाहते थे कि व्यक्ति और समष्टि के शरीर मन और आत्मा सब स्वस्थ हों। उन्होंने स्वय इस बात पर बल दिया और बाद में आर्यसमाज ने भी इस बात का ध्यान रखा। इसीलिए आयसमाज ने धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक सभी प्रकार के सुधारों के करने का यत्न किया।

आर्यसमाज की आधारशिला वेद है। ऋषि ने 'वेदों की ओर' का बिगुल बजाया था। हिन्दू जाति वेदों की भक्त थी, उन्हें ईश्वरकृत मानती थी, पर वेद हैं क्या, और उनमें है क्या, यह न जानती थी! एक विशेष वर्ग के अतिरिक्त न तो उन्हें कोई देख सकता था, न सुन सकता था, न छू सकता था, पढ़ने की तो बात अलग रही! स्त्री जाति वेद, यज्ञादि के पास भी न जा सकती थी! वेदका भाष्य किया और उनका द्वार जनसाधारण के लिए खोल दिया। आर्यसमाज के प्रचार के कारण आज किसी भी वर्ग का कोई भी व्यक्ति वेद पढ़ सकता है, यज्ञोपवीत पहिन सकता है और यज्ञ कर सकता है। आर्यसमाज के तीसरे नियम मे ऋषि ने 'वेद का पढ़ना, सुनना, सुनाना आर्यों का परम धर्म' ही निश्चित कर दिया।

आर्यसमाज का आधार तर्क (बुद्धिवाद) पर है इस लिये वह धार्मिक—अन्धविश्वासों को नहीं मानता। वह अवतारवाद, मूर्तिपूजा, रूढ़िगत पूजा पाठ, जन्त्र - मन्त्र जादू–टोने, कृत्रिम देवी देवताओं आदि मे विश्वास नहीं करता।

आर्यसमाज का धर्म मन्दिरों तक ही सीमित नहीं, अपितु वह व्यक्ति और समष्टि के सर्वत्र और सदा साथ रहने वाली वस्तु है। आर्यसमाज मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दशा मे धर्म का पालन करना चाहिए। सत्य का पालन उच्च आचरण का आधार है इसलिये ऋषि ने आर्यसमाज के चतुर्थ नियम में कहा है कि 'सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने मे सर्वदा उद्यत रहना चाहिये' और 'सब काम धर्मानुसार सत्य और असत्य को विचार करके करने सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज मनुष्य मात्र की समता मे विश्वास रखता है। उसकी दृष्टि में कोई किसी से ऊँचा नीचा नहीं। प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार है। वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं होती, गुण कर्म से होती है। स्त्रियो को शिक्षा प्राप्त कर उन्नति करने का पुरुषों के समान ही अधिकार है। शूद्र अथवा अछूत भी औरों के समान उन्नति करने का अधिकार रखते हैं। स्त्रियों, अनाथो अछूतो की उन्नति में आर्यसमाज ने अत्यन्त प्रशसनीय कार्य किया है। बाल-

विवाह, अनमेल विवाह आदि सामाजिक बुराइयो को दूर करने का आर्यसमाज ने भरसक प्रयत्न किया है।

ऋषि ने आजीवन सत्य मार्ग पर आचरण किया और आर्यसमाज के अगणित कार्यकर्ताओ ने धार्मिक, सामजिक, राजनैतिक क्षेत्रो मे इसके अनुसार आचरण करते हुए घोर यातनायें सहीं, अनेको को मौत के घाट उतरना पडा!

राजनैतिक क्षेत्र मे आर्यसमाज सदा 'स्वराज्य' का पक्षपाती रहा है। वह ऋषि के इस कथन मे विश्वास करता है 'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"

ऋषि की यह उक्ति भी कि 'अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार सहने वाला अधिक पापी होता है' इसी ओर सकेत करती है।

आर्यसमाज धर्म, सभ्यता, सस्कृति, भाषा की एकता में विश्वास करता है। उसका विश्वास है कि बिना इसके राष्ट्र मे ऐक्य नहीं हो सकता।

आर्यसमाज ने पश्चिम सभ्यता के चकाचौंध मे डालने वाले भौतिकवाद का और उसके तकशून्य विश्वासों का दृढता से सामना किया। जन साधारण के सामने उसकी पोल खोलकर रखी। भारत देश को विधर्मियो के चगुल मे फसने से बचाया। सक्षेप मे आर्यसमाज ने उन सभी कार्यों की नीव डाली जो भारत को एक सुदृढ और समृद्ध राष्ट्र बना सकते थे। आर्यसमाज ने महात्मा गाधी के मार्ग को प्रशस्त किया था।

श्री आई० एम० परनेल, लाइब्रन आफिसर थियोसोफिकल न्यूज एण्ड नोट्स लन्दन (जून १९५५) आर्यसमाज का परिचय इस प्रकार देते हैं—

"आर्यसमाज धर्म शान्ति, सार्वभौम चक्रवती राज्य और निरामिष भोजन पर अवलम्बित समाज-रचना का प्रतिपादन करता है। इस नियमो को स्वीकार करने वाला (और उन सिद्धान्तो को स्वीकार कर आचरण मे लाने वाला, जिनकी महर्षि दयानन्द ने वेदो के आधार पर अपने ग्रन्थों मे व्याख्या की है) कोई भी व्यक्ति आर्यसमाज मे प्रविष्ट हो सकता।

बर्गोलियम फोम के शब्दो मे—

"आर्यसमाज वेदों की ओर चलो' आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करता है। जिसके सस्थापक ने वेदो से निकाल कर ऐसी बातें प्रकाश मे लायी हैं, जिनको आधुनिक भारत मे मान्यता प्राप्त है। उन्होंने वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद को सिद्ध कर दिया और विविध वैदिक देवताओं को सच्चे परमात्मा के ही विशेषण बताकर बहु देवतावाद की मान्यता की निस्सारता प्रतिपादित कर दी है। आर्यसमाज कर्मफल और मुक्ति मे विश्वास रखता है। आवागमन के चक्र से छूट जाना मुक्ति है।'

'दयानन्द उच्चकोटि के राष्ट्रवादी थे। इनका आर्य समाज आन्दोलन भारत मे आधुनिक राष्ट्रीयता एव जागृति का कारण रहा है।

जैसा कि श्री के० एम० मुन्शी जी ने अपने एक लेख मे लिखा था तथा भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने अपने मथुरा सम्मेलन के भाषण मे कहा था, भारत मे राष्ट्रीयता एव स्वतन्त्रता के सर्वप्रथम स्वप्न-द्रष्टा ऋषि दयानन्द ही थे। उनके द्वारा सस्थापित आर्यसमाज ने कांग्रेस से भी पहले भारतीय जनता के हृदयों मे देशभक्ति का बीज बोया था। आर्यसमाज के उपदेशकों और प्रचारकों ने स्थान स्थान पर घूमकर लोगों में स्वराज्य की, स्वतन्त्रता की, स्वदेशी वस्तुओ के प्रयोग की, एवम् देशभक्ति की भावना को जागृत किया था, यही कारण था कि जब सन् ११२१ मे महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया था तो देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत जेल में जाने वाले लोगो मे ६० प्रतिशत से अधिक आर्यसमाजी लोग ही थे। इसी प्रकार शराब की दूकानों पर धरना देने वाले और ग्राम ग्राम मे असहयोग आन्दोलन और प्रचार करने वालो मे अग्रणी सामाजिक पुरुष ही थे। इसी प्रकार अछूतोद्धार के कार्य मे जो सफलता महात्मा गाधी को बाद को मिली, वह कदापि न मिलती यदि स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज अपने प्रचार से अछूतोद्धार के लिये भूमि तैयार न कर देता। इस बात को महात्मा गांधी जी ने स्वय भी स्वीकार किया!

इसीलिये सन् १९११ की भारत की जनगणना की रिपोर्ट मे ब्लन्ट महोदय ने लिखा था कि 'आर्यसमाज १९ वीं शताब्दी का महानतम् भारतीय आन्दोलन है।' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भी एक बार कहा था—"सगठित कार्य, दृढता, उत्साह और समन्वय की भावना की दृष्टि से



ऋषि का अद्भुत कार्य



[ले०—श्री शिवकुमार जी शास्त्री काव्यतीर्थ मु०अ०गु०म०ज्वालापुर]

ज्ञानोपार्जन करके ऋषि दयानन्द जब वैदिक मत का प्रतिपादन करने कार्य क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए तो उस समय वैदिक धर्म की दशा एक प्राण विहीन कलेवर के समान थी। कहां तो इस धर्म का वह दिव्य स्वरूप था कि विदेशी आक्रान्ता सैनिक शक्ति से इस देश को पादा क्रान्त करके भी वैदिक धर्म के गुणों पर मुग्ध होकर आर्य बन गये और गुण कर्मानुसार यहा के वर्णों मे घुल-मिल गये। आज इनको एक इतिहास के विद्यार्थी के अतिरिक्त कोई जानता भी नहीं। किन्तु ऋषि के समय यह एक मुर्दा था। उसमे किसी वस्तु को आत्मसात् करने की क्षमता नहीं थी। इस बात की पुष्टि के लिए एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा।

फ्रासीसी यात्री बर्नियर ने लिखा है कि वह एक बार दाराशिकोह के साथ काशी गया, दारा ने काशी के बड़े-बड़े विद्वानों को इकट्ठा किया। बर्नियर ने भी इन मूर्धन्य विद्वानों से कुछ लाभान्वित होना चाहा। उसने उन विद्वानों से पूछा कि जिस धर्म के आप अनुयायी हैं वह धर्म कैसा है? विद्वानों ने उत्तर दिया कि वह ससार का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। बर्नियर ने यह उत्तर सुनकर उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि क्या आप मुझे अपने धर्म मे सम्मिलित होने का सौभाग्य प्रदान कर सकते हैं? काशी के विद्वानों ने कानों को हाथ लगाकर उत्तर दिया। हम कब कहते हैं कि यह सबके लिए श्रेष्ठ है।

हमारा कहना तो यह है कि यह हमारे लिए सबसे अच्छा है। आपके लिए तो वही अच्छा है जो आप मानते हैं।

जैसे मृत शरीर से दुर्गन्ध उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देती है, उसी प्रकार यहां के पोंगा पण्डितो के बुद्धिहीन तथाकथित धार्मिक व्यवहारों से समाज शरीर मे अनेक प्रकार के रोग फैल रहे थे।

शक सम्वत् १८४१ के माघ मास में प्रयाग में पंडितों की एक सभा हुई इस सभा मे ४८ घण्टे इस बात पर विचार होता रहा कि 'नमोनारायण' मन्त्र सबको दिया जावे या नहीं? और दिया जाय तो ओंकार सहित अथवा ओंकार रहित, ४८ घण्टे के विवाद के पश्चात् भी निर्णय नहीं हो पाया।

शक सम्वत् १८५० के आश्विन मास मे काशी मे एक ब्राह्मण सम्मेलन हुआ इसकी बैठकें सात दिन तक होती रहीं लगभग ३०० पण्डितों ने भाग लिया और विचार विनिमय किया, बड़े सघर्ष के पश्चात् इस सम्मेलन मे यह निश्चय किया कि रजोदर्शन के पश्चात् कन्या को वृषलीत्व प्राप्त होता है और प्रायश्चित्त से उसकी निवृत्ति नहीं होती। अर्थात् रजोदर्शन के पश्चात् कन्यादान अधर्म है। (२) उपजातियों में विवाह नहीं करना चाहिए मुसलमानों और अस्पृश्यों की अस्पृश्यता जन्म से है।

ईसा की नवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्यभाग तक सस्कृत के बड़े-बड़े विद्वान् हुए और उन्होंने बड़े बड़े ग्रन्थ भी लिखे। किन्तु विदेशियों के द्वारा हमारे समाज पर जो प्रहार हो रहे थे—उनसे समाज की रक्षा के लिये उन विद्वानों ने कहीं एक शब्द भी नहीं लिखा।

यहां पाठकों की जानकारी के लिये कतिपय प्रसिद्ध विद्वानों के नाम उनके रचित ग्रन्थ और काव्य का उल्लेख किया जाता है।

आर्यसमाज की समता कोई समाज नही कर सकता।' महात्मा गांधी जी ने भी लिखा था 'मैने देखा है, जहां जहा आर्यसमाज है, वहा वहां जीवन ज्योति है।'

इसीलिये कहा गया है —

यह आर्यसमाज जगत भर मे,
जीवन की ज्योति जगायेगा।
सद्भाव, शान्ति सुख जगती मे,
सच्ची मानवता लायेगा॥

●

नाम	स्थान	समय	ग्रन्थ
मेधातिथि	मिथिला	९००	मेधातिथि भास
विज्ञानेश्वर	कल्याणवेवार	११००	मिताक्षरा
लक्ष्मीधर	कन्नौज	१३४३	स्मृति कल्पतरु
हलायुध	बंगाल	१२००	ब्राह्मण सर्वस्व
देवण्ण भट्ट	दक्षिण भारत	"	स्मृति चन्द्रिका
हेमाद्रि	देवगिरि	१२६०	चतुर्वर्ग चिन्तामणि
कुल्लूक भट्ट	काशी	१०००	मन्वर्थ मुक्तावलि
वीरमित्रोदय	मिथिला	१३००	वीरमित्रोदय
माधवाचार्य	विजयनगर	१४००	पाराशर माधव
नीलकण्ठ	कोंकण	१०००	मयूख
अपरार्क	काशी	१४००	अपरार्क
चण्डेश्वर	बंगाल	"	स्मृति रत्नाकर
जीमूतवाहन	"	"	धर्मरत्न
रघुनन्दन	"	१६००	स्मृतितत्त्व
कमलाकर	काशी	"	निर्णयसिन्धु
नीलकण्ठ	"	११६१	भगवन्त भास्कर

मेधातिथि के पण्डित का विद्वान् लोहा मानते हैं। विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा महाराष्ट्र के हिन्दू कानून के रूप में प्रचलित रही है। चतुर्वर्ग चिन्तामणि मे हेमाद्रि ने दान, तीर्थ और मोक्ष जैसे विषयो के वचन सग्रहीत किये हैं। कुल्लूक की मनुटीका सर्वाधिक प्रसिद्ध है, माधवाचार्य का पाराशर माधव पाराशर स्मृति मे भी अधिक प्रचलित है।

किन्तु किसी भी लेखक ने यवनों के अत्याचारो से देश मे जो हाहाकार मचा हुआ था उसकी ओर दृष्टिपात् नहीं किया। हिन्दुओं को अपनी कुरीतियों को छोड़ने की प्रेरणा करनी चाहिये थी। उस समय के राजा तक अलकार शास्त्र का निर्माण करते थे। उनकी दृष्टि मे सेनापति से राजकवि का अधिक महत्व था, और राजाओ के लिये रणभूमि से रगभूमि अधिक प्रिय थी।

और तो और श्री शकराचार्य का क्षेत्र उत्तर भारत था और मुहम्मद बिनकासिम के आक्रमण भी उत्तर भारत में हुए। किन्तु आचार्य ने उनके लिए कहीं एक शब्द तक नहीं लिखा। उनके विचार कितने सकीर्ण थे इसका नमूना उनकी प्रश्नोत्तरी के स्त्री विषयक प्रश्नोत्तरों से और वेदान्त दर्शन के "श्रवणाध्ययन प्रतिषेधात स्मृतेश्च" सूत्र के ऊपर लिखी टिप्पणी से चल सकता है।

विजयनगर के प्रधानमन्त्री माधवाचार्य के ग्रन्थ मे तो थोडा बहुत परिस्थितियो का विवेचन तो होना ही चाहिए था।

किन्तु बात वही थी, उनकी दृष्टि मे धर्म इस लोक मे आने वाली वस्तु न थी न उसके लिए यह आवश्यक था कि उसका बुद्धि से कोई तालमेल बैठता है या नहीं ? उस समय धर्म के नाम सब सौदा उधारखाते निकलता था। नकद उसकी एक कौडी भी न मिलती थी। सबका फल परलोक मे मिलता था, इस लोक मे नहीं। सत्य बोलना धर्म है। क्या लाभ है इसके ? इसका लाभ परलोक मे प्राप्त होगा।

ऋषि ने इस दिग्मोह को दूर करने के लिए ऋषि कणाद के शब्दो को स्मरण कराया—*"यतोऽभ्युदय नि श्रेयस-सिद्धि सधर्म"* धर्म से लोक और परलोक दोनो सुधरने चाहिए। धर्म का प्रथम फल अभ्युदय होना चाहिए और दूसरा नि श्रेयस। वस्तुत अभ्युदय के बिना नि श्रेयस हो ही नही सकता।

दूसरे सनातन धर्म वह हो सकता है जो सब समयों की समस्या का समाधान करने की क्षमता रखता हो। जो धर्म आज की अड़चन को दूर नहीं कर सकता। उसे आज जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं वेद ने सनातन धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है—

"सनातन वो न माहुरुताद्य स्यात पुनणव ।" सनातन उसे कहते है जो सृष्टि के प्रारम्भ से चला आ रहा है किन्तु अगर कोइ नवीन परिस्थिति आती है तो उसके लिए पुन नव फिर नया रूप धारण करके सामने आता है।

बस हमारे धर्म की यह क्षमता नष्ट हो गई थी। दूसरे शब्दो मे धर्म का नाम तो था उसमे प्राण नहीं थे। बलपूर्वक मुसलमान बनाया हुआ एक हिन्दू बार बार दुहाई दे रहा है कि यह कुकृत्य मुझसे बलपूर्वक कराया है। इसमे मेरा क्या अपराध है ? आप जो चाहे मुझसे प्रायश्चित्त करालें किन्तु धर्माचार्यों का एक ही उत्तर था कि बस तुम पतित हो गये। गोरी ने अपनी फौजों के सामने गौएँ खडी कर लीं और उन्हे देखकर हमारे सिपाहियो ने अपनी तलवारें म्यान मे डाल लीं। उस समय

किसी धर्माचार्य ने यह व्यवस्था नहीं दी कि पराधीनता सबसे बडा पाप है उससे बचो। युद्ध मे कुछ गौएं बलिदान हो गयीं तो विजय प्राप्त करने पर शेष गौओं का जीवन तो सुरक्षित हो जायेगा। ऋषि पाराशर ने अपनी स्मृति मे यह व्यवस्था दी भी है।

"गवा सरक्षणार्थायन दुष्येद्रोधबन्धयो वद्धवन्तु नक्त द्विषात् कामाकामरतहि तत्" अर्थात् लक्ष्य यदि गौओं का सरक्षण है तो फिर रोध, बन्ध और बध में भी कोई दोष नहीं है।

ऋषि और आर्यसमाज ने उस भ्रान्ति का निवारण किया और उसका प्रभाव दिखलाई दिया। सन् ४६ मे नोआखाली बगाल मे बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं पर उस समय काशी की विद्वत्सभा ने १०प्रस्ताव पास किये, जिनमे से एक प्रस्ताव यह था कि ये हिन्दू वास्तव में मुसलमान बने ही नहीं अबकि उनकी मन स्थिति मे कोई अन्तर नहीं आया। अत उनको अपने धर्म मे सम्मिलित करने के लिए शास्त्रीय शुद्धि विधान की कोई आवश्यकता नहीं। ये तो केवल गगाजल छिड़क-कर के ही पवित्र कर लेने चाहिए।

यह है इस मुर्दे मे प्राणो का सचार वस्तुत यह बहुत बडी क्रान्ति है।

अत ऋषिवर मै तो आपको पण्डितराज जगन्नाथ के उन शब्दों मे श्रद्धांजलि देता हू।

तोयैरल्पैरपिकरुणया भीममानौ निदाघे, मालाकर व्यरचि भवता या तरोरस्यपुष्टि।

सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वाराम्, धारा सारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन॥

हे माली भयकर झुलसाने वाली गर्मी के दिनों मे पानी के छोटे छोटे घडों से सींच कर उस वृक्ष को जो तुने जीवनदान दिया। उसकी तुलना मूसलाधार पानी बरसाती हुई वर्षा ऋतु की घनघोर-घटाए नहीं कर सकतीं। क्योंकि इस सुखमय समय के दर्शन तुम्हारी कृपा से ही हो रहे हैं।

यही बात बिलकुल इन्हीं शब्दों मे ऋषि को कही जा सकती है कि—स्वतत्रता और भारत की भौतिक उन्नति की योजनाओं का श्रेय चाहे कोई ले ले, पर यदि उस समय भारत को तुमने न बचाया होता तो उसे देखने यहा कौन बचता। ऋषिवर तुम धन्य हो! ●

आर्यमित्र की उन्नति के लिए—

डा०सूर्यदेव शर्मा स्थिर निधि

अन्तरग सभा दि० ९-५-६३ के निश्चयानुसार

विषय सख्या २४ श्री प० सूर्य देवजी शर्मा एम०ए० अजमेर का आर्यमित्र सहायतार्थ धन दिये जाने विषयक पत्र विचारार्थ प्रस्तुत होकर श्री शर्माजी का पत्र पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि दानी सज्जन की निम्नशर्तों के लिये चार सहस्र रुपया दान लेना स्वीकार किया जावे। धन प्राप्त होने पर एफ०डी० में जमा किया जाए।


श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा

१—इस निधि का नाम डा० सूर्यदेव स्थिर निधि होगा।

२—इस निधि की धन राशि स्थायी रूप मे सभा मे पृथक जमा होगी।

३—इसके ब्याज से प्रति वर्ष सार्वजनिक सस्थाओं, पुस्तकालयों एव वाचनालयों को आर्यमित्र लागत मूल्य में दिया जाया करेगा। अवन्ति में शेष धन आर्यमित्र की उन्नति मे लगाया जायेगा।

४—वर्ष में कम से कम दो बार जनवरी, जुलाई मास में इस निधि की सूचना प्रमुख शर्तों के साथ 'आर्यमित्र' में प्रकाशित होगी।

५—सम्मान रूप में 'आर्यमित्र' सदा दानी सज्जन को भेजा जाया करेगा। जहा-जहां आर्यमित्र जायेगा, उसकी सूची दानी सज्जन के पास भेजी जाया करेगी।

६—आर्यमित्र का प्रकाशन बन्द हो जाने पर इस निधि का ब्याज वैदिक साहित्य प्रकाशन में लगाया जावेगा।

—धर्मव्रत तिवारी
मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ।



समाज का वर्तमान रूप बदलना होगा

[ले०—श्री विश्वम्भर सहाय जी 'प्रेमी', मेरठ]

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज का मूलाधार मानव जीवन की पवित्रता माना था। ऋषि चाहते थे कि वेदानुकूल आचरण करने वाले आर्य इस देश को पतन के गर्त से निकालकर उन्नत करें और जो देश ससार भर में अपने चारित्रिक बल पर सर्वश्रेष्ठ रहा, वह अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त करने मे सफल हो।

मुझे स्मरण है कि अब से पचास वर्ष पूर्व जो व्यक्ति आर्यसमाज मे प्रवेश करते थे, वे चरित्रवान् और अपनी बात के सच्चे होते थे। वे अपने आचरण मे कोई भी ऐसी बात नहीं आने देते थे, जिसे धर्म के विरुद्ध समझा जाता हो। उस समय के आर्यसमाजी धर्मानुकूल आचरण करना अपना कर्तव्य समझने लगे थे और वे अपने व्यवसाय मे पूर्ण ईमानदारी बरतने का यत्न करते थे।

इस प्रकार के आर्यसमाजियों ने समूचे राष्ट्र को एक नई दिशा का ज्ञान कराया। उसमे जहां धार्मिक व्यवहार की बात थी, वहा उसी के साथ साथ आर्यसमाज ने राष्ट्रिय चेतना के लिये भी विचार दिये। उन दिनों राष्ट्रिय विचारों की बात करना एक प्रकार का खतरा मोल लेना था क्योंकि १८५७ के आन्दोलन को दबाकर अंग्रेज शासक काफी कठोरता से शासन चला रहे थे।

आर्यसमाज ने जनता के नैतिक बल को बढ़ाया। आर्यसमाज में आने वाले लाखों नर-नारियो के विचार परिवर्तित हुये और उनमें धार्मिक भावनायें जगीं। आर्य समाज ने किसी एक स्थान में नहीं किन्तु अपने देश के प्राय सभी भागों मे सामाजिक जीवन मे परिवर्तन लाने का यत्न किया। सबसे बड़ी समस्या आर्यसमाज ने उस समय यह सुलझाई कि सामाजिक बन्धनों और आर्थिक कठिनाइयों के कारण जो हिन्दू, मुसलमान या ईसाई बन रहे थे, उनको सावधान किया। इतना ही नहीं किन्तु उनको सब प्रकार की सहायता भी दी। इस प्रकार आर्य समाज ने अपने देश के सामाजिक जीवन को उन्नत करने का यत्न किया।

अब हमे आज की स्थिति को देखना है। पन्द्रह सोलह वर्षों मे जहा हमारे देश ने स्वतन्त्र होकर ससार के बडे देशों के समान राजनीतिक क्षेत्र मे अपना सम्मान बढ़ाया, वहां अपने नैतिक बल और आचार-विचार को काफी गिरा लिया। जो बातें अबसे बीस पच्चीस वर्ष पूर्व कल्पना मे भी न आती थीं, वे सामने आ रही हैं। छोटे से बडे तक मे इस समय धन कमाने की दौड सी लगी हुई है। आज कुछ लोग ऐसे हैं जो धर्म और ईमान को बेचकर मालदार बन जाना अधिक पसद करते हैं। उनको न समाज की चिन्ता है और न राष्ट्र की।

आज सामाजिक जीवन इतना अस्त व्यस्त हो गया है कि उसमे सच्चे और ईमानदार व्यक्तियो को गुजारा करना कठिन हो रहा है। मानव जीवन के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता हैं, वे भी शुद्ध मिलनी दुलभ हो गई हैं। मिलावट ने सारे ही राष्ट्र को चिन्ता मे डाल दिया है। यदि देखा जाय तो सात्विक प्रवृत्तियों का अभाव सा होता जा रहा है। आय समाज जिन धार्मिक विचारो को फैलाकर जनता मे शुद्ध विचारों को लाने का यत्न करता था, वे विचार भी आज कोई सुनने को तैयार नहीं।

फिर भी आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज ऋषि दयानन्द के विचारो को फैलाने का यत्न करे। आज भी आर्यसमाज का व्यापक सगठन यदि सक्रिय हो जाय तो सामाजिक जीवन मे एक बडा परिवर्तन ला सकता है। चरित्र बल के सहारे जिस आर्यसमाज ने सामाजिक-कुरीतियों मिथ्या-विश्वासों और विधर्मियो के कुचक्रो से अब से ५० साठ वर्ष पूव मोर्चा लिया था, वह आज भी वर्तमान भ्रष्टाचार और सामाजिक दोषो से दूर करने मे सफलता प्राप्त कर सकता है।

हमको ऐसा जाना है कि इस समय आर्यसमाज में

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(पृष्ठ ३९ का शेष)

पहले जैसी तेजस्विता नहीं, उत्साह नहीं और नैतिक बल नहीं। यह बात किसी अंश तक ठीक है परन्तु हमे समझना चाहिये कि आर्यसमाज मे आज भी तपस्वी और ईमानदार व्यक्ति हैं। आर्यसमाज मे काम करने वाले लाखों व्यक्ति आज भी ऐसे हैं जो ईमानदारी से अपना निर्वाह करते हैं। और आर्यसमाज मे आज भी ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो पीड़ित मानवों की भलाई मे अपना समय लगाने को तैयार हैं।

आर्यसमाज यदि सगठित रूप से जनता के कष्टों को दूर करने मे सहायता करने का कोई कार्यक्रम बनाये तो कोई कारण नहीं कि दुखी जनता उसकी ओर आकर्षित न हो। मै यहा किसी भी राजनैतिक दल की आलोचना नहीं कर रहा है परन्तु अपने अनुभव से इतना कहना आवश्यक समझता हू कि देश के प्राय सभी राजनैतिक दल चरित्र-निर्माण की दृष्टि से मौन धारण किये हुए हैं। राजनैतिक प्रवाह मे बहकर वे अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिये अनुचित और उचित दोनों प्रकार का मार्ग अपनाने को तैयार हैं। ऐसी दशा मे आर्यसमाज यदि जनता की कठिनाइयों को दूर करने मे सहायता देता है और जनता को गलत मार्ग पर चलने से सावधान करता है, तो सचमुच इस युग की एक बडे काम की पूर्ति करता है। इस समय राष्ट्र के चरित्र की रक्षा करना एक महान् कार्य है। आर्यसमाज इसे अपने ऊपर उठाये, यह आर्य समाज का गौरवपूर्ण कदम होगा।

महर्षि दयानन्द के वीर सैनिकों की अपने आचार्य के प्रति यह सच्ची और सामयिक श्रद्धाजलि होगी।

●

सभा का नवीन प्रकाशन

पृथिवी माता की महिमा के उपरान्त आ० प्र० सभा का प्रकाशन-विभाग महान् दयानन्द शीर्षक एक अत्यन्त मौलिक एव अनुसधान पूर्ण पुस्तक प्रकाशित कर रहा है। इस पुस्तक मे ऋषि दयानन्द के धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सास्कृतिक एव राष्ट्रीय क्षेत्रों मे किये गये महान् कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। लगभग ७० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ३७ न पै. मात्र होगा।

पूर्व से आर्डर भेजने वाले आर्यसमाजों को पुस्तक २५ प्रतिशत कमीशन काट कर भेजी जावेगी।

शिवदयालु
अधिष्ठाता घासीराम प्रकाशन विभाग,
आ० प्र० सभा, उत्तर प्रदेश, लखनऊ



दिवाली का सन्देश और एक टीस



(रच०–श्री वैद्य राजबहादुर जी आर्य "सरल")

(१)

आकर के प्रतिवर्ष दिवाली देती है तुमको सन्देश–
गति विधि भूल रहे तुम अपनी भूले ऋषिवर का उपदेश-
यद्यपि थोड़े थे हम पहिले किन्तु टीस थी और लगन–
नहीं थकावट कभी व्यापती कार्य मे थी सतत लगन।

(२)

आर्य पथिक थे लेखराम लाजपतिराय शेरे पजाब–
माधोसिह मायमल आदिक रहा कार्य करने का चाव–
हसराज आर्यमुनि अमीचन्द बस्तीराम दर्शनानन्द,
गणपति तुलसीराम श्रद्धानन्द गुरुदत्त और सर्वदानन्द।

(३)

निरमुख लौटे नहीं कहीं से पुष्कल ही धन लाते थे–
जहां पहुंच जाते थे जन श्रद्धा के पुष्प चढाते थे।
नहीं सस्कृत का प्रचार था तो भी गुरुकुल खुलवाये–
और उन्हीं के बच्चे लेकर उनमे दाखिल करवाये।

(४)

धर्म कर्म के दीवाने उज्ज्वल चरित्र के धनी सदा–
यद्यपि राज्य पराये मे थे तो भी रहती बनी सदा।
वृतधारी उपकारी निशिदिन पाला ऋषिवर का आदेश–
रहा लक्ष्य जीवन मे उनका ऊँचा होवे अपना देश।

(५)

नहीं रहे वह पद के भूखे और न अधिकारों का ध्यान
मन्त्री बनें प्रधान न सोचा कहां हो रहा कितना मान।
चिन्ता थी तो यही देश मे होवे वैदिक धर्म प्रचार-
गुरुडम गढ़ पाखण्ड पुराणादिक मिट जाये भ्रष्टाचार।

(६)

किन्तु आज विपरीत दशा जान कही भी जाती है–
देख देख कर ढग अवस्था कुछ लज्जा सी आती है।
यद्यपि सख्या बहुत बढ़ गई किन्तु न दीखे उतना कार्य–
भूल रहे वैदिक परम्परा और बन रहे अव्यवहार्य।

(७)

करते सत्याग्रह हिन्दी पर गीत सस्कृत के गाते–
किन्तु गुरुकुलो मे बच्चे अपने न देखने मे आते।
बच्चे अँग्रेजी पढ़ते है और सिनेमा जाते हैं–
कोट पेन्ट टोप मे सदा अंग्रेज दृष्टि ही आते हैं।

(८)

वस्त्र पहनते किन्तु जनेऊ के धागे न दिखाते हैं–
बाल रखे हैं किन्तु शिखा का चिह्न न शिर पर पाते हैं।
सन्ध्याकाल चित्रपट देख अग्निहोत्र सिगरेटो मे–
धरती अम्बर का अन्तर है आज बाप औ बेटो मे।

(९)

वैदिक शिक्षा सस्कार नहिं पश्चिम भाषा का उपयोग–
चले गये अंग्रेज न छूटा अंग्रेजी दुष्टा का रोग।
है चरित्र का पाठ कहा सादा जीवन का कहा विचार–
फिर कहिये बन जाय कैसे सन्तानो के सत्य विचार।

(१०)

विलासिता जीवन मे कन्याओ को आप फसाते हैं–
देश पुराने को तजने मे हा हा हम न लजाते हैं।
पतिव्रताओ के से सादा जीवन उच्च विचार कहा–
देवी लेडी बनती जाती चिराचीन व्यवहार कहा।

(११)

देख कलेवर बढ़ता जाता, दशा देख मन होता खिन्न–
दयानन्द के मन्तव्यों से अब विचार पाता हू भिन्न।
अरे न लज्जा आती हमको बिसराते जाते निज टेक–
इसीलिए क्या ? दयानन्द ने विष के प्याले पिये अनेक।

(१२)

त्याग अवैदिक परम्पराएँ करो ऋषि मिशन पूरा आज–
तभी जगत मे कहलायेगा सच्चा वैदिक आर्य समाज।
सुधरें स्वय और भी सुधरेंगे तब सुन वैदिक उपदेश–
"सरस" दिवाली दीपो मे खोजो ऋषि का अन्तिम सन्देश।



★



★





आर्यसमाज की वर्तमान युग में आवश्यकता



लेखक

(ले०—डा० हरिदत्त जी शास्त्री, वेदान्ताचार्य एम०ए०, पी-एच० डी०, एकादशतीर्थ, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दयानन्द कालेज कानपुर)



महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'आर्यसमाज' को सुधार करने के लिए ही स्थापित किया था। मानव-समाज में जो बुराइयां हैं उनको दूर करना ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है।

कुछ लोग यह कहते हैं कि अब तो भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है इसलिए आर्यसमाज की कोई आवश्यकता नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे भूल करते हैं क्योंकि अभी समाज में अनेकों दोष हैं जिनका दूर करना 'आर्यसमाज' का कर्तव्य है। 'आर्यसमाज' कोई सम्प्रदाय या मत नहीं है वरन यह एक सुधारक संस्था है। आर्यसमाज ने सर्व प्रथम धार्मिक जगत् में क्रान्ति मचायी, क्योंकि धर्म के नाम पर इस जगत में अनेकों दोष हैं। इसलिए महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने जीवन पर्यन्त धार्मिक सुधार किया, अनेकों शास्त्रार्थ किये। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश' के उत्तरार्द्ध भाग अर्थात् ११ वें से १४ समुल्लास तक पौराणिक, नास्तिक, बौद्ध, जैन, क्रिश्चियन और मुहम्मदी मत की प्रबल शब्दों में आलोचना की है। इससे धार्मिक जगत् में अनेकों सुधार हुए। अनेक पौराणिक प्रस्तर पूजा, अवतारवाद, जन्मना वर्णव्यवस्था, बाल विवाह, तीर्थों में मिथ्या विश्वास को परित्याग करके वेदों का प्रचार करने लग गये हैं। ईसाई और मुसलमान बड़े प्रबल वेग से हिन्दू जाति को हड़पने में लगे थे उनका प्रवाह अवश्य कुछ कम हो गया है। अभी भी 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के अनुसार सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाने का कार्य शेष है। अतः आर्यसमाज की वर्तमान युग में अत्यन्त आवश्यकता है।

हिन्दुओं से जो मुसलमान, ईसाई हो गये हैं उनको अभी शुद्ध करके हिन्दू जाति में मिलाने का कार्य शेष है। इस देश में शक, हूण, क्षत्रप, यवन प्रभृति अनेकों विदेशी आये और वे राजपूत ब्राह्मणों में ऐसे मिल गये कि उनका पता भी नहीं चलता है।

आज हिन्दू जाति की पावन शक्ति निर्बल हो गई है अन्यथा काश्मीर और पूर्वी पाकिस्तान की समस्या हल हो गई होती क्योंकि इन दोनों स्थानों में सब मुसलमान हिन्दुओं से बने हैं।

आर्यसमाज के प्रमुख कार्यों को हम ५ भागों में विभक्त कर सकते हैं (१) धर्म प्रचार (२) समाज सुधार (३) शिक्षा सुधार, (४) राजनैतिक सुधार (५) सांस्कृतिक उद्धार।

धर्म प्रचार

अभी भी बी० ए०, एम० ए० पढ़ लिखे लोग गोबर गणेश की, पाषाण की पूजा करते हैं, भूत प्रेत आदि मिथ्या विश्वास करते हैं। अतः अभी आर्यसमाज को वेद-सन्देश का प्रचार करना है। यह कार्य प्रबल वेग से होना चाहिए। धार्मिक प्रचार के ढंग की शिक्षा हमको ईसाई धर्म प्रचारकों से सीखनी चाहिए। आज जंगलों, पहाड़ों में भी विदेशी ईसाई मिशनरी किस प्रकार स्कूल, आतुरालय आदि खोलकर अपने धर्म का प्रचार करते हैं। उनमें कितना त्याग और कितनी तपस्या है! यदि ५० सच्चे वानप्रस्थी और आर्य सन्यासी वैदिक धर्म में अपना जीवन अर्पण कर दें तो अवश्य आर्यसमाज का लक्ष्य पूरा हो जायेगा। यह सरदा युग नहीं वरन् प्रचार-युग है। आर्य-

समाज का ध्यान केवल संस्थाओं के निर्माण मे है। आर्य-समाज के स्कूल, कालेज तो अनेकों हैं पर क्या उनसे आर्य विचारधारा के छात्र निकलते हैं ? नहीं। आज स्कूल कालेजों मे भी धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध के अनुयायियो ने किस प्रकार सांसारिक सुखो को परित्याग कर चीन, जापान, ग्रीस, सीरिया, लंका प्रभृति विदेशों मे बौद्ध मत का सन्देश फैलाया उसी प्रकार महर्षि दयानन्द जी के सच्चे अनुयायियो को भी धार्मिक क्षेत्र मे आकर वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहिए। आज तो आर्यसमाज मे कुछ प्रच्छन्न तस्कर प्रवेश कर गये हैं जो ब्राह्मण ग्रन्थ, भाष्य, वेदभाष्य पत्रिका के नाम पर धन आर्य जनता से मांग मांगकर हड़प कर जाते हैं। ऐसे दम्भी लोगों से आर्यसमाज को सावधान हो जाना चाहिए।

आज पाश्चात्य देशों मे भी सन्देश सुनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। समस्त विश्व की आखें आर्यसमाज के सच्चे प्रचारको की ओर लगी हुई हैं। बगाल, असम, काश्मीर, दक्षिण भारत मे आर्यसमाज का प्रचार नाम-मात्र का है। समस्त बग प्रान्त असम प्रान्त तान्त्रिक है। वहां के लोग मत्स्य भोजी है। उनमे प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती कृत "सत्यार्थ-प्रकाश" को उर्दू, मराठी, गुजराती, बगाली, असमी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नाडी तथा पाश्चात्य भाषाओ मे अनुवाद करके विस्तारपूर्वक प्रचार करना चाहिए। क्रिश्चियन मत का ग्रन्थ 'बाईबिल' आज प्राय समस्त भाषाओं मे अनूदित है। इससे भी आर्यसमाज को शिक्षा लेनी चाहिए। आर्य-जगत् की शिरोमणि "श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली" को इधर ध्यान देना चाहिए।

समाज सुधार

हिन्दू समाज में अन्ध-विश्वास और रूढ़िप्रथा का बोलबाला था। स्त्री, शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार न था। परदा, वृद्ध विवाह, बाल-विवाह आदि कुरीतियां समाज में प्रवेश कर गई थीं। महर्षि दयानन्द जी ने यजु० २६।२ के आधार पर स्त्री, शूद्र सभी मानव मात्र को अधिकार बतलाया। इस प्रकार से आज सहस्रों नारियां विदुषी हो गई हैं और सहस्रो शूद्र वेदों के पण्डित हो गये हैं फिर भी अभी प्रचार की आवश्यकता है। आज आर्य-समाज के प्रचार से शिक्षिता नारियां परदा नहीं करती हैं। परदा प्रथा वास्तव मे हिन्दू समाज का एक अभिशाप है। वैदिक काल मे तो परदा एकदम नहीं था। उस समय स्वयवर प्रथा के कारण परदा को कोई जानता भी नहीं था।

मुसल्मानों के आगमन से हिन्दुओं मे यह बुराई घुस गई है। अभी भी मारवाड में वृद्ध-विवाह तथा देहातो मे बाल-विवाह की घटनाएँ पाई जाती हैं। यद्यपि शारदा एक्ट मे बाल-विवाह का निषेध है फिर भी यह एक्ट पूर्ण रूप से लागू नहीं है। सरकार को इस ओर कड़ा कानून बनाना चाहिए। वेदादि सच्छास्त्रो मे कहीं बाल और वृद्ध विवाह की चर्चा तक नहीं है। वैदिक काल मे लड़कियों का प्रौढ़ावस्था मे विवाह होता था।

अस्पृश्यता रूपी कोढ़ का पीछा अभी भी नहीं छूटा है। सरकार ने विधान बनाकर इसे दूर करने का प्रयास किया है फिर भी इधर आर्य समाज को ध्यान देना चाहिए। महात्मा गांधी ने अछूतो को 'हरिजन' नाम देकर रूढ़ि बना दिया है।

शिक्षा सुधार

भारतवर्ष मे शिक्षा मे आमूल चूल परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। भारत के स्वतन्त्र होने पर भी अंग्रेजी भाषा का मोह नहीं हटा है। आज हम अंग्रेजी भाषा को ही सर्वेसर्वा समझ बैठे हैं। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने गुजराती होते हुए भी अपने ग्रंथो को संस्कृत व हिन्दी भाषा मे लिखा। वे दूरन्देश थे। वे हिन्दी (आर्य) भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे देखने का स्वप्न देखते थे। हमे जीजान से हिन्दी, संस्कृत भाषा के प्रचार मे जुट जाना चाहिए। जिस देश की अपनी कोई भाषा नहीं वह देश मुर्दा है।

हमे भीषण आन्दोलन करके भी हिन्दी को राजभाषा पद पर स्थित करना चाहिए। हम आर्यों को सदैव पत्राचार मे आर्यभाषा (हिन्दी) का ही प्रयोग करना चाहिए।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

महर्षि दयानन्द और सुराष्ट्र निर्माण



[ले०-प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ) आनन्द कुटीर ज्वालापुर]

आदर्श समाज सुधारक के रूप मे महर्षि दयानन्द का नाम इतना प्रसिद्ध हो चुका है कि उसकी यहा विशेष रूप से चर्चा करनी अनावश्यक है किन्तु यह खेद और आश्चर्य की बात है कि नवयुग विधाता और आदर्श भारतीय राष्ट्र निर्माता के रूप मे उनकी इतनी ख्याति नहीं जितनी होनी चाहिये थी। यद्यपि नेता सुभाषचन्द्र जी जैसे कई सुप्रसिद्ध राजनैतिक नेताओं ने उनके इस रूप को पहचाना और निम्न आशय के शब्दो मे श्रद्धांजलि दी—

'स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महान् शक्तिशाली व्यक्तियो मे से हैं जिन्होने अर्वाचीन भारत का निर्माण किया और जो उसके नैतिक और धार्मिक पुनरुद्धार के लिए उत्तरदाती हैं। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज निस्सदेह हिन्दू भारत की सस्थाओं के पुनर्निर्माण, सुधार और नवजीवन प्रदान करने वाले अत्यधिक शक्तिशाली तत्वो मे से एक है। हम देखते हैं कि उत्तर भारत मे प्रमुख आर्यसमाजी सबसे अधिक प्रभावशाली राष्ट्रीय नेता भी है। स्थिरता, दृढ़ता, सगठित कार्य क्षमता आदि की दृष्टि से आर्यसमाज किसी से भी कम नहीं है। आर्यसमाज एक सगठित स्वदेशी विकास है। अपने अग्रेजी लेख के अन्त मे नेता जी ने निम्नलिखित प्रार्थना भगवान से की थी–

"मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि स्वामी दयानन्द जी द्वारा स्थापित समाज अपने प्रवर्तक के अनुरूप तथा योग्य हो और वह भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति का कारण बन सके जिसको हम सब इतना प्यार करते हैं।"

इस श्रद्धांजलि के अन्तिम भाग मे जो प्रार्थना है, उसमें स्वामी दयानन्द जी द्वारा आर्यसमाज की भारत की सामाजिक और आध्यात्मिक मुक्ति ही नहीं, प्रत्युत उसके साथ-साथ आर्थिक और राजनैतिक मुक्ति का जो स्पष्ट निर्देश है, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(२) काग्रेस की भू०पू० प्रधाना डा० ऐनी बीसेन्ट ने अपनी (इडिया ए नेशन) नामक पुस्तक में तो अत्यधिक स्पष्ट शब्दों मे यह घोषणा की है कि 'Swami Dayananda was the first to proclaim India for Indians'

अर्थात स्वामी दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस बात की घोषणा की कि भारत भारतीयों के लिए है।

(३) भारत के उपप्रधान मन्त्री, राजनीतिज्ञ शिरोमणि, लोह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व ९ नवम्बर १९५१ ई० को देहली के रामलीला मैदान मे महर्षि निर्वाणोत्सव पर भाषण देते हुए महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इस आशय के शब्दो मे प्रकट की थी कि 'स्वामी दयानन्द एक वीर योद्धा और सत्य के सैनिक थे। वे एक वीर निर्भय पुरुष थे। उन्होने हमे भी वीर बनना और बुराइयो के विरुद्ध वीरता से लड़ना सिखाया। वे भारतीय सस्कृति के सच्चे अनुगामी थे। उनके जीवन का प्रत्येक भाग भारतीय सस्कृति की सर्वोच्च महत्वपूर्ण शिक्षाओं के अनुकूल था।' इत्यादि

(४) भारत के महामहिम राष्ट्रपति महामनीषी डा० राधाकृष्णन् जी ने २४ फरवरी १९६१ ई० को ऋषिबोध के अवसर पर रामलीला मैदान नई देहली मे भाषण देते हुए महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इन महत्त्वपूर्ण शब्दो मे प्रकट की थी—

"स्वामी दयानन्द नवभारत के निर्माताओं में से सर्वोत्तम थे। उन्होने राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत उद्धार और मोक्ष के लिए निरन्तर प्रयत्न किया था। हिन्दू धर्म को वैदिक आधार पर पीछे ले जाने मे वे तर्क से प्रेरित थे। उन्होंने समाज को शुद्ध रूप में सुधारने का प्रयत्न किया था जिसकी आज भी आवश्यकता है। भारतीय सविधान मे समावेशित सुधारों मे से बहुतों की स्फूर्ति उनकी शिक्षाओं से मिली थी।"

इससे उत्तम श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है जो जगत्-विख्यात महामनीषी डा० राधाकृष्णन जी ने महर्षि

दयानन्द के प्रति समर्पित की। इसमे उन्होने स्वामी दया नन्द जी को एक धार्मिक और सांस्कृतिक सुधारक ही नहीं, राजनैतिक मुक्ति के लिए भी निरन्तर प्रयत्नशील बताया है और यह स्पष्ट घोषणा की है कि उन्होंने भारतीय समाज का जिस प्रकार का सुधार किया, उसकी आज भी बडी भारी आवश्यकता है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि भारतीय सविधान मे समाविष्ट बहुत से सुधारो की स्फूर्ति स्वामी दयानन्द जी की शिक्षाओ से मिली। इनमे से जाति भेद निवारण अस्पृश्यता-निवारण प्रजातन्त्र शासन हिन्दी राष्ट्र भाषा और देवनागरी लिपि–गोवध निषेध का भारतीय सविधान मे निर्देशक सिद्धान्त के रूप मे प्रतिपादन इत्यादि को गिना जा सकता है।

(५) स्व० श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन जिस समय कांग्रेस के प्रधान थे उस वर्ष ७ अक्टूबर १९५० ई० को आर्यसमाज चौक प्रयाग मे भाषण देते हुए उन्होने स्पष्ट घोषणा की थी कि–

'मै स्वामी दयानन्दजी को साम्प्रदायिक नहीं मानता, मेरे विचार मे वे महान् थे। उनका धर्म विस्तृत था। मै उनको राजनैतिक पुरुष भी मानता हू।"

स्वराज्य मूल मन्त्र प्रदाता–

प्राय यह कहा जाता है कि श्री दादा भाई नौरोजी प्रथम राष्ट्रीय नेता थे जिन्होने काग्रस के मन्च से सन् १९०६ के कलकत्ता अधिवेशन मे सबसे पूर्व स्वराज्य शब्द का राजनैतिक अर्थ मे प्रयोग किया किन्तु जब हम महर्षि दयानन्द लिखित सत्यार्थ प्रकाश, आर्याभिविनय आदि पुस्तकों को देखते हैं तो यह विचार सवथा अशुद्ध प्रतीत होता है। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास मे स्वराज्य के महत्व को प्रकट करते हुए सन् १८७५ के लगभग महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा था—

"अब अभाग्योदय से और आर्यो के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों पर राज्य करने की तो कथा ही क्या किन्तु आर्यावर्त मे भी आर्यों का अखण्ड स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है, सो भी विदेशियो के पादाक्रान्त हो रहा है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा पृथक् पृथक् अलग व्यवहार का विरोध छूटना अतिदुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना अति कठिन है।'

[सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास]

महर्षि दयानन्द के स्वराज्य के महत्व विषयक ये शब्द स्वर्णाक्षरो में लिखने योग्य हैं। ये शब्द सन् १८७५ के लगभग लिखे गये थे जबकि कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ मे हुई। स० प्र० दशम समुल्लास मे महर्षि ने लिखा—

"जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश म व्यवहार व राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"

आर्याभिविनय' नामक प्राथना पुस्तक मे भी महर्षि ने अनेक स्थानो पर इस प्रकार की प्रार्थनायें लिखी हैं—

'अन्य देशवासी राजा हमारे देश मे कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हो।

[रा० क० ट्रस्ट स० मवत् १९१४ पृ० २१४]

'ऋजु नीती नो वरुण' इस ऋग्वेद मन्त्र की व्याख्या मे महर्षि ने आर्याभिविनय मे लिखा–' हम पर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।'

[क० ट्रस्ट स० पृ ५३]

महर्षि दयानन्द स्वराज्य के लिये कितने उत्सुक थे और किस प्रकार निभयता से अपने विचारो को प्रकट करते थे यह उस भेंट के वृत्तान्त से बहुत अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है जो उनकी जनवरी सन् १८७३ मे उस समय के अग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड नार्थब्रुक से कलकत्ता मे हुई। उनके यह कहने पर कि मुझे अपने विचार प्रकट करने की अग्रेजी राज्य मे पूरी स्वतन्त्रता है जब वायसराय ने कहा कि 'यदि ऐसा है तो क्या आप अपने देश मे अग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वणन किया करेगे और अपने व्याख्यानो के प्रारम्भ मे जो ईश्वर प्रार्थना आप किया करते हैं, उसमे देश पर अखण्ड अग्रेजी शासन के लिये प्राथना भी किया करेगे? इस पर महर्षि दयानन्द जी ने कहा–मैं किसी ऐसी बात को मानने मे

असमर्थ हू क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे देश वासियो को अबाध राजनीतिक उन्नति और ससार के राज्यों मे समानता का दर्जा पाने के लिये शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये । श्रीमान् जी ! ईश्वर से नित्य साय प्रात उनकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना करता हू।

राष्ट्र निर्माता के रूप मे उन्होंने जो अद्भुत कार्य किये उनमे सन् १८७७ मे देहली दरबार के अवसर पर सर्वप्रथम ऐक्य सम्मेलन का आयोजन जिसमे श्री केशवचन्द्र सेन, नवीन चन्द्र राय, सर सैयद अहमद खान आदि सम्मिलित हुए, आर्य भाषा (हिन्दी) को राज्य भाषा बनाने के लिए प्रबल प्रयत्न करना और 'मेरी आंखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब काश्मीर से कन्या कुमारी तक सब एक भाषा को समझने और बोलने लग जायेंगे' आदि हार्दिक उद्गारो का प्रकट करना, गोवध निषेध करवाने के लिये हस्ताक्षरादि द्वारा सगठित प्रबल प्रयत्न करना, स्वय शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहनना और अन्यों को भी वैसा करने की प्रेरणा करना आदि हैं। ऐसे स्वराज्य के मन्त्रदाता, नवयुग प्रवर्तक, आदर्श राष्ट्र निर्माता महर्षि दयानन्द जी को हमारा प्रणाम हो !



ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जो अनधिकारी सन्यास ग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरों को भी डुबाएगा।

★ जो अविद्यायुक्त मूर्ख, वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस कार्य को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं, उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं।

स०कर्ता—श्री प०कृष्णदत्त आयुर्वेदालकार

(पृष्ठ १३ का शेष)

राजनैतिक सुधार

महर्षि दयानन्द जी ने धर्मार्य, विद्यार्य और राजार्य तीन सभाओं का निर्माण किया था। हमने राजार्य सभा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया इससे भारतवर्ष के शासन की बागडोर अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में चली गई है।

महर्षि जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के छठे समुल्लास मे सच्ची राजनीति की चर्चा की है। 'स्वराज्य' शब्द का बार बार प्रयोग किया है। प्रजातन्त्र राज्य की महर्षि जी ने महानता बतलाई है। 'स्वदेशी' और 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द जी ने ही वर्तमान युग मे किया। स्वदेशी राज्य, स्वदेशी वस्त्र, स्वदेशी भाषा पर महर्षि जी ने बड़ा बल दिया है। देशी रियासतों के सुधारने मे भी महर्षि जी का हाथ था। कई नरेश उनके परम भक्त व शिष्य थे।

अत आर्यसमाज को सामूहिक रूप से नहीं तो वैयक्तिक रूप से राजनीति में भाग लेकर क्रान्ति लानी चाहिए अन्यथा भारतवर्ष फिर भी दासता की बेड़ियों मे जकड़ सकता है।

सांस्कृतिक उद्धार

वर्तमान युग मे महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ही पहले भारतीय हैं जिन्होंने भारतवर्ष मे पाश्चात्य सभ्यता व सस्कृति के बढ़ते हुए प्रवाह को रोका। लोग सब प्रकार के विज्ञान, कला-कौशल और दार्शनिक विचारों का आदि-स्रोत योरोप को मानने लगे थे, परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने बताया कि जब पश्चिम के लोग नग्न रूप में असभ्य होकर वनों में भ्रमण करते थे उससे बहुत पहले हम भारतवासी उपर्युक्त सभी विषयों उन्नति के शिखर पर थे वेदों में रेशमी वस्त्रों को धारण करने के लिये आदेश है और पाश्चात्यों की सम्मति में भी विश्व में वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। हमारी वैदिक सस्कृति व सभ्यता प्राचीन व अनुकरणीय है। अभी हमें इसका प्रचार करना है।



आर्यसमाज के साहित्यिक व्यक्तित्व—

महर्षि दयानन्द सरस्वती



(ले०—श्री प्रो० भवानीलाल भारतीय एम० ए० अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, गवर्नमेन्ट कालेज, पाली)

महर्षि दयानन्द के बहुमुखी व्यक्तित्व का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। वे एक महान्



लेखक

वेदवेत्ता, धर्म-संशोधक, समाज सुधारक, लोकनेता तथा सर्वसंग परित्यागी परिव्राजक थे। धर्म, समाज, राष्ट्र, राजनीति, भाषण, साहित्य आदि विभिन्न क्षेत्रो मे उनका योगदान महत्वपूर्ण एवं स्मरणीय रहा है। महर्षि के द्वारा रचित ग्रन्थों का जब हम अध्ययन करते हैं तो हमे विदित होता है कि वे एक महान् साहित्यक और उच्चकोटि के लेखक भी थे। उनका हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। संस्कृत मे उन्होंने भागवत खण्डन वेद-विरुद्ध मत खण्डन, शिक्षा पत्रीध्वान्त निवारण, वेद-भाष्य, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। स्वरचित संस्कृत ग्रन्थों को उन्होंने प्राकृत (हिन्दी) भाषा मे अनूदित भी किया तथा मौलिक रूप मे भी विशाल हिन्दी ग्रन्थों का निर्माण किया। उनके द्वारा रचित साहित्य का प्रकाशन सहस्रों पृष्ठों के विशालकाय ग्रन्थों में हुआ है।

महर्षि कवि के रूप में महर्षि-दयानन्द देववाणी संस्कृत के उच्चकोटि के कवि भी थे। उन्होंने ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका, वेदभाष्य, संस्कार विधि आदि ग्रन्थो के प्रारम्भ मे स्वरचित श्लोक (पद्य) दिये हैं। ग्रन्थान्त की पुष्पिकायें भी अनुष्टुप छन्दों में ग्रन्थकार द्वारा ही रची गई हैं। इन पद्यों से महर्षि का कवि रूप प्रस्फुटित होता है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के प्रारम्भ मे आठ स्वरचित पद्य दिये हैं जिनमे दो शिखरिणी और शेष ६ अनुष्टुप छन्द हैं। इसी प्रकार अन्याय ग्रन्थो मे उद्धृत महर्षि के द्वारा रचित श्लोको की संख्या बहुत अधिक है। प० वीरसेन जी वेदश्रमी ने महर्षि के संस्कृत भाषा के कवि रूप को अपने एक लेख (टकारा पत्रिका मे प्रकाशित) में विवेचित किया है।

हिन्दी साहित्य को महर्षि की देन भी कम मूल्यवान् नहीं है। अपने वेदोपदेश काल के प्रारम्भिक भाग मे महर्षि संस्कृत भाषण और संस्कृत के माध्यम से ही वार्तालाप करते थे। उनकी संस्कृत अत्यन्त सरल, प्रसादगुण युक्त और साधारण पठित व्यक्ति के भी समझ मे आ जानेवाली होती थी। महर्षि के ग्रन्थो की संस्कृत भाषा भी उपर्युक्त गुणो से युक्त है। वे मध्यकालीन संस्कृत कवियों और लेखकों की भांति अपनी भाषा को अनावश्यक शब्दाडम्बर युक्त समासयुक्त घटाटोप मयी शैली से परिपूर्ण नहीं बनाते थे। अपनी विद्वत्ता का अनावश्यक प्रदर्शन उन्होने कहीं नही किया। वे सुबोध शैली मे अपने भावो को सरलता से व्यक्त करने के लिये परिमार्जित, परिष्कृत किन्तु सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा लिखने के समर्थक थे। महर्षि के संस्कृत गद्य की तुलना महर्षि पतञ्जलि और वेदान्त भाष्यकार शंकराचार्य के गद्य से की जा सकती है। उनके गद्य की प्राञ्जलता उसकी निजी विशिष्टता है। शास्त्रीय विवेचन के प्रसंगों में उन्होने सिद्धान्त पक्ष और पूर्वपक्ष की पुरातन परिपाटी का निर्वाह किया है।

महर्षि को हिन्दी में बोलने और लिखने की प्रेरणा ब्राह्म नेता श्री केशवचन्द्र सेन से मिली। धर्म प्रचार के लिए लोक भाषा का ग्रहण सभी धर्मोपदेशकों ने किया है। महर्षि भी इसके अपवाद नहीं थे। महर्षि ने हिन्दी गद्य का एक नया रूप प्रस्तुत किया। खण्डन-मण्डन विचार-विमर्श स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष निराकरण के लिये जैसी सक्षम सशक्त, व्यंग्यपूर्ण भाषा की आवश्यकता पड़ती है महर्षि की भाषा उसी का जीता जागता रूप है। महर्षि की हिंदी सेवा का गौरवपूर्ण उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे महर्षि की हिन्दी सेवा का विशद विवेचन किया है। हिन्दी भाषा सार के लेखक द्वय (लाला भगवानदीन तथा प्रो० रामदास गौड) की सम्मति दृष्टव्य है—"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी और विद्वान् सन्यासी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी मे ही लिखे, हिन्दी की उन्नति और प्रचार आर्यसमाज का जिसके वह प्रवर्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसगठित सस्थाओ ने मिलकर अब तक उतना नहीं कर पाया है।"

हिन्दी गद्यशैली का अध्ययन करते समय स्वामी दयानन्द को एक पृथक् शैलीकार के रूप मे परिगणित किया गया है। 'हिन्दी गद्यशैली का विकास" के लेखक प्रो० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने एक पूरा अध्याय ही महर्षि की गद्यशैली को प्रदान किया है। इसी प्रकार "हिन्दी गद्य निर्माता" के लेखक प्रो० प्रेमनारायण टण्डन की सम्मति भी उल्लेखनीय है—"तत्कालीन हिन्दी गद्य की उन्नति मे स्वामी दयानन्द ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश, वेदांग प्रकाश, वेदों के भाष्य आदि ग्रन्थ तो हिन्दी मे लिखे लिखाये ही, साथ ही आर्यसमाज जैसी प्रगतिशील सस्था का सब काम हिन्दी मे ही करने का आदेश दिया। स्वामी जी हिन्दी को भारत की व्यावहारिक भाषा और देश की भावी राष्ट्रभाषा होने के योग्य समझते थे।" इसी प्रकार प०अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" शीर्षक व्याख्यानों में महर्षि की साहित्य सेवा पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

महर्षि के हिन्दी मे रचित ग्रन्थों में सत्यार्थप्रकाश सस्कार-विधि और ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका को वृहत्त्रयी की सज्ञा दी जा सकती है। उनकी लघुकृतियों का महत्व भी कम नहीं है। महर्षि ने सस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी शैली मे आवश्यकतानुसार व्यग्य,विनोद, गम्भीरता तथा विश्लेषण प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। व्यवहार भानु तथा सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास मे उन्होंने स्वरचित तथा परम्परा प्राप्त अनेक कहानियों तथा दृष्टान्तों के द्वारा अपने अभिप्राय को व्यक्त किया है। इससे उनके कथा लेखक के रूप की भी झाकी मिलती हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन शीर्षक प्रबन्ध ग्रन्थ (Thesis) के लेखक डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त ने स्वामी जी की साहित्य सेवाओ का सुन्दर विश्लेषण किया है। प्रस्तुत पक्तियों का लेखक भी "आर्यसमाज का सस्कृत भाषा और साहित्य को योगदान" शीर्षक विषय पर पी एच डी उपाधि के लिये अनुसधान कर रहा है।

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना, इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले।

★ कष्ट होने पर भी धर्म पर दृढ़ रहो, रगीले कपड़े पहनने मात्र से सन्यासी नहीं होता।

★ कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

सकलनकर्ता—श्री कृष्णदत्त आयुर्वेदालकार, फैजाबाद

महर्षि गुणगान

★

दयानन्द ऋषिराज तुम्हारे, गुण गण का हम करते गान।
देव तुम्हारे दिव्य गुणों का, हम करते हैं मन मे ध्यान ॥
कहां सत्य जिज्ञासा इतनी, कहा सत्य अनुराग।
सत्य प्रकट करने में तुमने, रक्खा शुभ आदर्श महान् ॥
ईश्वर की पूजा सिखलाई, भ्रम लीला सब दूर भगाई।
हितकर औषधि हमे पिलाई, दिया वेद का सच्चा ज्ञान ॥
अन्धकार में भटक रहे थ, वेद मार्ग को भूल रहे थे।
तुमने सच्चा मार्ग दिखाया, कर उन पर करुणा का भान ॥
कूट कूट कर दया भरी थी, उसमे तुम पाते आनन्द।
उससे प्रेरित होकर तुमने, किया दलित अनपतितोत्थान ॥
दयासिन्धु तुमने विषदाता, के भी प्राण बचाये थे।
कहा मिलेगा ढूढे से भी, ऐसी करुणा का उपमान ॥
ब्रह्मचर्य तप से ही तुमने, विजय मृत्यु पर पाई थी।
जिसे देख गुरुदत्त कुनास्तिक, आस्तिक गण के बने प्रधान ॥
लाखों की सम्पति ठुकराई, नहीं सत्य पथ छोडा।
वेद शास्त्र निष्णात शिरोमणि, नहीं कुछ तुममे अभिमान ॥
इस युग में तुमने ही पहले, था स्वराज्य का मन्त्र दिया।
जिसने देशभक्त गण मे फिर, फूंकी अदभुत नूतन जान ॥
सभी देशवासी अपनाएं, सरल आर्य भाषा को।
यह सन्देश सुना तुम पाये, ऐक्य विधायक नायक स्थान ॥
महिलाओ की विधवाओं की, दीन अनाथो की कुदशा।
उनका फिर उद्धार किये तुम कौन तुम्हारा करे न मान ?
यज्ञ रूप निज जीवन करके, तुम तो अमर हुए विबुधेश।
धर्म वेदि पर दीपावलि दिन, अमर तुम्हारा शुभ बलिदान ॥

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ)

आनन्द कुटीर, ज्वालापुर

निर्वाण का स्वर

★

घोर तम छाया हुआ था जगत में, नभ में, निलय में,
ज्योत्सना की एक रेखा भी न देती थी दिखाई।
ढोंग औ पाखण्ड ही जब धर्म के शासक बने थे,
स्वार्थ-ताजीरात जब जाने लगी सब को पढ़ाई।
विश्व का कण-कण रुदन कर चीरने छाती लगा था,
दौड कर निर्वाण ने निर्माण की गीता उठाई।
मूल शकर ज्योति वेदों की लिये उतरे धरा पर।
कौन कहता मौन जग में हो गया निर्वाण का स्वर ॥
ओ३म् की लेकर पताका विश्व को सत्पथ दिखाया,
खड कर पाखण्ड सारा, ढोंग का अस्तित्व ढाया।
भाष्य वेदो का किया तब जगत की आखें खुली हैं,
पादरी, पडित, पुजारी पीर का छक्का छुडाया।
धो दिया सारा तिमिर सत्यार्थ की नव ज्योत्सना से,
धर्म वैदिक पर मरो, कर्तव्य पर मरना सिखाया।
बनो निर्भय सत्य पथ पर अभय की आराधना पर।
कौन कहता मौन जग मे हो गया निर्वाण का स्वर ॥
शत्रुओ की चाल शतरजी नहीं अब चल सकेगी,
जब कि आर्यों की समाजें विश्व के हर कोण में।
जा रही निर्भय तरी तूफान का भय ही नहीं,
बैठे चतुर नाविक जहा रत्नेश' के हर द्रोण में।
निर्वाण ऋषि का गूंजता नभ मे अभी सुन लो सभी,
जय नाद वैदिक धर्म का होने लगा दश कोण मे।
एक जन भी अब न जायेगा अवैदिक राह पर,
कौन कहता मौन जग मे हो गया निर्वाण का स्वर।

—रतनलाल 'रत्नेश'

विरजानन्द विद्यालय, अजमेर

★ ★



युगपुरुष महर्षि दयानन्द



[श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक, नई दिल्ली]

महर्षि दयानन्द सरस्वती युग पुरुष थे। उनका लक्ष्य धर्म की कुत्सित धारा को बदल कर उसे पवित्र रूप देना और मानव समाज के सर्वतोमुखी विकास और व्यापक हित में योगदान करना था। उनका देश मे प्रादुर्भाव उस समय हुआ जबकि आर्य धर्म और आर्य संस्कृति के ह्रास की प्रक्रिया अपने उग्र रूप मे थी और धर्म के नाम पर अधर्म का बोल बाला था।

उनकी शिक्षाएं वेद ज्ञान पर आधारित थीं इसीलिए उनकी शिक्षाओं का प्रभाव हृदय और मस्तिष्क दोनों पर पड़ा जिन्होंने धार्मिक और सामाजिक विचार धारा में स्वस्थ परिवर्तन करके एक युग का सूत्रपात् कर दिया।

उनसे पूर्व धार्मिक जगत् मे भगवान् बुद्ध और महान् शंकराचार्य ने नवीन युगों का निर्माण किया था। भगवान् बुद्ध ने जन्मना ब्राह्मणों के स्वार्थ एवं अभिशाप पूर्ण प्रभुत्व घृणित कर्मकाण्ड, पशु बलि और जन्मगत जात पात पर कुठाराघात करके सदाचार और अहिंसा का प्रचार और प्रसार करके लोगों के नैतिक उत्थान मे अमित योग दिया था। परन्तु उनकी शिक्षायें एकांगी रहीं। वे लोगों को बौद्धिक प्रकाश और शान्ति प्रदान न कर सकीं।

कालान्तर मे उनके अनुयायी गुरुडम और भोगवाद में ग्रसित होकर सांसारिक सुख एवं विलासिता में लिप्त हो गए और जाति मे व्याप्त लम्पटता और क्लीवता भगवान् शंकर के प्रादुर्भाव का कारण बन गई।

शंकर की शिक्षाओं ने बौद्धिक प्रकाश तो प्रदान किया परन्तु वे उष्णता प्रदान न कर सकीं। उनकी भावना भोगवाद मे लिप्त हुए लोगों को उससे परागमुख करने की दिशा मे इस सीमा तक गई कि उन्होंने जगत् को मिथ्या मानना और कहना आरम्भ कर दिया। उनकी शिक्षायें तर्क और यथार्थता की कसौटी पर खरी उतरीं।

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का लक्ष्य भौतिक और आध्यात्मिक, व्यष्टि और समष्टि, धर्म और विज्ञान, आदर्श और यथार्थ प्राचीन और नवीन मे समन्वय उत्पन्न करके मस्तिष्क और शरीर दोनों को सुख की सन्तुष्टि का राज-मार्ग बना देना था। वे इसमे सफल हुए। सांसारिकता से शून्य धर्म और धर्म से शून्य सांसारिकता ये दोनों ही अभिशाप होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारा आज का अशान्त समाज है। पिछले ५० वर्ष मे संसार को सुख-धाम बनाने के जो प्रयत्न हुये उनका लक्ष्य सांसारिकता पर केन्द्रित रहा। इसका फल यह हुआ कि संसार सुखधाम बनने के स्थान मे दुःखधाम बन गया। धर्म का अर्थ है दिन प्रतिदिन का सदाचारमय जीवन। महर्षि दयानन्द ने इसी प्रकार के वेद धर्म पर बल दिया है जो मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक दोनों स्तरों पर ऊँचा उठाए और समाज मे सुख शान्ति का साम्राज्य रहे।

समाज का ठीक निर्माण एकमात्र आर्थिक तत्वों से सम्भव नहीं है और न संसार से विमुख करने वाली आध्यात्मिकता से ही सम्भव हो सकेगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी अमर कृति सत्यार्थप्रकाश मे जिस सामाजिक ढाचे की रूप रेखा दी और उसकी व्याख्या प्रस्तुत की है उसी को मूर्तरूप देने से संसार का हित सम्पादित हो सकता और शान्ति बनी रह सकती है क्योंकि उस मे लौकिक और पारलौकिक कल्याण समन्वित है।

उनकी समाज-व्यवस्था मे सर्वप्रथम स्थान आस्तिकता और एकेश्वरवाद को प्राप्त है जो एकमात्र हमारा परमादर्श होने योग्य है। अपने को अच्छा बनाना और परमात्मा के बच्चों का हित करना उनकी आस्तिकता का परमतत्व है।

समाज को शरीर और आत्मा मे स्वस्थ, बलिष्ठ, सुशिक्षित एवं सुयोग्य सन्तान प्रदान करना इस समाज व्यवस्था का दूसरा और तीसरा अंग है जिसका आधार ब्रह्मचर्य एवं संयम है।

शरीर की बलिष्ठता, शिक्षा, आयु और प्रवृत्ति में समानता और उत्कृष्टता के आधार पर नव-युवकों और नव-युवतियों को गृहस्थाश्रम मे प्रवेश पाने की अनुमति दी

गई है, साथ ही एकपत्नी व्रत और एकपति व्रत गार्हस्थ्य सुख का प्रमुखतम तत्व बताया गया है। इसका लक्ष्य समाज को सुयोग्य सन्तान देना और अर्थ एवं काम की स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति करने मे समर्थ बनाना है। इसी मे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं योग्यता के अनुसार धन्धे का चुनाव करके जीविकोपार्जन की व्यवस्था की गई है। यही वर्ण व्यवस्था है जो प्रकृति का विस्तार है। गृहस्थ में रहने की २५ वर्ष की अवधि नियत की गई है। मनुष्य की औसत आयु १०० वर्ष की मानकर उसमे से केवल १/४ को भोग के अर्पण करने और शेष ३/४ को त्याग, तप और आत्म चिन्तन के अर्पण करने का विधान किया गया है जिससे समाज मे बेकारी न फैले और भोग वाद के कीटाणुओं का प्राबल्य न हो। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तावित समाज व्यवस्था मे राजनीति व राज-धर्म का बहुत महत्व है परन्तु वह धर्म और न्याय दण्ड पर आश्रित होनी चाहिये, जिससे समाज मे धार्मिक तत्वों को बढ़ावा मिले और दुष्ट तत्वों का दमन होता रहे। महर्षि दयानन्द द्वारा समर्थित राजनीति मे एकतन्त्र राज्य को आश्रय नहीं मिल सकता। उसमे प्रजातन्त्र राज्य का समर्थन किया गया है। निर्वाचित राजा की उच्चतम कोटि के व्यक्ति के रूप मे कल्पना की गई है। यह है भी ठीक। प्रजातन्त्र शासन शासकों और प्रजा दोनों के चरित्रवान होने से ही ठीक गति से चलते है अन्यथा वे लडखड़ा जाते हैं। इस राजनीति मे चक्रवर्ती राज्य को ही विश्व के कल्याण का साधक माना गया है। खण्ड राज्यों से अशान्ति व्याप्त रहती है।

स्वामी जी महाराज द्वारा प्रस्तुत समाज-व्यवस्था मे मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान-पान और सेवन को एकदम हेय एवं त्याज्य बताया गया है। इसके साथ ही श्रेष्ठ आजीविका जो श्रेष्ठ उपायों से अर्जित हो, प्रशस्त मानी गई है।

श्री स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित समाज व्यवस्था मे भोगों की निन्दा नहीं की गई है। भोगों को भोगने की स्वतन्त्रता है परन्तु उनमे आसक्ति न होनी चाहिये और वे व्यक्ति तथा समाज के पतन का कारण न बनने चाहिये। इस समाज व्यवस्था का लक्ष्य है और वह यह कि ईश्वर का साक्षात्कार करने में मनुष्य समर्थ बने। इसके लिये उसे संसार मे से गुजरना अनिवार्य है अतः संसार मे से इस प्रकार गुजरे जिससे कि उसकी यात्रा सुखद रहे और वह ईश्वर के साक्षात्कार के मार्ग से भटक न जाय।

इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज ने धार्मिक जगत् मे ही नहीं अपितु सामाजिक जगत् मे भी एक नई सुखद क्रान्ति की। उन्होने जाति को अविद्यान्धकार से निकाल कर मत-मतान्तरों के पतनकारी एवं मानवता को विलग एवं लांछित करने वाले प्रभाव से मुक्त करके सच्चे धर्म को प्रतिष्ठित करने तथा सामाजिक खराबियों को दूर कर के स्वस्थ समाज को निर्मित करने का प्रशस्त कार्य किया। धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त उन्नत और सामाजिक दृष्टि से सुखी चरित्रवान् और पवित्र समाज से ही राजनैतिक योगक्षेम सम्भव हो सकता है। इस रीति से उन्होंने राज-नीति का भी मार्ग-प्रशस्त किया।

●



युग-धर्म की मांग



(ले०—श्री मोहनलाल जी मोहित लावेनीर, सेंट पियेर मोरीशस)

वर्तमान युग में भौतिक विज्ञान की प्रधानता है। मानव समाज प्राय भौतिक अर्थात् क्षणिक सुख की मृग-



लेखक

तृष्णा मे लवलीन है। मानव समाज की आध्यात्मिक पिपासा की ठीक तृप्ति तो वैदिक धर्म से ही हो सकती है। क्योंकि भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान का तर्क सगत समन्वय भी वैदिक धर्म ही करता है। वेद-विहीन अर्थ लोलुप राजनैतिक नेताओं ने मानव समाज के जीवन-स्तर के माप दण्ड मे विषमता पैदा कर दी है। एक देश दूसरे देशों को और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को घृणित एव द्वेष दृष्टि से देख रहे हैं, परस्पर भीत भाव और घृणा-घमण्ड की मात्रा बढ़ रही है। एक दूसरे का शोषण कर उन पर निरकुश शासन जैसा राक्षसी व्यवहार करने वाले को निपुण राजनीतिज्ञ की उपाधि दी जाती है। ऐसे अध-कच्चे शासकों और नेताओं की धांधली बाजी मे पडकर जनता घोर सकट झेलती है। प्राय जनता में सद् विवेक का अभाव सा रहता है। अत मानव जीवन के महत्व को ठीक ठीक मूल्याकन नहीं कर पाती है। कूटनीतिज्ञो के प्रलोभन मे फसकर मूर्खतावश अविवेकी जनता मानवता को कलकित कर अपना भविष्य दु खद बना लेती है। इस लिए युग धर्म का आदेश है कि मनुष्य को वास्तविक मानव बनाने की दीक्षा दी जाय और इस दीक्षा-सस्कार का समयोचित सही सम्पादन आर्यसमाज ही कर सकता है।

आचार्य महर्षि दयानन्द जी ने देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर मे वेद प्रचार प्रसार और समाज सुधार का उत्तरदायित्व आर्यसमाज पर ही छोडा था। इसलिए बडी सतर्कता से कमर कसकर समरागण में आर्यसमाज को आगे बढ़ना है। गत पिछले कुछ वर्षों के कामों पर सिंहाव-लोकन कर अपनी कमी को अनुभव करें। फिर कमी पूर्ति और भावी प्रगति के लिये कार्यक्रम को सम्पन्न करने के सबल साधन तथा सुगम विधि पर गम्भीरता से सोचें। आर्यसमाज की गति-विधि से पता लगता है कि भूमण्डल के लगभग दो तिहाई भाग मे यत्र-तत्र आर्यसमाज का बीज पहुच चुका है पर ध्यान रहे बीज पहुच जाने मात्र से कृषि-कार्य सफल नहीं होता। क्योंकि बीज को सफल बनाने के लिए भूमि की जुताई, बुआई और सिंचाई के साथ ही सम्यक् पूर्ण-प्रयत्न की आवश्यकता है। तब कृषि कार्य सफलीभूत होता है। उसी प्रकार आर्यसमाज के सामने देश विदेशों मे जो धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विशाल कार्यक्षेत्र खाली पड़े हैं, उनको वैदिक सस्कार से सुसस्कृत बनाने के लिए तपस्वी आर्य विद्वान् की आवश्य-कता है। धर्म-सकट में फसी हुई मानवता की रक्षा के लिए, ऋषि ऋण की पूर्ति के लिए और महर्षि दयानन्द के आदेश को क्रियात्मक रूप देने मे आर्यसमाज सर्वात्मना आगे बढ़े। यही युग धर्म की मांग है। गुरुकुल के सुयोग्य

स्नातकों ने जिस सकट काल मे मानवता की रक्षा के लिए दयानन्द की वेदी से दीक्षा ली है, वह सुसमय सामने खडा है। और सबल शब्दों मे चुनौती देता है कि वेद प्रचार और समाज-सेवा के क्षेत्र मे आगे आकर अपनी विद्वत्ता तथा कार्य कुशलता से आर्यसमाज को पुरस्कृत करें। महर्षि दयानन्द के सच्चे भक्त, त्यागी और तपस्वी तथा कार्यकुशल मनस्वीगण ही कथित समस्या को सुलझा सकते हैं। विदेशों मे तो आर्योपदेशक की नितान्त आवश्यकता ही है। परन्तु भारत मे भी सुयोग्य समाज-सेवक उपदेशकों की कमी है। मानव समाज को सजग और प्रगतिशील बनाने के दो उपयोगी और सबल साधन हैं, प्रथम सुयो य उपदेशको की तैयारी तथा नियुक्ति और दूसरा भाषा-न्तर मे सुन्दर साहित्य का प्रकाशन।

दोनो काम देश काल के दृष्टिकोण से करने मे ही सफलता है। इन दोनो कामो को सफल और चिरस्थाई बनाने के लिए एक सुदृढ शक्तिशाली 'सस्थान' श्री साव देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के तत्वावधान मे होना परमावश्यक है। साथ ही परोपकारिणी सभा अजमेर और देश विदेश की आर्य प्रतिनिधि सभायें तथा प्रमुख आर्य-समाजें भी सस्थान को सफल बनाने में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को सर्वात्मना योगदान दें, तभी कार्य सफल हो सकता है। मेरे विचार मे सस्थान के लिए प्रारम्भ मे २० लाख की सुरक्षित निधि का प्रबन्ध करना चाहिए। २० लाख की निधि के वार्षिक ब्याज से सस्थान का काम साधारण रूप से चल सकता है। सस्थान का प्रमुख कार्य होगा एक 'सार्वदेशिक उपदेशक विश्वविद्यालय का सचालन जिसमे देश विदेश के लिए विभिन्न भाषाओं मे समाज सेवार्थ लगनशील कार्यनिष्ठ आर्य विद्वानो को उपदेशक कला का प्रशिक्षण देने का पूरा प्रबन्ध हो, दूसरे काम मे प्रकाशन विभाग है। प्रकाशन कार्य बडा उत्तरदायित्वपूर्ण है। प्रकाशन विभाग मे वैदिक साहित्य और आधुनिक उपयोगी साहित्य को विभिन्न भाषाओं मे ठोस तथा सुन्दर साहित्य का निर्माण करना आवश्यक है।

२० लाख की निधि पूर्ति का सुगम-साधन

तीन प्रकार की सदस्य-श्रेणी रखी जाय, जैसे १०० रू० देने वाले सज्जन को साधारण सदस्यों मे और ५०० रुपया देने वाले को आजीवन सदस्यो मे। कम से कम एक हजार देने वाले से दाता सदस्य शुरू हो। दाताओ को धन राशि असीमित रहे। और 'ट्रस्टी' की विधि से भी धन लेने का सामयिक विधान सस्थान के लिए श्री सार्व-देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली बना सकती है।

प्रयत्न करने पर सैकडो साधारण सदस्य विदेशो मे मिल सकते हैं। आजीवन सदस्य और दाता सज्जन भी मिल सकते है। लगनशील सन्यासी, वानप्रस्थी और कर्म निष्ठ आर्य नेताओं के आठ दस शिष्ट मण्डल सद्भाव से विधि पूर्ति की धुन मे लग पडें तो भारत के विभिन्न प्रान्तो से हो ६ मासो मे पर्याप्त धन मिल सकते हैं।

आर्य जगत् के मनस्वी और तपस्वी कर्णधारो से तथा आर्यसमाज के प्राणस्वरूप पूज्य सन्यासी महानुभावो से २०२१वि०सवत्सर के ऋषि निर्वाण दिवस पर उपर्युक्त सस्थान की पूर्ति का व्रत लेने के लिये युग धर्म की माग है। उप-र्युक्त सस्थान के विषय मे मैने बिलकुल साधारण विचार व्यक्त किया है। आर्यसमाज के विद्वानो से सस्थान की आवश्यकता उपयोगिता और एक ठोस कार्यक्रम पर अपना बहुमूल्य विचार 'आर्यमित्र' व 'सार्वदेशिक' पत्र मे लिखने के लिये नम्र निवेदन है।



ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ सब जीव स्वभाव से सुख प्राप्ति की इच्छा और दुख का वियोग होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोडते तब तक उनको सुख का मिलना और दुख का छूटना न होगा क्योंकि जिसका कारण अर्थात् पूरा होना है वह नष्ट कभी नहीं होता।

★ परमेश्वर के काम बिना भूल-चूक के होने से सदा एक से हुआ करते है।



युग-पुरुष स्वामी दयानन्द



[ले०—श्री रामवतार आर्य, आर्यसमाज गाजीपुर]

जिसने देश और समाज के अन्दर व्याप्त नैराश्य, दैन्य-दारिद्रय और वामाचार सभी तमिस्रा को अपने पाण्डित्य दूरदर्शिता विवेक और कार्य कुशलता के प्रखर प्रकाश से भेदन कर सुन्दर और कल्याणकर पथ निर्देश किया। जिसने सोते को जगाया, गिरते को उठाया, लुटते को बचाया और अधमरे को जीवन प्रदान किया। और मनुष्यो के अन्दर नव उमग, नव चेतना एव नव उल्लास जागृत करके उनकी प्रवृत्तियो को रचनात्मक कार्यों की ओर प्रेरित किया। उस समाज सुधारक, देशभक्त, वैदिक धर्म के प्रचारक, महान् दार्शनिक, वेदोद्धारक, युगपुरुष, जगद्गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए पजाब केशरी लाला लाजपत राय ने लिखा—

"स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने ससार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद मे मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूवक विचार करना, बोलना और कर्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक सस्था मे बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ पढ़ाया।"

स्वाध्याय का उपदेश

स्वामी जी स्वाध्याय पर विशेष बल देते थे। कदाचित वे मनुष्यों की इस कमजोरी से भलीभांति परिचित थे कि अधिकांश मनुष्य अपने विचारों मे उलझे रहते हैं। भ्रम मे पड़े रहते हैं। उनका अपना कोई ठोस मत या विचार नहीं होता। जिनका कोई ठोस विचार नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, स्पष्ट मत नहीं, उनके कार्यों तथा आचरण मे एकरूपता कैसे आ पायेगी ? कैसे वे कोई ठोस कार्य कर पायेंगे ? जो स्वय अपना भला नहीं कर सकता उनसे कैसे समाज और राष्ट्रकल्याण की आशा की जा सकती है। अतः स्वामी कहा करते थे कि समाज राष्ट्र और विश्वकल्याण के लिये विद्वान् और सदाचारी पुरुषों की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि विद्या-बल के कारण उनका दृष्टिकोण व्यापक होता है।

वे सबकी भलाई और सबके कल्याण की बात सोचते हैं। "विश्व बन्धुत्व और विश्वकुटुम्बकम्" की भावना से भावित होकर उनके कर्ण कुहरों मे एक ही नाद, एक ही स्वर गूजता है—"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।" सकुचित दृष्टिकोण के कारण मनुष्य की मनोवृत्ति गदी हो जाती है और वह स्वार्थ भावना से बुरी तरह आक्रान्त होकर अपराध करना आरम्भ कर देता है। अत व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने के लिये स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिये "स्वाध्यायान्माप्रमद" (स्वाध्याय में प्रमाद मत करो) का उपदेश दिया गया है। स्वामी जी हर व्यक्ति के आचरण मे इस उपदेश को अकित देखना चाहते थे। युगपुरुष की यही हार्दिक इच्छा थी।

स्वामी जी कहा करते थे कि "आर्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, दो हों तो परस्पर प्रश्नोत्तर व सवाद करें, तीन हों तो सत्सग एव धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें।" ऋषि की अभिलाषा थी कि प्रत्येक आर्यसमाजी स्वाध्याय, सत्सग, सवाद और प्रश्नोत्तर के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को इतना निखार लें कि कहीं भी वाद-विवाद और शास्त्रार्थ के अवसर पर अपना सत्यमत दृढ़तापूर्वक व्यक्त कर सके। और अपनी तर्कणा शक्ति से उसका औचित्य सिद्ध करके वेद-धर्म प्रतिष्ठापित कर सके।

भविष्यवाणी सच निकली

वास्तव में महापुरुष वह है जो हर एक परिस्थितियों में हमारी समस्याओं का बचाव दे। परिस्थितियों और समस्याओं का अध्ययन करे। उसे ठीक ठाक समझे और उसका उचित समाधान प्रस्तुत करे। तथा अपने अध्ययन और दूरदर्शिता के आधार पर भविष्यवाणी भी कर दे।

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

बलि और बलिदान क्या है?



[श्री छेदालाल जी वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली]

आधुनिक पौराणिक मतानुसार बलि व बलिदान शब्द को (शाक्तिक मनुष्य देवी के उपासकों ने) पशु हिंसा परक लगाकर भैसें बकरे आदि पशुओं को "देवी दुर्गा, भवानी काली चामुण्डा, वाराही शीतला आदि की भेंट के नाम से और (पशुओं की हिंसा पूजा के नाम से)" कराते हैं। वैदिक समय में बलि शब्द पशु हिंसा परक नहीं था क्योंकि शास्त्रों से ऐसा विधान नहीं पाया जाता। इसी बलि शब्द को मीमांसा शास्त्र के सूत्र 'यज्ञाय पशुमालमेतु' यज्ञ मे पशु को मारो ऐसा शाक्तिक पौराणिक लीला ही का परिणाम है।

एतरेय ब्राह्मण के ३५/२९ का भाष्य करते हुए सायणाचार्य्य जी ने लिखा है "बलि कृतम्" (अर्थात् बलि पूजां करोति कर प्रयच्छनि यूत्यर्थ) यहां राजा की पूजा करना अर्थात् (कर) देना अर्थ, बलि शब्द से स्पष्ट है। गोतम धर्म सूत्र २।१।२४ मे "राज्ञो बलिदान कर्षकर्दशम-ष्टषष्टवा" यहां पर किसानो की ओर से जो दसवां, आठवां, छटा शुल्क राजा को दिया जावे उसको बलिदान शब्द से व्यवहृत किया है।

सू० प्रजास्त्विमा बलिहरन्ति प्राणे प्रतितिष्टसि

प्र० नि० २।७

अर्थ-ससार, (त्वम् तुमी, (इमा) यह, (बलिम) प्रासे (हरन्ति) लाते है, (य) जो (प्राणे) पाक प्राणो से शरीर में, (प्रतितिष्टसि) होकर रहते हैं। इस स्थल पर भी बलि शब्द हिंसार्थ में नहीं है। किन्तु भोज्य आहार वा ग्राह्य रस के अर्थ मे है। भारद्वाज गृह सूत्र ३।१५ यदभूतेभ्यो बलि हरति सभूत यज्ञ." यहां पर पके हुए अन्न के भाग का नाम बलि है। यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित है कि इस उक्त भारद्वाज सूत्र में बलि शब्द चतुर्थ्यन्त भूत के साथ सम्बन्ध दर्शाया है। वेदों में कहीं "भूत बलि" शब्द देखकर "भूतानां बलि" अर्थात् भूतों की बलि, ऐसा नवीन अर्थ कोई न करे। क्योंकि यहां भूत शब्द मे चतुर्थी विभक्ति है 'यद्यार्थ बलिहित सुख रक्षितै" अष्टाध्यायी ५।१ से अर्थ हुआ है। इसी सूत्र के भाष्य पर देखिये, महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि को भी (बलि) शब्द का अर्थ शुल्कादि भाग ही इष्ट है।

"योहि महाराजाय बलि समहा राजार्थो भवति"

अ० २।१।२६

मनु महाराज ने भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थियों के नित्य कर्तव्य में पच महायज्ञ बतलाये हैं, उनमे बलि भूत यज्ञ भी सम्मिलित है, वहा पर बलि भूत यज्ञ को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

श्लोक--अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृ यज्ञाश्च तर्पण।
अग्निर्देवो बलिर्भूतो नृयज्ञोतिथि पूजनम्॥

अर्थात् वेदों का स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ, जीवित माता-पिता गुरु आदि पितर जनों को तृप्त कर देना पितृ तर्पण है। अग्नि मे होम करना देवयज्ञ है, भूत प्राणी को उनका (बलि) भाग देना भूतयज्ञ है। एव महात्मा जनों का सत्कार करना आतिथ्य यज्ञ हैं यही पाच यज्ञ हुये।

श्लोक-शुनाच पतितानाच श्वपचा पाप रोगिणाम्।
वायसना कृमीणाच शनकैर्निवपेद् भुवि॥ मनु०

अर्थ-जब रसोई पाकशाला मे तैयार हो जावे तब छ बलि अर्थात् (भाग) भोजन मे से, कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पाप रोगी, काक और चीटियो के निमित्त शनकै सहज मे अर्थात् धीरे से भूमि मे रख देवें और भोजन कर लेने के पश्चात् या पूर्व ही जो जो मिल सके उन उनको दे देवे। यदि बलि का अर्थ मारने का होता तो कुत्ता, कौवा, चींटी आदि को मनुष्य नित्य कर्म समझकर इनका वध किया करते। पशुबलि शब्द से, पशुओं की अन्न जलादि से रक्षा करना तात्पर्य था, परन्तु मांसाहारियों ने बलि पशु शब्द को पशु वध में परिणत करके पशु हत्या की विधि दर्शाई है।

पौराणिक अमर कोष में भी बलि शब्द हत्यापरक नहीं है।

श्लोक—"भागधेयः करो बलिः। अमर द्वितीय कां०



क्ष० श्लोक २७ और
"पाठो होमश्चातिथीना सपर्या तर्पण बलि
—अमरकोष द्वितीय का० ब्रह्मव० श्लोक १४

इन दोनों स्थलों (क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्गों मे कहीं भी पशुवध का 'बलि" शब्द मे लेशमात्र भी अर्थ नहीं है क्षत्रिय वर्ग की टीका मे भी स्पष्ट लिखा है कि "भागधेय, कर बलि त्रीणि कर्ष कादिभ्योराज ग्राह्य भागस्य"।

और ब्रह्म वर्ग मे बलि "बलि हरण स भूत यज्ञ" मनु के उपरोक्त श्लोकानुसार बलि भूत यज्ञ को ही सिद्ध किया है कि जिसमें भूत प्राणियो की रक्षा करना ही कर्तव्य बतलाया है।

जबकि वेदो मे स्पष्ट लिखा है कि "यजमानस्य पशून पाहि० । "अविम् मांहिसी ०" गामांहिसी ० ।"

'एक सफ मांहिसी ०" इत्यादि इत्यादि अर्थात् यजमान के पशुओं की रक्षा करो, भेड बकरी मत मारो, एक सफ अर्थात् बिना फटे खुर वाले पशुओं को मत मारो इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आर्य ही क्या, हिन्दु मात्र 'अहिंसा परमो धर्म" को जानते हैं और सर्वत्र सुनते भी हैं।

जान बूझकर जो "बलि" के अर्थ अनर्थ रूप से पशुवध परक लगाते हैं, उनसे अधिक अनर्थकारी कौन होगा ? यज्ञ अथवा पूजा के प्रकरण मे पशु वध बतलाना बड़ा भारी अनर्थ है। क्योंकि "यज्ञ देवपूजा सगतिकरण दानेषु" अर्थात यज्ञ शब्द का अर्थ विद्वानो का सत्कार विद्वानो से मेल मिलापादि परस्पर व्यवहारिक क्रिया, तथा दान देने का नाम है।

"पशव इज्यन्ते दीयन्ते यस्मिन स पशुयज्ञ ।" अर्थात् जिस कार्य मे विद्वानों के पालनार्थ पशु दिये जाते हैं उसे पशु यज्ञ कहते हैं। यज्ञ के पर्यायवाची शब्दो मे कहीं भी पशु वध की आज्ञा नहीं है। यथा अमर का० २ अर्थ ब्रह्म. वर्ग १३ श्लो०—यज्ञ सत्रोऽध्वरो याग सप्त तन्तुर्मख क्रतु
यज्ञ सत्र अध्वर याग सप्ततन्तु क्रतु.

इसमे यज्ञ का अध्वर नाम ही स्पष्ट बतला रहा है कि 'न ध्वरतीति स अध्वर" अर्थात जिसमे किसी प्रकार की भी पशु वधादि हत्या न हो उसको अध्वर अर्थात् यज्ञ कहते हैं। वैदिक निघटु मे 'बलि ग्रासे बलिदाने" लिखा है इसी सिद्धान्तानुसार "बलि पूजो पहारयो !' अर्थात् बलि का अर्थ सत्कार करना भोजनादि उपहार देना है, बलि का अर्थ वध नहीं। मध्य युग मे बलि अर्थ मे पशु हिंसा का जो वाम मार्गीय प्रवेश भारती कर्मकाण्ड मे होने लगा था महर्षि दयानन्द को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने शास्त्रीय आधार पर पशुबलि का निषेध किया। उनके महान कार्य से वैदिक कर्म काण्ड की पवित्रता बनी रह सकी और हम गर्व के साथ पशुबलि का धार्मिक कर्मकाण्ड के लिये निषेध कर सकते हैं।

●

(पृष्ठ ५४ का शेष)

महर्षि दयानन्द मे यह सभी गुण विद्यमान थे। ऋषि की भविष्यवाणी—"इस परमात्मा की सृष्टि मे अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगो का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।" सच निकली।

स्वदेश प्रेम

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" (स० प्रकाश अष्टम् समुल्लास)।

"हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, और अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर किया करें।"

किसे अपनी मातृभूमि से प्यार नहीं होता किन्तु सच्चा प्यार तो वह है जो उसकी उन्नति, उत्कर्ष और विकास के लिये तन, मन धन से सदा तत्पर रहें। जो कुछ हमारे पास है, वह देश का है और उसे देश पर न्यौछावर करना हमारा परम पुनीत कर्तव्य है। स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के उत्थान के लिये रहा। ऋषि ने अपने गुरु के समक्ष जो प्रतिज्ञा की थी उसे पूर्ण करके अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया। अपने कार्यों से यह दिखा दिया कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी के अन्दर कितनी शक्ति होती है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि उस जगद्गुरु के उपदेशों तथा कार्यों से हमारा जीवन अनुप्राणित हो।





महर्षि दयानन्दस्य शास्त्रार्थाह्वानम्



[रच०-शास्त्रार्थ महारथी श्री प० सत्यमित्र शास्त्री वेदतीर्थ, बडहलगज गोरखपुर]

मनुज निर्मित भागवतादिका,
बहु पुराण कथा जगती तले।
प्रथमस्ति निदान मद कथम्
कलयतान्निगमागम विस्तृतिम् ॥१॥

न लिखिता किल वेद चतुष्टये,
मृतक देह निमित्त परा क्रिया॥
हृदयतोऽपि कथ परिदर्शयेज्जगति।
सन्निगमोदित कल्पनाम् ॥२॥

निगदिता सलिलेषु वृथा कृता।
क्वननु तीर्थमतिर्मनुजैरल।
तदिय मार्य्य निवास विनाशिनी॥
विलय मेष्यति चेद् भविता शिवम् ॥३॥

दृषदुपासनया जडता गतम्।
जगदिद कथमेष्यति चेतनाम्॥
यदि न यास्यति नाशमिय प्रथा।
सदुपदेश गुणैर्जगती तलात् ॥४॥

कथमिय जगतीतल वर्तिनी।
विलय मेष्यति भिन्न रुचिनृ णाम्॥
विमल वेद पथात् समलगताधम।
पुराण पथ परिपन्थिनम् ॥५॥

अहह मन्यति मार्ग मुपागता।
कविजन श्रुतिरत्र सहायिनी॥
दिवस मति निशातट सन्तति।
न रविदर्शन मिच्छति कर्हिचित् ॥६॥

विमल वैदिक धर्म मणिप्रभा।
न विषयैर्मलिने हृदि राजते॥
विमल दर्पण एव विराजते।
मुख शशि द्युति सत्तम वर्मणाम् ॥७॥

रुधिर पान परायण चेतसा।
जगति शाक्त मत प्रतिपादितम्॥
प्रकटमेव यदस्ति महीतले
श्रितमनेक जनैनरकोन्मुखैं ॥८॥

व्यरचि केन विदुत्पथगायिना।
तदपि वैष्णव मार्ग विडम्बनम्॥
भवति यत्र यशोरिव दुर्दशा।
जनमि तस्य जनस्य नु तापिन ॥९॥

तदितरेण जनेतर वृत्तिना।
गतमतद्वयभिन्न मद क्रमम्॥
जगति शैवमत शिशुवह्निना।
भवति यत्र सुखेन वनस्थिति ॥१०॥

गणपतिं परिकल्प्य तदाश्रितम्।
व्यधृत किन्न मन पुरुषाधमैं॥
प्रकृति भिन्नतया किल वास्तवे।
भवति यत्र मुखस्य विपर्य्यय ॥११॥

मनुजतामपहाय कुबुद्धिभि।
जनवरेषु गुणान्वित नामसु।
त्रिमुखता चतुराननता तथा।
भुज चतुष्टयता ध्वरोपिता ॥१२॥

क्व जडमूर्तिमनार्य्यं फलप्रदा।
गुणमयी क्व परेश गुणस्मृति॥
परम होगत बुद्धिभिरादृता।
जगति सैव विचित्र मिद कृतम् ॥१३॥

सकल शक्तिमत करुणाकरा।
दत्तरभाव गनात् परमेश्वरात्॥
जगति मे विमुखा प्रकृति जडाद
नुतमन्नि कथ नहि ते जडा ॥१४॥

उपकृति जगतामत्रनोवययो।
रवि शशि द्युति मत्र चकारताम्॥
निखिल विश्व गतस्य मुर्वतिका।
द्वितय विद्यति रादरणे कृता ॥१५॥

नित्य मेत्य च धर्मधुरन्धरो।
दिशि-दिशि प्रथित धवल यश॥
मनुकुलै रमल कमल
यथा ह्यविधरैर्भ्रमरै परिगीयते ॥१६॥

वंशस्य वृत्तम्

दयाकरानन्द विशेषवर्धनात्।
जगती तले यो नितरामुदार धी॥
ततान नामानुगुणा निजाभिधाम।
गुरु दयानन्द इति प्रकल्पिताम् ॥१॥

कर्तव्यमेव जगता मुपकार कृत्यम्।
विद्वद् वरैरिति विचारयतोस्य चित्ते॥
या भूतया सकल मेव विचार बुद्ध्या।
दिग्मडल समाभि वेष्टित मादरेण ॥२॥

जयतु-जयतु लोके वेद सूर्य्य प्रकाश।
भवतु-भवतु पश्चादार्य्य धर्म प्रभाव॥
नयतु नयतु दूर न्यायकारी दयालु।
नंक्ष्यत रोग नून मार्य्याधि वासात् ॥३॥

प्रो. मैक्समूलर के वेद सम्बन्धी विचार



(ले०—श्री डा० कृष्णवल्लभ पालीवाल, एम०एस०सी०, पी०एच०डी०)

अधिकांश भारतीय प्रो० फ्रेडरिक मैक्समूलर को भारत का हितैषी और शुभचिन्तक समझते हैं क्योंकि उन्होने भारतीय धर्म शास्त्रो और विशेषकर वेदो पर बहुत लिखा। उनके वेदाध्ययन का मूल उद्देश्य क्या था? वेदों में उन्होंने क्या पाया। उनका वेदों के प्रति क्या दृष्टिकोण था और विश्व के धर्म ग्रन्थों मे वेदों का इनकी दृष्टि से क्या स्थान है यही इस छोटे से लेख का अभिप्राय है।

आपकी शिक्षा जन्म से जर्मन होने के कारण पहले लीपिग और फिर बर्लिन विश्वविद्यालय के सस्कृत विभाग के अध्यक्ष सस्कृतज्ञ प्रो. हरमैन ब्रोखोस के निरीक्षण में हुई। यहां के भाषा विशेषज्ञ फ्राज बोप और दार्शनिक शीलिंग के विचारों का मैक्समूलर पर प्रभाव पडा। तत्पश्चात् आप ऋग्वेद विशेषज्ञ फ्रासीसी प्रोफेसर ओगीन बरनोफ के सस्कृत विभाग मे पैरिस वेदाध्ययन के लिए (१८४६ ४७) आये। शिक्षा समाप्त कर एच एच विलसन और बारोन बुनसन के आग्रह पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वेदानुसन्धान के कार्य में लग गये और आजीवन (१८४७ से १९०० तक) इसी विद्यालय के विश्व को अपने वेद, भाषा तुलनात्मक धर्म और भाषाओं के विकास सबधी विचार देते रहे। इन पचास वर्षों में आपने "पूर्व की पवित्र पुस्तकें सीरीज" के अन्तर्गत २५ धर्म ग्रन्थों का ५० भागों मे अग्रेजी अनुवाद किया। ये पुस्तकें वेद, उपनिषद्, गीता, वेदात सूत्र से लेकर जैन, बौद्ध, इस्लाम, फारसी एव चीन के धर्मग्रन्थों आदि के विषय मे हैं। स्वय मैक्समूलर ने वैदिक ऋचायें, उपनिषद्, धम्मपद, गृह्य सूत्र और बौद्ध महायन का अग्रेजी अनुवाद किया। भारतीय षट् दर्शनों पर ८९९ मे "Six Systems of Indian Philosophy" एक ग्रन्थ लिखा आप के वेद सम्बन्धी भाषण The Vedas, India, what it can teach us ? पुस्तको के रूप में मिलते हैं।

प्रो० मैक्समूलर के वेदभाष्य का आधार सायण भाष्य है जिसे इन्होने पहले ६ भागों में (१८४९ १८७३) छपवाया और दूसरा सस्करण ४ भागों में (१८९०-९२) केवल सहिताए क्रमश १८७३ और १८७७ में छपवाई।

लेख के प्रारम्भ मे उठाये गये प्रश्नों का सबसे प्रामाणिक उत्तर उनके वे शब्द होंगे जिन्हे उन्होने कभी कभी पत्रों आदि के रूप में व्यक्त किया है। इसी में उनके अन्तर मे छिपी भावना व्यक्त हो जावेगी, तो पढ़िये उन्हीं के शब्दों में—

प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई० बी० पुसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र 'तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा और ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और उस प्रारम्भि असत्य धर्म को इस सत्य धर्म जिसका हम पालन करते हैं तुलना करने योग्य करेगा।"

१८८६ में प्रो० मैक्समूलर ने अपनी पत्नी को एक पत्र इस प्रकार लिख "मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण करूं गा और मुझे पूर्ण विश्वास है हालाकि मैं उसे देखने को जीवित न रहूगा तदपि मेरा यह सस्करण और वेद का भाष्य आद्यन्त बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि उनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है इस धर्म को नष्ट करने का एकमात्र उपाय है जो गत तीन हजार वर्षो से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है।"

१६ दिसम्बर, १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मत्री आरगायल के ड्यूक को निम्न पत्र लिखा "भारत का प्राचीन धर्म पतन हो गया है यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचलित होता है तो इसमें किसका दोष है।"

२९ जनवरी १८२२ को श्री बाइरेन्जी मालाबारी को

इस प्रकार एकपत्र प्रो० मैक्समूलर ने लिखा "जैसा कि मैंने पहले भी बताया कि मेरे विचार "हिबर्ट" भाषण लिखते समय भारतीयों के बारे में थे। मैं कम से कम उन थोड़े से लोगों को बताना चाहता हूं जिन तक मैं अपने विचार अंग्रेजी द्वारा पहुंचा सकता हूं कि इस प्राचीन धर्म का ऐतिहासिक महत्व क्या है जैसा कि समझा जाता है न केवल यूरोपीय या ईसाइयत की दृष्टि से बल्कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से। मैं दो आपत्तियों से चेतावनी देना चाहता हूं। प्रथम तो भारत के राष्ट्रीय धर्म की अवहेलना व न्यून मूल्यांकन करना जो प्राय: तुम्हारे अधूरे-यूरोपीय नवयुवकों द्वारा किया जाता है और दूसरे अधिक महत्व देना या ऐसा अनुवाद करना जैसा कभी नहीं किया गया। ऐसा दु:खद स्रोत दयानन्द सरस्वती के वेदों पर परिश्रम में प्रदर्शित होता है। वेदों को प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ मानो जिनमें एक पुरानी और सरल प्रकृति की जाति के मनुष्यों के विचारों का चित्रण है और तब तुम इसकी प्रशंसा कर सकोगे और इसमें से इस आधुनिक युग में भी विशेषकर उपनिषदों की शिक्षाओं को ग्रहण कर सकोगे। लेकिन इनमें खोज करो 'वाष्प इंजन, बिजली, यूरोपीय दर्शन और नैतिकता की" वेद को इसके सत्य रूप से अलग कर दो इसके वास्तविक महत्व को नष्ट कर दो और तुम प्राचीन और अर्वाचीन के ऐतिहासिक क्रम को जो इन्हें बांधे हुए है छिन्न-भिन्न कर दो। अतीत एक सत्य है, ऐसा मानो। उसका अध्ययन करो तब तुम्हें भविष्य में में अपना ठीक मार्ग अपनाने में कम कठिनता होगी पाठक यहां प्रो० साहब की अन्तरात्मा के भावों को समझ गये होंगे और वे किस प्रकार महर्षि दयानन्द भाष्य शैली से भयभीत प्रतीत होते हैं। समझते होंगे दयानन्द की शैली के आगे मेरी दाल न गलेगी।

उन्होंने अपने पुत्र को इस प्रकार लिखा तुम पूछोगे कि विश्व में कौन सी पवित्र (धार्मिक) पुस्तक सर्वश्रेष्ठ है? शायद यह उत्तर पक्षपात पूर्ण प्रतीत हो। लेकिन मैं वास्तव में बाइबिल के न्यू टेस्टामेंट को कहूंगा। उसके पश्चात् कुरान को स्थान दूंगा जो अपनी नैतिक शिक्षाओं में बमुश्किल न्यूटेस्टामेंट के संस्करण से श्रेष्ठ है। उसके पश्चात् क्रमश: ओल्ड टेस्टामेंट, दक्षिणी बौद्धों की त्रिपि-

(शेष अगले पृष्ठ पर)

सुनाऊँ ऋषि का गौरव-गान

दीन हीन भारत में जिससे आया वेद विहान।
फंसे वेद विरुद्ध पथ जब लिये पुराणों की अधियारी।
छल प्रपंच पाखंड जाल में भूल रहे थे सब नरनारी।।
प्रभु के बदले लगे पूजने पीपल और पाषाण।।
प्रज्ञानन्द की ज्ञान सुधा से सुप्त तृषित प्रतिमा पुलकाई।
दयानन्द के पावन उर में वेद ज्ञान की ज्योति जलाई।
लगी फूलने प्रभा पुण्य की मिट कर तिमिर महान्।।
तर्क तीर शास्त्रार्थ धनुष से सकल मतों का लगा हिलाने।
अपने बुकचे सब टटोलते लगे अनेक विकल्प बताने।।
तब सत्यार्थ प्रकाश देख कांपे इंजील कुरान।।
प्रतिमा साधन निराकार की पूजा का हैं लगे बताने।
अल्लाह वाले सात फलक को सात उसूल लगे समझाने।।
ईसाई भी भूल गये अपना चौथा असमान।।
शिखा सूत्र गीता गऊओं की उसने ही की पहरेदारी।
स्वतन्त्रता का महामन्त्र दे गया प्रथम आदित ब्रह्मचारी।।
स्त्री शिक्षा हिन्दी आलोकित पाकर नव-परिधान।।
ऋषिवर के संकेत देखकर शासन ने निज लक्ष्य बनाये।
छुआछूत और बाल विवाह की बन्दी के अधिनियम बनाये।।
सभी हो गया आर्यवीर तुम किन्तु न लेना मान।।
विज्ञानों की चकाचौंध में ईश्वर का अस्तित्व भूलकर।
भौतिकवादी चकाचौंध में धर्म कर्म की रहे धूलकर।।
बने नास्तिक नई रोशनी के उन्मत्त जवान।
भारतीय संस्कृति छोड़ पाश्चात्य रंगों में जीवन ढाला।
भ्रष्टाचार बढ़ा चरित्र की पावनता का मुंह काला।।
सह-शिक्षा के परिणामों का दुष्कर दूषित बखान।।
एक ओर है ब्रह्मकुमारी मत ने नव पाखण्ड रचाया।
ईसाइयत की सुरसा ने एक ओर निज मुंह फैलाया।।
छद्म प्रलोभन दे लाखों का छीन रहे ईमान।।
देख दुखित हो छुपा चन्द्रमा दम्भ द्वेष से धरती काली।
ऋषिवर के सिद्धान्त दीप ले तुम्हें जलानी है दीवाली।।
जिसे जलाया था ऋषिवर ने दे जीवन का दान।।
सुनाऊं ऋषि का गौरव गान।।

—धर्मेन्द्रनाथ 'अलिन्द'
हल्दौर (बिजनौर)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

टिका लाओटज के टाओट, राजा कन्फ्यूसिस, वेद और अवेस्ता।

१८९९ मे प्रो० मैक्समूलर ने ब्रह्मसमाजी एन० के मजूमदार को निम्नलिखित पत्र लिखा—"तुम जानते हो कि मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एव उसके द्वारा उसे अन्य अन्यधर्मों विशेषकर ईसाईयत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेकों वर्षों से अध्ययन किया है। सबसे पहले तुम्हें निश्चय करना है कि तुम अपने प्राचीन धर्म का कितना भाग त्यागने को तैयार हो। यदि उसका सर्वस्व कहीं जो पुराना कहा जाता है, तुमने काफी मात्रा मे त्याग दिया है। बहुदेवतावाद, मूर्तिवाद और धूम धाम से की गई बलि पूजा।

तत्पश्चात् न्यूटेस्टामेंट उठाओ और स्वय पढ़ो और स्वय निर्णय करो कि उसमे लिखे ईसा के शब्द तुम्हें सतुष्ट करते हैं अथवा नहीं। ईसा के श्रद्धायुक्त वचनों मे अन्तर-निहित उपदेश तुम तक वैसे ही आवेंगे जैसे वे हम तक आते हैं। हमे भी इन उपदेशो का अपना अर्थ देने का अधिकार नहीं है, विशेषकर यदि हम उनका स्वय भिन्न अर्थ करें। यदि तुम उसकी शिक्षाओ को यथावत् स्वीकार करो तो तुम भी ईसाई हो (या हो सकते हैं)। तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियाँ बताओ, जो तुम्हे स्पष्टरूप से ईसाई बनने मे बाधा डालती हैं और जब मैं लिपि मे स्पष्ट करने की पूर्ण कोशिश करूँगा कि किस प्रकार मैंने और मेरे साथियो ने उनका मुकाबला कियाहै और उन्हे हल किया है। मेरी दृष्टि मे भारत का मुख्य भाग ईसाई बन चुका है। तुम्हे ईसाई बनाने मे समझाने बुझाने की जरूरत नहीं है। तब तुम स्वय अपने (धर्म परिवर्तन) के बारे मे विचार करो।

निस्सन्देह न्यू और ओल्ड टेस्टामेंट की नैतिक एव चारित्रिक शिक्षायें किसी भी अन्य पवित्र पुस्तक से कहीं उत्तम हैं। इसमे बाइबिल की अद्वितीयता अन्तर्निहित है साधारणतया अन्य पवित्र पुस्तकें प्राचीन काल के लोगों को जो स्मरण रहा उसका सचय मात्र हैं।

तुमसे पूर्वागमियो ने पुल निर्माण कर दिया है निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ो। यह तुम्हारे कारण टूटेगा नहीं और उस पार तुम्हारे स्वागत के लिये अनेकों मित्र हैं जिनमे तुम्हारा पुराना मित्र और साथी फ्रेडरिक मैक्समूलर से ज्यादा कोई प्रसन्न न होगा।

प्रोफेसर मैक्समूलर के उपरोक्त उद्धरणों से आपको अब स्पष्ट हो गया होगा कि पचास वर्ष तक वेदाध्ययन करने पर इन्हें वेदों में क्या मिला और जो मिला उसे किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करके जनता के सामने रखने का निर्देश दे रहे हैं। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त जो मानवमात्र को एक परिवार के रूप मे देखने व रहने और व्यवहार करने का आदेश देते हैं बचपने के विचार लगते हैं। ऋग्वेद जो स्टुअर्ट पि गोट के शब्दों मे Iliad और Odyssey दोनों के मिलकर बराबर है सामन्य ज्ञान से भरा प्रतीत हुआ जबकि सत्य यह है इस ईश्वरीय ज्ञान भडार का सत्यार्थ अटकलबाजी या कुत्सित मान्यताओं से नहीं निकलता इसके समझने के लिये आर्ष प्रणाली की आवश्यकता है जिसे महर्षि दयानन्द ने पुनरुद्धार किया और जिसे वे अधिक मूल्याकन कहते हैं। जबकि सचाई यह है कि उदात्त विचारों से पूर्ण वेद ज्ञान को हेय सिद्ध करें ताकि ईसाइयत के प्रचार का मार्ग सरल हो जावे, यह भावनायें स्पष्ट होती हैं उनके आखिरी उद्धरणों से। उनके सस्कृत और वेदाध्ययन का मूल उद्देश्य तो भारतीयो का धर्म परिवर्तन न करना या उन्होंने समझ लिया कि वेद भारतीयो के प्राण हैं उनमे अश्रद्धा उत्पन्न करके ही हम उन्हें ईसाई बना सकते हैं और यही मार्ग उसने अपनाया। आज भी उनके अनुयायी प्रो० एस्टलर ऋग्वेद का पुनर्गठन कर रहे हैं क्योंकि वह विषयानुसार नहीं है। विषय तो उन्हें जब पता चले जब वे सत्य को जानना चाहें वे तो भारतीयों को उनके धर्म ग्रन्थों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने पर तुले हुए हैं। आज से सौ वर्ष पहले एक मैक्समूलर थे मगर आज सैकड़ों मैक्समूलर सस्कृत द्वारा भारतीय सस्कृति में त्रुटि दिखाने, तुलनात्मक धर्मों का अध्ययन करने के नाम पर किस प्रकार वेदों का, धर्म शास्त्रों का अर्थ का अनर्थ करके धर्म परिवर्तन के कार्य को कर रहे हैं। यह भी कैसा अनुसन्धान है कि वेदों में कुछ भी हो मगर उनमें ढूढ़ो यूरोपीय दर्शन, बिजली, वाष्पयत्र।

निस्सदेह पाश्चात्य विद्वानो ने अनुसधान के नाम पर

[शेष पृष्ठ ६१ पर]



राष्ट्र-लक्ष्मी

(रवीन्द्र अग्निहोत्री एम०ए०, १६, केलाबाग, बरेली)

विश्व विख्यात पशु-विशेषज्ञ डा० राइट ने सन् १९३५ ई० में प्राप्त आंकड़ों के आधार पर घोषित किया था कि गोवंश से भारत को जो आय प्रतिवर्ष होती है वह ११ अरब रु० से अधिक है। यह गणना करते समय उनके समक्ष सन् '३५ के चीजों के भाव थे जिनमें आज पांच गुने से लेकर दस गुने तक की वृद्धि हो चुकी है। अतः उक्त गणना के आधार पर ५५ अरब से लेकर ११० अरब रु० तक की वार्षिक आय गोवंश से हुई। पर चूंकि सन् '३५ से अब तक अबाध रूप से गोवंश का वध किया जा रहा है और उचित पोषण के अभाव मे भारतीय गाय की दूध देने की क्षमता मे भी ५०प्रतिशत तक ह्रास हुआ है अतः गोवंश से होने वाली आय में भी यद्यपि आश्चर्यकारी परिवर्तन आ गया है पर फिर भी वह उपेक्षणीय नहीं है। आज दूध और दूध से बनी चीजों से ६ अरब २० करोड रु० प्रति वर्ष आय होती है। गोबर की खाद से १००० करोड रु० प्रति वर्ष की आय होती है। (देखिए अवनीन्द्रकुमार विद्यालकार द्वारा सम्पादित 'भारत ज्ञान कोष' १९६४) यह सम्मिलित आय है। केवल गोवंश से आज भी २५ अरब रुपया वार्षिक आय होने का अनुमान है जैसा कि अखिल भारतीय गोरक्षा सम्मेलन, वृन्दावन में एक वक्ता ने बताया था। यह राशि हमारी समस्त राष्ट्रिय आय के चौथाई भाग से अधिक है। इतनी आमदनी अन्य किसी भी एक स्रोत से नहीं हो रही है। इस पर भी, सरकार से मोटी-मोटी तनख्वाह पाने वाले तथा कथित पशु विशेषज्ञो ने देश में 'अनुपयोगी' पशुओं का भूत खड़ा कर रखा है। उनका कहना है कि देश में अधिकाश गायें कम दूध देने वाली हैं, बैल कमजोर हैं अतः इन्हें रखने के स्थान पर कटने देने मे ही लाभ है। वास्तविकता यह है कि इन लोगों का यह कथन सर्वथा भ्रामक, निराधार अतएव असत्य और अनुत्तरदायित्वपूर्ण है। सरकारी आकडे स्वयं यह बताते हैं कि देश में २ या ३ प्रतिशत से अधिक तथाकथित 'अनुपयोगी पशु' नहीं हैं। यह सत्य है कि भारत की अधिकाश गायें कम दूध देने वाली है। और जब यह देखते हैं कि नीदरलैंड की गाय औसतन ८००० पौंड, आस्ट्रेलिया की ७०००पौंड, स्वीडन की ६००० पौंड और अमेरिका की ५००० पौंड दूध वर्ष भर मे देती है पर भारत की गाय वर्ष भर मे केवल ४१३ पौंड दूध देती है (देखए इंडियन इयर बुक १९६४, हिन्द पाकेट बुक पृष्ठ १५०, १५१) तो बड़ी शर्म महसूस होती है, और यह देखकर तो अपनी हीन दशा पर ग्लानि अनुभव होती है (क्योकि यह वस्तुतः हमारी ही उपेक्षा का परिणम है,) कि अन्य देशों की गायें दूध देने की अवधि में सामान्यतः ३००० से ४००० पौंड तक दूध देती हैं पर भारत की गायें साधारणतः केवल १५०० पौंड ही दूध देती हैं। (पूर्वोक्त) गाय की दुग्धोत्पादकता में कमी होने का ही परिणाम है कि आज बैलो में अधिक काम करने की क्षमता नहीं। पर विचारणीय यह है कि इस 'अनुपयोगी गोवंश' की विद्यमानता में प्रति व्यक्ति उपलब्ध दूध केवल ५.८ औंस है, (जिस भारत में घी, दूध आदि की नदियां बहती थीं उसकी इस पतित और अवनत दशा पर जरा ध्यान दीजिए। जरा तुलना भी कीजिए न्यूजीलैंड में प्रति व्यक्ति उपलब्ध दूध२४४औंस और और डेनमार्क में १४८ औंस है।) इन विशेषज्ञों के कथनानुसार 'अनुपयोगी' गायो को नष्ट कर दिया जाय तो फिर तो भारत मे दूध का दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा। खेती के लिये भारत मे पहले ही दो करोड बैलों की कमी है। अगर विद्यमान बैलो को कमजोर एवं अनुपयोगी बनाकर समाप्त कर दिया जाय तो भारत मे खेती असम्भव हो जायगी क्योंकि सरकारी अनुमान है कि बैलो को हटाकर उनके स्थान पर ट्रैक्टर से काम लेने के लिये ७० लाख ट्रैक्टर चाहिये और फिर प्रति वर्ष १० लाख ट्रैक्टरों की व्यवस्था करनी पडा करेगी। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि भारत सरकार वर्तमान गोवंश को अनुपयोगी बताकर नष्ट भले ही कर दे पर ७० लाख ट्रैक्टरो की व्यवस्था करना उसके लिए आकाश-कुसुम चयनमात्र है। फिर क्या ये ट्रैक्टर खेती के लिये खाद भी दिया करेंगे ? खाद्य सामग्री के लिये दूध और घी भी दिया करेंगे ? क्या एक बार धन लगा देने पर क्रमशः इनकी सतति बढ़ती ही जायगी ? इन अनुपयोगी पशुओं को समाप्त करने के बाद

आवश्यक मात्रा में उपयोगी पशु ला दिये जायेंगे'—ऐसा विश्वास दिलाना उसी वायदे के समान है जो हिन्दी आंदोलन समाप्त कर देने के पश्चात् ही हिन्दी को सर्वधानिक पूर्ण अधिकार' देने के लिए सरकार की ओर से किया गया था। अपनी जिस भूल के लिये हमे आज तक पश्चात्ताप की अग्नि परीक्षा देनी पड़ रही है उसकी पुनरावृत्ति करने को हम उद्यत नहीं। यदि सरकार यह चाहती है कि हम इस सारे गोवश को उसके कथनानुसार 'अनुपयोगी' मानकर उसके हवाले करदें तो उसे पहले दो काम करने होंगे। सब पहले तो इस गोवश के बदले मे देश की आवश्यकता भर 'उपयोगी' गोवश प्रदान करना होगा। दूसरे, उसे अपने इस सारे रिकार्ड को झूठा सिद्ध करना होगा जिसके अनुसार 'अनुपयोगी' पशु से भी सामान्य रूप से २२) रु० से लेकर २७) रु० तक का वार्षिक लाभ होता है जिसे आधुनिक विज्ञान की सहायता से १३६०) रु० वार्षिक तक बढ़ाया जा सकता है, मुफ्त की बिजली और खाद का मूल्य पृथक् रहा। (देखिये मेरा लेख 'यान्त्रिक कसाईखाने बनाम देशोन्नति') यदि वह ऐसा करने को उद्यत नहीं तो क्यो न हम उसकी 'लोक कल्याण-प्रवृत्ति' पर सन्देह करें! दूध गायब हो जाने पर और खेती असम्भव हो जाने पर फिर यहां बचेगा कौन? शायद मिट्टी फाककर ये विशेषज्ञ ही जीवित रहेंगे!

ये अनुपयोगी कहे जाने वाले पशु देश के लिये वरदान हैं अभिशाप नहीं। अपनी आयु के अन्तिम दिन तक प्रत्येक पशु गोबर और मूत्र देता है। यदि गोबर और मूत्र का ठीक उपयोग किया जाय तो यह स्वयं बहुत बड़ी सम्पत्ति है और इसकी खाद से हम अपने कृषि उत्पादन को पच्चीस गुना बढ़ा सकते हैं। सरकारी पशु गणना रिपोर्ट १९५५-५६ के अनुसार देश में गोवंश का प्रतिदिन ६८,३९,३०० मन गोबर होता है। इससे कुछ कम गोमूत्र होता है। 'नेशनल इनकम कमेटी' १९५१ की रिपोर्ट मे पृष्ठ ६८, अपेन्डिक्स ४४ ए पर गोबर और मूत्र के जो भाव लगाये गये हैं उसके अनुसार केवल गोवश से देश को प्रतिवर्ष ६२१ करोड़ रु० का गोबर प्राप्त होता है, अर्थात् एक पशु से ३८ रु० का गोबर। इसी रिपोर्ट के आधार पर एक गाय के मूत्र का वार्षिक मूल्य १४ रु० है (जिससे Journal of veterinary science and Animal Husbandry in India १९४१ के अनुसार १६० रु० की नाइट्रोजन, ६४० रु० की फास्फेट तथा ६५० रु० की पोटाश कुल १३६० की अति उपयोगी सामग्री तैयार की जा सकती है। ये अब से २३ वर्ष पुराने मूल्य हैं जिनके अब चौगुने हो जाने में तो कोई सन्देह है ही नहीं। यदि यह सब न किया जाय, पशुओं से यह लाभ न उठाया जाय तो भी गोवश के प्रत्येक पशु से हमें प्रतिवर्ष ५२ रु० का गोबर एव गोमूत्र मिल जाता है चाहे वह पशु 'उपयोगी' हो या 'अनुपयोगी', जबकि सरकारी गोसदनो में रखे गये 'अनुपयोगी' पशुओं का खर्चा २५ रु० से लेकर ३० रु० तक आता है क्योंकि वहां उन्हें बहुत कम मूल्य में जगली चारा उपलब्ध हो जाता है। पहाड़ों की तराई तथा अन्य इलाको में किसान लाखो गाय बैल केवल गोबर और मूत्र के लिये ही पालते हैं और वे किसी भी मूल्य पर अपने वृद्ध या अपग पशु को नहीं बेचते।

हमारे स्वर्गीय प्रधानमत्री श्री नेहरू जी को एक बड़ी शिकायत यह रही कि भारत में अधिकाश गाएँ एक एक पाव दूध देने वाली हैं जबकि रूस आदि देशों में गाय एक-एक मन दूध प्रतिदिन देती है। स्व० नेहरू जी का यह आक्षेप अक्षरश सत्य है। हम स्वय इस तथ्य से दुखी हैं कि जिस भारत की गौएं 'शतोदना' (सौ व्यक्तियों को एक समय भरपेट भोजन कराने वाली) प्रसिद्ध थीं, उसी भारत की गौएं आज 'एकोदना' भी नहीं। भारतीय गाय की दूध देने की क्षमता में निरन्तर ह्रास हो रहा है, और जैसा कि हम पूर्व ही बता आये हैं, यह ह्रास सन् ३५ से ६१ तक ५० प्रतिशत तक हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस ह्रास के कारण क्या हैं? और उसके लिये दोषी कौन है? हमने इस समस्या पर जब भी गम्भीरता से विचार किया सरकार को ही दोषी ठहराया और इसके पीछे जो शक्ति (Factor) काम कर रहा है वह है दूषित शिक्षा और उसी के परिणाम स्वरूप दूषित खानपान, जिसने अपने प्रभाव से विवेक से 'विवेक शक्ति' को नष्टकर दिया है। गोवश के प्रति सरकार की उपेक्षा का ही परिणाम है कि गायों के चरने के लिये देश में आज गोचर भूमि का नितान्त अभाव हो गया है। आज ग्रामों तक में गाय के चरने के लिए

भूमि नहीं। पशु खाद्य की ७० प्रतिशत कमी होने पर भी दस करोड़ रुपया की वार्षिक खली विदेशों को भेजी जा रही है। अच्छे सांड आज एक प्रतिशत भी उपलब्ध नहीं हैं। दूसरे देशों की सरकारों ने अपने गोवंश को उन्नत एवं दुधारू बनाने के लिए काफी प्रयत्न किया है। भारत में सरकारी सूत्र ने गाय के रक्षण एवं संवर्धन पर इतना ध्यान नहीं दिया। लेकिन इस उपेक्षित अवस्था में भी गाय आज पुनः अपनी आर्थिक उपयोगिता और दुग्ध उत्पादन की क्षमता प्रदर्शित कर रही है।

केन्द्रीय गोसम्वर्द्धन परिषद् द्वारा देश में प्रति वर्ष जो दुग्ध प्रतियोगिता आयोजित की जाती है उसमें गत ५-६ वर्षों से हर वर्ष गाय को ही अधिक दूध देने पर पुरस्कार मिल रहा है। दुग्धोत्पादन में भैंस गाय से अब भी पिछड़ रही है। उक्त परिषद् के अध्यक्ष श्री उ०न० ढेबर भाई के शब्दों में गाय को अगर मौका मिले तो वह अद्वितीय रूप से दुग्धोत्पादन की क्षमता प्रदर्शित कर सकती है।' उर्ली-कांचन (महाराष्ट्र) की गोशाला में 'गीरगाय' को प्रति वर्ष ४५, ४७ पौंड से भी ऊपर दूध देने में पुरस्कार मिल रहा है। गतवर्ष इस गोशाला को 'गोपालरत्न' की पदवी दी गई थी। सन् १९६३-६४ की दुग्ध प्रतियोगिता के लिए जो रिकार्डिंग किया गया उसमें उर्लीकांचन की गाय ने ५३ पौंड दूध दिया। गतवर्ष पंजाब के प्रसिद्ध गोपालक श्री हरीसिंह जी के फार्म की साहीवाल गाय को ६८ ६ पौंड दूध देने के लिए दो हजार रुपया पुरस्कार दिया गया। भैंस को जितनी खुराक मिलती है, जितना अच्छा उसका पालन-पोषण होता है उतना यदि गाय का हो तो भारत की गाय इस अवनत दशा में भी स्व० श्री नेहरू की आकांक्षा की पूर्ति कर सकती है।

गत वर्ष गांधी जयन्ती के अवसर पर बम्बई की आरे कालोनी में गायों के एक नए कक्ष का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने देश में दूध की कमी का उल्लेख करते हुए कहा था—' ' पर्याप्त मात्रा में दूध न मिलने से अधिकांश भारतीय शारीरिक दृष्टि से शिथिल हैं और उनकी यह असमर्थता देश के विकास में बाधक बन रही है।'

गऊ को माता मानने वाले प्रतिवर्ष गोपाष्टमी पर्व मनाकर गौ को कामधेनु, शतोदना, अवध्य और अघ्न्या कहने वाले, संसार के शिरोमणि देश, इस स्वतन्त्र भारत के हम आर्यों पर इससे अधिक गम्भीर लांछन और कौन सा हो सकता है? ऋषि निर्वाण के महत्वपूर्ण अवसर पर हम देश की आर्य जनता से अनुरोध करते हैं कि वह जागे और राष्ट्र की लक्ष्मी, सुख और समृद्धि की मुख्य आधार गऊ को उन्नत और विकसित बनाने में सहयोग दें ताकि शतोदना कामधेनु निर्भय होकर विचरण करें और भारत में फिर से दूध दही की नदियां बहती दिखाई दें। सम्पन्न लोग घर पर गउएं पालें। शेष लोग इतना व्रत अवश्य लें कि दूध यथासंभव केवल गाय का ही प्रयोग में लाएंगे। इससे गोपालन को प्रोत्साहन मिलेगा, गाय की रक्षा होगी।

●

[पृष्ठ ६० का शेष]

वेदों के साथ जबर्दस्त अन्याय किया है। कहां वेद की सार्वदेशिक एवं सार्वजनिक प्राणिमात्र के कल्याण की भावनायें और कहां उनकी गिनती उनसे भी हेय जो अमानुषिक और परस्पर विरोधी शिक्षाओं से भरे ग्रन्थ हैं। कहां सृष्टि के आदि में प्राणिमात्र के कल्याण के लिए दिया गया ईश्वरीय ज्ञान और कहां अल्पज्ञ मानव के मस्तिष्क की कल्पनाओं और इतिहास से भरे ये ग्रन्थ। कैसी तुलना कैसी सामान्यता। रिसर्च का अर्थ तो यह है कि पदार्थ का सत्य ज्ञान का पता लगाना और वेदों के विषय में वही अर्थ करना जिन भावनाओं से वे ओत प्रोत हैं।

मेरा विचार है कि आज नहीं तो कल महर्षि की भाषा शैली ही वेद का सत्यार्थ प्रगट करने में समर्थ होगी जिसे प्रो० मेक्समूलर ने स्वीकार नहीं की। इसी शैली को न अपनाने के कारण ये भ्रांतियां हो रही हैं।

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे।

कौन ? आर्यसमाज करेगा

शका—आई खराबी दशा बिगड गई, देश का नव निर्माण,
बता दो कौन करेगा ?
समाधान—बनाये बिगडी देश की रक्षा देश का पहरेदार,
यह आर्यसमाज करेगा ।
शका—भटक रहे अन्धेरे मे आज देश के नर - नारी,
नही सूझता पथ जनता फिरती है मारी-मारी,
इन्हे मार्ग दिखलाने वाली अमर ज्योति का दान,
बता दो ?
समाधान—सत्यार्थप्रकाश लिए हमको आगे चलना है,
पडे भले ही विष पीना या कि आग मे जलना है,
अन्धकार के कण-कण मे नूतन ज्योति विस्तार,
आर्यसमाज करेगा ।
शका—विलासिता की घोर घटा आज देश मे छाई है,
कृत्रिमता और फैशन की काली आधी आई है,
दानवता के कुटिल करो से मानवता का त्राण,
बता दो कौन करेगा ?
समाधान—भोग त्याग की धारा को एक केन्द्र मे ला करके,
ज्ञान कर्म का मनमोहक सम्मेलन बुलवा करके,
भौतिकता मे आध्यात्मिकता का सुखकर सचार,
आर्यसमाज करेगा ।
शका—नगे नाच लडकियो के देख शर्म शरमाती है,
कहकर कोई क्या कर ले लोई उतर जब जाती है,
लाज लुटी मर्यादा मिट गई मातृशक्ति का मान,
बतादो कौन करेगा ?
समाधान—समझे दुनिया नारी को बेटी भगिनी और माता,
मातृभूमि के रक्षक मे आर्य निभायेंगे नाता,
भाई बहिन का प्रचलित पावन प्रेम भरा व्यवहार,
आर्यसमाज करेगा ।

भारतीय तारुण्य के प्रति

त्याग, तपस्या, स्वाभिमान हो, नई रवानी हो !
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो !!
ऐसी हो हुकार कि काई-सा अरिदल फट जाए ।
ऐसी हो ललकार कि पैरो पर रिपु आ झुक जाए ।
दीप्तानन लख अन्यायी दल तृण-सा थर-थर कापे-
गरजे तो सागर मे रिपु पर प्रलय-घटा घहराये ।
दुष्टो को हो शूल, सज्जनो को कल्याणी हो !
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो !!
जल सी हो शीतलता, सुमनो सा गुण-सौरभ हो-
हो सहिष्णुता तरु सी निज सस्कृति का गौरव हो,
सूरज सा हो तेज, मिटा दे जो जग का अधियारा
पावक सी पावनता हो, मन मे न मलिनता हो ।
सरस आचरण, मधुर कर्म हो मधुमय वाणी हो ।
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो ।।
क्षमा धरित्री सी, धीरज हो अचल हिमालय-सा ।
सुरसरि सी निर्मलता हो, हो सयम चातक-सा,
हो हस-सा विवेक, क्षीर को जल से विलगाये,
हो ताजगी पवन सी, निश्छलपन मृग-शावक-सा
दानवता पर मानवता की विजय निशानी हो ।
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो !!

—भगवानशरण भारद्वाज 'प्रदीप'
सस्कृति सस्थान, ख्वाजाकुतुब बरेली

सत्य ज्ञान की किरणो दूर सकल तम भागेगा,
ऋषि सन्देश गूजने दो देश का जन-जन जागेगा,
रोग कई है, एक नही है, इन सबका उपचार,
आर्यसमाज करेगा ।

—कु० सुशीला आर्या एम०ए०
कन्या गुरुकुल, नरेला







महर्षि की सार्वभौमिकता

(ले०—श्री वेदव्रत शास्त्री सिद्धान्तवाचस्पति, श्री गांधी विद्यालय इण्टर कालेज)

महर्षि की कीर्ति गरिमा स्वतन्त्र भारत में किस स्थान में गाई जाती है ? जब यह प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होता है तो शिर लज्जा से नत हो जाता है। उस समय हृदय से यही भाव प्रादुर्भूत होता है कि भारत के वर्तमान आर्य राजनीतिक अथवा आर्येतर राजनीतिक, मुट्ठी भर लोगों के असन्तुष्ट होने के भय से महर्षि का नाम तक लेना पसन्द नहीं करते, इन्हें कृतघ्न तो नहीं कह सकते परन्तु इन्हें कायर कहने में सकोच भी नहीं करना चाहिए। हम (आर्य) राजनीति मे पैर रखते नहीं, कि वोट की मृगतृष्णा के आखेट हो जाते हैं। उस समय सत्यार्थ-प्रकाश का छठवां समुल्लास ही नहीं, अपितु महर्षि के महान् उपकारों तथा आदर्शों को भी विस्मरण कर देते हैं। इतना ही नहीं पाश्चात्य वातावरण के प्रवाह में हमारे पांव भी उठ जाते हैं। हमें गर्व करना चाहिये कि हमारा गुरु कितना महान् था इसने मानवजाति के समुत्थान के लिये अपने मोक्ष परमानन्द को भी कुछ नहीं समझा। आज हम जिस स्वतन्त्र भारत की कीर्ति तथा उन्नति गाते नहीं अघाते, यह समुन्नत भारत उन्हीं की अपूर्व सूझ बूझ का परिणाम है। आज हमारे नेता जब अहिंसकों का गुणगान करते हैं तो श्री गांधी, बुद्ध और तथा ईसा के सामने महर्षि को भूल जाते हैं या यूं कहिये कि उनकी जिह्वा कुंठित सी हो जाती है।

आज हम महर्षि की अलौकिक अहिंसा पर प्रकाश नहीं डालना चाहते; क्योंकि यह एक स्वतन्त्र विषय हो जाता है। परन्तु इतना कहने से भी नहीं चूकते कि महर्षि की अहिंसा वृत्ति इन महानुभावों से कहीं बढ़ कर थी। आज दीपमालिका का दिन है, इसी दिन महर्षि ने अपनी दिव्य-जीवन-लीला "ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" इस अन्तिम वाक्य से समाप्त की थी। आज हम उसी अमर ज्योति की दिव्य-छटा से अपने हृदय के निविड़ान्धकार को नष्ट करना चाहते हैं। अपने गुरु की अर्चना उसी की अनुपम शब्दावली से करना चाहते हैं जिस तरह उस दिव्यात्मा ने प्रभु का गुण-गान उसी की वेद-वाणी से किया था।

महर्षि की मानव-प्रियता

"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न करके याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ व मतोन्नति के साथ भी वर्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषयों में वर्तता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को वर्तना योग्य है।

निर्बलों की रक्षा

जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दु:ख देते और मार भी डालते हैं जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश पर-हानि मात्र करता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है। "सत्या० की भूमिका से"

दण्ड से ही भ्रष्टाचार की निवृत्ति सम्भव

प्रश्न—जो राजा व राणी अथवा न्यायाधीश व उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करें तो उनको कौन सा दण्ड देवे ?

उत्तर—सभा अर्थात् उनको तो प्रजा पुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिए।

प्रश्न—राजा उनसे दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे ?

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है, जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड न ग्रहण करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे ? और सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता



से दण्ड चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है ? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें अर्थात् उस श्लोक के अर्थ को स्मरण करो कि न्याय-दण्ड का नाम ही राजा और धर्म है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?

प्रश्न—यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनाने हारा व जिलाने वाला नहीं है इसलिए ऐसा दण्ड न देना चाहिए।

उत्तर—जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड देने से सब बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग में स्थिर रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर सब के भाग मे न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़ कर होने लगेंगे। वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह करोड़ों गुना अधिक होने से करोड़ों गुना कठिन होता है क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एक को मन भर दण्ड हुआ और दूसरे को पाव भर तो पाव भर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आध पाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं ? जैसे एक मन, और सहस्र मनुष्यों को पाव पाव दण्ड हुआ तो सवा छ मन मनुष्य जाति पर दण्ड होने से अधिक और यही कड़ा तथा बहुत, एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है। "छठे समुल्लास से"।

गणतन्त्र का स्वरूप

यह सक्षेप मे राजधर्म का वर्णन यहाँ किया गया है। वेद, मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय मे और शुक्रनीति तथा विदुर प्रजागर और महाभारत शान्ति पर्व के राज-धर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्व-भौम चक्रवर्ती राज्य करें और यह समझें कि "वय प्रजापते प्रजा अभूम" यह यजुर्वेद १८/२९ का वचन है। हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा, हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।

"सत्या० षष्ठ समुल्लास"।

छुआछूत का विरोध

प्रश्न—द्विज अपने हाथ से रसोई बनाकर खावें या शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

उत्तर—शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ने, राज्य-पालन, और पशु पालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहे और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें—सुनो प्रमाण—"आर्याधिष्ठाता वा शूद्रा सस्कर्त्तार. स्यु" आपस्तम्ब प्र० २। पटल २। खण्ड २। सूत्र ४। यहां स्वामी जी ने यह कहा है कि "शूद्र के घर का पका अन्न तथा उसके पात्र में आपत्काल के बिना न खावें" इसका अभिप्राय यह है कि ये बेचारे गरीब और अशिक्षित होते हैं। इनका जीवन-स्तर शोच-नीय है, ये गन्दे रहते हैं, स्वच्छता धनाभाव से कर नहीं पाते। अत इनके घर का वातावरण मन को नहीं रुचेगा। इन्हीं कारणों से इनके घर पर नहीं खाना खाना चाहिये। परन्तु यदि इन्हें अपने घर पर रखेंगे तो इनका रहन सहन अपने अनुकूल बना लेंगे। अत इनके हाथ की पकी रसोई खाने मे कोई दोष नहीं।

"प्राचीन भारत में छुवाछूत नहीं थी"

जो प्रथम आर्यावर्त देशीय लोग व्यापार, राज्यकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे और जो आजकल छुवाछूत और धर्म नष्ट होने की शका है वह केवल मूर्खों के बहकाने से और अज्ञान के बढ़ने से है। जो मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने-आने में शका नहीं करते वे देश देशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम मे रीति-भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूर वीर होने लगते हैं और अच्छे व्यव-हार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महा-भ्रष्ट म्लेच्छ-कुलोत्पन्न वेश्यादि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन नहीं होते; किन्तु देशान्तर के पुरुषों के समागम छूत और

दोष मानते हैं ! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है ?

छुआछूत से हानियां

क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया कि जो राजपुरुषों (सैनिकों) में युद्ध समय में भी चौका लगा-कर रसोई बना के खाना, अवश्य पराजय का हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय लोगों का (सैनिकों का) युद्ध मे एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना, अपना विजय करना आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढता से इन लोगो ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते-कराते सब स्वातन्त्र्य आनन्द, धन, राज्य, विद्या, और पुरुषार्थ पर चौका कर हाथ पर हाथ धरे हैं और इच्छा करते हैं कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें, परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया। "दशम समुल्लास से"।

संस्कृत भाषा की सजीवता

अंग्रेज ने संस्कृत भाषा को मृत भाषा कह कर इसकी तरफ से लोगों मे अनिच्छा पैदा कर दिया था। महर्षि ने संस्कृत का महत्व पुन सबके सामने रखा। यथा —

प्रश्न—संस्कृत विद्या मे पूरी राजनीति है वा अधूरी ?

उत्तर—पूरी है क्योंकि जो जो भूगोल मे राजनीति चली है और चलेगी वह संस्कृत विद्या से ली है और जितना प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लिये "प्रत्यह लोक दृष्टैश्च शास्त्र दृष्टैश्च हेतुभि"। मनु ८।३ और भी—आर्यसमाज के प्रथम और तीसरे नियमो में "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर है और तीसरे नियम में 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है"। वेद ईश्वरीय और संस्कृत में है अतएव संस्कृत भाषा की महनीयता महर्षि के हृदय में पूर्णरूप से थी। परन्तु आर्य जनो में संस्कृत भाषा का महत्व नहीं ही के बराबर है। ये स्वय तो वेदों का पढ़ना-पढ़ाना इत्यादि पाठ नित्य करते हैं तथापि स्वय तथा अपने बच्चों को संस्कृत नहीं पढ़ते-पढ़ाते। प्रच्छन्न रूप से अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य सभ्यता व्यवहार तथा आचरण में रत हैं।

ईसाई तथा मुसलमानो के प्रति महर्षि की सहानुभूति

प्राय: लोगों के हृदयों में यह भ्रम घर कर गया है कि महर्षि इन दो सम्प्रदायों से द्वेष रखते थे परन्तु ऐसी धारणा सर्वथा निर्मूल है। क्योंकि तेरहवें तथा चौदहवें समुल्लास की भूमिका मे महर्षि स्वय लिखते हैं—"यदि एक मतवाले दूसरे मतवाले के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् सवाद नहीं हो सकता किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाडे मे घिर जाते हैं। ऐसा न हो इसलिये इस ग्रन्थ मे प्रचारित सब मतों का विषय थोडा थोडा लिखा है। "तेरहवें समु० की भूमिका से"।

सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वय रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्य पन से बहि है। इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया है, उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुचाना हमारा मुख्य अर्थ है।

(चौदहवें समुल्लास की भूमिका से)

ऐसे उदार चेता महान् पुरुष के गुण गान में यदि हम चुप हैं तो हमारी कृतघ्नता है। जब तक हम महर्षि के विचारो का ससार में प्रसार नहीं करते तब तक संसार की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। आर्यजनों का परम कर्तव्य है कि अपने यश के मोह को त्यागकर महर्षि का कीर्तिध्वज ससार में फहरावें। इनके तप त्याग का आदर्श साहित्य रूप मे निर्माण कराकर ससार मे वितरित करें। आर्य विद्वानों को प्रेरित करें कि छोटे-छोटे बुकलेट तैयार करें। जिन्हे लोग यात्रा आदि मे पढ़ सकें। क्योंकि आज लोगो के पास धन और समय की कमी है। जनता अधिक मूल्य की पुस्तकें नहीं खरीद सकती और इस भौतिकता के जमाने मे न इसके पास इतना समय है कि वह बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ सके। इस दिशा में आर्यसमाज को रचनात्मक रूप से प्रगतिशील होना चाहिये।

●





ऋषि दयानन्द की सूझ

(ले०—श्री स्वामी इष्टानन्द जी गुरुकुल अयोध्या)

एक बार ऋषि दयानन्द अपने उपदेश आगरा बनारस आदि शहरो मे करने लगे तो यह प्रतीत हुआ कि हम मे अभी कुछ कमी है जो हमारे उपदेश सर्व साधारण पर कृतकार्य नही होते ऐसा सोचकर उपदेश का कार्य बन्द कर फरुखाबाद टोका घाट पर एक टटी विसरात मे रहने लगे। उस समय स्वामी जी के पास केवल कोपीन के और कोई वस्तु न था। शहर के भक्तो ने तखत गद्दे आदि का प्रबन्ध करने को कहा। स्वामी जी ने कुछ स्वीकार नही किया। एक ग्राम ठाकुर छज्जूसिंह जो नित आया करते थे स्वामी जी के पैर छूकर चले जाते थे, उन्ही से थोडा पुआल मगा लिया था। उसी मे घुसकर अपना जाडा काट लेते थे।

वे ठाकुर हमको जलालाबाद (शाहजहापुर) के उत्सव पर मिले थे। १०८ वर्ष आयु समाप्त कर मरे हैं। यह दृष्टान्त किसी जीवन चरित्र मे नही आया। वह बताते थे कि मै बराबर जब तक स्वामी जी रहे जाता रहा और पैर छूकर वापस आता था। कभी-कभी मट्ठा ले जाता था, स्वामी जी उसको पी लेते थे। शहर के लोगो को स्वामी जी ने २ घण्टे सत्सग के दे रक्खे थे। वह ४ बजे से ६ बजे शाम को लोग आते थे। वेद भाष्य की चर्चा वही से प्रारम्भ हुई। धन भी एकत्रित होने लगा। माननीय सेठ पुरुषोत्तम दास तथा सेठ दुर्गाप्रसाद के पास धन जमा होता रहा। मेरे कान मे भी यह बाते सुनाई पडी। मनमे भी यह बात आई पर मैं दुखी हुआ और यह सोचने लगा यदि धन होता तो स्वामी जी की सहायता इस कार्य मे करता। इसी विचार से दूसरे दिन जब स्वामी जी के पास गया तो पैर छूकर बैठ गया। स्वामी जी ने पूछा, छज्जू आज क्या बात है? मैं रोने लगा, उसी रोवासी मे मैंने कहा—स्वामी जी मै बड़ा गरीब हू, अन्यथा आपके इस महान् कार्य मे कुछ धन देकर सहायक बनता स्वामीजी ने सहज स्वभाव चाकू (यह फल काटने को आया था) उठाया और कहा भगत एक आख बेच दो ५००) ले लो तब मैने कहा स्वामी जी आख तो १०००) मे भी न दूगा स्वामी जी ने कहा फिर बताओ तुम गरीब कहा हो एक ही आख का सौदा है मै चुप रह गया तब स्वामी जी ने समझाया कि भगत मनुष्य पुरुषार्थ का त्याग देता है तो धन उसको त्याग देता है। वास्तव मे पुरुषार्थ की कमी ही गरीबी है, ईश्वर प्रदत्त गरीबी मनुष्य के अग प्रत्यग मे कुछ बाधा आ जाय उसका सही पता दूसरे करते है और करनी भी चाहिये। उस दिन से मैं नित प्रात से उठकर अपने पुरुषार्थ मे लग जाता कभी दुखी नही रहा। यह तो छज्जूसिंह की बात हुई पश्चात् धन की राशि बढती गई सुना जाता है १ लाख २५ सहस्र रुपया उपर्युक्त महानुभावो के पास पडा रहा समाज से किसी कारण के पृथक् हो गये रुपया जैसा था वैसा पडा रहा बाद मे आर्यसमाज फरुखाबाद ने मुकदमा लडा और दोनो महानुभावो पर खातो के मुताबिक डिग्री हुई सुना जाता है कि फरुखाबाद ने उस रुपये को कन्या इन्टर कालेज फर्रुखाबाद मे लगा दिया। आगे महानुभाव विचार करें स्वामी जी ने वेदभाष्य किया बहुत सी पुस्तकें लिखी शास्त्रार्थ किये, उस समय देश की बडी शोचनीय दशा थी स्वामी जी को अपने कार्यो से तनिक भी अवकाश न मिलता था, अकेले स्वामी जी अकेले जग विरोधी था। स्वामी जी सत्य के पुजारी थे देश की दशा बिगड चुकी थी।

सत्यार्थ प्रकाश

ईश्वर की सत्ता को प्रथम समुल्लास माहि—
दूजे माहि शिक्षा की नीति निर्धारी है।
तीसरे मे ब्रह्मचर्य विधि को विधान लिखो—
बिना ब्रह्मचर्य नाहि गृहस्थ अधिकारी है।
चौथे समुल्लास माहि गृहस्थ को प्रवेश लिखि—
पाचवें वानप्रस्थ सन्यास सुखकारी है।

छठे मे राज धर्म शोधि के बनायो सबै—
वैदिक पद्धति जौन ऋषि ने निहारी है ॥१॥
सातवें बतायो ईश वेद को विचार "इष्ट"—
आठवें मे सृष्टि उत्पत्ति जतलाई है।
नवें माहि बन्ध मोक्ष विद्या औ अविद्या सबै—
दशमे मे आचार और भक्षाभक्ष समुझाई है।
एकादश हिन्दुन बीच फैले जो कुपथ मत—
तिनके सुधार हित लेखनी लगाई है।
द्वादश माहि जैन बौद्ध भूले जौन जौन "इष्ट"—
ताको समुझावो, ग्रन्थ उनके देखाई है ॥२॥

तेरह मे ईसाई लोग मानत जौन जौन ग्रन्थ—
तिनही की भूल देखि उनको बताई है।
ताहीभाति चौदह मे यवन मत की भलन को—
शोधि-शोधि खोजि-खोजि उनको देखाई है।
अपनो मत इनके बीच तनिक हू लिखो है नाहि—
सत्य की कसौटी सत्यार्थ लिखि गाई है।
अपने मन्तव्य को स्वमव्यामन्तव्य माहि—
लिखिके देखायो पुनि सत्य अपनाई है ॥३॥

इसी भाति स्वामी जी की आज्ञानुसार अपनी सूझ को बढ़ाना चाहिये। हम यदि स्वामी जी के आदेश को नही मानते, और आलसी प्रमादी होकर अपने को नही सुधारते तो ऋणी रहेगे। हम प्रतिज्ञा करें—सत्यार्थ-प्रकाश ऋग्वेदादि भूमिका जीवन चरित्र, प्रति वर्ष एक आवृत्ति करे, यही तीनो सिद्धातत्रयी हैं।

विश्वकर्मा वंशज बालकों को ७०००) का दान

श्री भवानीलाल गज्जूलाल जी शर्मा स्थिर निधि



१—विश्वकर्मा कुलोत्पन्न श्रीमती तिज्जोदेवी-भवानीलाल शर्मा ककुहास की पुण्यस्मृति मे श्री भवानीलाल जी शर्मा अकबरपुर जिला कानपुर वर्तमान अमरावती (विदर्भ) निवासी ने श्री विश्वकर्मा वंशीय बालकों के हितार्थ ७०००) की धनराशि सभा को समर्पण कर भी०जी० शर्मा स्थिर निधि की योजना निम्नलिखित नियमानुसार भाद्रपद स० २०१४वि० सितम्बर १९५७ ई० को स्थापित की।



२—इस मूलधन से वार्षिक ब्याज जो कुछ प्राप्त होगा, उसे उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा विश्वकर्मा वंशज गरीब, असहाय किन्तु होनहार बालक बालिकाओं के शिक्षण मद में व्यय करती रहेगी।

३—उक्त निधि से आर्थिक सहायता लेने वाले इच्छुकों को मास जुलाई में ।) के स्टाम्प भेजकर सभा से छपे फार्म मगाकर भरकर भेजना आवश्यक है।

—मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश





स्वामी जी के जीवन पर आधारित एकांकी–

मृत्यु को जीतने वाले ऋषि

(ले०—श्री डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए०, पी०एच० डी०)

[पृष्ठभूमि–सवत १६४० के कार्तिक मास की अमावस्या और मगलवार का दिन है

साय के पाच बजा चाहते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती मृत्युशय्या पर पडे हैं। कुछ भक्त, श्रद्धालु और शिष्य समीप बैठे हैं, कुछ खडे हैं। सबके चेहरे पर मानसिक व्यथा और आन्तरिक विक्षोभ के चिह्न हैं। सब परेशान से नजर आते हैं। स्वामी जी के नेत्र मुदे हुये हैं।]

एक भक्त–(परेशान) उफ्! कैसी दुर्वह पीडा है। सबको प्रकाश देने वाली इस महान् आत्मा को भी स्वार्थी ससार ने न छोडा कैसी विडम्बना है ससार अपने क्षुद्र स्वार्थो के पीछे कैसा अन्धा हो रहा है? भला स्वामी जी ने किसी का क्या बिगाडा था।

दुसरा भक्त–(क्लान्त विस्मित स्वर मे) मैं तो यह आश्चर्य करता हू कि उस रसोइया की भी कैसी पत्थर की छाती थी जिसने स्वामी जी की हत्या के लिये भोजन मे बारीक काच पीसकर खिला दिया उफ्! मनुष्य की हैवानियत

तीसरा भक्त–(ऋषि के शरीर को देखते हुये) हाय हाय ऋषिवर के सारे शरीर पर विष के छाले उभर आये हैं।

पहला भक्त–(रोते हुये) सांस रुक·रुक· कर आ रही है। हे ईश्वर,क्या बडे महात्माओ को भी मृत्यु से मुक्ति नहीं है

दूसरा भक्त–जलन से स्वामी जी का सारा शरीर जल रहा है। अगर दूसरा मामूली व्यक्ति होता तो कैसी बुरी तरह छटपटाता, चीखता चिल्लाता मोह बन्धन उसे अशान्त करता पर ऋषि ऋषि की आत्मा शरीर को छोडने की तैयारी मे है··· परन्तु वे चुपचाप आराम से लेटे हुये हैं।

तीसरा भक्त–मृत्यु के इन क्षणो मे ही मनुष्य के सयम, एकाग्रता और इन्द्रिय निग्रह की परीक्षा होती है मृत्यु तो सभी को आती है · जो आया है, उसे एक दिन जाना ही है, पर कोई तडप-तडप कर बिलख-बिलख कर मरता है, कोई शातिपूर्वक इस नश्वर शरीर को त्यागता है। इस शान्तिपूर्वक मरने का नाम ही मृत्यु को जीतना है।

पहला—ऋषि को पानी पिलाना चाहिये। गगाजल का बर्तन इधर लाओ शायद इससे इनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी (एक भक्त मेज पर से गगाजल मिश्रित जल लाता है)

पहला—(ऋषि के समीप जाकर) महाराज महाराज आपकी तबियत कैसी है? कुछ जल ले लीजिये। [ऋषि धीरे धीरे नेत्र खोलते हैं। मृत्यु की काली परछाही नेत्रो से चमकती है पर ऋषि का आत्म-विश्वास अडिग है। उन्हे अपने निकलते हुए प्राणो का बोध है। वे जानते हैं कि कुछ ही देर मे मैं इस नश्वर शरीर का परित्याग करने वाला हू। उन्हे यह भी घ्यान है कि व्यर्थ ही उनके भक्त भी उनकी मृत्यु से परेशान न हो।]

ऋषि—(क्षीण स्वर मे) अच्छी है। प्रकाश और अन्धकार का मिलाप है! तुम मेरे जाने से परेशान न होना आर्यसमाज की ज्योति अखण्ड रहनी चाहिये!

पहला भक्त—(शान्ति दिलाते हुए) महाराज आप चिन्ता न करें। हमारे लिये कोई सन्देश दीजिए·……………!

ऋषि—(लडखडाते स्वर मे) हा मरने से पूर्व कुछ कहना चाहता हू मेरे शिष्यो जब आपस मे भाई-भाई लडते हैं तो तीसरा विदेशी आकर पच बनता है क्या तुम महाभारत की बातें भूल गये ? देखो, आपस की फूट से कौरव, पाडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग हम भारतवासियो के पीछे लगा है न जाने वह भयकर राक्षस कभी छूटेगा व आर्यों को सब सुखो और उन्नति से छुडाकर सागर मे डुबो देगा उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग मे आर्य लोग अब तक भी चलकर दुख बढा रहे हैं परमेश्वर कृपा करें हमे छूतछात, जाति-पाति,व्यर्थ के आडम्बरो और इस पारस्परिक फूट जैसे राज रोगो से तुम सब आर्यों की रक्षा करे ।"

[थक कर नेत्र मूद लेते हैं। सब भक्त विस्मित होकर सोचने लगते हैं।]

पहला भक्त—ऋषि की चिन्तन शक्ति मृत्यु के मुँह मे भी उतनी सशक्त है। यह बातें याद रखने की हैं।

दूसरा भक्त—स्वामी जी फिर नेत्र खोल रहे हैं। वह कुछ बोल रहे हैं।

ऋषि—(क्षीण दुर्बल स्वर मे) कमरे के सब द्वार और खिडकिया खोल दो। तुम सब मेरे पास खडे हो जाओ अब मैं जाता हू ।"

[वे अपनी दृष्टि कमरे के चारो ओर घुमाते हैं। फिर बडे गभीर स्वर मे वेद मन्त्रो का पाठ करते हैं। उनके स्वर मे अब भी आकर्षण है। वेद मन्त्रो का गान करके वे चुप हो जाते है। यकायक बैठ जाते हैं।]

एक भक्त—(आश्चर्य से) अरे, इस कमजोरी मे भी ये तो बैठ गये।

दूसरा भक्त—(विस्मित) समाधि लग गई है। बिना हिले डुले सोने की मूर्ति की तरह ये समाधि मे बैठे है।

तीसरा भक्त—मृत्यु को जीत लिया है।

[धीरे-धीरे समाधि भग होती है। अब आखरी घडी आ गई है। आत्मा शरीर को त्याग अनन्त की ओर प्रस्थान कर रही है।]

स्वयं बुझ गया, दीप जग के जला गया

सो रहा था दिव्य देश भारत यहा पै जिसे,
वंचते विदेशी आय तब चन्द चाट मे,
अज्ञान घमण्ड और भेद-भाव बडा भारी,
भ्रम से ही मानता था अपने को ठाठ मे,
'लक्ष्मी' वेद-मित्र तब अस्ताचल पहुचा जा,
घटा टोप तम छाया भारत के घाट मे।
ऋषियो के सरताज दयानन्द महाराज,
उपकार हेतु आये भारत के बाट मे ॥
छून-छात दूरकर बैर को विसार कर,
अज्ञान मिटायकर जग को जगा गया,
ईश को बतायकर प्रीति को बढाय कर,
देवी देवता के सब भूत को भगा गया।
'लक्ष्मी' वेद मित्र और शिक्षा का प्रसार कर,
दिव्य दयानन्द ऋषि, नारी को उठा गया,
देश की भलाई कर, दीपावली पायकर,
स्वय बुझ गया, दीप जग के जला गया ॥

—विजयलक्ष्मी आर्य बी०ए०
आर्यनगर बदायूँ

पहला भक्त—(चकित हो) ऋषि ने फिर आँखे खोल दी है। वे फिर कुछ कह रहे हैं। ध्यान से सुनो

[सब शान्त और चुप ! ऋषि बोलते हैं]

ऋषि—(दिव्य ज्योति की किरणें छोडते हुए) हे दयामय हे सर्वशक्तिमान् तेरी यही इच्छा है। परमात्मदेव तेरी इच्छा पूर्ण हो आर्यसमाज युग युग तक जनता को प्रकाशित करे। अहा ! मेरे परमेश्वर ! तूने अच्छी लीला की ! ओ ३ म् ! ओ ३ म् ओ ३ म् !

[इन शब्दो के साथ ही ब्रह्मर्षि परमधाम को जाने के लिये अपने आत्मिक प्राणो को स्वर्ग की सीढ़ी पर चढाते हैं और फिर श्वास को कुछ देर तक भीतर रोककर 'ओ ३ म्' कहते हुए एक बार ही प्राणो को निकाल देते हैं। सब भक्त रोते हैं। वातावरण विक्षुब्ध हो जाता है। हवायें भयकर चीत्कार करती हैं। शाम के तारे आकाश मे ऋषि की आत्मा का स्वागत करते हैं।]



ऋषि दयानन्द और स्त्रियों का वेदाधिकार

[श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा "पथिक" बी ए साहित्यालंकार, कानपुर]

पौराणिक वर्ग स्त्रियों का वेदाधिकार नहीं मानता है। उन्होंने शूद्र व स्त्रियों को एक कोटि मे रखकर दोनो को वेद से वंचित कर दिया है। बौद्ध व जैन मत के मूलोच्छेद करने वाले आद्य श्री शंकराचार्य ने भी वेदान्तदर्शन' के 'शारीरिक भाष्य' मे दोनों को वेदों से वंचित कर दिया है। यही परिस्थिति अन्य साम्प्रदायिक आचार्यों की भी है। वेद-कान्तदर्शी महर्षि दयानन्द जी ने इस विचार की प्रबल आलोचना अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" मे की है और दोनों को स्पष्ट वेदाधिकार की चर्चा की है।

महर्षि दयानन्द जी मनु० २६।२ के आधार पर मानवमात्र को वेद श्रवण व पढने का अधिकार बतलाते हैं। वास्तव में महर्षि दयानन्द जी का सिद्धान्त नितान्त उचित है। उन्होने "स्त्री शूद्रौ नाधीयताम" की धज्जी उडा दी है।

उपनिषद् काल मे गार्गी ब्रह्मवादिनी का नाम आता है जिसने राजा जनक की राज्य सभा मे ऋषि याज्ञवल्क्य से ब्रह्म विषय पर शास्त्रार्थ किया था। इसका विस्तृत वर्णन "बृहदारण्यकोपनिषद" मे है। इसी प्रकार महाभारत मे 'सुलभा' का नाम आता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों का साक्षात्कार ब्रह्मवादिनी स्त्रियों ने किया था जो मन्त्रद्रष्ट्री कहलाती थीं उनमे गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, ब्रह्मजाया जुहू, अगस्त्य की भगिनी अदिति, इन्द्राणी, इन्द्र माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शश्वती, नद्य, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री, सूर्या, सावित्री, ममता प्रभृति का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

रोमशा ऋ० मण्डल १ सूक्त १२६, मंत्र ७, लोपामुद्रा ऋ० म० १ सू० १७९ म० १-६, नद्य ऋ० म० ३ सू० ३३ म० ४, ६, ८, १०, ममता ऋ० म० ६ सू० १०, मंत्र २, विश्ववारा ऋ० म० ५, सू० २८ म० १-६, शश्वती ऋ० म० ८ सू० १ मंत्र ३४, अपाला ऋ० म० ८ सू० ९१, मंत्र १-७, घोषा ऋ० म० १०, सूक्त ३९, म० १-१४; यमी ऋ० म० १०, सू० १० म० १, ३, ५, ७, ११, १३, अदिति ऋ० म० १० सू० ६० म० ६, इन्द्राणी ऋ० म० १० सू० ८६, शची (पौलोमी) ऋ० म० १०, सू० १४५, म० १-६, सूर्या ऋ० म० १० सू० ८५, म० १-४७, उर्वशी ऋ० म० १०, सू० ९५, मंत्र ४ १८, सरमा (देवशुनी) ऋ० म० १०, सू० १०८, दक्षिणा ऋ० म० १० सू० १०७ म० १-११, वाक् ऋ० म० १० सू० १२५, मंत्र १-८, ब्रह्म जाया जुहू ऋ० म० १०, सू० १०९ म० १-७, रात्रि ऋ० म० १०, सू० १२७ म० १-८, श्रद्धा (कामायनी) ऋ० म० १०, सू० १५१, म० १ ५, गोधा ऋ० म० १०, सू० १३४, म० ६, ७, इन्द्रमाता ऋ० म० १०, सू० १५३ म० १-५, सार्पराज्ञी ऋ० म० १० सू० १८९ म० १-३ की ऋषिकायें हैं।

स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण का भी पूर्ण अधिकार है। बिना उपनयन संस्कार के वेद-मन्त्र पढने का अधिकार ही नहीं है। अत: उपर्युक्त स्त्रियों का भी उपनयन सिद्ध हो जाता है।

सम्प्रति समाज मे स्त्रियों मे उपनयन संस्कार का प्राय अभाव है। आर्यसमाज को ध्यान देना चाहिये। महर्षि दयानन्द के महान् उपकारों मे सबसे अधिक महत्व स्त्री जाति को वेदाधिकार दिलाने का है। इसकी गम्भीरता को हमें सदैव स्वीकार करना चाहिये।



ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राज पुरुषों को जाने।

★ सब कर्मों का यथावत् फल देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

★ जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी हो भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मत को नहीं प्राप्त हो सकता।

★ मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

★ जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है। वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानिमात्र करता रहता है वह पशुओं का भी बड़ा भाई है।

★ आर्य उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य व्यवहारों मे सब से अधिक हो।

★ जो जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

★ संसार मे सुखी दुखी अपने अपने पुण्य पापो के कारण हैं।

★ माता-पिता तथा अध्यापक ईर्ष्या द्वेष से विद्यार्थियों का ताडन न करें।

(क्रमशः)

★ जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है।

★ जो तू मैं अकेला हू ऐसा अपने आत्मा मे जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय मे अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखने वाला मुनि स्थित है, उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।

★ जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे।

★ जब राजा न्यायासन पर बैठ कर न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे।

★ दुष्ट पुरुषो के मारने मे हन्ता को पाप नहीं लगता।

★ सबदा शरीर और आत्मा दोनो के बल को बढ़ाते रहना चाहिए।

★ 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है इसलिये राजा और राजपुरुषो को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

★ ईश्वर को जो मनुष्य न जानते व मानते हैं और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमति सदा दुख सागर मे ही डूबे रहते हैं। इसलिए सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

★ अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर।

★ आत्मा के भीतर से बुरे काम के करने मे अभय, निःशकता और आनन्दोत्साह उठता है वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।

★ जिसने जैसा जितना बुरा किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये उसी का नाम न्याय है।

(क्रमशः)






★ परमेश्वर व्यापक और जीव
प्य है।

★ जैसे माता पिता अपने सन्तानों
कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते है वसे
परमात्मा ने सब मनुष्यो पर कृपा
के वेदो को प्रकाशित किया है जिससे
ध्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूट
विद्या विज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त
हर अत्यानन्द मे रहे और विद्या तथा
ों की वृद्धि करते जायें।

★ जो मनुष्य विद्वान् सत्सगी
हर पूरा विचार नहीं करता वह सदा
मजाल मे पड़ा रहता है। धन्य वे पुरुष
कि सब विद्याओ के सिद्धान्तो को
नते हैं और जानने के लिये परिश्रम
ते हैं।

★ पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं। ((क्रमश)

आवश्यकता

भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, मीराबाई मार्ग लखनऊ के लिये एक एजेंट की आवश्यकता है, जो वेतन अथवा कमीशन के आधार पर छपाई का कार्य ला सके। प्रेस कार्य से जानकार व्यक्तिको वरीयता दी जायेगी। अपनी योग्यता तथा न्यूनतम स्वीकार्य वेतन अथवा कमीशन सहित आवेदन पत्र निम्न पते पर भेजें—

—निर्मलचन्द्र शास्त्री
उपमंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा
५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ

दैनिक स्वाध्याय के ग्रन्थ

(१ ऋग्वेदसुबोध भाष्य—मधु छन्दा, मेधातिथी, शुनः शेप कण्व) परागौतम, हिरण्य गर्भ, नारायण, बृहस्पति, विश्वकर्मा, सप्त ऋषि व्यास आदि, १८ ऋषियो के मन्त्रो के सुबोध भाष्य मूल्य १६) डाक-व्यय १।।)

ऋग्वेद का सप्तम मण्डल (वशिष्ठ ऋषि)—सुबोध भाष्य। मू० ७) डाक व्यय १)

यजुर्वेद सुबोध भाष्य अध्याय १—मूल्य १।।), अष्टाध्यायी मू० २) अध्याय ३६, मूल्य ।।) सबका डाक-व्यय १)

अथर्ववेद सुबोध भाष्य—(सम्पूर्ण २० काण्ड) मूल्य५०) डाक-व्यय ६)

उपनिषद् भाष्य—ईश २), केन ।।), कठ १।।।) प्रश्न १।।) मुण्डक १।।) माण्डूक्य ।।), ऐतरेय ।।।) सबका डाक व्यय २)।

श्रीमद्भगवतगीता पुरुषार्थ बोधिनी टीका—मूल्य २०) डाक-व्यय २)

चाणक्य—सूत्राणि

पृष्ठ-संख्या ६९० मूल्य १२) डाक-व्यय २)

आचार्य चाणक्य के ५७१ सूत्रो का हिन्दी भाषा में सरल अर्थ और विस्तृत तथा सुबोध विवरण भाषान्तकार तथा व्याख्याकार स्व० श्री रामावतार जी विद्याभास्कर, रतनगढ़ जि० बिजनौर। भारतीय आर्य राजनैतिक साहित्य मे यह ग्रन्थ प्रथम स्थान मे वर्णन करने योग्य है, यह सब जानते हैं। व्याख्याकार भी हिन्दी जगत् मे सुप्रसिद्ध हैं। भारत राष्ट्र अब स्वतन्त्र। इस भारत की स्वतन्त्रता स्थायी रहे और भारत राष्ट्र का बल बढ़े और भारत राष्ट्र अग्रगण्य राष्ट्रो मे सम्मान का स्थान प्राप्त करे, इसकी सिद्धता करने के लिए इस भारतीय राजनैतिक ग्रन्थ का पठन-पाठन भारत भर में और घर-घर मे सर्वत्र होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए इसको आज ही मगाइये।

ये ग्रन्थ सब पुस्तक विक्रेताओ के पास मिलते हैं।

पता—स्वाध्याय मण्डल किल्ला पारडी, जिला सूरत

★ संसार में तो सच्चा झूठा दोनों सुनने में आता है परन्तु उसको विचार से निश्चय करना अपना काम है।

★ जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

★ मेरा मन शिवसंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करने हारा होवे। किसी की हानि करने की इच्छा युक्त कभी न हो।

★ मेरा मन इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ में सदा चलाया करे। ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये।

★ अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।

★ जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं, वे महामूर्ख हैं।

★ धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है।

★ जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त व उसका स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र व विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।

★ किसी से वैर न रक्खे।

★ राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे।

★ जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है।

★ परोपकार के लिये सत्पुरुषों का का तन, मन, धन होता है।

★ जो भक्त ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है।

★ ईश्वर भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता।

★ जिनको विद्या नहीं होती वे पशु के समान यथा तथा बड़बड़ाया करते हैं जैसे सन्निपात ज्वर युक्त मनुष्य अण्ड बण्ड बकता है वैसे ही अविद्वानों के कहे व लेख को व्यर्थ समझना चाहिए।

★ कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःखमय फल भोगने में परतन्त्र होता है। (क्रमशः)

★ जिस कुल मे स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल मे आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है।

★ जल से बाहर के अंग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है।

★ पाखण्डी, वेद विरुद्ध आचरण करने वालों, बैडालवृत्ति, शठ और कुतर्की का वाणी मात्र से सत्कार न करें।

★ ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मातुल, अतिथि, बालक, वृद्ध, रोगी, वैद्य, सम्बन्धी, मित्र, माता, पिता, बहिन, भाई, पत्नी, पुत्री और भृत्य से कभी झगड़ा न करें।

★ जो दुष्ट अधर्मी हैं उनसे उपेक्षा अर्थात् द्रोह छोडकर उनके सुधारने का यत्न किया करे।

★ जो अविद्या के भीतर खेल रहे अपने को धीर और पंडित मानते हैं वे नीच गति को जाने हारे, मूढ़ जैसे अन्धे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं, वैसे दुखों को पाते हैं।

★ दुष्ट व्यसन मे फसने से मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक अधिक पाप करके नीच नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुख को प्राप्त होता जायगा।

★ बुद्धिमान, कुलीन, शूर, वीर, चतुर, दाता, किये हुये को जानने हारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा वह दुख पावेगा।

(क्रमशः)

★ छल, कपट और कृतघ्नता से अपना ही हृदय दूषित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये।

★ मनुष्य का आत्मा उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म, स्वभाव, से भूषित होता है, जेवरों से नहीं।

★ जो धर्माचरण से रहित है, वह वेद प्रतिपादित धर्मजन्य सुख रूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है, वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।

★ जो पुरुष अर्थ और काम मे नहीं फसते हैं, उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

★ जैसा अपने को सुख-प्रिय और दुख अप्रिय है, वैसा ही सर्वत्र समझ लेना।

★ ऋषि-कृत ग्रन्थ पढ़ने चाहिए, मनुष्य कृत नहीं।

★ विद्या विद्वान के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, मूर्ख के लिये नहीं।

★ दुष्टों को दण्ड देना चाहिये और श्रेष्ठों का पालन करना चाहिये।

★ वेद ईश्वर-कृत होने से निर्भ्रान्त और स्वत प्रमाण है।

★ सब स्त्री और पुरुषों को वेद पढ़ने का अधिकार है।

★ चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त क्वारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का कभी विवाह न होना चाहिये।

★ वर्ण व्यवस्था, गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए।

(क्रमशः)

★ परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवो को असत्य स्वार्थ लेकर परोपकार करना है।

★ श्रेष्ठो का नाम आर्य, विद्वान् के देव और दुष्टों के दस्यु मूर्ख नाम होने से, आर्य और दस्यु दो नाम हुए।

★ दुष्टात्माओं से न प्रीति करे, न वैर करे। सकलनकर्ता—
श्री कृष्णदत्त आयुर्वेदालंकार, फैजाबाद

ओ३म्

साप्ताहिक आर्यमित्र ऋष्यङ्क

वर्ष ६६ | लखनऊ रविवार कार्तिक १० शक १८८६, कार्तिक कृ० १२ वि० २०२१
१ व ८ नवम्बर सन् १९६४ ई०, दयानन्दाब्द १४०, सृष्टि सवत १,९७,२९,४९,०६५ | अङ्क ४३-४४




ऋषि-निर्वाण

जिसने जनता के हित मे निज तनु को होम दिया है,
पी तीव्र गरल की धारा वसुधा को सोम दिया है।
जननी या जनक जनो से जिसने था नाता जोडा,
मिट्टी को प्यार किया था कञ्चन भवनो को छोडा ॥१॥

लहराई जिसकी जग मे गङ्गा सी पूत जवानी,
कण कण वसुधा का कहता है जिसकी अमिट कहानी।
व्रत ब्रह्मचर्य की वरदा पावन प्रतिमा प्रकटाई,
सागर भी नाप न सकता है जिसकी गुरु गहराई ॥२॥




ले ज्ञान रश्मियां स्वर्णिम भूतल पर रवि सम आया,
पाखण्ड पुरातन तमसा को पल मे दूर भगाया।
शास्त्रार्थ-समर मे निर्भय निर्द्वन्द्व नृसिंह दहाडा,
अभिमानी पथ विरोधी वृन्दो को शीघ्र पछाडा ॥३॥

वेदों की ज्ञान सुधा से सींची मानवता क्यारी,
दर्शन की दीप दया से थी सुषुमा त्रित्व निहारी।
मिथ्या उन्मूलन करके मधुमूल मन्त्र उमगाया,
"सत्यार्थ प्रकाश" प्रभा से था सत्य सुरत्न दिखाया ॥४॥




भारत की राष्ट्रियता का था बीज हृदय मे बोया,
जन मन को जागृत करके जो आज यहीं था सोया।
जिसके सिद्धान्त जगत् मे निश्चित सी निधि अक्षय हैं,
जिसके गुरु गौरव गीतो की सरगम अमर अमय हैं ॥५॥

उसके निर्वाण-दिवस पर फिर क्यों न चेतना जागे,
आर्यत्व स्नेह मे अवनी को क्यो न साधना पागे।
ससृति के हृदय-सदन मे श्रद्धा के दीप जलाओ,
तब सत्य रूप मे आर्यो ऋषि अनुगामी कहलाओ ॥६॥




कविवर—"प्रणव" शास्त्री एम० ए०

सम्पादकीय–

तमसोमा ज्योतिर्गमय

महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस का आर्यसमाज, भारतवर्ष और विश्व की मानव जाति के लिये एक ही सन्देश है, अज्ञान को नष्टकर ज्ञान का प्रकाश करो। ऋषि जीवन पर्यन्त इसी साधना मे रत रहे उनके जीवन का एक-एक क्षण अज्ञान के नाश और ज्ञान के प्रसार मे सलग्न रहा, ऋषि की कठोर साधना ने देशवासियों के हृदयों में वह दिव्य ज्योति जागृत की कि सोया भारत जाग उठा, बूढे भारत मे फिर से नयी जवानी का रक्त-सचार आरम्भ हो गया और देशवासी स्वाधीनता और सुराज्य की कल्पनायें करने लगे। आर्यसमाज की स्थापना द्वारा वे विश्व-उपकार के महान् मिशन की पूर्ति करना चाहते थे परन्तु आर्यसमाज के लिये भारत की समस्या उपेक्षणीय नहीं हो सकती थी इसीलिये सार्वभौम उद्देश्य वाला सगठन होने पर भी आर्यसमाज की विशेष गति विधियां भारतीय जीवन से सम्बन्धित रहीं और भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रो मे एक हड कम्प पैदा हो गया। ऋषि चाहते थे कि पहले हम अपने घर का सुधार करलें ससार का सुधार अपने आप हो जायगा इसलिये ऋषि ने पाखण्ड-खण्डन का दुधारा इस तीक्ष्णता और वेग से चलाया कि स्वार्थी और अन्यायी घबरा उठे, ऋषि को जीवन मे चौदह बार विषपान करना पड़ा पर वे 'निन्दन्तु नीति निपुणा' के अनुसार अपने मिशन मे अडिग रहे। अज्ञान, अन्याय, अभाव के विरुद्ध उन्होंने जो अभियान चलाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना आरम्भ काल मे था आज देश स्वाधीन है पर देश का नेतृत्व मानसिक रूप से पराधीन है और पश्चिम के भौतिकवादी आकर्षण मे फसकर नकलची मनोवृत्ति का प्रदर्शन कर रहा है। इस आत्म-हनन की स्थिति को समाप्त करने के लिये ऋषि दयानन्द का जीवन एक आदर्श प्रेरणा स्त्रोत है। स्वदेश, स्वभाषा, स्वसभ्यता, स्ववेशभूषा आदि के प्रति गौरव की भावना यदि समाप्त हो गयी तो भारत का बचा-खुचा गौरव भी समाप्त हो जायगा। अत आज देशवासियों के लिये ऋषि निर्वाण-दिवस की यही प्रेरणा है कि वे राष्ट्र के लिये राष्ट्रीय जीवन-पद्धति, राष्ट्रीय रहन-सहन, आचार विचार आदि की सहिता निर्धारित करें। पश्चिम के अन्धानुकरण ने हमारी स्वतन्त्रता को स्वच्छन्दता मे बदल दिया है। मर्यादा रहित जीवन प्रणाली किसी भी राष्ट्र को कभी आगे नहीं बढ़ा सकती वह राष्ट्र चाहे कितना ही महान् हो अवश्य पतनावस्था को प्राप्त होगा यही कारण है कि १८ वष के राष्ट्र निर्माण के बाद देश आज भ्रष्टाचार की व्यापक दलदल मे बुरी तरह फस गया है। भ्रष्टाचार दलदल से राष्ट्र को निकालने का एकमात्र मार्ग है राष्ट्र के जीवन मे आस्तिकता और नैतिक मूल्यों की स्थापना। आज सब जगह समाजवाद का नारा गूज रहा है परन्तु आस्तिक विचारधारा से अधिक समाजवाद क्या हो सकता है जिसके कारण शोषण और अन्याय सम्भव ही नहीं रह जाते, "अहिंसा प्रतिष्ठायां वैर त्याग" जब वैर भाव ही न रहेगा तब शोषण और अन्याय हो कैसे होगा। इस लिये आज देश को सबसे अधिक आवश्यकता आस्तिक भावना के प्रसार की है।

आर्यसमाज के सभी कार्य मानव उपकार योजना के अग हैं परन्तु उन सबके मूल मे आस्तिक भावना प्रमुख है। आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य के जीवन मे ईश्वर विश्वास सव्याप्त रहना चाहिये और देशवासी भी ईश्वर विश्वास को सही रूप मे समझ सकें इसका प्रयत्न हमे करना चाहिये। वान्त के 'सवखल्वमिद ब्रह्म' और गगा स्नान और कथा से पापमुक्ति वाली आस्तिकता व्यक्ति को निष्कर्मण्य और पाप मनोवृत्ति वाला बनाती है, अत आवश्यकता इस बात की है कि हम कर्मवाद के सिद्धान्त का प्रचार करें और कमफल अवश्यम्भावी है इसमे आस्था उत्पन्न करें, देश मे व्याप्त भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति में परिवर्तन आ जायगा।

आज विश्व मे भय, अशान्ति और सघर्ष का जो वातावरण सव्याप्त है उस सबका कारण भी अमर्यादित और भौतिकवादी जीवन पद्धति है, महर्षि दयानन्द की शिक्षाओ का यदि व्यापक प्रचार और प्रसार विश्व के बौद्धिक जगत मे किया जा सके तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि ससार के विचारक उससे अवश्य प्रभावित होंगे। रोमारोलां और एण्ड्रयू जैक्सन जैसे विद्वानों ने ऋषि के महत्व को स्वीकार कर उनका सन्देश विश्व मानव तक पहुचाया है।

मानव मुक्ति का प्रवर्त्तक दयानन्द

संवत १९४० वि० (३० अक्तूबर १८८३ ई०) की दीपावली की दीप-शृङ्खला को युग-पुरुष महर्षि दयानन्द के निर्वाण ने अलौकिक दीप्ति प्रदान की। विष पान से शरीर आबलो से छलछलाया हुआ था, तो भी ऋषि गम्भीर मुद्रा मे वेदपाठ मे सलग्न था और अपने ही घातक, दूध मे विष देने वाले जगन्नाथ को यह कहकर क्षमा दान दे रहा था कि 'मैं तो ससार मे मानव समाज को बधनों से मुक्त करने आया हू, तो तुझे बन्दी करके शूली पर थोडे चढाऊँगा'। उसे मार्ग व्यय दिया और आशीर्वाद देकर विदा किया। तदुपरान्त यह कहकर अपने शरीर को छोडा 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो'। ससार के समक्ष यह उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया कि सत और ज्ञानी, योगी और यति अपने जीवन से देश और काल को सुरभित व आनन्दमय करता रहता है और मौत से मिटते हुए भी जीवन की जनहित रूपी सुषमा को दूषित नहीं होने देता। क्या आर्यसमाज अपने प्रवर्तक ऋषि के पद-चिह्नों पर चलकर देश और राष्ट्र पर अपना सर्वस्व न्योछावर करके उसके उन्नयन मे सन्नद्ध होगा ? यदि नहीं, तो निर्वाण दिवस मनाना व्यर्थ होगा।

मदनमोहन वर्मा प्रधान

उत्तरप्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा तथा अध्यक्ष विधान सभा

आर्यसमाज के प्रमुख अधिकारियो और विद्वानो को सम्मिलित रूप से ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि ऋषि की विचारधारा सही रूप मे विश्व-जनता तक पहुचे। इस कार्य के लिये सार्वदेशिक सभा के विदेश प्रचार विभाग मे साहित्य निर्माण का कार्य शीघ्र आरम्भ होना चाहिये। लन्दन मे आर्यसमाज बनता बिगडता रहा है अब वह कब साकार रूप धारण करेगा नहीं कहा जा सकता परन्तु अब 'हिन्दू-भवन' बनने की योजना सामने आ चुकी है। आर्य समाज को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न हो कि भारतीय विचार-धारा का सही रूप मे प्रतिनिधित्व हो सके। यदि वहाँ भी पाखण्ड-स्वरूप प्रचलित हुआ तो भारत का अपयश ही होगा। भारत वेदो का अनुयायी है पर वेदों के सम्बन्ध में भ्रातिया दूर करने के लिये कोई प्रयत्नशील नही, इस दिशा मे भी आर्यसमाज का विशेष दायित्व है।

महर्षि निर्वाण दिवस हम आर्य जनो के लिये शुभ-सकल्प और आत्म निरीक्षण का दिवस है। हम शुभ-सकल्प लें कि हम महर्षि के बताये पथ पर दृढ़तापूर्वक चलेंगे और भारत को आदर्श राष्ट्र बनायेंगे तथा विश्व शान्ति के लिये वैदिक सन्देश गुंजायेंगे। महर्षि ने जो कार्य हमे सौंपा है उसकी पूर्ति मे विश्राम सम्भव ही नहीं। आज की भाषा में हमारा नारा 'आराम हराम है' और ऋषि वाणी मे हमारा मार्ग है–' चरैवेति चरैवेति चरैवेति" ★

आभार

हम "आर्यमित्र" के विद्वान् लेखकों, कवियों के आभारी हैं जिन्होने अपनी अमूल्य लेखनी का प्रसाद आर्यजगत् को दिया है। स्थानाभाव से जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके हैं आशा है वे क्षमा करेंगे। –डा राजेन्द्र, उपसपादक

❀ आवश्यक सूचना ❀

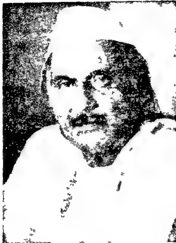
आर्यमित्र का यह ४३-४४ सयुक्त अक ऋष्यक है। जो दिनाक १ व ८ नवम्बर का है। अब अगला अक १५ नवम्बर को प्रकाशित होगा। पाठक नोट कर लें।

—चन्द्रदत्त तिवारी मन्त्री व अधिष्ठाता "आर्यमित्र"

महान् दयानन्द !



पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों मे जिन महापुरुषों ने भारत भूमि को पवित्र किया है उनमे स्वा० दयानन्द सरस्वती का स्थान बहुत ऊंचा है। सैकड़ों वर्षों से सोये हुए हिन्दू समाज की आत्मा को उद्बुद्ध करने का



श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी

बहुत बडा श्रेय उनको है। उनके दार्शनिक विचारों से असहमत होना सम्भव है, वेदो की उन्होने जो व्याख्या की है उसको बहुत से स्थलो मे स्वीकार न करना सम्भव है परन्तु उनका उज्ज्वल चरित्र, ज्वलन्त देश प्रेम, गम्भीर विद्वत्ता और हिन्दुओं के अभ्युदय के प्रति अनन्य निष्ठा के सम्बन्ध मे दो राय नहीं हो सकतीं। यदि आज हिन्दू समाज अपनी बहुत सी रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियो को छोड सका है तो इसमे सन्देह नहीं कि यह बहुत दूर तक स्वामी जी के उपदेशो का प्रभाव है। जो लोग उनके विचारो से पूर्णतया सहमत नहीं हैं उनके हृदय मे भी स्वामी दयानन्द जी के प्रति आदर की भावना है। मैं भी इस अवसर पर आपके साथ उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

—सम्पूर्णानन्द, राज्यपाल, राजस्थान

राष्ट्रोद्धारक दयानन्द !



हमारे देश की राष्ट्रीयता को जागृत करने में महर्षि दयानन्द की महान् देन है। वे ऐसे युग मे पैदा हुए जिस युग मे भारत मे, पाखड, अन्धविश्वास और दासता का बोलबाला था। इस देश की आत्मा पर अनेक आघात हो रहे थ। महर्षि ने देश के कोने कोने में घूम घूम कर देश की आत्मा को जागृत करने के लिये अलख जगाया। उन्होने नये समाज के निर्माण के लिये क्षेत्र तैयार किया और देश की स्वतन्त्रता के लिये मार्ग सुगम किया। वे व्यावहारिक राजनीतिज्ञ नहीं थे पर उन्होंने देश को राजनीति का बौद्धिक ज्ञान दिया।

महर्षि दयानन्द भारत मे स्वराज्य की कल्पना करते थे और उन्होने आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य मे जहा वैदिक धर्म की आस्था को स्थिर करने का प्रयास किया वहा उन्होने देश-भक्ति का पाठ भी पढ़ाया।

पद-दलितों को समाज मे उचित स्थान मिले इसके लिए आर्यसमाज ने विशेष कार्यक्रम बनाकर कार्य किया। आर्यसमाज मे सबको समान रूप से सम्मान प्राप्त है। समता तथा समानता का वास्तविक पाठ यदि किसी ने सिखाया है तो वह महर्षि दयानन्द थे। अछूतों के साथ होने वाले अमानुषिक व्यवहार को उनके प्रचार ने कुछ शिथिल किया। आज भी अस्पृश्यता का अभिशाप विद्यमान है। महर्षि दयानन्द जिस स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे, उसमे अस्पृश्यता को स्थान नहीं है। आर्यसमाज आज भी अपने कर्तव्य पालन मे सचेष्ट है। महर्षि के बतलाये हुए आदर्शों पर चलकर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धा भक्ति दिखा सकते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक थे।

मै दीपावली के इस पुण्य पर्व पर महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

—बल्देव सिंह आर्य
उपसचिव कृषि, उत्तर प्रदेश



'यथायोग्य व्यवहार'—

तलवार का जवाब तलवार से

(ले०—श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री एम०पी०, मुख्य उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश)

शान्ति सहिष्णुता और सन्तोष की भी तो एक सीमा होती है। भगवान कृष्ण ने सौ गाली पूरी होने तक तो शिशुपाल को क्षमा कर दिया था पर एक सौ एक



लेखक

होने पर सुदर्शन चक्र हाथ मे रुकना भारी हो गया और शिशुपाल को हमेशा के लिये रास्ते से हटा दिया। पाकिस्तान के निर्माता भारत की उदारता को कमजोरी समझ रहे हैं। हम चाहते हैं कि दोनों देश भले पड़ोसियो की तरह रहना सीखें पर उन पर हमारी इस अपील का कोई खास असर नहीं होता। हमारी हर अच्छी बात को वह ठुकरा देता है और बार बार म्यान से तलवार निकाल कर डराना चाहता है। हजारों हिन्दुओं का खून बहा कर दिया गया जिसकी हवा धीरे धीरे भारत मे भी फैलने लगी। अगर वह अपनी इन आदतो से बाज नहीं आयेंगे तो फिर मजबूर होकर तलवार का जवाब तलवार से देना होगा। यह थे वो भाव सरदार पटेल के उन शब्दों के जो पाकिस्तानी मनोवृत्ति के नेताओं को जवाब देते हुए उन्होंने मेरठ के कांग्रेस अधिवेशन में कहे थे। सरदार जानबूझ कर लड़ाई मोल लेने के पक्ष मे कभी नहीं थे परन्तु लड़ाई यदि सर पर लाद ही दी जाय तो उससे बच कर भागना भी महा कायरता समझते थे। उनका अपना विश्वास था कि देश और जातियां हमेशा अपने शक्ति बल से ही सुरक्षित रहती हैं। इतिहास मे जब जब भी इनकी उपेक्षा की गई तब तब ही चोट लगी है। सरदार के देहावसान के बाद भारत के पड़ोसी राष्ट्र चीन ने अपनी कूटनीति मे भारत के कुछ शीर्षस्थ नेताओ को फसा लिया। भगवान बुद्ध और पञ्चशील की आड़ मे हम यह भूल बठे कि यह इस महादानव की एक चाल मात्र है। उसी चक्कर मे सेना पर अधिक व्यय और उसे आधुनिकतम हाथियारों से लैस करने की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका। पर जब नेफा और लद्दाख मे एक दिन उसके इरादे खुलकर सामने आये तब फिर हमारे नेताओं ने कहा कि चीन ने विश्वासघात किया है और उसने पीछे से हमारी पीठ में छुरा भोंका है। चीनी आक्रमण के समय भारत पर हर छोटा बड़ा एक स्वर से यह ही कहता सुनाई देता था, काश कहीं सरदार पाच सात साल और जीवित रह गये होते तो भारत का यह स्वाभिमान हिमालय की चोटियो पर इस तरह नष्ट न होता। उस चोट के लगने के बाद एक बात अच्छी हुई और वह यह कि देश फुकार कर खड़ा हो गया और नेता भी कहने लगे कि इस हमले ने हमारी आखें खोल दी हैं। परन्तु दुर्भाग्य से न तो देश की एकता का ही लाभ उठाया गया और न खुली ही आखों से दूर तक कुछ देखने की कोशिश ही की गई। परिणाम सामने है, लड़ाई फिर सिर पर खड़ी है और नहीं कहा जा सकता कल क्या होने वाला है ?

भारत की साढ़े पाच सौ के लगभग रियासतो के विलीनीकरण का प्रश्न इतना भारी था जिसे सुलझाना सरदार के ही बस की बात थी। खून की एक बूद गिराये बिना बड़े प्रेम और सद्भाव से इस तरह देश के राजाओं को सरदार ने अपने साथ के लिया, यह उनकी सूझबूझ

ा ही परिणाम था। एक-आध जगह कहीं हल्की सी हलचल यदि करनी भी पडी तो वो भी विवश होकर। रन्तु अकेले सरदार सारी रियासतों को भारत मे दूध और पानी की तरह मिलाकर ऐसे एकाकार कर गये जैसे बहुत पहले से मानो उन्होने कोई इसकी योजना बना रखी ी, परन्तु आश्चर्य है, सत्रह साल की लम्बी अवधि बीतने के बाद भी अभी तक भारत के सब नेता मिलकर एक काश्मीर की समस्या का समाधान नहीं कर पाये। सरदार के हाथ मे यदि यह भी बात होती तो न जाने कब का इस समस्या का भी हल हो गया होता। अब जिस ढग से जम्मू काश्मीर की समस्या का समाधान सोचा जा रहा है उससे बात कुछ बिगड ही रही है बन नहीं रही। महाराज हरीसिंह जिन और कई कारणो से जल्दी ही जम्मू काश्मीर का भारत मे विलय नहीं कर सके, उनमे एक प्रमुख कारण यह भी था कि तत्कालीन भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू शेख अब्दुल्ला को उस राज्य का प्रधान मन्त्री बनाना चाहते थे। महाराज हरीसिंह ने भारत सरकार को इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ समझाया भी पर उसका कोई विशेष प्रभाव न हो सका। पर आखिरकार १९५३ मे महाराज हरीसिंह की बात सामने आई जब शेख अब्दुल्ला को उनकी भारत विरोधी गतिविधियों के कारण जेल मे डालना पडा। सरदार पटेल का अतिम समय तक शेख अब्दुल्ला के सम्बन्ध मे यह विश्वास था कि यह व्यक्ति कभी भारत का वफादार नहीं हो सकता पर वह इसके लिये करते भी क्या ? क्योंकि काश्मीर ही एक ऐसी रियासत थी जिसके भारत मे मिलाने का दायित्व स्वय श्री नेहरू ने अपने कन्धों पर ले लिया था। सरदार का यह भी विश्वास था कि जो शरणार्थी सीमा प्रान्त और पजाब से उजड कर आ रहे हैं उनको भारत के सीमावर्ती राज्य मे बसने की सुविधायें दी जायें और उनके लिए वहा अच्छे कारोबार भी चलाने की व्यवस्था की जाय, परन्तु शेख के चक्कर मे वह सब भी सभव न हो सका। अब फिर करोडो रुपया उसके मुकदमे पर व्यय करने के बाद बिना निर्णय पर पहुचे उसे फिर जेल से बाहर कर दिया है और वह निर्भय होकर काश्मीर को जनमत सग्रह की आड में भारत से पृथक् करने के स्वप्न ले रहा है। वर्तमान भारत सरकार और उसके नेता काश्मीर राज्य के एकीकरण में बाधक सविधान की धारा ३७० को हटाने मे इसलिये हिचकते हैं कि इससे विश्व जनमत हमारे खिलाफ हो जायेगा, पर सरदार देश की समस्याओं के समाधान में विश्व के जनमत की उतनी परवाह नहीं करते थे जितना अपने देशवासियों के मत का वह ध्यान रखते थे। शत्रु को तैयारियों के लिये लम्बा समय देना सरदार की नीति के विपरीत था। उनका अपना विचार था जो काम करना है उसे जल्दी ही कर लिया जाय। देर करने से उसमे और शाखा, प्रशाखा फूटने का भय है। आज या कल जब भी हो काश्मीर की समस्या का समाधान अर्थात् जो धरती इस समय पाकिस्तान के अधिकार मे काश्मीर की है उसे तलवार के बल से ही लेना होगा। थाली मे रख-कर पाकिस्तान उपहार की तरह भारत को भेंट मे वह भाग दे देगा ऐसा सोचना भी अपनी अदूरदर्शिता का ही परिचायक होगा। ठीक वह ही स्थिति लगभग चीन के सम्बन्ध मे भी है। विश्वासघात कहें अथवा अपनी राज-नीतिक सूझ-बूझ का अभाव उसने जब तिब्बत पर निरीह लामाओं का कत्ले आम किया था हमें सावधान हो जाना चाहिए था। फिर जब बद्रीनाथ के पास बाराहोती में अपनी सेनायें उसने भेज दीं तब तो आंख खुल ही जानी चाहिये थी पर हमें पचशील की हवाओं ने इतना मस्त बना दिया था जो हम यह सब सोच भी न पाये। पर क्या आज यह सभव है कि मुट्ठी-मुट्ठी भर लोगों के वह देश जो कोलम्बो सम्मेलन में सम्मिलित हुये थे, चीनी अणुबम की उपेक्षा करके भारत के साथ चीन के विरोध मे ताल ठोंक-कर खडे हो जायेंगे और कोलम्बो प्रस्ताव स्वीकार न करने पर खुलकर कहेंगे कि हम भारत के साथ रहेंगे। कैरो में हुए तटस्थ राष्ट्रों के सम्मेलन में जिन्हें अपने प्रस्तावों की पृष्ठ भूमि मे बैठकर चीनी धमकी से बैठक करने तक का भी साहस न हुआ, कब तक उनके भरोसे बैठा रहा जायेगा ? चीन जब अणु बम का विस्फोट कर चुका है तब ये कहना हम उसके विरोध मे जनमत तैयार करेंगे, अपनी दुर्बलता का ही परिचय देना है। यदि अणु बम तैयार करने की शक्ति हम में है तो क्यों नहीं आत्म-रक्षा के लिए वह भी साहसिक कदम हम उठाते ? शक्ति प्रदर्शन के युग में शान्ति का जयघोष देश को ले बैठेगा। सरदार की

[शेष पृष्ठ ८ पर]



भेदभित्ति समादर



(ले०—श्री स्वा० ध्रुवानन्द जी सरस्वती)

प्रश्न—जब महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज से पूर्व अनेक सन्ध्या पद्धति-विद्यमान थीं तब श्री स्वामी जी महाराज ने एक नूतन सन्ध्या पद्धति का निर्माण क्यों किया ?

उत्तर–(क) समस्त सन्ध्या-पद्धति आधारशून्य साधार नहीं थी।

(ख) मन्त्रों का विनियोग निरर्थक था सार्थक नहीं था।

(ग) उन संध्या पद्धतियों में भेदभित्ति का प्रचुर प्राबल्य था।

प्रश्न—आधार-शून्य साधार का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—सन्ध्या पद्धति का क्रम यदि वेद, उपनिषद् आदि से अनुमोदित है तो वह सन्ध्या पद्धति साधार है। वेद का आदेश है कि—"उपत्वा अग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि" हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म परमात्मन ! प्रतिदिन साय प्रात "नमो भरन्त" तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो" "नम शम्भवाय च" नम पूर्वक आपकी उपासना करें। इसमे प्रतिदिन सायकाल और प्रात काल सन्ध्या का विधान है और वह सन्ध्या नम पूर्वक हो। अपि च—

कल्पना कीजिये—स्टेशन पर पहुचने वाले व्यक्ति के लिये एक तागा ठीक हो, घोडा बलवान हो, और ट्रेंड हो उसके मुख में लगाम हो, ड्राइवर दक्ष हो और अन्धा न हो। ऐसे तागे में बैठने वाला व्यक्ति ही स्टेशन को (प्राप्तव्य स्थान को) प्राप्त कर सकता है। उपनिषद का उपदेश है कि—"आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेवतु बुद्धि तु सारथिम विद्धि मन प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहु विषयांस्तेषु गोचरान्" शरीर रथ (तागा) है, इन्द्रिया घोडे हैं, मन लगाम है, बुद्धि ड्राइवर है, जीवात्मा यात्रा करने वाला है और वेद प्रतिपादित कर्मकाण्ड ही सडक है। अर्थात् वेद प्रतिपादित कर्मकाण्ड की सड़क पर जो व्यक्ति शरीर रूपी तांगे को चलावेगा वह ही आनन्दकन्द परब्रह्म परमात्मा को पा सकेगा।

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा निर्मित सन्ध्या पद्धति में यह दो प्रकार निहित है अतएव वैदिक सन्ध्या साधार है। आचमन से लेकर प्राणायाम तक एक प्रसग है।



श्री स्वा ध्रुवानन्द जी

अर्थात् स्नान से शरीर शुद्धि, आचमन से कण्ठ -शुद्धि, इन्द्रिय स्पर्श से इन्द्रियों मे बलाधान, मार्जन से इन्द्रिय-दोष दूरीकरण, प्राणायाम से मन की स्थिरता करना है। यहां तक एक प्रसग (प्रकरण), अघमर्षण द्वितीय प्रसग, मनसा परिक्रमा तृतीय प्रसग और उपस्थान चतुर्थ प्रकरण है। प्रथम प्रकरण मे प्रभु प्राप्ति के लिये सान्निध्य होना है (योग्य बनना है) पुन अभिमान निवारणार्थ प्रभु के गुणों का चिन्तन करना है। प्रभुगुण चिन्तन ही अभिमान निवारण का असाधारण साधन है। अभिमान रहित विधिवत याचक हो दाता के पास पहुच कर कुछ पा सकता है। इसीलिये श्री स्वामी जी महाराज ने चतुर्थ प्रकरण का नाम उपस्थान रखा है।

(ख) विनियोग का यह अर्थ है कि जिस मन्त्र का



जो अर्थ हो उस मन्त्र को उसी अर्थ मे लगाना। विनियोग दो प्रकार का होता है। शब्दगत विनियोग और अर्थगत विनियोग। शब्दगत विनियोग उसे कहते हैं कि मन्त्र मे शब्द आया हो। 'शन्नोदेवी'– यह आचमन मन्त्र है अर्थात् इस मन्त्र से आचमन किया जाता है किन्तु इस मन्त्र मे 'आचमन' शब्द नहीं है इसलिए शब्दगत विनियोग नहीं है अपितु अर्थगत विनियोग है। अर्थात् इस मन्त्र मे ऐसा पद है जिसका अर्थ आचमन होता है। "पीतये–पानाय–आचमनाय" आप –इम आप, श भवन्तु। अपि च–

"ऋतं च सत्यञ्चाभिद्धात " इन तीनों मन्त्रों मे भी 'अघमर्षण शब्द नहीं किन्तु अघमर्षणार्थक मन्त्र लिखे हैं। यहा पर भी अर्थगत विनियोग है।

जिस लेखक की पुस्तक मे या लेख में अथवा जिस वक्ता के प्रवचन मे उपक्रम और उपसहार हो तो वह लेखक और वक्ता प्रशंसा का पात्र समझा या माना जाता जाता है। आरम्भ का नाम उपक्रम और समाप्ति का नाम उपसहार है। लेख या प्रवचन जिस विषय को लेकर आरम्भ किया गया हो उसी विषय पर समाप्त होना चाहिये। श्री स्वामी जो महाराज द्वारा निर्मित सन्ध्या पद्धति को यह गौरव भी प्राप्त है। यथा हि–वाक वाक्– उपक्रम प्रश्नवास शरद शतम उपसहार है। करतल कर पृष्ठे उपक्रम, अदीना स्याम शरद शतम् उपसहार है।

(ग) भेदभित्ति का प्रचुर प्राबल्य का अभिप्राय यह है—चारो वेदों की जितनी शाखायें हैं उन सब शाखाओ का समर्थन स्मृतिकारों ने किया है और निम्न प्रकार से आदेश दिया है–

येषां पारपर्यागतो वेद सपरिवृहण ।
तच्छाखं कर्म कुर्वीत तच्छखाऽध्ययनन्तथा ॥

अर्थात् परम्परा से जिस परिवार मे जिस वेद की मान्यता चली आई हो उस परिवार को उसी वेद की उसी शाखा का अध्ययन और उसी शाखा के अनुसार सन्ध्या आदि कृत्य करने चाहिये। अर्थात् यजुर्वेदीय शाखाओ के अनुसार अपने-अपने परिवारों मे अपनी-अपनी शाखाओ का पठन पाठन करें और उन्हीं शाखाओ के अनुसार सध्या आदि करें। इतना ही भेद नहीं अपितु माध्यनदिनीय शाखा का मानने वाला परिवार कठ शाखा का, कौथुम शाखा को मानने वाला परिवार इन दोनों का न अध्ययन करे और न इनके अनुसार सन्ध्या आदि कर्म ही करे।

ऋग्वेदीय मानव समाज (मानव समूह) का यजुर्वेदीय मानव-समाज से भेद, इन दोनो का सामवेदीय मानव-समाज से भेद, सामवेदीय मानव-समाज का इन दोनों से भेद, इन तीनो का अथर्ववेदीय मानव समाज से भेद और अथर्ववेदीय मानव-समाज का इन तीनो से भेद। जिस वेद की जितनी शाखा उतने हा समुदाय और उन समुदायों के धार्मिक कृत्यों मे अनेक भेदो की भित्ति (दीवार) खड़ी कर दी गई। इस भेद की भित्ति पर चढ़ने वालो में कलह कालुष्य ने ऐसी जड जमाई कि परस्पर मे घृणा ईर्ष्या और विद्वेष ने अपना स्थायी प्रबल प्रभुत्व स्थापित कर लिया। महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने देखा, सुना और सोचा कि जो आर्य जाति सृष्टि के आरम्भ मे उत्पन्न हुई हो और जिसे ईश्वरीय ज्ञान वेद समुपलब्ध हुआ हो वह जातिभेद की भयकर आंधो में अपने गौरव को उडा रही हो और अपने गौरव को भेद के दुर्दान्त दावानल से दग्ध किये जा रहो हो, इसलिए ही उसे दुरवस्था के दुर्दिन देखने पड रहे हैं।

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा सन्ध्या-पद्धति मे शाखा-भेद सर्वथा त्यक्त है। भेदभित्ति का नितान्त निरादर है और शाखाभेद का सर्वथा बहिष्कार है।

श्री स्वामी जी महाराज ने शाखा भेदभित्ति का समादर कदापि न किया था और न करते ही थे। क्या इस निर्वाण दिन पर श्री स्वामी जी महाराज के चरण चिह्नों पर चलने वाले हम आर्य परस्पर के आन्तरिक भेद भावों को भुलाने का सकल्प करेंगे?

(पृष्ठ ६ का शेष)

नीति यही है "तलवार का जवाब तलवार से दो" मल मनसाहत का मलमनसाहत से और अणु बम का जवाब अणु-बम से।" एक बार यदि लडते लडते देश का बहुत बडा भाग समाप्त भी हो गया तो उस पर साहस और शौर्य के नये अकुर उत्पन्न होंगे। इतिहास सुनहरे अक्षरों में लिखेगा—राम और कृष्ण का देश, शिवा जो और प्रताप का देश, तिलक लाजपतराय, और सरदार पटेल का देश अपने पूर्वजों के स्वाभिमान की रक्षा मे लडते लड़ते मर गया परन्तु उनसे झुककर कहीं समझौता नहीं किया।"



धर्म्म और राजनीति



लेखक—श्री डाक्टर हरिशंकर शर्मा डी० लिट्

जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है,
बढ़ता अधर्म्म अन्धेर-अंधेरा छाता है।
जो लोक और परलोक सिद्धि का साधक है,
अभ्युदय और निःश्रेयस का आराधक है,
जिसको संकीर्ण भावना कभी न भाती है,
जिसकी प्रभुता प्रति-क्षण पीयूष पिलाती है,
वह परमतत्व सर्वथा भुलाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥

सद्धर्म्म सदा सुख शान्ति-सुधा बरसाता है,
नय-न्याय-नीति का शुभ सन्मार्ग सुझाता है,
मानवता में वर बन्धु भाव उमगाता है,
वसुधा का वृहत् कुटुम्ब रूप दरसाता है,
इस विधि-विधान में सार न पाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥

अत्याचारों से भूमि कांपने लगती है,
सोती सुनीति, दुर्नीति दानवी जगती है,
तब स्वार्थ-असुर दुर्दम्म-दर्प्प दिखलाता है,
निजता परता का क्षुद्र भाव भर जाता है,
मानव मानवता पर विष वज्र गिराता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥

मत, पन्थ, सम्प्रदायों को धर्म्म बताते हैं,
वे अज्ञ दीप को दिनकर कह भरमाते हैं,
क्या कभी धर्म्म-ध्रुवता ने युद्ध रचाये हैं,
कब सत्य-अहिंसा ने नर रक्त बहाये हैं,
विपदा वारिधि में विश्व डुबाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥

भ्रष्टाचारों की अग्नि उग्र हो जाती है,
गुटबन्दी स्नेह-संघटन का गढ़ ढाती है,
मँहगाई दिन दिन दूनी बढ़ती जाती है,
जनता सुख शान्ति न नेक कहीं भी पाती है,
सर्वत्र दुःख दुर्दृश्य दृष्टि में आता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥



संग्राम भूमि में तोपें आग उगलती हैं,
अगणित लोगों की देहें जीती जलती हैं,
होकर अनाथ लाखों जन घुट-घुट रोते हैं,
भूखों मर-मर कर प्राण करोड़ों खोते हैं,
दुर्भिक्ष दुष्ट दानव, मानव-दल खाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥

शासन-सत्ता जब धर्म्मयुक्त हो जाती है,
बनकर विनीत अति सौम्य रूप सरसाती है,
जनता भी नैतिकता को ही अपनाती है,
तब शांतिकांति नित सुख-समृद्धि बरसाती है,
सद्भाव-स्नेह का दृढ़ गढ़ ढाया जाता है—
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है ॥



भारतीय स्वराज्य के प्रथम मन्त्र-द्रष्टा—

महर्षि दयानन्द सरस्वती

[श्री पं० दीनदयाल जी उपाध्याय, प्रधानमन्त्री अखिल भारतीय जनसंघ दिल्ली]

विक्रमाब्द १९१४ के स्वातन्त्र्य समर में हमारी पराजय के बाद जब अंग्रेजों की विजय पताका चातुरन्त भारत में फहरा रही थी, हमारे राष्ट्र जीवन पर चतुर्दिक से मर्मान्तिक प्रहार हो रहे थे और हम आत्मविस्मृत और आत्माभिमान शून्य हो निरीह भाव से अंग्रेज प्रभु की करुणाकोर को लालायित अपना सर्वस्व गवाते जा रहे थे, तब भारत के जीवन में जागृति शंख फूंकने वाले जो महापुरुष अवतीर्ण हुए उनमें महर्षि दयानन्द का स्थान अग्रगण्य है। उनके पास राष्ट्र की दुरवस्था को देखकर दुखित होने वाला संवेदनशील हृदय था, रोगों का सही निदान और उपचार करने वाले चिकित्सक की बुद्धि थी, एक सुधारक की लगन और कर्मठता तथा बुराई से जूझने वाले एक शूरवीर का साहस था और सबसे बढ़कर वह आर्ष दृष्टि थी जो विश्व के द्वन्द्व और मोहान्धकार को चीर कर सत्य का दर्शन कर सके। सत्य सेवा का सम्बल लेकर वे जीवनपथ पर बढ़े। परायों की वर्मकियां और अपनों की उपेक्षा, तिरस्कार और अवहेलना किसी ने उनको विचलित नहीं कर पाया। भारत के पतित और विकृत जीवन को उन्होंने समुज्ज्वल, सुसंस्कृत एवं सत्य प्राचीन आदर्शों के साथ जोड़ा तथा समाज में कुरीतियों से लड़ने तथा अपना जीवन श्रेष्ठ बनाने की प्रेरणा पैदा की।

धार्मिक क्रान्ति को आधारभूत मानकर उन्होंने मूलतः उसी क्षेत्र में काम किया। किन्तु जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसको अछूता छोड़ा। स्वदेशी और स्वराज्य का मन्त्र सर्वप्रथम उन्होंने ही दिया। जिनकी दृष्टिमात्र राजनीतिक है तथा जो पश्चिम की राजनीतिक विचार धाराओं और परम्पराओं का अनुकरण ही भारत की नियति मानते हैं, वे महर्षि को एकपन्थीय अथवा धार्मिक नेता मानकर उनकी अवहेलना कर देते हैं। उन्हें न तो भारत की आत्मा का ज्ञान है और न महर्षि दयानन्द की महत्ता का।

महर्षि दयानन्द का काम अभी पूरा नहीं हुआ। स्वराज्य के बाद तो हमारा व्यामोह और बढ़ गया है। महर्षि ने हमें बताया था कि हम उलूकवाहिनी की पूजा के स्थान पर उसे साधन मानकर ऋत की उपासना करें। पर अमावस की कालरात्रि में जाज्वल्य भास्कर का निर्वाण हो गया। हम दीपावली मनाकर अन्धकार से लड़ने का प्रयास कर रहे हैं, सत्य को छोड़कर लक्ष्मी की पूजा में लगे हैं। स्वराज्य में स्वधर्म चला गया। आर्थिक उन्नति की आकांक्षा में दर-दर भीख का कटोरा लेकर घूम रहे हैं, विदेशी मुद्रा अर्जन के लालच में भारत की जनता का धर्मभ्रष्ट एवं राष्ट्र भ्रष्ट करने वाले मसीही पुजारियों को आमन्त्रण देकर उनके आदरातिथ्य में अपने को धन्य मान रहे हैं। आवश्यकता है कि महर्षि का वज्र घोष फिर से भारताकाश में गूंजे। क्या आर्य बन्धु महर्षि के सन्देश को लेकर खड़े होंगे ? तभी तो दीपावली की रात्रि, जिसमें महर्षि का निर्वाण हुआ, के सम्बन्ध में कवि के प्रश्न का सत्य उत्तर मिल सकेगा—

"इसे रात कहूं कि प्रभात कहूं ?"

दीपावली हमारे लिये घोर तमाच्छन्न रात्रि ही रहेगी अथवा नववर्ष का नव-सन्देश और नव चैतन्य लानेवाली प्रतिपदा के प्रभात की पूर्ववाहिका।

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध हो जाता है तब सबके द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है।

आर्यसमाज राजनीति में भाग ले!

'महर्षि की क्या इच्छा थी?'





[श्री प० विद्याधर जी, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश]

अपने देश में अपना राज्य स्थापित करने की उत्कट अभिलाषा से युग-प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक सुधारों में सर्वतोमुखी प्रगति करते हुये अपने जीवन के अन्तिम वर्ष राजस्थान में राजा, महाराजाओं को आत्मविद्या (परमात्मा के गुण, कर्म स्वभाव को यथावत् जानने रूप ब्रह्म-विद्या) न्याय-विद्या, सनातन दण्ड-नीति आदि का उपदेश देते हुये यह निर्देश करते रहे कि राज्य को सुचारुरूप से संचालित करने के निमित्त वैदिक विद्वानों से सम्यक्रूपेण शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। अल्प समय में ही शाहपुराधीश महाराणा उदयपुर, भीलवाड़ा, मसूदा आदि के राजा उनके श्रद्धालु भक्त बन गये। वे अपने कार्य में सफलता की ओर अग्रसर हो रहे थे, किन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही थी। आर्यसमाज को एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सौंपकर वे हमारे बीच से चले गये। महर्षि के देहावसान के उपरान्त आर्यसमाज के तत्कालीन कर्णधारों ने बड़ी श्रद्धा के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया और तदर्थ त्याग, तपस्या और बलिदान की होड़ लग गई। स्वदेशी आन्दोलन, आर्य भाषा प्रचार, शिक्षा प्रसार, शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक सुधार, अछूतोद्धार, आदि शुभ कार्यों में आर्यसमाज ने एक विशिष्ट ही नहीं, अपितु अनुपम गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

इन ईश्वर धर्म और देश के सच्चे और क्रियाशील उपासकों में ऐसे भी थे जिनके हृदय और मस्तिष्क में देशभक्ति, देश की स्वतन्त्रता की भावना सर्वोपरि थी। तदर्थ वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार निरन्तर प्रयत्नशील थे। अनेकों ने देश की वेदी पर अपना जीवन सहर्ष समर्पित किया। इस दिशा में सुसंगठित रूप से प्रगति करने की आवश्यकता पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के पवित्र बलिदान के उपरान्त अधिक तीव्रता से प्रतीत हुई। १९२७ में दिल्ली में आयोजित प्रथम आर्य सम्मेलन का ज्वलन्त प्रश्न था, "क्या आर्यसमाज राजनीति में भाग लेवे?" युवकों में उत्साह का पारावार उमड़ रहा था। वे एक स्वर से राजनीति में प्रवेश की अनुमति चाहते थे। किन्तु विचारशील महानुभावों ने देश तथा काल की परिस्थिति के अनुसार यही निश्चय किया कि हमें अपना क्षेत्र शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक सुधारों तक ही सीमित रखना है। इस निर्णय से क्रियाशील आर्ययुवक जिनके हृदय में भारत माता की सेवा के निमित्त अदम्य उत्साह था, अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में चले गये। जिसके परिणाम स्वरूप आज के अनेक राजनैतिक दलों के ज्येष्ठ, श्रेष्ठ अग्रणी होने का श्रेय उनको ही प्राप्त है।

आर्य समाज ने सामूहिक रूप से राजनीति में भले ही भाग न लिया हो किन्तु अंगरेजी सरकार हमें हमेशा सन्दिग्ध दृष्टि से ही नहीं देखती रही अपितु प्रतिशोध रूप असंख्य आर्यों को यातनायें भोगनी पड़ीं।

परमपिता परमात्मा की कृपा से देश स्वतन्त्र हुआ और एक बार पुनः आर्य युवकों में देश-भक्ति का अदम्य उत्साह उमड़ पड़ा। वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित, उन युवकों ने अनुभव किया कि राष्ट्र की विषम समस्याओं का समाधान आर्यसमाज के पास है किन्तु उनके प्रयोग की शक्ति और सामर्थ्य नहीं। इसको प्राप्त करने के निमित्त वे क्रम से उत्तरोत्तर आगे बढ़ना चाहते हैं, अनुभवी विचारशील महानुभाओं के वरद हस्त की छत्रछाया में।

आज महर्षि निर्वाण दिवस के अवसर पर हम सान



महान् दायित्व पूर्ण करें !




श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा एम एल सी

आर्यसमाज का लक्ष्य कितना महान है इस पर जितना ही अधिक विचार करें हम इस परिणाम पर पहुचेंगे कि महर्षि दयानन्द चाहते थे कि उनके अनुयायी स्वार्थ से ऊपर उठकर सदैव परार्थ में लगे रहें। ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है इस नियम ने आर्यसमाज को सार्वदेशिक और सावकालिक महत्व प्रदान कर दिया है। परन्तु उच्च लक्ष्यों और आदर्शों की पूर्तियां तो मानव ही करेंगे उनमें जसी क्षमता होगी वैसी ही सफलता मिलेगी। आर्यसमाज का गौरवपूर्ण ऐतिह्य इस बात का साक्षी है कि अल्पशक्ति मे होते हुए भी हमारी लोकोपकार भावना अधिक विशाल थी और हमे सफलता भी मिली परन्तु आज हमारी शक्ति विशाल है फिर सफलता कम क्यो है इसके मूल मे यही कारण है कि हमने अपने लक्ष्य को सीमित कर लिया है और सीमित (स्थानीय, एक देशीय, एक वर्गीय) होने के कारण हमारी सारी शक्ति परार्थ से हटकर स्वार्थ की ओर सिमटने लगी है। आर्य समाजों, सस्थाओ के कार्यकारी झगडो के मूल मे कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं होते अपितु सकुचित दृष्टिकोण ही इसका कारण है। ऋषिनिर्वाण दिवस हमे महर्षि द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व का स्मरण कराने आया है। यदि हम अपने लक्ष्य को सदैव ध्यान में रक्खें तो बहुत सी बाधायें स्वय समाप्त हो जायें और दयानन्द के वीर सैनिक उत्साह के साथ कदम बढ़ाते चलें। मुझे आशा है कि निर्वाण दिवसपर हम अपनी शक्ति के अपव्यय को रोक कर परोपकार के उदात्त आदर्श में सलग्न रहने का सकल्प दुहरायेंगे।

—प्रेमचन्द्र शर्मा एम० एल० सी०
उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

धानी से विचार करें और राष्ट्र की आन्तरिक और वाह्य शत्रुओ से रक्षा करने के निमित्त अपनी नीति निश्चित करें। यह सत्य है कि वर्तमान परिस्थितियो पर नियन्त्रण कठिनता से प्राप्त किया जा सकेगा। पर्याप्त समय एव सार्वजनिक सहयोग भी अपेक्षित होगा। किन्तु हम इस अटल विश्वास के साथ आगे बढ़ें —

ध्रुव ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पते ।
ध्रुव त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयता ध्रुवम् ॥

भाव [——————
परमपिता परमात्मा हमारा मार्ग प्रशस्त करे। ●

आर्यसमाज कटरा प्रयाग का ६४वां वार्षिकोत्सव

कर्नलगज थाना के सामने ता० ३ से ६ नवम्बर तक मनाया जायगा।

दिव्य सन्देश सुनाने के लिये स्वामी मुनीश्वरानन्द जी श्री प्रो० रत्नसिंह जी गाजियाबाद, प० सत्यमित्र शास्त्री जी गोरखपुर, प० शिवकुमार शास्त्री जी हरिद्वार, डा० श्रीमती पुष्पावती देवी जी पी०एच०, डी० आदि उपदेशकों तथा अच्छे २ प्रचारकों के पधारने की आशा है।



वेद के प्रति कर्तव्य पालन करें



महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज को जो धरोहर सौंपी थी उसमे सबसे अमूल्य है वेद। महर्षि ने अपने जीवन का सबसे कीमती और अधिक भाग वेद के स्वरूप उसके मानवीय उपयोग की व्याख्या करने मे लगाया। यदि एक बार को यह कहा जाय कि आर्यसमाज की स्थापना भी ऋषि ने वेदप्रचार के लिये ही की तो कोई अत्युक्ति न होगी क्योंकि यदि वेद ज्ञान का प्रचार प्रसार हो जाय तो ससारोपकार स्वयमेव सम्पन्न हो जायगा। इस दृष्टि से आर्यसमाज के कार्यक्रम में वेद अपना विशेष महत्व रखते हैं। महर्षि ने वेदभाष्य और वेदानुसधान की जो परम्परा आरम्भ की थी आज आर्यजगत् में उसके लिये उतना उत्साह नहीं जितना आरम्भ मे था, आर्यसमाज का वेद प्रचार विभाग उत्सवों के भाषण की व्यवस्था में ही जुटा रह जाता है,आवश्यकता है अनुसधान के कार्य को योजना बद्ध आगे बढ़ाया जाय। वेदों के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों का नियमित उत्तर दिया जाय। आर्य विद्वानों में महर्षि और आर्यसमाज के प्रति ऐसी निष्ठा जागृत होनी चाहिये वे सब अपने अहम् और पाण्डित्य के चक्कर मे न पड़कर अपनी ज्ञान-शक्तियों का आर्यसमाज के लिये समर्पण कर दें। आर्यसमाज की ओर से सगठित रूप से वेद सम्बन्धी समस्याओं पर विचार हो, सगोष्ठियां हों और अनुसधानों की घोषणा हो, आर्यसमाज के इस प्रयत्न से वेद में श्रद्धा रखने वाले अन्य वर्गों को भी बल मिलेगा।



श्री प० चन्द्रदत्त जी तिवारी सभा-मन्त्री

ऋषि-निर्वाण दिवस हमारे लिये प्रेरणा दिवस है, यदि आर्यसमाज के विद्वान् और कर्णधार इस दिशा में सम्मिलित नीति निर्धारण कर सके तो काम आगे बढ़ेगा। साधारण आर्यजन तो वेद प्रचार मे एक सैनिक की भांति आज भी रुचि रखता है पर उपर्युक्त सगठित प्रयत्न से उसे और भी बल मिलेगा, वेद के सम्बन्ध में आर्यसमाज का दायित्व पूर्ण करना आज की पीढ़ी का दायित्व है।

—पं० चन्द्रदत्त तिवारी

मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्व स्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहलाती है।

प्रचार प्रणाली में नवीनता लावें


श्री हरप्रसाद जी आर्य

आर्यसमाज के प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने में योग्य उपदेशकों का महत्व-पूर्ण स्थान रहा है और है। समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हमें आज इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि हमारी प्रचार प्रणाली कहां तक समर्थ है। प्रचार के वैज्ञानिक साधनों का हम कितना उपयोग कर पा रहे हैं। ईसाई मिशनरियों के पास जो नवीनतम साधन सामग्री होती है उसका स्वल्पांश भी हम अपने प्रचारकों को नहीं दे सकते। एक बात अवश्य है भारत की ग्राम प्रधान संस्कृति होते हुए भी आर्य समाज ग्राम प्रचार में अधिक सफल नहीं हो सका, जबकि ईसाई मिशनरी नगर संस्कृति के प्रतिनिधि होते हुए भी ग्रामों में, अरण्यों में प्रचार कर रहे हैं, इस मौलिक समस्या और मनोवृत्ति पर भी विचार किया जाना चाहिये। आर्यनेता श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने ग्रामों में प्रचार की ओर अनेक बार ध्यान आकृष्ट किया है परन्तु अभी तक हम शहरी मनोवृत्ति नहीं छोड़ सके हैं। हमें ऐसे प्रचारक तैयार करने का यत्न करना चाहिये जो ग्राम-जीवन में अपने को समाविष्ट कर सकें। इसी प्रकार प्रचार साहित्य की कमी का प्रश्न भी गम्भीर है। हमारा उपलब्ध साहित्य काफी पुराना है और सामाजिक समस्याओं का समाधान नवीन रूप से प्रस्तुत नहीं कर पाता। इसके लिये भी हमारे विद्वानों को प्रयत्न करना होगा। ऋषि निर्वाण-दिवस के अवसर पर हमें अपनी प्रचार प्रणाली का सिंहावलोकन अवश्य करना चाहिये और शीघ्र ही नवीन रूप के साथ कार्यक्षेत्र में कदम रखना चाहिये। प्रभु हमें अवश्य सफलता प्रदान करेंगे।




—हरप्रसाद आर्य
उपमन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश

ऋषि वचनामृत

★ यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में कोई देश नहीं है, इस लिये इस भूमि का नाम स्वर्ण-भूमि है क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

★ जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको परम-गति अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

★ जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और और जब दुष्टाचारी होते हैं, तब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।



वेद प्रचार का स्थायी साधन—प्रेस

प्रचार के दो सर्वमान्य साधन हैं— (१) मंच तथा (२) प्रेस। एक का प्रभाव दीर्घकालिक और स्थायी है, दूसरे का अल्पकालिक और अस्थायी। पुस्तकों के पाठक देशकाल की परिधि का अतिक्रमण कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक होते हैं किन्तु मंच के अल्पदेशीय तथा अल्पकालिक। पुस्तकों के द्वारा ही प्राचीन अध्यात्म-ज्ञान, वेदों से महर्षि दयानन्द पर्यन्त, एवं लौकिक ज्ञान विज्ञान का सम्पादन हम लोग आज भी कर पाते हैं।

यह आधुनिक छपाई तथा प्रेस का ही चमत्कार है कि संसार के बड़े बड़े पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा समाचार पत्रों द्वारा संसार की कोटि कोटि जनता प्रबुद्ध रहती है। प्रेस के द्वारा ही आज आर्यजन इस युग की महानतम विभूति महर्षि दयानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

प्रेस वह दीप है जो अपनी अक्षय ज्योति विकीर्ण करता रहता है, भूले-भटके पथिकों को मार्ग दर्शन कराता रहता है। अतः हमारा यह पावन कर्तव्य हो जाता है कि उस ज्योति-स्तम्भ की सुरक्षा एवं उसका सम्वर्धन करें।



श्री निर्मलचन्द्र राठी, उपमन्त्री सभा

योरोप आदि उन्नत देशों के सक्षम प्रेसों की तो कथा ही क्या कहानी है जिनके द्वारा मानव समाज ज्ञान-विज्ञान से परिपूरित है। अपने देश में ही श्रद्धालु जनता के कीर्ति स्तम्भ 'गीता प्रेस' पर ही दृष्टिपात् कीजिये। उसका धार्मिक-साहित्य प्रकाशन और वितरण क्या व्यावसायिक है? क्या उसकी मशीनें किसी व्यावसायिक संस्थान की देन हैं? नहीं, वह है श्रद्धालु जनता की कर्तव्यनिष्ठा की देन, जो धर्म प्रचार के महत्व को जानती है और जो बाजार में चाहे जितनी सौदेबाजी करे धार्मिक क्षेत्र में लेन-देन नहीं जानती, केवल दान ही जानती है जो 'यज्ञ' का एक अंग है—देवपूजा, संगतिकरण और दान।

आर्य जनता से यह आशा है कि वह अपने प्रेस-संस्थानों को दान से सम्पन्न कर उन्हें वैदिक-साहित्य के प्रकाशन का अक्षुण्ण साधन बनायेगी। स्व० पं० भगवानदीन जी ने अपने सात्विक दान से प्रेस की आधारशिला रक्खी थी, जिसके परिणाम स्वरूप आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश का भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस स्थापित हो सका, जहां से आर्य जगत् का लोकप्रिय पत्र 'आर्यमित्र' प्रकाशित होता है किन्तु जो धनाभाव के कारण आधुनिकता की दौड़ में पिछड़ रहा है।

सुन्दर, सबल प्रेस ही महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी, जो संसार को वैदिक-साहित्य बिना मूल्य वितरण कर ईसाइयों तथा कम्युनिस्टों के सार्वभौम प्रचार का प्रत्युत्तर देकर वैदिक धर्म की पताका फहरा सके।

निर्मलचन्द्र राठी

उपमन्त्री आ० प्र० सभा उत्तर-प्रदेश तथा व्यवस्थापक आर्य भास्कर प्रेस



दीपावलि का सफल पर्व हो!



(रच०—श्री 'कुसुमाकर' सा० रत्न, आर्यनगर फीरोजाबाद)

हे आर्य !

आर्य संस्कृति के प्रिय पोषक !
रूढ़िवाद के दृढ़तम शोषक !
स्वर्ग नरक की, धर्म-कर्म की—
पाप पुण्य की, ऊँच-नीच की—
सगुण और निर्गुण आत्मा की—
परिभाषा करने वाले—हे वेद-शास्त्र मीमांसक आर्य !!
तुमने ठेका नहीं लिया था ?
—'सकल विश्व को आर्य करेंगे।
जीवन पथ - निर्माण करेंगे।
कदाचार के केन्द्र ध्वंस कर,
सदाचार का सेतु पार कर—
प्रबल प्रपञ्चों के पादप को—
हम समूल उन्मूलन करके—
'तमसो मा'—के पुण्य पाठ से
'ज्योतिर्मय'—जन लोक करेंगे
छल-प्रपञ्च पाखण्ड खण्ड कर—
नैतिकता के नीड़ सृजन कर—
मानवता - बन्धुत्व घोष से—
दस्यु दानवों की दुनियां को—
कम्पित कर भय-भीत करेंगे।
हम असत्य से वञ्चित करके,
सदा सत्य का सिन्धु तरेंगे।
क्या ये सब कुछ पूर्ण हुआ है ?
क्या ये प्रण था नहीं तुम्हारा ?—
—'दयानन्द ऋषि के हम सच्चे—
सेवक बनकर वेद-धर्म की ध्वजा उठायें—
भूतल को ही स्वर्ग बनाकर—मानव को ही मुक्त करेंगे।
अरे, दृगों के द्वार खोलकर देखो तो अलबेले आर्य ?
वाणी में कुछ और तुम्हारी करनी में कुछ और दीखता।
अभिनय करना खूब जानते।
मञ्चों पर चढ़कर—बालों की खाल
खींचना खूब जानते।—
'कृण्वन्तो' का स्वप्न चूर है।
दम्भ द्वेष के दीपक जलते।
दल दल के दलदल में दलते।
जातिवाद का ज्वार आ गया
जड़ता से अभिसार हो गया।
अचल 'मातृ-भाषा' का अचल—
छिन्न-भिन्न करने को आतुर।
'परकीया' से प्यार हो गया।
जीवित है 'मस्तिष्क दासता, ?
क्या स्वराज्य का सार यही है ?
आध्यात्मिक-अभ्युदय मार्ग के—
भौतिकवाद-मृग के पीछे क्यों मद-मस्त दौड़ते फिरते ?
'अन्नम् ब्रह्म' उपनिषद् कहती—
'अन्न पूर्णा' के मन्दिर पर कङ्कालों की भीड़ खड़ी है।
भ्रष्टाचार भेड़िये भूखे मुंह को फाड़े यहां खड़े हैं।
पेट पीठ से मिला विकल हो—
एक-एक दाने को तरसा, आर्यो ! पावन देश तुम्हारा ?
जो 'गुरुता' का ढोल पीटता-
वही 'दूसरों' के सम्मुख ही—
दैन्य दीनता दिखा-दिखा कर
'सोने की चिड़िया'को लज्जित इधर कर रहा देश तुम्हारा।
महिषासुर मँहिगाई का उन्मत्त पवन सा झूम झूम कर—
शार्दूल-साहस के नख रद तोड़ आज हुंकार भर रहा।
पद प्रभुता के मद से डूबे तुम दीपावलि जला रहे हो।
नहीं-नहीं तुम दयानन्द के उज्ज्वल यश को—
स्नेह-वर्तिका हीन वह्नि में फूंक रहे हो।
'उत्तिष्ठित'—का पाठ पुन तुम एक बार ऐसा दुहराओ।
जन जीवन का दीप जले—
तब दीपावलि का सफल पर्व हो।
तभी आर्यो तुम्हें गर्व हो !





आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य का सूत्रधार दयानंद

[ले०—श्री प० शिवदयालु जी मुख्य उपमंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश]

वैदिक आदर्शों के अनुकूल द्वीपद्वीपान्तर–पर्यन्त व्यापी अनेक श्रेष्ठ मानवों द्वारा सञ्चालित बहुपाय्य शासन का



लेखक

नाम ही आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य है। ससार मे जब से भी शासन व्यवस्था स्थापित हुई विश्व की महती आर्य जाति ने तब ही से अपने व्यापक साम्राज्य की नींव डाली और युगयुगान्तर पर्यन्त इस साम्राज्य का सचालन किया।

भारतवर्ष सदा से इस आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य का केन्द्र रहा है। महाभारत एव मैत्रेय्युपनिषद् के कथनानुसार इस भारत देश में मनु (वैवस्वत), पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष अश्वपति, शशबिन्दु हरिश्चन्द्र, भरत (दौष्यन्त), रघु, दिलीप, राम आदि अनेक चक्रवर्ती सम्राट् हुए हैं जिन्हों ससागरान्त भूमि पर शासन किया है।

आचार्य दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास मे स्पष्ट लिखा है कि–"स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा।" स्वामी दयानन्द एकतन्त्रवाद के घोर विरोधी थे। सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठम समुल्लास मे उन्होने लिखा है कि–'एक (व्यक्ति) को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये। यदि ऐसा किया गया तो वह अकेला राजा स्वाधीन व उन्मत्त होकर प्रजा का नाशक होता है।" स्वामी दयानन्द तो निर्विवाद "व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यते महि स्वराज्ये" अर्थात् व्यापक अनेको द्वारा सुरक्षित स्वराज्य की स्थापना के समर्थक थे।

सत्यार्थ प्रकाश के ११ समुल्लासो मे एक स्थान पर आचार्य ने लिखा है कि–"जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहा के आधीन था।" इसका तात्पर्य यह है कि रावण जिसकी राजधानी लका थी, जो आज दिन सागर मे डूबी हुई है और रावण के आधीन आस्ट्रेलिया आदि के राज्य भी बतलाये जाते हैं, वह भी भारत के आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य के आधीन था। राम के काल मे लका के राजा रावण ने एक बार सर उठाया और भारतवर्ष के दक्षिण भू-भाग पर अपना आतक जमाना चाहा तब राम ने उस का निराकरण किया और अन्यायी अत्याचारी रावण का विध्वस कर लका के राज्य उसके भाई विभीषण को सौंप दिया।

चक्रवर्ती सम्राट् का यह प्रमुख कर्तव्य होता था कि यदि कोई माण्डलीक राजा अन्याय अत्याचार करने पर उतर आये और प्रजा को सताने लगे अथवा अन्य किसी माण्डलीक राजा से युद्ध करने लगे तो वह बीच मे पडकर युद्ध शान्त कराने और अन्यायी राजा को पदच्युत कर योग्यतम व्यक्ति को वहां का राजा बनवा देवें।

महर्षि दयानन्द की यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि ऋषियों की पवित्र भूमि भारत शीघ्र स्वतन्त्र हो और विदेशियों के चगुल से इसकी पूर्ण मुक्ति हो और वह अपनी प्राचीन सस्कृति के अनुसार पुन एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे विकसित हो। आर्याभिविनय के प्रथम प्रकाश मे मन्त्र ४३ की व्याख्या करते हुए ऋषि ने लिखा है कि–"अस्मभ्य वरिव सुग कृधि" अर्थात् हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को सुख से प्राप्त कराओ।"

इसी प्रकार मन्त्र ४५ की व्याख्या करते हुए ऋषि ने

लिखा है–"हे ब्रह्म भगवन् आपकी न्याययुक्त नीतियों मे प्रवृत्त होकर [हम] वीरो के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हो।"

आर्याभिविनय द्वितीय प्रकाश मे "इषे पिन्वस्व ऊर्जे पिन्वस्व, ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व" आदि मन्त्र की व्याख्या करते हुए ऋषिवर ने लिखा है कि–'हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! (क्षत्राय) चक्रवर्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त अपनी कृपा से हम लोगों को करो। अन्य देशवासी राजा हमारे देश मे कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।"

आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना के निमित्त आर्य जाति मे जिन ६ गुणो की विशेष आवश्यकता है और जिन गुणों के कारण उसका चक्रवर्ती साम्राज्य युग युगान्तर पर्यन्त विश्व मे तपा है उनका निदर्शन भी यहा उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या मे स्पष्टरूपेण किया गया है।

विदेशी साम्राज्य को भारत से उखाड फेंकने की प्रबल आकाक्षा भी यहा ऋषि ने व्यक्त की है। आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश मन्त्र ४५ मे 'तेजस्विनावधीतमस्तु" की व्याख्या करते हुए ऋषिवर ने लिखा है– 'अन्योन्य प्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कटक चक्रवर्ती राज्य भोगें।" द्वितीय प्रकाश मन्त्र १ की व्याख्या करते हुए लिखा है कि–"हे महाराजाधिराज! जैसा सत्य न्याययुक्त अखडित आपका राज्य है वैसा न्याय राज्य हम लोगो को भी आप की ओर से स्थिर हो।" महान् क्रान्तदर्शी आचार्य दयानन्द ने यहा स्पष्ट शब्दों मे आर्य चक्रवर्ती साम्राज्य के मुख्य आधार तलवार और आज की परिभाषा मे अणुबम आदि को नहीं माना अपितु सत्य और न्याय (Truth & justice) साम्राज्य के सदा से दो मौलिक स्तम्भ सत्य और न्याय ही रहे हैं। इन्हीं दो तत्वों के विशेष बल पर आर्यों ने लाखो वर्षों पर्यन्त चक्रवर्ती साम्राज्य का सचालन किया है।

मध्वार (अफ्रीका) एव मय (अमेरिका) मे हुए सम्राट् भरत (दौष्यन्त) के ऐन्द्र महाभिषेकों मे लगभग १२५ राज्यों के प्रतिनिधियों ने निज राष्ट्रध्वजों के साथ उपस्थित होकर उपर्युक्त दो विशेष गुणों के कारण ही आर्य चक्रवर्ती सम्राट के प्रति अपनी मान्यतायें व्यक्त की हैं।

ईसामसीह ने जिस Kingdom of Heaven अर्थात स्वर्ग के राज्य की चर्चा बाइबिल में की है ऋषिवर ने उसी ईश्वरीय गुणयुक्त साम्राज्य की स्थापना की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। जब तक विश्व की राजनीति मे यह दो महान् ईश्वरीय गुणों को पूरा पूरा स्थान न मिलेगा तब तक विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित हो नहीं सकती। भय, आशकाओ का भूत राजनैतिक मस्तिष्कों को कभी सत्य और न्याय का पुजारी नहीं बनने देने वाला है। ससार के १०० से अधिक छोटे बडे राष्ट्रो एव राज्यो से मिलकर सयुक्त राष्ट्र सघ की स्थापना हुई है और सह अस्तित्व के सिद्धान्त पर वह सघ विश्व मे शान्ति स्थापना मे निरन्तर प्रयत्नशील रहता है किन्तु उसका तेजस्वी होना नितान्त आवश्यक है। शक्तिशून्य सयुक्तराष्ट्र सघ अन्यायी अत्याचारी आततायी शासकों का दमन नहीं कर सकता केवल अनुरोध करने से कोई मानने वाला नहीं। जिस समय तक ससार के उच्च शक्तिशाली राष्ट्र सत्य एव न्याय को अपने प्रमुख सम्बल न बनावेंगे ससार मे शान्ति की चर्चा केवल चर्चा मात्र रहेगी।

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ २६६ पर लिखा है कि "वेदादि शास्त्रों की नीति से आर्यों ने भूगोल मे करोडो वर्ष राज्य किया।" वेदादि शास्त्रों की नीति सत्य व न्याय आदि पर आधारित है जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

आर्य साम्राज्यवाद मे प्रजा-शोषण के लिये भूलकर भी स्थान न था। जनता की सबसे निम्न एव उपेक्षित इकाई के उत्थान तक मे सदा प्रयत्नशील रहना आर्य राजा का धर्म बतलाया गया है। 'दरिद्रान्भर कौन्तेय" आदि घोषों मे दरिद्रों का भरण-पोषण करना परम कर्तव्य ठहराया गया है।

आर्य राजा की जय दरिद्रों के पालन-पोषण एव उनके हृदयो के जीत लेने मे ही मानी जाती रही है।

वैदिक राज्य का आदर्श तो सदा यह ही रहा है कि–

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु खभाग्भवेत ॥

वैदिक राज्य मे किसी का शोषण नहीं, किसी का पीडन नहीं, किसी के साथ अन्याय नहीं और किसी का वृथा पक्षपात नहीं गुण और त्याग की ही पूजा सदा आर्य राज्य मे रही है। ●





श्रद्धांजलि

दयानन्द की पुण्य स्मृति में,
श्रद्धा पुष्प चढ़ाने आया हूं।
जहां अनगिनत जीवन पुष्प चढ़े,
निज पुष्प चढ़ाने आया हूं॥

उमड़ रहा है स्रोत हृदय में,
मैं उसे बहाने आया हूं।
जब रहीं तरगें मन मे जो,
मैं उन्हें सुनाने आया हूं॥

तू महान् था हे ऋषिवर,
तू ने ससार झुकाया था।
पाखण्डों को खण्डित करके,
सत्यमार्ग दर्शाया था।
मोड़ी थी युग की धारा,
क्रान्ति का बिगुल बजाया था।
निराकार ब्रह्म की उपासना,
सन्ध्या का योग सिखाया था।

सब वेद पढ़ें और वेद सुनें,
ईश्वर का ज्ञान बताया था।
हो आर्यकरण इस धरती का,
यह दिव्यनाद गुंजाया था।
हो नाश अविद्या के तम का,
ज्योति का पाठ पढ़ाया था।
हों दूर विषमताएं सारी,
सब को ही गले लगाया था।

तू ज्ञानी था, तू ध्यानी था,
तू धर्मयुद्ध सेनानी था,
तू था तपस्वी सूरज सम,
ज्योति का तू अभिदानी था।
ब्रह्मचर्ययुक्त तेजस्वी था,
फिर भी नहीं अभिमानी था।
करुणा का गहरा सागर था,
दया धर्म का दानी था।

पतितों को बनाया पावन था,
विनम्रता मे लासानी था।

कितना भी करू गुणगान ऋषि,
फिर भी अधूरा होगा वह।
कितनी भी चढ़ाऊँ श्रद्धांजलियां,
तृप्त न होगी अन्तर की तह।

तृप्ति तो होगी तब ही,
जब कर्मों में लाऊं शिक्षा।
विषपान तजूं दुष्कर्मों का,
सत्कर्मों से पाऊं रक्षा।

श्रद्धान्जलि तो दी श्रद्धानन्द ने,
जिसने गोली खाई थी।
श्रद्धान्जलि तो दी हंसराज ने,
हंस कर व्यथा मिटाई थी।
श्रद्धान्जलि दी लेखराम ने,
जब छुरा पीठ में खाया था।
श्रद्धान्जलि दी सुमेरसिंह ने,
हिन्दी को शीश चढ़ाया था।

श्रद्धान्जलियां दीं उन वीरों ने,
हैदराबाद मे जो शहीद हुये।
जो छोड़ घर-बार सन्यासी बने,
दिल में दुनियां का दर्द लिये।
ले 'ओम्' पताका को कर में,
वेदों के गान गुन्जाने को।
मधुमय वर्षा अमृत की कर,
धरती को स्वर्ग बनाने को।

हम करें आत्म निरीक्षण आज,
देखें अन्तर में झांक जरा।
वे षड्रिपु कहां छिपे बैठे,
जो करते हमारा अहित सदा।
हम करें प्राप्त प्रभु-शक्ति,
हम इनको मार भगावें अब।
हम दूर करें विषमताओं को,
समताओं को गले लगावें अब।

उस महान् ऋषि के प्रति,
यही श्रद्धांजलि सच्ची है।
इसमें ही है सब मर्म भरा,
इसमें ही अपनी उन्नति है।

होगा इस से ही पुन
वैदिक धर्म का सूर्य उदय।
गूंजेंगी वेद ऋचायें जब,
होंगे दूर तमो सशय।

वह शक्ति दो हे दयानिधे!
मैं जीवन-व्रत निभा पाऊं।
जो चरण बढ़ रहे हैं आगे,
मै उन्हें लक्ष्य तक पहुंचा पाऊँ।




—विक्रमादित्य 'वसन्त'



संयम साधन में प्राणायाम का स्थान

(ले०—श्री आचार्य भद्रसेन जी अजमेर)

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में प्राणायाम पर बहुत बल दिया है। वे यह भली प्रकार जानते थे कि प्राणायाम मनुष्य के सयमी तथा सदाचारी बनाने का एक मुख्य तथा आवश्यक अग है। वे यह भी जानते थे कि जीवन मे सयम का अपना एक प्रमुख स्थान है। वास्तव में मानव जीवन की महान् दैवी शक्तियों का विकास होता ही सयम द्वारा है। सयम वह साधन है जो मानव जीवन को पवित्र तथा निर्मल बनाकर उसे निखार देता है, चमका देता है तथा उसे अपने वास्तविक लक्ष्य तक पहुचा देता है। सयमी मनुष्य का जीवन एक आदर्श जीवन है। उसके जीवन मे न विलासिता है, न दासता और न उच्छृङ्खलता, सरलता, सादगी तथा सौजन्यता ही उसके जीवन का एक मात्र सुन्दर लक्ष्य है।

अपनी इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि को अनिष्ट मार्ग से हटाकर उन्हें अभीष्ट मार्ग पर चलाना ही सयम है। जहां नियन्त्रित मन तथा इन्द्रियां मनुष्य को अपने अभीष्ट मार्ग पर चला कर उसके जीवन को सुखमय बना देती हैं, वहा अनियन्त्रित मन तथा इन्द्रियां मनुष्य को दु:ख और अशांति के गहरे गर्त में गिराने का कारण बनती हैं। इसलिये सुखमय जीवन के अभिलाषी के लिए तथा मानव जीवन के महान् लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए सयम साधना परम आवश्यक है। सक्षेपत जहां सयम साधना से मानव के मानस मन्दिर में सुख और शान्ति का सृजन होता है, वहां असयम द्वारा मानव जीवन दु:ख और अशान्ति का भागी बनता है।

यूं तो सयम साधन के सन्तजनों ने अपनी-अपनी सूझ के अनुसार सैकड़ों साधन दर्शाये हैं। जप, तप, व्रत, उपवास, प्रभु-भजन, ये सब सयम साधन के सुन्दर उपाय हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त—

'प्राणायाम'

भी सयम प्राप्ति का एक परमोत्कृष्ट साधन है। प्राणायाम के द्वारा मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा मन पर सरलता से काबू पा लेता है। प्रायायाम के अभ्यासी को



लेखक

सयम साधना के लिए अन्य कठोर साधनों के सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्राण और मन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जहा प्राणों की अस्थिरता और चचलता से मन भी अस्थिर और चचल बन जाता है, वहां प्राणों की स्थिरता से मन भी चचलता रहित और स्थिर हो जाता है। प्राणों की चचलता मन की चचलता का तथा प्राणों की स्थिरता मन की स्थिरता का मुख्य कारण है, इसीलिये योग ग्रन्थों में कहा गया है—

चलो वाते चल चित्तं, निश्चले निश्चलो भवेत्।

अत जो सज्जन चित्त की चचलता को दूर कर उसे स्थिर और एकाग्र बनाना चाहते हैं, उन्हें अपने प्राणों के स्थिर करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। जड़ जगत् में मन के दूसरे नम्बर पर प्राण ही एक ऐसी महान् शक्ति है, जो कि जहां वह अत्यन्त बलवती है, वहां अत्यन्त वेगवती भी है, अत ऐसे बलवान् तथा वेगवान् प्राणों को अनायास सरलता से अपने वशवर्ती बना लेना अति कठिन

है। उनको वश में करने का एक मात्र उपाय है। 'प्राणायाम' के द्वारा प्राण सहज में ही वश मे हो जाते हैं और प्राणों के वश मे होते ही मन भी सरलता से साधक के वश में हो जाता है। योग ग्रन्थों मे प्राण और मन को दूध मिले जल की उपमा दी है (दुग्धाम्बुवत् सम्मिलितौ तौ तुल्य क्रियौ मानस मारुतौ)। अत जैसे दूध मिश्रित जल की गति को वश में कर लेने से दूध की गति स्वत ही वशवर्ती हो जाती है, उसी प्रकार प्राणों की गति वश में होने पर मन की गति भी स्वयमेव वश मे हो जाती है और मन के वश मे होते ही जहां साधक को सयम साधन मे सफलता मिलती है, वहां उसको मानसिक शक्तियों का विकास भी सरलता से होने लगता है तथा इन्द्रियों के मल और दोष भी दूर हो कर वे शुद्ध तथा सत्पथ-गमिनी बन जाती हैं। इस विषय मे महर्षि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ मे मनु का एक प्रसिद्ध श्लोक दिया है जो कि निम्न प्रकार है-

दह्यन्तेध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ण आदि वस्तुएँ अग्नि में तपाने से उनके मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा प्राणों को वश मे करने से इन्द्रियो के दोष भी नष्ट हो जाते हैं। 'प्राणायाम' ही वह पचाग्नि है जो साधक के प्राण, अपान आदि पाचो प्रसुप्त प्राणो को जागृत कर उन्हे तेजस्वी तथा निर्मल बना देती है। यही सच्ची-

पञ्चाग्नि-पूजा

है। खेद है कि आजकल के साधुओ ने इस परम हितकारिणी पचाग्नि-पूजा का परित्याग कर अपने चारो ओर पाच प्रकार की अग्नियों को जलाकर उनके द्वारा इस पवित्र तथा अनमोल मानव देह को तपाना तथा उसे निरर्थक क्लेश पहुचाना ही पञ्चाग्नि-पूजा समझ लिया है। अत मानसिक तथा इन्द्रियजन्य दोषों को दूरकर सयमी जीवन बिताने के अभिलाषी को प्राणायाम का अभ्यास नित्यप्रति नियमपूर्वक अवश्य करना चाहिये।

मेरे विचार मे प्राणायाम को यदि अमृत का कलश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। अनुभवी योगियो का कहना है, कि हमारे ब्रह्मरन्ध्र से सदा अमृत का झरना बहता रहता है, उस अमृत का रसास्वादन भी प्राणायाम तथा ध्यान, धारणा का अभ्यासी ही कर सकता है। जिस अमृतरस का आस्वादन कर साधक के सामने अन्य इन्द्रियों के रस फीके पड जाते हैं। परन्तु प्राणायाम इस अमृत का रसास्वादन तभी कराता है, तथा अमृततुल्य लाभ भी तभी पहुचाता है, जबकि प्राणायाम के नियमों का पूर्णतया पालन करते हुए, तथा उसे किसी योग्य अनुभवी से विधिवत् सीखकर उसे पूर्ण श्रद्धा, आस्था तथा कुछ समय तक लगातार धैर्यपूर्वक किया जाए। यदि हम प्राणायाम के नियमों की अवहेलना करते हैं, तथा उसे विधिपूर्वक नहीं करते तो यह अमृततुल्य प्राणायाम भी कभी-कभी हमारे लिए हानिप्रद बन जाता है। नीचे हम प्राणायाम के अभ्यासी के लिए कुछ आवश्यक नियम दे रहे हैं। प्रिय पाठक यदि इन नियमों का पालन करते हुए प्राणायाम का अभ्यास करेंगे, तो उन्हें प्राणायाम से अवश्य लाभ होगा। उनके मन तथा इन्द्रियों के दोष और चचलता दूर होकर, वे अपने जीवन को पूर्ण सयमी तथा सुख मय बना सकेंगे।

"प्राणायाम के अभ्यासियो के लिये आवश्यक नियम"

१-किसी भी प्रकार के प्राणायाम करने से पूर्व एक-बार अन्दर से श्वास को नासिका द्वारा बलपूर्वक बाहर निकाल देना चाहिये, और फिर यथाविधि पूरक आदि प्राणायाम का प्रारम्भ करना चाहिये।

२-प्राणायाम के तीन अग हैं। पूरक-अर्थात् प्राणों को नासिका द्वारा बाहर से अन्दर भरना। कुम्भक-अर्थात् उस अन्दर भरे श्वास को यथाशक्ति अन्दर ही रोक लेना। रेचक-अर्थात् उन रोके हुए प्राणों को शनै-शनै लम्बा करके बाहर निकाल देना। प्राणायाम के उपर्युक्त तीनो अगों को करते समय क्रमश तीन बन्ध करने चाहिये। पूरक करते समय "मूलबन्ध" अर्थात् गुदा और मूलेन्द्रिय का ऊपर आकर्षण करना। कुम्भक करते समय "जालन्धर बन्ध" अर्थात् सिर को थोड़ा झुकाकर थोडी को कण्ठकूप में लाकर लगा देना। रेचक करते समय "उड्डियान बन्ध" अर्थात् पेट को यथाशक्ति अन्दर ले जाना। इससे प्राणायाम के तीनों अग सरलतापूर्वक हो जाते हैं।

३—पूरक करते समय छाती को भली प्रकार से फुलाना चाहिये, जिससे फेफड़ों के सभी हिस्से प्राणो से भली प्रकार भर जाए ।

४—श्वास शनै-शनै और लम्बा करके अन्दर लेना चाहिये, और लम्बा ही करके बाहर निकालना चाहिये ।

५—प्राणायाम करते समय 'शीतली' आदि कुछ विशेष प्राणायामों को छोडकर श्वास नासिका से ही लेना चाहिये । मुख हमेशा बन्द रखना चाहिये ।

६—प्राणायाम व्यायाम आदि शारीरिक परिश्रम करने के पश्चात् दस पन्द्रह मिनट विश्राम लेकर करना चाहिये ।

७—प्राणायाम खुली तथा स्वच्छ हवा मे करना चाहिये । किन्तु जिस ओर से वायु के जोर के झोंके आ रहे हो, उस ओर मुख करके प्राणायाम नहीं करना चाहिये ।

८—प्राणायाम के अभ्यासी को घृत, दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों तथा फलो और हरी सब्जियों का यथाशक्ति अवश्य सेवन करना चाहिये ।

९—प्राणायाम करते समय जितना पेट हल्का और आतें मल से रहित होगी, उतना ही प्राणायाम ने मे सुगमता तथा अधिक लाभ की प्राप्ति होगी ।
को इस बात का पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि पेट सदा हलका और आतें मल से रहित रहें ।

१०—प्राणायाम के अभ्यासी का आहार सात्विक, पौष्टिक तथा सुपच होना चाहिये ।

११—यदि प्राणायाम करने वाले सज्जन प्रातःकाल योग की जलनेती तथा वस्त्रनेती, या इन दोनों मे से कोई एक कर लिया करें तो बहुत अच्छा है । इन दोनों यौगिक क्रियाओं के करने से जहां जुकाम, सिरदर्द तथा नेत्र सम्बन्धी रोगों की निवृत्ति होती है । वहां नासिका के छिद्र स्वच्छ तथा मलरहित होने से प्राणायाम करने मे बहुत सुगमता पड़ती है । पाठक उपर्युक्त दोनों क्रियाओं के करने की सचित्र तथा सरल विधि मेरी पुस्तक "योग और स्वास्थ्य" अथवा "प्राणायाम" मे देख सकते हैं ।

१२—प्राणायाम के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य पालन अर्थात् वीर्यरक्षा पर पूरा ध्यान देना चाहिये ।

१३—प्राणायाम न तो भोजन के पश्चात् और न भूख प्यास की अवस्था मे करना चाहिये ।

१४—यदि शरीर मे किसी प्रकार का कष्ट हो, या शरीर बहुत थका हुआ हो अथवा क्रोध, शोक, चिन्ता आदि की अवस्था हो तो प्राणायाम नहीं करना चाहिये ।

१५—प्राणायाम के अभ्यासी को सदा नासिका से ही श्वास लेने की आदत डालनी चाहिये, मुख से कदापि नहीं ।

१६—ज्वर आदि की अवस्था मे प्राणायाम नहीं करना चाहिये ।

१७—प्राणायाम से शीघ्र लाभ उठाने के लिए तथा शरीर को सदा स्वस्थ और नीरोग बनाए रखने के लिए प्राणायाम के साथ साथ योग के शीर्षासन, सर्वाङ्गासन आदि आसनों का अभ्यास भी अवश्य करना चाहिये ।

आशा है सयम तथा सदाचार के अभिलाषी सज्जन प्राणायाम का अभ्यास करते समय उपर्युक्त नियमों का अवश्य ध्यान रखेंगे । केवल ध्यान ही नहीं प्रत्युत इनका तत्परता से पालन करेंगे । यदि प्रिय पाठकों ने उपर्युक्त नियमो का पालन करते हुए प्राणायाम का अनुष्ठान किया तो जहा वे पूर्ण सयमी तथा सदाचारी बनेंगे, वहा अपने शरीर को भी सदा स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग रख सकेंगे ।





'अनार्य जुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्त्तिकरम्'



[विद्याभास्कर श्री प० सच्चिदानन्द जी शास्त्री एम० ए०, महोपदेशक]



श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री

भगवान कृष्ण ने मैदान से भागते हुए अर्जुन को इन उपर्युक्त-महत्वपूर्ण शब्दो से कैसा उपालम्भ दिया है। ऐ ऋषि भक्त आर्यो! आप मे निष्क्रियता व चेतना-शून्यता कहां से आ गई है। आप प्रति वर्ष अपने अतीत को स्मरण कर, अपनी दुर्बलताओं को दूर करने की शपथ लिया करते हो। अन्धकार से प्रकाश की ओर अज्ञान से ज्ञान की ओर चलने की प्रेरणा सदा से अपने महापुरुषो से पाते रहते हो। यदि आप मे हीन भावनाओ का समावेश हुआ, तो अब तुम्हे कौन बार-बार जगाने आयेगा। आज आपके जागते रहने पर भी परिन्दे पर मारते घूमते हैं।

धर्म भ्रष्ट हो रहा है, माताओ-बहनो की आये दिन बेइज्जती देखने-सुनने को मिलती है। अनाथो विधवाओं की आज भी दयनीय दशा का चित्र आंखो के समक्ष दृष्टिगत होता रहता है। गौमाता का सूर्य की किरण फूटते ही करुण क्रन्दन कानो को विह्वल किये रहता है। सस्कृत ज्ञानमयी मा का आज भी अपमान हो रहा है इसे कौन सुनेगा, सिवाय ऋषि के इन आर्यों के अतिरिक्त। क्या तुम्हारे होते हुये इस देश की यह हीन दशा इसी प्रकार बनी रहेगी। जरा सोचो और विचारो।

यह ऋषि का वर्चस्व क्या यू ही जायगा। उनके बलिदान के पावन स्मृति मे हम उनके अनुयायी उन्हें स्मरण करने का अधिकार भी रखते हैं या नही?

अपने महान् गुरु देव दयानन्द के जीवन के अन्तिम क्षणो की स्मृति हमारे हृदयो में उनके द्वारा आरम्भ किये महान् लक्ष्य को पूरा करने की भावना भरेगी या नही?

समस्त धरती का बल वैदिक आदर्शों को मिटाने चला आ रहा है। भौतिकवाद के प्रवाह का तूफान, जाति-पाति की लहरें सिर पर चढती हुई आज दयानन्द के अनुयायियो को चुनौती दे रही हैं।

वह समय आ गया है जब हमे अपने कर्तव्य का निश्चय करना होगा। धरती को स्वर्ग बनाने के लिये सत्य, शान्ति और न्याय की विमल पताका जन-मन पर लहराने के लिए सम्पूर्ण आर्य, हृदय मे नया विश्वास भर कार्य क्षेत्र मे अवतरित होगे और ऋषि के प्रति हमारा सच्चा शिष्यत्व होगा।

ऋषिऋण का यही पुनीत पर्व हमे उनकी याद दिलाता है कि हम उनके आदेश से दूर तो नही जा रहे हैं, जिससे कि भगवान् कृष्ण का वह वाक्य हमे लाछित न कर सके।

'अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिमकरमर्जुन'

और यही ऋषि दयानन्द के स्मरण-दिवस पर हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।



झंडा ऊँचा रहे हमारा



[ले०—श्री रणजीत जी जिज्ञासु वानप्रस्थी, पीलीभीत]

ओं आदित्याः रुद्राः वसवः सुनीथाः द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् । सजोषसो यज्ञ मवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ।। ऋ. ३-८-८

अर्थ—(सुनीथा) उत्तम नीति वाले (आदित्या) ४८ वर्ष पयन्त ब्रह्मचर्य धारण करने वाले, चारो वेदो के ज्ञाता, महाविद्वान्, आदित्य ब्रह्मचारी या नेता लोग (रुद्रा) ३६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण कर ३ व २ वेद के ज्ञाता रुद्र ब्रह्मचारी या शत्रुओ के रुलानेवाले क्षत्रिय वर्ग (वसव) २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य रखने वाले १ वेद के ज्ञाता वसु ब्रह्मचारी या धनिक वर्ग (पृथिवी) विशाल (द्यावा-क्षामा) आकाश और पृथिवी पर (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष मे (देवा) परोपकारी विद्वान् (सजोषस) तुल्य प्रीति वाले—एक लक्ष्यवान् होकर (यज्ञ) राष्ट्र रूपी यज्ञ की (अवन्तु) रक्षा करें और (अध्वरस्य) इस राष्ट्र यज्ञ के (केतुम्) झण्डे को (ऊर्ध्वं कृण्वन्तु) ऊँचा करें।

व्याख्या—५ हजार वर्षों बाद चारों वेदो का ज्ञाता आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द इस राष्ट्र को और इस आर्य जाति को इसके गत गुणगौरव को पुन स्मरण कराने इसका उद्धार करने आया परन्तु दुर्भाग्य, हमने उस देव दयानन्द की देन का अनुसरण न किया, उसके बतलाये मार्ग को छोडकर अपने को केवल धार्मिक संस्था घोषित कर राजनीति से पृथक् रहकर अपना नेतृत्व खो दिया जिसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजी शिक्षा से दीक्षित व्यक्तियों के हाथ में नेतृत्व की बागडोर चली गयी। जिसके परिणाम स्वरूप जिस स्वराज्य में स्नेह, सद्भावना, समता, सहयोग, सुरक्षा और सब सुख सुविधाओ का श्रवण-सुखद संगीत सुनाई देता उसके स्थान पर आज पद प्रभुता, अधिकार लिप्सा, दमन, लूटमार, भुखमरी, बेकारी, साम्प्रदायिकता, अनैतिकता, अराजकता, रिश्वतखोरी, बिरादरी वाद, स्वार्थसिद्धि, चोरबाजारी, स्वजन पक्षपोषकता, निरक्षमता, महगाई, खूरेजी आदि की भयकर चण्डी चिंघाड़ कर ताण्डव कर रही है। शासक वर्ग जनता के खून पसीने की कमाई के धन से निज विलासिता में रत है और जनता महगाई तथा अनेकों करभार से पिसी और दबी मर रही है। पाकिस्तान और चीन रूपी अजगर मुंह फाड़े राष्ट्र को निगलने में उद्यत हैं। अन्त' बाह्य पञ्चमांगी रिपु शासन की दुर्बल और नपुसक नीति से लाभ उठाकर स्व-च्छन्द विचरते शत्रुओं के स्वागत के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। ऐसे समय मे आर्य जिसका शब्दार्थ ही यह है सब ओर से विचार पूर्वक गति करने वाले हाथ पर हाथ धरे राजनैतिक निरपेक्षता का आवरण मुह पर डाले किंकर्तव्य विमूढ़ बना बैठा रहे क्या यह हमारे आर्य नेतृवर्ग का आदेश है ? जबकि हमारे गुरुवर देव दयानन्द ने वेदशास्त्रों का सबल शस्त्र दे और अपने साहित्य तथा उपदेशों का आशीर्वाद दे हमे रणाङ्गण मे आह्वान किया है। आर्यों को सोचना है कि हम वेद व देव दयानन्द के आदर्शों पर आरूढ़ होते हैं या राजनैतिक निरपेक्षता के फलस्वरूप राष्ट्र को विध्वसकारी कगार पर अवस्थित करने के पापी बनते हैं। अस्तु—

उक्त वेदमन्त्र मे राष्ट्र ऊँचा उठे, उसका सर्वत्र यश विस्तीर्ण होवे इसके उपाय कहे गये हैं। आदित्य ब्रह्मचारी पूर्ण विद्वान् राष्ट्र के नेतृत्व को सभालने वाले ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग जो दुष्टों को रुलाने वाला तथा शत्रुओं का नाशक और धनिक वैश्य वर्ग और नीतिमान् लोग (सजोषस) एक आदर्श एक लक्ष्यवान् होकर राष्ट्र रूपी यज्ञ की रक्षा करें। वेद में आया है—"यज्ञो भुवनस्य नाभि" यज्ञ सारे भुवन का केन्द्र स्थल है और शतपथ में कहा है—"यज्ञोवैश्रेष्ठतमोकर्म" यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। महर्षि दयानन्द ने जहा सबको पञ्चमहायज्ञ करने का उपदेश दिया वहां राजा के कर्मों को बताया है—' राजा सब विध राजकर्मों को ऐसी दक्षता से करे जिससे प्रजा सब

[शेष पृष्ठ ३२ पर]



श्रद्धा और आर्यसमाजी



(ले०—श्री प० बिहारीलाल जी शास्त्री)

आर्य समाजियों को आत्महीन बनाने के लिये आर्य आर्यसमाज के विरोधियों ने अब एक नया नारा



लेखक

निकाला है कि समाज मे श्रद्धा के भाव नहीं । आर्यसमाजी को यह अनुभव कराया जाता है कि तुम श्रद्धा विश्वासहीन हो । तुम्हारा समाज श्रद्धाहीन है । अत तुम धर्म और अध्यात्म से बहुत दूर हो । आध्यात्मिक बनने के लिये गुरु की शरण लो । उपनिषद् भी कहती है—

'तद् विज्ञानार्थंगुरुमेवाभिगच्छेच्छ्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्"

ब्रह्म ज्ञान के लिए गुरु के पास जाओ जो गुरु वेदज्ञ हो और ब्रह्म मे श्रद्धालु भी ।

बस अनेक आर्यसमाजी भी आजकल के उन गुरुओं की शरण में आ पहुचते हैं जो नये ढग के होशियार, धर्म के सौदागर हैं । जिनको उपनिषद् के अनुसार न वेद का ज्ञान है न ब्रह्म मे उनकी निष्ठा । जो अपने को ब्रह्म से भी बढ़कर बताते हैं । जो रामकृष्ण के अवतार अपने को कहते हैं । इनमे कुछ तो अंग्रेजी अच्छी बोल लेते हैं अत. अंग्रेजी पढ़े लिखे जड़ बुद्धि इनके चगुल में चढ़ जाते हैं । कोई चेला इन्हें हाईकोर्ट का जज बता देता है । कोई कलक्टर समझ लेता है । पर ये होते साधारण ही हैं । कुछ गुरु नितान्त मूर्ख होते हैं । वे चेलो से कह देते हैं—

"पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित हुआ न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय ।।

प्रेम से इनका आशय होता है केवल गुरु से प्रेम । "तन मन, धन सब अर्पन करें" यह हैं इन वचक गुरुओं के उपदेश नारियों तक को । जो सौभाग्यवती पत्नी अपना तन, मन धन पति को अर्पित कर चुकी वह अब गुरु को अर्पित करे तो "अमानत मे खयानत" है या नहीं ? पूरी धोखेबाजी है न ? मगर यह सोचने समझने की बुद्धि यह गुरु पहले ही हर लेते हैं । "गुरु के बचन करहिं विश्वासा" का उपदेश देकर बुद्धि की गति को ठप कर देते हैं ।

ऐसे गुरु आजकल अनेक हैं । खूब माल पैदा कर रहे हैं । नवाबी ठाठ से रहते हैं, और वेद शास्त्र तथा विद्वानो का उपहास करते हैं । इनके चेलों में अधिक सख्या स्त्रियों की रहती है । कोई-कोई श्रद्धाजड़ आर्य समाजी भी इनमें पहुच जाता है । इन गुरुओं के चेले, देश जाति धर्म की समस्याओं से दूर, जनता के कष्टों से अनजान, केवल अपने ऐहिलौकिक आराम मे लग्न और पारलौकिक स्वर्ग की आशा में मग्न गुरु में सब कुछ चढ़ाये हुए मस्त रहते हैं । कमाई से ये लोग निश्चिन्त होते हैं । कोई धनी या पेंशनर या फिर गुरु के शेयरहोल्डर (पत्तीदार) होते हैं । ये लोग और शराब के नशे में पड़े मस्त लोग देश और जनता के लिये एक से ही व्यर्थ हैं, मृतवत् हैं । इधर आर्यसमाजी को लीजिये । निकम्मा से निकम्मा आर्यसमाजी भी देश धर्म की तड़प रखने वाला मिलेगा । जनता के दुख सुख की अनुभूति उसे अवश्य रहेगी । वह जनजीवन से उदासीन नहीं मिलेगा ।

इन श्रद्धालु कहाने वाले गुरुओं ने मठ बनाये, आश्रम खड़े किये, पर पूर्वी बंगाल के हिन्दू मुसलमान बनते रहे और उसका परिणाम हुआ पूर्वी बंगाल पाकिस्तान बन गया। सहस्रों हिन्दू देवियां यवनों में जाती रहीं। हरिजन ईसाई बनते रहे और ये श्रद्धालु भक्त कीर्तन और गुरुभक्ति में लीन रहे और श्रद्धाहीन जिन आर्यसमाजियों को कहा जाता है, उन्होंने सहस्रों स्त्रियों और लाखों पुरुषों को अहिन्दू होने से बचाया और इस प्रकार राष्ट्रियता की सहायता की। लाखों व्यक्तियों को अंधविश्वासों से बचाया और सहस्रों को गायत्री मंत्र पढ़ाया। लाखों को वेद विश्वासी और भारतीय संस्कृति का प्रेमी बनाया। कौन माई का लाला ऐसा श्रद्धालु हुआ है कि जिसने जीवन भर सारा समय जनता को शिक्षित करने में होम दिया हो और जनता से एक पैसा भी न लिया हो। आर्यसमाज में महात्मा हंसराज जी पं० मेहरचन्द जी आदि अनेक नेता हुए हैं कि जिन्होंने सरस्वती की सेवा में सारा जीवन आहुत कर दिया है। शहीदे अकबर, पं० लेखराम जी और शहीदे आज़म स्वामी श्रद्धानन्द जी की जोड़ का कौन श्रद्धालु हुआ है कि जिसने अपना धन जीवन, सुख संपत्ति और प्राण भी हिन्दू धर्म, सनातन धर्म, आर्य संस्कृति की रक्षा में भेंट कर दिये। स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी सर्वदानन्द, ब्रह्मचारी नित्यानन्द, म० नारायण स्वामी, पंडित गणपति शर्मा जैसे विद्वानों का त्याग और जनसेवा क्या सच्ची श्रद्धा नहीं है। एक हैं वे श्रद्धालु जो जनता के सुख दुख की उपेक्षा करके, इस भूमि से उदासीन होकर स्वर्ग की चाह में बेचैन हो रहे हैं। दूसरा और है श्रद्धाहीन कहाने वाला आर्यसमाजी जो इसी जन्म भूमि वसुन्धरा को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

जनता बतावे कि उसका हितैषी कौन है? और जो जनता की सेवा करता है उससे ही जनार्दन प्रसन्न होंगे। तब आर्यसमाजी की श्रद्धा सच्ची श्रद्धा रही या नहीं?

आर्यसमाज के सन्यासी, उपदेशक, भजनीक जनता का बहुत कम व्यय कराकर जो उच्च कोटि के तक संगत विचार जनता को बांट देते हैं, वैसे विचार ये ढोंगी गुरु सहस्रों रुपये फूंक कर भी नहीं दे पाते। आर्यसमाज के उत्सवों पर जन-जागरण के लिये जो प्रचार होता है वह लाखों रुपया नष्ट करके भी ये मुक्ति और स्वर्ग के ठेकेदार नहीं कर पाते। हमें ऐसी श्रद्धा नहीं चाहिए कि जो बुद्धिवाद को दफनाना चाहती है। जो तर्क को दूर करके ही फल फूल सकती है। हम तो बुद्धिवाद पर परखी हुई तर्क पर तुली हुई "श्रत्-सत्यम्-धा-दधाति" सत्य के ऊपर आधृत श्रद्धा के पुजारी हैं। जन-जीवन से उपेक्षा करने वाली, देश से अनुराग हटाने वाली बुद्धि को भेंट चढ़ाने वाली श्रद्धा हेय है निकम्मी है।

आर्यसमाज के सन्यासी जनजीवन से जुड़े हुए हैं। कर्मयोगी हैं। बड़े बड़े गंगोत्तरी और हिमालय के योगियों से हमारा वह सन्यासी जनता का कितना हितकारक है जो जनता को दस पांच वेद मंत्र कंठस्थ कराके संध्याग्निहोत्र की ओर प्रेरित करता है। अंधविश्वासों को भगाकर राष्ट्र को स्वस्थ और बलवान् बनाने में लगा हुआ है। जनता के धन से मौज मारने वाले ये ढोंगी गुरु ऐसे जनसेवक सन्यासी का क्या मुकाबिला कर सकते हैं। प्रिय आर्य भाइयो हमारे इस लेख को पढ़कर फूल न उठिये। औरों की तुलना में आप अच्छे सही, पर ऋषि दयानन्द के गज से नापने पर आप बहुत छोटे उतरेंगे। अभी बहुत काम पड़ा है। सैकड़ों श्रद्धानन्द और लेखराम चाहिये इस्लाम की क्रूर कट्टरता को दूर करने के लिये। सैकड़ों उपदेशक चाहिये ईसाइयत के अंधविश्वास को दूर कर जनता को स्वच्छ आध्यात्मिकता की ओर लाने के लिये। कितने ही आर्यवीरों का बलिदान बलिदानी सुमेरसिंह की तरह होना है राष्ट्रभाषा को जीवित करने के लिये। हमारा स्वर्ग, मोक्ष, कल्याण सब है भारतभूमि को प्राचीन गौरव गिरि पर आरूढ़ करने में। हमारा लक्ष्य और ध्येय निराला है।

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणीनामार्ति नाशनम्॥"

हम न राज्य चाहते हैं न स्वर्ग न मोक्ष, केवल अन्धविश्वास से पीड़ित जनता को स्वस्थ सत्य मार्ग पर हमें लाना है। ध्येय कठिन है। घोर साधना की अपेक्षा है। आर्यजनो आजकल की भौतिकवाद की लहर और विलासिता की ज्वाला, भ्रष्टाचार की आंधी और राजनैतिक आतुरता के तूफान से बचकर अपने सरल स्वच्छ जीवन से वह साधना करो जो हमसे पहले आर्य भाइयों ने की थी। व्रत धारण करो, शपथ लो, अपने जीवन को बलिदान की

पाश



[डा० मुन्शीराम शर्मा, डी० लिट्०, आर्यनगर, कानपुर]

प्रभु निकटतम हैं, फिर भी दिखाई नहीं देते, अनुभव में नहीं आते और जैसे कोई अपरिचित,दूरस्थ व्यक्ति सम्पर्क से पृथक् रहता हो, वैसे ही वे भी हम से रहते हैं। अपना होते हुए भी बिराना, निकट होते हुये भी दूर, अन्तर्यामी होते हुए भी प्राप्ति से परे, ऐसा क्यों है ? वेद कहता है—"प्रभु दूर भी है और समीप भी। समीप उनके



लेखक

लिये है जिसके पाश भग्न हो चुके हैं। दूर उनके लिये हैं जो पाशों में जकडे हुए हैं। ये पाश भी दो प्रकार के होते हैं—यज्ञिय और अयज्ञिय। अयज्ञिय पाशों में तमोगुण एव रजोगुण से सम्बन्धित दोषों की गणना है। यज्ञिय पाशों में सत्वगुण के बन्धन हैं। जब तक हम इन तीनों पाशों से मुक्त नहीं होते, तब तक प्रभु का साक्षात् करने के अधिकारी नहीं हैं। तमोगुण और रजोगुणों के बन्धनों को अयज्ञिय पाश कहा गया है, क्योंकि इनसे मानव पाप में लिप्त होता है, दुष्कर्म करता है और परिणामत पतित होता है। अघ जब पीछे पड गया तो भद्र या शुभ या कल्याण का हस्तगत करना कठिन ही नहीं असम्भव है। भद्र शुभ या सत उन्नयन की आधारशिला है। जब तक हम सत्व की स्थिति में नहीं पहुच पाते, तब तक अधोगति ही अधोगति है। उर्ध्वगमन सत्व की अवस्था में ही सम्भव है। इसके लिये प्राणपण से उद्योग करना पड़ता है। उद्योग द्वारा हम पाप के ससर्ग से हटकर, अन्ध प्रकृति से विमुक्त होकर, प्रकाश में पहुचते हैं और सन्धिनी शक्ति के सहयोग द्वारा उस परम तत्व के साथ सयुक्त होने के अधिकारी बनते हैं।

वरणीय वरुणदेव के पाश व्रत भग करने वालों को सभी स्थानों और कालों मे आबद्ध कर लेते हैं। जो पाप करता है, वह इन पाशों मे जकड़ा जाता है। व्रत कुछ प्राकृतिक हैं और कुछ नैतिक हैं। इनमे से किसी भी व्रत को तोड़ने वाला दण्ड भागी बनता है। स्वास्थ्य के नियमों को न पालन करना प्राकृतिक व्रत का भंग करना है। झूठ बोलना, चोरी करना आदि नैतिक व्रतों के अन्तर्गत हैं। हम चाहे जितना छिपकर व्रत भग करें, पृथ्वी पर, पृथ्वी के ऊपर या उससे भी परे, वरुणदेव के सहस्राक्ष स्पर्श (दूत) हमे देख ही लेते हैं। 'सर्व तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्' (अथ० ४-१६ ५)

वरुणदेव के पाश सैकड़ों और सहस्रों हैं अर्थात् अगणित हैं, पर वे सब तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। ऋ० १-२४-१५ के अनुसार ये उत्तम, मध्यम तथा अधम पाश हैं। ये त्रेधा पाश अथर्व की निम्नांकित ऋचा के अनुसार सप्तसप्त प्रकार के वर्णित हुए हैं—ये ते पाशा

गंदगी से पवित्र रखने की। धर्ममार्ग कठिन है पर अन्त में कल्याणकारक है। अपना जीवन स्वच्छ रखकर जनता को स्वच्छ बनाओ। दूसरे स्थान के स्वर्ग की उपेक्षा करके भारत भूमि को स्वर्ग बना दो यत इसको आदर्श मानकर अन्य देश भी दैवी वृत्ति की ओर बढ़ें।

"भ्रान्त भटकती जनता को वैदिक सत्पथ पर लाना है।
नरक बनी भारत भू को फिर सच्चा स्वर्ग बनाना है।
कष्ट पड़ें, बलिदान होंय इसकी चिन्ता परवाह नहीं।
ओम् ध्वजा को हिमगिरि के शिखरों पर फिर फहराना है।

वरुण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्त.। छिनन्तु सर्वे अनृत वदन्त य. सत्य वाद्यतित सृजन्तु। (अथर्व ४ १६ ६) वरुणदेव के तीन प्रकार के पाश ही सात सात प्रकार के हैं। ये सात सात प्रकार के पाश 'सप्त मर्यादा कवयस्ततक्षु'—सात मर्यादाओं का भी स्मरण दिला देते हैं। सात मर्यादाओं का तोडना मानो सात प्रकार के पाप करना है। ये सातें मर्यादायें प्राकृतिक हैं और नतिक भी। अत दो बार 'सप्त' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रकृति के क्षेत्र मे इनका सम्बन्ध महत्तत्व, अहकार तथा पचतन्मात्राओं से है। इन सातो को स्वस्थ रखना तथा समृद्ध करना प्राकृतिक मर्यादा है। नैतिक क्षेत्र मे इनकी स्वस्थता तथा समृद्धि के सदुपयोग करने की मर्यादा है। यह उपयोग चेतना की अपेक्षा रखता है, अत नीति के अन्तर्गत आता है। पर ये सात सात प्रकार के पाश प्रमुखतया तीन ही प्रकार के हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। उसके ये तीन गुण अपने तो हैं ही, पर जब ये चेतना पक्ष पर छा जाते हैं, तो उसे भी अपने रग मे रग लेते हैं। इन्हीं के कारण जीवात्मा परमात्मा से सयुक्त होकर भी, उसका सयुजा और सखा होकर भी, उससे वियुक्त हो जाता है।

सत्व को जो यज्ञिय पाश कहा गया है उसका भी एक कारण है। सत्वगुण शुभ या भद्र का प्रापक तो है, पर यह अहकार से भी मिला हुआ है। मैं सत पुरुष हू, सच्चरित्र से सम्पन्न हू, धर्मिष्ठ हू। ऐसी भावना जीव और प्रभु के बीच में आवरण का कार्य करती है। सत्व हमे उठाता है पर अहमिति से सयुक्त होकर गिराता भी है। एक अन्य दृष्टि भी है, जिसके अनुसार यह शुभ कर्मों के फल से समन्वित करके हमे भोगवादी भी बनाता है। देवताओ की स्थिति इसी प्रकार की है। वे स्वर्ग में भोग भोगते हैं, कामचारी होते हैं, स्वच्छन्दता से सर्वत्र भ्रमण करते हैं, काल और देश दोनों का व्यवधान उनके सामने से हट जाता है। वे निर्द्वन्द्व सुख का उपभोग करते हुए विचरण करते हैं। यह स्थिति भी आर्य सस्कृति मे सर्वोत्कृष्ट स्थिति नहीं समझी गई है। देवों से नीचे पितृलोक के निवासी हैं। वे भी भोगवादी हैं। कर्म करने से दूर केवल भोग मे पडे हुए व्यक्ति अपने भावी जीवन के लिये किसी प्रकार का अर्जन नहीं कर पाते। इसीलिए पितर और देव दोनों की स्थिति को अच्छा तो कहा गया है पर सर्वोत्तम नहीं। परमगति की सज्ञा इनसे ऊपर है।

परम गति को कुछ ऋषियों ने व्यक्तित्व के विनाश की अभिधा प्रदान की है। व्यक्तित्व ही हमे प्रभु के साथ सयुक्त नहीं होने देता। सुषुप्ति मे हम तम और रज से दूर रहते हैं, परन्तु चेतना तो बनी ही रहती है। सप्रज्ञात समाधि में भी इसका अक्षुण्ण रहना सिद्ध है। [?] असप्रज्ञात समाधि मे सब कुछ विस्मृत हो जाता है। मोक्ष मे इस स्थिति की पराकाष्ठा है। अत मोक्ष या ब्रह्म रूपता अपने आपको खो देना है जिसमें मैं नहीं रह पाता व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। केवल, एकमात्र, परम तत्व रह जाता है। व्यक्तित्व के अभाव मे भूतकाल के लिए शोक मनाने तथा भविष्य के लिये मोह करने का कारण अवशिष्ट नहीं रहता। जब मैं ही नही रहा तो कौन विगत से चिपटेगा और कौन किसी अनागत की आकाक्षा करेगा ? जो न भूत है और न भविष्य है, केवल वर्तमान ही वर्तमान है, वही परमतत्व, ब्रह्म हमारे निखिल पुरुषार्थ का एकमात्र लक्ष्य है।

जैसे पाश अगणित हैं वैसे ही उनसे छूटने के उपाय भी अनेक हैं—शत ते राजन् भिषज सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु। बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचै कृतचिदेन प्रमुमुग्धि अस्मत्॥ ऋ० १ २४-९॥ राजा वरुण! तुम्हारे पास तो पाप रूपी रोग को दूर करने के लिये सैकडों, सहस्रों औषधियां है जो व्यापक तथा गम्भीर प्रभाव उत्पन्न करने वाली हैं। देव! तुम्हारी सुमति हमे भी प्राप्त हो जिससे निर्ऋति, कृच्छ्रापत्ति, घोर विपदा हमसे दूर, बहुत दूर भाग जावे। जो पाप हमने किया है और जिस पाप के कारण हम इस भयकर, विकराल क्लेश के भाजन बने हैं, उस किये हुए पाप से हमें छुडा दीजिए।

त्वहि विश्वतो मुख विश्वत परिभूरसि अपन शोशुचदघम। अथ० ४-३३-६

प्रभो! आप कहां नहीं हैं? आप तो सर्वत्र विद्यमान हैं और यह जो कुछ दिखाई देता है उससे भी परे विराजमान हैं। आप ही हमारे पाप को भस्म कीजिए। द्विषोनो विश्वतोमुख अति नावेव पारय। ७। हे सर्व व्यापक! नाव की भांति अपनी कृपा के द्वारा हमे समस्त द्वेष-रूपों से पार लगाओ। 'स न सिन्धुमिव नावा अति पर्षा स्वस्तये। ८। जैसे नाव पर बैठकर सिन्धु को पार कर जाते

(शेष पृष्ठ ३१ पर)



स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा विश्व धर्म

[ले०—श्री आचार्य रामानन्द शास्त्री, उपप्रधान बिहार सभा, पटना ४]

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की समाप्ति पर लिखा है कि 'यह सिद्धान्त भूगोल मे फैल जाय'। उन्होने अपने शिष्यों को यही आदेश दिया कि देश-देशान्तर तथा लोक-लोकान्तर मे इस त्रिकाल सत्य वैदिक धर्म को तुम कोने-कोने मे फैला दो। वस्तुत आर्यसमाज की स्थापना उन्होंने इसी उद्देश्य से की थी। आर्यसमाज कोई धर्म अथवा पंथ नहीं है यह तो उस सगठन का नाम है जिसका उद्देश्य वैदिक धर्म को विश्व में पुन फैलाना है। उन्होंने धर्म की परिभाषा को नियम और उद्देश्य के समान ही सर्वजन ग्राह्य बनाया। महाराज एकादश समुल्लास मे धर्म की परिभाषा करते हुये कहते हैं कि—जिसे सब माने उसे धर्म तथा एक माने उसे अधर्म समझना। जैसे—सत्य, सदाचारादि। धर्म की यह परिभाषा देश और काल से बाधित नहीं हो सकती है। जीवनी देखने से विदित होता है कि स्वामी जी से किसी ने पूछा कि—पाप, किसे कहते हैं ? तो स्वामी जी ने यही उत्तर दिया कि—भारतीय पेनल कोड मे जो जुर्म लिखे हैं वही पाप हैं। इससे बढ़कर पाप की और परिभाषा क्या हो सकती है ? महाराज ने आर्यावर्त मे उत्पन्न मतो का खण्डन भी इसी उद्देश्य से किया है कि यह देश स्वस्थ होकर विश्व मे वैदिक धर्म को फैलावे। वस्तुत आर्यसमाज के सगठन का निम्नलिखित कार्यक्रम रहा है—

(१) निर्माणात्मक (Constructive)

(२) खण्डनात्मक (Destructive)

(३) आक्रमणात्मक (Obstructive)

प्रथम प्रोग्राम के अनुसार शिक्षा आदि का विस्तार था कि योग्य वैदिक धर्म को ठीक रीति से समझने वाले तथा जीवन मे धारण करने वाले नागरिक तैयार हों। दूसरे प्रोग्राम के अनुसार हमारे प्रचारको ने खण्डनात्मक साहित्य का निर्माण किया। वैदिक गगा मे विजातीय पदार्थ घुसकर वह इस निर्मल जल को दूषित कर रहे थे, तथा साधारण जनता उसे ही वैदिक धर्म समझ कर पान कर रही थी इसलिये इस प्रकार के खण्डनात्मक साहित्य ने वैदिक धर्म को निर्मल बनाने में बड़ा ही सहयोग दिया। तीसरे प्रोग्राम के अनुसार धर्म की आड मे गुरुडम, एक तन्त्रवाद अथवा सम्प्रदाय विशेष, जनता की बुद्धि को कुठित कर मानवता के प्रति घृणा फैला रहे थे, उनका खण्डन आवश्यक था। यह दूषित मनोवृत्ति आज भी विद्यमान है। जैसे—रोमन कैथोलिक धर्म के परम पवित्र पिता, वेटिकान (Vatican) के पोप ने सब धर्मों में एकता की चर्चा करते हुए ईसाई धर्म को ही सर्वोत्कृष्ट बताया है। इससे परस्पर घृणा की उत्पत्ति सम्भव है। इसी साम्प्रदायिकता से दूषित होकर मुहम्मद अली साहब ने एक बार कहा था कि—एक इक्के वाला मुसलमान भी महात्मा गांधी से अच्छा है, क्योंकि वह कुरान, हजरत मुहम्मद पर विश्वास करता है। स्वामी जी ने ऐसे विचारों को मानवता के विरुद्ध समझा, इसलिये इसके लिये बौद्धिक क्रान्ति की। वस्तुत यह साम्प्रदायिक विचार साम्राज्यवाद तथा पूजीवाद से भी अधिक भयावह हैं जिसे दूर करने की चेष्टा १९ वीं शती मे कार्ल मार्क्स ने की थी। इसी विचार से ऋषि ने भारत के बाहर से आने वाले मजहबों की आलोचना की—

कुछ लोगों का कहना है कि यह वैदिक धर्म कभी मिशनरी धर्म नहीं रहा है, यह स्वामी जी की देन है कि वे इसे विश्वधर्म बनाना चाहते थे। किन्तु उनका यह कहना गलत है। बुद्ध और ईसा से बहुत पहले वेद धर्म प्रचारक विश्व के प्रत्येक हिस्से में गये, उन्होंने—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस श्रुति से प्रेरणा ली। ये धर्म प्रचारक जहां कहीं गये धर्म के प्रचार के साथ ज्ञान और विज्ञान का भी प्रचार किया। तभी तो महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि भूगोल में जितनी विद्यायें फैली हैं वे सब आर्यावर्त देश से ही गयी हैं। "अरब और भारत के सम्बन्ध" पुस्तक के लेखक मौलाना सुलेमान नदवी ने लिखा है कि—भारत से मामका



नामक वैद्य अरब में गये तथा उन्होंने ही आयुर्वेद के संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद अरबी जबान में किया। मौलाना यह भी स्वीकार करते हैं कि-गणित विद्या का ऋणी अरब ही नहीं अपितु सारा यूरोप सृष्टि पर्यन्त रहेगा। क्योंकि भारतीय गणित विद्या अरब से स्पेन गयी, वहा से कारडोवा यूनर्वसिटी द्वारा सम्पूर्ण यूरोप में फैल गयी। जिस समय अरब अथवा स्पेन में (Zero) की परिभाषा तथा बीजगणित की पढ़ाई पर प्रतिबन्ध था। उस समय भारतीय ऋषि ज्ञान और विज्ञान का समन्वय कर रहे थे। वे ज्ञान तथा मानव विज्ञान की उन्नति को धर्म का बाधक नहीं, अपितु धर्म का पूरक समझते थे। गीताकार कृष्ण कहते ही हैं कि—ज्ञान तेऽहं स विज्ञानम् इद वक्ष्यामि अर्थात् अर्जुन ! तुम्हें ज्ञान और विज्ञान की सम्पूर्ण शिक्षा दूंगा।

महाविद्वान् मैक्समूलर ने कहा है कि—प्रसिद्ध तत्त्व-वेत्ता सुकरात को आत्म ज्ञान की शिक्षा भारतीय पण्डित से प्राप्त हुई थी। पाइथागोरस सांख्य दर्शन से प्रभावित था। मैक्समूलर भाषा विज्ञान की दृष्टि से पाइथागोरस को पृथ्वी गुरु कहते हैं। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् विन्टर मिनिज ने कहा है कि—प्लेटो आदि ने ईरान मे आकर भारतीय पण्डितो से अपने ज्ञान की प्रेरणा ली थी। एक सीरिया निवासी सन्त के कथन का उद्धरण देते हुये, स्व-र्गीय प०जवाहरलाल नेहरू (Discovery of India) (भारत की कहानी) में लिखते हैं कि-एक सीरिया निवासी सन्त ने यूनानियों के व्यवहार से तग होकर कहा था कि—"इन यूनानियों को अपनी विद्या का बड़ा घमण्ड है, इन्हें नहीं मालूम है कि भारत का ज्ञान कितना अपरि-मित है और विषयों की चर्चा न कर, वे (भारतीय) एक से लेकर नव तक अक लिखना जानते हैं जो इन यूनानियो को नहीं मालूम है।"

पाठक यह न समझें कि ये भारतीय ऋषि अथवा मुनि, या धर्म प्रचारक विश्व के और धर्मों से परिचित नहीं थे। ससार में जहा कहीं भी नूतन विचार उत्पन्न होता था, उसे तर्क की कसौटी पर कसते भी थे।

मौलाना सुलेमान नदवी कहते हैं कि—जिस समय पश्चिम भारत में (सौराष्ट्र) राजा सोमदेव राज्य करते थे कि उनके दरबार में यह चर्चा चली कि अरब में एक धर्म चला है जिसका नाम 'इस्लाम' है, वह बहुत अच्छा धर्म है। इस पर किसी ने बात काट कर कहा कि नहीं, इस्लाम अपनी खूबियों से नहीं अपितु तलवार से फैल रहा है। मौलाना साहब लिखते हैं कि-एक पत्र राजा ने खलीफा के पास अरब मे भेजा तथा उसमें लिखा कि—मैंने सुना है कि आपने इस्लाम एक नया धर्म स्वीकार किया है तथा तलवार की जोर से उसे फैला रहे हैं, यदि उसे तलवार की जोर से फला रहे हैं तो उसकी मुझे चिन्ता नहीं क्योंकि उसका प्रबन्ध कर लिया है। यदि, यह धर्म बुद्धि से फैलता है तो आप एक होशियार जानकार को भेजिये कि-हमारी गोष्ठी मे इस्लाम पर विचार किया जाय। इस पत्र के अनुसार एक मौलवी कुरान का माहिर अरब के खलीफा के यहां से भेजा गया। वह जब दरबार मे आया तो भारत के पण्डित ने पूछा कि-आप किस धर्म को मानते हैं। उसने उत्तर दिया कि इस्लाम को। इस्लाम किसे कहते पुन पण्डित ने पूछा-इस्लाम वह धर्म हे जो एक खुदा को सब कुछ मानता है-सर्व व्यापक सर्व शक्तिमान् आदि। भारतीय पण्डित ने तर्क किया कि तुम्हारा खुदा सर्वशक्तिमान् है तो ऐसा पदार्थ बना सकता है जो उससे न उठे। यदि हा कहता है तो भी खुदा की सर्व शक्तिमत्ता जाती है यदि कहता है कि नहीं तो भी उसकी शक्ति मत्ता समाप्त है। अन्त मे वह निरुत्तर होकर चला गया।

महर्षि स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि महात्मा विदुर ने अरबी मे लाक्षागृह का भेद युधिष्ठिर को बताया। इससे सिद्ध होता है कि भारतवर्ष के ज्ञानी अपने को भाषा की परिधि से दूर हटाकर सर्वभाषा में वैदिक उदात्त विचार का प्रचार किया करते थे।

वैदिक ऋषियों तथा मुनियो से ही अनुप्राणित होकर जैन धर्म के प्रचारक हुये उनसे प्रेरणा लेकर बौद्ध धर्म के प्रचारको ने बुद्ध वाणी का प्रचार किया। ईसामसीह तो भारत मे आकर पढ़े ही थे, यह प्राय निर्विवाद सिद्ध हो रहा है। क्योंकि ईसामसीह की बाल्यावस्था का इतिहास मिलता है। युवावस्था मे वर्णन है कि मध्य में वह कहां था इसका उल्लेख ईसाई ग्रन्थों मे कहीं नहीं मिलता है। इस पर लोगों का कहना है कि वे इतने दिनों तक भारत में ही पढ़ते रहे। वस्तुत: ईसाई धर्म का आधार तो

यहूदी धर्म का है तथा शिक्षा सम्पूर्ण बुद्ध धर्म की है।

निष्कर्ष यह है कि–यह वैदिक धर्म ही विश्व धर्म रहा है, इसी मे योग्यता भी है कि यह विश्व धर्म बने। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज स्थापित कर इसे अनुप्राणित कर विश्व धर्म बनाने का आदेश दिया। अत हमारी सभाओं को समाजों तथा प्रचारकों को चाहिये वेद वाणी' को दिग्दिगन्त मे पहुचा दें।

अन्त मे वेदव्यास की यह वाणी उद्धृत कर इस वृत्त को समाप्त कर रहा हू।

भवन्तो बहुला सन्तु वेद प्रसार्थता मयम्।

महा० शा० पर्व

अर्थात् आप बहुत हों तथा इस वेद को विश्व में फैलावें।

इस कार्य में हमारा सहयोग महर्षि दयानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगा।

●

(पृष्ठ २९ का शेष)

हैं, उसमें डूब नहीं पाते, वैसे ही कल्याण प्राप्ति के लिये आप हमे पार लगा दें। अयज्ञिय पाश भी हमें बांधे हुए हैं। इन सभी पाशों से आप हमे मुक्त करें।

अयज्ञिय पाश छुडाते नहीं, कस कर जकड़ लेते हैं। दोनो के नाना रूप अवनत एवं उन्नत चेतना सपन्न प्राणियों में देखे जा सकते हैं। दोनों से ही छूटना मुक्ति है अथवा चेतना गति की पराकाष्ठा है। परम तत्व प्राप्ति की स्थिति भी अशुभ एव शुभ दोनों से पृथक् है। यदि हम इस स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमे अयज्ञिय एव यज्ञिय, अशुभ एव शुभ दोनों प्रकार के पाशों से मुक्त होना होगा। वेद ने अयज्ञिय पाशों को अधम एव मध्यम और यज्ञिय पाशों को उत्तम कहा है। पाश तो पाश ही है, बन्धन तो बन्धन ही है, बेडी तो बेडी ही है। फिर चाहे वह लोहे की हो अथवा स्वर्ण की। कारागार तो कारागार ही है। वह चाहे प्रथम श्रेणी का हो अथवा द्वियीय या निकृष्ट श्रेणी का, बेड़ियों में जकडा हुआ, कारागार में पड़ा हुआ प्राणी आनन्दी नहीं कहा जाता।

झंडा ऊँचा रहे हमारा

(पृष्ठ २५ का शेष)

जिस सुरक्षित तथा सुख समृद्धि सम्पन्न हो, राजा की राज्य कार्य की तत्परता ही उसकी सध्योपासना है" अर्थात् राज्य व राष्ट्र की सुरक्षा और बल सम्पन्न होना श्रेष्ठतम कर्म है अत राष्ट्र यज्ञ है। द्वितीय यज्ञ का भाव है कि परहित मे अपने स्वार्थ का हुत करना। राष्ट्र की सबलता के लिये यह भावना अत्यन्त आवश्यक है। अत राष्ट्रयज्ञ की सब मिलकर रक्षा करें। हमारे राष्ट्र का कोई भाग हमसे अप हृत कर छोटा न किया जाय अत (पृथिवी) शब्द कहा यानी हमारा राष्ट्र विशाल हो, हम अखण्ड भारत के निर्माता हों। हम मे प्रान्तीयता आदि के बोध न हों सारा ही भारत हमारा विशाल एक राष्ट्र है। राष्ट्र के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों का कोई कार्य ऐसा न हो जिससे राष्ट्र अपमानित हो अपितु द्योलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक मे हमारे राष्ट्र का यश व्याप्त हो। हम अन्तरिक्ष और द्यौ में वैमानिक शक्ति सम्पन्न हों, जल थल मे हमारी सेना अजेय होकर यश लाभ करे। सारे ही परोपकारी और विद्वान् राष्ट्र ध्वज को एक भावना के साथ ऊँचा उठावें। ऋषि ने कहा है—"एक भाषा, एक भेष, एक भावना होने पर सागर मे नदियों के समान सारे ही सुख एकत्र हो जाते हैं।" अत हमारा झंडा सदा ऊँचा हो।

●

जो स्वतन्त्र है, वही आनन्दी है। यह स्वातन्त्र्य प्रकृति के तीनों गुणों से पृथक् होने मे है। बन्धन भी प्राकृतिक ही है। जीवका अपना विशुद्ध रूप प्राकृतिक नहीं चेतन है। यह चेतन आनन्दाश से वञ्चित है। अत आनन्द की उपलब्धि ही मुक्ति है। अथर्व वेद के शब्दों मे—"अन्ति सत न जहाति अन्त सन्त न पश्यति"–जीव निपट विपटी प्रकृति को छोडता नहीं और निकट ही विद्यमान प्रभु को देखता नहीं, यही उसकी सबसे बड़ी विपत्ति है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति को छोडो और प्रभु का दर्शन करो। इसी से कल्याण है।

●



आर्योद्देश्य



पालन करिये दस नियमों का भला चाहते हो अपना।
आवागमनों के कठिन चक्र से मुक्ति चाहते हो अपना॥
सभी सत्य विद्या एव जिनका विद्या से होता भाव।
उन सब का ही आदिमूल केवल परमेश्वर को तू जान॥
ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप व निराकार सर्वशक्तिमान।
परम ब्रह्म अनत अजन्मा निर्विकार है अकल अकाम॥
सर्वेश्वर आदि अनुपम है व्यापक प्रभुवर सर्व अधार।
अजर अमर सर्वान्तर्यामी अभय शुद्ध गुरु निराधार॥
सृष्टिकर्ता जगत नियन्ता दयालु न्यायकारी आदित्य।
अविराम अखण्ड अच्युत शिव अग्नि आदि कारण है नित्य
वेद सत्य विद्या की पुस्तक निशिदिन पढ़ो-पढ़ाओ।
ईश्वरोक्त स्वाध्याय ग्रन्थ है अनुपम सुनो सुनाओ॥
सत्य ग्रहण ही करो सर्वदा असत्यों से रहकर दूर।
सत्य प्रकाशवान हो जग में वह दिशा गूँजे भरपूर।
कोई कार्य करने से पहले सदा याद करो निज धर्म।
सत्यासत्य का विचार करके आरम्भ करिये अपना कर्म॥
ससार का उपकार करना मानव ध्येय प्रधान है।
सामाजिक शारीरिक आत्मिक उन्नति का ही विधान है॥
विश्व बन्धुमय जग को जानो यथायोग्य वर्तो सबसे।
धर्मानुसार प्रीति से रहिये प्राण रहें तन मे जबसे॥
अविद्या के नाश हेतु अपना समस्त अर्पण करिये।
सद्विद्या के प्रचारार्थ जीवन भी समर्पण करिये॥
अपनी ही केवल उन्नति से कभी नहीं सतोष करो।
सामाजिक व सर्वहितकारी नियमो मे रहिये परतन्त्र।
प्रत्येक हितकारी नियमो मे हरेक बांधव रहें स्वतन्त्र॥

—डा० रामकेरन आर्य एम०डी०एच०, एम०एस०सी०
(गोल्ड मैडलिस्ट) निवाजीपुर जगीगज वाराणसी।

ब्रह्म कैसा ! है तू....



एक अल्हड युवक नव्य वेदान्ती,
ऋषि दयानन्द के पास आने लगा।
और मैं ब्रह्म, मै ब्रह्म मै ब्रह्म हू,
उच्च स्वर से यही रट लगाने लगा॥
एक दिन फिर बताया महाराज ने,
जीव औ ब्रह्म का भेद उसको मगर।
रञ्च माना नहीं मूढ़ वो और भी,
हठ, दुराग्रह, ढिठाई दिखाने लगा॥
फिर महाराज ने मुसकराते हुए,
जड दिया एक, उसके चपत गाल पर।
रोष खाने लगा, तिलमिलाने लगा,
व्यर्थ मारा क्यों ! हल्ला मचाने लगा॥
वाक्य बोले महाराज, तत्काल ये,
ब्रह्म तो है अरे ! शोक दुख से परे।
ब्रह्म कैसा ! है तू जो चपत एक मे,
बालको की तरह बिलबिलाने लगा॥

—प्रकाशचन्द्र कविरत्न अजमेर

आर्योपप्रतिनिधि सभा लखनऊ

इस सभा का मासिक अधिवेशन २५ अक्तूबर को आर्य समाज चौक मे सम्पन्न हुआ। वृहदयज्ञ, के ब्रह्मा श्री प० रामचरित्र जी पाडेय थे—सन्ध्या, भजनों के उपरान्त श्री श्यामसुन्दर जी शास्त्री का यज्ञ की महत्ता पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। सनातन धर्मी पडितों ने आज के दिन शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया था, पर कोई भी पडित आर्यसमाज से टक्कर लेने के लिए उपस्थित नहीं हुआ। सभा का आगामी मासिक अधिवेशन २९ नवम्बर को आर्यसमाज आदर्शनगर मे होगा, और अन्तरग की बैठक १ नवम्बर रविवार को शाम को ६ बजे आर्यसमाज गणेशगञ्ज मे होगी।











आर्यसमाज है क्या ?



(ले-डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालङ्कार एम०ए० डी० लिट् अजमेर)

जिस आर्यसमाज ने भारत में नव जागृति एवं राष्ट्रीयता का सूत्रपात् किया है, जिसकी विमल विचार धारा आज जन जन के मानस को उद्वेलित कर रही है, वह आर्यसमाज क्या ? आर्यसमाज कोई नया मत, सम्प्रदाय अथवा धर्म नहीं है। उसके प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने स्पष्टतया कहा है कि आर्यसमाज की स्थापना करके उन्होंने कोई नवीन पन्थ नहीं चलाया, अपितु प्राचीन वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, सभ्यता और परम्परा की पुन स्थापना की है। उनका उद्देश्य केवल यह था कि समय बीतने के साथ साथ सत्य सनातन धर्म और उसके अनुयायियों मे जो अवैदिक बातें, अन्ध-परम्परायें, रूढ़ियां और सामाजिक कुरीतियां आ गई हैं, उन्हें दूर किया जावे और शुद्ध वैदिक धर्म जनसाधारण के सामने रखा जावे। इसी कार्य को पूरा करने के लिये ऋषि दयानन्द ने सन् १८७५ मे बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी !

तथ्य यह है कि जहां भी ऋषि कुछ दिन ठहर जाते और व्याख्यान अथवा शास्त्रार्थ द्वारा अपने विचार प्रकट कर देते, लोग उनके भक्त हो जाते और आर्यसमाज की स्थापना हो जाती। ऋषि के निर्वाण के बाद तो आर्यसमाजों की स्थापना की शृंखला बन गयी।

ऋषि दयानन्द की एक बडी विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी उन्नति चाहते थे। वे चाहते थे कि व्यक्ति और समष्टि के शरीर मन और आत्मा सब स्वस्थ हों। उन्होंने स्वय इस बात पर बल दिया और बाद में आर्यसमाज ने भी इस बात का ध्यान रखा। इसीलिए आर्यसमाज ने धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक सभी प्रकार के सुधारों के करने का यत्न किया।

आर्यसमाज की आधारशिला वेद है। ऋषि ने 'वेदों की ओर' का बिगुल बजाया था। हिन्दू जाति वेदों की भक्त थी, उन्हें ईश्वरकृत मानती थी, पर वेद हैं क्या, और उनमें है क्या, यह न जानती थी ! एक विशेष वर्ग के अतिरिक्त न तो उन्हें कोई देख सकता था, न सुन सकता था, न छू सकता था, पढ़ने की तो बात अलग रही ! स्त्री जाति वेद, यज्ञादि के पास भी न जा सकती थी ! वेदका भाष्य किया और उनका द्वारा जनसाधारण के लिए खोल दिया। आर्यसमाज के प्रचार के कारण आज किसी भी वर्ग का कोई भी व्यक्ति वेद पढ़ सकता है, यज्ञोपवीत पहिन सकता है और यज्ञ कर सकता है। आर्यसमाज के तीसरे नियम मे ऋषि ने 'वेद का पढ़ना, सुनना, सुनाना आर्यों का परम धर्म' ही निश्चित कर दिया।

आर्यसमाज का आधार तर्क (बुद्धिवाद) पर है इस लिये वह धार्मिक—अन्धविश्वासों को नहीं मानता। वह अवतारवाद, मूर्तिपूजा, रूढ़िगत पूजा पाठ, जन्त्र - मन्त्र जादू—टोने, कृत्रिम देवी देवताओं आदि मे विश्वास नहीं करता।

आर्यसमाज का धर्म मन्दिरों तक ही सीमित नहीं, अपितु वह व्यक्ति और समष्टि के सर्वत्र और सदा साथ रहने वाली वस्तु है। आर्यसमाज मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दशा में धर्म का पालन करना चाहिए। सत्य का पालन उच्च आचरण का आधार है इसलिये ऋषि ने आर्यसमाज के चतुर्थ नियम में कहा है कि 'सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोडने मे सर्वदा उद्यत रहना चाहिये' और 'सब काम धर्मानुसार सत्य और असत्य को विचार करके करने सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज मनुष्य मात्र की समता मे विश्वास रखता है। उसकी दृष्टि में कोई किसी से ऊँचा नीचा नहीं। प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार है। वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं होती, गुण कर्म से होती है। स्त्रियो को शिक्षा प्राप्त कर उन्नति करने का पुरुषों के समान ही अधिकार है। शूद्र अथवा अछूत भी औरों के समान उन्नति करने का अधिकार रखते हैं। स्त्रियों, अनाथो अछूतों की उन्नति में आर्यसमाज ने अत्यन्त प्रशसनीय कार्य किया है। बाल-

विवाह, अनमेल विवाह आदि सामाजिक बुराइयों को दूर करने का आर्यसमाज ने भरसक प्रयत्न किया है।

ऋषि ने आजीवन सत्य मार्ग पर आचरण किया और आर्यसमाज के अगणित कार्यकर्ताओ ने धार्मिक, सामजिक, राजनैतिक क्षेत्रो मे इसके अनुसार आचरण करते हुए घोर यातनायें सहीं, अनेको को मौत के घाट उतरना पडा !

राजनैतिक क्षेत्र मे आर्यसमाज सदा 'स्वराज्य' का पक्षपाती रहा है। वह ऋषि के इस कथन मे विश्वास करता है 'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"

ऋषि की यह उक्ति भी कि 'अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार सहने वाला अधिक पापी होता है' इसी ओर सकेत करती है।

आर्यसमाज धर्म, सभ्यता, सस्कृति, भाषा की एकता मे विश्वास करता है। उसका विश्वास है कि बिना इसके राष्ट्र मे ऐक्य नहीं हो सकता।

आर्यसमाज ने पश्चिम सभ्यता के चकाचौंध मे डालने वाले भौतिकवाद का और उसके तर्कशून्य विश्वासों का दृढ़ता से सामना किया ! जन साधारण के सामने उसकी पोल खोलकर रखी। भारत देश को विधर्मियो के चगुल मे फसने से बचाया। सक्षेप मे आर्यसमाज ने उन सभी कार्यों की नीव डाली जो भारत को एक सुदृढ और समृद्ध राष्ट्र बना सकते थे ! आर्यसमाज ने महात्मा गाधी के मार्ग को प्रशस्त किया था।

श्री आई० एम० परनेल, लाइसन आफिसर थियो॰ सोफिकल न्यूज एण्ड नोट्स लन्दन (जून १९५५) आर्य-समाज का परिचय इस प्रकार देते हैं —

"आर्यसमाज धर्म शान्ति, सार्वभौम चक्रवती राज्य और निरामिष भोजन पर अवलम्बित समाज-रचना का प्रतिपादन करता है ! दस नियमो को स्वीकार करने वाला (और उन सिद्धान्तो को स्वीकार कर आचरण मे लाने वाला, जिनकी महर्षि दयानन्द ने वेदो के आधार पर अपने ग्रन्थो मे व्याख्या की है) कोई भी व्यक्ति आर्यसमाज मे प्रविष्ट हो सकता !

बर्थोलियम फोम के शब्दो मे—

"आर्यसमाज वेदों की ओर चलो' आन्दोलन का प्रति-निधित्व करता है! जिसके सस्थापक ने वेदों से निकाल कर ऐसी बातें प्रकाश में लायी हैं, जिनको आधुनिक भारत मे मान्यता प्राप्त है ! उन्होंने वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद को सिद्ध कर दिया और विविध वैदिक देव ताओं को सच्चे परमात्मा के ही विशेषण बताकर बहु देवतावाद की मान्यता की निस्सारता प्रतिपादित कर दी है। आर्यसमाज कर्मफल और ,मुक्ति मे विश्वास रखता है। आवागमन के चक्र से छूट जाना मुक्ति है।'

'दयानन्द उच्चकोटि के राष्ट्रवादी थे। उनका आर्य समाज आन्दोलन भारत मे आधुनिक राष्ट्रीयता एव जागृति का कारण रहा है।

जैसा कि श्री के० एम० मुन्शी जी ने अपने एक लेख मे लिखा था तथा भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने अपने मथुरा सम्मेलन के भाषण में कहा था, भारत मे राष्ट्रीयता एव स्वतन्त्रता के सर्वप्रथम स्वप्न-दृष्टा ऋषि दयानन्द ही थे ! उनके द्वारा सस्थापित आर्यसमाज ने कांग्रेस से भी पहले भारतीय जनता के हृदयों मे देश-भक्ति का बीज बोया था ! आर्यसमाज के उपदेशकों और प्रचारकों ने स्थान स्थान पर घूमकर लोगों में स्वराज्य की, स्वतन्त्रता की, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की, एवम् देशभक्ति की भावना को जागृत किया था, यही कारण था कि जब सन् ११२१ मे महात्मा गाधी ने ब्रिटिश सर-कार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया था तो देशभक्ति की भावना से ओत प्रोत जेल मे जाने वाले लोगो मे ६० प्रतिशत से अधिक आर्यसमाजी लोग ही थे। इसी प्रकार शराब की दूकानों पर धरना देने वाले और ग्राम गाम मे असहयोग आन्दोलन और प्रचार करने वालो मे अग्रणी सामाजिक पुरुष ही थे। इसी प्रकार अछूतो द्धार के कार्य मे जो सफलता महात्मा गाधी को बाद को मिली, वह कदापि न मिलती यदि स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज अपने प्रचार से अछूतोद्धार के लिये भूमि तैयार न कर देता। इस बात को महात्मा गांधी जी ने स्वय भी स्वीकार किया !

इसीलिये सन् १९११ की भारत की जनगणना की रिपोर्ट मे ब्लन्ट महोदय ने लिखा था कि 'आर्यसमाज १९ वीं शताब्दी का महानतम् भारतीय आन्दोलन है।' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भी एक बार कहा था—"सगठित कार्य, दृढ़ता, उत्साह और समन्वय की भावना की दृष्टि से

ऋषि का अद्भुत कार्य

[ले०—श्री शिवकुमार जी शास्त्री काव्यतीर्थ मु०अ०गु०म०ज्वालापुर]

ज्ञानोपार्जन करके ऋषि दयानन्द जब वैदिक मत का प्रतिपादन करने कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए तो उस समय वैदिक धर्म की दशा एक प्राण विहीन कलेवर के समान थी। कहां तो इस धर्म का वह दिव्य स्वरूप था कि विदेशी आक्रान्ता सैनिक शक्ति से इस देश को पादा क्रान्त करके भी वैदिक धर्म के गुणों पर मुग्ध होकर आर्य बन गये और गुण कर्मानुसार यहा के वर्णों मे घुल-मिल गये। आज इनको एक इतिहास के विद्यार्थी के अतिरिक्त कोई जानता भी नहीं। किन्तु ऋषि के समय यह एक मुर्दा था। उसमे किसी वस्तु को आत्मसात् करने की क्षमता नहीं थी। इस बात की पुष्टि के लिए एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा।

फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने लिखा है कि वह एक बार दाराशिकोह के साथ काशी गया, दारा ने काशी के बडे-बडे विद्वानो को इकट्ठा किया। बर्नियर ने भी इन मूर्धन्य विद्वानों से कुछ लाभान्वित होना चाहा। उसने उन विद्वानों से पूछा कि जिस धर्म के आप अनुयायी हैं वह धर्म कैसा है ? विद्वानों ने उत्तर दिया कि वह ससार का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। बर्नियर ने यह उत्तर सुनकर उनसे हाथ जोडकर प्रार्थना की कि क्या आप मुझे अपने धर्म मे सम्मिलित होने का सौभाग्य प्रदान कर सकते हैं ? काशी के विद्वानों ने कानों को हाथ लगाकर उत्तर दिया। हम कब कहते हैं कि यह सबके लिए श्रेष्ठ है।

हमारा कहना तो यह है कि यह हमारे लिए सबसे अच्छा है। आपके लिए तो वही अच्छा है जो आप मानते हैं।

जैसे मृत शरीर से दुर्गन्ध उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देती है, उसी प्रकार यहां के पोंगा पण्डितों के बुद्धिहीन तथाकथित धार्मिक व्यवहारों से समाज शरीर मे अनेक प्रकार के रोग फैल रहे थे।

शक सम्वत् १८४२ के माघ मास मे प्रयाग मे पंडितों की एक सभा हुई इस सभा में ४८ घण्टे इस बात पर विचार होता रहा कि 'नमोनारायण' मन्त्र सबको दिया जावे या नहीं ? और दिया जाय तो ओंकार सहित अथवा ओंकार रहित, ४८ घण्टे के विवाद के पश्चात् भी निर्णय नहीं हो पाया।

शक सम्वत् १८५० के आश्विन मास मे काशी मे एक ब्राह्मण सम्मेलन हुआ इसकी बैठकें सात दिन तक होती रहीं लगभग ३०० पण्डितों ने भाग लिया और विचार विनिमय किया, बडे सघर्ष के पश्चात् इस सम्मेलन मे यह निश्चय किया कि रजोदर्शन के पश्चात् कन्या को वृषलीत्व प्राप्त होता है और प्रायश्चित्त से उसकी निवृत्ति नहीं होती। अर्थात् रजोदर्शन के पश्चात् कन्यादान अधर्म है। (२) उपजातियों में विवाह नहीं करना चाहिए मुसलमानों और अस्पृश्यों की अस्पृश्यता जन्म से है।

ईसा की नवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्यभाग तक सस्कृत के बडे-बडे विद्वान् हुए और उन्होंने बडे-बडे ग्रन्थ भी लिखे। किन्तु विदेशियों के द्वारा हमारे समाज पर जो प्रहार हो रहे थे—उनसे समाज की रक्षा के लिये उन विद्वानों ने कहीं एक शब्द भी नहीं लिखा।

यहां पाठकों की जानकारी के लिये कतिपय प्रसिद्ध विद्वानो के नाम उनके रचित ग्रन्थ और काव्य का उल्लेख किया जाता है।

आर्यसमाज की समता कोई समाज नहीं कर सकता।' महात्मा गाधी जी ने भी लिखा था 'मैंने देखा है, जहां-जहां आर्यसमाज है, वहा वहां जीवन ज्योति है।'

इसीलिये कहा गया है —

यह आर्यसमाज जगत भर मे,
जीवन की ज्योति जगायेगा।
सद्भाव, शान्ति सुख जगती मे,
सच्ची मानवता लायेगा॥



नाम	स्थान	समय	ग्रन्थ
मेधातिथि	मिथिला	९००	मेधातिथि भास
विज्ञानेश्वर	कल्याणवेवार	११००	मिताक्षरा
लक्ष्मीधर	कन्नौज	१३४३	स्मृति कल्पतरु
हलायुध	बगाल	१२००	ब्राह्मण सर्वस्व
देवण्ण भट्ट	दक्षिण भारत	"	स्मृति चन्द्रिका
हेमाद्रि	देवगिरि	१२६०	चतुर्वर्ग चिन्तामणि
कुल्लूक भट्ट	काशी	१०००	मन्वर्थ मुक्तावलि
वीरमित्रोदय	मिथिला	१३००	वीरमित्रोदय
माधवाचार्य	विजयनगर	१४००	पाराशर माधव
नीलकण्ठ	कोंकण	१०००	मयूख
अपरार्क	काशी	१४००	अपरार्क
चण्डेश्वर	बगाल	"	स्मृति रत्नाकर
जीमूतवाहन	"	"	धमरत्न
रघुनन्दन	"	१६००	स्मृतितत्व
कमलाकर	काशी	"	निर्णयसिन्धु
नीलकण्ठ	"	११६१	भगवन्त भास्कर

मेधातिथि के पण्डित का विद्वान् लोहा मानते हैं। विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा महाराष्ट्र के हिन्दू कानून के रूप में प्रचलित रही है। चतुर्वर्ग चिन्तामणि मे हेमाद्रि ने दान, तीर्थ और मोक्ष जैसे विषयो के वचन सग्रहीत किये हैं। कुल्लूक की मनुटीका सर्वाधिक प्रसिद्ध है, माधवाचार्य का पाराशर माधव पाराशर स्मृति मे भी अधिक प्रचलित है।

किन्तु किसी भी लेखक ने यवनों के अत्याचारो से देश मे जो हाहाकार मचा हुआ था उसकी ओर दृष्टिपात् नहीं किया। हिन्दुओं को अपनी कुरीतियों को छोडने की प्रेरणा करनी चाहिये थी। उस समय के राजा तक अलकार शास्त्र का निर्माण करते थे। उनकी दृष्टि मे सेनापति से राजकवि का अधिक महत्व था, और राजाओ के लिये रणभूमि से रगभूमि अधिक प्रिय थी।

और तो और श्री शकराचार्य का क्षेत्र उत्तर भारत था और मुहम्मद बिनकासिम के आक्रमण भी उत्तर भारत में हुए। किन्तु आचार्य ने उनके लिए कहीं एक शब्द तक नहीं लिखा। उनके विचार कितने सकीर्ण थे इसका नमूना उनकी प्रश्नोत्तरी के स्त्री विषयक प्रश्नोत्तरों से और वेदान्त दर्शन के "श्रवणाध्ययन प्रतिषेधात स्मृतेश्च" सूत्र के ऊपर लिखी टिप्पणी से चल सकता है।

विजयनगर के प्रधानमन्त्री माधवाचार्य के ग्रन्थ में तो थोड़ा बहुत परिस्थितियों का विवेचन तो होना ही चाहिए था।

किन्तु बात यही थी, उनकी दृष्टि मे धर्म इस लोक मे आने वाली वस्तु न थी न उसके लिए यह आवश्यक था कि उसका बुद्धि से कोई तालमेल बैठता है या नहीं ? उस समय धर्म के नाम सब सौदा उधारखाते निकला था। नकद उसकी एक कोडी भी न मिलती थी। सबका फल परलोक मे मिलता था, इस लोक मे नहीं। सत्य बोलना धर्म है। क्या लाभ हैं इसके ? इसका लाभ परलोक में प्राप्त होगा।

ऋषि ने इस दिग्मोह को दूर करने के लिए ऋषि कणाद के शब्दों को स्मरण कराया—"यतोऽभ्युदय नि श्रेयस-सिद्धि सधर्म" धर्म से लोक और परलोक दोनो सुधरने चाहिए। धर्म का प्रथम फल अभ्युदय होना चाहिए और दूसरा नि श्रेयस। वस्तुत अभ्युदय के बिना नि श्रेयस हो ही नही सकता।

दूसरे सनातन धर्म वह हो सकता है जो सब समयों की समस्या का समाधान करने की क्षमता रखता हो। जो धर्म आज की अड़चन को दूर नहीं कर सकता। उसे आज जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं वेद ने सनातन धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है–

"सनातन यो न माहुरूताद्य स्यात् पुनर्णव ।" सनातन उसे कहते हं जो सृष्टि क प्रारम्भ से चला आ रहा है किन्तु अगर कोई नवीन परिस्थिति आती है तो उसके लिए पुन नव फिर नया रूप धारण करके सामने आता है।

बस हमारे धर्म की यह क्षमता नष्ट हो गई थी। दूसरे शब्दो मे धर्म का नाम तो था उसमे प्राण नहीं थे। बलपूवक मुसलमान बनाया हुआ एक हिन्दू बार बार दुहाई दे रहा है कि यह कुकृत्य मुझसे बलपूर्वक कराया है। इसमे मेरा क्या अपराध है ? आप जो चाहे मुझसे प्रायश्चित्त करालें किन्तु धर्माचार्यों का एक ही उत्तर था कि बस तुम पतित हो गये। गोरी ने अपनी फौजों के सामने गौएँ खड़ी कर लीं और उन्हे देखकर हमारे सिपाहियो ने अपनी तलवारें म्यान मे डाल लीं। उस समय



किसी धर्माचार्य ने यह व्यवस्था नहीं दी कि पराधीनता सबसे बडा पाप है उससे बचो । युद्ध मे कुछ गौएं बलिदान हो गयीं तो विजय प्राप्त करने पर शेष गौओं का जीवन तो सुरक्षित हो जायेगा । ऋषि पाराशर ने अपनी स्मृति मे यह व्यवस्था दी भी है ।

"गवा सरक्षणार्थायन दुष्येद्रोधबन्धयो बद्धस्तु नवस-द्विषात् कामाकामरतहि तत्" अर्थात् लक्ष्य यदि गौओं का सरक्षण है तो फिर रोध, बन्ध और बध में भी कोई दोष नहीं है ।

ऋषि और आर्यसमाज ने उस भ्रान्ति का निवारण किया और उसका प्रभाव दिखलाई दिया । सन् ४६ मे नोवाखाली बगाल मे बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं पर उस समय काशी की विद्वतसभा ने १०प्रस्ताव पास किये, जिनमे से एक प्रस्ताव यह था कि ये हिन्दू वास्तव मे मुसलमान बने ही नहीं क्योंकि उनको मन स्थिति मे कोई अन्तर नहीं आया । अत उनको अपने धर्म मे सम्मिलित करने के लिए शास्त्रीय शुद्धि विधान की कोई आवश्यकता नहीं । ये तो केवल गगाजल छिड़क-कर के ही पवित्र कर लेने चाहिए ।

यह है इस मुर्दे मे प्राणो का सचार वस्तुत यह बहुत बडी क्रान्ति है ।

अत ऋषिवर मै तो आपको पण्डितराज जगन्नाथ के उन शब्दों मे श्रद्धांजलि देता हू ।

तोयैरल्पैरपिकरूणया भीममानौ निदाघे, मालाकर व्यरचि भवता या तरोरष्यपुष्टि ।

सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वाराम्, धारा सारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन ॥

हे माली भयकर झुलसाने वाली गर्मी के दिनों में पानी के छोटे छोटे घडों से सींच कर उस वृक्ष को जो तूने जीवनदान दिया । उसकी तुलना मूसलाधार पानी बरसाती हुई वर्षा ऋतु की घनघोर घटाए नहीं कर सकतीं । क्योंकि इस सुखमय समय के दर्शन तुम्हारी कृपा से ही हो रहे हैं ।

यही बात बिल्कुल इन्हीं शब्दों मे ऋषि को कही जा सकती है कि—स्वतत्रता और भारत की भौतिक उन्नति की योजनाओं का श्रेय चाहे कोई ले ले, पर यदि उस समय भारत को तुमने न बचाया होता तो उसे देखने यहां कौन बचता । ऋषिवर तुम धन्य हो !

आर्यमित्र की उन्नति के लिए—
डा०सूर्यदेव शर्मा स्थिर निधि

अन्तरग सभा दि० ९-५-६३ के निश्चयानुसार

विषय सख्या २४ श्री प० सूर्य देवजी शर्मा एम.-ए० अजमेर का आर्यमित्र सहाय-तार्थ धन दिये जाने विषयक पत्र विचारार्थ प्रस्तुत होकर श्री शर्माजी का पत्र पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि दानी सज्जन की निम्नशर्तों के लिये चार सहस्र रुपया दान लेना स्वीकार किया जावे । धन प्राप्त होने पर एफ०-डी० मे जमा किया जाए ।



श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा

१—इस निधि का नाम डा० सूर्यदेव स्थिर निधि होगा ।

२—इस निधि की धन राशि स्थायी रूप मे सभा मे पृथक जमा होगी ।

३—इसके ब्याज से प्रति वर्ष सार्वजनिक सस्थाओं, पुस्तका-लयों एव वाचनालयों को आर्यमित्र लागत मूल्य में दिया जाया करेगा । वर्षान्त में शेष धन आर्यमित्र की उन्नति मे लगाया जायेगा ।

४—वर्ष में कम से कम दो बार जनवरी, जुलाई मास में इस निधि की सूचना प्रमुख शर्तों के साथ 'आर्यमित्र' में प्रकाशित होगी ।

५—सम्मान रूप मे 'आर्यमित्र' सदा दानी सज्जन को भेजा जाया करेगा । जहां-जहां आर्यमित्र जायेगा, उसकी सूची दानी सज्जन के पास भेजी जाया करेगी ।

६—आयमित्र का प्रकाशन बन्द हो जाने पर इस निधि का ब्याज वैदिक साहित्य प्रकाशन में लगाया जावेगा ।

—चन्द्रदत्त तिवारी
मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ ।



समाज का वर्तमान रूप बदलना होगा

[ले०—श्री विश्वम्भर सहाय जी 'प्रेमी', मेरठ]

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज का मूलाधार मानव जीवन की पवित्रता माना था। ऋषि चाहते थे कि वेदानुकूल आचरण करने वाले आर्य इस देश को पतन के गर्त से निकालकर उन्नत करें और जो देश ससार भर मे अपने चारित्रिक बल पर सर्वश्रेष्ठ रहा, वह अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त करने मे सफल हो।

मुझे स्मरण है कि अब से पचास वर्ष पूर्व जो व्यक्ति आर्यसमाज मे प्रवेश करते थे, वे चरित्रवान और अपनी बात के सच्चे होते थे। वे अपने आचरण मे कोई भी ऐसी बात नहीं आने देते थे, जिसे धर्म के विरुद्ध समझा जाता हो। उस समय के आर्यसमाजी धर्मानुकूल आचरण करना अपना कर्तव्य समझने लगे थे और वे अपने व्यवसाय मे पूर्ण ईमानदारी बरतने का यत्न करते थे।

इस प्रकार के आर्यसमाजियों ने समूचे राष्ट्र को एक नई दिशा का ज्ञान कराया। उसमें जहा धार्मिक व्यवहार की बात थी, वहा उसी के साथ साथ आर्यसमाज ने राष्ट्रिय चेतना के लिये भी विचार दिये। उन दिनों राष्ट्रिय विचारों की बात करना एक प्रकार का खतरा मोल लेना था क्योंकि १८५७ के आन्दोलन को दबाकर अंग्रेज शासक काफी कठोरता से शासन चला रहे थे।

आर्यसमाज ने जनता के नैतिक बल को बढ़ाया। आर्यसमाज में आने वाले लाखों नर-नारियों के विचार परिवर्तित हुये और उनमे धार्मिक भावनायें जगीं। आर्य समाज ने किसी एक स्थान में नहीं किन्तु अपने देश के प्राय. सभी भागों मे सामाजिक जीवन मे परिवर्तन लाने का यत्न किया। सबसे बड़ी समस्या आर्यसमाज ने उस समय यह सुलझाई कि सामाजिक बन्धनों और आर्थिक कठिनाइयों के कारण जो हिन्दू, मुसलमान या ईसाई बन रहे थे, उनको सावधान किया। इतना ही नहीं किन्तु उनको सब प्रकार की सहायता भी दी। इस प्रकार आर्य समाज ने अपने देश के सामाजिक जीवन को उन्नत करने का यत्न किया।

अब हमे आज की स्थिति को देखना है। पन्द्रह सोलह वर्षों मे जहा हमारे देश ने स्वतन्त्र होकर ससार के बडे देशों के समान राजनीतिक क्षेत्र मे अपना सम्मान बढ़ाया, वहा अपने नैतिक बल और आचार-विचार को काफी गिरा लिया। जो बातें अबसे बीस पच्चीस वर्ष पूर्व कल्पना मे भी न आती थीं, वे सामने आ रही हैं। छोटे से बडे तक मे इस समय धन कमाने की दौड सी लगी हुई है। आज कुछ लोग ऐसे हैं जो धर्म और ईमान को बेचकर मालदार बन जाना अधिक पसद करते हैं। उनको न समाज की चिन्ता है और न राष्ट्र की।

आज सामाजिक जीवन इतना अस्त व्यस्त हो गया है कि उसमे सच्चे और ईमानदार व्यक्तियों को गुजारा करना कठिन हो रहा है। मानव जीवन के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता हैं, वे भी शुद्ध मिलनी दुलभ हो गई हैं। मिलावट ने सारे ही राष्ट्र को चिन्ता मे डाल दिया है। यदि देखा जाय तो सात्विक प्रवृत्तियों का अभाव सा होता जा रहा है। आर्य समाज जिन धार्मिक विचारों को फैलाकर जनता मे शुद्ध विचारों को लाने का यत्न करता था, वे विचार भी आज कोई सुनने को तैयार नहीं।

फिर भी आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज ऋषि दयानन्द के विचारो को फैलाने का यत्न करे। आज भी आर्यसमाज का व्यापक सगठन यदि सक्रिय हो जाय तो सामाजिक जीवन में एक बडा परिवर्तन ला सकता है। चरित्र बल के सहारे जिस आर्यसमाज ने सामाजिक-कुरीतियों मिथ्या-विश्वासो और विधर्मियो के कुचक्रो से अब से ५० साठ वर्ष पूर्व मोर्चा लिया था, वह आज भी वर्तमान भ्रष्टाचार और सामाजिक दोषो से दूर करने मे सफलता प्राप्त कर सकता है।

समझा ऐसा जाता है कि इस समय आर्यसमाज में

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(पृष्ठ ३९ का शेष)

पहले जैसी तेजस्विता नहीं, उत्साह नहीं और नैतिक बल नहीं। यह बात किसी अश तक ठीक है परन्तु हमे समझना चाहिये कि आर्यसमाज में आज भी तपस्वी और ईमानदार व्यक्ति हैं। आर्यसमाज मे काम करने वाले लाखो व्यक्ति आज भी ऐसे हैं जो ईमानदारी से अपना निर्वाह करते हैं। और आर्यसमाज मे आज भी ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो पीडित मानवो की भलाई मे अपना समय लगाने को तैयार हैं।

आर्यसमाज यदि सगठित रूप से जनता के कष्टों को दूर करने मे सहायता करने का कोई कार्यक्रम बनाये तो कोई कारण नहीं कि दुखी जनता उसकी ओर आकर्षित न हो। मै यहा किसी भी राजनैतिक दल की आलोचना नहीं कर रहा है परन्तु अपने अनुभव से इतना कहना आवश्यक समझता हू कि देश के प्राय सभी राजनैतिक दल चरित्र-निर्माण की दृष्टि से मौन धारण किये हुए हैं। राजनैतिक प्रवाह मे बहकर वे अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिये अनुचित और उचित दोनों प्रकार का मार्ग अपनाने को तैयार हैं। ऐसी दशा मे आर्यसमाज यदि जनता की कठिनाइयों को दूर करने मे सहायता देता है और जनता को गलत माग पर चलने से सावधान करता है, तो सचमुच इस युग की एक बडे काम की पूर्ति करता है। इस समय राष्ट्र के चरित्र की रक्षा करना एक महान कार्य है। आर्यसमाज इसे अपने ऊपर उठाये, यह आर्य समाज का गौरवपूर्ण कदम होगा।

महर्षि दयानन्द के वीर सैनिकों की अपने आचार्य के प्रति यह सच्ची और सामयिक श्रद्धांजलि होगी।

●

सभा का नवीन प्रकाशन

पृथिवी माता की महिमा के उपरान्त आ० प्र० सभा का प्रकाशन-विभाग महान् दयानन्द शीर्षक एक अत्यन्त मौलिक एव अनुसधान पूर्ण पुस्तक प्रकाशित कर रहा है। इस पुस्तक मे ऋषि दयानन्द के धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सास्कृतिक एव राष्ट्रीय क्षेत्रों मे किये गये महान् कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। लगभग ७० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ३७ न पै मात्र होगा।

पूर्व से आर्डर भेजने वाले आर्यसमाजों को पुस्तक २५ प्रतिशत कमीशन काट कर भेजी जावेगी।

शिवदयालु
अधिष्ठाता घासीराम प्रकाशन विभाग,
आ० प्र० सभा, उत्तर प्रदेश, लखनऊ



दिवाली का सन्देश और एक टीस



(रच०—श्री वैद्य राजबहादुर जी आर्य "सरस")

(१)

आकर के प्रतिवर्ष दिवाली देती है तुमको सन्देश—
गति विधि भूल रहे तुम अपने भूले ऋषिवर का उपदेश।
यद्यपि थोडे थे हम पहिले किन्तु टीस थी और लगन—
नहीं थकावट कभी व्यापती कार्य मे थी सतत लगन।

(२)

आर्य पथिक थे लेखराम राजपतिराय शेरे पंजाब—
माधोसिंह नाथमल आदिक रहा कार्य करने का चाव—
हंसराज आर्यमुनि अमीचन्द बस्तीराम दर्शनानन्द,
गणपति तुलसीराम श्रद्धानन्द गुरुदत्त और सर्वदानन्द।

(३)

निरमुख लौटे नहीं कहीं पुष्कल ही धन लाते थे—
जहा पहुच जाते थे जन श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते थे।
नहीं संस्कृत का प्रचार था तो भी गुरुकुल खुलवाये—
और उन्हीं के बच्चे लेकर उनमे दाखिल करवाये।

(४)

धर्म कर्म के दीवाने उज्ज्वल चरित्र के धनी सदा—
यद्यपि राज्य पराये मे थे तो भी रहती बनी सदा।
वृतधारी उपकारी निशिदिन पाला ऋषिवर का आदेश—
रहा लक्ष्य जीवन मे उन्नत ऊँचा होवे अपना देश।

(५)

नहीं रहे वह पद के भूखे और न अधिकारों का ध्यान
मन्त्री बनें प्रधान न सोचा कहा हो रहा कितना मान।
चिन्ता थी तो यही देश मे होवे वैदिक धर्म प्रचार-
गुरुडम गढ़ पाखण्ड पुराणादिक मिट जाये भ्रष्टाचार।

(६)

किन्तु आज विपरीत दशा जान कही भी जाती है—
देख देख कर ढग अवस्था कुछ लज्जा सी आती है।
यद्यपि संख्या बहुत बढ गई किन्तु न दीखे उतना कार्य—
भूल रहे वैदिक परम्परा और बन रहे अव्यवहार्य।

(७)

करते सत्याग्रह हिन्दी पर गीत संस्कृत के गाते—
किन्तु गुरुकुलो मे बच्चे अपने न देखने मे आते।
बच्चे अंग्रेजी पढ़ते है और सिनेमा जाते है—
कोट पेंट टोप मे सदा अंग्रेज दृष्टि ही आते है।

(८)

वस्त्र पहनते किन्तु जनेऊ के धागे न दिखाते है—
बाल रखे हैं किन्तु शिखा का चिह्न न सिर पर पाते है।
सन्ध्याकाल चित्रपट देख अग्निहोत्र बिसरेय मे—
धरती अम्बर का अन्तर है आज बाप औ बेटो मे।

(९)

वैदिक शिक्षा संस्कार नहिं पश्चिम भाषा का उपयोग—
चले गये अंग्रेज न छूटा अंग्रेजी दुष्टा का रोग।
है चरित्र का पाठ कहा सादा जीवन का कहा विचार—
फिर कहिये बन जायें कैसे सन्तानो के सद् विचार।

(१०)

विलासिता जीवन मे कन्याओ को आप फसाते —
देश पुराने को तजने मे हा हा हम न लजाते हैं।
पतिव्रताओं के से सादा जीवन उच्च विचार कहा—
देवी लेडी बनती जाती विपरीत व्यवहार कहा।

(११)

देख कलेवर बढ़ता जाता, दशा देख मन होता खिन्न—
दयानन्द के मन्तव्यों से अब विचार पाता हू भिन्न।
अरे न लज्जा आती हमको बिसराते जाते निज देश—
इसीलिए क्या ? दयानन्द ने विष के प्याले पिये अनेक।

(१२)

त्याग अवैदिक परम्पराऐं करें ऋषि मिशन पूरा आज—
तभी जगत मे कहलायेगा सच्चा वैदिक आर्य समाज।
सुधरें स्वय और भी सुधरेंगे तब सुन वैदिक उपदेश—
"सरस" दिवाली दीपो मे खोजो ऋषि का अन्तिम सन्देश।









आर्यसमाज की वर्तमान युग में आवश्यकता

(ले०–डा० हरिदत्त जी शास्त्री, वेदान्ताचार्य एम०ए०, पी-एच० डी०, एकादशतीर्थ, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दयानन्द कालेज कानपुर)



लेखक



महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'आर्यसमाज' को सुधार करने के लिए ही स्थापित किया था। मानव समाज मे जो बुराइयां हैं उनको दूर करना ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है।

कुछ लोग यह कहते हैं कि अब तो भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है इसलिए आर्यसमाज की कोई आवश्यकता नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे भूल करते हैं क्योंकि अभी समाज में अनेकों दोष हैं जिनका दूर करना 'आर्यसमाज' का कर्तव्य है। 'आर्यसमाज' कोई सम्प्रदाय या मत नहीं है वरन यह एक सुधारक संस्था है। आर्यसमाज ने सर्व प्रथम धार्मिक जगत् मे क्रान्ति मचायी, क्योंकि धर्म के नाम पर इस जगत मे अनेकों दोष हैं। इसलिए महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने जीवन पर्यन्त धार्मिक सुधार किया, अनेकों शास्त्रार्थ किये। उन्होने अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश' के उत्तरार्द्ध भाग अर्थात् ११ वें से १४ समुल्लास तक पौराणिक, नास्तिक, बौद्ध, जैन, क्रिश्चियन और मुहम्मदी मत की प्रबल शब्दों मे आलोचना की है। इससे धार्मिक जगत् मे अनेकों सुधार हुए। अनेक पौराणिक प्रस्तर पूजा, अवतारवाद, जन्मना वर्णव्यवस्था, बाल विधवोद्वाह, तीर्थों मे मिथ्या विश्वास को परित्याग करके वेदों का प्रचार करने लग गये हैं। ईसाई और मुसलमान बड़े प्रबल वेग से हिन्दू जाति को हड़पने मे लगे थे उनका प्रवाह अवश्य कुछ कम हो गया है। अभी भी 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के अनुसार सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाने का कार्य शेष है। अत आर्यसमाज की वर्तमान युग मे अत्यन्त आवश्यकता है।

हिन्दुओ से जो मुसलमान, ईसाई हो गये हैं उनको अभी शुद्ध करके हिन्दू जाति मे मिलाने का कार्य शेष है। इस देश मे शक, हूण, क्षत्रप, यवन प्रभृति अनेकों विदेशी आये और वे राजपूत ब्राह्मणों मे ऐसे मिल गये कि उनका पता भी नहीं चलता है।

आज हिन्दू जाति की पाचन शक्ति निर्बल हो गई है अन्यथा काश्मीर और पूर्वी पाकिस्तान की समस्या हल हो गई होती क्योंकि इन दोनों स्थानों मे सब मुसलमान हिन्दुओ मे बने हैं।

आर्यसमाज के प्रमुख कार्यों को हम ५ भागो मे विभक्त कर सकते हैं (१) धर्म प्रचार (२) समाज सुधार (३) शिक्षा सुधार, (४) राजनैतिक सुधार (५) सांस्कृतिक उद्धार।

धर्म प्रचार

अभी भी बी० ए०, एम० ए० पढ़ लिखे लोग गोबर गणेश की, पाषाण की पूजा करते हैं, भूत प्रेत आदि मिथ्या विश्वास करते हैं। अत अभी आर्यसमाज को वेद-सन्देश का प्रचार करना है। यह कार्य प्रबल वेग से होना चाहिए। धार्मिक प्रचार के ढग की शिक्षा हमको ईसाई धर्म प्रचारको से सीखनी चाहिए। आज जगलों, पहाड़ों मे भी विदेशी ईसाई मिशनरी किस प्रकार स्कूल, आतुरालय आदि खोलकर अपने धर्म का प्रचार करते हैं। उनमें कितना त्याग और कितनी तपस्या है! यदि ५० सच्चे वानप्रस्थी और आर्य सन्यासी वैदिक धर्म मे अपना जीवन अर्पण कर दें तो अवश्य आर्यसमाज का लक्ष्य पूरा हो जायेगा। यह सत्था युग नहीं वरन् प्रचार-युग है। आर्य

समाज का ध्यान केवल संस्थाओं के निर्माण मे है। आर्य-समाज के स्कूल, कालेज तो अनेकों हैं पर क्या उनसे आर्य विचारधारा के छात्र निकलते हैं? नहीं। आज स्कूल, कालेजों मे भी धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध के अनुयायियों ने किस प्रकार सांसारिक सुखों को परित्याग कर चीन, जापान, ग्रीस, सीरिया, लंका प्रभृति विदेशों मे बौद्ध मत का सन्देश फैलाया उसी प्रकार महर्षि दयानन्द जी के सच्चे अनुयायियों को भी धार्मिक क्षेत्र मे आकर वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहिए। आज तो आर्यसमाज मे कुछ प्रच्छन्न तस्कर प्रवेश कर गये हैं जो ब्राह्मण ग्रन्थ, भाष्य, वेदभाष्य पत्रिका के नाम पर धन आर्य जनता से मांग मांगकर हड़प कर जाते हैं। ऐसे दम्भी लोगो से आर्यसमाज को सावधान हो जाना चाहिए।

आज पाश्चात्य देशों मे भी सन्देश सुनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। समस्त विश्व की आंखें आर्यसमाज के सच्चे प्रचारकों की ओर लगी हुई हैं। बंगाल, असम, काश्मीर, दक्षिण भारत मे आर्यसमाज का प्रचार नाम-मात्र का है। समस्त बंग प्रान्त असम प्रान्त तान्त्रिक है। वहां के लोग मत्स्य भोजी है। उनमे प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती कृत "सत्यार्थ-प्रकाश" को उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगाली, असमी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नाडी तथा पाश्चात्य भाषाओं मे अनुवाद करके विस्तारपूर्वक प्रचार करना चाहिए। क्रिश्चियन मत का ग्रन्थ 'बाईबिल' आज प्राय समस्त भाषाओं मे अनूदित है। इससे भी आर्यसमाज को शिक्षा लेनी चाहिए। आर्य-जगत् की शिरोमणि "श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली" को इधर ध्यान देना चाहिए।

समाज सुधार

हिन्दू समाज में अन्ध-विश्वास और रूढ़िप्रथा का बोलबाला था। स्त्री, शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार न था। परदा, वृद्ध विवाह, बाल-विवाह आदि कुरीतियां समाज मे प्रवेश कर गई थीं। महर्षि दयानन्द जी ने यजु० २६।२ के आधार पर स्त्री, शूद्र सभी मानव मात्र को अधिकार बतलाया। इस प्रकार से आज सहस्रों नारियां विदुषी हो गई हैं और सहस्रों शूद्र वेदों के पण्डित हो गये हैं फिर भी अभी प्रचार की आवश्यकता है। आज आर्य-समाज के प्रचार से शिक्षिता नारियां परदा नहीं करती हैं। परदा प्रथा वास्तव मे हिन्दू समाज का एक अभिशाप है। वैदिक काल मे तो परदा एकदम नहीं था। उस समय स्वयंवर प्रथा के कारण परदा को कोई जानता भी नहीं था।

मुसलमानों के आगमन से हिन्दुओं मे यह बुराई घुस गई है। अभी भी मारवाड में वृद्ध-विवाह तथा देहातो मे बाल-विवाह की घटनाएँ पाई जाती हैं। यद्यपि शारदा एक्ट मे बाल-विवाह का निषेध है फिर भी यह एक्ट पूर्ण रूप से लागू नहीं है। सरकार को इस ओर कड़ा कानून बनाना चाहिए। वेदादि सच्छास्त्रों मे कहीं बाल और वृद्ध विवाह की चर्चा तक नहीं है। वैदिक काल मे लड़कियों का प्रौढ़ावस्था मे विवाह होता था।

अस्पृश्यता रूपी कोढ़ का पीछा अभी भी नहीं छूटा है। सरकार ने विधान बनाकर इसे दूर करने का प्रयास किया है फिर भी इधर आर्य समाज को ध्यान देना चाहिए। महात्मा गांधी ने अछूतो को 'हरिजन' नाम देकर रूढ़ि बना दिया है।

शिक्षा सुधार

भारतवर्ष मे शिक्षा मे आमूल चूल परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। भारत के स्वतन्त्र होने पर भी अंग्रेजी भाषा का मोह नहीं हटा है। आज हम अंग्रेजी भाषा को ही सर्वेसर्वा समझ बैठे हैं। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने गुजराती होते हुए भी अपने ग्रंथो को संस्कृत व हिन्दी भाषा मे लिखा। वे दूरन्देश थे। वे हिन्दी (आर्य) भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे देखने का स्वप्न देखते थे। हमे जीजान से हिन्दी, संस्कृत भाषा के प्रचार मे जुट जाना चाहिए। जिस देश की अपनी कोई भाषा नहीं वह देश मुर्दा है।

हमे भीषण आन्दोलन करके भी हिन्दी को राजभाषा पद पर स्थित करना चाहिए। हम आर्यों को सदैव पत्राचार में आर्यभाषा (हिन्दी) का ही प्रयोग करना चाहिए।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

महर्षि दयानन्द और सुराष्ट्र निर्माण

[ले०-प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ) आनन्द कुटीर ज्वालापुर]

आदर्श समाज सुधारक के रूप मे महर्षि दयानन्द का नाम इतना प्रसिद्ध हो चुका है कि उसकी यहा विशेष रूप से चर्चा करनी अनावश्यक है किन्तु यह खेद और आश्चर्य की बात है कि नवयुग विधाता और आदर्श भारतीय राष्ट्र निर्माता के रूप मे उनकी इतनी ख्याति नहा जितनी होनी चाहिये थी। यद्यपि नेता सुभाषचन्द्र जी जैसे कई सुप्रसिद्ध राजनैतिक नेताओं ने उनके इस रूप को पहचाना और निम्न आशय के शब्दो मे श्रद्धाजलि दी—

स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महान् शक्तिशाली व्यक्तियो म से है जिन्होने अर्वाचीन भारत का निर्माण किया और जो उनके नैतिक और धार्मिक पुनरुद्धार के लिए उत्तरदाता हैं। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज निःसदेह हिन्दू भारत की संस्थाओ के पुनर्निर्माण, सुधार और नवजीवन प्रदान करने वाले अत्यधिक शक्तिशाली तत्वो म से एक है। हम देखते है कि उत्तर भारत मे प्रत्येक आर्यसमाजो सबसे अधिक प्रभावशाली राष्ट्रीय नेता भी है। स्थिरता, दृढता, सगठित कर्य क्षमता आदि की दृष्टि से आर्यसमाज किसी से भी कम नहीं है। आर्यसमाज एक सगठित स्वदेशी विकास है। अपने अंग्रेजी लेख के अन्त मे नेता जी ने निम्नलिखित प्रार्थना भगवान से की थी—

मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि स्वामी दयानन्द जी द्वारा स्थापित समाज अपने प्रवर्तक के अनुरूप तथा योग्य हो और वह भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा आत्मिक मुक्ति का कारण बन सके जिसको हम सब इतना प्यार करते हैं।"

इस श्रद्धाजलि के अन्तिम भाग म जो प्रार्थना है, उसमें स्वामी दयानन्द जी द्वारा आर्यसमाज की भारत की सामाजिक और आध्यात्मिक मुक्ति ही नही, प्रत्युत उसके साथ साथ आर्थिक और राजनैतिक मुक्ति का जो स्पष्ट निर्देश है, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(२) काग्रस की भू०पू० प्रधाना डा० ऐनी बीसेन्ट ने अपनी (इडिया ए नेशन) नामक पुस्तक में तो अत्यधिक स्पष्ट शब्दो मे यह घोषणा की है कि 'Swami Dayanandi was the first to proclaim India for Indians'

अर्थात स्वामी दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस बात की घोषणा की कि भारत भारतीयो के लिए है।

(३) भारत के उपप्रधान मन्त्री, राजनीतिज्ञ शिरोमणि, लोह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व ९ नवम्बर १९५१ ई० को देहली के रामलीला मैदान मे महर्षि निर्वाणोत्सव पर भाषण देते हुए महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धाजलि इस आशय के शब्दों मे प्रकट की थी कि 'स्वामी दयानन्द एक वीर योद्धा और सत्य के सैनिक थे। वे एक वीर निर्भय पुरुष थे। उन्होंने हमे भी वीर बनना और बुराइयों के विरुद्ध वीरता से लडना सिखाया। वे भारतीय संस्कृति के सच्चे अनुगामी थे। उनके जीवन का प्रत्येक भाग भारतीय संस्कृति की सर्वोच्च महत्वपूर्ण शिक्षाओं के अनुकूल था।' इत्यादि

(४) भारत के महामहिम राष्ट्रपति महामनीषी डा० राधाकृष्णन् जी ने २४ फरवरी १९६३ ई० को ऋषिबोध के अवसर पर रामलीला मैदान नई देहली मे भाषण देते हुए महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धाजलि इन महत्वपूर्ण शब्दो मे प्रकट की थी—

"स्वामी दयानन्द नवभारत के निर्माताओं में से सर्वोत्तम थे। उन्होने राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत उद्धार और मोक्ष के लिए निरन्तर प्रयत्न किया था। हिन्दू धर्म को वैदिक आधार पर पीछे ले जाने मे वे तर्क से प्रेरित थे। उन्होने समाज को शुद्ध रूप में सुधारने का प्रयत्न किया था जिसकी आज भी आवश्यकता है। भारतीय सविधान मे समावेशित सुधारों मे से बहुतों की स्फूर्ति उनकी शिक्षाओ से मिली थी।"

इससे उत्तम श्रद्धाजलि और क्या हो सकती है जो जगत्-विख्यात महामनीषी डा० राधाकृष्णन जी ने महर्षि

दयानन्द के प्रति समर्पित की। इसमे उन्होंने स्वामी दयानन्द जी को एक धार्मिक और सांस्कृतिक सुधारक ही नहीं, राजनैतिक मुक्ति के लिए भी निरन्तर प्रयत्नशील बताया है और यह स्पष्ट घोषणा की है कि उन्होने भारतीय समाज का जिस प्रकार का सुधार किया, उसकी आज भी बड़ी भारी आवश्यकता है।

उन्होने यह भी स्पष्ट शब्दों मे स्वीकार किया कि भारतीय सविधान मे समाविष्ट बहुत से सुधारों की स्फूर्ति स्वामी दयानन्द जी की शिक्षाओ से मिली। इनमे से जाति भेद निवारण अस्पृश्यता-निवारण प्रजातन्त्र शासन हिन्दी राष्ट्र भाषा और देवनागरी लिपि-गोवध निषेध का भारतीय सविधान मे निर्देशक सिद्धान्त के रूप मे प्रतिपादन इत्यादि को गिना जा सकता है।

(५) स्व० श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तम दास जी टन्डन जिस समय कांग्रेस के प्रधान थे उस वर्ष ७ अक्टूबर १९५० ई० को आर्यसमाज चौक प्रयाग मे भाषण देते हुए उन्होने स्पष्ट घोषणा की थी कि–

'मै स्वामी दयानन्दजी को साम्प्रदायिक नहीं मानता, मेरे विचार मे वे महान थे। उनका धर्म विस्तृत था। मै उनको राजनैतिक पुरुष भी मानता हू।"

स्वराज्य मूल मन्त्र प्रदाता–

प्राय यह कहा जाता है कि श्री दादा भाई नौरोजी प्रथम राष्ट्रीय नेता थे जिन्होने कांग्रस के मन्च से सन् १९०६ के कलकत्ता अधिवेशन मे सबसे पूर्व स्वराज्य शब्द का राजनैतिक अर्थ मे प्रयोग किया किन्तु जब हम महर्षि दयानन्द लिखित सत्यार्थ प्रकाश, आर्याभिविनय आदि पुस्तको को देखते हैं तो यह विचार सवथा अशुद्ध प्रतीत होता है। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास मे स्वराज्य के महत्व को प्रकट करते हुए सन् १८७५ के लगभग महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा था–

"अब अभाग्योदय से और आर्यो के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों पर राज्य करने की तो कथा ही क्या किन्तु आर्यावर्त मे भी आर्यो का अखण्ड स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है, सो भी विदेशियो के पादाक्रान्त हो रहा है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा पृथक पृथक अलग व्यवहार का विरोध छूटना अतिदुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना अति कठिन है।'

[सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास]

महर्षि दयानन्द के स्वराज्य के महत्व विषयक ये शब्द स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। ये शब्द सन् १८७५ के लगभग लिखे गये थे जबकि कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ मे हुई। स० प्र० दशम समुल्लास मे महर्षि ने लिखा–

"जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश मे व्यवहार व राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"

'आर्याभिविनय' नामक प्रार्थना पुस्तक मे भी महर्षि ने अनेक स्थानो पर इस प्रकार की प्रार्थनायें लिखी है—

'अन्य देशवासी राजा हमारे देश मे कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हो।

[रा० क० ट्रस्ट स० सवत् १९१४ पृ० २१४]

'ऋजु नीती नो वरुण' इस ऋग्वेद मन्त्र की व्याख्या मे महर्षि ने आर्याभिविनय मे लिखा–"हम पर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढे।'

[क० ट्रस्ट स० पृ ५३]

महर्षि दयानन्द स्वराज्य के लिये कितने उत्सुक थे और किस प्रकार निर्भयता से अपने विचारो को प्रकट करते थे यह उस भेंट के वृत्तान्त से बहुत अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है जो उनकी जनवरी सन १८७३ मे उस समय के अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड नार्थब्रुक से कलकत्ता मे हुई। उनके यह कहने पर कि मुझे अपने विचार प्रकट करने की अंग्रेजी राज्य मे पूरी स्वतन्त्रता है जब वायसराय ने कहा कि 'यदि ऐसा है तो क्या आप अपने देश मे अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेगे और अपने व्याख्यानो के प्रारम्भ मे जो ईश्वर प्रार्थना आप किया करते है, उसमे देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिये प्रार्थना भी किया करेंगे? इस पर महर्षि दयानन्द जी ने कहा–मैं किसी ऐसी बात को मानने मे

असमर्थ हूं क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिये शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। श्रीमान् जी! ईश्वर से नित्य सायं प्रातः उसकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना करता हूं।

राष्ट्र निर्माता के रूप में उन्होंने जो अद्भुत कार्य किये उनमें सन् १८७७ में देहली दरबार के अवसर पर सर्वप्रथम ऐक्य सम्मेलन का आयोजन जिसमें श्री केशवचन्द्र सेन, नवीन चन्द्र राय, सर सैयद अहमद खान आदि सम्मिलित हुए, आर्य भाषा (हिन्दी) को राज्य भाषा बनाने के लिए प्रबल प्रयत्न करना और 'मेरी आंखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब काश्मीर से कन्या कुमारी तक सब एक भाषा को समझने और बोलने लग जायेंगे' आदि हार्दिक उद्गारों का प्रकट करना, गोवध निषेध करवाने के लिये हस्ताक्षरादि द्वारा संगठित प्रबल प्रयत्न करना, स्वयं शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहनना और अन्यों को भी वैसा करने की प्रेरणा करना आदि हैं। ऐसे स्वराज्य के मन्त्रदाता, नवयुग प्रवर्तक, आदर्श राष्ट्र निर्माता महर्षि दयानन्द जी को हमारा प्रणाम हो!

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जो अनधिकारी सन्यास ग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरों को भी डुबाएगा।

★ जो अविद्यायुक्त मूर्ख, वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस कार्य को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं, उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं।

सं०कर्ता—श्री पं०कृष्णदत्त आयुर्वेदालंकार

(पृष्ठ ४३ का शेष)

राजनैतिक सुधार

महर्षि दयानन्द जी ने धर्मार्य, विद्यार्य और राजार्य तीन सभाओं का निर्माण किया था। हमने राजार्य सभा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया इससे भारतवर्ष के शासन की बागडोर अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में चली गई है।

महर्षि जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के छठे समुल्लास में सच्ची राजनीति की चर्चा की है। 'स्वराज्य' शब्द का बार बार प्रयोग किया है। प्रजातन्त्र राज्य की महर्षि जी ने महानता बतलाई है। 'स्वदेशी' और 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द जी ने ही वर्तमान युग में किया। स्वदेशी राज्य, स्वदेशी वस्त्र, स्वदेशी भाषा पर महर्षि जी ने बड़ा बल दिया है। देशी रियासतों के सुधारने में भी महर्षि जी का हाथ था। कई नरेश उनके परम भक्त व शिष्य थे।

अतः आर्यसमाज को सामूहिक रूप से नहीं तो वैयक्तिक रूप से राजनीति में भाग लेकर क्रान्ति लानी चाहिए अन्यथा भारतवर्ष फिर भी दासता की बेड़ियों में जकड़ सकता है।

सांस्कृतिक उद्धार

वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ही पहले भारतीय हैं जिन्होंने भारतवर्ष में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के बढ़ते हुए प्रवाह को रोका। लोग सब प्रकार के विज्ञान, कला-कौशल और दार्शनिक विचारों का आदि-स्रोत योरोप को मानने लगे थे, परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने बताया कि जब पश्चिम के लोग नग्न रूप में असभ्य होकर वनों में भ्रमण करते थे उससे बहुत पहले हम भारतवासी उपर्युक्त सभी विषयों उन्नति के शिखर पर थे वेदों में रेशमी वस्त्रों को धारण करने के लिये आदेश है और पाश्चात्यों की सम्मति में भी विश्व में वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। हमारी वैदिक संस्कृति व सभ्यता प्राचीन व अनुकरणीय है। अभी हमें इसका प्रचार करना है।

●

आर्यसमाज के साहित्यिक व्यक्तित्व—

महर्षि दयानन्द सरस्वती



(ले०—श्री प्रो० भवानीलाल भारतीय एम० ए० अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, गवर्नमेन्ट कालेज, पाली)

महर्षि दयानन्द के बहुमुखी व्यक्तित्व का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। वे एक महान्



लेखक

वेदवेत्ता, धर्म-संशोधक, समाज सुधारक, लोकनेता तथा सर्वसंग परित्यागी परिव्राजक थे। धर्म, समाज, राष्ट्र, राजनीति, भाषण, साहित्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में उनका योगदान महत्वपूर्ण एवं स्मरणीय रहा है। महर्षि के द्वारा रचित ग्रन्थों का जब हम अध्ययन करते हैं तो हमें विदित होता है कि वे एक महान् साहित्यक और उच्चकोटि के लेखक भी थे। उनका हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। संस्कृत में उन्होंने भागवत खंडन वेद-विरुद्ध मत खण्डन, शिक्षा पत्रीध्वान्त निवारण, वेद-भाष्य, ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। स्वरचित संस्कृत ग्रन्थों को उन्होंने प्राकृत (हिन्दी) भाषा में अनूदित भी किया तथा मौलिक रूप से भी विशाल हिन्दी ग्रन्थों का निर्माण किया। उनके द्वारा रचित साहित्य का प्रकाशन सहस्रों पृष्ठों के विशालकाय ग्रन्थों में हुआ है।

महर्षि कवि के रूप में महर्षि-दयानन्द देववाणी संस्कृत के उच्चकोटि के कवि भी थे। उन्होंने ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका, वेदभाष्य, संस्कार विधि आदि ग्रन्थों के प्रारम्भ में स्वरचित श्लोक (पद्य) दिये हैं। ग्रन्थान्त की पुष्पिकायें भी अनुष्टुप छन्दों में ग्रन्थकार द्वारा ही रची गई हैं। इन पद्यों से महर्षि का कवि रूप प्रस्फुटित होता है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के प्रारम्भ में आठ स्वरचित पद्य दिये हैं जिनमें दो शिखरिणी और शेष ६ अनुष्टुप छन्द हैं। इसी प्रकार अन्याय ग्रन्थों में उद्धृत महर्षि के द्वारा रचित श्लोकों की संख्या बहुत अधिक है। प० वीरसेन जी वेदश्रमी ने महर्षि के संस्कृत भाषा के कवि रूप को अपने एक लेख (टंकारा पत्रिका में प्रकाशित) में विवेचित किया है।

हिन्दी साहित्य को महर्षि की देन भी कम मूल्यवान् नहीं है। अपने वेदोपदेश काल के प्रारम्भिक भाग में महर्षि संस्कृत भाषण और संस्कृत के माध्यम से ही वार्तालाप करते थे। उनकी संस्कृत अत्यन्त सरल, प्रसादगुण युक्त और साधारण पठित व्यक्ति के भी समझ में आ जानेवाली होती थी। महर्षि के ग्रन्थों की संस्कृत भाषा भी उपर्युक्त गुणों से युक्त है। वे मध्यकालीन संस्कृत कवियों और लेखकों की भांति अपनी भाषा को अनावश्यक शब्दाडम्बर युक्त, समासयुक्त घटाटोप मयी शैली से परिपूर्ण नहीं बनाते थे। अपनी विद्वत्ता का अनावश्यक प्रदर्शन उन्होंने कहीं नहीं किया। वे सुबोध शैली में अपने भावों को सरलता से व्यक्त करने के लिये परिमार्जित, परिष्कृत किन्तु सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा लिखने के समर्थक थे। महर्षि के संस्कृत गद्य की तुलना *महर्षि पतंजलि और वेदान्त* भाष्यकार शंकराचार्य के गद्य से की जा सकती है। उनके गद्य की प्राञ्जलता उसकी निजी विशिष्टता है। शास्त्रीय विवेचन के प्रसंगों में उन्होंने सिद्धान्त पक्ष और पूर्वपक्ष की पुरातन परिपाटी का निर्वाह किया है।

महर्षि को हिन्दी मे बोलने और लिखने की प्रेरणा ब्राह्म नेता श्री केशवचन्द्र सेन से मिली। धर्म प्रचार के लिए लोक भाषा का ग्रहण सभी धर्मोपदेशको ने किया है। महर्षि भी इसके अपवाद नहीं थे। महर्षि ने हिन्दी गद्य का एक नया रूप प्रस्तुत किया। खण्डन-मण्डन विचार विमर्श स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष निराकरण के लिये जैसी सक्षम सशक्त, व्यग्यपूर्ण भाषा की आवश्यकता पडती है महर्षि की भाषा उसी का जीता जागता रूप है। महर्षि की हिंदी सेवा का गौरवपूर्ण उल्लेख सभी इतिहासकारो ने किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे महर्षि की हिन्दी सेवा का विशद विवेचन किया है। हिन्दी भाषा सार के लेखक द्वय (लाला भगवानदीन तथा प्रो० रामदास गौड) की सम्मति दृष्टव्य है—"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी और विद्वान् सन्यासी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी मे ही लिखे, हिन्दी की उन्नति और प्रचार आर्यसमाज का जिसके वह प्रवतक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसगठित सस्थाओ ने मिलकर अब तक उतना नहीं कर पाया है।"

हिन्दी गद्यशैली का अध्ययन करते समय स्वामी दयानन्द को एक पृथक शैलीकार के रूप मे परिगणित किया गया है। 'हिन्दी गद्यशैली का विकास" के लेखक प्रो० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने एक पूरा अध्याय ही महर्षि की गद्यशैली को प्रदान किया है। इसी प्रकार "हिन्दी गद्य निर्माता" के लेखक प्रो० प्रमनारायण टण्डन की सम्मति भी उल्लेखनीय है—'तत्कालीन हिन्दी गद्य की उन्नति मे स्वामी दयानन्द ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश, वेदांग प्रकाश वेदों के भाष्य आदि ग्रन्थ तो हिन्दी मे लिखे लिखाये ही, साथ ही आर्यसमाज जैसी प्रगतिशील सस्था का सब काम हिन्दी मे ही करने का आदेश दिया। स्वामी जी हिन्दी को भारत की व्यावहारिक भाषा और देश की भावी राष्ट्रभाषा होने के योग्य समझते थे।" इसी प्रकार प०अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" शीर्षक व्याख्यानों मे महर्षि की साहित्य सेवा पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

महर्षि के हिन्दी मे रचित ग्रन्थों मे सत्यार्थप्रकाश सस्कार-विधि और ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका को बृहत्त्रयी की सज्ञा दी जा सकती है। उनकी लघुकृतियों का महत्व भी कम नही है। महर्षि ने सस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग किया है। उनकी शैली मे आवश्यकतानुसार व्यग्य,विनोद, गम्भीरता तथा विश्लेषण प्रवृत्ति के दर्शन होते है। व्यवहार भानु तथा सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास मे उन्होंने स्वरचित तथा परम्परा प्राप्त अनेक कहानियों तथा दृष्टान्तो के द्वारा अपने अभिप्राय को व्यक्त किया है। इससे उनके कथा लेखक के रूप की भी झाकी मिलती हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन शीर्षक प्रबन्ध ग्रन्थ (Thesis) के लेखक डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त ने स्वामी जी की साहित्य सेवाओ का सुन्दर विश्लेषण किया है। प्रस्तुत पक्तियों का लेखक भी "आर्य समाज का सस्कृत भाषा और साहित्य को योगदान" शीर्षक विषय पर पी एच डी उपाधि के लिये अनुसधान कर रहा है।

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना, इस डर मे कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले।

★ कष्ट होने पर भी धर्म पर दृढ़ रहो रगीले कपडे पहनने मात्र से सन्यासी नहीं होता।

★ कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

सकलनकर्ता—श्री कृष्णदत्त आयुर्वेदालकार, फैजाबाद





महर्षि गुणगान



दयानन्द ऋषिराज तुम्हारे, गुण गण का हम करते गान।
देव तुम्हारे दिव्य गुणों का, हम करते हैं मन मे ध्यान॥
कहां सत्य जिज्ञासा इतनी, कहां सत्य अनुराग।
सत्य प्रकट करने में तुमने, रक्खा शुभ आदर्श महान्॥
ईश्वर की पूजा सिखलाई, भ्रम लीला सब दूर भगाई।
हितकर ओषधि हमें पिलाई, दिया वेद का सच्चा ज्ञान॥
अन्धकार मे भटक रहे थ, वेद मार्ग को भूल रहे थे।
तुमने सच्चा मार्ग दिखाया, कर उन पर करुणा का भान॥
कूट कूट कर दया भरी थी, उसमे तुम पाते आनन्द।
उससे प्रेरित होकर तुमने, किया दलित जनपतितोत्थान॥
दयासिन्धु तुमने विषदाता, के भी प्राण बचाये थे।
कहां मिलेगा ढूढे से भी, ऐसी करुणा का उपमान॥
ब्रह्मचर्य तप से ही तुमने, विजय मृत्यु पर पाई थी।
जिसे देख गुरुदत्त कुनास्तिक, आस्तिक गण के बने प्रधान॥
लाखों की सम्पति ठुकराई, नहीं सत्य पथ छोडा।
वेद शास्त्र निष्णात शिरोमणि, नहीं कुछ तुममे अभिमान॥
इस युग मे तुमने ही पहले, था स्वराज्य का मन्त्र दिया।
जिसने देशभक्त गण मे फिर, फूंकी अद्भुत नूतन जान॥
सभी देशवासी अपनाएं, सरल आर्य भाषा को।
यह सन्देश सुना तुम पाये, ऐक्य विधायक नायक स्थान॥
महिलाओं की विधवाओं की, दीन अनाथो की कुदशा।
उनका फिर उद्धार किये तुम कौन तुम्हारा करे न मान ?
यज्ञ रूप निज जीवन करके, तुम तो अमर हुए विबुधेश।
धर्म वेदि पर दीपावलि दिन, अमर तुम्हारा शुभ बलिदान॥

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ)

आनन्द कुटीर, ज्वालापुर

निर्वाण का स्वर





घोर तम छाया हुआ था जगत में नभ में निलय में,
ज्योत्सना की एक रेखा भी न देती थी दिखाई।
ढोंग औ पाखण्ड ही जब धर्म के शासक बने थे,
स्वार्थ-ताजीरात जब जाने लगी सब को पढ़ाई।
विश्व का कण-कण रुदन कर चीरने छाती लगा था,
दौड कर निर्वाण ने निर्माण की गीता उठाई।
मूल शकर ज्योति वेदों की लिये उतरे धरा पर।
कौन कहता मौन जग में हो गया निर्वाण का स्वर॥
ओ३म् की लेकर पताका विश्व को सत्पथ दिखाया,
खड कर पाखण्ड सारा, ढोंग का अस्तित्व ढाया।
भाष्य वेदो का किया तब जगत की आखें खुली है,
पादरी, पडित, पुजारी पीर का छक्का छुडाया।
धो दिया सारा तिमिर सत्यार्थ की नव ज्योत्सना से,
धर्म वैदिक पर मरो, कर्तव्य पर मरना सिखाया।
बनो निर्भय सत्य पथ पर अभय की आराधना पर।
कौन कहता मौन जग मे हो गया निर्वाण का स्वर॥
शत्रुओ की चाल शनरजी नहीं अब चल सकेगी,
जब कि आर्यों की समाजें विश्व के हर कोण में।
जा रही निर्भय तरी तूफान का भय ही नही,
बैठे चतुर नाविक जहा रत्नेश' के हर द्रोण में।
निर्वाण ऋषि का गूंजता नभ मे अभी सुन लो सभी,
जय नाद वैदिक धर्म का होने लगा दश कोण मे।
एक जन भी अब न जायेगा अवैदिक राह पर,
कौन कहता मौन जग मे हो गया निर्वाण का स्वर।

–रतनलाल 'रत्नेश'

विरजानन्द विद्यालय, अजमेर













युगपुरुष महर्षि दयानन्द



[श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक, नई दिल्ली]

महर्षि दयानन्द सरस्वती युग पुरुष थे। उनका लक्ष्य धर्म की कुत्सित धारा को बदल कर उसे पवित्र रूप देना और मानव समाज के सर्वतोमुखी विकास और व्यापक हित मे योगदान करना था। उनका देश मे प्रादुर्भाव उस समय हुआ जबकि आर्य धर्म और आर्य सस्कृति के ह्रास की प्रक्रिया अपने उग्र रूप मे थी और धर्म के नाम पर अधर्म का बोल बाला था।

उनकी शिक्षाए वेद ज्ञान पर आधारित थीं इसीलिए उनकी शिक्षाओं का प्रभाव हृदय और मस्तिष्क दोनों पर पडा जिन्होंने धार्मिक और सामाजिक विचार धारा मे स्वस्थ परिवर्तन करके एक युग का सूत्रपात् कर दिया।

उनसे पूर्व धार्मिक जगत् मे भगवान् बुद्ध और महान् शकराचार्य ने नवीन युगों का निर्माण किया था। भगवान् बुद्ध ने जन्मना ब्राह्मणो के स्वार्थ एव अभिशाप पूर्ण प्रभुत्व घृणित कर्मकाण्ड, पशु बलि और जन्मगत जात पात पर कुठाराघात करके सदाचार और अहिंसा का प्रचार और प्रसार करके लोगो के नैतिक उत्थान मे अमित योग दिया था। परन्तु उनकी शिक्षायें एकांगी रहीं। वे लोगों को बौद्धिक प्रकाश और शान्ति प्रदान न कर सकीं।

कालान्तर मे उनके अनुयायी गुरुडम और भोगवाद मे प्रसित होकर सासारिक सुख एव विलासिता मे लिप्त हो गए और जाति मे व्याप्त लम्पटता और क्लीवता भगवान् शकर के प्रादुर्भाव का कारण बन गई।

शकर की शिक्षाओं ने बौद्धिक प्रकाश तो प्रदान किया परन्तु वे उष्णता प्रदान न कर सकीं। उनकी भावना भोगवाद मे लिप्त हुए लोगों को उससे परागमुख करने की दिशा मे इस सीमा तक गई कि उन्होने जगत् को मिथ्या मानना और कहना आरम्भ कर दिया। उनकी शिक्षायें तर्क और यथार्थता की कसौटी पर खरी उतरीं।

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का लक्ष्य भौतिक और आध्यात्मिक, व्यष्टि और समष्टि, धर्म और विज्ञान, आदर्श और यथार्थ प्राचीन और नवीन मे समन्वय उत्पन्न करके मस्तिष्क और शरीर दोनो को सुख की सतुष्टि का राज-मार्ग बना देना था। वे इसमे सफल हुए। सासारिकता से शून्य धर्म और धर्म से शून्य सासारिकता ये दोनों ही अभिशाप होते हैं। इनका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारा आज का अशान्त समाज है। पिछले ५० वर्ष मे ससार को सुख धाम बनाने के जो प्रयत्न हुये उनका लक्ष्य सासारिकता पर केन्द्रित रहा। इसका फल यह हुआ कि ससार सुखधाम बनने के स्थान मे दुखधाम बन गया। धर्म का अर्थ है दिन प्रतिदिन का सदाचारमय जीवन। महर्षि दयानन्द ने इसी प्रकार के वेद धर्म पर बल दिया है जो मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक दोनो स्तरो पर ऊँचा उठाए और समाज मे सुख शान्ति का साम्राज्य रहे।

समाज का ठीक निर्माण एकमात्र आर्थिक तत्वों से सम्भव नहीं है और न ससार से विमुख करने वाली आध्यात्मिकता से ही सम्भव हो सकेगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी अमर कृति सत्यार्थप्रकाश मे जिस सामाजिक ढाचे की रूप रेखा दी और उसकी व्याख्या प्रस्तुत की है उसी को मूर्तरूप देने से ससार का हित सपादित हो सकता और शान्ति बनी रह सकती है क्योंकि उस मे लौकिक और पारलौकिक कल्याण समन्वित है।

उनकी समाज-व्यवस्था मे सर्वप्रथम स्थान आस्तिकता और एकेश्वरवाद को प्राप्त है जो एकमात्र हमारा परमादर्श होने योग्य है। अपने को अच्छा बनाना और परमात्मा के बच्चों का हित करना उनकी आस्तिकता का परमतत्व है।

समाज को शरीर और आत्मा मे स्वस्थ, बलिष्ठ, सुशिक्षित एव सुयोग्य सन्तान प्रदान करना इस समाज व्यवस्था का दूसरा और तीसरा अग है जिसका आधार ब्रह्मचर्य एव सयम है।

शरीर की बलिष्ठता, शिक्षा, आयु और प्रवृत्ति में समानता और उत्कृष्टता के आधार पर नव-युवकों और नव-युवतियों को गृहस्थाश्रम मे प्रवेश पाने की अनुमति दी

गई है, साथ ही एकपत्नी व्रत और एकपति व्रत गार्हस्थ्य सुख का प्रमुखतम तत्व बताया गया है। इसका लक्ष्य समाज को सुयोग्य सन्तान देना और अर्थ एवं काम की स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति करने में समर्थ बनाना है। इसी मे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं योग्यता के अनुसार धन्धे का चुनाव करके जीविकोपार्जन की व्यवस्था की गई है। यही वर्ण व्यवस्था है जो प्रवृत्ति का विस्तार है। गृहस्थ मे रहने की २५ वर्ष की अवधि नियत की गई है। मनुष्य की औसत आयु १०० वर्ष की मानकर उसमे से केवल १/४ को भोग के अर्पण करने और शेष ३/४ को त्याग, तप और आत्म चिन्तन के अर्पण करने का विधान किया गया है जिससे समाज मे बेकारी न फैले और भोग वाद के कीटाणुओं का प्राबल्य न हो। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तावित समाज व्यवस्था मे राजनीति व राज धर्म का बहुत महत्व है परन्तु वह धर्म और न्याय दण्ड पर आश्रित होनी चाहिये, जिसमे समाज मे धार्मिक तत्वो को बढ़ावा मिले और दुष्ट तत्वो का दमन होता रहे। महर्षि दयानन्द द्वारा समर्थित राजनीति मे एकतन्त्र राज्य को आश्रय नहीं मिल सकता। उसमे प्रजातन्त्र राज्य का समर्थन किया गया है। निर्वाचित राजा की उच्चतम कोटि के व्यक्ति के रूप मे कल्पना की गई है। यह है भी ठीक। प्रजातन्त्र शासन शासकों और प्रजा दोनो के चरित्रवान होने से ही ठीक गति मे चलते हैं अन्यथा वे लडखड़ा जाते हैं। इस राजनीति मे चक्रवर्ती राज्य को ही विश्व के कल्याण का साधक माना गया है। खण्ड राज्यो से अशान्ति व्याप्त रहती है।

स्वामी जी महाराज द्वारा प्रस्तुत समाज-व्यवस्था मे मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान-पान और सेवन को एकदम हेय एवं त्याज्य बताया गया है। इसके साथ ही श्रेष्ठ आजीविका जो श्रेष्ठ उपायो से अर्जित हो, प्रशस्त मानी गई है।

श्री स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित समाज व्यवस्था मे भोगों की निन्दा नहीं की गई है। भोगों को भोगने की स्वतन्त्रता है परन्तु उनमे आसक्ति न होनी चाहिये और वे व्यक्ति तथा समाज के पतन का कारण न बनने चाहिये। इस समाज व्यवस्था का लक्ष्य है और वह यह कि ईश्वर का साक्षात्कार करने में मनुष्य समर्थ बने। इसके लिये उसे ससार मे से गुजरना अनिवार्य है अत ससार मे मे इस प्रकार गुजरे जिससे कि उसकी यात्रा सुखद रहे और वह ईश्वर के साक्षात्कार के मार्ग से भटक न जाय।

इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज ने धार्मिक जगत् मे ही नहीं अपितु सामाजिक जगत् मे भी एक नई सुखद क्रान्ति की। उन्होने जाति को अविद्यान्धकार से निकाल कर मत-मतान्तरो के पतनकारी एवं मानवता को विलग एवं लाछित करने वाले प्रभाव से मुक्त करके सच्चे धर्म को प्रतिष्ठित करने तथा सामाजिक खराबियो को दूर कर के स्वस्थ समाज को निर्मित करने का प्रशस्त कार्य किया। धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त उन्नत और सामाजिक दृष्टि से सुखी चरित्रवान् और पवित्र समाज से ही राजनैतिक योगक्षेम सम्भव हो सकता है। इस रीति से उन्होने राजनीति का भी मार्ग-प्रशस्त किया।

●



युग-धर्म की मांग



(ले०—श्री मोहनलाल जी मोहित लावेनीर, सेंट पियेर मोरीशस)

वर्तमान युग मे भौतिक विज्ञान की प्रधानता है। मानव समाज प्राय भौतिक अर्थात् क्षणिक सुख की मृग-



लेखक

तृष्णा मे तल्लीन है। मानव समाज की आध्यात्मिक पिपासा की ठीक तृप्ति तो वैदिक धर्म से ही हो सकती है। क्योंकि भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान का तर्क सगत समन्वय भी वैदिक धर्म ही करता है। वेद-विहीन अर्थ लोलुप राजनतिक नेताओ ने मानव समाज के जीवन-स्तर के माप दण्ड मे विषमता पैदा कर दी है। एक देश दूसरे देशो को और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को घृणित एव द्वेष दृष्टि से देख रहे हैं, परस्पर भीत भाव और घृणा-घमण्ड की मात्रा बढ रही है। एक दूसरे का शोषण कर उन पर निरकुश शासन जैसा राक्षसी व्यवहार करने वाले को निपुण राजनीतिज्ञ की उपाधि दी जाती है। ऐसे अध-कच्चे शासको और नेताओं की धांधली बाजी मे पडकर जनता घोर सकट झेलती है। प्राय जनता मे सद् विवेक का अभाव सा रहता है। अत मानव जीवन के महत्व को ठीक-ठीक मूल्याकन नहीं कर पाती है। कूटनीतिज्ञो के प्रलोभन मे फसकर मूर्खतावश अविवेकी जनता मानवता को कलकित कर अपना भविष्य दु:खद बना लेती है। इस लिए युग धर्म का आदेश है कि मनुष्य को वास्तविक मानव बनाने की दीक्षा दी जाय और इस दीक्षा सस्कार का समयोचित सही सम्पादन आर्यसमाज ही कर सकता है।

आचार्य महर्षि दयानन्द जी ने देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर मे वेद प्रचार प्रसार और समाज सुधार का उत्तरदायित्व आर्यसमाज पर ही छोडा था। इसलिए बडी सतर्कता से कमर कसकर समरांगण में आर्यसमाज को आगे बढ़ना है। गत पिछले कुछ वर्षों के कामों पर सिंहाव-लोकन कर अपनी कमी को अनुभव करें। फिर कमी पूर्ति और भावी प्रगति के लिये कार्यक्रम को सम्पन्न करने के सबल साधन तथा सुगम विधि पर गम्भीरता से सोचें। आर्यसमाज की गति-विधि से पता लगता है कि भूमण्डल के लगभग दो तिहाई भाग मे यत्र-तत्र आर्यसमाज का बीज पहुंच चुका है पर ध्यान रहे बीज पहुंच जाने मात्र से कृषि कार्य सफल नहीं होता। क्योंकि बीज को सफल बनाने के लिए भूमि की जुताई, बुआई और सिंचाई के साथ ही सम्यक् पूर्ण-प्रयत्न की आवश्यकता है। तब कृषि-कार्य सफलीभूत होता है। उसी प्रकार आर्यसमाज के सामने देश विदेशों मे जो धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विशाल कार्यक्षेत्र खाली पड़े हैं, उनको वैदिक सस्कार से सुसस्कृत बनाने के लिए तपस्वी आर्य विद्वान् की आवश्य-कता है। धर्म-सकट में फसी हुई मानवता की रक्षा के लिए, ऋषि ऋण की पूर्ति के लिए और महर्षि दयानन्द के आदेश को क्रियात्मक रूप देने मे आर्यसमाज सर्वात्मना आगे बढ़े। यही युग धर्म की मांग है। गुरुकुल के सुयोग्य

स्नातकों ने जिस संकट काल मे मानवता की रक्षा के लिए दयानन्द की वेदी से दीक्षा ली है, वह सुसमय सामने खड़ा है। और सबल शब्दों मे चुनौती देता है कि वेद प्रचार और समाज सेवा के क्षेत्र मे आगे आकर अपनी विद्वत्ता तथा कार्य कुशलता से आर्यसमाज को पुरस्कृत करें। महर्षि दयानन्द के सच्चे भक्त, त्यागी और तपस्वी तथा कार्यकुशल मनस्वीगण ही कथित समस्या को सुलझा सकते हैं। विदेशों में तो आर्योपदेशक की नितान्त आवश्यकता ही है। परन्तु भारत मे भी सुयोग्य समाज-सेवक उपदेशकों की कमी है। मानव समाज को सजग और प्रगतिशील बनाने के दो उपयोगी और सबल साधन हैं, प्रथम सुयोग्य उपदेशकों की तैयारी तथा नियुक्ति और दूसरा भाषान्तर मे सुन्दर साहित्य का प्रकाशन।

दोनों काम देश काल के दृष्टिकोण से करने मे ही सफलता है। इन दोनो कामो को सफल और चिरस्थाई बनाने के लिए एक सुदृढ शक्तिशाली 'संस्थान' श्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के तत्वावधान मे होना परमावश्यक है। साथ ही परोपकारिणी सभा अजमेर और देश-विदेश की आर्य प्रतिनिधि सभायें तथा प्रमुख आर्यसमाजें भी संस्थान को सफल बनाने में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को सर्वात्मना योगदान दें, तभी कार्य सफल हो सकता है। मेरे विचार मे संस्थान के लिए प्रारम्भ मे २० लाख की सुरक्षित निधि का प्रबन्ध करना चाहिए। २० लाख की निधि के वार्षिक ब्याज से संस्थान का काम साधारण रूप से चल सकता है। संस्थान का प्रमुख कार्य होगा एक 'सार्वदेशिक उपदेशक विश्वविद्यालय का संचालन जिसमे देश विदेश के लिए विभिन्न भाषाओं में समाज सेवार्थ लगनशील कार्यनिष्ठ आर्य विद्वानों को उपदेशक कला का प्रशिक्षण देने का पूरा प्रबन्ध हो, दूसरे काम मे प्रकाशन विभाग है। प्रकाशन कार्य बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण है। प्रकाशन विभाग मे वैदिक साहित्य और आधुनिक उपयोगी साहित्य को विभिन्न भाषाओं में ठोस तथा सुन्दर साहित्य का निर्माण करना आवश्यक है।

२० लाख की निधि पूर्ति का सुगम-साधन

तीन प्रकार की सदस्य-श्रेणी रखी जाय, जैसे १०० रु० देने वाले सज्जन को साधारण सदस्यों में और ५०० रुपया देने वाले को आजीवन सदस्यों मे। कम से कम एक हजार देने वाले से दाता सदस्य शुरू हो। दाताओ की धन राशि असीमित रहे। और 'ट्रस्टी' की विधि से भी धन लेने का सामयिक विधान संस्थान के लिए श्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली बना सकती है।

प्रयत्न करने पर सैकडों साधारण सदस्य विदेशों मे मिल सकते हैं। आजीवन सदस्य और दाता सज्जन भी मिल सकते हैं। लगनशील सन्यासी, वानप्रस्थी और कर्मनिष्ठ आर्य नेताओं के आठ दस शिष्ट मण्डल सद्भाव से विधि पूर्ति की धुन मे लग पड़ें तो भारत के विभिन्न प्रान्तों से ही ६ मासो मे पर्याप्त धन मिल सकते हैं।

आर्य-जगत् के मनस्वी और तपस्वी कर्णधारो से तथा आर्यसमाज के प्राणस्वरूप पूज्य सन्यासी महानुभावों से २०२१वि०संवत्सर के ऋषि निर्वाण दिवस पर उपर्युक्त संस्थान की पूर्ति का व्रत लेने के लिये युग धर्म की माग है। उपर्युक्त संस्थान के विषय मे मैंने बिल्कुल साधारण विचार व्यक्त किया है। आर्यसमाज के विद्वानो से संस्थान की आवश्यकता उपयोगिता और एक ठोस कार्यक्रम पर अपना बहुमूल्य विचार आर्यमित्र' व 'सार्वदेशिक' पत्र मे लिखने के लिये नम्र निवेदन है।



ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ सब जीव स्वभाव से सुख प्राप्ति की इच्छा और दुख का वियोग होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोडते तब तक उनको सुख का मिलना और दुख का छूटना न होगा क्योंकि जिसका कारण अर्थात् पूरा होता है वह नष्ट कभी नहीं होता।

★ परमेश्वर के काम बिना भूल-चूक के होने से सदा एक से हुआ करते हैं।



युग-पुरुष स्वामी दयानन्द



[ले०—श्री रामवतार आर्य, आर्यसमाज गाजीपुर]

जिसने देश और समाज के अन्दर व्याप्त नैराश्य, दैन्य-दारिद्रय और वामाचार सभी तमिस्रा को अपने पाण्डित्य दूरदर्शिता विवेक और कार्य कुशलता के प्रखर प्रकाश से भेदन कर सुन्दर और कल्याणकर पथ निर्देश किया। जिसने सोते को जगाया, गिरते को उठाया, लुटते को बचाया और अधमरे को जीवन प्रदान किया। और मनुष्यो के अन्दर नव उमग, नव चेतना एव नव उल्लास जागृत करके उनकी प्रवृत्तियो को रचनात्मक कार्यों की ओर प्रेरित किया। उस समाज सुधारक, देशभक्त, वैदिक धम के प्रचारक, महान् दार्शनिक, वेदोद्धारक, युगपुरुष, जगद्गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए पजाब केशरी लाला लाजपत राय ने लिखा—

"स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैने ससार मे केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धम के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनो की गोद मे मै पला। मुझे इस बात का गव है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूवक विचार करना, बोलना और कर्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक सस्था मे बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ पढ़ाया।"

स्वाध्याय का उपदेश

स्वामी जी स्वाध्याय पर विशेष बल देते थे। कदाचित वे मनुष्यो की इस कमजोरी से भलीभाति परिचित थे कि अधिकाश मनुष्य अपने विचारों मे उलझे रहते हैं। भ्रम मे पडे रहते हैं। उनका अपना कोई ठोस मत या विचार नहीं होता। जिनका कोई ठोस विचार नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, स्पष्ट मत नहीं, उनके कार्यों तथा आचरण मे एकरूपता कैसे आ पायेगी ? कैसे वे कोई ठोस कार्य कर पायेंगे ? जो स्वय अपना भला नहीं कर सकता उनसे कैसे समाज और राष्ट्रकल्याण की आशा की जा सकती है। अतः स्वामी कहा करते थे कि समाज राष्ट्र और विश्वकल्याण के लिये विद्वान् और सदाचारी पुरुषो की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि विद्या-बल के कारण उनका दृष्टिकोण व्यापक होता है।

वे सबकी भलाई और सबके कल्याण की बात सोचते हैं। "विश्व बन्धुत्व और विश्वकुटुम्बकम्" की भावना से भावित होकर उनके कर्ण कुहरों मे एक ही नाद, एक ही स्वर गूजता है—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।" सकुचित दृष्टिकोण के कारण मनुष्य की मनोवृत्ति गदी हो जाती है और वह स्वार्थ भावना से बुरी तरह आक्रान्त होकर अपराध करना आरम्भ कर देता है। अत व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने के लिये स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिये "स्वाध्यायान्माप्रमद" (स्वाध्याय मे प्रमाद मत करो) का उपदेश दिया गया है। स्वामी जी हर व्यक्ति के आचरण मे इस उपदेश को अकित देखना चाहते थे। युगपुरुष की यही हार्दिक इच्छा थी।

स्वामी जी कहा करते थे कि "आर्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, दो हों तो परस्पर प्रश्नोत्तर व सवाद करें, तीन हों तो सत्सग एव धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें।" ऋषि की अभिलाषा थी कि प्रत्येक आर्यसमाजी स्वाध्याय, सत्संग, सवाद और प्रश्नोत्तर के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को इतना निखार लें कि कहीं भी वाद विवाद और शास्त्रार्थ के अवसर पर अपना सत्यमत दृढ़तापूर्वक व्यक्त कर सके। और अपनी तर्कणा शक्ति से उसका औचित्य सिद्ध करके वेद-धर्म प्रतिष्ठापित कर सके।

भविष्यवाणी सच निकली

वास्तव मे महापुरुष वह है जो हर एक परिस्थितियों मे हमारी समस्याओं का जवाब दे। परिस्थितियों और समस्याओं का अध्ययन करे। उसे ठीक ठाक समझे और उसका उचित समाधान प्रस्तुत करे। तथा अपने अध्ययन और दूरदर्शिता के आधार पर भविष्यवाणी भी कर दे।

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

बलि और बलिदान क्या है ?



[श्री छेवालाल जी वनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली]

आधुनिक पौराणिक मतानुसार बलि व बलिदान शब्द को (शाक्तिक मनुष्य देवी के उपासको ने) पशु हिंसा परक लगाकर भैंसें बकरे आदि पशुओं को "देवी दुर्गा, भवानी काली चामुण्डा, वाराही शीतला आदि की भेंट के नाम से और (पशुओं की हिंसा पूजा के नाम से)" कराते हैं। वैदिक समय में बलि शब्द पशु हिंसा परक नहीं था क्योंकि शास्त्रों में ऐसा विधान नहीं पाया जाता। इसी बलि शब्द को मीमांसा शास्त्र के सूत्र 'यज्ञाय पशुमालभेतु' यज्ञ मे पशु को मारो ऐसा शाक्तिक पौराणिक लीला ही का परिणाम है।

एतरेय ब्राह्मण के ३५/२९ का भाष्य करते हुए सायणचार्य्य जी ने लिखा है "बलि कृतम्" (अर्थात् बलि पूजां करोनि कर प्रयच्छनि यूस्यर्थ) यहा राजा को पूजा करना अर्थात् (कर) देना अर्थ, बलि शब्द से स्पष्ट है। गोतम धर्म सूत्र २।१।२४ मे "राज्ञो बलिदान कर्षकंर्दशमष्टवष्टवा" यहा पर किसानो की ओर से जो दसवां, आठवा, छटा शुल्क राजा को दिया जावे उसको बलिदान शब्द से व्यवहृत किया है।

सू० प्रजास्त्विमा बलिहरन्ति प्राणे प्रतितिष्टसि
प्र० नि० २।७

अर्थ-ससार, (त्वम् तुमी, (इमा) यह, (बलिम) प्राते (हरन्ति) लाते है, (य) जो (प्राणे) पाच प्राणो से शरीर मे, (प्रतितिष्टसि) होकर रहते हैं। इस स्थल पर भी बलि शब्द हिंसार्थ में नहीं है। किन्तु भोज्य आहार या ग्राह्य रस के अर्थ मे है। भारद्वाज गृह सूत्र ३।१५ यदभूतेभ्यो बलि हरति सभूत यज्ञ" यहां पर पके हुए अन्न के भाग का नाम बलि है। यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित है कि इस उक्त भारद्वाज सूत्र में बलि शब्द चतुर्थ्यन्त भूत के साथ सम्बन्ध दर्शाया है। वेदों मे कहीं "भूत बलि" शब्द देखकर "भूतानां बलि" अर्थात् भूतो की बलि, ऐसा नवीन अर्थ कोई न करे। क्योंकि यहां भूत शब्द मे चतुर्थी विभक्ति है 'यथार्थ बलिहित सुख रक्षितं' अष्टाध्यायी ५।१ से अर्थ हुआ है। इसी सूत्र के भाष्य पर देखिये, महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि को भी (बलि) शब्द का अर्थ शुल्कादि भाग ही इष्ट है।

"योहि महाराजाय बलि समहा राजार्थो भवनि"
अ० २।१।२६

मनु महाराज ने भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थियों के नित्य कर्तव्य मे पच महायज्ञ बतलाये हैं, उनमे बलि भूत यज्ञ भी सम्मिलित है, वहा पर बलि भूत यज्ञ को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

श्लोक--अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृ यज्ञाश्च तर्पण।
अग्निर्होमो बलिर्भूतो नृयज्ञोतिथि पूजनम्॥

अर्थात् वेदों का स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ, जीवित माता-पिता गुरु आदि पितर जनों को तृप्त कर देना पितृ तर्पण है। अग्नि मे होम करना देवयज्ञ है, भूत प्राणी को उनका (बलि) भाग देना भूतयज्ञ है। एव महात्मा जनो का सत्कार करना आतिथ्य यज्ञ हैं यही पाच यज्ञ हुये।

श्लोक-शुनाच पतितानाच श्वपचा पाप रोगिणाम्।
वायसनां कृमीणाच शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥ मनु०

अर्थ-जब रसोई पाकशाला में तैयार हो जावे तब छ बलि अर्थात् (भाग) भोजन मे से, कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पाप रोगी, काक और चीटियो के निमित्त शनकै सहज मे अर्थात् धीरे से भूमि मे रख देवें और भोजन कर लेने के पश्चात् या पूर्व ही जो जो मिल सके उन उनको दे देवे। यदि बलि का अर्थ मारने का होता तो कुत्ता, कौवा, चींटी आदि को मनुष्य नित्य कर्म समझकर इनका वध किया करते। पशुबलि शब्द से, पशुओं की अन्न जलादि से रक्षा करना तात्पर्य था, परन्तु मासाहारियों ने बलि पशु शब्द को पशु बध मे परिणत करके पशु हत्या की विधि दर्शाई है।

पौराणिक अमर कोष मे भी बलि शब्द हत्यापरक नहीं है।

श्लोक—"भागदेयः करो बलि.। अमर द्वितीय का०

ज्ञ० श्लोक २७ और

"पाठो होमश्चातिथीना सपर्य्या तर्पण बलि

—अमरकोष द्वितीय का० ब्रह्मव० श्लोक १४

इन दोनों स्थलों (क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्गो में कहीं भी पशुवध का "बलि" शब्द से लेशमात्र भी अर्थ नहीं है क्षत्रिय वर्ग की टीका मे भी स्पष्ट लिखा है कि "भागधेय, कर बलि· त्रीणि कर्ष कादिभ्योराज ग्राह्य भागम्य"।

और ब्रह्म वर्ग मे बलि "बलि हरण स भूत यज्ञ" मनु के उपरोक्त श्लोकानुसार बलि भूत यज्ञ को ही सिद्ध किया है कि जिसमें भूत प्राणियो की रक्षा करना ही कर्तव्य बतलाया है।

जबकि वेदों मे स्पष्ट लिखा है कि "यजमानस्य पशून पाहि०। "अविम् माहिंसी ०" गांमाहिंसी ०।"

'एक सफ माहिंसी ०" इत्यादि इत्यादि अर्थात् यजमान के पशुओं की रक्षा करो, भेड बकरी मत मारो, एक सफ अर्थात् बिना फटे खुर वाले पशुओं को मत मारो इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आर्य ही क्या, हिन्दु मात्र 'अहिंसा परमो धर्म" को जानते हैं और सर्वत्र सुनते भी है।

जान बूझकर जो "बलि" के अर्थ अनर्थ रूप से पशुवध परक लगाते हैं, उनसे अधिक अनर्थकारी कौन होगा? यज्ञ अथवा पूजा के प्रकरण मे पशु वध बतलाना बडा भारी अनर्थ है। क्योंकि "यज्ञ देवपूजा सगतिकरण दानेषु" अर्थात् यज्ञ शब्द का अर्थ विद्वानों का सत्कार विद्वानों से मेल मिलापादि परस्पर व्यवहारिक क्रिया, तथा दान देने का नाम है।

"पशव इज्यन्ते दीयन्ते यस्मिन स पशुयज्ञ।" अर्थात् जिस कार्य मे विद्वानो के पालनार्थ पशु दिये जाते हैं उसे पशु यज्ञ कहते हैं। यज्ञ के पर्यायवाची शब्दो मे कहीं भी पशु वध की आज्ञा नहीं है। यथा अमर का० २ अर्थ ब्रह्म. वर्ग १३ श्लो०—यज्ञ सवोऽध्वरो याग सप्त तन्तुर्मख क्रतु

यज्ञ, सव अध्वर याग सप्ततन्तु क्रतु

इसमे यज्ञ का अध्वर नाम ही स्पष्ट बतला रहा है कि "न ध्वरतीति स अध्वर" अर्थात् जिसमे किसी प्रकार की भी पशु वधादि हत्या न हो उसको अध्वर अर्थात् यज्ञ कहते हैं। वैदिक निघटु मे "बलि प्रासे बलिदाने" लिखा है इसी सिद्धान्तानुसार "बलि पूजो पहारयो." अर्थात् बलि का अर्थ सत्कार करना भोजनादि उपहार देना है, बलि का अर्थ वध नहीं। मध्य युग में बलि अर्थ में पशु हिंसा का जो वाम मार्गीय प्रवेश भारती कर्मकाण्ड मे होने लगा या महर्षि दयानन्द को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने शास्त्रीय आधार पर पशुबलि का निषेध किया। उनके महान् कार्य से वैदिक कर्म काण्ड की पवित्रता बनी रह सकी और हम गर्व के साथ पशुबलि का धार्मिक कर्मकाण्ड के लिये निषेध कर सकते हैं।

●

(पृष्ठ ५४ का शेष)

महर्षि दयानन्द मे यह सभी गुण विद्यमान थे। ऋषि की भविष्यवाणी—'इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।" सच निकली।

स्वदेश प्रेम

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" (स० प्रकाश अष्टम् समुल्लास)।

'हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, और अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर किया करें।"

किसे अपनी मातृभूमि से प्यार नहीं होता किन्तु सच्चा प्यार तो वह है जो उसकी उन्नति, उत्कर्ष और विकास के लिये तन, मन धन से सदा तत्पर रहें। जो कुछ हमारे पास है, वह देश का है और उसे देश पर न्योछावर करना हमारा परम पुनीत कर्तव्य है। स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के उत्थान के लिये रहा। ऋषि ने अपने गुरु के समक्ष जो प्रतिज्ञा की थी उसे पूर्ण करके अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया। अपने कार्यों से यह दिखा दिया कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी के अन्दर कितनी शक्ति होती है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि उस जगद्गुरु के उपदेशों तथा कार्यों से हमारा जीवन अनुप्राणित हो।





महर्षि दयानन्दस्य शास्त्रार्थाह्वानम्



[रच०- शास्त्रार्थ महारथी श्री प० सत्यमित्र शास्त्री वेदतीर्थ, बडहलगज गोरखपुर]

मनुज निर्मित भागवतादिका,
बहु पुराण कथा जगती तले।
प्रथमस्ति निदान मद कथम्
कलयतान्निगमागम विस्तृतिम् ॥१॥

न लिखिता किल वेद चतुष्टये,
मृतक देह निमित्त परा क्रिया॥
हृदयतोऽपि कथ परिदर्शयेज्जगति।
सन्निगमोदित कल्पनाम् ॥२॥

निगदिता सलिलेषु वृथा कृता।
क्वननु तीर्थमतिर्मनुजैरल।
तदिय मार्य्य निवास विनाशिनी॥
विलय मेष्यति चेद् भविता शिवम् ॥३॥

दृषदुपासनया जडता गतम्।
जगदिद कथमेष्यति चेतनाम् ॥
यदि न यास्यति नाशमिय प्रथा।
सदुपदेश गुणैर्जगती तलात् ॥४॥

कथमिय जगतीतल वर्तिनी।
विलय मेष्यति भिन्न रुचिर्नृणाम् ॥
विमल वेद पथात् समलगताधम।
पुराण पथ परिपन्थिनम् ॥५॥

अहह मन्यति मार्ग मुपागता।
कविजन श्रुतिरत्र सहायिनी॥
दिवस मति निशातट सन्तति।
न रविदर्शन मिच्छति कर्हिचित् ॥६॥

विमल वैदिक धर्म मणिप्रभा।
न विषयैर्मलिने हृदि राजते॥
विमल दर्पण एव विराजते।
मुख शशि द्युति सत्तम वर्मणाम् ॥७॥

रुधिर पान परायण चेतसा।
जगति शाक्त मत प्रतिपादितम॥
प्रकटमेव यदस्ति महीतले
श्रितमनेक जनैनरकोन्मुखै ॥८॥

व्यरचि केन चिदुत्पथगायिना।
तदपि वैष्णव मार्ग विडम्बनम् ॥
भवति यत्र यशोरिव दुर्दशा।
जनमि तस्य जनस्य नु तापिन ॥९॥

तदितरेण बनेतर वृत्तिना।
गतमतद्वयभिन्न मद क्रमम् ॥
जगति शैवमत शिशुवह्निना।
भवति यत्र सुखेन वनस्थिति ॥१०॥

गणपति परिकल्प्य तदाश्रितम्।
व्यधृत किन्न मत पुरुषाधमै॥
प्रकृति भिन्नतया किल वास्तवे।
भवति यत्र मुखस्य विपर्य्यय ॥११॥

मनुजतामपहाय कुबुद्धिभि।
जनवरेषु गुणान्वित नामसु।
त्रिमुखता चतुराननता तथा।
भुज चतुष्ट्यता ध्वरोपिता ॥१२॥

क्व जडमूर्तिमनार्य्य फलप्रदा।
गुणमयी क्व परेश गुणस्मृति॥
परम होगत बुद्धिभिरादृता।
जगति सैव विचित्र मिद कृतम् ॥१३॥

सकल शक्तिमत करुणाकरा।
दत्ररभाव गतात् परमेश्वरात्॥
जगति ये विमुखा प्रकृति जडाद
नुनमन्ति कथ नहि ते जडा ॥१४॥

उपकृति जगतामवलोक्ययो।
रवि शशि द्युति मत्र चकारताम्॥
निखिल विश्व गतस्य सुवर्तिका।
द्वितय विद्यति रादरणे कृता ॥१५॥

नित्य मेत्य च धमधुरन्धरो।
दिशि-दिशि प्रथित धवल यश॥
मनुकुले रमल कमल
यथा ह्यविधरैर्भ्रमरै परिगीयते ॥१६॥

वशस्य वृत्तम्

दयाकरानन्द विशेषवर्धनात्।
जगती तले यो नितरामुदार धी॥
ततान नामानुगुणा निजाभिधाम्।
गुरु दयानन्द इति प्रकल्पिताम् ॥१॥

कर्तव्यमेव जगता मुपकार कृत्यम्।
विद्वद् वरैरिति विचारयतोस्य चित्ते॥
या भूत्तया सकल मेव विचार बुद्ध्या।
दिग्मडल समाभि वेष्टित मादरेण ॥२॥

जयतु-जयतु लोके वेद सूर्य्य प्रकाश।
भवतु-भवतु पश्चादार्य्य धर्म प्रभाव॥
नयतु नयतु दूर न्यायकारी दयालु।
नंवयत रोग नून मार्य्याधि वासात् ॥३॥

प्रो. मैक्समूलर के वेद सम्बन्धी विचार



(ले०—श्री डा० कृष्णवल्लभ पालीवाल, एम०एस०सी०, पी०एच०डी०)

अधिकांश भारतीय प्रो० फ्रेडरिक मैक्समूलर को भारत का हितैषी और शुभचिन्तक समझते हैं क्योंकि उन्होंने भारतीय धर्म शास्त्रों और विशेषकर वेदों पर बहुत लिखा। उनके वेदाध्ययन का मूल उद्देश्य क्या था? वेदों में उन्होंने क्या पाया। उनका वेदों के प्रति क्या दृष्टिकोण था और विश्व के धर्म ग्रन्थों में वेदों का इनकी दृष्टि से क्या स्थान है यही इस छोटे से लेख का अभिप्राय है।

आपकी शिक्षा जन्म से जर्मन होने के कारण पहले लीपिग और फिर बर्लिन विश्वविद्यालय के सस्कृत विभाग के अध्यक्ष सस्कृतज्ञ प्रो हरमैन ब्रोक्स के निरीक्षण में हुई। यहां के भाषा विशेषज्ञ फ्रान्ज बोप और दार्शनिक शीलिंग के विचारों का मैक्समूलर पर प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् आप ऋग्वेद विशेषज्ञ फ्रांसीसी प्रोफेसर ओगीन बरनोफ के सस्कृत विभाग मे पैरिस वेदाध्ययन के लिए (१८४६-४७) आये। शिक्षा समाप्त कर एच एच विल्सन और बारोन बुनसन के आग्रह पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वेदानुसन्धान के कार्य में लग गये और आजीवन (१८४७ से १९०० तक) इसी विद्यालय के विश्व को अपने वेद, भाषा तुलनात्मक धर्म और भाषाओं के विकास सबधी विचार देते रहे। इन पचास वर्षों में आपने "पूर्व की पवित्र पुस्तकें सीरीज" के अन्तर्गत २५ धर्म ग्रन्थों का ५० भागों मे अंग्रेजी अनुवाद किया। ये पुस्तकें वेद, उपनिषद्, गीता, वेदांत सूत्र से लेकर जैन, बौद्ध, इस्लाम, फारसी एव चीन के धर्मग्रन्थों आदि के विषय में हैं। स्वय मैक्समूलर ने वैदिक ऋचायें, उपनिषद्, धम्मपद, गृह्य सूत्र और बौद्ध महायान का अंग्रेजी अनुवाद किया। भारतीय षट् दर्शनों पर ८९९ में "Six Systems of Indian Philosophy" एक ग्रन्थ लिखा आप के वेद सम्बन्धी भाषण The Vedas, India, what it can teach us ? पुस्तकों के रूप में मिलते हैं।

प्रो० मैक्समूलर के वेदभाष्य का आधार सायण भाष्य है जिसे इन्होंने पहले ६ भागों में (१८४९ १८७३) छपवाया और दूसरा सस्करण ४ भागों में (१८९०-९२) केवल सहिताए क्रमश १८७३ और १८७७ में छपवाईं।

लेख के प्रारम्भ में उठाये गये प्रश्नों का सबसे प्रामाणिक उत्तर उनके वे शब्द होंगे जिन्हे उन्होंने कभी कभी पत्रों आदि के रूप में व्यक्त किया है। इसी में इनके अन्तर मे छिपी भावना व्यक्त हो जावेगी, तो पढ़िये उन्हीं के शब्दों में—

प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई० बी० पुसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र 'तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा और ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और उस प्रारम्भि असत्य धर्म को इस सत्य धर्म जिसका हम पालन करते हैं तुलना करने योग्य करेगा।"

१८८६ में प्रो० मैक्समूलर ने अपनी पत्नी को एक पत्र इस प्रकार लिखा "मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण करूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है हालांकि मै उसे देखने को जीवित न रहूंगा तदपि मेरा यह सस्करण और वेद का भाष्य आद्यन्त बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि उनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है इस धर्म को नष्ट करने का एकमात्र उपाय है जो गत तीन हजार वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है।"

१६ दिसम्बर, १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मत्री आरगायल के ड्यूक को निम्न पत्र लिखा "भारत का प्राचीन धर्म पतन हो गया है यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचलित होता है तो इसमें किसका दोष है।"

२९ जनवरी १८८२ को श्री बाइरेन्जी मालाबारी को

इस प्रकार एकपत्र प्रो० मैक्समूलर ने लिखा "जैसा कि मैंने पहले भी बताया कि मेरे विचार "हिबर्ट" भाषण लिखते समय भारतीयों के बारे मे थे। मै कम से कम उन थोड़े से लोगों को बताना चाहता हू जिन तक मैं अपने विचार अंग्रेजी द्वारा पहुचा सकता हू कि इस प्राचीन धर्म का ऐतिहासिक महत्व क्या है जैसा कि समझा जाता है न केवल यूरोपीय या ईसाइयत की दृष्टि से बल्कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से। मै दो आपत्तियों से चेतावनी देना चाहता हू। प्रथम तो भारत के राष्ट्रीय धर्म की अवहेलना व न्यून मूल्यांकन करना जो प्राय तुम्हारे अधूरे-यूरोपीय नवयुवकों द्वारा किया जाता है और दूसरे अधिक महत्व देना या ऐसा अनुवाद करना जैसा कभी नहीं किया गया। ऐसा दु:खद स्रोत दयानन्द सरस्वती के वेदो पर परिश्रम मे प्रदर्शित होता है। वेदो को प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ मानो जिनमे एक पुरानी और सरल प्रकृति की जाति के मनुष्यो के विचारों का चित्रण है और तब तुम इसकी प्रशंसा कर सकोगे और इसमे से इस आधुनिक युग मे भी विशेषकर उपनिषदों की शिक्षाओ को ग्रहण कर सकोगे। लेकिन इनमे खोज करो 'वाष्प इंजन, बिजली, यूरोपीय दर्शन और नैतिकता की" वेद को इसके सत्य रूप से अलग कर दो इसके वास्तविक महत्व को नष्ट कर दो और तुम प्राचीन और अर्वाचीन के ऐतिहासिक क्रम को जो इन्हें बांधे हुए है छिन्न-भिन्न कर दो। अतीत एक सत्य है, ऐसा मानो। उसका अध्ययन करो तब तुम्हे भविष्य मे में अपना ठीक मार्ग अपनाने मे कम कठिनता होगी पाठक यहां प्रो० साहब की अन्तरात्मा के भावो को समझ गये होंगे और वे किस प्रकार महर्षि दयानन्द भाष्य शैली से भयभीत प्रतीत होते हैं। समझते होंगे दयानन्द की शैली के आगे मेरी दाल न गलेगी।

उन्होंने अपने पुत्र को इस प्रकार लिखा तुम पूछोगे कि विश्व मे कौन सी पवित्र (धार्मिक) पुस्तक सर्वश्रेष्ठ है ? शायद यह उत्तर पक्षपात पूर्ण प्रतीत हो। लेकिन मै वास्तव मे बाइबिल के न्यू टेस्टामेट को कहूगा। उसके पश्चात् कुरान को स्थान दूंगा जो अपनी नैतिक शिक्षाओ में बमुश्किल न्यूटेस्टामेट के संस्करण से श्रेष्ठ है। उसके पश्चात् क्रमश. ओल्ड टेस्टामेट, दक्षिणी बौद्धों की त्रिपि-

(शेष अगले पृष्ठ पर)

सुनाऊँ ऋषि का गौरव-गान

दीन हीन भारत में जिससे जागा वेद विहान।
फले वेद विरुद्ध पथ जब लिये पुराणों की अधियारी।
छल प्रपच पाखड जाल में भूल रहे थे सब नरनारी।।
प्रभु के बदले लगे पूजने पीपल और पाषाण।।
दयानन्द की ज्ञान सुधा से सुप्त तृषित प्रतिभा पुलकाई।
दयानन्द के पावन उर में वेद ज्ञान की ज्योति जलाई।
लगी फूलने प्रभा पुण्य की मिट कर तिमिर महान्।।
तर्क तीर शास्त्रार्थ धनुष से सकल मतों का क़िला हिलाने।
अपने बुकचे सब टटोलते लगे अनेक विकल्प बताने।।
तब सत्यार्थ प्रकाश देख कापे इंजील कुरान।।
प्रतिमा साधन निराकार की पूजा का हैं लगे बताने।
अल्लाह वाले सात फलक को सात उसूल लगे समझाने।।
ईसाई भी भूल गये अपना चौथा आसमान।।
शिक्षा सूत्र गीता गऊओं की उसने ही की पहरेदारी।
स्वतन्त्रता का महामन्त्र दे गया प्रथम आदित ब्रह्मचारी।।
स्त्री शिक्षा हिन्दी आलोकित पाकर नव-परिधान।।
ऋषिवर के संकेत देखकर शासन ने निज लक्ष्य बनाये।
छुआछूत और बाल विवाह की बन्दी के अधिनियम बनाये।।
सभी हो गया आर्यवीर तुम किन्तु न लेना मान।।
विज्ञानो की चकाचौंध में ईश्वर का अस्तित्व भूलकर।
भौतिकवादी चकाचौंध में धर्म कर्म को रहे भूलकर।।
बने नास्तिक नई रोशनी के उन्मत्त जवान।
भारतीय संस्कृति छोड पाश्चात्य रगों में जीवन ढाला।
भ्रष्टाचार बढ़ा चरित्र की पावनता का मुह काला।।
सह-शिक्षा के परिणामों का दुष्कर दुखित बखान।।
एक ओर है ब्रह्मकुमारी मत ने नव पाखण्ड रचाया।
ईसाइयत की सुरसा ने एक ओर निज मुंह फैलाया।।
छद्म प्रलोभन दे लाखों का छीन रहे ईमान।।
देख दुखित हो छुपा चन्द्रमा धूम्र द्वेष से धरती काली।
ऋषिवर के सिद्धान्त दीप ले तुम्हें जलानी है दीवाली।।
जिसे जलाया था ऋषिवर ने दे जीवन का दान।।
सुनाऊँ ऋषि का गौरव गान।।

—धर्मेन्द्रनाथ 'अलिन्द'
हल्दौर (बिजनौर)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

टिका लाओटज के टाओट, राजा कन्फ्यूसिस, वेद और अवेस्ता।

१८९९ में प्रो० मैक्समूलर ने ब्रह्मसमाजी एम० के मजूमदार को निम्नलिखित पत्र लिखा—"तुम जानते हो कि मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एव उसके द्वारा उसे अन्य अन्यधर्मों विशेषकर ईसाईयत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेकों वर्षों से अध्ययन किया है। सबसे पहले तुम्हे निश्चय करना है कि तुम अपने प्राचीन धर्म का कितना भाग त्यागने को तैयार हो। यदि उसका सर्वस्व कहीं जो पुराना कहा जाता है, तुमने काफी मात्रा में त्याग दिया है। बहुदेवतावाद, मूर्तिवाद और धम नाम से की गई बलि पूजा।

तत्पश्चात् न्यूटेस्टामेंट उठाओ और स्वय पढ़ो और स्वय निर्णय करो कि उसमे लिखे ईसा के शब्द तुम्हें सतुष्ट करते हैं अथवा नहीं। ईसा के श्रद्धायुक्त वचनों मे अन्तर-निहित उपदेश तुम तक वैसे ही आवेंगे जैसे वे हम तक आते हैं। हमे भी इन उपदेशो का अपना अर्थ देने का अधिकार नहीं है, विशेषकर यदि हम उनका स्वय भिन्न अर्थ करें। यदि तुम उसकी शिक्षाओ को यथावत् स्वीकार करो तो तुम भी ईसाई हो (या हो सकते हैं)। तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियाँ बताओ, जो तुम्हे स्पष्टरूप से ईसाई बनने मे बाधा डालती हैं और अब मैं लिपि मे स्पष्ट करने की पूर्ण कोशिश करूँगा कि किस प्रकार मैंने और मेरे साथियो ने उनका मुकाबला कियाहै और उन्हें हल किया है। मेरी दृष्टि में भारत का मुख्य भाग इसाई बन चुका है। तुम्हें ईसाई बनाने में समझाने बुझाने की जरुरत नहीं है। तब तुम स्वय अपने (धर्म परिवर्तन) के बारे में विचार करो।

निस्सन्देह न्यू और ओल्ड टेस्टामेंट की नैतिक एव चारित्रिक शिक्षायें किसी भी अन्य पवित्र पुस्तक से कहीं उत्तम हैं। इसमे बाइबिल की अद्वितीयता अन्तर्निहित है साधारणतया अन्य पवित्र पुस्तकें प्राचीन काल के लोगों को जो स्मरण रहा उसका सचय मात्र हैं।

तुमसे पूर्वागमियो ने पुल निर्माण कर दिया है निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ो। यह तुम्हारे कारण टूटेगा नहीं और उस पार तुम्हारे स्वागत के लिये अनेकों मित्र हैं जिनमे तुम्हारा पुराना मित्र और साथी फ्रेडरिक मैक्समूलर से ज्यादा कोई प्रसन्न न होगा।

प्रोफेसर मैक्समूलर के उपरोक्त उद्धरणों से आपको अब स्पष्ट हो गया होगा कि पचास वर्ष तक वेदाध्ययन करने पर इन्हें वेदों में क्या मिला और जो मिला उसे किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करके जनता के सामने रखने का निर्देश दे रहे हैं। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त जो मानवमात्र को एक परिवार के रूप मे देखने व रहने और व्यवहार करने का आदेश देते हैं बचपने के विचार लगते हैं। ऋग्वेद जो स्टुअर्ट पि गोट के शब्दों मे Iliad और Odyssey दोनों के मिलकर बराबर है सामन्य ज्ञान से भरा प्रतीत हुआ जबकि सत्य यह है इस ईश्वरीय ज्ञान भडार का सत्यार्थ अटकलबाजी या कुत्सित मान्यताओं से नहीं निकलता इसके समझने के लिये आर्ष प्रणाली की आवश्यकता है जिसे महर्षि दयानन्द ने पुनरुद्धार किया और जिसे वे अधिक मूल्यांकन कहते हैं। जबकि सचाई यह है कि उदात्त विचारों से पूर्ण वेद ज्ञान को हेय सिद्ध करें ताकि ईसाइयत के प्रचार का मार्ग सरल हो जावे, यह भावनायें स्पष्ट होती हैं उनके आखिरी उद्धरणों से। उनके सस्कृत और वेदाध्ययन का मूल उद्देश्य तो भारतीयो का धर्म परिवर्तन न करना था उन्होंने समझ लिया कि वेद भारतीयों के प्राण हैं उनमे अश्रद्धा उत्पन्न करके ही हम उन्हें ईसाई बना सकते हैं और यही मार्ग उसने अपनाया। आज भी उनके अनुयायी प्रो० एस्टलर ऋग्वेद का पुनर्गठन कर रहे हैं क्योंकि वह विषयानुसार नहीं है। विषय तो उन्हें अब पता चले जब वे सत्य को जानना चाहें वे तो भारतीयों को उनके धर्म ग्रन्थों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने पर तुले हुए हैं। आज से सौ वर्ष पहले एक मैक्समूलर थे मगर आज सैकड़ों मैक्समूलर सस्कृत द्वारा भारतीय सस्कृति में त्रुटि दिखाने, तुलनात्मक धर्मों का अध्ययन करने के नाम पर किस प्रकार वेदों का, धर्म शास्त्रों का अर्थ का अनर्थ करके धर्म परिवर्तन के कार्य को कर रहे हैं। यह भी कैसा अनुसन्धान है कि वेदों में कुछ भी हो मगर उनमें ढूढ़ो यूरोपीय दर्शन,बिजली, वाष्पयत्र।

निस्सदेह पाश्चात्य विद्वानों ने अनुसधान के नाम पर

[शेष पृष्ठ ६१ पर]



राष्ट्र-लक्ष्मी

(रवीन्द्र अग्निहोत्री एम०ए०, १६, केलाबाग, बरेली)

विश्व विख्यात पशु विशेषज्ञ डा० राइट ने सन् १९३५ ई० मे प्राप्त आंकडों के आधार पर घोषित किया था कि गोवंश से भारत को जो आय प्रतिवर्ष होती है वह ११ अरब रु० से अधिक है। यह गणना करते समय उनके समक्ष सन् '३५ के चीजो के भाव थे जिनमे आज पांच गुने से लेकर दस गुने तक की वृद्धि हो चुकी है। अत उक्त गणना के आधार पर ५५ अरब से लेकर ११० अरब रु० तक की वार्षिक आय गोवंश से हुई। पर चूंकि सन् '३५ से अब तक अबाध रूप से गोवंश का वध किया जा रहा है और उचित पोषण के अभाव में भारतीय गाय की दूध देने की क्षमता मे भी ५०प्रतिशत तक ह्रास हुआ है अत गोवंश से होने वाली आय में भी यद्यपि आश्चर्यकारी परिवर्तन आ गया है पर फिर भी वह उपेक्षणीय नहीं है। आज दूध और दूध से बनी चीजों से ६ अरब २० करोड रु० प्रति वर्ष आय होती है। गोबर की खाद से १००० करोड रु० प्रति वर्ष की आय होती है। (देखिए अवनीन्द्रकुमार विद्यालकार द्वारा सम्पादित 'भारत ज्ञान कोष' १९६४) यह सम्मिलित आय है। केवल गोवंश से आज भी २५ अरब रुपया वार्षिक आय होने का अनुमान है जैसा कि अखिल भारतीय गोरक्षा सम्मेलन, वृन्दावन में एक वक्ता ने बताया था। यह राशि हमारी समस्त राष्ट्रिय आय के चौथाई भाग से अधिक है। इतनी आमदनी अन्य किसी भी एक स्रोत से नहीं हो रही है। इस पर भी, सरकार से मोटी-मोटी तनख्वाह पाने वाले तथा कथित पशु विशेषज्ञों ने देश में 'अनुपयोगी' पशुओं का भूत खड़ा कर रखा है। उनका कहना है कि देश में अधिकांश गायें कम दूध देने वाली हैं, बैल कमजोर हैं अत इन्हें रखने के स्थान पर कटने देने मे ही लाभ है। वास्तविकता यह है कि इन लोगों का यह कथन सर्वथा भ्रामक, निराधार अतएव असत्य और अनुत्तरदायित्वपूर्ण है। सरकारी आंकडे स्वय यह बताते हैं कि देश में२ या ३ प्रतिशत से अधिक तथाकथित 'अनुपयोगी पशु' नहीं हैं। यह सत्य है कि भारत की अधिकाश गायें कम दूध देने वाली हैं। और जब यह देखते हैं कि नीदरलैंड की गाय औसतन ८००० पौंड, आस्ट्रेलिया की ७०००पौंड, स्वीडन की ६००० पौंड और अमेरिका की ५००० पौंड दूध वर्ष भर मे देती है पर भारत की गाय वर्ष भर मे केवल ४१३ पौंड दूध देती है (देखए इडियन इयर बुक १९६४, हिन्द पाकेट बुक पृष्ठ १५०, १५१) तो बडी शर्म महसूस होती है, और यह देखकर तो अपनी हीन दशा पर ग्लानि अनुभव होती है (क्योकि यह वस्तुत हमारी ही उपेक्षा का परिणम है,) कि अन्य देशों की गायें दूध देने की अवधि में सामान्यत ३००० से ४००० पौंड तक दूध देती हैं पर भारत की गायें साधारणत केवल १५०० पौंड ही दूध देती हैं। (पूर्वोक्त) गाय की दुग्धोपादकता में कमी होने का ही परिणाम है कि आज बैलो में अधिक काम करने की क्षमता नहीं। पर विचारणीय यह है कि इस 'अनुपयोगी गोवंश' की विद्यमानता में प्रति व्यक्ति उपलब्ध दूध केवल ५.८ औंस है, (जिस भारत में घी, दूध आदि की नदिया बहती थीं उसकी इस पतित और अवनत दशा पर जरा ध्यान दीजिए। जरा तुलना भी कीजिए न्यूजीलैंड में प्रति व्यक्ति उपलब्ध दूध२४४औंस और और डेनमार्क में १४८ औंस है।) इन विशेषज्ञो के कथनानुसार 'अनुपयोगी' गायो को नष्ट कर दिया जाय तो फिर तो भारत मे दूध का दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा। खेती के लिये भारत मे पहले ही दो करोड बैलों की कमी है। अगर विद्यमान बैलो को कमजोर एव अनुपयोगी बताकर समाप्त कर दिया जाय तो भारत मे खेती असभव हो जायगी क्योंकि सरकारी अनुमान है कि बैलो को हटाकर उनके स्थान पर ट्रैक्टर से काम लेने के लिये ७० लाख ट्रैक्टर चाहिये और फिर प्रति वर्ष १० लाख ट्रैक्टरों की व्यवस्था करनी पडा करेगी। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि भारत सरकार वर्तमान गोवंश को अनुपयोगी बताकर नष्ट भले ही कर दे पर ७० लाख ट्रैक्टरों की व्यवस्था करना उसके लिए आकाश कुसुम चयनमात्र है। फिर क्या ये ट्रैक्टर खेती के लिये खाद भी दिया करेंगे ? खाद्य सामग्री के लिये दूध और घी भी दिया करेंगे ? क्या एक बार धन लगा देने पर क्रमश इनकी सतति बढ़ती ही जायगी ? इन अनुपयोगी पशुओं को समाप्त करने के बाद

आवश्यक मात्रा मे उपयोगी पशु ला दिये जायेंगे'—ऐसा विश्वास दिलाना उसी वायदे के समान है जो हिन्दी आंदोलन समाप्त कर देने के पश्चात ही हिन्दी को सवैधानिक पूर्ण अधिकार' देने के लिए सरकार की ओर से किया गया था। अपनी जिस भूल के लिये हमे आज तक पश्चात्ताप की अग्नि परीक्षा देनी पड़ रही है उसकी पुनरावृत्ति करने को हम उद्यत नहीं। यदि सरकार यह चाहती है कि हम इस सारे गोवश को उसके कथनानुसार 'अनुपयोगी' मानकर उसके हवाले करदें तो उसे पहले दो काम करने होंगे। सब पहले तो इस गोवश के बदले मे देश की आवश्यकता भर 'उपयोगी' गोवश प्रदान करना होगा। दूसरे, उसे अपने उस सारे रिकार्ड को झूठा सिद्ध करना होगा जिसके अनुसार 'अनुपयोगी' पशु से भी सामान्य रूप से २२) रु० से लेकर २७) रु० तक का वार्षिक लाभ होता है जिसे आधुनिक विज्ञान की सहायता से १३६०) रु० वार्षिक तक बढ़ाया जा सकता है, मुफ्त की बिजली और खाद का मूल्य पृथक् रहा। (देखिये मेरा लेख 'यांत्रिक कसाईखाने बनाम देशोन्नति') यदि वह ऐसा करने को उद्यत नहीं तो क्यो न हम उसकी 'लोक कल्याण-प्रवृत्ति' पर सन्देह करें! दूध नापैद हो जाने पर और खेती असम्भव हो जाने पर फिर यहा बचेगा कौन? शायद मिट्टी फाककर ये विशेषज्ञ ही जीवित रहेगे!

ये अनुपयोगी कहे जाने वाले पशु देश के लिये वरदान हैं अभिशाप नहीं। अपनी आयु के अन्तिम दिन तक प्रत्येक पशु गोबर और मूत्र देता है। यदि गोबर और मूत्र का ठीक उपयोग किया जाय तो यह स्वय बहुत बडी सम्पत्ति है और इसकी खाद से हम अपने कृषि उत्पादन को पच्चीस गुना बढ़ा सकते हैं। सरकारी पशु गणना रिपोर्ट १९५५-५६ के अनुसार देश मे गोवश का प्रतिदिन ६८,३९,३०० मन गोबर होता है। इससे कुछ कम गोमूत्र होता है। 'नेशनल इनकम कमेटी' १९५१ की रिपोर्ट मे पृष्ठ ६८, अपेन्डिक्स ४४ ए पर गोबर और मूत्र के जो भाव लगाये गये हैं उसके अनुसार केवल गोवश से देश को प्रतिवर्ष ६२१ करोड रु० का गोबर प्राप्त होता है, अर्थात् एक पशु से ३८ रु० का गोबर। इसी रिपोर्ट के आधार पर एक गाय के मूत्र का वार्षिक मूल्य १४ रु० है (जिससे Journal of veterinary science and Animal Husbandry in India १९४१ के अनुसार १६० रु० की नाइट्रोजन, ६४० रु० की फास्फेट तथा ६५० रु० की पोटाश कुल १३६० की अति उपयोगी सामग्री तैयार की जा सकती है। ये अब से २३ वर्ष पुराने मूल्य हैं जिनके अब चौगुने हो जाने में तो कोई सन्देह है ही नहीं। यदि यह सब न किया जाय, पशुओं से यह लाभ न उठाया जाय तो भी गोवश के प्रत्येक पशु से हमें प्रतिवर्ष ५२ रु० का गोबर एव गोमूत्र मिल जाता है चाहे वह पशु 'उपयोगी' हो या 'अनुपयोगी', जबकि सरकारी गोसदनो में रखे गये 'अनुपयोगी' पशुओं का खर्चा २५ रु० से लेकर ३० रु० तक आता है क्योकि वहां उन्हे बहुत कम मूल्य में जगली चारा उपलब्ध हो जाता है। पहाडों की तराई तथा अन्य इलाको में किसान लाखो गाय बैल केवल गोबर और मूत्र के लिये ही पालते हैं और वे किसी भी मूल्य पर अपने वृद्ध या अपग पशु को नहीं बेचते।

हमारे स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्री नेहरू जी को एक बडी शिकायत यह रही कि भारत में अधिकाश गाएँ एक एक पाव दूध देने वाली हैं जबकि रूस आदि देशों में गाय एक एक मन दूध प्रतिदिन देती है। स्व० नेहरू जी का यह आक्षेप अक्षरश सत्य है। हम स्वय इस तथ्य से दुखी हैं कि जिस भारत की गौएं 'शतोदना' (सौ व्यक्तियों को एक समय भरपेट भोजन कराने वाली) प्रसिद्ध थीं, उसी भारत की गौएँ आज 'एकोदना' भी नहीं। भारतीय गाय की दूध देने की क्षमता में निरन्तर ह्रास हो रहा है, और जैसा कि हम पूर्व ही बता आये हैं, यह ह्रास सन् ३५ से ६१ तक ५० प्रतिशत तक हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस ह्रास के कारण क्या हैं? और उसके लिये दोषी कौन है? हमने इस समस्या पर जब भी गम्भीरता से विचार किया सरकार को ही दोषी ठहराया और इसके पीछे जो शक्ति (Factor) काम कर रहा है वह है दूषित शिक्षा और उसी के परिणाम स्वरूप दूषित खानपान, जिसने अपने प्रभाव से विवेक से 'विवेक शक्ति' को नष्टकर दिया है। गोवश के प्रति सरकार की उपेक्षा का ही परिणाम है कि गायों के चरने के लिये देश में आज गोचर भूमि का नितान्त अभाव हो गया है। आज गावों तक में पशु के चरने के लिए

भूमि नहीं। पशु खाद्य की ७० प्रतिशत कमी होने पर भी दस करोड़ रुपया की वार्षिक खली विदेशों को भेजी जा रही है। अच्छे सांड आज एक प्रतिशत भी उपलब्ध नहीं हैं। दूसरे देशों की सरकारों ने अपने गोवंश को उन्नत एवं दुधारू बनाने के लिए काफी प्रयत्न किया है। भारत मे सरकारी सूत्र ने गाय के रक्षण एवं संवर्धन पर इतना ध्यान नहीं दिया। लेकिन इस उपेक्षित अवस्था में भी गाय आज पुनः अपनी आर्थिक उपयोगिता और दुग्ध उत्पादन की क्षमता प्रदर्शित कर रही है।

केन्द्रीय गोसम्वर्द्धन परिषद् द्वारा देश मे प्रति वर्ष जो दुग्ध प्रतियोगिता आयोजित की जाती है उसमें गत ५-६ वर्षों से हर वर्ष गाय को ही अधिक दूध देने पर पुरस्कार मिल रहा है। दुग्धोपादन में भैंस गाय से अब भी पिछड़ रही है। उक्त परिषद् के अध्यक्ष श्री उ०न० ढेबर भाई के शब्दों मे गाय को अगर मौका मिले तो वह अद्वितीय रूप से दुग्धोपादन की क्षमता प्रदर्शित कर सकती है।' उर्ली-कांचन (महाराष्ट्र) की गोशाला मे 'गीरगाय' को प्रति वर्ष ४५, ४७ पौंड से भी ऊपर दूध देने मे पुरस्कार मिल रहा है। गतवर्ष इस गोशाला को 'गोपालरत्न' की पदवी दी गई थी। सन् १९६३-६४ की दुग्ध प्रतियोगिता के लिए जो रिकार्डिंग किया गया उसमे उर्लीकांचन की गाय ने ५३ पौंड दूध दिया। गतवर्ष पंजाब के प्रसिद्ध गोपालक श्री हरीसिंह जी के फार्म की साहीवाल गाय को ६८ ६ पौंड दूध देने के लिए दो हजार रुपया पुरस्कार दिया गया। भैंस को जितनी खुराक मिलती है, जितना अच्छा उसका पालन-पोषण होता है उतना यदि गाय का हो तो भारत की गाय इस अवनत दशा मे भी स्व० श्री नेहरू की आकांक्षा की पूर्ति कर सकती है।

गत वर्ष गांधी जयन्ती के अवसर पर बम्बई की आरे कालोनी मे गायों के एक नए कक्ष का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने देश मे दूध की कमी का उल्लेख करते हुए कहा था—' पर्याप्त मात्रा मे दूध न मिलने से अधिकांश भारतीय शारीरिक दृष्टि से शिथिल हैं और उनकी यह असमर्थता देश के विकास मे बाधक बन रही है।'

गऊ को माता मानने वाले प्रतिवर्ष गोपाष्टमी पर्व मनाकर गो को कामधेनु, शतोदना, अवध्य और अघ्न्या कहने वाले, संसार के शिरोमणि देश, इस स्वतंत्र भारत के हम आर्यों पर इससे अधिक गम्भीर लांछन और कौन सा हो सकता है? ऋषि निर्वाण के महत्वपूर्ण अवसर पर हम देश की आर्य जनता से अनुरोध करते हैं कि वह आगे और राष्ट्र की लक्ष्मी, सुख और समृद्धि की मुख्य आधार गऊ को उन्नत और विकसित बनाने मे सहयोग दें ताकि शतोदना कामधेनु निर्भय होकर विचरण करें और भारत मे फिर से दूध दही की नदियां बहती दिखाई दें। सपन्न लोग घर पर गउएं पालें। शेष लोग इतना व्रत अवश्य लें कि दूध यथासंभव केवल गाय का ही प्रयोग मे लाएंगे। इससे गोपालन को प्रोत्साहन मिलेगा, गाय की रक्षा होगी।

●

[पृष्ठ ६० का शेष]

वेदों के साथ जबर्दस्त अन्याय किया है। कहां वेद को सार्वदेशिक एवं सार्वजनिक प्राणिमात्र के कल्याण की भाव नायें और कहां उनकी गिनती उनसे भी हेय जो अमानुषिक और परस्पर विरोधी शिक्षाओं से भरे ग्रन्थ हैं। कहां सृष्टि के आदि मे प्राणिमात्र के कल्याण के लिए दिया गया ईश्वरीय ज्ञान और कहां अल्पज्ञ मानव के मस्तिष्क की कल्पनाओं और इतिहास से भरे ये ग्रन्थ। कैसी तुलना कैसी सामान्यता। रिसर्च का अर्थ तो यह है कि पदार्थ का सत्य ज्ञान का पता लगाना और वेदों के विषय मे वही अर्थ करना जिन भावनाओं से वे ओत प्रोत हैं।

मेरा विचार है कि आज नहीं तो कल महर्षि की भाषा शैली ही वेद का सत्यार्थ प्रगट करने मे समर्थ होगी जिसे प्रो० मक्समूलर ने स्वीकार नहीं की। इसी शैली को न अपनाने के कारण ये भ्रांतियां हो रही हैं।

●

ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ जो कोई दुःख को छुडाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे।



कौन? आर्यसमाज करेगा

शका—आई खराबी दशा बिगड गई, देश का नव निर्माण,
बता दो कौन करेगा ?
समाधान—बनाये बिगडी देश की रक्षा देश का पहरेदार,
यह आर्यसमाज करेगा ।
शका—भटक रहे अन्धेरे मे आज देश के नर-नारी,
नही सूझता पथ जनता फिरती है मारी-मारी,
इन्हे मार्ग दिखलाने वाली अमर ज्योति का दान,
बता दो ?
समाधान—सत्यार्थप्रकाश लिए हमको आगे चलना है,
पडे भले ही विष पीना या कि आग मे जलना है,
अन्धकार के कण-कण मे नूतन ज्योति विस्तार,
आर्यसमाज करेगा ।
शका—विलासिता की घोर घटा आज देश मे छाई है,
कृत्रिमता और फैशन की काली आधी आई है,
दानवता के कुटिल करो से मानवता का त्राण,
बता दो कौन करेगा ?
समाधान—भोग त्याग की धारा को एक केन्द्र मे ला करके,
ज्ञान कर्म का मनमोहक सम्मेलन बुलवा करके,
भौतिकता मे आध्यात्मिकता का सुखकर सचार,
आर्यसमाज करेगा ।
शका—नगे नाच लडकियो के देख शर्म शरमाती है,
कहकर कोई क्या कर ले लोई उतर जब जाती है,
लाज लुटी मर्यादा मिट गई मातृशक्ति का मान,
बतादो कौन करेगा ?
समाधान—समझे दुनिया नारी को बेटी भगिनी और माता,
मातृभूमि के रक्षक मे आर्य निभायेंगे नाता,
भाई बहिन का प्रचलित पावन प्रेम भरा व्यवहार,
आर्यसमाज करेगा ।

सत्य ज्ञान की किरणो दूर सकल तम भागेगा,
ऋषि सन्देश गूजने दो देश का जन-जन जागेगा,
रोग कई है, एक नही है, इन सबका उपचार,
आर्यसमाज करेगा ।

—कु० सुशीला आर्या एम०ए०
कन्या गुरुकुल, नरेला

भारतीय तारुण्य के प्रति

त्याग, तपस्या, स्वाभिमान हो, नई रवानी हो !
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो ! !
ऐसी हो हुकार कि काई-सा अरिदल फट जाए ।
ऐसी हो ललकार कि पैरो पर रिपु आ झुक जाए।
दीप्तानन लख अन्यायी दल तृण-सा थर-थर कांपे-
गरजे तो सागर मे रिपु पर प्रलय-घटा घहराये ।
दुष्टो को हो शूल, सज्जनो को कल्याणी हो !
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो ! !
जल सी हो शीतलता, सुमनो सा गुण-सौरभ हो-
हो सहिष्णुता तरुसी निज सस्कृति का गौरव हो,
सूरज सा हो तेज, मिटा दे जो जग का अधियारा
पावक सी पावनता हो, मन मे न मलिनता हो ।
सरस आचरण, मधुर कर्म हो मधुमय वाणी हो ।
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो ॥
क्षमा धरित्री-सी, धीरज हो अचल हिमालय-सा ।
सुरसरि-सी निर्मलता हो, हो सयम चातक-सा,
हो हस-सा विवेक, क्षीर को जल से विलगाये,
हो ताजगी पवन सी, निश्छलपन मृग-शावक-सा
दानवता पर मानवता की विजय निशानी हो ।
नूतन बल, नूतन पौरुष से भरी जवानी हो ! !

—भगवानशरण भारद्वाज 'प्रदीप'
सस्कृति सस्थान, ख्वाजाकुतुब बरेली







महर्षि की सार्वभौमिकता



(ले०—श्री वेदव्रत शास्त्री सिद्धान्तवाचस्पति, श्री गांधी विद्यालय इण्टर कालेज)

महर्षि की कीर्ति गरिमा स्वतन्त्र भारत मे किस स्थान मे गाई जाती हैं ? जब यह प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होता है तो शिर लज्जा से नत हो जाता है। उस समय हृदय से यही भाव प्रादुर्भूत होता है कि भारत के वर्तमान आर्य राजनीतिक अथवा आर्येतर राजनीतिक, मुट्ठी भर लोगों के असन्तुष्ट होने के भय से महर्षि का नाम तक लेना पसन्द नहीं करते, इन्हे कृतघ्न तो नहीं कह सकते परन्तु इन्हें कायर कहने में संकोच भी नहीं करना चाहिए। हम (आर्य) राजनीति में पैर रखते नहीं, कि वोट की मृगतृष्णा के आखेट हो जाते हैं। उस समय सत्यार्थ-प्रकाश का छठवां समुल्लास ही नहीं, अपितु महर्षि के महान् उपकारों तथा आदर्शों को भी विस्मरण कर देते हैं। इतना ही नहीं पाश्चात्य वातावरण के प्रवाह में हमारे पांव भी उठ जाते हैं। हमें गर्व करना चाहिये कि हमारा गुरु कितना महान् था इसने मानवजाति के समुत्थान के लिये अपने मोक्ष परमानन्द को भी कुछ नहीं समझा। आज हम जिस स्वतन्त्र भारत की कीर्ति तथा उन्नति गाते नहीं अघाते, यह समुन्नत भारत उन्हीं की अपूर्व सूझ बूझ का परिणाम है। आज हमारे नेता जब अहिंसकों का गुण-गान करते हैं तो श्री गाधी, बुद्ध और तथा ईसा के सामने महर्षि को भूल जाते हैं या यू कहिये कि उनकी जिह्वा कुण्ठित सी हो जाती है।

आज हम महर्षि की अलौकिक अहिंसा पर प्रकाश नहीं डालना चाहते, क्योंकि यह एक स्वतन्त्र विषय हो जाता है। परन्तु इतना कहने से भी नहीं चूकते कि महर्षि की अहिंसा वृत्ति इन महानुभावों से कहीं बढ़ कर थी। आज दीपमालिका का दिन है, इसी दिन महर्षि ने अपनी दिव्य जीवन लीला "ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" इस अन्तिम वाक्य से समाप्त की थी। आज हम उसी अमर ज्योति की दिव्य-छटा से अपने हृदय के निविडान्धकार को नष्ट करना चाहते हैं। अपने गुरु की अर्चना उसी की अनुपम शब्दावली से करना चाहते हैं जिस तरह उस दिव्यात्मा ने प्रभु का गुण-गान उसी की वेद-वाणी से किया था।

महर्षि की मानव प्रियता

"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश मे उत्पन्न और बसता हू तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरो की झूठी बातों का पक्षपात न करके याथातथ्य प्रकाश करता हू वैसे ही दूसरे देशस्थ व मतोन्नति के साथ भी वर्तता हू। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषयों में वर्तता हू वैसा विदेशियो के साथ भी, तथा सब सज्जनों को वर्तना योग्य है।

निर्बलों की रक्षा

जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दुख देते और मार भी डालते हैं जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश पर हानि मात्र करता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है। "सत्या० की भूमिका से"

दण्ड से ही भ्रष्टाचार की निवृत्ति सम्भव

प्रश्न—जो राजा व राणी अथवा न्यायाधीश व उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करें तो उनको कौन सा दण्ड देवे ?

उत्तर—सभा अर्थात् उनको तो प्रजा पुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिए।

प्रश्न—राजा उनसे दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे ?

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड न ग्रहण करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे ? और सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता



से दण्ड चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है ? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय मे डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें अर्थात् उस श्लोक के अर्थ को स्मरण करो कि न्याय-दण्ड का नाम ही राजा और धर्म है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?

प्रश्न—यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनाने हारा व जिलाने वाला नहीं है इसलिए ऐसा दण्ड न देना चाहिए।

उत्तर—जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड देने से सब बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग मे स्थिर रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर सब के भाग मे न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़ कर होने लगेंगे। वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह करोड़ों गुना अधिक होने से करोड़ों गुना कठिन होता है क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एक को मन भर दण्ड हुआ और दूसरे को पाव भर तो पाव भर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आध पाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं ? जैसे एक मन, और सहस्र मनुष्यों को पाव पाव दण्ड हुआ तो सवा छ मन मनुष्य जाति पर दण्ड होने से अधिक और यही कड़ा तथा बहुत, एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है। "छठे समुल्लास से"।

गणतन्त्र का स्वरूप

यह सक्षेप मे राजधर्म का वर्णन यहां किया गया है। वेद, मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय मे और शुक्रनीति तथा विदुर प्रजागर और महाभारत शान्ति पर्व के राज-धर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य करें और यह समझें कि "वय प्रजापते प्रजा अभूम" यह यजुर्वेद १८/२९ का वचन है। हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा, हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं वह कृपा करके अपनी सृष्टि मे हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय को प्रवृत्ति करावे।

"सत्या० षष्ठ समुल्लास"।

छुआछूत का विरोध

प्रश्न—द्विज अपने हाथ से रसोई बनाकर खावें या शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

उत्तर—शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ने, राज्य-पालन, और पशु पालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें—सुनो प्रमाण—"आर्याधिष्ठाता वा शूद्रा सस्कर्त्तार स्यु" आपस्तम्ब प्र० २। पटल २। खण्ड २। सूत्र ४। यहा स्वामी जी ने यह कहा है कि "शूद्र के घर का पका अन्न तथा उसके पात्र में आपत्काल के बिना न खावें" इसका अभिप्राय यह है कि ये बेचारे गरीब और अशिक्षित होते हैं। इनका जीवन-स्तर शोचनीय है, ये गन्दे रहते हैं, स्वच्छता धनाभाव से कर नहीं पाते। अत इनके घर का वातावरण मन को नहीं रुचेगा। इन्हीं कारणों से इनके घर पर नहीं खाना खाना चाहिये। परन्तु यदि इन्हे अपने घर पर रखेंगे तो इनका रहन सहन अपने अनुकूल बना लेंगे। अत इनके हाथ की पकी रसोई खाने मे कोई दोष नहीं।

"प्राचीन भारत में छुवाछूत नहीं थी"

सो प्रथम आर्यावर्त देशीय लोग व्यापार, राज्यकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल मे घूमते थे और जो आजकल छुवाछूत और धर्म नष्ट होने की शका है वह केवल मूर्खो के बहकाने से और अज्ञान के बढ़ने से है। जो मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने-आने में शका नहीं करते वे देश देशान्तर के अनेक विध मनुष्यो के समागम मे रीति-भाति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूर वीर होने लगते हैं और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महा-भ्रष्ट म्लेच्छ-कुलोत्पन्न वेश्यादि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन नहीं होते; किन्तु देशान्तर के पुरुषों के समागम छूत और

दोष मानते हैं ! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है ?

छुआछूत से हानियां

क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया कि जो राजपुरुषो (सैनिको) मे युद्ध समय में भी चौका लगाकर रसोई बना के खाना, अवश्य पराजय का हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय लोगों का (सैनिको का) युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना, अपना विजय करना आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते-कराते सब स्वातन्त्र्य आनन्द, धन, राज्य, विद्या, और पुरुषार्थ पर चौका कर हाथ पर हाथ धरे हैं और इच्छा करते हैं कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें, परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया। "दशम समुल्लास से"।

संस्कृत भाषा की सजीवता

अंग्रेज ने संस्कृत भाषा को मृत भाषा कह कर इसकी तरफ से लोगों मे अनिच्छा पैदा कर दिया था। महर्षि ने संस्कृत का महत्व पुन सबके सामने रखा। यथा:—

प्रश्न—संस्कृत विद्या मे पूरी राजनीति है वा अधूरी ?

उत्तर—पूरी है क्योंकि जो जो भूगोल मे राजनीति चली है और चलेगी वह संस्कृत विद्या से ली है और जितना प्रत्यक्ष लेख नहीं है उसके लिये "प्रत्यह लोक दृष्टैश्च शास्त्र दृष्टैश्च हेतुभि"। मनु ८।३ और भी—आर्यसमाज के प्रथम और तीसरे नियमों में "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर है और तीसरे नियम में "वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है"। वेद ईश्वरीय और संस्कृत में है अतएव संस्कृत भाषा की महनीयता महर्षि के हृदय में पूर्णरूप से थी। परन्तु आर्य जनों में संस्कृत भाषा का महत्व नहीं ही के बराबर है। ये स्वय तो वेदों का पढ़ना-पढ़ाना इत्यादि पाठ नित्य करते हैं तथापि स्वय तथा अपने बच्चों को संस्कृत नहीं पढ़ते-पढ़ाते। प्रच्छन्न रूप से अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य सभ्यता व्यवहार तथा आचरण में रत हैं।

ईसाई तथा मुसलमानों के प्रति महर्षि की सहानुभूति

प्राय· लोगों के हृदयों में यह भ्रम घर कर गया है कि महर्षि इन दो सम्प्रदायों से द्वेष रखते थे परन्तु ऐसी धारणा सर्वथा निर्मूल है। क्योंकि तेरहवें तथा चौदहवें समुल्लास की भूमिका में महर्षि स्वय लिखते हैं—"यदि एक मतवाले दूसरे मतवाले के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाडे मे गिर जाते हैं। ऐसा न हो इसलिये इस ग्रन्थ मे प्रचारित सब मतों का विषय थोड़ा थोड़ा लिखा है। "तेरहवें समु० की भूमिका से"।

सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वय रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्य-पन से बहि है। इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया है, उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुचाना हमारा मुख्य अर्थ है।

(चौदहवें समुल्लास की भूमिका से)

ऐसे उदार चेता महान् पुरुष के गुण गान में यदि हम चुप हैं तो हमारी कृतघ्नता है। जब तक हम महर्षि के विचारों का ससार में प्रसार नहीं करते तब तक ससार की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। आर्यजनों का परम कर्तव्य है कि अपने यश के मोह को त्यागकर महर्षि का कीर्तिध्वज ससार में फहरावें। इनके तप त्याग का आदर्श साहित्य रूप मे निर्माण कराकर ससार में वितरित करें। आर्य विद्वानों को प्रेरित करें कि छोटे-छोटे बुकलेट तैयार करें। जिन्हे लोग यात्रा आदि में पढ़ सकें। क्योंकि आज लोगों के पास धन और समय की कमी है। जनता अधिक मूल्य की पुस्तकें नहीं खरीद सकती और इस भौतिकता के जमाने मे न इसके पास इतना समय है कि वह बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ सके। इस दिशा में आर्यसमाज को रचनात्मक रूप से प्रगतिशील होना चाहिये।



ऋषि दयानन्द की सूझ

(ले०—श्री स्वामी इष्टानन्द जी गुरुकुल अयोध्या)

एक बार ऋषि दयानन्द अपने उपदेश आगरा बनारस आदि शहरो मे करने लगे तो यह प्रतीत हुआ कि हम मे अभी कुछ कमी है जो हमारे उपदेश सर्व साधारण पर कृतकार्य नही होते ऐसा सोचकर उपदेश का कार्य बन्द कर फरुखाबाद टोका घाट पर एक टूटी विसरात मे रहने लगे। उस समय स्वामी जी के पास केवल कोपीन के और कोई वस्तु न था। शहर के भक्तो ने तख्त गद्दे आदि का प्रबन्ध करने को कहा। स्वामी जी ने कुछ स्वीकार नही किया। एक ग्राम ठाकुर छज्जूसिंह जो नित आया करते थे स्वामी जी के पैर छूकर चले जाते थे, उन्ही से थोडा पुआल मगा लिया था। उसी मे घुसकर अपना जाडा काट लेते थे।

वे ठाकुर हमको जलालाबाद (शाहजहापुर) के उत्सव पर मिले थे। १०८ वर्ष आयु समाप्त कर मरे हैं। यह दृष्टान्त किसी जीवन चरित्र मे नही आया। वह बताते थे कि मैं बराबर जब तक स्वामी जी रहे जाता रहा और पैर छूकर वापस आता था। कभी-कभी मट्ठा ले जाता था, स्वामी जी उसको पी लेते थे। शहर के लोगो को स्वामी जी ने २ घण्टे सत्सग के दे रक्खे थे। वह ८ बजे से ६ बजे शाम को लोग आते थे। वेद भाष्य की चर्चा वही से प्रारम्भ हुई। धन भी एकत्रित होने लगा। माननीय सेठ पुरुषोत्तम दास तथा सेठ दुर्गाप्रसाद के पास धन जमा होता रहा। मेरे कान मे भी यह बातें सुनाई पडी। मनमे भी यह बात आई पर मैं दुखी हुआ और यह सोचने लगा यदि धन होता तो स्वामी जी की सहायता इस कार्य मे करता। इसी विचार से दूसरे दिन जब स्वामी जी के पास गया तो पैर छूकर बैठ गया। स्वामी जी ने पूछा, छज्जू आज क्या बात है? मैं रोने लगा, उसी रोवासी मे मैंने कहा—स्वामी जी मैं बड़ा गरीब हू, अन्यथा आपके इस महान् कार्य मे कुछ धन देकर सहायक बनता स्वामीजी ने सहज स्वभाव चाकू (यह फल काटने को आया था) उठाया और कहा भगत एक आख बेच दो ५००) ले लो तब मैने कहा स्वामी जी आख तो १०००) मे भी न दूगा स्वामी जी ने कहा फिर बताओ तुम गरीब कहा हो एक ही आख का सौदा है मे चुप रह गया तब स्वामी जी ने समझाया कि भगत मनुष्य पुरुषार्थ का त्याग देता है तो धन उसको त्याग देता है। वास्तव मे पुरुषार्थ की कमी ही गरीबी है, ईश्वर प्रदत्त गरीबी मनुष्य के अग प्रत्यग मे कुछ बाधा आ जाय उसका सही पता दूसरे करते है और करनी भी चाहिये। उस दिन से मै नित प्रात मे उठकर अपने पुरुषार्थ मे लग जाता कभी दुखी नही रहा। यह तो छज्जूसिंह की बात हुई पश्चात् धन की राशि बढ़ती गई सुना जाता है १ लाख २५ सहस्र रुपया उपर्युक्त महानुभावो के पास पडा रहा समाज से किसी कारण के पृथक् हो गये रुपया जैसा था वैसा पडा रहा बाद मे आर्यसमाज फरुखाबाद ने मुकदमा लडा और दोनो महानुभावो पर खातो के मुताबिक डिग्री हुई सुना जाता है कि फरुखाबाद ने उस रुपये से कन्या इन्टर कालेज फर्रुखाबाद मे लगा दिया। आगे महानुभाव विचार करें स्वामी जी ने वेदभाष्य किया बहुत सी पुस्तकें लिखी शास्त्रार्थ किये, उस समय देश की बडी शोचनीय दशा थी स्वामी जी को अपने कार्यो से तनिक भी अवकाश न मिलता था, अकेले स्वामी जी अकेले जग विरोधी था। स्वामी जी सत्य के पुजारी थे देश की दशा बिगड चुकी थी।

सत्यार्थ प्रकाश

ईश्वर की सत्ता को प्रथम समुल्लास माहि—
दूजे माहि शिक्षा की नीति निर्धारी है।
तीसरे मे ब्रह्मचर्य विधि को विधान लिखो—
बिना ब्रह्मचर्य नाहि गृहस्थ अधिकारी है।
चौथे समुल्लास माहि गृहस्थ को प्रवेश लिखि—
पाचवें बानप्रस्थ सन्यास सुखकारी है।

छठे मे राज धर्म शोधि के बतायो सबै—
वैदिक पद्धति जौन ऋषि ने निहारी है ॥१॥
सातवें बतायो ईश वेद को विचार "इष्ट"—
आठवें मे सृष्टि उत्पत्ति जतलाई है।
नवें माहि बन्ध मोक्ष विद्या औ अविद्या सबै—
दशमे मे आचार और भक्षाभक्ष समुझाई है।
एकादश हिन्दुन बीच फैले जो कुपथ मत—
तिनके सुधार हित लेखनी लगाई है।
द्वादश माहि जैन बौद्ध भूले जौन-जौन "इष्ट"—
ताको समुझावो, ग्रन्थ उनके देखाई है ॥२॥

तेरह मे ईसाई लोग मानत जौन-जौन ग्रन्थ—
तिनही की भूल देखि उनको बताई है।
ताहीभाति चौदह मे यवन मत की भूलन को—
शोधि-शोधि खोजि-खोजि उनको देखाई है।
अपनो मत इनके बीच तनिक हू लिखो है नाहि—
सत्य की कसौटी सत्यार्थ लिखि गाई है।
अपने मन्तव्य को स्वमव्यामन्तव्य माहि—
लिखिके देखायो पुनि सत्य अपनाई है ॥३॥

इसी भाति स्वामी जी की आज्ञानुसार अपनी सूझ को बढ़ाना चाहिये। हम यदि स्वामी जी के आदेश को नही मानते, और आलसी प्रमादी होकर अपने को नही सुधारते तो ऋणी रहेगे। हम प्रतिज्ञा करें—सत्यार्थ-प्रकाश ऋग्वेदादि भूमिका जीवन चरित्र, प्रति वर्ष एक आवृत्ति करे, यही तीनों सिद्धातत्रयी हैं।

●

विश्वकर्मा वंशज बालकों को ७०००) का दान

श्री भवानीलाल गज्जूलाल जी शर्मा स्थिर निधि



१—विश्वकर्मा कुलोत्पन्न श्रीमती तिज्जोदेवी-भवानीलाल शर्मा ककुहाल की पुण्यस्मृति में श्री भवानीलाल जी शर्मा अकबरपुर जिला कानपुर वर्तमान अमरावती (विदर्भ) निवासी ने श्री विश्वकर्मा वंशीय बालकों के हितार्थ ७०००) की धनराशि सभा को समर्पण कर बी०जी० शर्मा स्थिर निधि की योजना निम्नलिखित नियमानुसार भाद्रपद स० २०१४वि० सितम्बर १९५७ ई० को स्थापित की।



२—इस मूलधन से वार्षिक ब्याज जो कुछ प्राप्त होगा, उसे उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा विश्वकर्मा वंशज गरीब, असहाय किन्तु होनहार बालक बालिकाओं के शिक्षण मद में व्यय करती रहेगी।

३—उक्त निधि से आर्थिक सहायता लेने वाले इच्छुकों को मास जुलाई में ।) के स्टाम्प भेजकर सभा से छपे फार्म मगाकर भरकर भेजना आवश्यक है।

—मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश



स्वामी जी के जीवन पर आधारित एकांकी—

मृत्यु को जीतने वाले ऋषि

(ले०—श्री डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए०, पी०एच० डी०)

[पृष्ठभूमि–सवत १९४० के कार्तिक मास की अमावस्या और मगलवार का दिन है

साय के पांच बजा चाहते है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती मृत्युशय्या पर पडे हैं । कुछ भक्त, श्रद्धालु और शिष्य समीप बैठे है, कुछ खडे हैं । सबके चेहरे पर मानसिक व्यथा और आन्तरिक विक्षोभ के चिह्न हैं । सब परेशान से नजर आते हैं । स्वामी जी के नेत्र मुदे हुये हैं ।]

एक भक्त–(परेशान) उफ् ! कैसी दुर्वह पीडा है । सबको प्रकाश देने वाली इस महान् आत्मा को भी स्वार्थी ससार ने न छोडा कैसी विडम्बना है ससार अपने क्षुद्र स्वार्थों के पीछे कैसा अन्धा हो रहा है ? भला स्वामी जी ने किसी का क्या बिगाडा था ।

दुसरा भक्त–(क्लान्त विस्मित स्वर मे) मैं तो यह आश्चर्य करता हू कि उस रसोइया की भी कैसी पत्थर की छाती थी जिसने स्वामी जी की हत्या के लिये भोजन मे बारीक काच पीसकर खिला दिया उफ् ! मनुष्य की हैवानियत

तीसरा भक्त–(ऋषि के शरीर को देखते हुये) हाय हाय ऋषिवर के सारे शरीर पर विष के छाले उभर आये हैं ।

पहला भक्त–(रोते हुये) सांस • रुक •रुक• कर आ रही है । हे ईश्वर,क्या बडे महात्माओ को भी मृत्यु से मुक्ति नही है

दूसरा भक्त–जलन से स्वामी जी का सारा शरीर जल रहा है । अगर दूसरा मामूली व्यक्ति होता तो कैसी बुरी तरह छटपटाता, चीखता चिल्लाता···मोह बन्धन उसे अशान्त करता पर ऋषि ऋषि की आत्मा शरीर को छोडने की तैयारी मे है ·· परन्तु वे चुपचाप आराम से लेटे हुये हैं ।

तीसरा भक्त–मृत्यु के इन क्षणो मे ही मनुष्य के सयम, एकाग्रता और इन्द्रिय निग्रह की परीक्षा होती है मृत्यु तो सभी को आती है जो आया है उसे एक दिन जाना ही है, पर कोई तडप-तडप कर बिलख-बिलख कर मरता है, कोई शातिपूर्वक इस नश्वर शरीर को त्यागता है । इस शान्तिपूर्वक मरने का नाम ही मृत्यु को जीतना है ।

पहला —ऋषि को पानी पिलाना चाहिये । गगाजल का बर्तन इधर लाओ शायद इससे इनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी (एक भक्त मेज पर से गगाजल मिश्रित जल लाता है)

पहला —(ऋषि के समीप जाकर) महाराज महाराज आपकी तबियत कैसी है ? कुछ जल ले लीजिये । [ऋषि धीरे धीरे नेत्र खोलते है । मृत्यु की काली परछाहीं नेत्रो से चमकती है, पर ऋषि का आत्म-विश्वास अडिग है । उन्हे अपने निकलने हुए प्राणो का बोध है । वे जानते है कि कुछ ही देर मे मैं इस नश्वर शरीर का परित्याग करने वाला हू । उन्हे यह भी ध्यान है कि व्यर्थ ही उनके भक्त भी उनकी मृत्यु से परेशान न हो ।]

ऋषि —(क्षीण स्वर मे) अच्छी है । प्रकाश और अन्धकार का मिलाप है ! तुम मेरे जाने से परेशान न होना आर्यसमाज की ज्योति अखण्ड रहनी चाहिये ।

पहला भक्त—(शान्ति दिलाते हुए) महाराज आप चिन्ता न करें । हमारे लिये कोई सन्देश दीजिए ....|





ऋषि—(लडखडाते स्वर मे) हा मरने से पूर्व कुछ कहना चाहता हू मेरे शिष्यो जब आपस मे भाई-भाई लडते है तो तीसरा विदेशी आकर पच बनता है क्या तुम महाभारत की बातें भूल गये ? देखो, आपस की फूट से कौरव, पाडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग हम भारतवासियो के पीछे लगा है न जाने वह भयकर राक्षस कभी छूटेगा व आर्यों को सब सुखो और उन्नति से छुडा-कर सागर मे डुबो देगा उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग मे आर्य लोग अब तक भी चलकर दुख बढा रहे हैं परमेश्वर कृपा करे हमे छूतछात, जाति-पाति,व्यर्थ के आडम्बरो और इस पारस्परिक फट जैसे राज रोगो से तुम सब आर्यों की रक्षा करे ।"

[थक कर नेत्र मूद लेते है । सब भक्त विस्मित होकर सोचने लगते हैं ।]

पहला भक्त—ऋषि की चिन्तन शक्ति मृत्यु के मुँह मे भी उतनी सशक्त है । यह बातें याद रखने की हैं ।

दूसरा भक्त—स्वामी जी फिर नेत्र खोल रहे हैं । वह कुछ बोल रहे है ।

ऋषि—(क्षीण दुर्बल स्वर मे) कमरे के सब द्वार और खिडकिया खोल दो । तुम सब मेरे पास खडे हो जाओ अब मैं जाता हू ।"

[वे अपनी दृष्टि कमरे के चारो ओर घुमाते हैं । फिर बडे गभीर स्वर मे वेद मन्त्रो का पाठ करते हैं । उनके स्वर मे अब भी आकर्षण है । वेद मन्त्रो का गान करके वे चुप हो जाते हैं । यकायक बैठ जाते हैं ।]

एक भक्त—(आश्चर्य से) अरे, इस कमजोरी मे भी ये तो बैठ गये ।

दूसरा भक्त— (विस्मित) समाधि लग गई है । बिना हिले डुले सोने की मूर्ति की तरह ये समाधि मे बैठे है ।

तीसरा भक्त—मृत्यु को जीत लिया है ।

[धीरे-धीरे समाधि भग होती है । अब आखरी घडी आ गई है । आत्मा शरीर को त्याग अनन्त की ओर प्रस्थान कर रही है ।]

स्वयं बुझ गया, दीप जग के जला गया

सो रहा था दिव्य देश भारत यहा पै जिसे,
वचते विदेशी आय तब चन्द्र चाट मे,
अज्ञान घमण्ड और भेद-भाव बडा भारी,
भ्रम से ही मानता था अपने को ठाठ मे,
'लक्ष्मी' वेद-मित्र तब अस्ताचल पहुचा जा,
घटा-टोप तम छाया भारत के घाट मे ।
ऋषियो के सरताज दयानन्द महाराज,
उपकार हेतु आये भारत के बाट मे ।।
छूत-छात दूरकर बैर को विसार कर,
अज्ञान मिटायकर जग को जगा गया,
ईश को बतायकर प्रीति को बढ़ाय कर,
देवी देवता के सब भूत को भगा गया ।
'लक्ष्मी' वेद मित्र और शिक्षा का प्रसार कर,
दिव्य दयानन्द ऋषि, नारी को उठा गया,
देश की भलाई कर, दीपावली पायकर,
स्वय बुझ गया, दीप जग के जला गया ।।

—विजयलक्ष्मी आर्य बी०ए०
आर्यनगर बदायूं

पहला भक्त—(चकित हो) ऋषि ने फिर आँखे खोल दी है । वे फिर कुछ कह रहे हैं । ध्यान से सुनो

[सब शान्त और चुप ! ऋषि बोलते हैं]

ऋषि—(दिव्य ज्योति की किरणें छोडते हुए) हे दयामय हे सर्वशक्तिमान् तेरी यही इच्छा है । परमात्मदेव तेरी इच्छा पूर्ण हो आर्यसमाज युग युग तक जनता को प्रकाशित करे अहा ! मेरे परमेश्वर ! तूने अच्छी लीला की ! ओ ३ म् ! ओ ३ म् ओ ३ म् !

[इन शब्दो के साथ ही ब्रह्मर्षि परमधाम को जाने के लिये अपने आत्मिक प्राणो को स्वर्ग की सीढ़ी पर चढाते हैं और फिर श्वास को कुछ देर तक भीतर रोककर 'ओ ३ म्' कहते हुए एक बार ही प्राणो को निकाल देते हैं । सब भक्त रोते हैं । वातावरण विक्षुब्ध हो जाता है । हवायें भयकर चीत्कार करती हैं । शाम के तारे आकाश मे ऋषि की आत्मा का स्वागत करते हैं ।]





ऋषि दयानन्द और स्त्रियों का वेदाधिकार

[श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा "पथिक" बी ए साहित्यालंकार, कानपुर]

पौराणिक वर्ग स्त्रियों का वेदाधिकार नहीं मानता है। उन्होंने शूद्र व स्त्रियों को एक कोटि में रखकर दोनों को वेद से वंचित कर दिया है। बौद्ध व जैन मत के मूलोच्छेद करने वाले आद्य श्री शंकराचार्य ने भी 'वेदान्तदर्शन' के 'शारीरिक भाष्य' में दोनों को वेदों से वंचित कर दिया है। यही परिस्थिति अन्य साम्प्रदायिक आचार्यों की भी है। वेद-क्रान्तदर्शी महर्षि दयानन्द जी ने इस विचार की प्रबल आलोचना अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" में की है और दोनों को स्पष्ट वेदाधिकार की चर्चा की है।

महर्षि दयानन्द जी यजु० २६।२ के आधार पर मानवमात्र को वेद श्रवण व पढने का अधिकार बतलाते हैं। वास्तव में महर्षि दयानन्द जी का सिद्धान्त नितान्त उचित है। उन्होंने "स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्" की धज्जी उड़ा दी है।

उपनिषद् काल में गार्गी ब्रह्मवादिनी का नाम आता है जिसने राजा जनक की राज्य सभा में ऋषि याज्ञवल्क्य से ब्रह्म विषय पर शास्त्रार्थ किया था। इसका विस्तृत वर्णन "बृहदारण्यकोपनिषद" में है। इसी प्रकार महाभारत में 'सुलभा' का नाम आता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों का साक्षात्कार ब्रह्मवादिनी स्त्रियों ने किया था जो मन्त्रद्रष्ट्री कहलाती थीं उनमें गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, ब्रह्मजाया जुहू, अगस्त्य की बहिन अदिति, इन्द्राणी, इन्द्र माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शश्वती, नद्य, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री, सूर्या, सावित्री, ममता प्रभृति का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

रोमशा ऋ० मण्डल १ सूक्त १२६, मंत्र ७, लोपामुद्रा ऋ० म० १ सू० १७९ म० १-६, नद्य ऋ० म० ३ सू० ३३ म० ४, ६, ८, १०, ममता ऋ० म० ६ सू० १०, मंत्र २, विश्ववारा ऋ० म० ५, सू० २८ म० १-६, शश्वती ऋ० म० ८ सू० १ मंत्र ३४, अपाला ऋ० म० ८ सू० ९१, मंत्र १-७, घोषा ऋ० म० १०, सूक्त ३९, म० १-१४; यमी ऋ० म० १०, सू० १०म० १, ३, ५, ७, ११, १३, अदिति ऋ० म० १० सू० ६० म० ६, इन्द्राणी ऋ० म० १० सू० ८६, शची (पौलोमी) ऋ० म० १०, सू० १४५, म० १-६, सूर्या ऋ० म० १० सू० ८५, म० १-४७, उर्वशी ऋ० म० १०, सू० ९५, मंत्र ४ १८, सरमा (देवशुनी) ऋ० म० १०, सू० १०८, दक्षिणा ऋ० म० १० सू० १०७ म० १-११, वाक् ऋ० म० १० सू० १२५, मंत्र १-८, ब्रह्म जाया जुहू ऋ० म० १०, सू० १०९ म० १-७, रात्रि ऋ० म० १०, सू० १२७ म० १-८, श्रद्धा (कामायनी) ऋ० म० १०, सू० १५१, म० १५, गोधा ऋ० म० १०, सू० १३४, म० ६, ७, इन्द्रमाता ऋ० म० १०, सू० १५३ म० १-५, सार्पराज्ञी ऋ० म० १० सू० १८९ म० १-३ की ऋषिकायें हैं।

स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण का भी पूर्ण अधिकार है। बिना उपनयन संस्कार के वेद मन्त्र पढ़ने का अधिकार ही नहीं है। अतः उपर्युक्त स्त्रियों का भी उपनयन सिद्ध हो जाता है।

सम्प्रति समाज में स्त्रियों में उपनयन संस्कार का प्राय अभाव है। आर्यसमाज को ध्यान देना चाहिये। महर्षि दयानन्द के महान् उपकारों में सबसे अधिक महत्व स्त्री जाति को वेदाधिकार दिलाने का है। इसकी गम्भीरता को हमें सदैव स्वीकार करना चाहिये।



ऋषि दयानन्द वचनामृत

★ प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राज पुरुषों को जाने।

★ सब कर्मों का यथावत् फल देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

★ जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी को भी असत्य सिद्ध करने मे प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मत को नहीं प्राप्त हो सकता।

★ मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य मे झुक जाता है।

★ जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है। वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानिमात्र करता रहता है वह पशुओं का भी बड़ा भाई है।

★ आर्य उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य व्यवहारो मे सब से अधिक हो।

★ जो जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

★ ससार मे सुखी दुखी अपने अपने पुण्य पापो के कारण हैं।

★ माता-पिता तथा अध्यापक ईर्ष्या द्वेष से विद्यार्थियों का ताडन न करें।

(क्रमश.)

★ जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है।

★ जो तू मैं अकेला हूं ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखने वाला मुनि स्थित है, उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।

★ जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे।

★ जब राजा न्यायासन पर बैठ कर न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे।

★ दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं लगता।

★ सबदा शरीर और आत्मा दोनो के बल को बढ़ाते रहना चाहिए।

★ 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

★ ईश्वर को जो मनुष्य न जानते व मानते हैं और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमति सदा दुःख सागर में ही डूबे रहते हैं। इसलिए सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

★ अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर।

★ आत्मा के भीतर से बुरे काम के करने में भय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।

★ जिसने जैसा जितना बुरा किया हो उसको उतना वैसा ही देना चाहिये उसी का नाम न्याय है।

(क्रमशः





★ परमेश्वर व्यापक और जीव
-य है।

★ जैसे माता पिता अपने सन्तानो
कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे
रमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा
ह वेदों को प्रकाशित किया है जिससे
य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूट
विद्या विज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त
र अत्यानन्द मे रहे और विद्या तथा
की वृद्धि करते जायें।

★ जो मनुष्य विद्वान् सत्सगी
र पूरा विचार नहीं करता वह सदा
जाल मे पडा रहता है। धन्य वे पुरुष
: सब विद्याओ के सिद्धान्तो को
ने हैं और जानने के लिये परिश्रम
हैं।

★ पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं। ((क्रमशः)

★ संसार में तो सच्चा झूठा दोनों सुनने में आता है परन्तु उसको विचार से निश्चय करना अपना काम है।

★ जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

★ मेरा मन शिवशंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियो के अर्थ कल्याण का संकल्प करने हारा होवे। किसी की हानि करने की इच्छा युक्त कभी न हो।

★ मेरा मन इन्द्रियो को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ मे सदा चलाया करे। ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये।

★ अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।

★ जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं, वे महामूर्ख हैं।

★ धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है।

★ जो कोई गुड मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड प्राप्त व उसका स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र व विलम्ब से गुड मिल ही जाता है।

★ किसी से वैर न रक्खे।

★ राग द्वेष छोड भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे।

★ जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है।

★ परोपकार के लिये सत्पुरुषों का का तन, मन, धन होता है।

★ जो भक्त ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर मे है।

★ ईश्वर भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता।

★ जिनको विद्या नहीं होती वे पशु के समान यथा तथा बडबडाया करते हैं जैसे सन्निपात ज्वर युक्त मनु[ष्य] अण्ड बण्ड बकता है वैसे ही अविद्या[वान] के कहे व लेख को व्यर्थ समझना चाहि[ये]

★ कर्म करने मे जीव स्वतन्त्र अ[ौर] पाप के दुखमय फल भोगने मे परत[न्त्र] होता है। (क्रमश



★ जिस कुल मे स्त्री से पुरुष और
ष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी
ऽ मे आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास
ती है।

★ जल से बाहर के अग, सत्याचार
मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से
आत्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती

★ पाखण्डी, वेद विरुद्ध आचरण
ने वालों, बंडालवृत्ति, शठ और
कों का वाणी मात्र से सत्कार न करें।

★ ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य,
ल, अतिथि, बालक, वृद्ध, रोगी, वैद्य,
न्धी, मित्र, माता, पिता, बहिन
, पत्नी, पुत्री और भृत्य से कभी
ा न करें।

★ जो दुष्ट अधर्मी हैं उनसे उपेक्षा
त् द्रोह छोडकर उनके सुधारने का
किया करे।

★ जो अविद्या के भीतर खेल रहे
का धीर और पंडित मानते हैं वे
गति को जाने हारे, मूढ जैसे अन्धे
छे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं,
दुखों को पाते हैं।

★ दुष्ट व्यसन मे फसने से मर
अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी
है वह अधिक जियेगा तो अधिक
क पाप करके नीच नीच गति अर्थात्
-अधिक दुख को प्राप्त होता
।

★ बुद्धिमान, कुलीन, शूर, वीर,
दाता, छिपे हुये को जानने हारे
धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे
, जो ऐसे को शत्रु बनावेगा वह दुख
।

(क्रमशः)

★ छल, कपट और कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये।

★ मनुष्य का आत्मा उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म, स्वभाव, से भूषित होता है, जेवरों से नहीं।

★ जो धर्माचरण से रहित है, वह वेद प्रतिपादित धर्मजन्य सुख रूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है, वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।

★ जो पुरुष अर्थ और काम मे नहीं फसते हैं, उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

★ जैसा अपने को सुख-प्रिय और दुख अप्रिय है, वैसा ही सर्वत्र समझ लेना।

★ ऋषि-कृत ग्रन्थ पढ़ने चाहिए, मनुष्य कृत नहीं।

★ विद्या विद्वान के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, मूर्ख के लिये नहीं।

★ दुष्टो को दण्ड देना चाहिये और श्रेष्ठो का पालन करना चाहिये।

★ वेद ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्त और स्वत प्रमाण है।

★ सब स्त्री और पुरुषों को वेद पढ़ने का अधिकार है।

★ चाहे लडका लडकी मरण पर्यन्त क्वारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का कभी विवाह न होना चाहिये।

★ वर्ण व्यवस्था, गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए।

(क्रमशः)

★ परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवो को सत्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

★ श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् के देव और दुष्टो के दस्यु मूर्ख नाम होने से, आर्य और दस्यु दो नाम हुए।

★ दुष्टात्माओं से न प्रीति करे, न वैर करे। सकलनकर्ता—
श्री कृष्णदत्त आयुर्वेदालकार, फैजाबाद

आर्यसमाज के संस्थापक—

महर्षि दयानन्द सरस्वती



जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगे,
जिसका साहस हेर, विघ्न, भय, संकट भागे।
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी,
ऐसे प्रबल विचार सहित विचरा जो योगी।
उस दयानन्द ऋषि राज का, प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु 'शंकर' आर्यसमाज का वैदिक बल गौरव बढ़े।

—स्व० श्री नाथूराम शंकर शर्म्मा 'शंकर'

ओ३म्
गुरुकुल काँगड़ी
साप्ताहिक आर्य्यमित्र आर्यसमाज अंक

वार्षिक मू० ८) विदेश में १ पौंड] [इस प्रति का ५० न.पै.

वर्ष ६६ | लखनऊ रविवार चैत्र २३ शक १८८६, अ० चैत्र कृ० ३० वि० २०२१ १२ अप्रैल सन् १९६४ ई०, दयानन्दाब्द १४०, सृष्टि संवत १९,७२,९४,९०६४ | अङ्क १३-१४

'आर्य्य समाज' से

हे आर्य्यसमाज, ज्योति का दाता तू है,
सारी उन्नति का ज्ञान-प्रदाता तू है।
तूने ही फिर से सोता देश जगाया,
जन-जनता को कल्याण-मार्ग दिखलाया।

ऋषि दयानन्द से प्राण-प्रतिष्ठा पाई,
तुझको सत्यार्थ-प्रकाश मिला सुखदाई।
तूने ही स्वावलम्ब की विधि बतलाई,
सब भ्रान्त भावनाओं से मुक्ति दिलाई।

विधवा, अनाथ, अस्पृश्यों का उद्धारक,
सद्धर्म्म-प्रवर्तक समता स्रोत प्रसारक।
महिलाओं को सम्मान दिलाने वाला,
'मानवता' का पीयूष पिलाने वाला।

सद्शिक्षा का आदर्श महत्त्व दिखाया,
वैदिक संस्कृति का सौरभ सुखद उड़ाया।
हो गया प्रभावित सारा देश हमारा,
भारत के बाहर भी विवेक विस्तारा।

गोकुल पर करुणामृत बरसाने वाला,
पाखण्ड-वाद पर वज्र गिराने वाला।
मादकता का दुर्दर्प दबाने वाला,
आमिष-भक्षण को पाप बताने वाला।

तुझ को न विदेशी शासन कभी सुहाया,
सर्वदा स्वदेशी सत्ता का गुण गाया।
सबसे पहले 'स्वराज्य'–सन्देश सुनाया,
निज भाषा, भूषा, वेश, देश अपनाया।

'बापू' के तप ने देश स्वतन्त्र बनाया,
फिर से स्वराज्य का सुन्दर सूर्य्य उगाया।
वह पराधीनता-पाश कट गया सारा,
अब तो अपने पर है अधिकार हमारा।

है आज हमारा राज्य, हमारा बल है,
यह बल नित बढ़ता रहे, सुदृढ़ सबल है।
आत्मा, मन, और शरीर बलिष्ठ बना दे,
'मानवता' का सच्चा आदर्श दिखा दे।

वैदिकता की जगती पर ज्योति जगा दे,
भारत-भू पर पहला-सा ही युग ला दे।
सब बनें धीर, धर्म्मज्ञ, पाप का क्षय हो,
सर्वत्र अहिंसा, सत्य धर्म्म की जय हो।

—हरिशंकर शर्म्मा
लोहामण्डी, आगरा

सम्पादकीय

स्थापना-दिवस की प्रेरणाएं

आर्यसमाज स्थापना दिवस का आर्यसमाज के लिये वही महत्व होना चाहिये जो किसी व्यक्ति के लिये उसके जन्म दिवस का होता है। १८७५ मे आर्यसमाज की स्थापना हुई इस प्रकार उस दिन स्थापित यह समाज आज ८९ वर्ष का हो चुका है। इस जीवनावधि में आर्य समाज ने जो शानदार कार्य किया है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता, आर्यसमाज को गौरव दिलाने के लिये जिन पूर्वजों ने अपना समर्पण और सहयोग दिया आज के हम लोग उन सभी के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलियां अर्पित करते हैं। शाब्दिक श्रद्धाजलियां देने मात्र से ही हमारा कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता हमे उनके पद-चिह्नों पर चलकर आर्यसमाज को आगे बढ़ाकर उनके प्रति व्याव-हारिक श्रद्धा व्यक्त करनी चाहिये।

आर्यसमाज के अतीत की स्वर्णिम झांकियां देखने आर्य पूर्वजों के तप पूत जीवन व्यवहारों की चर्चा करने का आज हम जरा भी अवसर नहीं निकाल पाते। जब हम स्वय ही उन्हें भुला रहे हैं तब आगे आने वाली पीढ़ी से यह आशा करना कि वह आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ायेगी एक क्लिष्ट कल्पना ही होगी। आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज स्थापना दिवस के अवसर पर प्रत्येक समाज मे उसके इतिहास का सिंहावलोकन किया जाय। स्थानीय पूर्व कार्यकर्ताओं का स्मरण किया जाय और नवीनो को प्रोत्साहित किया जाय। स्थान-स्थान पर आगामी वर्ष के लिये कार्यक्रम निर्धारण का कार्य भी इस पवित्र दिवस का एक प्रमुख अग होना चाहिये।

आर्यसमाज एक विश्ववादी सगठन है पर इस विश्व सगठन की जड़ें स्थानीय सगठन हैं। इस दृष्टि से स्थानीय विकास अपना विशेष महत्व रखता है। लेकिन स्थानीय विकास एव प्रदेशीय विकास को उतना ही महत्व मिलना चाहिये जिससे आर्यसमाज के विश्ववादी स्वरूप को आघात न पहुचता हो। आशा है आर्यसमाज स्थापना दिवस पर आर्यजन इस दिशा मे विचार करेंगे।

आर्यसमाज के विश्ववादी स्वरूप को विकसित करने की दृष्टि से आज हमें विचार करना चाहिये कि क्या आर्यसमाज ने एक सगठन रूप में भारत की सीमाओं और प्रवासी भारतीयों के क्षेत्रो से आगे बढ़कर मानव समुदाय के अन्य वर्गों तक पहुचने का यत्न किया है। यदि हमने अभी तक इस दिशा मे व्यापक प्रयत्न नहीं किये हैं तो उसके क्या कारण हैं और अब हमे इस ओर क्या कदम उठाने चाहिये। आज विश्व एक इकाई रूप में सगठित हो चुका है और हम देखते हैं कि प्रतिदिन अन्तरराष्ट्रीय सस्थाओ के रूप मे अनेक सस्थाएं देश-विदेशों मे अपने प्रतिनिधि भेजकर विश्व समस्याओं के समाधान मे अपना योगदान देती हैं। आर्यसमाज जिसका जन्म ही दैशिक सीमाओ को लांघकर ससार उपकार के व्यापक आधार पर हुआ है, अभी तक विश्व समस्याओं के प्रति विश्व-सगठन के रूप मे आगे नहीं आ सका है। हमे अपनी इस कमी को अच्छी प्रकार अनुभव कर लेना चाहिये और उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। आर्यसमाज के सगठन का जो रूप आज विद्यमान है, उस मे यद्यपि सार्वदेशिक स्वरूप कल्पित है परन्तु वास्तव में प्रबन्ध की दृष्टि से वह भारत की समाजो का केन्द्रीय सगठन अधिक है। विदेश के नाम पर प्रवासी भारतीयों द्वारा निर्मित आर्य प्रतिनिधि सभाओ का सीमित प्रति-निधित्व उसमे है। अपने इस स्वरूप के कारण सार्वदेशिक सभा विश्व-प्रचार पर बहुत कम ध्यान दे पाती है। उस की सारी शक्ति भारत की सीमाओं मे लगी रहती है। हमारी सम्मति मे आर्यसमाज के सवैधानिक ढाचे मे ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिये कि एक अखिल भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा बन जाय और वही भारत की समस्याओं को अपने हाथ मे ले और सार्वदेशिक सभा विश्व के रूप में विश्व को नैतिक और विश्वशान्ति एव धर्म प्रचार सम्बन्धी समस्याओ पर विचार एव आन्दोलन करे। आर्यसमाज स्थापना दिवस के शुभअवसर पर सगठन के इस पक्ष पर भी गम्भीर विचार होना चाहिये।

आर्यसमाज का उद्देश्य महान् है, लक्ष्य भी महान् है, पर महान शब्द का यह अर्थ नहीं कि हम योजनाबद्ध कार्य न करें। अभी तक हमारी नीति यथाअवसर की रही है, अब समय आ गया है कि हम अपने कार्यक्रम की सफलता के लिए एक वर्षीय, नौ वार्षिक, पचवर्षीय कार्यक्रम अवश्य स्वीकार करें। बिना इसके सगठन में स्थिरता और दृढ़ता

आर्यसमाज स्थापना दिवस पर—

हमारा संकल्प !



श्री मदनमोहन जी वर्मा
अध्यक्ष विधान सभा उ०प्र०

आर्यसमाज स्थापना दिवस हमारे सामने एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त लाकर प्रस्तुत कर देता है। आर्यसमाज की स्थापना हुई, मानो हमारे लिये ऐसा पथ या मार्ग प्रशस्त हो गया कि जिसको ग्रहण करके हम अपने जीवन को समुन्नत व उत्कृष्ट बना सकते हैं। किन्तु केवल इतना कह देने से न हमे संतोष होना चाहिये और न यह भ्रम ही होना चाहिये कि हम वस्तुत आर्यत्व को प्राप्त हो गए हैं। यह स्मरण रहे कि प्रति क्षण जो आलस, प्रमाद अथवा प्रलाप मे व्यर्थ व्यतीत होता है, उसी अनुपात मे मानव उद्देश्य की सफलता की दृष्टि से, जीवन अल्पीकृत होता है। मेरा निश्चित मत यह है कि आर्यसमाज का अस्तित्व उस समय सार्थक हो सकता है जब कि वह अपने मन्तव्यों को पूरा करे।

इस समाज का प्रथम तथा सर्वोत्कृष्ट मतव्य है कि प्रत्येक सदस्य के हृदय मे ईश्वर के प्रति असीम और अगाध श्रद्धा की भावना जागृत हो। दूसरा, उस सस्था के प्रत्येक सदस्य में सदाचरण, सत्य विचार और सच्चरित्र का सर्वांगीण सचार हो। तीसरा, प्रत्येक कृत्य मे जनहित और देशभक्ति का लक्ष्य, इतर सर्व आकांक्षाओ और महत्वाकांक्षाओ की अपेक्षा, सर्वोपरि रहे।

यह सब उद्देश्य हमारे नियमो मे निहित हैं। प्रत्येक आर्यसमाज का कर्तव्य है कि इस शुभ अवसर पर वह पिछले वर्ष की सफलताओं व विफलताओ पर दृष्टिपात करे, उन गुणों को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करे कि जिससे वह पिछले वर्ष वंचित रहा हो और ऐसे कार्यक्रम निर्धारित करे कि समाज के सदस्यों के अन्दर व्यर्थ वादविवाद की भावनाओं का ह्रास हो तथा वे रचनात्मक कार्यों मे सन्नद्ध हों कि जिसके परिणामस्वरूप आर्यसमाज का विकास व विस्तार हो तथा जनहित और देशहित निष्पन्न हो।

—मदनमोहन वर्मा प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा, उ०प्र०, लखनऊ

का अभाव बना रहेगा। आर्यसमाज की आवश्यकता स्थायी आवश्यकता है। ऐसा कभी न होगा जब हमारी आवश्यकता न होगी इसलिये अदम्य आत्मविश्वास के साथ स्थापना-दिवस का यही सन्देश है कि हम कदम बढ़ाते चलें, "चरैवेति चरैवेति, चरैवेति"। ❀

अपनी विवशता

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को आर्यसमाज स्थापना दिवस के साथ संवत् २०२१ का समारम्भ होता है, जिसके उपलक्ष में 'आर्यमित्र' अपना 'आर्यसमाज अंक' भेंट करता है। इसमे आर्यसमाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य का कहाँ तक समावेश हो पाया है इसका निर्णय तो पाठक ही करेंगे, किन्तु आर्यसमाज के 'संगठन पक्ष' का विवरण समाजों द्वारा समय से प्राप्त न हो सकने से इस अंक में समन्वित न हो सका, आशा है इसके लिए अवश्य क्षमा करेंगे। यह कमी आगामी विषय होगा। अमुद्रित लेख तथा छपाई आदि की त्रुटियों के लिए सज्जन-वृन्द से क्षमा याचना ही की जा सकती है। कृपालु लेखकों के प्रति धन्यवाद न करना कृतघ्नता होगी।

—डा० राजेन्द्र, प्रबन्ध-सम्पादक

आर्यसमाज-आधार तथा संगठन !

[ले०—श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री एम०पी०, मुख्य उपप्रधान सभा, उ प्र]

मानव शरीर के प्रत्येक ऐच्छिक कार्य-कलाप का आधार जैसे कोई मानसिक प्रक्रिया होती है उसी प्रकार ससार के प्रत्येक सामाजिक संगठन का भी कोई दार्शनिक आधार होता है और उसकी सम्पूर्णता के अनुपात से ही कार्य-कारण सरणि द्वारा कार्य की पूर्ति होती है। उदाहरणार्थ ससार के प्रत्येक मत और सम्प्रदाय—हिन्दू,मुसलमान,ईसाई, कम्युनिस्ट आदि के दार्शनिक आधार—पुराण, कुरान, बाइबिल, कैपिटल आदि ग्रन्थ हैं। उनके गुण दोषों के अनुसार ही उनके अनुयायी भी होते हैं।

आर्यसमाज का मूलाधार वेद है, जो ससार के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं, और जो बाह्य साक्षी में मतभेद तथा संशय होने पर भी अन्त साक्षी के अनुसार मानुषी सृष्टि के आदि से वर्तमान हैं —

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तास्मद आयत ॥ऋक०—यजु०॥

उसी सर्वपूज्य परमात्मा से ऋक्, साम, अथर्व और यजु उत्पन्न हुए हैं। आज विज्ञान द्वारा भी अध्यात्म विद्या की परीक्षण द्वारा सत्यता सिद्ध हो चुकी है, जिसमे मैस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म आदि वैज्ञानिक सचाइयों का आविर्भाव हुआ है। इनके द्वारा एक मनुष्य अपनी प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा दूसरे को अपना ज्ञान दे सकता और उससे कार्य करवा सकता है। इसी प्रकार अनन्त शक्तिशाली परमात्मा भी अपनी ईक्षण शक्ति से ज्ञान देता है। तर्क भी यही सिद्ध करता है कि जैसे बिना सूर्य के स्वस्थ नेत्र भी नहीं देख सकते, उसी प्रकार मानव बुद्धि भी बिना सहायता के स्वय सब कुछ उद्भासित नहीं कर सकती है अत सृष्टि के आदि में ज्ञान-बीज का प्रकाशित होना आवश्यक है।

इस आदि स्रोत से उद्भूत होकर वैदिक ज्ञान का चतुर्दिक प्रसार हुआ। देश और काल-भेद से सर्वत्र उसका प्रभाव पड़ा परन्तु अन्तत उस स्रोतस्विनी की शाखायें देशकालिक प्रभाव से कालान्तर में रूपान्तरित हो गईं, किन्तु उसकी मूलधारा शैवाल आवृत होने पर भी अपने उदगम-स्थल पर निर्मल बनी रही। उसकी खोज का श्रेय वर्तमान युग में आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती को है जिनके पवित्र मानस-पटल पर आदिगुरु ने प्रेरणा की रेखायें अंकित कीं।

अपनी शिक्षा-दीक्षा से निवृत्त होकर महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु दण्डी विरजानन्द के आदेशानुसार अवैदिक मतमतान्तरों के अन्धकार को ध्वस्त करने के लिए भारत का दौरा किया और शास्त्रार्थों का क्रम बांध दिया। इस प्रकार देश के श्रेष्ठ जन से सम्पर्क स्थापित कर बम्बई मे चैत्र सुदी प्रतिपदा स० १९३२ अर्थात् ७ अप्रैल १८७५ को प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की तथा आर्यसमाज के २८ नियम बनाए। इन प्रारम्भिक नियमों में उद्देश्य, नियम, उपनियम सभी का समावेश है। आर्यसमाज के वर्तमान संक्षिप्त दस नियम लाहौर में पीछे से बने। इसके अनन्तर आर्य समाज का देश मे विस्तार होता रहा तथा आर्य प्रतिनिधि सभाएं बनती रहीं। अन्ततोगत्वा सार्वदेशिक सभा की स्थापना सन १९०८ मे हुई।

महर्षि दयानन्द की देश देशान्तरों में भी वैदिक धर्म के प्रचार की इच्छा थी जिसके अनुसार उन्होंने श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को विलायत भेजा था। विदेशों में सर्वप्रथम आर्यसमाज की स्थापना लन्दन में हुई थी, उसके पश्चात् अफ्रीका आदि ब्रिटिश उपनिवेशों मे जो भारतीय विदेश गये उनमे ऋषि के अनुयायियों ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया तथा आर्यसमाज की स्थापना की।



अनुशासन प्रिय बनें



★ ★ ★

प्रत्येक सभा, समाज संगठन के सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे अपने अन्दर अनुशासन भावनाओं को विकसित करें। जनतन्त्र का यह अनिवार्य नियम है कि सब लोग एक सम्मति के नहीं हो सकते। मतभेद के इस बुनियादी आधार को स्वीकार करके ही आर्यसमाज के सदस्य समाज के कार्य मे सहायक बन सकते हैं। आर्य समाज के संगठन पक्ष मे सेवा का जो थोडा बहुत अनुभव मुझे हुआ है उससे मैं यही अनुभव करता हू कि हम संगठन मे परस्पर सहयोग से रहने की भावना से दूर जा रहे हैं। अनुशासन की भावना आन्तरिक प्रेरणा का विषय है। ऊपर से लादा गया अनुशासन बाह्य दृष्टि से चाहे कुछ महत्व रखता हो पर हृदयपक्ष उससे प्रभावित नहीं होता।

श्री प्रेमचन्द्र जी शर्मा एम एल सी

आर्यसमाज के स्थानीय प्रान्तीय और सार्वदेशिक मतभेदो की वृद्धि के मूल मे अनुशासनप्रियता का अभाव ही मुख्य है बहुमत पक्ष का भी विशेष उत्तरदायित्व है कि वह अपने से भिन्न सम्मति वालो के सम्मान को ठेस न पहुचायें और अपना व्यवहार सौम्य रक्खें। बहुमत के आधार पर अपने से भिन्न विचार वालों की निरन्तर उपेक्षा ही संगठन मे तीव्र प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है, अत इस ओर विशेष ध्यान रहना चाहिये।

आर्यसमाज संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिये हमे संगच्छध्वं संवदध्वं की भावना को विकसित करना चाहिये और सदैव यह देखना चाहिये कि जो भी निर्णय हुआ है, उससे आर्यसमाज का हित है तो हमे अपना मतभेद समाप्त कर सहयोग आरम्भ कर देना चाहिये। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम अनुशासनप्रिय हैं, यदि इसके विरुद्ध हमारा आचरण है तो हम अनुशासन की भावना मे कमजोर हैं। आर्यसमाज स्थापना दिवस के शुभावसर पर हमे इस दिशा में गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये।

—प्रेमचन्द्र शर्मा एम० एल० सी०

उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा उ० प्र०

ऋषि दयानन्द अपने स्मारक रूप में अपने ग्रन्थ, शिष्य तथा आर्यसमाज को छोड गए हैं। इनमे से आर्यसमाज ही उनका उत्तराधिकारी तथा प्रतिनिधि है। उनके ग्रन्थों, सिद्धान्तों, संस्थाओं अपितु वेदों की रक्षा का भार, आर्य समाज पर ही है। आर्यजगत् तथा आर्यसमाज मे भेद है। आर्यसमाज उन लोगों का संघ है जो वैदिक धर्म के प्रचार तथा रक्षण की अभिलाषा रखते हुए संगठन मे समन्वित हैं। वैदिक धर्मी आर्यसमाज के बाहर भी हो सकते हैं और आर्यजगत् आर्यसमाज तक सीमित नहीं है।

आर्यसमाज का वर्तमान जनतान्त्रिक संगठन धार्मिक जगत् में नया है। सब धर्मों मे एकतन्त्र-गुरु, पोप, पैगम्बर, खलीफा आदि थे। आर्यसमाज के संगठन मे जो शिथिलता दृष्टिगत होती है वह बम्बई के प्रारम्भिक नियमो की अवहेलना के कारण है, जिनके नियम स० २४ मे सभासदो की चारित्रिक योग्यता पर विशेष बल दिया गया है तथा नियमो मे हेर-फेर का अधिकार भी नियम स० २८ मे केवल श्रेष्ठ सभासदो को ही दिया गया है।

आर्यसमाज का उद्देश्य संसार का उपकार करना तथा उसका माध्यम शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति करना है। किसी एक पक्ष तक सीमित रहना उसका विद्रूप है। आर्यसमाज की चतुर्मुखी उन्नति उसके दार्शनिक आधार के सम्पूर्ण पालन—चातुर्वेद पारायण महायज्ञ—से ही हो सकती है, जहां शास्त्र और शस्त्र दोनों का विधान है।

★

आर्यसमाज की शिक्षा-नीति

आर्यसमाज के महत्वपूर्ण कार्यों मे शिक्षा का प्रचार सबसे प्रमुख है क्योंकि अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहना इस सगठन का उद्देश्य है। इस दिशा मे हमारी सारी शक्ति भावनात्मक उत्साह से प्रभावित रही है। डी० ए० वी० कालेज लाहौर की स्थापना और उसके बाद गुरुकुल आन्दोलन की विचारधारा के रूप में हमारी शक्ति दो रूपों मे बट गई। उद्देश्य एक शिक्षाप्रचार, पर मार्ग दो हो गये। ८० वर्ष का लम्बा मार्ग तय कर लेने के बाद आज हमे अपनी शिक्षा नीति का सिंहावलोकन करना चाहिये।

हमे गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिये कि (१) डी०ए०वी०कालेजों आदि की स्थापना से आर्यसमाज के दृष्टिकोण प्रचार में कितनी सफलता मिली और मिल रही है। (२) गुरुकुलो की स्थापना से हम कहां तक आर्यसमाज के विचार को आगे बढ़ा सके हैं और बढ़ा रहे हैं।

इसके साथ ही शिक्षा नीति मे हम कहां तक स्वतन्त्र हैं या हमारा और राज्य का क्या सम्बन्ध होना चाहिये, इस दिशा मे गम्भीर विचार की आवश्यकता है।

श्री प्रि० महेन्द्रप्रतापजी शास्त्री एम ए

भारत में आर्यसमाज की शिक्षा-नीति का व्यावहारिक आधार ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध स्वदेशाभिमान की भावना जाग्रत करना रहा पर स्वतन्त्र भारत मे स्वदेशाभिमान की दिशा विरोधात्मक न होकर निर्णयात्मक अधिक होनी चाहिये।

आर्यसमाज की शिक्षा नीति के स्पष्टीकरण और समन्वयात्मक स्वरूप निर्माण की दृष्टि से आर्य शिक्षा विशेषज्ञों को आर्यसमाज स्थापना दिवस के शुभ अवसर पर गम्भीर विचार करना चाहिये। वर्तमान समय में पुरानी पीढ़ी के लोगों के विचारों का लाभ भी हमे मिल सकता है जो हमारी आगामी नीति के लिये स्थायी महत्व का सिद्ध होगा। यदि सार्वदेशिक सभा स्वय अथवा विद्यार्य-सभा द्वारा इस सम्बन्ध मे आर्य शिक्षा विशेषज्ञों के सम्मेलन का आयोजन कर सकें तो स्थापना-दिवस की यह एक महत्वपूर्ण प्रेरणा होगी।

—महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम. ए.
उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा, उ० प्र०

ऋषि दयानन्द वचनामृत

आर्यसमाज के ठीक नियमों को समझ कर आपको वेद के आज्ञानुसार सबके हित में अवश्य लग जाना चाहिये—विशेषता से अपने आर्यावर्त्त देश के सुधारने में अत्यन्त, श्रद्धा, प्रेम और भक्ति होनी चाहिए। सबको अपने समान जानकर उनके क्लेशों को काटने और सुखों को बढ़ाने के लिए प्रयत्न और उपाय करना उचित है। सबका हित करना ही परम धर्म है। इसी के प्रचार की वेद में आज्ञा पाई जाती है।

व्यापक दृष्टि की आवश्यकता

आर्यसमाज की स्थापना सार्वभौम और सार्वकालिक दृष्टिकोण से की गई है। एक वर्ग और एक क्षेत्र एव एक काल तक आर्यसमाज के कार्य को सीमित मानना या बनाना आर्यसमाज की मौलिक विचारधारा के साथ अन्याय है। अत आर्यसमाज के प्रचार एव कार्य को आगे बढ़ाने के लिये उसके प्रत्येक सदस्य में आर्यसमाज को विश्व सगठन मानने की भावना व्याप्त रहनी चाहिये। यदि आर्यसमाज के सदस्य अन्तरात्मा से अपना लक्ष्य ससार का उपकार करना समझते रहें तो स्थानीय, देशीय झगड़े उत्पन्न ही नहीं हो सकते, उस समय तो ससार उपकार मे कौन किससे कितना आगे बढ़ रहा है, इस बात को लेकर स्पर्धा बढ़ने लगेगी। आर्यसमाज के गौरवपूण अतीत में इस आदर्श भावना के चिन्ह मिलते हैं परन्तु, आज हमारा लक्ष्य धूमिल हो रहा है। व्यक्तिगत और स्थानीय सघर्षो मे ही हमारी शक्ति नष्ट होने लगी है, क्या हम इस प्रकार आचरण कर अपने गौरवपूर्ण अतीत को भी कलकित न कर देंगे। आर्यसमाज स्थापना दिवस हमे अपने विश्व उपकार के उदात्त आदर्श की पुनीत प्रेरणा देने आया है। आर्यजन आर्यसमाज की उन्नति की हार्दिक कामना रखते हैं तो उन्हें व्यक्तिगत, दलगत और सीमित स्वार्थों का त्यागकर विशाल दृष्टिकोण अपनाना होगा। आर्यसमाज स्थापना दिवस के सुअवसर पर यदि हम अपने लक्ष्य और कर्त्तव्य का सही मूल्यांकन कर सकें तो उससे आर्यसमाज का एक बहुत बडा हित होगा। आर्यसमाज की सगठित शक्ति मानव उपकार के व्यापक कार्यक्रम की पूर्ति मे जुटनी चाहिये। यदि हम विश्व को नैतिक दृष्टि प्रदान कर सकें। तो यह हमारी बहुत बड़ी सफलता होगी, परन्तु दूसरो को प्रेरणा देने की क्षमता उत्पन्न करने के लिये हमें स्वयं नैतिकता का जीवन दर्शन ही नहीं व्यवहार अपनाना होगा। आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए यदि हम यह साधना कर सकें तो हम और हमारा समाज प्रकाश स्तम्भ बना रहेगा।

श्री चन्द्रदत्त जी तिवारी सभा मन्त्री

—चन्द्रदत्त तिवारी बी. ए. एल-एल. बी.

मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश

ऋषि दयानन्द वचन मृत

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हू कि तीन काल मे सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरी कोई नवीन कल्पना या मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।

आर्यसमाज स्थापना दिवस पर—

संस्मरण तथा शुभकामना!



लगभग पचास वर्ष हुये जब तेरह वर्ष की अवस्था में मैं 'आर्यमित्र' का ग्राहक बना था। मुझसे दो वर्ष ज्येष्ठ आदर्श कर्मवीर स्वर्गीय भ्राता राजकुमार श्री रणवीरसिंह जी सद्धर्म प्रचारक' और 'वेद प्रकाश' मगाते थे। मैं भी आर्यमित्र' तथा वेद प्रकाश' मगाने लगा था। फिर तो आर्यसमाज के अनेक पत्र आने लगे थे यथा 'भारत सुदशा प्रवर्तक' 'आर्यावर्त', 'नवजीवन' 'भारतोदय', अनाथ रक्षक', 'कन्यामनोरंजन', वैदिक मैगजीन' तथा 'आर्य-मुसाफिर' आदि, परन्तु उक्त स्वर्गीय अग्रज एवं मैं 'आर्यमित्र' तथा 'वेद प्रकाश' की अलग अलग प्रतिया मगवाते थे। आपस मे कोई वैमनस्य अथवा होड़ की बात नहीं थी। वे मुझ पर अतीव अनुकम्पा करते थे। उनके साथ खेलता-कूदता तथा पढता लिखता था। पूर्ण प्रेम तथा सहयोग होते हुए भी केवल सर्वाधिक प्रिय होने के कारण 'आयमित्र' तथा 'वेदप्रकाश' अपने अपने लिये विशेष रूप से मगाते थे। 'आर्यमित्र' मुझे इतना प्रिय है कि जब डाक आती है तब सब प्रथम मैं उसे ही लेकर पढ़ता हू, जैसे एक रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट सैयद अलीरजा इस जन पद मे थ। चाहे जितने पत्र आते थे वे कराची से आये वाले पत्र 'डान' को सबसे पहले पढते थे।

'आयमित्र' अब भी मेरे तथा मेरी धर्मपत्नी जी के नाम से आते हैं। मेरी प्रति पढ़ने के उपरान्त आर्यसमाज रामनगर को वाचनालय के लिये दे दी जाती है और धमपत्नी जी की सुरक्षित रहती है। हम लोग 'आर्यमित्र' की उन्नति उत्तरोत्तर सदा चाहते हैं।

भूपति भवन, अमेठी राज्य
जनपद सुलतानपुर अवध

—रणंजयसिंह एम० पी०
राजा, अमेठी राज्य, अवध

वृहदधिवेशन सम्बन्धी सभा की घोषणा

(दिनाक २३ व २४ मई १९६४)

उत्तर प्रदेशीय समस्त आर्य समाजों एवं आर्य उपप्रतिनिधि सभाओं के मन्त्री महानुभावो को विदित हो कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का वार्षिक साधारण अधिवेशन (वृहदधिवेशन) दिनाक २३ व २४ मई १९६४ ई० स्थान आर्यसमाज मन्दिर गोला गोकरननाथ जिला खीरी मे होना निश्चित हुआ है। आशा है कि समाजो के श्री मन्त्री महोदय उपर्युक्त तिथिया नोट कर कृतार्थ करेंगे। और वार्षिक प्रतिनिधि चित्र मय सभा प्राप्तव्य धन के तुरन्त भेजने का कष्ट करेंगे।

निवेदक—
चन्द्रदत्त तिवारी सभा-मन्त्री

आर्य्य समाज का प्रधान कर्तव्य—

नैतिक-नागरिक-प्रचार

'स्वराज्य' को 'सुराज्य' भी बनाओ !

(श्री डा० हरिशंकर शर्म्मा डी० लिट्०)

[आर्य-जगत् के सम्माननीय नेता और विद्वान् लेखक ने आर्यसमाज के कर्त्तव्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए राष्ट्र मे नैतिकता की भावना जागृत करने की विशेष प्रेरणा दी है। स्वराज्य को सुराज्य बनाने के लिए आर्य-समाज ही नैतिकता का सर्वाधिक प्रचार कर सकता है इस दायित्व को आर्य जन पूर्ण करने का सकल्प लें।

—सम्पादक]

आर्य्यसमाज ने अपने सस्थापन-काल से धर्म्म समाज एवम् राष्ट्र-सेवा के लिए जो महान कार्य्य किये हैं, वे प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय और प्रभावशाली हैं। 'स्वराज्य' की ओर सबसे पहले महर्षि दयानन्द ने ही जन-जनता का ध्यान आकृष्ट किया और आर्य्य भाई-बहन स्वातन्त्र्य सग्राम मे सोत्साह सम्मिलित हुए। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए धर्म्म के मौलिक सिद्धान्तो का प्रयोग किया गया। अर्थात् सत्य-अहिंसा और तप-त्याग द्वारा ही पराधीन भारतवर्ष को आज़ादी मिली। महात्मा गांधी जी ने स्पष्ट कहा कि मैं धर्म्महीन राजनीति को गन्द या कूडा करकट समझता हू। "Politics bereft of religion are absolute dirt to me." राजनीति ही नहीं, समाज-सुधार और राष्ट्र-भाषा-प्रचार के लिए भी आर्य्य-समाज ने महान् कार्य किया। शिक्षा जगत् मे भी वह विमल विचार-धारा लेकर आगे बढ़ा। गोरक्षा की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया। महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव न हुआ होता तो आज भारत तथा भारत-वासियों—विशेषकर शिखा-सूत्र धारी हिन्दुओं को—बड़ी ही अवनति या दुर्दशा हुई होती। इसे प्राय सब ही समझदार लोग स्वीकार करते हैं। आर्य्यसमाज ने देश को जगाया और उसे जीवन-जागृति प्रदान की। 'दयानन्द दीक्षा-शता-ब्दी महोत्सव' के सुअवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति मान-नीय श्री राजेन्द्रप्रसाद जी ने स्पष्ट कहा था कि ऋषि दयानन्द ने जो कहा वही महात्मा गांधी ने करके दिखाया।

लेखक

आज हमारा देश स्वतन्त्र है, और हम अपने राज्य में रह रहे हैं, परन्तु हमारी इस 'स्वतन्त्रता' को स्वार्थान्धता के स्यारों और भ्रष्टाचार के भेड़ियों ने अपनी कुचालों द्वारा दूषित कर दिया है। 'स्वराज्य' सूर्य पर वैमनस्य की

(शेष पृष्ठ १५ पर)



आर्य जगत् के विख्यात नेता

लखनऊ शहर के प्राण—
श्री रासबिहारी तिवारी

आर्यसमाज गणेशगञ्ज, डी० ए० वी० कालेज बालिका विद्यालय, आर्य कन्या पाठशाला, आर्य टेलरिङ्ग स्कूल लखनऊ आदि संस्थाएं आपके अनवरत परिश्रम, आर्य जगत् के प्रति सच्ची निष्ठा और कर्तव्य परायणता की उज्ज्वल प्रतीक हैं। आपके सुयोग्य पुत्र श्री प० चन्द्रदत्त जी तिवारी बी ए एल एल बी, मन्त्री सभा आजकल उपर्युक्त संस्थाओं का और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का सम्पूर्ण कार्य भार सभाले हुए हैं।





कविता-कामिनि कान्त—
श्री नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'

आप ऋषि दयानन्द के दर्शन करके आर्य बने थे, और सारे जीवन आपने अपनी लेखनी से आर्यसमाज की सेवा की। आपकी भक्तिपूर्ण कविताएं घर घर मे गाई जाती हैं। आपके पुत्र श्री डा० हरिशंकर जी शर्मा डी० लिट्० आर्य जगत् के सुविख्यात लेखक, कवि और नेता हैं।



थाईलैंड में आर्य संस्कृति—अयोध्यापुरी

आर्यसमाज बैंकाक के निमन्त्रण पर २६ फर्वरी को दिन मे १॥ बजे एयर इण्डिया के हवाई जहाज से मैं यहा पहुचा और प्रचार कार्य मे व्यस्त हो गया किन्तु एक आवश्यक कायवश ३ मार्च को पुन कलकत्ता लौट गया। १४ माच को पुन यहा ही आ गया।

यद्यपि यह सुनकर मुझे प्रभूत प्रसन्नता प्राप्त हुई थी कि भारत से बौद्ध भिक्षुओ ने यहा आकर प्रथम नगर (जिसे थाई भाषा मे नखोम पथोम) को प्रचार का केन्द्र बनाकर बुद्ध धर्म का प्रचार किया था किन्तु जब मैंने यह सुना कि बैंकाक शहर से ५० किलो मीटर की दूरी पर अयोध्यापुरी है और जिस प्रकार भारतीय अयोध्यापुरी सरयू नदी के किनारे पर बसी है उसी प्रकार वह थाई देश को अयोध्या भी एक नदी के किनारे बसी हुई है एव अयोध्या के समान ही अनेक मन्दिर हैं और उनमे रामचन्द्र जी के चिह्न भी मिलते हैं तब तो मेरी प्रसन्नता की पराकाष्ठा हो गई और थाई देश की अयोध्यापुरी को देखने की अत्यधिक उत्सुकता जागृत हो गई।

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज

प्रथम नगर बैंकाक से ६६ किलोमीटर की दूरी पर है। नगर स्वच्छ एव सुन्दर है। यहा पर एक बहुत बडा मन्दिर है। इस मंदिर में बुद्ध भगवान की कई मूर्तिया तो सोने के पत्र से अलकृत समाधि रूप की हैं किन्तु एक मूर्ति लेटी हुई है, जो २८ फुट लम्बी है। मन्दिर के द्वार पर कुछ क्षण खड रहकर मै सोचने लगा कि जब भारतीय भिक्षुओं ने इस नगर को अपने प्रचार का केन्द्र बनाया तब न पानी का जहाज और न हवाई जहाज था किन्तु नावों पर चढ़कर कितने दिनों में यहा पहुचे होंगे। किस किस प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पड़ा होगा। उनके पुरुषार्थ की कल्पना करना भी कठिन है।

१७ माच को प्रात काल ७ बजे बैंकाक से रेल मे सवार होकर ८ ४१ पर अयोध्या स्टेशन पर पहुच गया। अयोध्या स्टेशन से अयोध्या नगर आधा मील दूर होगा। स्टेशन के बाहर अनेक स्कूटर खड़े थे।

मेरे साथ आर्यसमाज के प्रधान जी के अतिरिक्त आर्यसमाज के अन्य भी चार सदस्य थे। स्कूटर ड्राइवर ने २५ टिक्कल एक घण्टे का मागा। मोल तोल करते-करते १० टिक्ल पर राजी हो गया। यहा के रुपये को टिक्कल कहते हैं। नगर मे पहुचने पर न कोई पुराना मन्दिर, न महल और न किला ही देखने को मिला क्योंकि जापान के बम गोलो ने सब कुछ नष्ट भ्रष्ट कर दिया अतएव बडी निराशा हुई।

बैंकाक इस समय थाईलैण्ड की राजधानी है किन्तु किसी समय यह अयोध्या नगर ही थाई देश की राजधानी था। यह ठीक है कि भारतीय अयोध्यापुरी के समान ही एक नदी के किनारे पर अयोध्या नगर बसा हुआ है। अयोध्या नगर १३०८ स्क्वायर किलोमीटर का है। सन १८६१ की जनगणना के अनुसार ३३८१५ व्यक्ति इस नगर में रहते हैं।

स्याम देश (थाई लैण्ड) मे ७१ प्रोविन्स हैं, उन्हीं प्रोविन्सों मे अयोध्या भी एक प्राविन्स है।

कम्बोडिया के राजा फ्रा चाऊ ऊ थोंग ने भी इसी नगर को अपनी राजधानी रखा था और इसी राजा ने क्रु थेप्फ परावडी श्री अयोध्या नाम रखा था। थाई भाषा मे क्रु थेप्फ परावड़ी का अर्थ नगर देव स्थान होता है। अर्थात् अयोध्या देवों के रहने का स्थान है।

बौद्ध सव् १२०० से १४०० वर्ष तक इस अयोध्या को कम्बोडियनों ने राजधानी बनाया था।

(अपूर्ण)

—स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का आधारभूत दृष्टिकोण


लेखक

[ले०—श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

[आर्यसमाज के नियम हमारे सब कार्यों का आधार होने चाहिए। आर्यसमाज के नियम आर्यसमाज को विश्व वादी संस्था घोषित कर रहे हैं। पूज्य उपाध्याय जी ने नियमों की कसौटी पर अपने दृष्टिकोण और कार्यों को परखने की प्रेरणा दी है। —सम्पादक]

कोई समाज अपने विशेष लक्ष्य के बिना न बन सकता है न चल सकता है। कुछ संस्थायें केवल आन्दोलन के आधार पर चलती हैं। परन्तु वह कोल्हू के बैल के के समान विशेष लक्ष्य न होने के कारण कुछ बना नहीं पाती। आर्यसमाज का लक्ष्य आर्यसमाज के दस नियमों में वर्णित है, परन्तु उनके समझने की आवश्यकता है।

इन नियमों मे तीन बातें विशिष्ट हैं जो तीनों अलग-अलग और मिलकर आर्यसमाज तथा अन्य संस्थाओं मे भेद करती हैं, पहिले दो नियम ईश्वरवाद से सम्बन्ध रखते हैं। संसार में प्राय अधिकांश मनुष्य ईश्वर वादी हैं और ईश्वरवाद के पचासों भेद हैं परन्तु आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी का ईश्वरवाद अपने ढंग का निराला है हर मनुष्य इस निराले पन को नहीं समझता है। दूसरे ईश्वर-वादी जीव और सृष्टि को ईश्वर के लिए ही समझते हैं, ईश्वर के अतिरिक्त इनका अन्य प्रयोजन नहीं मानते, परन्तु आर्यसमाज की दृष्टि मे सृष्टि का प्रयोजन जीव है ईश्वर नहीं यह बड़ा भारी भेद है। जिसकी यदि उपेक्षा कर दी जाय तो हम भी अन्य मतावलम्बियों के समान हो जायेंगे।

दूसरी चीज वेद है यों तो सभी सनातन धर्मी अपने को वेद का अनुयायी कहते चले आये परन्तु आर्यसमाज का तीसरा नियम वेद के विषय में सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण रखता है। श्री शंकराचार्य जी वेदानुयायी थे परन्तु उन्होंने या उनके शिष्यों ने कभी यह आवश्यक नहीं समझा कि ब्राह्मणेतर भारतीयों या विदेशियों में वेद का प्रचार किया जाय, यह निरालापन है स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण का।

आर्यसमाज के शेष सात नियमों मे एक तीसरी विशेषता, यह है कि आर्यसमाज न भारतीय संस्था है, न हिन्दू संस्था न ब्राह्मण संस्था, यह है सार्वजनिक एवं सार्वदेशिक संस्था, काले, पीले सफेद गेहुंवे, चीनी, जापानी हिन्दू, हब्शी सभी मनुष्यों की संस्था है। जो आर्यसमाजी इस दृष्टिकोण को नहीं समझता वह आर्यसमाज को उन्नतिशील नहीं बना सकता। प्राय आर्यसमाजी अपनी प्रेरणाओं को सीधा आर्यसमाज के नियमों से न लेकर हिन्दू परम्पराओं से लेता है। उसका मस्तिष्क उन्हीं परम्पराओं से बना है अत आर्यसमाज की गाड़ी कीचड़ मे फंसी रहती है जिसमें सनातन धर्म की अनेक गाड़ियां फंसी हुई हैं।

आर्यसमाज के नियम आर्यसमाज का मुख्य लक्ष्य है। उसी कसौटी से अन्य सब मन्तव्यों को सोचना होगा। कसौटी से सोने को परखते हैं, सोने से कसौटी को नहीं। जब आर्यसमाज के सिद्धान्तों के लिये कसौटी मिल गई तो जहां कहीं चाहे किसी पुस्तक में क्यों न हो कोई ऐसी बात मिले जो इस कसौटी पर ठीक न उतरती हो तो उसे त्यागना ही पड़ेगा। स्वामी दयानन्द जी ने इसी दृष्टि से

(शेष पृष्ठ १५ पर)

आर्यसमाज की उन्नति में बाधाएं

(ले०—श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त, दुर्ग म० प्र०)

आर्यसमाज स्थापना दिवस पर हमें गम्भीर चिन्तन और आत्म निरीक्षण करना चाहिये। आर्यसमाज के कार्यक्रम की सफलता और उन्नति मे मेरी दृष्टि मे कुछ ऐसी बाधायें हैं जिन पर हमे विशद रूप से विचार करना चाहिये।

आर्यसमाज की उन्नति में बाधक समस्याओं के कई पहलू हैं। एक वह है जो वतमान युग मे सभी धर्मों पर समानरूप से लागू होती है। दूसरी वह है जो हिन्दुओं की परम्परागत मनोवृत्ति से सम्बन्ध रखती है। तीसरी समस्या विशेष रूप से आर्यसमाज से सम्बन्ध रखती है।

पहली समस्या वह है जो सभी धर्मों पर समान रूप से प्रभाव रखती है। वह है अनीश्वरवाद। वह प्रकृतिवाद जो अध्यात्मवाद को सर्वथा इन्कार करता है। ऐसे भी कई प्रकृतिवादी हैं जो अध्यात्मवाद को भी मानते हैं। मेरा तात्पर्य उनसे है जो गीता के शब्दों मे "जगदाहुरनीश्वरम्" के समर्थक हैं जिसे योगीराज कृष्ण ने आसुरी वृत्ति कहा है। भौतिक विज्ञान के इस युग में "जगदाहुरनीश्वरम्" वाले बहुत बढ़ रहे हैं। यदि हम, अपने भौतिक विज्ञान विशारद ऋषियों को छोड भी दें तो भी पाश्चात्य वो धुरन्धर विद्वान जिनके दिये सिद्धान्तों पर प्राय भौतिक विज्ञान की सारी उन्नति आधृत है अर्थात् 'न्यूटन' और 'आइन्स्टीन' 'जगदाहुरनीश्वरम्' वाले नहीं थे। वे ईश्वरवादी थे।

इस प्रकार के अनीश्वरवादी इस बात को भूल जाते हैं कि ज्ञान परिधि केवल इन्द्रिय गम्य नहीं है। विश्व की सारी घटनाओं के ज्ञान को वे केवल इन्द्रिय गम्य मानते हैं। बड़े से बडा टैलिस्कोप (दूरेक्ष) और उत्तम से उत्तम माइक्रोस्कोप (अण्वीक्ष) केवल चक्षु इन्द्रिय के ही विकास रूप हैं। हमारे ऋषियों ने ज्ञान की परिधि को केवल इन्द्रियगम्य या बुद्धिगम्य विषयों तक ही सीमित नहीं किया है उन्होंने आत्मा द्वारा भी ज्ञान की प्राप्ति को स्वीकार किया है और आत्मा द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान का साक्षात्कार भी किया है। आत्मा की तुलना मे इन्द्रिय

लेखक

और बुद्धि का लाघव निम्न श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा गया है—इन्द्रियाणी पराण्याहु इन्द्रियेभ्यो परमन।

मनसस्तु परा बुद्धि यो बुद्धे परतस्तु स ॥

आत्मा द्वारा जो ज्ञान साक्षात् प्राप्त होता है, वही वास्तविक और सम्पूर्ण ज्ञान है, अत इसी को ज्ञान' की सज्ञा दी गई है। इसके अतिरिक्त जो ज्ञान केवल इन्द्रियों या बुद्धि से प्राप्त होता है अल्पज्ञान होने के कारण उसे अज्ञान की सज्ञा दी गई है।

अध्यात्म ज्ञान नित्यत्व तत्वज्ञानार्थं दर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञान यदतोऽन्यथा ॥

ऐसे सज्जन जब आत्मा के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते तब उसके द्वारा ज्ञान प्राप्ति को कैसे मान सकते हैं। आर्यसमाज आस्तिकवाद की दृढ़ आधार शिला पर आधृत है और आस्तिकवाद उसके प्रचार का मौलिक तत्त्व है। परन्तु अनीश्वरवाद की समस्या को दूर करना

सरल नहीं है। मुझे विश्वास है कि आर्यसमाज अपनी दृढ़ सिद्धान्त निष्ठा और लगन एवं योग्यता के द्वारा आस्तिकवाद के प्रचार में अन्तत सफल होगा और सम्पूर्ण विश्व के विचारवान व्यक्ति अध्यात्मवादी होंगे। विजय प्राप्ति के लिये हमे भी अपने ध्येय मे पूर्ण निमग्न होना होगा।

दूसरी बात जो आर्यसमाज की उन्नति मे बाधक है वह है साधारणतया हिन्दुओं की सहिष्णुतावृत्ति है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' या यदि मैं आज के शब्दों मे कहू तो गाधीवाद की बेसमझी है। गाधी के मूलभूत सिद्धान्तों को ठीक-ठीक न समझकर उसका अज्ञानमय उपयोग करना है। सहिष्णुता एक सद्गुण है परन्तु उसकी बेसमझी, उसका दुरुपयोग, उसकी परिधि को न जानना, दुर्गुण है। उसी प्रकार 'अक्रोध' सद्गुण है और क्रोध दुर्गुण है परन्तु 'मन्यु' का त्याग तो सद्गुण नहीं कहा जा सकता। वैदिक प्रार्थना मे हम प्रतिदिन पाठ करते हैं—

'मन्युरसि मन्युम मयि देहि"

तीसरी बात जो आर्यसमाज की उन्नति मे बाधक है वह आर्यसमाज और आर्यसमाजियों से सम्बन्ध रखती है। यह बाह्य नहीं आभ्यान्तरिक कारण है। हम आर्यजन पुरानी कुरीतियों को जो प्राय हल हो चुकी हैं, किंवा जिनको विशाल हिन्दू समाज ने स्वीकार कर लिया है उन्हीं को हम पीटे जा रहे हैं यथा—बाल-विवाह, अछूतोद्धार, जन्मना वर्णव्यवस्था आदि, इनके सुधार का प्रयत्न जारी रहे इसमे कोई आपत्ति नहीं परन्तु आज देश और समाज मे नई कुरीतियां जन्म ले रहीं और बढ़ रही हैं और भयकर रूप से आक्रमण कर रही हैं, उधर हमारा ध्यान नहीं के बराबर है। नई कुरीतियों को दूर करने की दिशा मे आयसमाज द्वारा विशेष यत्न होना चाहिये। तभी आर्यसमाज विशाल हिन्दू धर्मावलम्बियों का नेतृत्व कर सकेगा जैसा कि वह अब तक करता आया है। नहीं तो आर्यसमाज का आन्दोलन रूप समाप्त हो जायगा और वह एक पन्थ बन जायगा।

हमारी लडकियों की वेशभूषा, सिनेमा का सदाचार और सद्व्यवहार पर दुष्परिणाम, जीवन मे अर्थवाद की प्रधानता और भ्रष्टाचार आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनके विरुद्ध व्यापक आन्दोलन की योजना आयसमाज को ओर से बननी चाहिए। अराष्ट्रीय ईसाई पादरियों द्वारा अनुचित धर्म परिवर्तन भी हिन्दू समाज पर घुन लग रहा है, इसी प्रकार अनेक सामयिक समस्यायें बनी हुई हैं जिनकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए। हम आर्यसमाजियों मे बोलने मे वृद्धि और करने में ह्रास हो गया है। ईसाई पादरियों को देखिये उनका हल्ला सुनाई नहीं देता परन्तु जगलों और पहाड़ों में जा जाकर वे चुपचाप लगन से कार्य करते हैं। हमारे यहां इस प्रकार कार्य करने वालों का अभाव है। अस्तु—

एक और बात जो आर्यसमाज की शक्ति और उपयोगिता का महान् ह्रास कर रही है वह है हममे पारस्परिक ईर्ष्या और आपसी सत्ता सघर्ष, प्राय हमारी सारी शक्ति और समय इसी में नष्ट हो रहा है, हम आर्यसमाज के हित अथवा अपनी संस्थाओं के हित की दृष्टि से सोचना और तदनुकूल व्यवहार करना छोडकर अपने अच्छे अच्छे कार्यकर्ताओं की निन्दा और उनके उखाड-पछाड़ की ही सदा सोचते हैं। इस प्रकार की गुटबन्दी, ईर्ष्या द्वेष का घुन जिस समाज को लग जावे उसका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। यदि हम अब भी इसी मे लगे रहे तो कोई भी उत्तम कार्य करना हमारे लिये सम्भव न हो सकेगा। एक उदार बुद्धिमान और प्रसिद्ध दानी महोदय के पास जिनसे मेरा परिचय है एक दिन आर्यसमाज सम्बन्धी किसी कार्य के लिये अपने एक दो मित्रों के साथ हम गये। उनके मुख से जो बात निकली वह मुझे भेद गई। उन्होंने कुछ इस प्रकार की भावना व्यक्त की वह आर्यसमाज कहां है जिसको यदि धन की सहायता दी जाती थी देने वाले को इस बात का पूर्ण विश्वास रहता था कि उसके दिये धन के एक एक पैसे का सदुपयोग होगा।

यदि हम सच्चे हृदय से आत्मनिरीक्षण करें तो इसमें सन्देह नहीं कि हममें सात्विक वृत्ति का अभाव बढ़ रहा है जिसे रोकना होगा।

भगवान कृष्ण के ये वचन यदि हम स्मरण रक्खें और तदनुकूल आचरण करते रहें तो महर्षि दयानन्द के चरण चिन्हों में चलने की शक्ति परमात्मा हमे देगा अन्यथा नहीं।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसा।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः॥



(पृष्ठ १२ का शेष)

आर्यसमाज के नियमों के भीतर न कहीं अपना नाम डाला न अपनी पुस्तकों का। इस विषय में आधुनिक आचार्यों में ऋषि दयानन्द का नाम निराला है, सब को अपने नाम का प्रलोभन है, महात्मा बुद्ध भी अपने शिष्यों को कहते हैं कि बुद्ध की शरण आओ, गीता में श्रीकृष्ण जी भी इसी बात पर बल देते हैं "मद्याजी भव" गीता, लेकिन ऋषि दयानन्द तो कहीं भी इस प्रकार का दूरस्थ संकेत भी नहीं करते हैं। यदि आर्यसमाजी अपनी श्रद्धा के आवेश में इस प्रकार की कोई प्रवृत्ति उत्पन्न करेंगे तो वह न केवल स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्यों के विरुद्ध होगा अपितु इससे आर्यसमाज की उन्नति में भी बाधा पड़ेगी।

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में "स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश" के नाम से एक परिशिष्ट दिया है जिसको प्राय आर्यसमाज का सिद्धान्त समझा जाता है। परन्तु यह भूल है. यदि ऋषि को ऐसा अभीष्ट होता तो वह मन्तव्य अमन्तव्य के साथ 'स्व' शब्द का प्रयोग न करते। वहा भी स्वामी दयानन्द जी ने एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति का दिग्दर्शन किया है वे यह नहीं चाहते कि लोग अपने सिद्धान्तो की खोज में ऋषि दयानन्द की अन्धी पैरवी करें। 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश" है क्या? वस्तुत यह है एक कुन्जी, ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को समझने के लिए,या यों समझिये कि वह कोष है उन शब्दों का जिनका स्वामी दयानन्द जी ने अपने अन्यान्य ग्रन्थो मे प्रयोग किया है। एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। कहीं पारिभाषिक कहीं लाक्षणिक कहीं धात्वर्थ, परन्तु शब्दो का अर्थ तो प्रकरण से लेना होगा। इसीलिए स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों की कुन्जी "स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश" में दे दी है। सम्भव है कहीं उससे विपरीत मिले या सशयात्मक हो या प्रमाद से अन्यथा हो गया हो उसका निर्णय इसी कुन्जी से होना चाहिये। "स्वमन्तव्यामन्तव्य" का यही मूल्य है। इसको आर्य समाज के नियमों से उतर कर दूसरी श्रेणी में रखना होगा, स्वमन्तव्यामन्तव्य से नीचे और उनकी अपेक्षा गौण ऋषि के अन्य समस्त ग्रन्थ हैं। जहां उनका आशय ऊपर की दो कसौटियों पर न कसे वहां उसकी मान्यता उतनी ही कम हो जायेगी। स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों का समन्वय इसी प्रकार से हो सकता है। आर्यसमाजी प्राय यह भूल करता है कि वह इन कसौटियों मे भेद नहीं कर सकता है, उसके लिए आर्यसमाज के नियम, 'स्वमन्तव्यामन्तव्य' ऋषि के अन्य ग्रन्थ, ऋषि के ग्रन्थों पर व्याख्यान, ऋषि के विषय मे सुनी-सुनायी गाथायें, ऋषि के व्याख्यानों को सुना-सुना कर उनके ऊपर बनायी हुई पुस्तकें, सब समकक्ष समझ ली जाती हैं यह एक समस्या है, जिसकी ओर आज हमे विशेष ध्यान देना चाहिये।

इस प्रकार आर्यसमाज के (१) ईश्वर जीव प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण (२) वेद के सार्वजनीन अथवा सार्वदेशिक प्रचार की नीति (३) आर्यसमाज का सार्वदेशिक स्वरूप ये ऐसी बातें हैं जिनको प्रत्येक आर्यसमाजी को अपनी दृष्टि मे हर समय रखना चाहिये। महर्षि दयानन्द का पथ-प्रदर्शन हमे इस ओर सफलतापूर्वक बढ़ने की शक्ति प्रदान करता रहेगा।



(पृष्ठ ९ का शेष)

विषैली बदली छाने लगी है। परिणाम स्पष्ट है, जनता का त्रास उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। अन्न वस्त्र तक का भयकर सकट उपस्थित हो गया है। यह अनाचार, विधान निर्माण या कानूनसाजी पर करोड़ो रुपया व्यय करने से दूर नहीं हो सकता और न हुआ है। इसके लिये मानवता का प्रसार और प्रचार करना होगा। 'मानवता' 'नैतिकता' से उत्पन्न होती है और मूलाधार धर्म्म सिद्धान्तो को अमल मे लाना ही नैतिकता है, जिसे अंग्रेजी मे 'मौरेलिटी' और अरबी मे 'अखलाक़' कहते हैं। आर्य्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह सारे राष्ट्र मे सघटित रूप से नैतिकता का प्रचार करे। यह कार्य लेखनी और वाणी दोनों प्रकार से किया जाए। प्रचारक भी वैसे बनें जैसा वे दूसरों को बनाना चाहते हैं।

दूसरा कार्य है नागरिकता-प्रचार का। 'गणतन्त्र' 'लोकतन्त्र' आदि का अर्थ है जनता का राज्य। यही 'डिमोक्रेसी' एवम 'जमहूरी' सल्तनत' का मतलब है, परन्तु आज जनता के केवल तीन कर्त्तव्य रह गये हैं, चन्दा देना, वोट बांटना और अपने द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का स्वागत सत्कार करना। जिस जनता का राज्य बताया जाता है



वह इतनी अबोध, शिथिल और प्रसुप्त है कि उसे न अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान है और न अधिकारों का भान। स्वतन्त्रता प्राप्ति के शुभ अवसर पर जनता में जो जीवन जागृति थी आज वह कहां है। 'नागरिकता' के प्रचार से सर्व साधारण लोग अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को समझ सकते हैं। ये अधिकार और कर्त्तव्य 'स्वराज्य संविधान' में अङ्कित हैं। उन्हीं के प्रचार-प्रसार और समझाने बुझाने की आवश्यकता है। राजनैतिक सम्प्रदायवाद ने अनेकता एवं बिरादरीवाद तथा गुटबन्दी के जो विषैले बीज बो दिये हैं, उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसे आर्यसमाज ही कर सकता है—स्वयम् निर्दोष और निर्लिप्त बनकर।

नैतिकता और नागरिकता का प्रचार आर्यसमाज द्वारा बड़ी सफलता से हो सकता है। ऐसा करने में न पार्टीबाजी है न दलबन्दी। धर्म के मूल सिद्धान्तों की कौन अवमानना कर सकेगा? भला 'स्वराज्य-संविधान' का प्रचार किसको अनुचित प्रतीत होगा। आर्यसमाजों को यह प्रचार कार्य अपने ग्राम या नगर के प्रत्येक 'वार्ड' या महल्ले में, बड़े उत्साह और प्रयत्न से सबको सुनानी - समझानी होंगी, क्योंकि उनमें सबका हित और लाभ है। शासन को भी इस उद्योग द्वारा यथेष्ट सहायता मिलेगी। जिस प्रकार शुद्धि आन्दोलन आर्यसमाज ने बहुत बड़े परिमाण में किया था उसी प्रकार यह राष्ट्र-शोधन की समस्या है, जिसकी पूर्ति शीघ्र, अवश्य और बड़े उत्साह से होनी चाहिए। इसके द्वारा 'स्वराज्य' को 'सुराज्य' भी बनने में पूरी सहायता मिलेगी और राष्ट्र का बड़ा हित होगा। ★

शीघ्र पता देते हुए पधारें

श्री स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती जो कोटियारी (जिला हरदोई) में प्रचार कार्य आर्यसमाजों का करते रहे हैं वह स्वामी जी शीघ्र पधारने की कृपा करें आर्यसमाजें नरोधा, बसौरा किरतियापुर मोटिया, सकपड़ापुर, अगतपुर, अहीपुर आदि आदि आमन्त्रित कर रही हैं।

—मन्त्री

१—जिला आर्यवीर दल मीरजापुर के समस्त सदस्यों को विदित हो कि शिवशंकरी के मेले में २० अप्रैल को जिला आर्यवीर दल की एक आवश्यकीय बैठक आर्य समाज के पंडाल में होगी। अतः सभी आर्यवीरों की उपस्थिति १० बजे दिन को अवश्य ही अनिवार्य एवं प्रार्थनीय है।

आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व भारत

[रच०–श्री 'कुसुमाकर' जी, आर्यनगर फीरोजाबाद]

(१)

भारत दुखद रूढ़ियों से त्रस्त हो रहा था,
ऋषि अवतीर्ण हुए जब धरा-धाम पर।
वाम मार्ग विहरा विषाक्त वासना से युक्त,
चोट हो रही थी भारतीयता के नाम पर।
मुद्रा, मांस, मैथुन, मलीन मीन' धारे हुए,
'मदिरा' निछावर हुई थी मोक्ष-धाम पर।
'शिव' का स्वरूप शुद्ध मानव बना हुआ था,
नारियां 'शिवा'× थीं जो विमुग्ध काम-वाम पर।

(२)

लाल 'बाइबिल' की विनोद वाटिका मे झूम,
ईशू ईश का ही गुण गान करने लगे।
कुछ इस्लाम के बहिश्त के मजे मे डूब,
दामन मे अपने गुनाह भरने लगे।
"घर से गया है वो जहान से गया है" कह–
अज्ञता महोदधि मे मूढ तरने लगे।
खड खड हो गया हमारे पुरखो का देश,
भूमि पर पांव फूक-फूक धरने लगे॥

(३)

कोई कहता था–वेद गीत हैं गडेरियो के
कोई भूत प्रेत की कहानी बतलाता था।
कोई कहता था–जत्र मत्र तत्र धारियो के
कोई वाम पथ का कुपथ दिखलाता था।
कोई नरमेध, पशुमेध, अश्वमेध लिए
कोई मानवो के कल-काव्य से मिलाता था।
कोई कहता था–वेद देश से गए हैं दूर
कोई इतिहास का स्वरूप सिखलाता था।

(४)

देव भाषा नागरी-गुणागरी को भूल सभी,
उर्दू-अगरेजी को सहष पढ़ने लगे।
ऋषि-मुनियों के सद्ग्रन्थ सरिता मे फेंक,
मिथ्या कल्पना से भरे ग्रन्थ गढ़ने लगे।
मूल-सभ्य-भावना, दुकूल दूसरों का थाम,
वेद प्रतिकूल मत, माथे मढ़ने लगे।
योरोपीय-रग अगराग को लपेट अग,
ओप भरे आनन, सचोप चढ़ने लगे।

(५)

'पाव के तले की जूतिया हैं महिलायें सभी',
पुरुष सगव कर रहे थे खडे अपमान।
शिक्षित-बनाना आर्य जाति का कलक महा,
'शूद्र है गवार ताडने' का करते बखान।
जकड चुकी थी मातृ-शक्ति दासता के दाम,
वारिबधुओं+ का होरहा था सूर्य भासमान।
बाल-विधवाओ की विकल वेदना के शूल–
खटक रहे थे, कर रहे थे नित्य सावधान।

(६)

एक अखिलेश को भुलाते जा रहे थे,
विश्व मे अनेक अखिलेश पुजने लगे।
देश मे मची थी अभिवादनो की भारी धूम,
जय जयराम, राधेश्याम भजने लगे।
एक धर्म ग्रन्थ का न आदर रहा था कहीं,
विविधि विचारो के समाज सजने लगे।
लजने लगे थे, ऋषिओ के नाम धाम वश,
आर्य सभ्यता की मर्यादा तजने लगे।

ऋषि सन्देश— (७)

प्यारे ऋषि तुमने कहा था दृढ़ता के साथ,
केन्द्र सत्य विद्या है वेद ईश्वरीय ज्ञान।
'विष युक्त अन्न हे'–समस्त ग्रन्थ मानवो के,
वेद ही स्वत अवशेष परत प्रमाण।
ज्ञान, कर्म, यज्ञ की विशेषता बखानते हैं,
उन्नत उपासना का सत्य रचते विधान।
प्रभु का निदेश है पवित्र, देशवासियों को,
मानव इसी के अनुकल, बनता महान।

(८)

राष्ट्र के सुधार मे महर्षि धारणा थी यही–
नृप हो, चरित्र निष्ठ, नीतिधान, धर्मप्राण।
वेद-शास्त्र शस्त्र की कला मे हो प्रत्यक्ष वक्ष,
वचको के वक्ष, वेध देते जिसके हों बाण।
त्रिविध-सभाओं से त्रि-ताप हरता हो नित्य,
लक्ष्य हो सदैव, पुत्र-तुल्य प्राणियो का त्राण।
सभ्य सदस्य स्वार्थहीन-सयमी हो विज्ञ,
समता सिखावें, भिन्नता का करें म्रियमाण।

× शिवा का अर्थ पार्वती है।

+वारिबधुओं=वेश्या

आर्यसमाज की आवश्यकता

[ले०—श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम०ए० डी-लिट्, अजमेर]

[आर्यसमाज की स्थापना किसी अस्थायी उद्देश्य की पूर्ति के लिये नहीं हुई थी उसकी स्थापना ससार उपकार के महान् उद्देश्य के लिए हुई है, उसकी पूर्ति का प्रयत्न कभी समाप्त नहीं हो सकता। लेखक ने आर्यसमाज की अनिवार्य आवश्यकता बतलाते हुए आर्यजनो को उत्साह पूर्वक ससार उपकार के मिशन मे सलग्न रहने की प्रेरणा दी है।

—सम्पादक]



लेखक



कुछ वर्षों से हमारे कर्णकुहरो मे ऐसे शब्दनाद गुजायमान होते रहते हैं कि 'अब आर्यसमाज मृतप्राय हो चुका है—उसमे अब पूर्व की भाति जीवन एव कार्य का उत्साह और उमग नहीं रही है—अब आयसमाज की आवश्यकता नहीं है—आर्यसमाज को अब अपना काम बन्द कर देना चाहिये—आयसमाज मे शिथिलता आ गई है—आर्यसमाज के सम्मुख अब कोई प्रोग्राम (विशेष कार्य-क्रम) नहीं है—आर्यसमाजी केवल पुरानी लकीर पीट रहे हैं इत्यादि।" यदि ये आवाजें आर्यसमाज के बाहर के लोगो के द्वारा उठाई जावें तो न तो हमे आश्चर्य हो, न विशेष दु ख, क्योकि विरोधी लोग तो अपने प्रतिद्वन्द्वी को निरुत्साहित करना भी विरोध का एक अग और अपनी विजय का एक साधन मानते हैं और वे उसका प्रयोग कभी कभी सफलतापूर्वक करते भी रहते हैं, परन्तु हमारे विस्मय और दु ख का पारावार तब नहीं रहता, जब हम अपने ही आर्यसमाज के कई कर्णधारों और नेताओं एव कार्यकर्त्ताओं को इस प्रकार की बातें करते सुनते हैं। आर्यसमाज के प्लेटफार्मों और व्याख्यान मचों से निराशा की वार्त्तायें एव घटनायें हमे सुनाई जाती हैं। आर्यसमाज के पत्रों मे लेखो मे, सम्पादकीय टिप्पणियो मे निरन्तर निराशावाद का रुदनपूर्ण राग अलापा जाता है। सच मानिये, जब मैं ऐसे लेख अथवा टिप्पणी पढ़ता हू, अथवा ऐसे ठडे निरुत्साही प्रवचन सुनता हू तो मुझे महान दुःख होता है और ऐसे प्रवचनकर्त्ताओं एव लेखकों और टिप्पणी सम्पादकों को मै समाज का हितैषी नहीं समझ सकता। मै तो मानता हू कि वे समाज का अहित ही सम्पादन कर रहे है। जानबूझ कर अथवा अज्ञानतावश एक ऐसे निरुत्साह एव निराशा की बेलि बो रहे हैं जो शनै शनै फलने-फूलने पर अपने आश्रयदाता आर्यसमाज रूपी वृक्ष को ही समाप्त कर देगी। ऐसे निराशावादी महानुभावो से मै प्रार्थना करूंगा कि वे ऐसे सामाजिक पातक-पक से अपने को पकिल और कलकित न कर पृथक् ही रहे तो समाज का अधिक कल्याण होगा।

आर्यसमाज के सम्बन्ध मे निराशा सूचक जो भी बातें कही जाती हैं अथवा आशकायें उठाई जाती हैं, उनको हम तीन श्रेणियो मे विभाजित कर सकते हैं—

(१) अब आर्यसमाज की आवश्यकता नहीं हैं।

(२) आर्यसमाज शिथिल एव निष्क्रिय हो गया है।

(३) आर्यसमाज के सम्मुख कोई विशेष प्रोग्राम नहीं है।

इनमे से पहली बात का उत्तर तो मैने अब से कई वर्ष पूर्व लिखित पुस्तक "आयसमाज की आवश्यकता" मे बडे जोरदार शब्दों मे दिया था वह पुस्तक पटना दिल्ली

और प्रयाग आदि अनेक स्थानो मे कांग्रेस के वृहद अधिवेशनों तक के अवसर पर वितरित की गई थी और मैं समझता हू तब की अपेक्षा अब आर्यसमाज की और भी अधिक आवश्यकता है जबकि समस्त राष्ट्र मे भ्रष्टाचार का ही प्रदर्शन किया जा रहा है, हमारा नवयुवक समाज धर्मनिरपेक्षता के नाम पर अधम एव अनैतिकता के गर्त मे गिरता चला जा रहा है, धर्म एव नैतिक मान्यताओ के प्रति उसकी उदासीनता अक्षन्तव्य होती जा रही है। ईसाई, मुसलमान, बौद्ध और बहाबी प्रचारक पूर्वापेक्षा अधिक सक्रियता से भारतीय सस्कृति, हिन्दू जाति एव राष्ट्रीयता पर अधिकाधिक प्रहार करते जा रहे हैं। भला, ऐसे सकट काल मे इस हिन्दू जाति का, वैदिक सस्कृति का, एव भारतीय राष्ट्रीयता का सर्वोत्तम रक्षक आर्यसमाज के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? इस म्रियमाण हिन्दू जाति को आश्रय कौन दे सकता है ? गद्दियो, कुर्सियो और पदो के प्रलोभनो से ऊँचा उठकर देश मे व्याप्त भ्रष्टाचार और अनैतिकता का निवारण और कौन कर सकता है ? स्वर्गीय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन के शब्दो मे आर्यसमाज से ही ऐसी आशा की जा सकती है। तभी तो मैने एक कविता की प्रारम्भिक पक्तियो मे ही लिखा था—

कहता है कौन कि भूतल पर,
आवश्यक आर्यसमाज नहीं ?
क्या ऋषि का मिशन हुआ पूरा,
कुछ करना वैदिक काज नहीं ?

(२) दूसरी बात यह कही जाती है कि आर्यसमाज शिथिल एव निष्क्रिय हो गया है। यह बात भी सर्वांश मे तथ्यो पर आधारित नहीं है। आर्यसमाज की शिक्षण सस्थाओं एव उसकी अन्य सामाजिक सस्थाओ की तुलना मे भारत का अन्य कोई समाज (ईसाइयो के अतिरिक्त जिन्हें करोड़ो रुपये की वार्षिक सहायता विदेशो से इस कार्य के लिये ही मिलती है) सिर उठाकर नहीं कह सकता कि देश के, समाज सुधार के एव शिक्षा के विस्तार में जो कार्य आर्यसमाज ने किया है और कर रहा है वह किसी और ने भी किया हो। स्वर्गीय महात्मा गाधी जी ने सन् १९२७ के अप्रैल मास मे गुरुकुल कांगडी के महोत्सव पर इस तथ्य को स्वीकार करते हुये आर्यसमाज को बधाई दी थी। अभी १० मार्च को दयानन्द कालेज अजमेर के वार्षिक समारोह की अध्यक्षता करते हुये राजस्थान के मुख्यमत्री माननीय श्री मोहनलाल जी सुखाडिया ने भी स्पष्ट कहा था कि जो कार्य महात्मा गाधी ने किया उसकी भूमिका स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज ने पहले ही तैयार कर दी थी। आर्यसमाज का कार्य समस्त क्षेत्रों में और विशेषत सुशिक्षित समुदाय के विचारो मे परिवर्तन के रूप मे शान्ति के साथ मूक भाव से निरन्तर चल रहा है।

(३) "आर्यसमाज के सम्मुख कोई विशेष कार्यक्रम नहीं है" जो लोग ऐसा कहते हैं, ज्ञात होता है कि उन्होंने आर्यसमाज के उद्देश्य को समझा ही नहीं।

"ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है" इससे बढकर कार्यक्रम किसका है ?

"धर्म वैदिक है हमारा, आर्य प्यारा नाम है।
वेद के अनुसार सारा, जग बनाना काम है॥"

ससार मे (केवल भारत मे ही नहीं) वेद का प्रचार करना, वैदिक विचारो का विस्तार, वैदिक सस्कृति की पूर्ववत् भूतल पर पुन स्थापना आदि महान् कार्य हमारे सामने हैं, इसीलिये "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का हमारा नारा है। इसी आशा को लेकर अमेरिका के योगी एन्ड्रयू जैक्सन जैसे विद्वानो ने आर्यसमाज के लिये लिखा था— (जिसकी कुछ पक्तिया मेरे द्वारा काव्यानुवाद मे प्रस्तुत हैं)—

"अहो, एक प्रज्वलित अग्नि को,
विश्व मध्य मै देख रहा।
है ज्वाला पाखण्ड नाशिनी,
श्रेय कारिणी सुभग महा॥
× × × × ×
आर्य समाज रूप भट्टी मे,
अग्नि शिखा वह जलती है।
दयानन्द के हृदय स्थल से,
जीवन ज्योति निकलती है॥"

★

सांस्कृतिक अभ्युत्थान और आर्यसमाज

(ले०—श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी, मेरठ)

महर्षि दयानन्द ने उन्नीसवीं शती मे जो महान क्रान्ति की, उसका प्रभाव सम्पूण देश पर पडा। धार्मिक एव सामाजिक रूप मे भारतवष मे एक नई चेतना उत्पन्न हुई, परन्तु इसी के साथ राजनीतिक जागृति का भी उदय हुआ।

महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म के प्रचार मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। उन्होने इस बात का पूण प्रयत्न किया कि भारत मे वैदिक सस्कृति का अभ्युदय हो। उनका कहना है "पाच सहस्र वर्षों के पूव वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था।"

वैदिक सस्कृति प्रत्येक व्यक्ति के शुद्धाचरण पर अवलम्बित थी। उन्होने इस बात का यत्न किया कि धम के विपरीत चलने वालो मे वैदिक भावनाओ का उदय हो और वे धर्मान्धता को परित्याग करके धर्म के वास्तविक महत्व को समझने मे सफल हो। इस प्रकार के व्यक्तियों का उन्होंने आर्यसमाज के रूप मे सगठित किया, और उस आर्यसमाज ने अपने देश मे पुन वैदिक धर्म फैलाने का यत्न किया।

आर्यसमाज मे प्रवेश करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात का यत्न करता था कि उसका आचरण शुद्ध और पवित्र हो। उसकी वाणी का मूल्य था। अधिकारी वर्ग आर्यसमाजी को सत्यवक्ता और ईमानदार समझते थे। इस प्रकार के आर्यों ने वैदिक सस्कृति को पुन जीवित करके अपने देश को समुन्नत करने का यत्न किया। आर्यसमाज ने सावजनिक जीवन मे पवित्रता लाने और नैतिक बल की वृद्धि करने मे महान योग दिया।

इसमे सदेह नही कि आर्यसमाज को धर्मान्धता और सामाजिक कुरीतियो के निवारण मे बड़ी सफलता मिली परन्तु हजारो वर्षों से फैले अन्ध विश्वासों को समाप्त कर देना साधारण काम न था। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज के प्रचार कार्य के रुक जाने और प्रभावशील आर्यों के राजनैनिक क्षेत्र मे चले जाने से सस्कृति का स्वरूप ही बदल गया। यही कारण है कि आर्यसमाज ने सांस्कृतिक अभ्युत्थान का जो रूप जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया था, आज उसकी पूर्ण रूप मे अवहेलना की जाने लगी है।

धार्मिक रूप मे सांस्कृतिक अभ्युत्थान का आशय मानव चरित्र का ऊँचापन था। परन्तु आज राजनीति ने उसके रूप को पूणतया परिवर्तित कर दिया है। अतर्राष्ट्रीय जगत मे आज भारतीय सास्कृतिक अभ्युत्थान का अर्थ यह है कि भारतीय युवतिया कला और सस्कृति के नाम पर विदेशो मे जाकर नृत्य और सगीत का प्रदर्शन करें, वहां जाकर वे पश्चिमी वातावरण की छाप अपने ऊपर लगायें। अन्तर्देशीय जगत मे सास्कृतिक अभ्युत्थान का आशय यह है कि हमारी लडकिया रसिकजन अफसरों और धर्म से गिरे रईसो और राजपुरुषो के सम्मुख अर्द्धनग्न रूप में नृत्य करें, और मधुर कठ से सगीत प्रस्तुत करें। आश्चर्य की बात तो यह है कि विदेशी लडकियां भी हमारे बडे बडे कार्यक्रमो मे सस्कृति और कला के नाम पर प्रदर्शन के लिए आमत्रित की जाने लगी हैं और ऐसे समारोहों में हमारे ऐसे नेता भी सम्मिलित होते हैं, जिन पर सम्पूर्ण राष्ट्र के नैतिक उत्थान का उत्तरदायित्व है। हम नृत्य और सगीत के विरोधी नहीं, परन्तु इसके लिए मर्यादा होनी चाहिए। यह नहीं कि इजीनियर्स या किसी अन्य वैज्ञानिको का सम्मेलन तो केवल दो घटे का हो और उसके साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों की योजना चार घटे के लिए

[आज सस्कृति के नाम पर भारतीय भावना के साथ जो अन्याय हो रहा है, सस्कृति को मनोरजन और विलासिता का प्रतीक समझा जा रहा है, आर्यसमाज को उसके विरुद्ध आन्दोलन करना चाहिये। भौतिक विकास की अपेक्षा आत्मिक विकास ही सास्कृतिक विकास है इस कर्तव्य की ओर योग्य लेखक ने आर्यसमाज के कर्णधारों को प्रेरणा दी है। —सम्पादक]

की जाय। ऐसा करने से मुख्य कार्यक्रम का कोई महत्व नहीं रहता। जब तक हमारे शासक और उच्च अधिकारी इस प्रकार की नीति बरतते रहेगे तब तक प्राचीन भारतीय सभ्यता और सस्कृति कभी नहीं पनपेगी।

आज स्थिति यह है कि धम और सदाचार पैसे के आगे नगण्य समझे जाने लगे है। समाज मे इने गिने सत महात्मा अथवा योगियो को छोडकर अपने-अपने क्षेत्र मे वे व्यक्ति सम्माननीय समझे जाते हैं, जो धनी और प्रभावशाली है। ऐसी दशा मे सास्कृतिक मर्यादायें भी स्थिर नहीं रहीं। इसका प्रभाव हमारे सारे समाज पर पडा हे। समाज का सामान्य जीवन आज अस्त व्यस्त होता जा रहा है और समाज मे वे तत्व पनप रहे है जिनका कोई धार्मिक आधार नहीं और जिनका चरित्र भी उन्नत नहीं।

इस विषम परिस्थिति का मुकाबला करने की शक्ति आज भी यदि किसी सस्था मे हे तो वह केवल आयसमाज ही है। आज भी आयसमाज मे काम करने वाले अपने चरित्र को उन्नत करने का यत्न करते ह। उनमे अब भी यह भावना है कि वे ऐसा कोई निन्दनीय काय न करें, जिससे समाज को हानि पहुचे या वे समाज की दृष्टि मे नैतिकता से गिरे समझे जायें। मेरा अपना यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे राजपुरुष और नेता भले ही अपने देश का आर्थिक विकास कर दें परन्तु उनमे यह शक्ति नहीं कि वे मानव चरित्र को ऊँचा कर सकें। मानव चरित्र को ऊँचा करने के लिए चरित्रवान् आर्यों की आवश्यकता है, ऐसे आर्यों की आवश्यकता हे जिनमे गरीबी से टक्कर लेने की शक्ति हो, जो आज के प्रलोभनो मे न पडकर अपने सादगी के जीवन मे सन्तोष करने वाले हो, आज आवश्यकता ऐसे व्यक्तियो की है जो सरकारी कार्यालयो, सस्थानो और कल कारखानो मे काम करते हुए अपनी ईमानदारी की वही छाप लगाने वाले हो जसी अग्रेज के शासनकाल मे आर्यसमाज मे काम करने वालो ने लगाई थी। उन्होने अपने अफसरो से यह कबुलवा लिया था "आर्यसमाजी बडे ईमानदार होते हैं।"

आयसमाज मे काम करने वालों के सम्बन्ध मे जनता बडी ऊँची भावना रखती थी। स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा हसराज, लाला लाजपतराय, नारायणस्वामी आदि अनेक आर्य नेताओ ने विद्वानो, राजपुरुषो और अन्य क्षेत्रो मे काम करने वाले सुधारकों ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। उनके समय मे आर्यसमाज का सर्वत्र सम्मान था। उसी सम्मान को पुन प्राप्त करने के लिए आयसमाज को प्रयत्नशील होना हे। सस्कृति के अभ्युत्थान के लिए शुद्ध विचारो और शुद्धाचरण की आवश्यकता है। जो व्यक्ति शराब और अन्य व्यसनो मे फसे रहते है, वे भारतीय सस्कृति की रक्षा कभी नही कर सकते। इस प्रकार के व्यक्ति तो इस देश की सास्कृतिक मान्यताओं का गला घोट रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों का उद्देश्य तो केवल जीवन का आनन्द लेना मात्र हे।

प्राचीन वैदिक सस्कृति की रक्षा के लिए हमे महर्षि दयानन्द के माग का अनुसरण करना होगा। जीवन मे पवित्रता, धार्मिकता और सत्यवादिता लानी होगी। इस देश के महापुरुषो के आदर्शों के अनुकूल आचरण करना होगा। इसके अतिरिक्त पारिवारिक जीवन को भी पश्चिमी विलासिता और अथलोलुपता मे रक्षा करनी होगी।

हम आज के पथ भ्रष्ट युवक और युवतियो को भी सन्माग पर लाना होगा। आज स्थिति यह ह कि युवक और युवतिया नये विचारो मे पलकर आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्र और स्वच्छन्द हो गये है। शिक्षा पाकर वे पश्चिमी विचारो मे रहना अधिक पसन्द करते हैं। भारतीय सस्कृति की मर्यादा का पालन करना तो वे पिछडापन समझते है। उनके इन विचारो को परिवर्तित करना यद्यपि कठिन काम है, फिर भी आयसमाज मे वह शक्ति निहित है कि उसमे काम करने वाले लाखो भाई और बहिनें अपने पवित्र आचरण से इन बहके युवको और युवतियो मे कुछ परिवतन ला दें।

आयसमाज मानवमात्र का कल्याण चाहता है। आर्य समाज मानव जीवन मे पवित्रता लाना चाहता है। आर्यसमाज मरती हुई मानवता को जीवन देना चाहता है। परन्तु इसके लिए आवश्यकता है कि चरित्रवान आर्यसमाजी अपना मूल्यवान समय देकर समाज के दैनिक जीवन मे परिवतन लाने का यत्न करें। मेरे विचार मे सामाजिक उत्थान का अर्थ सम्पूर्ण राष्ट्र का अभ्युदय है। आर्यसमाज का जन्म मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये हुआ। अत हम सबको पूरी शक्ति के साथ अपनी सस्कृति की रक्षा मे योग देना चाहिए और आर्यसमाज के ससारोपकार उद्देश्य की वास्तविक रूप मे पूर्ति करनी चाहिए।

❀

हमारा उद्धारकर्ता

(ले०—डा० श्री मुन्शीराम शर्मा, आयनगर, कानपुर]

आर्यसमाज भारतीय भावना, परम्परा और गौरव का रक्षक है, महर्षि दयानन्द ने मानव संस्कृति के पथ-प्रदर्शन के लिये इसका निर्माण किया था इसकी उन्नति करना हमारा कर्तव्य है। —संपादक

देशोद्यान कभी सौरभ-सम्पन्न अमराइयो के स्तवको से विस्तीर्ण व्योम और पृथित पृथिवी को वासन्ती आभा प्रदान कर रहा था। वे प्रकृति से ही गुरु तरु, न जाने, सहसा कहा विलीन हो गये ? उद्यान मे धीरे-धीरे उजडते-उजडते रह गई वे बामिया, जो विषधर भुजगो की क्रीडा-



लेखक

स्थली बनी हुई थीं। अब वे आम्र नहीं थे जो सुपक्व फल गुच्छो से लदे हुए रसपान के लिए सबको आकर्षित करते थे और उसके पूर्व मजरियो की भीनी-भीनी गन्ध से मधुपो के लिये लीला-विनोद का साधन बने हुए थे।

देश का हरा मरा उद्यान उजड गया। 'न मेस्तेनो जनपदे' की घोषणा करने वाले आर्य-सम्राट विदा हो गये। अमृत के स्थान पर विषधरो का सामना करना पडा, पारस्परिक सहायता द्वारा एक दूसरे के योग-क्षेम के विधाता वैमनस्य के क्रीडा-कन्दुक बन गये। विकास की चरम काष्ठा पर पहुचकर आय जाति ऐसे पतन को प्राप्त हुई कि उसके चारो ओर जन्जाल ही जन्जाल दिखलाई देने लगा। कमल नहीं, शैवाल भी नहीं, कर्दम ही कर्दम !! विशीर्णच्छद हस की भाति उसके क्लेश का पारावार नहीं था।

वसुन्धरा के इस रत्न को लूटने के लिए विदेशियो की भी गृध्र-दृष्टि पडी। काफिले के काफिले, समूह के समूह एक एक कर आये और लूट-खसोट कर चले गये। कुछ ऐसे भी आये जिनके देश मे जनता एक एक बूद पानी के लिए तरसती रहती है, एक-एक कण दाने के लिए परमुखापेक्षी बनी रहती है। गगा, यमुना, रावी, चुनाव चम्बल का यह प्रदेश, गोदा कावेरी और नर्मदा की जल-राशि से सिंचित यह भूमि उन्हे भा गई। वे यहीं बस गये। कुछ ऐसे भी आये जो बसे ही नहीं, राज्य करने लगे और राज्य ही नहीं, अपनी मान्यताओ को भी थोपने लगे।

आर्य जाति का स्वत्व ध्वस्त हो गया, पर इस अमृत सन्तान को तो अमर रहना था। भगवान के विधान मे जो अध्यात्म की निधि इसे सृष्टि के प्रारम्भ मे मिली, उसे मानवता के सत्राण के लिए सुरक्षित रहना था। आपत्तियों पर आपत्तिया आई, आधी और तूफान आये, प्रलयकर दृश्य उपस्थिति हुए, पर अपनी अमर निधि को अचल मे छिपाये यह जैसे-तैसे काल-यापन करती रही, सास लेती रही। बीच-बीच मे आश्वासनकारी आन्दोलन होते रहे। आचार्य-सन्त क्षत्रिय इसमे, अपने बलिदानों द्वारा, प्राण फूकते रहे पर सात सौ वर्षों का पराधीनता का लम्बा चौडा युग किसी का भी कचूमर निकाल देने के लिये पर्याप्त होता है। यह तो प्रभु की कृपा ही थी कि हम मिटे नहीं, बचे रहे, कोई तत्व हमारे अस्तित्व को प्राणवत्व देता रहा।

कहते हैं, देव, विधि के विधान मे, किसी पद-दलित की सहायता के लिये आ जाते हैं। कर्म-विपाक ही उन्हें

खींच लाता है या उनकी सहज करुणा उन्हे ले आती है, यह तो भगवान् ही जाने, पर ऐसा होता अवश्य है। वेद के कई मन्त्रों मे दिव्य गुण सम्पन्न धर्मात्माओं के अवतरण और उनके द्वारा होने वाले रक्षण की चर्चा आती है। महर्षि दयानन्द ऐसे ही एक देव थे। उनके तप ने उन्हें मूलशकर से दयानन्द बना दिया था। वे मूल मे तो शकर कल्याणकारी थे ही। जीवन के अन्तिम पक्ष मे वे दया मे ही आनन्द लेने लगे। उनकी दया प्राणीमात्र के लिये थी। मानव और मानवों मे श्रेष्ठ आर्यवश के उद्धार मे तो उनकी दया का सर्वाधिक सक्रिय रूप दिखाई दिया। उनका विश्वास था कि यदि आर्य जाति बच गई, तो मानवता की भी रक्षा हो जायगी और यदि आर्यत्व ही ही नहीं रहा, तो मात्स्यन्याय की चपेट मे सभी मृत्यु-ग्रस्त हो जायगे।

आर्य जाति के उद्धार के लिये, भारत का उत्थान, देश का पराधीनता-पाशो से उन्मोचन आवश्यक था। महर्षि के ग्रन्थों मे यह भाव पद-पद पर ध्वनित हो रहा है। स्वाधीन देश ही अपनी अस्मिता, अपनी सभ्यता, अपनी सस्कृति, अपनी ज्ञान-राशि, अपनी आदर्श परायणता को अक्षुण्ण रख सकता है। पराधीनता तो इनका रक्षण नहीं, भक्षण करती है। महर्षि का अन्तिम जीवन राजस्थान मे व्यतीत हुआ और वहा स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिये साधनो का अनुसन्धान और प्रयोग भी। परोपकारिणी सभा और आयसमाज की स्थापना उन्हीं दिनो की गई।

महर्षि मन वचन-कर्म से एक थे। मन और वाणी के साथ कर्म न हो, तो उनका कोई उपयोग नहीं है। क्रिया-वती वाणी, कर्म-गर्भा मति ही सार्थक है। आर्यसमाज ने भी दोनों को साथ-साथ रखा। उसने उपदेश ही नहीं दिया, करके भी दिखाया। वह वाक्शूर ही नहीं, कर्मशूर भी रहा है। उसने भट्ट ही नहीं, भट का भी कार्य किया है, ब्राह्मण ही नहीं, क्षत्रियत्व की दीप्ति भी प्रदर्शित की है। उसने जहां विश्वदेवों की भाति प्रकाश दिया है, वहा पितरो की भाति रक्षा भी की है। अथर्व० १८ १-४७ मे दोनो तत्व एक दूसरे के सवर्धक कहे गये हैं। भट्ट भट को, ब्रह्म क्षत्र को भावित करके सप्राण बनाता है, तो क्षत्रिय ब्राह्मणत्व के विकास के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत कर देता है। एक को दूसरे की अपेक्षा है। दोनो के समन्वय द्वारा ही उन्नति का अवरुद्ध पथ उन्मुक्त होता है। आर्यसमाज ने जहा गुरुदत्त को जन्म दिया, वहा महात्मा हसराज को भी, स्वामी श्रद्धानन्द को उत्पन्न किया वहा लाला लाजपतराय को भी, स्वामी दर्शनानन्द तथा गणपति शर्मा उसकी कोख मे पले, वहा प्रसिद्ध क्रातिकारी भाई परमानन्द और प० रामप्रसाद बिस्मिल भी। उसने विचार और बलिदान एक साथ दिये हैं, ज्ञान और कर्म की एक साथ प्रतिष्ठा की है, कथनी और करनी को एक समान महत्व दिया है, 'शास्त्रादपि शरादपि' की उक्ति को जीवन मे घटाया है और देश एव विश्व के उत्थान मे अनुपम योगदान दिया है। आर्यसमाज की यह देन भारतीय इतिहास मे अमर रहेगी।

मै महर्षि को और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज को भारत का उद्धारकर्ता मानता हू। महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियो ने भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए, आर्य जाति को उसके प्राचीन गौरव तक पुन पहुचाने के लिये, वेद को मनुप्रोक्त प्रतिष्ठा देने के लिये, सस्कृत तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के लिये, देश मे भावात्मक एकता की स्थापना के लिये, स्त्री जाति तथा अछूतो के उद्धार के लिये जो पुरुषार्थ किया है, वह स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा और आने वाली पीढ़ियो का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। उसके अब तक के जीवन मे आचार्य शकर तथा कुमारिल भट्ट ही नहीं, प्रताप छत्रसाल तथा गुरु गोबिन्द भी दिखाई दिये है। ज्ञानियो और बलिदानियो की एक शृ खला की शृ खला उसने उत्पन्न की है। ऐसे ऋषि को और ऐसे आर्यसमाज को क्या कोई कभी भूल सकता है ?

दयानन्द-वचनामृत

मेरी अत करण से यही कामना है कि भारतवर्ष के एक अन्त से दूसरे अन्त तक आर्यसमाज स्थापित हो, और देश मे व्यापी हुई कुरीतियाँ उन्मूलित हो जाएँ।

आर्यसमाज और वैदिक आन्दोलन

(ले०—श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री)

[वेद प्रचार आर्यसमाज के रचनात्मक कार्यक्रम का अग रहा है। वेद के सम्बन्ध मे प्रत्येक आय को श्रद्धा और अध्ययन की परम्परा बनाये रखनी चाहिये। लेखक ने वेद के प्रति आर्यजनो का ध्यान आकृष्ट किया है।

—सम्पादक]



लेखक

आर्यसमाज की स्थापना युगद्रष्टा भगवान् दयानन्द के द्वारा हुई थी। प्रतिवर्ष आर्यसमाज स्थापना दिवस हम मनाते है। और आर्यसमाज के कार्यों का गुणगान करते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि वतमान काल की अपेक्षा प्रारम्भ काल का रूप कुछ विशेष था। प्रारभिक काल का आर्यसमाज एक आन्दोलन था। वतमान का आयसमाज एक सस्था हे। आन्दोलन और सस्था मे जो भेद हुआ करता हे वही भेद वर्तमान और प्रारम्भ के आयसमाज मे है। आर्य समाज के आन्दोलन की एक बडी भारी छाप वेदाध्ययन (Vedic Studies) पर पडी।

प्रारम्भ काल मे लोगो मे यह धारणा बन गई थी कि वेद तो कलियुग मे लुप्त हो गये है। परन्तु आर्यसमाज के वेद प्रचार का यह प्रभाव तो अवश्य हुआ कि लोग इस कलियुग मे भी वेद का होना मानते हैं और उन्हीं सहिताओ का पठन पाठन करते हैं जिनको आयसमाज वेद की सहिता कहता आया है। अर्थ और व्याख्या मे मतभेद रखते हुए भी कोई इस विषय मे मतभेद नहीं रखता है कि ये चार सहितायें वेद नही हे। साथ ही वेद की मूल सहिताओ का जहा से भी प्रकाशन हुआ है—सबसे अधिक प्रकाशन और विस्तार आर्यसमाजाधिकृत स्थानों से ही हुआ है। चारो वेदो की चारो मूल सहिताओ का एकत्र प्रकाशन अब भी श्री परोपकारिणी सभा अजमेर अथवा आय सस्थानो एव आयसमाज से प्रभावित सस्थानों से ही है। एक रूढ़ि यह चल रही थी कि शूद्र और स्त्री को वेदाध्ययन और वेद के कर्मकाण्ड का अधिकार नहीं है। परन्तु आज आर्यसमाज के प्रभाव से यह धारणा समाप्त-प्राय हो चुकी है। कोई भी इसे समझदारी का विषय नहीं समझता है। बडे-बड़े सनातनी विद्वान् भी अब इसे प्रश्रय नहीं देते।

कुछ ऐसे भी सनातनी विद्वान हैं जो वेद से अब विज्ञान निकालते हैं। जयपुर की एक विद्वत् परम्परा इस पर कार्य भी करती आ रही है। उसके प्रकार पर भले ही विवाद हो, वह इसमे सफल है या नहीं, कल्पना मे उड रही है या वास्तविकता भी उसकी खोज मे है या नहीं—इत्यादि बातो पर मतभेद हो सकता है और है। परन्तु वेद मे ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है, इस पर किसी का मतभेद नहीं हो सकता है। यह धारणा सनातन धर्मी विद्वानो को अपने आचार्यों से तो प्राप्त नहीं है। क्योकि सायण, महीधर और उवट वा वेंकट माधव आदि किसी ने भी इस विचारधारा को प्रस्फुटित नहीं किया है। स्पष्ट शब्दों मे यदि किसी ने इस विचारधारा को प्रकट किया है तो आचार्य दयानन्द सरस्वती ने किया है और वह आर्यसमाज के तीसरे नियम के रूप मे विद्यमान है। कहना पडेगा कि यह बहुत बडा प्रभाव है और है आर्यसमाज के वैदिक आन्दोलन का ही।

श्री अरविन्द घोष ने भी वेद की वैज्ञानिकी व्याख्या करने की घोषणा की है। कई आर्यसामाजिक जन भी व्यथ मे उनके कथन से महर्षि की तारीफ सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। श्री अरविन्द ने महर्षि दयानन्द को कहीं पर महर्षि वा ऋषि नहीं लिखा है। वे तो स्वय ही वेदर्षि और महर्षि बनना चाहते थे। हा! इस दिशा मे वे खुले महर्षि दयानन्द की विचारधारा का सामना नहीं कर सकते थे। अत कभी-कभी तारीफ भी कर दिया करते थे। परन्तु अरविन्द के विचारो को मान देने वाले निष्पक्ष विद्वानों श्री के० वरदाचारी आदि ने महर्षि दयानन्द की वेद-सम्बन्धी कारकासरणी का और उनके यौगिकवाद की भूरि-भूरि प्रशसा की है। इससे वर्तमान विचारशील विद्वानों का दृष्टिकोण महर्षि की ओर आ रहा है।

वेद के अनुसधान पूर्ण ग्रन्थ जितने भी मैने लिखे हैं वे भगवान् दयानन्द की सरणी के पोषक हैं। परन्तु मैंने देखा है कि इन ग्रन्थो का अधिक स्वागत बाहरी और जो आर्य समाजी नहीं हैं—उन विद्वानो के द्वारा हुआ है। 'वैदिक-इण्डेक्स' वेद के इतिहासो की शिक्षा को पुष्ट करने वाली एक दुर्गम अजेय दुग समझी जाने वाली पुस्तक समझी जाती रही है। परन्तु जब मैंने इसके उत्तर मे 'वैदिक इतिहास-विमर्श' जैसे महान ग्रन्थ को लिखा और प्रकाशित कराया तो ज्ञात हुआ और अभी तक भी सदा सम्मतिया आती है—कि यह एक अदभुत कृति है। ये प्रशसक विद्वान आर्यसमाजी नहीं—फिर भी इस अनुसधान की प्रशसा करते है। आर्यसमाजी तो इस महान कार्य की प्रशसा करने मे भी अकिंचन है और उसको पार्टी का ही सदा ख्याल रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सब प्रभाव आर्यसमाज के अतिरिक्त और किसका हो सकता है।

श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी सनातन धर्म सभा के प्रधान थे। जब मै पोरबन्दर गुरुकुल की सस्थाओ का अचार्य था तो एक समय उनका वहा पर जाना हुआ। श्री सेठ नान जी भाई कालिदास मेहता के यहा वे ठहरे थे। गोस्वामी जी ने कई व्याख्यान दिये—सब मे मेरी तारीफ करते थे। सायकाल को एक दिन गीता मन्दिर मे भी सभा थी। मेरे जाते ही उन्होने बडे आदर से बैठाया। सेठ जी को आश्चर्य हुआ कि इनको आचार्य जी का (मेरा) परिचय कहाँ से हो गया है। उनको कुतूहल हुआ। गोस्वामी जी जब व्याख्यान देने खडे हुए तो सेठ जी के इस कुतूहल को मिटाते हुये बोले कि—सेठ जी! मैं तो गीता का ही व्याख्यान देता हू। वेद की व्याख्या तो ये ही कर सकते है। ये आर्यसमाजी हैं, मैं सनातनी हू—परन्तु वेद विद्या मे मै भी इन्हे प्रमाण मानता हू। मेरा लाहौर से परिचय है और यही धारणा है। सेठ जी और सभी श्रोता आश्चर्य मे रह गये। गोस्वामी जी की बात का लोगो पर यह प्रभाव पडा कि वेद के वास्तविक विद्वान अब भी आर्यसमाज मे ही हैं।

यह तो एक घटना है। वस्तुत आन्तरिक रूप मे वैदिक अध्ययन पर आर्यसमाज के प्रवर्तक का पर्याप्त प्रभाव है। पाश्चात्यो पर प्रभाव डालने के लिये आर्य समाज को वैदिक आन्दोलन को चालू रखना चाहिये। सारी शक्ति वेद के आन्दोलन मे लगानी चाहिये। आर्य समाज के स्थापना दिवस पर हम सोचें, समझें, और कटिबद्ध हो वेद के अध्ययन को प्रगति देने के लिए। यदि इस दिशा मे एक बार आर्यसमाज आदोलनकारी के रूप मे जुट जावे तो सारी बाधायें काफूर हो जावेंगी और महर्षि का वैदिक दृष्टिकोण सभी अपनाने को तैयार होंगे।

आर्यसमाज स्थापन





कविवर प्रणव शास्त्री एम ए
फीरोजाबाद



बजाई विश्व मे ऋषि ने
अभय हो वेद शहनाई
लगे स्वर गजने नभ मे
लहर आन द की आई ।



मतो या सम्प्रदायो म हुई पतझ ड की वेला
उगे नव तक कोपल पल्लवो का लग रहा मेला
विचारो के बगीचे म वस तो छवि छटा छाई १



सजन सुषमा सजाने को अन दि नित्व की म ना
वर्ण आश्रम व्यवस्या को अनठ रग मे ढला
जगत कल्याण करने को उषा ने किरण प्रकटाई २
धरा मे जन्म लेते ही अटल सिद्धा त की निधिया
बढा कत्त व्य पथ मे कारवा ले वेद की विधिया



कर डो दीपको ने आरती पा प न म्जरा ई
दया धा व धम दशन प्राप्त नद्ध न की रा
लगा झक झमने शीतल सघन फल कल्पतरु या ।
वर बलिदान की बयारी इसी ने म न न राई ४
सतत समता सुजनता को यही जागन जगाता है
भयानक भीति भावो को यही भावुक भगाता है
सकल ससार उपकृति की प्रतिज्ञा पुण्य दुहराई ।५।



सनातन वेद सस्कृति का मिला वरदान इसको है
महा मुनि मा य ऋषियो का मिला अभिमान इसका है
न सागर नाप सकता है इसी की भाव गहराई ६।।
सुखद विज्ञान-वैभव धम की धारा मिला दे जो
दूखित दुख दम्भ खम्भो को सबलता से हिला दे जो
य ी ज्ञ शक्ति क याणी धरा मे ध रणा नाई ७
लिए कर ओम ध्वज को व्योम मे यह नित्य फहरावे
सदा ही सत्य का सागर सबल सान द लहरावे



जगे आयत्व अवनी मे लिए अध्यात्म-तरुणाई ।।८।।



आर्यसमाज—उपलब्धियाँ और भविष्य

(ले०—प्रो० श्री भवानीलाल जी भारतीय एम० ए०)

उन्नीसवीं शताब्दी के महान सुधारक और भारत के सांस्कृतिक नवोदय के अप्रतिम सूत्रधार स्वामी

लेखक

दयानन्द सरस्वती ने सन १८७५ मे बम्बई मे आर्यसमाज की स्थापना की। यह वह युग था जब कि भारत राजनैतिक दृष्टि से तो पराधीन था ही उसे आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी पूर्णतया परमुखापेक्षी बनाये रखने की सुदृढ़ योजना गौरांग महाप्रभुओं ने बना ली थी। आर्यसमाज की स्थापना के दस वर्ष पश्चात् राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) अस्तित्व मे आई।

[आर्यसमाज आन्दोलन पर लेखक ने विचार कर प्रेरणा दी है। आर्यसमाज का अतीत गौरवपूर्ण है वर्तमान भी महत्वशाली है परन्तु यदि हम भविष्य को भी उज्ज्वल बनाना चाहते हैं तो हमे आत्म-निरीक्षण पद्धति अपनानी होगी। आर्यसमाज की भावी पीढ़ी के लिये हमे अभी कठोर साधना करनी होगी। —सम्पादक]

अपने जीवन की इस लम्बी अवधि मे आर्यसमाज ने अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। एक युग वह भी था जब आर्यसमाज धार्मिक, सामाजिक और नैतिक क्रान्ति का अग्रदूत बनकर भारत के जनसमाज के सम्मुख उपस्थित हुआ था। उस समय उसके क्रान्तिकारी रूप और गतानुगतिकता एवं रूढ़िवादिता को समाप्त कर देने के लिए तत्पर उसके अनुयायियों को कार्यक्षेत्र में उतरा हुआ देखकर लोगों को यह आशा होने लगी थी कि समग्र राष्ट्र के सांस्कृतिक नेतृत्व की क्षमता आर्यसमाज और केवल आर्यसमाज मे ही है। वह युग समाज के जर्जर और रूढ़िग्रस्त ढांचे को नष्ट कर उसके स्थान पर एक सशक्त और दृढ़ समाज व्यवस्था स्थापित करने का युग था। युग की उस मांग को पूरा करने के लिये आर्यसमाज ने शक्ति भर प्रयास किया।

आर्यसमाज के इतिहास मे एक जमाना वह भी आया जिसे संस्थाओं का युग कहा जा सकता है। प्रचलित शिक्षा पद्धति को देश के सुयोग्य नागरिकों के निर्माण मे बाधक समझते हुए आर्यसमाज ने अपने तत्वावधान मे द्विविध शिक्षण संस्थायें चलाईं। डी०ए०वी० कालेजों मे जो शिक्षा दी जाती थी, वह यद्यपि राजकीय शिक्षण-संस्थाओं मे दी जाने वाली शिक्षा से अधिक भिन्न नहीं थी, फिर भी राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने और शिक्षा के साथ-साथ छात्रवर्ग मे स्वधर्म, स्वदेश और स्वसंस्कृति के प्रति अनुराग एवं निष्ठा उत्पन्न करने मे ये कालेज अद्वितीय थे। फिर महान शिक्षा शास्त्री आचार्य श्रद्धानन्द सन्यासी ने गुरुकुलों का प्रवर्तन कर प्राचीन शिक्षा पद्धति को मूर्तिमान करने का प्रयास किया। नवयुग की सभी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को आत्मसात् करके भी गुरुकुल पुरातन युगीन संस्कृति की याद ताजा करते रहे। यदि एक ओर वेद, वेदांग आदि आर्षवाङमय के अनमोल रत्नों के अध्ययन अध्यापन की सुचारु व्यवस्था की गई तो दूसरी ओर अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, पाश्चात्य दर्शन, राजनीति, समाज शास्त्र आदि सामाजिक विद्याओं (शेष)

Sciences) तथा विविध विज्ञानों (Natural Sciences) को भी पाठ्यक्रम मे उचित स्थान दिया गया। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सर्वप्रमुख विशेषता रही विविध ज्ञान विज्ञान का राष्ट्रभाषा के माध्यम से शिक्षण कराना।

गुरुकुलो का ध्येय केवल पुस्तकीय ज्ञानार्जन तक ही सीमित नहीं था। छात्रो के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास को चतुर्मखी प्रगति का आयोजन भी उनका मुख्य लक्ष्य था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने देश और धर्म को अनेक निष्ठावान सेवक और कार्यकर्त्ता दिये यह उसकी अतीत कालीन सफलता का द्योतक है।

वह सस्थावाद का ज़माना था। केवल शिक्षण सस्थायें ही नहीं, अनाथालय, विधवाश्रम आदि अन्यान्य समाज की दृष्टि से उपयोगी सस्थाओ का भी सगठन आर्यसमाज के तत्वावधान मे हुआ। ऐसा प्रतीत होता था मानो कर्मस्रोत प्रस्रवित हुआ है। समाज सेवा की यह प्रवृत्ति दुष्काल, बाढ, महामारी आदि दैवी आपदाओ मे तो साकार हो उठती ही थी, परन्तु सामान्य समय मे भी दलितोद्धार, नारी जागरण आदि के रूप मे वह समय समय पर प्रकट हो कार्यकर्ताओ की कर्मठता और उनकी लगन की सूचना देती रहती थी।

वह समय आर्यसमाज का स्वर्ण युग था। चारों ओर उत्साह और उमग का वातावरण था। देश, जाति और धर्म के लिये कुछ कर गुजरने की भावना लोगो मे काम कर रही थी। उसी उत्साह की लहर मे आर्यसमाज को अनेक अग्नि परीक्षाओ मे से गुजरना पडा, परन्तु अपने अनुयायियो की दृढ आस्था और सिद्धान्तों के प्रति उनके अडिग प्रेम ने उन सारी विपत्तियों को निश्शेष कर दिया, जिनके कारण एकबार तो इस महान सस्था के अस्तित्व के विषय मे ही शंका उपस्थित हो गई थी। हैदराबाद दक्षिण का विराट् सत्याग्रह आन्दोलन तथा सिंध मे सत्यार्थप्रकाश की जब्ती के विरुद्ध आन्दोलन हमारे प्रगति पथ को अकित करने वाले दृढ चरण चिह्न हैं।

आर्यसमाज के विगत गौरवपूर्ण अतीत का यह एक सिंहावलोकन मात्र है। आज परिस्थितिया बदल चुकी हैं। विज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति ने हमारी आस्थाओ तथा धारणाओ को डावाडोल कर दिया है। धर्म और अध्यात्म की आवश्यकताओ और उपयोगिता के प्रति मानव सशयग्रस्त हो गया है। ऐसी सक्रान्तिकालीन स्थिति मे आर्यसमाज का जराजीर्ण ढांचा यदि चरमरा उठा हो तो आश्चर्य ही क्या ? जिस प्रकार मनुष्य की आयु निश्चित होती है उसी प्रकार सस्थाओं और आन्दोलनो के भी उन्नति और विकास के निश्चित दिन होते हैं। महाकाल के इस निर्मम नियति-चक्र के दशनों मे पीसे जाकर न जाने कितने विराट् जन आन्दोलन समाप्त हो गये और हो रहे हैं। ऐसी अवस्था मे यदि आर्यसमाज के नेता और सचालक यह सोचते हों कि उन्होने अपनी सस्था को सजीवनी बूटी पिला दी है तो यह यह उनका भ्रम ही है। आर्यसमाज की मौलिक धारणायें और उसके प्रवर्तक के सिद्धान्त और मन्तव्य अजर-अमर है, परन्तु इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि सस्था और आन्दोलन के रूप मे आगामी दो शताब्दियों मे आर्यसमाज जीवित रहे ही। हमारे सामने ब्रह्मसमाज और थियोसोफी आदि अन्य धार्मिक-सामाजिक (सोशियो रिलीजियस मूवमेण्टस) आन्दोलनो के उदाहरण विद्यमान हैं। राजा राममोहनराय के सुधार और सस्कार सम्बन्धी सिद्धान्त और कार्य भारतीय इतिहास मे अमर हो गये, परन्तु उन के द्वारा प्रवर्तित ब्राह्मसमाज आज कहां है ? बगाल मे उसकी दो चार शाखायें नाममात्र के लिये भले ही विद्यमान हो अन्यथा उन्नीसवीं शताब्दी का वह जीवन्त प्रगतिशील आन्दोलन आज इतिहास के पृष्ठो में ही शेष रह गया है। अत निष्कर्ष रूप मे हम यह कह सकते हैं कि आज आत्म निरीक्षण और आत्मालोचन की सर्वोपरि आवश्यकता है।

हम एक क्षण के लिये अन्तर्मुखी होकर सोचें। हमारे सगठन में क्या-क्या दोष आ गये हैं ? क्यों हमारी विविध प्रवृत्तियां आलस्य, प्रमाद और अवसाद के कारण कुण्ठित हो गई हैं ? हम अपने आदर्शों के अनुकूल अपना खुद का ही जीवन नहीं बना पा रहे तो विश्व को आर्य बनाने का स्वप्न कैसे साकार हो सकेगा।

आज आर्यसमाज के प्रत्येक विभाग को नवीन रूप मे सगठित करने की आवश्यकता है। हमारे उत्सव और अधिवेशन, हमारे सत्सग और मन्दिर, हमारा प्रेस और व्याख्यान मच, हमारे प्रचारक और उपदेशक सभी युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार सुसगठित, सुसम्बद्ध एव शक्तिशाली होकर सार्वभौम वैदिक धर्म के

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

आर्यसमाज का मिश्नरी साहित्य

[ले०—श्री विश्वनाथ जी शास्त्री एम० ए०, सागर विश्वविद्यालय]

वैदिक धर्म ससार मे सबसे प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ धम है। परन्तु काल की अबाध गति से इसमे इतने परिवर्तन हो गये कि इसके मौलिक रूप को ही समझना कठिन हो गया। इसका समुज्ज्वल रूप मिट्टी की अनेकानेक परतो के कारण अत्यन्त कलुषित हो गया था। यह धर्म जो पहले लोहे के दण्ड के समान था अब सूत के कच्चे धागे के समान हो गया। विधर्मियो ने इस जजर धर्म पर अनेकानेक आक्रमण करके करोडो वैदिक धर्म के अनुयायियो को विधर्मी बनाना आरम्भ कर दिया। ऐसे विषम समय मे महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ। उन्होने वैदिक धर्म के मौलिक रूप को जनता के सामने रखा। उन्होने अपने अपूर्व तर्क बल से सभी विधर्मियो की पोल को खोला और वैदिक धर्म की स्थापना की। जनता ने यह चमत्कार देखा और फिर से भारतीय वैदिक सस्कृति की ओर झुकी। विधर्मियो के आक्रमण कुछ ढीले पडे। परन्तु यह आन्दोलन कोई क्षणिक तो नहीं था। ऋषि ने इस आन्दोलन को सर्वदा के लिए चलाये रखने के लिए १८७५ मे आर्यसमाज को स्थापना की।

आर्यसमाज एक धार्मिक सगठन है, मिशन है। इसका उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार करना है। यह वैदिक धर्म के मूल अनुयायियो को वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो का परिचय कराता है। यह हिन्दू धर्म के दलित वग को ऊपर उठाकर सवण हिन्दुओ का स्थान देता है। यह हिन्दू धर्म से पतित हो गये लोगो को पुन हिन्दू धम मे मिलाता है। यह जन्म के विधर्मियो को भी शुद्ध करके हिन्दू आर्य बनाता है।

आर्यसमाज ने मौखिक प्रचार और लेखबद्ध साहित्य द्वारा अपने मिशन का प्रचार किया है। लेखबद्ध साहित्य प्रमुख रूप से दो प्रकार का है, एक शास्त्रीय साहित्य और दूसरा मिश्नरी साहित्य। शास्त्रीय साहित्य से हमारा तात्पर्य प्राचीन शास्त्रो के अनुवादो और व्याख्याओ मे है। मिश्नरी साहित्य का अर्थ वह साहित्य है जिससे लोग आर्य समाजी बनें। शास्त्रीय साहित्य अपेक्षाकृत थोडे लोगो को आकृष्ट करता है। दार्शनिक विद्वान सूक्ष्म तत्वो के समझने के लिए शास्त्रीय साहित्य का अध्ययन करते है। अथवा पुरोहित लोग कमकाण्ड के लिए शास्त्रो का पठन पाठन करते है। मिश्नरी साहित्य का निर्माण तो जन-साधारण के लिए किया जाता है।

मिश्नरी साहित्य का प्रारम्भ "सत्यार्थ प्रकाश" से होता है। ऋषि दयानन्द के इस अपूव ग्रन्थ के पहले दस समुल्लासो मे वैदिक धर्म के सिद्धान्तो का वणन किया है और पिछले चार समुल्लासो मे मत मतान्तरो का खण्डन किया है। सत्यार्थप्रकाश रूपी अमोघ वज्र से ऋषि ने भारतीय आकाश मे छाए हुए मतमतान्तरो के घोर अन्धकारमय मेघो को छिन्न भिन्न कर दिया। सत्यार्थप्रकाश को पढकर सहस्त्रो लोग आयसमाजी बन गये। जो इस अपूर्व ग्रन्थ को एक बार पढ लेता ह वह पुन कभी भी पतित नहीं हो सकता। आयसमाज के पहले युग मे सत्यार्थप्रकाश पढ हुए आयसमाजी सनातन धम के दिग्गज विद्वानो और मौलवियो तथा पादरियो से डटकर शास्त्रार्थ करते रहे है। हमे भारतीय साहित्य मे मिश्नरी ग्रन्थ तो ढूढने से भी नही मिलता। मिश्नरी साहित्य की परपरा तो जन और बौद्ध ग्रन्थो से आरम्भ हुई है। हिन्दू धम मे शकराचार्य एकमात्र मिश्नरी हुये ह।

आयसमाज म प्रचार कार्य तो पहले भी खूब हुआ और अब भी खूब होता है। परन्तु यह काय अधिकतर मौखिक रूप से ही व्याख्यानो द्वारा होता है। आर्यसमाज ने शास्त्रीय साहित्य तो पुष्कल रूप मे निर्माण किया है परन्तु मिश्नरी साहित्य अपेक्षाकृत थोडा ही रचा गया है। ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के पश्चात् स्वामी नित्यानन्द के 'पुरुषाथ प्रकाश" ने आर्यजगत् मे पर्याप्त ख्याति प्राप्त की इसके बाद स्वामी दर्शनानन्द जी के विविध विषय विभूषित ट्रैक्टो ने आर्यजगत् मे धूम मचा दी। इसके साथ ही प० तुलसीराम जी का नाम आता है। आपने अपने

मासिक पत्र "वेद प्रकाश" के लेखो तथा अन्य विवेचनात्मक ग्रन्थो मे मिशनरी साहित्य का निर्माण किया। प० ज्वालाप्रसाद ने सत्यार्थप्रकाश के ११ समुल्लासो के खडन मे दयानन्द तिमिर भास्कर लिखा तुलसीराम स्वामी ने भास्कर प्रकाश रचकर इसका उत्तर दिया। ज्वालाप्रसाद के भाई बलदेवप्रसाद ने ३ समुल्लासो के खण्डन मे धर्म दिवाकर से और भवानीप्रसाद ने भास्कराभास निवारण से भास्कर प्रकाश का खण्डन किया। तुलसीराम ने पुन दिवाकर प्रकाश लिखकर धर्म दिवाकर का उत्तर दिया। इन्ही दिनो म महात्मा मुन्शीरामजी अथवा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने साप्ताहिक पत्र सद्धर्म प्रचारक द्वारा आर्य समाज के मिशन को समुज्जवल किया। इसके बाद नारायण स्वामी जी ने 'आर्यसमाज क्या है ?' छोटी-सी पुस्तक लिखी। इसी प्रकार धर्मदेव विद्यावाचस्पति ने वदिक धर्म आर्यसमाज प्रश्नोत्तरी लिखी। सार्वदेशिक सभा द्वारा रचित 'आर्यसमाज परिचय' और पजाब सभा द्वारा रचित 'बलिदान जयन्ती ग्रन्थ' इसी क्षेत्र की पुस्तके है।

सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रकाशित प० इन्द्र का आर्यसमाज का इतिहास और प०हरिश्चन्द्र कृत आर्यसमाज का इतिहास, उत्तरप्रदेश सभा का ७५ वर्षीय इतिहास भी आर्यसमाज के प्रचार कार्य पर प्रकाश डालते है।

आर्यसमाज का मिशनरी साहित्य अग्रेजी मे भी लिखा गया। ला० लाजपतराय का आर्यसमाज, बाबा छज्जूसिंह का Tea hing o th Arya Samaj, विष्णुदत्त शर्मा का Hand book of the Arya Samaj, प० चमूपति का Ten Commandments of Dayanand, गगाप्रसाद उपाध्याय का Origin, mission and scope of Arya Samaj, दीवानचन्द्र जी का Arya Samaj, धर्मदेव विद्यावाचस्पति का Catechism on the Vedic Dharma and Arya Samaj, सूर्यभानु जी का Dayanand, his life and work, चिरञ्जीवभारद्वाज(?) जी का Life and teaching of Swami Dayanand आदि उल्लेखनीय हैं।

आर्यसमाज के विदेश प्रचार कार्य मे महता जैमिनि जी का नाम उल्लेखनीय है।

मारीशस, मलाया, स्याम, सुमात्रा, फीजी, न्यूजीलैड, अफ्रीका, अफ्रीका, यूरोप इत्यादि समस्त भूगोल का भ्रमण करके और सहस्रों व्याख्यान देकर उन्होने वैदिक धर्म का प्रचार किया। १९३२ मे उन्होने सत्यार्थप्रकाश का फारसी मे अनुवाद किया जो अप्रकाशित ही रहा। मेहता जी ही एकमात्र ऐसे प्रचारक हैं जिन्होने बिना किसी सभा की सहायता के स्वतन्त्र रूप मे समस्त देशो मे प्रचार किया है। वे प्रचार सम्बन्धी साहित्य स्वय लिखकर, प्रकाशित करवा कर अपने साथ रखते थे और बेचते थे। उनकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। उनको अपने भ्रमण तथा प्रचार की तिथियां और समय तक याद रहता था। उन्होने वैदिक आश्रम व्यवस्था के अनुसार गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ और फिर सन्यास आश्रम ग्रहण किया और अपना नाम स्वामी ज्ञानानन्द रक्खा। उन्होंने हिंदी, उर्दू और अग्रेजी मे अनेक पुस्तकें लिखीं। उदाहरण के लिए अग्रेजी मे (1) Vedic mission in British East Africa (2) India, the world teacher and coloniser (3) India's messege to the world (4) Sublimity of the Vedas

विदेश प्रचार साहित्य मे स्वामी स्वतन्त्रतानन्दकृत 'विदेशो मे एक साल' तथा सार्वदेशिक सभा कृत 'विदेशो मे आर्यसमाज' हैं। इस क्षेत्र मे प० रुचिराम कृत 'अरब मे सात साल' भी पठनीय है। प० अयोध्याप्रसाद जी आनन्द स्वामी जी, सत्यदेव परिव्राजक जी, स्वामी ध्रुवानन्द जी तथा ओमप्रकाश त्यागी जीने विदेशो की यात्रा करके मिशनरी साहित्य के निर्माण मे योग दिया है।

आर्यसमाज के मिशनरी साहित्य मे खण्डन का भी प्रमुख स्थान रहा है। ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश मे सभी मतमतान्तरो का खण्डन किया था। इस्लाम की समीक्षा मे तो पहले पहल प० लेखराम आर्य-पथिक ने विपुल साहित्य लिखा। उनका साहित्य "कुलियात आर्यमुसाफिर" नाम से विख्यात है। इसके बाद प० रामचन्द्र देहलवी ने इस क्षेत्र में कार्य किया। उन्होंने "कुरान मे अन्य मतावलम्बियो के लिए कुछ अति कठोर, उत्तेजक वाक्यों का सग्रह" लिखा। इस क्षेत्र मे लक्ष्मण आर्योपदेशक ने भी बडा कार्य किया है। उन्होंने अनेक पुस्तकें और ट्रैक्ट लिखे। शोक है कि आजकल की पुस्तक सूचियों मे लक्ष्मण जी और महता जैमिनि की पुस्तकों का कहीं नाम भी देखने में नहीं आता। लक्ष्मण जी ने अपने अन्तिम दिनों मे इस्लाम और वैदिक धर्म का तुलनात्मक अध्ययन लिख

पर एक विपुल ग्रन्थ लिखा था। परन्तु अब तो उनकी कोई कृति भी दृष्टिगोचर नहीं होती। प० कालिचरण जी मौलवी फाजिल आगरा, प० चिरंजीलाल प्रेम (पंजाब) प० शान्ति प्रकाश जी (आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब) ने भी इस क्षेत्र मे पर्याप्त काय किया है।

ईसाई मत की आलोचना मे स्वामी दर्शनानन्द जी ने कई ट्रैक्ट लिखे थे। कालिचरण आर्य, कालिचरण मौलवी फाजिल और शिवदयालु जी ने कई ट्रैक्ट लिखे है। कुछ साल हुए सार्वदेशिक सभा ने ईसाई प्रचार निरोध आन्दोलन चलाया था तो ओम् प्रकाश जी त्यागी ने भी कई छोटी पुस्तकें लिखी थीं।

पौराणिक मत के खंडन मे तो अनेक ग्रन्थ लिखे गए, कई पुराणो की आलोचनाए प्रकाशित हो चुकी हैं। दयानन्द उपदेशक विद्यालय, गुरुदत्त भवन लाहौर मे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा स्वामी वेदानन्द जी के तत्वावधान मे मनसाराम कृत भविष्य पुराण की आलोचना, शिवपुराण की आलोचना, श्रुतिकाल कृत वाराह पुराण की आलोचना प्रकाशित हुई। भक्तराम कृत कूर्म पुराण की आलोचना और भीमसेन विद्यालकार कृत लिंग पुराण की आलोचना और गंगाप्रसाद कृत गरुड पुराण की आलोचना भी प्रकाशित हुई। प० मनसाराम कृत पौराणिक पोलप्रकाश ने भी ख्याति प्राप्त की थी। आचार्य रामदेव ने पुराणमत पर्यालोचन ग्रन्थ लिखा। परन्तु दुःख है कि आज देखने भर के लिए भी उपर्युक्त पुस्तकें नहीं मिल रही है। जगदीशचन्द्र ने गोविन्दराम हासानन्द की ओर से विष्णु पुराण की आलोचना नामक लघु सी पुस्तक अभी-अभी प्रकाशित की है। मूर्तिपूजा अवतारवाद आदि के सम्बन्ध मे बुद्धदेव मीरपुरी कृत (१) मूर्तिपूजा मीमासा और (२) अवतारवाद मीमांसा और भूमित्रशर्मा कृत मूर्तिपूजा समीक्षा कभी प्रकाशित हुई थीं। प० शिवशकर शर्मा कृत श्राद्ध निणय भी एक उत्कृष्ट ग्रथ है। श्रीराम आर्य कृत 'अवतार रहस्य और शिवलिंग पूजा क्यो' भी उल्लेखनीय है। राधास्वामी मत समीक्षा क्षेत्र मे लक्ष्मण जी ने राधास्वामी मत और वैदिक धम तथा सोमानन्द स्वामी ने राधास्वामी मत आलोचन लिखा था। जैन धम के सम्बन्ध मे श्रीराम आर्य कृत मुनिसमाज मुखमर्दन है। सिक्ख धम के सम्बन्ध मे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने आर्य सिद्धान्त और सिक्ख गुरु पुस्तक लिखी थी। अब मत-मतान्तरो की समीक्षा का काम और विशेष रूप से पौराणिक मत और अन्य सम्प्रदायो की समीक्षा तो समाप्त ही हो रही है। आर्य नेता राजनीति मे भाग ले रहे हैं और विशेष रूप से जनसंघ आदि राजनैतिक दलो के सम्पर्क मे आकर आर्य से हिन्दू बन रहे हैं। अब केवल ईसाइयो से ही कुछ संघर्ष चल रहा है और इस दिशा मे छोटे मोटे ट्रैक्ट प्रकाशित होते रहते हे। अभी इस दिशा मे प्रचुर साहित्य की आवश्यकता है। नेता और पंडित तो कई उत्पन्न हो रहे है परन्तु मिशनरियो की संख्या कम हो रही है। आर्य समाज को जीवित रखने के लिए मिशनरी और प्रचारको की आवश्यकता है। प्रचार के काम को स्थायी रखने के लिए खण्डन मण्डनात्मक साहित्य की आवश्यकता है। आर्य समाज को राजनीति में नेतृत्व के प्रलोभनो और संस्थावाद से मुक्त होकर प्रचार क्षेत्र मे आगे बढना चाहिए। प्रचार कार्य ही आर्यसमाज का प्राण है।

(पृष्ठ २८ का शेष)

सार्वदेशिक प्रचार के तेजस्वी माध्यम बनें, यही हमारी कामना है। ऐसा होनेपर ही आर्यावर्त के उज्ज्वल भविष्य की कामना करने वाले देश हितैषी दयानन्द के स्वप्न पूरे होगे। जिस महापुरुष ने जनकल्याण की उदार भावना मे अपने समाधि के सुख को ठुकराया उसी के दावी बनकर हम स्वार्थ लिप्सा मे आकण्ठ मग्न होकर अपने कर्तव्य को विस्मृत कर चुके है।

आर्यसमाज के लिये आज सर्वाधिक आवश्यकता है अपनी त्रुटियो, अपने अभावो और अपनी अक्षमताओ पर विचार करने की। हम अपने आपको आत्मकेन्द्रित करें और स्थिति पर विचार करें, हमने आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक की मूल भावना को कहा तक समझा है? क्या हम आर्यसमाज के जीवन दर्शन को समझ सके है? क्या आर्यसमाज के सिद्धान्तो और मन्तव्यो के प्रति हम मे उतनी ही निष्ठा और आस्था है जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशाब्द और इस शताब्दी के प्रथम दो दशाब्दो मे विद्यमान आर्य पुरुषो मे थी। यदि ये सब बातें नही हैं तो हम अपने सम्पूर्ण आडम्बर और पाखण्ड का विसर्जन कर अपने ध्येय की प्राप्ति का उपाय क्यो न करें?

तमसो मा ज्योतिर्गमय-धियो यो न प्रचोदयात्।

राष्ट्र-निर्माण का स्थायी साधन--आर्य्यसमाज

[श्री किशोरीलाल गुप्त एम०ए०, सिद्धान्तशास्त्री, साहित्य वाचस्पति, काव्य एव वेदतीर्थ (पू०]

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन एव कार्यकलापो पर जितना ही गहन मनन किया जाता है, उतनी ही अधिक उनकी दूरदर्शिता प्रकाश मे आती चली जा रही है। उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित पहाडो, नदियो उपत्यकाओं, एव दक्षिण की नमदा ताप्ती और कावेरी के बीहड जगलो का पयटन करते हुए उनका विविध प्रकार के साधु सन्यासी एव योगीराजो से भेंट हुई। सबको अपने-अपने रग मे रगा पाया। स्वदेश, स्वभाषा, स्वसस्कृति एव स्वराज्य की ओर से सबको विमुख पाया। सच्चे शिव की खोज भी उनके द्वारा न कर पाये। दैवात प्रज्ञाचक्षु सद्गुरु दडी विरजानन्द के चरणो मे विद्याध्ययन करने की उन्हे प्रेरणा हुई, और अन्ततोगत्वा उनकी चिराभिलिषित मनोकामना सिद्ध हुई। गुरुवर्य की भी चिराभिलिषित मनकामना विद्यार्थी दयानन्द को उपलब्ध कर सफलीभूत हो उठी। अध्ययन समाप्त हुआ। गुरु दक्षिणा समर्पण करने का समय आया अकिंचन दयानन्द पर क्या धरा था ? माग-जाचकर गुरुदेव की प्रिय वस्तु लौंग समर्पित की गयी। सजल नेत्रो से प्रकट हो रहा था कि गुरुवर्य की माग ही किसी अन्य वस्तु की थी। भगवन ! स्वीकारी मे विलम्ब का कारण ? मुझे भौतिक पदार्थ नहीं चाहिये। फिर यह जीवन ही किस अर्थ का चरणो मे अर्पण है। धन्य हो ! जाओ, देश और देशव्यापी पाखण्ड का मूलोच्छेद करो।

चरणों मे सादर प्रणामानान्तर गुरुवर्य्य से साशीर्वाद विदायी ली। हरद्वार मे विराट् कुम्भ का मेला लगा हुआ था। पहुचे। एकाकी! असहाय! असख्य जनसमुदाय के विरुद्ध, निर्भय, नि शक पाखण्ड-खण्डिनी पताका फहराई गई। खलबली मची। हृष्ट पुष्ट शरीर। मस्तक पर अलौकिक आभा। उपदेश सारगर्भित, यद्यपि रूढ़िवाद के एकदम प्रतिकूल ! वेद और केवल वेद का प्रतिपादन ! मूर्तिपूजा, मृतकश्राद्ध, बालविवाह, बहुविवाह, वद्ध विवाह, साई, फकीर एव स्याने बिमानो के नाना पाखण्डो का भडाफोड, अकाट्य युक्तिया। ज्ञान का भण्डार, निर्भय गर्जना। क्या मजाल किसी की जो सामने आने का साहस कर सके ?

मेला सानन्द समाप्त हुआ। जिसको देखो, सुनो, इसी विचित्र सन्यासी की मुख पर चर्चा ! भारत के कोने कोने से विशाल जन समूह हरद्वार एकत्रित हुआ था। प्रत्येक व्यक्ति दयानन्द का अलौकिक प्रसाद लेकर घर लौटा। इधर इस निराले सन्यासी ने चतुर्मुखी प्रचार-पुरोगम निर्धारित किया। मौखिक उपदेश, खुले आम शास्त्रार्थ, लेख एव पुस्तकादि का प्रकाशन, विशेषतया वेद-भाष्य, वह भी सस्कृत एव हिन्दी आय भाषा सयुक्त, चौथे वैदिक पाठशालाओ की स्थापना। त्यागी, तपस्वी, कर्तव्यपरायण अध्यापको के अभाव मे ये पाठशालायें बन्द करनी पडीं।

एक अन्य अभाव सर्वोपरि अनुभव होने लगा। कोई सचालक सस्था चाहिए। गुरुडम फैलाने वाली नहीं, कर्मठ, लगनशील, सेवा भावना से ओत-प्रोत। सोचा, फिर सोचा, सद्भक्तो से परामर्श लिया, और अन्त मे आर्यसमाज की स्थापना की गयी। भावी प्रचार "कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम" का समस्त गुरुतर भार आर्यसमाज को सौंपा। आर्यसमाज ने भी अपने भागीरथ प्रयत्नो द्वारा वह समस्त भार अपने ऊपर उठाया जिसकी देश को अनिवार्य आवश्यकता थी। जिधर चाहे उधर आख उठाकर देखिये देशोन्नति के सभी कार्य कलापो मे आर्यसमाज प्रमुख सहाय दृष्टिगोचर होगा। स्वराज्य-प्राप्ति मे भी आयवीरो ने प्रमुख ही भाग लिया, और वह भी शान्त भावना से।

किन्तु खेद है कि स्वाधीनता ने जनता रूपी ऊंट की नकेल ढीली कर दी है, और विशेषकर अधिकारी वर्ग की, भ्रष्टाचार का आज सवत्र बोलबाला है। आर्यसमाज इस अनैतिकता से बेखबर नहीं। उसका प्रत्येक सभासद आर्यसमाज के सामूहिक कदम उठाने की बाट जोह रहा है। जब गैरो के अत्याचारो से विमुक्ति प्राप्त की तब अपनो से भी करनी ही पडगी। और उसके लिये चाहिए धुआधार प्रचार तथा आन्दोलन। अब तो "यथा राजा तथा प्रजा" नहीं, यथा प्रजा तथा राजा (शासन) करके दिखाना ही पडेगा। और वह करेगी आर्यसमाज !

श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज



जिनकी प्रेरणा से बालक मूलशकर ऋषि दयानन्द कहलाये





महर्षि दयानन्द सरस्वती जिनका सस्थापित आर्यसमाज ससार को प्रकाश प्रदान कर रहा है।



श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज



जिन्होंने ऋषि दयानन्द की शिक्षा पद्धति का प्रचार और प्रसार करते हुए अपने प्राणोत्सर्ग किये।

महर्षि के प्रति

अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप-ग्रस्त, तप-त्याग तुम्हारा ।

तुम तो मुक्त हो गये ऋषिवर, जन-जन के शिवत्व मे लय हो,
मुक्ति हुई मुग्धा-सी मोहित, तुम पर, जग को क्यो विस्मय हो !
मुस्काते तुम गये, ज्योति का बिखरा पडा पराग तुम्हारा !
अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा !

तुम भागे थे, जन-मगल के लिए स्वय घर-द्वार छोडकर !
मुड कर देखा नहीं, मातु पितु की ममता से मोह तोडकर !
पत्थर का कर लिया कलेजा, कर न सका, कुछ 'राग' तुम्हारा !
अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप-ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा ।

पर मुझको ऐसा लगता है, मा के अश्रु पडे है पीछे !
सिद्धि तुम्हारी अब तक शापित, लगता, शाप लगे हैं पीछे !
जीवन-भर विष पिया, आज तक जगा नहीं सौभाग्य तुम्हारा ।
अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा !

विष के घूट भरे जिसके हित, वह अमृत-घट काम न आया ।
सूरज तुम धर गये हाथ पर, तम से हमे उबार न पाया ।
दहक रहा है दावानल से, वह सपनो का बाग तुम्हारा !
अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा !

अब तक पडी ऋचायें रोतीं, 'गो-करुणा-निधि' सिसक रही है !
माँ का क्षत-विक्षत वक्षस्थल, आग चतुर्दिक धधक रही है ।
मानवता का दर्द पूछता—"कहाँ गया अनुराग तुम्हारा ?"
अब तक मुक्त नहीं हो पाया शाप ग्रस्त तप-त्याग तुम्हारा !

'गुरुकुल की शिक्षा' अनाथ है, 'वर्णाश्रम' पद्धति रोती है ।
ब्रह्मचर्य की खिल्ली उडती, 'सस्कृत' की दुर्गति होती है ?
'भोगवाद' दे रहा चुनौती, व्यर्थ गया वैराग्य तुम्हारा ?
अब तक मुक्त नहीं हो पाया शाप ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा ।

'सस्कार-विधि' जगा न पायी 'सस्कार' से हीन मनुज है ।
अस्त हुआ "व्यवहार-भानु" ही अन्धकार मे लीन मनुज है !
असत-तिमिर से हुआ पराजित, क्या "सत्यार्थ-प्रकाश" तुम्हारा ?
अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा ।

ऋषिवर ! क्षमा मागने मा से, फिर से भू पर आना होगा ।
आशिष लेकर, शाप मुक्त हो, फिर से राष्ट्र-जगाना होगा ।
जगती के अधरो पर होगा, तब वेदों का नाद तुम्हारा ।
अब तक मुक्त नहीं हो पाया, शाप-ग्रस्त तप त्याग तुम्हारा ।

—लाखनसिंह 'शैलेन्द्र' साहित्यालकार भोजपुरा मैनपुरी

आर्यसमाज और अन्तरवेक्षण

(ले०—श्री डा० मंगलदेव शास्त्री, पूर्व उपकुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)

किसी भी क्षेत्र में वास्तविक उन्नति के लिये सबसे पहली आवश्यकता अन्तरवेक्षण की होती है। व्यक्ति और समाज, सबके लिये यह नियम है। कोई भी संस्था हो, समुन्नति-शील होने पर भी, यदि वह समय-समय पर, बदलती हुई परिस्थितियों की दृष्टि से, अपनी प्रगति का लेखा जोखा नहीं करती, तो वह अवश्य ही धोखा खाती है।

सहस्रों वर्षों से निराशा, अज्ञान और मिथ्या विश्वासों के अन्धकार से आच्छन्न भारतवर्ष को आर्यसमाज ने, अपने प्रारम्भ के काल में, जो नवीन जीवन प्रद प्रकाश दिया था, वह किसी से छिपा नहीं है। पर अब उस समय की परिस्थितियों में महान परिवर्तन हो गया है और तेजी से हो रहा है। इन नवीन परिस्थितियों को पूर्णतः समझे बिना और तदनुरूप अपने कार्यक्रम और अपनी कार्यक्षमता को बनाये बिना, आर्यसमाज अपने स्वरूप तथा अपनी प्रगति को कायम नहीं रख सकता।

स्वर्गीय पूज्य नारायण स्वामी जी के साथ अनेकों बार मैंने इसी विषय पर बात-चीत की थी। वे मेरे इस विचार से बराबर सहमत थे कि विशेष अवसरों पर आर्यसमाज के चुने हुये चिन्तनशील व्यक्ति एकत्रित होकर, अन्तरङ्गरूप से, आर्यसमाज की गतिविधि पर गम्भीर विचार किया करें और तदनन्तर अपने निश्चित विचारों से वे आर्यसमाज को प्रेरित किया करें।

निश्चय ही मंचों पर या समाचार पत्रों में यह विचार-विनिमय नहीं हो सकता, न करना ही चाहिये।

आज देश विदेश की धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। शिक्षा का स्वरूप और प्रकार भी उसी तरह बदल रहा है। जनगणना की रिपोर्टों द्वारा विभिन्न मतवादियों की संख्या में कमी अथवा वृद्धि के विवरण प्रकाशित होते रहते है। पर क्या आर्यसमाज का कोई निश्चित नियत विभाग ऐसा है जो नियमतः इन विषयों पर गम्भीर रीति से विचार करता है ?

यदि आर्यसमाज जागरूक होता तो स्वराज्य प्रगति के बाद से अपने अनुभव और उदात्त आदर्शों के आधार पर देश में कम से कम शिक्षा का नेतृत्व उसको मिल सकता था।

देश के विभिन्न राज्यों में और संसार के विभिन्न देशों में आर्यसमाज को कहाँ क्या करना चाहिए ? सहस्रों वर्षों से मिथ्याविश्वासों में ग्रस्त और स्वार्थ-निष्ठ तथाकथित धार्मिक नेताओं से प्रतारित देश की ग्रामीण जनता को नगरों की बाह्य जगत् की चकाचौंध से प्रभावित विभिन्न स्तरीय जनता को, और अन्त में विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के, प्रायेण 'श्रमेण तपसा' की भावना से विहीन तथा विनय और अनुशासन की सत्प्रवृत्तियों से क्रमशः हटते हुए छात्रों को उदात्त तथा पवित्र वैदिक भावनाओं से कैसे प्रभावित किया जा सकता है ?

इत्यादि ऐसे महान् प्रश्न हैं जिन पर आर्यसमाज को सतत् जागरूकता और गम्भीर दृष्टि से विचार करना चाहिए।

अतः मेरा 'आर्यमित्र' के द्वारा विचारशील आर्यसमाज के मनीषियों से और विशेषतः सार्वदेशिक सभा से नम्र निवेदन है कि समय-समय पर उक्त दृष्टि से आर्यसमाज की गतिविधि पर गम्भीर विचार किया जाया करे, इसका प्रयत्न किया जावे और सार्वदेशिक सभा का एक नियत स्थायी विभाग हो जो जागरूकता से इसी कार्य में संलग्न रहे।

उक्त सुझावों के कार्यान्वित हो जाने पर आर्यसमाज को विभिन्न क्षेत्रों की दृष्टि से अपने पंचवर्षीय अथवा दसवर्षीय, जैसे कार्यक्रम बनाकर उनमें लग जाने की आवश्यकता होगी।

★

हमारी प्रचार पद्धति—

आर्यसमाज एवं जन सम्पर्क

(ले०—श्री गोपालदत्त शास्त्री एम०ए० रामजस कालेज, देहली)

'अधिक अन्न उपजाओ' योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ मे सरकार ने जहा पुरानी कृषि की भूमियो मे नये नये प्रयोग किये वहा साथ ही नई-नई कृषि योग्य भूमि प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया, जगलो को काटकर कृषि के योग्य बनाया गया तथा ऊसर भूमि को भी यथासमय उपजाऊ बनाने के प्रयत्न हुए। जब ऊबड खाबड एव जगली भूमि को कृषियोग्य बनाने की भूमिका प्रारम्भ होती है तो नि सदेह साधारण हलबैल की अपेक्षा महाकाय कृषियन्त्रों से भी विशेष सफलता मिलती है, जैसे जैसे जमीन अनुकूल रूप धारण करती जाती है वैसे वैसे ही किसान के प्रयत्न भी भिन्न-भिन्न रूप धारण करते चले जाते है। कल्पना कीजिये—प्रारम्भ मे हल या मशीनों से भूमि को समतल अथवा अनुकूल बनाने की सफलता की प्रसन्नता मे किसान उसमे बराबर हल ही चलाता रहे तो परिणाम क्या होगा? अथवा बीज बोने के बाद फिर हल बैल लेकर खेत मे पहुच जाय और किसी के रोकने पर यही उत्तर दे कि—आप नहीं जानते, यहा की बेडौल और ऊबडखाबड भूमि को मै इसी हल बैल की बदौलत इतनी सुन्दर बना पाया हू—सो इसे तो प्रयोग करने से रोकूगा नहीं, हा और कोई अवान्तर उपाय बताए तो विचार करूंगा।

मेरा अभिप्राय आर्यसमाज की प्रचार पद्धति से है, प्रारम्भ की परिस्थितियो से वर्तमान परिस्थतिया भिन्न हैं, नि सन्देह इस समय हल चलाने की अपेक्षा बीज बोने और उसकी रक्षा करना ही मुख्य कार्य होना चाहिये, जहा आवश्यकता हो वहा वह उपाय भी अपनाया जा सकता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि यदि बीज नहीं उगता या किसी अन्य कारण से खराब हो जाय तो किसान उसे दुबारा हल चलाकर फिर बोता है। वास्तव मे यह तर्क (या नारा) अब जनसाधारण को अधिक प्रभावित नहीं करता कि आर्यसमाज का मुख्य कार्य खडनात्मक है। इसी प्रवृत्ति को मुख्यता देने से एक बहुत बडी हानि हुई है और वह यह कि आर्यसमाज मे सृजनात्मक शक्तियों एव प्रवृत्तियों का प्राय अभाव सा है। बनाने की अपेक्षा मिटाना अति सरल है, जब सरल काम मे ही गौरव मिल जाता है तो कठिन कार्य की ओर प्रवृत्ति क्यो हो? व्यक्तिगत प्रयत्न और सामाजिक प्रयत्न मे अन्तर स्वाभाविक है। सृजनात्मक प्रवृत्ति से मेरा अभिप्राय उन तत्वो से है जो केवल क्षणिक प्रभावशाली न होकर समाज मे ऐसी भावना को सुस्थिरता की स्थिति प्रदान करें। यदि हम अपने उद्देश्य को इस दिशा मे मोडें तो अवश्य ही हमे उन तत्वो से सम्पर्क स्थापित करना होगा जो केवल नारेबाजी से अलग रहकर इस प्रयत्न मे कुछ योगदान कर सकते हैं। यह बुद्धिवादी वर्ग समाज मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। पर इससे हमे सामाजिक सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई—क्योंकि हमारी प्रमुख भावना अभी भी जमीन को ही ठीक करने की है।

देहली मे थोडे दिन के निवास मे ही मुझे कतिपय विश्वविद्यालय के तथा प्रमुख सरकारी व्यक्तियों से मिलने का अवसर मिला और बातचीत मे यह भी स्पष्ट हो गया कि वे इसलिये सक्रिय भाग नहीं लेते कि—उन्हें केवलमात्र चुनाव मे रुचि नहीं, और समाज के अधिकारियों को उसके अतिरिक्त अन्य किसी कार्य मे रुचि नहीं। मैं समझता हू भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों का समूह ही समाज है—उनसे उनकी रुचि एव योग्यता के अनुसार लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाय तो समाज को विशेष लाभ होने के साथ-साथ लोक प्रियता भी प्राप्त हो सकती है। ऐसे व्यक्ति धीरे-धीरे उदासीन हो जाते हैं और भावी पीढ़ी तो अपरिचित ही रह जाती है। अनेक गुरुकुलों के स्नातक तथा प्रमुख आर्य परिवारों के व्यक्ति आ० स० से असंपृक्त से होकर रह रहे हैं, कभी कभी चर्चा करके ही वे इस दिशा मे आत्म तुष्टि अनुभव कर लेते हैं। क्या हमारे नेता इस दिशा में कुछ विचार करेंगे? ★

महर्षि दयानन्द सरस्वती के सच्चे शिष्य

श्री प० लेखराम जी



जो अपनी वाणी और लेखनी से आर्यसमाज का प्रचार और प्रसार करते हुए देश पर बलिदान हो गये ।

वचनामृत

दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरो का ही प्रयोग और प्रचार होगा । मैने आर्यावर्त्त भर मे भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही, अपने सकल ग्रन्थ आर्यभाषा मे लिखे और प्रकाशित किए हैं ।

श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

ऋषि दयानन्द की मृत्यु का दृश्य देखकर आप नास्तिक से आस्तिक बन गये थे ।



आर्यसमाज के सुविख्यात विद्वान और लेखक श्री बाबू घासीराम जी एम० ए० मेरठ



आपने अपनी वाणी और लेखनी दोनो से आर्यसमाज की प्रशसनीय सेवा की । आप आर्य प्रतिनिधि सभा के कई वर्ष तक प्रधान रहे ।

विश्व में वैदिक धर्म प्रचार और आर्यसमाज

[ले०-श्री मोहनलाल जी मोहित, मौरिशस]

विश्व मे वैदिक धर्म प्रचार का उत्तरदायित्व आर्यसमाज पर है। हमारे धर्माचार्य महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज को आदेश दिया था 'द्वीप द्वीपान्तर और देश देशान्तर मे वेद प्रचार करना'। इस पुनीत कर्तव्य के परिपालन मे क्रियात्मक रूप से आर्यसमाज ने कहां तक सफलता पाई है? यह विचारणीय प्रश्न है। आर्य समाज के कार्यों पर एक ऐतिहासिक झांकी देने पर मालूम होता है कि १९वीं शती के अन्तिम चरण और २०वीं शती के प्रारम्भ मे अर्थात सन १८७५ से १९२५ ई० तक इन ५० वर्षों का कार्य काल बडा महत्वपूर्ण था।

वह शुभ समय तरुण आर्यसमाज का प्रचार युग था। गम्भीर विचार एव निष्पक्ष दृष्टिकोण से देखने पर कहा जा सकता है वही भारत का नव-जागरण-काल का प्रारम्भ युग था। वह युगान्तकारी युग था, जब आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र मे श्री कर्मयोगी स्वामी श्रद्धानन्द जी श्री महात्मा हंसराज जी, श्री लाला लाजपत राय जी, मुनिवर गुरुदत्त जी और प० लेखराम जी आदि नर-रत्न सर्वात्मना आर्यसमाज की प्रगति मे लगे थे।

फलत धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षणिक बहु दिशा मे आर्यसमाज ने प्रशसनीय सफलता पाई। उसी समय सुदूर उपनिवेशो मे आर्य प्रचारक भी गये। आर्यसमाज के प्रचार से उपनिवेशीय भारतीयो के जीवन स्तर मे सुधार हुआ और बडी प्रगति हुई। उपनिवेशीय भारतीयों की जो वर्तमान धार्मिक, सास्कृतिक और सामाजिक प्रगतिशील परिस्थिति है, उसके नव निर्माण मे आर्यसमाज के सबल हाथो का योग दान है। परन्तु वर्तमान जनवृद्धि और पश्चिमीय चचल वातावरण मे पडकर दूषित मनोवृत्ति, असयम एव उद्दण्ड भाव का विकास होने लगा है।

अत ऐसी परिस्थिति मे एक प्रभावशाली रचनात्मक प्रचार-प्रणाली का उपक्रम होना आवश्यक है। आर्यसमाज को वर्तमान मे भूमण्डल के मानचित्र के अनुसार सार्वदेशीय दृष्टिकोण से वेद-प्रचारक तैयार करने चाहिये। अब समय आ गया है कि आर्यसमाज को सो काम छोड़ कर वेद प्रचार मे सर्वात्मना लग जाना चाहिये।


लेखक

विदेशों मे सफल प्रचार कार्य के लिये बहुभाषी विद्वान साथ ही श्रद्धावान लगनशील सुवक्ता और प्रभावशाली व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुषो की आवश्यकता है।

सुयोग्य उपदेशक की तैयारी के लिये मेरा सुझाव—

(१) श्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली, गुरुकुलों और दयानन्द महाविद्यालयों मे से, १० उन सफल स्नातको का चुनाव करें जो विदेशों मे आर्यसमाज का प्रचार करने का उत्सुक हों और योग्यता की दृष्टि से सस्कृत मे आचार्य तथा अग्रेजी मे एम०ए० तक सफल हो।

(२) ऐसे १० सुयोग्य वक्तृत्व कलाप्रिय विद्वानों को उपदेशक पद्धति का प्रशिक्षण देने के लिये दो वर्ष के कार्य-क्रम की सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व श्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अपने कन्धे पर लेवे, विश्व मे वैदिक धर्म प्रचार इस योजना का उद्देश्य है।

सम्प्रति यूरोप, अमेरिका द्वीप और एशिया के चीन, जापान, रूस आदि देश तथा अनेक उपनिवेशो की जनता वेदामृत पान के लिये लालायित है।

क्योंकि इन देशो मे सत्आत्मज्ञान का प्राय. अभाव

(शेष पृष्ठ ४० पर)



आर्यसमाज का भविष्य

[ले०—श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालकार एम० ए०, गोरखपुर]

[आर्यसमाज के उज्ज्वल भविष्य के लिये विद्वान् लेखक ने स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए प्रेरणा दी है कि हम आयसमाज की सफलता के लिये आत्म निरीक्षण और चिन्तन कर अपनी कमियो को दूर करने का यत्न करें। —सम्पादक]

भारत एव विश्व के इतिहास मे आर्यसमाज का एक अपना अद्भुत स्थान है। इस बात की व्याख्या करते हुए यदि मैं यह कहू कि धार्मिक एव सामाजिक दृष्टि से रूढ़ियों एव अन्धविश्वासों मे भ्रमित विश्व को यदि किसी ने दृष्टि शक्ति प्रदान की तो वह निर्विवाद आर्यसमाज है, तो यह अत्युक्ति न होगी। यदि मैं यह कहू कि ईसाई एव मुसलमानों द्वारा लूटे जाते हुए हिन्दुत्व के कोष की यदि किसी ने रक्षा की और उसे समृद्ध करने का प्रयास किया तो वह आर्यसमाज है, तो इसमे असत्य की जरा गन्ध नहीं। यदि मै यह कहू कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के मूलमन्त्र का दाता और स्वतन्त्रता सग्राम मे फिर चाहे वह हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक सबसे आगे बढ़कर लड़ने वाला सैनिक आयसमाज है, तो वह एक ऐतिहासिक सत्य ही माना जायगा। परन्तु स्वराज्य प्राप्त होने के बाद आज हम अधिक शिथिल हो गये हैं। आज आर्यसमाज मे गतिहीनता सी आ रही है इसी कारण आज नवीन वर्ग या नवयुवक इसमे नहीं आ रहे हैं। यदि गम्भीरतापूर्वक हम आत्मनिरीक्षण और मनन करने को तत्पर होगे तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि सफेद बाल और कुछ परम्परा की रक्षा करने वाले बूढ़ों के बाद आगे आनेवाली पीढ़ी आर्य समाज का उत्सव करा सकती है परन्तु आर्यसमाज की गतिशीलता एव प्रवाह को जारी नहीं रख सकती है। यह स्पष्ट एव अनुभवजन्य सत्य है। क्यों? यह प्रश्न विचारणीय है। और इस क्यों का उत्तर बाहर खोजने की अपेक्षा हमे अपने अन्तःकरण मे खोजना होगा।

अपनी दशा का अनुमान हम आधुनिक समाज और देश मे अपने महत्व को देखकर कर सकते हैं। हमारा क्या महत्व है इसके लिए आप सोचेंगे तो आपको पता चलेगा कि आयसमाज व्यक्ति को आधार बनाकर चलने वाली सस्था है। अर्थात व्यक्तित्व के निर्माण द्वारा समाज का निर्माण इस रूप मे आयसमाज करना चाहता है कि यदि सभी व्यक्ति अच्छे बन जायेंगे तो समाज अच्छा होगा और समाज अच्छा होगा तो राष्ट्र और मानवता को बल मिलेगा और इस प्रकार उसका 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का सिद्धान्त विश्व लागू हो सकेगा। परन्तु आज आयसमाज से व्यक्तित्व का निर्माण करने का काय लगभग समाप्त हो गया है। और परिणाम यह है कि राष्ट्र ने आयसमाज को भुला दिया है।

शिक्षा के क्षेत्र मे आर्यसमाज ने बहुत कुछ योगदान दिया है। स्त्री शिक्षा, बालको की शिक्षा, विद्यालयों का निर्माण आदि क द्वारा सरकारी स्तर पर उसने शिक्षा का प्रचार किया। परन्तु आज स्वतन्त्रभारत मे शिक्षा पर विचार करने वालो को हम कोई अपना दृष्टिकोण नहीं दे सकते हैं। हमारे पास अपना दृष्टिकोण है भी तो नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुलो का निर्माण कर इस युग मे एक मौलिक शिक्षा प्रणाली की स्थापना की थी और विश्व के शिक्षा विशेषज्ञ गुरुकुल मे समय समय पर आते थे और उस पर विचार करते थे। लेकिन आज स्थिति काफी बदली हुई है। हम शिक्षा मे स्वतन्त्र भावना को त्याग अपनी सस्थाओ का सरकारीकरण कर रहे हैं। आज आयसमाज के पास कोई भी ऐसा केन्द्र नहीं जहां आर्य समाज के वैदिक धर्म के मूल वेदो का उसी श्रद्धा और



विश्वास के साथ अध्यापन होता हो। अत इस दिशा मे हमे सोचना है कि भविष्य मे हमारी शिक्षा सस्थायें कैसी हो ? हम कैसे आय विद्वान उत्पन्न कर सकें।

दूसरी बात आयसमाज की प्रचार पद्धति की है। आर्य समाज के प्लेटफार्म से क्या कहा जा रहा है, यह समझना बडा कठिन कार्य है। एक व्यक्ति आता है वह अपने भाषण मे एक वेद मन्त्र पढ़ता है और उसकी व्याख्या मे उस विषय से असबधित परन्तु सामयिक बातो का उल्लेख कर देता है। श्रोताओं का स्तर देखकर उसे यह कार्य करना पडता है। यह तो कुछ ठीक भी है पर सबसे अधिक महत्ता जिन भजनोपदेशकों को दी जाती है और जिन पर उत्सव की सफलता निर्भर होती है वे भजनोपदेशक उस मत्र से कितनी सत्य और असत्य घटनाओ द्वारा एक विचित्र प्रकार का मनोरजन करते हैं जो कि हसी के बीच आर्यसमाज के सिद्धान्तो को उडा देता है। मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि आज के वृद्ध एव आर्यसमाज के सिद्धान्तो से परिचित उपदेशकों के न रहने के बाद आर्यसमाज के प्लेटफार्म मनोरजन के साधनमात्र रह जायेंगे। यह भी एक सोचने की बात है।

तीसरी बात यह है कि आज आर्यसमाज का देश एव समाज की किसी भी समिति एव सगठन मे कोई पूछ नहीं है। क्योकि आर्यसमाज को आधार बनाकर व्यक्ति आगे बढ़ते हैं और पुन वे उसे छोडकर राजनीति को आधार बना लेते हैं। हमारे पास ऐसा आकर्षण नहीं है कि हम उन्हे अपनी ओर रख सकें। परिणाम यह होता है कि उन्हें अपनी महत्ता बढाने के लिए हमारे पास आने की अपेक्षा हमे आर्यसमाज की महत्ता बढ़ाने के लिए उनके आश्रित होना पडता है। हम अपने व्यक्तियो की उपेक्षा एव उनकी अपेक्षा करते हैं। क्या इसके विपरीत भाव की जागृति हो सकती है ?

आयसमाज को अपने को सुदृढ़ करने के लिए नवयुवको को प्रभावित करने के लिए कोई उपयुक्त कायक्रम सम्मुख रखना होगा। आर्यवीर दल एव आर्यकुमार समाओ की उपेक्षा का परिणाम आज हमे अनुभव हो रहा है जब आर्य समाज के सत्सगो मे थोडे से सफेद बालो वाले और वृद्ध सज्जन दिखाई देते हैं। अत मैं तो समझ॥ हू कि इन सस्थाओं को पोषण देना चाहिए।

आर्यसमाज के सिद्धान्त बुद्धिवादी हैं, सत्य हैं और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सभी कालों और सभी समयो पर सत्य हैं। परन्तु सत्य भी अनुपयुक्त व्यक्तियो के हाथ पर अपना प्रभाव खो देता है। ऐसी दशा मे आज जब हम आर्यसमाज के भविष्य पर विचार कर रहे हैं तो हमे उपर्युक्त एव उससे सम्बन्धित अन्य बातो पर विचार करना चाहिए। अर्थात् हम एक वैदिक धर्म के ज्ञान का केन्द्र बनायें। प्रचार पद्धति मे परिवर्तन करें, अपने महत्व को स्थापित करने का प्रयत्न करें तथा आर्यवीर दल और आर्यकुमार समाओं को बल दें। अन्यथा आर्यसमाज का भविष्य बहुत उज्ज्वल नहीं। युग बडी तेजी से बदल रहा है। यदि हम छूट गए तो बहुत पीछे रह जायेंगे। बस, परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें शक्ति और बल दे कि हम आगे बढ़ सकें। ★

(पृष्ठ ३४ का शेष)

सा ही है। जो कुछ अश मे वहाँ आत्मज्ञान का प्रचार सुना जाता है, उसमे सम्प्रदाय वालो की आर्थिक लिप्सा तथा प्रपच की मात्रा ही अधिक है। कथित देशों के आत्मज्ञान के सत्य जिज्ञासु, निराश और अशान्त हैं। नास्तिक भोगवादी अर्थ-लोलुपो के विनाशकारी यन्त्रों का आविष्कार और उसके दुष्प्रयोग से मानवता कराह रही है। वेद विरुद्ध पन्थ-प्रचारको का दुर्व्यवहार, नास्तिक भोगवादी पश्चिमीय सभ्यता का शिष्टताहीन नग्न-नृत्य और मानवतानाशक विनाशकारी यन्त्रो के निर्माता अर्थलोलुप साम्राज्यवादियो के पजे मे मानवता अन्तिम सास ले रही है। मानव-विनाशकारी ऐसी दु खद परिस्थिति मे मानव समाज के सबल प्रहरी आर्यसमाज को बडी सतर्कता से कर्तव्य पालन करना धर्म है।

उपर्युक्त सारी विषम समस्याओं का सही समाधान वैदिक धर्म मे है। वैदिक धर्म मानवता की सात्विक सम्पत्ति है। वेद के सुन्दर सिद्धान्त मे विश्वकल्याण निहित है। आर्यसमाज ने जितने मानव-हितकारी काय किये हैं, उनमे लोकमत से सबल समर्थन मिला है। अब समय आ गया है कि मानवता की रक्षा के लिये पूर्ण सघ बल से समरागण मे आर्यसमाज को आगे बढ़ना चाहिये। आशा है आर्यजन आर्यसमाज के विश्व प्रचार दायित्व को स्वीकार करेंगे। ★

आर्य्यसमाज की स्वर्गीय विभूतियाँ

त्यागमूर्ति श्री स्वमी सर्वदानन्द जी महाराज



महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज



स्व० श्री प० गणपति शर्म्मा जी



डी ए वी कालिज लाहौर के संस्थापक
श्री महात्मा हंसराज जी





भारतीय गौरव की रक्षा में आर्यसमाज के संस्थापक—

महर्षि दयानन्द का योग-दान

[ले०—श्री आनन्द स्वामी सरस्वती, तपोवन, देहरादून]

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज सरस्वती के कार्यक्रम और जीवन घटनाओं पर दृष्टि डालें तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनके हृदय और मस्तिष्क मे सारी मानव जाति के लिये एक गम्भीर पीड़ा थी। वेद ने कहा भी है कि ऋषि वह है जो मनुष्य मात्र का हितकारी हो।

ऋषि स यो मनुर्हित। ऋ० १०।२६।५

परन्तु जहां सारे ससार के कल्याण का विचार उनके मन में था वहां, भारतीय प्रजा के लिये विशेष स्थान था। साम्यवाद के नेता कार्ल मार्क्स का विचार तो यह था कि "भारतीय समाज का कोई इतिहास है ही नहीं" और उन्होंने यह भी लिखा कि "मैं उन लोगों से सहमत नहीं हू जिनका भारत के स्वर्णकाल मे विश्वास है।"

(1) इन पत्रो मे कार्ल मार्क्स ने अपनी कितनी अज्ञानता प्रकट की, यदि कार्ल मार्क्स का सम्पर्क स्वामी दयानन्द जी के साथ हो जाता तो वह न केवल आस्तिक बन जाते, अपितु भारतीय सस्कृति के भक्त भी बन जाते।

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन मे अनेक कार्य किये जिनकी गणना कठिन है। परन्तु उनका सबसे बडा कार्य यह था कि उन्होने भारत मे फैली हुई निराशा को बडे जोर से झिझोड़ा। अग्रेज शासको ने यह विचारधारा फैला रखी थी कि भारत के लोग शासन करने योग्य नहीं। फ्रेंच लेखक वाल्टेयर ने 'फ्रैगमैंट्स आन इण्डिया' मे भारत के सम्बन्ध मे यह विचार दिया कि "भारतीय सस्कृति का तत्व यह है कि दौड़ने की अपेक्षा चलना अच्छा है। और चलने की अपेक्षा खडे रहना अच्छा है। और खडे रहने पर वह बैठने मे रुचि रखते हैं और बैठने की अपेक्षा लेट जाना अच्छा समझते हैं और लेट जाने से सो जाना उनको अधिक प्रिय है।" इसके साथ ईसाई पादरी हिन्दुओ को



लेखक

असभ्य साबित करने लगे। देवी देवताओ की हसी उडाने लगे। और हिन्दू अपनी प्राचीन सभ्यता और भव्य वैदिक सिद्धान्तो को भुला चुके थे इसलिये वह ईसाइयो को कोई उत्तर न दे सकते थे। एक मुसलमान व्यक्ति अब्दुल्ला ने 'तोहफतुल हिन्द' नामक पुस्तक मे हिन्दू सभ्यता, आर्य धर्म और आर्य पूवजो को बेहद घिनौने रूप मे वर्णित किया। इसका उत्तर देने वाला कोई न था। हिन्दू अपनी प्राचीन सस्कृति, सभ्यता तथा सिद्धान्तो को भूल जाने के कारण अपने आपको बहुत नीचा समझने लगे थे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा था कि हिन्दुओ की यह धारणा बन गई है कि वे सदा के लिये दूसरो के गुलाम बने रहेगे। अग्रेजों ने भी अपनी कूटनीतिज्ञता से व्यापार करते-करते शासक का रूप धारण कर लिया। उस समय के भारतीयो के मन मे यह बात घर कर गई थी, कि यूरोपियन लोग ही राज्य प्रबन्ध कर सकते है। कार्ल मार्क्स के शब्दो मे इग्लैंड ने भारतीय समाज का सारा ढांचा ही तोड़ डाला। सारा समाज ही बिखर चुका था। पौराणिकता और अज्ञान ने

(1) कार्ल मार्क्स के भारत सम्बन्धी खत, सम्पादिका फरेका बेदी। १० जून और २२ जुलाई १८५३।

भाई को भाई से अलग कर दिया था। प्रकृति-पूजा ने बुद्धि हर ली थी। आत्मविश्वास के स्थान पर आत्मग्लानि पनप रही थी। "जगत तीन काल मे मिथ्या है।" का प्रचार प्रबल था। छूतछात ने, आपस की फूट ने, बाल विवाह आदि कुरीतियो ने भारतीय समाज की बुनियाद हिला डाली थी। घर की यह अवस्था, उधर विदेशी शासको की चालें भयकर रूप धारण कर रही थीं। कुछ वर्ष और यदि यही अवस्था रहती तो भयकर पतन हो जाता और यूरोपियन पादरियो ने तो लिख भी दिया था कि ५० वर्ष पश्चात् सारा भारत ईसाई हो जायगा। परन्तु भारत को पुन उठना था और उसका उत्थान करने के लिये महर्षि दयानन्द के हृदय मे जोत जगी। ३० वष निरतर घोर तप करने के पश्चात दयानन्द उत्तराखड और हिमालय की उत्तुग चोटियो से नीचे उतरे। उन्होने स्पष्ट देख लिया कि भारत क लोगो के पतन का सबसे बडा कारण वेद को भूल जाना ह और साथ ही अपने उज्ज्वल भूत को विस्मरण कर देना हे।

महर्षि दयानन्द ने सोये हुए भारतीय सिह को जगाया कि क्यो गीदड बने बैठे हो। तुम्हारे पास बुद्धि बल, बाहु बल और धन बल तीनो विद्यमान है, फिर निराश क्यो होते हो। स्वामी दयानन्द ने सबसे अचम्भे का चमत्कार यह दिखलाया कि उन्होने भारतीयो के अन्दर यह भावना भर दी, कि हम भगवान राम, गुरु वशिष्ठ, कृष्ण और युधिष्ठर आदि महानुभावो के वशज हैं। हमारी वैदिक सस्कृति ससार भर के लोगो की सस्कृति से पुरानी और अत्यन्त पवित्र तथा ऊँची है। विदेशी राज्य की हानियो को उन्होने प्रकट किया और सबसे पूर्व 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग करके भारतीय राज्य स्थापित करने का विचार दिया।

स्वा० दयानन्द ने स्वराज्य की आधार शिला रखी और उसी पर म०गाधी और अन्य नेताओ ने स्वतन्त्रता का भवन तैयार किया। परन्तु दु ख यह है कि आधुनिक नेताओं ने महर्षि दयानन्द के एक आदेश को सवथा भुला दिया। और वह यह कि आध्यात्मिक उन्नति के बिना केवल भौतिक उन्नति विनाश का साधन बन सकती है। और आज स्वतन्त्रता मिलने के बाद जो आपा-धापी, भ्रष्टाचार, अनाचार, नैतिक पतन और नास्तिकता दिखाई दे रही है इसका सबसे बडा कारण स्वामी दयानन्द के वैदिक आदेश को भूल जाना है।

यदि भारत के लोग सुखी होना चाहते हैं, तो इसका एकमात्र साधन यह है कि वे स्वामी दयानन्द के वैदिक विचारो को अपनाए और अपने जीवन मे ढालें तथा उन्हीं के अनुसार चरित्र निर्माण करें। यही सीधा मार्ग है। आर्यसमाज के सदस्यो और नेताओ का भी इस सम्बन्ध मे विशेष दायित्व है। आर्यसमाज स्थापना के पावन पर्व पर हम विचार करें और आत्म-निरीक्षण कर आगे बढ़ें।



जलता दीपक

(ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट पू प्रधान सा आ प्र नि सभा देहली)

लेखक

त्व ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् सता ।
सखा सख्या समिध्यसे ।। ऋ० ८-४३-१४

शब्दार्थ —

(अग्ने) हे अग्ने । (त्व) तू (हि) नि सन्देह (अग्निना) अग्नि द्वारा (समिध्यसे) प्रदीप्त किया जाता है । (विप्र) तू विप्र परम ज्ञानी (विप्रेण) मुझ ज्ञानी द्वारा (सन) तू सत् श्रेष्ठ (सता) मुझ साधु श्रेष्ठ द्वारा और (सखा) तू सच्चा सखा (सख्या) मुझ सखा द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ।

इस मन्त्र मे ज्ञान और प्रकाश के प्रवाह को, प्रवाहित और सुरक्षित रखने के लिए बडा सुन्दर आदेश दिया गया है ।

अग्नि से अग्नि सुलगती है, ज्ञानी से ज्ञान बढ़ता है, और सन्तों से श्रेष्ठता मे वृद्धि होती है । मित्र से मित्र प्रज्ज्वलित और प्रदीप्त होता है ।

इसी मन्त्र के आदेश को लक्ष्य मे रखकर आर्यसमाज के नियमों मे वेदो को सत्य विद्या की पुस्तक बताया गया है । और उनका पढ़ना पढ़ाना, और सुनना सुनाना आर्यो का परम धर्म बताया गया है ।

एक जलते हुए दीपक से अनेको दीपक जलाये जा सकते हैं । पर तु जिस प्रकार जलते हुए दीपक के लिए तेल और बत्ती दोनो आवश्यक हैं अर्थात ज्ञान और कर्म दोनो अनिवार्य हैं । इसी प्रकार जलते दीपक से वही दीपक जलाये जा सकेंगे जिनमे तेल और बत्ती दोनो का समावेश होगा यदि केवल तेल व बत्ती होगी या तेल ज्यादा और बत्ती छोटी या बत्ती बडी तेल थोडा तो दीपक जलाये नहीं जा सकेंगे ।

गुरु विरजानन्द से महर्षि दयानन्द ने ज्ञान प्राप्त किया और स्वय प्रज्ज्वलित हुए और गुरु विरजानन्द के नाम को प्रसिद्ध कर दिया । गुरु ने शिष्य का ज्ञान बढ़ाया और शिष्य ने गुरु का मान और अपना बढ़ाया । महर्षि दयानन्द जीवन पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश करते रहे । और अन्धकार का निराकरण । मरते समय भी गुरुदत्त विद्यार्थी के अदर आस्तिकता के प्रवाह को उत्पन्न कर दिया । आर्यसमाज स्थापना दिवस मनाना रूढ़ि नहीं है । यह एक आवश्यक और उपयोगी कर्तव्य है । इस अवसर पर हम सबको यह शिक्षा ग्रहण करनी है कि किस प्रकार ज्ञान मे वृद्धि हो । और उस ज्ञान के आधार पर चरित्र और कर्म मर्यादित हों ।

दीपावली पर दीपक जलाये जाते हैं । इन जलते हुए दीपकों को मनोविज्ञान की दृष्टि से इस मन्त्र के प्रकाश मे देखना चाहिये । जैसे बाहर दीपक जल रहे हों, वैसे अन्दर भी प्रकाश बढ़ते रहना चाहिये ।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है । हर सृष्टि की आदि मे उनका प्रादुर्भाव होता है, और प्रलय तक प्रचार रहता है, और पुन नये कल्प मे फिर उनका प्रादुर्भाव हो जाता है, जिस प्रकार सृष्टि प्रवाह से अनादि है वैसे ही ज्ञान का प्रवाह भी अनादि है । आवश्यकता इसकी है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान मे वृद्धि करता रहे और अपने ज्ञान से दूसरों को लाभ पहुचाता रहे । यह शृङ्खला सुरक्षित रहनी चाहिये । ज्ञान नित्य बढ़ता है, परन्तु ज्ञान के नाम पर मिथ्या ज्ञान उत्पन्न हो सके,इसके लिये प्राचीन वैदिक ज्ञान के आदर्श के रूप मे आवश्यकता है ।

नवीन निर्माण के लिये आदर्श चाहिए, उदाहरण

चाहिये। सुवर्ण की परीक्षा के लिये कसौटी चाहिये। वैदिक सूर्य का प्रकाश सृष्टि के आरम्भ मे हुआ और इसी प्रकाश के आधार पर इस प्रकाश के विस्तार मे वृद्धि होती रहनी चाहिये। इस मत्र के आशय को इस विज्ञान के युग मे हम बिजलीघर के उदाहरण से समझ सकते हैं। बिजली के लिये एक Power House या केन्द्रीय उत्पत्ति स्थान की आवश्यकता है। उस स्थान से विद्युत तारों द्वारा वितरण की जाती है। परन्तु इस विद्युत से वही स्थान लाभ उठा सकते हैं जिनके अन्दर Fitting अर्थात निर्माण है। केवल निर्माण ही नहीं Connection और सम्बन्ध भी आवश्यक है और इसके साथ प्रयोग भी आवश्यक है। अर्थात् समय पर विद्युत से लाभ उठाने की योग्यता और क्षमता होनी चाहिए। प्रयोग सम्बन्धी ज्ञान भी होना चाहिए।

आर्यसमाज एक बिजली घर है, उसके अनुयायी और हितैषी हो अपने आपको शिक्षा सस्कार, यज्ञ, भावना और योगाभ्यास से Fit बनाकर योग्य बनकर इस बिजली घर से अपना सम्बन्ध जोड लेना चाहिए और समय-समय पर इसके प्रकाश से लाभ उठाते रहना चाहिए और दूसरो को लाभ पहुचाते रहना चाहिए।

व्यवस्थापिका

यदि एक अकेला सब वेदो के जानने हारा द्विजों में उत्तम सन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, करोडों मिलके जो व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिए। जो ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि का व्रत, वेद, विद्या या विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत वर्तमान है उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए अनुसार धर्म पर चलते हैं उनके पीछे सैकडों प्रकार के पाप लग जाते हैं। म दयानद

सर्वोदय और आर्यसमाज

(ले०—श्री आदित्यपालसिंह जी आर्य, खण्डवा)

खानपुर (फर्रुखाबाद) के एक सर्वोदयी कार्यकर्ता श्री डा० हरीसिंह जी कटियार ने मुझे एक भेंट के अवसर पर बताया कि "आज का युग अर्थ का युग है। कोई भी समाज जो अर्थ की विषमता दूर करने मे प्रयत्न शील है, जनता का धन्यवाद का पात्र है। आर्यसमाज केवल एक धार्मिक आन्दोलन है जो जनता से मुक्ति या पुनर्जन्म के सुधार के लिए प्रयास कराता है। उसकी यह बातें जनता नहीं अपनायेगी, क्योंकि वह तो इसी जन्म मे और यहीं सुख और सुधार चाहती है और आप उससे उसकी बातें करते हैं जिसे उसने देखा नहीं। अत आर्य-समाज और उसके सस्थापक से सर्वोदय और उसके सस्थापक का स्थान मैं अधिक मानता हू क्योंकि 'सर्वोदय' का अभियान इसी जन्म मे सुख और सुधार के लिये उद्दिष्ट है।"

मैने कहा कि "मै ऐसा नहीं समझता। मेरी तो ऐसी धारणा है कि आर्यसमाज से बढ़कर जनता के इस जन्म और अगले जन्म को सुधारने वाली और कोई सस्था नहीं और उसके सस्थापक स्वामी दयानन्द से बढ़कर ससार का कोई हित चिन्तक न हुआ, न है और न होगा। आप का 'सर्वोदय' का आन्दोलन आर्यसमाज का एक आन्दोलन है जो उसके १० नियमों मे एक मे इस प्रकार वर्णित है—

'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति मे सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिये'—यही है आपका 'सर्वोदय'। यहां उन्नति से अभिप्राय ससार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति से है जिसमे सब प्रकार की उन्नतियों का समावेश हो जाता है। ऐसी दशा मे सर्वोदय का अभियान आर्य-समाज के अभियान से बढ़कर नहीं हो सकता। हाँ, वह आर्यसमाज के कार्यक्रम का ही एक अग है।"



विदेशियो की दृष्टि मे—

सार्वत्रिक सुख अभ्युदय और आनन्द का युग लाने वाली शक्ति—

आर्यसमाज

(अमेरिकन विद्वान् "एड्रयूज जैक्सन" के विचार)

★

मुझे एक आग दिखाई देती है जो कि सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमरीका के शीतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतो और योरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इस सबको जलाने वाली और सबको इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालायें दिखायी देती हैं। इसकी चर्चा निम्नस्थ देशो से उठी है। अपने सुख और उन्नति के लिए इसे मनुष्य ने स्वय प्रज्ज्वलित किया है। पृथ्वी पर मनुष्य ही एक ऐसा व्यक्ति है जो आग को जलाकर स्थायी बना सकता है। जहा एक ओर वह अपने घरो मे नारकीय अग्नि भडकाने मे अग्रणी है वहीं प्रेमीथस की तरह नारकीय घरो को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करने वाली अग्नि को लाने के लिए भी यही अग्रसर है। इस अपरिमित अग्नि को देखकर, जो निस्सन्देह राज्यो, साम्राज्यों और ससार भर के प्रबन्ध और नीति के दोषों को पिघला डालेगी, इस अग्नि की कल्पना मे मैं अत्यन्त आनन्वित होकर एक उत्साहमय जीवन व्यतीत कर रहा हू। सब ऊँचे-ऊँचे पहाड जल उठेंगे, घाटियो के रमणीय नगर भुन जायेंगे, प्यारे घर और प्रेमपूर्ण हृदय साथ-साथ पिघलेंगे, पाप-पुण्य सयुक्त होकर यो अर्न्ताहित होगे जैसे सूर्य की किरणो मे ओस। असीम उन्नति की विद्युत् से मनुष्य का हृदय हिल रहा है। आज उसकी केवल चिनगारियां आकाश की ओर उडती हैं, वक्ताओ और कवियो और ग्रन्थ निर्माताओं की शिक्षाओ मे इधर-उधर ज्वालायें दीख पडती हैं।

यह आग सनातन आर्य धर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा मे लाने के लिये थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह आग भारतवर्ष के एक परम योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय मे प्रकाशमान हुई थी। हिन्दू-मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर वेग से दौडे, किन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकाशक दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाइयो ने भी जिनके धर्म की आग और पवित्र दीपक पहले पहले पूव मे ही प्रकाशित हुए थे, एशिया के इस नये प्रकाश को बुझाने मे हिन्दू मुसलमानो का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भडक उठी, और सर्वत्र फैल गई। सम्पूर्ण दोषों का सघट्ट नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी मे जलकर भस्म हो जायगा, यहां तक कि रोग के स्थान मे आरोग्य, झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान मे पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान मे परमेश्वर और प्रकृति का राज्य होगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हू। जब यह अग्नि सुन्दर पृथ्वी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वत्रिक सुख अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ हो जायगा।

[अनुवादिका एव प्रेषिका—
—मंजिताकुमारी, पन्त-भवन, हल्द्वानी]

दयानन्द वचनामृत

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिए है। इसी मत मतान्तर के विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं, होगे उनको पक्षपात् रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति मे परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा।

महान् सन्त दयानन्द

[ले०—श्री पं० शिवदयालु जी मेरठ]

स्वामी दयानन्द निश्चय ही एक महान सन्त थे नीर-क्षीर विवेकी परमहंस थे। उनका चरित्र कवि शिरोमणि तुलसीदास जी के शब्दो मे कपास के सदृश था। जैसे कपास को पैदा होते ही चर्खी मे ओटा जाता फिर



लेखक

धुनकी से धुनकर चर्खे मे काता जाता है तत्पश्चात् करघे मे बुना जाता फिर धोबी उसको घाट पर ले जाकर पानी मे पछाड़ता है। सूखने पर उसकी कुन्दी की जाती फिर दर्जी उसके अंग अंग को काटकर सूई से बेधकर वस्त्र तैयार करता है और इस प्रकार वह कपास से नाना कष्ट सहन कर वस्त्र रूप मे परहित ही साधता है, उस ही प्रकार परमहंस दयानन्द को गृह त्यागने पर पिता के आदेश से सिपाही उनको पकड़ते, गुरु दयानन्द क्रुद्ध होकर उस पर लाठी प्रहार करते उत्तराखण्ड मे विचरते हुए नाना यातनाएँ सहन करनी पड़तीं और जब प्रचार क्षेत्र मे उतरते तो अनेक बार उनको विष दिया जाता, राव राजा तेजसिंह उन पर नंगी तलवार लेकर झपटते, बंगाल मे तान्त्रिक लोग उनको एक मकान मे घेर कर देवी की बलि चढ़ाने की तैयारी करते और जोधपुर मे उस पर घातक विष का प्रयोग किया जाता है किन्तु वे कभी विचलित नहीं होते और संसार के कल्याण के निमित्त रचे हुए अपने दिव्य-यज्ञ मे निरन्तर शान्त चित्त हो आत्माहुति डालते चले जाते हैं।

सन्त दयानन्द पर्वत की कन्दरा मे बैठकर समाधि का आनन्द ले सकते थे और मोक्ष प्राप्त कर सकते थे, किन्तु उन्होने व्यक्तिगत मोक्ष की प्राप्ति की कभी कामना न थी उनका लक्ष्य सामूहिक मुक्ति उपलब्ध करना था। मानव जाति को मुक्ति सुख का भोग कराना था। इसीलिये जगत हित को लक्ष्य बना कर वे कार्य क्षेत्र मे उतरे और निरन्तर कष्ट बाधाओ को हसते हसते सहन करते हुए उन्होने अपने लक्ष्य को पूरा किया।

दयानन्द द्वन्दो का सहन करने की दृष्टि से, भीषण कष्टो और संकटो का सामने करने की दृष्टि से महान् सहिष्णु थे किन्तु अनीति अनाचार के साथ, असत्य और अन्याय के साथ समझौता करना उस परमहंस ने सीखा न था।

नाना मत पन्थो के ढोंगो और मिथ्या विचारो का खण्डन करने मे उन्होने कभी संकोच नहीं किया।

महाराज उदयपुर ने उनसे नाथद्वारे की गद्दी का महन्त बनने की प्रार्थना की और मूर्ति-पूजन के खण्डन से विरक्त रहने का अनुरोध किया, किन्तु महान् सन्त के रूप मे उन्होने उस प्रार्थना को ठुकरा दिया और कहा कि मैं अपने उस महान स्वामी की जो ब्रह्माण्ड का सम्राट है आज्ञा मानू व तेरी जिसके राज्य से एक दौड़ मे बाहर आ सकता हू।



सन्त नग्न-सत्य का परम पुजारी हुआ करता है तो हमारे चरित्र नायक परमहंस दयानन्द जी महाराज भी मनसा वाचा कर्मणा एकमात्र सत्य के पुजारी थे। सत्य जो सनातन है सदा एकरस रहने वाला है, निरन्तर उसको ही अपने जीवन मे ढालना और उसका प्रचार करना सन्त शिरोमणि दयानन्द का काम था।

कर्नल आलकाट एवं मैडम ब्लैवैटस्की ने उनको अपनी थ्योसोफिकल सोसायटी का परम गुरु बनाने का संकल्प कर उनसे भेंट की किन्तु सत्य ज्ञान के परम केन्द्र वेद मे उनकी आस्था देख ऋषि ने उनसे एकदम किनारा किया और विश्वख्याति के मोह को ठोकर मार दी।

दयानन्द केवल स्वयं ही सत्य के परम पुजारी न थे बल्कि वह तो अपने प्रत्येक अनुयायी को सत्य का पुजारी बनाना चाहते थे और इसीलिए आर्यसमाज के चौथे व पांचवें नियमो मे सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने मे उद्यत रहने का आदेश दिया और सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने की प्रेरणा दी।

सन्त पुरुष आदर्श निरभिमानी किन्तु स्वाभिमानी हुआ करते हैं। पूना मे जिस समय स्वामी जी प्रचार कर रहे थे। तो लोगो ने एक व्यक्ति को दयानन्द जैसे वस्त्रादि पहना कर गधे पर चढ़ाकर उसकी सवारी निकाली और जब स्वामी जी को इसका समाचार मिला तो उन्होने हँस कर कहा कि ठीक ही तो है नकली दयानन्द के साथ यही सलूक किया जाना चाहिये।

मेरठ आर्यसमाज के प्रथम वार्षिकोत्सव पर स्वामीजी जी महाराज स्वयं पधारे थे, समाज की अन्तरंग सभा में स्वामी जी विशेष रूप से आमन्त्रित थे। सदस्यों ने स्वामी जी से आर्यसमाज का परम सरक्षक बनने का अनुरोध किया तो उन्होंने हसकर कहा कि मैं तो तुम्हारा सदस्य भी नहीं केवल एक दर्शक के रूप मे यहा उपस्थित हू। यदि मुझको परम सरक्षक बनाओगे तो भोले लोगो उस प्यारे प्रभु को क्या कह कर पुकारोगे। स्वामी जी का युक्तियुक्त उत्तर सुनकर सब आवाक् रह गये।

स्वामी दयानन्द निरभिमानी थे किन्तु साथ ही उच्च-कोटि के स्वाभिमानी भी थे। कलकत्ते मे प्रचारार्थ जब स्वामी जी गये तो उनके व्याख्यानों से प्रभावित होकर कलकत्ते के लाट पादरी ने गवर्नर जनरल लार्ड ब्रुक से उनकी प्रशंसा की और स्वामी जी से उनको मिलाया।

लार्ड ब्रुक ने स्वामी जी से कहा कि महाराज आप मत पथों की कड़ी समालोचना करते हो जनता इससे रुष्ट है अत आप कहें तो आपकी सुरक्षा की व्यवस्था कर दूं। स्वामी जी ने कहा कि मलका विक्टोरिया के राज्य मे सब को अपने-अपने धर्म के प्रचार की स्वतन्त्रता प्राप्त है और रक्षक तो वह भगवान् है मुझे सुरक्षा की कोई आवश्यकता नहीं। लार्ड ब्रुक ने कहा कि महाराज जब आप मलका के राज्य की सराहना करते हो तो अपने भाषणों मे भी अंग्रेजी राज्य की कुछ प्रशंसा कर दिया करो। इस पर स्वामी जी ने तड़क कर कहा कि यह नहीं हो सकता। मैं विदेशी राज्य को स्वदेशी राज्य की अपेक्षा हेय समझता हू। अपने देश मे अपना राज्य ही सर्वोपरि है इत्यादि। इस प्रकार सन्त दयानन्द स्वदेशाभिमान, स्वसंस्कृति एवं स्वजाति के अभिमान के महान् पुजारी थे।

सन्त परम कारुणिक एवं दयालु हुआ करते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपनी भगिनी एवं चाचा की मृत्यु अपनी आंखों से देखी किन्तु रुदन नहीं किया और जब गंगा के किनारे एक गरीब देवी को अपने पुत्र की लाश को नग्न जलप्रवाह करते देखा वह परम कारुणिक सन्त दयानन्द दहाड़ मारकर रोने लगे, और अपने देश की पराधीनता और कंगाली पर रुदन करने लगे।

एक बार स्वामी जी के एक भक्त तहसीलदार महोदय विष देने वाले एक व्यक्ति को पकड़कर स्वामी जी के सामने लाये तो परम दयालु सन्त दयानन्द ने कहा कि इनको छोड़ दो, मैं लोगों को बन्धनों मे जकड़वाने नहीं अपितु उनको मुक्त कराने आया हू।

अन्तिम बार घातक विष का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को बजाय पकडवाने के उस परम सन्त ने कुछ रुपया देकर चलता कर दिया।

स्वामी दयानन्द के जीवन की ऐसी अनेकों घटनायें हैं जिनसे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि वह महान् आचार्य दयानन्द निश्चय ही एक उच्चकोटि के सन्त, हंस व परमहंस थे।



आर्यसमाज की शिक्षा-नीति के लिये आदर्श—

प्राचीन भारत की शिक्षा-संस्था

(ले०—श्री कविराज रत्नाकर शास्त्री, एम० ए० स्नातक)

विदेशी आक्रान्ताओं ने भारतीय शिक्षा सस्था को नष्ट करने का प्रयास गत कितनी ही शताब्दियो मे किया है। सर जान मैल्कम ने सन् १८१२ ई० मे

लेखक

ब्रिटिश पार्लियामेंट के समक्ष अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हुये कहा था—'भारत मे अग्रेजी हुकूमत स्थायी रखने के लिये आवश्यक है कि भारतीयों की शिक्षा सस्थाओ द्वारा फूट फैलाने वाला साम्प्रदायिक तथा दासता की भावनायें स्थापित की जायें' (Sir John Malcom, before parliamentary comittee of 1813)। मैकाले की योजनायें भी हमे ज्ञात हैं जिनमे शरीर से हिन्दुस्तानी और दिल से अंग्रेज बनाने की योजना भारतीय शिक्षा सस्थाओं के लिये प्रस्तुत की गई थी। इसी दुर्भावना को मनन करने के बाद महात्मा गाधी ने कहा था—'हमारा हित इसी में है कि अग्रेजी शिक्षा से हमने जो कुछ सीखा है उसे भूल जायें"। इन उपर्युक्त विप्लवो के कारण प्राचीन भारत की शिक्षा-सस्था क्या थी, यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर बन गया है। एक उज्ज्वल स्वरूप को राजनैतिक आक्रान्ताओ ने इतना कुरूप कर दिया है कि चित्र के वास्तविक स्वरूप को निखारने के लिए हमे इतिहास की गहराई तक जाना होगा। बिखरे हुये तत्व फिर से सङ्कलित करने होगे।

भारत के अतीत का गौरव इस सस्था के सांचे मे ही ढला था। शिक्षा सस्था ही राष्ट्र का मौलिक निर्माण करने योग्य कल पुर्जे ढाल कर तैयार करती है, जिनके द्वारा राष्ट्र प्रगति प्राप्त करता है। किसी राष्ट्र की भावी प्रगति का पूर्वानुमान करना हो तो देखना चाहिये कि वहा की शिक्षा सस्थाओ ने कितनी प्रगति की है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षा सस्था ही पूर्व रूप है और राष्ट्र उसका उत्तर रूप।

भारतीय सस्कृति मे शिक्षा-सस्था धर्म का एक आवश्यक अङ्ग है। छान्दोग्य उपनिषद मे शिक्षा का धर्म के साथ समन्वय करते हुए कहा गया है कि धर्म का महल तीन खम्भो पर सधा है —(त्रयोधर्मस्य स्कन्धा यज्ञोऽध्यन दानमिति छान्दोग्य २।२३) (१) यज्ञ (Social Unity) (२) अध्ययन (Education) (३) दान (Charity)

आज धम के जो भी रूप लोगो ने कल्पना कर लिये हो, किन्तु भारतीय दर्शन मे शिक्षा सस्था धर्म से भिन्न नहीं है। मानव जीवन का अनिवार्य उत्तरदायित्व ही धर्म है। शिक्षा भी मानव जीवन का अनिवार्य उत्तरदायित्व है। जीवन की व्यावहारिक नीति मे शिक्षा की अनिवार्यता को सिद्ध करने के लिये ही कहा गया है—'माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठित'। शिक्षा सस्था को अविच्छिन्न रखना माता और पिता का अनिवार्य धर्म है। जहां माता पिता इस धर्म का निर्वाह न कर सकें वहां राष्ट्र को यह उत्तरदायित्व पूरा करना होगा। मनु ने स्पष्ट लिखा 'बाल सफेद होने अथवा आयु अधिक होने से

किसी को बड़ा न माना जाय किन्तु अल्पायु विद्वान् को ही समाज मे प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए (नतेन वृद्धो भवति येनास्य पलितशिर । यो वै युवाप्यधीयानस्त देवा स्थविर विदु ॥ मनु) । एक बार भारत के एक राजा अश्वपति ने अपने अतिथि से कहा था—मेरे राज्य मे कोई भी अविद्वान् नहीं है" । इसका अर्थ यही है कि मै शिक्षा-सस्था को समुन्नत करने मे सदैव जागरूक रहा हू ।

स्नातक के लिए भारतीय शिक्षा सस्था का एक आदेश सदैव रहा है—'स्वाध्यायान्मा प्रमद ' स्वाध्याय की परम्परा मे प्रमाद न करो । तुमने जिस प्रकार पढा लिखा है वैसे ही दूसरों को पढ़ाते लिखाते रहो । भारतीय शिक्षा सस्था का स्वरूप भी यही रहा है । पारिवारिक जीवन के आवश्यक पञ्च यज्ञों मे 'देवयज्ञ' शिक्षा सस्था को ही प्रस्तुत करता है । आज तो शिक्षा के कितने ही नये उपकरण बन गये हैं, परन्तु प्राचीन भारतीय परिपाटी मे 'श्रौत-शिक्षा' का आदर्श ही सहस्रों वर्षों तक रहा है, जिसमे विद्यार्थी अपने गुरु से सुनकर ही विद्या से अपना बुद्धि कोष भरा करता था । इस मौखिक शिक्षा का भी भारत के शिक्षा इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान है । सस्कृत साहित्य मे श्रुति का अर्थ ही 'विद्या' अथवा 'ज्ञान' है । गुरु के मुख से सुनकर ज्ञान का जो विकास होता है, लिखे हुवे से नही होता । लिखा हुआ तो ज्ञान का केवल अनुवाद मात्र है । ज्ञान की कितनी ही अभिव्यजनायें गुरमुख से सुनकर ही प्राप्त होती हैं, वे भाषा के दायरे मे बाधी नही जा सकती ।

गुरु शिष्य परम्परा मे किसी विषय की विशेष ज्ञान-गरिमा उच्च स्तर तक विकसित हो जाती है । इस उच्च स्तर के ज्ञान कोष की सुरक्षा जिस गुरु शिष्य परम्परा मे होती रही है उसका नाम 'चरण' रक्खा गया था । एक विषय के परिज्ञान मे विकास करते करते ज्ञान की जो शाखा और प्रशाखायें आविर्भूत होतीं, वे उसी चरण के अन्तर्गत देश भर मे फैली हुई थीं । गुरु, चरण अथवा विषय के अनुसार विद्यार्थी की पहचान तुरन्त हो जाती थी । काठक, पाणिनीय, वैय्याकरण आदि नाम उन्हीं के परिचायक हैं । एक एक चरण मे उसमे सम्बन्धित ज्ञान की अनेक शाखाओ मे प्रचुर विकास हुआ और उनके शाखानाम विषयो के आधार पर प्रसिद्ध होगये । तैत्तिरीय और ऐतरेय आदि गुरुओ के नाम पर उपनिषद्, ब्राह्मण, प्रातिशाख्य, और आरण्यक आदि कितना ही ज्ञान विस्तार हमे आज तक उपलब्ध होता है ।

पुरुष ही नहीं, स्त्रियो की शिक्षा के लिये भारतीय शिक्षा सस्था मे प्रचुर विकास हुवा है । काश्यप सहिता मे कनखल मे स्थापित एक ऐसे विश्वविद्यालय का उल्लेख है जिसमें स्त्रिया उच्च कक्षाओं तक आयुर्वेद पढ़ती थीं । पाणिनि तथा पतजलि ने भी चरणो मे शिक्षा प्राप्त करने वाली स्त्रियो का उल्लेख किया है । (अष्टाध्यायी ४-१-६३)

अध्येत्री स्त्रिया ही नहीं आचार्या भी थीं, जिनसे पुरुषों ने विद्या प्राप्त की थी । प्राचीन साहित्य मे स्त्री लिङ्ग उपाधियो का बहुधा उल्लेख मिलता है । आचार्या और आचार्यानी दो शब्दो का पाणिनि ने उल्लेख किया है । आचार्या वह स्त्री जो स्वय विदुषी होकर शिष्यो का अध्यापन करती है, किन्तु आचार्यानी आचार्य की पत्नी का बोधक है, चाहे वह स्वय विदुषी हो या न हो ।

आचार्य अथवा आचार्या को जहा स्वय आचार निष्ठ होकर शिक्षा का सचालन करना आवश्यक था, वहां विद्यार्थी को भी ब्रह्मचारी, रहकर शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था । ब्रह्म का अर्थ ज्ञान है । अतएव ज्ञान प्राप्त करने के लिये जो चर्या आवश्यक है, उस पर आरूढ़ रह कर विद्यार्थी जब शिक्षा प्राप्त करता था, उसे ब्रह्मचारी कहते थे । अथर्ववेद मे ब्रह्मचारी के लिये एक सुन्दर कल्पना का उल्लेख है । ब्रह्मचारी विद्या के गर्भ मे रहता है, (अथर्व० ११-५ ३—"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिण कुरुते गर्भमन्त ।") उसका स्नातक होना विद्या का प्रसव है । इस सन्तान का जनक मानो आचार्य ही है ।' इसीलिये ब्रह्मचारी आचार्य का अन्तेवासी कहा जाता था ।

माणवक और अन्तेवासी विद्यार्थी की दो अवस्थायें हैं। उपनयन से पूर्व छात्र माणवक और उपनीत होकर अन्ते-वासी । विद्यार्थी द्वारा आचार्य का वरण और आचार्य द्वारा विद्यार्थी का उपनयन एक गम्भीर और प्रभावशाली प्रक्रिया है । अनेक प्राचीन सहिता ग्रन्थों मे अध्ययन की यह विधि दी गई है । (चरक स० विमान० ८।६।२-३) छली,लोलुप, द्रोही, और इन्द्रिय लोलुप छात्र को ब्रह्मचारी बनाना निषिद्ध है । जो गुरु की विद्या मे श्रद्धा नहीं रखता उसका उपनयन ही व्यर्थ है । (निरुक्त नै० २।१।७) माणवक मे यदि ज्ञान की पिपासा जागृत नहीं हुई तो वह ज्ञान और

उसकी चर्या के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकेगा। इसलिये शिक्षा की पहली सीढ़ी यह है कि माणवक मे ज्ञान की पिपासा जागृत करो।

किसी विद्या का पारङ्गामी ज्ञान प्राप्त करने के लिये जब कोई जिज्ञासु गुरु के समीप जाता गुरु का पहिला आदेश यही होता था कि आश्रम मे ब्रह्मचारी बनकर कम से कम एक वर्ष रहो। कभी-कभी तो यह ब्रह्मचर्या दस और बारह वर्ष तक सुदीर्घ कालीन भी होती थी, और तब कहीं असली विषय का प्रवचन होता। (छान्दोग्य० अ० ४ ख० १०-अ० ६-ख० १, उपनयन की प्रकिया मनु मे २।३६-५० देखें।) यह ब्रह्मचर्या विद्यार्थी की लगन और विषय के ज्ञान की योग्यता का सम्पादन करने के लिये आवश्यक ही है। कभी कभी इस ब्रह्मचर्य व्रत की निष्ठा मे स्वय ही अभीष्ट विषय का परिज्ञान उद्बुद्ध हो जाता, और विद्यार्थी स्वय कहने लगता कि मेरी जिज्ञासा का उत्तर मिल गया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विद्यार्थी मे अभीष्ट विषय के ज्ञान की उत्कट अभिलाषा जागृत होनी चाहिए। यह अभिलाषा जब तक नहीं होती, गुरु के व्याख्यान व्यर्थ है। पञ्चतन्त्र जैसे राजनीति शास्त्र के रचे जाने की कहानी ही यह है। किसी राजा के राजकुमार विषय वासनाओ मे फसे रहते थे। राजा ने राजनीति शास्त्र की शिक्षा के अनेक प्रयास किये, परन्तु राजकुमारो की प्रवृत्ति शिक्षा की ओर न हुई आखिर विष्णु शर्मा जैसे योग्य आचार्य ने राजनीति को कथाओ के रूप मे सुनाना प्रारम्भ किया। कथा के लोभ मे राजकुमारो का मन उधर आकृष्ट हुआ, और अनायास राजनीति का ज्ञान सुकर हो गया। शिक्षा के लिये विद्यार्थी की एकाग्रता ही पर्याप्त नहीं है, गुरु को भी मनोवैज्ञानिक साधनों की गहराई मे गये बिना काम नहीं चलता।

१—आचार्य, २—प्रवक्ता, ३—श्रोत्रिय, ४—अध्यापक इन चार प्रकार के शिक्षको का नाम प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है।

(१) आचार्य का स्थान इनमे सर्वोच्च है। वह उपनयन सस्कार द्वारा माणवक ब्रह्मचारी बनाता है। ब्रह्मचारी आचार्य का अन्तेवासी बन जाता है। वह चौबीस घडे का सत्सग है। इसी स्थिति को अथर्व मे विद्या का गर्भ कहा गया है। आचार्य शिक्षा और दीक्षा, दोनो का उत्तरदायी है। यह मनुष्य का मौलिक निर्माण है। यास्काचार्य ने निरुक्त मे लिखा है कि आचार्य सज्ञा का अर्थ है वह व्यक्ति जो आचार तथा ज्ञान दोनों की शिक्षा दे सके। तैत्तिरीय, पाणिनीय आदि अन्तेवासी होते थे।

(२) प्रवक्ता आचार्य से उतर कर प्रवक्ता की प्रतिष्ठा थी। यह वैदिक शाखा ग्रन्थो का व्याख्याता होता था। वेद तथा वेदाङ्गों का व्याख्याकार प्रवक्ता है। बृहस्पति आदि प्रवक्ता थे। इन्हे प्रौढ शिक्षक मान सकते हैं।

(३) श्रोत्रिय-वेद के साङ्गोपाङ्ग अध्येता और अध्यापयिता श्रोत्रिय है। इन्हे वेद सस्वर कण्ठ रहते और उसी विद्या की शिक्षा देने वाले श्रोत्रिय हैं। यह प्राचीन भारत मे एक विस्तृत विषय था—पदपाठ, क्रम, जटापाठ आदि अनेक शैलियो के शिक्षक श्रोत्रिय वर्ग मे आते हैं।

(४) अध्यापक-वैज्ञानिक या लौकिक साहित्य के शिक्षक का नाम अध्यापक है। अध्यापक का दीक्षा से सम्बन्ध नहीं है। अन्तेवासी का उत्तरदायित्व वह नहीं लेता।

जिस प्रकार गुरुओ की चार कोटिया है उसी प्रकार विद्यार्थियो की तीन कोटिया थीं। (१) माणवक (२) अन्तेवासी और (३) चरक।

माणवक—अनुपनीत छोटे माणवक हैं। यह प्रारम्भिक शिक्षा के छात्र हैं।

अन्तेवासी—यह उपनीत विद्यार्थी हैं। नौ वर्ष से चौबीस वर्ष या अड़तालीस वर्ष तक की आयु के विद्यार्थी इस कोटि मे आ सकते हैं। इनकी शिक्षा और दीक्षा आचार्य के गुरुकुल मे होती थी।

चरक—आज इस विद्यालय मे, कल और किसी विद्यालय मे घूमने वाले विद्यार्थी चरक कहे जाते थे। इनमें सभी आयु के प्रौढ विद्यार्थी ही होते थे। बृहदारण्यक उपनिषद (३-३ १) मे ऐसे विद्यार्थियों का उल्लेख है जो चरक थे। विचरण करते हुये ज्ञानार्जन करने का नाम बौद्ध साहित्य मे 'चारिका' शब्द से बहुश व्यवहृत हुआ है। वैशम्पायन भी चरक विद्यार्थी थे और चरक सहिता के प्रति सस्कर्ता भी चरक विद्यार्थी अनुसन्धानात्मक अध्ययन मे अभिरुचि रखने वाले अधिक थे।

अध्ययन के विषय केवल अध्यात्म ही न थे, किन्तु नाटय, सगीत, शिल्प, आयुर्वेद, पशुचिकित्सा, उद्यान कला, कृषि, कारुकर्म (कार्पेण्ट्री) लेन-देन, व्यापार, शस्त्र कला, शृङ्गार पाक शास्त्र, आदि सभी थे। (शिल्पिनिष्विन—अष्टाध्यायी, भिक्षुनटसूत्रयो अष्टाध्यायी। धारेरुत्तमेण अष्टाध्यायी। शत सहस्त्रान्ताच्च निष्कात—अष्टाध्यायी)



शिक्षार्थी भी एक प्रकार के नहीं थे। इनमे भले-बुरे सभी होते थे। विद्यार्थी के लिये प्राप्त होने वाली भोजन आदि की सुविधाओ के लालच मे अनेक लोग विद्यार्थी होने का ढोंग भी बनाये फिरते थे। कुछ विद्यार्थी अल्प कालीन सत्र के तथा कुछ दीर्घकालीन सत्र के होते थे। एक मास या एक वर्ष की दीक्षा के लिये आने वाले छात्रों को मासिक ब्रह्मचारी अथवा वार्षिक ब्रह्मचारी शब्दो से सम्बोधित किया जाता था। ऋतु क्रम से वासन्तिक, वार्षिक और शारदिक छात्र भी होते थे। (तदस्य ब्रह्मचर्यम् ५-१-९४ अष्टाध्यायी)।

अध्यापक भी विविध प्रकार के होते ही थे। कुत्सिताध्यापकों मे धूर्त भी होते थे, दारुणाध्यापक और घोराध्यापक भी। परन्तु अध्यापक की अयोग्यता जल्दी ही खुल जाती है। इसलिये उनकी प्रतिष्ठा गुरुओ मे नहीं रहती। चरक सहिता मे लिखा है कि विद्यार्थी को चाहिये कि वह पहिले आचार्य को सोच समझ कर चुने। इस सोच समझ मे गुरु की परीक्षा भी होती थी। गुरु के गुणों की परीक्षा मे लिखा है कि उसे उज्वल ज्ञान वाला, चतुर, शुद्धाचरण, इन्द्रियों से अविकल, दूसरे के स्वभाव को शीघ्र समझने वाला, निर्लोभ, निरहकार, अनिन्दक, अक्रोधी, सहिष्णु तथा शिष्य को पुत्र की भांति प्रेम करने वाला होना चाहिये। (चरक, विमान ८-४)

शिक्षा की सरणि:-

(१) चरण शिक्षा तथा (२) जानपदी शिक्षा, इस प्रकार शिक्षा की दो श्रेणियां थीं। चरणो मे बौद्धिक शिक्षायें, तथा जानपदी मे कला-कौशल गिनी जाती हैं। (निरुक्त १-१-१६) जानपदी शिक्षा मे पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि की शिक्षायें सम्मिलित रही हैं। इन सम्पूर्ण विषयो को अध्यापन करने के लिये आचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, उपाध्याय, ब्रह्मचारी, तथा चरण सस्थायें, परिषदें वाद, ग्रन्थ लेखन तथा साहित्य यह सारे साधन उपयोग मे आते रहे हैं। परिषदो मे भिन्न भिन्न चरणो के प्रतिनिधि विद्वान् एकत्रित होकर तत्व निर्णय करते थे। वाद शास्त्रार्थ शैली द्वारा पक्ष-प्रतिपक्ष के विचार से निर्णय करने का मार्ग था। इस प्रकार विद्या प्रसार की भिन्न-भिन्न अनेक शैलियां प्रचलित रही हैं।

ब्रह्मचारी की उपनयन विधि का उल्लेख चरक सहिता मे विस्तार से किया है। उस प्रसग के देखने से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा सस्था मे देव, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध तथा आचार्य यह छ व्यक्ति ज्ञान की गरिमा मे प्रतिष्ठित थे। ब्रह्मचारी को इन्हें प्रणाम करना आवश्यक बताया गया है। वहां लिखा है कि इन सबमे भी आचार्य की प्रतिष्ठा ही अधिक है। (उपनीयतु य शिष्य वेद मध्यापयेत द्विज। सकल्प स रहस्य च तमाचार्यं प्रचेक्षते॥ मनु० २।१४०) ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु को अग्नि की भांति पवित्र, राजा की भांति सुशासक, पिता की भांति पालक और सरक्षक मानकर व्यवहार करे। विद्योपार्जन के तीन प्रमुख साधन भी कहे गये हैं—(१) अध्ययन, (२) अध्यापन (३) तथा तद्विद्य सभाषा, अर्थात् उस-उस विषय के जानकारों से वार्तालाप।

नित्य अग्निहोत्र, भिक्षाचरण, नीची शैय्या पर शयन, तथा गुरु सेवा, यह दीक्षान्त पर्यन्त ब्रह्मचारी का आवश्यक व्रत है। शिक्षा मे भिक्षा का समावेश भारतीय शिक्षा सस्था की ही लोकोत्तर विशेषता है। मनु ने यहां तक लिखा है कि जो ब्रह्मचारी नित्य भिक्षा मांगने नहीं जाता तथा नित्य अग्निहोत्र नहीं करता उसका व्रत भग हो जाता है। भिक्षा लाकर गुरु को देना चाहिये। गुरु उसमे से जो कुछ देवे वही भोजन ब्रह्मचारी को करना चाहिये।

विद्यार्थी के लिए नित्य भिक्षाचरण की दो प्रमुख उपयोगितायें हैं। प्रथम यह कि भिक्षाचरण करने वाला व्यक्ति निरहकार हो जाता है। दूसरी यह कि लौकिक व्यवहार का परिज्ञान ब्रह्मचारी को होता रहता है। सामाजिक सम्पर्क से अलग रखकर विद्यार्थी को शिक्षा देना जीवन की उपयोगिता को कम करता है। न केवल इतना ही प्रत्युत लोकव्यवहार के परिज्ञान से हीन शास्त्रज्ञ व्यक्ति भी मूर्ख की भांति उपहास का पात्र है। आचार्य की सेवा मे विधिवत विद्याध्ययन समाप्त कर दीक्षा लेने वाले स्नातक का सम्मान समाज मे सर्वोच्च है। मनु ने लिखा है कि राजा के सम्मान में सबको अपना आसन छोड़कर खड़ा हो जाना चाहिए। किन्तु स्नातक के आने पर राजा का भी अपना आसन छोड़कर खड़ा होना आवश्यक है (मनु० २।१३९)।

(शेष पृष्ठ ५९ पर)

आर्यसमाज का स्थापना दिवस

[ले०—श्री डा० हरिदत्त जी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, एम ए, पी-एच डी, कानपुर]

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के प्रादुर्भाव के पूर्व भारतवर्ष की विचित्र स्थिति थी। धर्म के नाम केवल ढोंग रह गया था। साधु व पुजारी गाढी निद्रा मे सोये हुए थे। वर्णव्यवस्था जन्म के अनुसार, अवतार, मूर्तिपूजा, मृतक-श्राद्ध समाज मे फैला हुआ था। शूद्र व स्त्रियों को वेदाधिकार से वर्जित कर दिया गया था। बाल विवाह वृद्ध विवाह जैसे कोढ़ से भारतीय समाज जर्जरित हो रहा था। अस्पृश्यों की बुरी दशा थी उनको कुत्तो से भी बदतर समझा जाता था। विधवाओं को चिता पर बलपूर्वक जला दिया जाता था। इस क्रूर प्रथा को यद्यपि राजा राममोहन राय जी ने लार्ड विलियम बेंटिक के समय बन्द करवा दिया था तथापि विधवाओ को समाज मे अत्यन्त हेय दृष्टि से देखा जाता था। शुद्धि का काम सर्वथा बन्द हो गया था। इससे ईसाई व मुसलमान दोनो ओर से हिन्दुओं को अपने-अपने चगुल मे फँसाकर विधर्मी बना रहे थे।

पाश्चात्य शिक्षा के कारण पढ़े-लिखे बाबूगण धर्म को तिलाजलि दे बैठे थे। शिखा-सूत्र का परित्याग तथा अपनी वैदिक सभ्यता व सस्कृति को सर्वथा भूलते जा रहे थे। अग्रेजी पढ़े-लिखे बाबूगण धडाधड ईसाई मत की ओर झुक रहे थे। सस्कृत व हिंदी भाषा पर कुठाराघात हो रहा था। सस्कृत भाषा को केवल थोडे से ब्राह्मण पढ़ते थे जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने मृतक भाषा (Dead language) कह डाला था।

ऐसी विकट परिस्थिति मे महर्षि दयानन्द जी का प्रादुर्भाव हुआ। गुरुवर महर्षि विरजानन्द जी सरस्वती से अध्ययन करके गुरु के आदेश से विश्व मे फैली हुई कुरीतियों का खण्डन करने के लिए कटिबद्ध होकर अहर्निश प्रचार करना प्रारम्भ किया। ऐसी विकट स्थिति मे उन को पौराणिक, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि से कई शास्त्रार्थ करने पड़े।

महर्षि दयानन्द जी ने कोई नया मत व सम्प्रदाय व



लेखक

धर्म नहीं चलाया वरन उनका धर्म तो वैदिक धर्म था। जैसाकि उन्होने सत्यार्थ प्रकाश मे स्पष्ट लिखा है।

'आर्यसमाज' की स्थापना सर्व प्रथम उन्होने भारतवर्ष की प्रसिद्ध नगरी बम्बई, गिरगाँव मे चैत्रसुदी पचमी सवत १९३२ विक्रमीय (१० अप्रैल सन १८७५ ई०) मे की। उस समय उसके २८ नियम निर्धारित किए गए थे। आगे चलकर लाहौर (अब पाकिस्थान) आर्यसमाज की स्थापना के समय इन्हीं २८ नियमो को सक्षिप्त करके वर्तमान मे प्रचलित आर्यसमाज के १० नियमों का रूप दिया।

कुछ पौराणिक लोग आर्यसमाज को सम्प्रदाय समझते हैं जो उनका भारी भ्रममात्र है। आर्यसमाज सम्प्रदाय नहीं वरन एक ऐसी सस्था है जो समाज मे फैली हुई कुरीतियों का खण्डन करके शुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार करती है। अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक डा० ऐन्ड्रयू जैक्सन डविस ने स्पष्ट कहा था—

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

आर्यसमाज स्थापना दिवस पर—

गोरक्षा आन्दोलन-एक विवेचन

(ले०—श्री रवीन्द्र अग्निहोत्री एम ए १६ केलाबाग, बरेली)

यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि देवभूमि भारत मे गोरक्षा आन्दोलन किस तिथि से प्रारम्भ हुआ पर यह ध्रुव सत्य है कि इस आन्दोलन का श्रीगणेश उसी दिन हो गया होगा जिस दिन किसी असुर ने आर्य जाति की जननी के विध्वस का विचारमात्र किया होगा। महर्षि च्यवन और मुनि दधीचि, सम्राट् दिलीप और गाडीवधारी अर्जुन के गोरक्षण के प्रयास और त्याग उस युग के ऐतिहासिक तथ्य हैं जो अग्रेजी शासनकाल से आज तक अबाध रूप से चली आती हुई *'धर्म-निरपेक्ष शिक्षा'* की मृग मरीचिका के लोलुप, अग्रेजी का ककहरा मात्र जानते हुए भी अपने को सर्वज्ञ समझने वाले आधुनिक 'ए ग्लो इन्डियन साहबो' के गले उतरता ही नहीं। तथा-कथित प्रगतिशील-वैज्ञानिक विचारों के ये विद्वान् और इतिहासज्ञ इस तथ्य से इनकार न कर सकेंगे कि सुल्तान नासिरुद्दीन, बाबर, हुमायू, अकबर, शाह आलम और उनके वशजों ने भारत पर अपने सात सौ वर्ष के शासन काल मे यहां की पुरानी नीति नहीं बदली। किसी भी व्यवस्था मे कोई परिवर्तन करते समय उन्होंने प्रजा के हित को प्राथमिकता दी। पर जिनके राजशासन कौशल का डका बजाया गया, जो धूर्तता, चातुरी, कार्यसाधुता, सदसद्विचार, पाखड आदि विशिष्टताओ मे प्रसिद्ध थे, व हैं, उन्होने इस सम्बन्ध मे ऐसी बर्बरता और अमानुषता दिखाई कि इसकी मिसाल विश्व के इतिहास मे सभवत दूसरी न मिलेगी। अग्रेजी शासन से पहले यहां 'गोरक्षा आन्दोलन' की आवश्यकता ही नहीं थी। उस समय समाज मे दो ही वर्ग थे। एक गऊ को मातृवत् पूजनीय मानने वाला वर्ण चतुष्टयात्मक आर्यों का वर्ग, दूसरा, प्रतिपक्षी को चिढ़ाकर उसे हानि पहुचाने वाला, आर्यों की गायों का अपहरण कर उनको भक्षण करने वाला, पराई बदशगुनी मे अपनी नाक कटाने को तत्पर दानव, राक्षस, असुर, म्लेच्छ आदि सज्ञाओं से अभिहित किया जाने वाला गोभक्षकों का वग। दोनों मे आत्मरक्षा के लिए सघर्ष चलता रहता था। अग्रेजी शासन मे उस झगडे का बाह्य-रूप परिवर्तित हो गया। पहले जो गोरक्षण शास्त्र से निर्णीत होता था अग्रेजी राज्य मे उसे गोशाला, गो रक्षिणी सभा, समाचार पत्र, व्याख्यान, आवेदन पत्र आदि का रूप प्राप्त हुआ और वह सामुदायिक रूप से 'गोरक्षा का आन्दोलन' कहा जाने लगा और इसके नेताओं को 'गो रक्षक' की सज्ञा प्राप्त हुई। इस अर्थ मे सर्व प्रथम 'गो रक्षक' थे विश्ववद्य पूज्य महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सर-स्वती जी महाराज।

सम्वत् १९३७ वि० मे आगरा के प्रसिद्ध वकील श्री गिरधारीलाल जी के गृह पर 'गोकरुणानिधि' पुस्तक लिखने और 'गोकृष्यादि रक्षिणी सभा' की स्थापना करने से पूर्व ही महर्षि ने अजमेर मे राजस्थान के पोलिटिकल एजेंट कर्नल ब्रुक से गोवध निषेध का आग्रह किया था। यह उस समय की बात है जब महर्षि अपने सिद्धान्तों की निश्चित रूपरेखा भी तैयार नहीं कर पाए थे। श्री प० हरिश्चन्द्र जी विद्यालकार ने महर्षि के जीवन चरित्र मे इस प्रसग को 'गोवध रुकवाने का पहला प्रयत्न' उपशीर्षक देकर पृष्ठ ५१-५२ पर लिखा है—'इस वार्तालाप मे स्वामी जी ने कर्नल को यह मानने के लिए बाध्य कर दिया कि एक गो से ही अनेक मनुष्य पलते हैं और गोवध से हानि होती है।' दूसरे दिन भी पौन घटे तक बातचीत करने के पश्चात् 'गोवध से हानि स्वीकार करने पर भी कर्नल ने इतना ही किया कि गवर्नर जनरल के नाम एक चिट्ठी दी और कहा कि गोवध रुकवाना मेरे अधिकार से बाहर है।'

फिर वह 'गोवध निषेध के लिए महान् आन्दोलन' उपशीर्षक देकर पृष्ठ २६०–२६१ पर लिखते हैं—'इस

समय महर्षि का मुख्य कार्यक्रम गोरक्षा आन्दोलन था। उनके अधिकतर व्याख्यानों का विषय गोरक्षा और गोवध निषेध आन्दोलन रहा। उनका विचार था कि कम से कम तीन करोड़ व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से गोवध निषेध का प्रार्थनापत्र साम्राज्ञी विक्टोरिया की सेवा मे भेजने से यह कार्य सिद्ध हो जायगा।' इसके लिए महर्षि ने एक विज्ञापन गोरक्षा के लाभ और गोवध से हानियो को बताते हुए हस्ताक्षर के लिए निवेदन पत्र सहित देश के राजा महाराजाओं, प्रत्येक आर्यसमाज व अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों एव सस्थाओ को भेजा। महर्षि के इन सारे प्रयत्नो को दृष्टिगत रखते हुए 'गोज्ञान कोष' मे लिखा गया है—'उन्होंने गोकरुणानिधि नामक एक पुस्तक प्रकाशित की और पजाब, राजपूताना, युक्तप्रान्त आदि प्रदेशों मे अनेक गोशालाएं स्थापित कीं। रेवाडी की गोशाला उनकी स्थापित की हुई गोशालाओं मे से पुरानी गोशाला है। मूर्तिपूजा, पुराण आदि सम्बन्धी स्वामी जी के मत बहुजनमान्य नहीं थे इस कारण उनके प्रारम्भ किए हुए गोरक्षण कार्य का प्रसार, उनके विभूतिमत्व के विचार से जितना होना चाहिये था, उतना न हो सका। फिर भी उनके प्रोत्साहन से लोगों के सामने एक उदाहरण उपस्थित हो गया और उत्पन्न की हुई जाग्रति से कार्य की रूपरेखा पाकर अनेक कार्यकर्ता तथा गोरक्षोपदेशक निर्माण हो गए। अनेक नई गोशालाएं भी स्थापित हुईं।' फर्रुखाबाद के गोभक्त सेठ मोहन लाल जी ने 'गोधम प्रकाश' नामक समाचारपत्र निकालना प्रारम्भ किया। हरद्वार मे बाबा भगवानदास ने 'गोहितकारी दफ्तर' खोला। भारतेन्दुहरिश्चन्द्र और स्वामी मगलदेव ने 'गोरक्षा प्रकाश मजरी', 'गोपुकार चालीसी', 'पाच पैर की गाय' आदि पुस्तको तथा व्याख्यान द्वारा, स्वामी आलाराम सागर सन्यासी ने व्यापक प्रचार कार्य द्वारा, प० जगतनारायण ने 'गोसेवक' साप्ताहिक, 'जीवदयामृत' मासिक तथा गोरक्षा सम्बन्धी २५ ३० पुस्तकों द्वारा, तथा अन्य अनेक गोभक्तों ने महर्षि के गोरक्षा के काम को आगे बढ़ाया। मथुरा मे सन् १८८९ मे 'देव प्रतिमार्चकाना गोरक्षिणी सभा' स्थापित हुई जो बाद में 'श्रीकृष्ण गोशाला' और 'मथुरा गोरक्षिणी सभा' के रूप मे परिवर्तित हो गई। प्रयाग मे दि सेन्ट्रल कमेटी आफ द काउ मेमोरियल फड' की स्थापना हुई जिसने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से यह मांग की कि सैनिक और असैनिक योरोपियनों के लिए गोमांस आस्ट्रेलिया से मगवा कर दिया जाया करे। उक्त प्रस्ताव को क्रिया रूप मे परिणत कराने के उद्देश्य से जबलपुर के एक पारसी सज्जन श्री करसेट जी सोराब जी जस्सावाला कुछ वर्ष तक इङ्गलैंड मे जाकर रहे। उन्होने सरकार को यह आश्वासन भी दिया कि इस कार्य मे सरकार को जो घाटा होगा उसकी पूर्ति के लिए मै उद्यत हू। पर अग्रेज सरकार भारतीय पशुओ विशेष रूप से गऊ को घटाने की एक नीति निश्चित कर चुकी थी अत उसने उक्त प्राथना अस्वीकार कर दी।

महर्षि के एक व्याख्यान की प्रशसा करते हुए गोज्ञान कोष ने लिखा है—' यह आश्चर्य होता है कि पचास वर्ष पूर्व के उस धर्म प्रवणता के काल मे भी स्वामी जी जैसा मेधावी सन्यासी उत्पन्न होकर गोरक्षण के धार्मिक महत्व को बनाये रखकर कृषि, व्यापार, राजनीति, अर्थशास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि की दृष्टि से गोरक्षण की व्यावहारिक उपयुक्तता केवल हिन्दुओ को ही नहीं, किन्तु ईसाई, मुसलमान आदि अन्य धर्मावलम्बियो को भी समझा देता है और सभी को गोरक्षण के पवित्र कार्य मे उद्यत करता है। यह जगदधात्री धेनुमाता की माता की महिमा है। श्री स्वामी जी का गोरक्षण सम्बन्धी गहरा व्यापक अध्ययन भी कौतुकास्पद है।'

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महर्षि ने गोरक्षा आन्दोलन के जिस बीज का वपन किया था उसे उन लोगो ने भी यथाशक्ति सींचा जो महर्षि के अन्य सिद्धातो से सहमत न होने के कारण उनके विरोधी भी थे। पर गोरक्षा का कल्पतरु आज भी एक उपेक्षित कोने मे खड़ा अपने भाग्य पर आठ आँसू बहा रहा है। उसके जीवन मे न वर्षा आई न बसत। कारण यह है कि गोहत्यारो ने जैसी जागरूकता से अपने हितों की रक्षा की, वैसी सावधानी से गोरक्षको ने अपने हितो को देखा भी नहीं। आइये ! आज आर्यसमाज स्थापना दिवस पर हम विचार करें कि महर्षि की गोरक्षण योजना का क्या स्वरूप था जिसने विभिन्न मतावलम्बियों को भी इस पुनीत यज्ञ मे आहुति देने को उद्यत कर दिया।

विचारशील पाठक इस मत से सहमत होंगे कि महर्षि का दृष्टिकोण किसी भी क्षेत्र मे साम्प्रदायिक या एकदेशीय नहीं, वरन् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की आद्य भावना पर आधारित विशुद्ध धार्मिक है—व्यापक या सही अर्थ मे—



जिसके अन्तर्गत वैयक्तिक, सामाजिक, शारीरिक, औद्योगिक, राजनीतिक, धार्मिक (प्रचलित अर्थ मे), शैक्षणिक जातीय, स्त्री, पुरुष पशु विषयक सभी भेद-उपभेद आ जाते हैं। गोरक्षा की समस्या पर भी महर्षि ने अपने स्वभावानुरूप उक्त दृष्टिकोण से ही विचार करके कार्य की जो योजना निश्चित की उसे सूत्र रूप मे हम गोरक्षण, गोपालन और गोसवर्द्धन–इन तीन सज्ञाओ मे समाहित कर सकते हैं। बूचडखानो के गोसहार का चित्र जिनके अन्तस् चक्षुओं के सामाने है वे 'मयाद रक्षणम्' के अनुसार कसाइयो की छरी से गाय बछडो को बचाना ही गोरक्षण मानेंगे। पिंजारापोल का नमूना जिनके सामने है वे अनाथ, अपग गायो और अन्य जीवो के पालन को ही गोरक्षण समझते हैं। जिनकी दृष्टि के सामने आधुनिक शास्त्रीय उपकरणो और यन्त्र सामग्री से सुसज्जित पश्चिमी देशो के दुग्धालय हैं उनके अनुसार यदि गोशालाओ मे सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट गाय बछडे, उत्तम नस्ल के सांड, और आदर्श गोपालन व्यवस्था जैसे आह्लाददायक दृश्य देख पडें तो वही सच्चा गोरक्षण कहा जायगा। पर महर्षि के मतानुसार इन तीनों ही कार्यो की परम आवश्यकता है। एक ओर से गायो को कसाईखानों मे न जाने देना और दूसरी ओर से गायो की नस्ल सुधार कर उनकी दुग्धोत्पादकता बढ़ाने का प्रयत्न करना यह महर्षि की गोकृष्य दि रक्षिणी सभा की योजना के मूल सिद्धान्त हैं। महर्षि के निकट गोरक्षा का प्रश्न केवल पशु रक्षा का प्रश्न नहीं, वह हमारे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, सामाजिक, धार्मिक, जातीय–सभी प्रकार के जीवन का प्रश्न है। महर्षि गोदुग्ध की हमारे उक्त जीवनो मे उपयोगिता को भली प्रकार समझते थे जिसका सकेत उन्होने गोकरुणानिधि के पृष्ठ ५ और ६ पर किया है। फिर इस योजना का विरोधी कौन होता। महर्षि के मन मे एक मनोरम चित्र रहा होगा–प्रत्येक नगर और ग्राम मे एक गोकृष्यादि रक्षिणी सभा का, 'जिससे गो आदि पशु जहा तक सामर्थ्य हो बचाए जावें और उनके बचाने से दूध घी और खेती के बढ़ने से सबको सुख बढ़ता रहे।' (गोकरुण निधि पृष्ठ २)

पाठक, महर्षि के दायित्व को पूरा करने के लिये अपने जातीय जीवन की वर्षगाठ पर विचार कर जगद्गुरु दयानन्द की उस कल्पना को साकार करने का बीडा उठायें जिससे भूतल पर सच्चा रामराज्य उतर आए, वैदिक का आदर्श अवतरित हो जाए! ★

(पृष्ठ ५३ का शेष)

"मैं एक ऐसी अग्नि देखता हू जो सर्वव्यापक हैं। यह अप्रमेय प्रेम की अग्नि है। जो सर्व विद्वेष को भस्मसात् करने के लिये प्रज्ज्वलित हो रही है और सर्ववस्तुओं को पवित्र करने के लिये पिघला रही है। अमेरिका के प्रशस्त क्षेत्रों, अफ्रीका के महान स्थलों, एशिया के पर्वतों, योरप के विशाल राज्यों और राष्ट्रो मे सर्वपावन, इस अग्नि की प्रज्ज्वलित ज्वालाएँ मुझे दृष्टिगोचर हो रही हैं। "

आर्यसमाज ने वेदोद्धार, समाजोद्धार के लिए बहुत कुछ किया है। सस्कृत, हिन्दी का प्रचार किया। शुद्धि का द्वार खोलकर जन्म के मुसलमान व ईसाईयों को भी सम्मिलित करने का बीडा उठाया।

भारत के दो टुकडे हो जाने से आर्यसमाज के कार्यों मे कुछ शिथिलता आ गई है। पजाब मे आर्यसमाज का कार्य विस्तृत रूप से था। पाकिस्थान बनने के कारण आर्य समाज को भीषण क्षति हुई है।

आज आर्यसमाज स्थापना दिवस के शुभ अवसर पर प्रत्येक आर्यसमाजी को महर्षि दयानन्द जी द्वारा स्थापित आर्यसमाज के सिद्धान्तों का तन, मन, धन से प्रचार करने के लिये प्रतिज्ञा करनी चाहिये। ★

(पृष्ठ ५२ का शेष)

बुद्धि का विकास और चरित्र का निर्माण शिक्षा के दो ही उद्देश्य हैं। हो सकता है ब्रह्मचारी भिक्षा के लिये जाय और अपने घर से ही भोजन ले आया करे। ऐसी स्थिति को रोकने के लिये ही मनु ने लिखा है कि गुरु के घर, रिश्तेदारो के घर, अपने घर, अपने भाइयो के घर भिक्षा नहीं मागनी चाहिये। हा, जब कहीं कुछ न मिले तो भाइयो के घर भिक्षा मागी जा सकती है। और वहा भी न मिले तो क्रमश उससे पूर्व के घर पर भिक्षा के लिये जाना सम्भव हो सकता है। परन्तु पाप से धन कमाने वाले के घर भिक्षा मागना निषिद्ध है। (मनु० २।१८४-१८५)।

बुद्धि का विकास चरित्र पर पर्दा डालने के लिये नहीं होना चाहिये। यम और नियमो मे नियम बौद्धिक है और यम हृदय की अनुभूति। दोनो का समन्वय नहीं हो सका तो शिक्षा अधूरी रही। यह ठीक है कि बुद्धिमान् व्यक्ति की प्रशसा लोग करते हैं, किन्तु सच्चरित्र व्यक्ति ससार को अपना अनुगामी बना लेता है। बुद्धि जीवन के पथ को आलोकित करती है किन्तु चरित्र जीवन पथ पर अग्रसर होता है ताकि मजिल तक पहुचा जा सके।

आर्यसमाज ने जिस शिक्षा सस्था को अपना मिशन बनाया है वह यही है। साधन बदल सकते हैं। किन्तु ध्येय वही है।

— 'जिला आर्य प्रतिनिधि सभा अलीगढ़ का वार्षिक निर्वाचन १० अप्रैल १९६४ को स्थान साधु आश्रम (हरदुआगज, अलीगढ़) मे मध्याह्नोत्तर १२ बजे से होगा। प्रतिनिधि महोदय समय पर उपस्थित होने का कष्ट करें।" —मत्री

श्री सभा प्रधान जी का भ्रमण प्रोग्राम

१९ अप्रैल बदायूं आ० स० दोनों समाज
२० " बिलसी "
१ मई गोंडा आर्य सम्मेलन
३ मई शाहजहांपुर की तीनों समाज
४ मई खुदागंज, मीरानपुर कटरा
—चन्द्रदत्त तिवारी, सभामंत्री

मास अप्रैल के प्रोग्राम

श्री रामस्वरूप जी आर्य मुसाफिर ६ से ८ उझियानी, ११ से १३ हाथरस नया गंज, १४ से १७ बिन्दकी, १८ से २१ कासगंज।

श्री धमरार्जसिंहजी-६, ७ कलवारी ८-९ लालगंज, १० से १३ बस्ती, १७ से २० फर्रुखाबाद।

श्री धमदत्त जी आनन्द-१० से १५ मानपारा, १७ से २० फर्रुखाबाद।

श्री गजराजसिंह जी—९-१० दादो १३ से १६ केराकत, २४ से २६ सरसावा

श्री खेमचन्द्र जी-८ से २५ देवरिया

श्री रघुवरदत्त जी-५ से ७ मैलानी पश्चात् लखीमपुर खीरी।

श्री जयपालसिंह जी—११ से १३ कोड़ा जहानाबाद, १६ से १९ ग्वालटोली कानपुर, २४ से २६ सरसावा।

महोपदेशक

श्री प० रुद्रदत्त जी शास्त्री-५ से ७ नवाबगंज बरेली, ११ से १३ बस्ती, १७ से १९ ग्वालटोली कानपुर, ३० से तिलहर

श्री प० सत्यमित्र जी शास्त्री-६ से ८ उझियानी, ९-१० लालगंज, ११ से १३ कोड़ा जहानाबाद, १५ से १७ बिन्दकी २४ से २६ लल्लापुरा वाराणसी।

—सच्चिदानन्द शास्त्री एम०ए०
स० अधिष्ठाता, उपदेश विभाग

स्थापना दिवस के उपलक्ष में

एक आर्य भाई ने हमे साहित्य प्रचार के लिये दान देने का वचन दिया है। दान की सहायता एक रुपया प्रति सौ के हिसाब से उन समाजों और प्रचार प्रिय व्यक्तियो को दी जायगी जो प०गंगाप्रसाद उपाध्याय' द्वारा लिखित ट्रैक्ट 'आर्यसमाज क्या है' की न्यून से न्यून एक सौ प्रतिया वितरण करेंगे। ट्रैक्ट का घटाया हुआ मूल्य ४) [बढ़िया कागज पर ५)] प्रति सौ और एक सौ पर रजिस्ट्री सहित डाक व्यय २) ६५ न० पै० है।

"उपाध्याय" जी की अंग्रेजी पुस्तक "Origin & Scope of Arya Samaj" [मूल्य १॥)] प्रति भी इसी उपलक्ष्य से दान दी जायगी।

यह सुविधा अप्रैल मास मे ही दी जाएगी। इन्हे मनीआर्डर द्वारा मूल्य भेजकर मगाने मे ही आपका भला है।

मंत्री ट्रैक्ट विभाग आर्यसमाज चौक इलाहाबाद

आर्य हवन सामग्री पर शुभ-सम्मति

वेदों के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री प० मदनमोहन विद्यासागर जो हैदराबाद (आ० प्र०) लिखते हैं—

कई अन्य हवन सामग्री विक्रेताओं द्वारा बनी हवन सामग्री से मैने श्री धर्मवीर झडाधारी जी द्वारा निर्मित हवन सामग्री को विशेष गुणयुक्त सुगन्धित पाया। यज्ञों मे इसका अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिये। ऐसी उत्तम सामग्री बनाने के लिए श्री प० धर्मवीर जी आर्यों के धन्यवाद के पात्र हैं।

न० १ मेवायुक्त हवन सामग्री का भाव ८०) मन है।
न० २ बिना मेवा की सामग्री का भाव ५०) मन है।

अधिक मगाने पर कमीशन मिलता है।

सभी नगरो मे हवन सामग्री के विक्रेताओ की अविलम्ब आवश्यकता है। उचित कमीशन दिया जावेगा।

वेदपथिक धर्मवीर आर्य झण्डाधारी
सचालक—आर्य हवन सामग्री निर्माणशाला
अहाता ठाकुरदास सराय रुहेला, नई दिल्ली ५

आगामी उत्सव

वैदिक साधन आश्रम-तपोवन, देहरादून मे १९ अप्रैल (रविवार) से २६ अप्रल (रविवार) १९६४ तदनुसार ७ वैशाख से १४ वैशाख सवत २०२१ तक २५००० आहुतियो का गायत्री महायज्ञ, योगसाधना-शिविर तथा सत्सग, श्री महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती महाराज जी की अध्यक्षता मे होगा।

—आर्यसमाज रक्सौल (चम्पारण) का ३९ वा वार्षिकोत्सव १२, १३, १४ अप्रैल १९६४, रवि, सोम, मगलवार को समारोहपूर्वक मनाया जायगा।

—आर्यसमाज बसन्तपुर (सारण) का १० वा वार्षिक महोत्सव ता० २७ अप्रैल से ३० अप्रैल तक बडे धूमधाम से मनाया जायेगा उस अवसर पर आर्यजगत के बडे बडे धुरन्धर विद्वान पधार रहे हैं।

—कन्याओ की धार्मिक एव आयुर्वेदिक शिक्षा के केन्द्र कन्या गुरुकुल हरिद्वार कनखल का ३० वा वार्षिकोत्सव १२ से १५ अप्रैल तक भारी समारोह सहित मनाया जायेगा।

—आर्यसमाज जौनपुर का ६२ वा वार्षिकोत्सव दि० १७ से २० अप्रैल तक मनाया जावेगा इस अवसर पर स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज कुरान के प्रकाड विद्वान् श्री प विद्याभिक्षु जी एम ए एल. टी, श्री कुवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर, श्री रामजी प्रसाद जी गुप्त आर्य भिक्षु तथा नन्दलाल जी महिपालसिंह जी आदि पधार रहे है। —मत्री

—आर्यप्रतिनिधि सभा वाराणसी का वार्षिक निर्वाचन दिनाक १२ अप्रैल १९६४ ई० रविवार सायकाल ४ बजे आर्यसमाज जैतपुरा मे होगा। सभा मत्री श्री गगा प्रसाद जी आर्य सूचित करते हैं कि प्रत्येक समाजें अपने प्रतिनिधि को प्रतिनिधि फार्म वार्षिक शुल्क सहित नियत समय पर भेजकर कार्य्य में सहयोग प्रदान करें।

सूचना आर्यवीर दल

मीरजापुर जिला के समस्त आर्य समाजो तथा आर्यवीर दलो के मन्त्री व प्रधानो से निवेदन है कि २०अप्रैल सोमवार समय ४ बजे शाम से रामनवमी के अवसर पर 'शिवशकरी मेले' मे आर्य समाज के पडाल मे 'जिला आर्यवीर दल सम्मेलन' विराट पैमाने पर श्री अवधबिहारी जी खन्ना स० सचालक के सभापतित्व मे किया जा रहा है । अत प्रत्येक समाज से ५-५ प्रतिनिधि व दल से भी भाग लेने की कृपा करें । इसके पूर्व १२ बजे से श्री महानन्दसिह व श्री विश्रामसिह का भजन होगा ।

आर्य अग्रवाल वैश्य वर की आवश्यकता

एक अग्रवाल वैश्य आर्य कन्या जो सम्पूर्ण विषयों मे बी०ए० पास तथा प्रभाकर उत्तीर्ण है, उसके लिये ग्रेजुएट आर्य वर की आवश्यकता है। कन्या सुन्दर स्वस्थ तथा सौम्य और गृह कार्यों मे दक्ष है। पत्रव्यवहार नीचे लिखे पते पर करें। द्वारा आचार्य विश्वश्रवा व्यास एम०ए० गुरुकुल ११९ गौतम नगर, नई दिल्ली १६

दैनिक स्वाध्याय के ग्रन्थ

(१ ऋग्वेदसुबोध भाष्य—मधु छन्दा, मेधातिथी, शुन शेष कण्व) परागौतम, हिरण्य गर्भ, नारायण, बृहस्पति, विश्वकर्मा, सप्त ऋषि व्यास आदि, १८ ऋषियो के मन्त्रो के सुबोध भाष्य मूल्य १६) डाक व्यय १॥)

ऋग्वेद का सप्तम मण्डल (वशिष्ठ ऋषि)—सुबोध भाष्य। मू० ७) डाक व्यय १)

यजुर्वेद सुबोध भाष्य अध्याय १—मूल्य १॥), अष्टाध्यायी मू० २) अध्याय ३६, मूल्य ॥) सबका डाक व्यय १)

अथर्ववेद सुबोध भाष्य—(सम्पूर्ण २० काण्ड) मूल्य ५०) डाक-व्यय ६)

उपनिषद् भाष्य—ईश २), केन ॥), कठ १॥) प्रश्न १॥) मुण्डक १॥) माण्डूक्य ॥), ऐतरेय ।॥) सबका डाक व्यय २)।

श्रीमद्भगवतगीता पुरुषार्थ बोधिनी टीका—मूल्य १२॥) डाक-व्यय २)

चाणक्य—सूत्राणि

पृष्ठ-संख्या ६९० मूल्य १२ डाक-व्यय २)

आचार्य चाणक्य के ५७१ सूत्रों का हिन्दी भाषा मे सरल अर्थ और विस्तृत तथा सुबोध विवरण भाषान्तकार तथा व्याख्याकार स्व० श्री रामावतार जी विद्याभास्कर, रतनगढ़ जि० बिजनौर। भारतीय आर्य राजनैतिक साहित्य मे यह ग्रन्थ प्रथम स्थान मे वर्णन करने योग्य है यह सब जानते हैं। व्याख्याकार भी हिन्दी जगत मे सुप्रसिद्ध हैं। भारत राष्ट्र अब स्वतन्त्र। इस भारत की स्वतन्त्रता स्थायी रहे और भारत राष्ट्र का बल बढ़े और भारत राष्ट्र अग्रगण्य राष्ट्रों मे सम्मान का स्थान प्राप्त करे, इसकी सिद्धता करने के लिए इस भारतीय राजनैतिक ग्रन्थ का पठन पाठन भारत भर में और घर-घर मे सर्वत्र होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए इसको आज ही मगाइये।

ये ग्रन्थ सब पुस्तक विक्रेताओ के पास मिलते हैं।

पता—स्वाध्याय मण्डल किल्ला पारडी, जिला सूरत

आवश्यकता

कन्या गुरुकुल देहरादून की १० श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त १८ वर्षीया एक स्वस्थ सुयोग्य एव सुन्दर कन्या के लिए लगभग २२ वर्षीय (इण्टर या बी० ए० व गुरुकुल का स्नातक) लडके की आवश्यकता है। लडका आर्यसमाजी विचार का तथा वैश्य मात्र मे होना आवश्यक है।

पत्र व्यवहार का पता —

विद्याभास्कर शास्त्री

२ धामावाला बाजार, देहरादून

आवश्यकता

आवश्यकता है, एक सुयोग्य, सुशिक्षित, स्वस्थ, स्वावलम्बी, सरकारी सर्विस, साहबे जायदाव ३५ वर्षीय ब्राह्मण विधुर को, एक सुन्दर, स्वस्थ तथा गृह कार्य में दक्ष ब्राह्मण महिला की। १६-१२-१४

—के०एल० शर्मा

द्वारा "आर्य मित्र"

५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ

युवाशक्ति को लाइये


लेखक

(श्री ईश्वरदयालु जी आर्य, मुख्य उपमन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश)

प्रत्येक सस्था मे तीन प्रकार के कार्यकर्ता हुआ करते है, प्राचीन (वृद्ध) वर्तमान और नवागन्तुक। जिस समाज या सगठन मे यह धारा प्रवाहित होती रहती है, वह सदैव आगे बढता और जीवित रहता है। आर्यसमाज के प्रारम्भिक इतिहास का जिन महापुरुषो ने निर्माण किया उनकी अधिकाश शक्ति अपने समय की बुराइयो को दूर करने के साथ साथ आगे के लिए अपने स्थानापन्न तय्यार करने मे लगी रही। आयसमाज की सस्थाय नई पीढी को तय्यार करने के केन्द्र बने, परन्तु आज हम इस दिशा मे उदासीनता अनुभव करते हैं। आर्य शिक्षा-सस्थायें हमारे व्यक्तिगत सामाजिक गौरव का साधन अधिक हैं। आर्यसमाज प्रचार मे सहायक कम होने का यही कारण है कि आर्य समाज मे युवक वर्ग का अभाव बढता जा रहा है। प्रत्येक सगठन अपना एक युवक समुदाय तय्यार करती है, चाहे काग्रेस हो या कोई अन्य सभा परन्तु आर्यसमाज मे इस ओर उदासीनता क्यो है, यह विचारणीय प्रश्न है। मै आर्यजगत के सम्मुख विनम्र अभ्यथना करनाचाहता हू कि आर्यसमाज के युवक आन्दोलन को पुनगठित और सशक्त बनाने मे अपनी शक्ति लगा दीजिये। आर्यसमाज स्थापना के ८९वें दिवस पर हम सब मिलकर यह सकल्प करें कि हम नई पीढी को आर्यसमाज का उत्तरदायित्व सौंपने का दायित्व पूरा करेंगे। यदि इस दिशा मे हम सच्चे हैं तो हमे अपने परिवारो के बालको, युवको को आर्यसमाज मे लाने का यत्न करना चाहिये। आर्यकुमार परिषद् के व्यावहारिकरूप को महत्व देकर हम अपनी शिक्षा-सस्थाओ मे सगठित युवा शक्ति को आर्यसमाज की ओर ला सकते हैं। आवश्यकता है स्नेह और लगन के साथ युवा-वर्ग से सम्पर्क स्थापित करने की। आशा है स्थापना दिवस से आर्यजन इस दिशा मे प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

आर्य वीर दल समाचार—

—पूर्वी उत्तर प्रदेशीय आर्यवीर दल केन्द्र वाराणसी के अधीनस्थ समस्त उप सचालको, मण्डलपतियों को सूचित किया जाता है कि आगामी गर्मी की छुट्टी के अवसर पर के लिये व्यापक कार्यक्रम की योजनायें बनाई गई हैं। आप अपने क्षेत्रों के कर्मठ कार्यकर्ताओ की सूची केन्द्र को शीघ्र भेजें तथा समय दान देने वाले वीरो की सूची भेजें जिससे उनके समय का सदुपयोग दल कार्य के लिये किया जा सके।

२—पूर्वी उत्तर-प्रदेश केन्द्र वाराणसी के सचालक श्री अवधबिहारी खन्ना ने अपने अधीनस्थ निम्नलिखित तीनो केन्द्रों के लिये तीन उप-सचालकों को नियुक्त किया। आर्यवीर दल उत्तर-प्रदेश केन्द्र वाराणसी उप सचालक श्री बेचनसिंह, गाजीपुर केन्द्र श्री प्रभुदयाल आय तथा जौनपुर केन्द्र श्री मुन्नीलाल। उप सचालको से निवेदन है कि अधीनस्थ मण्डलो के मण्डलपतियो की नियुक्ति शीघ्र करते हुए उसकी सूची केन्द्र को शीघ्र भेजें।

३—पूर्वी उत्तर प्रदेशीय आयवीर दल केन्द्र वाराणसी की कार्य समिति की सदस्यो की आवश्यक बैठक २६ ४-६४ को आर्यसमाज मन्दिर लल्लापुरा वाराणसी मे दोपहर २ बजे से केन्द्र के सचालक श्री अवधबिहारी खन्ना की अध्यक्षता मे होगी। समस्त उपसचालक एव मडलपति अपने-अपने क्षेत्रो की विवरण पत्रिका शीघ्र केन्द्र को भेजें, तथा बैठक मे उपस्थित होकर कार्य सम्पादन मे योग दें।

—उमाकान्त मन्त्री

पूर्वी उत्तर प्रदेशीय आर्यवीर दल केन्द्र वाराणसी
कार्यालय—सी ३३/३०३ विद्यापीठ रोड वाराणसी २

आर्यसमाज और हिन्दी



लेखक

(ले०—श्री साहू हरप्रसाद जी कोषाध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश)

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म गुजरात प्रान्त मे हुआ था, जिसके कारण उनकी मातृभाषा गुजराती थी। जब वह पढ़ लिख कर निष्णात हुए, और उन्होंने सारे देश का दौरा किया तो उन्हें अनुभव हुआ कि सारे देश में एक हिन्दी भाषा ही ऐसी है,जो सर्वत्र बोली और समझी जाती है। इसलिए उन्होंने हिन्दी बोलना और लिखना प्रारम्भ कर दिया।

ऋषि ने अपना सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी मे ही लिखा जिससे जन साधारण लाभ उठा सकें। ऋषि दयानन्द के हिन्दी प्रचार को उनके सस्थापित आर्य समाज ने अपने ऊपर लिया, और आर्यसमाज के विद्वानों ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे, और प्रकाशित किये।

दयानन्द कालिज और हिन्दी

१ जून १८८६ को ऋषि दयानन्द की स्मृति मे दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज लाहौर मे खोला गया तो उसके उद्देश्यों व नियमो के अन्दर यह भी अंकित है कि इस कालेज का उद्देश्य सस्कृत व हिन्दी भाषा की वृद्धि करना, प्रसार करना और प्रचार करना है।

आर्यसमाज ने शिक्षा क्षेत्र में उतर कर हजारों कन्या पाठशालाएँ, डी ए वी स्कूल, डी ए वी कालिज आदि खोल कर हिन्दी को गौरवान्वित किया। अंग्रेजों के समय मे ही गुरुकुलो की स्थापना हुई, और इनमे से जो स्नातक निकले, उन्होंने हिन्दी साहित्य भण्डार की भी वृद्धि की।

पजाब मे उर्दू का बोलबाला था, मगर पजाबी आर्य नेताओं ने भी हिन्दी की श्री वृद्धि के लिए अनेक प्रशसनीय कार्य किये। पजाब के आर्य विद्वानो ने बडा उच्चकोटि का आर्य साहित्य देश को दिया। महात्मा श्रद्धानन्द जी महाराज अपना अखबार सद्धर्म्म प्रचारक उर्दू मे निकालते थे, परन्तु फिर उन्होने उसे भी हिन्दी मे निकालना प्रारम्भ कर दिया, पजाब के दैनिक मिलाप, प्रताप आदि अखबार जो उर्दू मे निकलते थे, वे भी हिन्दी मे निकलने लगे।

देश की आर्य प्रतिनिधि सभाओ ने भी सदैव से अपना सारा काम हिन्दी मे ही किया, और उनके द्वारा हिन्दी का बडा प्रचार और प्रसार हुआ। आर्यमित्र ने तो अपने जीवन के ६५ वर्ष हिन्दी सेवा मे ही लगा दिये। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारो और विद्वानो मे अधिकतर ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त ही हैं। इस तरह हिन्दी के उत्थान का श्रेय अधिकतर आर्यसमाज को ही है।



ऋषि दयानन्द वचनामृत

दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरो का ही प्रयोग और प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सपादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रन्थ आर्य भाषा मे लिखे और प्रकाशित किए हैं।

वेद के प्रति कर्तव्य



[श्री आचार्य विश्वश्रवा जी, दिल्ली]

ऋषि का दृढ विश्वास था कि यह ससार जो दुखी है इसकी रक्षा वेदज्ञ ही कर सकता है। वेद विमुख ससार दुखी होता है वेदानुसारी ससार सुखी होता है। पर वह विद्वान् साधारण न हो। बहुत बडा विद्वान ही यह काम कर सकता है। विद्वानो के दो काम है वे उपदेश द्वारा ससार को समझावें और अध्यापन द्वारा ससार की भावी सन्तान को तैयार करें जिनका नाम ऋषि ने अपने वेदभाष्य मे अध्यापक और उपदेशक रखा है ससार को बनाने और बिगाडने वाले ये ही दो होते है।

१—आप कुशिक्षा देकर छात्र वर्ग का दिमाग खराब कर दीजिये जैसा अग्रेजो ने किया, मैकाले ने किया और-

२—गलत चीज का प्रचार जनता मे करिये जैसे सम्प्रदाय वालों ने किया।

(बस ससार का नाश अवश्यम्भावी है)

१—आप अध्यापन द्वारा फिर उस कुशिक्षा को दूर कीजिये।

२—सही प्रचार जनता मे कीजिये।

(बस ससार का सुधार अवश्यम्भावी है)

परन्तु ये अध्यापक और उपदेशक साधारण योग्यता के न हों बहुत उच्चकोटि के हों।

ऋषि की लेखनी के अन्तिम शब्द

महर्षि ने बहुत बड़ा साहित्य ससार को दिया। वेद

❀ ऋषि गान ❀

न जाना कभी वेद का ज्ञान क्या है।
कि है धर्म क्या और ईमान क्या है॥
कभी पेड पौधो को सर जा झुकाया।
कभी कब्र पर जाय दीपक जलाया।
कभी मूर्ति के सामने भोग लाया।
न समझा कभी यह कि पाषाण क्या है॥
प्रयाग द्वारिका और हरिद्वार काशी।
फिरा घूमता बन के मुक्ति का पिपासी।
न जाना कहां पर है घट-घट निवासी।
न समझा कि सर्वज्ञ भगवान क्या है॥
किसी के छुये धर्म बिगडा हमारा।
किसी को अछूत शूद्र कह कर पुकारा।
मनुज से किया था मनुज ने किनारा।
न मन मे ये समझा कि इन्सान है॥
कहीं पर गऊ वश की चीत्कारें।
अनाथ और अबला कहीं पर दहाडें।
कहीं मातृ शक्ति तिरस्कृत पुकारे।
न समझा कि नारी का स्थान क्या है॥
ग्रह चाल नक्षत्र का ताप भारी।
बता लूट ठगते थे पडे पुजारी।
कहीं भूत प्रेतादिकों की बीमारी।
न समझा कि भूतो का आख्यान क्या है॥
सुभग वेद ज्योति बुझी जा रही थी।
घनी पोप लीला बढ़ी जा रही थी।
ऋषि ने कहा आके चेतो सुजनवर।
सही पथ से भ्रान्ति व्यवधान क्या है॥
हिलाया सकल सम्प्रदायो मतो को।
लगे ढूढने धर्म सब सत्पथों को।
लगे तर्क मे मांगने मान्यतायें।
हिले बाइबिल कुरां औ पुराण क्या हैं॥
दिए जो कि सकेत ऋषिराज ने हैं।
प्रचारित किये आर्यसमाज ने हैं।
चला आज शासन उन्हीं के सहारे।
अधिक और गौरव का परिमाण क्या है॥

—धर्मेन्द्रनाथ अलिन्द
हल्दौर, बिजनौर

नारी समाज आर्य जीवन की सत्प्रेरणा ले

(ले०—अक्षयकुमारी शास्त्री, आचार्या कन्या गुरुकुल महाविद्यालय हाथरस)



लेखिका

विश्व हितैषी महर्षि दयानन्द महाराज ने मानव जाति के समुद्धार के लिये नारी जाति को सम्मान दिलाने का जो आन्दोलन किया था उसके लिये नारी-समाज उनका सदैव आभारी रहेगा। महर्षि के विचारानुसार आर्य समाज ने स्त्री-शिक्षा और नारी सम्मान के लिये व्यापक आन्दोलन किया, भारत के महिला-जागरण की प्रमुख भूमिका आर्यसमाज द्वारा ही लिखी गई। बाल विवाह का निषेध, विधवाओं का सरक्षण और उनको समाज मे उचित स्थान दिलाना, कन्याओं की शिक्षा के लिये स्थान स्थान पर कन्या पाठशालाओं की स्थापना, वेदाधिकार, पर्दा प्रथा का विरोध, दहेज दानव का दलन, जाति भेद का उन्मूलन आदि ऐसे कार्य हैं जिनमे आर्यसमाज ने राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन किया और राष्ट्र की प्रसुप्त नारी शक्ति को विदेशी दासता के विरुद्ध बलवती शक्ति सेना के रूप मे प्रस्तुत कर दिया। आज नारी अपने सम्मानपूर्ण पद को प्राप्त कर चुकी है परन्तु आर्यसमाज का कार्य अभी बहुत बाकी है। मैं आर्य महिलाओ से अभ्यर्थना करू गी कि वे आर्यसमाज स्थापना दिवस के सुअवसर पर गम्भीर चिन्तन करें कि क्या आज जागृति और समानता के नाम पर नारी जिस पथ पर पग बढा रही है उससे स्वय नारी का अहित नहीं हो रहा, क्या नारी की वर्तमान फैशन भावना, पश्चिम का अन्धानुकरण नारी समाज के नैतिक विकास मे बाधक नहीं बन रहा, क्या इस प्रकार अनजाने ही नारी फिर मानव की विलास भावनाओं का शिकार नहीं हो रही, समाज मे सम्मान से रहने का जो सम्बल महर्षि और आर्य समाज ने हमे दिया था क्या उससे हम दूर नहीं जा रहीं, क्या उसका अन्तिम परिणाम नारी का पुन पतन और दलन ही न होगा। नारी को भावी पतन की सम्भावनाओ से बचाने का दायित्व पुन आर्यसमाज पर आ पडा है। यदि आर्य महिलाए और आर्यजन आये हुए सकट को समझ लें तो बहुत कुछ हो सकता है। हमें दूर न जाकर सबसे पहले अपने घरो को देखना होगा, हमारी लड़कियां, वधुए और बहनें जिस रूप-ढग, वेश-भूषा मे रह रही हैं वह कहा तक शालीनता, नारी सुलभ-लज्जा और नारी गौरव की रक्षा मे सहायक है। यदि हम अपने परिवारो मे और अपने-समाज मे अपेक्षित सुधार ला सकें तो नारी जाति की महती सेवा होगी। आर्यसमाज स्थापना - दिवस के अवसर पर मै अपनी बहनो से यह प्रेरणा लेने का अनुरोध करू गी कि वे आर्य जीवन के आदर्शों को समझें और स्वय वैसा बनें और अपने समाज को उसके अनुसार बनायें।



भाष्य करते करते महर्षि की लिखाई अन्तिम पक्तिया, जिसके बाद कुछ नहीं लिखाया, पढ़ो। ऋषि के जीवन का अन्तिम उपदेश ध्यान देकर सुनो। अध्यापको और उपदेशको को सम्बोधन करते हुये ऋषि लिखते है कि मित्र और वरुण प्राण और उदान के समान वर्तमान अध्यापक और उपदेशको सुनो—

हे विद्वानों जो बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य से शास्त्रों को पढ़ता है वही बुद्धिमान होकर सब मनुष्यो की रक्षा करने मे समर्थ होता है। —महर्षि भाष्य भावार्थ ऋ०७-६१-२

मुक्ति मे जाते हुये महर्षि के लिखे-लिखाये ये अन्तिम शब्द है। इसके उपरान्त महर्षि ने कुछ नहीं लिखाया। अत वेद का कार्य करके ऋषि की भावना के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिये।



आर्यसमाज और यज्ञ

(ले०—श्री प० रामप्रसाद जी मेडू अन्तरंग सदस्य आर्य प्र० सभा उ प्र)

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व भारत की दशा दयनीय थी। यहां अनेक प्रकार के मतमतान्तर फैले हुए थे। अज्ञान अविद्या का बोल बाला था। वेद विद्या विलुप्त हो गई थी। लोग वेदों का नाम भूल गए थे। ऋषि दयानन्द ने ससार का ध्यान वेदों की ओर आकर्षित किया और वेदों का सरल और सुबोध भाष्य करके आर्य जाति का वेदों में श्रद्धा और विश्वास पैदा किया, जिसके कारण लोगों की रुचि वेद पढ़ने की ओर हुई। आर्यसमाज के विद्वानों ने भी जहां चारों वेदो के भाष्य किये, वहा वेदों के मन्त्रों के छोटे छोटे सस्करण प्रकाशित करके घर घर मे पहुचाये। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्य जाति का ध्यान यज्ञों को ओर गया और जगह-जगह यज्ञ होने लगे। आर्यों को तो नित्यप्रति यज्ञ करना अनिवार्य कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ की महत्ता का ज्ञान जनसाधारण को हो गया और यज्ञों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। आज सारे देश मे अनेक स्थानों पर प्रतिवर्ष बडे-बडे विशाल यज्ञ होते हैं, जिनसे जन समाज का कल्याण तो होता ही है, पर इसके प्रभाव से अनेक सक्रामक रोगो का विनाश हो जाता है। यज्ञ से वायु शुद्ध होती है और वायु की शुद्धता से अनेक रोग दूर होते हैं इसलिए प्रत्येक आर्य को नियमित रूप से प्रति दिन यज्ञ करना चाहिए। इससे अपना ही लाभ नहीं है, इससे पर उपकार भी है। दैनिक यज्ञ करने वाले को शान्ति प्राप्त होती है। उसका मन सात्विक विचारो से परिपूर्ण रहता है। इसलिए अगर शान्ति लाभ चाहते हो तो प्रतिदिन यज्ञ करने की प्रतिज्ञा कीजिए और यज्ञ करना प्रारम्भ कर दीजिए।

प्रत्येक आर्य के जीवन मे यज्ञ को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इसी भावना से पञ्च-महायज्ञ विधि का निर्माण कर हमारा पथ-प्रदर्शन किया। आर्यसमाज के पुराने लोगो में यज्ञ कर्मकाण्ड आदि की ओर जो श्रद्धा और रुचि थी, उसका आज अभाव दिखाई पडता है। जब हम अपने सब कार्यों को महत्व देते हैं तब ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ की उपेक्षा क्यों करें। हम चाहते हैं कि सारे विश्व मे वेदमन्त्रों की ध्वनि गूंज उठे, 'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम' साकार हो उठे, परन्तु यह स्वप्न पहले घर मे साकार होना चाहिए। आर्यसमाज स्थापना-दिवस हमे अपनी कमियां देखने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देने आया है। आशा है आर्यजन अपने यज्ञव्रत का स्मरण करेंगे और उसके पालन की प्रतिज्ञा कर आर्य भावना का परिचय देंगे।



लेखक

आर्यसमाज—एक विश्व संगठन

हम देखते हैं कि आर्यसमाज को व्यापक रूप से सगठित करने का विचार जैसा उसकी स्थापना के समय व्यक्त किया गया था, महर्षि के पश्चात् मुख्य विचारणीय विषय बन गया।

यद्यपि इस विचार को सफलता देर में मिल सकी परन्तु इसका यह परिणाम अवश्य हुआ कि देश के जिन प्रान्तो मे आर्यसमाजो की सख्या बढने लगी उन प्रान्तो मे आर्यसमाजो ने मिलकर आर्य प्रतिनिधि सभाओ की स्थापना करनी आरम्भ कर दी।

१८८६ मे पजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध (वर्तमान उत्तर प्रदेश) मे आर्य प्रतिनिधि सभाओ की स्थापनाएँ हो गई और दोनो प्रान्तो मे व्यापक रूप से प्रचार का कार्य आरम्भ हो गया। आर्यसमाजों की सख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी।

१८८८ मे अजमेर राजस्थान व मालवा आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई।

१८९९ मे बिहार तथा बगाल की सयुक्त आय प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई।

१८८९ मे मध्य प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई।

१९०२ मे बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई।

इस प्रकार भारत के सभी प्रमुख प्रान्तो मे १९०२ तक आर्य प्रतिनिधि सभाओ की स्थापनायें हो चुकी थीं, परन्तु अभी तक भी आर्यसमाज का केन्द्रीय सगठन नहीं बन सका, माननीय रानाडे का प्रस्ताव अभी तक भावनात्मक एकता का एक शुभ सकल्प ही बना रहा। १९०० ई० मे भारत धर्म महामण्डल के दिल्ली उत्सव में उपस्थित आर्यजनो मे इस विषय पर विचार हुआ था, पर ६ सदस्यो की एक अनौपचारिक समिति बनने से अधिक कार्यवाही न हो सकी। समिति की समय-समय पर अनेक बैठकें होती रहीं। नियमों के अनेक प्रारूप बने और रद्द होते रहे। १९०८ के आरम्भ मे इस दिशा मे कुछ निश्चयात्मक कार्य हुआ और सितम्बर १९०८ में आगरा के हींग की मण्डी आर्यसमाज मे एक कन्वेन्शन में आर्यावर्तीय सार्वदेशिक सभा की स्थापना की विधिवत् घोषणा कर दी गई। इस घोषणा के फलस्वरूप आर्यजगत् मे सगठनात्मक एकता की भावना को व्यावहारिक रूप मिला। इस घोषणानुसार आर्य प्रतिनिधि सभाओ के प्रतिनिधियो का प्रथम अधिवेशन ३१ अगस्त १९०९ ई० को देहली मे सम्पन्न हुआ। २५ अगस्त १९१४ को सार्वदेशिक सभा की विधिवत् रजिस्ट्री करा ली गई।

इस प्रकार आर्यसमाज के सगठन मे केन्द्रीकरण का जो अभाव चला आ रहा था उसकी समाप्ति हो गई और आर्य जगत् मे एक संगठन के रूप मे विकसित होने की भावना बलवती होने लगी। प्रान्तीय सभाए अपने प्रान्तो मे प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने लगीं और सार्वदेशिक सभा ने उन क्षेत्रों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया जहा अभी तक आर्यसमाज स्थापित नहीं हुए थे।

सार्वदेशिक सभा की स्थापना के पश्चात १९१९ मे सिन्ध प्रान्त मे आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य उसके नियमो मे स्पष्ट घोषित है। ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, यह घोषणा करके महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के सदस्यों पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी सौंप दी। यह जिम्मेदारी कैसे पूर्ण हो इसके लिए आर्यसमाज के व्यापक सगठन की रूपरेखा तैयार की गई। प्रारम्भ मे महर्षि दयानन्द जहां-जहां प्रचारार्थ पहुचते वहीं उनके श्रद्धालु भक्त-जन आर्यसमाज की स्थापना कर उनके कार्य को आगे बढ़ाने का सकल्प ग्रहण करते इस प्रकार महर्षि के जीवन-काल मे ही देश के विभिन्न प्रान्तों और प्रमुख नगरों में आर्यसमाज स्थापित हो चुके थे और सभी आर्यजन हृदय से चाहते थे कि आर्यसमाज का सन्देश देश-विदेश में फैल जाय।

महर्षि दयानन्द ने १८७५ में आर्यसमाज की जो रूपरेखा घोषित की थी उसकी तीसरी धारा इस प्रकार थी—

"इस समाज में प्रति देश के मध्य एक प्रधान समाज

होगा और अन्य समाज शाखा-प्रशाखा होंगे।"

इस धारा के शब्दों में महर्षि के भाव स्पष्ट हैं कि वे आर्यसमाज का व्यापक सगठन करना और देखना चाहते थे।

महर्षि के निधन समय तक (१८८३ के अन्त तक) ७९ आर्यसमाजें देश मे स्थापित हो चुकी थीं (आर्य समाचार मेरठ)।

महर्षि की मृत्यु के पश्चात् अजमेर मे दि० ८३ मे परोपकारिणी सभा की बैठक हुई। इस बैठक मे सभा के सदस्य श्री प० महादेव गोविन्द रानाडे ने एक प्रस्ताव किया कि—

"आर्यसमाजो को आपस मे और परोपकारिणी के साथ अधिक समीप लाने के उद्देश्य से एक आर्य प्रतिनिधि सभा का सगठन होना चाहिए। जब तक इस प्रकार की सभा न बने तब तक परोपकारिणी के समासद् ही जो कि आर्यसमाज के भी सदस्य हैं प्रतिनिधि मान लिये जाएँ। जब प्रतिनिधि सभा बन जाय तब परोपकारिणी मे जो जगहे खाली हो, ऐसे ढग पर भरी जायें कि परोपकारिणी मे कम से कम आधे प्रतिनिधि सभा के सदस्य मुकर्रर हो जायें।"

इसी प्रकार १८८४ मे बम्बई आर्यसमाज के उपप्रधान श्री सेवक लाल कृष्णदास की ओर से सब आर्यसमाजो को एक परिपत्र भेजकर प्रार्थना की गई थी कि "सब आर्यसमाजो को परस्पर परिचय तथा सहायता के लिए एक शृखला मे बध जाना चाहिये। इस कार्य के लिये यह उचित प्रतीत होता है कि एक प्रधान आर्यसमाज बनाया जाय, जिसमे सब आर्यसमाजों के प्रतिनिधि सम्मिलित हो। प्रधान समाज की नियमावली मे सम्पूर्ण देश को एक ही प्रान्त मानकर उसकी प्रतिनिधि सभा सगठित करने का सुझाव था।"

आर्य प्रतिनिधि सभा का सगठन हुआ जिससे उस क्षेत्र मे वैदिक धर्म प्रचार का कार्य आगे बढ सका, इसी सभा के सहयोग से सिन्ध मे सत्यार्थप्रकाश-रक्षा आन्दोलन भी चलाया गया था।

इसी प्रकार १९३१ मे हैदराबाद निजाम के राज्य मे आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ाने के लिये हैदराबाद आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। १९३७-३८ मे

सत्यवक्ता महर्षि दयानन्द

ऋषिवर से कहा इन्दुमणि होकर योगी अवधूत देव।
खण्डन-मण्डन के झञ्झट मे हो महाराज! क्यो व्यर्थ पडे॥

ऋषिवर बोले खण्डन-मण्डन ये तुमने झझट माना है।
पर, मैने यह जनता के हित अति ही श्रेयस्कर जाना है॥

इसके द्वारा जन-जन को सत्यासत्य विवेक कराना है।
इसके ही द्वारा ऋषियो का ऋण मुझे अवश्य चुकाना है॥

ऋषियो की सन्तति बुरी तरह है कुरीतियो मे फसी हुई।
सत् के प्रकाश दूर असत् अघ अन्धकार मे फसी हुई॥

लखके इनकी यह हीन दशा अत्यन्त विकल मन होता है।
मै अश्रु बहाता हू, सारा जग जब निद्रा मे सोता है॥

मै सतपथ दिखा क्यो न इनके जीवन मे शान्ति सुधा घोलूं।
खल स्वार्थी प्रपचियो की मै निर्भय हो क्यो न पोल खोलूं॥

दृग कर्ण जीभ होते कैसे ? मै अन्धा, बधिर, मूक हो लूं।
गुरु ने मुझको सद्ज्ञान दिया, फिर क्यों ना सत्य-सत्य बोलूं॥

—प्रकाशचन्द्र कविरत्न, अजमेर

इसी सभा के सहयोग से सार्वदेशिक सभा ने हैदराबाद मे सत्याग्रह कर धर्मयुद्ध मे विजय प्राप्त की थी, हैदराबाद को स्वतन्त्र भारत का अग बनाने मे भी वहा की आर्य प्रतिनिधि सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

१९३० मे बिहार मे आर्यसमाज के प्रचार को आगे बढ़ाने की दृष्टि से बगाल की सभा से पृथक् बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा का निर्माण कर दिया गया, उधर आसाम मे प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने की दृष्टि से बगाल सभा के क्षेत्र मे आसाम प्रान्त भी सम्मिलित कर दिया गया।

इस प्रकार भारत के सभी प्रमुख प्रान्तो मे आर्य प्रतिनिधि समाओ के सगठन बन जाने और उनसे निर्मित सार्वदेशिक सभा के द्वारा आर्यसमाज का सगठन एक स्थायी एव व्यापक महत्व का सगठन बन गया।

सार्वदेशिक सभा ने १९२५ मे महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी का मथुरा मे समारोहपूर्वक आयोजन किया

जिससे आर्य जगत् ही नहीं सारे भारत मे महर्षि एव वैदिक धर्म की महत्ता को बल प्राप्त हुआ। १९३३ मे अजमेर मे ऋषि निर्वाण अर्ध शताब्दी का आयोजन किया गया। १९५९ मे महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी समारोह मथुरा मे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के तत्वावधान मे आयोजित हुआ। भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने समारोह मे पधार कर महर्षि को श्रद्धाजलि अर्पित की और गुरु विरजानन्द स्मारक का शिलान्यास किया। १९६१ मे सार्वदेशिक सभा की स्वर्ण जयन्ती देहली में मनाई गई इस प्रकार आर्यसमाज सगठन केन्द्रीय रूप मे विकसित होता रहा है।

सार्वदेशिक सभा ने भारत के उन क्षेत्रों में जहां आर्य समाज नहीं था ध्यान देना आरम्भ किया और मद्रास, बगलौर आदि में प्रचारक भेजे तथा आर्यसमाजों की स्थापना की। मद्रास क्षेत्र मे मोपला-विद्रोह के समय आर्यसमाज ने साम्प्रदायिक उन्माद से हिन्दुओं की रक्षा की।

भारत से बाहर विदेशो मे भी जहां-जहा आर्यजन पहुचते रहे आर्यसमाज सगठन की भावना गूजती रही।

मारीशस—मारीशस में १८९६ मे ही आर्यसमाज के सुदृढ पहुच चुके थे और अनेक स्थानों पर आर्यसमाजों की स्थापना होने लगी। १९२७ में मारीशस आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापित हो गई।

पूर्वीय अफ्रीका—१९२० मे पूर्वी अफ्रीका आर्य प्रतिनिधि स्थापित हुई जजीबार, दारस्सलाम, मुम्बासा, नैरोबी, किसूनु, कम्पाला समाजों ने इसकी स्थापना में विशेष योग दिया।

दक्षिण अफ्रीका—१९२५ मे जन्म शताब्दी के अवसर पर उपस्थित दक्षिण अफ्रीकी आर्य बन्धुओं ने दक्षिण अफ्रीका आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापना की घोषणा की और सन् २७ में यह सार्वदेशिक सभा से सम्बद्ध हो गई।

ब्रह्मदेश—बर्मा का क्षेत्र भारत का ही अग था पर बाद मे पृथक् कर दिया गया वहा भी आर्यजनों ने ब्रह्मदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना कर ली और प्रचार कार्य आगे बढ़ाया।

बगदाद—१९२५ की जन्म शताब्दी से पूर्व ही बगदाद में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। जन्म शताब्दी के बाद १९२८ मे वहां आर्यसमाज भवन का निर्माण कर लिया गया।

फीजी—फीजी मे भारतीयों की सख्या बहुत अधिक थी। आर्यसमाज के विचारों का प्रचार करने के लिये भारत से अनेक प्रचारक जाते रहे वहा भी आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो गई और उसका कार्य सुचारु रूप से चल रहा है।

बैंकोक और सिंगापुर—थाइलैण्ड मे बैंकोक नगर मे उत्तर प्रदेश के आर्यजनों ने आर्यसमाज की स्थापना कर वहां वैदिक धर्म प्रचार को आगे बढ़ाया। सिंगापुर मे भी आर्यसमाज स्थापित है और कार्य बड़े उत्साह के साथ हो रहा है।

इग्लैण्ड—इग्लैण्ड का भारत के साथ जो सम्बन्ध रहा उसके कारण भारतीय वहां बहुत जाते रहे जिनमे आर्यसमाजी भी थे। श्याम जी कृष्ण वर्मा, बैरिस्टर रोशनलाल और चिरजीव भारद्वाज आदि ने लन्दन नगर मे "आर्यसमाज" स्थापना मे विशेष योग दिया। इस समय श्री उषर्बुध जी इस कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं। अभी तक आर्यसमाज का वहां अपना कोई भवन नहीं है जिसकी पूर्ति अविलम्ब होनी चाहिये।

ब्रिटिश गायना—इस क्षेत्र मे भी आर्यसमाजें स्थापित हैं और अच्छा कार्य कर रही हैं।

अमेरिका—अमेरिका के श्री डा० मार्क्स ने न्यूयार्क मे वैदिक सोसाइटी की स्थापना की है और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार मे अपना महत्वपूर्ण सहयोग दे रहे हैं।

इस प्रकार १८७५ मे जिस आर्यसमाज सगठन की नींव महर्षि दयानन्द ने डाली थी। आज एक विश्वव्यापी सगठन बन चुका है। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के आदर्श की पूर्ति के लिए हमे अभी बहुत कुछ करना है। आर्यसमाज स्थापना-दिवस का ८६वां पर्व हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है। क्या हम विश्व सगठन की दिशा में अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। विश्व का विस्तृत क्षेत्र वैदिक धर्म के अमृत सन्देश के लिये हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

—स्नातक

आर्यसमाज स्थापना दिवस १३ अप्रैल ६४

कार्यक्रम

आर्यसमाज का स्थापना दिवस आर्यसमाज के स्वीकृत पर्वों में से एक महान पर्व है। सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार इस वर्ष यह पर्व १३-४-६४ को मनाया जायगा।

★ प्रातःकाल ग्रामों, कस्बों और नगरों में **प्रभात फेरी** हो जिसमें यत्न किया जाय कि समस्त आर्य नर नारी और आर्यसमाज से प्रेम रखने वाले इतर जन बहुसंख्या में सम्मिलित हों और यह विशाल और भव्य रूप ग्रहण करें।

★ प्रातः मध्याह्न या सायंकाल सुविधानुसार आर्य मन्दिरों इत्यादि में **सार्वजनिक सभायें** की जावें। सभा का कार्य क्रम आरम्भ करने से पूर्व सभा स्थल पर बृहत् यज्ञ किया जाय। स्थापना-दिवस के उपलक्ष्य में प्रत्येक आर्य परिवार में प्रातः यज्ञोपरान्त ओ३म् ध्वजारोहण होना चाहिए। सभा में वेद मन्त्रों का पाठ प्रवचन और व्याख्यान हो। तत्पश्चात आर्यसमाज स्थापना दिवस की स्मृति में आर्यसमाज स्थापना के इतिहास, आर्यसमाज के लक्ष्य और उसकी उपयोगिता, अब तक के प्रमुख कार्य, सार्वजनिक सेवाओं, संस्थाओं और समाज के कार्य-क्रम पर निबन्ध पाठ तथा भाषणादि किये जावें। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार पुरोगम उचित समय ले।

स्मरण रहे कि सार्वजनिक सभाओं में आर्यसमाज की महिमा और उसकी आवश्यकता पर ही बल दिया जाय। त्रुटियों के वर्णन का स्थान अन्तरङ्ग सभा से बाहर कहीं नहीं। यह बात आपके ध्यान से ओझल न होने पावे।

★ इस दिन प्रत्येक आर्य परिवार अपने घरों में **दीपमाला** करें। ओ३म ध्वज प्रत्येक घर तथा समाज मन्दिर पर लहराया जाना आवश्यक है। इसी दिन आर्यसमाज मन्दिरों और संस्थाओं में भी रोशनी की जाए।

★ इस दिन की सार्वजनिक सभा में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की **वेद-प्रचार-निधि** के लिए अधिक से अधिक **धन संग्रह** करके सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन (रामलीला मैदान) नई दिल्ली १ के पते पर मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा तुरन्त भेज दें जिससे सभा देश विदेश में वैदिक धर्म के प्रचार कार्य का अधिकाधिक विस्तार कर सके। सब प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं की सहमति से सभा ने गत कई वर्षों से निश्चय किया हुआ है कि आर्य समाज स्थापना दिवस के पवित्र पर्व के उपलक्ष में प्रत्येक आर्यसमाज अपने सभासदों से, उनके परिवारों के प्रत्येक व्यक्ति से और प्रत्येक आर्य अन्यों से पुष्कल धन एकत्र करके सभा की वेद प्रचार निधि के लिए भेजे। सार्वदेशिक सभा की अन्तरङ्ग सभा ने प्रत्येक परिवार से कम से कम २ रु० प्राप्त करने का आदेश दिया है तथा इस धन को ऐच्छिक न समझा जाय। आर्य नर-नारी इसे धर्म रक्षार्थ कर समझें।

★ यह भी यत्न किया जाय कि उस दिन निकटवर्ती स्थानों में जहां आर्यसमाज नहीं है बहुसंख्या में **आर्यसमाजें स्थापित** किए जावें और आर्य सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाय।

★ इसी दिन प्रत्येक आर्य एवं आर्य सभासद **आत्म-निरीक्षण** करे और देखें कि उनके वैयक्तिक एवं सामाजिक आचरण से आर्यसमाज का गौरव बढ़ा है या नहीं और आर्यसमाज के कार्य विस्तार में उसका कोई योग दान रहा है या नहीं। यदि इनमें कोई त्रुटि रही है तो उसके सुधार और अपने को आर्यसमाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने का व्रत लेना चाहिए।

रामगोपाल
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दयानन्द भवन (रामलीला मैदान)
नई दिल्ली—१

— ओ३म —

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य-विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि-मूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सब सत्य-विद्याओं की पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार के करना चाहिए ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है । अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७—सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

आर्य जीवन आचार संहिता

पांच यम—

तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा

१—अहिंसा-मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना ।

२—सत्य-मन, वचन, कर्म से सत्य का व्यवहार करना ।

३—अस्तेय-मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग करना ।

४—ब्रह्मचर्य-अष्टमैथुन से बचना, ऋतुचर्या का पालन करना ।

५—अपरिग्रह-न्यायपूर्वक भोग लोलुपता व अन्याय से किसी वस्तु की इच्छा न करना ।

शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्राणिधानानि नियमा —

१—शौच-शरीर, मन, आत्मा, तथा बुद्धि शुद्ध रखना ।

२—सन्तोष-धर्म और परिश्रम से प्राप्त में प्रसन्न रहना ।

३—तप-धर्माचरण में मकूट भी सहन करना, नित्य कर्मों का नियम पूर्वक पालन करना ।

४—स्वाध्याय-वेद, उपनिषदादि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन व मनन करना ।

५—ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर भक्ति (सर्वस्व ईश्वर के अर्पण) करना ।

बाबूराम भारती द्वारा भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित ।

ओ३म्

साप्ताहिक आर्यमित्र ऋषि-निर्वाण अङ्क

अवैतनिक सम्पादक उमेशचन्द्र स्नातक एम० ए० मूल्य ५० पैसा

वर्ष ६८ | लखनऊ रविवार कार्तिक १५ २२ शक १८८८ कार्तिक कृ० ८ ३० वि० २०२३
६ १३ नवम्बर सन १९६६ ई०, दयानन्दाब्द १४२ सृष्टि संवत १ ९७ २९ ४९ ०६७ | अङ्क ४२-४३

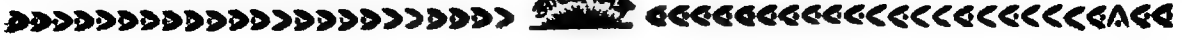



दीपावली ज्योतिर्गान

जली दिवाली दयानन्द की, जग मे ज्योति जगाने को
नैतिक नित्य निनाद वेदो का, नील गगन गुंजवाने को
अन्याय अभाव अज्ञान अमा का, अवसित हुआ अंधेरा
दिव्य दिवाकर की किरणो से ऊगा स्वर्ण सवेरा
प्रखर प्रकाश चल चढा अकाश दिव दिगदिग्गत चमकाने को
विहस उठा वैधव्य निकल, सज सूनी मांगें सिंदूरी
भेदभाव की मिटी भावना, अरु अन्तस की दूरी
चला पुजारी परम प्रेम का, प्रियतम पाठ पढ़ाने को
पाखण्ड खण्डिनी गढी पताका, देव गगन थर्राया
धरा धसी पाखण्ड ढोंग की, गुरुडम का गढ़ ढाया
अकाट्य प्रमाणप्रलयंकर शंकर, श्रुतियो के चला सुनाने को
अविप्लुते वह ब्रह्मचर्य का श्रेयस्कर सन्यासी
क्षमा के अधिदेवता से, हुई धरा धन्यासी
प्रशस्त पथ का पथिक मौन था, माटी मे मिल जाने को
आदर्श अनुपम आस्तिक्य का, अन्तिम क्षण दर्शाया
शत्रुञ्जय से मृत्युञ्जय बन, मन्द मन्द मुसकाया
प्रभु की इच्छा पूरी करने, बढा परम पद पाने को
प्रबल प्रवर्तक आर्य भाषा का, गौमाता की गरिमा
सत्यप्रकाश में गाई जिसने, प्रथम स्वदेशी महिमा
चली लेखनी ललित लाल की भ्रम का भूत भगाने को
बड़े वेग से बढ़ रही है, भारी भ्रष्टाचारी
अमर शान्ति के क्रान्तिदूत हे, गरल पान के प्रेम पुजारी
मृदु स्मृति मे चला है मोहन, श्रद्धा सुमन चढ़ाने को




—मदनमोहन एडवोकेट, मोठ [झांसी]



सम्पादकीय

हम अपना आत्म-निरीक्षण करें

जैसे दीपक की प्रभा से अमा की तमसावृत घन रजनी आलोकित हो उठती है, भारत की अन्धकार रात्रि में महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन की तपस्या और उत्सर्ग से जो ज्योति प्रज्वलित की उसी का प्रकाश हमे स्वाधीनता का गौरव प्रदान कर सका, महात्मा गांधी ने स्वय स्वीकार किया कि देशोन्नति के जो कार्य महर्षि ने आरम्भ किये थे,मैं उन्हीं को आगे बढ़ा रहा हू। ऐसी स्थिति मे दिव्य दयानन्द की ज्योति के आलोक का महत्व हम भली-भांति अनुभव कर सकते हैं। दीपावली के अवसर पर महर्षि निर्वाण का स्मरण हमें इस बात की प्रेरणा देता है कि हम महर्षि के सन्देश पर विचार करें और उसे अपने और समाज के जीवन मे लाने का यत्न करें।

महर्षि के सम्मुख ससार उपकार की महान् भावना थी, वे ससार को अज्ञानता के उत्पीडन से मुक्त कराना चाहते थे, वे भारत और विश्व के समस्त झगड़ों का मूल अज्ञानता को मानते थे, और इसीलिये उन्होंने ज्ञान के भण्डार वेदों की ओर ससार को लौटने की प्रेरणा दी। महर्षि ने वेद प्रचार का जो कार्य आरम्भ किया था उसकी पूर्ति का दायित्व आर्यसमाज पर था और है। आज महर्षि निर्वाण के अवसर पर हमें गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिये कि वेद-प्रचार का हमने कितना कार्य किया है, और अभी क्या एव कैसे करना शेष है।

महर्षि ने देश मे शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, महिला जागरण, स्वदेशी, स्वभाषा, स्वसभ्यता एव सस्कृति का प्रचार किया उन सब कार्यों मे हम बहुत कुछ आगे बढ़े, परन्तु स्वाधीनता के पश्चात राष्ट्र और विश्व की समस्याओं ने हमें अपना कार्यक्रम नवीन रूप से निर्धारित करने की प्रेरणा दी है। उन समस्याओं के समाधान के लिये महर्षि की दृष्टि ही हमारी सहायक बन सकती है।

भारतीय जीवन मे से अनैतिकता और भ्रष्टाचार निवारण के लिये महर्षि की निर्भीकता एव विवेकशीलता से हमें काम लेना होगा। देश की राजनीति मे जो उच्छृङ्खलता और सत्तावाद सव्याप्त हो रहा है, उसके निवारणार्थ अज्ञानियों के मताधिकार के स्थान पर हमें महर्षि के योग्यतावादी दृष्टिकोण को महत्व देना होगा, राष्ट्र के जीवन मे व्याप्त असतोष, घृणा और द्वेष के निवारणार्थ हमे आस्तिक विचारधारा का प्रचार करना होगा, विश्व की सत्रस्त मानवता को शान्ति का सन्देश देने के लिये हमें महर्षि के वेद-सन्देश का प्रचार करना होगा।

इन सब कार्यों के लिये आवश्यक है कि दयानन्द के वीर सैनिक आज अपना आत्म निरीक्षण करें और आत्मा की शुद्धि कर उत्साह के साथ महर्षि सन्देश प्रचार का सकल्प दुहरायें।

महर्षि ने अपनी जीवन ज्योति से जो प्रकाश हमें दिया है मानवता उसके लिये सदैव ऋणी रहेगी।

महर्षि के चरणो मे नत मस्तक श्रद्धाजलि।

—स्नातक

आर्यजगत् का महान् उत्सव

आकर्षक कार्यक्रम एव गम्भीर सम्मेलन

महात्मा नारायण स्वामी जन्म शताब्दी समारोह

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (मथुरा) मे आयोजित

आर्यजन अधिकाधिक सख्या मे पहुचने का निश्चय करें

—नरदेव स्नातक ससद सदस्य
सयोजक
सार्वदेशिक महात्मा नारायण स्वामी
जन्म शताब्दी समारोह समिति

आवश्यक सूचना

ऋष्यङ्क के पश्चात् का अङ्क जो बन्द रहता था, इस वर्ष बन्द नहीं होगा। अगला अङ्क २०-११-६६ का गोरक्षा-अङ्क होगा।

—चन्द्रदत्त तिवारी
अधिष्ठाता आर्य मित्र व सभामन्त्री

आर्य नेता गोरक्षा सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने को तय्यार

श्री आनन्दभिक्षु जी महाराज

श्री ओ३म प्रकाश त्यागी जी
सेनापति आर्यवीर दल

श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री संसद सदस्य
उप प्रधान आ प्र० सभा उत्तरप्रदेश व सार्वदेशिक सभा

सार्वदेशिक सभा की गोरक्षा आन्दोलन समिति के तत्वावधान मे गोरक्षा सत्याग्रह के लिये तय्यार है। समिति ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी आर्यसमाजो से सत्याग्रही पहुंचने लगे। सार्वदेशिक सभा से अनुमति लेकर अधिकाधिक संख्या में दिल्ली पहुचे।

श्री शिवकुमार शास्त्री ... सभा

जगा गये दीप

[कवि–कस्तूरचन्द "घनसार" आर्यसमाज पीपाड शहर]

(इन्द्रविजय छन्द)

ज्ञान प्रकाश बढ़े सुखदा जब, वैदिक-दीप दयानन्द जोये !
दूर हठी दुख-यामनि थी जिसमें सब मानव जीवन खोये !!
मान लिये अधकार प्रकाश सभी भ्रम मे जग के जन सोये !
आज अखण्ड दिपालि रही घन सार-विचार, सुदीप संजोये !

[१]

दीप जले घर के निज अन्दर, है जितना उतना हि प्रकाशे!
कायम सो न रहे फिर भी इक-आवत वात, सुदीप विनाशे! !
और न दीप, दिपालि रहे नित, चार घडी सुख-प्रेम विकासे!
वैदिक-बोध, प्रकाश सुशोभित, भारत मे अति से प्रिय भासे ! !

[२]

दीप अखण्ड बुझा करके तुम, एक अनित्य प्रकाश बतावे !
भाति न आज सुहाति नहीं मन-मन्दिर, बीच प्रकाश न आवे! !
आकर काम भला न किया असमजस में पडके पछतावे !
पूज्य वही ऋषि लोप, हुए इस-कारण दीप-दिपालि न भावे! !

[३]

चाहत हैं इस कारण से पर-लोक गये ऋषि, स्वागत कीने!
लेकर दीप-प्रकाश खडी तुम, दर्शन पाय सुधारस पीने !!
शान्ति सभै, शुभ, हाजर होकर, दीपति-दीप जला सब दीने!
योगि वही दृढ़-योग सजाकर, आनद-मारग के पथ लीने !!

[४]

देख रहा गुरुदत्त खडा ऋषि, ओम उचारत पांव बढ़ाया !
दिव्य-काश, हुआ मुख ऊपर, देख रहे मन मे घबराया !!
नास्तिक, था वह आस्तिक होकर, पूरब का सब भेद विलाया!
दीप जलाय गये मन-मन्दिर, दत्त, सुखी 'घनसार' जगाया! !

[५]



आओ! आत्म-निरीक्षण करें!



(श्री विद्याधर जी प्रधान आर्योपप्रतिनिधि सभा कानपुर)

आज दीपावलि है। आज ही के दिन तो महर्षि ने शरीर त्याग किया था, यह कहते हुए "परमात्मा, तू ने विचित्र लीला की। तेरी इच्छा पूर्ण हो। उनके इन शब्दों में उनका सारा जीवन झांक रहा था। जिनके मूल में शंकर मानव मात्र के कल्याण की भावना थी, शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी ने कालान्तर मे गुरु विरजानन्द दण्डी से जो प्रकाश प्राप्त किया, उस को दया करके सब को आनन्दित करने के निमित्त प्रसारित कर दिया। मानव को ऐसी दिव्य दृष्टि दी कि वह परम पिता परमात्मा के काव्य को समझ सकने मे समर्थ हो सके।

विचारशील मानव सशक्त होकर, श्रद्धा पूर्वक बढ़ा, आगे सब सत्य विद्याओ की पुस्तक-वेद की ओर। उसे उपदेश मिला "वेद का पढ़ना और सुनना तो आवश्यक है ही पढ़ाना और सुनाना परम धर्म है" और ऐसा अनुष्ठान करके ही "प्रियो देवाना दक्षिणायै दातुरिह भूयासमय मे काम समृध्यतामुप मादो नमतु॥ (यजु अ० २६ म०२) वह देवो का दक्षिणा देने वालो का प्रिय हो सकने की कामना को, पूर्ण कर सकेगा।

इस प्रयास मे हम अभी किंचित गतिशील ही हुए थे, प्रगतिशील भी नहीं कि नियम पालन द्वारा अर्जित महती शक्ति के साथ मुड गये, शिक्षा-प्रसार, समाज-सुधार, देशोद्धार की ओर चारों ओर से स्वागत हुआ, इस देदीप्यमान ज्योति का विरोध भी हुआ, राजा की ओर से भी और प्रजा से भी, अपने और परायो से भी किन्तु हमे तो प्राप्त हुआ था अमृत उस सत्यान्वेषी महर्षि के द्वारा। हम सबका सामना करते हुए, अपनी वेदांकित वैजयन्ती फहराते आगे चले।

वेद की कल्याणी वाणी का द्वार सबके लिये खुल गया। प्रज्वलित दीपको से असख्य दीपक प्रदीप्त हो उठे। ससार चमत्कृत हुआ। विचार-विमर्श हुये, शास्त्रार्थ हुए। मत मतान्तरो के विद्वानों ने अपनी - अपनी मान्य इलहामी पुस्तकों की व्याख्या, उनके भाष्य, नूतन विधि से प्रस्तुत किये। चारों ओर छाये हुए अन्ध विश्वास, अनार्य साहित्य, अवैदिक मन्तव्यो एव आचरणो के घने बादल छिन्न भिन्न हो गये। वेद प्रचार, शिक्षा प्रसार, हिन्दी प्रचार, स्वदेश एवं स्वदेशी वस्तुप्रेम, छूत-छात का खण्डन बाल एव वृद्ध विवाह का विरोध, मातृ शक्ति की जागृति और शिक्षा चरित्रनिर्माण आदि सम्बन्धी जो कार्य—क्रम आर्यसमाज की वेदी से प्रारम्भ हुए थे आज सबने ही एक स्वर से अपना लिये हैं, इसलिये, अब यह नितान्त आवश्यक है कि हम अपने परम धर्म—वेद का पढ़ना,-पढ़ाना, सुनना-सुनाना के अनुष्ठान की ओर, जिसकी हम एक प्रकार से उपेक्षा करने आये हैं, अधिक सक्रिय हों। परम पिता परमात्मा हमारा मार्ग प्रशस्त करे।

सुधार का आधार

[रचयिता—श्री राजा रणजयसिंह जी एम०पी० अमेठी राज्य]

(१)

देश दशा देख दुःख होता है अपार आज,
फैली अराजकता है, घटा सदाचार है।
ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ का बोल बाला है चारों ओर
घोर भ्रष्टाचार, अनाचार का प्रसार है।

(२)

ऐसी परिस्थिति में 'रणजय' है करना क्या ?
साहस आवश्यक है, करना सुधार है।
स्वामी दयानन्द के दिखाये वेद पथ पर
चलना तदर्थ अब केवल आधार है॥१॥



सार्वदेशिक सभा का अद्भुत निर्णय

(आचार्य विश्वश्रवा व्यास एम० ए० वेद साहित्याचार्य)
[सचालक—वेद मन्दिर महापरिषद ११९ गौतम नगर, नई देहली-१६]

सार्वदेशिक सभा द्वारा तीन परीक्षायें चलाई गई थीं जो कुछ दिन चलकर बन्द हो गई थीं, अब वे फिर प्रारम्भ हो रही हैं। जब इन परीक्षाओ को चालू प्रारम्भ मे किया गया था तब इनका कोस मैने ही बनाया था यद्यपि ये परीक्षायें छात्रो मे चालू की गई थी पर मेरे मस्तिष्क मे



आचार्य विश्वश्रवा व्यास

इनके कोर्स चलाते समय एक और बात थी जो मैंने उस समय कहना उचित नहीं समझा था। इस बार १६ अक्तूबर १९६६ को जो सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा हुई मैंने उस पुराने विचार को जो मेरे दिल मे ही था प्रकट किया। हमारे प्रधान मन्त्री ला० रामगोपाल जी शालवाले तथा सब ही अधिकारियो और अन्तरङ्ग सदस्यों ने उस बात का स्वागत किया और वह प्रस्ताव पास हो गया।

सच्चे आर्यो की परीक्षा का स्तर

सार्वदेशिक सभा की तीन परीक्षायें हैं—

१—पहिली परीक्षा मे पञ्च महायज्ञ विधि और स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश। इस परीक्षा से अपने नित्य कर्मों तथा हम क्या मानते हैं इसका ज्ञान हो जायेगा। आर्यसमाज का जब किसी को आर्य समासद बनाना हो उसको कहो कि सार्वदेशिक सभा की पहली परीक्षा पास कर लो तब आर्य सभासद् आप बनाये जावेंगे।

२—दूसरी परीक्षा मे सत्यार्थप्रकाश है। जब आर्य समाज का निर्वाचन हो तब अन्तरग सभा मे उस व्यक्ति को ही लो जो सार्वदेशिक सभा की दूसरी परीक्षा पास हो।

३ सार्वदेशिक सभा की तीसरी परीक्षा मे आर्यसमाज का इतिहास, महर्षि का जीवनचरित्र, संस्कार विधि और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका है। इस परीक्षा को जो पास करले उसको प्रधान आदि बनाओ। शेष जितनी बाते उपनियमों ये हें वे सब तो रहेगीं हीं

यदि यह व्यवस्था आर्यसमाज मे चलाई गई तो आर्यसमाज एक सुदृढ़ संस्था हो जावेगी और नकली आर्यसमाजी जो आर्यसमाज की संस्थाओं पर कब्जा किये रहने के लिये ही केवल आर्यसमाज मे है वे सब घट जावेंगे। अत प्रत्येक आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह सार्वदेशिक सभा को इन तीनो परीक्षा का सेन्टर अपने-अपने आर्यसमाज को तत्क्षण बनावे और इसी वर्ष परीक्षाएँ चालू कर दे और अपने स० सदस्यों को नाप तोल करके देखे कि कौन कितने पानी मे है। यह सच्ची श्रद्धाञ्जलि महर्षि के निर्वाण उत्सव पर आर्यों की होनी चाहिये।

x x



महर्षि की प्रेरणा—
गुरुकुल आन्दोलन



(श्री नरदेव जी स्नातक समद् सदस्य, मु० अधिष्ठाता गु० वि०वि०वृन्दावन)



महर्षि दयानन्द ने भारतीय पराधीनता की मीमांसा करके यह अनुभव कर लिया था कि इसका कारण देश में सव्याप्त अशिक्षा है। विदेशी शासन ने अपनी शिक्षा का दूषित प्रचार कर भारतीय मानस को गौरवहीन बनाने का षडयन्त्र किया था। महर्षि ने उस षडयन्त्र का सामना करने के लिये गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न किया। आर्यसमाज ने महर्षि के इस आन्दोलन को साकार रूप दिया और स्थान-स्थान पर गुरुकुल खोले। गुरुकुलों ने राष्ट्रीय जागरण में जो योग दिया वह भारतीय इतिहास में स्मरणीय रहेगा।

आज देश के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या, शिक्षा-समस्या है। छात्रो की अनुशासनहीनता गुरु शिष्य व्यवहार में असौम्यता- समाज मे आदर्श नागरिकों का अभाव, अनैतिकता भ्रष्टाचार, स्वदेश-स्वभाषा एव स्व सस्कृति के प्रति अनास्था आदि ऐसी अनेकों बातें हैं। जिनका शिक्षा प्रणाली से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यदि हम चाहते है कि देश की इन समस्याओ का शीघ्र और समुचित समाधान हो तो हमें गुरुकुल प्रणाली को अपनाना होगा। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा०-राजेन्द्रप्रसाद, राष्ट्रपति राधाकृष्णन भू०पू० शिक्षा मन्त्री श्री मालवीय आदि मनीषियो ने इस प्रणाली की उपयोगिता को समय समय पर स्वीकार किया है। गुरुकुल पद्धति में कुछ ऐसे आदर्श तत्व है, जिनका जीवन की उन्नति से विशेष सम्बन्ध है। गुरुकुल के वातावरण मे गुरु-शिष्य सम्बन्धो में जो पवित्रता आ जाती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन मे सादगी, अनुशासन और आध्यात्मिकता आदि ऐसे आदर्श हैं जिनकी समाज को अत्याधिक आवश्यक्ता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली भौतिकतावाद से प्रभावित है इसी कारण जीवन की मान्यतायें भौतिकतावादी होती जा रही है,और यही दृष्टि सारी समस्याओ की जड़ है। इस दृष्टि का निराकरण गुरुकुल के शान्त एव आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सम्भव हो सकती है।

महर्षि दयानन्द की निर्वाण स्मृति मे आज हमे उनके कार्य को पूरा करने का व्रत दुहराना है। मेरी दृष्टि में गुरुकुल आन्दोलन को सबल और सफल बनाना हमारा सकल्प होना चाहिये। यदि गुरुकुल आन्दोलन सफल हो गया तो हम महर्षि के स्वप्नो का भारत ही नहीं विश्व निर्माण करने मे सफल हो सकेंगे।

× ×

उत्तर प्रदेश की आर्यसमाजें गोरक्षा आन्दोलन को सफल बनावें

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरग सभा दि० ६-११-६६ की बैठक मे गोरक्षा आन्दोलन की स्थिति एव प्रगति पर विचार किया। सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा उत्तरप्रदेश की समस्त आर्यसमाजों को आदेश दिया है कि सार्वदेशिक सभा की ओर से गोरक्षा आन्दोलन के लिए जो परिपत्र और आदेश प्रसारित हों उनके अनुसार कार्य करें और आन्दोलन को सफल बनाने मे पूर्ण सहयोग दें।

दीपावली का दिव्य सन्देश



[श्री रामचरित्र पाण्डेय आर्योपदेशक साहित्यरत्न, बी ए० एल टी , लखनऊ]

बीसवीं शताब्दी के महानतम मानव ऋषि दयानन्द सरस्वती ईश्वरीय ज्ञान वेद का मन्थन करके अमृत रूप नवनीत का पान कर महर्षि पद को प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करने मे सफल हुए। साथ ही असख्य नर नारियों को 'महाजनोयेन गता स पथा' का उपदेश देते हुए उनके मार्ग को प्रशस्त कर गये।

आज के दीपावली के शाश्वतदज के कृत्रिम आलोक में अपना अकृत्रिम आलोक सम्मिलित कर अमर बना गये।

ऋषिवर ने अमृतपुत्र मानव को वेद के सन्देश 'मनुर्भव' के द्वारा सही तथा सच्चे स्वरूप मे मानव बनने पर बल दिया, क्योंकि ऋषि को यह निश्चय था कि बिना मनुष्य बने मानव समाज मे देवत्व का अभाव रहेगा, यह अभाव समाज में सुख व शान्ति को स्वप्न बनाकर अव्यवस्थित करके समाज को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा।

अतः मनुष्य बनाने के अनेक विधि कर्तव्यो का वर्णन करके मार्ग प्रशस्त किया। ऋषिवर के नियम कोरे उपदेश ही नहीं, वे प्रयोगात्मक कर्तव्य हैं जिनको आत्मसात् करके घोषणा की कि इनके अभ्यास से अभ्यस्त हुआ मानव धर्मात्मा बनता है। उन्ही नियमो को स्थूलरूप मे पचयज्ञों की सज्ञा देकर नित्य-नैमित्यिक ठहराया, साथ ही इन पचयज्ञो को करते हुये काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद से सुरक्षित रखने के प्रति भगवान मनु का उद्धरण 'स्वस्य च प्रियमात्मन' के द्वारा अनुशासित करते हुये बल पूर्वक घोषणा की कि धर्म वही है जो अपने को प्रिय हो अर्थात् अपनी आत्मा के अनुकूल आचरण करना ही धर्म है, इसी के द्वारा समाज मे देवत्व का सञ्चार होकर समाज सुखी एवं समृद्ध बनता है। यही समृद्धि शान्ति मे परिवर्तित होकर मुमुक्षुओं को अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर शाश्वत शान्ति प्राप्ति कराने मे समर्थ होती है।

ऋषिवर ने ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त महर्षियों के मन्तव्यों के आधार पर क्रियाशील जीवन पर बल दिया। जैसा कि यजुर्वेद अ० १७ मन्त्र ३१ द्वारा यह प्रमाणित होता है कि 'न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति।

अर्थात जो पुरुष अज्ञानी (जिन्हे आत्मा परमात्मा तथा जगत का ज्ञान नहीं) प्रलापी (बिना प्रयोजन व्यर्थ का प्रलाप करने वाले) पेटू (खाओ पियो और मौज करो के सिद्धान्त पर चलने वाले) उक्थशास (पढ़े लिखे विद्वान् व्याख्याता होते हुए जो क्रियाशील नहीं) न ते विदाथ 'उस जगत नियन्ता प्रजा पालक को नहीं जान पाते।

इस मन्त्र की स्पष्टोक्ति द्वारा ऋषिवर क्रियाशील जीवन पर कितना बल दे रहे हैं उक्त क्रियाशीलता को जीवन मे परिणत कर विश्व को क्रियाशीलता का पाठ पढ़ा गये।

आज दीपावली यही उदबोधन लेकर उपस्थित हुई है। आओ हम सब अपना अपना कायाकल्प करके 'कृण्वन्तः स्वमार्यम्' द्वारा ऋषि-निर्वाण पर्व को सफल बनावें।

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का हीरक जयन्ती महोत्सव

संस्कृति सरक्षण सम्मेलन व गोरक्षा सम्मेलन संसद सदस्य अटलबिहारी बाजपेयी करेंगे

आगामी १९ नवम्बर ६६ से २१ नवम्बर ६६ तक ऋषि उद्यान अजमेर मे आयोजित हो रहे आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान की हीरक जयन्ती (७५ वर्षीय महोत्सव) के अवसर पर हीरक जयन्ती महोत्सव का महात्मा आनन्द स्वामी द्वारा सम्पन्न होने के पश्चात् ससद सदस्य श्री अटलबिहारी बाजपेयी दिनाक १९।११।६६ को सायकाल सस्कृति सरक्षक सम्मेलन व गोरक्षा सम्मेलन का उद्घाटन करेंगे।

महर्षि स्तुतिः

×

स्वशक्ति से जिसने विश्व व्यापिनी—
उठा लिया धरणी का सुव्योम को,
स्वयम् प्रसूता कलिताम्बरा मयी—
कछार मे फैली पादपावली।
प्रबुद्ध रूपा शुभ पावकांगना—
प्रचण्ड थी वाणी पुण्य मंगला,
सप्राण थी जैसे श्वेत चन्द्रिका—
मरुत्सखा सी सुधा पयस्विनी!
सतर्क श्रद्धा क्षीराम्बु सी मिली—
जहाँ न थी कर्कशता कठोरता,
आषाढ़ का वर्षणशीलमेघ था
सुपुत्र था वह गौतम कणाद का।
सुवीर्य शुल्का, नवशस्य श्यामला—
क्षमा सदृश वह पृथ्वी स्वरूप था।
विरत किया पीड़ा के कुपन्थ से
स्वघातको को स्वद्रव्य दान दे।
सिद्धान्त में अंगदपाद सा अडिग—
खरदूषणों मे सौमित्र राम था,
करस्थ अंगीकृत वेद को किया—
उदार चेता ऋषिवर महामना।
स्वराज्य का पोषक मन्त्र द्रष्टा—
साक्षात् कृत धर्मा वा कृतार्थ था,
बढ़े उसी का हम दृष्टि बिन्दु ले—
सहस्र चेता स्वराष्ट्र के लिये।

—नाथशरण आर्य

—आर्यसमाज लश्कर का ६५ वाँ वार्षिकोत्सव सदैव की भाँति इस वर्ष भी दीपावली के शुभावसर पर दि० १२नव० शनिवार से १५ नवम्बर, मंगलवार तक समारोहपूर्वक मनाया जा रहा है। —मन्त्री

श्रुति ज्ञान के दीपक जलाओ!

आ गई दीपावली श्रुति ज्ञान के दीपक जलाओ!
दीप जो जलता रहे नित
विश्व भर को दे उजाला।
बुझ न पाये आंधियों मे
हो स्वर धुन का निराला।
है कठिन कुछ काम लेकिन आर्य मानव को बनाओ!
आज के दिन एक दीपक
बुझ गया देकर उजाला।
वह मौन होकर पी गया
वैरिन अमा का स्याह प्याला।
ऋषि दयानन्द की तरह हसते हुए जीवन लुटाओ!
यज्ञमय हो जाय जीवन
दे दुखी जन को सहारा
पूर्ण ऋषि उद्देश्य हो
भोगे विभव संसार सारा।
'धर्म से भटके हुये है राह पर उनको लगाओ!

—'धर्म' सिद्धान्तरत्न, लखनऊ

आर्य उप प्रतिनिधि सभा, लखनऊ

३० अक्टूबर को आर्य उप प्रतिनिधि सभा लखनऊ का, मासिक अधिवेशन, आर्य स्त्री समाज नारायण स्वामी-भवन' के निमन्त्रण पर, सभा भवन मे, जिला सभा के प्रधान श्री श्रीकृष्ण बल्देव जी की अध्यक्षता मे समारोहपूर्वक सपन्न हुआ। सर्व प्रथम सभा भवन की विशाल यज्ञशाला मे श्री प० रामचरित्र जी पाण्डेय व श्री मेधावी शास्त्री के तत्वाधान मे सामवेद से वृहद यज्ञ हुआ। यज्ञ की यजमान श्रीमती प्रेमलता जी बख्शी प्रधाना आर्य स्त्रीसमाज थीं। इन्होने ५) जि०सभा को दान मे दिये।

यज्ञ के पश्चात् सभा-भवन के हाल मे अधिवेशन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सबसे पहले श्रीमती सन्तोष जी महाना ने सध्या और प्रार्थना करायी, इसके पश्चात् श्रीमती उर्मिला जी आर्या व श्रीमती विमला जी महाना के प्रभावशाली ईश्वर भक्ति के भजन हुए। तत्पश्चात् श्री माननीय देवराज जी वैदिक मिशनरी का प्रभावशाली और विद्वत्तापूर्ण वेदोपदेश हुआ।

राष्ट्र निर्माता दयानन्द





चले, ऋषि राष्ट्र मे निर्माण की उज्ज्वल विभा भरने।

दृगो मे अश्रु, उर मे वेदना, थी वक्ष मे पीडा।
कभी विह्वल-विकल मस्तिष्क मे जागी रही व्रीड़ा।
अतुल उत्साह, साहस, धैर्य, दृढ़ता मेरु सी अविचल।
उफनता ज्वार सा आया, मचलता हो गया अविकल।
सदा प्रभु-भक्ति, आत्मिक-शक्ति के झरते रहे झरने।

हमारी आर्य-संस्कृति का पुन उद्धार हो कैसे ?
अबल असहाय-जीवन मे सबल व्यवहार हो कैसे ?
समुन्नत-राष्ट्र मे सद्धर्म की सरिता बहे कैसे ?
विदेशी-दासता से मुक्त ये मानव रहे कैसे ?
अलौकिक देश के अनुराग का सागर चले तरने।

अभागा देश दवा का विषमा बन रहा निर्णय।
तिरस्कृत, तेज-हत होकर, शून्यता का कर रहा अभिनय।
वह उन्मत्त सत कर्तव्य का लेकर अरुण केतन।
सचेतन हो गये जग के सभी उन्मत्त जड-चेतन।
भरे स्नेह से दीपक चले गिरि-शृङ्ग पर धरने।

सभी को दग्ध जडता-जाल मे जकड़ा हुआ देखा।
हुए अति त्रस्त, चिन्ता ग्रस्त, माथे पर खिची रेखा।
विहीना वस्त्र से ललना, कफन ओढ़कर लिए जाती।
गरीबी देखकर निज देश की, फटने लगी छाती।
विमल संकल्प को लेकर चले अभिशाप को हरने।

'विदेशी राज्य से बढ़कर हमारा राज्य सुन्दर है'।
नही कोई सुखी 'शुक' है, भले ही 'स्वर्ण-पिंजर' है।
'विदेशी-भ्रम' का जूता अरे भोले! मनोहर है ?
दलित के शुद्ध चरणो से अपावन हाय मन्दिर है ?
चले गुण कर्म से 'वर्णाश्रमो' की मान्यता वरने।

विकम्पित हो गये राजे लताडे सुप्त रजवाड़े।
विलासी-दम्भियों के दर्प, मिथ्या-मान-मद झाड़े।
भ्रमो के हिल गये भूधर, सजग अवशेष मत-वादी।
अमर अस्तित्व के सम्मुख रहा कोई न प्रतिवादी।
नवेली 'नीति' से वर 'धर्म' का परिणय चले करने।



बने हम ब्रह्मचारी मस्त-गज से झूमने वाले।
सुदर्शन चक्र बनकर शत्रु के शिर पर घूमने वाले।
उदय हो अभ्युदय दिनकर अभावो की अमा भागे।
पराभव की निशा मे भी, धवल ध्रुव-ध्येय का जागे।
दुशासन की दुख-दुर्वृत्ति का बल-वीर्य सहरने।
चले, ऋषि राष्ट्र से निर्माण की उज्ज्वल-विभा भरने।



कुसुमाकर
आर्यनगर,
फीरोजाबाद



गोरक्षा और ऋषि दयानन्द

[ले०—श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री]

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से विदित होता है कि धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी समस्याओ पर ऋषि ने विचार किया है।

गोहत्या को रुकवाने के लिये ऋषि दयानन्द ने उस



श्री बिहारीलाल जी शास्त्री

समय ही प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था जबकि अंग्रेजी साम्राज्य का सूर्य मध्याह्न मे था। परन्तु उनके स्वर्गगमन के कारण वह प्रयत्न वहीं ठप्प हो गया। आज पूरे उत्साह के साथ ऋषि दयानन्द का प्रिय वह आन्दोलन फिर उभरा है। और इसे उभार रहे है ससार से विरक्त साधु महात्मा जिनको कोई भी राजनतिक स्वार्थ प्रेरित नहीं कर रहा है केवल यह आन्दोलन भावना प्रधान है। परन्तु यह भावना केवल मतान्धता के विश्वासो पर नहीं है। वेद शास्त्र अधविश्वासो की बात कभी नहीं कहते। तर्कहीन कोई भी उपदेश नहीं देते।

गोहत्या का निषेध आर्य लोगों में इसलिये है कि गौ सृष्टि का एक चमत्कारी उपकारक पशु है। उसे कष्ट देना महापाप है। वैसे तो किसी भी जीव को मारना इसलिये पाप है कि प्रत्येक जीव को जीवन का उतना ही अधिकार है जितना कि आपको है। अत उस जीव को मारना दूसरे के अधिकार का अपहरण करना है। और यदि बलवान निबलो के अधिकारो का अपहरण करने लगें तो अव्यवस्था फैल सकती है। अत जब तक वह जीव तुम्हारे लिये हानिकारक नहीं है, जनता को दुःखप्रद नहीं है, विघ्नकारक नहीं है तब तक उसे मारना पाप है। अपने स्वाद के लिये, शौक के लिये, उदरभरण के लिये जीवों को सताना अपराध है। कुछ अदूरदर्शी अब यह बकवास करते देखे जाते है कि दूध पीना भी हिंसा है, पाप है। इन पामर बुद्धियो से पूछो कि क्या तुमने माँ का दूध पीकर उसकी हिंसा करी थी। सब में विदित है कि बच्चे को दूध पिलाने मे माँ को आनन्द आता है। ठीक इसी प्रकार गौ को दूध दुहाने मे सुख मिलता है। एक साहब बोले कि गौ का दूध और खून एक ही पदार्थ है। इन मोढ़ूरायों से पूछा जाये कि एक-एक गौ बीस-बीस सेर दूध दे देती है किन्तु उसके शरीर से इतना रक्त निकाला जाये तो क्या वह बच सकती है ? खेत मे पड़ा मैले का खाद और खाद्य पदार्थ अन्न तत्व रूप से एक होते हुए भी क्या व्यवहार मे एक हो सकते हैं ? इसी प्रकार गो दुग्ध लिया जाता है गौ की सेवा से और प्रसन्ता से और मास लिया जाता है उस पर अत्याचार करके।

गो मास वातवर्धक, अतिसार कारक और भी अनेक रोग को देने वाला है। परन्तु पचगव्य—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र बहुत गुणभरी हुई औषधियाँ हैं।

इसीलिये वेद ने उपदेश दिया है —

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाम् अमृतस्य नाभिः । प्रनुवोच चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ठ" ॥

अर्थ—समझदार जनो के लिये कहा जाता है कि गाय निरपराध है, आदरनीय है इसे मत मारो। क्योंकि गौ रुद्रो की माता है। रुद्र ११ हैं—

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनजय दशवाँ प्राण और ग्यारहवाँ जीवात्मा। गौ इनकी माता है अर्थात् निर्माता है। इन्हें पुष्ट और सतुष्ट करने वाली है। वसुओ अर्थात् पृथिवी जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की दुहिता है। इन पदार्थों को दुहने वाली है। कैसे ? सुनिये—

इलाजेशम्सी, (सूर्य चिकित्सा) को करने वाले वैद्य लाल, पीली, हरी, नीली, आदि रग की बोतलों मे पानी भरकर धूप मे रख देते हैं। वे बोतलें रगों के कारण वसुओ से भिन्न-भिन्न पदार्थ खींचती हैं। लाल बोतल के जल मे और प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। पीली बोतल मे और प्रभाव हो जाता है। हरी शीशी के जल मे अन्य प्रकार का प्रभाव उत्पन्न हो जाता और डाक्टर अदल-बदलकर उन बोतलों का जल रोगियों को देता है और रोग दूर हो जाते हैं। भगवान ने विविध रगों की गौए इसीलिए बनाई हैं कि वे गौए अपने रगों के कारण वसुओं में से नाना प्रकार के प्रभावों को दुह लेती हैं। लाल गौ के दूध का प्रभाव और श्यामा गौ के दूध का प्रभाव अन्य श्वेत धेनु के दूध का प्रभाव दूसरा, कबरी गाय का दूध अन्य प्रभाव वाला होता है। देखो भावप्रकाश निघटु—

गव्य दुग्धं विशेषेण, मधुरे रस पाकयोः
शीतले स्निग्धकृत् स्निग्ध वात पित्तस्रनाशनम्
दोष धातु मलस्रोत किञ्चित्क्लेदकर गुरु।
जरा समस्त रोगाणां शान्तिकृत् सेविनां सदा
कृष्णाया गोर्भवेद् ुग्ध वात हारि गुणाधिकम्
पीताया हरते पित्त तथा वात हर भवेत्
श्लेष्मल गुरु शुक्लाया रक्त चित्रा च वातकृत् (दुग्ध वर्ग)

अर्थ—विशेष करके गोदुग्ध रसपाक में मधुर होता है। शीतल है। स्निग्धता करने वाला है। स्निग्ध है। वात, पित्त, रक्त विकारों का नाशक है। दोष, धातु मल-स्रोत में कुछ क्लेदकारक और भारी है। सेवन करने वालों के जरा (बुढापा) आदि सब रोगों को नाश करने वाला है।

कृष्णा (श्यामा) गौ का दूध वात रोग हारी तथा अधिक गुण वाला होता है। पीली गौ का दूध पित्त और वात रोग दूर करता है। श्वेत गौ का दूध श्लेष्मा करने वाला, भारी, लाल और चितली गौ का दूध वात को बढ़ाने वाला है।

भावप्रकाश निघटु मे ५ प्रकार की गौए बतायी हैं— काली, पीली, श्वेत, लाल और चितकबरी।

ससार मे और भी अनेक रग की गौए है। इस प्रकार गौ इलाजेशम्शी की दूध भरी शीशियाँ हैं और आदित्य अर्थात् १२ मासो की यह स्वसा-भगिनी हैं अर्थात् प्रत्येक मास से इसके दूध के गुण सात्म्य करते हैं।

ये जो महिमा गो दुग्ध मे है अन्य पशुओं के दुग्ध में नहीं है। अत ऋषियो ने गौ का विशेष आदर किया और उसे "अघ्न्या" (अविध्य) ठहराया। गोहत्या महा-पाप और मानव हत्या सम समझी गयी।

भारत मे पहले गौओ का ही प्राधान्य था। लाखों गौएं पाली जाती थीं सहस्रो गौएं दान दी जाती थीं। भैंस पालन का प्रचार नही था। बकरी भी थोड़ी मात्रा मे ही पाली जाती थीं। भैंसों का प्रचार यहाँ सिकन्दर के आगमन के बाद यूनानियो ने किया।

वेद ने गौ को अमृतस्यनाभि—अमृत का केन्द्र बताया गौमूत्र और गोबर श्वेत कुष्ट की अनुभूत औषधें हैं। सग्रहणी पर गोतक्र गौ के दूध का मट्ठा अनुपम औषधि भी है और पथ्य भी। गौ के गोबर के सूखे आरण्यक सूखे उपलों से जो तेल निकाला जाता है वह छाजन ऐक्जिमा की उत्तम दवा है गौ जो कुछ खाती है उसका बुरा और हानिकारक भाग अपने शरीर में रखती है और उत्तम भाग बाहर निकालकर फेंक देती है। इसलिए मुस-लमान यूनानी इलाज करने वालों ने भी गोमांस को हानि कारक बताया है और पञ्चगव्य लाभकारक है।

चढ़ी हुई नदी को गौ की पूंछ पकड़ कर पार किया

(शेष पृष्ठ १६ पर)





आर्यसमाज में शिष्य परम्परा का अभाव

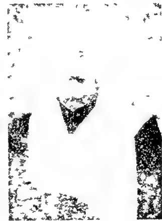
(श्री आचार्य भद्रसेन जी, अजमेर)

सम्भवत उपर्युक्त शीर्षक को पढ़कर प्रिय पाठक आश्चर्य करेंगे और सहसा कह उठेंगे—हम तो यह समझते थे कि आर्यसमाज से गुरुपरम्परा ही लुप्त होती जा रही है किन्तु आप तो शिष्य परम्परा के लोप का ही गीत गा रहे हो । यदि मुझ से पूछा जाए, तो मै तो स्वानुभव से यही कहूगा कि आर्यसमाज मे शिष्य-परम्परा का ही लोप हो रहा है । गुरु परम्परा के लोप का कारण भी तो शिष्य परम्परा का लोप ही है । जब कि कोई किसी का शिष्य ही नही बनना चाहता, विनम्र भाव से गुरुचरणो मे बैठ कर विद्यार्जन तथा गुण ग्रहण ही नही करना चाहता तो वह आगे चल गुरु बनेगा ही कैसे । अत मेरे विचार मे गुरु-परम्परा के लोप का कारण भी शिष्य परम्परा का अभाव ही है । आर्यसमाज मे कोई शिष्य तो है ही नही प्रत्युत जिसे भी देखें, चाहे वह निरक्षर भट्टाचार्य भी क्यों न हो अपने को गुरु विरजानन्द ही समझता है । अर्थात कोई किसी से गुण ग्रहण तो करना ही नहीं चाहता ।

नापितानां विवाहेतु सर्वेठक्कुर मानिन. ।

जैसे नाइयों के विवाह मे सभी अपने को ठाकर ही समझते हैं यही अवस्था हमारी है । यदि किसी आय पुरुष को कोई साधारण शका भी होती है, तो झट अखबारों मे छप जाता है—आय विद्वान् मेरे प्रश्नो का उत्तर दें मानो वे स्वय आर्य विद्वानो के भी गुरु है । उचित तो यह है कि हम शिष्य भाव से विनम्रता पूवक आय विद्वानो से पूछें कि आर्य विद्वानो से मेरी कुछ सन्देह निवारणार्थ (शकाएं) इत्यादि । अभी कुछ दिन हुए एक विरजानन्द नामक विद्यार्थी ने आर्योदय पत्र मे लेख निकाला—"आय विद्वानो से मेरे प्रश्न" मानो वह स्वय, प्रतिवादी बनकर आर्य विद्वानो से शास्त्रार्थ कर रहा है। मैं गत एक वर्ष तक तपोवन (देहरादून) मे रहा हू । सौभाग्यवश आश्रम मे म० प्रभुआश्रित जी महाराज पधार गये । आश्रम के साधको ने अपने-अपने सन्देह तथा शकाएं महाराज के सम्मुख उपस्थित कीं हम मे से एक साधक कहने लगा—मेरे आपसे कुछ प्रश्न हैं । आप पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे । मैने उपर्युक्त महाशय से कहा—आप कम से कम विनम्रभाव से तो पूज्य महात्मा जी के सम्मुख अपनी शकाएं उपस्थित करें ।

आर्यसमाज मे यदि कोई थोड़ा सा भी सन्ध्या या



आचार्य भद्रसेन जी

हवन याद कर लेता है तो वह यज्ञ या अन्य सस्कारों मे बैठे पुरोहित या ब्रह्मा का भी गुरु बन जाता है वह ब्रह्मा या पुरोहित जी के बोलने से पहले ही अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए उपस्थित लोगो को उपदेश देना प्रारम्भ कर देता है—ऐसा नही ऐसा करो । पुरोहित जी के मन्त्रोच्चारण से पहिले ही गलत-सलत मन्त्रोच्चारण करना प्रारम्भ कर देता है, विशेष करके अधिकारी वग । पुरोहित या ब्रह्मा विचारा भी सोचने लगता है कि इस यज्ञ का ब्रह्मा मै हू या यह महाशय । उचित तो यही है कि यज्ञ आदि के अवसर पर हम जिन्हे भी यज्ञ का ब्रह्मा या पुरोहित बनाएं सब उनके पीछे चलें उनके मन्त्रोच्चारण आदि का अनुकरण करें तदनुसार अपने उच्चारण की अशुद्धियो को ठीक करें । पजाबी भाषा मे एक कहावत है—

'गुरु जिन्हांदे कूदने, चेले जान छड़प'

यहां तो गुरु विचारे अभी मन्त्रोच्चारण कर ही नहीं पाते कूदना तो दर किनार चेले पहिले ही आगे बढ़-बढ़ कर छलांगें मारने लगते हैं। जब हम पुरोहित जी के नियन्त्रण में ही नहीं रहना चाहते फिर हम उन्हें गुरु या आचार्य समझेंगे ही कैसे। उनसे गुण ही कैसे ग्रहण करेंगे।

कुछ वर्ष हुए मैं अलवर राज्य की एक छोटी समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने गया। मैं चारपाई पर बैठा हा हुआ था कि एक जाट कृषक महाशय हाथ मे सस्कारविधि लेकर मेरे सामने आकर खड़े हो गये और कहने लगे, मैं इस आर्यसमाज का पुरोहित हू और खेती भी करता हू। मैंने कहा बड़ी प्रसन्नता की बात है आप खेती भी करते है और पुरोहित का कार्य भी, मेरे इन प्रशंसा के वचनों को सुन कर पुरोहित जी ने मानो अपने को चारों वेदों का पूर्ण पंडित ही समझ लिया। दूसरे दिन आर्य पुरुषों ने अपने बालकों के यज्ञोपवीत सस्कार रक्खे और उनका आचार्य मुझे नियुक्त किया, उपर्युक्त सस्कारो मे सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उक्त पुरोहित जी भी पधार गये। मै जब ही मन्त्रोच्चारण करना शुरू करता, वे महाशय मेरे आगे-आगे छलागें मारना प्रारम्भ कर देते। शुद्ध, अशुद्ध जैसा भी आता वे आगे दौड़ लगाए बिना न रहते। मैंने बीच-बीच मे उन्हे कई बार टोका कि महाशय जी यह ठीक है कि आप इस समाज के पुरोहित हैं किन्तु इस यज्ञोपवीत सस्कार का कार्य तो मुझे सौंपा गया है। इसलिए आप मेरे पीछे चलें, आगे-आगे भागो मत, किन्तु—'स्वभावो दुरतिक्रम' एक बार जो स्वभाव पड़ गया फिर उसका छुटना मुश्किल ? वे थोडी देर तक तो मेरे साथ चलते फिर आगे भागना शुरू कर देते।

आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य था कि जब भी उत्सव आदि के अवसर पर कोई विद्वान या सन्यासी महात्मा पधारें। तब विनम्र तथा जिज्ञासा भाव से उनके पास जाकर बैठें, श्रद्धा पूर्वक अपने सशयो का निवारण करें। किन्तु यहां तो समाज के अधिकारी महोदय या तो व्याख्यान का प्रोग्राम सुनाने आते हैं, या भूले भटके भोजन के समय। शेष सारे समय उपदेशक या सन्यासी महानुभाव हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहते है। कोई बात भी आकर नहीं पूछता। कभी-कभी तो हम जिज्ञासु की जिज्ञासा भाव मे भी बाधक बन जाते हैं। यदि कोई भूला भटका आर्य पुरुष कभी किसी विद्वान् से कोई प्रश्न कर भी बैठता है, तो अपने को कट्टर आर्यसमाजी समझने वाला आर्यपुरुष उपर्युक्त विद्वान के समाधान करने से पूर्व ही झट बोल उठता है। और उसका अण्टशण्ट समाधान करना शुरू कर देता है वह यह भी नहीं सोचता कि जिस जिज्ञासु ने जिज्ञासा भाव से एक विद्वान के सम्मुख अपनी जिज्ञासा रखी है। उसके हृदय को कितना आघात पहुचा वह इतना भी विचार नहीं करता कि जिस विद्वान् के सम्मुख यह जिज्ञासा रखी गई है वह कम से कम विद्वत्ता और अनुभव मे मुझ से तो अधिक योग्य है। इनके समाधान को सुन तो लूगा सम्भव है मुझे भी इस से कुछ लाभ पहुच जाए और मेरे ज्ञान और अनुभव में भी कुछ वृद्धि हो जाए, किन्तु यह तो तभी सम्भव है जब कि हम उपर्युक्त विद्वान का आदर या गुरुभाव से देखें। किन्तु वह तो अपने को ऋषि दयानन्द का सोलह कला पूर्ण साक्षात अवतार समझता है।

तपोवन मे मुझ से एक जिज्ञासु सज्जन ने कहा—आचार्य जी मेरे कुछ सन्देह है, कृपा कर आप उनका समाधान करें। वह सज्जन अभी बोल ही रहे थे कि झट पास मे बैठे एक महाशय बोल उठे—आप के प्रश्नों का उत्तर तो मै आप को दूंगा मैंने प्रश्नकर्ता महाशय से कहा। पहिले आप इनका समाधान सुन लो यदि आप की जिज्ञासा का समाधान हो जाए तो ठीक, अन्यथा में आप का समाधान करने का प्रयत्न करूंगा।

अपने गुरु जनो तथा साधु महात्माओ के प्रति श्रद्धा देखनी हो तो आप राजस्थान मे आकर जैन समाज को देखिये। जब उन्हे पता लगता है कि आज हमारे नगर मे अमुक साधु या साध्वी पधारने वाले हैं। तो पैदल चल कर मार्ग मे उनके स्वागत करते तथा चरणो मे नमस्कार करते हैं उपदेश के समय दत्तचित होकर उनका उपदेश सुनते हैं, उपदेष्टा साधु या साध्वी चाहे बिल्कुल साधारण उपदेश ही क्यो न दें। एक करोड़पति भी उनके उपदेशों को दत्तचित्त होकर सुनता तथा अपने को धन्य समझता है यही तो ऋषि ने कहा था—

सर्वे मनुष्यं आमन्त्रणेन विदुषां आह्वान कृत्वा एतान् सत्कृत्य एतेभ्य स्व विद्या परीक्षयित्वा अधिक

अधिका विद्या च ग्रहीतव्या —ऋग्वेद भाष्य ६।६०।१५

सब मनुष्य श्रद्धापूर्वक विद्वानो को आमन्त्रित करके, उन्हें सत्कार पूर्वक अपने पास बुलाए। उनका यथायोग्य सत्कार करके उनसे अपनी विद्या और योग्यता की परीक्षा कराए और उनसे अधिक से अधिक विद्या ग्रहण करें। इसके विपरीत इसके हमारे उत्सव आदि के अवसरो पर यदि कोई साधु महात्मा या विद्वान सीधे सादे सरल शब्दों मे जीवनउपयोगी या वैदिक सिद्धांत पर कितना भी उपयोगी व्याख्यान क्यो न दें, वह तो हमे पसन्द ही नहीं आता। उठते ही कहने लगते हैं—आज तो कोई जोशीला लेक्चर नहीं था। जबकि हमे अपने विद्वानो या सन्यासी महात्माओ के प्रति गुरु या पूज्य भावना ही नहीं तब हमे उनके उपदेश या प्रवचन जोशीले मालूम ही कैसे हों। 'हमे तो कहीं की ईट कहीं का रोडा' वाले आजकल के भजनीको तथा उपदेशकों के केवल जनता के मनोरंजन करने वाले बेतुके भजनो और व्याख्यानो मे ही जोशीलापन नजर आता है।

ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थो मे नाममात्र के अयोग्य, स्वार्थी गुरुओ का तो निराकरण किया। किन्तु हमने तो योग्यो के ऊपर भी अपने गुरुभाव तथा श्रद्धा और आस्था को सर्वथा हटा दिया। आप ऋषि के वेदभाष्य को उठाकर देखिये। जगह-जगह उन्होने विद्वानो तथा गुरुजनो की सेवा तथा उनका आदर, तथा सम्मान करने का विधान किया है। एक स्थान पर तो ऋषि ने यहां तक लिखा है।

नहि परमेश्वर तुल्येन धार्मिकेण विदुषा बिना कस्मैचित् सर्वपदार्थाना सुखाना च प्रदाता कश्चिदस्ति।

—ऋग्वेद भाष्य १।५३।२

अर्थात्—"परमेश्वर के तुल्य धार्मिक विद्वान् की कृपा तथा उपदेश के बिना सब प्रकार के सुखो और पदार्थों का प्रदान करने वाला और कोई भी नहीं" यहां ऋषि ने धार्मिक विद्वान को ईश्वर तुल्य लिखा है शायद कोई कट्टर आर्यसमाजी कह उठे ऋषि दयानन्द धार्मिक विद्वान् को ईश्वर तुल्य लिखें यह कभी नहीं हो सकता, वे कृपा कर ऋषि का ऋग्वेद भाष्य मण्डल १ सूक्त ५३ मन्त्र २ का संस्कृत तथा हिन्दी भावार्थ अवश्य देखने का कष्ट करें। ऋषि ने साथ ही यह भी लिखा है कि कोई भी मनुष्य ऐसे विद्वानों के सत्संग तथा कृपा के बिना सब प्रकार के सुखों तथा पदार्थों को नहीं प्राप्त कर सकता। किन्तु यह तो तभी सम्भव है जबकि हम उन्हे अपना पूज्य या गुरु समझें। और वीर अर्जुन की तरह कहें—

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ गीता

हे महाराज कृष्ण! मैं आप की शरण मे आया हूं। शरणागत शिष्य को सन्मार्ग दिखाओ। एक तरफ हम हैं कि विद्वानो तथा सन्यासी महात्माओं को अपना पूज्य गुरु समझ कर उनसे उपदेशो को श्रवण करना तथा उनके सदुपदेशो द्वारा सब प्रकार के सुखो को प्राप्त करना मानो अपना अपमान समझते हैं। फिर भला गुरु परम्परागत हमारे अन्दर विविध ज्ञानों तथा सर्व सुखों का सचार कैसे हो। यह तो तभी सम्भव है जबकि हम अपने अन्दर ज्ञान और विद्या की कुछ अपूर्णता अनुभव कर और मुनिवर प० गुरुदत्त की तरह अपने को विद्यार्थी समझें और अपनी न्यूनता को दूर करने के लिए अपने विद्वानों तथा महात्मा जनो का अनुकरण करें तथा उन्हें अपना पूज्य गुरु समझकर उनसे अपने ज्ञान और स्वाध्याय की कमी को पूर्ण करें, उत्तरोत्तर उसमे वृद्धि करें। यही ऋषि प्रदर्शित सर्व सुख प्रदाता सच्ची शिष्य परम्परा है यही गुरुपरम्परा की उत्तरोत्तर वृद्धि का भी मूल कारण है।





आवाहन

—बुद्धिप्रकाश आर्य एम ए०
प्रधानाचार्य दयानन्द इण्टर कालेज, बिन्दकी फतेहपुर



भौतिकता की भरी जवानी,
युग ले रहा करवटें साथी—
दुनियां बहुत गई आगे।
अच्छे बुरे सभी कामों में—
तथाकथित अच्छा केवल,
परिणाम भयंकर लिये हुये है।
ऐसा कुछ है ज्ञात हो रहा—
वर्ग चतुष्टय—
धर्म अर्थ का काम मोक्ष का—
आदि अंत निज नष्ट कर चुका।
स्वप्न जाल मे अर्थ काम के
पागल प्राणी उलझ चुका है।
कीर्ति और कंचन के साधन
रहे विचारे—
मन्दिर मस्जिद गिर्जे सारे।
वेद पुराण कुरान बाइबिल
कोसों दूर रहे करनी से
केवल कोरी कथनी मे हैं
पल्लव ग्राही ज्ञान मिल गया
समझ लिया नर श्रेष्ठ हमी है
ऐसा भ्रम है।
सीखो हम से अजा, यज्ञ की सुन्दर विधियां।
मधुर प्रवचन उपदेशों की मजुल लड़ियां॥
ईसा, मूसा के बदे हम है।
और खुदा के बेटे भी है।
यहा नहीं—
अवतार इन्सानियत के भी है।
ममता दया सीख लो मुझ से।
बन ईसाई
अरे दया के दम्भी पुतलो
बनो कसाई
मास निरीह प्राणियों का तुम खाओ



गीत दया के सुन्दर गाओ।
धर्म बदलकर लोगो का
निज राजनीति का चक्र
अखिल जग मे फैलाओ
ईसा मूसा राम कृष्ण के चेलो सुन लो
नहीं चलेगे यह हथकण्डे—
भेदभाव विद्वेषो का यह चक्र चला यदि
हो जाओगे प्रकृति कोप से बिल्कुल ठडे
खूब सोच लो
धर्म रक्त से रंजित बहुत हो चुका।
छल छिद्रो से पाखडो से
धर्म कलंकित बहुत हो चुका।
अरे धर्म के ठेकेदारो।
क्या तुम निज करनी से अपनी—
दफना दोगे धर्म सदा को?
तुमसे तो नास्तिक अच्छे है
जो कहते है—
धर्म ले रहा सासें मत छेड़ो मत टोको
और इधर तुम चले—
धर्माडम्बर दम्भ छद्म की
तेज कटारी से शिर छिन्न उसी का करने।
रक्खो दिल पर हाथ और सोचो
सच्ची श्रद्धा आज तुम्हारी दम्भ बन गई।
अरे! तुम्हारी पूजा केवल छद्म बन गई॥
सच मानो—
दीनो के दीनता भरे स्वर केवल
कानो मे ईश्वर के जाते।
धनी कभी क्या ईश्वर को है पाते?
हम हवन नित्य करते है।
कटु सत्य बका करते है।
बनकर बगुला भगत विश्व को
खूब ठगा करते है।
हम सच्चे पच नमाजी है
पौराणिक, आर्यसमाजी हैं।



नर श्रेष्ठ हमी हैं। क्योंकि सदा
हम नित्य कर्म करते हैं
खोलो आंखें—
तुम क्या हो देखो।
कोरा है केवल दम्भ तुम्हारा।
सुनो ध्यान से—
क्या तुम दीनो की आहे सुनते हो ?
दलितो के क्या तुम ताप शमन करते हो ?
क्या अच्छो से तुम नेह किया करते हो ?
और विचारो—
क्या दीन पड़ोसी की तुमने है भूख मिटाई ?
क्या अच्छे नर करते कभी बड़ाई ?
क्या अभेद्य केंचुली स्वार्थ की अभिमानो की
सदा सर्वदा को उतार फेंकी है तुमने ?
क्या मुफ्त माल या सम्पत्ति पाने पर—
निज धर्म आर्य सिद्धान्त निहारा तुमने ?
यदि नहीं—
छोड दो आडम्बर गुरुडम को।
व्यर्थ पाप मत लादो अरे पीढ़ियों पर
माना कि धर्म अच्छा तुम भी अच्छे हो।
पर पूछो दिल से—
केवल अपने ही लिये ? या कि ग़ैरो को ?
धर्म ओट बन जाता यदि पापों की
सरिता बहती है जग मे तब तापो की।
हो ताल मेल कथनी करनी का
और मधुर वाणी हो
पिघले आंसू से हृदय
देखकर दीन दुखी प्राणी को
देखो अवगुण अपने गुण औरो के
महा मंत्र यह सीखो
योऽस्मान् द्वेष्टि, य च वय द्विष्म
त वो जम्भे दध्म —
का राग कहो और सीखो।
तभी धर्म की ध्वजा विश्व मे
लहरायेगी फहरायेगी।
स्वय बनोगे आकर्षण औरो के
अन्यथा सभ्यता सत्य सनातन
मुनियों की, ऋषियों की,
काल गाल मे छिप जायेगी।

(पृष्ठ ११ का शेष)

जा सकता है। परन्तु भैंस तो बीच धार मे ही डुबो देगी भैंस का दूध आलस्य और प्रमाद पैदा करता है। भैंस के पड्डे को देख लीजिये सुस्त खडा-खडा कान बजाता रहेगा। गौ का बछडा इधर-उधर उछल कूद करेगा और उछलता फिरेगा। बकरी का दूध भी वीरत्व और उत्साह को कम करता है। कायर मनुष्य को फारसी मे बुजदिल कहा जाता है अर्थात् बकरे का सा दिल रखने वाला।

भैंस, और बकरी भेड, तथा ऊँटनी के दूध मे और भी बहुत अवगुण हैं जो कि गोदुग्ध मे नहीं। गोदुग्ध बड़ा लाभदायक है।

श्री स्वामी दयानन्द ने एक पुस्तक लिखी है—'गो करुणानिधि' इस पुस्तक मे अंक देकर बताया है कि गोरक्षा से मनुष्यो को अधिक भोजन मिलता है गोहत्या से नहीं।

गदर के बाद गोरक्षा के लिए प्रयत्न करने वालो मे स्वामी जी सर्वप्रथम थे।

गोरक्षा के लिये कूको ने (नामधारी सिखो ने) अपूर्व बलिदान किये हैं। पूजनीय श्री गुरु रामसिंह जी को अंग्रेजो ने देश से निर्वासित कर दिया था। कठारपुर मे, श्री डा० पूर्णसिंह आदि धर्मवीरो ने अपने को बलिदान किया। हिन्दू सदा ही गोहत्या रोकने के लिए तन, मन, धन लुटाता रहा है। मुगल बादशाह न तो हिन्दुओं की भावना की कदर की परन्तु ये अंग्रेजों के चेले हिन्दू नाम धारी कांग्रेसी नेता हिन्दुओं की भावनाओं से खिलवाड़ करके हिन्दुओं की दृष्टि मे पतित बनते जा रहे हैं। न जाने इनकी इतनी हठ क्यों है ? इनकी बुद्धि विपरीत दिशा मे चल पड़ी है। इसीलिये हर जगह जनता इन्हें कोस रही है।

गोहत्या बन्द न हुई तो बड़े भयंकर परिणाम होंगे। गोहत्या बन्दी के पश्चात् फिर यह विचार होगा कि गौ संरक्षण किस प्रकार से किया जाय। तब देश मे आर्थिक दृष्टिकोण से भी और धार्मिक दृष्टिकोण से भी सैकड़ों गोशालायें खोली जायेगी। व्यापारिक गोशालाये दूध, मक्खन का उत्पादन करेंगी और धार्मिक गोशालाओ मे अपङ्ग, अनाथ, वृद्ध गौओं का पालन होगा। इसमे आर्थिक कठिनाइयां भी सामने आयेंगी परन्तु उनका सामना दूसरी तरह से कर लिया जायगा। प्रथम भावना की रक्षा होनी चाहिये।





उत्थान



[डा० मुंशीराम शर्मा, ९/७० आर्यनगर, कानपुर]



श्री मुंशीराम जी शर्मा

"यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल मे दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है–सृष्टि की आदि मे आर्य्य लोग इसी देश मे आकर बसे–जितने भूगोल मे देश हैं वे सब इसी देश की प्रशसा करते और आशा रखते है। पारसमणि पत्थर सुना जाता है परन्तु आर्यावर्त देश सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं। सृष्टि से लेके आज से पाच सहस्र वर्ष पूर्व तक आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था। अन्य देशो मे माण्डलिक राजा रहते थे।"

महर्षि के इन शब्दो को पढकर भारतीयता का कोई भी प्रेमी भक्त गद्‌गद् हो उठेगा, परन्तु जब उसकी दृष्टि भारत की वर्तमान दशा पर जायगी तो वह तिलमिला उठेगा। देश के कर्णधारो की मनोवृत्ति, जिसमे योरोपीय रगढग मिल गये हैं और ऊपर से नीचे तक फैला हुआ भ्रष्टाचार जो आर्य्यत्व की आधारशिला को ही कम्पायमान कर रहा है, महर्षि के स्वप्नो के भारत को आखो से ओझल कर देते है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे यह देश भारत या आर्य्यावर्त न रहा हो, म्लेच्छो और दस्युओ का देश बन गया हो। महात्मा गाधी के स्वप्नो का भारत भी वह नहीं है। अमेरिका के एक दम्पति यहाँ आये और नेहरू के भारत मे जो कुछ था, उसका अत्यन्त कटु स्वाद उन्हे चखना पड़ा। पत्नी लुटी और मरी। अमरीका का सम्भ्रान्त नागरिक नेहरू के इलाहाबाद के निकट ही फूट-फूट कर रोया और विवश होकर पत्नी को खोकर एकाकी रूप मे अपने देश को लौट गया। नेहरू के दिल पर इससे चोट लगी कि नहीं, पर एक भारतीय, सच्चे भारतीय का हृदय तो शतधा विदीर्ण हो गया होगा। जिस भारत के आतिथ्य और शील की प्रशसा फाहियान, ह्वेनच्वाग आदि विदेशियों ने मुक्त कठ से की हो वह इतनी पतित दशा मे पहुच गया है, इसकी कल्पना करते ही हृदय हाहाकार करने लगता है। यह किसी अन्य के नहीं अपने ही पापो के परिणाम हैं।

यह क्यो हुआ ? महर्षि ने उसी स्थल पर लिखा है–'स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लडकर नष्ट हो गये क्योकि इस परमात्मा की सृष्टि मे अभिमानी अन्यायकारी अविद्वान् लोगो का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। महर्षि ने प्रयोजन से अधिक धन को भी पतन का कारण लिखा है, क्योकि उससे आलस्य, पुरुषार्थ-रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, जो विद्या और सुशिक्षा के लिये घातक है तथा दुर्गुण और दुष्ट व्यसन जैसे मद्य-मास आदि का सेवन स्वेच्छाचार आदि दोषो को बढ़ावा देते हैं। अन्याय तथा आपसी विरोध-व्यक्ति एव समाज-सभी को पतन के गह्वर गर्त मे मग्न कर देते हैं। उत्थान के लिये महर्षि ने आगे चलकर लिखा है –हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है और आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिल कर प्रीति



से करें। महर्षि ने पतन के रोग का निदान किया और उपचार का निर्देश भी किया, पर प्रश्न यह है कि हम उनके बताये हुये उपचार का सेवन क्यो नहीं कर सके। आर्यसमाज के सदस्य हम सब अपने को ऋषि का अनुयायी कहते हैं परन्तु महर्षि-निर्दिष्ट पथ का हम कहाँ तक अनुसरण करते हैं, इसे हम सब अपने मन से सोच लें। क्या हम सन्ध्या-वन्दन करते हैं अग्निहोत्र करते है, वेद पढ़ते हैं और मिलकर कार्य करते हैं ? यदि नहीं, तो इन बातो का अन्यों के प्रति उपदेश करने का क्या प्रयोजन है ? वास्तविकता यह है कि चाहे आर्यसमाज हो और चाहे कांग्रेस, देश इस समय अनार्य प्रवृत्तियो के बाहुल्य से पदाक्रान्त हो रहा है। आर्य प्रवृत्ति के प्राणी हैं तो, परन्तु वे प्रभविष्णु रूप में अन्यो को प्रभावित करते नहीं जान पडते। जब से महात्मा गाधी के तप और त्याग के मार्ग का उल्लघन करके हम यूरोपीय भौतिकता के कुत्सित अशो को अपनाने पर कटिबद्ध हुये तभी से विपथगामी बनते चले गये, और आज जिस स्थान पर हम खडे हैं वहाँ अन्धकार और विनाश के परत पर परत घिरते चले आ रहे हैं। पता नहीं सर्वस्व सहार की बेला किस क्षण सिर पर आ टूटे।

तो क्या हम गिर ही जायेंगे ? क्या उठने का अवसर अब न मिल सकेगा ? नहीं, ऐसा नहीं है, जितना आर्य रक्त बचा है, वह निराशा को नहीं जानता। वैदिक जीवन की आश्वासनमयी उमगें, आशा की तरगें, आनन्दवाद की हिलोरें आज भी उसके हृदय को स्पन्दित कर रही है। यही वह रक्त है जो यवनों द्वारा घनाच्छादित आकाश में चन्द वरदायी के रूप मे उदय हुआ था और जिसने पृथिवीराज चौहान को रगरेलियों से निकाल कर अनार्यों से मोर्चा लेने के लिये सन्नद्ध किया था। यही रक्त महाराणा प्रताप के रूप मे अकबर का अनुचर बनने के विरुद्ध युद्ध ठानता रहा। भूषण की वाणी ने इसी रक्त का स्तवन किया और शिवा जी के समान महाराष्ट्र साम्राज्य के सूत्रधार को जन्म दिया। गुरु गोविन्दसिंह इसी रक्त का प्रतिनिधित्व करते थे। राजा राम मोहनराय और महर्षि दयानन्द की धमनियों मे इसी आर्य रक्त का सचार था। लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी और सुभाष के रूप मे यही रक्त बोल रहा था। यही रक्त देश को ऊँचा उठाता रहा है पर, आह ! कहीं विदेशी रक्त इसके अन्दर अवश्य आ घुसा है और जब-जब हम उठे है, तब-तब यही विदेशी रक्त दुर्दान्त राक्षसी व्यूह के रूप मे खड़ा होकर हमे दबोचता रहा है। क्या हम इस अनार्य रक्त को पहिचान सकेंगे ?

आर्य और अनार्य की पहचान क्या है ? दोनो मानव का रूप धारण किये हुये हैं। पशु के समान किसी के सिर पर सींग नहीं हैं जिसने उसे दूसरे से भिन्न किया जा सके। सीधी पहिचान यह है कि जो व्यक्ति इस देश से प्रेम करता है, इसकी परम्परा-शृखला को तोडने मे जिसका दिल दुखी होता है, जो इस देश के महापुरुषो मे आस्था रखता है, जिसे मनु, पृथु, राम, कृष्ण, गौतम, महावीर, वाल्मीकि और व्यास प्यारे हैं, जो आर्य पद्धति का अनुगमन करने मे गौरव का अनुभव करता है, इस देश के लिये मरमिटने मे जिसे अपना सौभाग्य दिखाई देता है, जो मिलकर प्रेमपूर्वक चलता है, पारस्परिक वैमनस्य के बीजो का वपन नहीं करता है, वही आर्य है और जो इसके विपरीत पथ पर प्रयाण करता है, वही अनार्य है विदेशी रक्त है। जब तक इसे बचाया नहीं जायगा, तब तक आर्यत्व उठकर भी गिरता रहेगा। आवश्यकता है आर्य रक्त के सगठन की, आर्यसमाज की जो आर्यों को एकता के सूत्र मे आबद्ध कर सके। हमारा सगठित सबल रूप ही अनार्यत्व का पराभव करके आर्यत्व को विजयी बना सकेगा। अनार्यों को आर्यरूप मे परिणत करना होगा। दुष्प्रवृत्तियो का दमन और सत् प्रवृत्तियो का सरक्षण करना होगा। भ्रष्टाचार का नग्न रूप आर्यत्व के इस उत्थान से ही नष्ट हो सकेगा। आर्य सदाचार-परायण होता है। सदाचार, सत्पथ का अनुगमन-आर्य की विशेषता है। यदि हम आर्य बन सके और सगठित हो सके, तो पतन की दिशा से मुड़कर हम उत्थानशील हो सकेंगे, यह निश्चित है।



आर्यों से





(कविवर 'प्रणव' शास्त्री एम० ए ,

आर्य नगर, फीरोजाबाद)

धरा मे नये प्राण लाने को आर्यो
महामन्त्र वेदो के गाते चलो रे।
न सोये सदा से सुहागिनि कहानी,
प्रभाती सुनाते जगाते चलो रे ॥१॥

विचारो के अन्तम् की अन्त पुरी मे अमावस की रानी यहाँ झूमती है
खडी साधना और आराधन भी निराशा निशा के चरण चूमती है
अत पुण्य प्रतिभा प्रभा पूर्णिमा को
प्रतिष्ठा सुरग मे रँगाते चलो रे ॥२॥

कहीं देख पावस प्रथा पावनी को विरोधी बला की घटायें न छायें
बड़े मान सूनो के मैले मनो मे न वैषम्य वर्षा झडी सी लगायें
नया मोड लेंगी बहारें स्वय ही
सुधा प्रेम की यो पगाते चलो रे ॥३॥

भला क्यो न सोयेंगी आध्यात्म चर्चा जगाये न जागे तुम्हीं सो रहे हो
कहाँ कल्प वृक्षो की छाया मिलेगी विषैली लताएँ यहाँ बो रहे हो
तभी स्वर्ग भू को झुके, सत्यता का
कि नन्दन नया सा लगाते चलो रे ॥४॥

अचम्भा है लज्जित शुभा शारदा ही चला की खडी ले रही आरती है
पुन पश्चिमी अप्सरा की गुलामी बजाने लगी मौन सी आरती है
उठाओ निजी गौरवो की पताका
मनो हीनता को भगाते चलो रे ॥५॥





ऋषि दयानन्द ने श्रेष्ठ समाज बनाने का यत्न किया



[श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी]

उन्नीसवी शती मे ऋषि दयानन्द ने वैदिक धर्म का प्रचार करके सम्पूर्ण समाज को सुसस्कृत एव श्रेष्ठ बनाने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया, वह इतिहास के पृष्ठो मे सदा स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा, उन्होने पतनोन्मुख भारतवासियो को धर्मानुकूल आचरण करने की दिशा मे जो प्रेरणा की उसके फलस्वरूप लाखो व्यक्तियो ने उनके मार्ग को अपनाकर समाज को उन्नत करने का यत्न किया।

ऐसे धर्माचरण करने वाले व्यक्तियो ने आर्यसमाजो के द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार करके समाज को उन्नत करने का यत्न किया। आर्यसमाज मे प्रवेश करने वाले व्यक्ति का उस समय यह कर्तव्य था कि वह अपना जीवन यापन ईमानदारी के साथ करें। उस समय आयसमाज मे प्रविष्ट होने वाला व्यक्ति बेईमानी करने का साहस ही नही करता था।

ऋषि दयानन्द प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे पवित्रता लाने की प्रेरणा करते थे। उनका सिद्धान्त था कि व्यक्तियो मे पवित्रता आने से ही समाज मे पवित्रता आएगी क्योकि व्यक्ति ही समाज को बनाते है।

आर्यसमाज ने व्यक्तियो मे धार्मिक भावनाए जागृत की। लाखो परिवार ऐसे बने जिनका सारा जीवन सच्चाई और ईमानदारी की परिधि मे केन्द्रित हो गया था। इस प्रकार के व्यक्तियो और परिवारो ने समाज मे नई चेतना उत्पन्न की और अपने देश की प्राचीन सस्कृति का पुनरुद्धार करने मे सक्रिय योग दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि समाज मे सच्चे और ईमानदार व्यक्तियो का आदर होने लगा। यदि यह कहा जाए कि उस समय धूर्त और दुष्टाचारी आर्यसमाज के कार्यकर्ताओ से घबडाने लगे थे तो अत्युक्ति की बात न होगी।

ऋषि दयानन्द ने समाज का खानपान, रहन सहन और जीवन यापन का ढग परिवर्तित करने का भरसक यत्न किया। वे चाहते थे कि समाज सात्विकता की ओर बढ़े। उनकी सारी शक्ति इसी बात मे लगी कि वैदिक धर्म का प्रचार हो जिससे समाज मे उत्पन्न विषमता मिट जाए।



श्री विश्वम्भर सहाय जी प्रेमी

ऋषि दयानन्द के घोर तप और त्याग के बल पर समाज मे जो नए विचार जागृत हुए, वे आज स्थिर दिखाई नही दे रहे। जिस श्रेष्ठ समाज की रचना का कार्यभार आर्यसमाज ने सभाला था, वह आज शिथिल दिखाई दे रहा है।

भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त देश में एक नया ही विचार बढ़ता और फैलता जा रहा है। उसमे धार्मिकता को कोई विशेष स्थान नहीं है। धार्मिकता केवल

व्यक्ति तक सीमित कर दी गई है। व्यक्ति को अधिकार है कि वह किसी भी धर्म की किसी भी बात को माने या न माने। विचार स्वतन्त्र्य के नाम पर प्रत्येक युवक धर्म से विमुख होता जा रहा है। यदि उनको धार्मिक जीवन की ओर प्रेरित न किया गया तो न मालूम वह किस गत मे गिरेगा।

आज समाज धर्माचरण को कोई महत्त्व नहीं दे रहा। धनोपाजन ही सब कुछ है, इस भावना ने समाज का सारा ढाचा ही बदल दिया है। दुकानदार और सरकारी कार्यालयो मे काम करने वाला कमचारी अपने से ऊपर के पूंजीपतियो और उच्च अधिकारियो से इस बात को तो सीखना चाहता है कि धनोपार्जन कैसे किया जाए परन्तु वह यह नही सीखना चाहता कि समाज को श्रेष्ठता की ओर ले जाया जाए।

इस समय समाज मे जो अनैतिकता आई है उसका मूल कारण धनोपार्जन की ही भावना है। धन कमाने मे आज मनुष्य धम और कम दोनो को भूलता जा रहा है। इसी के साथ-साथ आज की राजनीति ने भी समाज को भारी क्षति पहुचाई है। राजनीति ने कुछ व्यक्तियो को इतना स्वार्थी बना दिया है कि वे यह सोचने ही नही कि समाज की क्या दशा होती जा रही है। राजनीति जीवन का अग है। इसके बिना हमारे समाज का कोई काय पूरा नहीं होगा। राजनीति हमारे देश के शासन को सचालित करने का आधार है। परन्तु देखना यह है कि उस राजनीति का सचालन किन हाथो मे है। यदि उसका सचालन सत्य पर आधारित है तो निश्चय ही समाज उन्नत होगा और यदि वह स्वार्थपरता, पदलोलुपता और शासनाधिकार पर अवलम्बित है तो समाज का पतन अवश्यम्भावी है।

आज समाज अस्त व्यस्त है। समाज मे ऐसे तत्वो को बल मिल रहा है जो सदाचरण मे विश्वास ही नही रखते। आज देश मे अराष्ट्रीय प्रवृत्तियां बढती जा रही हैं, और उन्होने उस जनता को आतंकित किया हुआ है जो सच्चाई के मार्ग पर चलकर अपना जीवन यापन करती है।

जीवन मे पवित्र भावनाएं लाने के लिये ऋषि दयानन्द ने जो मार्ग प्रदर्शित किया था, उससे विमुख होकर समाज कदापि उन्नत नही हो सकता। समाज को उन्नत करने के लिये शुद्ध विचारो का होना आवश्यक है। शुद्ध विचार तभी हो सकते हं जब मनुष्य अपने आहार विहार मे शुद्धता बरते। यह नही हो सकता कि मनुष्य एक तरफ तो मनचाहा पापाचरण करता रहे और दूसरी तरफ यह कहे कि हम उन्नति कर रहे है। आज राजनीतिज्ञों ने यही दृष्टिकोण अपना लिया है। देश मे पश्चिमी सभ्यता के प्रसार को वे भारत की प्रगति मान रहे है। शराब और मांसाहार का जोर बढने पर भी भोजन मे परिवर्तन लाने की बात करते है। इतना ही नही किन्तु अर्द्ध नग्न नृत्यो को वे सांस्कृतिक उत्थान मानने लगे है। ऐसी एक नहीं अनेक बातें हे जो प्रति दिन तेजी के साथ हमारे युवक और युवतियो मे प्रचलित होती जा रही है। राष्ट्रीय उत्थान की चर्चा करने वाले राजनीतिज्ञ चरित्र की बात को सुनना तक पसन्द नही करते।

ऐसी विषम स्थिति को परिवर्तित करने या सवारने का काय आर्यसमाज को उसी प्रकार अपने हाथ मे लेना चाहिये जिस प्रकार उसने महर्षि दयानन्द के जीवन काल मे लिया था। आर्यसमाज मे अब भी ऐसे हजारो व्यक्ति है जो ईमानदारी की कमाई पर अपना जीवन यापन कर कर रहे है। आर्यसमाज मे ऐसे अनेक नर नारी है जो धर्मानुकूलआचरण करते है। आज भी सरकारी नौकरयो मे ऐसे हजारो व्यक्ति मिल जाएंगे जो रिश्वत लेना अधर्म समझते है। यदि ऐसे व्यक्तियो की सख्या बढ़ाने मे आर्यसमाज सफल होता है तो निस्सदेह वह समाज की एक बडी सेवा करेगा।

अतप्त तनून तदामो अश्नुते।
तपस्या रहित मनुष्य प्रभु को नही परखता।
दिवमारूहत तपसा तपस्वी।
तपस्वी तप से ऊपर उठता है।
तपसा युजा विजहि शत्रून्।
तप से सम्पूर्ण विघ्न बाधाओ को जीत।
त्व तप परितप्याजय स्व।
तू तप कर स्वर्ग की प्राप्ति कर।





आर्यसमाज की बृहत्त्रयी

(विद्याभूषण आचार्य ओंकार मिश्र "प्रणव" शास्त्री एम० ए० फीरोजाबाद)

महर्षि दयानन्द ने जितना साहित्य लिखा है, यदि उसका हम वर्गीकरण करें तो स्थूल रूपेण उसके दो भेद हो सकेंगे। प्रथम मौलिक साहित्य, द्वितीय अनूदित साहित्य। मौलिक साहित्य की श्रेणी में गोकरुणानिधि, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कृत वाक्य प्रबोधादि कृतियां सम्मिलित हैं। अनूदित साहित्य में महर्षिकृत वेदभाष्य है। इस छोटे से लेख में ऋषि के मौलिक साहित्य में ही जो प्रमुख ग्रन्थ हैं, उन पर ही कुछ लिखना अभीष्ट है। महर्षि के मौलिक साहित्य में संस्कार विधि, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, एवं सत्यार्थ प्रकाश सर्वप्रधान ग्रन्थ हैं। इन तीनों ग्रन्थों की विशेषताओं के कारण ही आर्यमनीषी इनको 'बृहत्त्रयी' के नाम से पुकारते हैं।

सर्वप्रथम विचारणीय है कि महर्षि ने इन तीन ग्रन्थ रत्नों का निर्माण किस उद्देश्य से किया? यह बात जानने के लिये इन ग्रन्थों के प्रारम्भ में लिखित भूमिका ही पर्याप्त है। इनमें से ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका तो स्वयं वेदभाष्य की भूमिका ही है, अतः उसके विषय में इस दृष्टिकोण से विचार विमर्श करने की आवश्यकता नहीं, हां इस विचार कोटि में संस्कार विधि तथा सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ ही आते हैं। अतः क्रमानुसार इन ग्रन्थों पर विचार कीजिये।

संस्कार विधि

ऋषि की यह अनुपम कृति है। इसकी भूमिका में ऋषि ने जो शब्द लिखे हैं उनसे ज्ञात होता है कि ऋषि ने इस ग्रन्थ का निर्माण इस लिये किया कि लोग इस प्रणाली के आधार पर जीवन को सत्यता के सांचे में ढालकर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को प्राप्त कर सकें तथा राष्ट्र के लिये सुन्दर सुसंस्कृत नागरिक बन सकें।

संस्कार शब्द हमारी वैदिक संस्कृति में अति प्रचलित शब्द है। साधारणतया सभी जानते हैं कि किसी वस्तु का संस्कार हो जाने के उपरान्त उस वस्तु का कितना मूल्य बढ़ जाता है। यों देखने में मिट्टी का कोई मूल्य नहीं किन्तु इसी मिट्टी का कोई कुशल कुम्भकार घट, शरावा आदि के रूप में संस्कार कर देता है, अथवा उसको ईंट की शक्ल दे देता है तो वही मिट्टी मूल्यवती हो जाती है। वस्तुतः संस्कार करने से वस्तु में गुण परिवर्तन होता है, रूप परिवर्तन होता है और होता है उपयोग परिवर्तन है। साधारणतया लकड़ी का मूल्य २-५० अथवा ३) मन होता है,किन्तु एक छड़ी जो कि संस्कार की गंगा में स्नान कर चुकी है, उसी का दो या तीन रुपया हो जाता है। इस प्रकार हम विचार सकते हैं कि मूल वस्तु में संस्कार हो जाने के उपरान्त उस वस्तु की क्या विशेषता एवं महत्ता हो जाती है।

यह विवेचन भौतिक वस्तुओं के संस्कार का है इसी दिशा में हम जरा चेतन आत्मा के संस्कार के विषय में विचार करें। एक व्यक्ति जो कि शिशु रूप में अभी उत्पन्न हुआ है, वह एक असहाय, सजीव मांस पिण्ड है, उसकी पुष्टि तथा वृद्धि के लिए किसी अन्य सहायक एवं साधनों की अपेक्षा है। भोजनादि पदार्थों से उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट होकर समुन्नत होता है, उसी प्रकार प्राच्य प्रणाली के आधार पर संस्कार विधि की प्रक्रिया से हृष्ट-पुष्ट मांस-पिण्ड में रहने वाला आत्मा भी अपने गुण तथा वैभव के विकास की ओर बढ़ता है। उत्पन्न मानव का रहन-सहन, रीति-रिवाज, शिक्षा-दीक्षा, ये सब मानव समाज के द्वारा विविध प्रणालियों के द्वारा प्रदत्त संस्कार के ही परिणाम हैं। मानव का अन्तःकरण चतुष्टय संस्कारों की शुद्ध चेतना से निर्मल एवं जागृत होता है, इस दृष्टिकोण से महर्षि दयानन्द ने बिना किसी भेदभाव के मानव-निर्माण की दिशा में 'संस्कार-विधि' जैसे महान्

ग्रन्थ का निर्माण किया। ऋषि ने पुरातन श्रौत, स्मार्तादि ग्रन्थों का अवलोकन कर 'सारततो ग्राह्य मपास्य फला के के सत्य सिद्धान्त के आधार पर सक्षिप्त किन्तु अत्यन्त उपयोगी सस्कार विधि हमारे समक्ष उपस्थित की कि जिसके आधार पर मानवमात्र अपने राष्ट्र के लिए सस्कारी नागरिकों का निर्माण कर सके।

महर्षि ने इस महान ग्रन्थ मे मानव निर्माण की वे सभी प्रक्रियाएँ प्रस्तुत कीं जिनके आधार पर वस्तुत मानव मानव कहलाने का अधिकारी बनता है। इस 'सस्कार विधि' मे 'गर्भाधान' से लेकर 'अन्त्येष्टि' कर्म-विधि तक सोलह सस्कार गिनाये है। इनमे गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, ये तीन सस्कार जन्म से पूर्व है, तथा जातकर्म से लेकर 'सन्यास' तक ये जन्मोपरान्त जीवन निर्माण की प्रणाली का सकेत करते हैं, और मरणोपरान्त 'अन्त्येष्टि कर्म' यह मृतक शरीर ठिकाने लगाने के लिए सर्वोत्तम वैज्ञानिक प्रक्रिया का निर्देश करता है। इस प्रकार ऋषि ने सृष्टि मे मानव निर्माण का बीजवपन करने के लिए 'सस्कार विधि' का निर्माण 'सत्यार्थप्रकाश' से भी पूर्व किया।

सत्यार्थप्रकाश

ऋषि की यह महती एव अद्भुत रचना 'सस्कार विधि' तथा 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के बाद की रचना है। इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य ग्रन्थ का नामकरण ही बता रहा है। अर्थात् ऋषि को ससार मे सत्य अर्थ का प्रकाश करना ही अभीष्ट था। सत्य अर्थ के प्रकाश करने के लिए जो प्रणालियाँ, साधन तथा उपक्रम हो सकते है, उन सबका वर्णन इस अनुपम ग्रन्थ मे विद्यमान है। ऋषि ने इस पवित्र ग्रन्थ को चौदह भागो मे विभक्त किया है, इन भागों का नाम उन्होने समुल्लास रखा है। ग्रन्थ-विभाग के लिए अध्याय, परिच्छेद, उल्लास शब्द सस्कृत साहित्य मे अतीव प्रचलित एव प्रसिद्ध हैं किन्तु ऋषि ने उल्लास शब्द से पूर्व 'सम्' उपसर्ग का प्रयोग कर यह सकेत किया है कि सत्य अर्थ का प्रकाश हो जाने पर मनुष्य को 'समुल्लास' अर्थात् अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता होती है, तदनुसार ही महर्षि ने अध्यायादि नाम छोडकर समुल्लास शब्द की योजना ग्रन्थ विभाग मे की है। इस 'सत्यार्थ प्रकाश' मे ऋषि ने यथास्थान जो अन्य ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किए हैं, उनकी तालिका के आधार पर यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि इस ग्रन्थ के लिखने से पूर्व कितने ग्रन्थो का स्वाध्याय किया था तथा उनकी स्मृति कितनी तीव्र थी और उनकी प्रतिभा की परिसीमा क्या थी? मेरे अपने विचार से ऋषि ने इस ग्रन्थ के लिखने से पूर्व कम से कम ५००, ६०० ग्रन्थ अवश्य ही पढ़े और देखे होगे। इन ग्रन्थो की प्राप्ति मे ऋषि को कितना कठोर परिश्रम करना पडा होगा यह एक पृथक् विचारणीय विषय है।

विषय-विवेचन की दृष्टि से 'सत्यार्थप्रकाश' के स्वरूप पर विचार कीजिए। प्रथम समुल्लास मे ईश्वर के नामो की व्याख्या तथा ओमनाम की प्रमुखता, द्वितीय समुल्लास मे 'शिक्षा' प्रणाली की विवेचना, तृतीय समुल्लास मे अध्ययन अध्यापन विधि का वर्णन, चतुर्थ समुल्लास मे गृहस्थाश्रम की रूपरेखा, पचम समुल्लास मे वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम की समीक्षा, षष्ठ समुल्लास मे राज-धर्म का वर्णन, सप्तम समुल्लास मे ईश्वर, वेद-विषय प्रतिपादन, अष्टम समुल्लास मे सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय का वैज्ञानिक प्रकार, नवम समुल्लास मे विद्या, अविद्या बन्ध मोक्ष विषय की मीमासा, दशम समुल्लास मे आचार-नाचार, भक्ष्या भक्ष्य विषय की प्रतिष्ठा, एकादश समुल्लास मे आर्यावर्तीय मतमतान्तर विषय की समालोचना, द्वादश समुल्लास मे बौद्ध जैन चारवाक विचार-धारा का समीक्षण, त्रयोदश समुल्लास मे ईसाई मत का पोस्टमार्टम, तथा चतुर्दश समुल्लास मे इस्लाम मत का सर्वेक्षण किया गया है। ग्रन्थ के अन्त मे 'स्वमन्तव्या-मन्तव्य' प्रकाश नामक प्रकरण मे ऋषि की वेदानुमोदित मान्यताओ का वर्णन है। इस यावन रत्नो की यह देदी-प्यमान माला पाठको के मस्तिष्क मे ज्ञान की प्रखर किरणो का आधान कर देती है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ का पर्यालोचन करने पर प्रतीत होता

है, कि किस प्रकार ऋषि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा, अदभुत विद्वता एवं आर्ष तर्कना शैली के आधार पर प्रतिपाद्य विषयों का विवेचन किया है। मानव जीवन का ऐसा कोई दष्टिकोण अवशिष्ट नहीं है, जो कि सत्यार्थ प्रकाश मे पढने को न मिलता हो।

अत्यन्त मनोहारिणी सरल तथा सुबोध प्रश्नोत्तर प्रणाली के रूप मे दुरूह दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन साधारण जनता को भी आनन्द की अनुभूति कराता है। ग्रन्थारम्भ में लिखित तथा पूर्वार्द्ध के पश्चात लिखित भूमिका, और अनुभूमिकाओ से इस ग्रन्थ लेखन का उद्देश्य दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति स्पष्ट दष्टिगोचर हो जाता है। ऋषि का इस ग्रन्थ रचना मे उद्देश्य केवल इतना है कि मनुष्य अपनी बुद्धि विवेचना के आधार पर तर्क के वातावरण मे धर्म का सत्य स्वरूप जानकर जीवन की गतिविधि को प्रभु के मविधान के अनुकूल बनकर मोक्ष प्राप्तकर सके। तथा प्रचलित असत्य, मानव कृत मतमतान्तरो की भूलभुलैया मे पडकर कष्ट न भोगे। इसी पवित्र भावना के आधार पर ग्रन्थ के अन्त मे महर्षि के ये शब्द पढिये "सव शक्तिमान परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनो की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सवत्र भूगोल मे शीघ्र प्रवृत्त हो जायें" जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहे, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है"।

इन पवित्र शब्दो की विद्यमानता मे कौन ऐसा अज्ञ मनुष्य होगा जो कि ऋषि की 'सवजन हिताय सर्व जन सुखाय' आन्तरिक करुणा भरी पुनीत भावना को अन्यथा शब्दो मे पढ सके।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

यह ग्रन्थ जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, चारो वेदो के भाष्य की भूमिका है, इसके नाम से भी यही अर्थ एव प्रयोजन ध्वनित होता है। वेदभाष्य की भूमिका होते हुए भी इस ग्रन्थ की मौलिक ग्रन्थो मे गणना इसलिए की गई है कि इस ग्रन्थ मे वेदो की मान्यता के विषय मे ऋषि ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, तथा उन विचारो की पुष्टि वेद मन्त्रो से की है। इस ग्रन्थ को आरम्भ करते हुए ऋषि ने प्रारम्भ मे स्वरचित आठ श्लोक लिखे हैं, इन श्लोको मे इस ग्रन्थ के लिखने का उद्देश्य सन्निहित है। अन्तिम तीन श्लोकों का भाव यह है—कि मै प्राच्य आर्य ऋषि मुनियो की वेद भाष्य की सनातनी प्रणाली के आधार पर वेद मन्त्रो के अर्थ करूँगा, जिससे साम्प्रतिक वेद भाष्यो के दोष दुर्गुण दूर होकर वेदो का सत्य सनातन अर्थ मानवमात्र के समक्ष ईश्वर की सहायता से प्रकाशित हो सके।

इस उपस्थापना की छाया मे इस ग्रन्थ के निर्माण का प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है। ऋषि को चारो वेदो का भाष्य करना अभीष्ट था तदनुसार जो उन्होने ऋग्वेद का भाष्य (आधे से अधिक) तथा सम्पूर्ण 'यजुर्वेद' का भाष्य किया इस प्रसग मे मै अपनी धारणा पाठको के समक्ष प्रस्तुत करता हू कि ऋषि ने 'यजुर्वेद' के भाष्यारम्भ जो एक पद्य

"योजीवेषुदधाति सर्वसुकृत ज्ञान गुणैरीश्वर।
त नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्य सुबोधाय च ।।
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुण गुणि ज्ञान प्रदातुर्वर।
भाष्य काम्य मयो क्रियामय यजुर्वेदस्य भाष्यम्मया।

लिखा है, उसमे यह बात रेखाङ्कित पद के अर्थ से सर्वथा स्पष्ट है कि ऋषि ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का भाष्य सम्पूर्ण किया तत्पश्चात् ही यजुर्वेद का भाष्य आरम्भ किया। यद्यपि वेद विद्या के पारगत पण्डित पुङ्गव थे, फिर यह नहीं हो सकता कि उन्होने ऋग्वेद का भाष्य अधूरा छोडकर यजुर्वेद का भाष्य प्रारम्भ कर दिया हो। यदि ऐसा हुआ तो क्यों? क्यो फिर ऋषि ने रेखाङ्कित पद स्वरचित पद्य मे सन्निविष्ट किया। अत यह बात सर्वथा सिद्ध है कि ऋग्वेद पर ऋषि का भाष्य पूर्ण था वह किन्हीं भी कारणो से अप्राप्य हो गया या नष्ट हो गया।

अस्तु ऋषि ने इस 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' मे चारो वेदो के प्रतिपाद्य विषय की अति सक्षिप्त सारणी का दिग्दर्शन कराया है। इस ग्रन्थ में कुल ५७ विषयों की ओर सकेत है। इस सख्या मे वेदो को विवेचनीय



वह ब्रह्मचारी क्यों आया था

उठ चलो लेखनी लिखो आज वह ब्रह्मचारी क्यो आया था।
अमृत का स्रोत बहाने को जो विष पीकर मुसकाया था।।
सकट की पावक मे जल कर जो शुद्ध स्वर्ण सा चमक उठा।
चल रहा विश्व सारा उस पर, उसने जो पथ दिखलाया था।।
हो रहे देश स्वाधीन तोड साम्राज्यवाद की जजीरे।
सुन्दर स्वराज्य का शब्द ऋषि ने पहले ही बतलाया था।।
सब देश समझने लगे आज हैं जाति भेद के पातक को।
जिस छुआ छूत का भूत भगाने का अभियान चलाया था।।
जो हीन समझते नारी को पैरो की जूती बतला कर।
बन गई राष्ट्रसघ की प्रधान जिसने यह पाठ पढाया था।।
है अल्लाह वाले सात फलक को सात उसूल लगे कहने।
ईसाई मत ने खुदा चोथवें अम्बर पर बिठलाया था।।
प्रतिमा पूजा का साधन है, प्रभु निराकार सब जान गये।
जब दयानन्द ने वेदो का पावन प्रकाश दिखाया था।।
हिल गई मतो की दीवारें सब लगे देखने बुकचो को।
शास्त्रार्थ तर्क का योगी ने जब उन पर शस्त्र चलाया था।।
बुझ गया अन्त मे दीप किन्तु दे गया जगत को दीवाली।
जो व्रजानन्द ने वेदो का वह पावन दीप जलाया था।।
रह गये चमकते तारे पर छुप गया चाँद वह भारत का।
लज्जित हो दीवाली ने अँधियारी मे मुँह ढुबकाया था।।

—धर्मेन्द्रनाथ 'अलिन्द'
हल्दौर, बिजनौर

विषयो का विशदवर्णन देखने को मिलता है। ईश्वर से लेकर सृष्टि सिद्धान्त के अनुकूल समस्त पदार्थ जात का वर्णन वैज्ञानिक प्रक्रिया के आधार पर मिलता है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से विद्वन्मण्डल सहजतया जान सकता है कि वेदो मे ईश्वर, जीव प्रकृति इन तीन अनादि सत्ताओ की मीमासा किस प्रकार की गई है। भूगोल के मानवमात्र की नहीं, अपितु प्राणीमात्र के हित साधना का किस प्रकार वर्णन किया गया है। किस प्रकार वेदो मे जीव, ब्रह्म की चर्चा तथा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, गणित, मुक्ति, वैज्ञानिक आविष्कार, सामाजिक व्यवस्था, वर्ण व्यवस्थादि का किस प्रकार विशद विवेचन किया है।

इस प्रकार 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' वेदो के उदात्त ज्ञान की सरल सुबोध स्वर्णिम झाकी करा देती है। मान्य मनीषियो की यह ध्रुव धारणा है जो भी काल, देश, राष्ट्र या जाति इन तीन महान् ग्रन्थो का पर्यालोचन कर इनके आदर्शों को क्रियात्मक साचे मे ढाल सकेगा, वह कभी भी भ्रान्त नही हो सकेगा। आर्यो के लिये तो इन ग्रथो का अध्ययनाध्यापन विशेष रूपेण कर्तव्य है। इन तीन ग्रन्थो की महत्तम विशेषताओ के कारण ही इन ग्रन्थ रत्नो को 'वृहतत्रयी' की सज्ञा दी जानी चाहिये। ऋषि निर्वाण के इस पवित्र पर्व पर इन ग्रन्थो के स्वाध्याय का सब लोगो को व्रत लेना चाहिये, जिससे हम सब ऋषि के शब्दो मे ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पदार्थों को प्राप्त कर सफल जीवन व्यतीत न कर सकें।





मुक्तिदाता महर्षि

(आचार्य प० रामकिशोर जी शास्त्री, गोवर्धन [मथुरा] उ० प्र०)

सृष्टि के आरम्भ से ही आर्य जाति ने वैदिक संस्कृति को पूर्ण रूप से क्रियान्वित करके महाभारत काल तक लोकोत्तर वैभव, जगदाधिपत्य एवं जगद्गुरुत्व को प्राप्त किया" इस तथ्य को विश्व के सभी विचारशील महानुभावों ने एक मत से स्वीकार किया है। महाभारत के कुछ पूर्व से "अत्यारूढिर्वनि मद्भावानां पतन प्रतिष्ठा" बड़ो की भी अधिकतम उन्नति पतनमूलक होती है" आर्य जाति भी इस सूक्ति का अपवाद न बन सकी, और उसे भी विनाशक, कलुषित कुरीतियों की आंधी ने अस्त-व्यस्त कर दिया, जिसके फलस्वरूप आर्यजाति को शताब्दियों तक वैदेशिक, विधर्मी शासकों के पदाक्रान्त होना पड़ा। इस अज्ञानतिमिराछन्न दशा में गौतमबुद्ध, स्वामी शंकराचार्य नानक, कबीर, राजाराम मोहनराय, स्वामी विवेकानन्द प्रभृति महानुभावों ने भारतीय जनता को कुरीतियों से मुक्त कर देश को गौरवान्वित करने का प्रयास किया। किन्तु ये सभी महापुरुष आर्य जाति को किसी एक ही क्षेत्र में सम्मानित करने का श्रेय प्राप्त कर सके। इसी का परिणाम था, कि युगपुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती को, सामाजिक कुरीतियों तथा पराधीनता से भारतीय जनता को मुक्त कर गत गौरव का पात्र बनाने के लिये भगीरथ प्रयत्न करना पड़ा। महर्षि के कार्यकाल में देश की सामाजिक दशा पारस्परिक भेदभाव के कारण अत्यन्त छिन्न-भिन्न एवं दयनीय थी। छुआ-छूत के भूत से ग्रस्त समाज का नेतृत्व, आर्य जाति के एक वर्ग को मानवीय अधिकार वेदादि के पठन-पाठन से ही वञ्चित न कर रहा था, अपितु घृणापूर्ण दृष्टि से देख रहा था, "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी" यह तुलसीदास की चौपाई उस ही स्थिति की परिचायक है। कल्पित सामाजिक नियमों के आधार पर "स्त्री शूद्रौ वेद नाधीयताम्" इस वाक्य को श्रुति बताकर स्त्री तथा शूद्रों को मूर्ख ही रखकर समाज में अज्ञान का साम्राज्य स्थापित किया जा रहा था। शूद्र द्वारा वेद मन्त्र का उच्चारण करने पर जिह्वाच्छेद तथा सुनने पर कान में शीशा पिघलाकर डालने का पाशविक नियम भी बना डाला था। सामाजिक नेताओं के अत्याचारों से पीडित शूद्रवर्ग ईसाई तथा मुसलमानों की अपनाने की नीति तथा उनसे प्राप्त आश्वासन एवं रक्षण को ईश्वरीय कृपा मानकर उनका अनुयायी हो रहा था। इन परिस्थितियों के कारण आर्य जाति दिन प्रतिदिन घटती तथा विधर्मियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। एकबार किसी भी कारण से विधर्मी बने अपने भाई को पुनः अपने में मिलाना सर्वथा अवैध था। अधिकांश बाल विधवायें पुनर्विवाह पर लगे सामाजिक प्रतिबन्ध के फलस्वरूप यवन मत स्वीकार कर वेश्याओं की वृद्धि कर रही थी। स्त्री एवं शूद्रों की घोर उपेक्षा सर्वसम्मत सामाजिक सिद्धान्त बन चुका था। आर्य जनता का भविष्य पूर्ण अन्धकारमय था। ऐसी परिस्थिति में महर्षि ने अवतीर्ण होकर सङ्कीर्ण भावनाओं पर घोर प्रहार किया। यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के 'यथे मां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।'

इस मन्त्र द्वारा सब को वेद पढ़ने का अधिकार सिद्ध किया। गार्गी, मैत्रेयी आदि के उदाहरणों द्वारा स्त्रियों को वेदादि शास्त्रों के अध्ययन का पात्र घोषित किया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' इत्यादि मनु वचन द्वारा स्त्री जाति के सम्मान को सुख मूल तथा अपमान को दुःख मूल बताया।' ईसाई तथा यवन मतो का खण्डन कर महर्षि ने भारतीय जनता को उधर जाने से रोका तथा गये हुये भारतीयों को पुनः आर्य जाति में सम्मिलित कर

आर्य जाति को सगठित बनाया। इस प्रकार महर्षि ने धर्म के आदिस्रोत, ईश्वरीय ज्ञान वेद के आधार पर दोष पूर्ण कल्पित सामाजिक बन्धनो से भारतीय जनता को मुक्ति प्रदान की तथा आर्य जाति को वैदिक सिद्धान्तो के सुदृढ़ प्रासाद मे सुरक्षित कर दिया जिस पर विधर्मियो के सिद्धान्त बाण निष्प्रभाव सिद्ध हुये हे।

२-पराधीनता से मुक्ति

इतिहास प्रसिद्ध राष्ट्र भारत सामाजिक दशा के कारण आय जाति विदेशियो के पदाक्रान्त थी। सन '५७ के स्वतन्त्रता युद्ध के असफल हो जाने के पश्चात् स्वतन्त्रता का नाम लेना मृत्यु का आह्वान समझा जाता था। विजित आर्य जाति अपना गौरव से सर्वथा अपरिचित होती जा रही थी, देश भारतमाता अपनी के चरणो मे समर्पित कर चुका था। सत्यार्थ मे सर्व परवश दुःखम्, के सिद्धान्त को मानने वाले महर्षि के हृदय मे देश की पराधीनता तीक्ष्ण बाण के समान पीडा दे रही थी। अग्रेजो के अत्याचार की चिन्ता न कर महर्षि ने आर्य जाति को जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया, 'सत्यार्थ-प्रकाश' द्वारा गत गौरव का स्मरण कराया। विदेशी राज्य की निन्दा करते हुए महर्षि ने लिखा—"आर्यावर्त मे भी आर्यो का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नही है, जो कुछ है भी वह भी विदेशियो के पदाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोडे राज्य स्वतन्त्र है दुर्दिन जब आता है तब देश वासियो को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पडते है, कोई कितना भी कहे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रह से रहित अपने और पराये के पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य पूर्ण सुखदायक नही", इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र सर्वत्र अपने विद्वत्ता एव ओजपूर्ण भाषणो द्वारा भी सुप्त आर्य जाति को जगाया। ११ वे समुल्लास मे पूर्वजो के चक्रवर्तित्व तथा जगद्गुरुत्व की चर्चा करते हुए महर्षि ने लिखा, कि ऐसे महान व्यक्तियो की सन्तान तुम सबका निराश होना लज्जाजनक है। महर्षि के प्रयास से राष्ट्र मे नयी जागृति एव शक्ति का आविर्भाव हुआ। महर्षि की प्रेरणा से श्री श्याम जी कृष्णवर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री मदनलाल ढींगरा, लाला हरदयाल, लाला लाजपतराय, डा० सत्यपाल आदि ने अपना सर्वस्व राष्ट्र के चरणो पर न्यौछावर कर दिया, महर्षि के विचारो ने ही भाई परमानन्द, बालमुकुन्द, मेंडलाल, रामप्रसाद बिस्मिल, सरदार भगतसिह आदि को स्वतन्त्रता सग्राम मे सक्रिय योग देने की प्रेरणा दी। महर्षि को श्रद्धाजलि देते हुये श्री अनन्त शयनम आयगर पूर्व अध्यक्ष लोकसभा ने कहा था कि "यदि महात्मा गाधी राष्ट्रपिता है तो महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र पितामह है। दयानन्द हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियो तथा स्वाधीनता आन्दोलन के आद्य प्रवर्तक थे, उन्ही के चरण-चिह्नो पर चलकर गाधी जी ने आगे कार्य करने का यत्न किया। इसी प्रकार सभी राजनैतिक नेताओ ने महर्षि को स्वतन्त्रता की भावना का जन्मदाता स्वीकार किया है। महर्षि की पवित्र भावना, कार्य प्रणाली एव विचारशक्ति ने ही पल्लवित होकर हमे विदेशी शासन से मुक्ति प्रदान की यह निर्विवाद सत्य है।

३ ससार से मुक्ति

भारतीय सस्कृति मे मुक्त होना मानव जीवन का परम लक्ष्य माना है। नीतिशास्त्र के महापण्डित श्री विष्णु शर्मा की —

"धर्मार्थ काममोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते। अजा-गलस्तनस्येवतस्य जन्म निरर्थकम्।" यह सूक्ति धर्मार्थ काम मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय की उपेक्षा करने वाले मानव का जन्म बकरी के गले के स्तन के समान व्यर्थ घोषित करती है। अत मानवो ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार परमोपादेय मुक्ति के स्थान एव प्रकारो की कल्पना की है। जैसे—जैनी लोग मोक्ष शिला "शिवपुर मे जाकर मौनी होकर बैठना, ईसाई चौथे आसमान, मुसलमान सातवें आसमान मे आनन्द भोगना, वाममार्गी श्रीपुर, शैव कैलाश, वैष्णव वैकुण्ठ, गोकुलिया गोसाई गोकुल मे जाकर उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदि को पाकर

(शेष पृष्ठ २९ पर)



वेदप्रचार का शुभ परिणाम

[श्री मोहनलाल जी मोहित लावेनीर सें-पियेर मोरीशस]

महर्षि दयानन्द जी ने "वेद पढना-पढाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म" बताया है। और देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तर मे वेदप्रचार के द्वारा मानवता का उत्थान करना आर्यसमाज का प्रधान उद्देश्य बताया हे। महर्षि दयानन्द के परम पुनीत जीवन से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज के तपस्वी विद्वानों ने सात्विक



श्री मोहनलाल जी मोहित

तन्मयता से वेदप्रचार और समाज-सुधार के कार्यों मे अपने को बलिदान कर दिया।

आर्यसमाज का प्रारम्भिक युग का वेदप्रचार और सामाजिक सुधार के कार्यो ने सदियो से प्रसुप्त भारतीय राष्ट्रीय जीवन मे नव चेतना दी।

वेद प्रचार, समाज-सुधार तथा शिक्षा-क्षेत्र मे गुरुकुल और डी ए० वी० कालेज के द्वारा श्री महात्मा मुन्शीराम, महात्मा हसराज, मुनिवर गुरुदत्त, लाला लाजपतराय, धर्मवीर प० लेखराम जी जैसे तपस्वी महापुरुषो के योगदान से आर्यसमाज मे ५०वर्ष मे ही युगान्तरकारी कार्य कर दिया। राष्ट्र का एक चौथाई भाग जो अछूत नाम से पृथक् पडा था, आर्यसमाज ने उनको शुद्ध और शिक्षित कर राष्ट्र का उपयोगी अग बनाया। बाल-विवाह को निषेध कर और बाल विधवाओ का पुनर्विवाह को समर्थन देकर आर्यसमाज ने हिन्दुओ के सामाजिक कलक को दूर किया।

विधर्मियो से शास्त्रार्थ मे लोहा लेकर उन्हे परास्त कर आर्यसमाज ने उनके पजो से हिन्दू जनता की रक्षा की। जन्म जाति का मिथ्याभिमान तथा नीच-ऊँच का दम्भ-पाखण्ड रूपी कोढ को आर्यसमाज ने विध्वस कर दिया तथा परस्पर मे भ्रातृभाव का प्रचार कर सघ शक्ति को जन्म दिया। मानव प्राणीमात्र को विद्या-शिक्षा का अधिकार देकर हिन्दू समाज की मानसिक दासता को दूर किया। मातृ-भाषा का प्रचार, वैदिक सस्कृति का प्रसार और सबको सन्ध्या गायत्री का अधिकार देकर वैदिक ऋषि परम्परा और राम, कृष्ण के वशजो को महर्षि दयानन्द एव आर्यसमाज ने जीवन दान दिया। धार्मिक क्षेत्र मे पोराणिक रूढ़ि अन्धविश्वास से निराश और हताश शिक्षित लोक मत को ज्ञान कर्मोपासना की अमृत-धारा से आर्यसमाज ने नवजीवन प्रदान किया।

आर्यसमाज के तपस्वी विद्वानो ने देश-देशान्तर में वेद-प्रचार से मनुर्भव की दिव्य-ध्वनि से जन-जीवन मे नव चेतना दी। युग ने पलटा खाया। आर्य समाज ने तर्कसगत जाग्रत विवेक से समाज और राष्ट्र ने विचार-विनिमय की शैली सीखी और बौद्धिक एव मानसिक दासता का अन्त हो चुका और जागरण-जगत् मे लोक-मत ने प्रगति पाई।

विश्व मे अब तो आर्थिक और राजनीतिक दासता

की जगह नहीं रही, सम्प्रति स्वराज्य तथा स्वतन्त्रता की विजय ध्वनि ही लोक-वाणी बनी है।

पिछली एक शती के युग महापुरुषो की महान् तपस्या ने अर्थ-लोलुप साम्राज्यवादियो के अत्याचार और शोषण से जनता को मुक्त किया और वेद-प्रचार, शिक्षा-प्रसार तथा समाज सुधार का प्रबल आन्दोलन से अन्धविश्वास तथा गुरुडम का गढ भी गिर चुका है। उत्पीडित एव शोषित मानवता को राहत मिली। उनके नैतिक जीवन मे विकास हुआ, उनके विकसित हृदय तथा परिष्कृत मस्तिष्क अपनी व्यावहारिक कुशलता से सामाजिक जीवन स्तर को शुद्ध एव उत्कर्षित बना रहा है। आयसमाज के महारथी गण ने देश-देशान्तर मे दौरा करके वेद प्रचार की देव-ध्वनि से सुवर्णयुग का निर्माण किया, ये सब वेद-प्रचार का ही शुभ परिणाम है।

उपदेशक विश्व विद्यालय

श्री सावदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के तत्वावधान मे "उपदेशक-विश्ववदिक विद्यालय" सस्थान की स्थापना आवश्यक है।

जहाँ से देश-विदेश म प्रचाराथ उच्चकोटि के वदिक साहित्य मे पारगत विद्वान को दो या तीन वष के लिए उपदेशक-कला का प्रशिक्षण दिया जाय।

गुरुकुलो और आर्य विद्यालयो से लगनशील तपस्वी ३० ब्रह्मचारी को चुना जाय प्रशिक्षण के लिए और उन्हे नि शुल्क प्रशिक्षण सस्थान की ओर से दिया जाय। देश-विदेश मे प्रचारार्थ विश्व की प्रमुख १०, १५ भाषाओ के माध्यम से प्रशिक्षण देना आवश्यक होगा। यदि सावदेशिक सभा शिक्षा-विशेषज्ञ प्राध्यापको से कथित विषय पर एक कार्य-क्रम तैयार कर विचार-विनिमय के लिए प्रकाशित करें तो ठीक होगा।

सस्थान को स्थाई बनाने के लिये पाँच या छै लाख की निधि की आवश्यकता है, जो विश्व की आर्यसमाजें श्रद्धा से करना चाहे तो एक वर्ष मे ही पुष्कल धन मिल सकता है। उपर्युक्त सस्थान के द्वारा ही देश-विदेश मे वेद-प्रचार का उद्देश्य सफल हो सकता है।

—×—

(पृष्ठ २७ का शेष)

आनन्द भोगने को ही मुक्ति मानते हैं, पौराणिक लोग ब्रह्म के साथ जीव के सालोक्य, सानुज्य, सामीप्य तथा सायुज्य को, नवीन वेदान्ती जीव के ब्रह्म मे लय को मुक्ति मानते हैं। महर्षि ने सत्याथ प्रकाश के नवम समुल्लास मे इन सबका विस्तारपूर्वक खण्डन करके "स एष पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्" तत्र निरतिशय सवज्ञ बीजम्" पातञ्जल योग दर्शन के इन दो सूत्रो द्वारा सुसिद्ध पूर्व आचार्यों के भी गुरु तथा सवज्ञ परमात्मा के त्रिकालाबाधित सत्य ज्ञान वेद के आधार पर मुक्ति के सत्स्वरूप का विवेचन किया है। अल्पज्ञ मानवो द्वारा निर्दिष्ट, कल्पित नाना प्रकार की मूर्तिपूजा रूप हेत्वाभास को व्यर्थ बताते हुये महर्षि ने परमेश्वर की आज्ञा का पालन, अधम अविद्यादि का परित्याग, सत्याचरण, परोपकार, विद्यादि की वृद्धि, वेद प्रतिपादित ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्म तथा ज्ञान की उन्नति, न्याय रक्षा आदि को मुक्ति का तथा इसके विपरीत आचरण को बन्धन का साधन बताया। इन साधनो द्वारा ही मानव का हृदय पवित्र तथा आत्मा बलवान् बनकर ईश्वर के साक्षात्कार के योग्य बनता है। इस सम्बन्ध के विशेष ज्ञान हेतु "सत्यार्थ प्रकाश" के नवम समुल्लास का गम्भीर स्वाध्याय परमावश्यक है। अवैदिक मतमतान्तरो द्वारा प्रदर्शित इन्द्रजाल मे न भटककर आर्य जाति मुक्ति के यथाथ स्वरूप को जानकर तदनुकूल आचरणो द्वारा अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सके यह महर्षि की हार्दिक अभिलाषा थी। सामाजिक कुरीतियो एव पराधीनता से मुक्ति मिले बिना ससार से मुक्ति पाना सर्वथा असम्भव समझकर महर्षि ने इनके दूर करने का दृढ़ प्रयास किया। आर्य जाति के मुक्तिदाता, मुक्तात्मा महर्षि के उपकारो के हम सब सदैव ऋणी रहेंगे। आज महर्षि के निर्वाण पर्व पर उनके आदेशो के पूर्ण पालन की प्रतिज्ञा कर श्रद्धाजलि समर्पित करना" हम सबका परम कर्तव्य है।

—×—



महर्षि के परम भक्त—

श्री पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी और वेदभाष्य

[श्री चन्द्रनारायण एम ए एल-एल बी एडवोकेट, बरेली]

सन् १९१८ मे त्रिवेदी,जी की पौत्री के विवाह मे मैं वर पक्ष की ओर से सम्मिलित हुआ। उस समय मैंने सर्व प्रथम त्रिवेदी जी महाराज के दर्शन किये थे। नाम सुना था परन्तु दर्शन नहीं किए थे।



श्री बाबू चन्द्रनारायण जी

जब यह ज्ञात हुआ कि मुझे एक कायस्थ महोदय की बारात में त्रिवेदी जी के यहाँ जाना है—तो मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मै समझता था कि त्रिवेदी जी कोई ब्राह्मण हैं। वहाँ जाकर ज्ञात हुआ कि वे भी कायस्थ हैं और 'सेठ' उनकी अल्ल है। उस समय उनके एक मात्र पुत्र श्री विष्णु दयाल सेठ सिक्किम स्टेट मे एकाउण्ट आफिसर थे—वे नहीं आ सके थे।

कायस्थ होते हुये भी वे वेद का भाष्य कर रहे हैं यह जानकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई कि इस मांस मदिरा सेवी बिरादरी मे भी ऐसे देवता उत्पन्न हो गये। धन्य है यह परिवार जिसके प्रमुख त्रिवेदी जी हैं। मैं बडा सौभाग्यशाली होता यदि मेरा भी इस परिवार से सम्बन्ध हो जाता। दैवयोग से १९२१ मे श्री त्रिवेदी जी की पुत्रवधू की कनिष्ठ बहिन से मेरा विवाह हो गया। अब मुझे त्रिवेदी जी से प्राय सम्पर्क मे आने का अवसर मिलने लगा। मै उन्हे दिव्य-गुण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति समझता था। मै आर्यसमाज के व्याख्यानो मे सुना करता था कि वेद मत्रो के गूढ रहस्य बडे-बडे ऋषि मुनि भी नही समझ पाये, तो यह साधारण कुलोत्पन्न व्यक्ति भाष्य कैसे कर सकता है। एक दिन समस्त साहस बटोर कर मैं उनसे ही इस पर प्रकाश डालने की धृष्टता कर बैठा। उन्होने बडे प्रेम से सब वृत्तान्त सुनाया।

"उन दिनो मै मुरादाबाद की ट्रेजरी मे ३०) मासिक पर नौकर था। वही मैंने महर्षि के दर्शन किये और उनके उपदेशो से मेरा मन और मस्तिष्क ओत प्रोत हो गया। एक दिन मैंने चरणस्पर्श कर महर्षि से करबद्ध प्रार्थना की—

"भगवन् मुझे अपना शिष्य बना ले" स्वामी जी ने उत्तर दिया—

"शिष्य मैं उसे बनाता हू जिसका यज्ञोपवीत हो।"

"तो मेरा यज्ञोपवीत कर दें"

"यज्ञोपवीत मैं उसे देता हू जो सस्कृत जानता हो"

"महाराज, मै सस्कृत जानता तो नहीं हू—आप पढ़ा दें।"

"इस शर्त पर पढ़ा सकता हू कि पढ़कर वेद-भाष्य करो"

स्वामी जी ने सोचा होगा कि यह इतनी कडी शर्त मानने को उद्यत न होंगे और मुझे न सस्कृत पढाना पडेगी न यज्ञोपवीत देना पडेगा। परन्तु त्रिवेदी जी के हृदय-सिन्धु मे शिष्य बनने की लालसा ठाठें मार रही थी—तुरन्त "एवमस्तु" कह दिया। सम्भव है कि महर्षि ने योगबल से जान लिया हो कि यह श्रद्धालु पुरुष आगे चलकर वेद भाष्यकार बन सकता है अत उनकी सुषुप्त

भावना को जागृत करने के लिये यह प्रेरणा दी हो।

अस्तु महर्षि ने उन्हे यज्ञोपवीत भी दिया और सस्कृत भी पढ़ाना आरम्भ किया। त्रिवेदी जी ने महर्षि को दिये हुये वचनो को ऐसा निभाया कि बडी तन्मयता से वृद्धावस्था मे भी सस्कृत जैसी गहन भाषा मे भी पारगति प्राप्त कर ली। तत्पश्चात वेदाध्ययन आरम्भ किया और महाराजा बडौदा के वेद विद्यालय से चारों वेदो मे परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। वहाँ के ब्राह्मणों ने उन्हें "त्रिवेदी" तो माना किन्तु अथर्ववेद की परीक्षा की उत्तीर्णता का प्रमाण-पत्र नहीं दिया। इसने उन्हे ठेस लगी और अथर्ववेद का ही भाष्य करने का निश्चय कर लिया।

त्रिवेदी जी के पास केवल १४००) थे। इतनी अल्पराशि मे से, कहाँ से पुस्तकें मोल ली जायें, कहा से पण्डितो को पारश्रमिक दिया जाये, इतने बडे महान् कार्य की कैसे व्यवस्था की जाये, इन प्रश्नो ने उन्हे चिन्तित कर दिया। परिवार के लोगो ने वचन दिया हम पर जो कुछ है इस पवित्र कार्य के लिये समर्पण है।

इसी समय पजाब व सयुक्त प्रान्त की सरकारो वा प्रतिनिधि सभाओ ने आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया जिसका योग एक सौ मासिक था।

प्रात तडके अपनी लुटिया डोर लेकर शौचादि से निवृत्त होने को निकल जाते, लौटकर स्नान करने यत्न करते, प्रातराश व दुग्धपान के पश्चात् भाष्य के कार्य मे जुट जाते। तीन पडित सहायक थे। उन्हे मासिक वेतन देते थे। बारह बजे तक यह कार्य चलता तब भोजन करके विश्राम करते। तीन से पॉच बजे तक फिर भाष्य सम्बधी कार्य होता।

जितना छपता जाता था वह स्थायी ग्राहको को भेज दिया जाता था। कुल भाष्य का मूल्य ४८रु० था। भारत और भारत के बाहर सैकडो ग्राहको के पास पोस्ट से भेजा जाता था।

कभी कभी रात्रि मे उठकर अपने उद्यान की शिला पर बैठ जाते और घण्टो सोचते विचारते। कभी कभी घर के किसी व्यक्ति को जगाकर सोची हुई बात लिखा देते कि कहीं विस्मृत न हो जाये। उनके परिवार मे सभी सस्कृतज्ञ थे। कभी कभी किसी मत्र के अर्थ करने मे कठिनाई आजाती तो रात्रि मे एकान्त मे विचार करते। मैंने कहा आप क्या सोचते हैं तो कहा स्वामी जी को कोसता हूँ कि मुझ जैसे अल्पमति से वेद भाष्य जैसे महत्वपूर्ण कार्य की प्रतिज्ञा कराली।

कोई माने या न माने परन्तु त्रिवेदी जी ने बताया कि कई बार मैं ध्यानावस्थित था कि इस मत्र का क्या अर्थ करू तो ऐसा आभास हुआ कि महर्षि सामने खडे कह रहे हैं कि इनका अर्थ ऐसे करो। प्रात जब वह अर्थ विद्वत मडली के समक्ष रखते तो वह हर्षोन्मत्त हो जाती। सम्भव है इस घटना का उल्लेख कतिपय पाठको को कपोल कल्पित या सिद्धान्त विरुद्ध प्रतीत हो। परन्तु त्रिवेदी जी को ध्यानावस्थित तो मैंने अपने नेत्रों से देखा है, ध्यान से उठने के पश्चात् मत्र का जो अर्थ विचारा था वह भी उन्होने उठकर लिखाया यह भी मैंने देखा और स्वप्न मे महर्षि द्वारा सकेत की बात स्वयम् त्रिवेदी जी ने अपने मुखारविन्द से कही।

महर्षि ने अपने गुरु श्री प्रज्ञाचक्षु के आदेश पर अनार्ष ग्रन्थों का ज्ञान भुला दिया, और त्रिवेदी जी ने ४० वर्ष की आयु मे अपने गुरु महर्षि की आज्ञानुसार सस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। महर्षि ने अपने गुरु की इच्छा पूर्ति के लिये सारा जीवन पाखण्ड खण्डन मे लगा दिया और त्रिवेदी जी ने अपने गुरु की इच्छानुसार वेद भाष्य किया। त्रिवेदी जी का भाष्य किस कोटि का है—यह मैं नहीं कह सकता क्योंकि मैं वेदों का मर्मज्ञ नहीं हू। परन्तु उनके भाष्य पर जो विद्वानों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई उनसे प्रकट होता है कि उनका भाष्य ऋषि के सिद्धान्त और मन्तव्यो के सर्वथा अनुकूल था।

पारस पत्थर किसी ने देखा नहीं है परन्तु यदि पारस के स्पर्श से पत्थर सोना हो सकता है—या यह केवल किम्वदन्ती ही हो—तो भी यह मानना पडेगा कि महर्षि जैसे पारस के सम्पर्क मे आकर क्षेमकरण दास जैसे नगण्य व्यक्ति भारतवर्ष के महान् पडितों और वेद भाष्यकारों की पक्ति मे शोभायमान होने के योग्य हुये।

अथर्ववेद (त्रिवेदी जी का भाष्य) अब प्राय अप्राप्य है। क्या कोई सस्था उसके प्रकाशित करने का उद्योग करेगी। उसमे अँग्रेजी का अनुवाद भी सम्मिलित कर दिया जाये तो अधिक उपयोगी बन सकता है। ★



ऋषि-महिमा



(सुश्री कुमारी सुशीला आर्या एम०ए० विद्यावाचस्पति)

तेरी महिमा का हम से प्यारे ऋषि,
जाता खींच के नक्शा दिखाया नहीं।
मूक वाणी हुई और जड़ लेखनी,
कुछ उपाय समझ मे ही आया नहीं।
कौन है जिसको तूने न आनन्द दिया,
दया दृष्टि से किसको लुभाया नहीं।
कौन दुखिया न जिसका बने आसरा,
नीर करुणा का जीभर बहाया नहीं।
किस दलित दीन की वेदना ने तुझे,
सब के सोने पर रातो रुलाया नहीं।
किस अनाथ का नाथ बना तू नहीं,
किसका भाग्य विधाता कहाया नहीं।
किस दलित को न दल-दल से बाहर किया,
पतित है कौन सा जो उठाया नहीं।
तेरी महिमा का हमसे ॥
किस कलक की धोई नहीं कालिमा,
किस कृपा पात्र पर तरस खाया नहीं।
क्या कहानी कहे हम मनुजमात्र की,
जीव जन्तु भी कोई सताया नहीं।
छोड दी हिंसको ने भी हिंसावृत्ति,
सिंह ने मारा, मकर ने डुबाया नहीं।
तेरी महिमा का हमसे ॥
पैर की जूतिया कह गिराते हमे,
सिर की पगडी बना क्या उठाया नहीं।
गौओं के हित मरे भावना भाव ले,
क्या 'गोकरुणानिधि' को रचाया नहीं।
कौन बिछुडा गले से लगाया नहीं,
कौन भटका सुमार्ग पर लाया नहीं।
कौन पाखण्ड जो खण्ड-खण्ड न किया,
कौन दुर्व्यसन है जो छुडाया नहीं।
तेरी महिमा का हमसे ।
कौन है मिथ्या-पथ जिसका चौराहे पर,
भोड भाण्डा ऋषि ने गिराया नहीं।
किसकी शक्ति थी जो तेरे सम्मुख डटा,
कौन है तुझसे जो मात खाया नहीं।
आफतें कौन सी सिर पै झेली नहीं,
भार था कौन सा जो उठाया नहीं।
कौन विद्या जो तुझ से छिपी रह सकी,
वेद का कौन सा भेद पाया नही।
तेरी महिमा का हमसे ।
कौन है लेखनी जो न महिमा लिखे,
गीत किस किसने स्वामी का गाया नहीं।
चूहे तक को बना करके अपना गुरु,
क्या जगत् का गुरु तू कहाया नहीं।
औरो के ताप को मेटने के लिए,
स्वर्ण-तनभट्ठी मे कब तपाया नहीं।
लोक हित का पथिक बनके शंकर मेरे,
जहर तूने भला कब पचाया नहीं।
तेरी महिमा का हमसे ।
अन्त जब प्रभु की की इच्छा प्रबल जान ली,
काल को हस गले क्या लगाया नहीं।
शिष्य तेरे नहीं हम गुरुदेव सच,
ऋण यदि आज तक भी चुकाया नहीं।
काम तुमसे भी छुडवा अधूरा लिया,
पूरा करके स्वय भी दिखाया नहीं।
आई दीवाली देकर अन्धेरा गई,
ज्ञान-दीपक जो घर-घर जलाया नहीं।
तेरी महिमा का हमसे ॥



महर्षि दयानन्द की धर्म मीमासा

[श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री]

धर्म क्या है और अधम क्या है ? यह एक विवेच्य विषय है। नीतिविदो का विचार यह है कि भक्षण और रक्षण आदि चेतनमात्र मे स्वभावत है और पशु एव मानव इन विषयो मे समान है। परन्तु लक्षण का विषय एक ऐसी विशेषता है जो मानव मे ही पाई जाती है। मानव लक्षण करने मे अपनी विशेषता रखता है। धर्म का मानव से सीधा सम्बन्ध है अत इसका भी लक्षण करना उसके लिये अनिवार्य था। विविध लक्षण धर्म के हमारे शास्त्रो मे पाये जाते हैं जो अपने-अपने दृष्टिकोणो मे परिपूण हैं। परन्तु जहाँ अन्य आचार्यों ने इस धम के विविध सुन्दर लक्षण किये है वहाँ भगवान दयानन्द ने इन लक्षणो को स्वीकार करते हुये धर्म का सुधरा और निखरा हुआ स्वरूप रखा है। वे स्वमन्थ्यामन्तव्य प्रकाश मे लिखते हैं—

"जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्य भाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदो से अविरुद्ध है, उसको धर्म और जो पक्षपात सहित, अन्यायाचरण मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञा भग वेद-विरुद्ध है उसको अधर्म मानता हू।" इसके अतिरिक्त अपने ग्रन्थो मे उन्होने कई स्थलो पर ऐसी ही मिलती-जुलती बातें धर्म के सम्बन्ध मे कही हैं। परन्तु यह उनका कथन उनके मन्तव्यो मे से उद्धृत किया जा रहा है। इसकी विशेषता पर कुछ विचार आगे की पक्तियो मे किया जाता है।

मानव धर्म शास्त्र के प्रवक्ता मनु ने प्रसगत धर्म के विषय मे कई प्रकार विचार प्रस्तुत किया है। वेद, स्मृति सदाचार और आत्मप्रियता को धर्म का चार लक्षण



आचाय वैद्यनाथ जी शास्त्री

उन्होने एक स्थल पर स्वीकार किया है। दूसरे स्थल पर उन्होने धम के दश लक्षण स्वीकार किये है। यह भी कहा गया है कि धारण करने के कारण यह धर्म कहा जाता है और यह प्रजा का धारक है। महाभारत आदि ग्रन्थो म इसी प्रकार के अन्य लक्षण भी किये गये हैं। इन सभी लक्षणो मे धर्म के लक्षण कहे गये है वा धर्म के कुछ आवश्यक तत्त्व बताये गये हैं—यह प्रश्न उठता है। विचार करने पर पता चलेगा कि इनमे लक्षण और लक्ष्य

दोनों का वर्णन है। वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मा की प्रियता धर्म के परिचय के साधन हैं अत लक्षण हैं। परन्तु धृति, क्षमा आदि १० धर्म के तत्त्व हैं—अत ये धर्म के लक्षित तत्त्व हैं। जब मानव की प्रवृत्तिमात्र को कसौटी पर कसने का विचार उठेगा तब इन्हीं दो प्रकार की दृष्टियो पर कसा जा सकेगा।

वैशेषिक दर्शन के कर्त्ता ने पदार्थ धर्म की दृष्टि से धर्म का लक्षण किया है। धर्म आत्मा का गुण है और आत्मा एव मन के स्व व्यापार का प्रशस्त प्रकार भी है। वैशेषिककार धर्म का लक्षण करते हुये कहते हैं कि जिससे अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि हो उसका नाम धर्म है। इस धर्म के ज्ञान के लिये वेद की आवश्यकता है और वेद ईश्वर का ज्ञान होने से प्रमाण नहीं नहीं, परम प्रमाण है। वैशेषिक के इस लक्षण मे पदार्थ धर्म की जहाँ दृष्टि है वहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य रूप व्यापार का भी सन्निवेश है। परन्तु इस धर्म के ज्ञान के लिये वेद और ईश्वर दोनो की आवश्यकता है। तात्पर्य यह है कि धर्म आत्मा का गुण है जिस प्रकार रूप आदि अग्नि आदि के धर्म होने से गुण है। जब आत्मा इसे व्यापार मे लाता है तब यह उसके और मन के सहयोग से सम्पन्न होता है। परन्तु आत्मा और मन का शरीरेन्द्रिय आदि से किया प्रत्येक व्यापार धम ही हो—ऐसा नहीं है। जो व्यापार वेद के अनुकूल और ईश्वर के नियम के अनुरूप होता है वह धर्म है—तद्भिन्न धर्म नहीं।

मीमासा दर्शन मे भी धर्म का लक्षण किया गया है। विधि और निषेध की प्रेरणा जिसमे पाई जावे वह धर्म है। परन्तु मीमासाकार ने इस धर्म की परीक्षा मे वेद को परम प्रमाण माना है। उसका कारण यह भी प्रकट किया है कि वेद मे सृष्टि के नियमो का प्रतिपादन जैसा किया गया है वे, वस्तुत ससार मे उसी प्रकार से पाये जाते हैं और किसी प्रकार की वैतथ्य नहीं पाया जाता है अत वेद की धर्म के विषय मे परम-प्रमाणता है। इसी प्रसग मे एक और भी तथ्य का उद्घाटन महर्षि जैमिनि ने किया है। वह यह है कि वेद के शब्दो के साथ उन्होने सृष्टि के पदार्थों का औत्पत्तिक सम्बन्ध माना है। तात्पर्य यह है कि सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति वेद शब्द पूर्वक है। व्यास इस सिद्धान्त के परमपोषक थे। वैशेषिकदर्शन मे भी इसका मूल मिलता है। आचार्य जैमिनि के लक्षण मे भी धर्म के साथ वेद का बहुत ही अटूट सम्बन्ध है।

वैशेषिक दर्शन पर उपस्कार लिखने वाले शकर मिश्र ने धर्म को निवृत्ति लक्षण और विधि रूप माना है। सर्व दर्शन सग्रह कर्त्ता ने पुण्यात्मक प्रवृत्ति का नाम धर्म माना है। अचार्य जन धर्म को प्रत्यक्ष नहीं मानते। इसे अनुमानगम्य मानते हैं। इस प्रकार धर्म के विषय मे विविध वर्णन मिलते हैं। परन्तु यह एक तथ्यभूत बात है कि वेद का और ईश्वर नियम का सम्बन्ध लगभग सभी मे किसी न किसी रूप मे पाया जाता है।

वेद के विरुद्ध न होना धम का लक्षण है परन्तु वेद का ज्ञान स्वय ईश्वर की प्रेरणा का फल है। ईश्वर की आज्ञा वा ईश्वर का नियम सृष्टिगत नियम है। उससे भी धर्म की अविरुद्धता होनी चाहिये। वाक, मन और शरीर से जो भी उत्तम प्रवृत्ति की जाती है वह धर्म है। सत्य भाषण, न्यायाचरण आदि इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रवृत्तियो मे न्याय्य वा अन्याय्य का निर्णय करना कठिन कार्य है। कौन सी प्रवृत्ति वा कर्म वा न्याय्य है और कौन सा अन्याय्य—इसका विचार करना सरल कार्य नहीं है। धृति, क्षमा आदि धर्मयुक्त कर्म हैं—यह तो ठीक ही है—परन्तु ये धर्म और न्याय्य कर्म की कसौटी नहीं है। अत ये लक्ष्य है, लक्षण नहीं। हा! जब ये किसी के द्वारा पालन किये हुए होकर दूसरो के पथ प्रदर्शक बनते हैं तब ये सदाचार के अन्तर्गत होने से लक्षण की सज्ञा प्राप्त कर लेते है। सत्य-भाषण आदि से युक्त न्यायाचरण धर्म है परन्तु उसमे पक्षपात का अभाव होना चाहिये। पक्षपात एक प्रकार पूर्व निश्चित धारणा है। वह खोज और सत्यान्वेषण के मार्ग मे बाधक है। पक्षपात न्याय का भी इसी प्रकार विरोधी है। जहा पक्षपात है वहा न्याय की सम्भावना नहीं हो सकती है।

अत सत्य भाषणादि युक्त न्यायाचरण वह है जो पक्षपात से रहित होकर किया जावे। परन्तु फिर भी प्रश्न यह उठता है कि पक्षपात न होने पर भी न्याय और सत्य के निर्णय की तो कोई कसौटी बनानी ही पडेगी? इसी

[शेष पृष्ठ ३७ पर]



संस्कृत ग्रन्थों में—
महर्षि दयानंद विषयक संदर्भ

(प्रो० भवानीलाल भारतीय, एम०ए० रिसर्च स्कालर, अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, पाली)

अपने शोध विषयक कार्य के प्रसग मे मुझे कतिपय पुस्तकालयो का अवलोकन करना पडा। श्री गुरुकुल चित्तौडगढ के पुस्तकालय मे वीरवश वर्णनम (लेखक प० नगजीराम शर्मा) नामक एक सस्कृत काव्य ग्रन्थ देखा। इसे बनेडा राज्य के राजपण्डित ने लिखा है तथा



श्री भवानीलाल जी भारतीय

१९८२ वि० मे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। देशी राज्यो और जमीदारो के यहाँ सस्कृत पडितो को आश्रय मिलता था। उपर्युक्त पण्डित ने बनेडा राज्य के शासको की प्रशस्ति मे उक्त ग्रन्थ लिखा है। इसमे महर्षि का उल्लेख निम्न पद्यो मे हुआ है—

श्रीमद्दयानन्द इहागतो भ्रमन,
श्री भारतेऽष्टाग्निनवेन्दु सम्मिते।
वर्षे हि वेदार्थ निजोक्ति कल्पको,
विद्वान् विजेता विदुषां शमानिनाम् ॥
११/२२

वैदिक धर्म प्रवतक प्रसिद्ध श्रीमद्दयानन्द स्वामी सकल भारत का भ्रमण करते हुए सवत् १९३८ मे यहाँ भी आये थे। आप वेदों की व्याख्या करने मे प्रबल युक्ति प्रदशक थे, तथा शास्त्राथ मे पण्डितमन्य विद्वानो के घमण्ड को बात की बात मे चूर्ण कर देते थे।

दृष्ट्वा बनेडाधिपतेस्तु कोविदान्,
वेदार्थ विज्ञाञ्छ्रुति पारग नृपम्।
वेदान्त विज्ञ नयतन्त्र कोविद,
शस्त्रास्त्र शौण्ड जनतामि पालकम्।
११/२३

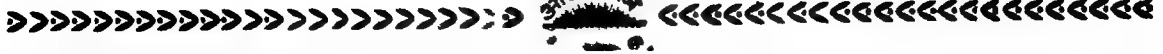
स्वामी जी बनेडाधीश को वेद वेदान्त, राजनीति विज्ञ तथा शस्त्रास्त्र कला मे प्रवीण और प्रजापालन मे तत्पर देखकर बहुत प्रसन्न हुये।

श्रुत्वैन यो राजकुमारयोर्वर,
गान श्रुते पाठ्यमतुल्यदाश्वलम्।
सोऽत्राध्यगीष्ट प्रभुराशु गायन,
साम्न स पाठ नृप पण्डितात्रति ॥
११/२४

जब राज पण्डितो की वेदार्थ विषयक प्रौढ विद्वत्ता तथा राजकुमारो का वेदपाठ कौशल देखा तो उनके हर्ष की सीमा न रही। उन्होने यहाँ (नगर से पूर्व झालरा शिवालय मे) रहकर राजपण्डितो से सामवेद का गाना और कुछ पाठ सीखा।

कालेऽल्पके धर्म्मयनयो समस्करी,
चित्तोड नाम्नि प्रथिते सुपत्तने।
पाठ घनान्त यजुषोऽथ गायन,
साम्नोभिसश्रुत्य सुहर्षितोऽभवत् ॥
११/२५

पश्चात् चित्तौड नगर मे पुन इन दोनो राजकुमारो के घनान्त यजुर्वेद के पाठ और सामवेद के सुन्दर गायन को सुनकर स्वामी जी बहुत हर्षित हुये।



तेनैनयोर्गानकथा निवेदिता,
मेवाडनाथाधि मुख तदैव स ।
श्रुत्वा श्रुतेर्गानम पूर्व सश्रुत,
राजर्षि सून्वो प्रबभूव विस्मित ।।
११/२६

उन्होने महाराणा जी के सम्मुख उक्त गान का वृत्तान्त सुनाया तो उसी समय महाराणा जी ने इन दोनो राजकुमारो को बुलाकर इन्ही का अपूर्व श्रुति गायन सुना और बहुत प्रसन्न हुये।

उपर्युक्त स्वामी जी से सम्बन्धित पद्यो मे एक ही बात आपत्तिजनक और भ्रमोत्पादक है। पद्य सख्या २३ मे कवि का यह कथन कि स्वामी जी ने राजपण्डितो से सामवेद का गायन और पाठ सीखा, गलत है। स्वामी जी उच्चकोटि के वेद विद और साम गान के पारग विद्वान् थे। राजस्थान भ्रमण से पूव ही उन्होने साम वेद गान का अभ्यास कर लिया था, तथा कई लोगो के समक्ष साम गान सुना भी चुके थे। अत उक्त ग्रन्थ का यह उल्लेख असत्य है। एक राजाश्रित कवि ने अपने सहवर्गी राजपण्डितो की मिथ्या प्रशसा के लिये ही यह उल्लेख किया है।

आर्यसमाज महर्षि दयानन्द माग (रातानाडा) जोधपुर का पुस्तकालय छानते हुये मुझे कालीप्रसाद शास्त्री (सम्पादक सस्कृतम) रचित एक ग्रन्थ विद्वद् वृत्तम् (द्वितीय खण्ड) मिला। इसका प्रकाशन १९९५ वि० मे सस्कृत कार्यालय अयोध्या से हुआ है। ग्रन्थ मे पौरस्त्य और पाश्चात्य अनेक सस्कृत विद्वानो का सक्षिप्त इतिवृत्त लिखा गया है। इसमे दण्डी विरजानन्द जी के विषय मे निम्न विवरण लिखा है—"पजाब प्रान्तीय करतारपुर प्रान्तगते गगापुर नामके ग्रामेऽयमुत्पन्न अस्य पिता नारायणदास सारस्वत ब्राह्मण। अय ५ वर्षावस्थाया शीतलाक्रमणेन हीन नेत्रो बभूव। नारायणदासस्तथा तत्पत्नी च द्वादश वर्षीयममु विसृज्य परलोक गता। भ्रातृ पत्न्याऽस्मै क्लेशोदन्तोऽतो हरिद्वारे पूर्णानन्दत सन्यास जग्राह। पितुरन्तिके सारस्वत चन्द्रिकेऽनेनाधीते हरिद्वारे सिद्धान्तकौमुदी काश्यामन्ये ग्रन्था। अथ १८९३ विक्रमाब्दे मथुरायामेका पाठशाला स्थापिता यस्या स्वामि दयानन्देन शिक्षा प्राप्ता। अय ७५ वर्षावस्थायां १९२९ विक्रमाब्दे शरीर तत्याज।" पृ० १५६

अर्थात् पजाब प्रान्तस्थ करतारपुर मण्डल के गगापुर नामक ग्राम मे ये उत्पन्न हुये। इनके पिता नारायणदास सारस्वत ब्राह्मण थे। ५ वर्ष की अवस्था मे शीतला से ये अन्धे हो गये। नारायणदास और उसकी पत्नी इन्हे १२ वर्ष का छोडकर परलोक सिधारे। भौजाई ने इन्हे कई कष्ट दिये अत ये हरिद्वार जाकर स्वा० पूर्णानन्द से सन्यासी बन गये। पिता के समीप रहकर सारस्वत और चन्द्रिका (व्याकरण ग्रन्थ) पढ़े। हरिद्वार मे सिद्धान्त कौमुदी तथा काशी मे अन्य ग्रन्थ पढ़े। १८९३ वि० मे मथुरा मे एक पाठशाला स्थापित की जिसमे स्वामी दयानन्द ने शिक्षा पाई। ७५ वर्ष की अवस्था मे सवत् १९२९ मे इन्होने शरीर छोडा।

इस विवरण मे निम्न भूलें हैं—

१—दण्डी जी के पिता का नाम नारायणदास न होकर नारायणदत्त था। ब्राह्मण दासान्त नाम नहीं रखते।

२—दण्डी विरजानन्द ८० वर्ष से ऊपर आयु पाकर स्वर्गवासी हुये।

महर्षि दयानन्द के विषय मे उक्त ग्रन्थ मे निम्न उल्लेख मिलता है—"अय विक्रमस्य १९ शताब्द्या उत्तरार्धे काठियावाडस्थ मोरवी राज्ये जात 'अय पूर्णानन्दस्य शिष्यता प्राप्य मथुराया प्रज्ञाचक्षु विरजानन्दात् सस्कृत भाषा पपाठ। अनेन सत्यार्थप्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकादयो ग्रन्था हिन्दी भाषाया लिखिता। अय सस्कृत भाषाया प्रचार कामयतेस्म। अनेनार्यसमाज इचालित। काश्याम् स्वामि विशुद्धानन्देन सहास्य शास्त्रार्थो जात। वेदप्रचारेऽय सुयत्न कृतवान्। कयाचिन्नमानाम्न्या स्त्रियासहाऽस्यासीत् सम्बन्ध किन्तु केषाञ्चिद्विचारेऽस्यजन्मस्थान जात्यार्चादि विषये सत्यता न प्राप्यते। अय प्रसिद्धो विद्वान् कयाचिद्वेश्यया विष द्वारा अजमेरे मारितो १८८३ ईसाब्दे।।' पृ० १६४

अर्थात् विक्रम की १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ये काठियावाड के मोरवी राज्य मे उत्पन्न हुये। पूर्णानन्द से सन्यास ग्रहण कर मथुरा मे स्वामी विरजानन्द से

संस्कृत भाषा पढ़ी। इन्होने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे। ये संस्कृत भाषा का प्रचार चाहते थे। इन्होने आर्यसमाज की स्थापना की। काशी मे स्वामी विशुद्धानन्द के साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ। वेद प्रचार का इन्होने यत्न किया। किसी रमा नाम्नी स्त्री के साथ इनका सम्बन्ध था, परन्तु कइयो के विचार मे इनके जन्मस्थान, जाति, आचार आदि के विषयो मे सत्य बातो का पता नहीं चलता। ये प्रसिद्ध विद्वान किसी वेश्या द्वारा विष दिये जाकर १८८३ ई० मे अजमेर मे मरे।

यह विवरण भी निर्दोष नही है और न सदभावना से ही लिखा गया है। स्वामी दयानन्द का काशी मे शास्त्रार्थ केवल स्वामी विशुद्धानन्द से ही न होकर काशी के समस्त पण्डितो से था। रमाबाई के विषय मे जो लिखा है वह सनातनी पण्डितो–माधवाचार्य, अखिलानन्द, कालूराम तथा दीनानाथ शास्त्री के ही दूषित विचारो का द्योतक है। रमाबाई महाराष्ट्र निवासिनी एक विदुषी स्त्री थी। वह विधवा थी, स्वामी जी चाहते थे कि वह शास्त्र पढकर स्त्रियो मे वैदिक धर्म का प्रचार करे। परन्तु रमाबाई ने एक बगाली कायस्थ से विवाह कर लिया। उससे लोकोपकार का कुछ भी कार्य नही हुआ। कालान्तर मे वह ईसाई बन गई तथा अमेरिका भी गई। स्वामी जी ने उसके इस परिवर्तन (विवाह) को देखकर उससे उपदेशिका बन कर धर्म प्रचार करने की आशा त्याग दी।

स्वामी जी के जन्म स्थान, जाति आदि के विषय मे आशका करना भी व्यर्थ है। विभिन्न खोजो के पश्चात यह सिद्ध हो चुका है कि स्वामी दयानन्द की जन्मभूमि मोरवी राज्य के अन्तर्गत टकारा ग्राम है। उनके पिता करसन जी त्रिवेदी औदीच्य ब्राह्मणो की कुलीन शाखा के अन्तर्गत सामवेदी ब्राह्मण थे। जैनी जियालाल ने अपने 'दयानन्द छल कपट दर्पण' मे जो उनका नाम शिवभजन तथा उनकी जाति कापडी (गाना बजाना करने वाली निम्न जाति) बताई वह सर्वथा मिथ्या तथा पूर्वाग्रह युक्त कथन स्वामी जी को बदनाम करने के लक्ष्य से किया गया था। ●

(पृष्ठ ३४ का शेष)

का समाधान करने के लिए कहा गया है कि ईश्वरीय नियम की अनुकूलता और वेदो की अविरुद्धता आवश्यक है ये दोनो ऐसी कसौटी है कि जिनके आधार पर न्यायाचरण को कसकर परखा जा सकता है और न्याय्यपने और अन्याय्यपने का निर्णय किया जा सकता है। जिन आचार्यों ने वेद को धर्म मे परम प्रमाण माना है उनका भी आशय यही है। वे वेद को ईश्वर की आज्ञा व नियम मानकर ही ऐसा कह रहे है। उनकी दृष्टि मे ईश्वराज्ञा और वेद मे अन्तर नही है।

परन्तु भगवान् दयानन्द ने धर्म के लक्षण मे दोनो को पृथक-पृथक रखकर लक्षण को और भी निर्दुष्ट कर दिया है। वेद को धर्म मे परम प्रमाण मानने के भी अर्थ दूसरे हो सकते है। कोई यह कह सकता है कि वेद से जो प्रतिपादित हो वही धर्म है। परन्तु महर्षि की बात इसको स्पष्ट कर देती है कि जो ईश्वरीय नियम के अनुकूल हो और वेद के अविरुद्ध हो। कोई ऐसा भी मसला उठ सकता है जो वेद मे प्रत्यक्षत प्रतिपादित न दिखाई पडे। ऐसी स्थिति मे यह देखा जावेगा कि वह वेद के विरुद्ध तो नहीं है। वेद के अविरुद्ध होने से वह धर्म कहा जा सकेगा।

महर्षि दयानन्द के द्वारा दिखलाया गया धर्म का लक्षण सर्वथा ही परिमार्जित एव पूर्ण है। इसमे सभी आचार्यों की दृष्टिया समाविष्ट है। महर्षि के धर्म मीमासा का यही स्वरूप है। यहा पर सक्षेप मे इस ही सम्बन्ध मे कुछ लिखा गया।

दूर ऊतेन हीयते।
बुरी सगत से मनुष्य अवनत होता है।

जुषस्वेन्द्र पुरुत मस्य कारो।
हे मनुष्य श्रेष्ठ और कर्मयोगी पुरुष का सग कर।

जानता सगमेमहि।
हम विद्वानो का सगत करें।

ईजाना स्वर्ग यन्ति लोकम्।
यज्ञ करने वाले सुख को प्राप्त होते हैं।



शतवार प्रणाम!



ऋषिवर जब स्मरण आपका स्मृति पथ पर आता है—
श्रद्धा सहित तभी मस्तक तव चरणों मे झुक जाता है।
तेरे सम था तुही जगत् मे ऐसा मैंने जाना है।
सच्चा देव पथ प्रदर्शक मैने तुझको ही माना है।

तेरे उपदेशो ने लोगो के सारे भ्रम भगा दिये—
चार चांद तेरी मृत्यु दीपावलि मे लगादिये।
लोग मनाते पर्व मोद से यह कह आई दीवाली—
किन्तु हमे भी याद सदा वह मंगलवाली निशिकाली।

अरे बता दो भाई कोई राज हृदय का तो खोलो—
सत्य दया का सिन्धु देवता कहां विराजा है बोलो,
अरे वायु सर्वत्र विचरती है तू जाती देश-विदेश—
मेरे ऋषिवर दयानन्द का भी लाई क्या कुछ सन्देश।

यतिवर दयानन्द तेरा दर्शन ही मंगलदाता था—
दीन दुःखी विधवा अनाथ गऊओं का सच्चा त्राता था,
ईसा यवन पोप मठधारी पंडा पीर पुजारी तब—
रवि सम तेज निरखि तेरा बनकर उलूक छिप जाते सब।

लखिकर दशा देश की तेरे हृदय वेदना होती थी—
चिन्ता में निशि जाती सारी और वेदना होती थी।
दुर्भागी यह जगत आपको ऋषिवर जान न पाया था—
इसीलिये बदले मे हमने तुमको जहर पिलाया था।

अहा दया आनन्द यहा भी तुमको क्रोध न आया था—
रुपये देकर हत्यारे को सीमापार पठाया था।
पावन गुर्जर प्रान्त कर दिया तैंने अरे मूलशंकर—
नाम पिता का और साथ ही जननी की भी कोख अमर।

हैं अनेक उपकार देश पर कहो कहां तक गाऊँगा—
वर्णन नहीं कर सकूगा गाते-गाते थक जाऊँगा।
हृदय देवता जब सुन पाता लोगो से तव कीर्ति ललाम—
श्रद्धा सहित तभी कर देता 'सरस' तुम्हें शतवार प्रणाम।





—वैद्य राज बहादुर आर्य 'सरस'





स्वामी दयानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि—

गोरक्षा आन्दोलन सफल हो

[श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम ए एल टी, डी बी कालेज, गोरखपुर]

आज देश ने फिर भारत वर्ष की सरकार से माग की है कि भारतवर्ष मे गोहत्या पर कानूनी बन्धन लगाया जाय और गोहत्या के अपराधियो को कडी सजायें दी जाय। गोरक्षा के लिए गोहत्या पर प्रतिबन्ध आवश्यक है ही। हमारे देश की यह मान्यता रही है "वह ग्रन्थ सद ग्रन्थ नहीं जिसमे गो जाति की महिमा का वर्णन न हो, वह देश पवित्र देश नहीं है जिसमे गोवंश स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण न करता हो, वह घर घर नहीं है जिसमे गौ का निवास न हो।"



श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालङ्कार

यस्मै क्वापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानु चारिणी,
मगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तम क्षयम्।
यन्नवेदध्वनि ध्वान्त यन्न गोभिरलङ्कृतम्।
यन्न बालं परिवत श्मशान मेव तत गृहम्॥

अर्थात् जिस घर मे गौ नही होती वह घर श्मशान मेव के समान होता है। आगे कहा है—

धनञ्चय गोधन धान्य स्वर्णादि यो वृथैव हि।

अर्थात्, गोधन के सामने और सब धन व्यर्थ से हैं। अग्नि पुराण मे लिखा है—

गाव स्वर्गस्य सोपान गाव स्वर्गेऽप्य मुत्तमम्।
गाव पवित्र परम गावो धन्या सनातना।
नमो गोभ्य श्रीमतीभ्य सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्म सुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमा।

वेद मे गौ को अघ्न्या कहा गया है। 'अघ्न्या इति गवा नामक एना हन्तु महसि।' गो जाति का नाम ही अघ्न्या (न मारने योग्य है) इसे कौन मार सकता है? गौओ के बिना यज्ञ नही हो सकता था। 'गावो यज्ञस्य हि फल गोषु यज्ञा प्रतिष्ठिता।" अर्थात् यज्ञ फल का कारण गौये है और यज्ञ गौयो मे ही प्रतिष्ठित है। मनुष्य के जीवन का आधार अन्न है। और यह अन्न बादलो से उत्पन्न होता है। परन्तु यह बादल यदि यज्ञ न हो तो नही उत्पन्न हो सकते। यज्ञ धूम से बादल बनते हैं, मेघ जल बरसाते है। जल से कृषि होती है। इस प्रकार मनुष्य के जीवन का आधार गौयें ठहरती हैं यह वह माता है जो हमारा मान इज्जत और हमारा पालन-पोषण करती है। भावना मे बहते हुए हम कह सकते है "एतद्वै विश्व रूप सव रूपम" अर्थात् सम्पूर्ण विश्व रूप (प्राणिमात्र) गायें हैं। विश्व मे जो कुछ है सब गोरूप है। यही कारण है कि गौ का महत्व बहुत अधिक प्रदर्शित किया गया है। ऋग्वेद मे दो गो सूक्त है। एक है छठे मण्डल का अट्ठाईसवा सूक्त और दूसरा है दशम मण्डल का १६९ वा सूक्त। इसके अतिरिक्त भी सभी वेदो मे गौ के महत्व का प्रतिपादन है।

कहा जा सकता है इसमे अनुचित पशु पूजा के भाव हैं, यह पशु पूजा वैज्ञानिक नहीं। वस्तुस्थिति यह नहीं। जिस तरह हम उपयोगिता की दृष्टि से किसी वस्तु का मूल्याकन करते हैं उसी तरह वेदो मे सीधे उपयोगिता को

दृष्टि से ही विचार किया था। उनका कहना है कि गाय हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी प्राणी है, उसकी हमे खूब सेवा और रक्षा करनी चाहिये और गाय की सेवा और रक्षा उपयोगिता की दृष्टि से ही सही हम करेंगे तो निश्चय ही वह गाय हमें दूध देगी—पर्याप्त मात्रा मे दूध देगी। वेद का वचन है 'सहस्र धारा पयसा मही गौ" अर्थात् ऐसी गाय हमे मिलेगी जो हजार धाराओ मे दूध देगी, आप समझ सकते हैं कि एक गाय की एक दूध की धारा कितनी होती है और सत्यार्थप्रकाश तथा गोकरुणानिधि मे स्वामी जी महाराज ने एक गाय से कितना लाभ होना बताया है। अथर्व वेद मे आया है—

वशादेव उपजीवन्ति वशा मनुष्या उत।
वशेद सर्वसमवन् यावत् सूर्यो विपश्यति।

जहा तक सूर्य का प्रकाश पहुचता है, गायें सबको समान रूप से लाभ पहुचाती हैं। देव,मनुष्य, राक्षस सभी गोदुग्ध से लाभ उठाते हैं। यह गौ "माता रुद्राणा दुहिता वसूनां स्वसादित्यनाममृतस्य नाभि। प्र नु वाच चिकितुषे जनायामा गामनागामदिति वधिष्ट।"

अर्थात् जो गौ रुद्रो की माता, वसुओ की पुत्री, आदित्यो की भगिनी और दुग्ध का निवास स्थान है। मनुष्यो! उस निरपराधिनी और अदिति रूपिणी देवी का वध न करो। इतना ही नहीं वेदो मे आया है कि गाय की सेवा करो और स्वादिष्ट तृण खिलाओ, तृप्तिकर जल पिलाओ और उन्हे सुख से रखो। ये गायें स्वस्थ, सुन्दर, स्वच्छ, मगलमयी और सन्तानवती हो, यह कामना की गई है। ऐसा क्यो है? इसका कारण गाय की उपयोगिता है। अथर्व वेद ४-२१-६ मे आया है—

यूय गावो मेदयथाकृशाचिदश्लीर चित्कृणथासुप्रतीकम्।
भद्र गृह कुणुथ भद्रवाचो वृहद्वोवयउच्यते समास।

हे गायो! जिसका शरीर स्नेह (चिकनाई) के अभाव से सूख गया हो उसे तुम अपने मेदे से भर देती हो, दुर्बल और कुरूप को सुन्दर बना देती हो। मेदे का अर्थ है चर्बी जिसे हम "फैट" कहते हैं। इसका मतलब यह है कि जो लोग गाय का महत्व न मानकर भैंस को चर्बी के लिये अधिक उपयोगी मानते हैं उन्हे परीक्षण करने पर पता चलेगा कि दुबले व्यक्ति को मोटा ताजा करने लायक चर्बी गाय के दूध मे होती है। जो शरीर अश्लीर है उसे गाय श्लीर बनाती हैं। 'श्लीर' का अर्थ है शोभन और 'अश्लीर' का अर्थ है अशोभन। इस प्रकार गाय की रक्षा और सेवा के पीछे उपयोगिता की भावना तो थी ही। उपयोगी वस्तु की सेवा करने से वह हमारे लिये अधिक उपयोगी हो सकेगी और सेवा अधिक उपयोगी वस्तु की ही की जा सकती है। वेदो मे जहाँ यह उपयोगिता बतलाई गई है वहाँ लिखा है—

मयोभूर्वातो अभिवातुस्रा ऊर्जस्वती शेषधीरारिशन्ताम्।
पीवस्वती जीवधन्याः पिबन्त्यवसाय पद्वते रुद्रमृड॥

अर्थात् सुखकर वायु गायो की ओर से बहे। गायें बलकारक तृण पत्र आदि का आस्वादन करें। ये प्रभूत और प्राण तृप्तिकारक जल का पान करें, हे सहदेव, इन गायो को स्वच्छन्दता से रखो। भारतवर्ष मे गाय को माता माना गया है। परन्तु इस माता की जितनी दुर्दशा और जितनी हत्या यहाँ हो रही है, उसके कुफल देश को भुगतने पड रहे हैं। जिस देश मे दूध और घी की नदियाँ बहती थीं, जिस देश मे 'दुग्ध विक्रयी' 'घृत विक्रयी' और 'दधि विक्रयी' खराब गालियाँ समझी जाती थीं वहाँ गाय की दुर्दशा है उसकी ओर सबसे पहले ध्यान आकृष्ट करने वाले महर्षि दयानन्द ही इस युग मे हुये हैं। शायद विज्ञानाभिमानी व्यक्ति आज ट्रैक्टरो की आविष्कृति के के बाद गाय की उपयोगिता का खडन करने लगें, परन्तु विचारणीय यह है कि ट्रैक्टर की खेती क्या हमारे देश मे सम्भव है? क्या उस खेती की हानियाँ अब प्रत्यक्ष नहीं हो रहीं और गोहत्या तो राष्ट्र के स्वास्थ्य को हानि पहुचाने वाली वस्तु समझ कर बन्द होना नितान्त आवश्यक है। अब तो यूरोप के डाक्टरो ने गोमास भक्षण को हानिकारक बताया है और गोदूध को शरीर और बुद्धि की दृष्टि से अत्यन्त लाभकर माना है। गाय का दूध पवित्र है और सबसे बडा लाभ तो यह है कि गाय का दूध हमारी दुमति को दूर करता है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

गोभिष्टरेय अर्माति दुरेवा,
यवेन क्षुध परिहूत विश्वाम्।



वन्दनीय गोमाता



गौरव सुषमा का आश्रय, है वन्दनीय गोमाता।
भारत का गोमाता से, है सुखमय शाश्वत नाता॥

गोकुल की वृद्धि बिना क्या, सम्भव सुन्दर मानवता,
मानवता शून्यस्थल में बढ़ जाती है दानवता।
इतिहास अत भारत का गोवर्धन धर्म बनाता॥ है वन्दनीय गोमाता॥

गोमाता को वेदों में, प्रभु ने अघ्न्या बतलाया,
सब शास्त्रों ने सहमत हो, गौ का गुण-गौरव गाया।
दधि दुग्ध तथा घृत द्वारा, गोकुल मंगल का माता॥ है वन्दनीय गोमाता॥

ट्रैक्टर से पा सकता है, क्या खाद कहो यह भारत,
बन जिससे धरा उर्वरा, सबको करती सुख सरत।
वैज्ञानिक नूतन कृषि का, परिणाम न सुखद दिखाता॥ है वन्दनीय गोमाता॥

भारत में गोमाता को, सबने सुखमूल बताया,
पर पदलोलुप वालों ने गौ को न हाय अपनाया।
अतएव आज भी भारत, गोवध का पाप कमाता॥ है वन्दनीय गोमाता॥

चाहे जो कुछ हो जावे, गोवध न सहेंगे अब हम,
गोवध के बंद किये बिन, सुख से न रहेंगे अब हम।
वह भारतीय क्या जिसके, मन में न भाव यह भाता॥ है वन्दनीय गोमाता॥



—प० रामकिशोर शास्त्री
गोवर्धन (मथुरा)



अर्थात् दुर्भाग्य की ओर ले जाने वाली अबुद्धि का हम गाय के दूध के द्वारा निवारण करें। सब तरह की अबुद्धि मिटाने और उसमें से जहर को निकालने के लिये गाय का दूध उपयोगी होता है। इस दूध से हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक समृद्धि होती है। इससे हम यशस्वी बनते है और अपने राष्ट्र की रक्षा करने मे समर्थ हो सकते है।

अत स्वामी दयानन्द के प्रति हमारी आज सबसे बडी श्रद्धांजलि यही होगी कि हम सरकार को बाधित करें कि वह गो हत्या बन्द करे और गौ की रक्षा करने का प्रयत्न करें।

●

सम्पन्न

आर्यसमाज लाजपतनगर कानपुर का महोत्सव २७ से ३० अक्तूबर तक बडे समारोह से मनाया गया। सर्वश्री आचार्य प्रियव्रत जी, पंडित त्रिलोकनाथ जी शास्त्री, ब्र० सतीशचन्द्र, श्री विश्रोतमा यती के प्रभावशाली भाषण और श्री प्रकाशवीर जी प्रचारक के भजन हुए। २७ अक्तूबर को विशाल नगर कीर्तन निकला। इस अवसर पर राष्ट्र-रक्षा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, गोरक्षा सम्मेलन तथा आर्य सम्मेलन शानदार हुए। श्री मेहरचन्द खन्ना मन्त्री आवास भारत सरकार तथा श्री डाक्टर हरेकृष्ण महताब भूतपूर्व मुख्य मन्त्री उडीसा भी पधारे और इनके प्रभावशाली भाषण हुए। रविवार को ऋषि लंगर भी खोला गया।

—मन्त्री



दयानन्द की दिव्य दृष्टि



[श्री डा० सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्त वाचस्पति, एम०ए०, डी० लिट्, अजमेर]

ऋषि की परिभाषा करते हुये निरुक्तकार ने लिखा है, "ऋषयो मन्त्र दृष्टार"। ऋषि दयानन्द ने भी "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" मे इसी तथ्य की पुष्टि की है, अर्थात् जो मन्त्रो के दर्शन करने वाले होते हैं, वे ऋषि कहलाते हैं। हमारे प्राचीन काल के ऋषि तो मन्त्रो के अर्थ, भाव, गूढ़ रहस्यों की व्याख्या करने के कारण से ऋषि बने, लेकिन आधुनिक काल मे आचार्य दयानन्द केवल एक दो मन्त्र के भावार्थ-दर्शन से ऋषि नहीं बने, किन्तु समस्त वैदिक वाङ्मय की एक नवीन दर्शन के रूप मे व्याख्या करने के कारण ऋषि पदवी को प्राप्त हुये, ऐसा कुछ विद्वानों का विचार है।

परन्तु मैं एक दूसरा दृष्टिकोण आज उपस्थित करने जा रहा हू। मैं आचार्य दयानन्द के ऋषित्व मे एक दीर्घ द्रष्टा एव भविष्य द्रष्टा के दर्शन पाता हू और उनकी दीर्घ दृष्टि मे अनेक उन परियोजनाओ, सुधारो एव दृष्टिकोणों को बीजरूप मे देखता हू जो उनके जीवनकाल से ५० अथवा १०० साल आगे चलकर जन-जन के मानस मे, समाज मे एव राष्ट्र मे व्यावहारिक एव विस्तृत रूप मे हमारे सम्मुख आ रहे हैं। उदाहरण के लिये—

(१) सर्व प्रथम ऋषि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" मे निर्भय, स्वतन्त्र, स्वाधीन और अखड स्वराज्य का उल्लेख किया। स्वराज्य के ये चार विशेषण कितने सार्थक हैं, ये विद्वज्जन ही समझ सकते हैं। इन विशेषणों मे यह भाव अर्न्तनिहित है कि राष्ट्र की 'स्वाधीनता' तभी स्थिर रह सकती है जब वह पूर्ण आर्थिक दृष्टि से 'स्वतन्त्र' हो, सो अभी भारत नहीं है। हमे अपने पेट भरने के लिये भी दूसरे देशो से भीख मागनी पड़ती है। हमारा राष्ट्र अभी 'निर्भय' भी नहीं है। क्योकि चीन और पाकिस्तान जैसे दुर्दान्त शत्रुओ के आक्रमण का निरन्तर भय बना हुआ है। इसी प्रकार तीसरा विशेषण 'अखड' भी कितना सार्थक है। ऋषि की दिव्य-दृष्टि में सन् १८५७ मे, अब से ९० वर्ष पूर्व, यह बात कैसे आई कि भारत राष्ट्र अखड नहीं रह पायेगा, इसलिये उन्होने अखडता की शर्त रख दी अपने "स्वराज्य" के साथ मे।

(२) ऋषि दयानन्द ने स्वदेशी वस्त्रो एव वस्तुओं



डा० सूर्यदेव जी शर्मा

के प्रयोग पर कितना बल दिया और शाहपुरा के महाराज को खद्दर का कोट बनाने का आदेश क्यो दिया ? वह जानते थे कि आगे चलकर खद्दर पहनना स्वदेश भक्ति की एक अनिवार्य शर्त बनेगी।

(३) जिस हरिजनोद्धार पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इतना बल दिया और भारत सरकार जिसके लिये अब तक इतनी प्रयत्नशील है, उसका बीजारोपण ऋषि दयानन्द ने पहले ही कर दिया था। महात्मा गाधी के शब्दो मे यदि ऋषि दयानन्द और आर्यसमाजी लोग अछूतोद्धार के लिये पहले से इतना क्षेत्र तैयार न कर देते तो महात्मा जी को भी इतनी जल्दी सफलता न मिलती।

(४) हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रश्न को

(शेष पृष्ठ ४५ पर)





मृत्युञ्जय दयानन्द



[श्री बा० पूर्णचन्द जी, आगरा]

महर्षि के जीवन मे वैराग्य की भावना उनके चचा और बहिन की मृत्यु से उत्पन्न हुई । शिवरात्रि के दृश्य से वह सच्चे शिव और ईश्वर के स्वरूप को जानना चाहते थे और इसीलिये उन्होने देशाटन किया । बडे-बडे कष्ट सहे और तप और त्याग के आधार पर गुरु विरजानन्द की दीक्षा से सच्चे शिव के स्वरूप को उन्होने समझा ।

मृत्युओ के दृश्य से जो वैराग्य उनके हृदय मे उत्पन्न हुआ उसका प्रभाव मृत्यु के समय तक उनमे अकित रहा । महर्षि ने मृत्यु के समय अत्यन्त शारीरिक कष्ट होते हुए भी अपने शान्त स्वभाव ओर दृढ़ आस्तिकता का परिचय दिया । उनके ये शब्द कि 'हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' बडे शिक्षाप्रद और उनके उच्च आचार और विचार को प्रगट करने वाले ह । मरते समय बडे-बडे राजा और महाराजा, धनाढ्य ओर निधन, स्वस्थ पहलवान और वर्षों के रोगी सब व्याकुल हो जाते हे । ऐसी व्याकुलता, ऐसे भ्रमसूचक विचारो का परिणाम हे कि मरने वाला अपने आत्मा के स्वरूप को नही जानता, परमात्मा के न्याय मे विश्वास नही रखता और न मृत्यु के स्वरूप को समझता है । मृत्यु किसी जीवन प्रक्रिया का अन्तिम दृश्य नहीं है । मृत्यु परिवर्तनो के चक्र मे एक पटाक्षेप है । अमर आत्मा केवल एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर मे प्रवेश करता है । मृत्यु जीवन रूपी यात्रा की एक मजिल है ।

जिनके सामने लक्ष्य हैं वे मार्ग की बाधाओ से विचलित नहीं होते । मृत्यु के समय शान्त चित्त न होना और चिन्तित और भयभीत होना इस बात का द्योतक है कि (१) वह मृत्यु के स्वरूप को नही समझता है । मृत्यु परिवर्तन का नाम है और परिवर्तन से एक स्थायी सत्ता सिद्ध होती हे । (२) जीव और शरीर के सम्बन्ध को नहीं समझना, शरीर से अनुचित मोह । (३) जीव का अन्य प्राणियो से ठीक-ठीक सम्बन्ध न समझना । यदि हम ध्यान मे रखें कि हमारा अन्य प्राणियो से सम्बन्ध जीव और शरीर के सयोग के साथ ही है तो हम मृत्यु से न डरेंगे और न सम्बन्धियो से वियोग होने पर रोयेंगे । (४) ससार के भोग पदार्थों से अनुचित मोह तथा उनसे



श्री बा० पूर्णचन्द जी

अपना ठीक सम्बन्ध न समझना और यह भूल जाना कि यह स्थायी नहीं है, इनके रूप मे सदा परिवर्तन होता रहता है और ये केवल सामयिक उपयोग के लिए हैं । (५) ईश्वर के स्वरूप को न समझना और ईश्वर की न्यायप्रियता मे विश्वास न रखना (६) अपना कर्तव्य पालन न करना और इस पाप के फल मिलने से डरना । केवल वही विद्यार्थी मदरसे जाने से डरता है जिसने सबक याद नहीं किया है । वही पुत्र अपने पिता के सामने जाने से डरता है जिसने अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया है (७) जिसने अन्य प्राणियो को सताया है वह उनसे बदले मे सताये जाने से डरता है । (८) यह भूल





महर्षि योगीराज दयानन्द की प्रबल योग साधना

[आचार्य प० सत्यमित्र जी शास्त्री वेदतीर्थ, व्याकरणाचार्य, धर्माचार्य, महोपदेशक बड़हलगंज गोरखपुर उत्तर प्रदेश]

महर्षि दयानन्द जी महान योगी थे। उनकी गणना प्राचीन योगियो मे थी। लोग शकर की तपस्या और योग को प्रथम स्थान देते है, किन्तु मै इस मूलशकर को योग मे प्रथम स्थान देता हू, इसका मुख्य कारण यह है कि

विजित्य यो मन्मथमप्रयत्नतो,
जितेन्द्रियत्वादिह योग मागत ।
तृतीय नेत्र ज्वलन प्रभासिताम्,
जहास वेगान्नितरा कपर्दिन । १

शकर जी ने तो विवाह दो बार करके योग साधना मे तप्त होकर कदर्प को अविकार मे किया था किन्तु ऋषिराज दयानन्द ने अखिल इन्द्रियो को जीत कर ससार मे ब्रह्मचर्य से विभूषित होकर सीधे ही सन्यास की दीक्षा को लिया था। शकर का तृतीय नेत्र रहा हो अथवा नही किन्तु इस मूलशकर के वेदज्ञान मय नेत्र को देखकर पौराणिक शकर के भक्त हस पड़े तथा पाषाण स्थापित शकर को छोडकर निराकार वैदिक शकर के भक्त बने—

ध्रुव समासाद्य सुखेन पार्वतीम
गणेशता माप्नुयदि प्रयत्नत ।
गुहागृहान्त कृत योग साधन ।
शिवत्व मायाखिल विश्वभूतये । २

विश्व मे सुखपूर्वक पार्वती से विवाह कर और अतीव प्रयत्न से गणेश को प्राप्त कर गुहा मे बैठकर योग साधन करने वाले शकर मे विकार हो सकता है किन्तु ब्रह्मचारी मूलशकर तो शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी बनकर योग साधना मे लगे थे, तथा स्वामी दयानन्द बनकर सफल ससार के कल्याण निमित्त समाधिस्थ हुए थे। शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी स्वामी पूर्णानन्द जी से सन्यास दीक्षा लेकर तथा कुछ दिन सन्यास की क्रियाओ को सीखकर सत्य शिव की तलाश मे योगसाधना मे अग्रसर हुए और वन पर्वतो के उच्च शिखरो झाडियो मे योगी के अन्वेषण मे तत्पर हुए, अन्त मे 'जिन खोजा तिन पाइया, जिसने खोजा उसको मिल गया 'यो जागार तम् ऋच कामयन्ते' जो जागता है वही प्रभु को प्राप्त करता है तथा ज्ञान को सप्राप्त करता है। एक दिन दयानन्द ने सुना कि व्यासाश्रममे योगानन्द जी एक महात्मा रहते थे। वह योग क्रिया मे कुशल है उस महात्मा की उत्कट मिलाप उत्सुकता से प्रेरित होकर वे व्यासाश्रम पहुचे। वहा उन्होने उक्त महात्मा से योग रहस्य को सुना और योग की पुस्तको का अध्ययन कर तथा कुछ क्रियाओ को सीखकर पुन अन्य योगियो के अन्वेषण मे तत्पर हुए। उन्होने वहा से अन्वेषण करते हुये चाणोद कर्नाली मे दो महात्माओ के दर्शन किये। उनमे से एक का नाम स्वामी ज्वालानन्दपुरी तथा दूसरे का नाम स्वामी शिवानन्द गिरी था। वे दोनो महानुभाव प्रसन्न चित्त प्रशान्तात्मा योगी थे। स्वामी दयानन्द जी अपना अहोभाग्य मानकर उनके पास बहुत दिन रहकर योग की समस्त क्रियाओ को सीखा। उन दोनो महात्माओ ने अपने साथ ही उनको साधना मे उपस्थित किया और यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तक की

जाने से कि मृत्यु ही मोक्ष का द्वार है और मृत्यु तथा मोक्ष की राशि एक ही है। (९) यह भूल जाने से कि मृत्यु दुख नही है, प्रत्युत दुखो से छूट जाने का साधन है। यदि ऊपर लिखे विचार हमारे सम्मुख रहे तो हम महर्षि के अन्तिम दृश्य और अन्तिम शय्या पर शयन न करके उनसे शिक्षा ग्रहण करते रहेंगे।

— —





स्थिति का ज्ञान कराकर समाधि विधि की शिक्षा दी। अभ्यासान्तर मे योगदर्शन पतजलि ऋषि कृत की चर्चा एव अध्यापन भी कराया।

उसके उपरान्त वे लोग वहा से अहमदाबाद चले गये और इनसे कह गये कि आप मुझे एक मास के उपरान्त मिलियेगा। ऋषि दयानन्द जी ने आत्ममुख से उनकी प्रशसा के साथ कृतज्ञता प्रकट की है। 'स्वामी ज्वालानन्द जी तथा स्वामी शिवानन्द जी को मै नहीं विस्मृत कर सकता हू। जिनकी कृपा से मुझे योग तक सम्प्राप्त हुआ तथा मुझे योग विद्या सम्पूर्ण क्रिया सहित सम्प्राप्त हो गई। वस्तुत उन दोनो महात्माओ ने मुझ पर अपार उपकार किया। इस कारण मै उनका विशेष रूप से अनुगृहीत हू। पुन आबू पर्वत पर योगी जनो का नाम सुनकर तथा वहा से हरिद्वार कुम्भ मेले पर योगीजनो से मिलने की उत्कठा से चल पडे। वहा मेले मे गगा उस पार जहा योगी महात्मा रहते थे, उनसे मिलकर टिहरी होते हुए तुगनाथ की चोटी पर चढना आरम्भ किया। वहा ही तपस्या करने का निश्चय किया। किन्तु वहा से कुछ दिन तपकर ओखी मठ पहुचे। वहा के महन्त ने उन्हे गद्दी का प्रलोभन देकर कहा कि दयानन्द यहा ही रहो। तुम्हे लाखो की सम्पत्ति प्राप्त हो जावेगी। उस पर ऋषि राज ने कहा कि इससे बढ़कर सम्पत्ति माता-पिता की थी, उसको त्याग कर मे ब्रह्मान्वेषण मे तत्पर हुआ। अब आपकी गद्दी मे क्या रखा है। यह कहकर वहा से जोशी मठ चल दिये। यह अस्तेय की प्रतिष्ठा है अहिंसा की प्रतिष्ठा थी कि सब पर दया की और अपने प्राणघातक को भी रुपये देकर नैपाल जाने को कहा। सत्य की साक्षात प्रतिमूर्ति ने सत्य के प्रचार मे एव अपने गुरु के सत्य ऋण को चुकाने के लिए जीवन भर तप किया और गुरुऋण को माता-पिता के ऋण से भी महान मानकर कर्मयोगी एव ज्ञानयोगी बने। अन्ततोगत्वा जब ओखी मठ के महन्त को फटकार कर जोशी मठ पहुचे तो वहा के रावल जी से पूछकर योगियो के अन्वेषण एव सम्मिलनार्थ तथा सिद्धि प्राप्त करने के लिये दृढ सकल्प लेकर हिमाच्छादित हिमालय की ओर चल दिये और एक कन्दरा मे बैठकर वेदानुसार उपह्वरे गिरीणा सगमे च नदीना धिया विप्रोऽजायत को चरितार्थ कर पद्मासन लगाकर समाधिस्थ हुए और बोले–

इहासने शुष्यतु मे शरीरे त्वागस्थि मांसम्।
प्रलय प्रयातु।
अप्राप्य ज्ञान बहुकल्प दुलभम।
नैवासनात कायमनश्चलिष्यति ॥ ३ ॥

इस आसन पर बैठे हुये मेरा शरीर शुष्क हो जाये, चाम, हड्डियॉं, मास गल जाये, किन्तु दयानन्द बिना प्रभु दर्शन पाये इस आसन से उठ नही सकता। अन्तत उन की ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा समाधि सम्प्राप्त हो गई। इस प्रकार प्रत्येक दिन समाधि लगाना और योग क्रियाओ का करना जीवन भर नही छूटा। अन्त मे दीपमालिका के दिन योगिराज ने समाधिस्थावस्था मे नश्वर शरीर को छोड कर अमरत्व को प्राप्त किया।

यदीय सद्धर्म पयावलम्बिनी।
महन्वदीक्षा भुवने विराजते।।
विराजते विश्वतले स एवतु।
स्वामी दयानन्द सरस्वती यति ॥ ४ ॥

(पृष्ठ ४२ का शेष)

लीजिये। स्वय गुजराती होते हुये महात्मा गाँधी जी ने तो हिन्दी राष्ट्र-भाषा का आन्दोलन बाद को हाथ मे लिया, लेकिन उनसे ५०-६० वष पूव ही ऋषि दयानन्द हिन्दी को राष्ट्र भाषा मान चुके थे। (इसका विस्तृत विवरण मेरी सद्य रचित पुस्तक 'हिन्दी और आर्यसमाज' मे देखिये)।

(५) गोरक्षा का तथा गोवध निषेध का प्रश्न हिन्दू नेताओ ने मुख्य रूप से अब उठाया है और अब तदथ आन्दोलन, अनशन एव सत्याग्रह किया जा रहा है, लेकिन ऋषि दयानन्द ने ९० वष पूव ही "गो करुणानिधि" पुस्तक लिखकर और भारत के जगी लाट से मिलकर इस आन्दोलन का सूत्रपात कर दिया था।

कहा तक दिये जाये दयानन्द की दिव्यदृष्टि के उदाहरण?

हे धन्य गुजरातो महर्षे दिव्य दृष्टि वाले।
तेरा ही माग-दर्शन यह राष्ट्र आज पा ले॥

—४—



संसार के लिए सबसे बड़ी देन—

महर्षि दयानंद की नैरुक्तिक वेदभाष्य शैली

[लेखक—श्री भगवतदयालु जी सिद्धान्त वाचस्पति, भरथना]

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व लोग वेद का नाम तो लेते थे परन्तु वेदो मे क्या है यह विस्मृत कर चुके थे। वेदो की ऋषि कृत प्रणाली से अर्थ न करके लौकिक कोष व व्याकरणानुसार अनर्थ हो रहे थे। वेदों के सम्बन्ध मे अनेक भ्रांतिया प्रसारित हो रही थीं। योरुपियन विद्वानो का कथन था।

(१) वेद बच्चो की बिलबिलाहट और गड़रियो के गीत हैं।

(२) वेदो में अग्नि, वायु, मित्र, वरुण और इन्द्रादि बहु देवताओ की पूजा का विधान है।

(३) वेदो मे गाय, घोड़ा, बकरी और पुरुषो की बलि देने का विधान है और वेदो मे मास-भक्षण लिखा है।

(४) वेदो मे इतिहास है और कहानिया हैं। ये भिन्न-भिन्न काल मे ऋषियो ने बनाए हैं, 'अपौरुषेय नहीं हैं और न अनादि हैं आदि-आदि।

महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द के उपदेशानुसार ऋषि कृत ग्रन्थो वैदिक व्याकरण, अष्टाध्यायी। महाभाष्य, वैदिक कोष निघन्टु और निरुक्तादि के आधार पर वेद भाष्य करके अपना सारा जीवन वेदो के उद्धार मे लगा दिया। वे वेदो के लिये जिये और वेदो के लिये मरे। उन्होने घोषित किया कि 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक हैं' और वेद का पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का परम कर्तव्य है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और अपौरुषेय हैं। वे सृष्टि के आदि मे चार ऋषियों के हृदय में ईश्वर ने प्रकाशित किये। (Back to the Vedas) यह उनका नारा था। वैदिक शब्द यौगिक हैं और वैदिक कोष के अनुसार अनेकार्थ वाची हैं। उनका अर्थ प्रकरण के अनुसार लेने से ही सही हो सकेगा जैसा कि उन्होने सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम समुल्लास लिखकर सिद्ध किया है कि अग्नि, इन्द्र, आदि एक ही परमात्मा के यौगिक नाम हैं, वेदो मे बहु देवतावाद नहीं है। वैदिक यज्ञों मे पशु नरादि बलि का विधान नहीं है। उन्होने 'गोमेध यज्ञ' अश्वमेध यज्ञ, अजामेध यज्ञ, नरमेध यज्ञ के निम्न



श्री भगवतदयालु जी

अर्थ किये—गो पृथ्वी व इन्द्रियादि को कहते हैं अत पृथ्वी को कृषि योग्य करना व इन्द्रियो को शुद्ध व दमन करना, अश्वमेध के अर्थ किये राष्ट्र व यज्ञ राष्ट्रोन्नति करना, अजामेध के अर्थ किये प्रकृति से भिन्न-भिन्न लाभ उठाना, नरमेध का अर्थ किया अन्त्येष्टि संस्कार—"मासोदनम्" का अर्थ किया निरुक्त के आधार पर "मास माननम, मानस वा, मनो अस्मिन् सीदति वा"।

अर्थ—(१) प्रतिष्ठित पुरुष के लिये लाया जाता है वह मांस कहलाता है।

(२) जो शुभ मन से लाया जाता है उसका नाम भी मांस है। (शेष पृष्ठ ४८ पर)



दीप



मैं तो हू जाग ही रहा ! पर तुम तो हो सो जाते ?
जितना पाते नहीं अधिक कुछ उससे हो खो आते !
पवन-पुत्र ने कहा दशानन ने कब उसको माना–
सीता लौटाई न, अन्त मे हाय रहा पछताना,
तब मेरी ही वृहत् रूप ज्वाला कुछ ऐसी धधकी–
क्षण मे लका जली पाप की वृत्ति राम ने वध की ।
चढ़ पुष्पक विमान पर सीता सहित अयोध्या आये–
स्वागत मे घर-घर मे सबने अपने दीप जलाये ।
मन की आंख खोलकर देखो उनको हर्ष मनाते !
मैं तो हू जाग ही रहा ! पर तुम तो हो सो जाते !

'नहीं सुई की नोक बराबर भूमि किसी को दूगा–
वीर भोग्या यह वसुधा मैं ही उसको लूगा ।'
कहा कृष्ण ने 'हे दुर्योधन ! ऐसा हठ मत ठानो !
पाण्डव भी हैं बधु तुम्हारे मेरा कहना मानो !'
मैंने भी शिर हिला दिया सम्पूर्ण समर्थन अपना–
पर आकाश-कुसुम सा मेरा व्यथ हुआ सुख-सपना ।
छिडा भयकर युद्ध सभी कुछ हाय ! हो गया स्वाहा–
मेरे बुझते हुए हृदय से कढ़ा मौन स्वर हा ! हा ! !
काश ! तुम्हारे हृदय वेदना मेरी यह छू पाते ?
मैं तो हू जाग ही रहा ! पर तुम तो हो सो जाते !

गोरी से जयचन्द जा मिले, कम्पित तन मैं रोया–
सयुक्ता का भाग्य लग रहा अब खोया! अब खोया!
गोरी को जब पकड बधनो से उन्मुक्त किया था–
तब मुझको यह लगा कि मैंने ही विष-घूट पिया था ।
रोका सौ-सौ बार हिलाकर शीश न नृप ने माना–
तब मैने बुझ करके चाहा था यह उन्हें बुझाना–
नहीं देश का भाग्य दीप यह अपने साथ बुझाओ !
कभी शत्रु यह सगा न होगा ! मत माया मे आओ ! !
नक्कारों मे तूती के कब बोल सुने है जाते !
मै तो हू जाग ही रहा ! पर तुम तो हो सो जाते !









अंग्रेजों के कुटिल चक्र ने ऐसा जाल पसारा–
अपनी भाषा, भाव-वेष से कर दिया न्यारा !
मेकाले की नीति फल गई क्लर्क यहां पर ढाले–
पराधीन हो गये, पड गये प्राणो के भी लाले ।
भगतसिंह, आजाद, और बिस्मिल, सुभाष सेनानी–
दयानन्द, मालवी, तिलक, गाधी ने हार न मानी ।
सूर्य उगा करके स्वराज्य का चले गये नर नाहर–
प्राण-रश्मि पा उनकी चमके मोतीलाल-जवाहर ।
तुलसी और रवीन्द्र काव्य-स्वर स्वतन्त्रता को गाते ।
मैं तो हू जाग ही रहा ! पर तुम तो हो सो जाते ।
हिन्दी चीनी भाई-भाई ! पाकिस्तानी भाई !
सब भाई है ! फिर यह कैसे किसने आग लगाई ?
अब भी सावधान हो जाओ ! अपने को पहिचानो !
अपनी भाषा अपनी आशा जन्म भूमि को जानो ।
जो इसके विपरीत चले चलने दो चाल न उसकी–
अब अपनी हाडी मे तुम गलने दो दाल न उसकी ।
कहीं न आने वाली पीढ़ी तुम्हे कलक लगाये–
कहीं न आदर्शों में आकर के खण्डहर बस जाये ?
यही समय है अब तुम सब मिल निज कलक धो जाते !
मैं तो हू जाग ही रहा, पर तुम तो हो सो जाते !





—कुवर हरिश्चन्द्र देव वर्मा चातक' कविरत्न

(पृष्ठ ४६ का शेष)

(३) जिसमे मन खिचता है अर्थात् रोचक भोजन-वेदों मे अनेक मन्त्रो मे मासोदन बनाकर अतिथि को खिलाने को लिखा है । इसके सच्चे अर्थ रोचक भात, खीर व वृष पाक के हैं । वैदिक काल मे मास ओदन खीर कहलाती थी अर्थात् रोचक भोजन मांस की भ्रान्ति अनर्थ है । इसी प्रकार उन्होने सिद्ध किया कि वेदो मे सारी विद्याओ व विज्ञान का मूल है–"वेदोऽखिलो धर्म मूल" मनुस्मृति २-६ ।। महर्षि दयानन्द की नैरुक्तिक वेद भाष्य शैली ने ससार के विद्वानो की विचार धारा को परिवर्तित कर दिया । उन्होने यह भी सिद्ध किया कि वेदो के अन्दर अलकारिक वर्णन प्राकृतिक वस्तुओ का है जैसे गौतम चन्द्रमा को कहते हैं और अहिल्या रात्रि को कहते हैं । इन्द्र सूय को कहते हैं । चन्द्रमा व रात्री का साथ है–प्रात सूर्य की किरणों से रात्रि छिन्न-भिन्न हो जाती है–यह गौतम व स्त्री व इन्द्र कोई व्यक्ति नहीं हैं–अत वेदो मे इतिहास नहीं है । मैक्समूलर जैसे विद्वान् को भी मानना पड़ा वेद विज्ञान की पुस्तकें हैं "Vedas are the books of science" श्री अरविन्द घोष का वक्तव्य है–whatever be the final complete interpretation Dayanand will be honoured as the first discoverer of right clues He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seal of imprisoned fountains

अर्थ–"वेदो का अन्तिम तथा प्रमाणिक भाष्य चाहे कुछ भी हो दयानन्द का स्थान उपयुक्त शैली के प्रथम आविष्कारक के रूप मे सर्वोच्च है । जिन वेदो के द्वार को समय ने बन्द कर दिया था उसकी चाभी को उसने पा लिया ।"



ऋषिवर ! तुझे किन शब्दों में श्रद्धांजलि दूँ !





हे गुरुवर ! मैं हतबुद्धि हू, मुझे यह ज्ञान नहीं है कि मैं तेरे दिव्य सन्देश को कहां तक हृदयङ्गम कर सका हू, गुरुवर ? तेरे दिव्य सन्देश का प्रचार-प्रसार करना तो अलग रहा। हे ऋषिवर ! जब मैं तेरे चरित्र पर विचार करता हू तो मेरा मानस पुलकित हो उठता है। मैं उस समय कह उठता हू कि तू क्या नही था। तूने कितने पिपासु जन को वेदामृत का पान करा कर उनका जीवन सफल करा दिया। गुरुवर ! तूने कितने नवयुवको को नास्तिक से आस्तिक बनाकर एक अनुपम मार्ग प्रशस्त कर गया।

[illegible]

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी प० श्याम जी कृष्ण वर्मा को इङ्गलैण्ड में भेजा था। तेरे ही शिष्य भगतसिंह, सावरकर, मदनलाल, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द आदि अगणित नवयुवको ने मातृभूमि के हितार्थ अपना तन, मन, निछावर कर दिया था। मै इन नवयुवकों की पंक्तियों में बैठने का साहस भी नहीं कर सकता।

गुरुवर ! तू ने विश्व के भोगवादियो का यह संदेश दिया था कि जब तक तुम लोग त्यागवाद की ओर नहीं लौटोगे तब तक तुम्हें शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती, तुम चाहे जितनी विश्व शान्ति का रट लगाते रहो किन्तु व्यर्थ है। हे ऋषि भक्तो ! मै तुम्हें भी यह चेतावनी दे रहा हू कि यदि तुम ऋषि की पवित्र आत्मा को शान्ति देना चाहते हो तो आज के इस पवित्र दिवस पर यह प्रतिज्ञा करो कि मै सर्वदा सत्य बोलूंगा, चाहे विधान सभा मे रहू, चाहे लोक सभा में अथवा अन्य स्थान पर। मैं नित्य शास्त्रो का स्वाध्याय करूंगा और असत्य मतो का निर्भीकतापूर्वक खण्डन करूंगा। हे गुरुवर दयानन्द ! मैं तेरे दया और आनन्द को तेरे जीवन चरित्र से हृदयङ्गम करके तुझे अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हू, गुरुदेव ! यह श्रद्धाञ्जलि अवश्य स्वीकार कर लेना।



—तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री, साहित्यरत्न,



फर्रुखाबाद में महर्षि दयानन्द सरस्वती

[आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम ए, अधिष्ठाता आ०प्रकाशन एवं संस्कृत प्रचार आर्य प्रतिनिधि सभा, बलरामपुर]

प्रथम बार आगमन

महर्षि दयानन्द सरस्वती का का फर्रुखाबाद से विशेष सम्बन्ध रहा है। उन्होंने फर्रुखाबाद में प्रथम बार संवत् १९२४ विक्रम, ज्येष्ठ मास में, ला०जगन्नाथप्रसादजी के विश्रान्त घाट पर २ दिन निवास किया। आयु ४४ वर्ष, वस्त्र केवल लंगोटी, शरीर पर गंगा की रज अथवा होम की भस्म रमाये, कमण्डलु साथ में, अधिकांश संस्कृत में भाषण करते थे। बहुत कम सोते थे, अधिक समय समाधि लगाते थे। एक ही बार भोजन करते थे। कोई सामान साथ में नहीं। स्नान से गीली लंगोटी शरीर पर ही सूख जाती थी।

लाला मन्नीलाल आढ़ती—गंगा स्नान और सूर्य को जल चढ़ाने से क्या लाभ है?

महर्षि—ये जड़ पदार्थ हैं। गंगाजल स्नान और सिंचाई आदि के लिये उपयोगी है। सूर्य अन्धकार नाशक तथा जगत् का शोधक है। गंगास्नान और सूर्य को जल चढ़ाने से मुक्ति नहीं होती।

दूसरीबार आगमन

महर्षि संवत् १९२५ विक्रम, पौष मास के आरम्भ में उसी विश्रामघाट पर ६ मास ठहरे जो 'सिद्धगोपाल की खिलरांव' नाम से प्रसिद्ध है। वहां महर्षि ने बाबू दुर्गाप्रसाद अग्रवाल के पुरोहित प० गंगादास को मनुस्मृति पढ़ाई। कहते हैं कि स्वामी जी के हाथ का संशोधित ग्रन्थ और अथर्व वेद पं० गंगादास के घर हस्तलिखित विद्यमान हैं। कुछ घटनाएं—

(१) प० गंगाराम शास्त्री बेतियावाले ने पुत्र और शिष्य को स्वामी जी के पास भेजा—

शिष्य—प्रणाम।

महर्षि—आयुष्मान् भव। (उस समय पढ़ाने में व्यस्तता से अधिक बात नहीं की)।

शिष्य—अहंकारी चाण्डाल होता है।

महर्षि—(पढ़ाना समाप्त करने के पश्चात्) अब कहिये, क्या कहते थे।

शिष्य ने फिर पूर्वोक्त वाक्य दुहराया।

महर्षि—अहंकार क्या वस्तु है? क्या मुझको अहंकारी कहते हुये तुमने अहंकार नहीं किया? मद्र मिथ्याभिमान नहीं करना चाहिये। कार्य में प्रवृत्ति अभिमान नहीं। संसार में जितने कार्यकुशल हुए हैं, क्या रामचन्द्र, क्या कृष्णचन्द्र—वे अपने कर्तव्य को पालन करने के उपरान्त दूसरा काय करते थे। यदि तुम इस प्रकार पठन-पाठन में होते तो सत्य कहो, पाठ भंग होने का दुःख तुम्हारी आत्मा को होता था नहीं?

शिष्य—हां, हां महाराज।

गंगाराम शास्त्री ने शिष्य से महर्षि की विद्वत्ता का समाचार जानकर शास्त्रार्थ का विचार छोड़ दिया।

(२) चैत्र सुदी संवत् १९२६ (१४ मार्च १८६९) को, ११ दिन तक ११ पण्डितों द्वारा स्वामी जी के निरीक्षण में जप और होम करने के पश्चात् ला० जगन्नाथप्रसाद जी आदि ने अपने घर स्वामी जी द्वारा भेजे गये पं० पीताम्बरदास से यज्ञोपवीत लिया। पंडितों में बड़ा कोलाहल मचा कि मूर्तिपूजन नहीं हुआ और शुक्रास्त में यज्ञोपवीत हुआ है, देखो १ वर्ष में ही क्या अनिष्ट होता है।

महर्षि—मेरा शुक्र (तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म) कभी अस्त नहीं होता। पाषाणादि मूर्तिपूजन वेद विरुद्ध हैं।

(३) मेरठ के श्री गोपाल (हरिगोपाल) शास्त्री को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया गया। विश्राम घाट पर मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ हुआ—

शास्त्री—भो स्वामिन्, मया रात्रौ विचारः कृतः। सर्वत्र मूर्तिपूजनस्य व्यवस्थाऽस्ति। पुनः कथं खण्डनं क्रियते।

वाक्य संस्कृत में बोलने लगे।

स्वामी जी—भाषायां वद, भाषाया वद। प्रकरण विहाय मा गच्छ।

ओझा—अहम् तु प्रकरण विहाय न गच्छामि, परन्तु श्रीमता पुन-पुन प्रकरणमभिनयते। प्रकरण शब्दस्य कथ सिद्धि. ?

स्वामी जी—प्र पूर्वात् कृञ् धातोर्ल्युट् प्रत्यये कृते सति प्रकरणशब्दस्य सिद्धिर्भवति।

ओझा—धातु समर्थो भवति किम्वाऽसमर्था भवति ?

स्वामी जी—'समर्थ पदविधि' के अनुसार धातु समर्थ है।

ओझा—असमर्थ किसे कहते हैं ?

स्वामी जी—सापेक्षोऽसमर्थो भवति। यह महाभाष्य का कथन है।

ओझा—यह वचन महाभाष्य का नहीं है।

इस पर स्वामी जी के पास पढ़ने वाले ब्रजकिशोर ने महाभाष्य मगाकर अ० २, पाद १ में दिखला दिया। पंडित मडली दग रह गयी।

ओझा—मैं इसे प्रमाण नहीं मानता। हम जो कहते हैं वह भाष्यकार से कम नहीं।

स्वामी जी—तुम महाभाष्य के कर्ता पतञ्जलि मुनि के आगे अगण्य हो। यदि कुछ पांडित्य का अभिमान है तो बताओ 'कल्प' सज्ञा किसकी है ?

ओझा—ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

स्वामी जी—देखो, महाभाष्य मे 'अकथित च' इस सूत्र मे कर्म की कल्प सज्ञा की है।

इस प्रकार रात के १ बजे तक वार्तालाप होता रहा अन्त मे यह निश्चय हुआ कि 'समर्थ पदविधि' सूत्र सर्वत्र घट जाये तो स्वामी जी की जय, और यदि एक स्थान पर लगे तो हलधर ओझा की जय।

दूसरे दिन रात के ८ बजे फिर जनता एकत्र हुई। बड़ी कठिनता से शान्ति रक्खी गई। स्वामी जी ने कहा—"जो शास्त्रार्थ न करे उस पर गोहत्या का पाप चढ़ेगा। मैं सन्यासी हू, हार भी गया तो कोई हानि नहीं। तुम गृहस्थ हो, इसलिये पराजय से अधिक हानि सम्भव है। ओझा जी ने कहा—मैं हारूँगा ही क्यों ?

प्रकाश और महाभाष्य का ग्रन्थ मगाकर स्वामी जी ने सब विद्वानों के आगे 'समर्थ पदविधि' की व्याख्या खोलकर रख दी और सूत्र की व्यापकता को अनेक उदाहरण देकर समझाया। ओझा जी से कुछ उत्तर देते न बना और इस प्रकार पराजित होने पर उन्हें उनके साथी अपने साथ ले गये। सबने एक वाक्य होकर कह दिया, कि हलधर की प्रतिज्ञा अशुद्ध सिद्ध हो गयी।

साधो का कढ़ी भात

अनेक सतनामी साधु, जो साध कहे जाते हैं और मद्य मास का सेवन नहीं करते, स्वामी जी के पास आया करते थे। स्वामी जी ने जब इनका दिया कढ़ी भात खाया तो नगर मे बहुत आश्चर्य किया गया। लोगों के प्रश्न करने पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "ये मद्य-मांस के व्यवहार से रहित हैं। तब इनका अन्न अशुद्ध क्यों ? अशुद्ध तो वह होता है जो अन्याय से उपार्जित है अथवा ठीक पका नहीं, वा बासी, सड़ा दुर्गन्धादि दोषों से युक्त है। इन दोषों से रहित अन्न अग्राह्य नहीं। आप लोग घृणा करते हैं इसी से ये वेद मार्ग पर सीधे नहीं आते। प्रीतिपूर्वक धर्म की बात समझाने से वैदिक बन सकते हैं। वैदिक धर्म मनुष्यमात्र से घृणारहित प्रेम के बर्ताव की शिक्षा देता है।

शका समाधान

१ प० बलदेवप्रसाद—शिकार से जीवहिंसा का पाप लगता है वा नहीं ?

स्वामी जी—हिंसक जीव जो अपने दुष्ट स्वभाव से खेती और पालनीय पशुओं तथा मनुष्यों का नाश करते हैं अत उनके मारने से मनुष्यों और पशुओं की रक्षा होती है, किसी की हानि नहीं, अत ऐसे शिकार में दोष नहीं।

२ चौबे परमानन्द—मद्यपान मे क्या दोष है ?

स्वामी जी—मद्यपान सब भांति निन्दित है। मद्यपी जन उन्मत्त होकर औरों की सामान्य हानि नहीं, वरन प्राणनाश तक कर देता है और आप भी अपराधवश मारा जाता है अथवा रोगवश मरता और दुःख को प्राप्त होता है। वह अकरणीय करता और विद्याधन आदि





महर्षि—कुत्र लिखितमस्ति तदुच्यताम्।

शास्त्री—देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधान मेव च।
(मनु० अ० २, श्लोक १७२)।

महर्षि—अस्मार्थ क्रियताम्।

शास्त्री—देवताओं का पूजन करे और साय प्रात होम करे। पूजा मूर्ति की होती है, इस कारण यहां मूर्ति-पूजन का विधान है।

महर्षि व्युत्पत्ति द्वारा इसका अर्थ सुनो। अर्चपूजायाम् इस धातु से अर्चन शब्द बनता है जिसका अर्थ सत्कार है। सो यहां होम में विद्वानों के सत्कार का अभिप्राय है, मूर्ति पूजा नहीं है। यज्ञ मूर्त नहीं करा सकता यह कार्य विद्वानों के द्वारा ही उपादेय है। अतएव उन देवता अर्थात् विद्वानों का सत्कार अवश्य करना चाहिये।

शास्त्री जी निरुत्तर हो गये। काशी जाकर पण्डितों की एक व्यवस्था लाये। २४ मई (वैशाख शुक्ल १४, संवत् १९२५ वि०) को नृसिंह चौदस के मेले पर टोका स्थान पर झंडा गाड़कर कोलाहल करने लगे और वहां स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिये बुलाने लगे। स्वामी जी ने कहा कि 'यहां विश्रान्त पर शान्तिपूर्वक शास्त्रार्थ करने के लिए आओ'। श्री गोपाल शास्त्री ने कहा-'स्वामी जी ने मन्त्र प्रयोग से बिसरात कील दी है, इसलिए वहां जाने पर मेरी जीत न होगी।'

'यह पण्डितों की व्यवस्था है। जय देवी, जय काली, दयानन्द हार गये' आदि के कोलाहल और गड़बड़ के समाचार सुनकर जिला मजिस्ट्रेट ने एक दरोगा को स्वामी जी के पास भेजा। स्वामी जी ने कहा–मैं तो अपने स्थान पर शान्तिपूर्वक बैठा हूं। बार-बार बुलाने पर भी नीचे नहीं उतरा। यहीं बैठा उन उपद्रवियों का बकवाद और गालिदान सुनता रहा।' प्रभावित होकर दारोगा सुरक्षा की व्यवस्था कर चला गया। कोतवाल के डाटने पर श्री गोपाल शास्त्री हटकर फर्रुखाबाद छोड़कर चले गये।

(४) दो दिन पश्चात् डाकमुंशी ज्वालाप्रसाद स्वामी जी के पास आकर कुरसी डालकर असभ्यता से बकने लगे। स्वामी जी के भक्त साधु लोगों ने ज्वालाप्रसाद को कुर्सी से गिराकर उसमें आग लगा दी।

(५) एक दिन गोवर्द्धनदास पटेरेवाले बाबा के मेले एक दुष्ट ने आकर प्रश्न किया कि गंगा मुक्ति देती है कि नहीं? स्वामी जी ने खण्डन किया। इस पर वह जूता फेंककर भागा। साधो ने उसे पकड़कर ठोका। स्वामी जी ने कहा–इसे छोड़ दो। इसने अज्ञानवश ऐसा किया है। निर्बल पर दया करना बल की प्रशंसा है।

(६) एक दिन ४-५ मुसलमान आकर कहने लगे—परमेश्वर ने मुहम्मद साहब को हमारे लिये भेजा है कि नहीं? स्वामी जी ने उत्तर दिया—आप अप्रसन्न न होइयेगा। हम तो मुहम्मद को अच्छा नहीं समझते। आप लोगों ने भी अच्छा नहीं किया जो उसके अनुयायी बन गये। जब चोटी के बाल कटवा डाले थे तो इतनी लम्बी दाढ़ी रखने से क्या लाभ?

फर्रुखाबाद का दूसरा शास्त्रार्थ

लाला प्रेमदास देवीदास खत्री आदि ने कानपुर से हलधर ओझा को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया और कहा 'हम तो बद-बद कर शास्त्रार्थ करेंगे'। लाला जगन्नाथ-प्रसाद ने तत्काल ढाई हजार रुपये जमा करके कहा कि आप भी इतने ही जमा कीजिए किन्तु वे तैयार न हुए।

ज्येष्ठ शुक्ल १०, शनिवार (१९ जून १८६९) को अनेक पंडितों और रईसों के साथ ओझा स्वामी जी के पास शास्त्रार्थ के लिये रात को ९ बजे पहुंचे। मूर्ति पूजा विषय छोड़कर ओझा ने मद्यपान पर बातचीत आरम्भ कर दी और कहा–सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। इस प्रमाण से सुरापान उचित है।

स्वामी जी—यहां सुरा शब्द से सोमलता का अभि-प्राय है, मदिरा का नहीं। मद्यपान सब शास्त्रों में वर्जित है।

ओझा—आप सन्यासी के लक्षण बताइये।

स्वामी जी—क्लृप्त केश नखश्मश्रु पात्री दंडी कुसुम्भवान्। विचरेन्नियतो नित्य सर्व भूतान्यपीडयन्॥
(मनु० ६/५२)

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद् वा गृहाद् वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्।

अब आप ब्राह्मण के लक्षण बताइये।

ओझा जी इधर-उधर बगलें झांकने लगे। दो एक

पदार्थों की प्राप्ति से वंचित रहता है अतः मद्यपान त्याज्य है।

३ लाला मन्नीलाल—सन्ध्या कितनी बार करनी चाहिये ?

स्वामी जी—प्रातः सायं सन्धि बेला में, दो काल में, एकान्त में जल के किनारे पवित्र होकर सन्ध्या करनी चाहिये। जब कृष्ण जी द्वारका से हस्तिनापुर गये तो दो काल में सन्ध्या की। भागवत में भी 'सायं प्रातरुपासीत' लिखा है।

४ लाला गब्बूलाल—भीष्म पितामह क्या बहती गंगा के पुत्र थे और पार्वती क्या हिमालय की कन्या थी ?

स्वामी जी—भीष्म की माता का नाम गंगा था। बहती गंगा नरदेह धारिणी नहीं है। पार्वती हिमालय के राजा की कन्या थीं। पत्थर से कन्या उत्पन्न नहीं हो सकती, संसार में सृष्टिक्रम के विरुद्ध कुछ नहीं होता।

५ ला० जगन्नाथप्रसाद—मनुष्य का कर्तव्य क्या है ?

स्वामी जी—ईश्वर की प्राप्ति, जो ईश्वरीय आज्ञाओं के पालन करने से होती है। ये आज्ञायें वेदों का आचरण करना, धर्म के दश लक्षणों पर चलना और दश अधर्मों का त्याग करना है। मनु ने धर्म के १० लक्षण अ० ६ श्लोक ९२ में तथा अधर्म के लक्षण अ० १२ श्लोक ५-७ में बताये हैं।

गप्पाष्टकी और सत्याष्टकी दयानन्द

लाला मदन मोहनलाल—कुछ लोग आपको आठ गप्पें बताने वाला कहते हैं जिससे धूर्त लोग आपको गप्पाष्टकी कहते हैं ?

स्वामी जी—मुझे चाहे जो कहा जाय चिन्ता नहीं। ८ गप्पें इस प्रकार हैं—

(१) पुराण, (२) पाषाणादि पूजा, (३) शैव वैष्णव आदि मत, (४) वाममार्ग, (५) मादक द्रव्य सेवन, (६) पर स्त्री गमन, (७) चोरी, और (८) छल, अभिमान, मिथ्या भाषण। आठ सत्याष्टक निम्नलिखित हैं—

(१) वेद और आर्ष ग्रन्थ।
(२) ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदों का पठन-पाठन।
(३) सन्ध्या, अग्निहोत्र का अनुष्ठान।
(४) गृहस्थ धर्म और पंचमहायज्ञ का करना।
(५) सत्संग, उपासना योगाभ्यासपूर्वक वानप्रस्थ का सेवन।
(६) परा विद्या का अभ्यास और सन्यास ग्रहण।
(७) काम, क्रोध, लोभ, मोह, संग, द्वेष का त्याग।
(८) पंच क्लेशों को त्यागकर मोक्षानन्द प्राप्ति।

स्वामी जी का शारीरिक बल

एक दिन कई पहलवान चौबों ने कहा कि यदि स्वामी जी कसरत करें तो वे बल में भी किसी से हिलाये न हिलें। यह सुनकर स्वामी जी ने अपनी कोपीन उसके आगे निचोनी और कहा कि अब इसमें से जो एक बूंद भी निकाल सके प्रशंसायोग्य बलवान् माना जायेगा। पहलवानों ने पृथक्-पृथक् दोनों हाथों से दबा-दबा कर कोपीन को उमेठा किन्तु पानी की एक बूंद भी न निकाल सके। सब ने स्वामी जी को धन्य-धन्य कहकर उनके बल की प्रशंसा की।

सहनशीलता के दो उदाहरण

(१) एक दिन एक निरक्षर देहाती सद्धू नामक ब्राह्मण ने स्वामी जी को अनेक कटु वचन कहे, उन्हें ईसाई बताया, किन्तु स्वामी जी मुस्कुराते हुए चले गये। जब निवास पर पहुचे तो वही ब्राह्मण वहाँ भी स्वामी जी को चिढ़ाने के लिये पहुचा। स्वामी जी ने 'आइये, बैठिये' कहकर उससे मधुरता से बातचीत की, जिससे उसका चित्त द्रवित हो गया और उसने क्षमा याचना की।

(२) स्वामी जी गंगा किनारे जल में पैर फैलाये लेटे थे। कुछ चंचल बालकों ने रेत के गोले बना-बनाकर मारना आरम्भ किया। जब रेत आँखों में गिरा तो स्वामी जी वहां से उठकर चले गये।

युवकों को वेश्यागमन से बचाया

सेठ पन्नालाल का पुत्र बहुत बिगड़ चुका था। बहुत समझा-बुझाकर उसे स्वामी जी के पास ले आया गया। स्वामी जी ने अपने मधुर प्रभावशाली उपदेश से उसको



तथा उस जैसे, अनेक कुमार्गी युवकों को वेश्यागमन से बचाया। सेठ पन्नालाल के इस पुत्र ने अपना जीवन पवित्र कर स्वामी जी का शिष्य बनकर उनके कार्यों मे बड़ी सहायता दी। कहा जाता है कि एक दिन स्वामी जी के व्याख्यान मे बहुत सी वेश्यायें भी यह देखने गयीं कि वह साधु कौन है जो हमारी आजीविका समाप्त कर रहा है।

योगविद्या की शक्ति

एक दिन गढ़ी के नवाब ने स्वामी जी से पूछा कि क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे दूर के हालात मालूम हो सकें। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि योग विद्या में यह शक्ति अवश्य है परन्तु योगीजन किसी की गुप्त बातों को जानने की इच्छा नहीं करते। उनका उद्देश्य तो परमेश्वर को जानना ही होता है अत वे उसी के ध्यान में मग्न रहते हैं।

कहा जाता है कि स्वामी जी कभी-कभी सारी रात समाधि में लीन रहते थे।

संस्कृत पाठशाला की स्थापना

लाला बंशीलाल शिवालय बनवाने वाले थे कि स्वामी जी का उपदेश सुनकर उन्होंने शिवालय के स्थान पर पाठशाला स्थापित करा दी। ५ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। सबने अष्टाध्यायी पढ़ना आरम्भ किया। प० ब्रजकिशोर अध्यापक नियत हुए। इसी समय वहाँ स्वामी जी ने अपने और वेदपाठी ब्राह्मणों के वेदपाठ को पुष्ट करने के लिये जर्मनी से वेद की प्रतियां मगायी थीं।

तीसरी बार आगमन

सवत् १९२८ भाद्रपद मास मे स्वामी जी ने तीसरी बार फर्रुखाबाद में आकर अपनी पाठशाला का निरीक्षण किया और उसे सेठ पन्नालाल के प्रबन्ध से हटाकर लाला निर्भयराम जी के प्रबन्ध में उनके बाग मे स्थापित किया। प० युगलकिशोर प्रधानाध्यापक बनाये गये। प० ज्वालादत्त और भीमसेन भी शिक्षा प्राप्त करने लगे।

स्वामी सत्यानन्द ने श्रीमद्दयानन्द प्रकाश में मार्गशीर्ष सवत् १९२८ में भी फर्रुखाबाद आकर तीन मास तक निवास करना लिखा है। किन्तु कुछ अधिक विवरण नहीं लिखा। फर्रुखाबाद के इतिहास में इसका वर्णन नहीं मिलता।

चौथी बार आगमन

सवत १९३० मार्गशीर्ष अमावस्या (२० नवम्बर १८७३ ई०) को स्वामी जी फर्रुखाबाद आकर पाठशाला मे ही ठहरे, और पौष बदी ६ सवत् १९३० (१० दिसम्बर १८७३ ई०) तक अर्थात् २० दिन वहाँ रहे। इस अवसर पर यू० पी० के गवर्नर म्योर और शिक्षा विभाग के डायरेक्टर कमसन से उनकी भेंट हुई और स्वामी जी ने उनसे गोवध बन्द करने का यत्न करने का आग्रह किया। कलकत्ता के हेमचन्द्र स्वामी जी के साथ यहाँ आये थे। उन्होंने कई बार स्वामी जी को रात के १२ बजे १ बजे जब उठकर देखा तो पद्मासन लगाये समाधिस्थ पाया। २० विश्वेश्वर दयाल शास्त्री सरवरिया ने एक दिन आधी रात को स्वामी जी से भेंट कर वर्णाश्रम पर प्रश्नोत्तर कर अपना भ्रम दूर किया।

पाँचवीं बार आगमन

सवत् १९३३ वि० ज्येष्ठ कृष्ण १ से ज्येष्ठ शुक्ल १ तक स्वामी जी ५वीं बार फर्रुखाबाद आकर १५ दिन वहा रहे। पाठशाला की दशा ठीक न देखकर उसे तोड़ दिया। २३ मई १९२६ ई० को वहां के दो बड़े ईसाई पादरियों से वार्तालाप करके ईसाई मत का खण्डन किया।

छठी बार आगमन

सवत् १९३६ वि० आश्विन सुदी १० (२५ सितम्बर सन् १८७९ ई०) को स्वामी जी आर्यसमाज के उत्सव पर फर्रुखाबाद आये और वहा नगर से १ मील गंगा के किनारे लाला कालीचरण रामचरण की पुष्पवाटिका मे द्वितीय आश्विन बदी ७ सवत् १९३६ तक रहे। फर्रुखाबाद और फतेहगढ़ मे अनेक व्याख्यान हुए। फर्रुखाबाद के पंडितों ने २४ प्रश्न लिखकर स्वामी जी के पास भेजे थे। १२ अक्तूबर को ये प्रश्न आर्यसमाज में पढ़े गये और उनके उत्तर महर्षि ने आर्यसमाज द्वारा भिजवाये। ये प्रश्नोत्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रश्नों का निर्माण मुख्य रूप से प० बलदेवप्रसाद बी०ए० हैडमास्टर हाईस्कूल ने किया था। उन्होंने एक धर्म सभा भी स्थापित की थी

धर्मसभा के पुत्तूलाल शुक्ल पहलवान और नारायण दुबे ने स्वामी जी के समर्थक चौबे तोताराम पर हाथ उठाया जिससे उनपर मुकदमा चला और उन दोनों को दण्ड मिला। सातवीं बार जब स्वामी जी ने फर्रुखाबाद आकर यह समाचार सुना तो उन्होंने मुकदमेबाजी की निन्दा की और सहनशीलता तथा उदारता का उपदेश दिया।

स्वामी जी के उत्तरों का प्रभाव अच्छा पड़ा। पं० बलदेवप्रसाद बी० ए० स्वयं आर्यसमाज में आने लगे और सभासद बन गये।

प्रश्न और उत्तर भारतसुदशा प्रवर्तक में उस समय छपे थे और फर्रुखाबाद के इतिहास में भी छपे हैं। किंतु स्वामी सत्यानन्द लिखित जीवन चरित्र से विदित होता है कि सन्यास कर्तव्य एवं मांस भक्षण सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर की भाषा भारतसुदशा प्रवर्तक और पं० लेखराम कृत जीवनकृत जीवन चरित्र से कुछ-कुछ भिन्नता है।

फतेहगढ़ में स्वामी जी ने आर्यसमाज १० नियमों को पूर्ण बताया था वहां व्याख्यान के बीच में एक शराबी कोलाहल मचाने लगा जो स्वामी जी के सिंहनाद से सर्वथा शान्त हो गया।

अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं में स्वामी जी की निर्धनों के प्रति सहानुभूति की सूचक निम्नलिखित घटना उल्लेखनीय है। सत्संग में शंका-समाधान के समय एक स्त्री को मैले कुचैले वस्त्र में लपेटकर अपना मरा बच्चा ले जाते हुए देखकर स्वामी जी ने इसका कारण पूछा तो उसने अपनी असमर्थता तथा निर्धनता को ही कारण बताया जिस पर स्वामी जी के नेत्रों से आंसुओं की झड़ी टूट पड़ी। उन्होंने आंसू पोंछते हुये कहा"–कभी यह भारत विभूति का भवन था। परन्तु आज मेरे बालकों के तन को ढांपने के लिए नया कपड़ा भी नहीं मिलता।"

सातवीं और अंतिम बार आगमन

वैशाख शुक्ल ११ सं० १९३७ (२ मई १८८० ई) गुरुवार को स्वामीजी अन्तिम बार फर्रुखाबाद आर्यसमाज के निमन्त्रण पर आये और आषाढ़ कृष्ण ८ तक लाला कालीचरण रामचरण रईस के बाग में विश्राम किया। फर्रुखाबाद आर्यसमाज में ११ और फतेहगढ़ में मुंशी गौरीलाल वकील के स्थान पर दो व्याख्यान अत्यन्त महत्वपूर्ण हुये। फतेहगढ़ में २९ मई १८८० शनिवार को व्याख्यान के पश्चात आर्यसमाज स्थापित हुआ।

२० जून १८८० रविवार को मुक्ति विषय पर स्वामी जी का ऐतिहासिक महत्वपूर्ण व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होंने मुक्ति से पुनरावृत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार निश्चित करने की घोषणा की और अपने समर्थन में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये—

(१) इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेद ।
—कपिल मुनि, सांख्य दर्शन१, १५९

(२) ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृता परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ —मुण्डक उपनिषद, ३-२

अर्थात मुक्त पुरुष परान्तकाल (महाप्रलय) अर्थात् ३१,१०४,०००,००,००० इकतीस नील दस [खरब चालीस अरब वर्षों तक ईश्वर के आश्रय में सुखपूर्वक] रहते हैं। यह मुक्ति की अवधि सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास मुक्ति प्रकरण में भी की गई है।

अन्तिम व्याख्यान २७ जून सन १८८० को आर्यसमाज भवन फर्रुखाबाद में वेद विषय पर अत्यन्त महत्वपूर्ण हुआ और वेदभाष्य के प्रकाशनार्थ धन प्रदान करने की प्रार्थना बाबू दुर्गाप्रसाद रईस के मुसाहब श्री मुंशी हरनारायण ने की।

विजय दशमी पर्व

आर्यसमाज मेस्टन रोड कानपुर में जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री प० विद्याधर जी की अध्यक्षता में विजय दशमी पर्व बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर यजमान श्रीयुत बा० वीरेन्द्र स्वरूप जी, प्रधान दयानन्द कालेज ट्रस्ट एण्ड मैनेजमेण्ड सोसायटी उत्तर प्रदेश और प्रवचनकर्ता स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती एवं डा० मुन्शीराम जी शर्मा थे। विशाल सभा में उपस्थित जन समुदाय ने धर्म और राष्ट्र रक्षा के निमित्त क्रियाशील उपासक बनने और बनाने का संकल्प किया।



ऋषिराज स्मरण





दयानन्द ऋषिराज तुम्हारा, श्रद्धा से करते गुण गान ।
तुमने सच्चा मार्ग दिखाया, करते सदा तुम्हारा मान ।।
सब पर दया दिखा कर तुमने, पाया था नित चिदानन्द ।
चरणचिह्न पर चलें तुम्हारे, जिससे हो सबका उत्थान ।।
तुम उद्धारसम वेद शास्त्र के, थे मर्मज्ञ परम आचार्य ।
तुमने तम सब दूर भगाया, दे वेदों का पावन ज्ञान ।।
दलितों का उद्धार किया नित, पतितों का तुमने उद्धार ।
बन कर सच्चे शिष्य तुम्हारे, हम कर लें सबका कल्याण ।।
महिलाएँ थीं बनी दासियाँ, पैरों की वे जूती तुल्य ।
सिंहनाद वेदों का करके, उन्हें दिलाया तुमने मान ।।
थे विदेशियों के चक्कर में, शिक्षित उन्हें देवता मान ।
तुमने जागृत किया स्वदेशी, था स्वराज्य का निज अभिमान ।।
जाति भेद अस्पृश्य भावना, घुण बन खाते राष्ट्र समाज ।
इनको भगा सिखाया तुमने, ईश्वर के सब पुत्र समान ।
त्याग तपस्या सत्य विमलता, निर्भयता तुम थे साकार ।
क्यों न नवायें सीस तुम्हारे, सम्मुख ऋषिवर भानु समान ।।
ईश्वर तेरी इच्छा पूरी, हो तूने शुभ लीला की ।
यह कह करके शान्त भाव से, किया धर्म हित निज बलिदान ।।
तुम आदर्श समाज सुधारक, तुम्हीं विश्व के सच्चे नायक ।
यतिवर युग निर्माता तुम थे, तुम थे शुभ गुण गण की खान ।।
एकेश्वर पूजा सिखलाई, भेद भावना दूर भगाई ।
वेद मार्ग की रीति चलाई, करते देव तुम्हारा ध्यान ।।



—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ)

आनन्द कुटी, ज्वालापुर



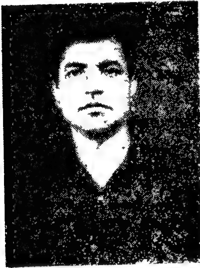


गुहता गुह्यं तमो !



(श्री विक्रमादित्य जी वसन्त स० कोषाध्यक्ष आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश)

संसार के प्रत्येक देश मे विभिन्न ऋतुओ मे अनेक पर्व मनाए जाते हैं । कुछ पर्वों का सम्बन्ध जहां ऋतु परिवर्तन से होता है,वहां कुछ पर्व महान् विभूतियों के आदर्शों की स्मृति को स्थायी रूप से जीवित रखने के लिए भी निश्चित कर दिये जाते हैं । भारतवर्ष मे दीपावली का



श्री विक्रमादित्य जी 'वसन्त'

पर्व एक ऐसा पुनीत पर्व है जिसका सम्बन्ध ऋतु परिवर्तन के साथ २ अनेक महान् पुरुषो के जीवन आदर्शों से भी जुडा हुआ है । पर्व आनन्द के प्रतीक हैं और आनन्द शुचिता से प्राप्त होता है । शुचिता तप से मिलती है और तप शक्तिवान ही कर सकता है ।

दीपावली की अन्धतम रात्रि को हम जिस प्रकार दीपों के प्रकाश से उज्जवलता प्रदान कराते हैं वैसे ही सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में पाप रूपी गहन तम को दूर करने वाले धनुर्धारी मर्यादा पुरुषोत्तम राम और महान तपस्वी ऋषि दयानन्द के आदर्शों को गुञ्जाने के लिए हम प्रथम अपने अन्तरतम को ज्ञान के आलोक से आलोकित करते हैं ततपश्चात अपने जीवन दीप से जीवन दीपो को जलाने का क्रम चालू रहता है तब तक समाज मे सुख शान्ति और समृद्धि की अभिवृद्धि होती रहती है किन्तु जब यह क्रम अवरुद्ध हो जाता है तो पाप के तिमिर युक्त वृत्त मे मानवी जीवन पथ भ्रष्ट होकर ठोकरें खाने लगता है और दुखों व तापो से सन्तप्त होकर त्राहि-त्राहि करने लगता है ।

युग प्रवर्तक ऐसे ही अन्धकार के निवारण का व्रत लेते हैं और मनस्वी व तपस्वी होकर जब मानव समूह को सरस्वी कर देते हैं तो जगत मे यशस्वी होकर अमर हो जाते हैं । ऐसे महान पुरुषो को पर्वों पर श्रद्धांजलियां अर्पित करना स्वाभाविक ही है परन्तु मौखिक श्रद्धांजलियों से वह श्रेष्ठ कार्य्य तो सिद्ध नहीं होता जिसकी पूर्ति के लिए महान विभूतियां स्वाहुत होती हैं । सच्ची श्रद्धान्जलि तो वह है जो कर्म के रूप मे दी जाए । चित्र की नहीं चरित्र की पूजा होनी चाहिए । गुण गान के साथ गुण ग्रहण किए जाने चाहिए । कर्म ही वास्तविक पूजा है और श्रेष्ठ कर्म के निमित्त श्रद्धा और ज्ञान का होना आवश्यक है । मस्तिष्क का विवेक पथ, का प्रदर्शन करता है और हृदय की श्रद्धा लक्ष्य तक पहुचाने का एक वाहन है ।

तो आइए इस ऋषि निर्वाण पर्व पर ऋषि दयानन्द को श्रद्धांजलि अर्पण करने के निमित्त हम अपना आत्म-निरीक्षण करते हुए एक व्रत लें कि अपने अन्तर के अन्धकार को वेद की पावन ज्योति से दूर करके हम अपने जगमगाते हुए जीवन दीप से दूसरों के जीवन दीप जलायेंगे । एक-एक घर मे ज्ञान के दीप जलाकर पाखण्ड रूपी अन्धकार का समूल नाश करेंगे । प्रमाद रूपी तम को तप रूपी ज्योति मे परिवर्तित करेंगे । अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करेंगे । जिस ईश्वरीय ज्ञान को ऋषि

(शेष पृष्ठ ६२ पर)

श्री प्रकाशवीरजी शास्त्री एम.पी. ऋषि निर्वाणोत्सव के अध्यक्ष होंगे

नयी दिल्ली २१-१०-६६ आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली राज्य के तत्वावधान मे शुक्रवार दि० ११-११-६६ को रामलीला मैदान नई दिल्ली मे प्रात ८ से १२ बजे तक महर्षि दयानन्दजी सरस्वती का ८३ वाँ निर्वाणोत्सव मनाया जा रहा है।

ध्वजारोहण पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी एटा वाले करेंगे। इस अवसर पर स्वामी आनन्द भिक्षु जी महाराज, आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, प्रोफेसर उत्तमचन्द जी शरर, प्रो० सत्यभूषण जी योगी, श्री वेदराज जी चौधरी तथा अन्य नेता व विद्वान स्वामी दयानन्द जी को श्रद्धांजलि भेंट करेंगे।

इस उत्सव मे प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, रक्षा मन्त्री वाई० वी० चौह्वाण, राजा दिनेशसिंह जी मन्त्री विदेश मन्त्रालय, श्री राजबहादुर, जो सूचना एव प्रासारण मन्त्री के पधारने की भी सम्भावना है।।

—रामनाथ सहगल प्रधान-मन्त्री

भूल सुधार

२३ अक्तूबर के आर्यमित्र अक ४०मे पृष्ठ ५ पर यज्ञ शीर्षक लेख की लेखिका श्री मानन्वी देवी जी मन्त्रिणी स्त्री आ०स० कांठ भूल से छपा है। अब वे इस समय मन्त्रिणी नहीं हैं। —सपादक

महर्षि दयानन्द के सम्पर्क ने हमारे परिवार को देश पर मरना सिखाया

देहरादून में अमर हुतात्मा सरदार भगतसिंह के भाई के उद्गार

आर्य वीर दल की ओर से वीर क्रान्तिकारियों का अभिनन्दन

आर्यवीर दल की ओर से आर्यसमाज मन्दिर देहरादून में अमर हुतात्मा सरदार भगतसिंह के भाइयों सर्वश्री कुलबीर सिंह और रणवीर सिंह तथा स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर जी के साथी तथा उनके वर्षों तक निजी सहायक रहने वाले क्रान्तिकारी श्री बालाराव सावरकर का ११ अक्तूबर को अभिनन्दन किया गया।

सरदार भगतसिंह के भाई श्री कुलतारसिंह ने अपने भाषण में कहा कि आधुनिक युग में देश भक्ति तथा चरित्रोत्थान की लहर महर्षि दयानन्द ने ही चलाई थी। आपने कहा कि 'स्वामी दयानन्द जब पंजाब के शहर होशियारपुर में पधारे तो हमारे पितामह सरदार अर्जुनसिंह उनका प्रवचन सुनने कई मील पैदल चलकर होश्यारपुर पहुंचे। उस समय के सिख जाटों में मदिरा पान तथा मांस भक्षण आदि के जो व्यसन आम थे, वे हमारे बाबा जी में भी थे परन्तु महर्षि के सम्पर्क ने ऐसा जादू किया कि वे पक्के आर्यसमाजी बन गये और वे व्यसन सदा के लिए त्याग दिये। फिर हमारे पिता जी और दोनों चचा भी आर्यसमाज के संस्कारों में ही पले। जब सरदार भगतसिंह का जन्म हुआ तो पिता जी और दोनों चचा देश भक्ति के अपराध में अंग्रेजों की जेलों में पड़े थे। भगत का जन्म होने पर वे शीघ्र ही जमानतों आदि पर छोड़ दिये गये, इसने इस बालक को 'भागा वाला' माना। आपने कहा कि भगतसिंह जी जब नाम बदलकर कानपुर में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में सहायक का काम करते थे, तो बहुत अच्छी हिन्दी लिखने लगे थे। पंजाब के एक सिख परिवार में जन्मे पले युवक में इतनी अच्छी हिन्दी लिखने की क्षमता आ जाना केवल आर्यसमाज के कारण ही सम्भव हुआ।

अमर हुतात्मा के छोटे भाई श्री रणवीरसिंह ने कहा कि हमारा परिवार आर्यसमाज का बहुत ऋणी है। आप के इस निराशापूर्ण वातावरण में आर्यसमाज से ही आशा की जाती है कि वह चरित्रोत्थान द्वारा राष्ट्र को सबल बना सकता है।

स्वतन्त्रता के लिए अपना रक्तदान ही पर्याप्त नहीं, शत्रु का रक्त भी बहाना पड़ता है।

श्री बालाराव सावरकर ने कहा अभी कवि महानुभावों ने अपनी कविताओं में कहा कि स्वतन्त्रता के लिए अपना रक्त देना पड़ता है, परन्तु वीर सावरकर कहा करते थे कि स्वतन्त्रता के लिए केवल अपना रक्त बहाना ही पर्याप्त नहीं है, उसके लिए शत्रुओं का रक्त बहाना भी बहुत आवश्यक है। वीर सावरकर जी द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी को दिए गये अनेक शब्दों का आपने उल्लेख किया जो आज हिन्दी में सुप्रचलित हैं। वीर सावरकर भाषा-शुद्धि के बहुत बड़े पक्षपाती थे, भाषा को खिचड़ी बनाना उन्हें पसन्द नहीं था। स्वतन्त्रता से पूर्व उन्होंने कहा था कि भारत की राष्ट्रभाषा ऐसी संस्कृत-निष्ठ हिन्दी होनी चाहिये जैसी स्वामी दयानन्द जी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में लिखी है।

श्री बालाराव ने पाकिस्तानी क्षेत्रों से अपने जवानों को पीछे हटाने के पग की कटु आलोचना की। आपने कहा कि हम विश्व जनमत का भय दिखाकर अपनी कायरता को छिपाने का निरर्थक प्रयास करते हैं। अमेरिका यदि आज दक्षिण वियतनाम में बैठा है और रूस जब पूर्वी जर्मनी में बैठा है तो हमें अपने ही देश के अन्यायपूर्वक पृथक् किए गये भाग में जाकर डटने से कौन किस मुंह से रोक सकता था। आपने सब युवकों को आह्वान किया कि व्यर्थ के आन्दोलनों को छोड़कर सरकार से एक ही मांग करें कि उन सब को सैनिक प्रशिक्षण दिया जावे और बड़े से बड़े अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण अविलम्ब किया जाए। सैनिक दृष्टि से सबल बने बिना हम सम्मान पूर्वक नहीं जी सकते।

स्वत्वाधिकारिणी आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के लिए भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ में श्री बाबूराम भारती द्वारा मुद्रित प्रकाशित ।

ओ३म्
आर्यमित्र
ज्ञानाग्निः समिध्यते

स्वामी ध्रुवानन्द-अङ्क

स्वामी जी की पाँच बातें

आर्यसमाज की उन्नति और प्रगति को लक्ष्य मे रखकर मैने पाच बातो को सोचा है, जिनकी ओर मै प्रत्येक आर्य का ध्यान आकृष्ट करता हू। यदि आय भाई-बहन इन बातो को क्रिया मे लायेंगे तो उनकी वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति होने मे पूरी सहायता मिलेगी, ऐसी मेरी धारणा है।

१—प्रत्येक आर्य सदस्य और सदस्या, रात्रि को सोते समय, कम से कम, एक मिनट यह सोचे कि आज मैने मन, वचन या शरीर से कोई ऐसा काय तो नही किया जिससे आर्यसमाज का यश दूषित हुआ हो।

२—प्रत्येक आर्य सदस्य सपरिवार आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सग मे सम्मिलित हो।

३—प्रत्येक आर्य सदस्य, सभव हो तो दोनो समय, अन्यथा एक समय तो अवश्य ही, सपरिवार सम्मिलित उपासना करे।

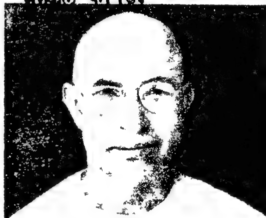
४—प्रत्येक आर्य सदस्य, अपनी आयका शताश स्वयमेव आर्यसमाज मे जाकर अवश्य दे।

५—आर्यसमाज के मत्री और प्रधान का कर्त्तव्य है कि वे यह देखें कि उनके साप्ताहिक सत्सगो मे कौन सदस्य क्यो उपस्थित नहीं हुआ। सम्मिलित न होने का कारण जानकर उसे निवारण करने की चेष्टा करनी चाहिये।

ध्रुवानन्द सरस्वती

इस अङ्क का मूल्य ५० नये पैसे

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती
गुरुकुल कांगड़ी



जन्म सन् १८८२ देहावसान २९ जून १९६५

जिन स्वामी जी ने पावन गुण गण धारे,
प्रभु की इच्छा है, वे अब स्वर्ग सिधारे।
उनके अनुयायी बनें, ईश वह बल दो,
जीवन कर्मण्य, पवित्र, निपट निर्मल हो।
भौतिक शरीर तो नष्ट हुआ करता है,
पर, अमर आत्मा कभी नहीं मरता है।
ऐसे सन्तों का सुयश सदा छाएगा,
जो भक्त जनों को सत्पथ दिखलाएगा।
—डा० हरिशङ्कर शर्मा डी० लिट

आर्य नेताओं की श्रद्धाञ्जलियां



श्रद्धेय स्वामी ध्रुवानन्द महाराज सदा के लिए इन स्थूल नेत्रों से ओझल हो गए। आर्यसमाज के संगठन को सर्वोपरि समझने वाले, देश विदेश में महर्षि दयानन्द का सन्देश पहुंचाने वाले, सारा ही जीवन आर्यसमाज के हित में लगा देने वाले स्वामीध्रुवानन्द जी हा शोक ! चले गये! हृदय रोग के साथ पर्याप्त युद्ध उन्होंने किया। रोग-पीड़ित होते हुए भाग दौड़ करते रहे ताकि आर्य समाज का गौरव बना रहे, बढ़ता रहे और अब सारा बोझ आर्य मात्र पर छोड़ चिरकाल के लिए विश्राम करने चले गये। —आनन्दस्वामी सरस्वती

—स्वामी जी के निधन के समाचार से भारी चोट लगी। —अनन्तस्वामी सरस्वती

—स्वामी कर्मठ कर्मयोगी थे। उनका जीवन आर्य समाज की सेवा करते हुए ही समाप्त हुआ। उनके जीवन में कोई भी धब्बा न था।

स्वामी ब्रह्मानन्द दण्डी आर्य गुरुकुल, एटा

—पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी के निधन से महान दुख हुआ। उनके निधन से आर्यजगत और राष्ट्र की गहरी क्षति हुई है। हम सबका कर्तव्य है कि उनके पद-चिन्हों पर चलते हुए उनके कार्यों की पूर्ति करें।

—पूर्णचन्द्र एडवोकेट भूतपूर्व प्रधान सा०दे० सभा माईथान आगरा

—स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का सहसा एवं असामयिक निधन आर्यजगत् के लिए वज्राघात से अधिक भयंकर है।

कुछ समझ में नहीं आ रहा कि देश के भाग्य में क्या है। जब पथ-प्रदर्शन की अनिवार्य आवश्यकता है तब एक एक करके धार्मिक, सामाजिक,साहित्यिक तथा राजनैतिक स्तम्भ टूटते चले जा रहे हैं। मुझे तो भविष्य अन्धकार मय प्रतीत होता है क्योंकि जो हृदय-विदारक अभाव होता जा रहा है उसकी पूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती परमेश्वर ! पाहिमाम् !

(राजा) रणजयसिंह एम०पी०, अमेठी

—स्वामी जी के देहावसान का दुःखद समाचार सुन कर अवाक् रह गया। स्वामी जी की मृत्यु आर्यसमाज पर ऐसा वज्रपात है कि उसके प्रभाव को आर्यसमाज सहन कर सकेगा इसमें मुझे सन्देह है।

पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज ने अपना सर्वस्व आर्यसमाज के चरणों में अर्पित कर दिया था। वृद्धावस्था में भी वह अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न कर आर्यसमाज की ज्योति की रक्षा व प्रसार के लिए ही रात-दिन भागते रहे थे। —ओमप्रकाश त्यागी, टरोरो (पूर्वी अफ्रीका)

—एक अत्यन्त दुखद समाचार कानों में पड़ा कि आर्यसमाज के महान नेता और वीतराग सन्यासी स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज इस संसार से उठ गये हैं। स्वा० ध्रुवानन्द जी अपने को आर्यसमाज के अर्पण कर चुके थे। उनकी गणना हम अपने उन नेताओं में कर सकते हैं जिन्होंने होश संभालते ही आर्यसमाज का आंचल पकड़ा और फिर जीवन के अन्तिम सांस तक उसे नहीं छोड़ा। केवल आंचल ही नहीं पकड़ा बल्कि उसकी सेवा में अपने जीवन का एक-एक पल लगा दिया। सोते-जागते, उठते बैठते उन्हें सिवा आर्यसमाज के किसी दूसरी बात की चिन्ता न थी।

स्वामी जी की मृत्यु से आर्यसमाज में एक ऐसा स्थान रिक्त हुआ है जो सुगमता से न भरेगा।

वस्तुतः आर्यसमाज अब एक ऐसे युग में प्रविष्ट हो चुका है जहां वह उत्तरोत्तर कमजोर ही होता जा रहा है। उसके पुराने महारथी उसे छोड़ते जा रहे हैं, उनका स्थान लेने वाले नये पैदा नहीं हो रहे। आज जब आर्य समाज की नाव मझधार में है और जबकि किसी ऐसे नेता की जरूरत है जो उसे उसमें से निकाल सके स्वामी ध्रुवानन्द का वियोग आर्यसमाज के लिए एक ऐसी हानि है जिसकी पूर्ति न हो सकेगी।

वीरेन्द्र एम० ए० (वीर प्रताप जालंधर)

—आर्यसमाज का महान् सेनानी हम सबको छोड़कर परमधाम को प्राप्त हो गया। उनकी जीवन यात्रा आ० स० के एक लम्बे इतिहास में एक बड़े अध्याय के रूप में याद रहेगी। उनके निधन से भारी सूनापन, नेतृत्व, व सबको एक कड़ी में आबद्ध करने की क्षमता का अभाव प्रतीत होने लगा। —वीरसेन वेदश्रमी इन्दौर

ओ३म्

साप्ताहिक **आर्य्यमित्र** स्वामी ध्रुवानन्द-अङ्क

अवैतनिक सम्पादक उमेशचन्द्र स्नातक एम० ए० मूल्य ५० पैसा

वर्ष ६८ | लखनऊ रविवार पौष १९ शक १८८७, माघ कृ० ३ वि० २०२२ | अङ्क १-२
२, ९ जनवरी सन् १९६६ ई०, दयानन्दाब्द १४१, सृष्टि संवत १,९७,२९,४९,०६६

ओ३म् और गायत्री मन्त्र

[व्याख्या]

(यह व्याख्या श्री स्वामी जी ने अपने विद्यार्थी काल मे की थी। यह उनकी हस्तलिपि से छापी जाती है।—सपादक)

ओ३म्

ओ३म् अकार, उकार, मकार इन तीन अक्षरो से बनता है ॥१॥ अकार का अर्थ (विराट्[1] अग्नि[2] विश्वादिनी[3]) विराट से हर एक चर अचर ससार को प्रकाशित करता है उसको विराट् कहते हैं (अग्नि) वेदो से जो प्राप्त हो उसको अग्नि कहते (विश्व) स्थित हैं आकाश पृथिवी मनुष्य जिसमे वह विश्व, ये तीनो परमेश्वर के नाम हैं। उकार से (हिरण्य गर्भ [वायू] तैजसादीनी) सूर्यादि तेज हैं अन्दर जिसके वह हिरण्यगर्भ ईश्वर है (वायू) जो अत्यन्त बल से ससार को धारण करता है वह वायू ईश्वर का नाम है (तैजस) सूर्य को प्रकाश देने स्वय प्रकाश वाला होने से तैजस नाम ईश्वर का है (मकार से) (ईश्वर आदित्य प्राज्ञादीनि) ईश्वर सर्वशक्तिमान् न्यायकारि है (आदित्य) कभी नाश न होने से ईश्वर आदित्य है प्राज्ञादीनि (प्राज्ञादीनि) अच्छी तरह ससार को जानता है इसलिये परमेश्व का प्राज्ञ है ॥१॥ यह ओ३म् का अर्थ है अब गायत्री मन्त्र आगे लिखा जायगा—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यु अ० ३६ म० ३ ॥

यह गायत्री मन्त्र है (भू) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राणो से प्रिय है (भुव) जो मुक्ति की इच्छा करने वालो को मुक्ति और अपने सेवको को दुःख से पृथक् करके सर्वदा सुख मे रखना है (स्व) सब जगत् मे व्यापक सबको नियम में रखता सबके ठहरने का स्थान तथा सुख स्वरूप है (तत् सवितु) सब जगत् का पैदा करने वाला (**वरेण्यं**) सबको ग्रहण करने योग्य (**भर्ग**) पापो के नाश करने वाला (**देवस्य**) देवयामी परमात्मा का (**धीमही**) हम ध्यान करते हैं (**यो**) जो (**न**) हमारी (**धिय**) बुद्धियो को (**प्रचोदयात्**) धर्म के कामो मे लगाइये पाप से हटाकर श्रेष्ठ कामों में लगाइये। गायत्री का अर्थ हो गया। इतिशम् ह० धुरेन्द्र विद्यार्थी ॥१॥

●



सम्पादकीय—

आर्यसमाज की अनुपम विभूति

स्व० स्वामी ध्रुवानंदजी महाराज

पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज आर्यसमाज के उज्ज्वलतम रत्न थे उनका जीवन वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिये आदर्श ज्योतिस्तम्भ बना रहेगा।

यह एक विचित्र सयोग की ही बात है कि जिस पावन व्रज भूमि ने योगिराज श्री कृष्ण को जन्म महर्षि दयानन्द को दीक्षा और राजर्षि महेन्द्रप्रताप को देशभक्ति से आप्लावित किया उसी पवित्र भूमि मे स्वामी जी ने जन्म और शिक्षा प्राप्त की साधारणतया व्यक्ति गुरु की खोज करते हैं पर वास्तव में आपकी खोज श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने की और इस अनुपम रत्न को आर्यसमाज को भेंट कर दिया।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज महर्षि दयानन्द के आदर्श अनुयायी और आर्यसमाज के कर्मठ प्रचारक थे वे वीतराग तो थे ही सस्था और सगठनवाद से भी असम्पृक्त थे। वे कर्म मे और कर्तव्य पालन मे विश्वास रखते थे। उन्होंने स्वामी ध्रुवानन्द जैसे आदर्श शिष्य का निर्माण उसी साधना और तन्मयता से किया था जैसे आचार्य प्रवर विरजानन्द जी महाराज ने महर्षि दयानन्द का मथुरा की पाठशाला मे किया था। स्वामी सर्वदानन्द और स्वामी ध्रुवानन्द की साधना - स्थली भी मथुरा ही बनी यह एक आकस्मिक सयोग तो हुआ ही दोनों गुरु शिष्यों के लिए गौरव का विषय भी।

धुरेन्द्र शास्त्री से राजगुरु और स्वामी ध्रुवानन्द तक स्वामी जी का जीवन आर्यसमाजमय ही रहा, स्वामी जी के लिए अन्य सब कार्य आर्यसमाज की अपेक्षा गौण थे क्योंकि वे मानते थे कि आर्यसमाज की रक्षा और उन्नति से ही अन्य सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं।

स्वामी ध्रुवानन्द जी ने अपने प्रारम्भिक सामाजिक जीवन से ही राजवर्ग एव श्रेष्ठीवर्ग को प्रभावित कर लिया था। कालाकांकर और शाहपुरा में आपने राज परिवारों को आर्यसमाज के निकट लाने में सफलता प्राप्त की। दोनों राजपरिवार आज भी आर्यसमाजी हैं और आर्यसमाज के लिए सक्रिय हैं।

बिहार मे आर्यप्रतिनिधि सभा गुरुकुल वैद्यनाथ धाम आदि का सगठन और विस्तार आपकी उल्लेखनीय सेवा है।

उत्तरप्रदेश तो आपका अपना घर ही था। आ० प्र० सभा उत्तरप्रदेश के निर्माण विकास और प्रतिष्ठा का आपको जितना ध्यान था उतना अन्य किसी को नहीं।

हैदराबाद सत्याग्रह के सेनानायक रूप में आपने उ० प्र० के सम्मान को बढाया आपको प्रतिनिधि सभा ने आप की अनुपस्थिति मे प्रधान निर्वाचित कर गौरवान्वित किया। सार्वदेशिक सभा के भी आप अनेक बार प्रधान निर्वाचित हुए और मारीशस, अफ्रीका मलाया थाईलैंड की विदेश प्रचार यात्राओ द्वारा आपने आर्यसमाज का सन्देश विश्व के दिग्दिगन्त मे प्रसारित किया।

आपको हर समय एक ही धुन रहती थी कि आर्य समाज की उन्नति हो वे जब आर्यजनो मे उदासीनता या ध्यनि क्रम अनुभव करते तो आत्म निरीक्षण करते तथा अन्यो को भी प्रेरणा करने। आर्यसमाज की उन्नति के लिये आप सदैव प्रेरणा करते रहे। उनके सूत्रों का पालन कर हम आर्यसमाज को आगे बढा सकते हैं।

आर्यसमाज के सगठन को सुदृढ बनाने के लिए स्वा० जी ने जो भी ठीक समझा सदा किया। उनकी सदाशयता को दृष्टि मे रखते हुए हमे ऐसा दृढ प्रयत्न करना चाहिये कि स्वामी जी की भावना फलवती हो।

सगठन को सुदृढ बनाने मे उनकी नीति से कोई सहमत हो या न हो उनके उद्देश्य का हम सब आदर करते है और स्वामी जी के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धाजलि होगी कि हम अपने अनथक प्रयत्न से आर्यसमाज को सुदृढ और सुस्थिर बनावें।

आर्यमित्र और स्वामी जी का इतना अधिक घनिष्ट सम्बन्ध रहा कि दोनो कभी पृथक् नही किये जा सके। स्वामी जी कही भी रहे हो आर्यमित्र की उन्नति चिन्ता सदैव करते रहे, आर्यमित्र के जीवन मे जब-जब भी सकट आया स्वामी जी ने सहारा दिया और दौड़ धूप की। पिछले दिनो मित्र की सुस्थिरता मे वे बहुत प्रसन्न थे और उनका आशीर्वाद मित्र को प्राप्त था, हम मित्र परिवार की ओर से स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हम सदैव प्रयत्न करेंगे कि स्वामी जी की भावनाओ के अनुरूप मित्र कार्य करे और आर्यसमाज का कार्य आगे बढ़े।

स्व० श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज

[श्री—डा० हरिशङ्कर जी शर्म्मा, डी० लिट०]

सद्धर्म्म धाम श्री ध्रुवानन्द सन्यासी,
जिनकी सुकीर्ति फैली है, पुण्य प्रभा-सी।
थे वीतराग, तप-त्याग वृत्ति-बल धारी,
'मानवता' की मृदु मूर्ति लोक-उपकारी।

ऋषि दयानन्द-निर्दिष्ट मार्ग अपनाया,
वैदिकता का अनुपम आदर्श दिखाया।
निर्भय, निरीह, उज्वल उदात्त जीवन था,
जन सेवा सत् कर्तव्य धर्म्म-धी धन था।

था वर विशाल व्यक्तित्व तेजधारी थे,
सबके शुचि शुभ चिंतक थे, हितकारी थे।
सर्वदानन्द स्वामी ने जब अपनाया,
तो पाल पोस कर पण्डित इन्हे बनाया।

कर्त्तव्य कर्म्म का शुभ सन्मार्ग सुझाया,
ऋषि दयानन्द का गुण-गौरव समझाया।
आजन्म ब्रह्मचारी रह आयु बितायी,
पण्डित धुरेन्द्र शास्त्री बन कीर्त्ति कमायी।

जब ब्रह्मचर्य आश्रम से हुई उदासी,
तो बने विज्ञ वर 'ध्रुवानन्द सन्यासी'।
कल्याणी वाणी अमृत बरसाती थी,
दिग्भ्रान्त जनों को सत् पथ दिखलाती थी।

जनता को धर्म्म कर्म्म का मर्म बताया,
ऋषि दयानन्द का शुभ सन्देश सुनाया।
वे धर्म्म हेतु सोत्साह सदैव विचरते,
मन, वचन, कर्म्म से सब की सेवा करते।

जब-जब समाज पर सकट-घन घहराये,
जब जब विरोधियो ने विष-बाण चलाये,
तब-तब नृसिंह, निर्भय बन आगे आये,
तज प्राण मोह कर्त्तव्य मार्ग पर धाए।

वह भरत-मिलाप-दृश्य कैसा सुन्दर था,
जब शुद्धि आन्दोलन-प्रभाव घर-घर था।
तब रमे रात-दिन बिछुडे बन्धु मनाए,
कर पूर्ण यत्न भूले-भटके अपनाए।

जब राज्य हैदराबाद बना अन्यायी,
निष्पक्ष भाव मिट गया, क्रूरता छायी!
बहु सख्यक लोग न धर्म्म कर्म्म कर पाते,
करते तो दण्डित होते, कष्ट उठाते।

नागरिक चेतना नष्ट हुई जाती थी,
विषयुक्त विषमता विपद-वज्र ढाती थी।
तब आर्य्यसमाज वीर बन आगे आया,
'सत्याग्रह' द्वारा अत्याचार मिटाया।

मिल गयी सफलता सकट के दिन बीते,
हो गये आर्य्यवीरो के मन के चीते।
जब आर्य्यजगत् ने सत्य हेतु हठ ठानी,
तब श्री ध्रुवेन्द्र शास्त्री भी थे सेनानी।

सत्याग्रह किया, जेल-जीवन अपनाया,
बन्दी बन वैदिक तत्त्व-महत्त्व दिखाया।
जब सिन्ध प्रान्त को क्षुद्र भाव भाया था,
'सत्यार्थप्रकाश' भयकर ठहराया था।

तब दे चुनौतियाँ सिंह समान दहाडे,
वैरी-विरोधियो के दल-दर्प पछाडे।
भारत के शुभ स्वातन्त्र्य समर मे आए,
तब सत्य-अहिंसा सत् साधन अपनाए।

दासता नष्ट हो वे उपाय बतलाए,
कारागारो मे कुछ वर्ष बिताए,
अति उच्च आर्य्य नेता थे, सत् साधक थे,
ऋषि दयानन्द के अविचल आराधक थे।

जिसका जीवन औरो के लिए रहा था,
जिसने जन-सेवा मे अति कष्ट सहा था,
जो सदा सत्य-सम्पन्न निपट निश्छल था,
उस सन्यासी का जीवन-जन्म सफल था।



पहले प्रादेशिक प्रतिनिधि को अपनाया,
फिर आर्य्य सार्वदेशिक प्रधान-पद पाया।
सब कार्य्य व्यवस्था दृढ़ता से करते थे,
निष्पक्ष न्याय-पद्धति नित अनुसरते थे।

कुछ वर्ष विदेशों में भी धर्म्म प्रचारा,
वैदिक शिक्षा का भव्य भाव विस्तारा,
बन गये प्रवासी भारतीय अनुयायी,
सर्वत्र सुयश की धवल ध्वजा फहरायी।

प्रिय भारतीय भावों को अपनाया था,
नित आर्य्य संस्कृति का गौरव गाया था।
बाल्यावस्था मे पुर-परिवार बिसारा,
बन विबुध विश्व बन्धुत्व विमल विस्तारा।

थे सन्त सर्वदानन्द परम उपकारी,
उनके थे शिष्य धुरेन्द्र आज्ञाकारी।
वे साधुआश्रम के सत संचालक थे,
सब भद्र भावनाओं के परिपालक थे।

निज गुरुवर का आदर्श सदा अपनाया,
कर्त्तव्य मार्ग से कभी न पैर हटाया।
शुचिता के ही साधक थे, उन्नायक थे,
वे आर्य्य जाति के नेता या नायक थे।

राजाओं, राजकुमारों के गुरु ज्ञानी,
श्री ध्रुवानन्द थे वर विद्या-दानी।
इन परिवारों मे पूर्ण प्रतिष्ठा पाई,
वैदिक विधान की उज्वल ज्योति जगाई।

जिन स्वामी जी ने पावन गुण गण धारे,
प्रभु की इच्छा है, वे अब स्वर्ग सिधारे!
उनके अनुयायी बनें, ईश वह बल दो,
जीवन कर्म्मण्य, पवित्र, निपट निर्मल हो।

भौतिक शरीर तो नष्ट हुआ करता है,
पर, अमर आत्मा कभी नहीं मरता है।
ऐसे सन्तों का सुयश सदा छाएगा,
जो भक्त जनों को सत्पथ दिखलाएगा।



श्रद्धांजलि

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी आर्य-जगत् के एक अनमोल रत्न थे, जिनके अकस्मात स्वर्गवास से आर्यसमाज को एक गहरा धक्का लगा है तथा उसकी प्रगति मे भी प्रबल क्षति हुयी है। ऐसी महान् विभूति को खोकर हम अत्यन्त दुःखी हैं।

वीतराग स्वामी ध्रुवानन्द जो बाल्यकाल से ही, तपस्वी स्वामी सर्वदानन्द जी के सहवास मे रहे और वेद-वेदागो का अध्ययन करके आर्य-जगत् के समक्ष राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। समस्त जीवन को ब्रह्मचर्य पालन करके, वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार मे समर्पित किया और भारत के स्वतन्त्रता संग्राम मे भी सम्मिलित होकर जेल यात्राये की। १९३८-३९ मे हैदराबाद सत्याग्रह में सर्वाधिकारी की हैसियत से सत्याग्रह कर जेलयात्रा की। देश-देशान्तर का पर्यटन करके आर्य-संसार के समक्ष ज्योतिस्तम्भ के तुल्य वे सदैव उपस्थित रहेगे तथा उनका जीवन हमे तपोमय आदर्शों के लिए अनुप्राणित करता रहेगा।

मदनमोहन वर्मा
प्रधान आर्य्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर-प्रदेश

●

कर्मठ संन्यासी

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी आर्यसमाज के सुविख्यात नेता और मार्ग दर्शक थे। वह आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उन्होने अपने पवित्र और आदर्श जीवन के द्वारा हजारों व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखाया। उन्होने आर्यसमाज की अन्त समय तक सेवा की। वे कर्मठ सन्यासी थे। वह सदैव बातचीत में आर्यसमाज की उन्नति की ही बात करते थे। उन्होने आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की बहुत उन्नति की। सभा की आर्थिक दशा सुधारने मे उन का योग सराहनीय रहा। वह आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न थे। उन पर आर्यसमाज को गर्व था।

—चन्द्रदत्त मन्त्री, आर्य्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश



ऋषि-भक्त स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती

[ले —श्री आनन्द स्वामी जी सरस्वती महाराज]

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती के साथ चिरकाल से मेरा सम्बन्ध रहा है। जब वे राजगुरु पंडित धुरेन्द्र शास्त्री थे तब मैं लाहौर में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान का पहले मंत्री, पुनः प्रधान था। मैंने राजगुरु जी से प्रार्थना की कि आप कृपया इन तीन प्रान्तों का भी भ्रमण कीजिए जिसे राजगुरु जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और इन प्रान्तों के बड़े बड़े विशेष नगरों में राजगुरु जी के भाषणों का प्रबन्ध किया गया। उनकी सेवा में खुशहालचन्द जी के सुपुत्र युद्धवीर जी को उनके साथ कर दिया गया। जहाँ कहीं राजगुरु पहुंचे उनका भव्य स्वागत हुआ और जनता ने उनके भाषणों से पर्याप्त लाभ उठाया और भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे जहां कहीं पधारते वहीं के आर्य नर-नारियों को सच्चा आर्य बनने का उपदेश देते।

(२) जब हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ और राजगुरु जी चौथे सर्व अधिकारी के रूप में अपना प्रबल दल लेकर गुलबर्गा जेल में पहुंचे, मैं तीसरे अधिकारी के रूप में गुलबर्गा जेल का वासी बन चुका हुआ था। सारे जेल ने राजगुरु जी को सिर पर उठा लिया और इन के स्वागत में जेल ही के अन्दर एक भव्य सम्मेलन हुआ जिसमें राजगुरु जी ने भाषण देते हुए यह कहा कि आर्य सत्याग्रही अपनी मांगें पूरी होने पर ही जेल से बाहर निकलेंगे और यदि मांगें पूरी न हुईं तो हमारी लाशों से यह जेल श्मशान भूमि बन जाएगा। सहस्रों सत्याग्रहियों ने उसी समय कहा कि "हम घरों से सिर पर कफन बांध कर आए हैं" और अन्त में आर्यसमाज के सत्याग्रही विजय पताका लहराते जेलों से बाहर आए।

(३) एक बार राजगुरु जी मुझे कहने लगे कि मुझे भी गंगोत्री ले चलिए जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया। तब गंगोत्री जाने के लिए उत्तरकाशी से ५६ मील पैदल चलना होता था। जिस प्रसन्नता, उत्साह और जोश से राजगुरु जी ने यह यात्रा की उसे देखकर मैंने राजगुरु जी से कहा कि आप तो पर्वतों के ऊपर इस प्रकार चढ़ते हैं जैसे तीस बरस के युवक भी चढ़ न पाए। गंगोत्री के मार्ग में भारत का अन्तिम ग्राम "धराली" है। इस ग्राम से लगभग एक मील ऊपर वह गुफा है जहां महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने तीन महीने की समाधी लगाई थी। जब मैं राजगुरु जी को इस गुफा में ले गया और वहां हम दोनों मौन साधकर बैठ गए तो राजगुरु जी के नेत्रों को मैंने जलपूर्ण देखा। मैंने पूछा, क्या विचार आ गया? वे कहने लगे कि "महर्षि ने हमारे कल्याण के लिए कितना घोर तप तपा है। इस जंगल में कितने ही भूरे रीछ आ जा रहे हैं और महर्षि ऐसे स्थान पर बिना किसी सहारे के घोर तपस्या करते रहे। निकट ही एक छोटी सी नदी निर्मल जल से पूर्ण बह रही थी। राजगुरु जी कहने लगे—यहीं तो महर्षि स्नान करते होंगे। इन्हीं बड़े-बड़े पत्थरों पर बैठकर प्रभु भजन करते होंगे।' यह कहते-कहते राजगुरु जी के नेत्रों से टप-टप अश्रु गिरने लगे। और कितने ही समय तक वे इसी अवस्था में एक शिला पर बैठे रहे और जब हम गंगोत्री जा पहुंचे तो वहां के तपस्वी महात्माओं से मिलकर राजगुरु जी ने सबको यही प्रेरणा दी कि वे भी महर्षि दयानन्द के समान दुःखी दुनिया को सुख का मार्ग दिखाने के लिए नीचे चलें। परन्तु राजगुरु जी को किसी ने भी आश्वासन न दिलाया और राजगुरु जी मुझे कहने लगे कि इन तपस्वियों की अपेक्षा महर्षि कितने विलक्षण थे जिन्होंने अपने मोक्ष पर भी लात मारकर मानव के कल्याण के लिए अपने प्राण तक त्याग दिए। क्या हम भी कभी इस ऋण का कोई अंश उतार पाएंगे और जब साधु-आश्रम पुल काली नदी में मेरे गुरु श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती से राजगुरु जी ने दीक्षा ली तब कहने लगे कि आज कुछ मानसिक शान्ति प्रतीत हो रही है।

राजगुरु होने के रूप में और स्वामी ध्रुवानन्द जी के रूप में उन्होंने सारा ही जीवन वैदिक-विचार के प्रसार और आर्यसमाज के संगठन के लिए अर्पण किए रखा।



श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी—

आर्यसमाज की एक महान् विभूति

(ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)

१९४७ का अप्रैल मास था। स्वर्गीय श्री महात्मा नारायणस्वामी जी महाराज रोग के निदान के लिये स्व० श्री० म० कृष्ण जी द्वारा लाहौर के मेडीकल कालेज अस्पताल मे दाखिल किये गये थे। सार्वदेशिक सभा की अन्तरग बैठक बलिदान भवन मे हो रही थी उसमे श्री स्वामी जी के स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट करते हुए शीघ्र आरोग्य लाभ की प्रार्थना की गई और उनकी परिचर्या एव देखभाल के लिये किसी विश्वस्त सदस्य को लाहौर भेजने का निश्चय हुआ। श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री जी (स्वर्गीय श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती) ने इस कार्य के लिए अपने को प्रस्तुत किया। अन्तरग सभा निश्चिन्त हो गई और राजगुरु जी उसी दिन रात्रि की ट्रेन से लाहौर रवाना हो गये और वहा पहुच कर स्वामी जी महाराज की परिचर्या का कार्य अपने हाथ मे ले लिया। यह थी उनकी गुरु जनो के प्रति स्नेह, श्रद्धा और सेवा की भावना।

जब राजगुरु जी सार्वदेशिक सभा के प्रथम बार प्रधान निर्वाचित हुए तब सभा कोषाध्यक्ष श्री स्व० ला० नारायण दत्त जी रोग शैया पर पडे थे। राजगुरु जी अकेले उनमे मिलने के लिए उनकी बाराखम्भा रोड, स्थित कोठी पर गये। लाला जी उन्हे अपने विरोधी कैम्प का एक प्रमुख सदस्य समझते थे। इधर-उधर की बात-चीत के बाद लाला जी ने कहा कि "पत्र द्वारा ही मेरे स्वास्थ्य का समाचार जान लेते। यहा आने का कष्ट क्यो किया?" राजगुरु जी ने कहा कि "लाला जी! आपका आशीर्वाद लेने आया हू। आशीर्वाद दीजिए जिससे इस गुरुतर भार को सफलता पूर्वक सभालने मे समर्थ होऊँ।" लाला जी की आखो मे आसू आ गये। राजगुरु जी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा "मेरा हृदय आपके साथ है।" सार्वदेशिक सभा की नौका के कुशल माझी बनो यही मेरी कामना है।" हा एक बात का ध्यान रखना। सभा की जो उन्नत आर्थिक स्थिति बनाई गई है उसे कायम रखना। यह छिन्न-भिन्न न होने पाय। राजगुरु जी ने इस उद्बोधन को पल्ले मे बाधा और न केवल सभा के व्यय की पूर्ति ही की अपितु कई हजार रुपये से सभा की महानिधि भी बना दी। आर्यसमाज और सार्वदेशिक सभा की हित-भावना उनमे इतनी प्रबल एव उग्र थी कि वे अपने विरोधियो से मिलने-जुलने और उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए सदा उद्यत रहते थे और इसमे मानापमान नही समझते थे।

१९५५ मे सभा का वार्षिक अधिवेशन बलिदान भवन मे हो रहा था। १९५४ मे श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री सन्यास ग्रहण करके स्वामी ध्रुवानन्द बन गये थे। सदस्य महानुभाव आने शुरू हो गये। उस वर्ष उन्होने प्रधान न बनने का निश्चय किया हुआ था। उनके एक परम स्नेही ने प्रधान पद स्वीकार करने का अनुरोध किया। उनके अनुरोध और युक्तियो को धैर्य पूर्वक सुनने के बाद दृढ स्वर मे बोले "इस बार प्रधान न बनने का मैंने दृढ निश्चय किया है। मैं इस बार प्रधान बनना गो-वध के समान पाप समझूगा।" यह सुनकर वे स्नेही चुप हो गये। उन्होने चुप देखकर कहा कि" मैं विदेश जा रहा हू। वहा मेरे से जो कार्य हो जायगा वह प्रधान पद पर रहते हुए सम्भव न होगा।

मैं जिन हाथो मे सभा को सौंप रहा हू वे बडे दृढ हैं और आर्य जगत् में मैं जिन दो व्यक्तियो की सम्मति का सदैव आदर करता रहू उनमे से वे एक हैं।" वे थे स्वर्गीय श्री पडित इन्द्र विद्यावाचस्पति जी। यह थी विदेश प्रचार की उनकी उग्र भावना जो जीवन के अन्त तक उग्र बनी रही।

१९६१ के अप्रैल मास में मौरीशस, पूर्वी अफ्रीका,

मेडागास्कर, रोडेशिया आदि में निरन्तर साढ़े पांच वर्ष के लगभग प्रचार करने के बाद वे भारत लौटे। मौरीशस में उनका लगभग चार वर्ष का प्रवासकाल व्यतीत हुआ। उन्होंने वहा की दो सभाओ को एक करके आर्यसमाज की छिन्न-भिन्न हुई शक्ति का एकीकरण करके बडे महत्व का कार्य किया। इतना ही नहीं उन्होने अपने पीछे कार्य-के सचालन तथा सुव्यवस्था के लिए श्री स्वर्गीय स्वामी अभेदानन्द जी महाराज को अनुरोध पूर्वक मौरीशस बुला लिया और उन्हे कार्य सभलवा देने के बाद ही वहा से भारत के लिए प्रस्थान किया। भारत लौट आने पर श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज को विशेष प्रार्थना कर वहा भेजा। स्वय भी वहा तथा दक्षिण अमेरिका, फिजी, इत्यादि जाने वाले थे। सब तैयारिया हो चुकी थी, परन्तु इसी बीच मे वे हम से सदैव के लिए जुदा हो गए।

१९६४ के फरवरी, मार्च मे उन्होने थाईलैण्ड, सिंगापुर, आदि की दो मास की प्रचार यात्रा की। स्वास्थ्य के ठीक न होते हुए भी यह यात्रा की गई थी। इससे पिछले वर्ष वे ब्रह्म देश मे प्रचार कर आये थे। सिंगापुर आदि के न केवल आर्य सस्थाओ मे ही अपितु बौद्ध, एव अन्य धार्मिक सस्थानो मे भी उनके व्याख्यान हुए। वहा के बडे बडे आर्य जनो एव अन्य मतावलम्बियो ने मुक्तकठ से यह स्वीकार किया कि उन्होने जो छाप उन पर डाली वह पूर्ववर्ती कोई आर्य धर्मोपदेष्टा न डाल सका।

हैदराबाद के धर्म-युद्ध और सिन्ध के सत्याग्रह मे आर्यजन भीषण परीक्षण मे से गुजरे थे। उनकी सफलता के लिए प्राय प्रत्येक आर्य ने अपना योग दिया था। किसी ने धन के द्वारा किसी ने प्रचार के द्वारा किसी ने प्रबन्ध मे हाथ बटाने के द्वारा और किसी ने सत्याग्रह के द्वारा। परन्तु जिन्हे सत्याग्रह के प्रधान सूत्रधार स्व० महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने विश्वास, योग्यता और त्याग भावना के आधार पर अधिनायको का गुरुतर कार्य सौपा था उनमे से एक राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री थे। राजगुरु जी ने जिस जत्थे के साथ स्पेशल ट्रेन से यात्रा की थी वह सबसे बडा जत्था था। उनकी स्पशल ट्रेन भी पहली ही थी। हैदराबाद के धर्म-युद्ध मे जो अधिनायक तप कर कुन्दन सिद्ध हो चुके थे उन्हे ही सिंध



श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज

के सत्याग्रह मे बुलाया गया था। उनमे एक अपवाद श्री प० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित थे। मुस्लिम लीगी, प्रशासन के अधीन सिन्ध के मुस्लिम बहुल प्रान्त मे आर्यों का सत्याग्रह करना आग के साथ खेलने और सिर पर कफन बाधकर जाने के समान था। राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री जी को ही सर्वप्रथम सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास के पठन-पाठन पर लगे प्रतिबन्ध को तोडने का भार सौंपा गया था। उन्होने कई दिन तक कराची के राजपथो पर खडे होकर सत्यार्थ-प्रकाश के उस समुल्लास का पाठ किया और आर्यसमाज की विजय का झडा ऊँचा किया था।

श्री राजगुरु जी ने देशी रजवाडो मे प्रचार और अनेक राजघरानो को आर्यसमाज का भक्त बनाने तथा बनाये रखने का सत् प्रयत्न किया था जिनमे शाहपुरा, बिजुआ, कालाकाकर, आदि के नाम उल्लेखनीय है।

पूर्वी बगाल के पीडितो की सेवा-सहायता का अभियान एव आर्य सार्वदेशिक सभा के उत्साही मन्त्री श्री ला० रामगोपाल शालवाले के विशेष प्रयत्न पर आरम्भ हो चुका था। कलकत्ता, गेदे, हसनाबाद, हस्तिनापुर में सहायता केन्द्र खुल चुके थे। आर्य हिन्दू जनता धन, और

वस्त्रों की वर्षा कर रही थी। कार्य के सचालन और निरीक्षण का कठिन कार्य अपने परीक्षित महानुभाव के सुपुर्द किया जाय' सभा इसके लिए चिन्तित थी। श्री स्वामी जी, बिना किसी प्रेरणा के ही विदेश से लौटकर कलकत्ता मे बैठ गये और कार्य को सभाल लिया। एक-एक दिन मे कई कई मीलों का भ्रमण करना, बिना खाये पीये और आराम किये जगलो मे पड रहना, जर्जर स्वास्थ्य की परवाह न करके कार्य मे व्यस्त रहना दयानन्द के इस भिक्षु का ही कार्य था।

दयानन्द के वीर सैनिक के रूप मे उन्होने सर्वप्रथम अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के नेतृत्व मे उनके अधीन मलकानो की शुद्धि का काय किया। गुरुवर सर्वदानन्द जी महाराज को सभा सोसाइटियो के प्रति जितना विराग था उतना ही शिष्य धुरेन्द्र का उनके प्रति राग था, यह कहना अत्युक्ति न होगी। वे भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् तथा आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के प्रधान रहे। आर्यसमाज के सगठन मे सर्वोच्च स्थान रखने वाली सावदेशिक सभा के कर्णधार रहकर उन्होने समस्त आय-जगत् का नेतृत्व भी किया। वे प्राय सभा सोसाइटियो से सम्बद्ध रहे, परन्तु उनके सुधार तथा अभ्युत्थान की भावना ही सर्वोपरि रही।

श्री स्वामी जी बडी भावुक प्रकृति के मानव थे। उन्हे मानापमान का बडा ध्यान रहता था। प्रवृत्ति मे सादगी थी, परन्तु फूहडपन जरा भी बर्दाश्त न था। क्या मजाल कपडे की तह मे एक भी सरवट रह जाय। प्रत्येक कार्य और वस्तु में सुघडता देखना पसन्द करते थे। अपने वस्त्र स्वय धोना, कमरे को झाडना बुहारना जीवन का यह दैनिक कार्य-क्रम उस समय तक जारी रहा जब तक स्वास्थ्य ने परित्याग करने के लिये विवश न कर दिया।

सार्वदेशिक सभा का प्रधान बन जाने पर भी यह क्रम बना रहा। इस स्वभाव के कारण लोगो ने उनका उपहास भी किया। परन्तु उपहासकर्त्ता यह न समझते थे कि यह उपहास की नही अपितु गौरव की बात थी। हृदय की शुद्धता और सच्चाई के बल पर उनको अपना बनाया जा सकता था। झूठ और छल-कपट के वे परम शत्रु थे। वे आर्यसमाज को उन्नत देखना चाहते थे और

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज

यह देखना उन्हे सह्य न था कि कोई व्यक्ति आर्यसमाज का दोहन करे।

वे वीर की तरह जिये। हार मानकर बैठ जाना यह उनके स्वभाव के विपरीत था। वे मरे भी वीर की तरह ही। एक दिन दयानन्द भवन मे दिल का भयकर दौरा पडा। वेदना असह्य हो गई। प्राणायाम किया परन्तु व्यर्थ। कार्यालय के कर्मचारी उनके हाथ-पैरो को दबाने लग गये। डाक्टर को बुलाने के लिए भेजा गया, परन्तु वह न आ सका। इस बीच मे उनकी तबियत सभल गई। पूछा "डाक्टर को बुलाने के लिए क्यो भेजा गया? हो सकता था डाक्टर के आने से पहले ही यह लीला समाप्त हो जाती। दिल का दौरा ही जो ठहरा। इसमे अन्त तात्कालिक होता है।" कालान्तर मे उनकी यह बात चरितार्थ होकर रही और बम्बई मे दिल का दौरा पडने पर डाक्टरी चिकित्सा प्राप्त होने से पहले ही उनका आत्मा नश्वर शरीर को छोडकर अनन्त में विलीन हो गया।

वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। उनका कोई निजी परिवार न था। आर्यसमाज ही उनका परिवार था। उसी मे रूठे, उसी मे क्रोध से बिगडे परन्तु उसी मे रमे रहे। उसकी हित-चिन्ता न छोडी। उसकी उन्नति मे अपनी उन्नति समझी और उसके गौरव मे अपना गौरव समझा।

स्वामी जी का व्यक्तित्व

[श्री प० प्रेमचन्द्र जी शर्मा, एम०एल० सी]

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी आर्यसमाज के महान नेता और विचारक थे। वह सच्चे कर्मठ, धर्मनिष्ठ, महर्षि दयानन्द के भक्त और आर्यसमाज के चमकते हुए नक्षत्र थे। उन्होंने उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, बम्बई, आदि सभी प्रान्तो मे अपने महान् व्यक्तित्व से बडे-बडे लोगो को आर्यसमाज मे दीक्षित किया। उन्होने कई राजाओ को आर्यसमाजी बनाया। आर्यसमाज पर जब जब सकट का समय आया, वे सीना तान कर आगे आये, उन्होने आर्यसमाज के कार्य के सामने अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं की। उन्होने देश मे ही नहीं विदेशो मे जाकर वैदिक धर्म की ध्वजा फहरायी। दक्षिण अफ्रीका मौरीशस, थाईलैंड, बर्मा, सिंगापुर आदि अनेक देशो मे उन्होंने आर्यसमाज का प्रचार और प्रसार किया। मै जब सभा का मन्त्री था, उस समय श्री स्वामी जी मौरीशस मे वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने वहाँ की दोनो सभाओं को मिलाने में बड़ा परिश्रम किया। स्वामी जी के सम्बन्ध मे उस समय मौरीशस के कई पत्र हमे मिले जिनमे श्री स्वामी जी के व्यक्तित्व की सराहना की गई थी, और लिखा था कि आज तक भारतवर्ष से ऐसा कोई व्यक्ति यहा नहीं आया जिसने अपने लिए या अपनी सस्था के लिए धन एकत्र न किया हो, पर स्वामी ध्रुवानद जी ही ऐसे आये है कि उन्होने किसी भी प्रकार की इच्छा नही की। मौरीशस मे श्री स्वामी जी के हजारों व्यक्ति भक्त बन गये। वे जिस परिवार मे जाते, उसे आर्य बनाकर छोडते। उन्हे हर समय, उठते बैठते आर्य समाज की ही चिन्ता रहती थी। वे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के कई वर्ष तक प्रधान रहे, उन्होने सभा की आर्थिक व्यवस्था ठीक की। जब सार्वदेशिक सभा के प्रधान हुए तो उन्होने सार्वदेशिक सभा के लिए बडा कार्य किया। उनकी यह सदैव इच्छा रहती थी कि सभाओ के अधिकारी कर्मठ और आर्य ही हो, जिनके द्वारा सभाओ का गौरव बढे, इसीलिये वे सभाओ के निर्वाचनो मे भाग लिया करते थे। उन्होने अन्त समय तक आर्यसमाज की सेवा की और आर्यसमाज की चिन्ता मे ही अपने प्राण दिये।





श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का शव दिल्ली रामलीला मैदान मे। पास मे शोक मे खड़े हैं आर्यजन।

देदीप्यमान व्यक्तित्व

(श्री साहू देवेन्द्र जी कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा)

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती से हमारे परिवार का घर का-सा सम्बन्ध था। हमारे पूज्य पिता श्री साहू शिवचन्द जी उनके बड़े भक्त थे। इसलिए स्वामी जी महाराज समय-समय पर हमारे यहाँ पधारा करते थे। जब हम छोटे थे, तो स्वामी जी की कुटिया देखा करते थे, इसमे क्या-क्या खाने पीने का सामान है, जो फलादि होते थे, हम लोग प्रेम से खा जाते थे। स्वामी जी यह देखकर बड़े प्रसन्न होते थे। स्वामी जी के पवित्र जीवन से हमे बड़ी प्रेरणा मिली। वह प्रार्थना के मन्त्र, सन्ध्या पूछ बैठते थे। बोलने पर फिर उसके अर्थ पूछते थे। स्वामीजी महान बलशाली और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। वे बड़े हास्यप्रेमी थे। उनकी रग-रग मे आर्य समाज का प्रेम रम रहा था। उन्होने अपने जीवन मे आर्यसमाज का बहुत काम किया। उनका कार्यक्षेत्र भारत ही नहीं विदेशो मे भी रहा। विदेशो मे भी वे कई वर्ष रहे। मौरीशस की दोनो सभाओ को मिलाने मे उन्होने बड़ा प्रयत्न किया और उसमे सफल हुए। वह बड़े सगठन प्रिय थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वे वर्षों प्रधान रहे और अपने कार्यकाल मे इन सभाओं को प्रचुर बल दिया। संगठन के विरुद्ध वे किसी की बात नहीं सुनते थे। वे सगठनप्रिय थे। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। उन्होने आर्यसमाज के सकट के समय सर्वत्र नेतृत्व किया। सिंध सरकार ने जब सत्यार्थप्रकाश पर पाबन्दी लगाई तो वे सबसे पहले करांची की सड़को पर सत्याग्रह करने पहुचे। और उन्होने वह पाबन्दी हटवाई। निजाम राज्य ने जब हिंदुओं पर तरह-तरह के जुल्म किये। उनके धार्मिक स्थानों पर चोट की,तो आर्यसमाज ने उसके विरुद्ध सत्याग्रह का नाद बजाया। उसका नेतृत्व भी श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने किया। देश मे जहाँ कहीं आपत्ति आयी स्वामी जी वहां पहुच कर सहायता कार्य प्रारम्भ कर देते थे। वह महान् कमठ और कर्तव्यनिष्ठ थे। उनकी देदीप्यमान मुखाकृति प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। सर्वदानन्द साधुआश्रम के वे सरक्षक थे, उन्होने आश्रम की बहुत उन्नति की। आश्रम आपकी मधुर स्मृति है।





देहली मे श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज की शव-यात्रा का एक दृश्य

स्वामी जी का आदर्श जीवन

(श्री निर्मलचन्द्र जी राठी, अधिष्ठाता म०वी० आर्यभास्कर प्रेस)

★

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी बड़े तेजस्वी, विद्वान और आर्यजगत के महान शुभचिंतक थे। उनका समस्त जीवन आर्यजगत् की सेवा करते हुए बीता। उन्होने कभी आर्यसमाज के विरुद्ध कोई बात नही सुनी। उनका जीवन पवित्र और उज्वल था। उनके जीवन से हजारो नवयुवको ने प्रेरणा प्राप्त की। वह अपनी लगन के एक ही थे। उन्होने देश-विदेश सभी जगह आर्यसमाज के कार्य को आगे बढाया। वह संगठन प्रिय थे। संगठन के विरुद्ध वे कोई बात नही सुनते थे। उन्होने राजामहाराजाओ मे भी वैदिक धर्म का प्रचार किया और उन्हे वैदिक धर्म मे दीक्षित किया। उन्होने जिस परिवार मे भोजन किया उसे पक्का आर्य बना दिया। उनका चिन्तन आर्यसमाज के कार्य को आगे बढाना ही रहा। उन्हे देश प्रेम था। स्वतन्त्रता संग्राम मे भी वे पीछे नही रहे। हैदराबाद मे निजामशाही के विरुद्ध जब आर्य सत्याग्रह हुआ तो उसमे भी वे सैकड़ो आर्यों का जत्था लेकर विशेष ट्रेन से हैदराबाद पहुचे, सत्याग्रह किया और जेल गये। सत्यार्थ प्रकाश के १४ वें समुल्लास की रक्षार्थ वे करांची भी सबसे आगे सत्याग्रह के लिए पहुचे थे। वह बड़ी से बड़ी मुसीबत मे आर्यसमाज का नेतृत्व करते थे। वह महान् निर्भीक सन्यासी थे। जब वे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के प्रधान बने तो उन्होने सारे प्रान्त का दौरा किया और सभा के लिए हजारो रुपया लाये। जब वे सार्वदेशिक सभा के प्रधान बने तो उन्होने विदेशो मे भी आर्यसमाज का प्रचार और प्रसार करने का प्रोग्राम बनाया और वे दक्षिण अफ्रीका, मोरीशस, बरमा, सिंगापुर थाईलैंड आदि देशो मे गये, वहाँ जाकर उन्होने वैदिक सन्देश सुनाया।



श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी

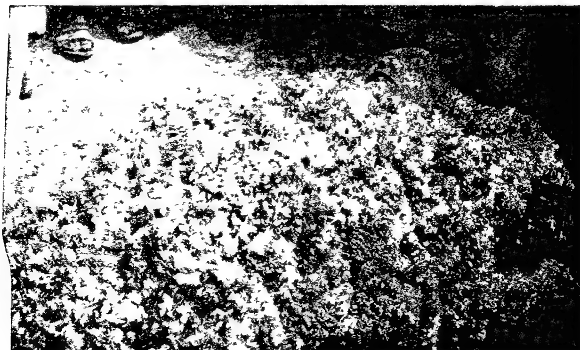
जब हमने आर्य प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन गोला गोकरनाथ मे बुलाया, तब श्री स्वामी जी का हमने भव्य स्वागत किया। श्री स्वामी जी ने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा "कि मेरा यह शरीर आर्यसमाज का है, अगर कहीं आर्यसमाज का भवन बन रहा हो और उसमे चूने की कमी पड रही हो, तो मैं अपना शरीर चक्की में पिसवा कर उस चूने की पूर्ति करने के लिए तैयार हू। यह था श्री स्वामी जी का आर्यसमाज से प्रेम। वह आर्य समाज की सेवा करते हुए ही अपने प्राणोत्सर्ग कर गये! आर्यसमाज उनकी सेवाओ को कभी भूल नहीं सकता। ●



चमकता तारा विलीन हो गया!

(श्री हरप्रसाद जी साहू अधिष्ठाता भू-सम्पत्ति विभाग)

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी आर्यसमाज के उज्वल रत्न थे। वे चमकते तारे की तरह प्रकट हुए और विलीन हो गये। वह महान पुरुषार्थी थे, उन्होंने अपने पुरुषार्थ से ही अपना निर्माण किया। स्वामी सर्वदानन्द जी को ऐसा शिष्य मिला जिसने श्री स्वामी जी को भी चमका दिया। उन्होंने अपना विवाह नहीं किया। परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं रखा। उनका विस्तृत परिवार आर्यजगत ही था। वे राजगुरु बने। राजाओं में उन्होंने वैदिक धर्म का सन्देश पहुचाया। उन्हें अपना भक्त बनाया और सन्यास ले लिया। वे राजसी सन्यासी थे। वे जहां गये उन्होंने आर्यसमाज का प्रचार और प्रसार किया। उनका केवल उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार ही रहा। वे बड़े चरित्रवान और ईश्वर भक्त थे। उनके पवित्र जीवन से हजारों नवयुवकों ने प्रेरणा प्राप्त की। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के तो वे प्राण थे। उन्होंने सभा को काफी मजबूत बनाया। उनके प्रचार का क्षेत्र समस्त भारत और विदेश रहा। अनेक देशों में उन्होंने जाकर वैदिक धर्म का सन्देश पहुचाया। उनका खाना-पीना सात्विक रहता था। ठाट-बाट राजसी। वह कभी एक जगह नहीं बैठे, सैकड़ों मीलों का सफर वे प्रतिमास करते थे। उनके व्याख्यान प्रभावशाली होते थे। आर्य जनता पर उनका प्रचुरप्रभाव पड़ता था। वह सदैव आर्य समाज के कार्य में व्यस्त रहते थे। स्वभाव के सरल और विनोदी थे। ८३ वर्ष की आयु में भी वे नवयुवकों जैसा कार्य करते थे। उन्हें अपना काम अपने हाथ से करना अधिक पसन्द था। उन्होंने आर्यसमाज की जो सेवा की वह सदैव स्मरण रहेगी। ★



पुष्प मालाओं से आच्छादित श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का शव।

आदर्श सन्त तुमको प्रणाम

आदर्श सन्त तुमको प्रणाम !

ओ वीतराग के व्रती शिष्य कमनीय गुणो के मध्य धाम ।

तुमने समाज के लिये सहे थे कष्ट सुखो का किया त्याग,
ओ पावन ऋषि के भक्त ? तुम्हे था लौकिक भोगो से विराग,
तुमने उनका दल दिया दर्प, जो आर्य जगत को बने वाम ।।

× × ×

तुमने लेकर के वेद दीप, अज्ञान तिमिर का किया नाश,
सब देख सके जिसमे सुमार्ग ऐसा फैलाया था प्रकाश,
सब यशोगान करते स्वामिन् ? आपका विश्व के नगर ग्राम ।।

× × ×

ऋषि मिशन बढाया आगे को घूमे तुम देश विदेशो मे,
अरु हुये कभी भी खिन्न नही हे महावीर ! तुम क्लेशो मे,
होता न कौन नत मस्तक है आपका देखकर रुचिर काम ।।

× × ×

ध्रुव था विचार, ध्रुव सदाचार अध्रुवता का था नाम नहीं,
था वेद धर्म मे ध्रुव निश्चय अध्रुव था कोई काम नहीं,
अन्वर्थ सर्वथा था स्वामिन् ? ओ 'ध्रुवानन्द' आपका नाम ।।

× × ×

पाओ तुम स्वमिन् ! ध्रुवानन्द हम सब हैं इसके अभिलाषी,
आपके अमर उपकारो से उपकृत हैं हम भारतवासी,
अतएव समर्पित करते हैं सादर यह श्रद्धांजलि ललाम ।।
आदर्श सन्त तुमको प्रणाम ।।

× × ×

★

अपने अदम्य, उत्साह और साहस से, स्वामी जी विधर्मियो के गढ तोडते रहे ।
आईं जो आपत्तियां जहाँ से आर्य जनता पै, उनको उसी दिशा मे सदा मोडते रहे ।
आर्य जगत बीच हुआ जब विलगाव भाव, करके प्रयास उसे सदा जोडते रहे ।
यत्र-तत्र-सर्वत्र वेद के विरोधियो का, स्वामी ध्रुवानन्द सदा भण्डा फोडते रहे । १।

आर्य जनता के लिये करते सदैव रहे, अपने सुखों का वे सहर्ष बलिदान थे ।
उनका प्रशसनीय सदाचार था प्रसिद्ध, तथा व्यवहार के बडे ही विद्वान् थे ।
कष्ट कण्टको मे भी सदैव मुस्कराते रहे, हुए कभी भी न त्रस्त धीर नीतिमान थे ।
करते सब एकमत हो आज यही व्यक्त, स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती जी महान थे ।।२।

अपनी तपस्या, त्याग तथा भव्य वक्तृता से, पोप व पाखण्डियो के दुर्ग को हिला गये ।
दीन, हीन, दलित, मलीन मानवो को सभ्य, पुरुषो के बीच पूर्ण रूप से मिला गये ।
करने का विश्व मध्य धर्म का प्रचार हमे, पूर्ण अभय दान पूज्य स्वामी जी दिला गये
पर दुःख इतना है करके अनाथ हमे, अब स्वामी ध्रुवानन्द सहसा विला गये ।।३।

—रामनिवास शास्त्री
श्री सर्वदानन्द साधु आश्रम
(अलीगढ़)

स्वामी जी का स्मारक पानीगांव में बनाओ

[ले०—श्री प० बेनीराम शर्मा सरपंच न्याय पचायत पानीगाव (मथुरा)]

(श्री प० बेनीराम जी शर्मा सरपच पानीगाव, मथुरा, पूज्य श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी के भतीजे हैं। इस लेख मे श्री शर्मा जी ने स्वामी जी के स्मारक की बात लिखी है। स्वामी जी के भक्तो को वहा एक कमरा बनवाकर आर्य समाज स्थापित कर देना चाहिए। —सम्पादक)

श्री पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती पूर्व श्री राज गुरु धुरेन्द्र शास्त्री न्यायभूषण आचार्य श्री पडित बिहारीलाल जी शुक्ल के सबसे छोटे पुत्र थे। सबसे बडे श्री प० किशनलाल, श्री प० नन्दराम, श्री प० बशीधर व श्री प० धर्मदास व श्री धुरेन्द्र जी। लेखक स्वामी जी के



राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री

बडे भाई प० वशीधर जी का पुत्र है। हमारा परिवार भरतपुर राजपुरोहित परिवार से सम्बन्धित था, श्री पूज्य स्वामी जी को धूरिया नाम से बोला करते थे, क्योकि इनका जन्म होली की धुलैंडी को हुआ था। गांव मे आप गाय चराया करते थे, खेती करते थे। इधर स्वामी सर्वदा न्द जी गुरुकुल वृन्दावन जब आते थे, तो वह राया स्टेशन से पैदल पानीगॉव होकर वृन्दावन आते थे। स्वामी का प्रेम हमारे बाबा प० बिहारी लाल जी से होने के कारण स्वामी जी उनके पास कुछ समय रुका करते थे और ब्रज का भोजन छाछ महेरी खाया करते थे। स्वामी जी ने हमारे परिवार से काफी जानकारी प्राप्त कर ली और हमारे बाबा व दादी से धूरिया बालक को माग बैठे। हमारे घर के बराबर एक बगाली साधु बाबा मागुनीदास जी की कुटिया थी, स्वामी जी वही ठहरते थे। बाबा मागुनी दास जी ने धूरिया बालक को स्वामी जी को दिलाने मे हमारे परिवार को समझाने मे काफी मदद दी। स्वामी ध्रुवानन्द जी बाबा मागुनीदास जी के आजीवन आभारी रहे कि जिन्होने उन्हे नवजीवन प्रदान करने मे सहयोग दिया और जब तक वह साधू जीवित रहे, स्वामी जी वस्त्र आदि मे उनकी सेवा करते रहे। स्वामी ध्रुवानन्द जी ने उन्ही बगाली साधु द्वारा अपने माता-पिता को चारोधाम की तीर्थयात्रा भी उसी बगाली साधु से करवाई और यात्रा का सम्पूर्ण व्यय आपने ही दिया। शुद्धि आन्दोलन तक आप कभी-कभी अपने घर आया करते थे।

मैं उनके जीवन भर अपने बचपन से ही उनके सम्पर्क मे रहा करता था और पत्र-व्यवहार बनाये रखता था, वह मेरे पत्रो का समुचित उत्तर दिया करते थे। मेरे विचार बचपन से राष्ट्रीय थे। मुझे यह अभिलाषा रहती थी कि मैं उनकी अधिक चरण सेवा करूँ। कलकत्ता काग्रेस के अवसर पर मैंने सुना कि राजगुरु जी भी वहा जा रहे हैं, मैं भी घर से भाग कर कलकत्ते पहुचा। प्रात काल जब राजगुरु जी झडा अभिवादन के बाद स्व० श्री मदनमोहन मालवीय जी से मिलने गये। राजगुरु जी

विदेशी वस्त्र पहिने हुए थे। मालवीयजी ने तपाक से कहा सुरेन्द्र यह समय इन वस्त्रों का नहीं है। इतना सुनते ही राजगुरु जी ने अपने समस्त वस्त्रो की होली जला दी, और उसी दिन से शुद्ध खादी पहिनना शुरू कर दिया।

स्वच्छता प्रिय—अपने वस्त्र आजीवन अपने हाथ से धोते रहे। कभी-कभी कुछ बडे लोग उनसे पूछा करते थे, कि गुरु जी आपके वस्त्र सफेद दूध के फेन के समान कैसे रहते हैं? उत्तर मिलता था कि मैं अपने हाथ से धोता हू। वस्त्र सुखाने की डोरी पर हर आठवें दिन पालिश कराई जाती थी, ताकि वस्त्रों पर कोई दाग न लग जावे।

जब स्वामी जी के माता-पिता का देहावसान हुआ और घर से उन्हे सूचना दी गई तो वह देर से घर पहुचे उनके बडे भाई ने कुछ कटु शब्द कहे, तो आपने तेज भाषा मे उत्तर दिया कि माता-पिता का सच्चा स्मारक मैं हू, जो कि उनकी ओर से देश व धर्म को अर्पण किया गया हू और कर्मकांड का अपना हिस्सा देकर चले आये। फिर उनका प्रेम अपने बडे भाई प० नन्दराम जी से रहा, वह विधुर थे, कोई सन्तान नही हुई थी। उनको भी कभी-कभी वस्त्रादि भेजा करते थे। उनके मरने के उपरान्त वह फिर कभी गाव नही गये। परिवारी एव ग्रामीण जिस किसी को मिलना होता गुरुकुल के उत्सव पर मिल लेते थे।

मेरी जब कभी एकात मे चरण सेवा करते समय बातें होती थी, तो वह कहा करते थे, कि पानीगाव मे एक कमरा बनवाकर आर्यसमाज कायम करूगा और उसी जगह को पसन्द किया था कि जिस जगह पर उस बगाली साधु की कुटिया थी। एक बार गुरुकुल उत्सव पर रात को प्रोग्राम मुझे बनाया कि सुबह गाव चलूगा और एक ओवरसियर को भी कह दिया श्री करनसिह जी ठेकेदार मथुरा से भी कह दिया कि सुबह गाव चलकर एक कमरे का नक्शा बनवाकर तखमीना करना है। परन्तु श्री लालबहादुर शास्त्री जी जो कि अब भारत के प्रधान मन्त्री हैं, उस समय उत्तर-प्रदेश के गृह मन्त्री थे, उनका तार आ गया और वह पानीगाव न आ सके।

श्री पूज्य स्वामी जी की जब-जब इच्छा होती थी मुझे पत्र देकर चाहे जहा बुला लेते थे और परिवार की कुशल ले लेते थे। जब वह सिगापुर की यात्रा पर गये थे, तब उन्होने मुझे आगरा बुलाया, वह वहा श्री पुरी जी के यहां एक शाही मे सम्मिलित थे। आगरा क्लब होटल मे मिला, मैंने उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे धीरे से कहा स्वामी जी भ्रमण कम कर दीजिये तो आपने तेजी से उत्तर दिया कि भाई यह देह तो जाना ही है क्यो न कार्य करते करते समाप्त हो, देश व धर्म आर्यसमाज के कार्य के आगे मुझे प्राणो की कोई चिन्ता नही है। उसी बात को चरितार्थ करके दिखला दिया। गत वर्ष आश्रम पर जब दौरा हुआ था, तब मैं सपत्नीक वही पर था, और ऐसा आभास हुआ कि अभी प्राणान्त हुआ परन्तु कुछ समय को और रह गये। उस हालत मे भी मुझे व मेरी पत्नी को सुबह फिर आज्ञा दी कि गाव मे आर्यसमाज की स्थापना करो।

भ्रष्टाचार विरोधी—जब मै न्याय-पचायत पानीगांव क्षेत्र का सरपच चुना गया और उन्हे यह बात मालूम हुई तो मुझे वृन्दावन बुलाया और आज्ञा दी कि रिश्वत नहीं लेना और ऐसा काम करना ताकि इलाके मे तेरा नाम हो।

मेरी पत्नी को वह अधिक प्यार करते थे, वह भी जब कभी उनके दर्शन हेतु जाती थी। अब स्वामी जी की आज्ञाओ का उस पर इतना प्रभाव है कि उसने सध्या याद कर ली और नित्य कर्म करके ही भोजन करती है।

ता० १६ जून को मैंने उनको एक पत्र लिखा उनके स्वास्थ्य के बारे मे, तो उन्होने श्री लाला रामगोपाल जी शालवालो के द्वारा उत्तर दिया था कि मैं २९ जून सन् ६५ को १ दिन को देहली आ रहा हू, मेरा स्वास्थ्य पूर्वापेक्षा ठीक है, चिन्ता की कोई बात नही है। विधि की विडम्बना २९ जून को ही मुझे रात्रि के रेडियो से उनकी मृत्यु का समाचार मिला।

उनकी आज्ञायें शिरोधाय हैं। आर्यसमाज के मूर्धन्य आजीवन ब्रह्मचारी त्यागी नेता की पुण्य भूमि मे जो कि ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा का मार्ग है, वहा उनकी स्मारक स्थली का निर्माण आवश्यक है। आयसमाज की स्थापना।

परिवारी जन आर्यसमाज सार्वदेशिक सभा एव उत्तर-प्रदेशी सभा से एव उनके शिष्य, भक्तो से निवेदन करते हैं कि उनकी इन आज्ञाओ को पूर्ण करने की कृपा करें। बस यही मेरा निवेदन है। ★

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज

[संक्षिप्त जीवन परिचय]

[श्री लाला रामगोपाल जी शालवाले, मन्त्री सार्वदेशिक सभा दिल्ली]

पूज्यपाद श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का आकस्मिक देहावसान २९ जून को प्रातः ६। बजे बम्बई में श्री सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास के निवास स्थान पर हृदय की गति बन्द हो जाने से उस समय हुआ, जब स्वामी जी महाराज वायुयान से दिल्ली प्रस्थान करने की तैयारी कर रहे थे।

वे आर्यसमाज के मूर्धन्य नेता थे और आर्यसमाज की आंखें उनके नेतृत्व पर टिकी थीं। मृत्यु के समय उनकी आयु ८३ वर्ष थी। वे स्वनिर्मित महानुभाव थे। आर्य समाज के कार्य में ही उनका एक एक क्षण व्यतीत होता था। ऐसा लगता है कि उनके निधन से आर्यसमाज अपनी किसी बहुमूल्य निधि से वंचित हो गया है।

पूज्यपाद श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती का असामयिक निधन आर्यसमाज की महती क्षति है जिसका ठीक ठीक अन्दाजा इस समय नहीं लग सकता। ऐसे अवसर आयेंगे जब उनका अभाव बुरी तरह खटकेगा। उन जैसे महर्षि दयानन्द के भिक्षु जिनका एक एक क्षण आर्यसमाज पर अर्पित रहा हो मुश्किल से देखने को मिलेंगे। वे आर्यसमाज के लिए जिये और उसी के लिए मरे यह कह दिया जाय तो इसमें अत्युक्ति न होगी। वे आर्यसमाज और सार्वदेशिक सभा को बहुत उन्नत और यशस्वी देखने के लिये लालायित रहते थे और इसके लिए उन्होंने कोई प्रयत्न उठा न रखा था। वे समाज को अपने व्यक्तित्व से ऊपर रखते थे। इसके लिए कितना ही बड़ा मूल्य क्यों न चुकाया जाय, अपमान के कितने ही कड़े घूंट क्यों न पिये जाय इसकी वे तनिक भी परवाह न करते थे। उनकी वाणी में और व्यक्तित्व में प्रभाव था। ऐसे अमूल्य रत्न को खोकर यदि आर्यसमाज अपने को अकिंचन अनुभव करे और आर्यजगत में शोक एवं सूनापन व्याप्त देख पड़े तो यह स्वाभाविक ही है।

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी (राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री) महाराज का जन्म सन् १८८२ में पानी गांव (मथुरा) में हुआ था।

संस्कृत के अध्ययन के लिए उत्कण्ठा जाग्रत हो जाने और इसकी पूर्ति में घर वालों के बाधक बनने पर लगभग २३ वर्ष की आयु में वह एक दिन रात्रि को चुपचाप घर से भाग निकले और आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान द्वारा सञ्चालित मथुरा के विरजानन्द आश्रम में पहुंच गये। आश्रम के अध्यक्ष ने उन्हें संस्कृत पढ़ने की अनुमति दे दी। पढ़ाई के बदले में अवैतनिक रूप में इन्हें आश्रम के विद्यार्थियों के भोजन बनाने का कार्य सौंपा गया। जब स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज आश्रम के अध्यक्ष बनकर गये और उन्होंने इनकी परीक्षा ली तो बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें भोजन बनाने के कार्य से मुक्त कर दिया। स्वामी जी के चले जाने और नये अध्यक्ष के आ जाने पर विद्यार्थियों और अध्यक्ष के मध्य संघर्ष हो गया जिसके फलस्वरूप आश्रम टूट गया। वहां से वे रंगजी की बगिया में स्थित वृन्दावन के ऋषिकुल में पढ़ने के लिए गए। परन्तु सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण वहां अधिक समय तक रहना न हो सका और घर चले गए। स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज को इसकी सूचना दी गई। वे सूचना पाकर इनके घर गये और इनकी माता जी को यह आश्वासन देने पर कि इन्हें साधु न बनाया जायगा, अपने साथ साधु आश्रम (अलीगढ़) में ले आए और उनकी पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

१९०८ में ये शास्त्री परीक्षा देने के लिए मुलतान चले गए। १९१९ में पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

इसके पश्चात् महाराजा कालेज जयपुर में कुछ समय

(शेष पृष्ठ ५४ पर)

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी की पुण्य स्मृति (१)

(ले—श्री राजेन्द्र जी अतरौली (अलीगढ़)

आज से कुछ वर्ष पूर्व श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज के स्वस्थ शरीर और तेजस्विता को देखते हुए यह किसी को मान न था कि उनका शरीर इतना शीघ्रपात हो जावेगा। उनको देखकर उनकी अवस्था का, अनुमान लगाना कठिन था। वह ८० वर्ष के होते हुए भी ५० वर्ष के दीख पड़ते थे। यह उनके ब्रह्मचर्य और तपस्या का फल था। विदेश यात्रा से लौटकर उन पर कुछ वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। अंतिम बार जब मैं उनसे ६ जनवरी १९६५ को साधुआश्रम हरदुआगंज पर मिला, उस समय उनका प्राकृतिक उपचार चल रहा था। उस समय वह कुछ अधिक निर्बल दीख पड़ते थे। उनके रोग और शारीरिक निर्बलता को दृष्टि में रखते हुए भी वह उस समय भी प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे।

हृदय के इतने शीघ्र दौरे होने पर उनके प्रचार कार्य में कोई बाधा नहीं आई। वह नगर और ग्रामों के उत्सव और समारोहों में सम्मिलित होते रहे। इस भयकर रोग के होने पर भी उन्होंने अस्पतालों में रहना पसन्द नहीं किया और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक वह आर्य समाज के प्रचार और सगठन कार्य में जुटे रहे। यह सब उनकी महानता के द्योतक हैं। ऐसे ही कर्तव्य परायण महापुरुष 'विदेह' हैं, जो शरीर की चिन्ता किये बिना कर्तव्य रत रहते हैं।

स्वामी ध्रुवानन्द जी अपने वीतराग गुरु श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के एक सुयोग्य शिष्य थे। वह अपने गुरु की भांति अंतिम क्षणों तक आर्यसमाज की सेवा करते रहे।

स्वामी ध्रुवानन्द जी अपनी तपस्या के बल पर एक साधारण ग्रामीण ब्राह्मण बालक से राजगुरु बनकर अनेक राजाओं और लक्ष-पती प्रतिष्ठित समुदाय के आदर और सत्कार के भाजन बन गये। बहुत से ईर्षालु उनके इस उत्थान और तदनुरूप बाह्य राजसी जीवन को देखकर उन पर अनेक टीका टिप्पणी करते थे।

आज के प्रजातन्त्र के चकाचौंध मे, ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि लगोटी बन्द दयानन्द के अन्तिम दिन भी राजा महाराजाओ मे वैदिक धर्म प्रचार मे व्यतीत हुए थे। धर्म प्रचार मे राजशक्ति और धन सम्पत्ति भी अपना एक विशेष स्थान रखती है। जैन बौद्ध आचार्यों ने भी इसका आश्रय लिया था। शकर स्वामी ने तो अपने जीवनकाल मे ही अपने प्रचार मे राजशक्ति का उपयोग किया। धर्म प्रचार केवल गुफाओ और पहाडो की कन्दराओ से ही नहीं होता उसके लिये धन और क्षात्रबल की भी सहायता लेनी पडती है।

आर्यसमाज मे इसका महत्व श्री स्वामी नित्यानन्द जी ने समझा और ऋषि दयानन्द के पश्चात् उन्होंने इस कर्तव्य को भली-भांति निभाया। उन्होने काश्मीर, बडोदा, राजस्थान, नाभा आदिक अनेक राजाओं और उनके राज परिवारो को वैदिक धर्म की महानता से प्रभावित किया। कुछ अश मे श्री स्वामी शकरानन्द जी ने भी राजपरिवारो मे वैदिक धर्म प्रचार कार्य किया। पीछे इस कार्य की आर्यसमाज की ओर से उपेक्षा की गई और जो प्रभाव इन राज परिवारों मे इन महानुभावों ने उत्पन्न किया था वह समाप्त हो गया।

इस परम्परा को श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने पुनर्जीवित किया। यह स्वामीजी के परिश्रम का ही परिणाम है कि उन्होंने अनेक राजपरिवारों तथा धन सम्पन्न प्रतिष्ठित परिवारो तक वैदिक सदेश को पहुचाया और उन को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया।

दुर्भाग्यवश आज के अनके अदूरदर्शी आर्य, जनतन्त्र और पश्चिमी समाजवाद की आंधी मे इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर से उदासीन हैं। परिणामत आज आर्यसमाज मे शिक्षित धन सम्पन्न-प्रतिष्ठित वर्ग की निरन्तर कमी होती जा रही है। जो लोग अपने धर्म प्रेम के कारण

(शेष पृष्ठ २० पर)



आर्यसमाज की अपूर्णीय क्षति—

स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का महाप्रयाण

(ले०—श्री वासुदेव शर्मा, 'प्रधानमन्त्री' आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार)

आर्यसमाज के सार्वदेशिक मूर्धन्य नेता, अविभाजित भारत के अनेकों देशी राजाओं के गुरु, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व प्रधान स्वा० ध्रुवानन्द जी सरस्वती का महाप्रयाण दिनांक २९ जून १९६५ को प्रात ७। बजे बम्बई मे हो गया। इनकी मृत्यु से आर्य जगत् को जो महान् क्षति हुई है, उसकी पूर्ति निकट भविष्य मे असम्भव है। स्वामी जी की मृत्यु से समस्त आर्य-जगत शोक सागर में डूब गया।

स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज का जन्म मथुरा के निकट पानी ग्राम मे एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन में पढ़ लिख नहीं सके। २३ वर्ष की उम्र हो चली थी। पढ़ने की उत्कट अभिलाषा से पूज्यपाद स्वा० सर्वदानन्द जी महाराज के आश्रम मे आये। वहां आश्रम के विद्यार्थियों की रोटी बनाने के काम पर नियोजित किये गये। विद्या एव ज्ञान की प्रबल पिपासा थी, अत रोटी बनाने के साथ पढ़ा भी करते थे। उस समय उनका नाम धुरेन्द्र था। एक दिन पूज्यपाद स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज की कृपा भरी पैनी दृष्टि इन पर पड़ी और उनसे कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर से सन्तुष्ट होकर स्वामी जी महाराज ने रोटी बनाने के कार्य से मुक्त करके केवल पढ़ने में नियोजित कर दिया। पढ़ने लिखने में कुशाग्र बुद्धि के कारण आश्रम की पढ़ाई शीघ्र ही पूरी हो गयी। स्वामी जी महाराज ने ब्रह्मचारी धुरेन्द्र को लाहौर में पढ़ने के लिए भेज दिया। वहां से शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण होकर श्री शास्त्री जी ने जयपुर तथा वाराणसी जाकर न्याय शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन किया और आर्य-जगत् मे प० धुरेन्द्र शास्त्री "न्याय भूषण" के रूप मे प्रसिद्ध हुए। पूज्य स्वा० सर्वदानन्द जी महाराज के साधु आश्रम मे पुल काली नदी के किनारे ब्रह्मचारी अखिलानन्द जी, प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, प० धुरेन्द्र जी शास्त्री तथा इनके एक और साथी ने व्रत लिया था कि आजन्म ब्रह्मचारी रहकर स्वा० दयानन्द जी महाराज के सिद्धान्तो का प्रसार एव प्रचार करेंगे। इन चारों में प्रथम तीनो ने अपने जीवन का एक एक क्षण अपने सकल्प के अनुसार देश तथा धर्म के उत्थान मे लगाकर व्रत को अक्षरश निभाया। पश्चात् पण्डित जी ने अखिल भारतवर्षीय शुद्धि सभा में अधिकारी के रूप मे स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज के साथ शुद्धि के कार्य से सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर लाखों मलकानों तथा अन्य विधर्मियो की शुद्धि की।

१९२४ ई० मे इनकी ख्याति बढ़ने लगी। पटना सिटी के हुतात्मा वीर बा० नारायणसिंह जी ने इन्हें उत्सव के अवसर पर आमन्त्रित किया। आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार के प्रधान मन्त्री तथा गुरुकुल महाविद्यालय के मुख्य जन्मदाता जिन्हे महामना प० मदनमोहन मालवीय 'सरस्वती' के वरद पुत्र से सबोधन किया करते थे उन्हीं के सभापतित्व मे एक शास्त्रार्थ हो रहा था। विरोधी पक्ष की ओर से प० आत्माराम जी तथा आर्यसमाज की ओर से श्री प० धुरेन्द्र शास्त्री जी 'न्यायभूषण' उत्तर दे रहे थे। इनका शरीर सुडौल और बलवान्, छाती उभड़ी हुई, तेजपूर्ण आंखें, ऊंचा मस्तक लम्बे पांव, बाजू मोटे तथा आकर्षक और तेजपूर्ण मुखमण्डल इनके, व्यक्तित्व एव वाणी का अमिट प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा। अपार भीड़ भी मन्त्र-मुग्ध होकर सुन रही थी। शास्त्रार्थ के अन्त मे जनता वैदिक धर्म की जय, स्वा० दयानन्द की जय एव प० धुरेन्द्र शास्त्री जी की जय बोल रही थी।

पश्चात् प० रामचन्द्र जी द्विवेदी के आग्रह से गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम के आचार्य पद को स्वी-

कार कर १९२९ तक कार्य करते रहे और देवघर को ही मुख्य केन्द्र बनाकर सारे भारतवर्ष मे प्रचार करते रहे। उस समय से मृत्यु पर्यन्त तक वे बिहार के एक अभिन्न अग बने रहे।

सन् १९२७ मे दानापुर आर्यसमाज मे स्वर्ण जयन्ती समारोह होने वाला था। लोगों की धारणा थी कि आर्य समाज मे विद्वान् लोग नहीं हैं। इस भावना को निर्मूल करने के लिए इन्होने राजा अवधेशसिंह जी, कालाकाकर एव अमेठी के राजकुमार रणजयसिंह को सभापतित्व करने के लिए आमन्त्रित किया एव आय जगत् के बडे-बडे नेता महात्मा नारायणस्वामी, प० रामचन्द्र जी देहलवी आदि पधारे। यह समारोह बहुत ही सफल रहा तथा बडा ही प्रभावोत्पादक रहा।

जीवन के प्रारम्भ से अस्वस्थ होने के पूर्व तक अपना वस्त्र प्रक्षालन, निवास की सफाई आदि सारा कार्य आप स्वय किया करते थे। नियमित व्यायाम, सध्या अग्नि-होत्र आदि दैनिक कार्य करते थे।

स्वामी ध्र वानन्द जी का प्रभाव भारत तथा भारत के बाहर सभी स्थानो पर समान था सभी स्थानों के श्रेष्ठ जन सम्मानपूर्वक इनका आदर करते थे।

प० धुरेन्द्र जी शास्त्री के प्रभाव मे बिहार के नव-युवकगण आये और स्वामी जी महाराज ने इन नवयुवकों के आग्रह पर अपना मुख्य निवास केन्द्र पटने मे बनाने की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिलते ही पटना जनरल अस्प-ताल के मुख्य चिकित्सा सहायक श्री नवल जी ने अपना क्वार्टर निवास के लिए प्रदान किया। इस अवधि मे इनका मुख्य कार्य आर्यसमाज का प्रचार था। पटना निवास काल मे आयकुमार सभा को सुदृढ बनाकर पुष्पित एवं पल्लवित किया। सायकाल मे प्रतिदिन सैकडों नव युवक आर्यसमाज बाकीपुर मे स्थित आर्यकुमार सभा मे पुस्तकालय, व्यायामशाला (पश्चात् धुरेन्द्र व्यायामशाला) एव वैदिक हिन्दी पुस्तकालय से आर्यसमाज का प्रचार कार्य करते रहे। उस समय इन आर्यकुमार सभा में अकथ-नीय जीवन था। उक्त अवसर पर उक्त आर्यकुमार सभा का वार्षिकोत्सव इतना आकर्षक एव प्रभावोत्पादक होता कि जिसमें सभापतित्व का कार्य पटना हाईकोर्ट के मुख्य न्या-याधीश सर ट्रेलर कुटनी एवं श्री के पी जायसवाल, सर गणेशदत्तसिंह आदि किया करते थे। जिसमें पटना विश्व-विद्यालय (उस समय बिहार में केवल एकही विश्वविद्या-लय) के सैकडो स्नातक एव स्नातकोत्तर छात्र आर्यसमाज के सिद्धान्तो में दीक्षित हुआ करते थे। मुख्यत स्वामी शकरानन्द जी (कराची) तथा प० रामचन्द्र जी देहलवी के भाषण सुनने के लिये बहुत भीड आया करती थी।

पटना निवास के समय १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे प० धुरेन्द्र जी शास्त्री ने सक्रिय भाग लिया बिहार के भिन्न-भिन्न भागो मे जन जागरण तथा राष्ट्रीय भावना को जगाने का प्रबल प्रयत्न किया। पटना सिटी स्थित मगल तालाब पर भाषण देने के लिये सरकार ने इन्हे दण्डित किया तथा हजारी बाग जेल मे कैदी बनाकर बडे-बडे राष्ट्रीय नेताओ के साथ रखे गये। जेल मे भी वैदिक धर्म प्रचार के लिए दैनिक क्लास लिया करते थे। तथा सध्या एव यज्ञ का सक्रिय प्रचार किया करते थे, उत्तर बिहार के शास्त्रार्थ में वहा के कट्टर पौराणिकों ने अचानक गले मे मोटी रस्सी डालकर मारना चाहा, पर इनकी शारीरिक शक्ति एव ईश्वर की कृपा ही थी कि आपकी जान बच गयी। शाहपुराधीश महाराजा उमेदसिंह जी इनके अनुकरणीय आचरण एव कर्मठ जीवन से बहुत ही प्रभावित हुए तथा राजकुमार सुदर्शन देव को धर्म-शिक्षा पढ़ाने के लिए इन्हे नियुक्त किया। वहां कई वर्षों तक इस कार्य को करते रहे। महाराज उमेदसिंह जी भी इनसे बहुत ही प्रभावित हुए और इन्हें 'राजगुरु' की उपाधि से दरबार मे अलकृत किया गया। पूर्णियां,विक्रमा, झालावाड़ा, देवासे (जूनिआर) शाहपुरा के राजा आपके शिष्य रहने मे गौरवान्वित थे। इनके अतिरिक्त सैकड़ों राजा, राजबहादुर तथा जमींदार का नाम गिनाना सम्भव नहीं है। सभा के सभापति चुने गये और उस पद पर कई वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य किया।

हैदराबाद मे हिन्दुओं पर निजामशाही सरकार की नादिरशाही एव अत्याचार से बचाने के लिए आर्यसमाज को कोप भाजन बनना पडा। निजाम शाही सरकार पशु-बल से आर्यवीरों पर अमानुषिक अत्याचार जोरों से करने लगी किन्तु आर्यवीर गीदड़ भभकी से कोई डरने वाले थोड़े ही थे। सार्वदेशिक सभा को लाचार होकर



सत्याग्रह करना पड़ा। इसी हैदराबाद सत्याग्रह के आप चौथे डिक्टेटर सर्वाधिकारी चुने गये। स्पेशल ट्रेन से आर्य सत्याग्रहियों को लेकर निजामशाही के किले की जड़ हिला दी। कई बार जेल की अमानुषिक एव विशेष यातनाओं को सहते रहे।

पश्चात् अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार सभा के सभापति चुने गये। इस पद को इन्होने बड़ी दक्षता से सम्भाला।

सिन्ध के सत्यार्थ प्रकाश सत्याग्रह के आप प्रथम सर्वाधिकारी बनाये गये तथा सत्याग्रहियो को लेकर कराची की गलियों मे सत्यार्थ प्रकाश की आवाज को गुजाते रहे किन्तु आर्य वीरों को रोकने का साहस सरकार को नहीं हुआ। फलत सिन्ध सरकार का यह प्रतिबन्ध केवल कागजी ही रह गया।

१९५० से १९५५ तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सभापतित्व से सार्वदेशिक सभा की नींव को दृढ़ बनवाकर आर्यसमाज का सर्वांगीण विकास करते रहे।

पश्चात् सन्यास आश्रम मे दीक्षित होकर स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज ने सन् १९५५ के नवम्बर में साढ़े तीन वर्षों तक मौरीशस, पूर्वी अफ्रीका (युगान्डा, टान्गानिका जजीबार) दक्षिण रोडेशिया 'मेडागास्कर आदि स्थानों मे बडी सफलता के साथ वैदिक धर्म की दुन्दुभी बजाते हुए आर्यसमाज के सगठन को दृढ़ एव स्थिर किया।

विदेश से आने पर पुन दिल्ली से अखिल भारतवर्षीय आर्य सम्मेलन के सभापति चुने गये। पश्चात् तीन वर्षों तक स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का सभापतित्व किया।

१९६४ मे पुन बर्मा तथा मलाया मे जाकर प्रचार किया ता० २९जून १९६५ को प्रात काल शूरजी के बम्बई स्थित कच्छ पैलेस मे जब वे दिल्ली हवाई जहाज से चलने को तैयार थे, उसी समय अचानक हृदय का दौरा हुआ तथा सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री प्रताप जी वल्लभदास जी शूर के कच्छ पैलेस मे इनका प्राणान्त हो गया।

स्वामी ध्रुवानन्द जी के नेतृत्व मे विशेष बातें चरित्र-निर्माण, सगठन प्रेम एव आर्य-सिद्धान्त के लिये सर्वस्व त्याग की भावना थी। स्वामी जी महाराज ने आर्यसमाज के लिये घर द्वार नाता रिश्ता, अपना पराया सबको त्याग कर सब कुछ आर्य समाज को ही अपना बनाया।

दक्षिणादि जो कुछ भी प्राप्त होता सब सर्वदानन्द साधु आश्रम के सचालन एव अन्य उदीयमान छात्रों को दे दिया करते थे। मृत्यु के समय उनके पास कुछ भी पैसे नहीं थे।

वर्षों पूर्व से ही बड़े-बड़े डाक्टर स्वामी जी को पूर्ण विश्राम की सम्मति देते आ रहे थे किन्तु स्वामी जी महाराज ने अपना अमूल्य शेष जीवन भी आर्यसमाज के लिए न्योछावर कर दिया। आर्यसमाज को सगठित पुष्पित एवं फलित देखकर उनका मुखमण्डल खिल उठता था। स्वामी जी महाराज बड़े क्रियाशील, निस्वार्थ जनसेवी कर्मठ अध्यवसायी, दृढ़, सकल्पी, वैदिक सस्कृति मे अटूट आस्थावान् तथा आर्यसमाज के मूर्धन्य नेता थे। स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज के चरित्र में ब्रह्मतेज एवं क्षात्र तेज का अलौकिक सम्मिश्रण था। इनका जीवन 'स्वयमेव मृगेन्द्रता' का अनुपम उदाहरण है। इन्हीं कारणों से सर्वत्र उनके लिये विजय श्री जयमाल लिये खड़ी रहती थी। जब तक आर्यसमाज जीवित रहेगा, इनकी अमलधवल कृति जीवित रहेगी एव इनका चरित्र प्रकाश-स्तम्भ के समान काम करता रहेगा।

●

[पृष्ठ १७ का शेष]

आर्यसमाज में आ जाते हैं वे भी कालान्तर में यहां की गुटबन्दी, पदलोलुपता और भले लोगो की अप्रतिष्ठा को देखकर इससे दूर रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

आर्यसमाज स्वामी ध्रुवानन्द जी की सेवाओं को भली प्रकार समझे और उनका मूल्यांकन करे। ऋषि दयानन्द के बताये हुये आर्य सगठन के वास्तविक रूप का अनुकरण करे और गुटबन्दी, योग्य अयोग्य समासदों की भरती के बल पर समाज और समाजों मे पदासीन होने की कुत्सित मनोवृत्ति का परित्याग करे।



आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान्-
स्वामी ध्रुवानन्द जी के कतिपय संस्मरण

(ले०—श्री प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए०)

स्वामी ध्रुवानन्द जी के गत २९ जून को दिवगत होने से आर्य जगत् को कितनी अपूरणीय क्षति हुई है, यह सहज ही कल्पनीय नहीं है। स्वामी जी युग पुरुष, युग नेता तथा वास्तविक नेतृत्व की क्षमता रखने वाले अद्भुत पुरुष थे। हैदराबाद आर्य सत्याग्रह तथा सिन्ध के सत्यार्थ प्रकाश आन्दोलन मे भाग लेकर उन्होने आय जाति का ही नेतृत्व नहीं किया अपितु समस्त भारत के समाज मे अपने कौशल पूर्ण नेतृत्व की धाक बिठा ली। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद पर वर्षों रहकर उन्होने आर्यसमाज के आन्तरिक सगठनात्मक पहलू को सुदृढ़ बनाने का अपूर्व प्रयास किया।

लेखक को स्वामी जी के प्रथम दर्शन उस समय हुये जब वे एक गोरक्षा सम्मेलन का सभापतित्व करने १९५४ में जोधपुर पधारे थे। उस समय उनका प्रवचन जोधपुर की महर्षि दयानन्द मार्ग (रातानाडा) आयसमाज मे रक्खा गया, और उसमे नगर के सभी आय पुरुषो के अतिरिक्त अनेक गण्यमान नागरिक एव भारतीय सस्कृति के उपासक सज्जन भी विद्यमान थे। उक्त गो रक्षा सम्मेलन का आयोजन जिन व्यक्तियो ने किया था, उनमें आर्यसमाज के प्रतिनिधि नगण्य से थे, अत इस स्थिति को मैंने स्वामी जी के समक्ष प्रस्तुत किया। उनका समाधान अत्यन्त युक्तियुक्त था। उन्होंने कहा कि इस प्रकार के गोरक्षा सम्मेलनों के आयोजन रखना आर्यसमाजों का ही प्रमुख कर्तव्य है। यदि हम स्वय ही अपने कर्तव्य से पराङमुख हों, और अन्य लोग उस कार्य को करें तो हमे उसमे वैधानिक आपत्ति करने का क्या अधिकार है?

स्वामी ध्रुवानन्द जी जहाँ जाते, वहाँ के आर्य पुरुषो से मिलकर आर्यसमाज की आन्तरिक समस्याओ और अन्तरग स्थिति पर चर्चा अवश्य करते। वे यह भी चेष्टा करते कि आर्यसमाजियो के पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने तथा उन्हें परस्पर निकट लाने के लिये पूर्ण प्रयास किया जाय। यथासम्भव वे आर्यसमाजो मे ही ठहरना पसन्द करते, यद्यपि नगर के गण्यमान्य व्यक्तियो की यह अभिलाषा रहती कि स्वामी जी अपने निवास द्वारा उनके भवन को सुशोभित करें। उस बार भी जब वे जोधपुर पधारे थे तो नगर के एक प्रतिष्ठित और धनी वकील की कोठी पर ठहरने के आग्रह को अस्वीकार कर उन्होने आर्यसमाज सरदार पुरा के साधारण कमरे मे ही अपना डेरा जमाया। आयसमाज को अपना सर्वस्व समझने वाले व्यक्ति से यही अपेक्षा की जा सकती है।

उस दौरान स्वामी जी ने मुझे अपने कक्ष मे पृथक् रूप से बुलाया और मेरा व्यक्तिगत विस्तृत परिचय पूछा। मैंने निवेदन किया कि मै आयसमाज मे अपनी छात्रावस्था से ही दिलचस्पी लेता रहा हू तथा आर्यसमाज के लगभग सभी पत्रों मे नियमित रूप से सैद्धान्तिक लेख आदि लिखता रहता हू। स्वामी जी यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने मुझे न्याय दर्शन का विधिवत् अध्ययन करने का परामर्श दिया। मैने उन्हे अपनी स्वरचित 'महर्षि दयानन्द तथा अन्य भारतीय धर्माचाय' शीर्षक पुस्तिका भेंट की, तो वे उसे पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा मेरी लिखने पढ़ने सम्बन्धी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन दिया। कहना न होगा कि मेरी 'श्रीकृष्ण चरित' शीर्षक पुस्तक को प्रकाशित करने की प्रेरणा स्वर्गीय स्वामी जी ने ही आर्य साहित्य मण्डल को दी, जिसके फलस्वरूप उक्त मण्डल द्वारा यह ग्रन्थ छप सका।

सन्यास ग्रहण के अनन्तर स्वामी जी ने अफ्रीका, मौरीशस आदि विदेशों मे आर्य धर्म के प्रचारार्थ प्रस्थान किया। उस समय मैं एक छोटे से गाव मे अपनी जीविका वश रह रहा था। उस समय आर्यमित्र मे प्रकाशित मेरे

कतिपय वेद विषयक लेखों को पढ़कर स्वामी जी ने उक्त देहात मे मुझे पत्र लिखा तथा निरन्तर पत्राचार रखने का परामर्श दिया। जिन लोगों का स्वामी जी से पत्र व्यवहार रहता था, वे यह जानते हैं कि स्वामी जी के पत्र कितने प्रेरणाप्रद होते थे। वे पत्रों के अन्त में 'शिवास्ते सन्तु पन्थान' जैसा उत्कृष्ट आशीर्वाद सूचक वाक्य लिखना कभी नहीं भूलते थे।

स्वामी जी अपने विदेश प्रवास से जब १९६१ मे लौटे तो उन्हे नवम आर्य महासम्मेलन दिल्ली का अध्यक्ष पद स्वीकार करना पड़ा। इस पद को ग्रहण करने के अनन्तर वे सार्वदेशिक सभा के अध्यक्ष पद पर पुन निर्वाचित हुए। इस समय तक अनेक प्रान्तों के आर्य पुरुषों मे मनोमालिन्य दृष्टिगोचर हो रहा था तथा कतिपय प्रतिनिधि सभाओं के अधिकारियो मे भी सौमनस्य भाव बहुत कम था। उस समय जब मै स्वामी से दिल्ली के दयानन्द भवन मे मिला तो उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि वे देश व्यापी दौरा करेंगे तथा प्रत्येक प्रान्त के आर्य पुरुषों से मिलकर उनके पारस्परिक वाद-विवादों को दूर करने मे सहायक होगे। कहना न होगा कि इस प्रकार का कार्य आर्यसमाज की आन्तरिक शक्ति को सुदृढ़ बनाने तथा उसके सगठन को निर्दोष बनाने की दृष्टि से नितान्त श्लाघनीय था। उसी समय स्वामी जी ने लेखक को अपना एक हस्ताक्षर युक्त चित्र भी दिया।

स्वामी जी की यह हार्दिक इच्छा रहती थी कि आर्य समाज का भीतरी सगठन भी उतना ही मजबूत रहे जितना कि उसका बाहरी रूप जन समाज के समक्ष आता है। उन्होंने आर्यसमाज की आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने मे अपनी अपार सगठन शक्ति का परिचय दिया था। जोधपुर मे सार्वदेशिक सभा की जो अचल सम्पत्ति है उसके सम्बन्ध मे कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए स्वामी जी जोधपुर आये। उस समय (अक्टूबर १९६२) मैं जोधपुर से स्थानान्तरित होकर पाली आ गया था। जोधपुर आते ही श्री महाराज ने मुझे स्मरण किया। मैं तुरन्त उनकी सेवा मे पहुचा। स्वामी जी ने मुझसे जोधपुर की सम्पत्ति विषयक मेरी जानकारी के बारे में पूछा, तथा इसी प्रकार सभी पक्षो की बातें सुनने के अनन्तर अपना निर्णय दिया।

स्वामी ध्रुवानन्द जी एक मधुर वक्ता, कुशल सभा सचालक तथा आर्यसमाज के अप्रतिम नेता थे। इस बार तथा इससे पूर्व भी जब वे आर्यसमाज गुलाबसागर जोधपुर के दैनिक एव साप्ताहिक सत्सग मे उपस्थित हुये तो सन्ध्या तथा यज्ञ विषयक आर्यों की कतिपय त्रुटियो तथा असगतियों के शोधन की ओर उन्होने सबका ध्यान आकृष्ट किया। मन्त्रो के उच्चारण के सम्बन्ध मे जो सामान्य त्रुटियां आर्य पुरुषों से होती हैं उनकी ओर निर्देश करना यह बताता है कि स्वामी जी आर्यसमाज की छोटी से छोटी और बडी से बडी समस्या के प्रति भी कितने जागरूक रहते थे। हम जानते हैं कि सगठन मे छोटी छोटी बातों का बडा महत्व रहता है।

इस बार मैंने स्वामी जी से आर्यसमाज की कतिपय समस्याओं के बारे मे कुछ प्रश्न इण्टरव्यू के रूप में पूछे जो बाद मे सार्वदेशिक सभा के मुख-पत्र सार्वदेशिक में छपे। स्वामी जी द्वारा बताये गये कुछ स्वर्ण सूत्र निम्नलिखित हैं—

[१] प्रत्येक आर्यसमासद् प्रति रविवार अपने परिवार सहित आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सग मे उपस्थित हो।

[२] आर्यसमाज का प्रत्येक अधिकारी इस बात को देखे कि उस समाज के कौन कौन समासद सत्सग में उपस्थित नहीं होते हैं। वे स्वय उन समासदों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर उनसे सत्सग मे सम्मिलित होने की प्रेरणा करे।

[३] प्रत्येक समासद् अपना मासिक चन्दा स्वयं आर्यसमाज मे लाकर कोषाध्यक्ष के पास जमा कराये। यह कार्य कर्मचारी के सुपुर्द न किया जाय। इससे आर्यसमाज के प्रति हमारे दायित्व का भान हमे होगा।

[४] प्रत्येक आर्य कोई ऐसा कार्य न करे, न ऐसी वाणी बोले जिससे आर्यसमाज के गौरव को क्षति पहुचे।

कहना न होगा कि यदि उक्त सूत्रों को हम आचरण

में लगने लगें तो सहज ही में आर्यसमाज का कायाकल्प हो सकता है।

गत वर्ष से स्वामी जी प्राय रुग्ण रहने लगे थे, फिर भी आर्यसमाज के कार्यों से उन्हें कहां विश्राम था। हनुमान के शब्दों में 'राम काज कीन्हे बिना मोहि कहां विश्राम' जब तक दयानन्द के कार्य की पूर्ण सिद्धि न हो, जब तक आर्यसमाज की विजय दुदुंभी दिग्-दिगन्तर में न गूंजने लगे तब तक स्वामी ध्रुवानन्द को चैन नहीं। अत वे पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों के सहायता कार्य मे जुट गये। बगाल, त्रिपुरा, तथा अन्य सीमावर्ती प्रान्तों मे आर्यसमाजों द्वारा खोले गये सहायता शिविरों का निरीक्षण करना उनके व्यस्त कार्यक्रम का का एक प्रमुख भाग रहा।

गत वर्ष स्वामी जी ने मुझसे पूछा कि क्या मैं प्रचारार्थ ३-४ मास के लिये मौरीशस जाने के लिए तैयार हू। वहां की आर्य प्रतिनिधि सभा ने सार्वदेशिक सभा से एक प्रचारक मांगा और स्वामी जी चाहते थे कि मैं कुछ दिन अवकाश लेकर इस कार्य में प्रवृत्त होऊं। उन्होंने यह भी पूछा कि क्या मेरे लिये कुछ वर्षों के लिये मौरीशस की राजधानी मे प्रारम्भ किये गये डी० ए० वी० कालेज मे प्राध्यापक पद पर रहना स्वीकार्य होगा। मैं अपने अनुसन्धान कार्य तथा कुछ स्वास्थ्य विषयक कारणों से इस विषय मे कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था, परन्तु स्वामी जी का मुझे इस कार्य के लिये स्मरण करना ही इस बात का द्योतक है कि वे हार्दिक रूप से यह चाहते थे कि आर्यसमाज केवल स्वदेश मे ही नहीं अपितु विदेश में भी लोक-प्रियता प्राप्त करे। उनकी सिंगापुर और बैंकोक की यात्रा ने भी प्रवासी भारतवासियों के बीच आर्यसमाज को जनप्रिय बनाया। स्वामी जी अपनी सेवाओं के लिये आर्य पुरुषों के लिये सदा स्मरणीय एव वंदनीय रहेंगे।

★

हा स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती!

पंच तत्व निर्मित शरीर से नाता तोडा—
आर्य-जगत् से हाय अचानक मुख को मोड़ा।
बने धूरिया से धुरेन्द्र गुरु पदवी पाई—
ब्रह्मचर्य की झलक रही चेहरे पर छाई।
दलितों पर करते दया दीनों के अवतार थे—
रहे मधुर भाषी सदा त्यागी बहुत उदार थे।
दयानन्द के मिशन हेतु तुम सब कुछ छोडा—
बने न कभी गृहस्थ मोह का बन्धन तोडा।
काम क्रोध की गती न तुम तक गति कर पाई।
होवे बड़े प्रचार यही धुनि रही समाई।
उन्नत भाल विशाल उर उपकारी विद्वान् थे—
न्याय-शास्त्र में थे निपुण सबको एक समान थे।
साधु आश्रम दुखी विकल ब्रह्मचारी सारे—
ढूढत आंखें फाड आज तुम कहां सिधारे—
कहां पर लगी समाधि कहां रत हुए योग मे—
काली सरिता आज रो रही है वियोग में।
शिष्य सर्वदानन्द के आज सदा को सो गये—
'सरस' मातृ भू खोजती लाल तपस्वी खो गये।

—वैद्य राजबहादुर आर्य 'सरस'

ध्रुवानन्द

धर्म के धनी थे ध्रुवानन्द ध्रुवतारा सम,
अपने सिद्धान्त की अटलता दिखा गये।।
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत साधना के साधन सा,
कीर्ति कौमुदी को कुज कुज में खिला गये।।
अपनी तेजस्विता निर्भीकता प्रचार शैली,
सगठन की क्षमता से सेनानी कहा गये।।
विश्व कल्याण हित मां भारती का वरद पुत्र,
नश्वर काया मानव सेवा मे लगा गये।।
धुरेन्द्र शास्त्री से ध्रुवानन्द स्वामी बन,
छोड मोह ममता कैवल्य में विला गये।।

—सूर्यप्रकाश (जौनपुर)

हा ! पूज्य स्वामी श्री ध्रुवानन्द जी महाराज !

(विद्याभूषण श्री ओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री, एम० ए०, आचार्य, फीरोजाबाद)

आर्य जगत् के प्रसिद्ध कविवर प० श्री प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न अजमेर ने एक कविता लिखी है—"रहेंगे न हम और सुख साज सारे मगर सृष्टि का चक्र चलता रहेगा।" गीत की यह प्रथम पंक्ति संसार की नश्वरता का मानो सजीव चित्र उपस्थित कर रही है। संसार से आये दिन कितनी विभूतियां उठती जा रही हैं किन्तु सृष्टि का चक्र अनादि काल से चल रहा है, और चलता रहेगा। विधि का विधान अत्यन्त कठोर एवं निश्चित है कौन जानता था विगत जून के उस २९ दिनांक को जिसने कि हम से आर्यजगत् के प्रसिद्ध महान् शुभचिन्तक आदित्य ब्रह्मचारी पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी को एक क्षण में वियुक्त कर दिया।

मैं पूज्य स्वामी जी को ३४ वर्ष से जबकि वे राजगुरु प० धुरेन्द्र शास्त्री के रूप में विख्यात थे, जानता था। सन् १९३१ की बात है, जबकि मैं देशबन्धु विद्यालय नहर पुल बरौठा में कुछ दिन पढ़ने के उपरान्त साधुआश्रम पर प्रविष्ट हुआ। उस समय आश्रम पर पूज्य प० श्री इन्द्रदेव जी व्याकरणाचार्य मुख्याध्यापक तथा पूज्य स्वा० श्री पूर्णानन्द जी सरस्वती मुख्याधिष्ठाता थे। मैं साधुआश्रम पर लगभग ३ वर्ष तक पढ़ा। इस समय में अनेक बार राजगुरु जी के दर्शन किये। वे अत्यन्त स्वस्थ, स्वच्छ एवं प्रसन्न चित्त रहने वाले व्यक्ति थे। ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण उनका मुख मण्डल देदीप्यमान रहता था। उनकी भुजायें हाथी की शुण्ड के समान एवं जघायें कदली स्तम्भ के समान ही थीं। व्यायाम में अत्यन्त रुचि थी। वे स्वच्छता के तो मानो साक्षात् अवतार थे। यहां तक कि वस्त्रों के साथ खड़ाऊँ तथा छाते को भी धोते थे। जिस कमरे में वे आकर रहा करते थे वह भी अत्यन्त साफ रहता था। उनको हम लोग सभी छात्र "शास्त्री" जी के नाम से जानते थे। और जानते थे बड़े स्वामी जी (पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज) के प्रधान शिष्य के रूप में। मेरे सहपाठियों में थे उस समय प० श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा शास्त्री अम्बाला इनके अनुज स्व० प० देवेन्द्र शर्मा काव्य व्या० तीर्थ, आचार्य प० विश्वबन्धु जी शास्त्री, प०जयदेव शर्मा वैद्य, पूज्य प० शिवकुमार जी शास्त्री तथा स्व० प० शिवदत्त जी शास्त्री हम लोगों से सीनियर थे।

हम लोगों को एक बार पूज्य बड़े स्वामी जी ने 'तर्क संग्रह' पढ़ाना प्रारम्भ किया। एक दिन स्वामी जी ने पढ़ाते हुए किसी प्रसंग में कहा—देखते हो इस 'धुरेन्द्र' को जब यह मेरे पास पहिले पहल मथुरा में आया था तो इसका नाम 'धूरिया' था और यह निरक्षर था तुम लोग भी इसकी तरह श्रमपूर्वक पढ़ोगे तो शास्त्री बन जाओगे।

बस उसी दिन से 'शास्त्री जी' का जीवन हम लोगों के लिए अनुकरणीय बन गया। वे जब कभी आश्रम पर आकर रहते थे तो कुछ न कुछ दिन भर करते ही रहते थे। कभी वहाँ झाड़ू लगाते, कहीं घास छीलते, कहीं कोई वृक्ष लगाते, या कुएँ की सफाई करते। शास्त्री जी का श्रम एवं तपोनिष्ठ जीवन हम छात्रों को सर्वदा प्रेरणा देता रहता था। वे हम सबको व्यक्तिगत रूपेण भी पहिचानते थे। यही जान पहिचान अभी तक चली आ रही थी। उसी के आधार पर आश्रम से पृथक् हो जाने पर भी जब कहीं 'शास्त्री जी' मिल जाते थे तभी कुशल मंगल पूछने के बाद दो प्रश्न अवश्य करते थे। १—सन्ध्या दोनों समय करते हो। २—व्यायाम रोज करते हो। इन प्रश्नों का यदि सन्तोषजनक उत्तर उनको मिल जाता तो वे प्रसन्न होते थे। यदि कभी उत्तर में कुछ कमी होती, तो तत्काल उपदेश देने लग जाते थे।

इस लेख को लिखते समय उस समय का भी दृश्य स्मृति पट पर आ रहा है, जबकि 'शास्त्री जी' आश्रम पर ही पुण्य श्लोक स्व० पूज्य स्वामी श्री आत्मानन्द जी महाराज से सन्यास आश्रम की दीक्षा लेकर धुरेन्द्र शास्त्री से स्वा० ध्रुवानन्द बने। उस समय आश्रम के पूर्ण समारोह के साथ होने वाले इस महोत्सव की अपूर्व शोभा थी। भव्य यज्ञशाला में स्वा० आत्मानन्द जी महाराज,

स्वा० ब्रह्मानन्द जी दण्डी महाराज, आचार्य प० शङ्कर-देव जी वैयाकरण, स्व० पूज्य प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आचार्य, पूज्य ब्र० अखिलानन्द जी महाराज विराजमान थे। पूर्ण विधि विधान के साथ जिस समय पूज्य स्वा० आत्मानन्द जी महाराज के पुण्यादेश से डा० प्रेमदत्त शास्त्री मुख्य कार्यकर्ता ने गैरिक वस्त्र एव कमण्डलु उठा-कर उनको समर्पित किया, तब उपस्थित जनता की आँखों मे आँसू छलछला आये। उस समय पूज्य प० ब्रह्म-दत्त जी जिज्ञासु तो कण्ठावरोध होने के कारण "ये हमारे गुरु का गुरुद्वारा है 'इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ बोल भी न सके। कलकत्ता निवासी प० अयोध्याप्रसाद जी वैदिक मिशनरी ने कहा कि हम तो सैकिण्ड इयर मे ही रह गये और 'शास्त्री जी' तो फोर्थइयर मे पहुच गये। एकबार जनता उस समय फिर भाव विभोर हो उठी जबकि आर्यजगत के प्रसिद्ध नेता म० कृष्ण जी ने स्वा० ध्र ुवानन्द जी के चरण छूकर वन्दना की।

काषाय वस्त्रधारी दण्ड कमण्डलु हाथ मे लिए हुए ध्र ुवानन्द सरस्वती दीक्षा के अन्तिम भाग का समापन करने के लिये जिस समय काली नदी के पुल के नीचे पहुचे तो एक अनोखा समारोह था। ऊपर जनसमूह उमड रहा था, तो कालीन्दी की असख्य लहरें नवागत स्वा०ध्र ुवानन्द का स्वागत करने के लिये उछलती-कूदती हुई मन्द ध्वनि के साथ लोटपोट हो रही थीं। विचार आता है कि काली नदी की लोल लहरिया तब से अब तक पता नहीं कितनी बार नाचती थिरकती हुई चली जा रही हैं, और निर्वाध गति से यह क्रम प्रचलित रहेगा। नदी का पुल मौन समाधि मे अब तक लीन है, काली नदी के दोनों किनारे भी ज्यों के त्यों हैं, जिन पर कि उनके प्यारे ध्र ुवानन्द प्रात साय भ्रमण किया करते थे। आश्रम के वृक्ष भी ज्यों के त्यों लहरा रहे हैं किन्तु अब वह चमकता हुआ मुखमण्डल देखने को नहीं मिलेगा।

स्वामी जी महाराज मे एक विशेष गुण यह था कि जो इनका परिचित होता था उसको वे भूलते नहीं थे, चाहे कितना ही समय व्यतीत हो जावे। एक बार बात अलीगढ आ० स० मन्दिर की है और उस समय की है-जबकि स्वामी जी अफ्रीका की प्रचार यात्रा से लौटे थे। उस दिन रविवार था। सत्सग मे स्वामी जी महाराज का व्याख्यान भी हुआ। व्याख्यान के उपरान्त आर्यपुरुषो की भीड ने स्वामी जी को घेर लिया। कुछ विशिष्ट पुरुषो से स्वामी जी वार्तालाप करने लगे। उसी समय मैने चरणस्पर्श कर नमस्ते किया। तुरन्त बोल उठे, अरे 'प्रणव' अच्छा कुशल पूर्वक हो। मैने कहा-आपका आशीर्वाद है।

भारतीय वेशभूषा के वे कट्टर पक्षपाती थे, आश्रम की गत स्वर्ण जयन्ती पर मै चूडीदार पाजामा तथा शेर-वानी पहिने ही चला गया और स्वामी जी को जाकर प्रणाम किया तो मुस्कराकर बोले--आइये मुन्शी जी! और कहने लगे-पण्डित होकर ये मुन्शियो की वेशभूषा क्यो रखते हो ?

स्वामी जी समाज के व अपने प्रियजनों के जिस कार्य मे जुटते थे उसमे प्राणपण लगा देते थे। गत चुनाव मे अलीगढ क्षेत्र से प० शिवकुमारजी शास्त्री ने एम०पी० पद के लिये चुनाव लडा था उसमे स्वामी जी महाराज ने बडा परिश्रम किया। एक वोट के लिये वे कितने लालायित थे। एक दिन कार्यालय मे बैठे बैठे कहने लगे कि इगलास के पास किसी ग्राम मे मेरे मामा रहते थे उन के नाम और ग्राम का पता लग जावे तो कुछ वोट तो मिल ही जावेंगे। उस समय पूज्य प० शिवकुमार जी शास्त्री ने सकेत किया और धीरे से कहा देखो स्वामीजी की चिन्ता। ऐसा था स्वामी जी महाराज का अपनों के प्रति अपनत्व।

आज आर्य जगत् के सर्वोच्च सेनानी पूज्य स्वामीजी महाराज की केवल स्मृतिया शेष हैं। अब उनके नाम के साथ स्वर्गीय शब्द जुडकर कितना दु खदायक प्रतीत होता है, यह मुझ जैसे भावुकभक्तो का हृदय ही जानता है।

●

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः अथर्व १२।१।१२

मातृभूमि पृथिवी के पुत्रो मातृभूमि हित बलि हो जाओ।

९ मातृभूमि को तन, मन, धन अर्पण कर जीवन सफल बनाओ॥



पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के दर्शन मात्र से आर्यसमाज की ओर आकृष्ट

(ले० –श्री रामस्वरूप 'सिद्धान्त शास्त्री' भूतपूर्व मन्त्री आर्यसमाज, शाहपुरा, राजस्थान)

अप्रैल सन् ३५ की बात है जिस समय मै ७वीं कक्षा मे पढ़ता था प्रात ७॥ बजे पाठशाला मे पढ़ने जा रहा था, सामने से आते हुये एक भव्य देदीप्यमान महापुरुष जिनके शिर पर काले केश, पैरो मे काले रग के जूते, सफेद कुर्ता एव सफेद धोती पहने, हाथ मे काला छाता, मस्तक पर यज्ञ की काली बिन्दु, हाथ मे सुनहरी घड़ी लगाये द्रुत गति से आते हुये को देखा। शिष्टाचार के नाते हमने नमस्ते किया तो उत्तर मिला कि "बच्चे लोगों नमस्ते" यह कह कर चले गये और हम भी पाठशाला चल दिये। शाम को भी उसी सड़क पर हमने उनको गुजरते देखा। पूछताछ के अनन्तर हमे यह मालूम हुआ कि वे महापुरुष शाहपुरा के युवराज महोदय श्री सुदर्शन देव जी को वैदिक धर्म की दीक्षा देने हेतु बुलवाये गये हैं और प्रात साय उमीदसागर जो यहा से ४ मील दूरी पर है भ्रमणार्थ जाया करते हैं। यह भी मालूम हुआ कि प्रत्येक बुधवार को आर्यसमाज भवन मे साप्ताहिक अधिवेशन के समय इनका उपदेश होता है। यह जानकर हम भी अपने सहपाठियों के साथ प्रत्येक बुधवार (राजकीय अवकाश) को आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन मे भाग लेने लगे और यह भी अनुभव करने लगे कि जिस दिन शास्त्री जी सत्सग मे उपदेश देते थे उस दिन हमे विशेष आनन्द प्राप्त होता था।

उन्हीं दिनों आर्यसमाज के सदस्यगण प० धुरेन्द्र जी को समाज के प्रधान निर्वाचित करना चाहते थे, परन्तु पंडित जी ने इस पद को अस्वीकार करते हुए केवल अन्तरग सदस्य ही होना स्वीकार किया एव आर्यसमाज शाहपुरा की ओर से आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा प्रान्त मे भेजे जाने वाले प्रतिनिधि के रूप में शास्त्री जी अवश्य निर्वाचित होते थे और आर्यसमाज शाहपुरा का प्रतिनिधित्व करते थे।

इन्हीं दिनो हमने यह भी सुना कि वर्तमान राजाधिराज श्री उम्मेदसिंह जी इनकी विद्वत्ता की ओर आकृष्ट होकर प० धुरेन्द्र जी शास्त्री को राजकीय सम्मान के साथ "राजगुरु" की उपाधि प्रदान कर रहे हैं।

सन् १९३५ से सन ३८ तक राजगुरु जी शाहपुरा मे रहे और विशेष कार्यवश आर्यसमाज के प्रचारार्थ बाहर भी पदार्पण करते रहते थे।

सन् ३९ मे हमने सुना कि आर्यसमाज की ओर से एक बहुत बड़ा आन्दोलन निजाम सरकार के विरुद्ध हैदराबाद मे चलाया जा रहा है जिसके सर्वाधिकारी महात्मा-नारायणस्वामी जी एव द्वितीय देश भक्त कु० चादकरण जी शारदा अपने दल बल के साथ जेलो मे चले गये है और तृतीय सर्वाधिकारी राजगुरु प० धुरेन्द्र जी शास्त्री निर्वाचित हुए है और १५०० मनुष्यो के साथ स्पेशल ट्रेन द्वारा अजमेर से रवाना होकर निजाम सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करने पधार रहे हैं। इस स्पेशल ट्रेन मे सम्मिलित होने के लिये शाहपुरा के १२ वीर सिपाही अपने सेनानी श्री किस्तूरचन्द्र जी तोशनी वाल के साथ हैदराबाद में सत्याग्रह करने पधारे थे।

सत्याग्रह का पूर्ण विवरण पढ़ने के लिये उन्हीं दिनों में रात्रि को आर्यसमाज भवन मे शोलापुर से निकलने वाले 'दैनिक दिग्विजय' पत्र को पढने जाया करता था। उन दिनों आर्यसमाज के मन्त्री श्री विश्वेशर जी भारद्वाज ने मुझे आर्यसमाज का सदस्य बनने की ओर प्रेरित किया और मैने सहर्ष स्वीकार किया। तभी से मैं आर्यसमाज के प्रत्येक कार्यक्रमो मे सक्रिय रूप से भाग लेने लगा हू। मेरी सक्रियता को देखकर सन् १९५१ के निर्वाचन मे मुझे अन्तरग सदस्य, सन् ५२ मे द्रव्य निरीक्षक एव सन् ५३ में

मुझे आर्यसमाज के मन्त्री पद पर निर्वाचित कर दिया।

आर्यसमाज शाहपुरा का साधारण अधिवेशन वि० १-४-५७ को हुआ जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान राजगुरु प० धुरेन्द्र जी शास्त्री ने की। उस निर्वाचन मे पुन मुझे ही आर्यसमाज का मन्त्री निर्वाचित किया। निर्वाचन के अनन्तर शुभाशीर्वाद के रूप मे मेरे लिए राजगुरु जी ने 'भोली गाय'' शब्द का प्रयोग किया। यह वरदान मुझे अभी तक प्राप्त है। इन पंक्तियो के लेखक को वह अवसर भी प्राप्त हुआ जब राजगुरु प० धुरेन्द्र जी शास्त्री स्वामी ध्रुवानन्द जी बनने जा रहे थे। अक्टूबर सन ५४ के आर्यमित्र मे जब हमने यह समाचार पढा कि 'आर्य जगत् की आशाओ के केन्द्र सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान राजगुरु प० धुरेन्द्र जी शास्त्री वि० ७ नवम्बर सन् ५४ को हरदुआगंज साधु आश्रम के उत्सव पर सन्यास आश्रम मे प्रविष्ट हो रहे हैं' पढकर प्रसन्नता का पारावार न रहा। उस समय मैं आर्यसमाज का मन्त्री था और शाहपुरा की ओर से सन्यास ग्रहण के लिये वस्त्र एव खडाऊँ लेकर साधु आश्रम पहुचा। मेरे वहा पहुचने पर उपस्थित विद्वत् समाज मे राजगुरु जी ने आय राज परिवार एव आर्यसमाज शाहपुरा का जो घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है प्रदर्शित किया और यह भी घोषणा की कि मै कल होने वाले सन्यास सस्कार मे शाहपुरा से आई हुई खडाऊँ को पहन कर ही यज्ञशालाओ मे प्रवेश करूगा और हुआ भी ऐसा ही।

मेरे लिये वह दृश्य अभूतपूर्व था जब स्वामी जी ने सन्यास ग्रहण किया। उसके अनन्तर स्वामी जी को कई मानपत्र भेंट किये गये जिनमे शाहपुरा द्वारा समर्पित मानपत्र उपस्थित जन समुदाय मे मैने पढ़कर सुनाया।

मानपत्र के प्रत्युत्तर मे पूज्य स्वामी जी ने जो शब्द शाहपुरा के लिये प्रयुक्त किये वे अभी तक मेरे कानो मे ज्यों के त्यों गुजार कर रहे हैं। स्वामी जी ने कहा 'महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने जिन जिन नरेशों को वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट किया उनमे शाहपुरा नरेश श्रीमान् राजाधिराज श्री नाहरसिंह जी प्रमुख थे और मेरा भी सौभाग्य है कि उन्हीं के पौत्र युवराज श्री सुदर्शन देव जी को मैंने दीक्षा दी।'

सस्कार के अनन्तर मैने स्वामी जी को शाहपुरा पधारने के लिए आमन्त्रित किया और उन्होने सहर्ष स्वीकार भी कर लिया। शाहपुरा पधारने पर उपस्थित सभी आर्य महानुभावो ने भोजन का निमन्त्रण दिया तो पूज्य स्वामी जी ने मेरी ओर सकेत कर कहा कि भोजन इसके यहा ही करूंगा क्योकि यह मेरे वहाँ (साधुआश्रम) उपस्थित हुआ है परन्तु शर्त यह है कि भोजन मे होना चाहिये चूरमा-बाटी और दाल (यह भोजन स्वामी जी को विशेष प्रिय था।) स्वामी जी के आदेशानुसार ही भोजन कराया गया तभी से स्वामी जी के और मेरे अति निकट सम्बन्ध हो गये ऐसा मै स्वय अनुभव करने लगा।

इसके अनन्तर जब-जब भी स्वामी जी का कार्यक्रम शाहपुरा पधारने का होता तो मुझे ही आर्यसमाज की ओर से अजमेर तक अगवानी के लिए जाने का अवसर मिलता था।

सन् १९५९ मे हीरकजयन्ती महोत्सव आर्यसमाज शाहपुरा के अवसर पर पूज्य स्वामी जी को अफ्रीका में निमन्त्रण पत्र भेजा परन्तु उन्हीं दिनों वे वहा विशेष रूप से सगठन का कार्य कर रहे थे, अत शाहपुरा पदार्पण कर सकने मे असमर्थता प्रकट की और शुभ कामना का सन्देश भेज दिया।

विदेश यात्रा के पश्चात् नवम आर्य महा सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित शाहपुरा के आर्यो का समूह जब दयानन्द भवन देहली मे स्वामी जी से मिला तो उस समय पू० स्वामी जी ने हमारे निमन्त्रण पर शाहपुरा पधारना स्वीकार किया। कार्यक्रम के अनुसार समय पर मैं अजमेर उपस्थित हो गया। माडल स्टेशन पर श्रीमान् राजाधिराज साहब सुदर्शनदेव जी सपरिवार स्वागत हेतु पधारे थे। शाहपुरा पहुचने पर बस स्टेण्ड के वहां उपस्थित हजारो की जनसख्या ने पू० स्वामी जी का जो सत्कार किया वह अवर्णनीय है। फूलमालाओं से आच्छादित स्वामी जी व राजाधिराज साहब के दृश्य को देखकर आर्य नरनारियो ने जिस श्रद्धा का परिचय दिया वह इस लेखनी से नहीं लिखा जा सकता। तदनन्तर राज महलों के चौक से विशाल जनसमूह के बीच में स्वामी जी को मानपत्र अर्पित किया और पूज्य स्वामी जी ने उपस्थित जनता को धन्यवाद देकर मानपत्र का प्रत्युत्तर दिया और

सभी उपस्थित जनसमुदाय से क्षमायाचना की। शाहपुरा के लिए यह स्वामी जी का अंतिम सम्मान रहा।

गत वर्ष आर्यसमाज शाहपुरा द्वारा भेजा गया एक प्रतिनिधि मण्डल श्रीमद्दयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र की सहायता हेतु कलकत्ता गया हुआ था वहां पर पूज्य स्वामी जी के सत प्रयत्नों द्वारा प्रतिनिधि मण्डल को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

पूज्य स्वामी जी का आर्यसमाज शाहपुरा से पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क चला आ रहा था। उनका अंतिम पत्र बम्बई से दि०२५जुलाई का लिखा हुआ मंत्री जी आर्य समाज को प्राप्त हुआ जिसमे आर्यसमाज के नवनिर्वाचित अधिकारियों को शुभ कामना एवं सभी आर्य बंधुओं को नमस्ते लिखा है। दि० ३० जुलाई को दैनिक हिन्दुस्तान पत्र में जब मैने यह समाचार पढ़ा कि स्वामीजी की दिव्य विभूति सदा के लिये अस्त हो गई तो मेरा गला रुध गया आंखो से अश्रुधारा बह पड़ी और करीब १० मिनट तक आंखें बन्द करके अश्रुओं को पोछते पोंछते स्वामी जी के सभी संस्मरणों को पुनः दोहराने लगा और यह अनुभव करने लगा कि अब हमें इस जन्म में स्वामी जी के दर्शन न हो सकेंगे। इस प्रकार मन को समझाकर सांत्वना दी। प्रभो! दिव्यात्मा को शांति दे। ओ३म् शम्



रक्षा कोष

विक्री श्रीमद्दयानन्द उ०मा०वि० (फतहपुर) की ओर से २००) रु० स्टेट बैंक ड्राफ्ट द्वारा तथा ५०१) जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा सुरक्षा कोष के लिए संग्रह कर भेजे गये। विद्यार्थियों और शिक्षकों ने अपने पास से यह धन दान दिया है।

श्रद्धांजलि

ओ धरती के "ध्रुवानन्द" तुम ध्रुवानन्द मे समा गये ।
ओ ! जगती के महापुरुष तुम महाप्राण मे बिला गये ॥
विगत मास वे दुर्बल होने भी गोधमपुर आये थे ।
उत्सुक जनता ने दर्शन कर श्रद्धा सुमन चढाये थे ॥
कर्म शील मानव को बनने के सिद्धात बताये थे ।
होगी प्रगति समाजो की तब ऐसे मन्त्र सुनाये थे ।
अपने जीवन की नैराशा हम सबको वे बता गये ।
ओ मावस की अधियारी ! तू क्यो ऐसी विकराल हुई ।
पृथ्वी के पावन पुरुषो के प्राणों की तू काल हुई ।
कितनी जीवन ज्योति बुझाई फिर भी नही निहाल हुई ।
किन्तु सपूतो को खोकर पृथ्वी माता कगाल हुई ॥
वे तो अपनी अमर ज्योति का जग मे दीपक जला गये ॥
ऋषिवर "दयानन्द" को तू ने दीपावलि बनकर खाया ।
आसाढी की अमा निशा बन ध्रुवानन्द जी को खाया ॥
किन्तु न तूने स्वच्छ चादनी का किंचित वैभव पाया ।
नही प्रलय तक भी पाने का आशवासन तूने पाया ॥
सूर्य चन्द्र से ऊँचे देखो "ध्रुवानन्द" ध्रुवलोक गये ।
चोरो को तू साहस देती धनिको का धन हरण करे ।
दीन दरिद्र दुखी मानव के प्राणो का भी हरण करे ।
भूले भटके पथिको का मारग भटका पथ भ्रष्ट करे ।
जो तेरा अनुकरण करे उनका भी जीवन नष्ट करे ।
अरी ! कलमुही वे तो तेरा भी गुण गौरव बढ़ा गये ॥
उनके उच्चादर्शों का अब जग सोपान बनायेगा ।
जिस पर चढकर मृत्यु लोक से स्वग लोक को जायेगा ॥
युग-युग तक ये निधन दिवस अब आर्यसमाज मनायेगा ।
उनके पद चिन्हो पर चल कर उच्च भविष्य बनायेगा ॥
"कृष्णा" जग को जीवन देकर जीवन लीला दिखा गये ।
महिला आर्यसमाज बरौठा भी अति शोक मनाती है ।
पूज्यपाद श्री "ध्रुवानन्द" को श्रद्धाजली चढाती है ।
उनकी स्मृति इस हृदय पटल पर अंकित होती जाती है ।
कौन कुशल मगल पूछेगा कौन सुनेगा पाती है ।
सन्त सर्वदानंद आश्रम की बढ़ती शोभा घटा गये ॥

कृष्णाकुमारी, बरौठा (अलीगढ़)

आर्यसमाज के तपस्वी, त्यागी और निर्भीक मूर्धन्य नेता—

श्री स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती

(ले०—श्री प० कृष्णदत्त जी आयुर्वेदालकार, फैजाबाद)

रग लाती है हिना पत्थर पे पिस जाने के बाद ।
सुर्खरू होता है इन्सा आफते आने के बाद ॥

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी का जन्म सन् १८८२ मे पानी गाव मथुरा मे हुआ था और मृत्यु २९ जून सन्१९६५ई० को बछई मे हुई जिससे सारे आर्य-जगत् मे शोक छा गया । जब मैंने समाचार पत्रो द्वारा यह जाना कि दिनाक २९ जून को बछई मे आर्यसमाज के प्राण श्री स्वामी धुवानन्द जी सरस्वती का स्वर्गवास हो गया तो मुझे वह दिन याद आ गया जबकि देहली मे श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का सन् १९२६ ई० मे बलिदान अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध मुसलमान के द्वारा हुआ था । उस समय गोहाटी मे अखिल भारतीय काग्रेस महासभा का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था जिसमे महात्मा गाधी उपस्थित थे उन्हे जैसे ही पता लगा कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हो गया तो देहली जो तार उन्होने दिया वह यह था—

"As a soldier he lived and as a soldier he died in the battlefield"

अर्थात् "एक सैनिक के रूप मे उन्होने जीवन व्यतीत किया और एक सैनिक के रूप मे ही प्राण युद्ध-क्षेत्र मे विसर्जित हुए ।" इसी प्रकार श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने यद्यपि बहुत उन्नति कर ली थी और वर्तमान काल मे आर्य जगत् के रूप से बडे नेता थे परन्तु उन्होने कभी अपने आप को नेता नही समझा, सर्वदा एक सैनिक की तरह जहा उन्होने अपनी आवश्यकता समझी, पहुच गये और ऐसा उत्तम कार्य किया कि आर्यसमाज का मस्तक ऊँचा हो गया । आर्यसमाज की धुन उन पर हर समय सवार रहती थी । साधारणावस्था मे भी वह आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द को नही भूलते थे । वैदिक धर्म से उनको अनन्य प्रेम था और उसकी रक्षा के लिए तन, मन और धन सभी कुछ उन्होने न्योछावर किया । उनके साधन बडे परिमित थे फिर भी अपने उद्यम, उत्साह एव प्रतिभाशाली बुद्धि से सबको बता दिया कि मनुष्य स्वय अपने भाग्य का विधाता है । (Man is the master of his own destiny) जैसा हम चाहे वैसा हम अपने जीवन को बना सकते है । वैदिक आदर्श बहुत ऊँचे है उन पर प्रत्येक व्यक्ति आसानी से चल नही सकता । श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने उन पर चलकर एक आदर्श उपस्थित किया है । प्रत्येक आयसमाजी का कर्तव्य है कि वह उनसे प्रेरणा प्राप्त करके अपने जीवन को ऊँचा बनावे । तभी वह जनता की सेवा करने के योग्य भी बन सकता है । यह स्मरण रहे कि बुझे दीपक से कोई दीपक जल नही सकता । अत शरीर, मन और आत्मा को शुद्ध भोजन, व्यायाम, स्वाध्याय एव सदाचार से पुष्ट करना चाहिए तभी हम ऋषि ऋण से मुक्त हो सकेगे और श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी के जीवन से शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे । उनमे अनेक गुण थे जिनमें से कुछ पर यहा प्रकाश डाला जाता है । मुझे कई बार उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और प्रत्येक बार दर्शन करने के पश्चात् मेरी श्रद्धा बढती ही गई । हमे दुख इस बात का है कि इस समय आर्य जगत् मे उनके जैसा कोई प्रभावशाली नेता नही जो हमारा मार्ग दर्शन कर सके । खुशी इस बात की अवश्य है कि हमारे नेता श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने वह उच्च कोटि की सफलता प्राप्त की है जो सबको प्राप्त नही होती । इस ससार मे सफल होना सब चाहते हैं पर यह सौभाग्य सब को प्राप्त नही होता । स्वामी ध्रुवानन्द एक आदर्श सन्यासी थे । वीतराग और आजन्म ब्रह्मचारी थे ।

१—आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य—आदर्श गुरु श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के आप आदर्श शिष्य थे ।

उन्होंने अपने सब ज्ञान और विद्या से पूर्ण करके इनको आर्यसमाज की सेवा के लिए तैयार किया था। श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी को हर समय अपने गुरु का ध्यान रहता था और जब कभी अवसर आता था बडे सम्मान से उनका नाम लेते थे। आदर्श शिष्य बनकर जो सुन्दर कार्य वे कर गये हैं वह आर्यसमाज के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों मे अकित रहेगा। कवि अकबर ने लिखा है कि—

"निगाहे कामिलो पर पड ही जाती हैं, जमाने की।
कही छिपता है अकबर, फूल पत्तो मे निहाँ होकर॥"

जिसमे गुण होना है वह प्रगट हो ही जाता है। शहद होता है तो मक्खिया आ ही जाती हैं।

२—बाल्य-काल में बालक पर जो सस्कार पड जाते हैं वे अमिट रहते हैं। श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी का पहला नाम श्री प० धुरेन्द्र शास्त्री था। आप व्याकरण के आचार्य तथा षड्दर्शनो के पण्डित थे। ऋषिकृत ग्रन्थो में आपकी अनन्य श्रद्धा थी उनके आप अद्विनीय विद्वान् थे। आपके व्याख्यान बडे हृदयग्राही, रोचक, सारगर्भित और प्रभावशाली होते थे जनता दत्तचित्त होकर बडी श्रद्धा से आपके मुख मे निकला एक-एक शब्द सुनती थी और प्रशसा करती थी। भाषण देने की शैली आपकी बहुत ही उत्तम थी जिस विषय पर बोलते थे उसका जीवित जागृत चित्र खीचकर सामने ऐसा खडा कर देते थे जैसे कुशल चित्रकार चित्र खीचकर सामने रख देता है।

३—हैदराबाद सत्याग्रह के दिनो मे सन् १९३५ ई० मे जिस वीरता और साहस से आपने आर्य जगत् का नेतृत्व किया वह भुलाया नही जा सकता। आप निर्भीक नेता थे निजाम की जेलो मे बडा कष्ट मिलता है यह सब जानते हुए भी आप जेल जाने से घबडाए नहीं। अपितु अपने साथ हजारो आर्य समाजियो को ले जाकर हैदराबाद की जेलें भर कर आर्यसमाज के गौरव को बढ़ाया और निजाम हैदराबाद पर आर्यसमाज की शक्ति की धाक जमा दी और वह भी समझ गया कि इनसे मोर्चा लेना भिड के छत्ते मे हाथ डालना है। "It is a hard nut to crack"

४—श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरल जीवन और उच्चविचार (Simple living and high thinking) की मूर्ति थे। दुनिया साजी या मक्कारी आपको नहीं आती थी आप बाहर भीतर एक से थे। धर्म शास्त्रों लिखा है कि "मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्" अर्थात् मन वाणी और कर्म तीनों मे जिनके एकता होती है वे महात्मा कहलाते हैं आप वस्तुत महात्मा कहलाने के योग्य थे।

५—सयमी और अनुशासन प्रिय—ब्रह्मचर्य के नियमों का दृढ़ता से पालन कर आपने सुन्दर चरित्र का निर्माण किया था आपका चेहरा तेजस्वी था उस पर लावण्य और कान्ति दिखाई देती थी, सज्जनों के मित्र एव दुर्जनों के शत्रु थे। अनुशासन के मानने वाले थे अनुशासन को तोड़ने वाले वे प्रत्येक कार्य के विरुद्ध थे। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के वृहदधिवेशनो मे सर्वदा वे इस बात का ध्यान रखते थे कि कोई गडबड या अव्यवस्था न हो और सब कार्य नियमानुसार अनुशासन के अन्दर हो। वे चाहते थे कि आर्यसमाज मे दलबन्दी न हो और सब मिलकर वैदिक धर्म की सेवा करके महर्षि के ऋण को उतारने का प्रयत्न करें।

६—विनोद प्रिय और प्रसन्न वदन—जब वह प्रसन्न होते थे तो विनोद की बातें भी करते थे लेकिन इस विनोद मे कोई अशिष्टता न होती थी। एक विशेषता यह भी थी कि हर समय प्रसन्न रहते थे। चेहरा मुसकराता रहता था शिष्टता सदाचार और सभ्यता के प्रतीक थे।

७—परोपकारी—इस स्वार्थी ससार में जबकि हर एक स्वार्थ मे लीन दिखाई देता है श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत किया है। अपने किसी स्वार्थ की पूर्ति नहीं की है। "नात्मार्थं नाऽपि कामार्थं अपभूत दया प्रति" यह बडी उच्च भावना है। प्राचीन ऋषि महर्षि इसी भावना से भावित होकर जनता जनार्दन का कल्याण किया करते थे। पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति ने हमारे देश मे जिस स्वार्थ की वृद्धि को उत्पन्न किया है। उसके आप सतत विरोधी थे। आपका तो कहना था कि 'अय निज परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्। उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

८—मधुर भाषी, सुशील और नम्र—आप जब बोलते थे तो ऐसा लगता था कि मानो मुख से फूल झड रहे है। प्रत्येक शब्द चुना हुआ। मधुर, सुशीलता एव सौजन्यता को प्रकट करता था।

९–प्रभु भक्त एवं आस्तिक–आप निराकार प्रभु के भक्त थे और सन्ध्या प्रतिदिन बड़े प्रेम से करते थे और आर्यसमाजियों को प्रति दिन दो बार प्रेम से सन्ध्या करने का उपदेश दिया करते थे ।

१०–स्वदेश भक्त–आप भारतवर्ष का राजनैतिक उत्थान भी चाहते थे । १५ अगस्त १९४७ को स्वराज्य प्राप्त होने पर जैसे सब भारतवासियों को प्रसन्नता हुई वैसे ही आपको भी हुई लेकिन जिस ढंग से कांग्रेस शासन चल रहा है और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है उसको देखकर आपको दुःख होता था । आपकी हार्दिक इच्छा थी कि 'स्वराज्य' शीघ्र 'सुराज्य' में परिवर्तित हो ।

११–स्वच्छता प्रेमी–आप सदैव स्वच्छ कपड़े पहनते थे कपड़ों को प्रतिदिन अपने हाथ से धो लेते थे जैसे आपके कपड़े स्वच्छ थे वैसे ही आपका हृदय (अन्तःकरण) भी स्वच्छ था । ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट से आप ऊपर थे ।

१२–सुन्दर स्वास्थ्य–आपके सुन्दर स्वास्थ्य का रहस्य यह था कि आप प्रतिदिन व्यायाम करते थे और सतोगुणी भोजन करते थे । आज जो भोजन में अशुद्धता आ रही है, पढ़े लिखे बी० ए० पास मांस और अण्डों का सेवन करने लगे हैं इसके आप प्रबल विरोधी थे ।

१३–परिश्रमी जीवन–यद्यपि आपने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी और आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान तक हो चुके थे । (जो आर्य-जगत् में सबसे ऊँचा सम्मान का स्थान है) वे चाहते तो आराम से गद्दों पर पड़े रहते परन्तु उन्होंने सर्वदा परिश्रमी जीवन व्यतीत किया आलस्य से सर्वदा दूर रहे । और कर्तव्यों के पालन में दृढ़ रहे क्योंकि वे समझते थे कि "उद्यमेनहि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः" ।

१४–अन्याय और अत्याचार के विरोधी–जहाँ भी सुनते थे कि अन्याय और अत्याचार हो रहा है उसके निवारण के लिए दौड़ पड़ते थे । इस प्रकार स्वामी ध्रुवानन्द जी में अनेक गुण थे जिन्होंने उन्हें महान् बनाया और जिनके कारण वे एक साधारण व्यक्ति के स्तर से उठकर आर्यजगत् की शिरोमणि सभा आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद तक पहुंच गए और सफलता पूर्वक सब कार्य निभाते रहे । अन्त में यही कहना पड़ता है कि–

"यों तो दुनिया के समुन्दर में कमी होती नहीं ।
लाखों मोती हैं मगर उस आब का मोती नहीं ॥



स्वा. ध्रुवानंद ध्रुवतारा बन आया था

श्री रामचरित्र वैद्य
उपप्रधान आ०स० बस्ती

पिटते थे हिन्दू, सख बजते थे न मंदिरों मे,
सध्या, हवन, यज्ञ ध्वजा पर भी दिवाला था।
रिजवी का चक्र चला करता था अर्निश,
हैदराबाद मे हिन्दू धर्म का दिवाला था ।।
ढहते थे मन्दिर हिन्दू बनते थे ईसाई यवन,
राज्य था निजाम का तुरको का बोलबाला था।
हिन्दू हितैषी आर्य छेडे जब सत्याग्रह,
आर्यों की ज्योति शास्त्री धुरेन्द्र हमारा था ।।१।।
सिन्ध की सरकार मुस्लिम लीग गवनमेण्ट बनी,
सत्य के प्रकाश पर अधकार छाया था।
सुनकर चुनौती आयजन से रहा न गया।
सिन्धी भाषा मे उसे फिर से छपवाया था ।।
सत्य की सिरोही लिए स्वामी ध्रुवानन्द चले,
करांची की सडको पर उसे बिकवाया था।
करके नीलाम उसे ढाई सौ रुपयो मे,
आर्य सभ्यता का ध्रुव ध्वजा फहराया था ।२।
पानीगाव मथुरा मे जन्मे थे धुरेन्द्र जी
सस्कृत की शिक्षा हेतु गृह को बिसराया था।
विरजानन्द आश्रम मे पाचक का रूप धरि,
विद्या से नेह करि तन मन जलाया था ।।
साधू सर्वदानन्द पारखी से पाला पड़ा
पाचक से पाठक का रूप दर्शाया था।
माता के दर्शनार्थ गये जब घर को थे,
पारखी ने लाकर फिर से शास्त्री बनाया था ।।३।।
मध्य न्याय जयपुर मे पढ करके काशी चले,
षट दर्शनो का वहाँ ज्ञान उपजाया था।
भारतीय हिन्दू शुद्धी सभा का प्रचार करके,
वैद्यनाथ धाम मे गुरुकुल बसाया था।
शाहपुराधीश, कालाकाकर के नरेशो ने,
राजगुरु पद से सुशोभित कराया था।
उत्तरप्रदेश आर्य सभा को सुशोभित कर,
सार्वदेशिक सभा की ध्वजा लहराया था ।।
मौरिशस, युगाण्डा, जजीरावाद देशो मे,
भारतीय सभ्यता का झण्डा फहराया था।
पाखण्ड की निशानी आये पोलपाल ज्ञानी बन,
वैदिक धरम का उन्हें मार्ग दिखलाया था।
था सदाचारी आदित्य ब्रह्मचारी वह,
केन्द्रबिन्दु बनकर समाज मे समाया था।
सच्चे अर्थो मे आर्य जाति को जगाने हेतु,
स्वामी ध्रुवानन्द ध्रुवतारा बन आया था ।।५।।

स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

[ले०—श्री डा० प्रेमदत्त जी स्नातक साधु आश्रम ज्वालापुरी अलीगढ]

बडे स्वामी वीतराग सर्वदानन्द जी महाराज स्वय सुनाया करते थे, जब मै धुरेन्द्र के पानी गाव गया तो इसे मैने गांव के ग्वालो का मुखिया बना देखा, और कान से ऊँचा लट्ठ बाधता था। २३ वर्ष की आयु तक अक्षर ज्ञान नहीं था। जब मेरे पास रहने लगा तो कई दिन मैने स्वय रोटी बना ना सिखाया, कई बार ताडना भी दी, फिर तो इसे अच्छा भोजन बनाना आ गया। पढ़ता भी था और भोजन भी बनाता था।

बडे स्वामी जी अन्य विद्यार्थियो के साथ आश्रम पर श्री मनीषी देव शास्त्री और सुशीलचन्द जी शास्त्री को जो जन्म से जाटव थे आश्रम के पास चन्डौली के र ने वाले थे। अष्टाध्यायी पढ़ाते थे, उन्ही के पास धुरेन्द्र जी बैठ जाया करते और सुनते रहते जब बडे स्वामी जी पाठ पूछते अन्य विद्यार्थियो के चुप रहने पर धुरेन्द्र जी कहते गुरू जी मै बताऊँ और अष्टाध्यायी के सूत्र क्रमश उन्हे सुना देते थे। ऐसी विलक्षण प्रतिभा देखकर स्वामी जी ने उन्हे विधिवत पढाना प्रारम्भ किया था।

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज आधुनिक दिखावे से बहुत दूर रहते थे। कई बार प० धुरेन्द्र जी ने उनसे कहा गुरू जी एक चित्र उतरवा लेने दीजिये। जब बडे स्वामी जी नही माने तो आश्रम पर छिपकर चित्र उतरवाने के लिए एक फोटोग्राफर को बुलवाया और जहां स्वामी जी पेड के नीचे सन्ध्या करते थे, वहा कैमरे को दिन में ही पेड पर फिट करा दिया। जैसे ही स्वामी जी संध्या मे लीन हुए कैमरे का बटन दबाकर फोटो ले लिया गया। स्वामी जी को उस समय पता चला जब चित्र बन कर उनके सामने आया। केवल यही चित्र उनका उपलब्ध है। इस चित्र कांड पर बडे स्वामी जी दो दिन तक अप्रसन्न रहे थे।

जब प० धुरेन्द्र जी आश्रम के सरक्षक बने तब ग्वालियर के एक विद्यार्थी स्व० शिवदत्त जी को आश्रम के नियम पालन न करने पर मार कर बाहर कर दिया। उस समय बडे स्वामी जी आश्रम पर नहीं थे। जब प्रचार से आये तो इन्हे बुलाकर पूछा—यह आश्रम से निकाले जाने के बाद बनेगा कि बिगडेगा ? जब वह चुप रहे तो स्वा० जी ने ही कहा कि आश्रम पर ही उसे सुधारा जा सकता है। अत पुन वापस बुलाओ। गुरू जी की आज्ञा मान कर उन्हे वापस ले आये थे।

प० धुरेन्द्र जी ही बडे स्वामी जी की सेवा शुश्रूषा मे अधिक रहते थे। एक बार गुरू जी (बडे स्वामी जी) इनसे अप्रसन्न हो गये और दो दिन तक न बोले थे वे बराबर उनकी सेवा मे लगे रहे। जब रात्रि को गुरू जी के चरण दबाते हुए पूछा—मुझसे कोई अपराध हो गया है। बडे स्वामी जी ने गम्भीर होकर कहा—तुम्हे अपराध का प्रायश्चित्त यह करना है कि कल दोनों समय भोजन नहीं मिलेगा और सम्पूर्ण आश्रम की सफाई अकेले करनी होगी। प० धुरेन्द्र जी ने यही किया और आगे नियम से और सावधानी पूर्वक कार्य करने की प्रतिज्ञा की। अपराध यह था कि बडे स्वामी जी आश्रम पर जब प्रचार पर से आते थे, तो विद्यार्थियो को बाटने के लिए मीठा या फल लाते थे। इस बार जब फल लाये तो हर बार की भांति प० धुरेन्द्र जी को बाटने के लिए कह दिया, फल बाटे नहीं गये अपितु रखे हुए सड गये, उन्हे बडे स्वा० जी ने देख लिया, उनके कर्तव्य पालन न करने पर बडे दुखी हुए।

स्वर्गीय स्वामी जी (प० धुरेन्द्र जी शास्त्री) जहां-जहां पढे, उन्होने अपने गुरुओ का सदा सम्मान किया। श्री प० परमानन्द जी शास्त्री मुख्याचार्य श्री राधाकृष्ण'

संस्कृत महाविद्यालय खुर्जा तथा प० चूडामणि जी मुल्तान का वह आजीवन सत्कार करते रहे। अपने सन्यास आश्रम के प्रवेश के समय पण्डित परमानन्द जी को विशेष सम्मान के लिए आश्रम पर बुलाया और कीमती शाल, वस्त्रों और दक्षिणा से सम्मानित किया।

त्यागपूर्ण जीवन

उनके त्यागपूर्ण जीवन की सबसे आकर्षक घटना यह है कि जब महाराजा शाहपुराधीश ने उन्हें भरे दरबार में राजगुरु की उपाधि से विभूषित किया, तो चांदी का एक थाल अशर्फियों से भर कर दक्षिणा में दिया। इन्होंने वहीं दरबार में एकत्रित पण्डितों में सभी थाल सहित अशर्फियां बांट दी। इस घटना से दरबार में और बाहर इनके त्याग की धाक जम गई। महाराजा तो इनके जीवन से इतने प्रभावित हुए कि बाद में कितने ही राजघराने आर्य हो गये। महाराजा शाहपुरा ने तो इनके सम्मान में पृथक से ठहरने का स्थान बना रखा था।

गुरु जी अपने प्रवास से जब आश्रम लौटते तो जो दक्षिणा उन्हें उत्सवों में मिलती, उसे कितने ही विद्यार्थियों को पढ़ाने में व्यय करते थे। मधुबनी की शुद्ध खादी की धोती और खद्दर वह लाया करते थे। धोती और कुरता दर्शनों विद्यार्थियों को देते थे। साधुआश्रम की जयन्ती पर तो लगभग १०० कम्बल उन्होंने साधुओं में वितरित किए थे। कभी विद्यार्थी पढ़ाने के लिए बिहार से ले आते थे, कभी सुदूर पूर्व दक्षिण से। जितने विद्यार्थी वह लाते थे, सभी का व्यय स्वयं वहन करते थे। अभी स्वर्गवास से पूर्व जब अफ्रीका से लौटे थे, तब अपने साथ वहाँ से भी दो छात्र ले आये थे, जो अभी तक आश्रम पर अध्ययन कर रहे हैं।

स्वामी जी ने जब से अपना परिवार छोड़ा कभी अपने परिवार में नहीं गये। गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के उत्सव में जब वह जाते थे तभी उनके भाई आदि परिवार के व्यक्ति मिल जाते थे। सन् १९४३ में उनका खास भतीजा ब्र० शिवदत्त पानी गांव से आश्रम पर पढ़ने आया तो उन्होंने उसे अपने व्यय से पढ़ाना स्वीकार करते हुए स्पष्ट कहा था, तुम यहां जैसे मेरे अन्य विद्यार्थी पढ़ते हैं, रहते है उसी तरह रहोगे पढोगे। इसमे कोई शिथिलता नहीं होगी, परन्तु बाद मे शिवदत्त जी भी पढ नहीं सके और आश्रम से चले गये। स्वामी जी का तो आर्यजगत् ही आजीवन परिवार रहा।

स्वामी जी जब १९४५ मे सिंध सत्याग्रह मे गये, तो मै साथ गया था। दीवान हाल दिल्ली के कार्यालय मे शाम को बिस्तर रखकर वहीं विश्राम कर रहे थे। इस दिन कम्युनिस्टों की कोई मीटिंग दीवानहाल मे हो रही थी। देखते-देखते दीवानहाल की सभी किवाडें बन्द कर दी गई, बिजली का मेनस्वीच बन्द कर दिया गया और पार्टियो मे घूसे और मुक्के चलने लगे, इससे न स्वामी जी बचे और न मै। किसी प्रकार दोनो ही एक तख्त के नीचे घुस गये फिर भी दो चार हाथ पड ही गये थे। थोडी देर मे पुलिस आ गई और सब शान्त हो गया। मैने कहा कि गुरु जी सत्याग्रह का यह तो प्रारम्भ है। इनसे भी खतरनाक लोगो से पाला पडेगा। उस समय स्वामी जी का शरीर बहुत बलिष्ट था। स्वामी ने कहा—यह तो आपस मे राजनैतिक संघर्ष कर रहे है, मै तो धर्म युद्ध मे जा रहा हू यह शरीर सब सहने का आदी हो गया है।

लाहौर पहुचने पर स्वर्गीय महाशय कृष्ण जी के यहा रुके जाते ही गुरु जी ने कहा—कितना चन्दा इकट्ठा किया है सत्याग्रह के लिए, ऐसा उन्होने इसलिए पूछा था कि हैदराबाद के सत्याग्रह मे स्वामी ध्रुवानन्द जी और महाशय कृष्ण जी ने सबसे अधिक धन एकत्रित कर सत्याग्रह समिति को दिया था।

लाहौर से अमृतसर के पास गुरुकुल निक्की सुइया देखने गये, वहा से लौटने की घटना तो ऐसी है कि मै स्वामी जी को उनके जीवन काल मे भी स्मरण करा देता था, तब वे बडे हँसते थे। लाहौर मे कोई कपूर साहब थे जिनकी गाडी से हम गये थे, उधर से दिन मुदे चले, गाड़ी खराब हो गई तीन घन्टे मे जाकर ठीक हुई। इसके बाद जो चले तो रात्रि के दो बजे तक चलते रहे। पता नहीं रास्ता कैसे गडबड हुआ कई तरफ से घूमते थे, परन्तु जहा से चलते वहीं पहुच जाते। घोर ठंड की रात्रि थी। स्वामी जी बहुत परेशान हो गये थे, अन्त मै भी गाडी मे चुपचाप बैठा रहा, मैने सोचा कि इनसे अधिक बातें करूंगा तो

झुंझला जावेगे । जब अमृतसर पहुंचे तो बोले तू तो ऐसे सो रहा था मानो घर सो रहा है । मैने कहा गुरु जी ऐसी कोई बात नहीं है, मै तो चुपचाप इसलिए पडा था कि आपसे कुछ कहूगा तो आप झुझला जायगे । नहीं ऐसी ठड मे कहीं नीद आती है ।

गुरुजी के अधिकांश पत्र मै ही लिखता रहा । पत्रो मे उनके चुने हुए शब्दो मे 'ध्रुव शरणा'' 'और प्रभून प्रसन्नता'' दोनो शब्द अवश्य आते थे । कभी-कभी तो एक एक पत्र ४ बार तक लिखना पडता था । वह कहा करते थे, कोई अनावश्यक शब्द तो नहीं लिख गया, कई बार पढवा कर सुनते थे ।

सन्यास ग्रहण करते समय जहा सन्यास की दीक्षा स्वामी आत्मानन्द जी महाराज दिला रहे थे, वहां सभी क्रियात्मक काय मैने किया । जब नदी को धारा मे खडे होकर गेरुए वस्त्र पहनने लगे तो बोले यह सदेह मेरा अन्तिम सस्कार है ।

साधु-आश्रम की कुछ कुटियां जिसम बडे स्वामी जी रहते थे—बाद मे गुरु जी रहने लगे । वह अभी तक गेरू से पोती जाती है । उठने बैठने कभी कभी कपडा मे गेरू लगने से कपडे रग जाने रहे, तो गुरु जी कहा करते—प्रेम, ये आश्रम तुझे सन्यासी बनाना चाहता है ।

गुरु जी व्यवस्थित और सादा इतने थे, कि वह हमेशा अपने साथ १ बिस्तर, १ कण्डी और बैग रखते थे । बिस्तर बाधने का उनका अपना क्रम था । बिस्तर मे जो जहा रखना है, वह वही रखा जाता यदि ऊपर नीचे हो गया या बिस्तर जल्दी मे उनके पीछे बाध दिया तो पुन खुलवाते थे, अपने सहयोग से व्यवस्थित करते थे । कण्डी मे जो चीज जहां भी रखी है, वहा से जरा भी इधर उधर हुई तो पुन सभी चीजे जहा की तहां रखते थे और कहते थे कितने बार समझाया है । व्यवस्था बनाना सीखो सामान ऐसा रखना चाहिए जिसे अधेरे मे भी समय पडने पर उठाया जा सके ।

वह सारी आयु खादी के वस्त्र पहनते रहे । आर्य समाज ने जब गो रक्षा आन्दोलन प्रारम्भ किया तब से उन्होने चमडे का प्रयोग और चमडे के जूते पहनने छोड दिये थे । सन् १९४२ के आन्दोलन से पूर्व भी वह राष्ट्रीय आन्दोलन मे जेल गये थे । उन्होंने अपना राष्ट्रीय कार्य-क्षेत्र बाकीपुर, पटना बनाया था । वहीं वह आर्यसमाज के कार्य के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेते रहे ।

जहा से भी घूमकर आश्रम पर आते तो बबूल की दतौन का एक मुट्ठा बाधकर साथ ले आते, जब उनमे से दतौन करते-करते सूखने लगतीं तो रात्रि मे उन्हें पानी मे डाल देते या गीली मिट्टी मे गाड देते सुबह वह चबने लायक हो जाती । सारी आयु वह बबूल की ही दतौन करते रहे । अपनी अन्तिम आयु तक उनके न दांत हिले और न दाढें, सभी मोती जैसे स्वच्छ और दृढ़ थे ।

एक बार आश्रम पर सध्या समय विद्यार्थियों की पक्ति मे गुरु जी तथा कविवर प०प्रकाशचन्द्र जी अजमेर, आमने सामने बैठकर सध्या कर रहे थे, बीच-बीच मे दोनो ही मुसकराते रहे । पता नहीं कैसे वह मुसकराहट हँसी मे परिवर्तित हो गई । सभी विद्यार्थी हँस पडे । बाद मे पता चला कि गुरु जी आँख मींचकर सध्या कर रहे थे और कवि जी ने बहुत बारीक मिर्च पिसी उनके लोटे मे डाल दी थी, जिससे उन्हे आचमन करने पर शरारत ज्ञात हो गई ।

गुरु जी के कारण अलीगढ़ जिले मे आर्यसमाजों की सख्या १०९ के लगभग है, इनमे से अनेको समाजें उन्हीं के द्वारा स्थापित की गई हैं । उनके समय के कार्यकर्ताओं मे स्वर्गीय श्री प्रेमसिंह जी, खमानसिंह जी, इन्द्र वर्मा, प० आत्माराम जी वानप्रस्थी, श्री नाहरसिंह जी, गोकुल-चन्द शर्मा, भाई दामोदर जी पहलवान, वर्तमान मे प० रामप्रसाद जी मेडू, प० इन्द्रदत्त शर्मा, मन्त्री सरदारसिंह जी मई, मा० सरदारसिंह जी हैं ।

गुरु जी के सहपाठियो मे स्वर्गीय प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, प० शकरदेव जी नौनेर, प० श्री सुरेन्द्र शर्मा गौड, स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी रहे हैं ।

मुझे गुरु जी के सानिध्य मे रहने के कारण इतने सस्मरण याद हैं कि एक अच्छी पुस्तक लिखी जा सकती है ।

●

श्रद्धांजलि

(वृत्तं भुजग प्रयात)

विशुद्धान्तरात्मा तप पूतजन्मा,
यति सार्वभौमश्च विख्यात कर्मा।
सदा वेदविद्याप्रसाराभिसक्त,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।१
प्रचाराय धर्मस्य सवस्व त्यागी,
चरन ब्रह्मचर्यं सदा वीतरागी।
अविश्रात सेवैक धर्मी मनस्वी,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।।२
दयानन्द वर्णीन्द्र वर्णीन्द्र भक्त,
सुधी सर्वदानन्दयोगिप्रशिष्य ।
विपश्चित प्रकाण्डश्च विख्यातवक्ता,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।।३
* कुले मध्यमे पानिग्रामेऽपि जात,
तपस्त्यागसकल्पदीर्घाद्यमेन ।
धुरीयाद्धुरेन्द्रो गुरुर्भूपतीना
ध्रुवानन्द योगी तत सबभूव ।।४
× समा पञ्च यावत्स नेता वरिष्ठ,
सभाया बभूवार्यसामाजिकानाम् ।
चमूनायको धर्मयुद्धद्वयस्य,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।।५
समग्रार्षशास्त्रार्थ विज्ञो मनीषी,
गुरु राजमान्योऽपि विद्या विनम्र ।
अनेक क्षमापाल सम्मान्यशास्ता,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।।६
अटन्नात्म देशे विदेशे तथैव,
प्रचार च धर्मस्य कुर्वन् सदैव।
विभिन्दस्तमोऽधर्म रूप रवीव,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।।७
स्फुरद्दीप्ति सदीप्त मध्यागयष्टि,
श्रुति ज्ञान सप्राप्त दिव्याव दृष्टि ।
तपस्त्याग वैदुष्य जाज्वल्यमूर्ति,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव धाम यात ।।८
त्यजन बन्धुवर्गं स धर्माय बाल्ये,
जहद्यौवने गेहसौख्य तदर्थम।
तदर्थं चरन्नष्ठिक ब्रह्मचर्यं,
ध्रुवानन्द योगी ध्रुव वन्दनीय ।।९
चकोरो यथा शीतरश्मौ प्रयाते,
प्रयाते च भानौ यथा पुण्डरीकम्।
तथा दु खमग्ना समस्तार्य जाति,
पर धाम याते ध्रुवानन्द साधौ ।।१०

—प्रो० हरिश्चन्द्र रेणापुरकर एम० ए०
सहयाद्रि कॉलेज शिमोगा (मैसूर राज्य)

* उनका जन्म मध्यम कुल मे पानिगाँव नामक ग्राम मे हुआ था। वे अपने त्याग और तप से धुरीय से धुरेन्द्र शास्त्री और ध्रुवानन्द स्वामी हुए।

× लगभग पाच वर्ष तक सा० आ० स० के प्रधान थे तथा हैदराबाद और सिन्ध धर्मयुद्ध के वीर सेनानी थे।

ध्रुव संन्यासी था !

ध्रुव धर्म धारी ब्रह्मचारी, व्रतधारी ध्रुव,
ध्रुव वेद पाठी ध्रुव, ध्यान था सन्यासी का !
ध्रुवानन्द ध्रुव बोध, ध्रुव ध्येय दृढ़ धुन,
ध्रुव तेज-पुञ्ज रहे, ध्रुव विद्याभ्यासी का ! !
ध्रुव-ऋषि प्रणाली को, ध्रुव अपनाते रहे,
ध्रुव थे विचार ध्रुव वैदिक प्रकाशी का !
ध्रुव गरिमा के गुरु, ध्रुव सत्य भाषी देव,
ध्रुव थे प्रभाव ध्रुव ब्रह्म के विलासी का ! !

—कवि किस्तूरचन्द "घनसार"
पीपाड शहर (राज०)

आदर्श आर्य नेता—

स्वर्गीय स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती

(ले०—श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री)

अभी कुछ ही समय पूर्व स्वामी जी महाराज हमारे मध्य विद्यमान थे परन्तु आवागमन के चक्र ने अब हमे उन्हे स्वर्गीय कहने के लिए बाध्य कर दिया। विधाना की इस दुनिया मे जीवन-मरण की समस्या सतत प्रवाह से चली आ रही है। मृत्यु एक ऐसी वस्तु है कि जिसका सामना बिना किसी भेद भाव के सभी को एक दिन करना ही पडता है। स्वामी जी महाराज दिवगत हो गये परन्तु उनके कार्य-कलाप सदा अमर रहेगे। वे एक निर्भीक, मनस्वी, यशस्वी आर्य नेता और सन्यासी थे। अपने समय मे उन्होने सदा आर्यसमाज को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। सारा ही जीवन इसको दे दिया। अन्तिम क्षण तक आर्यसमाज की सेवा मे रत रहे। उनका यह योगदान सदा स्मरणीय रहेगा कि सार्वदेशिक सभा को अयोग्य हाथो मे जाने से उन्होने सदा बचाया और इसी के लिए अपना अन्त भी कर दिया।

मेरे परिचय की घटना

परेश कृपा से यह योग्यता मुझे प्राप्त थी कि मैं विद्यार्थी जीवन काल मे ही व्याख्यानो और शास्त्रार्थो के लिए जाया करता था। उस समय शास्त्रार्थ करने मे और व्याख्यान देने आदि मे कितना अधिक उत्साह था उसका वर्णन करना मेरे लिए कठिन है। श्री स्वामी जी ने तब सन्यास नही लिया था और उनका नाम श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री था। उस समय इनका ठाठ बाट निराला ही था। शरीर मे हृष्ट पुष्ट थे ही परन्तु राजगुरु पने की भी पग पग पर अनुभूति होती थी। नेता तो बन ही चुके थे। स्वात्माभिमान ऊँचे दर्जे का रखते थे। किसी से बात करने मे भी ये बातें सरलता से टपक पडती थी। साधारण आदमी तो बात भी करने मे थोडी भीति का अनुभव करता था। एक तो करेला दूसरे नीम चढा—उत्तर प्रदेश प्रतिनिधि सभा ने इन्हे समाजो के निरीक्षण का कार्य भी दे रखा था। फिर कहना क्या ? ये केवल समाज का ही निरीक्षण नही करते थे सामाजिक जनो का भी निरीक्षण करते थे। वकील हो, वा जज, प्रोफेसर हो वा आचार्य, सन्ध्या-हवन के मन्त्र पूछ लेना तो इनकी एक साधारण बात थी। कभी अर्थ भी पूछ लिया करते थे। इनका निरीक्षण इतना कठिन होता था कि कई बार तो कई लोगो से झगडा हो जाया करता था।

सयोगवश ये निरीक्षणार्थ जौनपुर समाज मे ठहरे थे। मै भी बनारस से किसी कार्य से वहा आया था और समाज मे ठहरा था। इस बात का मुझे तनिक भी पूर्वाभास नही था कि यहा कोई घटना घट जावेगी। जौनपुर वस्तुत पूज्य महात्मा नारायणस्वामी का प्रिय स्थान था। स्वर्गीय स्वामी ध्रुवानन्द जी का भी अभी तक उस स्थान से बडा प्रेम था। शाहगज कस्बे मे एक व्यापारी श्री रामेश्वर प्रसाद जी रहा करते थे। वे शाहगज समाज के प्रधान थे। उनके साथ प्रधान शब्द का समवाय हो गया। अब उनके भाई श्री बाबूराम जी प्रधान हैं। इनके साथ भी वह 'प्रधान' पद राजाओ के पुस्तैनी खिताब की तरह चला आ रहा है। यह परिवार अच्छा आर्य सामाजिक परिवार है। श्री राजगुरु जी वहा ही ठहरा करते थे और शाहगज अवश्य वर्ष मे एक दो बार जाया ही करते थे।

मेरा भी जौनपुर से बहुत बडा सम्बन्ध है। कहना चाहिए कि वह स्थिर सम्बन्ध है। इस तरह जौनपुर वह नगरी है जिससे पूज्य महात्मा नारायणस्वामी, पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती और इन पक्तियो के लेखक तीनो का ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

राजगुरु जी जौनपुर का निरीक्षण करने को समाज

में ठहरे थे और मैं कार्यवश वहा ठहरा था। परन्तु दोनो का मिलना दो दिन वहा रहते हुये भी नही हुआ। कारण यह था कि वे अपनी शान मे थे और लेखक अपनी शान मे था। निरीक्षण की घडी आ ही गई। राजगुरु जी रजिस्टर आदि देखने के बाद प्रधान और मन्त्री से सध्या के मन्त्रो के अर्थ पूछने लगे। लोगो ने उत्तर दिया। परन्तु दैवयोग से प्रधान से अघमर्षण मन्त्र का अर्थ पूछे जाने पर उसने अर्थ तो बताया परन्तु इनको वह स्वीकार न हुआ। प्रधान ने मेरी तरफ सकेत करके कहा कि पडित जी ने भी यही अर्थ बताया है। अब क्या था ? पारा गर्म हो गया। राजगुरु जी ने मुझसे ही सध्या के अघमर्षण मन्त्र पूछने प्रारम्भ कर दिये। मैंने कोई उत्तर नही दिया। बस क्या था ? वे आवेश मे आ गये। मैं भी कम नही था। उन्होने कहा 'तुमको कुछ नही आता'। मैंने कहा 'आप नाममात्र के राजगुरु है।' भला आप ही इन मन्त्रो की सगति लगा दीजिये। उन्होने क्रोध मे कहा 'आपको मुझसे पूछने का कोई अधिकार नही है" मैंने उत्तर मे उसी कडक और जोश से कहा ?" 'आपको यह अधिकार किस महान्यायालय ने दे रखा है। मुझे भय है कि उस समय वहा सभा का कोई अधिकारी नही था अन्यथा वह और कुछ न सही मुझे अनार्य तो कह ही देता। अस्तु ! राजगुरु जी के बहुत बिगडने पर मैंने कहा कि पहले आपको यह जानना चाहिए था कि मै जौनपुर समाज का सदस्य हू वा नही। फिर पूछने आदि की बात करनी चाहिए थी। परन्तु यह सब सुनने और और पोजीशन साफ करने कराने की वहा बात ही क्या हो सकती थी। उस प्रचण्ड क्रोध के सामने यह सब व्यर्थ था। आखिर ! यह एक नेता, निरीक्षक और राजगुरु का अपमान था। कोई साधारण बात नहीं थी। स्यात् मैं भी नेता और राजगुरु आदि होता तो मैं भी ऐसा ही करता वा क्या करता ?

मैं उसी दिन दोपहर को बनारस वापस गया। श्री राजगुरु जी दूसरे दिन बनारस पहुचे। काशी समाज मे ही वे ठहरे। परन्तु मस्तिष्क मे जौनपुर वाली बात की उथल पुथल थी। डायरी मे भी कुछ पक्तिया अवश्य ही लिखी गई होगी। उसके दूसरे दिन रविवार था। श्री राजगुरु जी का समाज के अधिवेशन मे भाषण था। खैरियत बस इतनी थी कि काशी समाज मे उनका निरीक्षण नही था। पता चला कि उन्हे एक सप्ताह वहा पर ठहरना है। वह भी इसलिए कि भरतपुर मे एक पडित से राजा को प्रभावित करने के लिए शास्त्रार्थ करने की तैयारी करना था। जैसा सुनने मे आया था, वह पडित बडा योग्य था, उसे पछाडना आवश्यक था। राजगुरु जी जब लखनऊ से चले थे तब और उसके पूर्व भी वे इन पक्तियो के लेखक के विषय मे श्री मान्य ब्रह्मचारी अखिलानन्द (वर्तमान मे झरिया मे है) और स्वर्गीय श्री प० रामदत्त जी शुक्ल, लखनऊ से पर्याप्त तारीफ सुन चुके थे। अत इस दौरे मे वे बनारस मे मिलना भी चाहते थे। उधर मेरी उस समय की यह धारणा थी कि इनसे दूर ही रहना चाहिए क्योकि ये राजाओ के आसपास रहने से अभिमानी है। परन्तु वास्तविकता मेरी धारणा के विपरीत थी। वे हृदय से मिलना चाहते थे और सम्पर्क रखना चाहते थे। जरूरत पडने पर उस भरतपुर वाले पडित से शास्त्रार्थ मे भी भिडाना चाहते थे। परन्तु यह शास्त्रार्थ स्वय ही करना चाहते थे। यह इसलिए भी उन्हे करना था कि राजगुरु की भी पोजीशन तो रखनी ही थी। मुझसे मिलने की उनकी इच्छा इसलिए भी थी कि श्री पडित रामदत्त जी शुक्ल ने मेरी प्रशसा की थी। जबकि शुक्ल जी के विषय मे यह प्रसिद्ध था कि वे किसी की प्रशसा कम ही किया करते थे। उनके द्वारा मेरी प्रशसा किया जाना राजगुरु जी के लिए कुछ विशेष बात थी। परन्तु जैसा कि बाद मे ज्ञात हुआ शुक्ल जी ने तारीफ तो की साथ ही यह भी कह दिया था कि मेरा सम्पर्क पूज्य महात्मा नारायणस्वामी जी से अधिक है। दैवात् उन्हीं दिनो महात्मा नारायणस्वामी जी धनबाद गये थे और बनारस होते हुए देहरादून एक्सप्रेस से ज्वालापुर जा रहे थे और यह सूचना श्री ब्रह्मचारी अखिलानन्द के पत्र से राजगुरु जी को मिली जो कि राजगुरु जी के बुलाने पर उसी गाडी से बनारस आ रहे थे। राजगुरु जी तथा दूसरे सज्जन ट्रेन पर महात्मा जी से मिलने गये। अवसर पाकर मेरे सम्बन्ध मे भी राजगुरु जी ने पूछा। महात्मा जी ने भी बडी प्रशसा की।

इस घटना की कडी कहा जुडेगी इसका मुझे कोई

पता नही था। परन्तु जौनपुर वाली बात मन मे बार-बार उठती थी। यह बात बनारस मे श्री राजगुरु जी के ठहरने के तीसरे दिन की है कि श्री ब्रह्मचारी जी का एक आदमी मुझे बुलाने आया। उसने कहा कि ब्रह्मचारी जी झरिया से आये हैं और बुला रहे हैं। मैं गया तो देखता हू कि वहा कई विद्वानो की पचायत लगी है। प्रमाण खोजे जा रहे हैं। ब्रह्मचारी जी ने मुझे पृथक् ले जाकर पूछा कि इस शास्त्रार्थ के लिए क्या प्रमाण चाहिए और किस रूप मे इसे किया जावे तो ठीक होगा। मैने कहा मैं दो घण्टे मे सब तैयार कर देता हू और पुस्तको के प्रमाणो पर निशान लगा देता हू उन्होने कहा—'अवश्य कर लाइये मैं उनके कमरे मे बैठा और वहीं पर पुस्तकालय से पुस्तके मगाकर दो घण्टे मे सब कार्य पूरा करके ब्रह्मचारी जी को दे दिया। लेकिन यह नही ज्ञात था कि अभी राजगुरु जी के सामने इस पर छानबीन भी होनी है। यदि तनिक भी इसका परिज्ञान होता तो स्यात् जौनपुर की घटना का सारा दृश्य और उसकी प्रतिक्रिया उठ खडी होती। राजगुरु जी को उधर यह पता नही था कि यह वैद्यनाथ शास्त्री वही व्यक्ति होगा जिसने अघमर्षण पर मेरा ही मषण प्रारम्भ कर दिया था। कारण भी स्पष्ट था कि जौनपुर मे उन्होने मेरा नाम भी जानने का कष्ट नही किया। कष्ट करते भी कैसे, कहा सकृद्ध राजगुरु कहा कालेज का एक विद्यार्थी।

अस्तु ! २ बजे के समय श्री ब्रह्मचारी जी मेरे साथ शास्त्री जी के पास आर्यसमाज हाल में जा बैठे। परस्पर नमस्ते के आदान - प्रदान के बाद राजगुरु जी ब्रह्मचारी जी से पूछ बैठे कि इस घमण्डी व्यक्ति को आप कैसे मिल गये। मैंने बिना ब्रह्मचारी जी के उत्तर की प्रतीक्षा किये कहा कि 'घमण्डी राजगुरुओ के लिए ऐसे ही घमण्डी की आवश्यकता पडा करती है"। ब्रह्मचारी जी बीच मे ही बात काटकर मेरा परिचय देने लगे कि यह वही हैं जिनके विषय मे वार्तालाप हो रहा था। राजगुरु जी आश्चययुक्त शान्त मुद्रा मे बोले कि इनका और मेरा तो जौनपुर मे झगडा हो गया था। अच्छा हुआ कि अब परस्पर वार्तालाप हो जावेगा। शास्त्रार्थ की पुस्तकें और सब प्रमाण आदि पर तीन घण्टे तक बातचीत होती रही और राजगुरु जी बहुत प्रसन्न हुए। अब वे जौनपुर वाले राजगुरु जी नही रह गये थे और न मैं वह जौनपुर मे उनसे प्रश्न करने वाला घमण्डी (उनके शब्दो मे)। उस समय से वे बहुत ही प्रेम रखने लगे और अन्तिम समय तक वह वैसा ही बना रहा। मुझ पर उनका विश्वास बहुत अधिक रहा।

'मै दो चीजों का लालची हू'

बनारस के उसी आवास काल मे जाने के एक दिन पहले स्वय उन्होने कहा कि मैं कुछ वार्तालाप करना चाहता हू। आज घूमने चलेंगे तब वह वार्तालाप होगा और जौनपुर की घटना की सफाई भी हो जावेगी। हम घूमने के लिए दशाश्वमेघ घाट पर गए। राजगुरु जी रास्ते भर अपनी सफाई देते रहे और मैं अपनी। घाट पर जब पहुचे तो मैंने पूछा आपने वार्तालाप क्या करना था शास्त्रीय अथवा कोई अन्य। उन्होने कहा मुझ मे और कोई लोभ लालच नही परन्तु दो लालचो का मैं सवरण नही कर सकता और न कर सकूगा। मैने पूछा वे दो असवरणीय लालच क्या है ? उन्होने अपनी कहानी सुनानी प्रारम्भ की। कहने लगे कि जब मैं किसी सुन्दर सुगठित भव्य मूर्ति राजा वा धनिक वा नेता को और योग्यतम विद्वान् को देखता हू तो मेरा लालच की पारावार नही रहता। मै चाहता हू कि वह आर्यसमाज मे रहे। तथा महर्षि दयानन्द का भक्त रहे। इसको न मैं दूर कर सका और न करना चाहता हू। मैने कहा 'यह लोभ नही यह तो अनिवार्य लोभ, वाछनीय लोभ और दैवी लोभ है। मैंने उस समय अनुभव किया कि आर्यसमाज और भगवान् दयानन्द के लिये इनके हृदय मे कितना उच्च स्थान है। ये वस्तुत क्या है ? और क्या इनका कार्यकलाप है ? वस्तुत स्वामी जी ने इन्ही दोनो को लेकर अन्तिम समय तक आर्यसमाज को प्रवद्ध किया। योग्य व्यक्तियो और विद्वानो को सदा साथी बनाकर रखते थे और जिस पर विश्वास करते थे अटूट करते थे।

अफीका की यात्रा से जब मैं लौटने लगा आप हवाई अड्डे पर अन्य आर्यजनो के साथ उपस्थित थे। मैंने कहा स्वामी जी महाराज। आपने क्यो कष्ट किया। बोले—

श्री स्वामी जी के प्रति—

आर्यों के शिर से वरद-हस्त ध्रुवानन्द का हटा अरे
निर्दयी कि विषैली नागिन सी घिर गई काल की घटा अरे ।
चतुर सारथी रहित हाय ! आर्यों के रथ का क्या होगा ?
'ध्रुव' जैसे पूत सपूत बिना सस्कृत माता का क्या होगा ?

मात शारदा का मन्दिर ! बिना पुजारी आज हुआ ।
ऋषि प्रणाली, आर्ष पद्धति का सुनसान जहान हुआ ।
आदर्श पुनीता सीता सी बनवासिन कही न हो जाये ।
सरला बाला उर्मिल जैसी विस्मृत कहीं न हो जाये ॥

ओ चतुर चितेरे नैयायिक ! वेद शास्त्र के सुज्ञानी ।
भारत माता के दिव्य पूत ! विज्ञान साधना के ध्यानी ।
प्राच्य-नव्य पद्धति का तुमने अपूर्व समन्वय कर डाला ।
पतझड मे लाकर बसन्त नवजीवन सबको दे डाला ॥

जब तक रविशशि मे प्रकाश, गगा यमुना मे है पानी ।
तब तक विकसे कीर्ति कौमुदी, ओ दयानन्द के सेनानी ।
पद वाक्य प्रमाणज्ञ मुने ! इतनी सब पर कृपा करो ।
शोकाकुल भारत जननी की श्रद्धाजलि स्वीकार करो ॥

—आचार्य मित्रसेन एम० ए० सेवा-सदन कटरा, अलीगढ

मैंने घर छोडा, परिवार छोडा, भाई बन्धु छोड़े, मिनिस्टरो और दूसरो को बिदाई देने नही जाता, परन्तु आर्य जगत् के एक विद्वान् को जिसको मैं अपना भाई और परिवार समझता हू तथा मिनिस्टरो आदि से बडा समझता हू, उसको नही छोडता हू और उसे बिदाई देने न आऊँ तो किसको । आज जब इन बातो को स्मरण करता हू तो मन की क्या स्थिति होती है, यह वर्णन नही की जा सकती । अन्त समय तक इस महात्मा ने जब भी सिद्धान्त सम्बन्धी अथवा सघटन सम्बन्धी अथवा समाज और सभाओ की कोई भी बात आई सदा सलाह की और पूर्ण विश्वास किया । सिद्धान्तो आदि के विषय मे तो सदा ही मुझ पर अटूट विश्वास करते रहे ।

सभा मे बराबर रहते हुए सभा मे एक प्रकार की रौनक थी । आज उनके जाने के बाद शून्यता का अनुभव होता है । आर्यसमाज का उनके निधन से एक स्तम्भ ही टूट गया ।

जीवनी लिखी और छापी जावे ।

पूज्य स्वामी जी के परिचितो और भक्तो की एक बहुत बडी सख्या है । इनमे अनेको श्रीमान् और योग्य व्यक्ति है । मुझ लगभग सबसे परिचय होने से यह कहने का साहस होता है कि स्वामी जी महाराज की जीवनी अच्छे ढग पर लिखी और छपाई जानी चाहिए । सबको मिलकर यह कार्य करना ही चाहिए । श्री डा० हरिशकर शर्मा जी ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें स्वामी जी की सभी जीवन घटनायें मालूम हैं । वे स्वामी जी के घनिष्ठ सम्पर्क में रहे है । अत वे इस जीवनी को लिखें तो बहुत अच्छा होगा । उनका पावन स्मरणहमे सदैव कर्तव्य की प्रेरणा देता रहेगा ।



मेरे सामाजिक सहयोगी

स्वामी ध्रुवानन्द जी का दुःखद निधन

[श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०, प्रयाग]

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी के दुर्भाग्य-प्रद निधन पर आर्य्य जगत् मे जो शोक की लहर फैल गई वह स्वाभाविक ही थी क्योकि गत चालीस वर्षों से आर्य्यसमाज की कोई प्रगति या नीति-रीति ऐसी न थी, जिसमे स्वामी जी का कोई हाथ न रहा हो। स्वामी जी भाग्यशाली भी थे और प्रभावशाली भी। भाग्यशाली होने का तो एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि एक छोटे-से मथुरा जिले के ग्राम मे एक अकिंचन अशिक्षित ब्राह्मण घर मे जन्म लेकर वह आर्य्यसमाज के उच्चतम पद पर आरूढ रहे। संयुक्त प्रान्तीय आर्य्य प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक सभा के कई वर्ष प्रधान रहे। परन्तु जब वह प्रधान नही भी रहे तब भी प्रधानत्व उन्ही का रहा। वह एक प्रकार से बिहार, यू० पी०, राजस्थान मे तो वेमुकुट के सम्राट थे। यह तो सभव था उनका प्रस्तावित कोई व्यक्ति प्रधान न चुना जा सके परन्तु यह सभव न था कि जिसका वह विरोध करे वह प्रधान चुना जावे। बिहार के तो अनेक आर्य्यसमाजो का निर्वाचन उनके संकेत पर होता था। उनका प्रभाव गावो पर भी था और नगरो पर भी। प्रत्येक नगर मे उनके कुछ भक्त थे और अनन्य भक्त।

यह उनका सौभाग्य था कि उनका शिक्षण श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज जैसे वीतराग सन्यासी के द्वारा हुआ। इस पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना हो गया। स्वामी सर्वदानन्द जी जैसा वीतराग सन्यासी कम देखने को मिलेगा और कम सुनने को भी। पुत्रैषणा और वित्तैषणा को तो वह त्याग ही चुके थे परन्तु लोकैषणा तो विरक्तो से भी नही छूटती, वह लोकैषणा स्वामी सर्वदानंद जी मे लेशमात्र भी न थी। इसकी तो कहानिया प्रसिद्ध हैं। एक बार स्वामी जी को किसी आर्य्यसमाज ने उपदेश के लिए निमन्त्रित किया। वह रात मे पहुचे, समाज मन्दिर का द्वार बन्द था। वह कमली ओढकर वही सो रहे। प्रातःकाल अंधेरे मे मन्त्री जी आये और एक फकीर को सोता देखकर तिरस्कार से उसे डाट दिया। स्वामी जी अलग खिसक गए। प्रातःकाल जब सभा लगी तो मन्त्री जी बोले कि श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का उपदेश होने को था। वह आये नही स्वामी जी ने उठकर कहा कि मै तो बैठा हू, मन्त्री जी पर घडो पानी पड गया। इसी प्रकार एक समाज मे चलते समय उनको केवल २) दो रुपये दिये। उन्होने रेल के बाबू से कहा कि टिकट दे दो। 'कहा का?" मुझे इस लाइन पर जाना है, जहा तक का २) मे आ सके। ऐसे वीतराग सन्यासी के श्री ध्रुवानन्द जी शिष्य थे। पहला नाम था धुरिया। गुरु जी का रखा नाम था, धुरेन्द्र। सन्यास लिया तो स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती हुये। धुरिया धुरेन्द्र ध्रुवानन्द मे केवल शाब्दिक अनुप्रास ही नही है, भाव सादृश्य भी है।

मेरा स्वामी ध्रुवानन्द जी का विशेष सम्पर्क १९३९ ई० की अप्रैल मे प्रारम्भ होता है। उससे नौ दस साल पूर्व से जब वह इस प्रान्त मे काम करने लगे तब से साधारण परिचय था। १९३९ ई० मे हैदराबाद सत्याग्रह आरम्भ हुआ। २० जनवरी को श्री नारायण स्वामी जी पहले डिक्टेटर बनकर गये। २० फरवरी को राजस्थान के कुवरचन्द करण शारदा दूसरे डिक्टेटर। २० मार्च को पंजाब से श्री महात्मा खुशालचन्द (श्री आनन्द स्वामी जी) तीसरे डिक्टेटर। २० अप्रैल को यू० पी० के चौथे डिक्टेटर राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री जी। मैं जनवरी से ही सत्याग्रह के केन्द्रालय शोलापुर मे श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी के साथ काम करता था। उस समय मेरी प्रान्तीयता की भावना ने जोर मारा। राजस्थान और पंजाब मे बडी चहल-पहल थी। मेरा प्रान्त सोता रहा था। मुझे अच्छा न लगा। मैने श्री राजगुरु जी को वैयक्तिक पत्र लिखा

पत्र का तुरन्त प्रभाव हुआ। श्री शास्त्री जी ने तूफानी दौरा किया और बहुत से साथियो के साथ शोलापुर पहुच गये। उन्ही दिनो मातुगा समाज का उत्सव था। मै भी गया और श्री धुरेन्द्र शास्त्री जी भी। मुझे ऐसा लगा कि शास्त्री जी कुछ असन्तुष्ट है। यह शुभ लक्षण न थे। मैने तुरन्त स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को फोन करके शोलापुर से बुलाया। वह दूसरे दिन प्रात काल ही आ गये। श्री राजगुरु जी का असन्तोष दूर हो गया और २० अप्रैल को उन्होने चौथे डिक्टटर के रूप मे वडल्ले से सत्याग्रह किया। तब से हम दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। सत्याग्रह के पश्चात् हम दोनो ने एक साल तक शोलापुर मे एक उपदेशक विद्यालय चलाया जिसका मुख्य उद्देश्य था हैदराबाद के युवको को तैयार करना। वस्तुत विद्यालय के आचार्य तो वही थे। मै तो दक्षिण मे प्रचारार्थ गया था, परतु बात हुई उलटी। मै हू यात्रा-भीरु। वह थे यात्रा प्रेमी। मै बाहर तभी जाता हू, जब अत्यन्त आवश्यक हो। वह आवश्यक होने पर भी एक स्थान पर नही ठहर सकते। अत सचालन तो मुझी को करना पडा। परन्तु उन दिनो से सम्पर्क बढता ही गया। वह मुझ से प्रेम करते थे और मुझे उनमे स्नेह था। परन्तु हम दोनो के दृष्टिकोण तथा नीति मे बहुत बडा अन्तर था। वह छोटी मोटी बातो पर डाट बैठते थे। राजगुरु जी ठहरे। मै नतुनच किये बिना नही रहता था। परन्तु मैं और वह दोनो जानते थे कि हमारी प्रवृत्ति आर्य्यसमाज के हित में है। एक वर्ष तक उनके प्रधानत्व मे मै सावदेशिक का मन्त्री रहा। परस्पर कोई मतभेद नही रहा। शायद इसका अधिकतर श्रेय उनको हो मुझ को न हो। क्योकि वह दबना भी जानते थे। यही तो उनकी सफलता का रहस्य था। स्वामी सर्वदानन्द जी वीतराग थे। श्री स्वामी आत्मानन्द जी जिनसे उन्होने सन्यास लिया वह भी बहुत सतोगुणी थे, यद्यपि लोग उनको राजनैतिक झमेलो में भी खीच लेते थे। जब वह 'मुक्तिराम' जी के नाम से गुरुकुल येरारोही (रावल पिण्डी) में थे तब उन्होने हैदराबाद में सत्याग्रह किया था। जब लोकसघ' खोला गया तो लोगो ने स्वामी आत्मानन्द जी को घसीट लिया। हिन्दी सत्याग्रह मे भी स्वामी आत्मानन्द जी मुखिया बने। परन्तु स्वामी सर्वदानन्द जी इन सब प्रलोभनो से सदा मुक्त रहे। श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी की प्रवृत्तिया उन दोनो गुरुओ से भिन्न थी। 'राजगुरु' जी शब्द ही उनकी प्रवृत्तियो का वास्तविक द्योतक था। चुनाव के युद्धो मे उनको मजा आता था और अन्त तक आता रहा। २९ जून को वह कानपुर पहुच रहे थे कि सावदेशिक के चुनाव का सचालन कर सकें। परन्तु मृत्यु ने उनका प्रोग्राम अस्तव्यस्त कर दिया। फिर भी जो चुनाव मे हुआ वह उनके निर्देशानुसार ही हुआ। ऐसा मेरा विचार है।

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी उन गिने-चुने लोगो मे से थे, जिन्होने आयु भर केवल आर्य्यसमाज की ही सेवा की, घरबार तो था ही नही। समाज ही उनका सब कुछ था। वह काग्रेस मे भी रहे और जेल भी गये। परन्तु अन्त को फिर आर्यासमाज के अनन्य उपासक बन गये। ऐसे नेता का चला जाना आशावादियो को भी निराश कर देता है।

मेरी समझ मे नहीं आता कि मै उनके जाने पर शोक करूँ या अपने न जा सकने पर। मेरी दशा इस समय ऐसी है जैसी उस यात्री की होती है जिसके साथी रेल पर बैठकर चल दिये और वह प्लेटफार्म पर ही छूट गया हो।

पीले पत्ते तो झडते ही है, मेरे झडने मे भी एक झटके की देर है। परन्तु १९६५ ई० मे जितना पत-झाड हुआ है शायद ही कभी हुआ हो। आशा रखनी चाहिये कि ससार चक्र पतझाड के पीछे नई कोपलें उत्पन्न करेगा और आर्य्यसमाज के युवक और युवतिया ऋषि दयानन्द के कार्य्य को अप्रतिहत रूप से करते रहेगे।

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी मे बहुत से गुण थे। इनका विस्तृत वर्णन यहा सम्भव नही है।

—*—

आदरणीय श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी

(ले०—श्री सुखुरामप्रसाद जी, मन्त्री आर्यसमाज मोसेल्मा, मारीशस)

श्री पडित धुरेन्द्र जी शास्त्री, श्री स्वामी सर्वदानन्द जी के प्रधान शिष्य एव आर्य जगत् मे जीवित-जागृत स्फूर्तिमान, तपस्वी, त्यागमूर्ति पुरुष थे। आपका जन्म मथुरा जिले मे एक छोटे से 'पानी गाव' नामक गाव मे हुआ था। आपने मुल्तान (पजाब) मे अध्ययन कर पजाब की शास्त्री परीक्षा पास की। काशी और जयपुर में दर्शनशास्त्रो का अध्ययन किया और श्री स्वामी सर्वदानन्द जी के आदेश से धर्म सेवा मे लग गये। आपका आजन्म ब्रह्मचारी रहने का सकल्प था। आप त्यागी, तपस्वी, विद्वान्, व्याख्याता और उत्तम लेखक थे। आप सच्चाई के भक्त और ढोग के घोर विरोधी थे। कार्यक्षेत्र मे आते हुए आपका कौशल प्रथम १९२३ ई० मे मलकाना शुद्धि आन्दोलन मे चमका। वहा आपको सर्वप्रथम स्वामी श्रद्धानन्द जी और म० हसराज जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। शुद्धि आन्दोलन की सेवाओ के कारण आप की ओर जनता का ध्यान खिचा। बाद मे आप बिहार प्रान्त मे कार्य करने लगे। पटना ही आपके कार्यक्षेत्र का प्रधान केन्द्र था। काग्रेस के आन्दोलन के अवसर पर आपने हजारी बाग (विहार) की जेल मे वीर सत्याग्रही के रूप मे कृष्ण मन्दिर (जैल) का अनुभव लाभ किया है। आपके त्याग, निर्भयता और श्रम-तत्परता से अनेक युवक राजा प्रभावित होकर आप के शिष्य हुए। कालाकाकर नरेश श्री अवधेशसिंह को आपने ही आर्य समाज मे दीक्षित किया था। अनेक अन्य राजाओ ने आपको अपना गुरु माना और राजाधिराज शाहपुराधीश श्री उमेदसिंह जी ने १९३९ ई० मे आपको "राजगुरु" की पदवी प्रदान की। आप उनके युवराज को कई वर्ष धर्म शिक्षा देते रहे। आप सदा एक धार्मिक सैनिक के रूप मे धर्म सेवा करते रहने मे प्रसन्न रहते थे। १९३८ ई० के दिसम्बर मास मे हैदराबाद दक्षिण निजाम राज्य मे आर्य सत्याग्रह सग्राम छिडने पर आप ने सत्याग्रही सैनिक के रूप मे अपने को प्रस्तुत किया था, परन्तु सयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा ने आपको अपने प्रान्त का प्रथम एव सार्वदेशिक की ओर से चतुर्थ डिक्टेटर बनाकर सत्याग्रह सग्राम मे भेजा। इधर ७ अप्रैल सन् १९३९ को आप आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान चुने गये थे। डिक्टेटर के रूप मे आपने प्रान्त भर मे तूफानी दौरा किया और सग्राम के निमित्त ३० सहस्र से अधिक द्रव्य सग्रह किया था।

इधर पूर्व के सर्वाधिकारी श्री खुशहालचन्द जी के जेल चले जाने के कारण आपको शीघ्र शोलापुर जाना पडा और बडी वीरता से सत्याग्रह कर कैद हो गये। बडी प्रसन्नता से सब प्रकार की जेल यातनायें भोगी। प्रलोभन रूप मे जेल के अधिकारियो ने आपको अनेक सुविधायें देनी चाही, परन्तु आपने अपने साथ सामान्य सत्याग्रही कैदी का व्यवहार ही स्वीकार किया। कैदखाने मे भी आप सत्याग्रहियो के दु ख सुखो का बडा ध्यान रखते थे और तर्क बुद्धि से अफसर का दोष उसको अनुभव कराकर सीधे रास्ते पर ले आते थे। क्रूर से क्रूर अफसर आपकी सत्यनिष्ठा से दबता था। आप अपने जीवन को आर्यसमाज के लिए मानते थे। "समाज जीता है तो हम जीते हैं, समाज मर गया तो हम मर जायेंगे।"

सत्याग्रह को प्रस्थान करने से पूर्व आप अपने साथ ६०० से अधिक सत्याग्रहियो की बडी स्पेशल ट्रेन लेकर रवाना हुए थे, जिसका प्रबन्ध श्री पडित जीयालाल जी की देख-रेख मे आर्यसमाज अजमेर की ओर से किया गया, था और आगे चलकर ५०० सत्याग्रहियो की एक स्पेशल ट्रेन बनाकर बडी धूम-धाम से आपने निजाम रियासत मे सत्याग्रह के लिए प्रवेश किया था। जिस दिन आपने सत्याग्रह किया था उसी दिन समस्त केन्द्रो से १०५६ सत्याग्रहियो ने सत्याग्रह किया था। सत्याग्रह सग्राम के विजय के पश्चात् आपने शोलापुर में उपदेशक विद्यालय का कार्य सम्भाला था, आप उसके आचार्य बने थे, उसका कार्य सुचारु रूप से चलने लगा।



उसकी सफलता का श्रेय आपको ही है। मई सन् १९४० ई० में इन्दौर सम्मेलन में आप अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के प्रधान निर्वाचित हुये थे। आपकी भव्य उन्नत मूर्ति छरहरा, शरीर तीक्ष्ण, मधुर स्वर और सौम्य विशाल स्निग्ध, भाल देखकर आपके तदनुरूप गुणो की छाप दर्शको पर तुरन्त बैठ जाती थी। आप १९५५ ई० में सन्यास आश्रम मे प्रवेश हुए और वह धुरेन्द्र शास्त्री से स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हो गये। आप आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न थे।

आर्य सभा मोरिशस के अनुरोध पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने ५ जनवरी १९५७ ई० मे श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज को वैदिक धर्म प्रचारार्थ भेजा। आपके आते ही मोरीशस भर मे वेद प्रचार की धूम मच गयी। १२ मई १९५७ ई० को उत्तर प्रान्तीय आर्य समाजियो की ओर से आपके आचार्यत्व मे मोसेलर्मा मे एक नगरकीर्तन किया गया था। जिसमे करीब बीस हजार नर-नारियो ने भाग लिया था। मोरीशस मे आर्यो की दो सभाएं थी, 'आर्य सभा और आर्य प्रतिनिधि सभा।' स्वामी जी महाराज के अटूट परिश्रम से आर्य प्रतिनिधि सभा आर्य सभा मे विलीन हो गई। अब मोरीशस मे आर्यों की एक ही सभा है जिसके द्वारा वहा वैदिक धर्म का प्रचार होता है।

श्री स्वामी जी सन् १९६१ ई० के जनवरी मे मोरीशस छोडकर भारत चले आये, और दिल्ली मे आर्य प्रतिनिधि सभा के पुन प्रधान बने। सन् १९६४ ई० मे प्रधान पद त्यागकर थाईलैण्ड, मलाया गये और वैदिक धर्म का प्रचार किया। उसी समय पाकिस्तान सरकार हिन्दू और ईसाइयो का बहिष्कार कर रही थी। श्री स्वामी जी शरणार्थियो की सहायता मे लग गये, उस कार्य मे परिश्रम के कारण आपकी शारीरिक ताकत घट गई और आप अस्वस्थ हो गये।

श्री स्वामी जी से २१ फरवरी ६५ को अलीगढ मे श्री सुरेन्द्रकुमार जी के स्थान पर मैने भेट की थी। कौन जानता था कि पूज्य स्वामी जी से फिर भेट नही होगी? अत २९ जून को अचानक श्री स्वामी जी की मृत्यु का समाचार जानकर अत्यन्त क्लेश हुआ। आपका शव ट्रेन द्वारा बम्बई से दिल्ली लाया गया और वैदिक रीति से अन्त्येष्टि सस्कार किया गया। हजारो नर नारी अपने नेता की याद मे रो रहे थे।

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी उच्चकोटि के विद्वान्, सन्यासी थे। आपकी मृत्यु से आर्य-जगत् को भारी क्षति पहुची है। स्वामी जी अब ससार मे नही रहे किन्तु आपका आरोपित किया हुआ एक नारियल का वृक्ष जो मेरे आगन मे है, सदा आपका स्मरण दिलायेगा।

अन्त मे परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को अनन्त शान्ति सद्‌गति मिले और शोकातुर आर्यों को धैर्य प्राप्त हो।

दयानन्द-सप्ताह

(१२ फवरी से १८ फरवरी ६६ तक)

उत्तरप्रदेशीय समस्त आर्य समाजों को सूचित किया जाता है कि 'दयानन्द सप्ताह' दिनाक १२ फरवरी ६६ से १८ फरवरी ६६ तक मनाना निश्चित हुआ है। आर्यसमाजो के कार्यकर्त्ताओ से प्रार्थना है कि उत्तरप्रदेश मे उक्त सप्ताह को उत्साहपूर्वक मनाने का आयोजन करना चाहिये। सप्ताह का कार्यक्रम आर्यमित्र के आगामी अक मे प्रकाशित किया जायगा।

—चन्द्ररत्न सभा मन्त्री

स्वामी ध्रुवानन्द जी चले गये !

(ले –श्री आचार्य रामकिशोर जी शास्त्री श्री सर्वदानन्द साधु आश्रम)

श्री स्वामी जी का अत्यन्त मधुर, विनोदी, स्वभाव, विषम समय मे दिये गये प्रेमपूर्ण आश्वासन, कठिन अवसरो पर भी उद्विग्नता का अभाव, ८३ वर्ष की अवस्था मे अदम्य उत्साह, अस्वस्थावस्था मे चिकित्सको द्वारा पूर्ण विश्राम का अनुरोध करने पर भी आर्य जगत् के कल्याण के लिये उद्योगशीलता आदि गुणों के स्मरण ने मुझे विक्षिप्त सा कर दिया है।

सब कुछ सुन लेने पर भी आर्यसमाज के विकास के हित मे अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये सदा सन्नद्ध रहने वाले, वैदिक संस्कृति के सफल संरक्षक, महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त, आर्यजनो पर पिता के समान स्नेह रखने वाले, श्री स्वामी जी सहसा ही हमे असहाय छोडकर चले जायेंगे, हृदय को यह विश्वास ही नहीं हुआ, उसी समय शोकाकुल आश्रम के उपमन्त्री श्री बाबूराम जी मास्टर द्वारा नेत्रो से अविच्छिन्न अश्रुधारा बहाते हुये गद्गद् स्वर से "शास्त्री जी कराल काल ने हमे लूट लिया, हम अनाथ हो गये" यह करुण क्रन्दन सुनकर इस हतहृदय को विश्वास हो पाया, कि श्री स्वामी जी इस असार ससार से प्रस्थान कर गये ।

जनवरी मास मे आश्रम पर चल रही प्राकृतिक चिकित्सा के मध्य मे ही श्री स्वामी जी पर हृदय रोग का आक्रमण हुआ था, परन्तु परमपिता परमात्मा की कृपा से कराल काल उस समय अपनी क्रूर योजना मे सफल होकर हमे श्री स्वामी जी के कृपापूर्ण प्यार से वंचित न कर सका । प्रात काल चिकित्सको के अनुरोध से श्री स्वामी जी के पूर्ण विश्राम की व्यवस्था की गई, अनिष्टकारक समझकर चिकित्सको ने वार्तालाप करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया, वह जीवन और मृत्यु के संघर्ष का समय था, किन्तु, उस समय भी श्री स्वामी जी को जीवन की नहीं अपितु आर्यसमाज के हित की ही चिन्ता रहती थी । मुझे प्रतिदिन सायकाल ७ बजे बाहर से आये पत्रों का उत्तर लिखवाने हेतु उपस्थित होने का आदेश श्री स्वामी जी से मिल चुका था, उस दिन प्रतिबन्ध था फिर भी मैं सायकाल उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात करने के लिये उनके आवास स्थान पर गया, श्री स्वामी जी ने मुझे देखते ही प्रसन्न मुद्रा मे ही मन्दहास्य के साथ कहा, कि आपने पत्र लिखवाना तो बन्द करा ही दिया, श्री स्वामी जी अपरिमेय कष्ट को अवश्य भोक्तव्य कर्मफल के रूप मे प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हुए—

"पत्कार पक्व पुनराविशाति" इस वैदिक सिद्धान्त का व्यवहार द्वारा सदा उपदेश दिया करते थे । उस समय भी श्री स्वामी जी का ध्यान कष्ट की ओर नहीं, अपितु कार्य की ओर ही था । श्री स्वामी जी ने अत्यन्त प्रेम के साथ आर्यसमाज के कार्य को पूर्ण प्रेम एव मनोयोग के साथ प्रगति प्रदान करने का उपदेश दिया । यत्र-तत्र दृष्टिगत हुई आर्यसमाज के कार्य की शिथिलता ही सदा श्री स्वामी जी की चिन्ता का प्रमुख विषय रहती थी । स्वास्थ्य की ओर से उपेक्षा, और आर्यसमाज के कार्य की अत्यधिक अपेक्षा के कारण ही श्री स्वामी जी का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर क्षीण एव निराशाजनक होता गया ।

आश्रम से चलकर योग्य चिकित्सकों की देखरेख में कुछ समय तक वे अलीगढ़ में रहे, वहां उनके स्वास्थ्य मे कुछ सुधार हुआ । चिकित्सकों द्वारा पूर्ण विश्राम का अनुरोध करने पर भी आ० स० के दीवाने श्री स्वामी जी देहली होकर आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के वार्षिक वृहदधिवेशन में मेरठ पहुच गये ।

दिनांक २८-५ ६५ को प्रबन्धकों के अनुरोध पर आर्य महासम्मेलन मे सभापति पद स्वीकार करके सभा का सचालन किया । श्री स्वामी जी ने अपने भाषण से पूर्व कहा कि "पर्याप्त समय से अस्वस्थ होने पर भी अपने उत्तरप्रदेश के आर्य भाई बहिनों के अन्तिम दर्शन करने तथा उन्हे अन्तिम सन्देश देने के लिए मैंने मेरठ,



आर्यसमाज के अधिकारियों का अनुरोध स्वीकार कर लिया है, उनके ये शब्द जीवन के प्रति पूर्ण निराशा के द्योतक थे। परन्तु हम सब को यह विश्वास नहीं हुआ, कि ये शब्द इतने शीघ्र अपना प्रभाव दिखला सकेंगे। और फिर हमें उनके दिव्य वचन सुनने का समय ही न मिल सकेगा। अपने भाषण मे उन्होंने आर्यसमाज की स्थिति को दृढ़ तथा प्रगतिशील बनाने के लिए जो उपाय सप्रमाण प्रस्तुत किये वे उनके क्रियाशील जीवन के अमूल्य रत्न थे। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" इस वैदिक घोष को कार्यरूप मे परिणत करने के लिये न केवल भारत में अपितु, मौरीशस,अफ्रीका, बर्मा आदि देशो मे भी उन्होने अत्यन्त प्रशसनीय कार्य किये, पवित्र प्रवचन तथा स्पृहणीय सदाचार सम्पन्न व्यवहार से श्री स्वामी जी आजीवन आ०स० को गौरवान्वित करते रहे। आर्यसमाज के हित मे दुर्निवार सांसारिक भोगो का परित्याग कर आजीवन कठिन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले, तपोनिष्ठ, अगणित असहाय छात्रों के उन्नायक, परम व्यवहार कुशल एवनीतिज्ञ श्री स्वामी जी नश्वर पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर जीवन के अन्तिम लक्ष्य के अधिकारी बन गये।

आज से कुछ वर्ष पूर्व जब वे मौरीशस से भारत लौटे थे, उस समय आश्रम पर पधारने पर यज्ञशाला के जिस पवित्र मण्डप मे पुष्प वर्षा करते हुए हम लोगों ने संस्कृत के पद्यों से उनका स्वागत किया था, विधि की विडम्बना के कारण उसी स्थल पर अश्रु वर्षा करते हुए संस्कृत पद्यों में श्रद्धांजलि समर्पित करने को विवश होना पड़ा। अस्तु—

श्री स्वामी जी अब हमारे बीच में नहीं हैं, किन्तु उनके विचार एव व्यवहार अनन्तकाल तक हमें प्रेरणा देते रहेंगे, हम सब का कर्तव्य है, आर्यसमाज के कार्य को अत्यन्त दृढ़ता तथा सत्यनिष्ठा से प्रगतिशील बनाकर श्री स्वा ध्रुवानन्दजी की आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें।

अन्तरंगाधिवेशन की सूचना

(१३ फर्वरी ६६ स्थान बरेली)

आर्य प्रतिनिधि सभास्थ अन्तरग सभासदों को सूचित किया जाता है कि सभा की अन्तरग का साधारण अधिवेशन दिनांक १३ फरवरी १९६६ दिन रविवार को आर्यसमाज मन्दिर बिहारीपुर बरेली मे आरम्भ होगा। अन्तरग की प्रथम बैठक ९ बजे प्रातःकाल से मन्दिर में प्रारम्भ होगी। सदस्यों के निवास की व्यवस्था महिला सुधार महाविद्यालय मे की गई है। १२ फरवरी को उप समितियों की बैठकें होंगी। अतः अन्तरग सदस्य गणों से प्रार्थना है कि नियत समय पर पधार कर कृतार्थ करें।

—चन्द्रदत्त सभा मन्त्री

चम्पारण जिला आ.उ प्र.सभा

प्रधान—श्री जीवणलाल जी मोतीहारी उपप्रधान—श्री रामवृक्षलाल जी बेतिया उपप्रधान—श्री योगन्द्रप्रसाद जी एडवोकेट मोतीहारी। प्रधान मन्त्री—श्री वी० के० शास्त्री रक्सौल, उपमन्त्री-श्री रामनारायण जी मोतीहारी, उपमन्त्री—श्री दीनानाथ जी नरकटियागज, कोषाध्यक्ष—श्री श्रद्धानन्द जी मलाही, निरीक्षक-श्री रामाज्ञा ठाकुर रक्सौल, सस्था निरीक्षक—श्री सत्यनारायणराय मेहसी।

अन्तरङ्ग सदस्य १२। न्याय सभा का भी निर्माण किया गया।



मेरे 'कुल' गुरु का महा-प्रयाण

[ले० श्री स्ना० वेदव्रत जी एम० ए० अमरावती]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित समाचारो द्वारा यह सुनते ही हृदयाघात हुआ, "कि दि० २९ जून, ६५ को प्रात आर्यसमाज के परमप्राण पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती महाराज का निर्वाण हृदयगति अवरुद्ध होने से हो गया।"

मैं लखनऊ मे बैठा पू० स्वामी जी के दर्शनो की महती उत्कठा में चातकवत् तृषित नयनो से बाट जोह रहा था, कि कब पू० स्वामी जी कानपुर पधारें और मैं श्री चरणो की धूल से स्वय को कृतार्थ कर मार्ग-दर्शन प्राप्त करूँ। अब तो परम पूज्य स्वामी जी के श्री चरणो में रहकर जो कुछ भी प्राप्त हुआ था, उसी के दृश्य चित्र पट के समान स्मृति-पट पर उमडते रहते है।

पूज्य स्वामी जी महाराज सन्यास दीक्षा से पूर्व आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान होने के कारण पदेन गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के 'कुलपति' भी थे, प्रति वर्ष 'कुल' के वार्षिक महोत्सव पर पधारते ही थे परन्तु दो शब्द निवेदन का अवसर प्राप्त करना बडा ही कठिन होता था। मै तथा स्व० ठा० इन्द्र वर्मा जी (न्हौटी अलीगढ निवासी) के सुपुत्र स्ना० सुरेन्द्रपाल सिंह जी, जो कि मेरे सहपाठी थे, दोनों मिलकर स्वामी जी के चरणो तक पहुचने के लिए पहले कु० सुखलाल जी 'आर्यमुसाफिर' (जो कि 'सुरेन्द्र' के फूफा जी भी हैं) के पास उपदेश ग्रहण करने जा पहुचते थे। फिर घन्टो समय शका समाधान में लगता था, परन्तु बहुत देर तक मेरी शकाओ आदि के सुनने से न ऊबते ही थे और न सग-लाभ का लाभ हमे उठने ही देता था। सन् १९४९ ई० में गुरुकुल से स्नातक-दीक्षान्त के पश्चात् सन् १९५५ मे जब स्वामी जी मोरीशस प्रचारार्थ जा रहे थे, मैंने पूज्य स्वामी जी से पत्र द्वारा प्रार्थना की थी कि बम्बई जाते समय केवल दो दिनो के लिए अमरावती (म०प्र०) पधार कर अपने दर्शन व उपदेशो से नगरवासियो को कृत-कृत्य करें। तीसरे ही दिन तार द्वारा स्वामी जी ने मनोकामना पूर्ण करने की सूचना भेज दी तथा तदनुसार पधारे। मैं उस समय आयसमाज का मन्त्री था। पूज्य स्वामी जी ने कुछ अस्वस्थ होते हुए भी अपार जन समारोह मे अपने प्रभावशाली तर्क व प्रमाणो से मराठी भाषियो के अन्त करणो से भी भाव पूर्ण उद्गार निकलवा दिये कि हा केवल आर्य सिद्धान्तो का मार्ग ही मनुष्य को शान्ति, व सफलता का सच्चा मार्ग दर्शा सकता है। यह था उनका चरित्र व पाडित्य।

समय की सूझ, त्वरितवाग्मिता, प्रगाढ पाडित्य और तर्कपूर्ण भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ पू० स्वामी जी का तप पूत चरित्र 'सोने में सुगन्ध' की उक्ति को चरितार्थ करता था।

पू० स्वामी जी के विछोह से मन के बाध अधीर हो रहे हैं, कि वे फिर न आयेगे।

पू० गुरुकुल के श्री चरणो मे श्रद्धाजलि अर्पित है।

—आर्यसमाज के विभिन्न क्षेत्रों मे अनेक प्रकार से उन्होंने जो सेवायें की हैं, वे सदा स्मरणीय रहेंगी। उनके निधन से आर्यसमाज को अवर्णनीय क्षति हुई है। आर्यजगत् मे उनके निधन पर जो शोक मनाया जा रहा है, गुरुकुल कांगडी उसमे सम्मिलित है। —प्रियव्रत वेदवाचस्पति आचार्य गुरुकुल कागड़ी

स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती जी की अन्तिम क्रिया का दृश्य

मृत्यु की परिस्थितियां औरमृत्यु के पश्चात्

(ले०—श्री आचार्य विश्वश्रवा व्यास एम० ए० वेदसाहित्याचार्य देहली)

सार्वदेशिक सभा के कार्यालय मे

जिस दिन श्री स्वामी जी की मृत्यु हुई मै सार्वदेशिक सभा के कार्यालय मे पहुचा तो वहा ला० रामगोपाल जी शालवाले तथा आचार्य श्री वैद्यनाथ जी बैठे सोच रहे थे। लोग आते-जाते थे। हम लोगो का सारा दिन देश देशान्तर मे ट्रककाल करने मे और रेडियो द्वारा यह दु खद समाचार प्रसारित कराने मे बीता था। साथ ही निरन्तर बम्बई से फोन मिलाते रहना पडा कि स्वामी जी महाराज का शव सेठ प्रताप भाई की कोठी कच्छ कैसल से महर्षि द्वारा सस्थापित आर्यसमाज काकडबाडी बम्बई मे पहुच गया है, दर्शकों की भीड लगी है। पहिले वायुयान द्वारा शव लाने का प्रयास किया गया, पर मौसम के खराब होने से प्रबन्ध न हो सका, अन्तिम सूचना यह मिली कि फ्र टियर मेल से स्वामी जी महाराज का शव आज २९ जून सायकाल ७॥ बजे चलेगा और ३० जून सायकाल नई देहली स्टेशन पर पहुचेगा।

सेठ प्रताप भाई ३० जून प्रातः ही वायुयान से देहली पहुंचे

सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री सेठ प्रतापसिंह जी शूर जी वल्लभदास ३०जून को प्रात ही बम्बई से देहली सार्वदेशिक सभा के कार्यालय मे पहुचे। सेठ जी के घर पर उन्हीं की गोद मे स्वामी जी महाराज के प्राण निकले थे। हम लोग सेठ जी से स्वामी जी महाराज का अन्तिम दृश्य सुनना चाहते थे। सेठ जी का गला रुका हुआ था बोल नहीं सके, केवल अश्रुधारा उनकी बह रही थी। केवल जल पीकर बिना कुछ खाये सेठ जी सारा दिन सभा कार्यालय मे बैठे रहे। कुछ देर मे सभलकर सेठजी ने सुनाया,कि—स्वामी जी कल २९ जून को प्रातकाल वायुयान द्वारा देहली को आने को थे। प्रात जब पौने ६ बजने को हुए स्वामी जी मुझसे बोले कि प्रताप ! अब समय हो गया कपडे पहिनो और चलो मैं तैयार हो गया हू। लिफ्ट के नीचे कार मगवाई और हवाई अड्डे पर चलने को जब मैं तैयार होकर आया और स्वामी जी को कहा कि कार आ गई है। स्वामी जी बोले कि प्रताप कुछ तबियत घबडा रही है, पता नही क्या कारण है। फौरन डाक्टर बुलाया गया। डाक्टर ने दवा दी और कहा कि आपकी स्थिति ठीक नही है आप जाने का विचार छोड दे। स्वामी जी ने कहा कि मुझे देहली पहुचकर कानपुर सावदेशिक सभा के अधिवेशन मे जाना है, वहा आर्यसमाज की एक विकट स्थिति है, उसको सावदेशिक के अधिवेशन मे ठीक करना है। स्वामी जी को सबने ही मना किया यहा तक कि मातुश्री ने भी प्रार्थना की पर स्वामी जी ने अपना विचार नही बदला। बोले कुछ विश्राम कर लू। तब चलूगा, हवाई जहाज का समय छूटने का ७ बजे है। यह कहकर स्वामी जी नीचे बिछे कालीन पर लेट गये। फिर उठने का यत्न किया कि चप्पल पहनू और चलू सेठ जी ने रोते हुए बताया कि मी जी उठे और मेरे हाथो [illegible] निकला और प्राण निकल गये। सारा घर रो पडा और हाहाकार मच गया।

नई दिल्ली स्टेशन पर स्वामी जी के शव का आगमन

३० जून सायकाल नई दिल्ली स्टेशन पर फ्र टियर मेल द्वारा स्वामी जी का शव एक पूरे डिब्बे मे पहुचा। हजारो की सख्या मे नर-नारी सार्वदेशिक सभा तथा

दिल्ली के आर्यसमाजो के लोग तथा अन्य गण्य मान्य व्यक्ति नई दिल्ली स्टेशन पर मौन मुद्रा मे एकत्र होगये। [फ्रंटियर मेल स्टेशन पर पहुचा। जिस डिब्बे मे स्वामी] जी का शव था, उसके दोनो ओर ओ३म् के झण्डे लगे थे। भीड उधर दौडी। सेठ प्रताप भाई के हाथ मे उस डिब्बे की चाभी थी, सेठ जी ने उस डिब्बे का ताला स्वय खोला। स्वामी जी का शव एक लकडी की पेटी मे था उसको उठाकर स्टेशन से बाहर लाकर एम्बुलेस कार मे रखा गया। ला० रामगोपाल जी और मैं उसमे शव को लेकर बैठ गये शेष जनता अपनी कारो से कुछ अन्य यानों से सावदेशिक सभा की ओर चल पडी। सब मौन-मुद्रा मे ही थे।

सार्वदेशिक सभा कार्यालय पर स्वामी जी का शव पहुंचा

सार्वदेशिक सभा के कार्यालय के सामने रामलीला मैदान मे शामियाना कनात आदि लगाकर एक पटगृह बनाया गया वहा तखत पर स्वामी जी का शव जो एक लकडी की पेटी मे था, रखा गया और स्वामी जी का विदेश मे खेंचा गया एक सुन्दर फोटो वहा लगा दिया गया। सारी रात सब जागते रहे और लोग आते जाते रहे। प्रात काल ६ बजे स्वामी जी का शव खोला गया उस दिन १ जुलाई थी और ४८ घण्टे स्वर्गवास को हुए हो चुके थे। ओ३म् के झण्डो से स्वामी जी को ढांका गया मुह खुला छोड दिया गया जिससे लोग अंतिम दर्शन कर सके। प्रात काल से ही भीड जमा होनी प्रारम्भ हो गई। १ जुलाई प्रात ८ बजे शव यात्रा प्रारम्भ हुई। एक ट्रक पर स्वामी जी की अर्थी रखी गई मुह खुला हुआ था। ट्रक पर बा० कालीचरण जी आर्य वर्तमान स्वामी अखिलानन्द जी के पुत्र और मैं तथा आर्यवीर दल के एक सेनानी तथा एक अन्य आर्य महानुभाव अर्थी के चारो कोनों पर रहे।

शव यात्रा

जब यह शवयात्रा चली सब नर-नारी गायत्री मन्त्र का उच्चारण कर रहे थे हजारो की संख्या मे नर-नारी शव के साथ थे। मार्ग में छत्तो से भक्त लोग फूलो की वर्षा कर रहे थे। जिधर से शव जाता था लोग फूलों की मालाए भेंट करते थे हमारे आर्यवीर दल के सैनानी उन हारो को लेकर शव पर चढ़ाते जाते थे और जब हार बहुत जमा हो जाते थे और स्वामी जी ढक जाते थे तब हार हटा दिये जाते थे और फिर हारो का ढेर लग जाता था। रामलीला मैदान से अजमेरी गेट चावडी बाजार चादनी चौक लालकिला होता हुआ निगम बोध घाट को यह शव जा रहा था। चित्रकार जगह जगह पर फोटो ले रहे थे। मार्ग मे जो भी आर्यसमाज पडी आर्यसमाज नया बास आदि ने स्वागत किया।- आगे चलकर आर्यसमाज दीवान हाल पर वह शव कुछ देर रुका। मार्ग मे जगह-जगह शव यात्रियो को जल से स्वागत किया गया। और अन्त मे स्वामी जी के शव को लेकर हम लोग निगम बोध घाट यमुना निकूल पर ९॥ बजे पहुच गये। इस शव यात्रा मे दिल्ली के आर्यसमाजो पुरोहित वर्ग तथा सन्यासी मण्डल भी अच्छी सख्या मे था जिनकी पूरी सूची सार्वदेशिक पत्र में प्रकाशित होगी। महात्मा आनन्द स्वामी जी महात्मा आनन्द भिक्षु जी स्वामी आत्मानन्द तीर्थ आदि तथा डी० डी० राम पटना, वीरेन्द्र जी मालिक प्रताप आदि सब प्रान्तो के लोग प्रात काल शव यात्रा मे सम्मिलित होने लिए देहली पहुच चुके थे। यह अखिल भारतीय शैली पर शवयात्र थी।

अन्त्येष्ठि क्रिया

निगम बोध घाट पर रेलवे आफिसर लोग एस० एन० सक्सेना डी० एस० आदि भी पहुच गये। उन्होने दिल्ली के स्टेशनो पर लाउड स्पीकर द्वारा ९॥ बजे से यह घोषणा कराई कि स्वामी जी महाराज का शव यमुना पर पहुच चुका है। बाहर से आने वाले लोग सार्वदेशिक सभा न पहुचे प्रत्युत सीधे यमुना तट पर पहुचें। ९॥ बजे से ११॥ बजे तक हम लोग शव को लिए निगम बोध घाट पर प्रतीक्षा करते रहे रेलो से उतरने वाले स्वामी जी के भक्त निगम बोध घाट पर सीधे पहुच रहे थे। अन्त्येष्टि क्रिया के लिये एक मन शुद्ध देशी घी, दो मन सामग्री, एक मन चन्दन तथा अन्य सामान एकत्र था। स्वामी ध्रुवानन्द जी के आश्रम हरदुआगंज से स्वामी हरिहरानन्द जी २९ जून को ही देहली एक पीपा घी लेकर पहुच गये [थे तथा उन्होने और १००] रुपयो का

सामान घी के अतिरिक्त मगाया ।

स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती जी महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया निगम बोध घाट पर किस स्थान पर की जावे वह स्थान सेठ प्रतापभाई जी तथा आचार्य वैद्यनाथ जी के साथ मैं एक दिन पूर्व ही श्मशान घाट पर जाकर निश्चित कर आया था । बरेली नगर का श्मशान घाट भारत मे एक प्रसिद्ध स्थान है वहा महात्मा नारायणस्वामी जी की अन्त्येष्टि क्रिया होने पर उस स्थान पर पूर्ण वैदिक रीति से एक विशेष ढग की अन्त्येष्टि वेदि हमने बनाई है । देहली के श्मशान घाट पर साधारण वेदी है उस पर हमारा विचार बरेली जैसी वेदी बनाने का है ।

१ जुलाई ११॥ बजे दिन के निगम बोध घाट पर दाह क्रिया प्रारम्भ हुई । प्रश्न यह था कि अग्नि कौन लगावे । स्वामी जी महाराज अन्तर्राष्ट्रिय व्यक्ति थे अत सार्वदेशिक सभा के सेठ प्रताप भाई जी निश्चित किये गये उसके कई कारण थे । प्रथम तो यह कि वे सार्वदेशिक सभा के प्रधान है । दूसरे उनके घर पर स्वामी जी का नश्वर शरीर छूटा तथा तीसरा कारण यह था स्वामी जी महाराज सेठ जी के पिता जी शूर जी वल्लभदास के गुरु थे । स्वामी जी के सामने प्रताप भाई पैदा हुए बचपन से पले और स्वामी जी ने ही प्रतापभाई का यज्ञोपवीत सस्कार कराया प्रताप भाई स्वामी जी के पुत्रवत् थे और प्रताप भाई की गोद मे ही स्वामी जी का स्वर्गवास हुआ । अत प्रताप भाई ने एक बडे स्रुवा मे कपूर जलाकर महात्मा आनन्द स्वामी जी के सहयोग से अग्नि दाह प्रारम्भ किया । स्वामी जी का शव चन्दन की समिधाओ तथा अन्य समिधाओ मे रखा हुआ था । अन्तिम समय स्वामी जी का मुह खुला रखा था मुह पर मैने रूमाल डाल दिया था । बार बार दर्शक दर्शन करना चाहते थे जो भी नया दर्शक पहुचता था मुह खोलकर दर्शन कराये जाते थे । श्मशान घाट पर दिल्ली के आर्य स्त्री समाजो की भी बहुत भीड थी । मनो पुष्पमालाओ से ढके स्वामी जी के शव को यमुना जल से सीचा गया था । लगभग पचास् आर्य विद्वान् मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे । सन्यासियो की बहुत बडी भीड थी । आर्य महिलाए अग्नि की लपटो की परवाह न करके श्रद्धावेश मे सामग्री की आहुतिया दे रही थी । श्री आचार्य वैद्यनाथ जी मन्त्रोच्चारण की व्यवस्था कर रहे थे और मैं तो शव और सामग्री की व्यवस्था मे लगा था । चारो ओर से आर्य विद्वान् मन्त्रध्वनि कर रहे थे । कुछ देर मे देखा कि स्वामी जी का नश्वर शरीर भी अग्नि की लपटो मे मिलकर पचतत्वो मे मिल गया । अब वह मधुर चेहरा, आर्यसमाज की चिन्ता मे ही गम्भीर मुद्रा वाला बालब्रह्मचारी का मुख, ऋषि की भक्ति मे तडपने वाला देह, विद्या का सूर्य गुरुजनो की भक्ति वाला मेरा ४० वर्ष का साथी इस ससार मे अब देखने को भी नही मिल सकता । मेरी दृष्टि मे यह आर्यसमाज के सच्चे नेताओ का अतिम पटाक्षेप है । अन्त मे आनन्दभिक्षु जी ने प्रार्थना कराई । सब कानपुर गये । जो रह गये उन्होने अस्थि सचय करके यमुना के अर्पण किया । किसी का कहा न माना कानपुर जाऊ गा की रट रही । जाओ अब तो आत्मा ब्रह्म मे विश्राम करेगा और अस्थिया यमुना मे । प्रभु का कहा ही माना ।

मृत्यु की परिस्थितियां

मित्र ! तुम क्यो मरे, किस चिन्ता मे हार्टफेल हुआ, न तुम्हारा कोई परिवार था और न घर । मेरे साथी ! तुम्हे किस बात की चिन्ता थी क्या दुख था । आवाज आई कि आर्यसमाज की दो विचारधाराओ की टक्कर मे मेरी मृत्यु हुई ।

१—एक विचारधारा यह है कि—

(क) सार्वदेशिक सभा किसी एक नगर या एक देश की सस्था नही है । इसके अधिवेशन केवल देहली मे न होकर सर्वत्र हो । आर्यसमाज का सार्वदेशिक गौरव बढे ।

(ख) नीचे से ऊपर तक आर्यसमाज मे अनुशासन रहे । आर्यसमाजें प्रान्तीय सभाओ के शासन मे रहे और प्रान्तीय सभाए सार्वदेशिक सभा के पूर्ण नियन्त्रण और अनुशासन मे रहे इससे मेरे आर्यसमाज का गौरव रहेगा ।

(ग) किसी भी प्रान्त का सार्वदेशिक मे अकेला इतना बहुमत नही हो जाना चाहिए कि एक ही प्रान्त सार्वदेशिक का मालिक बनकर बैठ जावे ।

हे आर्य जगत् के मूर्धन्य सन्यासी ! क्या इसके प्रतिकूल भी कोई विचारधारा है ?

हा है।

वह क्या है।

सुनो हे आर्यसमाज के भावी कर्णधारो ! एक दूसरी विचारधारा का जन्म हुआ है वह यह है कि—

(क) सार्वदेशिक सभा का अधिवेशन देहली से बाहर न हो।

(ख) प्रान्तीय सभाओ पर सार्वदेशिक सभा का अधिकार नही है, प्रान्तीय सभाए स्वतन्त्र है। सार्वदेशिक सभा एक फेडरेशन है मिलकर बैठ गये। न बैठे। हम अलग हैं प्रत्येक प्रान्त स्वतन्त्र है।

(ग) यदि हमारी प्रान्तीय सभा बडी है तो हमारे लोग अधिक से अधिक सख्या मे सार्वदेशिक मे रहेगे और प्रातो के चाहे थोडे रहे।

ओ भावी कणधारो ! मैं तो चल बसा। यदि अगला जन्म हुआ तो फिर आर्यसमाज की सेवा करूँगा और कोई इच्छा नही है। आर्यसमाज के परम तपस्वी वीतराग मेरे गुरु पूज्यवर स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने मुझे आर्यसमाज के लिये बनाया। मैंने अपने शरीर के एक एक रोम से आर्यसमाज को बनाया प्रत्येक श्वास आर्यसमाज के लिए लिया। आयसमाज के लिए श्वास छोडा। मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी मृत्यु का आह्वान किया पर आयसमाज के सगठन का काम नही छोडा।

हे मरे उत्तराधिकारियो !

अपना गौरव मत सोचो। आयसमाज के गौरव को अपना गौरव समझो। आर्यसमाज की प्रतिष्ठा मे अपनी प्रतिष्ठा समझो। मैं चला गया और तुम भी एक दिन चले जाओगे पर मेरा यह आर्यसमाज रहेगा। इसके सगठन को यदि दृढ रखना चाहते हो तो नीचे से ऊपर तक अनुशासन मे रहो।

(क) आर्यसमाजे प्रान्तीय सभाओ के अनुशासन मे रहे।

(ख) प्रान्तीय सभाए सार्वदेशिक के अनुशासन मे रहे।

(ग) आर्यसमाज को सार्वदेशिक बनाओ।

(घ) और सब प्रान्तो का ध्यान रखो केवल अपना नही।

यदि ऐसा करोगे आर्यसमाज सुदृढ़ रहेगा। प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, मैं तो अपनी निभाकर चला।

स्वावलम्बी स्वामी जी

श्री पूज्य स्वामी जी महाराज से मेरा बडा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। स्वामी जी आर्यसमाज के सिद्धान्तो के विशेष मर्मज्ञ थे। स्वामी जी के अन्दर अद्भुत प्रतिभायें थी। कई विशेष गुण श्री स्वामी सर्वदानन्द जी के आपके अन्दर विद्यमान थे। आपके अन्दर एक अद्भुत नेतृत्व शक्ति थी। एक विशेषता यह थी कि जब कभी कुछ विरोधी भी विरोधात्मक भावना लेकर आपके समक्ष जाते थे, तो आप अपने बातचीत के ढग से उनकी विरोधी भावनाओ को समाप्त कर देते थे। स्वामी जी कितने स्वावलम्बी थे, इसका केवल एक दृष्टान्त आपके सामने रखता हू।

सन् १९४४ की बात है, जबकि मैं रावलपिण्डी मे था श्री स्वामी जी महाराज (उस समय श्री प० धुरेन्द्र शास्त्री) को आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के लिये आमन्त्रित किया गया। आप पधारे, सफर के कपडे कुछ मैले हो गये थे, सब कपडे इकट्ठे करके स्नानागार मे धोने के लिए चल पडे। मैंने कहा शास्त्री जी आप इन्हे रख देवें इनके धोने की व्यवस्था हम कर देगे। उन्होने कितना सुन्दर उत्तर दिया—

विद्याभास्कर जी ! यह तो मेरा अपना काम है, मनुष्य को अपना कार्य अपने हाथ से ही करना चाहिए। कितना स्वावलम्बन तथा सरलता थी उनकी इस बात मे।

आर्य-जगत् की एक बहुत बडी शक्ति सदा के लिए चली गई ! न जाने कहाँ इस महती क्षति को कौन पूरा करेगा भगवान् जाने।

—विद्याभास्कर शास्त्री
मन्त्री आर्य समाज देहरादून

पूज्यपाद स्वामी—

ध्रुवानंद जी सरस्वती

पूज्यपाद स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती आर्यजगत् के एक महान् विद्वान्, नेता तथा महोपदेशक थे ।

आपका कार्यक्षेत्र विशेषत बिहार प्रान्त रहा । आप ने बिहार मे तूफानी दौरा करके वैदिक सन्देश को पहुचाया । वाराणसी के शास्त्रार्थ महारथी प० जे० पी० चौधरी जी काव्यतीथ आपके परममित्रो मे है । दरभगा जिले के 'नाजिरपुर' मे पौराणिक पण्डितो के साथ आपने व चौधरी जी ने 'वर्ण व्यवस्था' पर शास्त्रार्थ किया । आपकी विद्वता व पाण्डित्य के कारण पौराणिक पण्डितो का घोर पराजय हुआ ।

सवप्रथम आपके व्याख्यान सुनने व दर्शन करने का सौभाग्य मुझे लाहौर मे 'श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा' पजाब के महोत्सव मे हुआ था । उनकी भाषण-शैली रोचक व हृदय मे पैठने वाली होती थी ।

—शिव पूजनसिह कुशवाहा, एन ए सिद्धान्तवाचस्पति कानपुर

श्रद्धा के दो सुमन

२९ जून विधाता का क्रूर व्यग्य, आर्यजगत् के लिए एक आकस्मिक कुठाराघात कर गया । हम देखते ही रह गये और हमारा प्रिय कमठ नेता हमे रोता बिलखता छोड चला गया ' आज जबकि आयसमाज एक चौराहे पर खडा है । राष्ट्र पर सकट छाया हुआ है, हिन्दी भाषा के ऊपर कुठाराघात हो रहा है, हमारा पथ प्रदर्शक हम से बिछुड गया । ऐसे महापुरुष के लिए आज आयजगत् ही नहीं समूची मानव शक्ति बिलख रही है । यद्यपि आज वे हमारे बीच नहीं हैं, पर उनके विचार उनकी निष्ठा सर्वव मानवमात्र का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी । देश के महान् सपूत आर्यजगत के कर्मठ नेता पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी को मै अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करती हुई ईश्वर से यही प्रार्थना करती हू कि उनकी दिवगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे । —प्रमीला आर्य एम०ए० हाथरस

स्व. स्वा ध्रुवानन्दजी महाराज

स्वर्गीय स्वामी जी जब प धुरेन्द्र शास्त्री जो थे, उस समय मेरी सवप्रथम भेट १९२३ मे स्व० राजा अवधेश सिह जी की कोठी नगर प्रतापगढ (अवध) मे हुई थी । प्रात काल नित्यकर्म से निवृत्त होकर वे मुझसे भी मिले । तत्पश्चात् कही न कही उत्सवो, सम्मेलनो आदि अवसरो पर प्राय उनके दर्शन होते रहे । कटरा समाज के उत्सव पर भी आया करते थे । एक वर्ष तो पूज्यपाद वीतराग स्वा० सवदानन्द जी महाराज को समाज के वार्षिकोत्सव म ले आए । मै उनके निमन्त्रण पर हरदुआ गज भी कई बार गया ।

स्नेहवश परिवार मे भी उनका प्रवेश हो गया । मेरे सम्मिलित परिवार मे लघु भ्राता के पुत्रो पुत्रियो एव धेवती के कई सस्कार आपने कराये । विद्यावती एम ए का यज्ञोपवीत सस्कार १९३५ मे, इनकी पुत्री का यज्ञोपवीत सस्कार १९६२ मे इनके नव-निर्मित गृह प्रवेश मेरठ मे पूज्य स्वामी जी ने ही कराए । इनके या छोटे भ्राताओ के यज्ञोपवीत सस्कार १९५१ मे कराए । इनकी छोटी बहिन का यज्ञोपवीत एव विवाह - सस्कार १९६२ मे कराए । विद्यावती आश्रम को वार्षिक आर्थिक सहायता भी भेजा करती है ।

मै उनके सन्यासाश्रम सस्कार मे उपस्थित न हो सका, उनको बडा दुख हुआ था, मुझे तो हुआ ही ।

विदेशी यात्राओ मे जब कही वह जाते थे, मुझ से पत्र-व्यवहार बराबर होता रहा । हर पत्रोत्तर मै वह यह अवश्य लिखते थे कि आपका पत्र तो एक समाचार पत्र होता है जिसके द्वारा अत्यधिक समाचारो से वे अवगत होते थे ।

प्रयाग होकर जब भी वह यात्रा करते तो रात्रि मे गौ का दूध अवश्य पान करते थे ।

१-७ १९६५ को निगमबोध घाट दिल्ली मे उनके अन्त्येष्ठि सस्कार में भी मै उपस्थित था ।

हा स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज ! की आत्मा को धन्य है, वृन्दावन की भूमि जिसने ऐसा समाज सेवक, अनथक कायकर्त्ता जाति व देश की सेवा मे दिया ।

—मातागुलाम, उपप्रधान कटरा प्रयाग

(पृष्ठ १६ का शेष)
न्याय पढ़ कर काशी चले गये। वहां दर्शनों का अध्ययन किया।

१९२३ मे अखिल भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा की ओर से तहसील माठ मे उन्होंने शुद्धि कार्य के अध्यक्ष के रूप मे काम किया। वह कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार-बगाल द्वारा सचालित गुरुकुल वैद्यनाथ धाम मे १९२६ से १९२८ तक आचार्य पद पर रहकर शिक्षण कार्य किया। शाहपुराधीश ने इनकी कर्मठता और कार्य कुशलता की प्रशसा सुनकर श्रीयुत युवराज सुदर्शनदेव जी को धर्म शिक्षा पढ़ाने के कार्य पर नियुक्त करके शाहपुरा बुला लिया। राजाधिराज उम्मेदसिंह जी पर इनके आचार-विचार का इतना प्रभाव पड़ा कि एक विशेष दरबार मे इन्हे राजगुरु की उपाधि से अलकृत किया। इससे पूर्व उन्होंने स्व० श्रीयुत राजा अवधेश सिंह जी कालाकांकर नरेश को वैदिक धर्म की दीक्षा दी और उन्हे आर्यसमाज का भक्त बनाया, नजरगज पूर्निया, बिजुआ, झालावाड और देवास जूनियर आदि नरेशों को भी उन्होंने आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया।

सन १९३९ मे हैदराबाद आर्य सत्याग्रह मे श्री राजगुरु जी ने चतुर्थ सर्वाधिकारी के रूप मे १५०० सत्याग्रहियो के साथ सत्याग्रह किया और सत्याग्रह की समाप्ति तक जेल मे रहे। इस अवसर पर सारे उत्तर प्रदेश का भ्रमण करके विपुल धन राशि सत्याग्रह के कोष मे जमा कराई। अब वह जेल में थे तभी उत्तर-प्रदेश के आर्यसमाजों ने उनकी मूल्यवान् सेवाओ के आदरस्वरूप उन्हें सर्व सम्मति से आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का प्रधान निर्वाचित किया। जेल से छूट कर आने पर १९४० में भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के इन्दौर सम्मेलन की अध्यक्षता की। इनके पद काल मे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश ने भारी उन्नति की।

अब सिंध की मुस्लिम लीगी गवर्नमेंट ने सत्यार्थ-प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाकर आर्यसमाज को चुनौती दी और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने उस चुनौती को स्वीकार कर सत्याग्रह का निश्चय करके स्व० महात्मा नारायणस्वामी जी को उसके सचालन का पूर्ण अधिकार दे दिया तो श्री स्वामी जी अपने साथ जिन तीन महानुभावों को लेकर कराची में बैठे थे उनमे से एक श्री राजगुरु जी थे।

महात्मा नारायणस्वामी जी ने सिन्ध सत्याग्रह का प्रथम सर्वाधिकारी इन्हें ही मनोनीत किया और इन्होंने जान पर खेलने वाले परखे हुए सत्याग्रहियो के साथ कैमारी (कराची) नगर की सडकों गलियों इत्यादि में सत्यार्थ प्रकाश का प्रवचन किया, उस पर भाषण दिये और यह ग्रन्थ बिकवाया। सिन्ध सरकार ने इन कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाया हुआ था। इन्होने ५-६ दिन ऐसा किया। सत्यार्थ प्रकाश की नीलामी कराई। एक सज्जन ने १ प्रति २५०) मे क्रय कर ली थी। सत्याग्रह के प्रवचन बिक्री आदि कराने का सिन्ध की गवनमेंट को नियमित नोटिस दिया परन्तु उक्त गवर्नमेंट ने कोई कार्यवाही न की, तब सत्याग्रह बन्द कर दिया गया।

लगभग ८ वर्ष तक आप सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे। इस काल मे उन्होने सभा की आर्थिक स्थिति बहुत दृढ़ की और आर्य जगत् मे उसके नेतृत्व को बहुत प्रशस्त किया।

१९५५ में सन्यास लिया और श्री धुरेन्द्र शास्त्री से स्वामी ध्रुवानन्द जी बन गये। उनके सन्यास प्रवेश का समारोह जो साधु आश्रम मे हुआ था, वह देखने योग्य था। इस समारोह में स्वामी जी के सैकड़ों बड़े-बड़े भक्तों के अतिरिक्त आर्यसमाज के विद्वान् नेता, राज्य के उच्च कर्मचारी और राज्यों के मन्त्री भी सम्मिलित हुए।

१९५६ के जुलाई मास में श्री स्वामी जी वैदिक धर्म के सन्देश के प्रसार और व्यवस्था करने के महान् कार्य पर विदेश गये। वहां वे अपने कार्य में पूर्ण सफल हुए और १२ अप्रैल १९६१ को भारत लौटे। सार्वदेशिक सभा की प्रार्थना पर आर्य सभा मौरीशस की सुव्यवस्था तथा उसको हर प्रकार से उन्नत और दृढ़ करने का जो कार्य निरन्तर ३॥ वर्ष वहां बैठकर और विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त करके किया वह ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। मौरीशस के अतिरिक्त श्री स्वामी जी ने पूर्वी अफ्रीका के केनिया, युगाण्डा, टांगानिका, जजीबार चारों भागों में दक्षिण रोडेशिया और मेडागास्कर, थाईलैण्ड

एक संस्मरण

(ले०—श्री महेशचन्द्र आर्य पिलखुआ)

१५ वर्ष पहले की बात है कि मैं फरीदनगर जिला मेरठ में आर्यसमाज का मन्त्री था मेरी प्रार्थना पर श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री पुत्र के नामकरण सस्कार पर फरीदनगर पधारे। मैंने सस्कार में गुरु जी को ५१) दक्षिणा के लिये दिये तो गुरु जी बोले तुम आर्यसमाज का प्रचार बन्द करना चाहते हो ? मैंने हाथ जोडकर पूछा—कैसे तो आपने बताया कि तुमने सैकडो आदमी कस्बे के इकट्ठे किये, हलुवे आदि का प्रबन्ध किया ५१) दक्षिणा के दे रहे हो ? इसका प्रभाव जनता पर यह पडेगा कि आर्यसमाज की रीति से सस्कार कराने मे तो सैकडो रुपया खर्च होते हैं और कोई सस्कार कराता हुआ भी नही करायेगा। अच्छा तुम मुझको २) दक्षिणा मे दे दो और फिर जितने पण्डित सस्कार मे है दो-दो रुपये इनको भी दो और फिर कहा कि अच्छा होता तुम कम से कम खर्च करते।

(२) हमने उनको टिकाने के लिये एक मुसलमान भाई की बैठक माग ली और उसको खूब साफ की और तमाम तसवीरें आदि हटा दी थी। जब गुरु जी को उसमें ठहराया ५ मिनट के बाद ही बोले क्या तुम्हारे मकान में मेरे ठहरने के लिये स्थान नही था ? तुमने मुसलमान के मकान में क्यों ठहराया एक घण्टे के अन्तर मेरा प्रबन्ध दूसरी जगह कर दो मुझको तुम्हारा मकान छोटा टूटा-फूटा ही अच्छा है। हमने फौरन ही अपने मकान में प्रबन्ध कर दिया।

अगले दिन जब हम लोग इकट्ठे होकर शास्त्री जी के पास गये और कुछ उपदेश की प्रार्थना की तो आपने कहा—आजकल हर आर्यसमाजी को फिकर समाज सुधार की है, मानो कि समाज सुधार का ठेकेदार आर्यसमाजी ही हो। (तुम लोग) देव दयानन्द के नियमो को भी नही पढते हो। स्वामी जी ने लिखा है शारीरिक आत्मिक-सामाजिक उन्नति करना। तो आर्यसमाजी न शरीर को शक्तिवान बनाते न आत्मा को बलवान, और लगे समाज को सुधारने की बात करते हैं जो आदमी अपनी उन्नति (शारीरिक व आत्मिक) नही कर सकता वह आदमी समाज की उन्नति भी नही कर सकता। यही कारण है कि आज के समाजी समाज पर प्रभाव नही पडता सो तुम लोग पहले अपने शरीर व आत्मा को बलवान बनाओ, समाज को बाद मे।

(३) स्वामी जी की आयु उस समय ६० वर्ष से भी ऊपर थी फिर भी नियम के साथ व्यायाम करते थे फरीदनगर भी उन्होने इतना व्यायाम किया कि हम जवान होते भी इतना नही कर सकते थे।

(४) ४-५ मास के पश्चात् हम तीन चार समाजी गुरु जी के दर्शन करने दिल्ली गये, उस समय हमारी समाज का एक प्रभावशाली नौजवान सभासद बिजली से मर चुका था, जब गुरु जी ने उसका समाचार सुना तो बोले—"ऐसा ही होना था।"

गुरु जी को ईश्वर मे अटूट प्रेम व श्रद्धा थी।



आदि में भी खूब सफल प्रचार कार्य किया। स्वामी जी की आर्यसमाज और सार्वदेशिक सभा के प्रति की गई मूल्यवान सेवाओ के आदर स्वरूप आर्यसमाज ने उन्हें सार्वदेशिक सभा की स्वर्ण जयन्ती महोत्सव और नवम आर्य महासम्मेलन का प्रधान चुनकर अपने एक बडे कर्तव्य का पालन किया था।

श्री स्वामी जी महर्षि दयानन्द के तपस्वी भिक्षु थे। उनकी विशद् कीर्ति सदैव कायम रहेगी।

उनके निधन से आर्यसमाज की जो क्षति हुई है उस की पूर्ति होनी सम्भव नहीं है। परमात्मा दिवगत आत्मा गकीसद्गो प्रदान करे।



स्वा. ध्रुवानन्द के प्रति श्रद्धांजलि

पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज के अन्तिम दर्शन मेरठ अधिवेशन मे जब २८-२९ मई ६५ मे हुए— चरण स्पर्श करने पर उन्होने कृपापूर्ण अपना शुभाशीर्वाद दिया।

भरथना मे कई बार पधारे परन्तु अन्तिम बार वे हैदराबाद सत्याग्रह से विजयी होकर सन् १९४० मे पधारे। भरथना समाज ने उनका धूम-धाम से हार्दिक स्वागत किया और जलूस निकाला। उन्होने जब हैदराबाद आर्य सत्याग्रह की सफलता, जेल यातनाओ के रोमाचकारी बलिदानो का वर्णन सुनाया तो सारी जनता द्रवीभूत हो गई। वे तप, त्याग, साहस, वीरता, सयम, सत्यता और निर्भयता की साक्षात मूर्ति थे। वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे और अपने उपरोक्त सद्गुणो से उन्होने आर्यसमाज मे उच्च से उच्च पद, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान पदो को ही नही प्राप्त किया किन्तु परिव्राजक रूप मे अफ्रीका, मारीशस आदि विदेशो मे जाकर भी विश्व-ख्याति प्राप्त की। उन्होने आर्यसमाज का कार्य करते हुए ही बम्बई मे २९-६ ६५ को सद्गति प्राप्त की। सारे आर्य जगत् के लिये उनका जीवन प्रेरणा देने वाला है।

—भगवतदयालु मुख्तार
उपप्रधान, भूतपूर्व अन्तरग सदस्य आ प्र सभा लखनऊ

आर्यमित्र की उन्नति के लिये—

डा० सूर्यदेव शर्मा स्थिर निधि

अन्तरग सभा दि० ९-५-६३ के निश्चयानुसार

विषय स० २४ श्री प० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० अजमेर का आर्यमित्र सहायतार्थ धन दिये जाने विषयक पत्र विचारार्थ प्रस्तुत होकर श्री शर्मा जी का पत्र पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि दानी सज्जन की निम्न शर्तों के लिये चार सहस्र रुपया दान लेना स्वीकार किया जावे। धन प्राप्त होने पर एफ० डी० मे जमा किया जाए।


डा० सूर्यदेव शर्मा

१—इस निधि का नाम डा० सूर्यदेव स्थिर निधि होगा।

२—इस निधि की धनराशि स्थायी रूप मे सभा में पृथक् जमा होगी।

३—इसके ब्याज से प्रति वर्ष सार्वजनिक सस्थाओं, पुस्तकालयों एव वाचनालयों को आर्यमित्र लागत मूल्य मे दिया जाया करेगा। वर्षान्त मे शेष धन आर्यमित्र की उन्नति मे लगाया जायेगा।

४—वर्ष मे कम से कम दो बार जनवरी, जुलाई मास में इस निधि की सूचना प्रमुख शर्तों के साथ 'आर्यमित्र' में प्रकाशित होगी।

५—सम्मान रूप मे 'आर्यमित्र' सदा दानी सज्जन को भेजा जाया करेगा। जहाँ जहाँ उसकी सूची दानी सज्जन के पास भेजी जाया करेगी।

६—आर्यमित्र का प्रकाशन बन्द हो जाने पर इस निधि का ब्याज वैदिक साहित्य प्रकाशन मे लगाया जावेगा।

—चन्द्रदत्त तिवारी मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ



स्वामी ध्रुवानन्द जी का कर्त्तव्य-पालन

[संस्मरण]

(श्री रामचन्द्र जी एडवोकेट, ऋषिकेश)

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश मे, जब श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने सबसे प्रथम आर्य समाजो का निरीक्षण करना आरम्भ किया था, और इतना श्रम करते थे कि एक-एक दिन मे तीन - चार समाजो का निरीक्षण कर लेते थे। साथ मे वे आसन मे लिपटा हुआ चादर आदि और झोला रखते थे, समाज का निरीक्षण करने के साथ वहा के अधिकारी वर्ग की परीक्षा भी लेते थे। हसमुख और विनोदप्रिय होने के कारण सब कार्य प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न कर लेते थे, खाने-पीने की भी परवाह नही थी। निरीक्षक रूप मे ही प्रथम बार वह दोपहर की गाडी से नगीना पहुचे। किसी को कोई सूचना नही थी, स्टेशन से तागा भी नही लिया, आसन बगल मे दबाकर और झोला हाथ मे लेकर शहर को चल दिये किसी से पूर्व परिचय भी नही था बाजार मे आकर मत्री आ० स० का पता पूछा। मत्री का मकान तो दूर था बाजार मे उपमत्री की दुकान थी, किसी ने उसी का पता बता दिया। आप दुकान के आगे जाकर खडे हो गये और पूछा क्या आप आ० स० के मत्री है ? उन्होने उत्तर दिया कि मैं उपमत्री हू। आप सेवा बतलाइये तब कहा कि मैं निरीक्षण करने सभा से आया हू। उपमत्री जी ने तुरन्त दुकान बन्द करके उनसे कहा कि मदिर मे चलिये वही मत्री जी भी आ जावेंगे। मदिर मे जाकर उनको हाल में विश्राम करने को कहा और भोजन के लिये पूछा। कर्मचारी मत्री जी को बुलाने चला गया। उस समय वह प० धुरेन्द्र शास्त्री थे। भोजन के लिये कह दिया कि भोजन धामपुर कर चुके हैं और वहा का निरीक्षण करके ही यहा आये हैं। मत्री जी के आते ही निरीक्षण कार्य आरम्भ कर दिया। इस बीच मे अन्य अधिकारी भी बुला लिये गये। मैं कचहरी मे था, मेरे पास भी सूचना गई। मैं तीन बजे के लगभग समाज मदिर मे पहुचा तो कार्य समाप्त होने वाला था। निवृत्त होकर मेरी ओर देखा, मैंने पूछा कि सब विभाग देख लिये या कोई शेष है तो मुसकराकर कहा कि जो अधिकारी यहां उपस्थित है, उनको और उनके कार्य को देख लिया। केवल प्रधान की परीक्षा नही ली। मै उनको उठाकर बात करते हुये अपने निवास स्थान पर ले गया और अपने पुत्र से कहा कि कुछ जलपान का प्रबन्ध करो। शास्त्री जी ने तुरन्त रोक दिया और कहा कि मै बार-बार नही खाता हू। अपनी आदत नही बिगाडना। ग्रामो मे भी जाना पड़ता है, वहा जलपान क्या मिलेगा। मैंने निवेदन किया कि शास्त्री जी ग्रामो मे ऐसी वस्तु मिलती है, जो शहर मे उपलब्ध नही। कुछ आग्रह के पश्चात् कहा कि अच्छा बेल का शरबत पिलाओ और केवल बेल का शरबत लिया। इस बीच मे मेरे पुत्र के लिये पूछा क्या वह आपका पुत्र है और बतलाने पर उससे सध्या के मन्त्र सुनने आरम्भ कर दिये और मेरी परीक्षा नही हुई। स्टेशन पर कहने लगे कि आज ही नजीबाबाद समाज को देखना है।

उसके पश्चात् वार्षिक उत्सव पर आये और तीनो दिन मेरे गृह पर भोजन करने की कृपा की।

हैदराबाद सत्याग्रह में जाने से पहिले भी आये ? और चन्दा करके ले गये। उस दफा उनका व्याख्यान शिव मदिर के मैदान मे कराया गया, वहीं दान के लिये अपील पर काफी धन मिला।

हैदराबाद जेल से वापस आकर भी नगीना गये और वहा के हालात सुनाते हुये बताया कि मेरा नाम पुलिस की रिपोट मे राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री लिखा था-जेल वालो ने पूछा आपका नाम राजगुरु पिता का नाम धुरेन्द्र जाति शास्त्री। दक्षिण मे रिवाज इसी प्रकार लिखने का है जैसे महात्मा जी मोहनचन्द करमचन्द गाधी थे। जेल वालो को बतलाया कि वास्तविकता क्या है, दूसरी बात जेल के भोजन की बतलाई कि मक्की की कच्ची रोटी जब नही खाई गई तो टीन के सायवान पर फेंक दी ताकि कोई परन्द ले जावे, किन्तु वही कच्ची रोटी शाम को देखा तो भली प्रकार पक गई थी, वह कहने लगे कि बडी स्वादिष्ट हो गई थी। स्वामी ध्रुवानन्द आ० समाज और वैदिक धर्म के प्रचार मे ही मरते दम तक लगे रहे।



सभा के आगामी वृहद्-धिवेशन के लिये
निमन्त्रण-पत्र भेजिये

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का वार्षिक साधारण अधिवेशन (वृहद्-धिवेशन) कहाँ पर हो, यह विषय सभा के विचाराधीन है। अत प्रदेशीय समस्त आर्यसमाजो को सूचित किया जाता है कि जो आर्यसमाज अपने नगर, मे सभा के वृहदधिवेशन को आमन्त्रित करना स्वीकार करे वह अपने-अपने स्थानीय आर्यसमाज की अन्तरग मे इस विषय को प्रस्तुत कर आर्यसमाज की अन्तरग के प्रस्ताव के साथ निमत्रण-पत्र १५ जनवरी १९६६ तक सभा कार्यालय मे भेजने की कृपा करें।

आगरा जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा की स्थापना

आगरा जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा की स्थापना का उद्घाटन ५ दिसम्बर को आर्य प्रतिनिधि सभा उ प्र के प्रधान श्री मदनमोहन जी वर्मा द्वारा सपन्न किया गया। आगरा आर्यसमाज का मुख्य केन्द्र है। अभी तक जिला सभा का वहा अभाव था इस अभाव की पूर्ति के लिए सयोजक श्री रोशनलाल जी प्रिन्सिपल अन्तरग सदस्य आ० प्र० सभा उ०प्र० का प्रयत्न विशेष रूप से सराहनीय है।

—आर्य समाज देवबन्द का वार्षिक उत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। जिस में आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री आचार्य विश्वश्रवा जी व्यास, प० मस्तलाल जी वैदिक मिशनरी तथा माता प्रभावती जी के प्रवचनों का विशेष प्रभाव रहा।

भजनोपदेशकों में श्री ओमप्रकाशजी रेडियो कलाकार ने सामयिक विषयों तथा स्वामी जी के जीवन सम्बन्धित भजनों से जनता को मन्त्र मुग्ध किया। राष्ट्र रक्षा सम्मेलन मे आर्यसमाज की ओर से राष्ट्ररक्षा कोष के लिए ५११) रु० की घोषणा की गई, जो श्री लाल-बहादुर जी शास्त्री प्रधान मन्त्री भारत सरकार को प्रेषित की गई है। —मन्त्री

शोक समाचार—

—बलिया आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री रामधारी शर्मा का लखनऊ मेडिकल कालेज में गुर्दे के आपरेशन के बाद निधन हो गया। अपके शव को बलिया लाकर वैदिक रीति से अन्त्येष्टि की गई। आप आर्य उपप्रतिनिधि सभा बलिया के प्रधान रह चुके थे और इस क्षेत्र में उन्होंने आर्यसमाज व देश की विशेष सेवा की। बलिया की आर्य जनता ने उनके प्रति शोक श्रद्धांजलियां अर्पित कीं।

—कायमगंज आर्यसमाज ने आ० स० कालवारा के प्रधान श्री ज्वालासिंह के असामयिक निधन पर शोक प्रस्ताव पारित किया। उनका अन्त्येष्टि

संस्कार वैदिक रीति के सम्पन्न किया गया। इस क्षेत्र मे समाज सुधार सम्बन्धी सेवाओ के लिए सदैव स्मरणीय रहेगे। अन्तिम समय मे आप अपने बेवते श्री रघुवीरसिंह ब्लाक प्रमुख सौयरा को आदेश दे गये हैं कि आर्य समाज खलवारा का भवन निर्माण करवा दें।

—बाबूपुरवा कानपुर आर्यसमाज के प्रधान श्री शंकरदत्त के पिता श्री रामशरण दास एडवोकेट देहरादून के आकस्मिक निधन पर आर्यसमाज की ओर से शोक प्रस्ताव पारित किया गया और दिवगत आत्मा की सद्गति के लिये प्रार्थना की गई।

आ०स० रम्पुरा का वार्षिकोत्सव सम्मेलन श्री सच्चिदानन्द आर्य कर्मठ कार्यकर्त्ता मन्त्री जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा फर्रुखाबाद के समधी श्री प्यारेलाल निवासी बसारपुर की आकस्मिक मृत्यु पर महान दुख प्रकट करता है और प्रभु से प्रार्थना करता है कि मृतात्मा को सद्गति और शोकाकुल परिवार को धैर्य प्रदान करें।

आवश्यकता

१७ वर्षीया स्वस्थ आठवे तक शिक्षित गृह कार्य मे दक्ष और सुशील कन्या के लिए योग्य वर की आवश्यकता है लडकी सोमवंशी क्षत्री कुल की है। क्षत्री मात्र से व्याह हो सकेगा। दहेज के इच्छुक पत्र व्यवहार न करें। पत्र व्यवहार के साथ फोटू आवश्यक है।

पता—गोवर्द्धनसिंह वै० शास्त्री
ग्रा० पो० आ० बरवन
जि० हरदोई (उ० प्र०)

आर्य वर अथवा कन्या की आवश्यकता

"सुन्दर सुशिक्षित कन्या आयु २१ वर्ष शिक्षा इण्टर अथवा लडका आयु २६ वर्ष शिक्षा मेट्रिक के लिये सुयोग्य वर अथवा कन्या की आवश्यकता है। दोनो ही सरकारी सर्विस मे है अथवा घर का मकान व जमीन भी है। विवाह अन्तरजातीय वैदिक रीति से होगा। पूर्ण विवरण सहित शीघ्र लिखें।"

बाक्स न० ८ वर्मा मारफत
मैनेजर आर्यमित्र मीराबाई मार्ग लखनऊ

धर्मवीर ग्रन्थमाला के साहित्य सुमनों की धूम

धर्मवीर ग्रन्थमाला के साहित्य सुमनों पर विश्वविख्यात वैदिक विद्वानों की शुभ-सम्मतियाँ—

चारो वेदों के सस्वर वेदपाठी श्री पूज्य पं० वीरसेन जी वेदश्रमी लिखते हैं–

श्री वेद पथिक प० धर्मवीर जी आर्य झडाधारी ने काव्य मे वेद की शिक्षाओ को सक्षिप्त रूप मे जिस प्रकार गथित किया है, उससे सामान्य जनता मे वेद शास्त्रो के प्रति रुचि जागृत होती है। श्री धर्मवीर जी झडाधारी की लेखनी अब जिस प्रकार से चल रही है उससे आशा है, भविष्य मे वे इस क्षेत्र मे भी बहुत आगे बढ जावेंगे।

श्रीमान् मेहरचन्द जी महाजन रिटायर्ड चीफ जज सुप्रीम कोर्ट प्रधान टकारा ट्रस्ट दिल्ली लिखते हैं—

वेद पथिक श्री प० धर्मवीर जी आर्य झडाधारी द्वारा लिखित १११ अमृतमय उपदेश रत्नो को मैंने देखा है।

यह उपदेश-रत्न मानव मात्र के लिये अमृत तुल्य हैं। इस पुस्तक का प्रचार प्रत्येक शिक्षण सस्थाओ के लिए अमृत का और विद्यार्थी जीवन के निर्माण का कार्य करेंगे।

विश्व धर्म सम्मेलन दिल्ली के अध्यक्ष श्री पूज्य संत कृपालसिंह जी महाराज लिखते हैं–

वेद पथिक श्री प० धर्मवीर जी आर्य झडाधारी व्याख्यान-भूषण द्वारा लिखित वेद सुधा सार की कविता को सुनने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। लेखक का प्रयास सराहनीय है परमात्मा सफलता दे। विश्व का मानव समाज वेद भक्त बने।

श्री पूज्य पं० कृष्णचन्द्र जी विद्यालकार शक्तिनगर दिल्ली लिखते हैं--

मैंने श्री वेद पथिक प० धर्मवीर जी आर्य झडाधारी से वेद सुधा सार के कुछ पद्य सुने। इनसे झडाधारी जी की वेदो मे प्रगाढ़ श्रद्धा का परिचय मिलता है, एक प्रकार से इन पद्यो मे वेदो के सैकडो विषयों की गणना कर दी गई है। इन्हे पढकर सामान्य जनता मे वेदो के प्रति रुचि बढ़ सकती है।

धर्मवीर ग्रन्थमाला के वेद सुधा सार पर निम्न सज्जनो की ओर से निम्न प्रकार पारितोषिक भेंट किया गया है उन्हे धन्यवाद है।

५१) श्री मेहरचन्द जी महाजन रिटायर्ड चीफ जज सुप्रीम कोर्ट प्रधान टकारा ट्रस्ट डिफेन्स कालोनी दिल्ली।
१०१) श्री सोमनाथ जी मरवा एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट सब्जी मण्डी दिल्ली।
१११) श्री महाशय चुन्नीलाल जी रूपक स्टोर करोलबाग दिल्ली।

पुस्तकों का आर्डर इस पते पर भेजें।

वेदपथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी व्याख्यान भूषण

अध्यक्ष धर्मवीर ग्रन्थमाला प्रकाशन विभाग

सरायरुहेला नई दिल्ली ५

निर्वाचन समाचार–

—पूना खिड़की आर्यसमाज

प्रधान श्री कृपाशंकर, उपप्रधान–श्री मथुरादास तथा श्री किशोरीलाल, मन्त्री श्री के०पी०, उपमन्त्री–श्री बलबीरसिंह कोषाध्यक्ष–श्री चुन्नीलाल,पुस्तकाध्यक्ष–श्री निरञ्जननाथ, निरीक्षक–श्री जयगोपाल।

—सहारनपुर 'जनकपुर आर्य कुमार सभा

प्रधान–श्री श्रीराम, उपप्रधान–श्री धर्मसिंह, मन्त्री–श्री चन्द्रपाल, उपमन्त्री श्री चम्पालाल, कोषाध्यक्ष–श्री जयप्रकाश स०को०अ० श्री अशोककुमार, निरीक्षक–श्री रणवीर।

—पटना जिला आर्य सभा

प्रधान–श्री रामलखन आर्य पटना उपप्रधान–श्री [illegible]राय पटना, श्री श्यामलाल दानापुर, व श्री बसन्तकुमार बांकीपुर,मन्त्री–भुवनेश्वरीप्रसाद मिठापुर, स० मन्त्री श्री बनारसीसिंह जनकपुर, श्री रामपाल दयापुर तथा श्री रामबली प्रसाद दानापुर, कोषाध्यक्ष गंगाप्रसाद खाजपुर, निरीक्षक–रामकुमार फतुहा। १४ अन्तरंग सदस्य।

—मलाही (चम्पारन) आं०स०

प्रधान–श्री मथुराप्रसाद, उपप्रधान–श्री श्रद्धानन्दप्रसाद, मन्त्री–श्री बैजनाथ प्रसाद, उपमन्त्री–श्री बलदेवप्रसाद बी ए. उपमन्त्री–श्री भिखारीप्रसाद 'विद्याविनोद"।

वेदों में प्राकृतिक चिकित्सा का स्रोत

धर्म व विज्ञान का सम्बन्ध

यतोऽभ्युदय निःश्रेय स सिद्धि स धर्मः कणाद मुनि

जिससे प्रत्येक वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो और मुक्ति ये दोनो जिससे प्राप्त हों, उसे धर्म कहते हैं। अर्थात् वैदों के सृष्टि विज्ञान व आयुर्वेद के शरीर विज्ञान समन्वय से दोनो की प्राप्ति होती है। जो कि महाभारत के पश्चात् विश्व को महर्षि दयानन्द सरस्वती की देन है। यही विज्ञान महात्मा गाधी की निसर्गोपचार योजना की पूर्ति का साधन है जो जनता को चिकित्सा मे आत्म निर्भर बनाने का एक उपाय है हमने ४० वर्ष के अनुभव से प्राकृतिक चिकित्सा के पूर्ण साहित्य को तीन पुस्तको में प्रकाशित किया है, जिनकी पृष्ठ सख्या ५५० है। प्रमाण के लिये चारो वेदो के ५० मन्त्र भावार्थ सहित अकित है।

मूल्य से डाक व्यय पृथक हैं।

(१) जीवन सदेश (प्राण चिकित्सा) जिसमे चिकित्सा विधि विधान सहित है मूल्य ३.००

(२) (पच महाभूत विज्ञान) जिसमें सृष्टि व शरीर की रचना है। मूल्य १ २०

(३) शुक्र (वीर्य) का क्षय सब रोगो का मूल कारण मूल्य ० ८०

नोट–सस्था के उद्देश्य, तीनो पुस्तकों का सार व समालोचनाए "आरोग्य स्तम्भ" १८ पृष्ठ की पुस्तक मे छपी हैं। जो पत्र आने पर बुक पोस्ट से मुफ्त भेजी जाती है।

पता–भरतसिंह वैद्य जीवन प्राकृतिक चिकित्सालय

ग्राम गालिबपुर, पो० खास, जि० मुजफ्फरनगर

पता दूसरा–डा० रामचन्द्रसिंह C ३४१ सरोजनी नगर, नई देहली

आवश्यकता

राजस्थान प्रान्त में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान को उच्चकोटि के विद्वान् वक्ता उपदेशको एव प्रचारको की शीघ्र आवश्यकता है। प्रत्याशी महानुभाव अपने आवेदन पत्र, योग्यता, अनुभव एव पूर्ण विवरण सहित सभा कार्यालय मे भेजने का कष्ट करें।

—मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान
दयानन्द आश्रम केसरगज अजमेर

आवश्यकता

२० वर्षीया मैट्रिक अग्रवाल कन्या के लिए आर्यसमाजी विचार वाला अधिकतम २४ वर्षीय ग्रेजुएट सजातीय वर चाहिए। गरीब घराने को प्राथमिकता दी जायगी। पता–नं० ६ द्वारा आर्यमित्र कार्यालय लखनऊ

उत्सवों एवं कथाओं के लिए—
भूलिये नहीं, भूलिये नहीं
ओजस्वी वक्ता, पिंडाल को
गुंजाने वाले प्रचारक
एवं
प्रभावपूर्ण प्रवचनों के लिए
सुयोग्य स्वामी

महोपदेशक

आचार्य विश्वबन्धु जी शास्त्री
श्री बलवीर सिंह जी शास्त्री
श्री श्यामसुन्दर जी शास्त्री
श्री सत्यमित्र जी शास्त्री
श्री केशवदेव जी शास्त्री
श्री रामनारायण जी विद्यार्थी
श्री विश्ववधन जी वेदालंकार

प्रचारक

श्री रामस्वरूप जी आर्य मुसाफिर
श्री धर्मराजसिंह जी
श्री गजराजसिंह जी
श्री धर्मदत्त जी आनन्द
श्री खेमचन्द्र जी
श्री वेदपालसिंह जी
श्री जयपालसिंह जी
श्री प्रकाशवीर जी शर्मा

स्वामी

श्री स्वामी योगानन्दजी सरस्वती हाथरस
,, प्रणवानन्द जी , अमानिया
,, रुद्रानन्द जी ,, गोरखपुर
,, सुखानन्द जी , बिजनौर
,, विशुद्धानन्द जी , ऊझियानी
,, वेदानन्द जी सन्यासी कानपुर
लिये पत्र व्यवहार कीजिये।

महिला सम्मेलन में, माताओं एवं बहिनों के उपदेशार्थ
आमन्त्रित कीजिये
ओजस्वी तथा [illegible] महिला वक्ता
लखनऊ से श्रीमती डा० प्रकाशवती जी को इनके अतिरिक्त

माता विद्योत्तमा यती जी, ज्वालापुर
,, प्रियम्वदादेवी जी हरदोई
,, हेमलता देवी जी अलीगढ़
,, [illegible] जी एटा
,, प्रेम सुलमा यती जी ज्वालापुर
सुखदादेवी जी देहरादून

—सच्चिदानन्द शास्त्री
स० अधिष्ठाता उपदेश विभाग

* ओ३म् *

विश्व की समस्त आर्य समाजों के अधिकारियों से—

आवश्यक निवेदन

विश्व के समस्त प्रमुख राष्ट्रों मे वैदिक धर्म ध्वजा फहराने के लिये, विश्व-शान्ति का पावन सदेश लेकर वेद सदेश को राष्ट्र नायकों को देने के लिये जन-मन मे वैदिक सस्कृति का प्रसार करने के लिये अमेरिका, इग्लंड, जर्मनी, फ्रान्स रूस आदि राष्ट्रों मे प्रच रार्थ मै अपने जाने का प्रोग्राम निर्धारित कर चुका हू। लगभग २५ हजार रुपयों का व्यय होगा।

समस्त आर्य भाई-बहिनों से सविनय सानुरोध साग्रह निवेदन है कि धर्मवीर ग्रन्थमाला के साहित्य सुमनों को भारी सख्या मे मगाकर वैदिक भव्य भावनाओं का व्यापक प्रचार करने मे सहायक बनें।

पुस्तक मगाकर हमारी सहायता करें जिससे हम विदेशो मे भी जाकर वैदिक धर्म का नाद बजा सकें।

यदि विश्व की समस्त आर्यसमाजें १०) की पुस्तकें भी मगायें तो मेरा शुभ सकल्प विदेशों मे वैदिक धर्म के प्रचार का सुगमता से बिना किसी पर बोझ डाले ही पूर्ण हो सकता है।

आशा है विश्व की आर्य समाजें अपनी आर्य समाजो के लिये दस-दस रुपये की पुस्तकें अविलम्ब मंगाकर हमारी सहायता अवश्य करेंगी।

इसी शिवरात्रि के पश्चात इग्लंड की यात्रा पर मै दिल्ली से प्रस्थान करूगा।

समस्त राष्ट्रो के राष्ट्रनायकों को महर्षि दयानन्द का पावन सदेश सत्यार्थ प्रकाश, धर्मवीर ग्रन्थमाला के साहित्य सुमनों को भेंट करूगा।

अध्यात्म उन्नति पर मोक्ष और जीवन पर, वैदिक जीवन पर धर्म और जीवन पर योग और आत्म-उन्नति पर, जीवन की जटिल समस्याओ के समाधान पर, पूर्व जन्मो की अगम्य विद्याओ की खोज पर, कर्म योग पर, विश्व के मानव समाज को भारतीय सस्कृति की देन पर मन पर विजय प्राप्त करने के सुगम साधन पर, यज्ञ द्वारा आत्म उन्नति और भौतिक उन्नति पर, वैदिक युग के निर्माण आदि विषयों पर धाराप्रवाह भाषण देने का अपना कार्य-क्रम होगा। आर्य जीवन की झलक पर वेद सुधासार पर जीवन दर्शन पर कवितायें सुनाई जायेंगी।

निम्न पुस्तकें आज ही मगायें-

वेद और जीवन ५० पैसे, वेद सदेश ५० पैसे, विश्व प्रेम का अमृत कलश ५० पैसे, पूर्व जन्मों की अगम्य विद्याओं की खोज १ २५ पैसे, अमृतमय उपदेश ५० पैसे, वेद सुधासार १ २५ पैसे।

आवश्यक नोट—

धर्मवीर ग्रन्थमाला के समस्त साहित्य सुमनो की उपयोगिता पर भारत के समस्त वैदिक विश्व विख्यात विद्वानों की शुभ सम्मतियां प्राप्त हो चुकी हैं।

इन सभी पुस्तकों पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

पता—वेद पथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी व्याख्यान भूषण
अध्यक्ष धर्मवीर ग्रन्थमाला प्रकाशन विभाग, सराय-रुहेला, नई दिल्ली-५

सम[illegible] में

देश के सामन[illegible] प्रमुख प्रश्न ?

सुरक्षा और खाद्य

इन दोनों समस्याओं को शीघ्र से शीघ्र हल करके

राष्ट्र को शक्तिशाली और आत्म निर्भर बनाना है।

जवान

आक्रमणकारियों के मद-मर्दन के लिए कटिबद्ध हैं।

किसान

धरती माता की सेवा करें और अधिक से अधिक अन्न उपजायें।

अपने जवानो और किसानों का हौसला बढाने के लिए

शासन की तन-मन-धन से मदद कीजिए

स्वत्वाधिकारिणी आर्य्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के लिए भगवानदीन आर्य्य भास्कर प्रेस, ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ से श्री बाबूराम भारती द्वारा मुद्रित प्रकाशित।

वेदामृत—

स्वराज्य



आ यद् वामीय चक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥
[अथर्व० ५ । ६६ । ६]

भावार्थ—स्वराज्य में सब में पारस्परिक प्रीति हो। लोग संकुचित बुद्धि वाले न हों, वरन विशाल बुद्धि वाले हों। स्वराज्य किसी एक के यत्न से रक्षित नहीं हो सकता, वरन उसकी सिद्धि के लिये सब को प्रयत्न करना पड़ता है।



इस का मूल्य २५ पैसे

साप्ताहिक

आर्य मित्र

ओ३म्

स्वराज्य-अंक



१९६८

वर्ष

अवैतनिक सम्पादक—
—विक्रमादित्य 'वसन्त'

अङ्क
२८

परमेश्वर की अमृत वाणी

★

स्वराज्य पुण्य लोक बने, पाप लोक नहीं

ज्ञान शक्ति विद्वान् नायक साथ-साथ मिलकर कार्य्य करें। भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति हो— अभाव का नाश हो

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते॥

[यजु० अध्याय २० (मन्त्र) २५-२६]

[१] (यत्र ब्रह्म. चक्षत्र च) जहाँ ज्ञान एवं शक्ति (सम्यञ्चौ) एकीभूत होकर (सह चरतः) सह गमन करते हैं।

[२] (यत्र देवा. सह अग्निना) जहाँ विद्वान् अग्रनायक के साथ सहयोग करते हैं।

[३] (यत्र इन्द्र च वायु च) जहाँ इन्द्र और वायु (आत्म विकास और भौतिक उन्नति) बराबर-बराबर सह गमन करते हैं।

[४] (यत्र सेदि. न विद्यते) जहाँ अभाव विद्यमान नहीं होते।

[५] (त)उसको (पुण्य लोक) पुण्य लोक (प्रज्ञेष) जानें।

स्वराज्य को सुराज्य बनाने वाले परमेश्वर की इस वाणी को आत्मसात करें। ज्ञान व शक्ति का समन्वय करें।

भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक उन्नति करें। विद्वान् और नेता गण परस्पर सहयोग करें। राष्ट्र के अभावों को दूर करें और उसे समृद्धशाली बनावें।

स्वाधीनता दिवस पर हमें स्वराज्य की सफलता के लिये यह दृढ़ वैदिक व्रत लेना चाहिए।

★ ओ३म् ★

साप्ताहिक आर्यमित्र स्वराज्य अंक

लखनऊ—रविवार श्रावण २७ शक १८९०, भाद्रपद कृ० १० वि० सं० २०२५, दिनांक १८ अगस्त १९६८ ई०

राष्ट्रिय वैदिक प्रार्थना

★

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वा-नाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यज-मानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फल-वत्यो नः ओषधयः पच्यंताम् योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

(यजु० २२ । २२)

पद्यार्थ

ब्रह्मन् सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्री महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
होवें दुधारू गौवें पशु अश्व आशुवाही ,
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ॥

बलवान सभ्य योधा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल-फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

★ ★ ★ ★

सम्पादकीय

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः



२१ वर्ष पूर्व अंग्रेजों की दासता के पाश को काट कर भारत ने पुनः स्वाधीनता प्राप्त की थी। भारत के विभाजन की पीड़ा को स्वराज्य मिलने के आह्लाद ने एक प्रकार से दबा दिया था। 'स्वराज्य आया' 'स्वराज्य आया' का सर्वत्र उद्घोष था। अंग्रेजों की पराधीनता चले जाने से पराजित, दीन और हीन मनोवृत्ति की समाप्ति हो गई थी। राम राज्य का एक आदर्श हमारे सम्मुख था। वह राम राज्य जो वैदिक आदर्शों व मान्यताओं पर अवस्थित था। महा कवि बाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामायण में जिस राम राज्य की झलकियां दिखाई थी उन्हें प्रत्यक्ष देखने का सारा राष्ट्र लालायित था। पराधीन सपने सुख नाहीं वाली कहावत के स्थान पर स्वाधीनता के सुख जागृति में देखने की अदम्य लालसा उदित हो उठी थी।

अतीत के वैदिक राष्ट्रों की एक दिव्यस्मृति उस समय मानस पटल पर उभर आई थी, जब महाराजा अश्वपति ने अपने राज्य में हो रहे वैश्वानर यज्ञ में उपस्थित पांच ज्ञानियों की शङ्काओं का समाधान करते हुये कहा था—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

अर्थात मेरे राष्ट्र में कोई भी चोर नहीं कोई भी कजूस नहीं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो शराब पीता हो। ऐसा कोई भी नहीं जो वैदिक यज्ञ न करता हो। कोई मूर्ख, अनपढ़ या अविद्वान नहीं है। यहा कोई व्यभिचारी या व्यभिचारिणी नहीं है।

ऐसी घोषणा करने का साहस आज विश्व का कोई राष्ट्र नहीं कर सकता। यह घोषणा तो उस राष्ट्र की थी जो अध्यात्मवाद के मार्ग पर चला था और जिनकी राज्य व्यवस्था वेद पर आधारित थी।

वेद के पठन पाठन से आर्यों के जगत् में उद्भुत उन्नत की थी। उन्होंने चक्रवर्ती राज्य स्थापित किये थे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी एक चक्रवर्ती राजा था। उसका राज्य कैसा था, तनिक गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में देखिये—

राम राज सन्तोष सुख,
घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु सुर धेनु महि,
अभिमत भोग बिलास।

स्पष्ट है कि राम राज्य का आधार वह पावन चरित्र था जिसका निर्माण वैदिक मान्यताओं के द्वारा किया गया था। आर्यों ने जब जब चक्रवर्ती राज्य स्थापित किए उनके मूल में जगत् की कल्याण भावना थी। आर्य जब जब चरित्र बल लेकर उठे, उन्होंने चक्रवर्ती राज्य स्थापित किये, किन्तु वेद विद्या के लोप होते ही अथवा वेदानुकूल आचरण न होने पर आर्य अपनी स्वाधीनता तक खो बैठे। यह सब इसलिये हुआ कि आर्यों ने वेद की उस वाणी को विस्मृत कर दिया जिसमें कहा गया था—

"मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः॥"
(अ० १३-१५९)

अर्थात् हम ऐश्वर्य सम्पन्न होकर सन्मार्ग से प्रगमन न करें। हम यज्ञ से विमुख न हों तथा अदानताएं हमारे बीच में न ठहरें।

ऐश्वर्य सम्पन्न होकर जब आर्य व्यसनी और विलासी हो गये तो सन्मार्ग से उनका प्रगमन हो गया। सुरा सुन्दरी और आसुरी माया ने उनकी स्वाधीनता तक

दफतरी हिन्दी

[लेखक -श्रीमहेशचन्द्र गुप्त, संगठन मन्त्री,
केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद]

●

सदियों से हिन्दी कामकाज की भाषा रही है। पुराने जमाने में देशी रियासतों का सरकारी कामकाज हिन्दी में होता रहा है। आज भी हिन्दी उत्तरप्रदेश मध्यप्रदेश, राजस्थान बिहार हरियाणा, हिमाचलप्रदेश और दिल्ली आदि राज्यों की प्रमुख भाषा है। इसके अतिरिक्त भारत संघ की राजभाषा हिन्दी घोषित की जा चुकी है। इसके कारण सरकारी दफ्तरों में बड़ी मात्रा में हिन्दी में काम होने लगा है। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सरकारी दफ्तरों में इस्तेमाल की जाने वाली हिन्दी साहित्यिक हिन्दी से भिन्न है और रहेगी। साहित्य की भाषा दफ्तरों की भाषा नहीं हो सकती है। इसकी आवश्यकता भी नहीं है। दफ्तरों में काम-काज करने वाले कर्मचारी किसी मामले के विषय में जो कुछ सोचते हैं, उसे उसी प्रकार अच्छे ढंग से दफ्तर की फाइल पर लिख देना होता है। इसलिए यह आवश्यक नहीं कि उस दफ्तर में काम करने वाले व्यक्ति को लिखते समय बड़े बड़े हिन्दी के साहित्यिक शब्दों के इस्तेमाल करने की जरूरत हो। उसको तो केवल दफ्तरी हिन्दी का प्रयोग करना है। लिखते समय यदि किसी अंग्रेजी शब्द का हिन्दी पर्याय सम्बन्धित कर्मचारी को नहीं मालूम तो उस शब्द को ही देवनागरी में लिखा जा सकता है। और यदि आवश्यक समझा जाए तो अंग्रेजी शब्द को अंग्रेजी में भी लिखा जा सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि किसी शब्द का संस्कृत स्वरूप ही लिखा जाए। उस शब्द का जनसाधारण में प्रचलित रूप भी प्रयोग में लाया जा सकता है। प्रश्न तो केवल भाव को प्रकट करने का है, सीधी और समझ में आने वाली भाषा में, न कि पाण्डित्य के प्रदर्शन का।

बहुत से लोगों को मालूम होगा कि जब अंग्रेजों ने दफ्तरों में अंग्रेजी का प्रयोग प्रारम्भ किया तो अंग्रेजी किस ढंग की लिखी जाती थी। उस पुराने जमाने में यदि अंग्रेजी के रूप को पुरानी फाइलों पर देखा जाए तो बहुत से लोग आश्चर्यचकित होंगे। लोगों के अंग्रेजी कम जानने के कारण यहाँ के देशी शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी के साथ साथ किया जाता था। यहाँ तक कि देशी शब्दों को इंग आदि लगाकर अंग्रेजी की क्रियाओं में परिवर्तित कर दिया जाता था परन्तु अंग्रेजों के सामने तो अंग्रेजी के प्रयोग को बढ़ाने का प्रश्न था। उन दिनों में अंग्रेजी के इस विकृत रूप से किसी को न तो परेशान किया न स्वयं चिन्तित हुए बल्कि कर्मचारियों को बराबर प्रोत्साहन दिया जाता था। धीरे धीरे अंग्रेजी का रूप निखरता गया और आज हम भारतीय कार्यालयों में अंग्रेजी का जो रूप देख रहे हैं, उससे प्रतीत होता है कि अंग्रेजी का यह रूप केवल अंग्रेजों के प्रयत्नों के कारण ही आया है। हिन्दी की स्थिति इससे भिन्न ही होगी। इसका कारण यह है कि

सभा मन्त्री-
श्री पं० सच्चिदानन्द जी शास्त्री
भ्रमण पुरोगम तथा धन-संग्रह

श्री पं० सच्चिदानन्द जी शास्त्री विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर आर्यसमाजों में गये और समाजों की गतिविधियों को जाना। ... ही ऋषि के मिशन में गति देने पर विचार भी किया प्रस्थान करते समय सभा को कई स्थानों में धन भी दिया गया। मेरठ आदि स्थानों से भी धन का आश्वासन मिला।

१—लखीमपुर आर्यसमाज	२००)
२—बरेली	२२१)
३—हरदोई गोनी आ० स०	५०१)
४—	१०१)
योग	१०२३)

—सच्चिदानन्द शास्त्री
सभा मन्त्री

हिन्दी इस देश की भाषा है। हिन्दी हममें से अधिकांश को हमारी माँ के पेट से प्राप्त हुई है और अपनी माँ सी प्रतीत होती है। इसलिए अंग्रेजी लिखने और पढ़ने में जो कठिनाई होती है वह हिन्दी में नहीं होती। अधिकांश भारतीय अंग्रेजी में लिखने से पहले अपनी मातृ भाषा में सोचते हैं, और फिर उसका अंग्रेजी में रूपान्तर करते हैं। जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है, वे यदि इस प्रक्रिया को छोड़ दें, और फाइलों पर टिप्पणी आदि सीधे हिन्दी में लिखें तो काम काज में विशेष कठिनाई नहीं होगी और भाषा भी सरल, स्वाभाविक तथा प्रवाहमयी होगी। कुछ समय पश्चात् काम करने वाले लोगों को हिन्दी में अंग्रेजी की अपेक्षा काम करना सरल प्रतीत होगा। कहागया है—करत करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान।

यदि हम हिन्दी में काम करने से कतराते रहे तो हिन्दी में काम करना कभी नहीं सीख सकेंगे। तैरना सीखने के लिये पानी में जाना ही पड़ेगा। यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी देश की राज भाषा बने तो इसमें काम करने से कतराने की आवश्यकता नहीं है। न ही यह कहने से काम चलेगा कि हिन्दी में शब्द नहीं हैं। शब्दों की कमी और अन्य कठिनाइयां हिन्दी में काम करना शुरू करते ही धीरे धीरे अपने-अपने रास्ते से हटती जाएँगी। काम करते करते ऐसे शब्द जो इस समय बड़े अजीब से लगते होंगे, हमारे जीवन में घुलमिल जायेंगे और अपने आप उनका अजनबीपन समाप्त हो जायगा। केवल हिन्दी में काम करने की बात सोचने की जरूरत है और उसके अनुसार आरम्भ कर देने की।



वैदिक महापुरुष—श्रीकृष्ण

[योगीराज श्रीकृष्ण के प्रति महर्षि स्वामी दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश मे लिखा है—"देखो ! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत मे अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमे कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।' जिस वैदिक महापुरुष श्रीकृष्ण को महर्षि दयानन्द ने अपनी ऐसी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की हो, उनके विषय मे भागवत वाले भले ही अनुचित मनमाने दोष लगावें, परन्तु वैदिक विद्वान् सदैव सत्य वृत्तान्त ही प्रस्तुत करते हैं। कृष्ण जन्माष्टमी पर्व पर पाठकों के पथ-प्रदर्शनार्थ यह लेख इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा रहा है।

—सम्पादक]

संस्कृत भाषा मे प्राचीन आर्यग्रन्थों में अग्नि शब्द जिसका प्रयोग वैदिक साहित्य मे स्थान स्थान पर अद्वैत परमात्मा के लिए हुआ है। विद्वान् ऋषियों मुनियों आप्त पुरुषों और महात्माओं के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। यह विचार ऐसा प्रचलित है कि मानों प्रत्येक भाषा और प्रत्येक देशवासी इसी रंग मे रंगा है। संस्कृत भाषा मे देव शब्द और देवता ईश्वर बोधक हैं। परन्तु महान् पुरुषों के लिये भी ये शब्द प्रयोग मे लाये जाते हैं। आंग्ल भाषा मे गाड् का अर्थ परमेश्वर है। परन्तु उसी गाड का बहुवचन गाडस देवताओं के लिये आता है। इस्लाम मत सम्बन्धी हजरत मुहम्मद को नूरे इलाही कहते हैं। उधर ईसाई हजरत मसीह को खुदा का बेटा कहते हैं।



जीवन-ज्योति

★आचार्य श्री प० सत्यमित्र शास्त्री

बौद्ध मतावलम्बी महात्मा बुद्ध को लार्ड कहकर पुकारते हैं। इसी प्रकार आर्य लोग आप्त पुरुषों मे श्रीराम और श्रीकृष्ण को अवतार कहते हैं। आर्यों मे आप्त पुरुषों ऋषि मुनियों और विद्वानों के आदर और पूजन का व्यवहार वैदिक काल से चला आता है। वेदों के स्थान स्थान पर धर्मात्मा और आप्त पुरुषों का सत्कार तथा उनकी पूजा को एक प्रधान कर्त्तव्य कहा गया है। और प्रत्येक यज्ञ उत्सवों पर इसका करना आवश्यक समझा गया है। ब्राह्मण ग्रंथ उपनिषद् तथा अन्य आर्ष ग्रंथों में इस विषय की पूरी पूरी विवेचना की गई है। पर किसी वैदिक ग्रन्थ में किसी महात्मा व आप्त पुरुष को परमात्मा का पद नहीं दिया गया है। आर्यावर्त्त में सबसे प्रथम बौद्ध धर्म की शिक्षा से लोगो को परमात्मा के होने न होने में महती शंका हुई। और इस पवित्र भूमि के रहने वाले परमात्मा की उपासना से गिर कर मानव पूजन मे अन्धकारमय गर्त में फंस गये। उपासना की यह विधि जन साधारण मे ऐसी प्रचलित हुई कि वैदिक धर्म के उपदेश देने वालो ने भी बौद्धों की पद्धति का अनुसरण किया। ब्राह्मणों ने बुद्ध के स्थान पर श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण को सेव्य मानकर उनको अवतारों की पदवी से विभूषित किया। शनै शनैः इस भाव ने इतना प्रबल रूप धारण कर लिया कि कुछ समय के पश्चात् पौराणिक ग्रन्थों मे इसकी ही प्रधान चर्चा देख पड़ने लगी। और चारों ओर अवतार ही अवतार प्रकट होने लगे। व्यक्तियों के प्रति प्रेम के कारण मानसिक विचारों की चपलता और विश्वास की निर्बलता ने जो अन्याय और अन्याय श्री कृष्ण महाराज के साथ किया है

उसका उदाहरण किसी दूसरी भाषा में दृष्टिगोचर नहीं होता है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति की पराकाष्ठा और प्रेम के तरंग में श्री राम पर भी वार किये हैं परन्तु तो भी भक्ति का सारा जोर और उनकी विलक्षण कविता का अद्भुत भाव श्री रामचन्द्र को उस श्रेणी तक नहीं पहुंचा सका जहाँ तक पौराणिक साहित्य ने श्री कृष्ण जी को पहुंचाया है। इसका कारण यही ज्ञात होता है कि श्री राम को श्री कृष्ण के तुल्य उपदेष्टा की उपाधि नहीं दी गई। श्री राम को उनकी विमाता कैकेयी ने अपनी ईर्ष्या और द्वेष से बनवास दिया था। इसलिये कवियों ने भी पितृ भक्ति और भ्रातृ-स्नेह का मुकुट उनके शिर पर रख दिया। परन्तु यह मुकुट भी उस मनुष्य को अधिक शोभा देता है, जो प्रत्येक दृष्टि से धार्मिक जीवन का आदर्श होता है। अर्थात् जिसके शरीर पर शेष वस्त्र भी ऐसा उपयुक्त होता है। जिससे मुकुट का सौंदर्य सम्यक् प्रकार से प्रकाशित हो। श्री राम का जीवन यद्यपि एक आदर्श स्वरूप है, परन्तु इनके और श्री कृष्ण के धार्मिक जीवन में बहुत अन्तर है। जिस प्रकार श्री कृष्ण सत्य प्रेम स्नेह और वीरत्व में आदर्श माने जाते हैं, इसी प्रकार सत्य धर्मोपदेशक भी थे। उनका जन्म ऐसे काल में हुआ था, जबकि एक ओर वैदिक धर्म का बड़ा मिथ्या वैराग्य और दूसरी ओर वेदान्त के भ्रमर में चक्कर खाता हुआ एक ओर बहा जाता था। धर्म का यथोचित स्वरूप से अधःपतन हो चुका था। कभी मिथ्या वैराग्य और कभी शुष्क नास्तिकवाद की फिलासफी का पलड़ा भारी हो जाता था।

इन दोनों का एक स्थान पर न्याय की दशा में रहना असम्भव था। चूँकि इनको ऐसे समय में धर्मोपदेश करना पड़ा था। इसलिये इनका जीवन धर्मोपदेशक का एक उच्चतम आदर्श है, और इसलिये हम देखते हैं कि हिन्दुओं के सम्प्रदायों में सम्भवतः एक भी ऐसा पुरुष न होगा। जिस पर श्री कृष्ण के उपदेश का कुछ न कुछ प्रभाव न पड़ा हो। सब ही श्रीकृष्ण का नाम एक स्वर से उच्चारण करते हैं, और उनके उपदेशों को प्रमाण मानते हैं। हमारा यह कथन अयुक्तिपूर्ण न होगा कि भारत का धार्मिक मेघ मण्डल इस समय भी वैदिक महापुरुष योगिराज के उपदेशों से प्रकाशमय दृष्टिगोचर हो रहा है।

श्री कृष्ण जी ने स्वयं कभी अवतार होने का दावा पेश नहीं किया है। भगवद्गीता के अतिरिक्त महाभारत के और किसी भाग में ऐसे दावे का प्रमाण नहीं मिलता है। भगवद्गीता श्री कृष्ण जी की रचना नहीं है। अतः गीता का प्रमाण इस विषय को पूर्ण रूप से पुष्ट नहीं कर सकता है। परन्तु यदि आप प्रश्न करें कि गीता के बनाने वाले ने क्यों ऐसी युक्ति बाँधी जिससे यह परिणाम निकले कि कृष्ण महाराज अपने आपको अवतार समझते थे। तो तो उसका उत्तर यह है कि अपने कथन को विशेष माननीय और प्रामाणिक बनाने के लिये उसने ऐसा किया। गीता का वह भाग जिसमें श्रीकृष्ण जी अपने को परमात्मा या परमात्मा का अवतार मानकर उपदेश करते हैं। वह प्रकट करता है कि गीता स्वयं एक प्राचीन पुस्तक नहीं है। क्योंकि वैदिक साहित्य में जिसमें ब्राह्मण उपनिषद् और सूत्रादि निहित हैं। उस प्रकार के उदाहरण नहीं हैं। जिसमें उपदेश करने वालों को ऐसा पद दिया गया हो। जहाँ तक मैंने छानबीन किया है, उपनिषदों में एक ऋषि के वचनों में इस प्रकार वर्णन पाया जाता है। वह भी ऐसा स्पष्ट बहुतायत से नहीं जैसा कि भगवद्गीता में। गीता का क्रम प्रकट करता है कि भिन्न-भिन्न समय के पण्डितों की रचना से यह पुस्तक रिक्त नहीं है। इसमें भी प्रमाण है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् वे अपमान करते हैं। जो परमात्मा को मनुष्य शरीर धारी कहते हैं।

अतः श्रीकृष्ण जी वैदिक महापुरुष थे। श्री व्यास के शब्दों में उनकी जितनी शिक्षा थी। सम्पूर्ण वैदिकता से ओतप्रोत थी। योगिराज के जीवन का वीभत्स वर्णन श्रीमद्भागवतकार वोपदेव व्यास ने अनर्गल लिखा। जो दुराचार से युक्त है। जैसे रेमे रमेशो व्रज सुन्दरीभि.। प्रजम्भृगोपिका कन्या योनिमाकृष्य पाणिना। व्रजांगनाओं के साथ श्रीकृष्ण ने रमण किया। गोपकन्यायें अपने योनि मार्ग को हस्त से ढककर चली गई। इसी प्रकार रास लीला का वर्णन कुब्जा अनुराधा के साथ समागम तथा श्री राधा का वासनायुक्त प्रेम। यदि इनका अलंकारिक वर्णन किया जावे तो श्रीकृष्ण जी स्वतः कुछ न रहकर ऐतिहासिकता से परे होकर एक अलंकारिक पुरुष हो जायेंगे। अतः महर्षि दयानन्द जी ने इनके सम्बन्ध में

(शेष पृष्ठ १४ पर)

स्वराज्य आया पर सुराज्य नहीं

[आधुनिक भारत की झलकियां]

(इन व्यङ्ग्यात्मक झलकियों में लेखक आपको भारत की उन आधुनिकता की ओर ले चलता है, जहां विदेशीपन की जीवन पर पूरी छाप लगी हुई है। काश ! आधुनिकता की दौड़ में अन्धाधुन्ध दौड़ने वाले ठहरकर कुछ सोच सकें, समझ सकें कि हमारा गौरव कहाँ अर्न्तनिहित है ? स्वराज्य के लिये हमने अंग्रेजों को तो भारत से २१ वर्ष पूर्व विदाई दे दी, किन्तु अंग्रेजियत के आलिंगन से अभी तक मुक्ति नहीं पाई ? शारीरिक स्वतन्त्रता के साथ क्या मानसिक परतन्त्रता से त्राण न होना चाहिये था ? व्यसन और विलास नहीं वरन् सादगी और ब्रह्मचर्य ही राष्ट्र का अभ्युत्थान करेंगे। —सम्पादक]

श्री राजकुमार सिद्धांतालकार, कानपुर

आज केवल यही नहीं कि हमें डैडी, पापा, मम्मी जैसे सम्बोधनों पप्पू बेबी जैसे नामों का प्रयोग करने में हमें प्रसन्नता का अनुभव होता है। बल्कि हमारा मन ही बदल गया है, हमारे दिल और दिमाग के अन्दर दासता की बेड़ियां और मजबूत होती जा रही हैं। यह बेड़ियां केवल न कि हमारे लिये ही बल्कि सांस्कृतिक, राष्ट्रिय परम्पराओं और आर्थिक दृष्टिकोण से हमारे लिये घातक हैं। आज देश में अपनी सांस्कृति,

विनोद-बिन्दु

अपने धर्म, अपनी राष्ट्र-भाषा तथा अपने साहित्य की उपेक्षा की भावना, चाल-चलन, वेश-भूषा आदि कि बन्दर की भांति नकल करने की हमारी बढ़ती हुई प्रवृत्ति हमारी गुलाम वृत्ति का परिणाम है।

विदेशी ईसाई मिशनरियों द्वारा खोले गये स्कूलों का फैशन, आकर्षक वेश-भूषा से आकर्षित होकर बच्चों को कान्वेन्ट स्कूलों में भेजने की पागल नीति हमें आज अनेकों स्थानों पर प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

यदि आपको यह प्रत्यक्ष देखना है तो आइये हम

आपको एक ढाई दो सौ रुपये मासिक आमदनी वाले परिवार में ले चलते हैं। वे अपने दोनों बच्चों को कान्वेन्ट स्कूल में भेज रहे हैं। स्कूल की आकाश से बातें करने वाली फीस और गर्दन तोड़ महगाई से दोनों समय [illegible] बीमार पत्नी की चिकित्सा होना असम्भव हो रहा है। महरी का काम पत्नी करती है। धोबी का काम पति-पत्नी दोनों मिलकर कर लेते हैं। [illegible] धन बचाकर खाना-पीना छोड़ कर कान्वेन्ट स्कूल भेज रहा है। [illegible] वालों बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उनकी फीस और स्कूली वेश-भूषा के लिये निराहार रहा जा रहा है। जब कोई पति पत्नी से कान्वेट स्कूल में बच्चों को भेजने का कारण पूछता है, तब वे दोनों बड़े हँसमुख हो कर कहते हैं- -'अरे भाई इस स्कूल में चार ऊँचे घरों के लड़के पढ़ने हैं, उनके साथ रह कर स्कूल की एजूकेशन प्रणाली से बच्चा कुछ जेन्टिल होशियार हो जाता है। अन्य बच्चों से अंग्रेजी मोमी की तरह बोलने लगता है। आगे चल कर जिलाधिकारी प्रशासक, पुलिस अधीक्षक बनने में यह शिक्षा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इस

लोग तो वैसे जिन्दगी काट ही रहे हैं, काट ही रहे हैं। कम से कम बच्चे ही ऊंचे पदों पर पहुंच कर सुखी हों। माता पिता की आत्मीयता और उमड़ता वात्सल्य स्वभावानुकूल एवं उचित ही है। परन्तु अब जरा विचार पूर्वक सोचें कि क्या केवल आंधी की तरह अंग्रेजी बोलने, शेक हैन्ड करने, बाय बाय, थैंक्यू कहने या अपनी किसी प्रेमिका से 'आई लव यू ! डार्लिंग' कह देने मात्र से ही क्या किसी को उच्च पद के लिये उपयुक्त माना जा सकता है। कदापि भारतीय संस्कृति के अनुसार भारत मे देश की उच्चतम शिक्षा कान्वेन्ट शिक्षा नहीं मानी जा सकती।

आज देश में उद्योग विकास प्रधान योजनाओं के बावजूद भी इन्जीनियरों की बढ़ती बेकारी इस ओर खुला संकेत है। लेकिन इन सब बातो की ओर विचार करने का शायद किसी को अवकाश ही नही है। सब के सब अलग-अलग अपने अपने घोड़ों पर सवार है। दूसरी ओर बेचारा बच्चा फैशन, मोटर कार, चपरासी के घिरे धनिकों के बच्चो के बीच हर समय उनकी लम्बी-चौड़ी बातें, 'एक्सकरीन हुर, हिल स्टे आदि की चर्चाय सुनते-सुनते गरीबी की भावना से दबता चला जाता है। गरीबी से भीषण टक्कर लेते हुए माता पिता के लिए यह स्वाभाविक ही है। लेकिन आज के बन्दर बुद्धि नकलची लोग बच्चों को इन स्कूलों मे भेजकर शायद सदैव के लिए कल्पना लोक मे विचरन लगते हैं। लेकिन जब उन्हे ठोकर लगती है वे उड़ते उड़ते ऐसे गिरते हैं कि सदैव-सदैव के लिये उनकी कल्पनायें धूमिल हो जाती है।

* * *

आइये अब हम आपको अपने एक ऐसे मित्र के पास ले चले है जो कि अनेको आत्मिक भावनाओं से भारतीय हैं। लेकिन पाश्चात्य वेश भूषा और अनेकों पाश्चात्य विचारो न उसे गुलामी की जंजीरो मे जकड़ लिया है। उनकी वेश भूषा आप देखिये कहीं वही चुस्त नग्न बशक पैंट और ब्लाउज जैसी कमीज शायद जैसी पोशाक पाश्चात्य देशो की अनेकों लड़कियाँ भी नहीं पहनती होंगी। मैं अपने मित्रवर को कई भारतीय संगीत कार्यक्रमों में ले गया। लेकिन वहाँ उनकी आत्मा न ठहरी, और स्वयं बहिर्गमन करने के साथ-साथ मुझे भी बाहर खींच ले गये, और फिर एक दिन वे अंग्रेजी-संगीत कार्यक्रम में भाग लेने के लिये मुझे बाध्य करने आ पहुंचे, मेरी आत्मा ने मुझे वहां जाने के लिये साथ न दिया। और मुझे यह आभास हुआ कि आज भारत के बच्चे बच्चे में पाश्चात्य कला संस्कृति और गुलामी की जड़ें अत्यन्त गहरी हो चुकी हैं। उन्होंने भारतीय संगीत पर टिप्पणी करते हुए कई बार मुझसे कहा, तानसेन, मियाँखुसरो आदि के संगीत मे अपने आपको बांध देना पिछड़ा पन होगा।

एक बार उन्होने पाश्चात्य संगीत की प्रशंसा करते हुए मुझे बताया कि गिटार की धुनों और ड्रम' की चोट मे कुछ ऐसा जादू-सा है कि पैर अपने आप थिरकने लगते हैं। डान्स सीखे बिना भी कोई किसी का साथ दे सकता है। उन्हें कई बार उत्सव, बरातों, पार्टियो मे भी जाने का अवसर प्राप्त हुआ, वहा से लौट कर उन्होने मुझे बड़े हँसमुख चेहरे से हसते हुए अपनी प्रशंसा सुनाई कि मैंने वहा ऐसा ट्विस्ट किया कि सब व्यक्ति मेरे ट्विस्ट को देखकर मदहोश से हो गये, और मेरे ऊपर सैकड़ों रुपये न्योछावर कर दिए। उन्हें मुझे यह सुनने मे हार्दिक प्रसन्नता हो रही था। और मैं आज की इस गुलामियत पर मन ही मन गड़ा जा रहा था। आज कानपुर या किसी भी शहर मे किसी उत्सव, बरात या जलूस मे पढ़े लिखे व्यक्ति भी बैन्ड की धुन सुन कर बीच सड़क पर उछल कूद करते राक एन रोल' ट्विस्ट और इसी प्रकार के अनेकों नृत्य बिना किसी हिचक के नाचते चलते हैं। जिसके आगे पंजाब का भंगड़ा भी शरमाता है। मैंने दो चार शादियों कई पार्टियों आदि में देखा, बाकायदा मञ्च बना कर बैंड अथवा रिकार्डिंग करके लड़के लड़कियों द्वारा 'राक एन रोल' डांस पेश किया जाता है। जिनकी वेश-भूषा भी आप नग्न ही समझिये। जब मञ्च पर इस प्रकार का नग्न नाच हमारा चारित्रिक पतन नहीं तो और क्या है। कहाँ हमारी प्राचीन संस्कृति मे लड़कियां घर से निकलने में शरमाती थीं, और कहाँ आज खुली सभाओं में मञ्च पर नग्न नृत्य करती हैं।



मेरा मस्तिष्क काम नहीं करता है, हृदय रो उठता है, और भारत भूमि की इस दयनीय दशा को सोच कर विचार करता है, कि जाने क्यों वर्षा की फुहार, ठण्डी मस्त हवाओं से तरबतर कर देने वाली मेघ मल्हारें अङ्ग-अङ्ग को थिरका देने वाला बसन्त, करेजवा में चोट करने वाली चैती, कल्पना को साकार करने वाली भारतीय कला, हमारी अमूल्य निधि, वीणा, सितार कत्थक जैसे उच्च नृत्य को छोड़कर हम पाश्चात्यता के नशे में स्वर्ण छोड़ मुलम्मा चढ़े पीतल हीरा छोड़ झूठी चमक वाले पत्थर के पीछे दीवाने हो रहे हैं।

अब हम आप को आधुनिक वेश-भूषा के मञ्च की ओर ले चलते हैं। जहां अनेकों परिवारों में वेश-भूषा, चड्डी और चोली में, स्कर्ट और बाबहेयर से सिमटती चली आ रही है। चिपके कुरते और वक्ष को उभार देने वाले अत्य चुस्त वस्त्र आज हमारी भारतीय देवियों को अत्यधिक प्रिय हो रहे हैं। भले ही विदेशों में भारतीय साड़ियां व ब्लाउज लोक प्रिय हो रहे हों। ऐसा आभास होता है, कि फिल्मों में वेश भूषा देख कर नकल करना आधुनिकता की कसौटी है। आंधी की तरह अंग्रेजी बोलना और नग्न वस्त्र-भूषा ही शायद आधुनिकता है।

* * *

अब हम आपका ध्यान जीवन के एक पहलू की ओर ले चलते हैं। बच्चे की वर्ष गांठ है। धूम धाम है, लेकिन आश्चर्य आधुनिक ढंग के गुब्बारे, झण्डियां लटकी है, बन्दनवार केले के पत्ते आम्र पत्र आदि नहीं हैं। आगत आगन्तुक अतिथियों में से किसी ने कहा--- भाई कुछ गाना बजाना हो जाये'। एक साथ कई आवाजें आईं --- 'अभी क्या रखा है, इन प्राचीन गंवारू गानों में' फिर गाने तो रेडियो पर भी सुने जा सकते हैं। 'बड़े से केक पर लगी मोमबत्तियां बच्चे से बुझवाई जाती हैं' लोग मोम बत्तियों का प्रयोग भी आधुनिकता का प्रतीक मानते हैं। तत्पश्चात् सभी उपस्थित लोग गाना आरम्भ करते हैं, ''हैपी बर्थ डे टू यू'' बेचारा बच्चा प्रतिदिन हिन्दी अथवा अन्य मातृ भाषा बोलने, सुनने से इसका अर्थ ही नहीं समझता और मातृ भाषा में आधुनिक अतिथियों की नाक कटती है। लोग मेजों पर कपकेक पार्टी वाले के लिये गिद्ध की भांति टूट पड़ते हैं। फिर गिलासों बोतलों के दौर स्त्री पुरुष को मदहोश करने लगते हैं। फिर जोड़ो का 'एक-एक राउंड' या डिबल्ड हुआ काफी रस हो गई, बाय बाय, टा टा, थैंक्यू करते हुए लोग विदा हुये। बच्चे के मन और मस्तिष्क पर ऐसी अच्छी की प्रतिदिन की इस आधुनिक लीला की एक तह और बढ़ गई, और वह सो जाता है। यह है कानपुर नगर के एक प्रतिष्ठित एक भारतीय परिवार की झांकी। आज देश में ऐसे परिवारों की संख्या उपलब्ध साधनों और आय के अनुसार बाढ़ की भांति बढ़ रही है।

इसी प्रकार की एक घटना और है और इस प्रकार की अनेकों घटनाएं हमें पत्र पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलती हैं। एक वा विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी प्रदेश का मन्त्री चुना गया। उस छात्र के प्रोफेसरों आचार्यों को हार्दिक प्रसन्नता स्वाभाविक ही थी। सभी व्यक्ति रेलवे स्टेशन प्लेट फार्म पर एकत्रित हुये स्वागत करने हेतु सभी आचार्य और मित्र अपनी अपनी वेशभूषा में खड़े थे। गाड़ी की बोगी सामने आकर ठहरी। सभी ने अपने-अपने ढंग से बधाइयां दीं। किसी ने कहा 'यू हैव मेन्टेन द ग्लोरियस ट्रेडीशन आफ योर अल्मा मेटर' दूसरे ने ने कहा--'आई एम प्राउड आफ यू'। आदि कहकर सबने हाथ मिलाया। इन्हीं सबके बीच एक पूर्ण भारतीय वेश-भूषा धारी आचार्य ने---जीवेम् शरदः शतम् मन्त्र के साथ जैसे ही आशीर्वाद देना प्रारम्भ किया चारों ओर जोर जोर की हँसी गूंज उठी उस समय लगभग सभी के चेहरे पर कुटिल मुस्कान थी। जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि वह कैसा मूर्ख गवार है जिसे न कोई सामाजिक शिष्टता का ज्ञान है न कोई तमज आचार्य जी का पहला अपराध भारतीय वेश-भूषा धोती कुर्ता टोपी पहनकर आना था और कथित गवार भाषा का प्रयोग यह उनका हीनता का कार्य और घोर अपराध था। यह जिसको अपने आप अन्य बन्धुओं से देख रहे हैं वह भी प्रभाव काली जैसेलगरों में घटित हुई। लेकिन हां उस समय उपस्थित व्यक्तियों के सिर शर्म से झुक गये। जब शिष्य ने उनसे हाथ मिलाने की उपेक्षा कर उनके चरण स्पर्श कर लिए। ईश्वर ही जाने वह वेश-भूषा का प्रभाव था अथवा व्यक्तित्व का या जन्म में दिये गये देव आशी-



र्वाद का।

*   *   *

अब आइये हम आपको ऐसे तथ्य की ओर ले चलते हैं, जिसके कारण आज हम गरीब से गरीब तर और हीन से हीन तर होते जा रहे है जिसके कारण ही परिवार की आर्थिक जड़ बिल्कुल खोखली हो गयी हैं। दो ढाई सौ रुपये मासिक पाने वाले परिवार के लिए अपनी बेटी की शादी करना परिवार के पैर मे पत्थर बांधकर गहरे समुद्र में ढकेल देने के समान है। आज की इस गर्दन तोड़ महगाई मे जब खाना-पीना दूभर है, तो लड़की की शादी के लिए आठ-दस हजार रुपया एकत्रित करना पूरे परिवार के भविष्य के साथ खिलवाड़ करना है। बेचारे एक साधारण सरकारी कर्मचारी ने कारखाने की सहकारी समिति से जैसे-तैसे कर्ज लेकर अपनी लड़की की शादी का प्रबन्ध किया। विवाह के ऐन मौके पर ही घर आये अतिथियों ने कहना प्रारम्भ कर दिया भई व को सब प्रबन्ध सुन्दर है लेकिन घोड़े से खर्च के पीछे नाक कट जायेगी तखत और जमीन पर बरातियों को बैठने देख क्या हम लोगों की नाक ऊँची होगी। द्वार पर बरात रोज रोज थोड़े आती है लेकिन ... जो रुपया मिला था पूर्णतया समाप्त हो चुका था ... हुए अतिथियों मे से एक ने बड़े एहसान मन्द महाजन से कर्ज के रूप मे रुपये दिलवाये। ... मियान, कुर्सी, मेज कालीन आदि मे ५०० रुपये खर्च हो गये। परिवार पर कुछ समय के पश्चात ५० रुपये के अलावा सूद और ब्याज के ८०० रुपये और चढ़ गये इस पर कुल १६०० रु० कर्ज चढ़ गया। आये अतिथि खा पीकर चल दिये, खैर चलो परिवार की आधुनिकता की नाक तो कटने से बच गयी। यह हाल तो भारतीय प्रणाली मे हो गया है। चाहे कर्ज लेना पड़े, भूखों मरना पड़े लेकिन आधुनिकता की नाक ऊँची रहे। आज के प्रत्येक आधुनिक परिवार का पहला और सतत् प्रयत्न यही होगा।

*   *   *

अब लीजिये बीते हुये अंग्रेजी शासन की ओर चलिये जिसमे भी कुछ भारतीय अंग्रेजों को प्रसन्न करने और उनकी नकल करने के लिये सदैव लालायित और सतत् प्रयत्नशील रहते थे। हम अपनी चमड़ी का रंग बदलने के तो असमर्थ हैं और फिर यह कार्य हमारी शक्ति से परे भी है। लेकिन आज हम अपने जी जान से भाषा रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा आदि सभी में पाश्चात्य देशों को भी पीछे छोड़ने में सतत् प्रयत्नशील हैं। आज अपना राष्ट्र अपनी मति अपनी कला, संस्कृति और भाषा हमे रुचती नहीं। यदि हम इसी प्रकार की गुलामियत में जकड़े पाश्चात्य सभ्यता की उन्नति करने में लगे रहे तो वह दिन दूर नहीं जब हम हीनता रूपी सागर की कगार पर खड़े होंगे और इस कगार पर आने वाली हीनता रूपी सागर की ज्वार भाटा रूपी दासता की झकोर हमे कभी भी झकझोरकर दासता के अथाह सागर में डुबो देगी जहाँ से हम फिर निकलने में भी असमर्थ होंगे। ★

[पृष्ठ १० का शेष]

सत्य विवेचन अपने शब्दो मे किया। देखो श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत मे अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम परस्त्रियो से रास मण्डल क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी मे लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत-सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती। श्रीकृष्ण जी को महात्मा वेद व्यास ने अपने शब्दो मे कहा—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः

तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

अर्थात् योगिराज श्रीकृष्ण और उस वैदिक महापुरुष के पथ पर चलने वाले धनुर्धर अर्जुन होंगे। वहाँ तीन चीजें अर्थात श्री विजय भूति निश्चय प्राप्त होगी। आज इस देश का ऐसे ही वैदिक महापुरुष के शिक्षा सदाचार नीति की आवश्यकता है। ★

सत्यराध

(रयिपति बनो, रयीश नहीं)

★श्री इन्द्रदेव जी मन्त्री, अ० भा० आर्यसभा

[स्वाधीनता के पश्चात राष्ट्र-निर्माण की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, इसलिये सर्व प्रकार के वादों और विवादों से परे हैं। वेदों मे किसी विशेष मत और सम्प्रदाय का पोषण नहीं है। वेद तो सर्वजन हिताय का पोषक है। मानव धर्म का प्रतिपादन करने वाला वैदिक धर्म विषमताओं का विष दूर करता है, और समता के अमृत से मधुर जीवन का सिंचन करता है।

'सत्यराध मे जिस वैदिक सत्य की आराधना की गई है, वह कैसे राष्ट्र निर्माण मे सहायक होगी, यह इस लेख मे पढ़िए। —सम्पादक]

★

वय स्याम पतयो रयीणाम्।

राष्ट्र निर्माण

'हम सब समग्र रयि के पति बनें।' कोई व्यक्ति रयि से हीन न हो। जिससे हम रमण करते हैं, उन सब साधनों को रयि कहते हैं। रयि पर अधिकार केवल कुछ व्यक्तियों का नहीं होना चाहिये। यदि गिने चुने कुछ व्यक्तियों का ही अधिकार रयि पर हो गया तो उस रयि की रक्षा नहीं हो सकती है और हम सब रयिपति बनने से वंचित हो जावें, क्योंकि रयिपति रयि की रक्षा करने वाले को कहते हैं और गिने चुने रयि के स्वामी कुछ व्यक्तियों को रयीश कहते हैं, वे रयि के ईश अर्थात सर्वेसर्वा मालिक बन जाते हैं। एक व्यक्ति के पास अमितसम्पत्ति हो जाने से वह उसकी देखभाल भी नहीं कर सकता है। उसकी सुरक्षा के लिए नौकरों को नियुक्त करता है। नौकर उस रयि को अपना न समझने के कारण उसकी सुरक्षा मे रुचि नहीं लेते हैं। इस प्रकार एक ओर रईस वर्ग बन जाता है, दूसरी ओर श्रमिक वर्ग। रयीश वर्ग कुछ कर्ताधर्ता नहीं, श्रमिक वर्ग परिश्रम करते-करते मर जाते हैं और उन्हें सुख चैन नहीं मिलता है।

श्रमिकों की दुर्दशा

बेचारे किसान को देखिये! रात और दिन चाहे जाड़ा हो चाहे गर्मी, चाहे वर्षा। भयंकर शीत, लू और घनघोर वर्षा मे प्रकृति से टक्कर लेता है, तब कहीं अन्न आदि सामग्री को उत्पन्न कर पाता है। जहाँ खेत मे अन्न तैयार हुआ कि सरकारी तथा गैर सरकारी लोग उसके उस अन्न को लगान, तकावी, ऋण, और सभी भावों मे लूट लेते हैं और वह मिट्टी का माधव, वैसा का वैसा ही रह जाता और दाने-दाने को तरसता रहता है। आज भी गाँव मे ऐसे बहुत से लोग है जिन्हे एक बार भी भरपेट भोजन नहीं मिलता है जैसे तैसे जीवन को व्यतीत कर रहे है। इनकी धसी हुई आँखें पिचके हुए गाल, और चेहरे की झुर्रियाँ इस बात के प्रमाण हैं, चिथड़े लपेटे रहते हैं। जाड़ो मे इन पर जैसी गुजरती है वैसा परमात्मा ही जानता है, आग तप ताप कर रात काटते हैं। इनके रहने की यह दशा है कि जिस झोंपड़ी में स्वय रहते हैं, इसी मे पशुओ को, उपलों को, भूसा को, और उसी में अतिथियो को भी मजबूरी से टहराते हैं।

यही दशा मजदूरों की है, बेचारे किसान मजदूर जो श्रमिक हैं, इनकी दीन दशा अब अन्तिम अवस्था को पहुंच चुकी है। श्रमिक सारे संसार को भोजन देकर स्वय भूखा मर रहा है। सबको कपड़ा देकर स्वय नंगा घूम रहा हैं। वह संसार के रयीशों को सुखी बनाता है पर स्वय दुखी जीवन बिता रहा है और आशा की टकटकी लगाये बैठा है इन रयीशों की ओर कि वे इस पर दया-

दृष्टि डालें। अब समय आ गया है कि अभिकर्ता इन रचीशों की स्थिति को परखें।

मित्रो! वेद ने आदेश दिया है कि 'सत्यराज'अर्थात् सबका धन जो भाग्य है उसको प्राप्त करो, यदि सत्यराज को प्राप्त न किया तो सत्य से हट जाने पर आप अपराध के भागी बन जावेंगे।

सत्यराज क्या है ?

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या.। वेद। भूमि मेरी माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूं। 'मान यति इति माता' जो मान में आती है अर्थात् प्रत्येक के मान को बराबर करती है। माता पर सब पुत्रों का समान अधिकार होता है। भाग्य में जाति, आयु, और भोग सम्मिलित माने जाते हैं, भूमि नहीं। भूमि तो सबके भाग में समान है। इस भूमि से जो जितना भोग प्राप्त कर ले यह उसके कर्मों पर निर्भर है। 'भवन्ति यस्यां साभूमि' हम जिसमें होते हैं इसीलिये वह भूमि है। पुनाति पवित्रं करोति इति पुत्र' जो श्रेष्ठ कर्मों से पवित्र करता है, उसे पुत्र कहते हैं, 'पृथते विस्तीर्ण भवति इति पृथिवी' पुत्रों से माता विस्तीर्ण होती है, अत वह पृथिवी कहलाती है भूमि माता के सब पुत्र होने के नाते वसुधा कुटुम्ब हैं। कुटुम्ब में कोई भी नंगा भूखा क्यों रहे ? ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसलिये आवश्यकता है कि प्रत्येक राष्ट्र कुटुम्ब प्रणाली को चालू करे। कुटुम्ब प्रणाली ग्राम से आरम्भ होती है, प्रत्येक ग्राम को एक कुटुम्ब का रूप दिया जावे, और सबको प्राकृतिक रूप से ग्राम की सकल भूमि का उन्हें स्वामित्व देकर अपनी-अपनी जीवन यात्रा के लिये कृषि और उद्योग की व्यवस्था करके 'द्रव्य विनिमय' लागू कर दिया जावे, जिससे कि सब लोग अन्न उत्पन्न कर सकें। बस ही सत्यराज है।

इस समय भारत का कृषि क्षेत्र फल ५८ करोड़ एकड़ है। जन संख्या बढ़ते-बढ़ते यदि ५८ करोड़ हो जावे तब तक प्रत्येक के भाग में एक एकड़ भूमि आती है। यदि किसी ग्राम की जनसंख्या ५०० है और उसका कृषि क्षेत्र फल भी ५०० एकड़ है तो प्रत्येक के भाग में एक एकड़ भूमि आवेगी। उनमें १०० व्यक्तियों के कुछ ऐसे परिवार हैं जो कृषि न करके अध्यापक, सैनिक, वैद्य, लुहार, बढ़ई, धोबी, नाई इत्यादि हैं, और ये लोग अध्यापन आदि कार्य करते हैं, परन्तु वे भी एक-एक एकड़ भूमि के अधिकारी हैं। अध्यापन आदि कार्य करते हुये इन्हें एक-एक एकड़ भूमि की उपज मिलेगी और उनकी १०० एकड़ भूमि शेष ४०० व्यक्तियों में बराबर बराबर विभक्त हो जावेगी। इस प्रकार इनको अपने भाग से चौथाई एकड़ भूमि अधिक मिल जावेगी। वेदादेशानुसार उपज का सोलहवां भाग सरकार को देने के पश्चात उस चौथाई एकड़ की उपज प्रत्येक व्यक्ति अध्यापक आदि के निमित्त दे देगा। अध्यापक आदि अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहेंगे, और कृषक अपना कार्य। परस्पर सहयोग से कार्य सुचारु रूप से चलता रहेगा। सब भूमि के अधिकारी बन जावेंगे, कोई भू-हीन नहीं रहेगा। इस प्रकार सब लोग अन्न उत्पादन में लग जावेंगे। इसलिए भूमि हीनों! तुम्हारे चैतन्य होने का समय आ गया है। मोहान्धकार से निकल कर सत्यराज को प्राप्त करो।

दुःखों से मोक्षप्राप्त करने का सुन्दर अवसर

मतदान द्वारा जहाँ शासन बदलते हैं, शासन बदलने के लिये यही सुन्दर अवसर है, कि आप उन लोगों को अपना मत प्रदान कीजिये जो 'सत्यराज' के पक्षपाती हों, और आप सब राष्ट्रपति बन सकें। इस समय संसार सत्यराज को छोड़कर अपराध में फंस गया है। इस अपराध से मुक्ति प्राप्त करो।

अपराध क्या है ?

किसी भी प्रकार के सिक्के की कल्पना करना और प्रचलन ही अपराध है। सिक्का सारे पापों की जड़ है। पैसे के बल पर जो भी करना चाहो कर लीजिए। इस युग में ईश्वर से भी श्रेष्ठ वस्तु पैसा है, इसलिये मनुष्य उसी के उधेड़ बुन में लगे रहते हैं। जो अधिक पैसा इकट्ठे कर लेता है, वह पैसे के बल पर क्या-क्या अत्याचार नहीं करता है। पैसे वालों ने ही शहर बसाये, और श्रमियों से पाखाना भी उठवाना शुरू करा दिया। इससे बड़ा अपराध क्या होगा ? पैसा बीच का दलाल है, जो निठल्ले वर्ग को उत्पन्न करता है। यह निठल्ला वर्ग पैसे के बल पर श्रमिकों की कमाई को लूटता रहता है।

आर्य सभ्यता में सिक्का तो अवश्य था, परन्तु वो

फैशन के रूप में धारण करने का विधान नहीं है। धातु तो केवल रोग निवारण तथा उप करणों में प्रयुक्त की जाती थी। आभूषण भी धातु के नहीं बनते थे, बल्कि फूलों के बनाये जाते थे। सोलह सन्कारों में कर्णवेध में धातु की शलाका और वेदारम्भ में धातु की मेखला धारण करने का भी विधान नहीं है, आभूषण तो केवल गायें पहनती थी। कुण्डल और अगूठी आभूषण नहीं हैं, वे तो गोल छल्ले है, जो रोग निवारण के लिये पहने जाते हैं।

मोक्ष की ओर चलो

वर्ग की चार भुजायें हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। धर्म आधार की भुजा है, अर्थ दाहिनी भुजा और बाईं भुजा काम है। इस वर्ग की शीर्ष भुजा मोक्ष है। धर्म के द्वारा हम अर्थ का उपार्जन और काम का सेवन इस प्रकार करें कि हम उसमे फँस न जावें। बल्कि मुक्ति प्राप्त करें इसी को मोक्ष कहते हैं। अपराध बन्धन का हेतु है, और सत्यराष मोक्ष की ओर ले जाता है। सत्य-राष के मार्ग से न हम उनमे फँसते हैं, और न हम किसी को फँसाते हैं। सब स्वावलम्बी बन जाते हैं। सत्यराष ही सच्ची क्रान्ति हैं।

अस्पृश्यता निवारण

भूमि पर समान स्वामित्व प्राप्त हो जाने पर शहर के लोग स्वयमेव ग्रामों में आकर बसने लगेंगे और थोड़े ही काल में बड़े बड़े शहर ग्रामों का रूप धारण कर लेंगे। ग्रामों में भङ्गी मेहतरों की आवश्यकता नहीं। टट्टी कमाने के लिये बड़े-बड़े शहरों में भङ्गी मेहतरों की आवश्यकता है। जब बड़े बड़े शहर नहीं रहेंगे तो भङ्गी मेहतरों की क्या आवश्यकता रहेगी? अस्पृश्यता का सबसे निकृष्टतम वर्ग भङ्गी मेहतर ही है, उसके समाप्त होने से अस्पृश्यता का दुर्ग ढह जावेगा।

जन संख्या वृद्धि

ग्राम की कुल भूमि का मालिक ग्राम होगा। ऐसी अवस्था में किसी परिवार में सन्तान होने पर उसका प्रभाव कुल गांव पर पड़ेगा। अतः सन्तान उत्पन्न होने के लिये ग्राम नियम बनावेगा कि बिना गर्भाधान संस्कार के कोई भी सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकेगा। [illegible] उत्पन्न करेगा तो वह सन्तान ऐसे ही अवैध मानी जावेगी जैसा कि कुमारी अथवा विधवा के सन्तान अवैध मानी जाती है। अतः अवैध होने के नाते कुमारी और विधवायें सन्तान उत्पन्न नहीं करती हैं। इसी प्रकार बिना गर्भा-धान संस्कार के कोई सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकेगा और गर्भाधान संस्कार के लिए भग (स्वय निरोग शरीर) अर्यमा (राज्य नियमानुकूल) सविता (माता-पिता, गुरु) पुरन्धि (ग्राम निवासी) तथा देव (उपस्थित विद्वान् जन) की स्वीकृति लेनी आवश्यक है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य साधन से सन्तति निरोध होकर जन संख्या वृद्धि रुक जावेगी, और अनैतिक सन्तति निरोध की आवश्यकता न पड़ेगी।

परिवार नियोजन

कुल ग्राम इस बात का विचार करेगा कि प्रत्येक परिवार सुखी जीवन व्यतीत करे। उनकी शिक्षा और विवाह का उत्तरदायित्व ग्राम के ऊपर रहेगा। इस सत्यराष की व्यवस्था से दहेज की प्रथा बन्द हो जावेगी और गाय बैल देकर विवाह सम्पन्न हो जाया करेगा।

यज्ञ प्रचार

यज्ञ के दो भाग है १ हवन २ सहभोज। हवन बिना घी के नहीं हो सकता है और सहभोज बिना अन्न के। सत्यराष से सभी अन्न के उत्पादन में लग जावेंगे। जिसके पास अधिक अन्न उत्पन्न हो जावेगा वह अपने गाय आदि पशुओं को और मनुष्यों को खिलावेगा। गाय अन्न खाकर खूब दूध देंगी। इतना दूध होगा कि पी नहीं सकेंगे तो उस दूध से घी तैयार होगा। घी के द्वारा हवन करेंगे और स्वय खावेंगे। स्वयं खाने से हृष्ट पुष्ट बनेंगे और हवन करने से वायुमण्डल शुद्ध होकर शरीर निरोग बनेगा। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का वास होगा। इस प्रकार सत्यराष के द्वारा घर-घर यज्ञों का प्रचार बढ़ेगा।

अभियोग निवृत्ति

सत्यराष में जन्म गत स्वामित्व का नाश हो जाने से अभियोग निवृत्त हो जावेंगे और तहसील कचहरी में भीड़ कम हो जावेगी। निठल्ला वर्ग स्वयमेव शान्त हो [illegible]

वनिता विवेक

श्रीमती आनन्दीदेवी
बिश्नोई

आधार राष्ट्र की हों-
नारी सुभग सदा ही।

नारी जाति सौंदर्य की उपासक होती है। यह मनुष्य का स्वभाव है कि सब उसके प्रति आकर्षित हों। नारी अपने को भांति भांति के साधनों तथा आभूषणों से सुसज्जित करने में संलग्न रहती है। क्या वह सच्चा भूषण खोज पाई। क्या कृत्रिम भूषणों से उसकी सुन्दरता बढ़ी। माता सीता और द्रोपदी वनों में रहती हुई जिन आभूषणों से सुसज्जित रहती थीं। जो उनके शील सौंदर्य के सामने संसार नत मस्तक है। वह कौन-सा भूषण था।

वह सच्चा भूषण शील'दया-दान-सत्य-शास्त्र थे। जिनको जीवन में धारण करने से ही भारत की नारी जाति का गौरव था। नारी के सच्चे भूषण के प्रति क्या ही सुन्दर कहा है—

हस्तस्य दान भूषणं—सत्यं कण्ठस्य भूषण।
श्रोत्रस्य भूषण शास्त्र—भूषणं किं प्रयोजनम्॥

दान

दान यह नारी जाति का स्वाभाविक गुण है। जो अपने परिवार और पूर्वजों को तथा पड़ोसियों को तथा अपने सेवक तथा सेविकाओं को श्रद्धा पूर्वक देती है—

[धर्मशीला नारियां जब सच्चे आभूषणों से अलंकृत होती हैं, जब वे वेदानुसार हृदय सम्राज्ञी, सहचारिणी जाया, सुमंगली वधु, सदाचारिणी भार्या, देवपत्नी और सकुशला राका रूपों में प्रकट होती हैं, तभी तेजस्वी सन्तानों के माध्यम से राष्ट्रों को गौरवान्वित करती हैं। फैशन की क्रीत दासी और वासना की पुतली बनने नहीं वरन् शुद्ध और पवित्र जननी बनने से उनके जीवन की सार्थकता है। गार्गी मैत्रेयी, शकुन्तला, कौशल्या, सुमित्रा यशोदा और जीजाबाई ही राष्ट्र को जीवनदान दे सकती हैं—सम्पादक]

दान तीन प्रकार है, एक ऐहिक दूसरा आध्यात्मिक तीसरा जन का दान है। (जीवन दान)

पहिला दान

जो अपने बच्चों को शिक्षा का दान देती है और उनकी आंखें आध्यात्म के प्रति खोल देती है-हमारे शास्त्रों मे माता को प्रथम गुरु कहा है-जैसे मातृवान् पितृवान्-आचार्यवान्! माता प्रथम गुरु है, सन्तान को बनाना माता का कर्म-कर्त्तव्य है। शिवा जी को वीर बनाने वाली माता जीजाबाई थी। महात्मा गांधी जी को धर्म और सत्य के प्रेरणा देने वाली उनकी माता ही थीं।

दूसरा दान

आध्यात्मिक दान जो अपने पूर्वजों को जिनकी आंख तथा अन्य इन्द्रियां अब अध्ययन आदि करने में असमर्थ हो गई हैं, उन्हें सत्य शास्त्रों का पढ़कर सुनाना जैसा रामायण मे राम ने सीता को वन जाते समय कहा है।

जब-जब मात करहिं सुध मोरी,
प्रेम विकल होय मति भोरी।
तब-तब तुम कहि कथा पुरानी
सुन्दरी समझाओ मृदु बानी॥
—तुलसीदास

मत परिवर्त्तन

'आजकल बहुधा ऊंच-नीच, छुआ छूत अथवा दरिद्रता में पिसकर विवश होकर अथवा लोभ वश मत परिवर्तन किया जाता है। सत्यराज के आने पर ऊंच नीच, छुआ-छूत तथा दरिद्रता के मिट जाने से इस प्रकार का मत परिवर्त्तन बन्द हो जायेगा। सब सत्य-मार्ग की ओर अग्रसर होंगे। ★



उद्बोधन !

आर्यवीर अब उठो सिंह की तरह भौंक और खोलो कान ।
स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर तन-मन धन कर दो बलिदान ॥
भारत में ऋषियों की पावन भूमि पर छाया अज्ञान ।
वैदिक सत्य ज्ञान से 'छाजूराम' मिटा दो नाम निशान ॥
सकट में है देश, चीन और पाक चुनौती देते आज ।
कपटी, धूर्त, स्वार्थी अपनी पशुता से आते नहीं बाज ।
रण की ज्वाला सुलग रही है अगर चाहते अपना राज ।
होकर 'शान्त' न बैठो आओ करें सघठन आर्यसमाज ॥

वीर कौन?

वीर तो वही जो निज देश की सेवा के लिये,
धर्म हेतु मरे मौत से न घबरावें है ।
अत्याचार और अन्याय के दमन के लिये,
जीवन मे आगे को जो कदम बढ़ावें है ॥
दीन दुखियों को न सतावें कबहू जो यहाँ—
द्वेष औ विरोध को समाज से मिटावें है ॥
कहै 'छाजूराम' धन्य वीर है वही जो निज,
शत्रु से डरे न पीठ रण से दिखावें है ॥

—छाजूराम 'शान्त'
फैजाबाद

यह बड़ा उच्च तथा सात्विक दान है ।

तीसरा दान अन्नदान

नारी को अन्नपूर्णा कहा जाता है, पुरुष का कार्य अन्न का सग्रह करना है । अन्न का वितरण करना नारी का कार्य है । यदि नारी के हाथ अन्न दान देने में समर्थ हैं तो उसके पूवज परिवार के सदस्य सेवक-तथा अतिथि सर्वदा सन्तुष्ट रहते हैं । जो नारी श्रद्धा और भक्ति से अन्न का दान विनम्रता और मधुरता से देती है, तो सबका मन प्रसन्न होता है । यदि वही अन्न अनादर वह तिरस्कार से दिया जाता है तो लेने वाला दुखी होता है । देने का भी ढग है । कहावत है रोटी खाइए या रोटी ठूस लो) कितनी भिन्नता हो गई । अन्नदान या जीव दान है । यह नारी के हाथ का सच्चा भूषण है । सत्य वह शील नारी के कण्ठ का भूषण है । सत्य तथा मीठी वाणी से घर स्वर्ग हो जाता है । मीठी वाणी वह भूषण है जो सबको बस मे कर लेती हैं । कवि ने कहा है—

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजें चहु ओर ।
वशी करण एक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर ॥

कहते हैं सत्य कड़ुवा होता है । वही बात सरलता नम्रता से कहने में बड़े-बड़े अपराध भी क्षमा हो जाते हैं । वही सत्य कठोर शब्दों में कहने का परिणाम स्वरूप उदाहरण—महा भारत का युद्ध द्रौपदी के वचनों से हुआ ।

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे आपहुं शीतल होय ॥

श्रोत्रस्य

जो स्वयं मधुर शब्द बोलोगे तो मधुर शब्द सुनोगे तथा दूसरा सत्सग में जाकर मनीषियों द्वारा सत्य वेद वाणी का श्रवण करना वेदों का पढ़ना-पढ़ाना सुनना-सुनाना । यह कानों का सच्चा भूषण है । यदि यह सब आभूषण जीवन में उतार लिये हैं तो सोने चांदी के भूषणों की क्या आवश्यकता है ।



भूल न जाना आर्यसमाज

दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज।
डट करके कर्त्तव्य क्षेत्र में करो पूर्ण जगहित के काज ॥

अभी हमारे प्रिय भारत से नहीं अविद्या जाने पाई।
कटुता, फूट, कलह विस्तृत है हैं दुश्मन भाई के भाई।
मानवता बन्धुत्व भाव फिर से सबको सिखला दे आज
दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज ?

अभी यहाँ शोषण जारी है दीन दुःखी दुख में हैं पिस रहे
राम, कृष्ण, राणा के वंशज हैं ईसाई यवन हो रहे।
दुख हरके दुखियों का, शुद्धि अभियान बढ़ा दे आज
दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज ॥

भौतिकता के साथ नये फैशन की नित बढ़ती होती है।
अपनी भाषा धर्म और संस्कृति अब कभी बिलखती है।
सदाचार अपनत्व भाव संस्कृति से फिर अपना दे आज।
दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज ॥

नारी जाति के सुधार हित ऋषि ने अनुपम कार्य किया था।
दिया उच्च आसन नारी को सदशिक्षा का विधान किया था।
पढ़ करके अंग्रेजी टर टर बन जाती हैं लेडी आज।
दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज।

ढोंग श्रद्धा के कारण मानव सत से दूर हो रहा।
भ्रष्टाचारी पोपों से है ठगने का व्यापार हो रहा।
दे करके सत ज्ञान पापी को पाप के दुर्ग ढहा दे आज।
दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज ॥

वेद पठन-पाठन नहीं होता जो ऋषि का उद्देश्य एक था।
वेद ज्ञान भू पर विलुप्त हो यह उनका अपमान एक था।
ओ३म ध्वजा ले करके जग में वैदिक नाद बजा दे आज।
दयानन्द के सन्देशों को भूल न जाना आर्यसमाज।

—सत्यनारायण द्विवेदी

सामयिक समस्याएँ

विद्रोही नागाओं को

प्रो० आनन्दप्रकाश एम० फार्म०
उपमन्त्री—आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश

[स्वाधीन भारत में नागाप्रदेश की ज्वलन्त समस्या को शान्तिपूर्वक सुलझाने की पूर्ण चेष्टा की गई है, पर अभी तक इसमे कोई आशातीत सफलता नहीं मिल पाई है। कुछ दिन पूर्व भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था कि अब इस समस्या का निराकरण दृढ़तापूर्वक किया जाएगा। हम उनकी इस वीरतायुक्त घोषणा का स्वागत करते हैं। —सम्पादक]

नागालैंड मे युद्ध विराम समझौते की अवधि असन्तोष जनक परिस्थितियो के बावजूद लगातार बढते रहने का दुष्परिणाम अब उग्र रूप से सामने आने लगा है पिछले दिनो कोहिमा के निकट हुई मुठभेड मे विद्रोही नागाओ के पास से पकडे गये कागजातों से प्रकट होता है, इन लोगों मे साम्यवादी चीन की सहायता से नागालैण्ड की कानूनी सरकार को उखाडने की गहरी साजिश कर रखी है। वैसे तो एक लम्बे अरसे से विद्रोही नागाओ द्वारा युद्ध विराम समझौते का उलघन किया जा रहा था। यह शिकायत भी पुरानी है, कि वे प्रशिक्षण और शस्त्रास्त्र लेने पाकिस्तान और चीन जाते हैं। समय समय पर इस प्रकार के दलों के जाने तथा लौटने के समाचार भी प्रकाशित होते रहे हैं। संसद मे भी इस प्रश्न पर अनेक बार विचार किया जा चुका है, परन्तु इस दिशा मे कोई प्रभावशाली पग अभी तक नहीं उठाया गया है। बर्मा के जिस रास्ते से होकर विद्रोही नागा चीन तथा पाकिस्तान आया करते हैं, उसे बन्द कराने के सम्बन्ध मे भी संसद मे बहुत बार विचार करने के उपरान्त ही, बर्मा सरकार से बात चीत की गई, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अधिक सक्रियता अब तक नहीं बरती गई।

घटना क्रम के सम्बन्ध मे बताया जाता है कि कोहिमा से केवल ६ मील दूर ६००० फुट की ऊंचाई पर बनावक्षावित पर्वत शिखर पर चीन से सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करके लौटे नागाओं ने अपना शिविर लगा रखा था। अचानक सुरक्षा सेना के गश्तीदल की उस पर नजर पडी, और उन्होंने एक नागा को पकडा तो उस के पास से चीनी हथियार बरामद हुए। तुरन्त गश्ती दल ने शिविरो को घेर लिया। दोनो ओर से गोलियां चलीं। कितने नागा मारे गये यह तो पता नहीं चला, परन्तु २४ विद्रोही पकड गये।

प्राप्त सूत्रों के अनुसार यह स्पष्ट हो गया है, कि चीन से छापामार युद्ध में प्रशिक्षण पाये विद्रोही नागा नागालैण्ड के कई गुप्त स्थानो पर अपने समर्थकों को इस प्रकार के युद्ध सचालन का प्रशिक्षण दे रहे हैं, ऐसे प्रशिक्षण मे चीन से मिले हथियारो और दावपेचों की शिक्षा दी जाती हैं। मुठभेड में प्राप्त सामग्री मे कुछ ऐसी चीनी पुस्तकें भी सम्मिलित हैं, जिनमे छापामार लडाई की मुख्य विशेषताओ का जैसे शत्रु का सामना करने और उसे हराने के दावपेंच, लड़ाई के दौरान सिगनल देने का विस्तृत वर्णन किया गया है। विद्रोही नागाओ ने इन दांव पेचो का मुठभेड मे खुलकर प्रयोग किया था। इन पुस्तकों में विद्रोह के राजनीतिक पक्षों पर भी निर्देश दिये गये हैं। जैसे एक निर्देश मे कहा गया है कि "जब तुम्हारा शत्रु तुम्हारी किसी नीति की प्रशसा करे तो छोड़ दो। यदि वह उसकी बुराई करे तो उसे पूरी तरह आगे बढ़ाओ।" कई छोटे-छोटे गुटके भी मिले हैं, जिनमें सेना को माओ की प्रशसा में लिखी गयी कविताओं के



संग्रह हैं। इन कविताओं का चीनी भाषा से अंग्रेजी व भाषाओं की कई बोलियों में अनुवाद करके छापा गया है। उसके साथ ही जो कागजात मिले हैं, उनसे इस बात का सबूत मिलता है, कि चीनी कम्यूनिस्टों से और उत्तरी बर्मा के विद्रोहियों से इन नागाओं का घनिष्ट सम्बन्ध है। इसके अलावा इनके पास से भारी मात्रा में गोला बारूद व आग्नेयास्त्र या गोला, बारूद, माओत्सेतुंग के और चीनी प्रतिक्षिकों के फोटो, चीनी पूनिफार्म तथा चीनी निशान वाली डब्बा बन्द दवाईयां आदि भी मिली हैं। इससे पता चलता है, कि षड्यन्त्र कितना गहरा है।

भारत सरकार समझौते के लिये जितना आगे बढ़ सकती थी वह बढ़ चुकी है। भारत संघ के अन्दर रहने पर वह उन्हें स्वायत्त शासन के अधिक तम अधिकार देने को तैयार हो गई है। परन्तु उधर हालत यह है कि वे सर्वथा स्वतन्त्र एवं प्रभुसत्ता सम्पन्न नागालैण्ड की मांग से पीछे नहीं हट रहे हैं। युद्ध विराम की अवधि बार-बार बढ़ाई जा रही है, परन्तु उनकी ओर से अभी तक ऐसा कोई संकेत नहीं मिला है, कि वे उस मांग से कुछ कम मानने को तैयार हैं। इतना ही नहीं वे इस बीच में खामोश भी नहीं बैठे हैं, वे ऐसी कार्यवाहियां कर रहे हैं, जो ना केवल युद्धविराम के विपरीत हैं अपितु जिन से भारत की सुरक्षा और अखण्डता को भारी खतरा पैदा हो सकता है। ऐसी स्थिति में यह सचमुच विचारणीय है, कि क्या युद्ध विराम अवधि को बढ़ाने की जरूरत थी, जिसका अब तक केवल नाजायज फायदा उठाया जाता रहा है। परन्तु इसके बावजूद भी भारत सरकार ने एक मास के लिये अवधि का बढ़ाया जाना स्वीकार किया है।

विद्रोही नागा अपनी ओर से यह शिकायत कर रहे हैं, कि सुरक्षा सेना ने युद्ध विराम की शर्तों का उलंघन किया है। परन्तु चीन और पाकिस्तान में जाकर छापा मार युद्ध का प्रशिक्षण प्राप्त करना और वहां से भारी मात्रा में हथियार लेकर आना तो युद्ध विराम की कोई शर्त नहीं बन सकती। इस प्रकार के काम तो कोई भी सरकार बर्दाश्त नहीं कर सकती। अपने विद्रोही कामों को जारी रखने के लिये अब तक वे युद्ध-विराम की आड़ लेते रहे, यही बहुत है। अब आगे यह स्थिति नहीं चलनी चाहिये। जब विदेशी हथियार बरामद हो गये और विदेशों से सांठ-गांठ साबित हो गई तब सुरक्षा सेना द्वारा एक पक्षीय युद्ध विराम के पालन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। अब सुरक्षा सेना को विद्रोहियों को दण्ड देने के लिये पूरी तरह सन्नद्ध हो जाना चाहिए।

×

निष्प्रभ प्रांगण



ससृति के निष्प्रभ प्रांगण को ज्योतिर्मय करना है तुमको।
आर्य जाति के वीर सपूतो ! जन-विषाद हरना है तुमको ॥

रूठ चुका आह्लाद-विनोद-प्रमोद-सवेरा,
मानव-मन पर छाया दुख का गहन अंधेरा,
सार्त्ता निशाहरण को कब होगा रवि-फेरा ?

छोड़ तिमिरमय नीड़ निलय, नव-रश्मि-जाल बुनना है तुमको।
ससृति के निष्प्रभ प्रांगण को ज्योतिर्मय करना है तुमको ॥

क्यों मानव-मानस मे हाहाकार मचा है,
निज-विनाश के लिये मनुज क्यों स्वयं तुला है,
विमुख वेद-विद्या से होकर किधर चला है ?

दीप-शिखावत्, ज्ञान प्रकाश जुटाने को जलना है तुमको।
ससृति के निष्प्रभ प्रांगण को ज्योतिर्मय करना है तुमको ॥

पग पग पर बाधा रोकेगी चरण तुम्हारे,
झंझावात छलेंगे बनकर सुखद किनारे,
ज्योति-पुञ्ज बन चहकाएगे नभ के तारे।

किन्तु कपट-छल के मारुत से कभी नहीं डरना है तुमको।
ससृति के निष्प्रभ प्रांगण को ज्योतिर्मय करना है तुमको ॥

आर्य-जाति की आशाएं तुम पर निर्भर हैं,
वेद-शास्त्र की गाथाएं तुम पर निर्भर हैं,
स्नेह-अपुष्पित कलिकाएं तुम पर निर्भर हैं।

विश्व सुविकसित शान्ति दुर्ग हो जिससे वह करना है तुमको।
ससृति के निष्प्रभ प्रांगण को ज्योतिर्मय करना है तुमको ॥

—हरिवंश अनेजा



कहानी-कुञ्ज



पाप कभी छिपता नहीं

—बान० रमादेवी, लखीमपुर खीरी

[लेखिका के अनुसार यह कहानी एक सत्य घटनापर आधारित है–केवल पात्र कल्पित हैं]

एक होस्टल मे कुछ विद्यार्थी रहकर विद्याध्ययन कर रहे थे। एक शाम को आपस मे होड़ पड़ी कि सबसे अधिक निडर कौन है। एक गरीब लडका शिवस्वरूप बोला मैं किसी से नहीं डरता। अन्य लड़कों ने कहा अच्छा हम लोग चन्दा करके १००) रुपये की थैली रख देते हैं, जो लडका रात भर एक मुर्दे के पास बन्द कमरे मे बैठा रहे, प्रात १००) रु० ले ले। शिवस्वरूप ने कहा मैं बैठूगा पर मुर्दा ताजा हो दुर्गन्ध न आती हो। कुछ लडके श्मसान गये वहाँ एक मुर्दा आया गाड़ा गया लडके छिप गये, जब गाडने वाले चले गये तब खोदकर होस्टल लाया गया। शिवस्वरूप ने कहा इसे नहलाओ। लडकों का खेल सैकडों घड़े पानी डाल दिया गया और एक कमरे मे शव रख दिया गया एक कोने मे १००) की थैली रख दी गई और शिवस्वरूप पास बैठ गया लडकों ने कमरे का द्वार बन्द कर लिया पर बत्ती जलने दी। थोड़ी सी विलम्ब होने के बाद क्या देखता है कि शव हिलने डुलने लगा और आँखें खोल दीं। अब शिवस्वरूप घबराया चिल्लाया खोलो दर्वाजा हम नहीं बैठेंगे। इतने में शव उठकर बैठ गया अब तो शिवस्वरूप बेतहासा चिल्लाया खोलो शव उठकर बैठ गया मेरा हार्ट फेल हो रहा है, तब लडकों ने खोला सब शव बैठा आंखें फाड़-फाड़ देख रहा था, लड़के डरे दरवाजा बन्द करके पुलिस को ले आये, सब हाल बताया थानेदार ने आगे बढ़ कर पूछा तुम कौन हो। जिसे अभी तक शव कहा था वह बोली मैं कहां हू बताया कि एक होस्टल में। थानेदार तुम्हारा क्या नाम है, उसने कहा शीला—मैं बी० ए० की छात्रा हू एक दिन मेरी चाची ने कहा था तुम थोड़े दिन की हो मैं समझी शादी आदि के कारण कह रही होंगी, तभी खाना खाया मुझे कै हुई। सर दर्द हुआ मैं सो गई अब यहाँ मेरी आंखें खुली थानेदार के पूछने पर चाचा का तथा मोहल्ले का नाम बताया एक कांस्टेबिल बताये मुहल्ले में चाचा के घर गया पूछा क्या तुम्हारे यहाँ कोई मर गया था जोर-जोर से धाड़ मार-मार कर रोने की आवाज आई, चाचा ने कहा मेरी भतीजी परसों हैजे से मर गई–वापस आकर थानेदार को बताया गया। फलस्वरूप एक रिक्शा मगाकर कफन में बची बचाई शीला बैठालकर चाचा के घर मय पुलिस के पहुची, दरोगा ने कहा यही तुम्हारी शीला है? शीघ्र चाचा-चाची के हथकड़ी डाल दी गई, शीला के बयान हुये इसी प्रकार मेरे माता-पिता हैजे से मरे। वास्तविक बात यह थी कि शीला अपने माँ बाप की इकलौती बेटी थी धन बहुत था मोटर बगले आदि-आदि। चाचा गरीब था इसका बड़ा लड़का अस्पताल में नौकर था हल्का-हल्का जहर लाकर इस परिवार को साफ किया पर यह न जाना कि पाप कभी छिपता नहीं। चाचा के छोटे-छोटे बच्चे किसी रिश्तेदार के यहाँ भेज दिये गये। बाकी सब जेल की हवा खाने लगे। शीला ने कहा मैं इसी लड़के से शादी करूंगी जो मेरे शव के पास बैठा था। भाग्य का चक्र गरीब लड़का धनपति हो गया शीला बची अधर्मी का नाश हुआ।

बादलों में इन्जेक्शन द्वारा वर्षा

विज्ञान वार्ता

अब प्यासी धरती के ऊपर के बादल बिना वर्षा किये नहीं गुज़र सकता। एक हलका विमान बादलो के नीचे चक्कर काटता है। बिजली की चिनगारी के साथ कुछ राकेट ऊपर उछलते हैं, और बादलों के ऊपर एक विशेष रासायनिक पदार्थ छिड़क दिया जाता है, जो गर्म हवा की धाराओं से ऊपर उठने लगता है। इस पदार्थ के प्रभाव से बादल जल छोड़ने के लिये विवश हो जाते हैं। इस रसायनिक पदार्थ को चेकोस्लोवाकिया के वैज्ञानिक पायरोटेक्निकल मिक्सर कहते हैं।

बादलों की ऊपरी सतहों पर और ५ डिगरी के तापमान पर भी पानी की बूंदें जमती नहीं हैं। लेकिन चांदी या जस्ते के आयोडायड के कणों को बर्फ के चूरे के साथ टकराकर पानी की बूंदों को तुरन्त जमाया जा सकता है। जब उन जमे हुये जल कणों का घनत्व, बादलों को बहा लिये जाने वाली गर्म हवाओं के घनत्व से अधिक भारी हो जाता है तो ये जल-कण नीचे गिर पड़ते है। नीचे हवा की गर्म तहों से गुजरते हुये ये कण फिर पानी की बूंदें बन कर बरस पड़ते है।

इंजेक्शन

चेकोस्लोवाक विज्ञान अकादमी के वायु मण्डलीय भौतिक विज्ञान संस्थान के प्रयोगों से नये चेकोस्लोविया पायरोटेक्निकल मिक्सर की प्रभावशीलता सिद्ध हुई है। अगर वर्षा करना है तो 'इन्जेक्शन' बादलों की सही ऊंचाई पर दिया जाना चाहिए। चूंकि बादलों की स्थिति हर क्षण बदलती रहती है, इसलिये उनके बारे मे वैज्ञानिक राडार द्वारा जानकारी हासिल करते हैं।

बादलों को निशाना बनाकर इस तरह पानी बरसाना कोई सस्ता तरीका नहीं है, फिर भी यह लाभदायक है, क्योंकि इससे करोड़ो रुपयो की रकम के बराबर मूल्यवान पानी लगभग प्राकृतिक रूप में प्राप्त किया जा सकता है। ५ ग्राम चीनी देने वाले चुकन्दर को उगाने के लिये ४५ लिटर पानी और १ किलो अनाज उगाने के लिये ६०० लिटर पानी आवश्यक होता है। एक आदमी औसतन ३ लिटर पानी प्रतिदिन पीता है और सफाई आदि कामो के लिये २ या ३ हैक्टोलिटर पानी रोज इस्तेमाल किया जाता है।

वैसे चेकोस्लोवाकिया ऐसे क्षेत्र मे है जहां बारिश की कमी नहीं है, लेकिन यह वर्षा सब जगह एक-सी नहीं होती है। उदाहरण के लिये उत्तरी पश्चिमी बोहेमिया के और पर्वतों की तलहटी मे लौनी और जातेच जिलों में पानी कम बरसता है, यद्यपि धरती बड़ी उपजाऊ है। इसलिये यहां कृत्रिम रूप से वर्षा कराना बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

ओलो के विरुद्ध

इस तरह वर्षा कराने से कुछ और भी प्रकार के लाभ हैं। उदाहरण के लिये उत्तरी बोहेमिया के क्षेत्र में बड़े विकसित रसायनिक उद्योग है कोयला खानें हैं, और बिजली के कारखाने हैं, मगर यहा पर साल भर आकाश बादलो मे छिपा रहता है। घने कुहरे के कारण दुर्घटनायें होती हैं, मजदूर काम पर देर से पहुंचते हैं, और खुली खानों मे काम असम्भव हो जाता है। कुहरे के कारण उद्योगो का विषैला धुआ भी नीचे वायुमण्डल मे ही घुमड़ता रह जाता है। इस क्षेत्र मे कृत्रिम वर्षा करा देने से कुहरा छंट जाता है, और हवा धुयें और धूल से मुक्त हो जाती है।

रूस विज्ञान संस्थान के ७० वैज्ञानिकों की एक टीम ने डा० यमेक पोहजीसेक के नेतृत्व मे कुछ प्रयोग करके यह भी सिद्ध किया है, कि कृत्रिम वर्षा के साधनों को ओले गिरने से रोकने के लिये भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जिन बादलों मे ओले होने की सम्भावना हो वैज्ञानिक इसका पता लगा लेते हैं—उसमे इन्जेक्शन देने से, पानी ओले बनने के पहले ही गिर पड़ता है।

अभी हाल तक लोग वर्षा के लिये यज्ञ और हवन करते थे नृत्य और गीत समारोह आयोजित करते थे, या मोमबत्तियाँ तथा घंटियां लेकर जलूस निकालते थे। किन्तु अब लोग वैज्ञानिक रूप से भी स्वयं तै कर सकेंगे कि कहां और कब पानी बरसना है। इस क्षेत्र में भी वैज्ञानिक अन्तरराष्ट्रिय सहयोग कर रहे हैं, और शीघ्र [illegible]

विश्व-वैचित्र्य

टिकटिकी पर चलने वाला युवक मास्को को पैदल रवाना

बेलग्रेड-युगोस्लाविया के मांटीनीग्रो प्रान्त का एक युवक जो अपंग है, पैदल रूस की यात्रा के लिये रवाना हो गया है।

वह है २८ वर्षीय स्वेट जार दुरोविच। वह टिकटिकी के सहारे चलता है। वह ८ नवम्बर तक मास्को पहुंच जाने की आशा रखता है।

उस दिन रूस के लाल चौक मे रूसी सेना की बड़ी परेड होगी। वह उसको देखने के लिये लालायित है।

स्वीडन में संसार की सबसे छोटी बैटरी का निर्माण

स्टकहाम—स्वीडन की एक कम्पनी ने बताया है कि उसके अनुसन्धानकर्त्ताओं ने एक ऐसी बैटरी तैयार की है जो संसार मे सबसे छोटी है।

यह पारे से बनाई गई है। इसका प्रयोग चिकित्सा के यन्त्रों तथा बिजली की घड़ियों आदि मे किया जायगा।

फूलों के कारण उत्पादन मे वृद्धि

डार्मस्टेड—सामान्यतः हर व्यक्ति अपना एक तिहाई जीवन अपने रोजगार के स्थान पर बिताता है। मनोवैज्ञानिकों का हमेशा यह मत रहा है कि कर्मचारियों को अपने कम या कारखाने मे प्रसन्न रहना आवश्यक है और इसके लिए उपयुक्त वेतन ही नहीं बल्कि वातावरण भी अच्छा होना चाहिये।

इसी दृष्टि से कार्यालय मे काफी रोशनी, मैत्रीपूर्ण व्यवहार तथा अन्य सुविधाओं की ओर काफी ध्यान दिया जाने लगा है।

एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि कार्य मे उत्साह बढ़ाने के लिये फूलों का होना भी आवश्यक है। फूलों से नीरस वातावरण में उत्सुकता आ जाती है और इसका असर उत्पादन पर पड़ता है। उदाहरणार्थ पश्चिमी जर्मनी की जिन फर्मों में फूलों का उपयोग होता है वहां कर्मचारी अपेक्षाकृत कम बीमार पड़ते हैं और इस कारण कम छुट्टियां लेते हैं। पश्चिम जर्मनी में लगभग २० प्रतिशत फर्मों में फूलों का उदारता से उपयोग होता है।

महारानी एलिजबेथ के बाल हमने सवारे दो जर्मन नाइयो का दावा

म्युनिख-यहां के दो नाइयो और बवेरिया के नाई संघ मे एक विचित्र मुकदमा शुरू होने की आशंका है।

ओडियन प्लटज म्युनिख का प्रसिद्ध व्यावसायिक केन्द्र है। यहां दो नाइयों ने एक बड़ी दुकान खोली है। उनका दावा है कि सन १९६० मे जब ब्रिटन की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय यहां आई थी तब उनके बाल सवारने की जिम्मेदारी उन्हीं को सौंपी गई थी।

अन्य नाइयों ने इस दावे को असत्य कहा है और जर्मनी के विदेश मन्त्रालय से प्रार्थना की है कि वह पता लगाये कि सत्य क्या है।

जर्मन विदेश मन्त्रालय ने जानकारी प्राप्त करने के लिये महारानी एलिजबेथ के महल बकिंघम पैलेस को पत्र लिखा है।

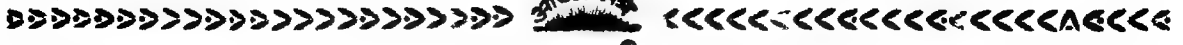
पता चला है कि महारानी एलिजबेथ जब विदेश जाती हैं तो अपने बाल सवारने वालों को साथ ले जाती हैं। इसलिये यह सम्भव नहीं है कि म्युनिख मे उनको स्थानीय नाइयों की सहायता लेनी पड़ी हो।

किन्तु उक्त दोनों नाई अब भी यह कह रहे हैं कि उन को एक पुलिस की गाड़ी मे बैठाकर महारानी एलिजबेथ के निवास स्थान पर ले जाया गया था वहां उन्होंने उनके बाल सवारने की क्रिया सम्पादित की थी।

अगूठे का कमाल

ओसली के एक प्रेस कर्मचारी घर से बाहर जब कभी किसी प्रेमिका से प्रेम मे लिप्त होते, घर पर उनकी पत्नी के पैर का अगूठा फड़कने लगता था। इनके घर पर आने पर जब पत्नी इनकी प्रेमलीला का उद्घाटन करती तो यह सहम जाते और अपनी करतूतों को स्वीकार कर लेते।

जब पतिदेव सीधे रास्ते न लगे तो पत्नी ने न्यायालय में इनको तलाक देने की मांग कर दी। अगूठे की फड़कन की गति से यह सिद्ध हो गया कि वास्तव में पत्नी का दावा उचित है।



तेजोऽसि तेजो मयि धेहि

बाल-विनोद

प्रकाश को सभी पसन्द करते हैं। अंधेरा किसको भाता है। बच्चे अंधेरे से भागते हैं। प्रकाश में वे खूब खेलते हैं। प्रकाश में न केवल प्राणी ही पनपते हैं बल्कि पौधे और फल-फूल भी फूलते फलते हैं। परमात्मा हमें सदैव प्रकाश मे रक्खे, अन्धकार से बचावे। मनुष्य के चेहरे पर जो प्रकाश दीखता है, उसको हम तेज कहते हैं। जिस लड़के, लड़की के चेहरे पर तेज होता है उसी को लोग सुन्दर कहते है। तेजहीन चेहरे वाले बालक कुरूप गिने जाते हैं। तेज, बिना स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं हो सकता। स्वास्थ्य, बिना शारीरिक बल के नहीं मिल सकता, इसलिये शारीरिक बल द्वारा स्वास्थ्य द्वारा तेज प्राप्त करो। तुम्हारे मुखड़े तेज से भरपूर दिखाई दें। ईश्वर से प्रार्थना करो कि हे परमात्मन आप तेज स्वरूप हो हम बालकों को तेज प्रदान करो।

परन्तु परमात्मा तेज उनको देते हैं, जो स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते है। स्वास्थ्य के नियम यह हैं—

[१] प्रातः उठना, उठकर शौचादि से निपट कर वायु—सेवन करना, अथवा खुली हवा मे नित्य प्रति व्यायाम करना।

[२] शरीर को खूब मल कर स्नान करना और उसको अच्छी तरह पोंछ कर साफ सुथरे वस्त्र धारण करना।

मैले कुचैले रहने वाले बालक प्रायः बीमार रहते हैं उनके चेहरे पर तेज नहीं आता।

[३] भूख लगने पर खाना और प्यास लगने पर जल पीना। जरूरत से अधिक खाने-पीने वाले बालक स्वास्थ्य खो बैठते हैं।

[४] सर्वदा किसी न किसी अच्छे कार्य में लगे रहना, बेकार न बैठना, क्योंकि बेकार रहने से भी चेहरे का तेज घटता है।

सदा ईश्वर से प्रार्थना करो "मयि धेहि कृपा कृपम" मुझ में खूब तेज धारण कराओ।

अनमोल-रत्न

१—आचार्य वह है जो अपने आचार से हमें सदाचारी बनावें। —गांधी

२—हमारी इच्छायें जितनी ही कम हों, उतने ही हम कम देवताओं के समान हैं। —सुकरात

३—क्रोध मूर्खता से शुरू होता है और पश्चाताप पर अन्त होता है। —पैथागोरस

४—एक अच्छी माता १०० शिक्षकों के समान है। —जार्ज हरबर्ट

५—सच्चा मित्र वह है जो तुम्हारे दोषों को आइना की तरह बतावे। जो तुम्हारे अवगुणों को गुण बतावें वह खुशामदी है। —गजाली

६—मेहनत वह सुनहरी चाभी है जो खुद किस्मत के फाटक को खोल देती है। —चाणक्य

—संकलन कर्ता सुभाषचन्द्र बाधवा

अनमोल मोती

—शरीर जल से साफ होता है, मन सत्य से, बुद्धि ज्ञान से, तथा आत्मा धर्म से साफ होती है।

—"मनु महाराज"

—यदि तुम किसी का चरित्र देखना चाहते हो तो उसके महान कार्यों को मत देखो उसके जीवन के साधारण कार्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करो।

—श्री अरविन्द

—उबलते हुये पानी मे जिस प्रकार हम अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख सकते उसी प्रकार क्रोध में हम अपनी भलाई नहीं देख सकते।

—महात्मा गांधी

"वाचं वदत भद्रया"

●

ऋषि देव के पुनीत आदेश 'वाच वदत भद्रया' का पालन किया जाय तो प्रायः पारस्परिक कलह मतभेद तथा झगड़े समाप्त हो जाय। वाणी सबसे बड़ा भूषण है। भर्तृहरि जी महाराज अपने नीतिशतक मे लिखते हैं—वाग्भूषण भूषणम।

परमपिता परमात्मा ने जिह्वा को कोमल (बिना हड्डी के) इसलिए ही बनाया है कि मनुष्य इसके द्वारा मीठी तथा कल्याणकारक वाणी बोले। मीठी वाणी बोलकर ससार को वश मे किया जा सकता है। महात्मा तुलसीदास जी का वचन है—

तुलसी मीठे बोल से सुख उपजत चहुओर
"वशीकरण यह मन्त्र है, तजदे वचन कठोर"

जब स्वामी राम अमरीका के हवाई अड्डे पर उतरे तो वहाँ वे देखते है कि यात्रियो की कारों की लम्बी लाइन लगी खडी है। यात्री अपनी २ गाडी में सवार होकर चल दिये। विदेश मे खडे हक्के बक्के यह सब दृश्य देखकर वे चिंतित थे। सहसा एक कार के मालिक ने उनसे पूछा," महाराज! जो व्यक्ति आपके साथ यात्रा कर रहे थे, वे सब गाड़ी मे बैठकर चले गए। आपही अकेले यहा रह गये। क्या आपका यहां कोई जानकार नहीं? या आपको लेने वाला ही नहीं पहुचा? स्वामी राम ने मुस्कराते हुए प्रत्युत्तर दिया कि आप मेरे जानकार हैं, और आपही मुझे लेने आये हो। बस इतना कहना था कि वही व्यक्ति स्वामी राम का अपना ही बन गया। उसने स्वामी राम को उनके अभीष्ट स्थान पर भी पहुचा दिया। कोयल और कव्वे का रंग एकसा ही है, परन्तु वाणी का भेद होने के कारण ही लोग कोयल को पसन्द करते हैं और कव्वे को नापसन्द। कोयल किसी को धन नहीं देती और कव्वा किसी का धन छीनता नहीं। केवल मीठे वचन बोलकर ही सबको वश मे कर लेती है—

'कागा किसका धन लेता है,
कोयल किसको धन देती है।
केवल मीठे वचन बोलकर,
वस मे सबको कर लेती है।"

द्रोपदी का कठोर वचन महाभारत के युद्ध का कारण बना। उसका दुर्योधन को यह कहना—'अंधों के अन्धे ही पैदा होते हैं' महायुद्ध का कारण बन गया। इस युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि भारतवर्ष अब तक अपनी पूर्व दशा मे नहीं आया। यह है कठोर वाणी बोलने का प्रभाव।

नीति की आज्ञा है कि "प्रिय ब्रूयात"— प्रिय वाणी बोलो। ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिसमे अपने को भी तथा दूसरों को भी शीतलता मिले। सन्त कबीरदास जी का कथन है—

ऐसी वाणी बोलिगे, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय।।

सत्य जो प्रिय न लगे उसको भी नहीं बोलना चाहिये। काने को काना कहना कटु सत्य है। किसी ने कहा है—

काने को काना कहो, काना गुस्से होय।
धीरे-धीरे पूछिए भाई कैसे दी है खोय?।।

गीता मे योगेश्वर कृष्ण जी ने कहा है—

अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रिय हितम्"—अर्थात् वाणी अनुद्वेगकारी, सत्य, प्रिय और हितकारक बोलनी चाहिए।

ऋषिवर देव दयानन्द ने 'अमीचन्द' को अपनी भद्र [कल्याणकारण] वाणी से एक बार ही तो कहा था, "अमीचन्द जी! हो तो हीरे परन्तु कीचड़ में फसे हुये हो।" बस इतना कहने मात्र से उस अमीचन्द का सारा जीवन पलटा खा गया। वह अपने दुर्व्यसनों को छोड़ने लगा और सद्गुणों को ग्रहण करने लगा। आगे चलकर वह भक्त, अमीचन्द बन गया। यह है वाच वदत भद्रया" का प्रभाव जिसने एक दुर्व्यसनी व्यक्ति का भी जीवन पलट दिया।

—अनूपसिंह, मुजफ्फरनगर

—घृणा राक्षसो की सम्पत्ति है, क्षमा मनुष्यत्व का चिह्न हैं। प्रेम देवताओ का स्वभाव है।

—भर्तृहरि

—सकलन कर्ता कु० अरुणा त्रिपाठी

श्रमदान शिविर

"जिला आर्य वीर दल मीरजापुर" की ओर से २९ सितम्बर रविवार को प्रात ८ बजे से शिवशकरी धाम मे १ दिन का 'श्रमदान शिविर' लगाया जायगा। जिसमे 'आर्य धर्मशाला' की शिलान्यास पडेगी, तथा श्रमदान का विशेष काय होगा। अत मीरजापुर जिले के सभी आर्य समाज व आर्य वीर दल के मन्त्रियों से निवेदन है कि अपने यहाँ से १० आर्य वीर भेजें जो श्रमदान प्रतियोगिता मे भाग ले सकें। उनके भोजन की व्यवस्था नि शुल्क होगी। पिछले 'मेला प्रचार शिविर' का प्रमाण पत्र भी दिया जावेगा।

—खेवनसिंह, स० सचालक

अन्तरङ्ग की सूचना

जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा मीरजापुर के अन्तरग की बैठक दि० १८ अगस्त, रविवार, समय १ बजे दिन स्थान आर्य समाज मन्दिर मीरजापुर मे होगी जिसमे अनेक महत्वपूर्ण विषयो पर विचार किया जावेगा। सम्बन्धित महानुभावो से अनुरोध है कि वे इसे नोट कर समय से पधारने की कृपा करें।

—खेवनसिंह

मन्त्री, जिला आर्य सभा मीरजापुर

अखिल भारतीय आर्ययुवक परिषद १८ अगस्त को वृन्दावन मे उत्तरप्रदेशीय युवक सम्मेलन का आयोजन कर रही है। भाग लेने के इच्छुक निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें।

महासचिव अखिल भारतीय आर्य युवक परिषद्
पोद्दार भवन, स्वामी विवेकानन्द मार्ग सान्ताक्रुज बम्बई-५४

आर्य युवक परिषद् ने निश्चय किया है कि वेद सप्ताह मे सत्यार्थप्रकाश की कथा, भाषण तथा स्वाध्याय कराने के लिये आपसे प्रार्थना की जावे। जिससे ८ सितम्बर ६८ को होने वाली परिषद की सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाओं मे सभी लोग लाभ उठा सकें।

जन सम्पर्क बढ़ाने के लिये परिषद् ने निश्चय किया है कि भविष्य में मासिक बैठकें नगर के समाज मन्दिरों



मे ही की जावें। बैठको के लिये स्थानादि देंगे तथा कर्मठ साथियों सहित भाग लेने की सभी से आशा की जाती है। बैठकों का किसी पर किसी प्रकार का भार नहीं पड़ेगा।

परिषद् की सदस्यता का वार्षिक शुल्क १) रु० मात्र हैं, सभी क्षेत्रो के सभी उत्साही सज्जन सहर्ष सदस्य बन, युवकोपयोगी कार्यों मे भाग ले सकते है।

'आगामी वेद सप्ताह के उपलक्ष्य मे रविवार ८ सितम्बर १९६८ को महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की परीक्षाओ का आयोजन आर्य युवक परिषद् के तत्वावधान मे सारे देश मे किया जा रहा है। परीक्षाओं की पाठविधि, नियमावली आवेदन-पत्र तथा अन्य जानकारी परीक्षा कार्यालय आर्यसमाज दरियागंज दिल्ली-६ से प्राप्त की जा सकती है।'

—चमनलाल परीक्षा मन्त्री

आर्य कुमार गुरुकुल इन्द्रपुरी

सावरे जिला इन्दौर से स्थानान्तरीत होकर उपरोक्त गुरुकुल १० जुलाई १९६८ ई० प्रात. ११ को नवीन छात्रों के वेदारम्भ सस्कार के साथ आरम्भ हो गया।

समस्त पत्र व्यवहार, सचालक आर्य कुमार गुरुकुल इन्द्रपुरी, अरनेश्वर(मक्सी) पो० सिरोल्या जिला शाजापुर म० प्र० के नाम किया जाय।

सूचना

१७ जून १९६८ को आर्य कुमार सभा, आर्य नगर भूड़ बरेली का वार्षिक उत्सव समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ, एव सत्र १९६८ के लिए सर्वसम्मति से कार्यकारिणी का चयन भी किया गया।

सात्विक दान

आर्यसमाज कांठ [मुरादाबाद] मे श्री लाला चन्दूलाल जी तथा उनके सुपुत्र श्री रामेश्वर प्रसाद जी अग्रवाल पूर्व निवासी कांठ वर्त्तमान निवासी मण्डी धनौरा मे जो आर्य समाज कांठ को अपना मकान सात्विक दान दिया है। उसके लिये हार्दिक धन्यवाद देती है। और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आपकी इस दानशीलता एवं धार्मिक भावना का सवर्धन कर आपको यशगौरव प्रदान करे। —सुरेशचन्द्र आर्य

मन्त्री, आर्यसमाज कांठ (मुरादाबाद)

सूचना

नगर आर्यसमाज लखनऊ मे दि० ८-८ ६२ से १५-८ ६८ तक सायंकाल ८ बजे से ९॥ बजे तक 'वेदों मे गाय के महत्व" पर कथा होगी तथा यह भी बताया जायगा कि वेदों मे कहीं भी गोमांस भक्षण का कथन नहीं है। —मन्त्री नगर आर्य समाज लखनऊ

कार्यालय आर्यप्रतिनिधि सभा उ० प्र० मे शोक सभा

"शतायु श्रीपाद दामोदर सातवलेकर वैदिक साहित्य के स्तम्भ के निधन पर शोक सभा प्रस्ताव करती है कि उनकी दिवगत आत्मा को सुख शान्ति प्राप्त हो। श्री प०सातवलेकर १०१ वर्ष पूर्ण करके पारडी स्थान में कुछ समय से रोग ग्रस्त थे।

हम लोग उनके दुखद मृत्यु से अत्यन्त क्षुब्ध हैं उनकी वैदिक सेवायें आर्य जगत् की बहुमूल्य देन है। जिससे कि आर्य जगत् बराबर बल, शौर्य तथा शक्ति पाता रहा।

उनकी दुखद मृत्यु पर २-८-६८ को कार्यालय बन्द कर दिया गया। —शिवप्रसाद निरीक्षक, सभा

आर्यसमाज गोला

स्थानीय आर्य समासदों की सभा कर्मठ आर्यसमाजी कुशल समाज सेवी श्री कुञ्जबिहारीलाल जी राठी सतत सदस्य के निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है, तथा परमात्मा से प्रार्थना करती है, कि दिवगत के शोक सतप्त परिवार को यह दुख सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

—आर्यसमाज रांची ने ७ जून ६८ को अपने साप्ताहिक अधिवेशन में बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा पटना के मान्य मन्त्री श्री प० बद्रीनारायण जी शर्मा के असामयिक एवं आकस्मिक निधन पर गहरा शोक प्रकट किया।

—आर्यसमाज समस्तीपुर (बिहार) ने आर्य प्रतिनिधि सभा पटना के महामन्त्री प० बद्रीनारायण शर्मा जी के आकस्मिक निधन पर शान्ति और सद्गति के लिये प्रभु से प्रार्थना की।

—आर्य समाज सदर (मेरठ) का यह साप्ताहिक अधिवेशन (७-७-६८) आर्यसमाज के वयोवृद्ध सदस्य आर्य कन्या इन्टर कालिज के प्रधान श्री रामजीलाल के निधन पर हार्दिक दुख प्रकट करता है। आप आर्यसमाज के मूक सेवक थे। आपने दीर्घकाल तक कन्या विद्यालय की प्रबन्धक व प्रधान के रूप मे बड़ी तन्मयता से सेवा की। आपके निधन से आर्य समाज का एक वयोवृद्ध कार्यकर्ता हम से बिछुड़ गया है।

आर्य समाज के सदस्य गण उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं, और उ के परिवार के प्रति हार्दिक सवेदना प्रकट करते हैं।

प्रस्तावक—श्री प० सत्यव्रत शास्त्री, उपाध्याय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर

समर्थक—श्री प० शिवदयालु जी

आर्य समाज सदर (मेरठ) का यह साप्ताहिक अधिवेशन (७-७-६८) माननीय प० हरिशंकर जी वैद्य, शास्त्री के निधन पर हार्दिक दुख प्रकट करता है। आप गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की दीर्घकाल तक प्रधान आदि के रूप मे सेवा करते रहे। आप के निधन से मेरठ ने अपने आयुर्वेद के मूर्धन्य चिकित्सक को सदा के लिये खो दिया है। पण्डित जी आदर्श तपोमूर्ति थे और आप गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में जाकर साधना किया करते थे।

हम सब उपस्थित व्यक्ति उनकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रभु से कामना करते हैं, और उनके परिजनों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

—नगीना आर्यसमाज स्व० बाबू मुरलीधर जी वकील नगीना जो समाज के बड़े पुराने समासद तथा प्रेमी थे

[शेष पृष्ठ १२ पर]



सूचना

आर्य उप-प्रतिनिधि सभा मुरादाबाद ने मास नवम्बर, ६८ में कई वर्षों से स्थगित सस्ती वार्षिकोत्सव योजना के अन्तर्गत समाजों के उत्सव कराने का निश्चय किया है। कार्यालय की ओर से समाजों को पत्र तिथि निश्चय विषयक भेजे जा चुके हैं,

इस योजना के अन्तर्गत उप सभा उपदेशकों प्रचारकों का व्यय भार वहन करेगी तथा अन्य पन्डाल, लाउडस्पीकर, भोजन निवास इत्यादि का समस्त व्यय भार स्थानीय समाज को वहन करना होगा।

इस योजना के अन्तर्गत सम्बन्धित समाज को उपसभा को १५०) रु०की धनराशि भेंट की होगी।

—उमरावसिंह शर्मा

समस्त नेत्र रोगों की
अचूक औषधि

नेत्र के समस्त रोगों, जैसे मोतियाबिन्द की प्रथम अवस्था, मन्द दृष्टि, फूला, कुकरे तथा पानी का बहना आदि की अचूक औषधि—एक हिमालय के तपस्वी सन्यासी से प्राप्त हुई है। उसका विधि पूर्वक निर्माण किया है। इस औषधि के लगाने, खाने व सूघने से समस्त नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं। नेत्रों की ज्योति बढ़ जाती है। फिर नेत्र-ज्योति आयु भर स्थिर रहती है। जीवन भर चश्मे की आवश्यकता नहीं रहती।

यदि आप चश्मा लगाते हैं तो कम से कम ४० दिन तक, और यदि मोतियाबिन्द आरम्भ हुआ है तो कम से कम ८० दिन तक इस औषधि के खाने-लगाने व सूघने से अद्भुत लाभ प्राप्त होता है। स्वस्थ नेत्रों में नित्य प्रति लगाने सूघने से किसी प्रकार का नेत्र रोग उत्पन्न ही नहीं होता।

इस सम्बन्ध में स्वयं मिलें अथवा पत्र-व्यवहार करें। उत्तर के लिये १५ पैसे के टिकट भेजें।

४० दिन के प्रयोग का मूल्य लागत मात्र—लगाने की ५) रु० प्रति शीशी, सूघने की ५) रु० प्रति शीशी। खाने की साधारण औषधि ६०)रु० तथा शीघ्र व विशेष गुण के लिये विशेष स्वर्ण, मोती, केसरादि से युक्त का मूल्य २००) रु० है। एकबार अवश्य परीक्षा कीजिये। वेद सप्ताह के उपलक्ष मे औषधि के प्रचार तथा विश्वास के लिये प्रथम कोर्स २५) रु० मे डाक व्यय सहित दिया जाएगा। यह सुविधा दीपावली तक रहेगी।

सूचना:—इसके अतिरिक्त हमारे यहां दमा, अर्श (बवासीर), सफेद कुष्ठ, प्रमेह, प्रदर, नपुंसकता तथा पथरी आदि रोगों की भी चिकित्सा सावधानी से की जाती है।

मिलने का समय—प्रात ७ बजे से १२ तक

—वैद्य देवेन्द्र आर्य
आर० एम० पी० (उ० प्र०)
देवेन्द्र रसायन शाला, दयानन्द नगर, गाजियाबाद।

सांस्कृतिक गोष्ठी

अखिल भारतीय आर्य युवक परिषद् सागर शाखा द्वारा १४ जुलाई को आर्य समाज मंदिर मे 'भारतीय संस्कृति मे शिक्षा का स्थान' विषय पर श्री कृष्णदत्त वाजपेयी अध्यक्ष इतिहास पुरातत्व विभाग सागर विश्वविद्यालय की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुई। जिसका उद्घाटन डा० लक्ष्मीनारायण दुबे ने किया। इस अवसर पर परिषद के महामंत्रि रामनारायण ने शिक्षा संस्कृति के लिये परिषद के द्वारा किये जा रहे कार्यों का परिचय दिया। इसके डा० बलभद्र तिवारी एवं सूर्य प्रकाश मिश्र आदि विद्वान प्रोफेसरों के व्याख्यान हुए।

परिषद् का चुनाव

अखिल भारतीय आर्य युवक परिषद् सागर शाखा का चुनाव भी सम्पन्न हुआ। जिसमे निम्न पदाधिकारी चुने गये।

अध्यक्ष—युधिष्ठिरपाल, कार्यवाहक डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, उपाध्यक्ष—डा० बलभद्र तिवारी विहारीलाल वृजविहारीलाल दुबे एवं सूर्यप्रकाश मिश्र। महासचिव विष्णुकुमार आर्य उपसचिव श्यामसुन्दर दुबे, सन्तोष शुक्ल, राजकुमार। कोषाध्यक्ष गोविन्दप्रसाद गुप्त, रिश। सरक्षक रमेशकुमार सोनी चुने गये।



उनकी मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है, कि परिवार को इस महान् दुःख को सहन शक्ति प्रदान करे। —कुन्दनलाल आर्य

उत्तर प्रदेश प्रान्तीय आर्य महा सम्मेलन का विशाल आयोजन

प्रान्त के सभी आर्य बन्धु एवं बहनों की सेवा में। नम्र निवेदन है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के आदेशानुसार प्रान्तीय आर्य महा सम्मेलन जिला सभा मेरठ द्वारा १ नवम्बर से ४ नवम्बर तक गंगा स्नान के विशाल मेले में (गढ़ मुक्तेश्वर) श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में मनाया जाएगा। जिसमें प्रान्त के आर्य बन्धु तथा बहनें एक मंच पर बैठकर सोचेंगे कि देश में अराष्ट्रीय भावना जो देश को विघटन की ओर ले जा रही है उसको आर्यसमाज ऋषि दयानन्द के दिव्य सन्देश द्वारा ही रोक सकता है, यह विचार आर्यसमाज के प्रभावशाली प्रचार प्रसार एवं त्याग द्वारा ही जन-जन में भावना उत्पन्न कर सकेगा। ऐसा हमारा विश्वास है। इसी भावना से हम प्रान्त के बहन और बन्धुओं से आग्रह पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि इस सम्मेलन को सफल बनाने हेतु उन दिनों में अधिक से अधिक संख्या में पधार कर अपनी उदार भावना का परिचय देंगे।

—भवानीप्रसाद मन्त्री जिला सभा

आसाम के लिए सुयोग्य प्रचारकों की आवश्यकता

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को आसाम के लिये ऐसे प्रचारकों की आवश्यकता है जो प्रचार कार्य, संस्कार आदि कराने में निपुण होने के साथ साथ प्रबन्ध की योग्यता भी रखता हो। मिशनरी भाव में काम करने वाले हिन्दी अंग्रेजी में निष्णात स्वस्थ एवं कार्य कुशल सज्जन ही पत्र-व्यवहार करें। सुयोग्यव्यक्तियों को सभा अच्छी दक्षिणा देगी। —ओम्प्रकाश त्यागी संयोजक

अमृत वर्षा

महर्षि दयानन्द ने कहा था--

स्वराज्य महिमा

दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। मत मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्ष-पात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

भारत के ह्रास का हेतु

ऐसे शिरोमणि देश को भारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया, क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह? 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' जब नाश होने का समय निकट आता है, तब उल्टी बुद्धि हो कर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सूधा समझावे तो उल्टा मानें और उल्टा समझावे उसको सूधी मानें।

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य मित्र



मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

लखनऊ-रविवार माघ ६ शक १८९०, माघ शु० ९ वि० सं० २०२५, दिनाङ्क २६ जनवरी १९६९

गणतंत्र अङ्क

सम्पादक

प्रेमचन्द्र शर्मा

प्रार्थना के स्वर-

रक्षा करो! रक्षा करो!! रक्षा करो!!!

(१) पाहि नो अग्ने रक्षस पाहि धूर्ते धूर्ते रराव्ण. ।
पाहि रीषत उतवा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय ॥
[ऋ० १-३६ १५]

(२) मा न शंसो अररुषो धूर्ति प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षाणो ब्रह्मणस्पते ॥ [यजु० ३ ३०]

(३) त्वं नो अग्ने महोभि पाहि विश्वस्या अराते ।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ [साम पू० १ १ ६]

(४) रक्षा मा किनो अघशंस ईशत मानो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवास्तेनो ॥
[अथर्व० १९-४७ ६]

भावार्थ—[१] हे महाबे अग्नि, महाबलिन, ज्ञान स्वरूप प्रभो ! हमें राक्षसों से बचाओ । धूर्तों और कृपणों से बचाओ । पीड़ा देने वाले और मारने की इच्छा रखने वालों से बचाओ ।

[२] हे सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सर्व रक्षक, सर्व नियन्ता परमात्मन् ! आप ही हमारी रक्षा करने वाले हैं । आप हमारी रक्षा इस प्रकार करें कि धूर्त मनुष्यों की धूर्तता नष्ट हो जाये और हम आर्यों की कीर्ति बनी रहे, ताकि अनार्य भी आर्य बन जायें ।

[३] हे दिव्य परमेश्वर ! तू अपनी सकल महानताओं के माध्यम से हमें ऐसी दिव्य प्रेरणायें प्रदान कर कि मनुष्य के समस्त द्वेष भाव मिट जावें । मानव की सब अज्ञानतायें समाप्त हो जावें और धरती पर का मनुष्य प्रेम पूरित हृदय से सुखासी बन जाये । हे सर्व ज्ञानिन तू हमारी इस भांति सदैव रक्षा करता रहे ।

[४] हे सर्व रक्षा कारी प्रभो ! हमारी इस भांति रक्षा करो कि कोई पापी हमारा शासक न बने, न कोई दुराचारी हम पर शासन कर सके । हमारी पति शीलता को अवरुद्ध करने वाला और बकरियों पर भेड़िये के समान हिंसा और



परमेश्वर की अमृत वाणी—

राजा को प्रजा चुने और राजा राज्य कार्य्य संचालन के लिए दो सभाओं का निर्माण करे।

●

राजा का निर्वाचन

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि॥

[अ० ३।४।२]

भावार्थ—(विश) प्रजाएं (त्वां राज्याय) तुमको राज्य के लिये (वृणताम्) चुने (इमा पञ्च देवी) ये पांच दिव्य गुणों से युक्त (प्रदिश.) प्रदिशाएं (त्वाम) तुमको (राष्ट्रस्य) राष्ट्र के (वर्ष्मन) शक्ति युक्त (ककुदि) श्रेष्ठ स्थान में (श्रयस्व) आश्रय करें (उग्र.) तेजस्वी होकर (तत न) वहां से हमें (वसूनिभज) ऐश्वर्य दें।

राज्य कार्य्यों के लिए सभाओं का निर्माण—

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापते दुहितरौ संविदाने।
येन संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सगतेषु॥

[अ० ७।१२।१]

भावार्थ—(प्रजापते) प्रजापालक (दुहितरौ) कन्या के समान (संविदाने) एक दूसरे के अनुकूल कार्य्य करने वाली (सभा) सभा (च) और (समिति) समिति (मा+अवताम्) मेरी रक्षा करें। (येन सङ्गच्छै) जिसके साथ में मिलूं (स मा उप शिक्षात्) वह मुझे शिक्षा देवे। (पितर) हे ज्ञानियों! रक्षको!! (सङ्गतेषु) सम्मेलनों में (चारु) सुन्दर (वदानि) बोलो।

परमेश्वर ने अपनी पुनीत वेद वाणी मे मनुष्यों को स्पष्ट आदेश दिया है, कि राजा अथवा राष्ट्रपति अथवा चक्रवर्ती राजा चुनने का अधिकार प्रजा जनों का है। राष्ट्र अथवा विश्व नायक वह हो जो अनासक्त निर्लिप्त शांत स्थिर, तेजस्वी आदि दिव्य गुणों से युक्त हो, क्योंकि ऐसा श्रेष्ठ पुरुष ही राज्य में सुख-समृद्धि को प्रदान कर सकता है।

परमात्मा ने ऐसे दिव्य राष्ट्रपति को भी राज्य सचालन का एकाधिकार नहीं दिया। उनको भी दो सभाओं और समितियों से राज्य शासन को चलाना है जिनको वर्त्तमान युग में राज्य सभा और लोकसभा के नाम से हम जानते हैं कि ये दोनों सभाएं जन कल्याण के लिये परस्पर मिल जुलकर काम करें और राज्य की रक्षा करें।

कौन कहता है कि वेद में सुन्दर गणतन्त्र की व्यवस्था का विधान नहीं है। —'वसन्त'

★ ओ३म् ★

साप्ताहिक **आर्यमित्र** गणतन्त्र अंक

वर्ष	लखनऊ—रविवार माघ ६ शक १८९० माघ शु० ९ वि० स० २०२५	अङ्क
७१	२६ जनवरी १९६९ ई० दयानन्दाब्द १४४ सृष्ट संवत १९६० ८५ ३० ६८	४

सभा प्रधान श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री का

बरेली में भव्य अभिनन्दन एवम् १७८०) की थैली भेंट

आर्य समाज बिहारीपुर बरेली के निमन्त्रण पर आर्य प्रतिनिधि सभा लखनऊ की अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन रविवार १२ १ ६९ ई० को बरेली नगर मे अभूतपूर्व समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। श्री विक्रमादित्य जी बसन्त मुख्य उप मन्त्री कार्यालय सहित ११ जनवरी ६९ को बरेली पधारे। आपके स्वागतार्थ स्टेशन पर कार्यकर्त्ता पहुचे हुये थे। मन्त्री जी के न पहुच सकने के कारण आपके द्वारा ही अन्तरङ्ग की कार्यवाही सचालित हुई



सभा प्रधान श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री १२ १ ६९ को प्रात काल ही बरेली पधारे। बिहारीपुर आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन मे उनका आध्यात्मिक प्रवचन हुआ। श्री ब्रजनारायण जी एडवोकेट प्रमुख सयोजक द्वारा सभा प्रधान को एक चादी का सन्दूक जिस पर प्रधान शब्द अङ्कित था भेंट किया गया। सभा कार्यालय के लिए दो भव्य चित्र भी (एक महात्मा नारायण स्वामी जी का तथा दूसरा श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री का) प्रदान किए गये।

माननीय श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री ससद् सदस्य

सायकाल एक बृहत सार्वजनिक सभा में सभा प्रधानजी का भव्य अभिनन्दन करते हुए उन्हें १७८०) रुपये की थैली अर्पित की गई। जिसका विस्तृत विवरण इस अङ्क में पृष्ठ ३१-३२ पर देखें।

अन्तरङ्ग सदस्यों के निवास व भोजन की व्यवस्था अति सुन्दर थी। समस्त अन्तरग सदस्यों को श्री ब्रजगुप्त जी आर्य प्रधान बिहारीपुर आर्यसमाज तथा प० बिहारीलाल जी शास्त्री के सुपुत्र श्री अरविन्दलालजी द्वारा सुन्दर ट्रे, डायरियाँ, कैलण्डर और तशतरियाँ भेंट की गई।

सम्पादकीय अर्चन्नु स्वराज्यम्

★

वेद स्वराज्य का समर्थक है। ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त स्वराज्य की महिमा का बखान करता है, जिसके प्रत्येक मन्त्र के अन्त में पाद पूर्ति 'अर्चन् स्वराज्यम्' पद से की गई है। बारम्बार इन शब्दों को दुहराना इस बात पर बल देता है, कि स्वराज्य परम अर्चनीय है। प्रत्येक राष्ट्र जो स्वतन्त्र है, उसे स्वराज्य का अर्चन करना चाहिये। 'पराधीन सपने सुख नाहीं' पराधीनता एक अभिशाप है। परतन्त्र राष्ट्र तेज हीन और जीवन हीन होते हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसीलिये अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है कि विदेशी राज्य चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो और स्वदेशी राज्य चाहे कितना ही बुरा क्यों न हो, फिर भी स्वदेशी राज्य अच्छा है।

स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात् प्रमुख आवश्यकता होती है, उसके रक्षण की, ताकि वह पुन परतन्त्र न हो जाय। अथर्व वेद की एक ऋचा के अनुसार 'यद्ज प्रथमं स बभूव सह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्पर-मस्ति भूतम्'

अर्थात् (यत्) जो (सम्अज) समाज या जन समूह (प्रथमं बभूव) प्रथम श्रेणी का होता है, अर्थात सब भाँति श्रेष्ठ होता है वही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है यस्मात् अन्यत्परमं भूते नास्ति जिससे बढ़कर राष्ट्र के लिये कोई विभूति नहीं है।

वेद जहाँ स्वराज्य का पोषक है, वहाँ स्वराज्य में गणतन्त्र पद्धति का भी समर्थन करता है। गणतन्त्र पर आधारित राज्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व जन नायकों पर होता है। जन नायक जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, अतएव मूल रूप में यदि जन निर्माण नहीं होता है तो जन नायक कभी भी ठीक प्रकार से निर्वाचित नहीं हो सकते और जब तक जन नायकों का समूह ही ठीक न हो स्वराज्य कैसे सुराज्य होगा और जब तक स्वराज्य न हो, उसकी सुरक्षा कैसे हो सकती है। वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद परमेश्वर की सत्य वाणी है अतः स्पष्ट शब्दों में कहता है कि प्रथम श्रेणी का जन समूह ही राष्ट्र की रक्षा करता है, क्योंकि राष्ट्र से बढ़कर उस के लिये कोई अन्य विभूति नहीं है।

१५ अगस्त ४७ को भारत अंग्रेजों की दासता के पाश से मुक्त हुआ। स्वाधीनता के संग्राम में रत रहते हुये पुनीत २६ जनवरी को मर्यादा पुरुषोत्तमराम के सुपुत्र लव के नाम पर निर्मित लाहौर नगरी के पास बहने वाली नदी रावी के पावन तट पर जनतन्त्र का पुनीत व्रत लिया गया था, जिसे स्वाधीनता के उपरान्त २६ जनवरी को ही स्वाधीन राष्ट्र द्वारा स्वीकार किया गया और १९५२ से लेकर अब तक जनता के प्रतिनिधियों द्वारा भारत का शासन चलाया जाता है, किन्तु समस्त राष्ट्रवासी इस बात को भली-भाँति अनुभव करते हैं कि स्वाधीनता के पश्चात् राष्ट्र की क्या उन्नति अथवा अवनति हुई है और जिनके हाथ में जनता शासन सौंपती है, वे जनता की इच्छाओं के अनुकूल कहाँ तक उतरते हैं।

एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जब तक जन नायक में निकृष्ट स्वार्थ का बाहुल्य है और परमार्थ की पुनीत भावना का अभाव है, वह जन नायक राष्ट्र को केवल नोच खसोट सकता है और जिस जन नायक को परमार्थ की लगन होती है, वह अपना सर्वस्व अर्पित करता है। हमारे ये जन नायक कैसे हों। वेद हमारा मार्ग दर्शन करते हुये कहता है--

'स पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ (ऋ० ६।५४।१)

अर्थात् जो सरलता पूर्वक अनुशासन करता है और जो ऐसा ही बोलता है। जानने वाले, ऐसे ज्ञाता विद्वान् के द्वारा ही हम सम्मुन्नत होते हैं। ऐसा जन नायक ही पूषन होता है। वह ही सम्यक् रूप से समान भाव से सबका पोषण करता है।

कितने स्पष्ट शब्दों मे वेद ने जननायक के विषय में महत्वपूर्ण ज्ञान दिया है। जननायक में सर्व प्रथम पोषण का सामर्थ्य होना चाहिए। जो किसी का पोषण करता है, वह पूषा है। जिस प्रकार परमेश्वर सृष्टि का पिता और पालक है, जिस प्रकार सौर मण्डल का पोषक सूर्य पूषा है, वैसे ही नायक को अपने जन का पूषा होना है। राष्ट्र नायक है तो राष्ट्र का सेना नायक है तो सेना का उसे पूषा होना है।

यह जन नायक वेदानुसार पूषा की भावनाओं से ओत-प्रोत रहे, इसलिए वेद ने कहा है कि उसे विदुषा होना चाहिए। जननायक यदि अज्ञानी होगा तो रक्षण और पोषण ठीक प्रकार से नहीं कर सकेगा। परमात्मा की पावन सृष्टि में मानव मात्र का ही नहीं वरन् प्राणिमात्र मे जो आत्मा का दर्शन करता, अर्थात् जिस में समत्व की भावना है, ऐसा समदर्शी ही वास्तविक जन-नायक है क्योंकि वह भगवान् के विधान को समझ कर तदनुसार स्वयम् आचरण करता है। वह जिस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, उसे भी उन्नति के शिखर पर ले जाता है। वह व्यर्थ के वादों-विवादों से स्वयम् भी बचता है और विनाशकारी विघटनकारी संघर्षों से अपने समाज और राष्ट्र को भी बचाता है। ऐसा पोषण विद्वान् ही कर सकता है। अज्ञानी जन नायक तो भाई मतोवाद, जातिवाद और सम्प्रदायवाद के संकुचित क्षेत्र मे ही नाना प्रकार के संघर्षों को खड़ा करता है, और जीवन को व्यथित और अशान्त करता है।

जन नायक का जीवन कैसा हो तो वेद का मन्त्र कहता हैं, सरल क्योंकि सरलता साधुता का लक्षण है और साधुता के ३ आधार हैं, मित्रता, मृदुता और शांति जिसके सर्वथा विपरीत असाधुता शत्रुता, कटुता और उत्तेजना पर आधारित रहती है। सरल जीवन भी ही सरलता पूर्वक अनुशासन करता है, क्योंकि वह भीतर बाहर एक रूप होता है। ज्ञानी यदि कुटिल है, तो उसका अनुशासन भी कुटिलता युक्त होगा। कुटिल शासन में रक्षण नहीं भक्षण होता है। सरल विद्वान् महत्वाकांक्षी होता है, क्योंकि उसका मस्तिष्क कल्याण का चिन्तन करता है। उसके मन में शिव संकल्प होते हैं, आत्मा की सद्इच्छायें होती हैं,। ऐसे ही सरल निष्कपट ज्ञानी पूषा के विषय में वेद ने कहा है, 'त पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वान्' (ऋ० १।१४५।१) अर्थात् उससे पूछो, वह पहुंचा हुआ है वह जानता है, वह ज्ञानवान् है।

यह ज्ञानी पूषा है जो सरलता पूर्वक आदेश देता है, जो प्रथम् स्वयम् अनुशासन में रहता है, और दूसरों को तत्पश्चात् आदेश देता है। आचरणपूर्वक आदेश का ही पालन होता है। वेदानुसार 'स्वेन क्रतुना स वदेत' (ऋ० १०।३१।२) पहले क्रतु करना पड़ता है तब बोलना अभीष्ट होता है।

महत्वाकांक्षी ज्ञानी पूषा में एक विलक्षणता सरल अनुशास्ता के अतिरिक्त यह होनी चाहिए कि वह दृढ़ निश्चयी होना चाहिए। केवल भाषण कला में ही वह प्रवीण न हो, किन्तु जो बोले, उसे करके दिखाये। जो जन नायक कहे कुछ और करें कुछ उन पर जनता की आस्था अधिक दिन तक नहीं बनी रह सकती। जहां अविश्वास हो, वहां शान्ति कैसे स्थिर रह सकती है। जन-नायक न तो बहु वाकवादी होना चाहिए और न ही नितान्त चुप्पी साधने वाला हो। वह मित भाषण करने वाला हो। नपे तुले शब्दों में मन्तव्य को स्पष्ट करे। न चापलूसी करे और न खुशामद और नहीं अपने निश्चय बारम्बार बदले। जो स्वयम् स्थिर नहीं है, वह दूसरे को कैसे स्थिर रख सकता है।

गणतन्त्र के पावन दिवस पर हमने अपने पाठकों के सम्मुख एक वैदिक दृष्टिकोण उपस्थित किया है। हमारी यह हार्दिक कामना है, कि हमारा राष्ट्र फूले और फले और यदि हमे स्वराष्ट्र से वास्तविक स्नेह है तो उस के प्रतीक त्याग को अङ्गीकार करें। यदि हम में जन नायक होने के गुण विद्यमान नहीं है तो हम स्वतः पीछे

वेद-विवेचन चिरजीवी गणतन्त्र हमारा हो!

वेद मे राज्य शासन के अनेक प्रकार बतलाये गये हैं। एक प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होता है कि जब प्रलय के पश्चात् नई अमैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति होती है, तब कौन राजा होता है, कौन से राष्ट्र होते हैं, उनके अधिपति कौन होते है, राज्यों का नामकरण किस प्रकार होता है। वे दिव्य मुक्त आत्मायें जो चतुर्युगी तक मोक्ष सेवन के उपरान्त पुन धरती पर अवतरित होती हैं, और परमेश्वर जिन्हे अपने अमर ज्ञान वेद से पुलकृत करता है, ऐसी वेदज्ञ आत्मायें इस धरती पर कैसे राज्य कार्य चलाती है? सत्य ज्ञान सागर वेद मे राज्य प्रबन्ध की अनेक लहरियाँ हैं जिनमे एक ऐसी भी है, जिसे विराट शासन की संज्ञा दी गई है।

यह विराट शासन क्या है?

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वम बिभेद। इयमेवेदं भविष्यतीति॥ [अथर्व ८।१०।१]

★श्री विक्रमादित्य जी 'वसन्त'
सभा मुख्य उपमन्त्री

क्या राज्य शासन की कोई ऐसी भी व्यवस्था हो सकती है जिसे वैराज्य शासन भी कहा जा सके तो वेदानुसार यह भी एक व्यवस्था है जो धरती की उत्पत्ति के प्रारम्भ में रहती है। केवल इस बात को आत्मानुभूत करते हैं कि धरती परमपिता परमेश्वर की है। वही इसका वास्तविक स्वामी है। केवल मनुष्य को ही नहीं अन्य चेतनों के उपयोग के लिये भी यह धरती है। इसी लिए जो धरती का वास्तविक राजा है, उसको ही भूप मान कर क्या राज्य विहीन व्यवस्था से हमारा काम नहीं चल सकता। सब लोग परस्पर मिल जुल कर रहें। अपनी आवश्यकता से धरती को न घेरें, अपनी आवश्यकता से अधिक पदार्थों को एकत्र न करें। स्वयम् जियें और दूसरों को जीने दें। यदि [illegible] जाति मानव अपने मानवीय धर्म का पालन करे और यम नियम से जीवन को संयमित करे और परमात्मा की धरती को परम स्वामी के राज्य में ही चलने दे तो जीवन आनन्द युक्त बन जाये। अतएव वि+राट अथवा वि+राज व्यवस्था भी शासन की एक अनुपम व्यवस्था है जिसकी चर्चा वेद में की गई है। यहाँ पर यह कहना प्रसङ्ग के अनुकूल होगा कि आज भी विश्व की अनेक असभ्य कही जाने वाली जातियों में किसी न किसी रूप मे यह विराज् व्यवस्था अब भी लागू है। उनका कोई नेता नहीं होता है। जब कोई संघर्ष होता है तो सब लोग एकत्र हो जाते हैं और जो परस्पर निर्णय होता है, उसको सब प्रसन्नतापूर्वक

छूट जायें और [illegible] हित को सम्मुख रखते हुए उन जन नायकों को नेतृत्व सौंपे जिनमे वेदानुसार उपयुक्त गुण हों। यदि हम ऐसा करेंगे तो निस्सन्देह हमारा गणतन्त्र आदर्श रूप लेगा, और हम स्वराज्य को सुराज्य मे परिणत कर सकेंगे। यदि हमें स्वराज्य से प्रेम है, और हम उसका रक्षण करना चाहते हैं तो कदापि न भूलें कि—

'राष्ट्र प्रेम का मूल्य प्राण है,
देखें कौन चुकाता है।
सुमनों की शैय्या को तजकर,
कटक पथ पर आता है॥"

मान लेते हैं। सत्य युग कहे जाने वाले काल में अनेक दृष्टान्त ऐसे आये हैं, जब न कोई राजा रहा न कोई सेना। सब लोग धर्मानुसार व्यवहार करते रहे, और परमेश्वर को ही राजा मान कर अपना कार्य चलाते रहे।

किन्तु मनुष्य के स्वभाव में स्वार्थ का जो एक रूप अन्तर्निहित है। मनुष्य के भीतर जो एक भाव का एक प्रवाह है, जिसके अन्तर्गत काम क्रोध लोभ मोह अहंकार आदि अपने खेल खिलाते रहते हैं और भोग कर्मी जगत् के दृश्यों में परिवर्तन होता रहता है, वेद ने उस सत्य को सम्मुख रखते हुए इस मन्त्र में कहा था कि ऐसी परिस्थिति सदैव नहीं रह सकती। वैराज् शासन में कोई अध्यक्ष नहीं होता। सब जनता मिलकर परमात्मा के नाम पर अपने-अपने क्षेत्र में पृथक् पृथक् शासन करती है। सब लोगों को सदैव मिल कर बैठना और एक सा निर्णय देना जब सम्भव नहीं होता तो छोटी छोटी सामितियाँ और सभायें बन जाती हैं—'सा उदक्रामत सा सभायां न्यक्रामत' (अ० ८ १०.८) सभायें जनशक्ति की प्रतीक बनी। 'सा उदक्रामत् सा समितौन्यक्रामत' समितियों में जन शक्ति उत्क्रान्त हुई सा उदक्रामत् सा आमन्त्रणन्यक्रामत् जन शक्ति जब और अधिक उत्क्रान्त हुई तो शक्ति का आमन्त्रण मन्त्रिमण्डल में परिणत हो गया। अतएव क्रमशः विकास के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि राजविरहित व्यवस्था से ही जन समितियाँ बनीं जिन्होंने कालान्तर बृहत रूप धारण किया और लोक राज्य की स्थापना हुई जिसमें अधिकार का केन्द्रीयकरण करने के निमित्त एक अध्यक्ष हुआ जिसे राजा की संज्ञा दी गई। जन राज्य वेद की ही देन है—

'इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय। महते जनराज्याय। राज्य को शत्रु रहित रखने के लिए क्षात्र का प्रादुर्भाव करने के लिये जन राज्यों की स्थापना हुई धरती पर विभिन्न राज्यों में होने वाले परस्पर संघर्षों को शान्त करने तथा जीवन को सुखप्रद बनाने के निमित्त एक चक्रवर्ती राज्य के निर्माण की महत्ता को कालान्तर वेदानुसार स्वीकार किया गया।

चक्रवर्ती राज्य अर्थात् समस्त पृथिवी का एक शासक

परमात्मा की धरती जब विभिन्न क्षेत्रानुसार नाना प्रकार के राज्यों में बट गई और विभिन्न जन नायकों के आधीन राज्य व्यवस्था होने लगी तो उन छोटे-छोटे राज्यों के केन्द्रीकरण के निमित्त वेदानुसार एक बृहद साम्राज्य की स्थापना की गई—

साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं।
पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं।
समन्तपर्यायी स्यात् सार्व भौमः।
सार्वायुषः आन्तादापरार्धात्।
पृथिव्यै समुद्र पर्यान्ताया एकराट् इति।

समुद्र पर्यन्त पृथिवी का एक राज्य जिसमें अनेक छोटे-छोटे राज्य हो पर उन सब का एक विधान हो और समस्त भू पर एक ही प्रमुख भूपति हो जिसका निर्वाचन प्रजा द्वारा हो—

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूप सद्यो नमस्यो भवेह
त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च
देवीः। (अथर्व० ३।४।२)

अर्थात् सब प्रजा राज्य शासन के लिये एक राजा को स्वीकार करे और ५ प्रकार के प्रजाजन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र और निषाद उसका आह्वान करें और वह सबके सम्मान का पात्र हो।

प्रजा द्वारा चुना हुआ नरेश कालान्तर पुरोहितों द्वारा मनोनीत होने लगा और कालान्तर राजगद्दी की परम्परा पड़ गई। अब युग ने पुनः गणतन्त्र व्यवस्था को अपनाया है, किन्तु उस सम्बन्ध में वैदिक दृष्टिकोण क्या है, इसका विवरण वेद मन्त्रों में इस प्रकार दिया गया है—

वैदिक गणतन्त्र

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापते दुंहितरौ संविदाने।
येना सगच्छा उपमा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः
यजुर्वेद ॥

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः॥
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे॥
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु॥
यद्वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥
[अथर्व० ७ १२।१ ४]

अथर्व वेद के इन मन्त्रों में शासन व्यवस्था को निर्मातृ सभाओं और समितियों की चर्चा की गई है। आज यदि विश्व के प्रजातन्त्रीय विधान बनाने वाले राष्ट्र इन मन्त्रों के अनुरूप चलें तो समस्त शासन निर्दोष होकर प्रजातन्त्र को सुखद और शान्त कर दे। इन मन्त्रों में जो पुनीत प्रेरणाएँ दी गई हैं वे संक्षेप में इस प्रकार है—

[१] सभायें और समितियाँ शासक की मानव की कन्यायें होती हैं। किसी भी प्रकार की अशिष्टता न हो। शान्ति पूर्ण वातावरण हो। श्रेष्ठ ज्ञानी उसके सदस्य हों।

[२] सभायें और समितियाँ न रष्टिा हों अर्थात् श्रेष्ठ जन प्रतिनिधियों से निर्मित हों। सदस्य सवाचस अर्थात् एक दूसरे को समझने वाले हों।

[३] समितियों और सभाओं में समासीन होकर सदस्य बैठें, ज्ञान चर्चाएँ हों जो जनता को कर्त्तव्य पथ में आरूढ़ कर सकें।

[४] समितियों और सभाओं के सदस्य जब जब विचार विमर्श करें अथवा जहाँ कहीं भी हों उनका समस्त चिन्तन और कार्य कलाप जनता के हित के लिए हो।

वेद ज्ञान का अथाह सिन्धु है। उसमें मानव जीवन को सत्य, शिव और सुन्दर बनाने के लिये सहस्रों दिव्य प्रेरणायें हैं। गणतन्त्र के पुनीत दिवस पर केवल बाह्य आडम्बरों में ही रत न रह कर यदि हम गणतन्त्र के वास्तविक महत्व को समझ कर उसे अङ्गीकार करें तो हमारा गणतन्त्र न केवल चिरजीवी होगा वरन् हमारे लिए सुख शान्ति और आनन्द की वृष्टि करने वाला होगा।

आवश्यक सूचना

उत्तर प्रदेशीय समस्त आर्य समाजों को सूचित किया जाता है कि सभा के उपदेशक श्री विश्ववर्धन वेदालंकार ने सभा की सेवाओं से त्याग पत्र दे दिया है, अतः समाजें उन्हें किसी प्रकार का धन न देवें।

—विक्रमादित्य वसन्त सभा मन्त्री



श्रीमान् माननीय वसन्त जी,

सादर अभिवादन!

आपकी अध्यक्षता मे 'आर्यमित्र' की दिनोंदिन उन्नति को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ईश्वर कृपा करें आपकी देखरेख में यह दिनदूनी रात चौगुनी वृद्धि को प्राप्त हो, यही हमारी मंगल कामना है। आपको बहुत-बहुत बधाई हो।

—ओमवती पमारीखेड़ा लखनऊ

वयं राष्ट्रे जागृयाम

जागृत युग आया जन जगजा,
क्यों ? सोता करके प्रमाद !
गई सदा से भ्रम नींद जो रही सभी जन जन घट छाय ।
वे अपने सत्कर्म सुखद वह, अविद्या तम से रहे भुलाय !!
सहते हुये विषम दुःख आये, अब तो हो गये भव्य भोर !
वेदार्योदय हुआ देश में, देख रहा फिर किसकी ओर !
जगा गये महर्षि दयानन्द, कर सत्यार्थ वैदिक नाद !
जागृत युग आया जन, जगजा, क्यों ? सोता करके प्रमाद !
वेद पुकार रहे ओ मानव ! 'अब' वय राष्ट्रे जागृयाम ।
गौरव बढ़ेगा तभी तुम्हारा, शोभित होंगे आर्य सुनाम !!
हुआ सवेरा रहा लुटेरा, कब तक इन्हें रहेगा देख !
प्रहरी बन तू वीर देश का, दुश्मन करें उलझन रेख !!
जगा गये वे एक सन्यासी, आती न क्या ? उनकी याद !
जागृत युग आया जन जगजा, सोता क्यों ? करके प्रमाद !
संकीर्णता ले बैठ गये क्यों ?,क्या ?तुमको न करना काम !
भरा रक्त है वीर भूमिका आर्यावर्त्त देश का नाम !!
सबल साथ ईश्वर का ले के, बढ़ो चलो कर्तव्य ज्ञान !
ओम् ध्वज फहराओ घर-घर, रख वेदों का निज अभिमान !!
प्रशासन था जब पोपों का, असह्य सह रहे अवसाद !
जागृत युग आया जन जगजा, क्यों ? सोता करके प्रमाद !
वेद प्रचार रहा विश्व में, विस्मित रह गये वह लोग !
नास्तिक था वह आस्तिकता को,मान रहे ईश्वर का योग!!
अनिष्ठता का भाव मन्द तज, उत्कृष्टता को ले कर चाल !
सौमित होगा जागृत जीवन, सहज हटेगा दुःख विशाल !!
मिथ्यावादी, विषय देश मे, लगे करने को है बरबाद !
जागृत युग आया जन जगजा, क्यों ? सोता करके प्रमाद !
भार असीम देश का ऊपर, आर्य सहन करें हैं आज !
विकृत भाव बढ़े जन-जनका, रहे मिलाते आर्य समाज !!
जन जागृत का है युग आया'क्यों ?सोते जन पांव पसार !
आदर्श जीवन बनें तुम्हारा, समझ सचेत चलो "घनसार" !!
चाहे जो कल्याण देश का, छोड़ चलें सब मिथ्यावाद !
जागृत युग आया जन जगजा, क्यों ? सोता करके प्रमाद !

—कवि कस्तूरचन्द "घनसार"
उपाध्यक्ष, आर्य समाज, पीपाड़ शहर

बीसवें गणतन्त्र दिवस पर

उत्तर प्रदेश की उपलब्धियां

कृषि-उत्पादन में आशातीत वृद्धि

★१९६८—६९ मे १७६ लाख टन खाद्यान्न की उपज

नये उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन

★बिक्री-कर से तीन वर्ष के लिये छूट

★औद्योगिक उपकरण, मशीनें, कच्चा माल और भवन-निर्माण सामग्री चुंगी से मुक्त

★रियायती दरों पर बिजली

★विकसित औद्योगिक स्थान एवं कारखानो के लिए स्थल

अगले पांच वर्षों में--

कृषि में ६ प्रतिशत और उद्योगों में ८ से १० प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य

प्रदेश के सर्वतोमुखी विकास के लिए सबका सहयोग अपेक्षित है

विज्ञापन संख्या ७ सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित



सामयिक रचनाएँ

गणतन्त्र दिवस पर- राष्ट्र भाषा

हिन्दी के प्रसार का व्रत लें

★आचार्य श्री रामवीर शर्मा एम. ए.
(अलीगढ़)



अंग्रेजों ने भारत पर लगभग २५० वर्ष तक राज्य किया था, और अंग्रेजी भाषा को अपनी शासकीय भाषा बनाया तथा बाद में इसे ही शिक्षा का माध्यम बना दिया। जिसका उद्देश्य लार्ड मैकोले के अनुसार यह था कि भारत में ऐसे काले अंग्रेज पैदा किये जाएं जो आकार प्रकार में तो भारतीय प्रतीत होते हों, पर आचार व व्यवहार में अंग्रेज हों। इसी सिद्धान्त को लेकर मैकोले ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया और समस्त भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी का दास बना दिया। लार्ड मैकोले का वह दिवा स्वप्न पूर्ण हो गया। आज हम भारतवासी बाहर और भीतर दोनों ओर से अंग्रेजियत से भरे हुए हैं। हमारी वेश-भूषा हमारा खानपान सभी कुछ अंग्रेजियत से युक्त है। हम चाहते हुए भी अंग्रेजियत से मुक्त नहीं हो रहे हैं।

देश को स्वतन्त्र करने के लिये देशवासियों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहे, सहस्त्रों गोली के शिकार बने, और मातृभूमि की बलिवेदी पर अपने प्राण निछावर कर दिए, उसी त्याग एव बलिदान के फलस्वरूप १५ अगस्त ४७ को देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, और राष्ट्र के कर्णधारों ने अपना एक सविधान निर्माण किया। जिसके अन्तर्गत भारत की एकता एव अखण्डता के लिये हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित किया गया।

साथ ही गैर हिन्दी और भाषा लोगों की सुख-सुविधा को ध्यान में रखकर सविधान द्वारा १५ वर्ष की अवधि निश्चित की गई जिसमें वे हिन्दी सीख लें। राष्ट्र भाषा हिन्दी भाषा बन जाये। और देश में एकता की स्थापना हो, पर भारत सरकार के शैथिल्य से इस हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया।

इसके विपरीत राजस्थान व मध्यप्रदेश आदि राज्यों में जहाँ कार्य हिन्दी मे होता था, वहां भी अंग्रेजी में होने लगा। वहाँ भी अंग्रेजी भाषा ने अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया।

इस अंग्रेजी भाषाई शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जनता की बार बार मांग पर न तो भारत सरकार ने ही इस ओर ध्यान दिया और न देश के नेताओं ने ही प्रयत्न किया। परिणाम स्वरूप देश के कई राज्यों में कांग्रेसी शासन का अन्त हो गया और वहां अंग्रेजी का स्थान हिन्दी अथवा प्रान्तीय भाषाओं ने प्राप्त कर लिए और वहाँ की सरकार का सम्पूर्ण कार्य उन्हीं राजभाषा में चल रहे हैं।

वास्तव में देश की समृद्धि अपनी भाषा द्वारा ही हो सकती है, हम पराए धन से धनी नहीं बन सकते। धनी बनने के लिये तो हमें प्रयत्न करके ही धन पैदा करना होगा। हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक उच्चकोटि के लेखक एव नाटककार श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने

क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किया है।

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल॥

अपनी भाषा के द्वारा जितनी सरलता से किसी विषय को हृदयंगम किया जा सकता है उतनी सरलता से विदेशी भाषा द्वारा नहीं। देश की अवनति अथवा उन्नति अपनी भाषा द्वारा ही हो सकती है किसी देश के उत्थान एवं पतन का इतिहास यदि जानना हो तो वह उस देश की भाषा द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है। हिन्दी भाषा के परम विद्वान निबन्धकार श्री आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने भी हिन्दी भाषा की सेवा करने का समर्थन किया है।

हिन्दी भाषा भारत की जनप्रिय, सरल एवं सुबोध भाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है। साथ ही हिन्दी भाषा विश्व की समस्त भाषाओं में चतुर्थ स्थान रखती है। यही समस्त भाषा को एकता की लड़ी में जोड़ सकती है। आज ही नहीं हजारों वर्ष से यही जनता की भाषा रही है। तीर्थाटन करने वाले यात्री रामेश्वर जाकर इसी भाषा के द्वारा ही अपने आराध्य देव को प्रसन्न करते हैं। दक्षिण उत्तर का भेद भाव यहां मिट जाता है। पुजारी एवं भक्त दोनों ही एक दूसरे की बात को समझ लेते हैं। हिन्दी देश की एक सम्पर्क भाषा है। पर केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी को विकसित करने के लिये कोई योजना नहीं बनाई है। हमें अपनी राष्ट्र भाषा का सम्मान करना चाहिए। महात्मा गांधी जी ने कहा है। 'राष्ट्रिय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिये आवश्यक है। साथ ही उन्होंने कहा था कि यदि स्वभाषा के स्थान पर मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त हो तो ऐसी अधूरी स्वतन्त्रता को नहीं चाहता क्योंकि 'स्वभाषा के बिना स्वराज्य अधूरा है।"

इसीलिये तो उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम का सारा कार्य क्रम हिन्दी भाषा के माध्यम से किया तथा सन् १९२५ अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस के अधिवेशन में हिन्दी भाषा के द्वारा कार्य करने का प्रस्ताव रखा। देश के अन्य सभी प्रतिष्ठित नेताओं ने सदा हिन्दी भाषा का ही समर्थन किया है। और उसी को देश की एकता और अखण्डता का प्रतीक माना है। कुछ विद्वान् एवं महापुरुषों की सम्मतियां निम्नलिखित हैं।

★हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। —महर्षि दयानन्द

★हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना नहीं वह तो है ही।
के० एम० मुन्शी

★देश के सबसे बड़े भू भाग में बोली जाने वाली हिन्दी ही राष्ट्र भाषा बन सकती है।
—सुभाषचन्द्र बोस

★मैं दुनियां की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूं, पर मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता। —आचार्य विनोबा भावे

यही नहीं भारत के उप प्रधान मन्त्री माननीय मुरार जी देसाई ने केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा आयोजित द्वितीय गोष्ठी में भाषण करते हुये अक्टूबर सन ६७ में दिल्ली में कहा था—

"हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा होकर रहेगी, चाहे आज उसका कितना ही विरोध क्यों न हो रहा हो।" इसी प्रकार उपराष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने ६ नवम्बर ६७ को इलाहाबाद विश्व विद्यालय शिक्षक संघ की सभा में भाषण करते हुये कहा था—

हिन्दी भाषा भारत की राष्ट्र भाषा है। और वह भारत के विभिन्न भाषियों में बातचीत को माध्यम बना कर रहेगी।'

भारत के माननीय राष्ट्रपति एवं प्रधान मन्त्री ने कई बार अपने भाषणों में हिन्दी को ही भारत की एकता और अखण्डता बनाने वाली सम्पर्क भाषा बताया है। फिर भी आज हम देखते हैं कि व्यवहार में हिन्दी भाषा का प्रयोग न के बराबर हो रहा है। और प्रतिशत अंग्रेजी भाषा भाषियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस अंग्रेजी भाषा को भारतवासियों पर लादने के लिये भांति-भांति के प्रयत्न किये जा रहे हैं। एतदर्थ सरकार ने बड़-

म्बर ६७ मे संसद् में राज भाषा संशोधन विधेयक रखा जिसका मद्रास को छोड़कर सम्पूर्ण भारत मे विरोध हुआ, फिर जन मत आदर न करने वाली इस लोकतन्त्रीय कांग्रेसी सरकार ने उसको प्रेरित कर दिया। प्रतियोगी परीक्षाओ में हिन्दी और अग्रेजी भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य कर दिया। किसी प्रदेशीय भाषा को सीखने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

वास्तव मे हमारे सभी नेतागण सभी बातें अग्रेजी के माध्यम से सोचते हैं, न कि भारतीयता के माध्यम से। वे जब किसी बात को कहते हैं। तो पहले उसे अग्रेजी मे सोच लेते हैं, और बाद मे किसी अन्य भाषा मे कहते हैं। आज झगड़ा हिन्दी अथवा अन्य किसी प्रातीय भाषा के बीच में नहीं है। अपितु यह झगड़ा केवल हिन्दी और अग्रेजी मे है। इस अग्रेजी के कारण ही भारत की अन्य प्रादेशीय भाषायें विकसित नहीं हो पायीं। यदि भारतीयों पर से अग्रेजी का बोझ घटा दिया जावे तो प्रादेशिक भाषाओं का स्वय विकास होने लगेगा। भारत सरकार ने त्रिभाषा सूत्र इसलिए लागू किया है, कि अग्रेजी भाषा भारत मे बनी रहे। यदि उनके स्थान पर द्विभाषा सूत्र लागू किया जाये तो अधिक लाभ हो सकता है। (१) छात्रों को अधिक भाषायें नहीं सीखनी पड़ेंगी। (२) प्रान्तीय भाषाओं का विकास होगा, साथ ही आर्थिक हानि भी नहीं उठानी पड़ेगी।

भारत मे हिन्दी का विरोध अवास्तविक है। केवल नेताओं की चाल है। इस प्रकार आन्दोलनों से वे स्थानीय जनता का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। चाहे वे आन्दोलन देश की एकता के लिए घातक ही सिद्ध क्यो न हों। दक्षिण भारत मे हिन्दी का विरोध तनिक भी नहीं है। यह बात कांग्रेस के अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा के भाषण से स्पष्ट हो जाती है। जो उन्होंने सितम्बर ६७ में "रविशंकर शुक्ल के हिन्दी भवन" का उद्घाटन करते हुए भूपाल में दिया था।

इसी अवसर पर आयोजित विचार गोष्ठी में भाषण देते हुए, तेलुगु भाषी हिन्दी सेवक श्री बाल शौरि रेड्डी ने स्पष्ट शब्दों मे कहा, "दक्षिणवासी हिन्दी सीखते हैं। इसीलिये उत्तर वाले भी अनिवार्यत एक दक्षिण भाषा सीखें इस तर्क का कोई औचित्य नहीं है। हमे कोई सौदे बाजी नहीं करनी है। राष्ट्र-भाषा हमे अपनी सुविधा के लिए सीखनी है, और राष्ट्र की एकता व दृढ़ता के लिए सीखनी है। उत्तर वालो पर कोई अहसान करने के लिये नहीं।'

इसी प्रकार प्राय दक्षिण भारतवासी विद्वान् पुरुष दक्षिण एव उत्तर के बीच की खाई को पाटना चाहते हैं। वे राष्ट्र की एकता एव सम्पन्नता के एक राष्ट्र भाषा को पसन्द करते हैं और वह केवल हिन्दी ही हो सकती है। एक भाषा विधेयक का विरोध करते हुये बम्बई विश्व विद्यालय मे राजनीति विभाग के रीडर डा० ऊषा मेहता ने सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए कहा था।—

स्वाधीनता के १४ वर्षों के बाद भी हम अपने राष्ट्र का काय अपनी राष्ट्र भाषा मे नहीं कर सके जिसमे हम अपने राष्ट्रिय काय कर सकें, बल्कि बर असल बात यह है कि हम अपनी भाषा मे काम करना नहीं चाहते। दुनिया मे अगर कोई राष्ट्र है जहा उसकी स्वभाषा मे कार्य न होता हो, तो ऐसे सिर्फ दो ही राष्ट्र हैं एक भारत और दूसरा अफ्रीका।

इसी प्रकार आंध्र वासी मोटुरि सत्यनारायण, मैसूर निवासी श्री नागप्पा आदि अनेक विद्वान् हैं जो देश की समृद्धि के लिए अहर्निश प्रयत्नशील हैं और ये सभी उत्तर एव दक्षिण का भेद भाव दूर करने मे सदा सजग रहते हैं।

हमे हिन्दी को राष्ट्र भाषा पद पर प्रतिष्ठित कराने के लिय उसी प्रकार महान् त्याग एव बलिदानों की आवश्यकता है। जिस प्रकार अग्रेजों को देश से निकालने एव स्वतन्त्रता प्राप्त करने मे भारतवासियों ने अनेक कष्ट सहे तथा मातृभूमि वेदी पर बलिदान हुए। महात्मा जी ने एक अवसर पर भाषण देते हुये सच ही कहा था "जिस प्रकार हमारी आजादी को छीनने वाली अग्रेजी की सिपाहसी हुकूमत को हमने सफलता पूर्वक निकाल

दिया इसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को बाहर कर देना चाहिये।' इसी प्रकार टण्डन जी ने भी हिन्दी भाषा को विकसित करने एवं अंग्रेजी को अपदस्थ करने के लिये निम्न विचार किये हैं।

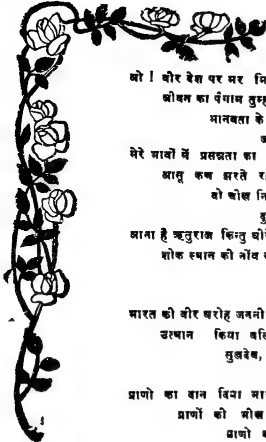
'हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में जितनी देरी की जावेगी। उतनी अड़चन उसके सामने आती रहेगी जो उसके व राष्ट्र के भविष्य के लिये बहुत ही घातक होगा तथा तब तक अंग्रेजी भावक गहरा जड़ें जमा लेगी जो भारत की स्वतन्त्र एवं अखण्डता के लिये फिर से संकट बन जावेगी।

इसी प्रकार सौभाग्य से कुछ राज्य की सबद सरकार ने हिन्दी को अपने राज्य की शासकीय भाषा घोषित किया है। और उन्होंने अपना समस्त राजकार्य हिन्दी में करने का निश्चय कर लिया है। उत्तर प्रदेश राजस्थान दिल्ली की सरकार ने ता० २६ जनवरी ६८ से अपना समस्त कार्य हिन्दी में ही करने की घोषणा भी कर दी तथा सभी सम्बद्ध विभागों को हिन्दी में ही काम करने के आदेश दे दिये हैं। साथ ही इस अंग्रेजी को मुक्त करने के लिये शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी ही कर दिया है। तथा बच्चों की सुविधा के लिये हाईस्कूल तथा इण्टर की कक्षाओं में अंग्रेजी को वैकल्पिक विषय बना दिया है। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी विश्व विद्यालय को छोड़कर दे बी० ए० बी० एस० सी० से अनिवार्य अंग्रेजी को भी समाप्त कर दिया है।

इसी प्रकार जिस भाषा ने देश पर १०० वर्ष तक शासन किया था, वह अपने जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रही हैं। जनता में प्रसन्नता की लहर है। वह इस अंग्रेजी से बहुत दुखी हो चुकी है। क्योंकि अब तक शासक अधिकारी अनेक प्रकार से जनता को सताते थे। उस भाषा में काम करते थे जो उसकी नहीं थी। अब जब से अधिकारियों को अपनी भाषा में काम करते पायेंगे तो फूले नहीं समायेंगे।

उत्तर प्रदेश के समान अन्य हिन्दी भाषी राज्यों को हिन्दी भाषा में ही काम करने की एक निश्चित अवधि घोषित कर देनी चाहिए, जिससे उसके प्रचार में विलम्ब न हो और कर्मचारी पहले ही हिन्दी में काम करने के लिए योग्य बना लें, साथ ही केन्द्रीय सरकार को भी हिन्दी भाषी प्रदेशों में काम करने वाले कर्मचारियों को अधिक अधिक हिन्दी भाषा में काम करने का आदेश देना चाहिये ताकि हिन्दी राष्ट्र भाषा के पद पर यथा शीघ्र समासीन हो सके। महर्षि दयानन्द सरस्वती तिलक एवं बापू का स्वप्न साकार हो जायगा। समस्त भारत में हिन्दी राष्ट्र भाषा या अन्तर्जातीय भाषा के पद को सुशोभित करेगी उनकी तथा अन्य भाषाएँ भी अपने-अपने राज्यों में फलीभूत होंगी उनकी प्रगति में कोई बाधा उपस्थित न होगी इस प्रकार देश अंग्रेजों की दासता के सदृश इस अंग्रेजी की दासता से भी मुक्त होकर सुख एवं समृद्धि की चरम सीमा पर आरूढ़ हो जावेगा।





भारत के वीर



ओ ! वीर देश पर मर मिटने वाले !
जीवन का पैगाम तुम्हीं ने अवतरित किया था
मानवता के चेहरे पर मुकुलित भावों से
जलियाँ वाला बाग तुम्हीं ने अमर किया था ।
मेरे भावों में प्रसन्नता का प्यार नहीं
आंसू कण झरते रहते पर विश्राम नहीं
जो चीख निकलती है कसती कराहती सी—
दु:ख के विस्तार भाव हैं पर वो प्यार नहीं ।
आता है ऋतुराज किन्तु धीरे से आना
शोक स्थान की नींव बनी मानवता का पहुना आना
जो भारतवासी वीर बने मस्ताने
भारत के कण-कण के वे चुने गये दीवाने ।
भारत की वीर प्ररोह जननी मां से तुम
उत्थान किया बलिवेदी प्राणों की उसने
सुखदेव, शेखर, भगतसिंह अमर हुये
भारत का कण कण बोल उठा दु:ख से—
प्राणो का दान दिया भारतवासी ने
प्राणों की भीख नहीं मांगी थी
प्राणो का तूफान उठा माँ के हृदय से
प्राणों का प्रण खिल उठता तन-मन से ।

★ जयप्रकाश पांडेय, हरदुआगंज (अलीगढ़)

★ ★ ★



आर्यावर्त्त

आर्यावर्त्त अखण्ड है, खण्ड खण्ड मत करना,
बन शूर वीर अति रक्षा की भाव भरना ।
आर्यावर्त्त के आर्यो हम सब भाई भाई,
राम, कृष्ण, दयानन्द की भूमि पर क्यो हो चढ़ाई ।
अभाव रोग अशिक्षा हो नष्ट, स्वार्थ का क्षय हो,
परम पुज्य भूमि पर वैदिक सूर्य का उदय हो ।
वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेदों का उच्चारण करना,
हो वेदों का प्रचार नित्य सन्ध्या हवन यज्ञादि करना ।
सब शत्रुओं के संकट से, आर्य जन निर्भय हो,
हो आर्यावर्त्त शान्तिमय, मातृ भूमि की जय हो ।।

★ विद्यानन्द आर्य बक्सर (शाहाबाद)



जीवन-ज्योति

वह आर्य जिसने स्वातन्त्र्य युद्ध में अपने जीवन को अर्पित कर दिया

पं० गेंदालाल जी दीक्षित

★लेखिका श्रीमती माया शर्मा
द्वारा डा० ओम्प्रकाश शर्मा नरसेना

भारत की आज़ादी मे विशेष कर सन् ५७ के समीप से महर्षि दयानन्द की प्रेरणा रही है, यह अकाट्य सत्य है, सर्व प्रथम स्थापित समाजें प्राय फौजी छावनियों के नगरों में थी। महर्षि दयानन्द ने राजे रजवाड़ों मे आजादी की ज्योति जलाई थी। वही भावना सरदार पटेल के एकीकरण करते समय काम आई।

अतीत में कुछ आर्य ऐसे भी हुये हैं जिनका इस युद्ध मे होम हुआ किन्तु हम कारण उन्हें भूल गये, उनकी स्मृति सजग करने के लिये ही यह ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में लाने के लिए इस लेखमाला की प्रथम किश्त पाठकों को प्रस्तुत कर रही हू।

मैनपुरी उत्तरप्रदेश का पावन स्थल सच्चे आर्यों की जन्म एवं क्रीडा स्थली होने के साथ साथ स्वातन्त्र्य संघर्ष की प्रमुख स्थली होने से ऐतिहासिक भी बन गया है, यही स्थल हमारे चरित्र नायक श्री प० गेंदालाल जी दीक्षित का कर्म क्षेत्र है।

पण्डित जी आगरे के समीप बटेश्वर ग्राम मे जन्मे। आर्यसमाज द्वारा पोषित हुए। आपने आरम्भिक शिक्षा समाप्त कर औरैया के डी०ए०वी० स्कूल में अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर जीवन क्षेत्र में पदार्पण किया ही था कि आर्यसमाजी विचारधारा के कारण मुक्ति की उमगें हिलोरें लेने लगीं। सोने पर सुहागे का का कार्य था प्रसुप्त भावनाओं को झकझोड़कर जागृत किया तिलक महाराज ने।

स्वामी दयानन्द के विचार उन्हें आजादी के लिए प्रेरित कर रहे थे। अपने राजनैतिक गुरु पूज्य तिलक महाराज द्वारा प्रोत्साहित करने पर अध्यापन छोड़कर कर्म क्षेत्र में अवतरित हो अपने विचारों के प्रसार हेतु 'शिवा जी समिति' की स्थापना की, जिसके माध्यम शक्ति संचय के साथ गुरिल्ला युद्ध लडने के विचार को मूर्त रूप देना चाहते थे, किन्तु दुर्भाग्य यह पूरा न हो सकने पर भी हिम्मत नहीं हारी, अपितु 'मातृ वेदी' दल संगठित किया इसी दल ने काकोरी सघर्ष के प्रधान राम-प्रसाद बिस्मिल आदि आर्यों का सृजन किया था।

आजादी का संघर्ष चालू रखने के लिये मातृवेदी दल को धन का अभाव सदैव रहा, श्रेष्ठ कार्य के लिये जो हमारे भामाशाह कजूस बन गये थे, आतङ्क से भयभीत अथवा देश प्रेम के अभाव में धनाभाव निरन्तर बढ़ रहा था, इधर डाकू साधारण जनता को सदैव भयत्रस्त कर रहे थे, मातृवेदी के एक सज्जन ने डाकुओं में देश प्रेम का मन्त्र फूककर देश के लिये धन सग्रह करना आरम्भ कर दिया। अच्छे लक्ष्य प्राप्ति के लिये डकैती के साधन को अपनाने से क्रान्तिकारियों के प्रति दो मत भले ही हों किन्तु परिस्थिति की विषमता और डाकुओं का राष्ट्र प्रेम भी·· ··

चम्बल घाटी के इस दल में ८० कार्यकर्ता थे जिनमें हिन्दूसिंह के रूप में जयचन्द ओपल रहा था। आजादी के दीवानों में सदैव ही ऐसे जयचन्द रहते रहे हैं, अन्यथा

आज्ञाएं काफी समय पूर्व ही मिल गई होंगी इसी अव-सर में पुलिस से मिलकर एक पड़ाव पर भोजन में अपने दल को विष दे दिया। सयोगवश पण्डित जी ने प्रथम ग्रास लिया। ग्रास लेते पर जीभ ऐंठने लगी। पण्डित जी ने सभी को सतर्क किया भोजन फिकवा दिया गया। विष है, ऐसा सभी को पता लगने पर विश्वासघाती भागा किन्तु पण्डित जी की गोली से वहीं मर गया। गोली की आवाज से पूर्व नियोजित पुलिस ने दल चारों ओर से घेर लिया, कई मरे पर पण्डित जी पकड़े गये। पण्डितजी गिरफ्तार कर ग्वालियर में रखे गये। पण्डित जी की गिरफ्तारी को सुन उनके शिष्य बिस्मिल जी उन्हें छुड़ाने के लिये ग्वालियर गये पर उनकी योजना भी एक मुख-बिर के कारण असफल हो गई। बिस्मिल जी तो छिप गये किन्तु मातृवेदी दल मैनपुरी में गिरफ्तार हो गया। इसी दल के एक मुखबिर सोमदेव के समस्त भेद खोल देने के के कारण पण्डित जी को ग्वालियर से मैनपुरी लाया गया।

ग्वालियर की जलवायु की प्रतिकूलता और कारा-गार की यातनाओं ने उनके शरीर को जर्जरित कर दिया। इस पर भी कदम कदम पर कठिनाइयों की उग्रता ने उन्हें हतोत्साहित नहीं किया, मैनपुरी स्टेशन से जेल तक पहुंचने में वे कई स्थान पर बैठे थे।

आजादी के दीवानों को मौत कभी आतंकित न कर सकी, इतिहास की कई घटनाएं साक्षी हैं। सावरकर जी का समुद्र में जहाज से कूदना शिवा जी का जेल से भागना उनकी प्रेरणा का स्रोत रहा है। पण्डित जी ने भी जेल में अभिनय किया और मुखबिर बनने की घोषणा कर दी, सभी को आश्चर्य हुआ और पण्डित जी पृथक रखे गये। बस अकेला होना था कि पण्डित जी जेल से कूदकर भाग गये।

शरीर के निष्क्रिय होने पर भी पण्डित जी बराबर कार्य करते रहे इसी बीच राजयक्ष्मा के शिकार बन गये। अधिक कष्ट होने पर वे घर लौटे किन्तु स्वजनों ने उन्हें घर नहीं रहने दिया और अन्त में वे दिल्ली आ गये। वहीं सेवा करने उनकी पत्नी आ गई। किन्तु पत्नी की अथक सेवा पर भी दशा बराबर बिगड़ती गई। मूर्छा आने लगी अन्त जानकर पण्डित जी ने अपनी पत्नी से कहा-मैं आर्य हूं, ईश्वर विश्वासी भी देश सेवा में मेरा यह हाल है, मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, यदि तुम भी देश सेवा करो तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। तुम अपने को सौभाग्यवती समझो जो मैं शत्रुओं के हाथ न पड़कर देश प्रेम में शान्ति से जा रहा हूं। अन्या-यियों से बदला न ले सका, यही कष्ट है प्रभु से प्रार्थना है कि फिर भारत में नया शरीर प्राप्त कर देश के काम आऊँ तुम चिन्ता न करो। देश में विधवाओं अनाथों का रक्षक सर्वशक्तिमान ईश्वर तुम्हारी भी रक्षा करेगा। मेरे शिष्य तुम्हें माता के रूप में पूजेंगे।

आज से अड़तालीस वर्ष पूर्व २१ दिसम्बर १९२० को पण्डित जी प्रात सरकारी अस्पताल मे प्रविष्ट हुये और उसी दिन उसी स्थान पर दोपहर में बेड पर एक लावा-रिश लाश पड़ी थी, जिसका न कोई रोने वाला था न उठाने वाला।

सचमुच प० जी ने त्याग एवं तपस्या में अपने को होम दिया। देश के लिये वे जन्मे और देश के लिये इतने कष्ट सहन कर मरे, पर आज उनकी स्मृति भी नहीं।

देश के लिये अपने को होमने वाले दीक्षित जी हमारे प्रेरक रहें, यही राष्ट्र जागरण के लिये आवश्यक है।

साहित्य-सौरभ

भारत वीरो जग जाओ

अब मां ने तुम्हें पुकारा है

भारत वीरो जग जाओ, अब मां ने तुम्हें पुकारा है।
यह धरा है प्यासी खूनों से अब दुश्मन ने ललकारा है।
जिन्दा हैं राणा, शिवा नहीं जननी अब तुम्हें जगाती है।
हो जाओ तैयार सपूतो वसुधा आवाज लगाती है॥

हे आर्य देश के अनुयायी तुमको जौहर दिखलाना है।
यह राम कृष्ण की जन्मभूमि,अरिदल को मार भगाना है॥
बच्चे बच्चे नर नारी को, अपना उद्देश्य निभाना है।
तिल मात्र भूमि के बदले में, खूनों की नदी बहाना है॥

तिलक भगत सुखदेव आदि ने माता की लाज बचाया है।
प्राणों की ममता त्याग दिया भारत आजाद कराया है॥
शोणित सिंचित है यह वसुधा जिसमें तू जीवन पाया है।
कटि कसो भरो हुंकार सभी, दुश्मन उस पर चढ़ आया॥

वीरांगनाओं जौहर व्रत धारो रानी लक्ष्मीबाई सा त्याग दिखा डालो।
भारत माता की रक्षा में अपना मस्तक सिंदूर लुटा डालो॥
है बड़ी परीक्षा की आई, रण कौशल अपना दिखलाओ।
प्यासी जो तेग पुरानी है, अरि खूं से प्यास बुझा डालो॥

बापू जी की शिक्षाओं से जग को नव पाठ पढ़ा डालो।
हर वासी लाल जवाहर है तन,मन,धन सभी लुटा डालो॥
बन लालबहादुर सा त्यागी, सत्य का झण्डा लहरा डालो।
जो आंख उठाये जननी पर, मिट्टी मे उसे मिला डालो॥

है दुश्मन चीनी पाक खड़ा भारत की शान मिटाने को।
जो प्राणों से प्यारा दोस्त रहा, वह बैठा तुम्हें जलाने को॥
कर्त्तव्य तुम्हारा है, वीरो जैसे को तैसा बन जाने का।
जो धरे अगाड़ी कदम तेरे पथ उसका भ्रष्ट बनाने का॥

★रामदर्शन मिश्र उमरा लहुर काशी





जननी जन्म भूमि स्वर्ग से महान् है

★श्री कुशलदेव शास्त्री, 'विद्याभास्कर'

●

युगों युगों से यही हमारी बनी हुई परिपाटी है।
खून दिया है मगर नहीं दी कभी देश की माटी है ॥

भारत वीरों की जन्मभूमि है। यहाँ का एक एक रज का कण कण वीरों के रक्त से पवित्र बन चुका है। उन्होंने देश धर्म जाति के लिए मरना अपना कर्त्तव्य समझा है। हमारी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि उन शूरवीर वरों को जिन्होंने नरमुण्डों की जयमाला से रणचण्डी का शृङ्गार किया। नौजवानों तिलक करो! उस माटी की चरण धूलि से तुम्हारा भी यौवन धन्य हो उठेगा।

एक युवा सतयुग में भी यहीं उत्पन्न हुआ था भरत। जिसने चढ़ते पूरब से लेकर ढलते पश्चिम तक, शिखर हिमालय से लेकर अधर हिन्द महासागर तक, अटक से कटक एवं कश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक समूचे ही भारत पर विजय पताका लहराई थी। जिसकी विजय स्मृति को ऋषि-मुनियों की पावन भूमि आर्यावर्त्त ने अपने नाम में ही धारण कर लिया। इतिहास साक्षी है यहाँ पर कभी भी बलिदानियों की कमी नहीं रही। राम दधिची, कृष्ण, अभिमन्यु, भक्त प्रह्लाद एवं हरिश्चन्द्र जैसे शूर वीरों एवं धर्मवीरों की जयमाला में नये-नये जीवन रत्न गूंथते आये हैं। इसी कारण सदियों साल गुलाम रहने के बाद आज भी भारत पूर्ववत् गौरवान्वित है, उन वीरवर बहादुरों के कारण जिन्होंने भारत माँ के सत्कार के लिये फूल को तो तुच्छ वस्तु समझकर अपनी जान को भी भारत माँ के चरणों पर चढ़ा दिया।

कौन नहीं जानता उस राजपूती शान महाराणा प्रताप को जिसने देश की आजादी को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर वन वन और दर-दर भटकना स्वीकार किया मगर पराधीनता स्वीकार न की स्वर्ण शय्या को त्याग कर कांटों की सेज पर सोया मगर झुका नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है—

अकबर के चरणों पर जब सर धर बैठे थे सभी दिलेर।
एक तेरा ही सिर ऊँचा था ओ! हल्दी घाटी के शेर ॥

जब हम आगे चल कर इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ पलटते हैं तो हमारी आँखों के सामने माँ जीजाबाई की शौर्यमय गाथा नाचने लग जाती है जब कि वह सिंहगढ़ दुर्ग पर मुगलों का झण्डा लहराते हुये देखकर बेटा शिवा की पीठ थपथपाती हुई कहती है कि—"बेटा! जिस समय के लिये मैंने तुझे पैदा किया था, वह समय आ गया है, वो देख किले पर मुगलों का झण्डा लहरा रहा है, जा मेरी दूध की लाज रखना और भगवाध्वज लहराकर ही आना। शिवा ने "तथास्तु" कहकर किले पर हिन्दुत्व का प्रतीक भगवाध्वज बड़ी शान के साथ लहरवा दिया।

सारे भू मण्डल की विजय कामना से चला हुआ सम्राट् सिकन्दर धरती की माँग को सँवार कर सोये हुये खेतों को हरे-भरे करने वाले कर्मठ किसान द्वारा प्राप्त सुरभित केसर तथा हरी-भरी सुनहरी खेती को लूटने की इच्छा से भारत आया, और जब उसने ऋषि-मुनियों की पुण्य स्थली पर कुदृष्टि डाली तो मुट्ठी भर भारतीय शूर-वीरों ने उसके नाकों चने चबा दिये।"



"सुप्रसिद्ध वीर चम्पतराय की पत्नी सारन्धा से कौन अपरिचित है ? किले को शत्रुओं ने घेर लिया था। सारन्धा उसी अवस्था में अपने पति को डोली में डालकर और स्वयं घोड़े पर चढ़ कर उसके साथ चली। सैनिक शत्रुओं से जी जान से लड़ रहे थे, पर शत्रु सेना अधिक होने के कारण हार जाते थे। शत्रु निकटतम आता जा रहा था। जब चम्पतराय को इस तथ्य का पता चला तो उसने अपनी प्राण प्रिया पत्नी से प्रार्थना की कि वह उसके सीने में भाला भोंक दे। वह स्वयं सर्वथा अशक्त है, परन्तु शत्रुओं के द्वारा मरना नहीं चाहता। सारन्धा के लिये यह अग्नि परीक्षा थी। शत्रु को मारना सुगम था परन्तु प्रिय ही नहीं प्रियतम को मारना आत्मघात से भी दुष्कर है। परन्तु उसने वही किया जो कि एक वीर नारी और आन की प्यारी को करना चाहिये था। उसने उस प्रेम के सरोवर हृदय पर जिसमें उसने अनेक बार स्नान किया था तलवार भोंक दी और शत्रु सेना से लड़ती हुई परलोक सिधार गईं।

'बच्चा-बच्चा जानता है मुट्ठी भर सैनिकों को साथ लेकर अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली, गौरवर्ण युवती, सुन्दर आकृति वाली विशाल सुलोचनों वाली, लाल रङ्ग की साड़ी के साथ आभूषणों से लदी, पीठ पर स्व-पुत्र दामोदर को बाँधे हुई, मुँह में लगाम तथा दोनों हाथों में चमकती तलवार से शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाली महारानी लक्ष्मीबाई को जिसने देश के लिये सर्वस्व समर्पित कर अन्तिम साँस तक अपने खून की अन्तिम बूँद को भी बहाया, जिसके लिये घर-घर में आज भी प्रसिद्ध है:—

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

कौन नहीं जानता ? अन्तिम सम्राट् बहादुर शाह ज़फ़र को, जिसे जेल के सींखचों में बन्द कर किसी नादान अंग्रेज ने यह फबती कसी थी कि—

दमदमें में दम नहीं है खैर माँगू जान की।
बस ज़फ़र ठण्डी हुई तलवार हिन्दुस्तान की॥

इस फबती का प्रत्युत्तर देते हुए वह घायल शेर कारागार की शृंखलाओं से दहाड़ उठा और भारतीय रक्त का परिचय देते हुये ललकार बोला—

'ओ पागल अंग्रेज क्या कहा ? क्या हिन्दुस्तान (आर्यावर्त) की तलवार ठण्डी पड़ गई है ? सुन और अच्छी तरह कान खोलकर सुन—

गाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।
तख़्ते लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की॥

देशभक्ति की भावनाओं को कूट कूट कर भरने वाले स्वतन्त्रता के पुजारी महर्षि दयानन्द जी महाराज गंगा के किनारे बैठे हुये थे, उसी समय एक माँ अपने बच्चे की लाश को गंगा में बहाकर उसके ऊपर का कपड़ा उतार उसे धोने लगी। स्वामी जी के आँखों से यह करुण दृश्य देखकर आँसू छलछला आये और उन्होंने सोचा कि—इन प्यासी रूहों का अधिकार किसने छीना है ? किसने छीना है इनका हक ? और अन्त में वे इस निर्णय पर पहुँचे कि— अपना लहू और पसीना देकर आँधी और तूफान सहकर खेतों की माँग सवारने वाले ऐसे लाखों भारतीय इन्सानों का लहू अंग्रेज चुपके चुपके मदिरा की तरह पी जाते हैं। और तड़प तड़प कर मौत के घाट पहुँचा देते हैं।' स्वामी जी की आँखों से इस प्रकार के और अधिक दृश्य न देखे गये। और उन्होंने धर्म संस्कृति सभ्यता व देश की रक्षा के लिये अनेकों बार विष के प्याले पाकर आज़ादी के लिये आवाज उठाई और कहा—'कोई कितना ही करे जो स्वदेशी राज्य होता है वो सर्वोपरि होता है।' उनके उपदेशों से प्रभावित हो या यूँ कहिये उनके कर कमलों द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर एक दो या सैकड़ों नहीं अपितु सहस्रों नवयुवकों ने भारत माँ की जय तथा 'वन्दे मातरम्' के साथ हँसते-हँसते मृत्यु का आलिङ्गन किया।

हमको वह घड़ी याद है जिस दिन जलियां वाले बाग में हजारों भारतीय सुपुत्रों व वीराङ्गनाओं ने स्वाधीनता के माँग के फलस्वरूप अपना खून बहाया था। जिसका बदला लेने के लिये वीर उधमसिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि—'जब तक मैं पूज्य पिता तथा २० हजार भार-

तीय इन्सानों व माँ बहिनों का निरपराध खून करने वाले नृशंस अत्याचारी डायर को न मार लूँगा तब तक सुख चैन से न बैठूगा।' इस प्रकार उस वीर ने लन्दन जाकर एवं डायर को पिस्तौल का निशाना बनाकर अपना सिर सुमन भारत माँ के दिव्य चरणों पर चढ़ाते हुए दुनिया को यह दिखा दिया कि—'भारतीय वीर जान दे सकता है, पर प्रण को नहीं भूल सकता।'

कौन नहीं जानता? उस जोरवर करतारसिंह को जिसने अन्तिम समय में भी मुस्कराते हुये न्यायाधीश के सामने यह कहा था—

करता क्यूँ बगावत जो अगर फांसी का डर होता।
चढ़ाता भेंट माता को अगर एक और सिर होता॥

इस प्रकार न जाने कितने सुभाष, भगतसिंह आजाद, बोसर आदि वीर शहीद काल के गाल मे समा चुके हैं, परन्तु वे समय के गर्भ में विलीन होकर भी अमर हैं तथा चिल्ला चिल्ला कर कह रहे हैं—

हम लाये हैं तूफान से किश्ति निकाल के।
इस देश को रखना मेरे बच्चों सम्भाल के॥

वीरों की सतत साधना की चर्चा विस्तार पूर्वक आर्यसमाज व नौजवान भाइयों को सचेत करने के लिये की है। जिनमे जवानी है, हृदय है, तड़प है वे सोचें। आज जब हम समाचार पत्र पढ़ते हैं तो उसके पहिले पन्ने पर ही बन्द, आन्दोलन, सत्याग्रह छुरे बाजी इन्हीं का वर्णन हमारे आंखों के सामने नाचने लग जाता है। आज देश में शान्ति का तो नाम ही नहीं। ऋषि मुनियों की इस धरती पर बड़े-बड़े मन्त्रियों से लेकर अधिकारियों तक रिश्वत खाने का धर्म बन गया है। राम कृष्ण और शिवा की पावन भूमि में प्रतिदिन हजारों नहीं लाखों निरपराध गौओं का सिर धड़ से अलग कर दिया जाता है। आज देश में जो काले बाजार नग्न नृत्य कर रहे हैं, उन्हें ही उचित स्थान प्राप्त हो रहा है। पाकिस्तान और चीन का सिरदर्द अब भी कायम है। शिक्षा में कोई विशेष विकास नहीं। राजनीतिक पार्टियों में 'आयाराम और गया राम' का विकास हो चुका है। शिक्षा क्षेत्र राजनैतिक अड्डे बन गये हैं। ईसाईयों और मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म का विनाश किया जा रहा है। ब्रह्मचर्य के स्थान पर 'लूप लगाओं' का प्रचार हो रहा है। दूध और घी के देश में शराब और मांस का प्रचार बढ़ रहा है। हमारे देश के नवयुवकों को सारे दिन भर गन्दी-गन्दी वाद-विवाद के फिल्मों से फुरसत भी नहीं मिल पाती। अंग्रेजों के मनचलित पिट्ठू अब भी चुपके-चुपके मदिरा की तरह मजदूरों व किसानों का लहू पी जाते हैं। आज पारसमणि तथा सोने की चिड़िया के नाम से पुकारे जाने वाले भारत देश मे लाखों लफंगे साधुओं के वेश में फिरते हैं। स्वार्थी लोग भूखे करिश्तों का अधिकार छीनकर अनाज दबा लेते हैं। सरकार शस्त्र बल व कूट नीति से इन्सानों के सिर पर ताण्डव नृत्य कर रही है। अतः मेरे बहादुर जवानो! भारत मा के सपूतो! दयानन्द के सैनिको! कुम्भकर्णी निद्रा को छोड़कर जागो और कुछ कर्त्तव्य कर्म करने के लिये उठ खड़े हो! क्योंकि—

"यह हाल रहा तो दुनिया मे,
भारत की कहानी क्या होगी?
जिस देश का बचपन भूखा हो,
उस देश की जवानी क्या होगी?

ऐ! मेरे दोस्तो! इसी समय प्रण करलो कि संस्कृति सभ्यता व देश की रक्षा दिलोजान से करेंगे। युवको! मैं तुमसे कुछ विशेष कहना चाहता हूँ, क्योंकि तुम्हीं भावी भारत के निर्माता हो, तुम ऐसे प्रकाश पुञ्ज हो जिससे तुम समस्त भू मण्डल को आलोकित कर सकते हो। जब जब तुमने विकराल कराल मूर्ति धारण कर ताण्डव नृत्य किया तो कितने ही साम्राज्य धूल में मिल गये। तुम्हारी सहायता से ही सम्राटों का सिंहासनों पर तिलक हुआ, और तुम्हारे संकेत मात्र से ही सम्राट सिंहासनों को छोड़ भागे। नौजवानों, जागो!! और भारत माता को स्वर्णालङ्कार पहनाओ! माँ आज पुकार पुकार कर कह रही है-बेटा! शिवा तू कहां है? क्या मेरी कोख शूरवीरों से खाली हो चुकी है। यदि मेरी पुकार

[शेष पृष्ठ २५ पर]

'वसन्त'

ऋतुराज समाप्त कर आना ……
यद्यपि है अधिकार तुम्हारा
रूप सुनहरा सबसे प्यारा
यह तो मैंने माना ……
प्रभु सृष्टि का निश्चित क्रम है
'नित्यानित्य' निहित 'विक्रम' है
शेष अभी समझाना ……
पीत 'चीतम' का है शासन,
मेघ गर्जन नभ में भावन
वर्षा का बना बहाना ……
परिवार नियोजन व्रत अति भारी,
फैली बहुत फ्लू बीमारी
टीका तुम्हें लगाना ……
निर्वाचन अब मध्यावधि है,
गर्मासन तक अल्पावधि है
व्यवधान अभी अनजाना ……
पदाक्रान्त कोई पद मदान्ध है,
शान्त भ्रान्त कोई आक्रान्त है
बिना डोर बँधाना ……
कौन ताऊ कान ससीटा,
निकल रहा है निकट नतीजा
हारों से सब जाना ……
तुम्हें प्यार है हरियाली से,
हमें रक्त रंजित लाली से
अपनी प्यास बुझाना
अति कोमल हैं अङ्ग तुम्हारे,
कण्टकमय मग किन्तु हमारे
डोलत ही फट जाना ……

रिश्वत रवनी नित्य नाचती,
दण्ड विधान के पृष्ठ बाँचती
भरता ओर खजाना ……
बढ़े वेग की आगे आँधी,
तन्द्रा में हैं इन्द्रा गाँधी
होगा कहाँ ठिकाना ……
धुआँ चमन में उठ रहा है,
मालियों से लुट रहा है
दुर्लभ बहुत बचाना ……
कोयल की कह गई कूक है,
हिय में उठती नई हूक है
देश बना बीराना ……
नूतन मुकुलित कलिकाओं पर,
उपवन की नव आशाओं पर
मधुपों सा मडराना ……
फूट रहे हैं भाग अपने,
टूट रहे 'मोहन' के सपने
दिल देखो दीवाना ……
भीतर भारी भरी भ्रान्ति है,
बनी विषम संक्रान्ति है
कैसे सम्भव साज सजाना ……
वसुधा वैदिक ऋचा कहेगी
अचल स्नेह की धार बहेगी
बने 'मदन' मस्ताना ……

★मदनमोहन एडवोकेट मोंठ (झाँसी)

कहानी-कुञ्ज

धरती पावन मां है

★ श्री नूरमोहम्मद खान

आज "हीरामन" बहुत खुश था ! उसकी जेब में आज, उसके गाढ़े पसीने की कमाई थी। हड्डी तोड़ श्रम करने के बाद तो उसे आज खुशी का दिन देखने को मिला था। क्या गरमी ? क्या सर्दी ?? क्या बरसात ??? इन तीनों मौसमों का उसने डटकर सामना किया। कभी हार न मानी। उस कठोर परिश्रम का ही तो यह प्रतिफल था कि आज उसके हाथों में पूरे पन्द्रह सौ रुपये थे। ठीक ही तो है, कठिनाइयों से घबराने वाला मानव, मानव नहीं है, बल्कि मानवता के चोले में भीरुता का जामा पहिने ओढ़े है। इसीलिए हीरामन ने, हर संकट का डटकर सामना किया था। आज उसका रोम रोम प्रसन्नता की लहरों में डूबा हुआ था। उसने सोचा, आज रूपा की मनोकामना पूरी हो जावेगी। उसकी बरसों की साध आज मंजिल पर पहुंच कर अपनी विजय की विजय पताका फहरायेगी। इतना सोचते ही वह प्रसन्नता से खिल गया।

रूपा के कहने पर ही, हीरामन ने अपने ५ बीघा खेत में मूंगफली बोई थी। भगवान् की लीला भी अपरम्पार है, बारिश के प्रारम्भ में पानी कम था, लेकिन अन्त में इतना गिरा कि मूंगफली खूब जमी और पूरी १२ क्विंटल निकली। मूंगफली मण्डी में बेच, नोटों को लापरवाही से जेब में रख हीरामन प्रसन्नता की देहली पर कदम रखता हुआ, अपनी बैलगाड़ी में सवार, घर की ओर आ रहा था।

शहर की पक्की सड़क को पार कर उसकी गाड़ी अब गांव की कच्ची डगर में आ रही थी। सामने दो रास्तों के मिलन पर, एक कोने में गांव की पहिचान के लिए तख्ती लगी थी। उस पर लिखा था—"रूपाखेड़ी तीन किलोमीटर"। ग्राम का पहिला अक्षर रूपा पढ़ते ही उसे अपनी पत्नी रूपा की याद हो आई। पढ़ा लिखा तो वह था नहीं। वैसे ही रात को ग्राम के शिक्षक के पास वह बारह खड़ी पढ़ गया था। उसी का यह आलम था कि वह एक तो रूपाखेड़ी ग्राम से परिचित था। दूसरे उसकी पत्नी का नाम भी रूपा था। रूपा की याद आते ही तरह तरह के बीते विचार उसके मस्तिष्क में सैलाब से उठने लगे। वह उनमें बहने लगा। रूपा को जब वह ब्याह कर लाया था, तो उसे देख अवाक् रह गया था वह ! रूपा का जैसा नाम था वैसा ही रूप था उसका। उसने अपनी पत्नी को कहा था, "भगवान् का दिया मेरे पास सब कुछ है ! दुख है तो इस बात का कि मैं अकेला हूं ! शायद तुम्हें भी अकेलापन अखरेगा। इसलिये यदि घर में बैठी अकेली तुम उकता जाओ, तो सुन्दर प्रकृति की गोद में, धरती मां के प्रांगण में आ जाया करना। सच रूपा ! तुम सामने होगी, तो मैं दूने उत्साह से काम करूंगा और साथ ही तुम्हारा मन का बहलाव भी हो जाया करेगा।"

सहमी-सी लाज की गठरी रूपा ने चेहरा ऊपर उठाया। पति को देखा—हृष्ट पुष्ट गठीला बदन। उसने धीरे से कहा, धन्य है वह किसान स्त्री, जिसके स्वामी के पास धरती जैसी पावन मां हो। मां के होते भला मुझे अकेलापन कैसे महसूस हो सकता है !"

"सच रूपा।"

"हां !" और रूपा ने मुस्कराकर सिर झुका लिया।

"तो क्या तुम मेरे साथ खेतों में काम करोगी ?



भीषण गरमी जो कि शरीर को जलाकर स्याह कर देती है, हाड़ कँपा देने वाला जाड़ा जिसका कि ठंडा समीर हड्डियों में घंस जाता है। आंधी तूफान की झोंकों में सवार आने वाली बारिश के थपेड़ों को क्या तुम सहन कर सकोगी? नहीं रूपा नहीं! तुम खेतों में काम नहीं करोगी!" हीरामन भावावेश में बहता कहता गया।

"कमाल करते हैं आप भी! हमारे किस्मत में यह सब कहां? और फिर मै तो धरती मा की सेवा करूंगी, जो कि बदले मे हमें धन धान्य देगी। फिर भला आप मुझे मां की सेवा से क्यों वंचित रखना चाहते हैं?

"अच्छा छोड़ो भी इन बातों को। एक बात बताओ तुम्हें कौन-सा गहना पसन्द है।" हीरामन ने बात बदलते हुए पूछा।

सुनकर रूपा थोड़ी सकुचा गई। उसने सोचा कौन-सी बात में यह गहने की बात आ गई। उसने तिरछे चितवन से पति की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे शरमाते हुये बोली, "मेरी तो बस झूमरदार झेला और सिर पर बोर पहनने की इच्छा है और यही मेरी पसन्द है।"

"बस! इतनी सी बात!! मैं जरूर तुम्हारी यह इच्छा पूरी करूंगा!"

"सच!"

रूपा ने भी तो उसके साथ कड़ी मेहनत की थी। सुबह की पहली किरण फूटते ही वह जाग जाती और शाम तक काम करती। चौका, बरतन, गोबर, निंदाई, गुड़ाई सभी तो वह करती थी! बेचारी। तनिक भी आराम न करती। इन्हीं सब विचारों में गोते लगाता, सन्ध्या होते होते हीरामन अपने घर आ गया। गाड़ी को बाड़े में खड़ी कर, बैलों को कोने में गड़े एक खूंटे से बांध, वह प्रसन्न मुद्रा में घर के अन्दर गया। घर मे उसकी पत्नी रूपा खाना बना रही थी। पति को आते देख वह, मुस्कराकर बोली"आ गये आप।" "हां रूपा" आज मैं बहुत सारे रुपये लाया हूं। मूंगफली अच्छे भाव बिकी है। पूरे पन्द्रह सौ रुपये आये हैं।" इतना कह उसने नोटों की गड्डी पत्नी के सम्मुख रख दी।

"सच! तब तो मैं झूमरदार झेला, और सिर का बोर कल ही बाजार जाकर खरीद लाती हूं। बहुत दिनों की कठिन तपस्या के बाद आज यह दिन देखने को मिला और हां आप अपने लिए कपड़े लाये या नहीं?"

"तू मेरी फिक्र न कर रूपा! मैं तो जैसा हूं, ठीक हूं। अच्छा ला खाना रख, बड़ी भूख लगी है।" इतना कह कर हीरामन हाथ धो, पालथी मार कर बैठ गया। रूपा ने एक थाली में दाल और उसी में दो जुवार की रोटी रख दीं। अभी वह कठिनता से एक ही रोटी खा पाया था कि बाहर दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी!

"कौन है भाई?" उसने खाना खाते खाते ही पूछा।

"मैं हूं सेठ बनवारीलाल। दरवाजा खोलो।" बाहर से आवाज आई। हीरामन हड़बड़ा कर खड़ा हो गया। "सेठ बनवारीलाल!" अचानक उसके मुंह से शब्द निकल पड़े।

दरवाजा खुलते ही सेठ जी ने बोलना शुरू किया, "हीरामन। हमने सुना, आज तेरी मूंगफली अच्छे भाव बिकी है! ला, निकाल, हमारे पैसे?"

"पहले आप बैठिये तो सही सेठ जी, फिर हिसाब-किताब की बातचीत होगी।" हीरामन ने शिष्टतापूर्वक चारपाई बिछाते हुए कहा।

"अरे भाई, हम बैठने नहीं, हिसाब चुकता करने आये हैं। ला, निकाल तेरह सौ रुपये मय ब्याज के।"

"तेरह सौ?" हीरामन का मुंह आश्चर्य से फटा का फटा रह गया, "मैं तो सेठ जी आप से सिर्फ पांच सौ लाया था।" "तो मैं क्या करूं। ब्याज पर ब्याज और उस पर ब्याज! बड़ा आया मुझे अक्ल बताने वाला! अपना नाम क्या लिख लेता है, अपने आपको लाट साहब समझता है। अच्छा हुआ तेरे बाप ने ज्यादा नहीं पढ़ाया, नहीं तो तू हमारे इन बही-खातों को भी गलत बतला देता। नहीं देना हो तो सीधे क्यों नहीं कहता।"

हीरामन अवाक् रह गया। बड़ी-बड़ी आंखों से सेठ

जी के चेहरे को देखने लगा। "तेरह सौ"। उसने सोचा, रूपा का क्या होगा ? उसकी इच्छा हर बार अधूरी रह जाती है। क्या इस बार भी अधूरी ही रहेगी ? क्या उसकी किस्मत में झूमरदार झेला और सिर का बोर है ही नहीं ? नहीं ? इस बार वह उसे निराश नहीं होने देगा ?' इतना सोच उसने दृढ़ता से कहा, "सेठ जी, उन्हालू फसल आने पर मैं आपकी पाई पाई अदा कर दूंगा। इस बार आप मुझे क्षमा करें !"

'क्या कहा ? क्षमा करें। सेठ बनवारीलाल ने क्षमा करना नहीं सीखा है, हीरामन ! तू किस आधार पर कहता है कि उन्हालू फसल आने पर दूंगा। भगवान न करे। यदि फसल चौपट हो गई तो ? सेठजी ने क्रोधित होकर कहा।

"मैं अपने कुए से सिंचाई करूंगा ! मेरे हीरा मोती बैल चाहे जितना पानी बरस से खींच सकते हैं। आप इसकी चिन्ता न करें।" हीरामन ने नम्रता से उत्तर दिया। "हीरा मोती ! मुनीमजी खोल लो हीरा मोती को। तेरह सौ दे जाना और बैल ले जाना।" सेठजी को पूर्ण आवेश में देख, मुनीमजी ने अपनी ऐनक सम्भाली, बस्ते बगल में दबाये और बैलो की ओर बढ़ चला।

"ठहरो ! ' हड़बड़ा कर मुनीमजी ने पीछे घूमकर देखा, "यह लो आपके रुपये। पूरे तेरह सौ हैं।" रूपा ने बाहर आकर नोट की गड्डी सेठ जी के सम्मुख रख दी।

"रूपा ! तू यह क्या कर रही है। तेरी बरसों की साध !" हीरामन ने कहा। झूमरदार झेला, मेरे कान की शोभा बढ़ायेंगे और सिर का बोर सिर की इज्जत ! किन्तु इससे भी बढ़कर मुझे आपकी इज्जत प्यारी है। आप ही मेरे सरताज हैं। सरताज के होते किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। दे दो इन्हें रुपये। अपनी किस्मत में यह सब कहां ? मैं कभी आपसे वे चीजें नहीं मागूंगी। आपके सम्मान में ही मेरा सम्मान है। मैं तो आपकी परछाई हूं। वृक्ष कट जावे, तो परछाई भी कट जाती है। यह उसका दुर्भाग्य है। लानत है उस सोने को, जिसके पहिनने से कान कटे" इतना कह रूपा खामोश हो गई।

सेठ जी रुपये ले अपने घर चलते बने।

हीरामन ने रूपा के चेहरे को देखा, उसकी आँखों से सागर उमड़ने को उतावला हो रहा था। फिर भी ओंठों पर एक अजीब मुस्कान थी, जो शायद किसी विजय की दुंदुभी बजा रही थी।

दूर मन्दिर के घण्टे शंख ध्वनि के साथ बजने लगे थे। कदाचित् भगवान की आरती हो रही थी।

"रूपा ! यह भगवान भी कितना निष्ठुर है। मेह-नत करें हम और सेठ बने थे महाजन ! हीरामन ने शून्य में देखते हुए कहा।

"ऐसा न कहो ! भगवान् के घर देर है अंधेर नहीं है। वह जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। चलो अब खाना खालो।" इतना कह रूपा ने आँखों में आये आंसुओं को आंचल के छोर से पोंछ लिया।

घण्टे की आवाज पुनः जोर से आने लगी। फिर निरन्तर शंख ध्वनि के साथ दूर क्षितिज में विलीन होती सुनाई पड़ने लगी।

हीरामन कुछ देर शून्य में देखता रहा, फिर दरवाजा बन्द कर रूपा के साथ अन्दर चला गया। ●

स्वतन्त्रता का मूल्य

सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की।
इसके कारण कितने वीरों ने अपनी बरबादी की॥

ये वह आजादी है जिसके हित जो लक्ष्मी बाई थी।
समरांगण में लड़ते लड़ते जिसने गोली खाई थी।
तात्या टोपे, मङ्गल पांडे ने भी प्राण गंवाया था।
साक्षी है इतिहास उन्होंने जो जौहर दिखलाया था।
किन्तु वहां कुछ कारण थे जिससे असफलता पाई थी।
सुनो भाइयों क्या कीमत है भारत की आजादी की॥१

किन्तु तभी से ही भारत को स्वतन्त्रता का चेत हुआ।
साथ साथ ही दयानन्द स्वामी का भी संकेत हुआ।
सुभाष, नेहरू, पटेल, गांधी जैसे पैदा लाल हुये।
जिनके द्वारा स्वतन्त्रता के खातिर त्याग विशाल हुये॥
ज्ञात न किसको त्याग तपस्या सुभाष, नेहरू गांधी की।
सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की॥२

इसीलिए आजाद चन्द्रशेखर गोली से चूमे हैं।
भगतसिंह भी इसीलिये फांसी पर झूला झूले हैं।
जीवन भर बाबू सुभाष बिस्तरा बांध कर घूमे हैं।
अनगिन अमर शहीदों ने फांसी के तख्ते चूमे हैं॥
अमर रहेगी इतिहासों में करुण कहानी फांसी की।
सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की॥३

कितने लाल मरे कितनी माताओं की गोदी लूटी।
कितनी प्राण प्यारियों की निज प्यारों से संगति छूटी।
इसीलिये कितनी विधवाओं का सौभाग्य सुहाग नहीं।
हाहाकारों से कितनों घर जली कई दिन आग नहीं॥
ऐसे लाल मरे जिनको हो पाई केवल शादी थी।
सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की॥ ४

छोड़ दिये कितनों ने पलंगे गद्दे चादर बिछे हुए।
मखमल-मलमल छोड़े कितनों ने रंग-बिरंगे बने नये।
कितनों ने परिवार तज दिया अब कितनों ने नौकरियाँ।
जेलों में भर गये धड़ाधड़ पहन हाथ में हथकड़ियाँ॥

इसीलिये ही तो नेहरू जी ने न दूसरी शादी की।
सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की॥५

सोचो कितने कष्ट उठाकर यह आजादी पाई है।
कितनों ने इसकी वेदी पर अपनी भेंट चढ़ाई है।
कितनों ने अपने शोणित से इसका राज्याभिषेक किया।
दिखलाया बीरत्व तपस्या त्याग एक से एक किया॥

सावरकर ने सही इसी हित विपदा काले पानी की।
सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की॥६

ऐसी स्वतन्त्रता को पाकर इसकी रक्षा करना है।
रहना होगा 'प्रेम' मेल से नहीं परस्पर लड़ना है।
नहीं, नहीं तो दूर निकट ही वे दिन फिर आ सकते हैं।
फिर विदेश के बादल आकर भारत में छा सकते हैं।

कौन करेगा त्याग तपस्या फिर सुभाष या गांधी सी।
सुनो भाइयो क्या कीमत है भारत की आजादी की॥७

★प्रेमनारायण 'प्रेम' गङ्गा जमुनी (बहराइच)

[पृष्ठ १९ का शेष]

सुन रहे हो तो उठ खड़े हो, और अपना चमकीला चक्र भड़कीला भाला लेकर रावण की लङ्का को भस्मीभूत कर दो। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि हमारी विजय पताका संसार के सर्वोच्च शिखर पर लहरायेगी। हिमालय और विन्ध्याचल की गुफाओं में आंख मूदकर बैठ जाने वाले महात्माओ! श्रद्धेय सन्यासियों आप बाहर आइये और मिटते हुये धर्म की रक्षा कीजिये। प्यार के गीतों की झनकार सुनाने वाले कवियों! अपनी लेखनी को हिन्दुओं में स्वधर्माभिमान जगाने के लिये समर्पित कर दो! राष्ट्र के करोड़पति महाजनो! आप विलास मनाना छोड़िये और हिन्दू-धर्म के प्रचारार्थ मुक्त हस्त से धन प्रदान कीजिये। यह भारत माँ की आवाज है, यह एक दुःखी आत्मा की पुकार है, यह हिन्दू धर्म व भारत की अग्नि परीक्षा का काल है। आज हमारा धर्म खतरे में है, गाय का कत्ले आम हो रहा है, माँ बेटियों का शील खतरे में है। नौजवानों! करवट बदलो! आर्यों! एक हो जाओ। नेताओ मिल जाओ! "संघे शक्ति कलीयुगे" जब हम इकट्ठे होकर एक साथ कदम बढ़ायेंगे या एक साथ मिलकर काम करेंगे, तभी हमारी बगिया में मस्तानी स्वर में कोयल भी गुनगुनाकर कहेगी—

"सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा।"

और सारा संसार फिर से एक स्वर में कहेगा कि—

"यही वृद्ध भारत गुरू है हमारा" ★

सुझाव और सम्मतियाँ

अन्न संकट दूर करने का सरल उपाय

तम्बाकू की खेती बन्द हो

★

खाद्य समस्या को हल करने के लिये भारत सरकार अपने दृष्टिकोण मे परिवर्तन करे। सरकार अपनी नीति इस से निर्धारित करे, ऐसा कदम उठावे कि तम्बाकू की खेती बन्द कराकर अनाज पैदा किया जाय, जिससे जो अन्न की हाय-हाय मची हुई है वह बन्द हो जावे और सरकार जो लाखों करोड़ों रुपया का अन्न विदेशों से मगवाती है, वह भी परेशानी से बचे और देश का पैसा भी देश में रहे। जिससे अन्न और चारे की कमी नहीं रहेगी और सब मनुष्य या जानवर अपना जीवन सुखमय बितायेंगे। करोड़ों रुपयों की विदेश से अन्न मगाने मे हानि हो रही है। तम्बाकू पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये जिससे इस धन की बचत हो सके, यदि कानून द्वारा तम्बाकू की खेती पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय तो लाखों एकड़ भूमि में जहा आज तम्बाकू जैसी नशीली जहरीली और हानिकारक चीज बोई जाती है। गेहूं जो चना, मक्का, बाजरा आदि बोया जाय जिससे देश की अन्न की समस्या बहुत कुछ हल हो सकेगी।

सिगरेट बीडी का प्रचार रोका जाय तम्बाकू की खेती बन्द हो, तम्बाकू से बच्चों, बूढ़ों जवानों को बीड़ी सिगरेट पीने की जो बुरी आदत पड गई है जो मनुष्य के लिये बडी हानिकारक चीज है, वह छूट जाय।

आज देश में बीडी और सिगरेट का प्रचार बहुत बढ रहा है जिससे नवयुवकों का स्वास्थ्य गिरता है और खर्चा बढ़ता है, लाखों रुपयों की हानि होती है। और बीडी के प्रचारकों का जगह जगह पर लाउडस्पीकरों द्वारा नाच-गाकर प्रचार करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाय ताकि लडके उसके बुरे परिणामों से बच सकें।

—रामचन्द्र आर्य सिद्धान्त रत्न
कोषाध्यक्ष आर्यसमाज कायमगज, फर्रुखाबाद (उत्तरप्रदेश)

बृहदाधिवेशन के लिए निमन्त्रण-पत्र भेजिए

विदित हो कि प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा के आगामी बृहदधिवेशन के स्थान व तिथि नियत करने का विषय सभा की आगामी अन्तरङ्ग मे विचाराधीन है।

अत प्रदेशीय आर्य समाजों से निवेदन है कि जो आर्य समाज अपने यहाँ बृहदधिवेशन को आमन्त्रित करना चाहें, वे, स्थानीय आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा से स्वीकृति लेकर सभा कार्यालय में निमन्त्रण पत्र अन्तरङ्ग सभा के निश्चय सहित भेजने की कृपा करें।

--प्रेमचंद्र शर्मा, सभामंत्री

आर्य-जगत

बरेली नगर में-
आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश की अन्तरंग सभा का अधिवेशन

माननीय श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री सभा प्रधान को १७८०) रु० भेंट

तथा अभूतपूर्व स्वागत



आर्य समाज बिहारीपुर बरेली के निमन्त्रण पर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन १२ जनवरी १९६९ को बरेली नगर में अभूत पूर्व समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। श्री विक्रमादित्य जी बसन्त मुख्य उपमन्त्री कार्यालय के साथ ११ जनवरी को बरेली पधारे। आपके स्वागतार्थ स्टेशन पर कार्यकर्ता पहुंचे हुए थे। इस सारे आयोजन की रूपरेखा श्री डा. चन्द्र-नारायण जी वकील ने बनाई थी। आर्यसमाज बिहारीपुर के प्रधान श्री भद्रगुप्त जी आर्य थे जो एक परिवार परम्परागत आर्य हैं और नगर के धनी मानी व्यक्ति हैं, मुक्त हस्त से सारे स्वागत पर अपने पास से लगभग एक हजार रुपया व्यय कर दिया। जो भी अन्तरङ्ग सदस्य बरेली पधारे उनका कहना यह था कि चालीस वर्ष के अन्दर ऐसा स्वागत समारोह हमने अन्तरङ्ग सदस्यों का अन्यत्र नहीं देखा।

आर्य समाज का जो हाल अन्तरङ्ग सभा के अधिवेशन के लिये सजाया गया था वह सारे नये सामान से कौच मस-नद, तकियों आदि से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शाही दरबार हो। यह सारा सामान इसी काम के लिए खरीदा गया था। श्री भद्रगुप्त जी की यह हृदय तरङ्ग थी कि चाहे जितना धन मेरा व्यय हो जावे, पर काम सब शान-दार हो।

(सभा प्रधान का स्वागत)

सभा प्रधान श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री चन्दौसी की ओर से आने वाली ट्रेन पर १० बजे दिन बरेली पहुंचने वाले थे। इसीलिए श्री भद्रगुप्त जी ने सारे नगर में समाचार फैला दिया, और फूलों से लदी एक कार सभा प्रधान के स्वागतार्थ बरेली जंकशन की ओर चली और नगर का सब श्रेष्ठ बैण्ड स्टेशन पर पहुंचा और सब आर्य समाजों के व्यक्ति स्टेशन पहुंचे। पर यह जानकर घोर निराशा हुई, कि श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री एक दिन पूर्व रात्रि को ३ बजे ही बरेली पहुंच गये हैं इसलिए सब लोग जो स्टेशन पर गये बैण्ड और मालाओं के साथ खड़े रह गये। श्री पं० प्रकाशवीर जी ने अपने पहले पहुंचने पर स्पष्टी करण को प्रस्तुत करते हुये कहा कि आदरणीय आर्य भाइयो मैं सत्य कहता हूं कि मुझ जैसे छोटी आयु वाले का स्वागत नहीं करना चाहिए। यह स्वागत समारोह मनुष्य को बिगाड़ सकता है, और मेरा आरम्भिक जीवन है, अतः मेरे स्वागत प्रबन्ध में जो आप को कष्ट और निराशा हुई, उसकी मैं क्षमा मांगता हूं। सभा प्रधान के इस स्पष्टी करण पर आर्यसमाज बिहारी-पुर बरेली के प्रधान स्वागताध्यक्ष श्री भद्रगुप्त जी आदि आर्य भाइयों के आंखों में प्रियाश्रु थे, और निराशा के स्थान पर सब आर्य भाइयों के आंखों में सभा प्रधान श्री पं० प्रकाशवीर जी के प्रति अति प्रेम आदर और गौरव झलकने लगा।

(सभा प्रधान जी का आध्यात्मिक प्रवचन)

श्री प० प्रकाशवीर जी ने आते ही प्रातः १० बजे साप्ताहिक अधिवेशन की वेदी पर बैठ कर जो आध्यात्मिक प्रवचन किया उससे सारी जनता पर यह प्रभाव पड़ा कि राज सभा और राजमञ्च से अद्वितीय राजनीतिक समस्याओं पर बोलकर जहाँ पार्लियामेन्ट को चकित हमारे प्रधान कर सकते है, वहा हमारे सभा प्रधान श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री अद्वितीय आध्यात्मिक प्रवचन भी कर सकते हैं।

इस अवसर पर आर्य समाज बिहारीपुर बरेली के मन्त्री श्री जसर्कीलाल जी आर्य ने जो यज्ञ रचना की व्यवस्था की थी वह भी अपूर्व थी। आप के सहयोगी उपमन्त्री श्री ओम्प्रकाश जी आर्य थे, और ब्रह्मा के आसन पर श्री आचार्य विश्वश्रवा. जी सार्वदेशिक सभा निर्धारित पद्धति से यज्ञ करा रहे थे, और चारों वेदों के मन्त्रों का पृथक् पृथक् स्वर से उच्चारण सिखा रहे थे।

अन्तरङ्ग सदस्यो के स्वागत और भोजन की व्यवस्था

११ ता० से अन्तरङ्ग सदस्य आने प्रारम्भ हो गये। श्री भद्रगुप्त जी ने इस प्रकार की व्यवस्था की कि प्रत्येक समय सब पदार्थ सबके लिए यथेष्ट दिये जावें। सबके ठहरने की व्यवस्था श्री डा० श्यामस्वरूप जी सत्यव्रत के ज्येष्ठ पुत्र श्री डा सत्यस्वरूप जी के निर्देश से स्त्री सुधार महाविद्यालय में हुई, वहा उनके कर्मचारी भी उपस्थित रहे।

श्री जयकिशन जी होटल वालों ने तरल मध्य प्रातःराश की व्यवस्था की और मध्याह्न भोजन श्री बा० चन्द्रनारायण जी की कोठी पर ऐसा हुआ कि स्तुति समस्त अन्तरङ्ग सदस्य करते थे। जितने और सुन्दर भोजन और खिलाने का प्रकार व्यवस्था सब ही उदाहरण के योग्य थी।

अन्तरङ्ग सदस्यो को भेंट

सायं ५ बजे श्री भद्रगुप्त जी की कोठी पर जो पदार्थ अन्तरङ्ग सदस्यों को खिलाये गये उनकी तो छटा ही निराली थी। सब अन्तरङ्ग सदस्यों और बरेली नगर के आर्य भाइयों तथा सम्भ्रान्त नागरिकों का यह सम्मिलित सहभोज था, जिसमें सैकड़ों व्यक्ति सोल्लास सहभोज षड रस पदार्थों का कर रहे थे। भोजनोपरान्त श्री भद्रगुप्त जी ने सब अन्तरङ्ग सदस्यों को एक सुन्दर ट्रे जो लगभग दस रुपये मूल्य की थी मय सभा कार्यालय के कार्यकर्त्ताओं को भेंट दी और एक सुन्दर कलई की तस्तरी प० बिहारीलाल जी के सुपुत्र श्री अरविन्दलाल जी एम० ए० की ओर से भेंट में सब अन्तरङ्ग सदस्यों और सभा कार्यालय के लोगों को दी गई।

सभा प्रधान को भेंट और अभिनन्दन पत्र

बा० चन्द्रनारायण जी ने यह अनुभव किया कि सभा कार्यालय नारायण स्वामी भवन लखनऊ में महात्मा नारायण स्वामी जी का कोई चित्र नहीं है, और सभा प्रधान का बैज पहले चांदी का होता था, अब कपड़े का लगाया जाता है।, अतः तीन चीजें तैयार कराई गई। १—चाँदी का भव्य बड़ा बैज, २—महात्मा नारायण स्वामी जी का बड़ा सुन्दर रंगीन चित्र और ३—श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री का सुन्दर रंगीन चित्र। बरेली आर्यसमाज के प्रधान श्री भद्रगुप्त जी आर्य ने तीनों चीजें जिनके निर्माण पर लगभग आठ सौ रुपये व्यय हुये, सभा प्रधान श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री को खुले अधिवेशन में मञ्च पर भेंट किए, और चांदी का बैज सभा प्रधान के लगाया और बहुत कीमती एक सुन्दर हार गले में पहनाया। उस समय प० प्रकाशवीर जी की शोभा देखने योग्य ही थी। चारों ओर से आवाज जनता ने की कि इसको पहने ही सभा प्रधान बैठे रहें, पर श्री पं० प्रकाशवीर जी ने घबड़ा कर उसको उतार कर रख दिया और कहा मुझ पर दया करो।

श्री भद्रगुप्त जी ने सभा प्रधान को कुछ धन अर्पण किया, तदनन्तर आर्य भाइयों ने नगर के आर्यसमाजों ने और स्त्री समाज तथा संस्थाओं के अधिकारियों ने भेंट की जो १७८०) रु० हो गया। जिसका विवरण अन्त में दिया है। यह थैली सुन्दर लाल रेशम के थैले में सभा प्रधान को भेंट की और साथ ही एक अभिनन्दन-पत्र

पुस्तकाकार रूप श्री अशर्फीलाल जी आर्यसमाज बिहारीपुर बरेली के मन्त्री जी ने पढ़ा और भेंट किया, जिस अभिनन्दन पत्र में महर्षि के बरेली में आने और सेठ लक्ष्मीनारायण जी की कोठी पर ठहरने और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका को बरेली में रचना समाप्त करने का उल्लेख था। साथ ही इस अभिनन्दन पत्र में महात्मा नारायणस्वामी जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी आदि का इतिहास बरेली नगर में बताते हुए बरेली के उन महान् व्यक्तियों का वर्णन किया कि किसप्रकार डा० चन्द्रनारायण जी के पूज्य पिता स्व० डा० प्रमनारायण जी रईस ने अपनी भूमि और सम्पत्ति देकर इस नगर में संस्थाओं का सूत्रपात किया और स्व० श्री डा० श्यामस्वरूप जी सत्यव्रत ने लगभग चालीस संस्थाओं का विस्तार इस नगर में किया, जिसमें अनेक इण्टर कालिज लड़के-लड़कियों के इस नगर में हैं यह सारा श्रेय श्री डा० श्यामस्वरूप जी को है कि उनके युग में बरेली नगर स्वयं में एक प्रान्तीय सभा के रूप में रहा है। इस अभिनन्दन पत्र में यह भी दर्शाया गया है कि वर्तमानकाल में भी आर्यजगत् के भीष्म पितामह प०बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ शास्त्रार्थ महारथी तथा श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी व्यास एम०ए० वेदाचार्य जो प्रथम उदाहरण इस बात के हैं कि सरकार ने जिन्हें बनारस संस्कृत यूनिवर्सिटी की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल का मेम्बर चुना अभी तक आर्य विद्वानों में से सरकार ने किसी को नहीं चुना था। श्रीमती सावित्री देवी जी पुराणेतिहास साहित्याचार्य एम०ए० आदि अनेक विद्वद्रत्न इस

गुरुकुल वृन्दावन का महोत्सव

१४, १५, १६ फरवरी को होगा

समस्त आर्यजगत् को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का ६२ वाँ वार्षिक महोत्सव शिवरात्रि के अवसर पर दिनांक १४, १५, १६ फरवरी ६९ को मनाया जा रहा है। इस अवसर पर संस्कृत सम्मेलन, आर्य सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा-सम्मेलन, आयुर्वेद सम्मेलन आदि आदि सम्मेलन सम्पन्न होंगे। १६ फरवरी ६९ को रविवार के दिन नवस्नातकों का समावर्त्तन संस्कार तथा दीक्षान्त समारोह भी होगा। दीक्षान्त भाषण के लिये भारत सरकार के उपप्रधान मन्त्री माननीय श्री मुरार जी देसाई से प्रार्थना की गई है। उनके पधारने की पूर्ण सम्भावना है शिक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिये भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री माननीय डा० श्री त्रिगुणसेन जी की स्वीकृति प्राप्त हो गई है। राष्ट्र रक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता के लिये माननीय श्री इन्द्रकुमार जी गुजराल सचार मन्त्री भारत सरकार के आने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त देश के अग्रगण्य मान्य नेता तथा आर्य सन्यासी विद्वान् व्याख्याता तथा महोपदेशक भी पधार रहे हैं।

इसी अवसर पर नवीन बालकों का प्रवेश होगा। जो महानुभाव अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहें वे गुरुकुल कार्यालय से प्रवेश नियम व फार्म मंगालें। जो सज्जन पुस्तक आदि की दुकान लाना चाहें वे गुरुकुल कार्यालय को सूचित कर दें।

आशा है कि आर्यजनता समुपस्थित होकर व्याख्यानों तथा उपदेशों से लाभान्वित हो सकेगी।

—नरदेव स्नातक एम०पी०
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (मथुरा)

नगरी में आज भी विद्यमान हैं।

सभा प्रधान की स्मृति मे साकिब साहब की कविता बड़ी काव्य पूर्ण थी।

इस अभिनन्दन पत्र के बाद जनता की करतलध्वनि और जय के नारों के मध्य सभा प्रधान श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री भाषण प्रारम्भ करने उठे। सब को धन्यवाद देते हुए बरेली नगर की प्रशंसा करके सभा प्रधान श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री ने इस बात को साभिमान जनता के समक्ष रखा कि बरेली नगर ने एक और अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है कि जो काशी के विद्वान् स्त्रियों को संस्कृत पढ़ाने के विरुद्ध थे, वेद पढ़ाने की तो कथा ही क्या, वहीं श्री आचार्य विश्वश्रवा जी की धर्म पत्नी श्रीमती देवी शास्त्री ने उन्हीं काशी के पण्डितों से संसार मे प्रथमबार वेदाचार्य की उपाधि ग्रहण की और सब प्रथम रहकर स्वर्णपदक राज्यपाल के हाथों से ग्रहण किया और काशी नरेश और श्रीआदित्य नाथझा आदि का आशीर्वाद प्राप्त किया। मे श्रीमती देवी जी को पुष्प हार भेंट करते हुए बधाई देता हूं। सभा प्रधान के ऐसा कहने पर प० बिहारीलाल जी शास्त्री ने जो उनके पिता जी के साथियों मे से हैं, श्रीमती देवी जी के गले मे माला स्वयं ही डालकर आशीर्वाद दिया।

सभा प्रधान ने अपने भाषण को प्रस्तुत रखते हुए कहा कि राजनैतिक संस्थायें वह शक्ति नहीं रखतीं जो शक्ति महर्षि के अनुयायी रखते हैं। आपने उन देशों का वर्णन किया जहां आर्य समाज ने मुसलमानों को शुद्ध करके

समझाया कि तुम्हारे पिता को कबरों में पड़े हैं उनकी हड्डियों को निकालो और मज़ाबस छिड़को तब वे स्वर्ग में जा सकेंगे। यह बताकर आर्यों ने कबरस्तान तक उन्हीं के हाथों से उखड़वा दिये। आपने "मारिशस" का भी वर्णन किया जो आर्यसमाज के प्रभाव से आज हिन्दू स्टेट के रूप में है। सभा प्रधान ने शिक्षकों के शान्तिपूर्ण आन्दोलन और सफलता पर उन्हें बधाई दी और छात्र वर्ग को अनुशासन में रहने का सन्देश दिया कि यदि यह प्रथा डालोगे तो कल ही दिनों में तुम अध्यापक आदि बनोगे और इसी अनुशासन हीनता को भुगतोगे। आपने परिवार नियोजन के भी विरुद्ध कहा कि इससे हिन्दू किसी समय अल्पमत में इस देश में हो जायेगा। हिन्दू कोड बिल और परिवार नियोजन ये दोनों हिन्दू जाति के लिए घातक हैं। हजारों की संख्या में बरेली नागरिक सभा प्रधान के भाषण को मन्त्र मुग्ध होकर सुन रहे थे। भाषण के पश्चात् सभा प्रधान देहली चले गये।

सभा प्रधान को दिये धन का विवरण

१७८०) रुपये की थैली सभा प्रधान जी को भेंट की गई। उसका पृथक-पृथक विवरण इस प्रकार है।

१०१) आर्य स्त्री समाज बिहारीपुर बरेली
१०१) आ०स० आर्यनगर चूड़ बरेली
५१) जिला उपसभा बरेली
५१) आर्यसमाज कैम्प बरेली
१५१) श्री डा० तनेजा जी मर्चेंट इण्टर कालिज सुभाषनगर बरेली की ओर से

१५१) आर्य पुत्री कन्या इण्टर कालिज
बिलसी की ओर से प्रिंसिपल द्वारा
कुल ६०६) इस प्रकार प्राप्त हुआ और

११७४) आर्यसमाज बिहारीपुर बरेली की व्यवस्था से हुआ, जिसका कुछ विवरण इस प्रकार है।

१०१) श्री मद्रगुप्त जी आर्य
१०१) श्री राधेश्याम जी वैद्य
१०१) श्री सेवाराम जी
१०१) श्री लक्ष्मण प्रसाद जी
५१) श्री जगदीशप्रसाद जी
तोपखाने वाले
५१) श्री नानकचन्द्र जी घड़ी वाले
५१) श्री काशीनाथ जी सेठ
५१) श्री प्रेमनाथ जी कपड़े वाले
५१) श्री पं० राधेश्याम जी के पौत्र
श्री विश्वनाथ जी
५१) श्री त्रिलोचनसिंह जी
७१०) योग
४६४) आर्यसमाज बिहारीपुर ने और
संग्रह किया

१७८०) कुल उस समय सभाप्रधान
जी को भेंट किया गया।

श्री मद्रगुप्त जी आर्य ने इस सारे आयोजन पर एक सहस्र रुपया तो अपने पास से व्यय कर दिया। यह अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन अनुकरणीय था अन्य नगर भी इस पथ पर चलें तो आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश भारत के सबसे बड़े प्रान्त की शक्तिशाली सभा बन जावे।



दयानन्द-सप्ताह

ऋषि बोध-पर्व १५ फरवरी को मनावें

उत्तर प्रदेशीय समस्त आर्यसमाजों एवं आर्य उप प्रतिनिधि सभाओं को विदित हो कि इस वर्ष महा शिवरात्रि पर्व १५ फरवरी १९६९ को पड़ रहा है। अतः सभा ने निश्चय किया है कि "दयानन्द सप्ताह" दिनांक ९ फरवरी से १५ फरवरी १९६९ तक उत्तर प्रदेश में उत्साहपूर्वक धूम-धाम के साथ मनाया जाए। सप्ताह का कार्यक्रम शीघ्र आर्यमित्र के आगामी अंकों में प्रकाशित किया जायेगा। अतः आर्य समाजों को चाहिए कि इस सप्ताह का कार्यक्रम विशेष उल्लास के साथ मनाने का प्रोग्राम बनाने की कृपा करें।

—प्रेमचन्द्र शर्मा, सभा मन्त्री

अमृत वर्षा

महर्षि दयानन्द ने कहा था-

राज सभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहिए ?



स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचिवान" अर्थात मन्त्री करे ॥ १ ॥ क्योंकि विशेष सहाय के बिना जो सुगम कार्य है, वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्य कर्म एक से कैसे हो सकते हैं ? इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है ॥ २ ॥ इससे सभापति को उचित है कि नित्य-प्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता किसी से (विग्रह) विरोध (स्थान) स्थिति समय को देखके चुप-चाप रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोष आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो-जो देश प्राप्त हों उस-उस में शांति स्थापन उपद्रव रहित करना इन छः गुणों का विचार नित्य-प्रति किया करें। ॥ ३ ॥ विचार ऐसे करना कि उन सभासदों का पृथक् पृथक् अपना-अपना विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो, वह करने लगना ॥ ४ ॥ अन्य भी पवित्रात्मा बुद्धिमान्, निश्चित् बुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अति चतुर सुपरीक्षित मन्त्री करे ॥ ५ ॥ जितने मनुष्यों से राज्य कार्य सिद्ध हो सके उतने आलस्य रहित बलवान् और बड़े बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर करे ॥ ६ ॥ इनके आधीन शूरवीर, बलवान्, कुलोत्पन्न, पवित्र भृत्यों को बड़े-बड़े कर्मों में और भीरु डरने वालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे ॥ ७ ॥ जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जानने हारा सब शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रक्खे ॥ ८ ॥ वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है ॥ ९ ॥

आर्यसमाज के संस्थापक—

महर्षि दयानन्द सरस्वती



जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगे,
जिसका साहस देख विघ्न भय संकट भागे।
सबल सत्य की हार, असत् की जीत न होगी
ऐसे प्रबल विचार सहित विचरा जो योगी।
उस दयानन्द ऋषि राज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े
प्रेम'शंकर आर्यसमाज का वैदिक बल गौरव बढ़े।



वार्षिक मूल्य १०) विदेश में १ पौण्ड] [इस प्रति का मूल्य ५० पैसे
वर्ष] लखनऊ—रविवार मा० वैशाख ६ शक १८६४, ज्येष्ठ कृ० १० सं० २०३०, अंक]
७५ दि० २७ मई १६७३ ई० दयानन्दाब्द १४६ स स १६७२६४६०७४ २० २१

सामूहिक पूजा विधान

ओ३म् । सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशति. ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।। ऋ० १।८०।६

(सहस्रम्) हजारों (साकम) इकट्ठे, एक साथ (अचत) पूजा करो, विंशति) बीसयों एकत्र होकर (परि स्तोभत) चारो ओर स्तुतिगान करो । और (ब्रह्मोद्यतम्) ब्रह्मवर्चायुक्त (स्वराज्यम) स्वराज्य का (अनु+अर्चन्) योग्य सत्कार करते हुए (शता) सैकड़ो । इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिए (एनम्) इनको (अनोनवु·) प्रणाम करते हैं ।

पूजा दो प्रकार की होती है-एक वैयक्तिक, दूसरी सामूहिक=वैयक्तिक पूजा एकान्त स्थान में होती है । सब चिन्तायें हटाकर प्रात साय भगवान की आराधना करना, उसके आगे निष्कपट भाव से अपनी दुर्बलतायें, त्रुटियां कहना, उससे उनके अपाकरण के लिये बल मांगना, प्राणायाम, धारणा, ध्यान समाधि का अनुष्ठान, ईश्वरप्रणिधान आदि सब वैयक्तिक पूजाएँ हैं । वैक्तिक पूजा से पूजा करने वाले व्यक्ति का सस्कार होता है, उसके मन और आत्मा का परिष्कार होता है । इस प्रकार से सस्कृत तथा परिष्कृत मनुष्य समाज-सेवा के लिये तय्यार होता है ।

जिस प्रकार व्यक्ति के सस्कार तथा परिष्कार के लिये वैयक्तिक पूजा-स्तुति प्रार्थना उपासना अर्चना की आवश्कता है, वैसे ही समाज के उद्धार के लिये, समाज के सुधार के लिये सामूहिक प्रार्थना पूजा अनिवार्य्य है । सामूहिक पूजा से समूह मे बल आता है । सारे समाज का मन एक करने का, विचार आचार एक करने का यह सर्वोत्कृष्ट साधन है ।

जैसे एक व्यक्ति-आस्तिक श्रद्धायुक्त व्यक्ति-पूजा के समय साफ सुथरे उज्ज्वल वस्त्र पहनता है, उसी भांति सामूहिक पूजा के समय सबके वस्त्र उजले हों, साफ सुथरे और धुले हों । सबके मन में उमग हो । सब एक स्वर होकर जब संसार में आन्दोलन उठाते हैं, तो कुठार-कठोर सरकार भी मान जाती है । यदि हजारों एक मन से, एक स्वर से करुणावरुणालय के आगे अपना मनोभाव रखेंगे, तो वह अवश्य उसे पूरा करेगा । उसका तो स्वभाव ही है, अपने भक्तों की कमनीय कामनाओं को सतत पूरा करना । अत वह स्वयं आदेश करता है--

सहस्र साकमर्चत=हजारों मिलकर पूजा करो ।
इससे स्वराज्य—ब्रह्मोद्यत स्वराज्य—का सत्कार होगा ।

सम्पादकीय

आर्य समाज स्थापना शताब्दी मेरठ—
आर्यसमाजोदय

महर्षि दयानन्द ने विश्व के अज्ञान तमस को नष्ट कर ज्ञान सूर्य का प्रकाश करने के लिये अठान्वे वर्ष पूर्व आर्य समाज की स्थापना की थी।

आर्य समाज—सूर्य ने विश्वगगन में सव्याप्त धुन्ध, अन्धड और तूफानों को अपने प्रखर प्रभाव से नष्ट कर ससार मे ज्ञान-ज्योति का प्रकाश फैलाया।

पोपलीला, पाखण्ड, ऊँच नीच, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, शूद्र वर्ग का दलन, स्त्री समाज का उत्पीडन, विदेशी धर्मों का कुप्रचार आदि ऐसे कार्य थे, जिनके निराकरण के लिये आर्यसमाज ने भीषण-सघर्ष किया बलिदान दिये, आर्यजनो ने अपने व्यक्तिगत जीवन को आर्य समाज के लिये उत्सर्ग कर दिया। देश में विचार-स्वातन्त्र्य विचार-मन्थन, स्वाधीनता, सस्कृति आदि की उदात्त भावनायें हिलोरें मारने लगीं और स्वाधीनता की प्रबल आकांक्षा के फलस्वरूप इण्डियन नेशनल कांग्रेस की आर्य समाज के दस वर्ष बाद स्थापना हुई।

आर्य समाज की स्थापना के ९८वें वर्ष के पश्चात् हमे सिंहावलोकन करना है कि आर्य समाज कहाँ से चला था और आज कहा पहुच चुका है। आर्यसमाज संगठन के सबसे बडे केंद्र उत्तर प्रदेश के आर्य बन्धुओं को इस बात का सौभाग्य और गौरव प्राप्त है कि उन्होंने आर्यसमाज स्थापना शताब्दी की भूमिका के रूप में मेरठ में शताब्दी समारोह का आयोजनकिया है। इस आयोजन ने एक बार फिर ससार का ध्यान आर्य समाज की ओर आकृष्ट कर दिया है।

देश मे और समस्त विश्व मे आज एक भीषण सकट उत्पन्न है जिसे नैतिकता का सकट कहा जा सकता है।

आर्य समाज को इस बात का गर्व है कि उस का आधार और व्यवहार नैतिकता पर आश्रित है। और ससार के इस सकट को आर्य समाज के वैदिक सदेश द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

अमेरिका के एन्ड्रू जैक्सन ने आर्य समाज को अज्ञान अन्याय-अभाव के नाश की व्यापक भट्टी बताया था, और आज उनका कथन सत्य हो रहा है। आर्य समाज के विश्वव्यापी स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि उसके नियम 'ससार का उपकार करना इस समाज का मख्य उद्देश्य है' को समझना चाहिये। जब तक ससार की समस्यायें रहेगी, आर्य समाज की आवश्यकता रहेगी। इस सत्य को आज सबसे अधिक गम्भीरतापूर्वक स्वीकर किया जाना चाहिये।

आर्य समाज के पूर्व और साथ की सस्थायें आज लुप्त हो चुकी हैं, पर आर्यसमाज का प्रचार प्रसार बढ़ रहा है। इस वृद्धि को स्थाई रूप देने और आर्य समाज के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिए मेरठ में शताब्दी समारोह हमे नवीन प्रेरणा दे रहा है। आशा है आर्यजगत् मेरठ शताब्दी की प्रेरणओं को हृदयगम कर आर्य समाजोदय के लिये दृढ़ सकल्प लेगा। *

—स्नातक

अगला अंक बन्द रहेगा !

इस विशेषांक के पश्चात ३ जून का अंक आर्यमित्र शताब्दी समारोह के कारण बन्द रहेगा। अब १० जून का अक पाठकों की सेवा में पहुचेगा। एजेण्ट और पाठक नोट कर लें। —अधिष्ठाता

मेरठ शताब्दी समारोह के लिए देश के विशिष्ट पुरुषों के सन्देश व शुभ-कामनायें

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का संदेश



"उत्तर प्रदेशीय आर्य समाज शताब्दी के लिए मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

—इन्दिरा गांधी

[२]

वित्त मन्त्री, भारत
नई दिल्ली
दिनांक ५ मई, १९७३



आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा आर्य समाज शताब्दी महोत्सव २५ मई से मनाया जा रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। धर्म के नाम पर समाज मे शताब्दियो से चली आ रही अन्यायी कुप्रथाएँ नष्ट कर समाज के पुनरुत्थान के लिए कार्यरत संस्था की शताब्दी एक विशेष महत्व रखती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे निर्भीक तपस्वी ने इन बुराइयों को दूर करने के लिए अपना जीवन अर्पित किया था और आर्य समाज की स्थापना कर लोगो को अपने विचारो पर आचरण करने के लिए प्रेरित किया। यह खुशी की बात है कि इस संस्था के कार्यकर्ताओ ने महिला-शिक्षा, अछूतोद्धार जैसे कार्यक्रम हाथ मे लेकर स्वामी जी के कार्यों को पूर्ण करने का भरसक प्रयत्न किया।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अंधश्रद्धा मे विश्वास रखने वाला और इसी कारण बुराइयों को भी रुढ़ि मानने वाला एक बड़ा वर्ग समाज के पुनरुत्थान के लिए रोड़ा था। इसको दृष्टि मे रखकर स्वामी जी ने तथा आर्य समाज ने वेदो और धार्मिक ग्रन्थो का सही अर्थ जनता को समझाने का जो कार्य किया वह निःसन्देह प्रशंसनीय रहा है। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि शताब्दी समारोह के अवसर पर हिन्दी, अंग्रेजी और कुछ प्रमुख भाषाओ मे वेदों का अनुवाद कराने का संकल्प किया गया है। मेरी शुभकामनाएँ

—यशवन्तराव चव्हाण

[३]

राज भवन, बंगलौर
२८ अप्रैल १९७३

प्रिय प्रकाशवीर जी,

आपका ता० १५ अप्रैल का पत्र मुझे प्राप्त हुआ। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आर्य समाज शताब्दी समारोह बड़े उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। भारत की जनता में सांस्कृतिक और सामाजिक चेतन्य पैदा करने में आर्य समाज का बहुत बड़ा हाथ रहा है, इस बात से कोई भी व्यक्ति अपरिचित नहीं है। बहुत से क्रान्तिकारी कार्यक्रम जो स्वामी दयानन्द जी ने अपने जीवन काल में हाथ मे लिये, उनसे सामाजिक रुढ़ियों को तोडने में बहुत बड़ा बल मिला है। मेरा स्वयं का जीवन आर्य समाज से बहुत कुछ सम्बद्ध रहा है, इसलिए मुझे और भी ज्यादा उत्साह होता है कि शताब्दी समारोह उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। मैं इस समारोह की सफलता के लिए अपनी शुभकामनायें भेजता हूं। आपका—

मोहनलाल सुखाडिया

[४]

राज भवन, लखनऊ
अप्रैल ३०, १९७३

मुझे यह जानकर हर्ष है कि आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रान्त मे तीन वर्ष तक आर्य समाज शताब्दी समारोह सम्पन्न कराने का निश्चय किया है, जिसका प्रथम समारोह आगामी २५ मई को मेरठ मे माननीय राष्ट्रपति जी, श्री वी० वी० गिरि ने उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया है।

आर्य समाज ने अनेक सामाजिक कुरीतियों और समय के प्रतिकूल परम्पराओं को हटाने की दिशा मे प्रशसनीय कार्य किया है तथा मैं शताब्दी समारोह की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभ-कामनायें भेजता हू। —अकबर अली खां

[५]

राजभवन, भोपाल—३
४ मई १९७३

हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश द्वारा आर्य समाज शताब्दी समारोह का आयोजन किया जा रहा है।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण आन्दोलन को दिशा प्रदान करने मे आर्य समाज ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। वैदिक साहित्य के प्रचार के साथ ही देश मे प्रचलित धार्मिक भ्रांतियां और सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध जनमत जाग्रत् करने मे, आर्य समाज ने प्रशसनीय सफलता अर्जित की थी।

आशा है शताब्दी समारोह का आयोजन हमारी प्राचीन सस्कृति के श्रेष्ठ आदर्शों और सिद्धान्तों को चरितार्थ करने के लिए नई प्रेरणा और उत्साह का सृजन करेगा।

मै समारोह की सफलता की कामना करता हू।

—सत्यनारायण सिंह
राज्यपाल, मध्य प्रदेश

[६]

मुख्य मन्त्री, भोपाल।

मुझे यह जानकर हर्ष है कि आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश ने तीन वर्ष तक अपने प्रान्त मे आर्य समाज शताब्दी समारोह मनाने का निश्चय किया है और प्रथम समारोह दिनांक २५ से २८ मई तक मेरठ नगर मे होने जा रहा है।

समाज सुधार तथा शिक्षा के क्षेत्र मे आर्य समाज की सेवायें बहुमूल्य रही हैं। प्रचलित वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध इसने प्रारम्भ से ही बड़ा सघर्ष किया है, और समाज के सदियों से उपेक्षित व शोषित एक बहुत बड़े वर्ग के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मैं समारोह की सफलता की कामना करता हू।

—प्रकाशचन्द सेठी

आर्य समाज धार्मिक तथा राजनैतिक क्रान्ति की तैयारिया करें

आज से ६७वें वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने देश मे धार्मिक पाखण्ड दम्भ और गुरुडम की रेतीली दीवारो को सत्य की ठोकर मार कर हिला दिया था। एक समाचार पत्र ने स्वामी दयानन्द का बडा ही आकर्षक चित्र प्रकाशित किया था। उसमे पाखण्ड को शेर के रूप में दिखाया गया और सामने लगोट बन्द दयानन्द हाथ मे एक छोटा-सा डण्डा लेकर शेर पर झपट रहे हैं।

इस चित्र को देख लालानन्द किशोर मेहरा ने, एक कविता का बन्द लिखा—"उधर था शेर पाखण्डी इधर डण्डा सचाई का,
न खाया था ऋषि ने खौफ झूठी जग हसाई का।"

महर्षि ने वेद को आधार मानकर भारतीय एव विदेशी विद्वानों की भ्रम मूलक धारणाओ पर तर्क प्रमाण एव बुद्धि गम्य आक्रमण करके धार्मिक जगत् मे एक जबरदस्त क्रान्ति का सूत्रपात किया—और प्राचीन वैदिक मर्यादा की स्थापना करके आर्य विचार धारा के प्रचार और प्रसार के लिए आर्य समाज की स्थापना करके भावी पीढ़ी के लिये १० नियमों को आधार बनाकर देशवासियों को आध्यात्मिक आधिभौतिक एव आधिदैविक सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये मार्ग दर्शन किया।

आर्य समाज ने अनेक कार्यक्रमों को अपनाकर देशवासियों की भारी सेवा की है, किन्तु आज धार्मिक एव राजनैतिक पाखण्डी जन सामान्य को धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करने की नई-नई योजनाएं बना रहे है, ऐसी अवस्था मे आर्य समाज को जागरूक प्रहरी की तरह अपने आपसी भेद भाव भुलाकर एक मञ्च पर सगठित होकर इन सभी पाखण्डों का निराकरण करने की तैयारी करें

—रामगोपाल शालवाले



मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश आर्य समाज शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष में सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर मेरठ मे आर्य महा सम्मेलन का आयोजन कर रही है। सौ वर्ष की इस सुदीर्घ अवधि में आर्य समाज ने स्वदेश और स्वधर्म के लिए जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उसके मूल्यांकन का समय आ गया है। आर्य समाज के कार्य को प्रगति देने में उत्तर प्रदेश सदा से ही अग्रगण्य रहा है। आशा है कि महा सम्मेलन भविष्य में भी अधिक स्फूर्ति और उत्साह के साथ हमे वैदिक धर्म और आर्य सस्कृति की सेवा करने की प्ररणा देता रहेगा। मैं महा सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूं।

—श्रीकरण शारदा, मन्त्री

आर्यसमाज की स्थापना शताब्दी के उपलक्ष में भावी कार्यक्रम पर कुछ सुझाव

[श्री प० शिवकुमार जी शास्त्री ससद् सदस्य लोक-सभा]

गत एक शताब्दी मे आर्य समाज ने अपने युगान्तरकारी विचारो से सामान्यतया समस्त भारत के बुद्धिजीवी वर्ग मे, और विशेषकर उत्तर भारत मे एक वैचारिक और सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया है। यद्यपि धार्मिक क्षेत्र की रूढ़िगत बुराइयाँ और गुरुडम, नये-नये रूप धारण कर के जनता को अपनी जकड मे लेने के लिए इस समय भी सचेष्ट हैं। इस समय भी कुछ तथाकथित बाल-योगेश्वर की दिव्यपरिषत् जैसी दूकान, आनन्द मार्ग और ब्रह्माकुमारी जैसा कदाचारपूर्ण पन्थ भारत मे विद्यमान हैं। इस समय भी कहीं-कहीं नरबलि जैसे जघन्य काण्ड होते दिखाई दे जाते हैं। फिर भी यदि सारी परिस्थिति का पूरा विश्लेषण आप करें, तो बहुत बडी जागृति साम्प्रदायिक ससार मे आई है। अपनी इस स्थापना की पुष्टि मे दिल्ली मे भारत भर के सनातनी विद्वानो द्वारा चतुर्वेद पारायण यज्ञ का सम्पन्न होना और सनातनियों के मूर्धन्य सन्यासी श्री गणेश्वरानन्द जी द्वारा श्रीमती इन्दिरा गांधी से वेद की स्थापना करवाना जैसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।



श्री प० शिवकुमार जी शास्त्री

जैसे जनता मे अज्ञान और निहितस्वार्थजन्य बुराइयों के उन्मूलन के लिए निरन्तर उसी प्रकार प्रयास जारी रहना चाहिए, जैसे किसान अपनी फस्ल से विजातीय द्रव्य घास कूडे की सफाई के प्रयास करता है। यदि किसान एक बार गुड़ाई करके निश्चिन्त हो जावे तो यह उसकी भूल है। कुछ समय के बाद ही उस भूमि मे घास कूडा फिर पैदा हो जाता है। उसी प्रकार सद्विचारों के प्रचार की प्रक्रिया भी सतत चलती रहनी चाहिए, अन्यथा वे ही बुराइयाँ फिर जड जमाने लगेंगी। शास्त्रकार ने बहुत ही पते की बात कही है। उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत् सिद्धिरितरथान्ध परम्परा (सांख्यदर्शन)। अर्थात समाज को बुराई से बचाने के लिए सद् विचारों का प्रचार जारी रहना चाहिए। इस प्रचार मे शिथिलता आते ही अन्ध परम्परा प्रचलित हो जायगी। इस समय भी बुराई जो उभरती दीखती है, उसका कारण भी यही है कि अच्छे विचारों के प्रचारक नहीं मिलते। बुराई का प्रचार सब ओर है और उसकी तुलना मे अच्छाई के प्रचारक बहुत कम हैं। परिणाम यह होता है कि अच्छे विचार दब जाते हैं, और वे आचरण में नहीं आ पाते। इसलिए वेद तो

'विश्वे देवासो अस्रिवोचता नः ।' प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को अच्छाई के प्रचारक बनने की बात कहता है।

किन्तु इसके साथ ही हमे यह बात माननी चाहिये कि आर्य समाज के प्रचार मे भी इस समय एक प्रकार की जड़ता आ गई है। विद्वान् सदाचारी और निष्ठावान् नये प्रचारक आर्य समाज को उपलब्ध नहीं हो रहे। धर्मप्रचार की धुन को लेकर जीवन समर्पण करने वालों का सर्वथा अभाव होता जा रहा है। इस स्थिति के कई एक कारण हो सकते हैं। यथा–(१) देश का वातावरण राजनीति प्रधान और भोगाभिमुख हो गया। (२) धर्म प्रचारकों की जो प्रतिष्ठा और पूजा होनी चाहिए। वह महात्मा मुंशीराम और महात्मा हंसराज के बाद आर्य समाजियों मे नहीं रही। कुछ अपवादों को छोड़कर उन्हें भी एक वैतनिक कर्मचारी मात्र समझा गया, और उसी स्तर पर उनके साथ व्यवहार किया गया। (३) एक धर्म प्रचारक और सामाजिक कार्यकर्त्ता का स्तर भी पैसे से आंका जाने लगा। शादी विवाह और दूसरे अवसरों पर लोग उनसे भी धनियों के समान प्रदर्शन और लेन देन की अपेक्षा करने लगे। मेरे विचार मे ये मुख्य कारण हैं। जिनसे यह स्रोत सूख गया। जब तक ये बातें नहीं थीं–आर्य समाज का प्रचारक हथेली पर सर रखकर प्रचार कार्य करता रहता था। न उसे अपनी सुख–सुविधा का ध्यान था, न अपने बाल बच्चो के आराम का ? गृहस्थ उपदेशकों की उस समय की चर्या को देखकर एक आर्य समाज के प्रचारक ने लिखा था कि 'पति के रहते हुए विधवा कोई देखनी हो तो उपदेशक की स्त्री को देख लो। और माता-पिता के होते हुए अनाथ देखने हों तो उपदेशक के बालकों को दखो।' किन्तु उस समय प्रचार की धुन में और नये-नये जोश में यह गाडी चलती चली गई।

आधी शताब्दी के बाद प्रचारकों के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ। उनको यह बात चुभने लगी कि हम न तो अपने परिवार के साथ न्याय करते हैं, और न हमारे लिए आर्य समाज के नेता और अधिकारियों के मन मे ही आदर है–धीरे-धीरे इस घुटन का प्रभाव हुआ, और प्रचार के क्षेत्र मे मिशनरियों की कमी होने लगी, और अब ऐसा प्रतीत होता है कि आगामी कुछ ही वर्षों मे उपदेशकों का वह क्रम समाप्त हो जायगा। कुछ आर्य समाज के अधिकारी इसकी पूर्ति के लिए उपदेशक विद्यालय खोलने की बात कहते हैं। कुछ स्थानों पर उपदेशक विद्यालय खोलकर देख भी लिये गये, उनमे कोई छात्र प्रविष्ट होने ही नहीं आया। इसके अतिरिक्त हमारे सामने सबसे प्रभावशाली पुराने संस्थान दयानन्द उपदेशक विद्यालय और ब्राह्म महाविद्यालय के उदाहरण हैं। आर्य समाज के प्रचारक तैयार करने के लिए इस सस्थाओं को खोला गया था। किन्तु परिणाम लगभग शून्य कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए इनके स्नातक अनुपात में २ प्रतिशत भी नहीं है।

इस स्थिति मे आर्य समाज के सामने एक महान् और गम्भीर प्रश्न है। ऋषि दयानन्द ने अपने गुरुतर दायित्व का उत्तराधिकारी एक किसी शिष्य को न बनाकर एक समाज और एक सगठन को बनाया था। ऋषि को अपने उत्तराधिकारी से क्या आशा थी, यह सत्यार्थ प्रकाश के ऋषि के निम्न शब्दों से आंकी जा सकती है, जिसमे ऋषि देशवासियों को आह्वान करते हुए कहा था कि 'देश को कुछ बनाना है तो आर्य समाज के साथ मिलकर काम करो।' (स० प्र० ११ समु०)

देश की वर्तमान स्थिति को देखकर आर्य समाज निम्न प्रकार से अपने भावी कार्यक्षेत्र का

विभाजन कर सकता है।

यद्यपि धर्म के नाम पर हुई बुराइयों की कटुता इस समय भी शिक्षित क्षेत्र में अतिशयता से व्याप्त हैं फिर भी यदि गहराई से विचार करेंगे तो मनुष्य की हृदय गुहा में उसके मूल संस्कार अब भी सुरक्षित हैं। अब भी प्रगति के नाम पर सरपट दौड़ने वाले और दिन-रात मत-मतान्तरों के स्थान पर धर्म के नाम से उसकी आलोचना करने वाले नेता अपने लोक परलोक के सुधार के लिए अवसर पाते ही कुछ तथाकथित धार्मिक काम कर ही लेते हैं। फिर भी वह समय दूर नहीं है–जब इंग्लैण्ड और अमेरिका के लोगों की तरह लोग भोगों से विरक्त होकर धर्म की ओर आकृष्ट होंगे। ऐसे व्यक्तियों को उस समय ठीक मार्ग पर डालने की योग्यता आर्य समाज के अतिरिक्त और किसी में नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को धर्म का वह परिष्कृत रूप ग्राह्य होगा जो बुद्धि और हृदय दोनों को तुष्ट कर सके। ऋषि कणाद के शब्दों में–यतोऽभ्युदयनि श्रेयस् सिद्धि सधर्म 'अर्थात् बुद्धि पूर्वक उन कामों का चुनाव करो, जिससे इस लोक में ऊँची से ऊँची स्थिति प्राप्त कर सको। किन्तु इन कामों का धरातल इतना सात्विक और यज्ञमय हो कि इनका परिणाम निःश्रेयस् अपवर्ग का साधक हो। यदि जिज्ञासुओं को धर्म का यह स्वरूप नहीं मिलेगा तो फिर क्रिया और प्रतिक्रिया चलती रहेगी।

धर्म के इस स्वरूप के प्रचार के लिए जैसा कि ऊपर कहा गया है अब, आर्यसमाज को प्रचारक नहीं मिलेंगे। किन्तु इस क्षति को आर्यसमाज (कार्यनिवृत्त) रिटायर्ड कुछ जीवट वाले व्यक्तियों को उचित दीक्षा देकर पूरा कर सकता है। इसके लिये उसे अपनी शक्ति तुरन्त लगा देनी चाहिए। आर्य समाज के शिक्षणालयों में और विशेष कर गुरुकुलों में इन वानप्रस्थों को दृढ़ करना चाहिए। सामान्य सिद्धान्त ज्ञान से लेकर उच्चकोटि के दार्शनिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। जिसमें अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार प्रशिक्षार्थी लाभ उठा सकें। प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य बहुत अच्छा वक्ता हो–अपितु बात चीत के माध्यम से विचार विनिमय पूर्वक किया हुआ प्रचार कहीं अधिक प्रभावशाली और फलदायक होता है। प्रचार का सर्वोत्तम प्रकार शुद्ध व्यवहार पूर्वक सद्विचारों का प्रकाशन है और उसमें ये वानप्रस्थ अवश्य सफल हो सकते हैं।

आर्यसमाज के वर्तमान विद्वानों में कुछ वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ हैं। कुछ दर्शनों में निष्णात हैं, और कुछ एक शास्त्रार्थ के क्षेत्र में अनुभवी हैं। इन सभी विद्वानों का विषयवार कार्य विभक्त करके काम कराना चाहिए। व्यवस्था पूर्वक इन विद्वानों के एक एक क्षण का उपयोग होना चाहिए। कुछ समय के लिए इस कार्य को सबसे पहले नम्बर पर रखना होगा। क्योंकि हमारे विद्वानों में से अधिकांश 'पके पात' हैं–क्या पता कब वायु का झोंका आये और कब टहनी से झड़ पड़ें। और जीवित भी रहे तो फिर कार्य क्षमता भी रहेगी ? यह सन्दिग्ध है।

इनके अतिरिक्त एक तीसरा प्रयोग भी आर्य समाज को करना चाहिए। वह है दयानन्द सेवा श्रमों की स्थापना करके अस्पतालों के द्वारा जनता की सेवा। निश्चित ही यह एक महान् कार्य है और इससे आर्य समाज का ठोस प्रचार भी होगा और उसके गौरव की वृद्धि होगी। इस माध्यम से आर्य समाज जनता का श्रद्धाभाजन बनेगा। मुझे विश्वास है कि आर्यसमाज के सुधी विचारक इन बातों पर मनन करेंगे, और इनकी क्रियान्विति के लिये सक्रिय सहयोग देंगे। **

आर्यसमाज पिछले सौ वर्ष में इतिहास के मुख्य मोड़ों पर

[श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश]

आर्य समाज की स्थापना १८७५ मे हुई। यह समय वह था, जब अंग्रेजी राज के विरुद्ध भारत मे एक सशस्त्र क्रान्ति होकर चुकी थी। १८५७ की उस क्रान्ति को प्रारम्भ मे तो अंग्रेज केवल सैनिक विद्रोह ही समझते रहे। कलकत्ते के पास बैरकपुर मे और दिल्ली के पास मेरठ मे देश की आजादी के लिए भारतीय सैनिकों ने जो हथियार उठाये उसे अंग्रेज अन्त तक गदर ही कहते रहे। पर यह ही वह समय था जब झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना फड़नवीस, वासुदेव बलवन्त फड़के, और कुंवरसिंह जैसे वीरों ने अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिये देश में कई जगह क्रान्ति का शंखनाद किया था। कुछ इतिहास वेत्ताओं का तो कहना यह है—देशी रियासतों ने भी यदि उस समय इनका साथ दे दिया होता या फिर अंग्रेजों का साथ ही केवल न दिया होता तो भी भारत ९० वर्ष पहले स्वतन्त्र हो जाता। लेकिन उस अधूरी क्रान्ति ने भी इतना तो जरूर किया, देश मे स्वाधीनता के लिए एक नई जागृति पैदा हो गई। उसके कुछ वर्षों बाद ही कांग्रेस का जन्म हुआ। पर कांग्रेस के जन्म से भी दस वर्ष पहले आर्य समाज की बुनियाद पड़ चुकी थी। कांग्रेस के मंच से स्वराज्य का जो शब्द १९०६ में सबसे पहले सुनाई पड़ा स्वामी दयानन्द ने १८७५ में ही सत्यार्थ प्रकाश और दूसरे धर्म ग्रन्थों में



श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री

उसकी व्यापक रूपरेखा दे दी थी। स्वराज्य की व्याख्या करते हुए स्वामी जी ने यह भी लिखा—स्वराज्य यदि सुराज न हुआ तो वह प्रजा को सुखी नहीं रख सकेगा।

भारतीय राजनीति मे आर्य समाज और उसके नेताओं का योगदान अपना विशेष ही स्थान रखता है। नरम दल हो चाहे गरम दल दोनों ओर ही आर्य समाजी कार्यकर्ता अच्छी संख्या मे

दिखाई देते थे। चौबीस वर्ष की उभरती जवानी में जिस व्यक्ति (स्वामी दयानन्द) ने १८५७ के अत्याचार अपनी आंखों से देखे हों उसके द्वारा स्थापित संगठन में अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने की तड़प न हो यह भला कैसे संभव था। सशस्त्र क्रांतिकारियों की तो एक पूरी पीढ़ी ही आर्य समाज से गई। कांग्रेस के मन्च पर एक ओर जहाँ स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, चौधरी रामभजदत्त, भाई परमानन्द और लाला देशबन्धु गुप्ता आदि आर्य समाजी नेता दिखाई देते थे, क्रान्तिकारियों में श्याम जी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल, मदनलाल ढींगरा से लेकर सरदार भगतसिंह और रामप्रसाद बिस्मिल आदि काकोरी केस के कई प्रमुख शहीदों का प्रेरणास्रोत भी आर्य समाज था। रामप्रसाद बिस्मिल ने तो अपनी आत्मकथा में लिखा है—शाहजहाँपुर आर्य समाज में जब एक सन्यासी के भाषण में मैंने यह सुना—भाई परमानन्द को फांसी दी जायगी, तो मेरा खून खौल उठा। उसी समय मैंने यह निश्चय कर लिया जब तक उनके बदले में दस अंग्रेजों को अपने हाथ से नहीं उड़ाऊंगा, तब तक चैन से नहीं बैठूंगा। उसके बाद ही फिर मैंने जंगलों में रह कर रिवाल्वर चलाने की ट्रेनिंग ली। हिंसा और अहिंसा दोनों ही मार्गों से देश को आजाद कराने वाले ऐसे देशभक्तों के लिए उन दिनों आर्य समाज मन्दिर और आर्य समाज की शिक्षण संस्थायें अज्ञातवास का केन्द्र बनी हुई थीं। सरदार भगतसिंह कलकत्ता की कार्नवालिस स्ट्रीट आर्य समाज में महीनों तक अपना अज्ञातवास व्यतीत करते रहे। लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी के बाद अंग्रेजों ने आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में अपने गुप्तचर भेजने प्रारम्भ कर दिये। डी० ए० वी० कालेज लाहौर के रजिस्टरों की बहुत बारीकी से छानबीन कराई गई। उत्तर प्रदेश के गवर्नर लार्ड मेस्टन ने तो गुरुकुल कांगड़ी की जमीन खुदवाकर इसलिये देखी—कहीं इसके नीचे तहखानों में बम तो नहीं बनाये जा रहे हैं। कांग्रेस के मन्च से जो बात नहीं कही जा सकती थी, वह आर्य समाज के मन्च से धर्म प्रचार के बहाने आसानी से कही जा सकती थी।

लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा द्वारा काले अंग्रेज तैयार करने की एक व्यापक योजना बनाई थी। उस योजना को भी आर्य समाज ने ही उन दिनों चुनौती दी। शिक्षा तो उन दिनों लगभग न के बराबर ही थी। जो कुछ थोड़ी बहुत थी भी उसका उद्देश्य सरकारी दफ्तरों के लायक क्लर्क तैयार करना था। मैकाले इसी को थोड़ा और आगे बढ़ाना चाहता था। उसने अपने एक सम्बन्धी को भेजे पत्र में लिखा—मैं अंग्रेजी के माध्यम से भारत में ऐसी शिक्षा पद्धति प्रारम्भ करने लगा हूं, जिससे ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें और भी अधिक गहरी चली जायगी। रंग रूप में तो जरूर यह लोग भारतीय होंगे, लेकिन हृदय और मस्तिष्क से अंग्रेज होंगे। पर उस बेचारे को यह क्या पता था—भारत में एक ऐसे संगठन का उदय हो चुका है, जो तेरे स्वप्न भंग भी कर सकता है। आर्य समाज ने उन्हीं दिनों दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज और गुरुकुलों की नींव डाली। धर्म शिक्षा को छोड़ कर हम डी. ए. वी. कालेजों की पाठविधि दूसरे कालेजों जैसी ही थी। पर उसकी पृष्ठभूमि में भारतीयता कूट-कूटकर भरी हुई थी। उधर आश्रम व्यवस्था पर आधारित गुरुकुलों की पाठविधि, उपाधि आदि सब कुछ अपनी थी। सरकार से एक भी पैसा लिये बिना

यह राष्ट्रीय संस्थायें चलाई गई । डी० ए० वी० कालेजों में अंग्रेजी पर अधिक बल दिया गया, और गुरुकुलों में संस्कृत पर । दोनों पद्धतियों से चलने वाली इन शिक्षण संस्थाओं में माध्यम हिन्दी को ही रखा गया । हिन्दी उन दिनों देश को एकता के सूत्र में बांधने का माध्यम ही केवल नहीं थी, अपितु राष्ट्रीयता की सन्देश वाहिका भी बन गई थी । चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने तो दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना के समय सम्भवतः इसीलिए गांधी जी से कहा थी-क्यों न हिन्दी का नाम बदलकर स्वराज्य भाषा रख दिया जाय । प्रारम्भ में कांग्रेस के मन्च पर भी बरसों तक अंग्रेजी छाई रही । स्वामी श्रद्धानन्द जब अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष बने, और अपना स्वागत भाषण उन्होंने हिन्दी में पढ़ा तो सब दंग रह गये । हिन्दी में भी इतना शानदार भाषण हो सकता है, यह कल्पना ही किसी को नहीं थी । क्योंकि उससे पहले तो इस राष्ट्रीय मन्च पर भी हिन्दी को अछूत ही समझा जाता था ।

भारत में और बाहर भी कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने निकट से आर्य समाज को नहीं देखा वह अब तक इसे पन्थ या सम्प्रदाय ही समझते हैं । वैसे भारतवर्ष पन्थों और सम्प्रदायों के लिए है, बड़ी उपजाऊ भूमि । दो-चार चेले-चेली मूडकर अपने चमत्कारों की दलाली प्रारम्भ करवा दीजिये बस फिर पौबारे हैं । न आय कर का झंझट न बिक्री कर का लफड़ा । धर्म की आड़ में जो चाहे करो, कोई पूछने वाला नहीं । मामूली लोगों ने भी जब अपने नामों पर मत और सम्प्रदाय चला दिये, तो स्वामी दयानन्द जैसे तेजस्वी और विद्वान् साधु के लिए तो यह बायें हाथ का खेल था । वह भी एक दयानन्द पन्थ आसानी से चला सकते थे । पर स्वामी जी तो पन्थ के नामों से चल रहीं पहली दुकानों को ही बन्द कराने आये थे । वह भला कोई नया पन्थ कैसे खड़ा कर सकते थे । वास्तविकता यह है-आर्य समाज न कोई धर्म है और न पन्थ । वह तो धर्म की आड़ में जो बुराइयां देश में पनप रही थीं, उनको मिटा कर धर्म का सीधा और सच्चा स्वरूप बताने वाला एक प्रगतिशील संगठन है । यह भी ठीक और वह भी ठीक की राजनीति आर्य समाज से कोसों दूर रही है ।

जन्म से जात-पात, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, छुआछूत और महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखना आदि बहुत सी ऐसी बुराइयां उन दिनों थीं, जो समाज को घुन की तरह खाये जा रही थीं । विधवाओं का पुनर्विवाह और अन्तर्जातीय विवाह की आवाज जब आर्य समाज ने उठाई तो सबसे पहले हिन्दुओं ने ही उसका विरोध प्रारम्भ किया । और तो और जिनके उद्धार के लिए आर्य समाज उन बड़ी जातियों का कोप भाजन बना, उन नाई, धोबी, कहार और दूसरे पिछड़े वर्ग ने भी उनके घरों में काम करने से इन्कार कर दिया । पर धीरे-धीरे समय ने करवट बदली और उन्हें समझ आती गई । लेकिन अपनों से जब किसी तरह छुटकारा मिला, तो मुल्ला-मौलवी और पादरियों ने आ घेरा ।

अब तो लगता है, आर्य समाज केवल हिन्दुओं के सुधार के लिये ही बना है, पर स्वामी दयानन्द की इच्छा थी-भारत में रहने वाला हिन्दू मुसलमान, ईसाई चाहे जो हो उनमें जो सामाजिक या धार्मिक बुराइयां प्रवेश कर गई हैं, उन्हें दूर किया जाय । स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में इसीलिए दो बार सर्व धर्म सम्मेलन भी बुलाये । एक

सम्मेलन में तो जो शाहजहाँपुर जिले के चाँदापुर मेले में हुआ, सर सैयद अहमद खाँ और पादरी विलियम भी सम्मिलित हुए थे। धर्म के कौन से सिद्धान्त सही हैं, इसको युक्ति और तर्क की कसौटी पर कसने के लिये सार्वजनिक सभाओं मे शास्त्रार्थों का प्रारम्भ भी आर्य समाज ने किया। उन दिनों शास्त्रार्थों की बाढ़-सी आ गई थी। कहीं पौराणिकों से कहीं मुसलमानों से और कहीं ईसाइयों से शास्त्रार्थ हो रहे हैं। कोई बड़ा उत्सव आर्य समाज का उन दिनों ऐसा नहीं होता था, जहाँ शास्त्रार्थ न हों। धर्मवीर पंडित लेखराज, स्वामी दर्शनानन्द, पंडित गणपति शर्मा, पंडित धर्मभिक्षु, पंडित रामचन्द्र देहलवी, देवेन्द्र नाथ शास्त्री आदि अनेकों उच्चकोटि के विद्वान् और सन्यासी देश में चारों और घूम-घूम कर शास्त्रार्थों का चलन सा करते फिरते थे। उधर मुसलमानों मे मौलवी सनउल्ला ईसाइयों मे पादरी अबुल हक और सनातन धर्मी विद्वानों मे पण्डित अखिलानन्द आदि शास्त्रार्थ के लिए तैयार रहते थे। पंडित लेखराम, महाशय राजपाल, स्वामी श्रद्धानन्द आदि कई आर्य समाज के नेताओं का तो बलिदान भी इसी चक्कर मे हुआ। छोटे बड़े सब मिलकर छियासी आर्य समाज के नेता उन दिनों मारे गये। इन शास्त्रार्थों से देश भर मे जहाँ आर्य समाज का जाल-सा फैलता चला गया, वहाँ अन्धविश्वासों और कुरीतियों की जड़ें हिलने मे भी बड़ी मदद मिली। सर्वथा तो वह बुराई अभी तक भी नहीं गई। पर जिन बुराइयों को भलाई समझ कर समाज चिपटा हुआ था, उनसे उसकी आस्था जरूर हट गई।

ब्रिटिश सरकार तो आर्य समाजियों की देश-भक्ति, साहस और निष्ठा से भली भांति परिचित ही थी। उसे पता था इन्हें छेड़ने का परिणाम महंगा बैठेगा। इसीलिए वह चुप थी। पर कुछ देशी रियासतों ने अपने मजहबी जनून मे आकर आर्य समाज से दो तीन जगह छेड़छाड़ की। बस फिर क्या था—शहद की मक्खियों के छत्ते मे हाथ लगाने की देर थी। चारों ओर से सब टूट पड़े। पटियाला, लोहारू हैदराबाद की रियासतें उन्हीं मे से थीं। पटियाला में सत्यार्थ प्रकाश पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने के लिये उन दिनों एक सत्याग्रह भी हुआ। पर कुछ ही दिनों मे वहाँ के राजा को सद्बुद्धि आ गई और उसने अपना आदेश वापिस ले लिया। लोहारू के नवाब को और कुछ न सूझा तो आर्य समाज के जलूस पर ही पाबन्दी लगा दी। भला आर्य समाजी इसे कहा मानने वाले थे। उन्होंने खूब धूमधाम से अपना जलूस निकाला। परिणाम में गोलियां भी चलीं और डण्डे भी पड़े पर अपना अधिकार लेकर वह रहे। १६३६ मे हुआ हैदराबाद का सत्याग्रह तो भारत ही नहीं विदेशों मे भी चर्चा का विषय बन गया था। लगातार नौ महीने तक देश भर से स्पेशल ट्रेनों मे भरकर सत्याग्रही जाते रहे। निजाम हैदराबाद जो भी नई जेल बनवाता उससे अगले दिन फिर दुगने सत्याग्रही पहुंच जाते। अन्त मे थक कर उसने खुली जेलें कांटेदार तार लगाकर बनवाईं। धार्मिक स्वतन्त्रता पर पाबन्दी लगाकर दूसरा औरंगजेब बनने का जो स्वप्न वह ले रहा था उसकी वह हेकड़ी धरी की धरी रह गई। आर्य समाज के इस सत्याग्रह को देखकर गांधी जी ने कहा था—जितना संयम, अनुशासन और जनता के एक एक पैसे का सही हिसाब इस सत्याग्रह मे मैंने देखा, उतना दूसरे किसी भी सत्याग्रह मे मुझे देखने को नहीं मिला। पीछे हैदराबाद मे तीन दिन मे ही पुलिस कार्यवाही की सफलता पर सरदार पटेल ने भी कहा था—यदि

आर्य समाज ने पहले से वहां भूमि तैयार न की होती तो हमे इतनी जल्दी सफलता मिलनी कठिन थी।

इस समय भारत से बाहर भी १६ देशो में आर्य समाज की शाखाएँ हैं। फीजी, मारीशस, ट्रिनीडाड और ब्रिटिश गायना की तो सरकारो में भी आर्य समाज के कई कार्यकर्त्ता प्रमुख पदो पर हैं। मारीशस के प्रधानमन्त्री सर शिवसागर रामगुलाम मारीशस आर्य प्रतिनिधि सभा के वर्षो तक प्रमुख अधिकारी रहे हैं। जिन-जिन देशों मे आर्य समाज की शाखाएं हैं, वहा हिन्दी और वैदिक सस्कृति दोनो का अच्छा प्रचलन मिलेगा। भारत की ही तरह हिन्दी माध्यम के डी० ए० वी० स्कूल और कालेज भी यहां हैं। फीजी और मारीशस मे तो हिन्दी के समाचार पत्र भी निकलते हैं।

अब आर्य समाज जब अपने जीवन के सौ वर्ष पूर्ण करने जा रहा है। ऐसे मे उसे सफलताओ के साथ अपनी असफलताओं और उसके कारणो पर भी निगाह मारना जरूरी है। स्वस्थ सगठनों का यह चिह्न है जो वह अपने मूल से हटे बिना समय के साथ अपनी रीति-नीति में आवश्यक परिवर्तन करते रहते हैं। ऐसे परिवर्तनों से उन सगठनों की नींव और मजबूत ही होती है। पर जो लकीर के फकीर होते हैं वह मक्खी पर मक्खी मारने मे ही बहादुरी समझते हैं। धीरे धीरे उनका वह रूढ़िवाद उन्हे भी ले बैठता है और उनकी विचारधाराओ को भी समाप्त कर देता है। गांधी की जय लगाने वाले जैसे आज गांधी से दूर होते जा रहे हैं, वह ही बात कहीं स्वामी दयानन्द के भक्तों पर भी लागू न हो। इस दिशा मे भी आत्म निरीक्षण की जरुरत है। हिन्दू समाज की बुराई दूर करते-करते कहीं ऐसा तो नहीं हो गया जो उलटे वह बुराई उनमे ही प्रवेश करने लगी हो ?

हैदराबाद राज्य मे आर्य समाज का कभी इतना कठोर अनुशासन था कि यदि किसी आर्य समाजी ने अपनी जाति मे भूल मे भी विवाह कर लिया तो वह आर्य समाज से निकाल दिया जाता था। अन्तर्जातीय विवाहो में उच्च वर्ण के लोग छोटे परिवारों की लडकी ले तो लेते हैं उन्हे देते नहीं। पर यहाँ का आर्य सामाजिक वातावरण इसका भी अपवाद था। कई ऐसे व्यक्तियो से भी वहाँ मेरा परिचय हुआ जो प्रचलित जात-पात के आधार पर हरिजन ही केवल नहीं उनमे भी बहुत छोटे समुदायो मे से आये थे। पर आय समाज में आकर और पढ़ लिख कर वह पडित ही केवल नहीं कहलाये अपितु अच्छे से अच्छे घरो मे धार्मिक सस्कार कराने वह जाते थे। अब तो मुझे पता नहीं वहां उतनी कट्टरता अभी है या नहीं ? क्योंकि वर्तमान राजनीति से भी आर्य समाज के इन सुधारवादी कार्यक्रमो को बडा धक्का पहुचा है। उत्तर भारत मे भी एक बार उसी तरह की लहर चली थी। पर कुछ तो इस राजनीति ने और कुछ परम्परावादी हिन्दुओ के सम्पर्क ने वह समाप्त कर दी। कहीं-कहीं आर्य समाज मे ऐसे पदाधिकारियो को देखकर जो अपनी जात बिरादरियों के भी नेता बने हुये हैं, और आर्य समाज की भी कुर्सियां घेरे हुए हैं, इस प्रगतिशील सगठन पर तरस आता है। जब तक सख्ती से इन बुराइयों से सघर्ष नहीं किया जायगा तब तक आर्य समाज की तसवीर निखर नहीं सकेगी। आज जब दुनिया छोटे-छोटे दायरों से निकल कर शाश्वत सत्य की खोज मे निकली है तब आर्य

समाज जैसा संगठन भी सो जायगा तो कौन मार्ग दर्शन करेगा।

हमारा सामाजिक ढांचा धीरे-धीरे आज पहले से भी अधिक कमजोर हो रहा है। जात-पांत, दहेज और रुढियों के चक्कर में ३०-३० और ३५-३५ साल की कन्यायें घरों में क्वारी बैठी हैं। मां-बाप बिना दहेज के उनके हाथ पीले नहीं कर सकते। कुछ तो बेचारी आत्महत्या करके इस निर्दय समाज की वेदी पर बलि भी हो गई। पर हिन्दू समाज है जो टस से मस होने को तैयार नहीं। आर्य समाज के लिये यह खुली चुनौती है। उधर हिन्दू समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग स्वाधीनता के २५ वर्ष बाद भी हरिजन, अछूत और दलित नाम से तिरस्कृत हो रहा है। ईसाई प्रचारक जब पिछडे वर्गों की कन्याओं को पढ़ा लिखा कर और ढग से कपडे पहनना सिखा कर उन्हें टेलीफोन आपरेटर, अस्पतालों में नर्स अथवा विमान परिचारिकायें बनाकर भेजते हैं, तब तो बडे-बडे परिवारों के युवक भी उनसे बात करने को उत्सुक रहते हैं। यग मैन क्रिश्चियन एसोसिएशन (वाई एम सी ए) के होस्टलों में कुछ नौजवान तो ठहरते ही इसलिए हैं। पर उनकी आलोचना करने वाले इस दिशा में कोई पग क्यों नहीं उठाते। उन्हें कौन-सा सांप सूंघ गया है? अब भाषणों और प्रस्तावों के दिन लद गये। अब तो रचनात्मक कार्यों का मूल्यांकन समाज में होगा।

धर्म के क्षेत्र में भी पुराने रिवाज अब अधिक लम्बे नहीं चलेंगे। समय के साथ उनकी दिशा भी बदलनी होगी। अन्धविश्वासों का लाभ उठा कर देश में भगवानों और अवतारों की बाढ़ आ रही है। कुछ दूसरे देशों के धार्मिक सगठन जो धार्मिक ज्ञान और सिद्धान्तों मे भारत से टक्कर नहीं ले सके वह भी इन कलियुगी अवतारों और भगवानों की कमर पर हाथ रखकर उन्हें बढ़ावा दे रहे हैं। वह सोचते हैं भारत से सैद्धांतिक टक्कर तो विज्ञान के युग मे लेना कठिन है। इनके अपने घर मे नई नई शाखायें खडी कर इनके स्वरूप को ही क्यों ना विकृत किया जाय। जिससे हमारी नई पीढ़ी उधर न भागे। आर्य समाज जैसे सजीव और क्रांतिकारी सगठन के सामने यह सब चुनोतियां मुह फाडे खडी हैं, जिनका उसे उत्तर देना है।

आज भारत और भारत से बाहर नई पीढ़ी को एक दिशा की खोज है। उसे धर्म के उस स्वरूप की तलाश है, जो युगधर्म बन सके। आर्य समाज चाहे तो इस बीडे को उठा सकता है। एक क्रान्तिकारी साधु द्वारा स्थापित मिशन में वह सामर्थ्य भी है। सौ वर्ष की आयु किसी प्रगतिशील सगठन के जीवन मे कम नहीं होती। अपनी शताब्दी के अवसर पर नया मोड लेने और देश को नया मोड देने के लिए कमर कस कर नये कार्यक्रमो के साथ आगे आने जाने की तैयारी करनी चाहिए। देश ने पहले भी जब आर्य समाज को हाथो हाथ उठाया वह इसलिए क्योंकि उस समय वह समय की आवाज बन गया था। आज भी यदि वह समय की आवाज बनेगा तो फिर उसी तरह पूजा जायगा।

२५ से २८ मई तक क्रान्ति की नगरी मेरठ मे आर्य समाज के त्रैवार्षिक समारोह का पहला अधिवेशन सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डाक्टर स्वामी सत्यप्रकाश जी की अध्यक्षता में होने जा रहा है। भारत के राष्ट्रपति इसका उद्घाटन कर रहे हैं। आशा करनी चाहिए इसमें आर्य समाज नई करवट लेगा।

उत्तर प्रदेश में आर्य समाज की गौरवशाली परम्परा

[श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा, राज्य स्वास्थ्य मन्त्री, उ० प्र० मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश]

आर्यसमाज मानवता के उच्चतम आदर्शों का प्रचारक, प्रसारक और सजग प्रहरी है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने जो कुछ भी कहा, लिखा और किया उसका केन्द्र विन्दु कोई एक देश, जाति या एक वर्ग न था, अपितु उनके सन्देश का केन्द्र विन्दु समस्त मानव जाति थी। अपने इस मन्तव्य को उन्होंने आर्यसमाज के नियम में स्पष्ट करते हुए लिखा—'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।' इस प्रकार महर्षि दयानन्द मानवतावाद से भी आगे संसार के प्राणिमात्र के उपकार की भावना से ओतप्रोत थे।



श्री प० प्रेमचन्द्र जी शर्मा

उत्तर प्रदेश मे महर्षि

उत्तरप्रदेश को इस बात का गौरव प्राप्त है कि आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की शिक्षा एवं दीक्षास्थली मथुरा में है। महर्षि ने पाखण्ड उन्मूलन आन्दोलन को हरद्वार में ही जन्म दिया, धर्म के नाम पर मूर्त्ति-पूजा द्वारा सम्पन्न होने वाले अनाचार, कदाचार और भ्रष्टाचार का भण्डा फोड़ने के लिए पाखण्डियों के दुगम दुर्ग वाराणसी में ही महर्षि ने अद्वितीय शास्त्रार्थ किया और वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है, इस सच्चाई पर पड़ी हुई राख को हटाकर पुन प्रकाशित प्रचारित और प्रसारित किया। इनके अतिरिक्त अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना भी महर्षि ने उत्तरप्रदेश मे ही की। आज भी महर्षि के इस ग्रन्थ के हस्तलेख मुरादाबाद में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार महर्षि ने अपने वेद भाष्य का प्रकाशन भी काशी और प्रयाग से आरम्भ किया। इन सब प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश के अधिकांश नगरों और कस्बों मे महर्षि स्वय पहुचे, उपदेश दिये, वैदिक धर्म की विशेषताओं को समझाया और आर्यसमाजो की स्थापनायें की। उत्तर प्रदेश के ७ प्रमुख नगरों में महर्षि ने स्वय आर्यसमाजों की स्थापनायें की।

१—२९ अप्रैल सन् १८७९ ई० दहरादून
२—२० जौलाई सन् १८७९ ई० मुरादाबाद
३—१५ अप्रैल सन् १८८० काशी
४—९ मई सन १८८० ई० लखनऊ

५–१६ मई सन् १८८० ई० फर्रुखाबाद
६–२६ दिसम्बर सन् १८८० ई० आगरा
७–सहारनपुर का आर्यसमाज भी श्री स्वामी जी द्वारा स्थापित किया गया।

उत्तर प्रदेश पर महर्षि मिशन की पूर्त्ति का दायित्व

इस प्रकार जहाँ उत्तरप्रदेश को महर्षि मिशन का प्रचार क्षेत्र बनने का गौरव प्राप्त हुआ, वहीं उत्तरप्रदेश पर यह दायित्व भी आ पड़ा कि वह महर्षि के विश्व सन्देश प्रचार-प्रसार के लिए आधार स्थल बने और आर्य समाज के कार्य को गतिशील बनाये।

महर्षि दयानन्द के आकस्मिक निधन से आर्य जनता पर जो गम्भीर दायित्व आ पड़ा था, उत्तर प्रदेश के तत्कालीन कर्मठ एवं विचारशील नेताओं ने उसकी पूर्ति के लिए बड़ी तत्परता और सजगता के साथ आर्यसमाज का पथ-प्रदर्शन किया। महर्षि दयानन्द ने अपनी सम्पत्ति की स्वामिनी जिस परोपकारिणी सभा का निर्माण किया था, उसमे उत्तरप्रदेश के राजा रायकृष्णदास जी मुरादाबाद और रा०सा० श्री रामसरनदास मेरठ भी सम्मानित सदस्य थे। महर्षि की मृत्यु के पश्चात २८ दिसम्बर १८८३ को परोपकारिणी सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा आर्यसमाजों के एक केन्द्रीय सगठन की योजना बनायी थी।

आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना

बाद मे इस प्रस्ताव की भावना को क्रियात्मक रूप देने के लिए मेरठ, बम्बई और लाहौर में आन्दोलन आरम्भ हुआ। १८८४ में मेरठ के आर्य समाचार पत्र में इस संगठन की चर्चा की गई थी, और बाद मे ४, ५ अक्टूबर ८६ के दिन लाहौर की बैठक मे मेरठ से कुछ दर्शक प्रतिनिधि पजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना के समय पहुंचे थे। वहाँ से लौटकर २८, २६ दि० ८६ को आर्य समाज मेरठ के उत्सव पर प्रदेश के ४८ आर्य समाजो के प्रतिनिधियो ने तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध के क्षेत्र के लिए प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना की। इस प्रकार वर्तमान उत्तर प्रदेश मे आर्य समाज के सगठन को दृढ़ बनाने का कार्य आरम्भ हुआ। मेरठ नगर को इस सगठन को जन्म देने का गौरव प्राप्त रहा है, वास्तव मे प्रान्तीय सगठन को जन्म देने विकसित एव परिवर्धित रूप देने मे मेरठ नगर और जनपद का ऐतिहासिक योगदान रहा है। सभा की ५० वर्षीय स्वर्ण जयन्ती इसी नगर मे १६३७ मे समारोह पूर्वक मनाई गई। १६५१ मे सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन इसी नगर मे सम्पन्न हुआ और १६७३ मे आर्य समाज स्थापना शताब्दी के प्रसग मे ६८ वां समारोह स्थापना शताब्दी की भूमिका के रूप मे मेरठ मे ही सम्पन्न हो रहा है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश की आर्य जनता ने महर्षि के मिशन की पूर्ति का जो व्रत लिया था उसकी ओर हम मेरठ से यात्रा आरम्भ कर आज पुन. मेरठ पहुच रहे हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की स्थापना १८८६ के जिस कठिन सघर्षमय काल में हुई थी, उसकी कल्पना आज के आर्य बन्धु सहज में नहीं कर सकते, परन्तु आर्य समाज के इतिहास और विकास का अध्ययन करने वाले व्यक्ति भलीभांति समझ सकते हैं कि इस समय क्या-क्या कठिनाइयां थीं या हो सकती थीं।

न कोई धन सम्पत्ति थी न केन्द्र न कार्या

लय, केवल एक मिशनरी भावना थी और थी महर्षि दयानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धा भक्ति । अपने इसी सबल को लेकर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने जो यात्रा आरम्भ की थी उसका सिंहावलोकन करने पर हम गर्व अनुभव करते है कि आज हम और आप सब पूर्वजो की गौरवपूर्ण परम्पराओ और उनके तप त्याग से अर्जित सभा की मौलिक एव यशस्वी धरोहर के उत्तराधिकारी हैं ।

महर्षि दयानन्द ने उत्तर प्रदेश के ७ स्थानो पर आर्य समाजो की स्थापनायें की थीं परन्तु उनके प्रचार से प्रभावित व्यक्तियो ने विभिन्न स्थानों पर आर्य समाजो की स्थापनायें कर दी थीं, इस प्रकार जहां महर्षि की मृत्यु के समय उत्तर प्रदेश मे आर्य समाजें स्थापित थीं, वहीं आर्य प्रतिनिधि सभा के सगठन का निर्माण होते समय तक १५० आर्यसमाजें स्थापित हो चुकी थीं । प्रतिनिधि सभा की स्थापना के पश्चात् आर्य समाजो की स्थापना एव प्रचार का कार्य व्यापक रूप से आगे बढा । साधनों की न्यूनता होते हुए भी आर्य पुरुषो की लगन और उत्साह से ही प्रतिनिधि सभा का सगठन मन्दिर धीरे-धीरे खडा होने लगा ।

इस प्रकार १८८६ से लेकर आज १९७२ मे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश मे १४०१ आर्य समाजो का (जिला सभाओ सहित) सगठन है । इस प्रकार अपने ८६ वर्षीय इतिहास मे सभा ने इतनी बडी सख्या मे आर्य समाजो की स्थापना कर आर्य समाज सगठन का नेतृत्व और पथ प्रदर्शन किया है । किसी भी प्रान्तीय सगठन के अन्तर्गत इतनी बडी सख्या मे मिशनरी ईकाइयो का अस्तित्व एक बहुत बडी उपलब्धि है । समस्त आर्य जगत् की आर्य समाजो का चतुर्थांश केवल उत्तर प्रदेश मे ही विद्यमान है । उत्तर प्रदेश की अधिकाश आर्य समाजो के निजी भवन हैं और सत्सग तथा अन्य कार्यक्रम विधिवत सम्पन्न होते हैं । इन सभी आर्य समाज भवनो की सम्पत्ति सभा के नाम रजिस्टर्ड है । इस प्रकार एक विशाल सम्पत्ति का प्रबन्ध और उसकी सुरक्षा का दायित्व सभा को पूर्ण करना पडता है ।

आर्य समाज के मिशन की पूर्ति के लिये व्यापक कार्यक्रम

आर्य समाज की सगठनात्मक स्थानीय एव जनपदीय इकाइयों की स्थापना के अतिरिक्त भी प्रतिनिधि सभा ने अपने ८६ वर्षीय जीवन मे वैदिक धर्म प्रचार के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजनाबद्ध कार्य किया है । सभा के सामाजिक कार्यों की सूची अंकित करना इतिहास का कार्य है, पर सभा द्वारा प्रारम्भ किये गये ऐसे कार्यों की चर्चा करना यहा अनुपयुक्त न होगा जो आज भी प्रदेश के जन जागरण और राष्ट्र के नव निर्माण मे उपयोगी सिद्ध हो रहे है और जिनका प्रभाव भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाने और नवीन भारत का नव-निर्माण करने मे महत्वपूर्ण है ।

आर्य समाज का आन्दोलन एकांगी नही है अपितु उसके कार्य का प्रभाव समाज के सर्वांगीण विकास के रूप मे परलक्षित होता है । हम सभा द्वारा सचालित कार्यक्रमो को (१) शैक्षिक (२) सामाजिक (३) धार्मिक सभी क्षेत्रो मे व्यापक एव प्रभावशाली कार्य करता हुआ पाते है ।

शिक्षा प्रसार का अभूतपूर्व कार्य

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा के क्षेत्र मे कुछ मौलिक सिद्धांतो का प्रचार किया था । महर्षि का

दृष्टि से मानव जीवन के लिये शिक्षा अनिवार्य है, और शिक्षा की व्यवस्था करना समाज और शासन का कर्तव्य है। अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश मे महर्षि ने शिक्षा की विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत की है, परन्तु सर्वप्रथम इस बात पर बल दिया है कि ५ वर्ष की अवस्था के बाद गरीब अमीर किसी का भी बालक हो इसकी अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था राज्य को करनी चाहिए। महर्षि के समय देश में जो शिक्षा प्रचलित थी, उससे वे सतुष्ट न थे और इसलिए उन्होने अपनी पाठ शाला स्थापित कर शिक्षा क्षेत्र मे क्रान्तिकारी कदम उठाया था। उनके निर्देशानुसार आर्य समाजो ने शिक्षा सस्थाओ की स्थापना आरम्भ कर दी और शनै शनै स्थापित आर्य शिक्षा सस्थाओ का आज उत्तर प्रदेश मे जाल बिछ गया है। भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व उत्तर प्रदेश मे आर्य शिक्षा सस्थाओ की सख्या सबसे अधिक था और आज भी शासन द्वारा सचालित शिक्षा सस्थाओ के बाद आर्य समाज की शिक्षा-सस्थाओ की सख्या ही सर्वाधिक है। इन शिक्षा सस्थाओ मे प्रारम्भिक शिक्षा के देने वाले दयानन्द बाल विद्या मन्दिरों के अलावा जूनियर, हाईस्कूल इन्टर, डिग्री एव स्नातकोत्तर कक्षाओ तक की सब मिलाकर आर्य समाज की ४०० शिक्षा सस्थायें उत्तर प्रदेश के शिक्षा जगत् मे कार्य कर रही हैं। इन शिक्षा-सस्थाओ का करोडो रुपयो का वार्षिक बजट आर्य समाज द्वारा होने वाली स्थाई सेवा का परिचायक है। इन शिक्षा सस्थाओ की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इनमे धार्मिक नैतिक जीवन के सिद्धान्तों की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है, जिससे शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी का जीवन समाजोपयोगी और सफल बन सके। आर्य समाज सदैव नैतिक शिक्षा पर बल देता रहा है और उसकी यह मान्यता है कि वेदो की शिक्षा सेकुलर है तथा समाज के लिए आवश्यक है। स्वाधीनता के २५ वर्ष बाद भी भारत सरकार एव राज्य सरकारें इस सच्चाई को हृदयगम करने मे असमर्थ रही हैं और यही कारण है कि शिक्षा जगत और राष्ट्रीय जीवन मे व्यापक असन्तोष, अनैतिकता और भ्रष्टाचार बढ रहा है। जब शिक्षा मे ही ये दोष हैं तब राष्ट्र के नागरिको मे इन दुर्गुणो का होना स्वाभाविक है। शिक्षा के क्षेत्र मे आर्य समाज के नैतिक दृष्टि-कोण को जब तक सरकार स्वीकार नहीं करेगी शिक्षा के मानवतावादी आदर्शों की पूर्ति असम्भव ही बनी रहेगी। इस दिशा मे आर्य समाज एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रहा है।

स्त्री शिक्षा पर विशेष बल

शिक्षा जगत् मे व्यापक कार्य करते समय आर्य समाज ने एक ओर यह महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया है, जिसे शायद आज महत्त्वपूर्ण न समझा जाय, परन्तु वास्तव मे वह बहुत ही उल्लेखनीय कार्य है। महर्षि दयानन्द ने जिस आदर्श समाज की कल्पना की थी उसमे स्त्रियो की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया था। महर्षि मानते थे कि समाज के आधारभूत गृहस्थ आश्रम के सचालक स्त्री-पुरुष दोनो शिक्षित होने चाहिये, माता का शिक्षित होना उनकी दृष्टियो मे और भी अधिक आवश्यक था क्योकि माता निर्माता भवति माता ही सन्तान का वास्तविक निर्माण करती है।

महर्षि के समय मे समाज मे स्त्रियों की जो दुर्दशा थी उससे उनका हृदय अत्यधिक व्यथित था वे भारत मे 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र

देवता का गौरव देखना चाहते थे, परन्तु इसके विपरीत समाज स्त्री जाति का शोषण करने मे ही जुटा हुआ था। स्त्री की सामाजिक दुर्दशा का एकमात्र कारण स्त्री वर्ग की अशिक्षा ही था। महर्षि ने समानता के आधार पर स्त्री वर्ग के लिए शिक्षा के अधिकार की घोषणा की। आर्यसमाज ने स्त्री-शिक्षा को अपने कार्यक्रम का विशेष अग बनाया। यही कारण है कि आर्यसमाज की शिक्षा सस्थाओ मे ७५ प्रतिशत स्त्री शिक्षा सस्थाएँ हैं। उत्तरप्रदेश मे साक्षरता का प्रतिशत अभी भी अन्य राज्यो से कम है। स्त्रियो का और भी कम, परन्तु आर्यसमाज के स्थायी प्रयत्नो से स्त्री-शिक्षा का प्रतिशत बढ़ने मे विशेष सहायता मिल रही है।

हरिजन शिक्षा के लिए पाठशालायें

धार्मिक रूढ़िवाद के नाम पर हरिजन वर्ग की शिक्षा समस्या भी एक कठिन कार्य था, पर मानवतावादी आर्य कार्य कर्त्ताओ ने हरिजन क्षेत्रो मे पाठशालायें स्थापित कर उन्हे भी सरस्वती के वरदान से सतृप्त किया। इसी के फलस्वरूप इस वर्ग से आर्य समाज को अनेक विद्वान् उपदेशक प्रचारक भी मिले। आज तो हरिजन की शिक्षा समस्या को शासन ने राष्ट्रीय समस्या मान रक्खा है, और उस वर्ग की शिक्षा के लिये समस्त आवश्यक सुविधायें जुटायी जा रही हैं। आर्य समाज ने इस दिशा मे सर्व प्रथम कार्य आरम्भ किया, यह आर्यजनों के लिए गर्व की बात है।

प्रौढ शिक्षा के लिये रात्रि पाठशालायें—

निरक्षरता के विरुद्ध आर्य समाज का कार्य स्त्री समाज और हरिजन वर्ग तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु प्रौढ शिक्षा की दिशा मे भी कार्य आरम्भ किया गया। नगरो तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रौढ शिक्षा सस्थाओ की स्थापनायें की गयीं, और प्रत्येक आर्य ने निरक्षरो को साक्षर बनाने का सकल्प कर लिया। आर्य समाज के इस साक्षरता आन्दोलन का भी व्यापक सामाजिक एव राष्ट्रीय प्रभाव हुआ। प्रत्येक प्रौढ साक्षर बनते ही आर्य विचारो को व्यावहारिक रूप देने लगा, और ग्रामो मे फैली रूढ़ियाँ टूटने और चटकने लगीं।

सस्कृत शिक्षा का प्रचार—

शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा होना चाहिए हिन्दी का प्रचार तो किया ही गया, साथ ही शिक्षा के क्षेत्र मे आर्य समाज ने सस्कृत शिक्षा पर भी विशेष बल दिया। महर्षि की दृष्टि मे प्रत्येक आर्य को सस्कृत का ज्ञान होना चाहिए। क्योकि समस्त वैदिक वाङ्मय सस्कृत भाषा मे है और सस्कृत को जीवित व प्रचारित रखना आर्य समाज का कर्त्तव्य है। इस लिये सस्कृत ज्ञान के लिए विशेष आन्दोलन किया गया। आज भी सस्कृत शिक्षा के प्रचार प्रसार और अनुसन्धान मे आर्य समाज की शिक्षा सस्थायें अग्रणी हैं और सारा सस्कृत समाज आर्य समाज की सेवाओ को स्वीकार करता है।

गुरुकुल आन्दोलन—

आर्य समाज के शिक्षा आन्दोलन का एक रूप गुरुकुल आन्दोलन के रूप मे प्रकट हुआ। महर्षि ने गुरुविरजानन्द के चरणो मे बैठकर शिक्षा प्राप्त की थी, उस समय तक की अवशिष्ट भारतीय शिक्षा पद्धति के आधार पर महर्षि ने गुरुकुल पद्धति पर बल दिया। महर्षि अनुभव करते थे कि गुरु शिष्य सम्बन्धो के आदर्श विकास से ही आदर्श मानव का निर्माण सम्भव है। महर्षि के दिशा-निर्देश की पूर्ति के लिये आर्य समाज के आरम्भिक

युग मे गुरुकुल आन्दोलन की सफलता के लिये गये ।

उत्तर प्रदेश को इस बात का गौरव प्राप्त है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा स्थापित और सचालित गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (मथुरा) के अतिरिक्त गुरुकुल विश्वविद्यालय कागडी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय सासनी (हाथरस) जैसे स्नातकोत्तर शिक्षा स्तर के गुरुकुल भी उत्तर प्रदेश मे ही विद्यमान हैं, और प्रान्त मे आर्य समाज के कार्य को आगे बढाने मे सहयोग दे रहे हैं । इन बड गुरुकुलो के अतिरिक्त स्वतन्त्र शिक्षा-सस्थाओ के रूप मे साधुआश्रम हरदुआगज,एटा, सिकन्दराबाद, बदायू, सिरसागज, सिराथू, गगीरी, कनखल आदि अनेक स्थानो पर गुरुकुल प्रणाली पर शिक्षा-सस्थाये काय कर रही है । इस प्रकार गुरुकुल आन्दोलन शिक्षा क्षेत्रों में व्यापक सन्देश प्रसार और परीक्षणात्मक कार्य कर रहे हैं । भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी जब गुरुकुल विश्वविद्यालय कागडी दीक्षान्त भाषण देने गयी तब उन्होंने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की प्रशसा की और उसे राष्ट्र तथा मानवता के लिये उपयोगी बताया । उनका भाषण एक औपचारिकता मात्र न रह कर भारत की शिक्षा-नीति का पथ-प्रदशक सिद्ध होगा, ऐसी हमे आशा करनी चाहिए । साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा के लिये गुरुकुल आन्दोलन को बलशाली बनाना चाहिए ।

समाज का पथ-प्रदर्शक आर्य समाज--

आर्य समाज को एक समाज - सुधारक सस्था के रूप मे सभी ने स्वीकार किया है, क्योंकि आर्य समाज के नाम के साथ समाज शब्द जुडा हुआ है, और उसके विशेषण स्वरूप आर्य शब्द है । आर्य समाज एक आदर्शवादी मानव समाज रचना का सकल्प है, जिसकी पूर्ति के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का अतीत प्रयत्नशील रहा है, और आज भी उसके कर्मठ कार्यकर्त्ता, अधिकारी, उपदेशक सामाजिक रूढियो के उन्मूलन और नवीन सरचना के लिये सतत प्रयत्नशील हैं ।

महिला जागृति के लिये आन्दोलन--

महर्षि के युग मे नारी जाति के प्रति जो अमानवीय दृष्टि कोण समाज मे सव्याप्त था, उससे उनके हृदय पर गहरी चोट पहुची थी । महर्षि भारत की गार्गी, मन्दालसा, मैत्रेयी, सीता सावित्री जैसी महिलाओ पर गव अनुभव करते थे पर समाज ने स्त्रियो को पैरो की जूती समझ रक्खा था, और उनके जीवन मे खिलवाड हो रहा था । महर्षि ने सर्वप्रथम स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया, और आर्य समाज ने उस दिशा मे अद्वितीय कार्य किया, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है । स्त्री शिक्षा के साथ-साथ स्त्री सुधार आन्दोलन आवश्यक था । स्त्रियो के प्रति होने वाले सामाजिक अत्याचार उसके जन्म-काल मे ही आरम्भ हो जाते थे, जो मृत्यु के बाद ही समाप्त होते थे । आर्य समाज ने समाज को जागृत किया, और नारी जाति का सम्मान करने की शिक्षा दी ।

(१) परिवार म कन्या का जन्म होने पर कोई हर्ष न होना था । (२) अनेक परिवारो मे कन्या का जन्म होते ही उसका गला घोट दिया जाता था । (३) बाल विवाह की दूषित प्रथा के अन्तर्गत बाल्यावस्था मे ही विवाह कर दिया जाता था । यही नही जन्म से पूर्व ही विवाह सम्बन्ध

तय कर दिये जाते थे। (४) बाल्यावस्था मे ही वृद्धो के माथ कन्याओ का विवाह कर दिया जाता था। (५) धन सम्पत्ति के लोभ मे आकर पिता अपनी कन्याओ का विवाह ऐसे व्यक्तियो से कर देते थे, जिनकी पत्नी जीवित होती थीं इस प्रकार बहु पत्नी प्रथा का जोर था। (६) पर्दा प्रथा के कारण स्वाभाविक स्वतन्त्रता समाप्त थी। (७) दहेज प्रथा के रूप मे कन्याओ का जीवन दूभर हो रहा था। (८) विधवाओ की स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी, उनके भरण पोषण का कोई दायित्व नहीं लेना चाहता था, २ ३-४-४ वर्ष की लाखों कन्याये विधवा बन चुकी थीं, समाज की उपेक्षिता बनकर ये ही वेश्यालयो मे जा रहीं थीं। (९) शादी विवाहो मे स्त्रीनृत्यो को प्रमुखता देकर विलासिता का प्रदर्शन किया जाता था। (१०) जाति प्रथा के नाम पर अनमेल और जबरदस्ती विवाह किये जाते थे।

आर्य समाज ने अपने प्रबल प्रचार तन्त्र द्वारा समाज मे उपर्युक्त सभी अत्याचारो के विरुद्ध व्यापक आन्दोलन किया। भारत के संविधान मे जो समानता के अधिकार स्त्री-जाति को प्राप्त हुए हैं, उनकी पृष्ठ भूमि मे आर्य समाज के प्रचार का दीर्घ कालीन इतिहास अंकित है। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रचार और समाज कल्याण एव महिला-सुधार विभाग आदि के ऐतिहासिक योगदान को आधुनिक नारी जागरण के सदर्भ मे कभी नहीं भुलाया जा सकता। सभा मे आदेशानुसार हजारो उपदेशको, विद्वानो, प्रचारको भजनीको एव महिला कार्यकर्ताओ ने स्त्री सुधार के लिए जो समर्पण किया उस सदैव स्मरण किया जायगा।

अछूतोद्धार एव अस्पृश्यता निवारण

समाज के पीडित शोषित अछूत वर्ग के उद्धार की दिशा मे भी आर्यसमाज का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

महर्षि के समय मे शूद्र वर्ग की जो दुर्दशा थी उसे अमानवीय एव असामाजिक माना जाता था इस असामाजिक अत्याचार के विरुद्ध उन्होने वर्ण-व्यवस्था के प्रचलित जन्मना वर्ण व्यवस्था के स्वरूप पर कठोर आघात किया। महर्षि ने बताया 'जन्मना जायते शूद्र संस्काराद् द्विज उच्यते'। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है, संस्कारो के निर्माण मे ही उसे द्विजत्व की प्राप्ति होती है। महर्षि की इस घोषणा ने जन्मना वर्ण व्यवस्था के बन्धनो को काटना आरम्भ कर दिया और आज भारतीय संविधान मे अस्पृश्यता अपराध घोषित है। इस स्थिति को उत्पन्न करने मे उत्तरप्रदेश के आर्य जनो, सभा के कर्मशील नेताओ का विशेष योग रहा है। हरिजनो की शिक्षा-व्यवस्था के लिए पाठशालाये खोले जाने की चर्चा की जा चुकी है। हरिजनो के साथ समानता का व्यवहार दर्शाने के लिए हरिजन बस्तियो मे यज्ञ हवन आदि कार्यक्रमो और प्रीति भोजो की व्यवस्था का आरम्भ आर्यसमाज के लगनशील कार्यकर्त्ताओ ने ही किया था। हरिजनो को समानता के व्यवहार की अनुमति के लिए समाज के अधिकारी पदो पर सबसे पहले आर्यसमाज ने ही बिठाया था। छुआ छूत के भूत को भगाने मे आर्यसमाज की समानता आज के समाजवादी भी नहीं कर सकते। आर्य समाज ने हरिजनो को समानता का अधिकार दिलाने के लिए व्यापक आन्दोलन किया। उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र मे आर्यसमाज ने इस मानवतावादी आन्दोलन को सफल बनाने में भारत केसरी लाला लाजपतराय जी ने भी योगदान किया। उन्होंने अलमोड़ा, रानीखेत नैनीताल गढ़वाल आदि क्षेत्रो मे शिल्पकार बधुओ को



(जिन्हें उस क्षेत्र के सवर्ण शूद्र मानते हैं) यज्ञोपवीत पहनाकर आर्य की सज्ञा से विभूषित किया। उत्तरप्रदेश के गढ़वाल क्षेत्र मे हरिजनों को अपने शादी विवाहों मे डोला पालकी का प्रयोग करने की सामाजिक अनुमति न थी, इस दिशा मे आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियो ने व्यापक आन्दोलन किया और हरिजनों को यह अधिकार दिलाया। इस सबका व्यापक प्रभाव पडा, कानून भी समानता का अधिकार दिलाता है, पर अभी समाज के अन्तस मे छुआछूत दबी पडी है उसे दूर भगाना है। आर्यसमाज के कार्यकर्ता इस दिशा मे प्रयत्नशील है।

सामाजिक अभिशाप से मुक्ति

इसी प्रान्त के नैनीताल क्षेत्र मे नायक जाति की कन्याओं के विवाह न होने और उन्हें विलासी क्षत्रिय राजाओं की रखैल बनाकर भेज देने की कलंकित प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करने का श्रेय उ०प्र० आर्यप्रतिनिधि सभा को है। सभा के प्रयत्नों से आज यह प्रथा समाप्त हो चुकी है और नायक कन्याये उच्च शिक्षा प्राप्त करती और सम्मानित परिवारो मे विवाहित हो रही है। सभा नायक बालक बालिकाओ की शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियों का प्रबंध करती है, इस प्रकार इस असामाजिक प्रथा के विरुद्ध आर्य समाज का कार्य सदैव उल्लेखनीय रहेगा।

धार्मिक क्रान्ति और पाखण्ड-खण्डन

आर्य समाज को एक धार्मिक आन्दोलन की भी सज्ञा दी जाती है। महर्षि दयानन्द मानव जीवन को धर्म से ओतप्रोत देखना चाहते थे, परन्तु उनका उस दिखाने और पाखण्ड का धर्म न था। उन्होंने वेद की शिक्षाओं को जीवन का आधार माना था परन्तु वेद के नाम पर जो धर्म धर्षण आरम्भ हुआ था वह उनके समय मे केवल ढोंग और पोप लीला मात्र रह गया था। धर्म के नाम पर मूर्ति पूजा वाममार्ग तथा ऐसे ही फैले हुऐ पाखण्डवाद ने उनके हृदय और मस्तिष्क मे व्यापक हलचल पैदा कर दी। सच्चे ईश्वर की खोज मे जिस महामानव ने अपने वैभवशाली गृह का परित्याग कर दिया उसे धर्म का सही रूप कहीं भी नहीं दीखा। सर्वत्र ईश्वर के नामपर ठगी और पोपलीला व्याप्त थी। महर्षि ने अपने गुरु विरजानन्द जी से दीक्षा लेते समय संकल्प लिया था कि वे अपना जीवन वेद प्रचार मे समर्पित कर देगा।

इस संकल्प की पूर्ति मे महर्षि ने अपने जीवन के अन्तिम रक्त की बूंद भी समर्पित कर दी। महर्षि की कर्मभूमि बनने का उत्तर प्रदेश को विशेष गौरव प्राप्त है। उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी प्रसिद्ध नगरों व तीर्थों मे उन्होंने जो पाखण्ड और वैदिक धर्म का नाद गुंजाया। महर्षि के नाद मे पाखण्ड ढहने लगे पाखण्डी छिपने लगे और ख्याति उत्पन्न होने लगी। उत्तर प्रदेश मे ही अनेक स्थानो पर महर्षि को जहर दिया गया उन पर सांप फेंके गये तलवार के वार किये गये पर उन सब पर उस महामानव ने विजय प्राप्त की।

महर्षि ने जिस वैदिक धर्म के प्रचार के लिये जहर पिया गालियाँ खायी लाखो की सम्पत्ति को ठुकराया उसी मिशन की पूर्ति के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना की गयी थी। अपने ८६ वर्षीय कार्यकाल मे सभा के वेद प्रचार विभाग ने अधर्म के दुर्गम दुर्गों का भेदन किया है। आर्य समाज के शास्त्रार्थ युग के अधिकांश शास्त्रार्थ उत्तर प्रदेश मे ही सम्पन्न हुए, जिसमें प्रदेश की



जनता वैदिक सिद्धान्तों को अधिक अच्छी प्रकार समझ सके। सभा के उपदेश और प्रचार विभाग की निरन्तर सेवाओं का ही परिणाम है कि आज उत्तर प्रदेश की जनता पाखण्डियों और पोप इस के विरुद्ध सजग और सतर्क है। मुरादनगर (मेरठ) मे बालयोगी हंस के विरुद्ध व्यापक प्रचार कार्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस पाखण्ड-खण्डन कार्य मे न केवल आर्य समाज के ही कार्यकर्ता अग्रणी रहे अपितु हिन्दू समाज के सभी प्रमुख धार्मिक यहां तक कि राजनीतिज्ञ भी आगे आये और पाखण्ड का भण्डाफोड़ कर रहे हैं।

देवी देवताओं के नाम पर पशु-बलि, नरबलि समर्पण यहां तक नर बलि तक की घटनाएं समय-समय पर घटित होती हैं। ज्योतिषियों के मिथ्या राशिफल और ग्रह योग आदि के चक्कर मे फंस कर आज भी अनेको नर-नारी अपना सर्वस्वनाश कर रहे हैं। कर्मवाद मे विश्वास न कर भाग्यवाद की विडम्बना मे जीवन नष्ट कर रहे हैं। इस्लाम और ईसाइयत के धार्मिक आधियों ने भी जनता को भ्रमित किया है पर वेद की कसौटी पर आर्य समाज ने उनसे भी लोहा लिया है। इस प्रकार भ्रम मे फंसकर अपना धर्म छोड़ने वालों को आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन द्वारा फिर अपने मे मिला लिया और एक नयी चेतना को जन्म दिया है।

आज भी आर्य समाज के उपदेशक प्रचारक, विद्वान् और साहित्यकार वैदिक धर्म का सही और सच्चा स्वरूप बताने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हैं। प्रत्येक आर्य समाज और आर्य संस्था अपने वार्षिक उत्सवों का आयोजन कर पाखण्ड खण्डन के महाभियान मे संलग्न है। महर्षि ने हरद्वार कुम्भ मे जो पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़ी थी सभा ने उसकी स्मृति मे १९७९ मे शताब्दी समारोह मनाकर महर्षि के अधूरे कार्य को पूरा करने का संकल्प दोहराया था और आज अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ सभा पाखण्ड खण्डन मे जुटी हुई है।

आर्य समाज पाखण्ड खण्डन के महाभियान के साथ-साथ धर्म के वैदिक स्वरूप का प्रचार करने मे भी अपनी शक्ति लगा रहा है। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों के कार्यक्रम मे हमें धार्मिक जीवन की झांकी मिलती है। इस कार्यक्रम को और अधिक आदर्श, आकर्षक एवं व्यावहारिक रूप दिया जाना चाहिए।

आर्य प्रतिनिधि सभा की नवीन योजनाएं

उत्तर प्रदेश मे आर्य समाज के प्रचार प्रसार को गतिशील बनाने के लिये सभा की अपनी कुछ योजनाएं हैं, जिन पर आज हमारा ध्यान केन्द्रित है।

विरजानन्द वैदिक अनुसन्धान केन्द्र मथुरा

महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी समारोह के अवसर पर भारत के आदि राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी के कर कमलों से गुरु विरजानन्द स्मारक मथुरा मे वैदिक अनुसन्धान केन्द्र की आधार शिला रक्खी गयी थी। सभा के प्रयत्नों से स्मारक का भवन बनकर तैयार हो चुका है। शीघ्र ही वैदिक साहित्य को एकत्र कर वहां अनुसन्धान का कार्य सभा आरम्भ करने की योजना क्रियान्वित करेगी। इस अनुसन्धान का उद्देश्य मानव मात्र तक वैदिक ज्ञान सूर्य का प्रकाश पहुंचाना होगा जिससे मानव अपने अन्तस को प्रकाशित कर सके।

आर्य समाज हरद्वार (पाखण्ड खण्डन महाकेन्द्र के रूप मे

महर्षि ने हरद्वार मे पाखण्ड खण्डिनी पताका

गाड़कर पाखण्ड उन्मूलन का सकल्प लिया था आर्य प्रतिनिधि सभा ने हरद्वार मे आर्य समाज का विशाल भवन गगा के किनारे बनाना आरम्भ कर दिया है। निर्माण कार्य जारी है, आशा है आगामी कुम्भ तक यह सम्पन्न होजायगा। हरद्वार आर्य समाज का उपयोग पाखण्ड-खण्डन के महा-केन्द्र के रूप मे किया जायगा।

नवीन सभा-भवन निर्माण, लखनऊ

आर्य समाज के प्रदेशीय सगठन को केन्द्रित एव सगठित रखने के लिये सभा का नवीन सभा भवन तैयार हो रहा है, इसमे सभी के आर्थिक योग दान की आवश्यकता है। आशा है नवीन भवन की योजनापूर्ण होने पर सभा प्रचार और निर्माण क कार्यों मे और अधिक सक्षमता से कार्य कर सकेगी। नवीन सभा भवन निर्माण से सभा की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ हो सकेगी।

आर्य शिक्षा सस्था विधेयक

उत्तर प्रदेश मे आर्य शिक्षा सस्थाओ के लिये प्रदेशीय विद्यार्य सभा का सगठन बना हुआ है। इस सगठन को और भी अधिक सुदृढ़ कर आर्य शिक्षा सस्थाओ के लिये आर्य-शिक्षा सस्था एक एक्ट बनवाने के प्रयास किये जा रहे हैं, जिससे सस्थाओ का आदर्श सचालन हो सके तथा उनके आदर्शों की पूर्ति हो सके।

सभा के प्रमुख विभाग

सभा के पास अपनी योजनाओ को क्रियान्वित करने के लिये केन्द्रीय कार्यालय के अन्तगत उपदेश विभाग, वेद प्रचार विभाग समाज कल्याण विभाग, साप्ताहिक आर्यमित्र (७५ वर्ष से निरन्तर प्रकाशित) भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस, घासीराम प्रकाशन विभाग, गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, नारायण स्वामी आश्रम रामगढ़, शुद्धि विभाग गोकृष्यादि रक्षिणी, सभा-विभाग, अनाथालय, विधवाश्रम सस्थाये जातिभेद उन्मूलन विभाग, महिला मण्डल विभाग, आर्यवीर दल विभाग, पुस्तकालय विभाग, मद्य-निषेध विभाग, भ्रष्टाचार निरोध विभाग नैतिक उत्थान विभाग आदि अनेक उपयोगी विभाग बने हुए है जो सभा के स्वरूप का स्पष्ट करते हैं और जन सम्पर्क कर जनता-जनार्दन तक वैदिक धम का सन्देश पहुचाते हैं।

आर्य समाज की आवश्यकता

प्राय मित्र कहा करते हैं कि जब आयसमाज की अधिकाश बातो को समाज ने, शासन ने स्वीकार कर लिया है तब अब आर्यसमाज की क्या आवश्यकता है? मुझ अपने मित्रो मे यही कहना है कि राज्य आते जाते रहेंगे, सरकारें बनती बदलती रहेंगी, परन्तु आयसमाज का ससारोपकार का कार्य कभी समाप्त न होगा, क्योंकि पुरान और नये ससार मे, धम और पाखण्ड मे सदैव सघष रहगा और आयसमाज अपने सन्तुलित जीवनदशन मे दोनो प्रकार क व्यक्तियो और वर्गों को प्रभावित करता रहेगा। आर्यसमाज कोई सम्प्रदाय मजहब या एक विशेष वग नहीं है उसका आधार आस्तिकता और सिद्धान्त वेदानुकूल ह। वेदो को महत्ता को आज ससार स्वीकार करने लगा है और आय समाज के लिए वह दिन सर्वाधिक गौरव का दिन होगा जब ससार एक धम वैदिक धर्म को ही अपना धम मानेगा। यद्यपि आयसमाज एक विश्व व्यापी आन्दोलन है फिर भी इसकी प्रत्येक स्थान मे अपनी उपयोगिता है, इस दृष्टि मे उत्तर प्रदेश में आर्य प्रतिनिधि सभा का यह सतत प्रयास रहा है और रहेगा कि इस क्षत्र की जनता आयसमाज के विचारो से परिचित रहे परिचित हो क्यों उन

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का सबसे विशाल और भव्य स्वरूप

[आचार्य विश्वश्रवाः जी व्यास एम० ए० वेदाचार्य]

इस समय ससार में जितनी सभायें हैं, उनमें आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का सर्व प्रथम स्थान है। आज हम आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा सचालित आर्य समाज स्थापना शताब्दी महासम्मेलन के अवसर पर आर्यजगत् को उसका दिग्दर्शन कराते हैं।

१—आ. प्र नि सभा उत्तर प्रदेश की सभा ही ऐसी है जिसके साथ लगभग १॥ हजार आर्य समाजें हैं। आर्य समाजो की इतनी सख्या किसी प्रान्तीय सभा की नहीं है। बिहार बंगाल आदि की सभायें भी सौ दो सौ आर्य समाजों की प्रतिनिधि सभायें हैं।

२—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का अपना विशाल भवन है, जिसका वर्णन आगे किया जायेगा। अधिकतर प्रान्तीय सभायें आर्य समाज मन्दिरों के एक दो कमरों में सीमित हैं, उनका अपना कोई प्रान्तीय सभा का भवन नहीं। जैसे आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, आ. प्र नि सभा हैदराबाद तथा जम्मू काश्मीर आदि।

३—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का अपना प्रेस है। किसी भी प्रान्तीय सभा यहां तक कि सार्वदेशिक सभा का भी अपना कोई प्रेस नहीं है। सार्व देशिक प्रेस दिल्ली तो एक लिमिटेड कम्पनी का प्रेस है।

४—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र आर्यमित्र आर्य जगत् का सबसे पुराना और सबसे अधिक देश-देशान्तर मे जाने वाला पत्र है। यहां एक पत्र है जिसका सम्बन्ध सब प्रान्तों और सब देशो से है। प्राय अधिकतर प्रान्तीय सभाओं के अपने पत्र नहीं है, जैसे बिहार बगाल, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, इत्यादि सभाओं के अपने कोई पत्र नहीं हैं, ये सभायें अपने समाचार दूसरे पत्रों में प्रकाशित कराते हैं। आ प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुखपत्र 'आ मार्तण्ड' है, पर वह राजस्थान में ही सीमित और ग्राहक सख्या भी साधारण है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुखपत्र आर्य मर्यादा ने प०



आचार्य विश्वश्रवा जी व्यास

जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती के सम्पादकत्व में बहुत और आशातीत उन्नति की है। पर चाहे सार्वदेशिक पत्र हो या अन्य आर्यमित्र के बराबर विस्तृत क्षेत्र किसी आर्यपत्र का नहीं है।

५–आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय मे १५ कर्मचारी कार्य करते हैं और कार्यालय नियमित रूप से १० बजे से ५ बजे तक चलता है। इस समय के अतिरिक्त भी सभा कार्यालय में सभा के कार्यालयाध्यक्ष आदि तथा सम्पादक मण्डल तथा कोई न कोई अधिकारी वर्ग भी रहते हैं। जैसे बिहार बगाल आदि सभाओं के कार्यालयों में एक दो घण्टे को कार्यकर्त्ता आते हैं और शेष समय में ताला पड़ा रहता है। हमारे यहाँ प्रतिक्षण सब मिलते हैं।

६–हमारी सभा से सम्बद्ध इन्टर और डिग्री कालिजों की सख्या लगभग ढाई सौ है, तथा लड़कों का गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन सीधा सभा के अधीन है और लड़कियों का भी विशाल गुरुकुल कन्या गुरुकुल सासनी है। जहाँ कई सौ कन्यायें बनारस की परीक्षायें देकर शास्त्री और आचार्य बनती हैं।

७–सभा कर्यालय की बहुत बड़ी और भव्य यज्ञशाला है, जो किसी प्रान्तीय सभा के कार्यालय मे आपको देखने को नहीं मिलेगी, कई सौ व्यक्ति बैठकर जहाँ यज्ञ कर सकते हैं।

८–सभा का भवन विस्तृत भूमि में विशाल सभा के पास है, जो पांच एकड भूमि पन्द्रह हजार गज से भी अधिक सभा भवन की भूमि का विस्तार है जो किसी भी प्रान्तीय सभा या सार्वदेशिक सभा के लिए प्राप्त नहीं है।

सभा-भवन पहले ही विशाल था, जिसमें कार्यालय प्रेस आदि तथा कार्यालय के लोगों के निवास स्थानो के अतिरिक्त भी अनेक किरायेदार बसे हैं, जिनसे सभा की आर्थिक स्थिति पहले ही दृढ़ थी। साथ ही सभा के वर्तमान अधिकारियों श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री प्रधान तथा प० प्रेमचन्द्र शर्मा मन्त्री आदि के अथक परिश्रम से अब सभा भवन की नई इमारत कई लाख रुपयों की बनकर तैयार हो रही है। यह बिल्डिग तीन मंजिल की बन रही है, पहली मंजिल बनकर किराये पर दे दी गई है, जिसका किराया पुराने सभा-भवन के अतिरिक्त पाँच हजार रुपया मासिक है, एक गवर्नमेंन्ट का आफिस इसमे है। दूसरी मंजिल भी तैयार होने वाली है जिससे भी इतना किराया सभा को प्राप्त होगा, और तीसरी मंजिल के बनने पर वहाँ सभा का कार्यालय रहेगा, और पुराना सभा कार्यालय जो अब है, वह आर्य विद्वानों और उपदेशकों का निवास स्थान बनेगा।

१०–आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का पुस्तकालय भी अति विशाल है, जहाँ अच्छे से अच्छे अनुसन्धान विभाग चल सकते हैं।

११–सभा की अपनी सम्पत्ति लखनऊ मे ही सीमित नहीं है, प्रत्युत नारायणस्वामी आश्रम तथा वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर आदि सैकड़ों बिल्डिग सभा की ही हैं।

१२–उत्तर प्रदेश के आर्य समाजों के सब ही विशाल भवन सभा के नाम रजिस्टर्ड हैं, और एक अनुशासन मे बन्धे हैं।

आर्य जगत् के जिन लोगों ने आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का भवन कार्यालय आदि नहीं देखा है, हम उन्हें निमन्त्रित करते हैं कि वे एक बार आकर सभा का विशाल भवन भव्य यज्ञ शाला तथा कार्यालय आदि देखने की कृपा करें।

आर्य जगत् का कर्तव्य है कि सर्वशिरोमणि इस प्रान्तीय सभा को देखें, और इसके गौरव की रक्षा मे सहयोग प्रदान करें। * * *

स्वामी दयानन्द सरस्वती व्यक्तित्व एवं कृतित्व

श्री उमेशचन्द्र शुक्ल, एम० ए० (हिन्दी) एम० ए० (राजनीति) हिन्दी विभागाध्यक्ष,
रस्तोगी महाविद्यालय, लखनऊ।

संक्षिप्त जीवन परिचय

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् १८२४ में गुजरात मे मोरवी राज्य में टकारा नामक स्थान मे हुआ था। इनका नाम पहले मूलशंकर था। इनके पिता का नाम अम्बाशंकर था, और वे जमींदार थे। वे शिव भक्त थे। स्वामी दयानन्द की पारिवारिक पृष्ठभूमि धार्मिक थी। १४ वर्ष की आयु मे पिता के आदेश पर शिवरात्रि का व्रत रखा, किन्तु रात्रि मे जब सभी लोग सो गये तो दयानन्द ने शिवपिण्डी पर चूहों को चढ़ते और उछलते देखा। इस पर दयानन्द के विश्वासों की नींव हिल गई। छोटी बहन की मृत्यु के कारण उन्हे संसार की असारता और क्षणभंगुरता का सहज बोध हुआ। ३६ वर्ष की आयु मे मथुरा के अन्धे सन्यासी गुरु विरजानन्द से दीक्षा ग्रहण की। पांच वर्ष की अवस्था से ही आपने संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्युविष खिलाने के कारण ३० अक्टूबर, १८८३ को हुई थी। जोधपुर के महाराजा वेश्या-वृत्ति मे लीन थे। स्वामी जी ने वेश्या-गमन के विरुद्ध जब महाराजा डांटा फटकारा तो वे बड़े लज्जित हुये। वेश्या ने खीजकर स्वामी जी को विष दिलवा दिया। इस विषय में अप्रामाणिक एवं असंदिग्ध जीवन सामग्री ही उपलब्ध है।

१९ वीं शदी के भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण आन्दोलन के काल मे स्वामी दयानन्द सरस्वती एक गम्भीर विचारक एवं श्रेष्ट समाज सुधारक के रूप मे हमारे सामने आते हैं जिन्होने आर्य संस्कृति को नवीन स्वरूप देकर उसका पुनरुद्धार किया। वैदिक धर्म की नई व्याख्या के कारण उनका आधुनिक भारत के सांस्कृतिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के धार्मिक पुनर्जागरण काल मे चार प्रमुख आन्दोलन हुए थे, जिनमे ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी और आर्य समाज प्रमुख थे। ब्रह्म समाज कोई विशिष्ट राजनीतिक एवं सामाजिक जागरण का प्रबल आन्दोलन नहीं था। यह आन्दोलन व्यक्तिवादी था, अतएव हजारो हिन्दू इसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द एवं रामतीर्थ ने तो हिन्दुओ की गहरी धार्मिक भावनाओ को स्पर्श किया था, इसी कारण वे लोकप्रिय हो सके। ब्रह्म समाज का प्रभाव कुछ शिक्षित लोगो तक ही सीमित रहा, और उसमे जन-सम्पर्क का अभाव था, किन्तु आर्य समाज एक विशुद्ध हिन्दू आन्दोलन था।

स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इस समाज की स्थापना अप्रैल १८७५ में की गई थी। पहिले आर्य समाज के २२ नियम थे, बाद मे संक्षिप्त करके उनको

१० कर दिया गया था। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान एवं समाज सुधार का अभूतपूर्व कार्य आर्य समाज ने किया है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के धार्मिक और सामाजिक सुधारकों में राजाराम मोहनराय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, विद्यासागर, परमहंस रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि भारतीय थे, जिन्होंने देश की महत्ता एवं प्राच्य विचारों को सार्वलौकिकता का ज्ञान कराया था। स्वामी दयानन्द उस पंक्ति में प्रथम थे। क्योंकि उनका दर्शन वेदों पर आश्रित था। वैदिक आस्था का उद्धार उनका मुख्य उद्देश्य था। सन १८७५ में स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ मे 'अपने देश में अपना राज्य' का नारा लगाया था। स्वामी जी ने कहा विदेशी शासन कितना ही अच्छा क्यों न हो अपने शासन से अच्छा नहीं होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वयं सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है, 'मेरा उद्देश्य इस ग्रन्थ के निर्माण का सत्य का प्रकाश करना है। जो सत्य है, उसको सत्य और जो मिथ्या है, उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना है।

इस अमर कृति के माध्यम से दयानन्द ने धर्म सम्बन्धी शाश्वत मान्यताओं की पुनः स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त वेद-भाष्य दयानन्द की भारतीय वाङ्मय को अपूर्व देन है।

श्रीमती ब्लेवाट्स्की ने स्वामी दयानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि 'यह पूर्णतः निश्चित-सा है कि शंकराचार्य के बाद भारत में स्वामी दयानन्द से बढ़कर संस्कृत का विद्वान्, उद्भट वक्ता और बुराइयों से लड़ने वाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था।' मिसेज ऐनीबीसेन्ट के अनुसार 'स्वामी दयानन्द पहले महान् व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था कि भारत भारतीयों के लिये है।' कर्नल ओलकाट ने लिखा है कि दयानन्द ने अपने अनुयायियों पर बड़ा भारी राष्ट्रीय प्रभाव डाला था। रोमारोलां ने स्वामी जी को गीता के एक प्रमुख नायक के रूप में तथा इलियड के रूप में देखा था।

स्वामी दयानन्द जी एक महान् ऋषि थे। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान्, उद्भट वक्ता एवं ओजस्वी योगी थे। उन्हें कांच पीसकर पिला दिया गया था, फिर भी योग-साधना से वे कई महीनों तक जीवित रहे, किन्तु ३० अक्तूबर, १८८३ को उनका पार्थिव शरीर इस संसार में न रहा। पं० शिवनारायणधर ने स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है, 'स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मरे हुए हिन्दू धर्म को 'वेद की राष्ट्रीयता' पर लाकर पुनः सजीव कर दिया है। उन्नीसवीं शताब्दी में स्वामी जी ने ही सर्वाधिक रूप से जनता के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना भरी। एक तरह से आर्य समाज ब्रह्म समाज से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह ब्रह्म समाज से कहीं अधिक राष्ट्रीय है, क्योंकि इसका प्रभाव उस वर्ग पर भी पड़ा जो अंग्रेजी से अनभिज्ञ था। स्वामी दयानन्द अपने युग के सबसे बड़े हिन्दू हैं, क्योंकि पाश्चात्य शिक्षा से उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। यदि पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी न जानने वाले विधवा-विवाह तथा जाति-प्रथा का विरोध करते हैं, तो इन सब पर स्वामी जी का ही प्रभाव पड़ा है।'

ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा

स्वामी दयानन्द ईश्वर को सच्चिदानन्दयुक्त लक्षण मानते हैं, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र है। ईश्वर सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा अनन्त और सर्वशक्तिमान है। स्वामी दयानन्द



वे चारों वेदों को स्वतः प्रमाण मानते थे। संसार में अनादि पदार्थ तीन हैं, एक ईश्वर, जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को वे नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं, उनके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य ही हैं। मुक्ति के साधनों की चर्चा करते हुए स्वामी जी ने ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य, आप्त विद्वानों का सत्संग, सत्यविद्या और सुविचार माना है।

धर्म सम्बन्धी विचार

धर्म दयानन्द के अनुसार ईश्वरीय आज्ञापालन है। धर्म का एकमात्र स्रोत वेद है, अत. धर्म वेदोक्त है। धर्म सम्बन्धी सिद्धांत त्रिकाल में शाश्वत हैं, और इनमें परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। सत्य धर्म का आधार है, और मानव कल्याण और प्रगति का एकमात्र कारण है। धर्म में आडम्बर एवं हिंसा के लिये कोई स्थान नहीं है। धर्म के स्वरूप को समझने के लिये वेदाध्ययन ही मूलाधार है। ऋषिकृत वेदों के मन्त्रों की व्याख्या इस विचार में निहित है कि वेद धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करते हैं, वेद पूर्ण ईश्वर प्रेरित ज्ञान है। वेदों में ऐकेश्वरवाद का वर्णन मिलता है। दयानन्द ने बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद का समर्थन किया है।

स्वामी दयानन्द जी 'वर्णाश्रम' गुण कर्मों की योग्यता से मानते थे। स्वामी दयानन्द जी 'प्रजा' के सम्बन्ध में कहते हैं कि प्रजा के धनाढ्य आरोग्य खान-पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने। स्वामी जी भारत को आर्यावर्त मानते हैं, वे लिखते हैं कि 'आर्यावर्त, देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी है। इन चारों के बीच में जितना देश है, उसको आर्यावर्त कहते हैं, और जो इनमे सदा रहते हैं, उनको भी आर्य कहते हैं।' सत्यार्थ प्रकाश के 'छठे समुल्लास' मे राज-धर्म का वर्णन है।

स्वामी जी वेदों की अपौरुषेयता में विश्वास करते थे। उन्होने वेदों का हिन्दी भाषा मे रूपान्तर करना शुरू किया ताकि जनता इस वैदिक धर्म को सरलता से समझ सकें। वैदिक वाङ्मय के प्रचार में उन्होंने अपना सारा समय लगा दिया था। भारतीय जीवन को संवारने के लिये वेद संहिताओं के व्यापक ज्ञान के पुनरुद्धार पर बल दिया था। 'आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए दयानन्द ने वेदो की महती आवश्यकता प्रतिपादित की। वेदों की आधारशिला पर ही उदीयमान भारतीय राष्ट्र को वे स्थापित करना चाहते थे।'

आर्य समाज के नियम

स्वामी दयानन्द की सबसे बड़ी देन 'आर्य समाज' है। वे वेदों के प्रचार की ओर बढ़ते हुए उसे ब्रह्मवाक्य मानते थे। वे भारतीयों से पाश्चात्य सभ्यता में न रंगने को कहकर 'वेदों की ओर लौटो' वाला नारा लगाते थे। वेदों पर सबका अधिकार हो सकता है, और उसे सब लोग पढ़ सकते हैं। बम्बई में 'आर्य समाज' की स्थापना कर स्वामी जी ने देश में धार्मिक और सामाजिक पुनर्जागरण का कार्य प्रारम्भ किया। आर्यसमाज की सबसे ज्यादा शाखायें पंजाब के नगरों में थीं, और पंजाब में ही सबसे ज्यादा प्रचार हुआ। हम

के यहाँ सक्षेप में आर्य समाज के दस नियम लिख देते हैं—(१) आर्य समाजियों का सिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञान से अन्य ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है, वही सर्वज्ञ है।

(१) आर्य समाजी इस बात पर बल देते हैं कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करने योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिए।

(६) ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति से अपनी उन्नति समझना चाहिए।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहित कारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं। आर्य समाज का धर्म वैदिक धर्म है। आर्यसमाज कर्म सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म में विश्वास करता है। आर्य समाज की ओर से शिक्षा-प्रसार के लिए लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज (१८८६) और गुरुकुल कांगड़ी (१९०२) की स्थापना की गई थी। आर्यसमाज श्राद्ध-पर्व का विरोधी है। लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे अछूतोद्धार का काम देश में आगे बढ़ाया गया। अछूतपन हिन्दू-समाज का एक अभिशाप है। स्वामी जी गोसम्ब-र्द्धन एवं गोरक्षा के पक्षपाती थे। आपने 'गोकरु-णानिधि' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक लिखी थी। गो-हत्या के प्रश्न को लेकर आर्यसमाज ने ब्रिटिश शासन से संघर्ष किया।

आर्यसमाज के सामाजिक सुधार कार्यक्रम

(१) मूर्ति-पूजा का विरोध करना और निराकार ब्रह्मोपासना का उपदेश देना, वेदों मे मूर्ति-पूजा का वर्णन नहीं मिलता है। वेद का ब्रह्म तो सत् चित्, और आनन्द स्वरूप है। स्वामी जी ने मूर्त्ति-पूजा का तीव्र खण्डन किया, और वैदिक साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार किया।

(२) जाति-पाँति के भेद भाव को वह मिटाना चाहते थे और स्वामी जी जन्मना नहीं, कर्मणा जातिवाद का बन्धन मानते थे। कर्म से मनुष्य नीच और ऊँच होता है। अस्पृश्यता को स्वामी जी ने वेद विरुद्ध बताया था।

(३) स्त्री-शिक्षा पर बल देना आर्य समाज का मुख्य कार्य है। स्त्रियों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दी जाय तो ज्यादा अच्छा है: नारी के गौरव में मातृत्व का विकास छिपा है।

(४) विधवा-विवाह करना।

(५) भारतीय वाङ्मय में वेदों का पठन-पाठन, शाकाहारी भोजन। स्वामी जी एक महान् सामाजिक सुधारक थे और सामाजिक अभ्युदय के उद्घोषक थे। ***

आर्यसमाज की हरकत में ही देश व जाति की बरकत है

[श्री प० नरेन्द्र जी हैदराबाद]

भारत देश की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सभ्यता तथा खान पान व रहन सहन सम्बन्धी परिस्थितियां प्रत्येक रूप में धीरे-धीरे बिगड़ती आ रही थीं। धर्म में उद्देश्यों का नियत्रण मानव-जीवन से समाप्त-सा होता दिखाई दे रहा था। स्वार्थ बढ़कर अपनी चरमसीमा पर पहुंच चुका था, परिणाम यह हुआ कि भारत का वह महान् और स्वर्णयुग जिसके उद्देश्यों की मान्यता करने में ही संसार के विद्वान् और मनीषी अपने मान और सम्मान का अनुभव करते थे, वह समाप्त हो गया। भारतीय जातियां असीम विनाश व पारस्परिक गुप्त मनमुटाव और ऐक्यहीनता का शिकार हो चुकी थीं। वेद भगवान् के मन्त्रों की गूंज, के आदर्श, निर्धन, विवश, धनहीन और असमर्थ साधारण जनता के मन से सौहार्द पूर्ण रूप से मिट चुकी थी। जिसके कारण भारतीय सीमा से दूर बसने वाली जातियां खैबर की घाटी से निकल कर भारतीय मैदानों में पहुंची—जैसे कि मुहम्मद बिन कासिम से लेकर बहादुरशाह जफर दिल्ली के अन्तिम बादशाह तक निरन्तर इस्लामी साम्राज्य का युग बना रहा। इतनी लम्बी अवधि के साम्राज्य-युग में मुसलमानों ने न केवल अपने साम्राज्य का सिक्का जमाया बल्कि इस्लामी अधिकारों के अन्तर्गत मूर्ति पूजकों को काफिर बताकर नष्ट-भ्रष्ट किया, और इसका वह उदाहरण प्रस्तुत



श्री प० नरेन्द्र जी

किया कि खोज करने पर भी इस्लामी युग के आरम्भ से अन्त तक के इतिहास में नहीं मिल सकता।

ऐसे अनिश्चित और भयानक युग में जो जातियां इस्लामी तूफान से लोहा लेती रहीं, उनके साहस, और वीरता और धैर्य तथा उनके महान त्याग की कहानियों से भारत के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ चमकता हुआ दृष्टिगोचर होगा। और उनके बलिदान पर संसार की जातियों को आज भी ईर्ष्या है। छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोबिन्दसिंह, बन्दा बैरागी के असाधारण व्यक्तित्व

मे इस्लामी आक्रमणों से हिन्दू जाति और संस्कृति को सुरक्षित रखने और आक्रमणकारियों का मुंह तोड़ उत्तर देने की वह शक्ति उत्पन्न की कि जिससे टाड जैसे अंग्रेज को इन जाति के मार्ग प्रदर्शक शक्तिशाली, साहसी और वीरों का लोहा मानना पड़ा। देश और जाति जीवन कारण की खींचातानी मे फंसी हुई थी। इन प्राणों की आहुति देने वालों और दुखित हृदय ने उस समय की दूषित वायु को दिशा ही बदल दी। किन्तु फिर भी वे स्वयं राष्ट्रों और खींचातानी से संघर्ष करते हुए जाति के जीवन को सुरक्षित करते रहे। परन्तु यह अत्यन्त साहस का विषय है कि इनकी वीरता के समक्ष आकाश भी कांप कर रह जाता था, और शत्रुओं के पाषाण हृदय प्रकाशित होकर निरुत्साहित हो जाते थे।

हिन्दू जाति को कुछ सुख-सुविधा मिली थी कि एक दूसरे साम्राज्य युग का उदय हुआ, और उसने रही-सही कसर भी निकाल ली, और अपने साम्राज्य की नींव संगीनों के ऊपर रख दी। अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालकर रखने वालों ने अपने जीवन का बहुमूल्य समय जवानी युवापन भारतमाता के चरणों में भेंट कर दिया। इन युवाओं के बलिदानों के बहते रक्त मे अंग्रेजों का साम्राज्य डूब गया। अंग्रेज साम्राज्य के युग में दो शक्तियां काम कर रही थीं, पहली शक्ति केवल धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक व आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में संलग्न था, दूसरी शक्ति केवल राजनैतिक मन्तव्य की पूर्ति में लगी हुई थी। पहली शक्ति का नाम महर्षि दयानन्द था, तो दूसरी शक्ति का नाम महात्मा गांधी था, महात्मा गांधी ने जो मार्ग अपनाया वह बहुत सीमा तक भारतीय जनता को भ्रमित कर रहा क्योंकि इतिहास मुसलमानों की शैतानी करतूतों से भरा होने पर भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा देकर गांधी जी ने हिन्दुओं के घाव पर नमक छिड़कने का काम किया। लेकिन महर्षि दयानन्द ने जाति को सभी निर्बलताओं से विशुद्ध करके सामाजिक मान्यताओं तथा न्याय की नींव पर एकता का नारा लगाने की घोषणा की और कहा कि एकता उत्पन्न की जाती है, खरीदी नहीं जाती गांधी जी राजनैतिक स्वतन्त्रता के मन्तव्य की पूर्ति मे मुसलमानों को उनकी मुंह मांगी सुविधाएं देकर एकता खरीदना चाहते थे, मगर वह ५० (पचास) करोड़ रुपया पाकिस्तान को दिलवाकर भी मुसलमानों की सहृदयता प्राप्त करने मे बहुत बुरी तरह असफल रहे, और साथ मे जीवन मे भी उनको सफलता प्राप्त न हो सकी। महर्षि दयानन्द ने कहा था कि एकता समान शक्ति धारियों के बीच वस्तु है। पहले भारतीय जाति मे जो सामाजिक अभाव है, उसको दूर किया जाए, और जाति मे आपसी भावात्मक एकता को सबल बनाया जाए तब ही मानवीय भ्रातृत्व, समानता, मेल-जोल, न्याय और सनेह के वह महान् विचार जो वर्ण-रंग और भौगोलिक सीमा से ऊपर रह सकते हैं, और तब ही एकता का बढ़ाए जाने पर भाग्योदय की खोज में सफलता मिलनी संभव है। परन्तु दयानन्द की इस बात को किसी ने नहीं सुना और न स्वीकार ही किया। उसका राजनैतिक परिणाम १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत के विभाजन के रूप में प्रकट हुआ। सहस्रों वर्षों का भारत जवाहर लाल की राजनैतिक शक्ति आतुरता और शासन करने की अभीप्सित लिप्सा ने जिन्ना जैसे देश द्रोही शत्रु के साथ भारत के विभाजन के उद्देश्य को स्वीकार कर लिया, जिसका कारण महर्षि और



बाबु, राम, कृष्ण, कबीर, नानक, शिवाजी, प्रताप, पाणिनी और महर्षि दयानन्द की यह पावन जन्म भूमि अपवित्र पाकिस्तानियों को सौंप दी गई।

१९४७ की स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत अपने प्राचीन आदर्श पर स्थित रहकर नए आदर्शों के सम्मिश्रण के साथ भारत का भविष्य उज्ज्वल करेगा ऐसा साधारण जनता का विचार होने लगा था। परन्तु खेद है कि सबके हृदय की आशाओं पर निराशा का तुषारापात हो गया और भारत की अपनी सभ्यता, शिक्षा, भाषा और संस्कृति तथा व्यक्तित्व के सारे उच्च आदर्श धरे के धरे रह गए। भारत एक नवीन मार्ग अपना कर कम्युनिज्म का आंचल थामकर रूस की गोद मे बैठता चला आ रहा है। स्वतन्त्रता के २५ वर्षों में एक आदर्श पुरुष के प्रयत्नों से प्राप्त की गई स्वतन्त्रता की जो दुर्गति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे होती जा रही है उसको देखकर प्रत्येक बुद्धि जीवी और विचारवान् भारतीय किंकर्तव्य विमूढ़ है। भारत की वर्त्तमान दशा को देखकर आर्यसमाज आंखें बन्द किये बैठा रहे यह आज की स्थिति में किसी प्रकार भी सम्भव नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण उत्थान की भ्रष्ट-भ्रष्टता के पश्चात् अपने कर्त्तव्यों की पूर्त्ति के लिए मैदान मे आ खड़ा होना कोई सार्थकता नहीं रखता। इसलिए आर्यसमाज को अपनी स्थापना शताब्दी से पूर्व सम्पूर्ण भारत और विदेश मे वैदिक धर्म के प्रचार के एक विस्तृत कार्यक्रम प्रयोग मे लाने के लिए सब समाजों और आर्य प्रतिनिधि सभा को तीन मास पूर्व भेज दिया है। यह कार्यक्रम स्वयं अपने में निश्चित अस्तित्व रखता है। सार्वदेशिक सभा को विशेष ध्यान इस बात पर देना होगा कि आर्य प्रतिनिधि सभाये इस कार्यक्रम को कहाँ तक प्रयोगात्मक रूप दे रही है और यदि नहीं तो उसका कारण क्या है? इस तथ्य की खोज करने और इनको आदेश देने की प्रत्येक मास व्यवस्था बनाये रखनी होगी। तब ही सन् १९७५ तक आर्य समाजों और हिन्दुओं के जीवन मे एक नए प्राण और एक नया मोड़-उत्पन्न करके सफलता प्राप्त की जा सकती है। तब ही वैदिक धर्म भारतीय सभ्यता, शिक्षा, भाषा और संस्कृति व व्यक्तित्व में एक आन्दोलनात्मक परिवर्तन उत्पन्न किया जाकर भारत भारत बनाए रखने मे आर्य समाज ऐतिहासिक रोल अभिनीत कर सकेगा।

मैं आर्य समाज और आर्य प्रतिनिधि सभाओ से विनम्र शब्दों मे अनुरोध करता हूँ कि शताब्दी से पूर्व गति मे आ जायें और अपने-अपने प्रान्त मे फिर से आर्य समाज के स्वर्णयुग के स्वप्न को साकार कर दें जिसको एक समय कभी संसार ने देखा था और जिसको देखकर अमेरिका के योगी डेविड आएन्ड्रोजेक्शन ने कहा था कि 'भारत मे एक आग जलती दिखाई दे रही है जो भारत से फैलकर हिमालय पर्वत की उच्च शिखा को छूती हुई योरुप व अमेरिका और अफ्रीका के अन्दर की बुराइयों को जलाती हुई अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित कर देगी उस आग का नाम 'स्वामी दयानन्द' प्रवर्त्तक आर्य समाज है।'

इसी प्रकार भारत के वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक ने भी कहा था कि—

'विद्रोही सन्यासी दयानन्द से अंग्रेजी राज्य को चौकन्ना रहना चाहिए। यह साम्राज्य के लिए एक अत्यन्त भयकर तत्त्व है।

इन विचारों के प्रकाश से यह बात स्पष्ट प्रकट हो जाती है कि आर्य समाज और महर्षि दयानन्द को संसार किस पवित्रता की दृष्टि से

देखता आया है और आज आर्य समाज अपने कार्यों से साधारण जनता में जो प्रभाव उत्पन्न कर रहा है, वे किसी रूप में भी हमारे लिए सम्पूर्ण रूप से लज्जा का परिणाम नहीं तो गौरव का द्योतक भी नहीं है। वर्तमान दशा को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक परिवर्तित और परिवर्धित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। उदाहरणत –

(१) समाज के चुनावों की नीति रीति में परिवर्तन लाना।

(२) आध्यात्म प्रचार की ओर अधिक ध्यान देना जिससे अन्ध विश्वास समाप्त हो सके।

(३) शिक्षा संस्थाओं को धार्मिक वर्ग (आर्य समाज) से अलग रखकर इसका एक फेडरेशन बना दिया जाये जो शिक्षा संस्थायें अर्थात् जो गुरुकुल और कालिजों पर निरीक्षण कर सके।

(४) समाज के विस्तृत कार्यक्रम को रचनात्मक रूप देने के लिए सार्वदेशिक सभा को वैधानिक रूप से सगठन को दृढ़ रखने के लिए अधिक से अधिक शक्ति प्रयोग मे लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(५) अनुशासन (डिसिपलन) व व्यवस्था का पालन न करने वालों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए।

(६) साधारणतया प्रत्येक आर्य को वैदिक सिद्धान्तों पर आचरण करने प्रयोगात्मक रूप से कार्य करने व कराने पर बल देना चाहिए।

उपरोक्त पंक्तियों पर आर्य समाजों और सार्वदेशिक सभा को अनिवार्य रूप से ध्यान देना होगा और पारस्परिक भेद-भाव को सदैव के लिये नष्ट करके प्रत्येक आर्य सही अर्थों मे वैदिक धर्म का अनुयायी बनकर दूसरो को आर्य बनाने मे दिन–रात एक कर दे। स्मरण रहे कि आर्यसमाज मिशनरी जब हरकत में आयेगी तब ही देश व जाति में बरकत की रोशनी फैलेगी। इसलिए तो किसी ने कहा है कि "हरकत मे बरकत है।"

संभलना पड़ेगा

[श्री–प्रकाशचन्द्र कविरत्न अजमेर]

उठो आर्यवीरो ! ये सुस्ती है कैसी,
सभलने के दिन हैं, सभलना पड़ेगा।

लगी दौड़ उन्नति की जग-क्षेत्र में है,
तुम्हें सबसे आगे निकलना पड़ेगा।

अखिल लोक उप कारिणी वेदवाणी,
विमल सभ्यता प्रिय सुराज्यादि के हित।

धधकती हुताशन में जलना पड़ेगा,
तुम्हें घोर विष भी निगलना पड़ेगा।

दयानन्द ऋषिराज के सार्व भौमिक,
सदोद्देश्य की हो नहीं पूर्ति जिनसे।

उन्हीं संस्थाओं व दल बन्दियों को,
विकट बन्धनो से निकलना पड़ेगा।

मृतक राष्ट्र को चेतना दी तुम्हीं ने,
नहीं तुच्छ तुम हो महाशक्ति तुम में।

अजी ! क्रान्ति के शान्ति के अग्र दूतो,
तुम्हें अग्रिणी बन के चलना पड़ेगा।

प्रबल युक्ति से शक्ति से है बचाना,
सकल राष्ट्र को आक्रमण कारियों से।

कृतघ्नी कुटिल सर्प घर में घुसे जो,
प्रथम मुख उन्हीं का कुचलना पड़ेगा। **

आर्यसमाज में उत्तरप्रदेश की विभूतियां

[श्री चन्द्रनारायण जी सक्सेना एम. ए. एल एल बी एडवोकेट, बरेली].

यह गौरव मेरठ को ही प्राप्त है कि यहां सन् १८७८ में महर्षि ने अपने करकमलों से आर्य समाज की स्थापना की, यहीं आर्य प्रतिनिधि सभा का जन्म हुआ। सभा की रजत और स्वर्ण जयन्ती भी इसी नगर में धूमधाम से मनाई गईं। यह सत्य है कि महर्षि ने अपने करकमलों से सन् १८७५ में बम्बई काकड़ बाड़ी आर्य समाज की स्थापना की, अतः १९७५ में उक्त आर्य समाज वहाँ अपनी शताब्दी मनावेगा। आर्य समाज की शताब्दी मनाने का अधिकार केवल आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश को ही है। वेद-प्रचार का अंकुर ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क मे मुनि विरजानन्द ने इसी प्रदेश मे वपन किया। आर्य समाज की रूप-रेखा नियम उद्देश्य सब यहीं निर्मित हुये। महर्षि के पूर्वज भी इसी प्रदेश के थे, अत आर्य समाज की स्थापना शताब्दी मनाने का अधिकार यदि किसी सभा को है तो वह उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा को ही है। आर्य समाज स्थापना शताब्दी मनाने का प्रस्ताव हमारी सभा के प्रधान श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री ने आज से ८ वर्ष पूर्व आर्य समाज मानुगा मे व्यक्त किया था। मेरठ में शताब्दी समारोह दो वर्ष पूर्व मनाने का निश्चय सार्वदेशिक सभा के निश्चय का कार्यान्वित करना है। सार्वदेशिक हमारी शिरोमणि सभा है, उसी का निश्चय था कि बम्बई में शताब्दी समारोह मनाने से पूर्व प्रदेशीय सभायें अपने-अपने प्रदेशों में समारोह मनायें। मेरठ सम्मेलन उसी निश्चय का अनुसरण मात्र है।

महर्षि ने सायण महीधर उवट के गन्दे अश्लील और बेतुके वेद भाष्यों से ऊबकर—जिन्होंने वेदों का महत्त्व घटा दिया जिनके कारण पाश्चात्य विद्वानों ने हमें जंगली और असभ्य कहा-एक नवीन दृष्टि-कोण, नवीन विचारधारा, नवीन भावार्थ जनता के समक्ष रखा। यो तो उन्होंने चारों वेदों के मन्त्रों के देवता, छन्द, ऋषि और विषय की सूची तैयार कर दी थी, परन्तु भाष्य केवल वे सम्पूर्ण यजुर्वेद और ऋग्वेद के ७वें मण्डल के ६१ सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का ही कर पाये। उन्हें सम्पूर्ण वेदों का भाष्य न कर सकने का (मृत्यु के कारण) कलक रह गया। यही बात मार्मिक ढंग से उन्होंने अपने विषदाता से कही—"मुझे मरने का दु:ख नहीं है। दु:ख है तो यह है कि मैं वेद भाष्य जैसा जन उपयोगी कार्य पूरा नहीं कर पाया।

आर्य विद्वानों के कलेजे मे आग-सी लग गई। वे ऋषि के भाष्य की पूर्ति करना चाहते थे। मेरठ के प० तुलसीराम स्वामी ने जो वैदिक वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान और कर्मठ नेता थे—सामवेद पर सुन्दर वैदिक भाष्य की रचना की। वेद भाष्य के अतिरिक्त आपने ५० ग्रन्थ लिखे। मनुस्मृति का भी आपने संशोधित संस्करण प्रकाशित किया। गुरुकुल विश्वविद्यालय के प्राण पवर्त्तक थे। सन् १९०९ से १९१३ तक आप आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे।

अथर्ववेद के भाष्य के लिए महर्षि के भक्त

शिष्य प० क्षेमकरण दास त्रिवेदी इस कार्य के लिए अग्रसर हुये और उन्होने इसका भाष्य किया। महर्षि ने आपको संस्कृत पढ़ाई और अपने कर-कमलों से यज्ञोपवीत दिया। वे सौम्य प्रकृति के जीव थे। वेदों में नौका विद्या पुस्तक की रचना तथा गोपथ ब्राह्मण का भी आपने भाष्य किया। वेद भाष्य काल में प्राय रात-रातभर ध्यानाव स्थित रहते और सोचते जब कोई उलझन सुलझ जाती तो प्रफुल्लित हो जाते। ६० वर्ष की अवस्था मे भाष्य करने का साहस उन जैसा ही गम्भीर और दृढ़ निश्चय कर सकता था।

ऋग्वेद का भाष्य महामहोपाध्याय आर्य मुनि जी ने तथा प० शिवशंकर काव्यतीर्थ ने किया, किन्तु पूरा वे भी नहीं कर सके।

वेद के प्रति महर्षि भक्तो में ही नहीं उनके अनुयायियो मे भी आस्था जागृत हुई। सराट-तरीन मुरादाबाद के सेठ शिवचन्द्र और उनके भाई ने वेद भाष्यार्थ एक लाख रुपये देने का संकल्प किया। पन्द्रह हजार रुपये उन्होंने सभा को दिए। सर्वश्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, रामदत्त शुक्ल, प प्रियरत्न व प द्विजेन्द्र नाथ ने यजुर्वेद पर भाष्य किया। आर्य जनता ने उसका समुचित स्वागत नहीं किया। स्वयं दानदाता भी उस से सन्तुष्ट नहीं हुये भाष्य का कार्य बन्द हो गया।

प० श्री जयदेव विद्यालंकार ने चारो वेदो पर भाष्य किया, जिसे अजमेर के आर्य साहित्य मण्डल ने प्रकाशित किया। केवल भाष्य ही नहीं। नई पीढ़ी ने वेदाध्ययन मे भी रुचि ली। सभा के उपप्रधान आचार्य विश्वश्रवा: व्यास एम० ए० तथा उनकी पत्नी श्रीमती देवी एम० ए० न संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से वेदाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। आर्य समाज के आदि युग में शास्त्रार्थ की धूम थी। प्रतिदिन कहीं न कहीं ईसाईयों, मुसलमानो, पौराणिको व जैनियों से अखाड़ा जमता। ग्राम-ग्राम गली-कूचों में शास्त्रार्थ होते थे। आर्य समाज के नेता व विद्वान् ही नहीं चपरासी भी शास्त्रार्थ कर लेता था। महर्षि ने स्वयं बड़े बड़े शास्त्रार्थ किए। उनका ईसाइयों से सबसे बडा शास्त्रार्थ रेवेण्ड डा० टी जे स्काट डाक्टर आव डिविनिटी से बरेली में, मुसलमानों के मौलवी अबुलकासिम से तथा पौराणिकों से १८६९ में वाराणसी में हुआ। इस शास्त्रार्थ मे महर्षि की विद्वत्ता की सारे देश मे धाक जमा दी और पौराणिक पण्डितो की कमर तोड दी। १९६९ में उसी शास्त्रार्थ की स्मृति मे काशी मे शास्त्रार्थ शताब्दी मनाई गई।

शास्त्रार्थ क्षेत्र मे भीष्म पितामह थे—दर्शन केसरी स्वामी दर्शनानन्द जी। आपका जन्म तो पंजाब मे हुआ, परन्तु कर्मक्षेत्र उत्तर प्रदेश था। आपके तर्क तीर के आगे बड़े-बड़े वागीश शस्त्र डाल देते थे। शास्त्रार्थ के अतिरिक्त आपने कई ग्रन्थ लिखे। कई नि शुल्क गुरुकुल स्थापित किए जिनमें गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा गुरुकुल सूर्यकुण्ड बदायूं हैं। १९१३ में आर्य समाज हाथरस मे आपका स्वर्गवास हुआ। "महर्षि की वसीयत पूरी करना"-अन्तिम वसीयत की। पंडित रामचन्द्र देहलवी भी शास्त्रार्थ क्षेत्र के अर्जुन थे। आप भी हापुड़ उत्तर प्रदेश के वासी थे। ईसाई पादरी और मुसलमान मौलवी आपके नाम से थर्राते थे।

गुरुकुल सिकन्दराबाद के संस्थापक पंडित मुरारीलाल भी चतुर्मुखी प्रतिभा के स्वामी थे। ईसाइयों, मुसलमानों, पौराणिकों से डटकर मुकाबिला करते थे।

आगरा मे प० भोजदत्त ने मुसाफिर विद्यालय की स्थापना की। उसमें शास्त्रार्थी उपदेशक व

प्रचारक तैयार किये जाते थे। अमर स्वामी जी (ठा० अमर सिंह) कुं० सुखलाल इसी विद्यालय की विभूति हैं। शास्त्रार्थ महारथ प० बिहारीलाल शास्त्री काव्य तीर्थ भी यहाँ अध्यापन कार्य करते थे। सुखलाल जी की अटक से कटक और श्रीनगर से हैदराबाद तक प्रचार की धूम थी। सैकड़ो लोग आपके भजनों से जवानी से ही आर्य समाज के दीवाने और दयानन्द के मस्ताने बने। प० वंशी धर पाठक और प० शिवशर्मा ने वह रंग चढ़ाया कि आज तक नहीं हटा। प्रचारार्थ जहाँ जाते हैं रंग जमा देते हैं। मृदुल स्वभाव सिद्धान्त दृढ़ता गहरे स्वाध्याय के कारण सर्वत्र सर्वप्रिय हैं। चांदपुर मे ईसाइयो को वह मुह तोड जवाब दिये कि भागते ही बनो। मुसलमानो ने कन्धों पर उठा लिया और जामा मसजिद मे ले जाकर व्याख्यान कराया। पुरी के वर्तमान शंकराचार्य को (जो उस समय चन्द्रशेखर शास्त्री थे।) कचौरा जि० इटावे मे वह रगड़ा दिए कि अब तक याद है। बरेली के युवक आर्य ने उक्त शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिये आमंत्रित किया यह भी लिखा कि आपके पूर्व परिचित प० बिहारी लाल से शास्त्रार्थ करना होगा उत्तर मे आंय बांय शांय लिखकर भेज दिया। श्री माधवाचार्य को तो कई बार चित्त किया है।

आर्य समाज के क्षेत्र मे पुरुषों ही ने नहीं देवियों ने भी उल्लेखनीय कार्य किया है।

बरेली निवासी लाहौर के प्रसिद्ध बैरिस्टर राय रोशनलाल की भतीजी श्रीमती लक्ष्मीदेवी ने आरम्भ मे बरेली को कर्मभूमि बनाया। १९३२ मे आपने गुरुकुल सासनी (हाथरस) को अपने हाथ मे लिया। अपने कार्य कौशल से जंगल मे मंगल कर दिया। सासनी का कन्या गुरुकुल आज प्रथम श्रेणी की संस्था है। आपने अपनी दत्तक पुत्री अक्षयकुमारी का विवाह जाति पांति तोड़कर श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम०ए० एम ओ एल से किया। अक्षय जी आजकल कन्या गुरुकुल हाथरस का सचालन बडी तत्परता दक्षता और कुशलता से कर रही हैं। श्री महेन्द्र प्रताप शास्त्री आगरा के लोकप्रिय सामाजिक कार्यकर्त्ता ठा० माधोसिंह जी के पुत्र है। आप डी० ए० वी० कालेज देहरादून, लखनऊ, वैदिक कालेज बड़ौत के प्रधानाचार्य रहे है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आप कुलपति भी रहे हैं।

आर्य समाज की शिक्षा-संस्थाओ मे अनेक महिलायें कार्य कर रही हैं। परन्तु आर्य जगत् मे प्रचार कार्य मे रत दो ही हैं। श्रीमती सावित्री देवी एम० ए० साहित्याचार्या बरेली। सभा के उपप्रधान आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र एम० ए० शास्त्री व्याकरण के विद्वान् हैं, आपकी पत्नी श्रीमती निर्मलादेवी एम० ए० आचार्या भी विदुषी हैं।

डा० प्रज्ञादेवी पी० एच० डी० डा० पुष्पा पी० एच० डी० दोनों ने व्याकरण जैसे गम्भीर और कठिन विषय मे पी० एच० डी० किया है। वाराणसी मे वेदाध्यापन का कार्य कर रही हैं।

विद्वान्

उत्तर प्रदेश ने आर्य-जगत् को अनेक विद्वान् दिए। डा० मंगलदेव शास्त्री डी फिल, डाक्टर मुंशीराम एम० ए० पी० एच० डी०, डी-लिट्, डा० धर्मेन्द्र नाथ तर्क शिरोमणि एम० ए० डी-लिट्, प० देवदत्त शर्मोपाध्याय, आचार्य हरिदत्त शर्मा शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी०, प० गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए०, रायबहादुर प० गंगाप्रसाद एम० ए० चीफ जज, प० रामदत्त शुक्ल आदि।

संन्यासी

यों तो संन्यासी की परम्परा मुनिवर विरजानन्द से आरम्भ होती है। महर्षि स्वयं उसी परम्परा में आते हैं। इन ऋषि कोटि के संन्यासियों के अतिरिक्त सर्वप्रथम वीतराग निःस्पृह स्वामी सर्वदानन्द जी का नाम आता है।

स्वामी जी मधुर भाषी, सरल गम्भीर विचारक और भाषण कर्ता थे। आपने हरदुआगंज जिला अलीगढ़ में काली नदी के तट पर सर्वदानन्द साधु आश्रम की स्थापना की। स्वामी ध्रुवानन्द, पं० शंकरदत्त जी इसी आश्रम की देन हैं। संन्यासियों में स्वामी अभेदानन्द सरस्वती, श्री ब्रह्मानन्द जी दण्डी जिन्होने एटा मे आर्य गुरुकुल की स्थापना की है और अभूत पूर्व विशाल यज्ञशाला निर्माण करा रहे हैं। स्वामी परमानन्द जिन्होंने आगरा बुन्देलखण्ड आदि में अथक प्रचार किया, हमारे ही प्रदेश के रत्न थे।

सेठ, उपाध्याय, शुक्ल और तिवारी युग—

सभा के निर्माताओं में महात्मा नारायण स्वामी जी का प्रमुख हाथ था। परन्तु सेठ-उपाध्याय शुक्ल-तिवारी युग भी गौरवपूर्ण रहा। सेठ मदन मोहन, गंगा प्रसाद उपाध्याय, गंगा प्रसाद जज, रामदत्त शुक्ल व रासबिहारी तिवारी सभा के स्तम्भ थे। इन्हीं के समय में मलकानों की शुद्धियाँ हुई, नायकजाति के सुधार का कार्य हुआ। आर्यनगर सेटिलमेंट की स्थापना हुई, मथुरा में दयानन्द जन्म शताब्दी मनाई गई, सभा के लिये स्थायी कार्यालय ५ मीरा बाई मार्ग लखनऊ पर खरीदा गया, जिसका नाम 'नारायण स्वामी भवन' रखा गया।

राय साहब मदन मोहन सेठ बुलन्दशहर के निवासी थे। एम० ए० एल० एल० बी० करने के पश्चात् आपने विकालत की, मुंसिफ हुए, और जिला न्यायाधीश के पद से अवकाश ग्रहण किया। कई बार सभा के प्रधान रहे। आर्यसमाज धार्मिक संस्था है, राजनैतिक नहीं। इस पर आपने लार्ड मार्ले सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इण्डिया के नाम महत्त्वपूर्ण पत्र लिखे। इस प्रकार आर्य समाज को बृटिश सरकार के कोप से रक्षा की।

पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए० कुशल अध्यापक ही नहीं—विचारक सुधारक और लेखक थे। आपने जितने ग्रन्थ लिखे, उतने शायद ही किसी अन्य ग्रन्थकार ने लिखे हों। अंग्रेजी हिन्दी ही में नहीं उर्दू में भी आपने अनेक ग्रन्थ लिखे। ऋषि के प्रति आपका अनुराग प्रशंसनीय है, आपने सत्यार्थप्रकाश का तमिल मलयालम में अनुवाद कराया, चीनी भाषामें भी सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद कराया। आपकी इच्छा थी कि संसार की सब भाषाओं में सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद हो।

आप लेखकों में अग्रणी, उपदेशकों के उपदेशक, विचारकों को प्रेरक सज्जन थे। आर्य प्रतिनिधि सभा के आप प्रधान रहे, सार्वदेशिक सभा के भी आप मन्त्री रहे। उत्तर प्रदेश सभा के स्थायी कार्यालय के लिए जो भवन क्रय किया गया, उसका मूल्य आपने प्रान्त भर में घूम-घूमकर धन एकत्रित करके सभा को ऋण मुक्त कर दिया।

श्री रास बिहारी तिवारी नख शिख से आर्य समाजी थे। आर्य समाज गणेशगंज के आप सर्वेसर्वा थे। आप नगरपालिका के सदस्य और कौंसिल के भी सदस्य भी रहे। लखनऊ का डी-ए-वी कालेज आपके परिश्रम का फल है। आर्य नगर सेटिलमेंट के भी आप अधिष्ठाता रहे। सभा के दृढ़ स्तम्भ रहे। कट्टर आर्य समाजी थे। ईसाई मुसलमान उनके नाम से थर्राते थे।

श्री रामदत्त शुक्ल आजीवन ब्रह्मचारी रहे। आप विकालत करते थे, और सभा के सच्चे समर्थक। वेदज्ञाता और व्याख्याता थे। कई वर्ष सभा के मन्त्री और कई बार उपमन्त्री रहे।



महात्मा नारायणस्वामी

आप त्यागी तपस्वी चरित्रवान् व्यक्ति थे। दस वर्ष गुरुकुल वृन्दावन के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता रहे। आप सार्वदेशिक सभा के भी प्रधान रहे। रामगढ़ मे अपना आश्रम बनाया। विरक्त वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के भी आप संस्थापक थे। द्वितीय आर्य महा सम्मेलन बरेली के आप सभापति रहे। हैदराबाद सत्याग्रह के आप प्रथम डिक्टेटर थे। सत्यार्थ - प्रकाश पर जब प्रतिबन्ध- लगा तो आपने कराची मे जाकर प्रतिबन्ध तोडा।

स्वामी ध्रुवानन्द

आप पूज्यपाद स्वामी सर्वदानन्द के शिष्य थे। सारा जीवन आर्य समाज के प्रचार में लगाया। थाईलेंड और मोरीशस मे भी वैदिक धर्म का प्रचार किया। शाहपुरा के महाराज कुमार सुदर्शन देव के आप गुरु थे। उत्तर प्रदेशीय सभा व सार्वदेशिक के भी आप प्रधान रहे।

शिक्षा

इस क्षेत्र मे डा० कालका प्रसाद डी लिट आगरा विश्वविद्यालय, डा० बाबूराम डी लिट सागर विश्वविद्यालय, डा० धीरेन्द्र वर्मा डी लिट जबलपुर विश्वविद्यालय के उपकुल पति रहे। डा० नगेन्द्र डा० विजयेन्द्र शिक्षा - जगत् के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं।

उत्तर प्रदेश विधान सभा के प्रधान श्री मदन मोहन वर्मा भी सभा के प्रधान रहे। आप मृदुभाषी मिलनसार वेद ऋषिभक्त थे। आप आर्य समाज के कार्य के लिये सदा तत्पर रहते थे।

श्री प० प्रकाशवीर शास्त्री

आप सभा के कई बार प्रधान रहे। कई बार संसद् सदस्य रहे। आपने हिन्दी सत्याग्रह आन्दोलन में विशेष कार्य किया।

नवीन सभा भवन के निर्माण के लिए आप प्रचुर धनराशि एकत्रित करके लाये हैं। मेरठ शताब्दी सम्मेलन के आप प्राण हैं। आर्यजगत् के गौरवशाली ओजस्वी और प्रभावशाली वक्ता हैं।

श्री प० प्रेमचन्द्र शर्मा

आप ऋषि के अनन्य भक्त और आर्यसमाज के कर्मठ नेता हैं। कई बार सभा के मन्त्री रहे हैं, अब भी राज्य स्वास्थ्य मन्त्री होतेहुए भी सभा का काम प्रतिदिन बडी तत्परता से करते हैं। नवीन सभा-भवन निर्माण के लिए नगर-नगर जाकर आपने धन-संग्रह किया है। आप आर्य समाज के अजात शत्रु हैं।

सार्वदेशिक सभा

सन् १९०८ में आगरा नगर में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई थी। उत्तरप्रदेश की सभा का इसमे सबसे बडा योगदान था। सार्वदेशिक के सर्वप्रथम प्रधान भी उत्तरप्रदेश के ही थे।

उत्तरप्रदेश के महात्मा नारायण स्वामी, राय साहब मदनमोहन सेठ रि० जज, रायबहादुर प० गंगाप्रसाद रि०चीफ जज बा०पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट आगरा, स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती, स्वामी अभेदानन्द सरस्वती वे महानुभाव थे जिन्होने सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद को सुशोभित किया।

ठा० हुकुमसिंह, प० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, बा० कालीचरण आर्य तथा वर्तमान मन्त्री श्री ओम्प्रकाशजी त्यागी संसद्-सदस्य भी हमारे प्रदेश की ही देन हैं।

आर्यमित्र

'आर्यमित्र' आरम्भ में उर्दू लिपि में मुर्हरि नाम से मु० नारायणप्रसाद (महात्मा नाराय स्वामी ने आरम्भ किया, एक वर्ष पश्चात् हिन्दी लिपि मे प्रकाशित होना आरम्भ हुआ

सर्वश्री रुद्रदत्त सम्पादकाचार्य, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री धर्मेन्द्रनाथ तर्क शिरोमणि, पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न, श्री प्रो० बाबूराम जी, प० धर्मपाल विद्यालंकार और वर्तमान सम्पादक स्नातक उमेशचन्द्र ने आर्यमित्र को आगे बढ़ाया और आर्यमित्र के कारण स्वयं आगे बढ़े।

कवि गायक नाटककार

आर्य समाज को गर्व है कि उसमें श्री नाथूराम शकर शर्मा 'शकर' जैसे महाकवि का जन्म हुआ। आप हरदुआगंज, अलीगढ़ के निवासी, ऋषि के अनन्य भक्त ब्रजभाषा और खड़ी बोली के उच्चकोटि के कवि थे। मिश्र बन्धुओं ने भी आपको हिन्दी के महान् कवियों में गणना की है। प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के आप श्रद्धास्पद थे।

पद्मश्री डा० हरिशकर शर्मा कविरत्न डी० लिट् आप योग्य पिता शकर जी के योग्य पुत्र, कवि और साहित्यकार थे। भारत सरकार ने आपको "पद्मश्री" की उपाधि से विभूषित किया था। आगरा विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर आव लिट्रेचर की आदरी उपाधि से सम्मानित किया। आप 'आर्यमित्र' के प्राण थे। सभा के प्रधान भी रहे।

यों तो आर्य समाज सदा से नाटकों का विरोधी रहा है। परन्तु नाटक भी वैदिक कला है, इसके द्वारा भी प्रचार कार्य हो सकता है। इसका प्रयोग बरेली के श्री चन्द्रनारायण एडवोकेट ने किया। आपने महर्षि के जीवन पर 'गुरुधाम' और 'कर्मदास' नाटक लिखे। उनका प्रदर्शन भी सफल हुआ।

राजस्थान के राज्यपाल का सन्देश

राज भवन, जयपुर
२७ अप्रैल १९७३

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपने प्रान्त में तीन वर्ष तक आर्य समाज शताब्दी समारोह मनाने का निर्णय लिया है। और पहला समारोह आगामी २५ से २८ मई तक मेरठ में आयोजित हो रहा है।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने सभी मतों तथा सम्प्रदायों में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा और बुद्धि, तर्क तथा व्यवहार के आधार पर जन-साधारण को धर्म के मूल तत्वों को समझाया। धार्मिक ग्रन्थों की सही व्याख्या कर सामाजिक कुरीतियों तथा रूढ़ियों के अंधकार में भटकती जनता को एक नया आलोक प्रदान किया। देश के सांस्कृतिक तथा सामाजिक उत्थान के इतिहास में स्वामी जी का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा।

भारत के इस महान् सपूत को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए समारोह की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

—जोगेन्द्र सिंह
राज्यपाल, राजस्थान

निर्वाचन

आर्य समाज कोडियागज, (अलीगढ़)

प्रधान—श्री शिवनन्दन गुप्त
उपप्रधान—श्री रामप्रकाश जी
" शकरलाल जी
मन्त्री—श्री रामब्रह्मचारी जी
उपमन्त्री—श्री रघुवरदयाल जी
कोषाध्यक्ष—श्री ओ३मप्रकाश गर्ग



आर्य समाज

[श्री स्व० डा० हरिशंकर शर्मा डी-लिट्]

हे आर्यसमाज ज्योति का दाता तू है,
सारी उन्नति का ज्ञान-प्रदाता तू है।
तूने ही फिर से सोता देश जगाया,
जन जनता को कल्याण-मार्ग दिखलाया।

ऋषि दयानन्द से प्राण-प्रतिष्ठा पाई,
तुझ को सत्यार्थ प्रकाश मिला सुखदाई।
तूने ही स्वावलम्ब की विधि बतलाई,
सब भ्रान्त भावनाओं से मुक्ति दिलाई।

विधवा, अनाथ, अस्पृश्यों का उद्धारक,
सद्धर्म्म-प्रवर्त्तक समता-स्रोत प्रसारक।
महिलाओं को सम्मान दिलाने वाला,
'मानवता' का पीयूष पिलाने वाला।

सद्शिक्षा का आदर्श महत्त्व दिखाया,
वैदिक संस्कृति का सौरभ सुखद उड़ाया।
हो गया प्रभावित सारा देश हमारा,
भारत के बाहर भी विवेक विस्तारा।

गोकुल पर करुणामृत बरसाने वाला,
पाखण्ड-वाद पर वज्र गिराने वाला।
मादकता का दुर्दर्प दबाने वाला,
आमिष-भक्षण को पाप बताने वाला।

तुझको ना विदेशी शासन कभी सुहाया,
सर्वदा स्वदेशी सत्ता का गुण गाया।
सबसे पहले 'स्वराज्य सन्देश' सुनाया,
निज भाषा, भूषा, वेश, देश, अपनाया।

'बापू' के तप से देश स्वतन्त्र बनाया,
फिर से स्वराज्य का सुन्दर सूर्य उगाया।



पं० हरिशंकर शर्मा

वह पराधीनता पाश कट गया सारा,
अब तो अपने पर है अधिकार हमारा।

है आज हमारा राज्य, हमारा बल है,
यह बल नित बढ़ता रहे, सुदृढ़ सबल है।
आत्मा, मन और शरीर बलिष्ठ बना दे,
'मानवता' का सच्चा आदर्श दिखा दे।

वैदिकता की जगती पर ज्योति जगा दे,
भारत भू पर पहला-सा ही युग ला दे।
सब बनें धीर, धर्म्मज्ञ, पाप का क्षय हो,
सर्वत्र अहिंसा, सत्य धर्म की जय हो।

आर्य–जगत्

हों आर्य जगत् मे वेद-विधान !

बनें आर्य सब एक जाति हो, भेद भ्रान्ति हों दूर !
सत्य व्यवहार, वेद–पथ गामी, कर्म-कनिष्ट तज क्रूर !!
रहें समादर - मान - प्रतिष्ठा, एक - एक के साथ !
सुख सम्पन्न हों घर–घर मानव, कला सभी हों हाथ !!

वेद-का हो कल अविरल गान !
हों आर्य–जगत में वेद-विधान ॥ १ ॥

दस्यु, दम्भी, गुरुडम-पाखण्ड, तस्कर हठे लबार !
धर्म-धारणा, मर्यादा सब, वैदिक बढ़ें विचार !!
नीति-रीति सद्‌कर्म वेदयुत, घर-घर हवन सुगन्ध !
वायु-गगन-अन्तरिक्ष सुखद हों, दुषित न हों दुर्गन्ध !!

बर्षे रस - रस सुखद वितान !
हों आर्य–जगत् मे वेद - विधान ॥ २ ॥

अन्न-भण्डार भरे रहें घर-घर, भोगें सुख के भोग !
रहें निरोग-अयोग न हो नर, सब के साथ सुयोग !!
आर्य जगत् के रखवारे हों, भारत माँ के लाल !
वीर-धीर रण-बंका योधा, हों बल तेज विशाल !!

देश का रखने हित अभिमान !
हों आर्य जगत् में वेद-विधान ॥ ३ ॥

रहें परस्पर प्रेम अखण्डित, द्वेष भावना त्याग !
यज्ञ कर्म, करें मिल सब ही, भर-भर उर अनुराग !!
वेद-मन्त्र घर - घर में गुञ्जे, वेद पढ़ें नर - नार !
जाति - पाँति 'घनसार' न व्यापे, मानव एक निहार !!

ऋषि का समझ सत्य प्रमाण !
हों आर्य जगत में वेद - विधान ॥ ४ ॥

–कवि कस्तूरचन्द 'घनसार' कवि कुटीर पीपाड़ शहर

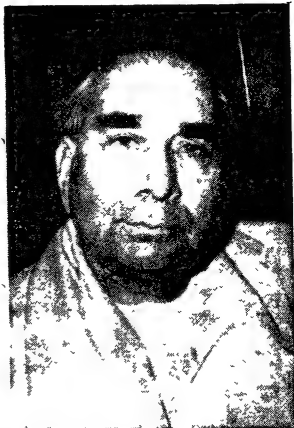
भारत गौरव-ऋषि भक्त
आर्य-रत्न



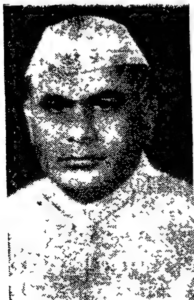
महामहिम श्री वेङ्कट वाराह गिरि भारत राष्ट्रपति



लोकप्रिय रक्षामन्त्री
श्री जगजीवनराम जी



श्री कमलापति जी त्रिपाठी मुख्य मन्त्री उत्तरप्रदेश



श्री प्रो० शेरसिंह जी
कृषि राज्यमन्त्री भारत सरकार



श्री चौ० चरणसिंह जी भूतपूर्व मुख्यमन्त्री

हमारे स्वर्गीय वेद भाष्यकार



महामहोपाध्याय स्व० आर्यमुनि
ऋ० ७ म० ६१ सूक्त २ मन्त्र से आगे
ऋग्वेद के भाष्यकार





प० शिवशंकर काव्यतीर्थ
ऋ० ७ म० ६१ सूक्त २ मन्त्र से आगे
ऋग्वेद के भाष्यकार



श्री क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी अथर्ववेद के भाष्यकार



श्री स्वा. सर्वदानन्दजी

* * * * *



श्री पं० तुलसीराम जी मेरठ सामवेद के भाष्यकार

शास्त्रार्थ महारथी



स्व० मुरारीलाल शर्मा, गुरुकुल सिकन्दराबाद

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्



स्व० प० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

बम्बई मे सरदार भगतसिंह की
माता का स्वागत

केन्द्रीय आर्य परिषद बम्बई की ओर से २६ अप्रैल को प्रात पुष्पकुञ्ज में सरदार भगतसिंह की माता का भव्य स्वागत किया गया।

शहीद भगतसिंह की माता विद्यावती ने कहा कि आर्य समाज से भगतसिंह के परिवार का गहरा सम्बन्ध रहा है पजाब की माता जी ने कहा—हमारी आजादी का स्वप्न अभी पूर्ण साकार नहीं हुआ जब तक कि गरीब जनता की जरूरतें पूरी न हो सकेंगी।

श्री भगतसिंह की बहन श्रीमती अमर कौर ने कहा मेरी माता जी को देश के लोगो का अपार प्यार मिल रहा है। उसी के आधार पर वे जीवित हैं। वे भारत के नवयुवको को भगत जैसा ही अपना बेटा समझती हैं।

श्रीमती सुमित्रा अमीन ने कहा कि देश की माताए पजाब माता की इसलिए कृतज्ञ हैं कि उनके सपूत की बलि के कारण भारत की माताओ को स्वतन्त्र देश मे बच्चों को जन्म देने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

रेल सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री नरदेव स्नातक ने शहीद भगतसिंह की जीवनी पर प्रकाश डाला। —आचार्य विजयकुमार त्यागी
सयोजक

आर्यसमाज के दो महान् तपस्वी



गुरुवर विरजानन्द जी दण्डी



महात्मा नारायणस्वामी जी

ओ३म्

आर्यमित्र का (ऋष्यंक)

विषय-सूची

* ओ३म् *

साप्ताहिक आर्यमित्र ऋष्यंक

सम्पादक—उमेशचन्द्र स्नातक, रामचरण विद्यार्थी

वर्ष] लखनऊ रविवार कार्तिक ६ शक १८९५, कार्तिक शु० २ स० २०३०, [अंक
७५] दि०२८ अक्तूबर ७३ ई०दयानन्दाब्द १४९,सृ०स० १९७२९४९०७४ [४०–४१

सत्यार्थ प्रकाश में विनियुक्त—

वेद-वाणी

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यःस सुपर्णो गुरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

—ऋ० म० १ सू० १६४ । म० ४६

इन्द्रं मित्रं वरुण—परमैश्वर्य मित्र श्रेष्ठ
अग्नि आहुः—स्वप्रकाश प्रभु को कहते हैं
अथः दिव्यः स —इसके बाद प्रकाशमय वह
सुपर्णं गरुत्मान्—उत्तम कर्म व महान् स्वरूप

एक सत् विप्राः—एक सत्ता जिसे बुद्धिमान्
बहुधा वदन्ति—अनेक नामों से बखानते हैं ।
अग्नि यम—ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ सर्व नियन्ता
मातरिश्वान आहुः—वायु के समान बलवान् कहते हैं ।

भावार्थ—वेद माता ने इस मन्त्र मे अत्यन्त स्पष्ट घोषणा की है कि वह ईश्वर एक है, बुद्धिमान् उसे अनेक नामों से पुकारते हैं । इसका क्या कारण है ? एक सत्तावान् ईश्वर के सहस्रों गुण, कर्म और स्वभाव हैं । उसके जितने ये गुण कर्म स्वभाव होंगे, उतने ही नामों द्वारा उसको प्रकट किया जायगा । सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में विशद रूप से समझाया गया है कि उस एक ईश्वर को ही प्रसंग के अनुसार सूर्य, चन्द्र, कुबेर, पृथिवी, आकाश जल, अग्नि, मंगल, शुक्र, राहु आदि क्यों कहा गया है ।

सारांश—वेद एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करता है ।

सम्पादकीय महर्षि का संदेश

महर्षि दयानन्द की पवित्र स्मृति में सारे आर्यजगत् में दयानन्द-सप्ताह मनाया जा रहा है। दीपमालिका के दिवस को महर्षि का पार्थिव जीवन त्याग एक अभूतपूर्व घटना कहना कोई अन्ध-श्रद्धा या पाखण्ड की भावना नहीं है हमारी दृष्टि मे इस घटना का महत्व इसलिये है कि उस दिन महर्षि की आस्तिकता ने एक नास्तिक को आस्तिक बना दिया। मानों अज्ञान अमावस्या के अन्धकार को महर्षि के जीवन-दीप ने ज्योतित कर दिया। इस ज्योति का प्रभाव आज तक हमारे हृदयों को आलोकित कर रहा है। न केवल महर्षि के अनुयायी ही उससे प्रभावित हैं, अपितु समस्त बुद्धि वादी वर्ग महर्षि की मान्यताओं को महत्व देरहा है।

आज विश्व-विज्ञान आध्यात्मिकता के संकट में से गुजर रहा है। विज्ञान के चमत्कारों ने मानव मस्तिष्क को हिंसा, घृणा और अहंकार से ओत-प्रोत कर दिया है, और शान्ति का नाम लेने वाले राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्रों के बल पर मानव जाति पर अपना प्रभुत्व कायम रखना चाहते हैं, परन्तु विश्व का मनीषी वर्ग अनुभव करता है कि विज्ञान का अप्रतिबन्धित स्वरूप भस्मासुर के रूप में बढ़ रहा है, अणु, परमाणु शक्ति का उपयोग दानवों की भांति विध्वंस के लिये किया जा रहा है। इस विध्वंस और विनाश से मानवता की रक्षा के लिये विज्ञान पर आध्यात्मिकता का नियन्त्रण आवश्यक है।

वैदिक दर्शन उपर्युक्त विचार का समर्थक है। धर्म की परिभाषा में कहा गया है—

'यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।।

धर्म वही है, जिससे इस लोक में अभ्युदय (उन्नति) और पारलौकिकसफलता प्राप्त हो सके।

धर्म के इस समन्वय वादी स्वरूप का समर्थन ही महर्षि की देन है। उनके युग में धर्म के नाम पर पाखण्ड का वही और उससे भी अधिक घृणित स्वरूप व्याप्त था, जैसा लूथर के युग में योरोप मे। योरोप मे पोप धन लेकर स्वर्ग लोक में स्थान निर्धारित कर देते थे, भारत में भी दान दक्षिणा से वैतरणी पार होने की मिथ्या विडम्बना प्रचलित थी।

जीवनकाल में मिथ्या, अधर्म, अत्याचार और पाखण्ड का व्यवहार करना और मरने के नाम पर दान पुण्य का ढोंग ऐसी बातें थीं, जिनकी महर्षि ने डट कर पोल खोली और ससार के सम्मुख वैदिक त्रित्ववाद की पुनः स्थापना की।

शंकराचार्य के नाम पर अद्वैत की जिस दार्शनिकता का प्रचार किया जाता है, महर्षि ने इसके खण्डन और त्रित्ववाद के मण्डन द्वारा वैदिक दर्शन के वास्तविक स्वरूप को समझाने का सफल प्रयत्न किया।

वैदिक त्रित्ववाद के प्रचार प्रसार स्वरूप भारत में कर्मवाद को प्रेरणा मिली, और महर्षि के अनुयायी भारत की पराधीनता को भाग्य की विडम्बना न मानते हुए कर्मफल के रूप में स्वीकार करते हुए स्वाधीनता के संघर्ष में जुट पड़े। भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास महर्षि भक्तों के समर्पित जीवन बलिदानों से भरा पड़ा है। न केवल भारत की आजादी में ही महर्षि के अनुयायी सलग्न रहे, अपितु भारत से बाहर भी भारत वशियों की रक्षा और उन्नति में भी आर्यवीरों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, और आगे बढ़कर वैदिक मिशनरियों के रूप में सर्वश्री

मेहता जैमिनि, गंगा प्रसाद उपाध्याय, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द, स्वामी ध्रुवानन्द, स्वामी अभेदानन्द, आनन्द भिक्षु महाराज आदि अनेकों विद्वानों ने भारत से बाहर वैदिक नाद बजाया और आज भी सर्वश्री महात्मा आनन्द स्वामी, स्वामी अखिलानन्द, स्वामी सत्य प्रकाश अपनी मिशनरी यात्राओं में विश्व मे वेद का सन्देश सुना रहे हैं। मारीशस में आर्यजनों का सम्मेलन महर्षि के सन्देश को अफ्रीका और उसके समीपस्थ क्षेत्रोंमे फैलाने का नवीनतम प्रयास है।

इन सब प्रयासों के साथ - साथ महर्षि का स्मरण करते हुए आज आर्य जगत् को अपना ऐतिहासिक सिंहावलोकन करना चाहिये। समय हमसे हमारी एकता का सबूत मांग रहा है ? क्या हम हृदय पर हाथ रखकर सोचेंगे कि हमारे संगठन की शक्ति क्यों क्षीण होरही है। क्या इसके लिये हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ ईर्ष्या द्वेष, दम्भ उत्तरदायी नहीं है, क्या हम अपने व्यक्तित्व को इनसे पृथक् करने का संकल्प लेंगे।

१८७५ में आर्य समाज की स्थापना शताब्दी दूर नहीं है,बड़ा लम्बा रास्ता हम तय कर चुके हैं पर किनारे पर पहुचने से पहले ही हमारी किश्ती लड़खड़ा रही है। हमें एकता के नाम पर सब कुछ समर्पित कर संसार के सामने आदर्श उपस्थित करना होगा। महर्षि के निर्वाण दिवस पर हम सबके लिये यही सन्देश है।

इस प्रश्न के उत्तर में ही 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का भविष्य निहित है, और आर्य समाज का भावी स्वरूप भी। —स्नातक

कानपुर में आर्य समाज स्थापना शताब्दी

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की ओर से मेरठ के बाद अब आगामी १७ से २० फरवरी ७४ तक कानपुर में आर्य समाज स्थापना-शताब्दी समारोह मनाना निश्चित हुआ है।

मेरठ मे शताब्दी समारोह की सफलता आर्य समाज के इतिहास मे स्थायी महत्त्व रखती है। अब कानपुर में मेरठ मे उठाया हुआ पग और भी आगे बढ़ाना है, दृढ़ता के साथ स्थापित करना है।

कानपुर के स्थान का चुनाव सभा ने इस दृष्टि से किया है कि यह नगर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में है, और प्रदेश का औद्योगिक केन्द्र है। आर्य समाज के शिक्षा कार्य का कानपुर केन्द्र रहा है। डी० ए० वी० शिक्षा संस्थाओं ने इस क्षेत्र में जो व्यापक शैक्षिक योग-दान दिया है, उसके महत्त्व को सभी स्वीकार करते हैं। डी० ए० वी० कालेज कानपुर के प्रि० दीवानचन्द्र आगरा विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति रहे, श्री कालका प्रसाद जी ने भी इस पद को सुशोभित किया। श्री ब्रजेन्द्र स्वरूप जी, वीरेन्द्र स्वरूप जी देवेन्द्र स्वरूप जी जैसे व्यक्तियों का कानपुर शैक्षिक क्षेत्र मे योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा। कानपुर में शताब्दी समारोह के संयोजक पद पर सभा ने श्री प० विद्याधर जी जैसे कर्मठ और प्रभावशाली आर्य नेता को नियुक्त किया है। संयोजक का कार्य भार सम्हालते ही आपने अपने साथी श्री विजय पाल शास्त्री जी के सहयोग से स्वागत समिति का गठन आरम्भ कर दिया है। शीघ्र ही स्वागत-समिति कार्य आरम्भ कर रही है। पोस्टर छाप कर भेजे जा रहे हैं, धन-संग्रह का कार्य भी गति प्राप्त कर रहा है।

सभा प्रधान श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री शताब्दी समारोह की सफलता के लिये तूफानी दौरा आरम्भ करने वाले हैं। सभा मन्त्री श्री प० प्रेमचन्द्र जी ने शताब्दी कार्यक्रम के लिये योजना

दयानन्दः स्वामी जयति भुवने भास्कररुचिः

[डा० कपिलदेव जी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, गवर्नमेण्ट कालेज, ज्ञानपुर (वाराणसी]

(१)

गुणानामाधारो विदितश्रुतिशास्त्रार्थनिचय,
समुद्धर्ता भर्ता पतितजनचिरतार्तिहरण ।
अयम्नात्मोत्सर्गं परहितरत स्वार्थविरतो,
दयानन्द स्वामी जयति भुवने भास्कररुचि ।

(२)

'दयाया आनन्दो' विलसति गुणानां समुदय,
'ऋषि' वेदार्थानां गहनमननावाप्तशुभधी ।
श्रुतीनां राद्धान्तान् विशदयति वेदार्थ विवृतौ,
सरस्वत्या स्रोतो जयति यतिवर्यो गुणनिधि ।

(३)

अनाथानांनाथ. शरणमबलानांगुणिगुरु,
विनेता भीताना सुपथमपनेता च सुधियाम् ।
शरण्यो दीनानां गुणगणवरेण्य श्रुतिमति,
दयानन्दो योगी जयति भुवने भास्कररुचि. ।

(४)

प्रणेता भाष्याणां श्रुतिगदित-तत्त्वार्थ-निलयो,
यति सत्यार्थं य. प्रकटयति 'सत्यार्थ'-सुकृतौ ।
श्रुतीनां तत्त्वार्थं विशदयति 'ऋग्भाष्य'–विवृतौ,
दयानन्दो वाग्मी जयति भुवने भास्कररुचि. ।

(५)

ऋषीणां प्रत्नां य· सरणिमनुसृत्याशु विदधे,
श्रुतीनां शिक्षार्थं गुरुकुलततिं ज्ञानरुचिराम् ।
विरुद्ध वेदानां तदिदमिदं हेय सुपथगं–
दयानन्दो दान्तो जयति भुवने भास्कररुचि ।

(६)

समुद्धर्ता भर्ता सकलगुणराशिर्बुधसुहृद्,
नदीष्णो वेदानां जनहित कृत-स्वार्थ-विरह ।
अविद्याया ध्वान्त ध्वगमयविहाध्यात्मसुदृशा,
मुनीन्द्रो व्यारेजे सकल सुख सौभाग्य-सरणि. ।

(७)

समाज स्वार्याणां प्रतिनगरमस्थापयदिह,
समुन्मूल्याऽऽमूल श्रुतिविपथपाखण्ड निचयम् ।
सदादर्शं प्राच्य भुवि विनिदधे शान्ति-सुखद,
दयानन्दो धीरो जयति भुवने भास्कररुचिः ।

(८)

गवां रक्षा कार्या पदमनुविधेय च सुधिया,
गुणा ग्राह्या हेया. सततमशिवा दोषनिकरा ।
सदाऽऽर्याणां भाषा प्रचरतु भवे भव्यगुणधा,
य एव व्याचख्यौ जयति स यतिर्भास्करविभ ।

(९)

जने ह्यस्पृश्यत्व नहि श्रुतिमत नापि हितकृद्,
विजातेर्जातिश्च बहुविधविभागो नहि हित· ।
विदेशीय राज्य नहि मतिमता मान गुण-द,
मनोज्ञ स्वातन्त्र्य य निज बलि कृतेनापि सुखदम् ।

(१०)

सुशिक्षा नारीणा विपणमनशुद्धि प्रचलयन्,
पदाक्रान्त-त्राण विदधदनिश जीवन-पणै· ।
'सम लोक चार्यं कुरुत' इति लोकानुपदिशन्,
दिव यातो जीवत्यमर इव वन्द्यो यतिवर· ।

प्रसारित कर कार्य आरम्भ कर दिया है। हमे अपने नेताओं को इस महान् कार्य मे पूण सहयोग देना चाहिये। आशा है, कानपुर का शताब्दी समारोह आर्य समाज की महत्ता को स्थापित करने में स्मरणीय महत्त्व प्राप्त करेगा। –स्नातक

अवकाश-सूचना

दीपावली के अवकाश के कारण 'आर्यमित्र' का ४ नवम्बर का अक बन्द रहेगा। अब अगला अक ११ नवम्बर को प्रकाशित हाेगा।

–प्रेमचन्द्र शर्मा मन्त्री सभा



दीपावली का पर्व क्या है ?

[श्री अमरस्वामी परिव्राजक, गाजियाबाद]

इस पर्व के विषय मे यह एक भारी भ्रम फैला कि श्रीराम जी लका विजय के पश्चात जब अयोध्या मे वापिस आये तब अयोध्या मे लाखों करोडो दीपक जलाकर प्रसन्नता प्रकट की गई। तभी से दीप माला या दीपावली का पर्व चला आ रहा है।

आश्विन मास शुक्ल पक्ष की दशमी पर जिसका नाम 'विजयादशमी है, राम लीला नाटक किये जाते हैं और दशमी को उस नाटक की समाप्ति रावण मरण का दृश्य दिखाकर की जाती है। इसी से करोडों अनपढ़ों मे यह भ्रम बद्ध-मूल हो गया कि–इस दशमी को रावण मारा गया तो श्रीराम जी इसके पीछे अयोध्या को आये होंगे चलते चलते इतने दिन मार्ग मे लग ही गये होंगे कार्तिक की अमावस्या तक अयोध्या पहुचे होंगे, तभी दीपक जलाकर उनका स्वागत किया गया होगा।

वास्तविकता को तो इतिहास पढ़ने वाले जानते हैं, अन्य करोडो मनुष्य हैं जो सर्वे चक्षुषा पश्यन्ति न सर्वे मनसा विदु' न विजयदशमी का रावण की पराजय रावण वध या राम की विजय से कुछ भी सम्बन्ध है न कार्तिक की अमावस्या का श्रीराम के अयोध्या प्रत्यागमन से।

रावण चैत्र कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को मारा गया (देखें मेरी लिखी पुस्तक रावण वध) अमावस्या को उसका दाह सस्कार हुआ और चैत्र शुक्ल पक्ष की पचमी को श्रीराम जी लका से



श्री अमरस्वामी जी परिव्राजक

लौटकर प्रयाग मे भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुचे। षष्टी को अयोध्या पहुच गये।

प्रश्न वही रहा कि–दीपावली क्या है ?

परम्पराओं के देखने से पता चलता है कि–श्रावण मास की पूर्णमासी ब्राह्मणों के विशेष वेदाध्ययन का शुभारम्भ का पर्व है, मनुस्मृति और गृह्यसूत्रो मे इसका नाम उपाकर्म बताया

गया है। विजयदशमी क्षत्रियो राजाओं का एक शक्ति प्रदर्शन और विजय यात्रा का पर्व है।

बाली को मार कर और सुग्रीव को राज्य देकर श्रीराम जी ने श्रावण मास के आरम्भ मे कहा था कि–

पूर्वोय वार्षिकोमास, श्रावण सलिलागम ।
नायमुद्योग समय, प्रविशत्व पुरीं शुभाम् ।।

यह वर्षा का प्रधान मास सलिलागम श्रावण मास है, यह कहीं आक्रमण आदि उद्योग का समय नहीं है। इस समय तुम अपने शुभनगर मे रहो, हम वर्षा भर गिरि गुहा मे रहेंगे।

जब वर्षा के चार मास बीतने लगे तब आश्विन मास के अन्त समय मे श्रीराम जी ने लक्ष्मण जी को कहा–

अन्योन्य बद्धवैराणा, जिगीषणां नृपात्मज ।
उद्योगसमय सौम्य पार्थिवानामुपस्थित ।।
इय सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज ।

हे राजपुत्र ! परस्पर वैर बांधे हुये विजय की इच्छा वाले राजाओं का यह उद्योग समय आ गया है।

हे राजपुत्र ! राजाओं की यह पहिली यात्रा का समय है। जो सेनाओं और युद्ध के उपकरणो का प्रदर्शन अब २६ जनवरी को होता है, वह विजयदशमी को होता था। और हमारे राष्ट्र मे इसी दिन को होना चाहिये, २६ जनवरी को नहीं।

दीपावली वैश्यों का महापर्व है। इसका नाम लक्ष्मी पूजन भी है। यह लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये कृषि और वाणिज्य के उद्योग का पवित्र पर्व है। कहा भी गया है– व्यापारे वसते लक्ष्मी' व्यापार में लक्ष्मी बसती है। 'उद्योगिन सिंहपुरुष-मुपैति लक्ष्मी.' उद्योगशील सिंह पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है।

मनुस्मृति मे वैश्य के गुण कर्म इस प्रकार कहे हैं–

पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययन मेवच ।
वणिक्पथ कुसीद च वैश्यस्य कृषिमेवच ।०मनु
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्य, वैश्य कर्म स्वभावम् ।
गीता १८ ४४

१–पशुओं का रक्षण, २–दान, ३–यज्ञ, ४–वेदाध्ययन, ५–व्यापार, ६–सूद लेना और ७–खेती, ये सात गुण कर्म स्वभाव वैश्य के हैं।

व्यापार मे वर्ष भर मे क्या कमाया इसके निरीक्षण की समाप्ति कार्तिक की अमावस्या को करके कार्तिक शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा अर्थात दीपावली के दूसरे दिन गौओ, बैलो, बछडों और बछियों की विशेष गणना निरीक्षण तथा गोपालों को इनाम आदि देने का कार्य करना।

दीपावली नवसस्येष्टि यज्ञ है।

पूर्णमासी और अमावस्या दोनो वैदिक पर्व हैं, और कार्तिक की अमावस्या नवसस्येष्टि पर्व भी है। अर्थात वर्षा से जो अन्न उत्पन्न होते हैं, मकई, बाजरा, ज्वार, उड़द-मूग और चावल आदि उन नवीन अन्नो से यज्ञ करना पश्चात् उनको खाना, यज्ञ किये बिना उनका उपयोग न करना। उन अन्नों से यज्ञ कर लिया तो उन बचे हुए अन्नों का नाम यज्ञ शेष हो गया।

गीता मे कहा है–

यज्ञशिष्टामृत भुजो यान्ति ब्रह्मसनातनम् ।
गीता ४-३१

यज्ञ शेष अमृत को खाने वाले लोग ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्म कारणात् ।।
गीता ३-१३

यज्ञ शेष के जो खाने वाले हैं, सर्व पापों से छूट जाते हैं अर्थात् वह किसी भी पाप कर्म को नहीं करते हैं। जो लोग अपने ही लिये अन्न पकाते और आप ही खा जाते हैं वे महापापी लोग पाप ही का फल भोगते हैं।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविता ।
तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव स ॥
गीता ३-१२

यज्ञ द्वारा भावित किये गये देव जलवायु सूर्य आदि इष्ट भोगो को देते हैं और देंगे उनके निमित्त उन ही उनके दिये अन्नादि से यज्ञ न करके जो उन अन्नो को खाते हैं वह चोर हैं-

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व ।
परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ ॥
गीता ३ ११

इस यज्ञ द्वारा देवो की उन्नति करो और वे देव लोग तुम्हारी उन्नति करें इस प्रकार परस्पर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त करोगे। अत. नवसस्येष्टि होनी चाहिये।

नवसस्येष्टि का महत्व गृह्य सूत्रो मे भी बहुत है। अत. कार्तिकी अमावस्या नवसस्येष्टि का पवित्र पर्व है। यह सभी व्यापारियो और सभी किसानों का पवित्र पर्व है, लाखो छोटे बड़े व्यापारी हैं और करोड़ों किसान हैं, इनके अतिरिक्त जो अन्य लोग हैं उनका भी भरण पोषण इन्हीं दोनो के द्वारा होता है, अतः यह पर्व मनुष्य मात्र का पर्व है।

व्यापार भी अत्यावश्यक कार्य है जो जो भी वस्तु जहा जहां उत्पन्न होती है, अन्न, फल, मेवा, रुई, ऊन, रेशम, वस्त्र, सोना, चान्दी, लोहा आदि, धातु हीरा-मोती, पन्ना आदि-आदि सभी पदार्थों को उत्पत्ति स्थान से आवश्यकता के क्षेत्र मे पहुचाना व्यापारियो का ही काम है। यदि व्यापारी लोग इन वस्तुओं को आवश्यकता के स्थानो तक न पहुचाएँ तो उत्पादको का परिश्रम व्यर्थ जाय और उनके अभाव वाले स्थानो के लोग अत्यन्त दु खी होकर नष्ट हो जायें।

अत' व्यापारी वर्ग का होना अत्यन्त आवश्यक है। खेती बाडी भी अत्यावश्यक कार्य है किसानों द्वारा सर्व प्रकार के अन्नों, फलों, दालो, शाकों आदि का उत्पादन होता है जिससे न केवल मनुष्यो का ही पालन होता है किन्तु सभी पशु पक्षी क्रमि कीटादि प्राणी मात्र का उन ही से पालन पोषण होता है।

'अन्नं सामूज्यानामधिपति'। अन्न सामूज्यों का अधिपति है और अन्न वै प्राणिना प्राणः' अन्न ही प्राणियो का प्राण वा जीवन का सहारा है। अन्नादि के उत्पादकों और वितरको तथा उपभोक्ताओं सभी का यह महत्व पूर्ण पर्व है। अमावस्या दीपावली तक व्यापारियों का आय-व्यय का लेखा जोखा हो गया, गोधन पूजा कार्तिक शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पशुओ की गिनती, निरीक्षण आदि आरम्भ हो गया।

इस ऋतु का प्रधान अन्न चावल है, उसकी खीलें बनाकर बांटी जाती हैं और खाई जाती हैं इस ऋतु का ही गन्ना है, जिसका गुड़ शक्कर चीनी, बूरा, बताशा आदि बनता है। दोनों को मिलाकर अर्थात् खील बतासा बांटा और खाया जाता है। इन्हीं के द्वारा आहुतियां भी दी जानी चाहिये। तथा अमावस्या के घोर अन्धकार में दीपमाला करके प्रसन्नता का प्रकाश होना चाहिये। ये ही इस पर्व की महत्ताएँ हैं।

दिवाली की अमावस्या और ऋषि का निर्वाण

[श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक]

वर्षा ऋतु के पश्चात् दीवाली की अमावस्या प्रथम अमावस्या है। इस रात्रि मे गगन मण्डल मे कोई वारिदल वार्दल बादल नहीं है, सब दल दलित हो गये आकाश मण्डल निर्दल निर्मल है तारों भरी रात है। सर्वत्र ग्रह तारे नक्षत्र सितारें चमचमाते जगमगाते झिलमिलाते हैं, दिवाली क्या है दिवि-आलि (दिवाली) आकाश में नक्षत्र श्रेणि का पर्व है, यह मनुष्य के मस्तिष्क की कला है, जो सहस्र दीप जलाकर के गगन मण्डल के पर्व को भू-मण्डल का पर्व बना दिया।

यह अमावस्या है, जड जगत् की भी और चेतन जगत् की भी, जड जगत् का चांद रवि की शरण मे चला गया, चेतन जगत् का चांद-मानव जगत् का चांद आर्य जगत् का चाद (दयानन्द) परमात्म रवि की गोद में जा छिपा। आज उस महान् दीप का निर्वाण है और वह महत्त्व पूर्ण है, जैसे कोई साधारण दीप होता है वह किसी घर में या गुहा में जलकर निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। विशेष महत्त्वपूर्ण दीप वह होता है सभा में प्रकाश प्रदान कर जिसका निर्वाण होता है महान् दीप रूप दयानन्द का मानव समाज मे प्रकाश का सञ्चार करके निर्वाण हुआ।

यह अमावस्या उनके अमर होने या मृत्यञ्जय बनने का दिवस है। घर मे रहते हुए बहन और चचा की मृत्यु को देखा उस समय मृत्यु से बचने की प्रबल भावना उत्पन्न हुई—

'अन्त समय को देख दयानन्द घर से बन को जाता। निश्चय अपना किया जगत् में किसका किससे नाता'

मृत्यु से बचने का औषध उसे वेद से मिला, 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' (अथर्व० ११-५ १९) ऋषि ने उस ब्रह्मचर्य रसायन को पूर्णरूप से पान किया। वह मृत्युञ्जय बना जिसने अन्त समय में ईश्वर को साक्षात् समझते हुये कहा था, ईश्वर क्या तेरी यही इच्छा है'। सचमुच तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। इतना कहकर श्वास को लम्बा करके छोड दिया और सदा के लिये छोड़ दिया—

'हम हस हस उड़ा एक ही उडान मे।
परब्रह्म में केवल में व्योम समान में॥'

दयानन्द सर्वतोमुखी आचार्य महात्मा या महापुरुष था, अन्य आचार्य महात्मा महापुरुष आये,वह किसी एक दिशा को दिखाकर या किसी एक मार्ग को सुझाकर चले गये। पर दयानन्द से कोई दिशा ऐसी नहीं छूटी जिसे उसने दिखाई न हो और कोई मार्ग ऐसा नहीं छूटा जिसे उसने सुझाया न हो। क्या चारित्रिक क्षेत्र क्या धार्मिक क्षेत्र क्या सामाजिक क्षेत्र क्या राष्ट्रिय (राजनैतिक) क्षेत्र।

चारित्रिक क्षेत्र में उन्होंने ब्रह्मचर्य को महत्त्व दिया है, वे सब से ऊँचा चरित्र है, धार्मिक क्षेत्र में अनेक ईश्वरवाद तथा ईश्वर के स्थान पर किसी मनुष्य या जड़ वस्तु को मानना अर्थ-

प्राप्त होता है।

दिक ठहराया और अनेक भ्रान्तियों को मिटाया, सामाजिक क्षेत्र में सब पुरुषों तथा स्त्रियों को विद्याध्ययन का अधिकार दिया और परस्पर के भेद भाव को मिटाया, राष्ट्रीय (राज नैतिक) क्षेत्र मे भारतीयों के अन्दर सर्वप्रथम भारत की स्वतन्त्रता की भावना को भरा तथा उत्कृष्ट राजनीति को बताया, 'एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु जो सब में सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त श्रेष्ठ पुरुष को राज्य सभा का पति मानकर सब प्रकार को उन्नति करें, राजा जो सभापति तदधीन सभा सभाधीन राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा राजनियमों के अधीन रहे। न केवल भारत भर के लिये ही थे अपितु सारे संसार के लिये थे। सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका मे लिखा है यद्यपि मै आर्यावर्त देश मे उत्पन्न हुआ हू परन्तु सब देश वाले मनुष्यो की उन्नति में समान वतता हू, आर्य समाज का एक नियम उन्होने बनाया कि 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है स्वामी जो क्षमाशील भी अनुपम थे, अपने घातकों को क्षमा करते रहे जीवन काल मे भी क्षमा करते रहे और मरकर भी क्षमाशील रहे। उनके वधक को फांसी का तख्ता नहीं चूमना पड़ा। इस युग में ऐसे ऊँचे चरित्रवान्, बलवान्, आत्मशक्तिमान् विद्वान सर्वविषयों में प्रखर बुद्धिमान् संसार भर के हितैषी महामानव का भारत में उत्पन्न होना भारत के महान् गर्व गौरव का विषय है उनका मान और यशोगान करके भारत और भारतियों का शिर ऊंचा हो सकता है। बड़े दुःख की बात है शासन ने और भारतियो ने उसको ठीक रूप मे नहीं समझा और उसके कृतज्ञ नहीं बने। * *

दिव्य-दिवाली

वही है दिवाली ऋषि देव ने जलाये दीप,
वही है दिवाली दिव्य रूप को दिखाया था !
वही है दिवाली दिन यामिनी लक्ष्मी के बीच,
वही है दिवाली ऋषि धाम को सिधाया था!
वही है दिवाली निज रूप को दिखाने आई,
वही है दिवाली आज ऋषि रूप पाया था !
वही है दिवाली ऋषि राज के सेवा में रही,
ओम् ओम् दव न साथ-सत्ता मे समाया था !!
प्रकाश को पाके ऋषि प्रकाश बताया निज,
प्रकाश में रहे फिर प्रकाश मे गये थे !
आये जब महा अन्धकार तम यामिनी का,
देख देख पापाचारी, दुखी लोग भये थे !!
चारों ओर गुरुडम पाखण्ड पुजारी दीप,
उसी मे प्रकाश किया, ऋषि काम नये थे!
दीवाली आई थी कई बार भी गई थी आ के,
किन्तु 'घनसार' ऐसा प्रकाश न लाये थे !!
दिवाली वही है जिस दिल में प्रकाश हुआ,
दिवाली वही है जिन-भ्रम सारा नाश हो !!
दिवाली वही है नित्य-वैदिक सुकर्म करें,
दिवाली वही है ज्ञान वैदिक विलास हो !!
दिवाली वही है नित्य गुरुकुल पढ़े बटु,
दिवाली वही है वेद विद्या का विकास हो !
दिवाली वही है घनसार' सुखी दीन रहे,
दिवाली वही है—वेद ज्ञान का प्रकाश हो !!
दीपक लगाये कई बिजली सजाये कई,
दीपमाल लगाकर, तम, को हटावे हैं !
घर में सुद्वार पर बैठक कमरों पर,
आराम भवन पर रोशनी सजावे है !!
हाट, और हवेली पर, सदन के कौने-कौने,
झिग-मिग ज्योति कर-आनन्द बढ़ावे हैं।
सब ही प्रकाश क्षण मात्रिक रहावे घनसार',
तो प्रकाश एक वैदिक कहावे हैं !!

—कवि कस्तूरचन्द 'घनसार' पीपाड़ शहर (राज०)

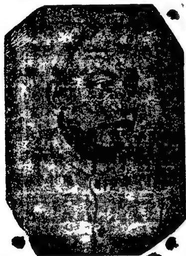


दीपावली



] श्री डा० मुंशीराम जी 'सोम', कानपुर]

आर्यों के समाज मे वर्ण व्यवस्था से सम्बन्धित चार पर्व हैं—श्रावणी, दशहरा, दीपावली और होली। श्रावणी मे सभी वर्ण ज्ञानमय होने का प्रयत्न करते हैं। विप्र रूप ऋषि मुनि वर्षा काल में नगरों और ग्रामो में आ जाते थे। आस्थान मण्डपों में ज्ञान चर्चा छिड़ती थी। वेदों की कथा



श्री डा० मुंशीराम जी 'सोम'

होती थी। बाद में उपनिषद्, रामायण भी पढ़े जाने लगे। अभिप्राय एक ही रहता था—समग्र जनता ऐसे ज्ञान को पाकर लाभान्वित हो जो उसे कर्मठ बनाता हुआ, परम ज्ञान रूप प्रभु की ओर ले चले। ब्राह्मण वर्ण विशेष रूप से वैदिक स्वाध्याय में निरत होता था। उपाकर्म का अर्थ ही है—स्वाध्याय का प्रारम्भ। दशहरे के पर्व पर क्षात्र भाव की प्रधानता रहती थी। अस्त्र शस्त्र परिमार्जित किए जाते थे। वीर भाव को जागृत करने के लिये ऐसे खेल कूद होते थे, जिनमे दो दल परस्पर संघर्ष रत हों, और विजय प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धाशील हो। इसका परिणाम होता था कि बाह्य आक्रमण जैसी विपत्तियों के आ जाने पर सभी वर्ण सैनिक बन कर देश की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाते थे। आल्ह खण्ड मे रूपन बारी, धनुआ तेली, लाला तमोली, चौंडा ब्राह्मण ताला सैयद मुसलमान आदि सभी मिलकर युद्ध में भाग लेते हैं रामचरित मानस मे तो गुह निषाद भी भरत की सेना को देखकर वीर भाव मे मस्त हो जाते हैं। भरत से मोर्चा लेने के लिए वे तरकश बाँधकर धनुष चढ़ा लेते हैं। उन्होने कवच पहन लिया है। सिर पर लोहे का टोप है। परशु भाले, बर्छी हाथ मे ले लिए हैं। घोड़ा चलाने में दक्ष निषाद ऐसी छलांगें भरते हैं, मानों धरती छोड़कर आकाश मे कूद रहे हों और मेदिनी को रुण्डमुण्ड मय बना देने के लिए उद्यत हों। जुझाऊ ढोल भी बजते हैं।

दीपावली व्यापारी वर्ग का विशेष पर्व है। लक्ष्मी की पूजा का अर्थ ही है, धन की वृद्धि करना। इस पर्व पर समाज के सभी अंग लक्ष्मी पूजन करते हैं। धन की आवश्यकता सभी को पड़ती है। किसान का घर भी इन दिनों ज्वार, बाजरा, चावल आदि अन्नों से भर जाता है।



समाज का कोई भी घटक धनधान्य से हीन न रहे, ऐसी योजना इस पर्व पर की जाती थी। नई फसल का अन्न केवल किसान के घर में ही नहीं रहता था, उसका उपयुक्त भाग सभी वर्णों के पास पहुच जाता था। ऐसी सुन्दर सामाजिक पद्धति बनी हुई थी कि कोई भी वर्ण, कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहता था, और विवाह आदि के अवसर पर तो सभी वर्ण एक दूसरे की सहायता करने में जुट जाते थे। खेद है कि आर्यों के समाज की यह व्यवहार-प्रणाली आज ह्रासोन्मुख है और पश्चिमी प्रणाली ने हमें चुनाव का चस्का चखा कर पद प्रभुता का ऐसा पाठ पढ़ाया है कि हमारा भ्रातृभाव समाप्त हो रहा है, और पारस्परिक संघर्ष ने एक को दूसरे से भिड़ाकर जान का गाहक तक बना दिया है। पूजी सिमिट कर कुछ चण्डाल चौकड़ी तक सीमित हो गई है और सामान्य जनता परेशान है।

होली का पर्व शूद्रों का पर्व कहलाता है। इस पर्व पर सभी वर्ण अपनी अपनी विशेष महत्ता को छोड़कर एक हो जाते हैं। अबीर और गुलाल की धूम मच जाती है। सभी एक दूसरे को छाती से लगाते हैं, और घर घर जाकर आमोद-प्रमोद से ओत-प्रोत हो जाते हैं। होली का पर्व होलों से सम्बन्ध रखता है, और होलिका नामक राक्षसी से भी। इसमें एक ओर होले भूने जाते हैं, तो दूसरी ओर होलिका भी जलाई जाती है। हमें अपने अन्दर छिपी अनार्य, दस्यु एवं राक्षसी वृत्ति को जला देना चाहिए और होले रूपी सद् वृत्ति पका कर आनन्द मग्न होना चाहिए। समाज के प्रत्येक सदस्य को आर्य बनना है, अनार्य नहीं, पुण्य आत्मा बनना है, पापात्मा नहीं। वस्तुतः एवं दुरित का दमन और भद्रता एवं भव्यता का आभावन ही समाज को ऊंचा उठा सकेगा। हमारे पर्वों का यही एक मात्र उद्देश्य है-उद्यानं ते पुरुष नाव यानम्-पुरुष तू ऊँचा उठने के लिये आया है, नीचे गिरने के लिए नहीं।

दीपावली का पर्व देश को धन धान्य से सम्पन्न बना देने के लिए व्यापारी वर्ग का आह्वान करता है। हमारी कृषि, हमारा उद्योग, हमारा व्यवसाय इस सोने की चिड़िया के स्वर्ण को नष्ट न होने दें, उसकी निरन्तर वृद्धि करे, और आवश्यकता के अनुसार अपने सभी अङ्गों तक पहुचा दे। द्यूत या जुआ हम खेलें, पर वह सभी को धनवान् बनावें, दरिद्र नहीं। हमारी तुला साम्य सदेश रखती हो, घटतोला पन नहीं। सबके साथ यथावत व्यवहार हो, भाई भतीजे वाद का पक्षपात नहीं। मँहगाई और भ्रष्टाचार, असत व्यवहार तथा तोड़ फोड़ अनार्यों की चाल है, आर्यों की नहीं। आर्य न तो किसी का दास बनता है, और न किसी को दास बनाता है। वह अपने को और विश्व भर को आर्य बनाने के आदर्श से अनुप्राणित रहता है। उसका धर्म, उसका कर्तव्य अदानी, अनार्यों का पराभव तथा आर्यत्व का संवर्धन है। मानवता का विकास, सुख एवं शान्ति का उल्लास आर्य जीवन का ध्येय है। आर्य समाज के सदस्य पर्वों के इस महत्त्व को समझें और अपने को सच्चे अर्थों में आर्य बनावें *

आर्य समाज सुन्दरी (बरेली)

प्रधान-श्री भजन लाल

उपप्र०- ,, प्रेमपाल

मन्त्री- ,, भूदेव जी

उपम०- ,, ओम्प्रकाश जी

कोषा०- ,, रामभरोसे लाल



भारत के आर्यों की उत्पत्ति

[लेखक—श्री डा० सूर्यदेव जी सिद्धान्त वाचस्पति, एम०ए० डी-लिट् अजमेर]

मानव-इतिहास में दो प्रश्न सदा से समस्यापूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण रहे हैं, एक मानव की प्रथम बार उत्पत्ति कहाँ पर हुई ? और दूसरा मानव की उत्पत्ति कब हुई ? इन दोनों प्रश्नों पर बड़े-बड़े मनीषी विद्वानों, प्रागैतिहासिक काल के अनेक अनुसन्धान कर्त्ताओं ने अतीव परिश्रम के साथ खोजबीन की है, परन्तु वे किसी एक परिणाम पर नहीं पहुंचे हैं। प्रारम्भ से उनमें मतभेद रहा है और शायद आगे भी रहेगा। अभी मैं इन प्रश्नों की ऊहापोह नहीं कर रहा हूं। अभी तो मेरे सामने अन्य दो प्रश्न उभर कर आ रहे हैं—

(१) भारत में जो आर्य लोग हैं—वे कहीं बाहर से आकर यहाँ आबाद हुये या यहीं उनकी आदि उत्पत्ति हुई ?

(२) क्या दक्षिण भारत के निवासी द्रविड़ लोग उत्तर के आर्यों से भिन्न हैं या वे भी आर्य ही हैं ?

इनमें से प्रथम प्रश्न के उत्तर में प्रो० मैक्समूलर ने लिखा कि आर्य लोग मध्य एशिया (अथवा काकेशिया) से चलकर भारत में उत्तर पश्चिम से प्रविष्ट हुये। प्रो० विंटरनिट्ज ने तथा अन्य कई विद्वानों ने ईरान की ओर से अथवा भूमध्य सागर से भारत में उनका आना माना है। लोकमान्य तिलक ने आर्यों की उत्पत्ति एवं उनका भारत-प्रवेश, उत्तरी ध्रुव प्रदेश से माना है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि डा० इकबाल ने भी लिखा है—

ऐ आबे रोदे गंगा, वह दिन है याद तुझको ?
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा।
सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा॥

परन्तु इन सबके विपरीत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यों की आदि उत्पत्ति तिब्बत



श्री डा० सूर्यदेव जी डी-लिट्

के पठार पर अथवा हिमालय पर्वत पर तथा भारत में ही मानी है, और इस प्रकार ब्रिटिश राज्य के उस षड्यन्त्र का भंडाफोड़ किया जो आर्यों को बाहर से आया हुआ बतलाते हैं और दक्षिण भारत की द्रविड़ जाति को आर्यों से पृथक् भारत की आदि निवासिनी जाति मानते हैं। स्वामी जी के इस मन्तव्य के समर्थन में अनेक पुरा-तत्त्व-विशारदों के मत उद्धृत किये जा सकते हैं जैसे—



(अ) आर्यों की ईरानी शाखा के विशेषज्ञ श्री खुरशेद जी रुस्तम जी ने अपनी पुस्तक 'मानव का मूल जन्म स्थान' में हिमालय की शाखा हिन्दूकुश को, जो ३७° से ४० उत्तरी अक्षांश तक फैला हुआ है, आर्यों का आदिम स्थान सिद्ध किया है।

(ब) पूना के प्रसिद्ध विद्वान नाना पावगी ने अपनी पुस्तक 'आर्यावर्तातील आर्यांचो जन्मभूमि' में लिखा है–'हिमालय ही हमारा और हमारे देवताओं का उत्पत्ति स्थान है' (पृष्ठ २७२)।

(स) श्री अविनाशचन्द्र दास ने 'ऋग्वेदिक इण्डिया' पुस्तक के ३७६ पृष्ठ पर लिखा है–'वैदिक ऋषियों ने उत्तर के नक्षत्रों को हिमालय (जहाँ उनका जन्म स्थान था) के ऊँचे पर्वतों पर से ही देखा था।'

(द) बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री उमेशचन्द्र दत्त ने अपनी पुस्तक 'मानवेर आदि जन्म भूमि के पृष्ठ १२४ पर लिखा है, 'भारत मे बसे हुये हमे (आर्यों को लाखों वर्षों से कम समय नहीं हुआ हिमालय ही हमारा मूल स्थान है ।)

(य) महाभारत मे भी लिखा है–

हिमालयाभिधानोऽयं ख्यातो लोकेषु पावनः।
तत्र सर्वा. समुत्पन्ना. ॥

(र) वायु पुराण में भी लिखा है कि मानव को आदि सृष्टि हिमालय मे मानसरोवर के पास हुई।

(ल) जल प्लावन के समय नूह ने अपनी नाव हिमालय पर ही बांधी थी, जैसा कि कहा गया है–

बन्दे कलीम जिसके, पर्वत जहाँ के सीना।
नूहे नबी का आकर, ठहरा जहा सफीना ॥

इसी जलप्लावन दृश्य का वर्णन महाभारत में भी है–

'हिमवत शृगे नाव, बध्नीत मनुनाचिरम्।'

आज ऋषि दयानन्द के मन्तव्य को सिद्ध करने के लिये और सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आदिम आर्यों (मानवों) की आदि सृष्टि हिमालय अथवा भारत मे ही हुई थी। धन्य है ऋषि दयानन्द को जिन्होंने ससार के मानव-समाज के इतिहास मे हमारा (भारतीय आर्यों का) मस्तक ऊँचा किया है।

यह हिमालय ही हमारा, मानवों का मान है।
आर्य आदिम जाति का, सर्वोच्च जन्म स्थान है ॥

–'सूर्य'

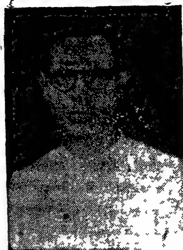
'शताब्दी-सन्देश'

आयेगी शताब्दी अब शेष नहीं वर्ष हय,
इसी बीच क्या-क्या हमे कर दिखलाना है।
सोचें यह आर्य जन मिलजुल कार्य करें,
जो मतभेद भी तो उन्हें भूल जाना है।
समाज स्थापना के सदुद्देश्यों को पूर्ण करें,
इसमे 'रणञ्जय' आलस्य नही लाना है।
भीष्म प्रतिज्ञा कर ऋषिवर के भक्तों को,
वैदिक सिद्धान्त विश्व भर मे फैलाना है।

–राजा रणञ्जयसिंह
पूर्व प्रधान आ. प्र सभा
अमेठी (सुलतानपुर)

आर्यों से !

[कविवर 'प्रणव' शास्त्री एम० ए० आर्यनगर, फीरोजाबाद]


'प्रणव' शास्त्री एम० ए०

प्रिय, दिवाली यों मनाओ !
ऋषि दयानन्द देव का सन्देश घर-घर में सुनाओ ।।१
आज जन मन गगन तल पर है तिमिर का सत्य का डेरा,
भुजग भ्रष्टाचार ने है राष्ट्र को बहु ओर घेरा ।
पूर्ण भूतल पर डटा है घन अमा का ही अँधेरा ।
ज्ञान की लेकर मशालें निबिड़तम को तुम भगाओ ।।२
ऋषि दयानन्द देव के बलिदान की जो शपथ खोई,
शत शहीदों के अमर अरमानों की जो शपथ खोई ।



'स्वस्ति पन्थामनुचरेम' गान की जो शपथ खोई ।
कवि जगाता है उसे, लो भेदभावों को भुलाओ । ३
क्या न अब भी जान पाये दीप सारे सो गये हैं,
राम के, गोपाल के अभिमान सारे खो गये हैं ।
विश्व में कुछ वैद्य ही हां बीज विष के बो गये हैं ।
क्यों न बनकर शिव गरल को कण्ठ में कर पान जाओ ।।४
क्या दयानन्द देव का था व्यर्थ जगती को जगाना,
लेखरामों रक्त का भी क्या बहाना ही बहाना ।
व्यर्थ श्रद्धानन्द के क्या गोलियों का पार जाना ।
एकता के सूत्र में जो सुमन से सब गुथ न जाओ ।।५
हो न तारों का सुसगम बीण क्या कल गान गाती ?
वर्ण की माला न जोड़ो भारती है कौन भाती ?
बिन दलों के मिलन से क्या शीत छाया रज्जु भाती ?
प्रेम सज्जा शालिनी से जीवनी के रथ सजाओ ।।६
चाहते हो जो धरा में शुभ शताब्दी का मनाना ।
सत्य अर्थ प्रकाश पर जो चाहते हो रंग चढ़ाना ।।
चाहते हों वैदिकों का कारवाँ आगे बढ़ाना ।
तो 'प्रणव' कविता स्वरों को मन सदन में गुन गुनाओ ।।७



भारत एक राष्ट्र है: इस मन्त्र का मन्त्र दाता महर्षि दयानन्द सरस्वती

[श्री अवनीन्द्रकुमार जी विद्यालंकार इतिहास सदन एम १८ कनाट सर्कस, नई दिल्ली-१]

दिवाली की संध्या और टिमटिमाते दीए उस महान् भारतीय का स्मरण कराते हैं, जो नख से शिखा तक भारतीय था। इसके अतिरिक्त वह और कुछ न था। १९वीं सदी में ही नहीं बल्कि चाणक्य चन्द्रगुप्त के बाद से भारतीय इतिहास में उसके समान उच्च कोटि का कोई महान भारतीय नहीं हुआ। भारत का ब्रिटिश अनुयायी वर्ग राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का जन्मदाता मानता है, और तो और आर्य समाज का इतिहास के लेखक श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति तक ने अपने ब्रिटिश भारत के इतिहास में राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का जन्मदाता कहा है।

किन्तु राजा राममोहन राय का भारत उपनिषदों से परे नहीं जाता, इससे पहले के भारत का वह प्राचीनतम भारत को भारत नहीं मानता। एक जर्मन विद्वान् ऋग्वेद के एक सूक्त का अनुवाद कर रहा था। वह राजा राममोहन राय का मित्र था। उसके घर ठहरा हुआ था। जर्मन मित्र को वेद का अनुवाद करते देखकर राजा राममोहन राय ने उसके कागज पत्र उठाकर फेंक दिए। कहा कि यह इसमें क्या अपना समय बरबाद करते हो। वेद भारत की आत्मा है, प्राण है। उसको परित्याग करने की सलाह देने वाला व्यक्ति क्या सच्चा भारतीय कहाने का अधिकारी कहला सकता है? यही कारण है कि राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी की प्रभुता को सहर्ष स्वीकार किया। अंग्रेजी की प्रभुता १९७३ तक कायम है। क्योंकि राजा राममोहन राय ने ब्रिटिश प्रभुता और अंग्रेजी की सत्ता को वरेण्य माना श्रेष्ठ माना। भारत की महत्ता का ब्रह्म समाज के संस्थापक को कोई गर्व न था।

राजा राममोहन राय यदि सच्चा भारतीय होता तो १९७३ तक अंग्रेजी की प्रभुता भारत में कायम न रहती। वह सच्चा दृढ़ भारतीय होता तो याद रखता।

इद नमः ऋषिभ्य· पूर्वजेभ्य पूर्वेभ्य. पथिकृद्भ्यः॥ (ऋ० १०। १४। १५) (अथर्व १८। २। २)

नम ऋषिभ्यो मन्त्र कृद्भ्यो मन्त्र पतिभ्य.। नमो वो अस्तु देवेभ्यः॥ (ए० आ० १। १। १)

स्पष्ट है, राजा राममोहन राय को एक भारतीय होने का कोई अभिमान न था वह आत्म हीनता की छाप से ग्रसित था। इसका परिणाम भारत भोग रहा है। एक फ्रेंच पर्यटक ने भारतीय विमान बनाने के कारखाने को देखने के बाद लिखा है, भारत के विमान निर्माता नये-नये डिजाइन (अकल्पना) बनाने में असमर्थ है। इसके वास्ते परिचित है। भारत का सुरक्षा मन्त्री मिग २५ का डिजाइन पाने के लिए मास्को गया। क्योंकि भारत का वर्तमान शासक और राजनीतिक

पार्टियाँ भारत को एक देश और एक राष्ट्र नहीं मानतीं। अतः वेद को भारत राष्ट्र की अनमोल महानिधि मानने और इसकी रक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। इस वास्ते शासन भटक रहा है।

वैदिक अन्तरिक्ष उडान के अनुसार युद्ध का विमान ऐसा होना चाहिए कि उसको दुश्मन का विमान न देख सके। अपना विमान शत्रु के विमान में होती बातचीत को सुन सके। परन्तु अपने अन्तरिक्ष यान में होती बातचीत को शत्रु न सुन सके।

अपने अन्तरिक्ष यान से बनाया गया निशाना अचूक होना चाहिए। रिपु का विमान नष्ट होते हुए दिखाई देना चाहिए।

प्रेजीडेंट निक्सन ने 'पेंटागन' को अपने सन्देश में कहा है पुरानी लडाइयों का इतिहास पढ़कर शस्त्रास्त्र मत तैयार करो, प्रत्युत भावी लडाइयों के स्वरूप का विचार कर नवीन शस्त्रास्त्र तैयार करो। भारत का सुरक्षा मन्त्रालय पर पुरानी लीक पीट रहा है, नकल कर रहा है। क्योंकि उसने भारतीय ज्ञान भण्डार वेद को कूड़े में फेंक रखा है। यह है, राजा राममोहन राय का निर्मित परमुखापेक्षी भारत।

ऋषि दयानन्द को इस अनिष्टकारी विनाश की कल्पना थी। यही कारण है कि प्रार्थना समाज, थियोसोफिस्ट ब्रह्म समाज, ऋषि दयानन्द के साथ मिलकर समाज-सुधार का भी कार्य न कर सके। एक महाराष्ट्रीय विद्वान् का कहना है कि इनमें एकता न होने का कारण ऋषि दयानन्द की विजयीष्णु भावना थी। भारत से विजीयीष्णु की भावना का लोप हो गया। इस सत्य को गोस्वामी तुलसीदास ने बड़ी तीव्र अनुभूति के साथ अनुभव किया, और लिखा था, अत. उन्होंने लिखा

'वीर हीन मैं मही आना,'
कोऊ नृप होय हमें का हानि,
चेरी छोड़ होऊ न रानी।'

ये उक्तियाँ मार्मिक है। इस अवस्था का इस घनघोर निराशा और हताशा का अन्त एकमात्र वेद से ही हो सकता है। क्योंकि वैदिक ऋषि कहता है।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तों अरण्य ते पृथिवि स्योन मस्तु। बभ्रु कृष्णा रोहिणी विश्व रूपां ध्रुवां भूमि पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्। अजीन्तो अहतो अक्षतो अध्यष्ठा पृथिवी मह्य।

(अथर्व० १२-१ ११)

अंग्रेजी की प्रभुता को खुशी खुशी स्वीकार करने वाले 'अजितो अहतो अक्षतो अ०यष्टा पृथिवीमहम' की कल्पना तक नहीं कर सकते। ऐसा बनने की बात ही दूर रही।

यही कारण है, भारत के एक स्वर्गीय प्रधान मन्त्री ने भारत विभाजन ही नहीं, विभक्त कश्मीर स्वीकार करने के साथ साथ अक्साई चिन समेत १८,००० वर्ग मील भूमि का भाग चीन को सौंपने को तैयार हो गए।

शिला भूमि रश्मा पांसु सा भूमि सधृता धृता तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरनमः ॥

(अथर्व १२-१-२६)

वेद भारत भूमि के प्रति भक्ति, श्रद्धा और विश्वास पैदा करता है, और उसके वास्ते बली देने की प्रेरणा करता है। आधुनिक भारत का यथार्थ मन्त्र दाता ऋषि दयानन्द है। यही कारण है, उसका स्थापित किया, आर्य समाज भारत से बाहर जहाँ-जहाँ गया, वहाँ उसके साथ वेद गया, और हिन्दी गई। स्वामी विवेकानन्द का स्थापित

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

स्वामी जी की विशेषता

[श्री प० बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ, बरेली]

हिमालय के आंगन मे जिसे,
प्रथम किरणो का दे उपहार।
उषा ने हंस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार।
जगे हम लगे जगाने लोक,
लोक मे फैला फिर आलोक।
व्योम तम तोम हुआ तब नाश,
सकल संसृति हो उठी अशोक।
कहीं से हम आये थे नहीं,
यहीं पर रहते सदा सहर्ष।
हमारी जन्म भूमि है यही,
हमारा प्यारा भारतवर्ष।

भारतवर्ष केवल भोग भूमि ही नहीं मोक्ष भूमि भी है, यह हो जिसका विश्वास उससे बढ़कर राष्ट्रवादी, देशभक्त और कौन हो सकता है। हिन्दु, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिख आर्य समाजी, सनातन धर्मी, कबीरपंथी, राधास्वामी कुछ भी हो उसके लिये हिमालय से कन्याकुमारी तक अफगानिस्तान से सुन्दर वन तक सम्पूर्ण भूमि आर्य भूमि है। इसका कण कण वीरों के बलिदानो से पवित्र हुआ है। इसकी दसों दिशाएँ सतियो की चिताओं के धूम से पवित्र हो चुकी हैं। यहाँ वेदों के सस्वर पाठों से अश्वमेधादि बडे यज्ञों से आर्य ऋषियों ने दिशाओं को सुरभित और पावन बनाया। बौद्ध, जैन, सिख आदि सबके तीर्थंकर और गुरुओं ने अपनी तपस्या से इस देश के एक एक रजकण को पवित्र किया।

हमारे लिये भारत माता का एक-एक रज-कण परम पावन है। यहां की सरिताओं के जल की एक-एक बूंद तीर्थ है। यहां पर्वत आदरणीय हैं, वन भावना को जगाने वाले हैं। अत हम गद्गद्



श्री प० बिहारीलाल जी शास्त्री

होकर गाते हैं—वन्देमातरम् अत: इस राष्ट्र का ऊर्ध्वांग हिन्दू है। बिना हिन्दू के हिन्दुस्तान कहां और बिना 'भा के भारत कैसा और भा—प्रतिभा का क्षेत्र भी हिन्दू ही है। आजतक हिन्दू के अतिरिक्त किसी भी भारतीय ने नो बिल प्राइज प्राप्त नहीं किया। ऐसे हिन्दू राष्ट्र की सैकूलर इज्म की शराब पीकर जो उपेक्षा करता है वह भारत का अहित करता है भा-प्रतिभा का

मान करता है। बस १६वीं शती में जितने भी सुधारक हुये, नेता हुये, साधु महात्मा हुये उनमे और स्वामी जी मे यही अन्तर था कि स्वामी जी ने बेहोश रोग शय्या पर पड़े हिन्दू राष्ट्र को जीवित कर दिया। हिन्दुओं को एक नयी चेतना का दृष्टिकोण दिया। नया मार्ग दिखाया—क्या मार्ग ? तुम शुद्ध कर अन्यों को अपने मे मिलाओ और अपने मे से किसी को बाहर न जाने दो। आर्यों ने यही किया। जो लोग हिन्दू-धर्म को कच्चा धागा बताते थे, अब उन्होंने देखा कि फौलादी जंजीर हो गया है। हिन्दू दर्शन हिन्दू इतिहास हिन्दू महापुरुष नये रूप मे ही दीखने लगे। आत्महीनता के स्थान मे हिन्दू का आत्माभिमान जाग्रत हुआ।

आज कुछ लोग स्वामी दयानन्द के महत्त्व को पीछे धकेलना चाह रहे हैं। वे आगे लाना चाहते हैं पूज्य स्वामी विवेकानन्द जी को। स्वामी विवेकानन्द जी ने भी हिन्दू दर्शन का गौरव बढ़ाने के लिये महत्त्वपूर्ण काम किया है, विदेशों मे उनके भाषणों से हिन्दू धर्म का महत्त्व स्थापित हुआ है परन्तु स्वामी जी की उनसे क्या तुलना ?

जब अंग्रेजों ने उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ बनाई और लखनऊ के विकास मे लगे तो इलाहाबाद के एक उर्दू कवि ने लिखा था—

बढ़ा रहे हैं बहुत लखनऊ की शान मगर,
वह गोमती को तो गंगा बना नहीं सकते।

राजा राम मोहन राय, स्वा० श्री विवेकानन्द जी एक-एक बात को लेकर चले। एक ने उपनिषद् पकड़े दूसरे ने वेदान्त। पर ऋषि दयानन्द वेदों को लेकर खड़े हुये। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त समग्र धर्म ग्रन्थ और पूरा आर्य इतिहास है ऋषि के विचारों का आधार वस्तुतः सच्चे सनातन धर्म को सामने रखकर धर्म प्रचार करने वाले इस युग में केवल ऋषि दयानन्द हैं।

सब धर्म एक से हैं, यह गांधीवादी विचार धारा भी हिन्दू राष्ट्र के लिये बड़ी घातक सिद्ध हुई है। हिन्दू तो इससे हो गया ढीला पर अन्य मतों पर महात्मा गांधी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वे ज्यों के त्यों कट्टर बने रहे। अभी पिछले वर्ष एक सर्वोदयी नेता ने हिन्दू मुस्लिम एकता की धुन में हिन्दुओं को सुअर और गौ का मांस खिलाया। इस पामर पशु से पूछा जाये कि ईसाई तो सब प्रकार का मांस खाते हैं फिर उनसे मुसलमानों की एकता क्यों न हुई। अनेकता विद्वेष खान पान का नहीं विचारों का है।

ऋषि के चेलों ने विचारों का ही संघर्ष छेड़ा। खण्डन-मण्डन की लहर का प्रभाव मुसलमान जैसे कट्टर मत पर भी पड़ा। मुसलमानों ने हदीसों का विरोध प्रारम्भ किया "तुहफतुल मुस्लिमीन किताब लिखी शाहजादा सुलतान अहमद ने। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार किया मिर्जा गुलाम अहमद ने। सृष्टि की आदि में केवल आदम हव्वा ही नहीं किन्तु बहुत से नर-नारी पैदा हुये यह मानने लगे मुसलमान। इस संसार से भी पहले संसार हो चुके हैं यह कहने लगे मौलाने।

वास्तव मे दो प्रकार के नेता और उपदेशक होते हैं एक वे जो अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं जैसे बाबू केशवचन्द्र सेन के व्याख्यानों को

इगलैंड में बड़ी प्रशंसा हुई, क्योंकि उनके व्याख्यान ईसाई मत और ईसू के समर्थक थे। स्वामी विवेकानन्द जी के व्याख्यानों की अमरीका में धूम मच गयी। श्रोता उनकी प्रशंसा करने में मग्न थे पर उसी समय में कनाडा में, अफ्रीका में सहस्त्रों हिन्दू ईसाई बन रहे थे, बंगाल में सहस्त्रों हिन्दू मुसलमानों से उत्पीडित होकर मुसलमान बन रहे थे और धीरे-धीरे होने वाली इस सख्यावृद्धि का परिणाम है—पाकिस्तान या बंगला देश।

दूसरे नेता वे होते हैं जो अपनी प्रशंसा या निन्दा की चिन्ता न करके अपने देश, राष्ट्र और धर्म का गौरव स्थापित करना चाहते हैं जैसे ऋषि दयानन्द सत्य के कहने में किसी की परवाह नहीं करते। जिस समय हिन्दू ईसाई बन रहे थे और स्वा० विवेकानन्द जी अमरीका में व्याख्यान झाड रहे थे उस समय ऋषि दयानन्द के मिशनरी कनाडा और अफ्रीका में जाकर हिन्दुओं को ईसाई बनने से रोक रहे थे और जो हो गये थे, उनकी शुद्धियां कर रहे थे, वे थे पूज्यपाद श्री स्वामी शकरानन्द जी। मैंने उनके दर्शन किये थे। सस्कृत और इगलिश में धारा प्रवाह भाषण करते थे। अपार प्रेम और उत्साह था इन्हें अपने धर्म प्रचार का।

ऋषि दयानन्द द्वारा सुझाये गये शुद्धिकरण का मूल्यांकन इससे हो सकता है कि महात्मा गांधी जी का कुपुत्र हीरालाल मुसलमान हो गया, नाम रक्खा गया अब्दुल्ला। उस समय मुसलमानों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। इस्लामी अखबार बड़े-बड़े अक्षरों के शीर्षक देकर हीरालाल का प्रचार करते थे। कानपुर में एक लाख की उपस्थिति में भाषण हुआ अब्दुल्ला का और अध्यक्ष थे इस जलसे के शौकत अली (महात्मा गांधी के दाहिने हाथ) पर किसी के ध्यान में आया कि अब्दुल्ला को बदला जाये। महात्मा गांधी के चेले श्री विनोबा जी अपनी कुटी में बैठे दही शहद खाते रहे। सब वाले भी परेट करते रहे। पर आर्य समाजी तो निश्चिन्त नहीं बैठ सकता था। आखिर बम्बई समाज के प्रधान प० विजयशंकर जी ने अब्दुल्ला को फिर हीरालाल बनाकर माता कस्तूरबा की छाती को ठंडा कर दिया। माता के आंसुओं का प्रवाह बन्द कर दिया, किसने एक आर्य समाजी ने।

यदि अब्दुल्ला को शुद्ध न किया होता तो आज उसका मजार बना होता। हर साल उर्स होते और ये अन्धविश्वासी हिन्दू भी सहस्त्रों की सख्या में जाकर अब्दुल्ला की कब्र को पूजते रहते। हरदिल अजीजी बनावट दिखाता इससे दूर रहकर आर्यों ने ठोस काम किया है।

राष्ट्र को जीवन देने और दृढ़ बनाने का काम आर्य समाजी ही जानता है। यह ऋषि दयानन्द का ही प्रताप है कि मुसलमान शासकों से खण्डित किया और ईसाइयों द्वारा ढाया जाता हुआ आर्य सस्कृति का भवन बच गया। आर्ष साहित्य की रक्षा हुई। सकुलर इज्म धर्म निरपेक्षता का गीत गाने वाले मूर्ख हिन्दू समझ लें कि इस राष्ट्र को जीवन और सरक्षण देने वाला केवल हिन्दू धर्म है, सस्कृत साहित्य है। इसकी उपेक्षा करके राष्ट्र को निर्बल मत बनाओ। ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण को अपनाओ तो समाजवाद भी सफल होगा। हमारा तो छठा नियम ही पूरा समाजवाद है। "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सतुष्ट न होना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

———



मृत्युंजयी दयानन्द

ले०—श्री आचार्य भारत भूषण त्यागी उपप्रधान आर्य समाज नयाबाजार

महर्षि दयानन्द मृत्युंजयी थे, क्योंकि उन्होंने राष्ट्र के शरीर से कुरीति रूपी विष को निकालने के लिए रात दिन एक कर दिया। उन्होंने अविद्या के जहर से ग्रस्त देश का सर्वोत्तम निदान किया। वह निदान क्या था—वेदामृत का प्रयोग। उन्होंने पाखण्ड के विषधर पर नियन्त्रण किया। स्वार्थी लोगों ने उनको कई बार विष दिया, परन्तु वे, नीलकंठ शिव की तरह उसकी मारक शक्ति को मार मुसकराते रहे। उनके यश रूपी शरीर को न तो बुढ़ापा आ सकता है, और न मृत्यु ही उनका बाल बांका कर सकती है।

उन्होंने जोधपुर के राजवंश मे व्याप्त विलासिता पर सीधी चोट की। अगर शासक ही दिन रात सुरा, सुन्दरी और स्वर्ण में आसक्त रहेंगे, तो प्रजा के चरित्र की क्या दशा होगी! राजस्थान के वीरता के सरोवर पर कामुकता की काई छाई हुई थी। महर्षि दयानन्द जी ने देख लिया कि नन्हींजान वेश्या मे आसक्त इस वातावरण को बदलना होगा। उनकी गम्भीर गिरा गगनांगन मे प्रतिज्वलित हो उठी।

'केहरी की कन्दरा मे कुतिया का क्या काम!'

नरसिंहों जन्म देने के लिए वीरमाताओं की आवश्यकता है। फिर क्या था, इस रंडी के आसपास षडयन्त्र ने जन्म लिया। वासना के द्विपद पशु एकत्रित हो गए। दूध में कालकूट विष मिलकर महात्मा को दे दिया गया। उस विष ने अपना घातक प्रभाव दिखाया। धृतिशील दयानन्द ने हँसते हँसते इस परिस्थिति को भी सह लिया। उन्होने विषदाता को भय मुक्त ही नहीं किया, वरन् धन भी दिया, जिसके चक्कर मे पड़कर उसने यह दानवीय कार्य किया था। कितने महान् थे वे! क्षमा मे धरती माता के समान। स्वार्थी इन्सान ने नीचता की हद कर दी, और महर्षि ने मानवता की ऊँचाई के सर्वोच्च शिखर पर अपनी यश ध्वजा फहरादी।

सागर की भांति गम्भीर बने हुए उन्होने भीष्म पितामह की शर शय्या वाली घटना की पुनरावृत्ति सी कर दी। विष विदग्ध भौतिक शरीर से वे आत्मा की दिव्यता का पावन सन्देश सुनाते रहे।। वे काल को पराजित क ने वाले महामानव थे, क्योंकि मौत से संघर्ष करते हुए वे मलिनता का निराकरण करते रहे।

अपनी किशोर अवस्था में बहिन और चाचा की मृत्यु की विभीषिका में उन्होंने मौत पर विजय पाने का व्रत लिया था। उन्होंने राष्ट्र के मृतवत् शरीर में साधना संजीवनी का प्रयोग किया। उन्होने शूद्रो को तथा स्त्रियो को वेदमाता के सन्देश ग्रहण करने का अधिकारी बताया। वेदों की अर्थ गरिमा को उन्होंने जन सुलभ किया। वर्णाश्रम व्यवस्था के पुनरुद्धार का अनुपम सिंहनाद किया।

ईश्वर के सच्चे स्वरूप का निर्भीकता से



प्रतिपादन किया । इन सारे कार्यों से पापी पाखण्डी दलमदल हिल गया ।

डॉक्टर लक्ष्मणदास की चिकित्सा एवं सेवा भाव से प्रभावित हो उन्होंने इस सच्चे इन्सान को एक दुशाला तथा कुछ रुपये देने चाहे परन्तु वह तो मानवता मे चार चांद लगाने वाला निकाला । कहने लगा, अगर मेरे पास धन होता तो इस अनुपम देह को बचाने के लिए आपके एक-एक रोम पर लाखों रुपये लुटा देता । महर्षि जी ने भाव विभोर अश्रुपूरित नेत्रों से कहा ।

'आर्यावर्त का सच्चा आर्य ऐसा ही होता है ।'

आधि व्याधि से मोर्चा लेते हुए भी देव दयानन्द आर्यत्व का प्रचार एव प्रसार कर रहे थे, अतएव वे मृत्यु जयी थे ।

३० अक्तूबर १८८३ मगलवार दिवाली का त्यौहार । महर्षि जी ने वेद के मन्त्रों का पाठ किया । संस्कृत में ईश्वरोपासना की । हिन्दी में परम पिता परमात्मा का गुण कीर्तन किया । गायत्री मन्त्र का पाठ किया । कुछ देर समाधिस्थ रहकर नेत्र खोल दिए और बोले, 'हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमान् ! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, हे सच्चिदानन्द ! हे करुणावत वारिधे ! तूने अच्छी लीला की' वे जगदम्बा से ऐसे बातें कर रहे थे, जैसे कोई बच्चा अपनी मां से बातें करता है । इस घटना से प्रतिभा शाली गुरुदत्त में परिवर्तन आ गया । जाते-जाते भी वे आत्मा की उदात्त गरिमा से नास्तिक बना गए अतएव वे मृत्युंजयी थे । कविवर शकर के शब्दो मे–

'आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया,
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया।
शकर दिया बुझाय दिवाली को देह का,
कैवल्य के विशाल वदन मे खिला गया ।

आर्यसमाज पानीपत का वार्षिकोत्सव

"आर्यसमाज बडा बाजार पानीपत का वार्षिकोत्सव २, ३, ४ नवम्बर १९७३ को सम्पन्न होने जा रहा है । इस अवसर पर भारत के अनेक विध सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पधार रहे हैं । सर्वश्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश, पं०शिवकुमार जी शास्त्री ससद् सदस्य, पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री कुलपति गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार, पं०रामदयालु जी शास्त्री तर्क शिरोमणि अलीगढ़, प्रो० रत्नसिंह जी एम०ए० गाजियाबाद, प०हरपाल जी वेदवाचस्पति आदि । उत्सव से पूर्व ता० २९ अक्तूबर से श्री पं० रामदयालु जी शास्त्री द्वारा वेद कथा होगी ।

–ठाकुरदास आर्य प्रचार मन्त्री

आर्यसमाज

(१)

जड़ मूरत गढ़ लगा हुआ था पूजा में मानव अवसन्न ।
पतनोन्मुखी ध्यान धारक था जग नभ भी था तमसाछन्न ।।
तभी सच्चिदानन्द रूप उस निराकार शिव का अधिकार ।
अजर अजन्मा अनुपम त्यागी सर्वेश्वर था सर्वाधार ।।
तन आत्मन जन-जन की उन्नति को किसने दी दी आवाज ?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज !

(२)

अन्ध भक्ति गुरुडम आलस में था प्रमाद तन्द्रालस लीन ।
जब मानव अप मे खप खोया भूल-भुलैय्या भटका हीन ।।
बाबा वाक्य प्रमाण अकल का नहीं दखल था मजहब में ।
कोई राम रटे था शुक सा कोई खोया था रब में ।।
दुरित छोडकर भद्र प्राप्ति मे किसने किया वेद का राज ?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज !

(३)

श्रेष्ठ सरल सम्पर्क गिरा थी अखिल विश्व में जो कि प्रसिद्ध ।
मृत संस्कृत को देव गिरा सब भाषा जननी करके सिद्ध ।।
उस अमृत का वर्षण वृत ले उस गंगा का करके त्राण ।
कौन भगीरथ-सा श्रमरत था जो सो उठी गिरा म्रियमाण ।।
किसने भूषित कर भाषा को पहिनाया था सिर पर ताज ?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज !

(४)

ईश जीव आत्मन परमात्मन में थी कभी नहीं दूरी ।
अब भी है ना और न होगी पर अज्ञों की मजबूरी ।।
भ्रम में भटके विभु को खरपे गोलोकों काबा काशी ।
प्राप्त पास को दूर देखते ज्यों जल में मछली प्यासी ।।
हटा आवरण भूल सरल पथ किसने उसे बताया आज ?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज !

(५)

लुप्त वेद उच्चारित होते थे बस जब संस्कारों में।
गीत गड़रियों के कहलाते थे विद्या आगारों में ।।
सत्य नित्य विद्या का पुस्तक पठन और पाठन कर ध्यान।
सत्सगों में सांध्य भजन में करके साम ऋचा का गान ।।
वेद मार्ग पर चलने का श्रम कौन कर रहा जग के काज?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज!

(६)

पाप पंकिला जनम घृणास्पद सती व्रती पर हो नारी।
जो जाती थी गिनी सम्पदा औ ताड़न की अधिकारी ।।
नारी का नीलाम कि उसका था जीवन पर्दे की कैद।
समता दे कन्या गुरुकुल में पढ़ने पाई वह भी वेद ।।
किसने उसको नर सम माना दे वंदुष्य पुरुष सम आज?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज ।।

(७)

धर्माचरण कर्म का धारण करना है सब भांति विकास।
मन वच कर्म धर्म के पालन मे ही करता मोक्ष निवास ।।
कर्म काण्ड के भाण्ड फोड़कर दे प्रकाण्ड मेधा का दान।
सत्यासत्य सूप फटकारा किसने किया सत्य सधान ।।
किसने धर्म धड़ों को फोड़ा किसने जोड़ा आर्यसमाज?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज!!

(८)

सब धर्मों मे निज ईश्वर की रूपाकृति रच मनहारी।
वाहन आयुध साज सजाये क्या ही सुन्दर बलिहारी ।।
भक्तों की रक्षा को भगवन् गरुड़सिंह चढ़ आता था।
गधे ऊँट भैंसे चूहे तक को नर शीश झुकाता था ।।
भेंट बली परसाद मिटाकर किसने मेटा रिश्वत राज?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज!

(९)




मन में जिसने गढ़ रक्खी है ईश्वर की मूरत न्यारी।
बिन सोचे बिन समझे जानें करते पूजा तत्कारी॥

जीवन भर घनचक्कर से उस मूरत में विभु को खोजें।
व्रत रक्खें उपवास करेंगे या फिर रक्खेंगे रोजे॥

काफिर काबिल कत्ल भाव का किसने मेटा घृणित समाज?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज!!

(१०)

द्वेष परस्पर औ अनेकता मिटा कहा सब एक बनो।
किसने कहा प्रभु करुणामय जगत्राता बस नेक बनो॥

सदाचार का सदविचार रख किसने अबला और अनाथ।
परित्राण को आश्रम खोले विद्यालय दे किया सनाथ॥

किसने अज्ञ उद्धारण को गुरुकुल के फिर रचे जहाज?
प्रश्न कई पर सबका उत्तर एक मिलेगा आर्यसमाज!!

(११)

अगर आर्य हो तो फिर अपना वायदेय औदार्य दिखा।
कृण्वन्तो का घोष करो फिर वेद विहित सन्मार्ग सिखा॥

वेदोच्चार सांध्यवंदन कर सन्मति ऋत्विज होना है।
यह जागृति की बेला इसमें अब न किसी को सोना है॥

जो सोये हैं उन्हें जगाओ जागृत को गतिशील करो।
गतिशीलों को बागडोर दो अब इसमें ना ढील करो॥




—परसराम कुचामन सिटी (राजस्थान)

उत्सव

आर्यसमाज मैनपुरी

आर्यसमाज मैनपुरी का ६२ वाँ वार्षिकोत्सव १३ से १५ नवम्बर तक मनाया जायगा। बड़े-बड़े विद्वान् पधार रहे हैं।

—सुरेशचन्द्र एडवोकेट म०

आर्यसमाज देवबन्द

आर्यसमाज देवबन्द का वार्षिकोत्सव १६ से १८ नवम्बर तक होगा। १२ नवम्बर से सामवेद पारायण यज्ञ होगा।



युग-पुरुष दयानन्द

(ले०—श्री प० शिवदयालु अध्यक्ष आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर)

महर्षि स्वामी दयानन्द ने विश्व में व्याप्त जाति व वर्ण भेदों से ऊपर उठकर सम्प्रदायवाद की खाईयों का विभेदन कर संकीर्ण राष्ट्रीयता की खाइयों को पाट कर विश्व धर्म का, मानववाद का एवं विश्वबन्धुत्व का संसार को सन्देश दिया



श्री प० शिवदयालु जी

है । दयानन्द निश्चय युग पुरुष एवं युग दृष्टा था, और था, सर्व तो मुखी क्रान्ति का अग्रदूत ।

दयानन्द ने सनातन वा युग धर्मों का स्पष्ट विश्लेषण किया है, जबकि नाना मत सम्प्रदायों के प्रवर्तकों और उनके अनुयायियों ने युगधर्मों को सनातनधर्म मानकर मतवादिता, मतान्धता और रूढ़िवादिता को संसार में पनपाया है । और नाना पन्थों ऊँच नीच काले गोरे आदि भेदों को जन्म दिया है ।

दयानन्द-त्रयी अर्थात् ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश व संस्कार विधि को लिखते समय तथा वेदों का भाष्य करते समय दयानन्द ने अपने इन महान लक्ष्य को सदा सामने रखा है

दयानन्द के भाषणों और प्रवचनों में भी यह लक्ष्य स्पष्ट व्यक्त है । गौतम, कपिल, कणाद, व्यासादि के दार्शनिक-सूत्रों पारस्कर, आश्वलायन, गोभिलादि के कल्प सूत्रों, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि के श्लोकों तथा कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, छान्दोग्य बृहदारण्यकादि उपनिषदों के उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए अपने महान् लक्ष्य के अनुकूल ही अर्थवाद को केवल ग्रहण किया है, उससे भिन्न को नहीं । वेदमन्त्रों का निर्वचन करते समय जहाँ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, शतपथ निरुक्त बृहद्देवता आदि को ऋषि ने आधार माना है, वहाँ यौगिक साधना द्वारा विकसित अन्तर्दृष्टि एवं दिव्य ऊहा का भी उसने सहारा पकड़ा है ।

उपर्युक्त आर्ष प्रमाणों के विपिन में तथा खण्डन-मण्डन के झञ्झावातों से विज्ञ पाठकों एवं स्वाध्यायशील मानवों को ऊपर उठने के लिये दयानन्द ने अपने ग्रन्थों की भूमिकाओं में और विशेष कर सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में तथा स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में अपना अभीष्ट स्पष्ट कर दिया है । वेद मन्त्रों का निर्वचन करते समय

शौनकाचार्य के बृहद्देवता की मान्यताओं का ऋषि ने सर्वथा समर्थन नहीं किया है, यथा सन्ध्या मे अथर्ववेद के मनसा परिक्रमा सूक्त का निर्वचन करते समय बृहद्देवता के २४ देवताओं को मान्यता न देकर केवल एक देवता परमात्मा का ही सारे सूक्त में प्रतिपादन किया है। यजु० १६ ३७ व १६ ४६ के देवता बृहद्देवता के अनुसार सरस्वती और धी क्रमश संहिता मे अंकित है, जबकि ऋषि पितर देवता मानकर भाष्य भूमिका मे इन मन्त्रो की व्याख्या की है।

ऋषिवर के ग्रन्थो का अध्ययन भी इन्हीं उदात्त भावनाओं को हृदयगम करके करना चाहिए। स्वामी जी ने अपने लेखको के छल प्रमाद व अज्ञता को जो आज दिन भी किसी मात्रा में संशोधन के उपरान्त भी लक्षित है, अपनी भूमिका मे सकेत किया है।

यह घोषणा करना कि ऋषि के ग्रन्थों में जो कुछ भी छपा है, वह अक्षर अक्षर सत्य है, मतान्धता और अन्धविश्वासों को पनपाना है, और उस युग-पुरुष को एक नूतन सम्प्रदाय का प्रवर्तक प्रतिपादित करना है। साथ ही विश्व-धर्म के प्रचारक आर्य समाज को एक सकुचित सम्प्रदाय मे परिवर्तित कर देना है। ऐसा कहने वाले अपने को ऋषि का अनन्य भक्त सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में वह ऋषि की स्पष्ट घोषणा के विपरीत आचरण कर अन्ध श्रद्धा को जन्म देने वाले मात्र हैं। आज आवश्यकता इस बात की है, ऋषि के ग्रन्थों की मानवता एव बुद्धिवाद के दिव्य प्रकाश में व्याख्या की जाय। विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि से सम्बन्धित स्थलों पर गहन अध्ययन व मनन के उपरान्त आवश्यक टिप्पणियां दी जांय।

महर्षि के प्रति—

शूल पथ के हटाते रहे,
फूल उन पर बिछाते रहे—
एक रेखा न तम की रहे
ज्योति जग को लुटाते रहे।

हर गली जगमगाती रहे
वाटिका लहलहाती रहे,
इसलिए पी गए तुम गरल—
हर कली मुस्कराती रहे।

जिन्दगी भर दिया ही दिया,
अपनी खातिर न कुछ भी लिया,
मृत पड़ी जाति फिर जी उठे—
प्राण तक को हवन कर दिया।

——चन्द्रप्रकाश

ऋषि के प्रति अन्य मतप्रवर्तकों की भान्ति अन्ध श्रद्धा जागृत करने से ससार का लाभ होने वाला नहीं। ससार भी विभिन्न जातियों व वर्गों की उपेक्षा करके आर्य समाज को हिन्दू जगत का एक सम्प्रदाय मात्र बना देना है, और ऋषि की भावनाओ के प्रति द्रोह करना है।

आर्यसमाज इस्माईलपुर

आर्य समाज इस्माईलपुर (बिजनौर) का वार्षिकोत्सव २ से ४ नवम्बर तक मनाया जायगा।

—मन्त्री

दीप-निर्वाण



श्री कृष्णलाल जी कुसमाकर

कैसा अभ्र आभा पर अनभ्र वज्रपात हुआ ?
देख देख उन्मना विरक्ति-अनुरक्ति भरे—
अम्बर ने थाल मोतियो का बिखराना छोड़—
—शशि ने छिपाया मुख ।
रजनी ने फटिक शिला सी श्वेत साड़ी फाड़—
असित अमा सा पट अङ्क पर चढ़ाया है ।
देखो नभ ओर !
कोई तारा टूटता है मानो अबला-वियोगिनी का—
उर टूटता है तप्त ।
अजर जीवन का हो रहा पतन है,
फुल्ल अम्भोज सा खिला न कहीं मन है ।
द्रुति द्रुम अंक से लताएं धरणी गिरीं,
मङ्गल नक्षत्र से अमङ्गल है झांकता ।
करुणा का क्रोड छोड पक्षी नीड से उड़ा,
देखो हिमगिरि भी हृदय को थाम बैठा है ।
हिम का न खण्ड कोई शैल से सरकता,
मानों भव नश्वर का वैभव निरखता ।
वन का विहङ्ग वनचारी भी कुरङ्ग कहीं—
दशनो से तृण का न कोई ग्रास लेता है ।
जीवन-प्रपात अविराम जा रहा है कहीं—
मृदु लहरन्त-सिन्धु अवगाहने ।
लोचन बखेरते अजस्र मोतियों की माल—
जीवन प्रदायिनी प्रकृति बनी मौन है ।
देखो शुभ्र शय्या पर अमन्द भावना लिए—
क्रान्ति कान्ति-शान्ति युक्त देव पड़ा कौन है?
चिन्ता की न अंकित ललाट कोई रेखा है,
प्रभु के विचित्र विश्व को भी अवरेखा है ।
—'उत्कट लालसा हृदय से प्रिय के लगूं'
भक्त-जन घेरे हैं मयंक-मुख देखते ।
पावन पयोधि मे प्रशान्त देव दयानन्द—
पूर्ववत् आशा से । अमिट अभिलाषा से ।
मधुर उपदेशो से । अमर अवशेषो से ।

प्यारी आर्य-जाति की सुरक्षा का महान् मन्त्र—
आर्य पुरुषों के हृदयों मे यही भरते—
—"विश्व नाशवान है, शरीर नाशवान है ।
स्वाभाविक धर्म सुख दुख भोगना है सदा—
आत्मा अमर है, उसी का मृदु गान है ।

निष्काम भावना से कर्म करते चलो,
मिथ्या ममता को त्याग मोद भरते चलो ।
कुत्सित कामना के कीट हरते चलो,
दम्भ-छल द्वेष से सदैव डरते चलो ।

'विश्व-बन्धुत्व' का पुनीत उपदेश लिए—
मञ्जुल मनुष्यता की जाह्नवी बहावो फिर ।
लीलाधाम 'राम कृष्ण' जन्म लेंगे बार-बार,
बदली निराशा की सदा को हट जाएगी ।"

–इन उपदेशों से हृदय का ताप हरते।
–शूल सभी शान्त थे, हृदय एक शूल था।
'वेद का प्रचार हो, अविद्या आसुरी हटे,'
भावना से करते 'प्रणव' का पुनीत जाप–
भव-बन्धनों से मुक्त होते कट जाते पाप–
प्रभु के मिलन की प्रतीक्षा थी महान् एक–
शय्या शायी साधु दयानन्द कहते हैं–
–'भक्त! आज कृष्ण पक्ष है, अमा का तम-तोम है।
जाने आज मख को छिपाता कैसे सोम है?
–जब गृह-गृह में प्रसन्नता का पारावार,
उमड चला है ध्वन्स कर, दुःख के कगार।
लोक में आलोक भी विचित्र दिखलाता है।
–'दीपावली, कम्पित हो शीश धुनती है खड़ी–
जल के जलाती है वियोगियों के चित्त को?
दीप शिखा उन्नत स्व शीश को उठाके आज–
कुण्ठित हुई है मेदनी के पृष्ठ-भाग पर?
लज्जित रमा है?
तम तोम से अमा है?
शून्य शक्ति से क्षमा है। (पृथिवी)
नभ देखिए थमा है।
यह 'कमला' प्रकाश में बताओ क्यों न आती है?
क्योंकि-क्रूर दृष्टि से कलंकित पुनीत भाल।
–'राष्ट्र–निर्मायक को,
विश्व के विधायक को,
न्याय--नीति–नायक को,
दिव्य–गान–गायक को,
करके हरण ले गई है उस लोक को–
–जहाँ पर जाके फिर आना नहीं होता है।
किन्तु प्रभु देख के प्रकृति का नवीन रङ्ग–
–अमर विचार उठे।
–प्रेमी बलिहार उठे।
नश्वर स्वरूप का विचित्र-चित्र सामने।
स्मित हास्य में, मधुर अधरों के पट–
खुल न सके, कह न सके।
प्रीतम के गान थके।
–करवट ली अंक में प्रसन्नता से बैठने।
अणव-आनन्द के प्रणव में लवलीन थे।
– "इच्छा प्रभु पूर्ण हो।'
–प्रतिध्वनि हृदय से उठी।
रह गए अवाक अवनी के नर-नारी सब।
भक्त गुरुदत्त भी चकित चित्त मौन थे
गूंगे गुड जैसा वे मधुर-मधु चखते–
धन्य–धन्य देव। ज्ञान दीपक जगा के चले।
४ ८ ८ १
श्रुति, वसुयाम, अष्ट सिद्धियाँ विरच पथ–
ले, चलीं चढ़ाके रथ घोर विश्व में हुई।
–'खोल दिए सुन्दर कपाट स्वर्ग वासियों ने–
स्वागत को आ गए दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र–
हृष की हिलोर में सुमन बरसाते हुए–
शून्य नभ-लोक ने निराला गुरु पा लिया।
'धन्य धन्य भाग्य हैं, विजेता मिला न्याता है।
स्वर्ग की सभा का अधिराज है, प्रणेता है।
चारों ओर छा गई प्रतिध्वनि यही पुनीत–
'–तेरा युग–युग में अमर वर गावें गीत–
शोक! आर्य जाति तूने विष को पिलाया जिसे–
अमृत पिला के 'निर्वाण नीड' को चला।
लज्जित भी लज्जा है अनूठा सत्कृत्य देख–
घातक को! पातक को!!
राष्ट्र के विघातक को–
–जिसने म्रियमाण किया–
उसका परित्राण किया।
ऋषि था, महर्षि था व्रतीथा, देव दिव्य था।
फलवान्–आम्र सा उदार सौम्य–सन्त था।
विश्व की महत्ता का विमोहक महन्त था।
भारतीय–वाटिका का विमल वसन्त था।

–किशनलाल 'कुसुमाकर'

वैदिक पंच शील

(ले०—श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट पूर्व प्रधा दशिक सभा)

वैदिक मर्यादा और सभ्यता के आधार पर हम निम्नलिखित पाँच बातो को धार्मिक जीवन के आधार भूत सिद्धान्त कह सकते हैं, या उनको वैदिक पचशील कह सकते हैं। पाँच आवश्यक अग निम्न प्रकार हैं—

१—प्रार्थना, प्रतिज्ञा, पुरुषार्थ पवित्रता, प्रचार

सबसे आवश्यक बात विचारणीय यह है कि सारे विश्व का सचालन ईश्वर के अधीन है। मनुष्य जीवन की सफलता के लिये ईश्वर की प्राथना सबसे अधिक आवश्यक अग है सब कार्य और सब कर्तव्य ईश्वर की प्रार्थना से आरम्भ होने चाहिये। प्रार्थना मे ईश्वर के गुणों को ध्यान मे लाना है। उन गुणो को अपने जीवन का आधार बनाना ही सच्ची प्रतिज्ञा है प्रतिज्ञा का सम्बन्ध मानसिक दृष्टि से बुद्धि के प्रयोग से सम्बन्धित है। प्रार्थना के आधार पर बुद्धि को पवित्र बनाना सच्ची प्रतिज्ञा है। प्रतिज्ञा का सम्बन्ध शुद्ध ज्ञान से है। शुद्ध ज्ञान के साथ कर्म की मर्यादा भी अनिवार्य है और इस दृष्टि से प्रतिज्ञा के साथ पुरुषार्थ का समन्वय होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिज्ञा और पुरुषार्थ अर्थात ज्ञान और कर्म जीवन को पूर्ण बनाते हैं और ये बात भी ध्यान में रखनी है कि ज्ञान और कर्म के पूर्ण रूप से समन्वय के लिये पवित्रता आनवार्य है। पवित्रता से अभिप्राय सदाचार शुद्ध कर्म व चरित्र गठन से है। प्रार्थना, प्रतिज्ञा, पुरुषार्थ और पवित्रता चारो मिलकर व्यक्ति का पूर्ण रूप से धार्मिक बनाते हैं। और जब व्यक्ति पूर्ण रूप से धार्मिक बन जाता है, तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि वो दूसरो को सुधारने और लाभ पहुँचाने के लिये सद्गुणो का प्रचार करें। गम्भीरता से विचार करने पर ऊपर लिखी चारो बातें प्रचार की सफलता के लिये अति आवश्यक हैं, परन्तु चिन्ता इस बात की है कि प्रचार की ओर जितना ध्यान होना चाहिये, उतना नहीं होता। और इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह है कि जो वैतनिक या अवैतनिक रूप से आर्य समाज के प्रचार मे सलग्न हैं, वो प्रचार के लिये योग्य बनने की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। प्रचारको में पद प्राप्ति और प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं होना चाहिए। महर्षि के निर्वाण दिवस के उपलक्ष मे हमे इस वैदिक पचशील की ओर अवश्य ध्यान देना



श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट

महर्षि दयानन्द स्मरण



दयानन्द ऋषिवर के गुणगान, हम सब गाते गाते हैं।
पर अन्त न पाते चरणों मे, उनके शीस नमाते हैं।।
सत्यव्रत-धर वे वीर शिरोमणि, निर्भयता के अनुपम रूप।
स्मरण कर उनके दिव्य गुणों को, जीवन धन्य बनाते हैं।।



पर उपकार परायण निशिदिन, वेदेश्वर के सच्चे भक्त।
ऋषि का जीवन यज्ञ रूप था, हम उसको अपनाते हैं।।
खाए पत्थर ईंटें खाईं, पिये जहर के प्याले।
पर नहिं सत्यमार्ग जन छोड़ा, उनको दिल मे ध्याते हैं।।
सब से प्रेम करो न किसी को, घृणा दृष्टि से देखो।
यह सिखलाते यतिवर के हम, शुद्ध मार्ग पर जाते हैं।।
वेद सत्य विद्या के पुस्तक, उनका प्रचार करके।
सत्यमार्ग के दर्शक ऋषिवर, को हम सीस झुकाते हैं।।
दीपावली के दिन पूर्ण रूप से, था जिसने बलिदान किया।
उस यतिवर पर हम अब अपने, श्रद्धा कुसुम चढ़ाते हैं।।



तेरी इच्छा पूरी होवे, तू ने अच्छी लीला की।
कह जिसने समाप्त की लीला, वे ही देव कहाते हैं।।
आओ उनके अनुयायी हम, सारे सच्चे आर्य बनें।
पावन जीवन हो हम सबका, यह व्रत लेकर जाते हैं।।

—धर्मदेव (वि० मा०)

चाहिये। महर्षि दयानन्द सबसे अधिक व्यक्ति के निर्माण पर बल देते थे। आर्य समाज के दस नियमों मे पहले पाँच नियम वेद और ईश्वर के आधार पर व्यक्तियों को पूर्ण रूप से धार्मिक बनाने के लिये हैं। नियम संख्या ६, ७, ८ और ९ समाज निर्माण के लिये हैं, जो व्यक्ति श्रेष्ठ, सज्जन, ईश्वर पुत्र होंगे, वही आर्य समाज में आयेंगे, और उनका समुदाय आर्य समाज होगा, और जब व्यक्ति और समाज दोनो का निर्माण पूर्ण रूप से हो जायेगा, तो आर्य समाज का काम पूर्ण हो सकेगा, और उसको पूर्ण रूप से सफल कहा जा सकेगा। आर्य समाज से सम्बन्धित उसकी ओर आकर्षित हो जाने की ओर ऊपर लिखे पञ्चशील पर ध्यान देकर जीवन को पूर्ण रूप से पवित्र बनाना चाहिये।

———

महा-प्रयाण

(ले०—श्री प० वीरसेन वेदश्रमी, वेद सदन, महा[illegible], इन्दौर १, म० प्र०)

उस दिवाली के अवसर पर देव दयानन्द के मुखमण्डल पर से एक अपूर्व ज्योति चारों ओर आलोकित हो रही थी। सैकडो दीपों की ज्योति से जो तेज एवं सौन्दर्य विकसित नहीं हो सकता था, वह आज उनकी दिव्य देह से छलक रहा था। कुछ ही क्षणो मे अजमेर नगर में यह समाचार सर्वत्र व्याप्त हो गया। जनता महर्षि के दिव्य दर्शनो को प्राप्त करने के लिये उमड पडी।

महर्षि के कमरे मे एक दिव्य गंध वह रही थी—एक दिव्य तेज प्रसारित हो रहा था, और एक दिव्य ध्वनि—ओ३म तरत्समन्दी धावति धारा सुतस्यान्धस। तरत्समन्दी धावति। इस साम मन्त्र की गति कर रही थी। महर्षि मौन थे। परन्तु उनके चित्त मे इस मन्त्र की अव्यक्त ध्वनि वहाँ के वातावरण के समष्टि चित्त मे गति कर रही थी। वहाँ का वातावरण शान्त था स्तब्ध था।

मन्त्र का दिव्य भाव दर्शको को प्रभावित कर रहा था। अनायास ही भक्तगणो के हृदय मे-तरत्समन्दी धावति—के भाव प्रस्फुटित होने लगे। आज देव दयानन्द भक्ति में निमग्न हैं, देह के दुःखों को सर्वथा भुलाकर संसार सागर से तरकर प्रभु की ओर ही अतिवेग से, अबाध गति से बढ़े चले आ रहे हैं। आज उनकी यह मुक्ति की ही ओर आरोहण है।

भक्त गण देव दयानन्द की दशा को देखकर चकित हो रहे थे, और उनसे कुछ वार्तालाप करने के लिए अधीर भी हो रहे थे। कुछ [illegible]नी सेवा एवं भेंट अर्पण करने को उत्सुक थे। महर्षि के ओष्ठों पर कुछ शुष्कता अनुभव कर किसी ने साहसकर पूछा—हे भगवन्! जल लाऊँ? 'हां! प्यास! प्यास!! प्यास!!!' भक्त दौड-पानी लाए—गिलास और लोटों मे जल प्रस्तुत किया। देव दयानन्द ने उन सबकी ओर देखा। परन्तु किसी का जल ग्रहण नहीं किया।

भगवान् दयानन्द बोले—आज इस जल की प्यास नहीं है। आत्मा की प्यास तो इससे नहीं बुझेगी—और कहने लगे-अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णा विदज्जरितारम्। मृडा सुक्षत्र मृडय। मैं प्रभु-भक्ति रूपी जलो के मध्य मे खड़ा हूँ-प्रभु की स्तुति एवं उपासना मे निमग्न हूँ परन्तु अभी तृप्ति नहीं हो रही है। मैं तो उसी भक्ति की प्यास से व्याकुल हूँ। आज की प्यास शान्त नहीं हो रही है। वह तो बढ़ती ही जा रही है। आज तो उसी प्रभु के पूर्ण मिलन से ही तृप्ति होगी—अन्यथा नहीं।

चिंतातुर भक्त, वैद्य और डाक्टरों को बुलाने लगे। ऋषि ने कहा—मेरा वैद्य मेरे पास है। मेरा डाक्टर मुझ मे विद्यमान है। आज तो उस अविनाशी ईश्वर के हाथ मे मैंने अपनी नाडी दे दी है। वह तो काया-कल्प करने की सामर्थ्य रखता है। यह देह तो नश्वर है। विषजन्य रोगों ने इसे असमर्थ बना दिया है। सामर्थ्यवान् प्रभु ने इस देह को अब त्यागने की सामर्थ्य—उर्वारुकमिव-

बन्धनात्-प्रदान की है । आर्य समाज रूपी उर्वारुकदशागुन-(दस नियमों वाला) मधुर फल आज सर्वत्र देश मे अपनी दिव्य मधुर गन्ध प्रसारित कर रहा है । आज उसकी मनोहारी गन्ध से सब उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं । उसको मैं आप सबको प्रदान कर चुका हूँ । यही मेरे जीवन का फल-परिणाम है ।' अब प्रभु से प्रार्थना कर रहा हू-मृत्योर्मुक्षीय-मा अमृतात्मृत्यु माध्यम से इन भव-बन्धनों से मुक्त होकर अमृतमय प्रभु को प्राप्त कर उससे पृथक न होऊँ । हे प्रभु ! इष्णन् इषाण-मेरी कामना तेरी कामना हो जाये । ऐसा सोचकर देव दयानन्द पुन परमात्मा मे समाहित चित्त हो गये, और मन्त्र द्वारा प्रभु से कहने लगे । ओ३म् यदग्ने स्यामह त्व, त्व वा का स्या अहम । स्युष्टे सत्या इहाशिषा । अर्थात् हे प्रकाशस्वरूप, ज्योतिर्मय परमात्मन ! मेरी कामना आपकी कामना हो जावें या आपकी कामना मेरी हो जावें तो आपकी कृपा से आपके सब आशीर्वाद सफल, सत्य हो जावेंगे । मैंने अपने देव सम्बन्धी कार्य एव कामनाओं को पूर्ण करने के लिए आपको अर्पित कर दी है । अब यह देह भी आपके समर्पित है । आपकी इच्छा पूर्ण हो-यह शब्द कहकर देव दयानन्द शान्त हो गए-परम शान्त हो गए ।

वाणी प्राण मे, प्राण मन मे, मन चित्त मे, चित्त तेज में क्रमश. विलीन होते गए, और देव दयानन्द का सूक्ष्म शरीर स्थूल देह को त्याग कर उत्तरोत्तर ज्योतियों को प्राप्त कर हम से सदा के लिए अदृश्य हो गया । सबके नेत्रों मे अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं।

—

दीपावली पर्व

[गीतिका छन्द]

आगई सौभाग्यवाली यह दिवाली आ गई ।
प्रेम की प्याली निराली शानवाली आ गई । १

पुण्य कार्तिक की अमावस्या सदा स्मरणीय है ।
आज जो काली निशा मे जगमगाहट ला गई ।।२

युक्त हो है सवथा, फैला अंधेरा दूर हो ।
दीपकों की ज्योति इससे सब दिलों को भागई ।।३

भव्य लक्ष्मी आ रही है आज ही सबके यहां ।
दीन दिन की भावना भी देख ज्यो सरसा गई ।।४

बँट रहे मिष्ठान्न, खीलें, खेल कूद हो रहीं ।
हास वा उल्लास शुभ अभिलाष आशा छा गई ।।५

प्रेम से सयुक्त हो खा पी रहे हैं सब जने ।
वैश्य जन की श्री विभूति श्रेष्ठ शोभा पा गई ।।६

द्यूत या अश्लील बातें आर्य तो करते नहीं ।
वेद का सिद्धान्त मानो रात यह समझा गई ।।७

वह दया आनन्द नामी आज योगी धन्य है ।
हर्ष से विषपान कर जिसकी अमर छवि छागई ।।८

तुच्छ दीपों से भला काली करालो यह निशा ।
क्या मिटेगी, इसलिये ज्वाला धधकती आ गई ।।९

देश अथवा धर्म पर बलि हेतु जल जाओ खड़ ।
कह रही यह दीपमाला, क्या समझ में आगई ।।१०

—विद्यानिधि शास्त्री, आचार्य गुरुकुल
भैंसवाल, रोहतक

अद्वितीय महापुरुष महर्षि दयानन्द

[श्री भक्तराम जी (अफ्रीका वाले) दिल्ली]

पाखण्डानां विनाशाय वेदानां रक्षणाय च ।
धर्म संशोधनार्थाय दयानन्दस्य जीवनम् ।।

निःसन्देह महर्षि दयानन्द जी सरस्वती महाराज का प्रादुर्भाव कवि के उपर्युक्त शब्दों में वर्णित परिस्थितियों के कारण हुआ । महर्षि के आविर्भाव से पूर्व देश,जाति और धर्म की जो-जो दीन हीन और मलीन दशा थी उससे कोई व्यक्ति अनभिज्ञ नहीं । उस शोचनीय अवस्था को देखकर ही विक्रमी सम्वत् १९२४ के कुम्भ के मेले के अवसर पर एक कुटी बनाकर उसके ऊपर 'एक पताका महर्षि ने लगा दी थी जिस पर लिखा था, पाखण्ड खण्डिनी पताका ।' जिस पुनीत उद्देश्य 'सत्य धर्म प्रचार' से उस महामेले पर पधारे थे वह वैदिक धर्म की घोषणा द्वारा पूर्ण हुआ । वहाँ उनके अनेक व्याख्यान हुये । उन्होंने बहुत शास्त्रार्थ किये और प्रतिपक्षियों पर विजय प्राप्त की ।

कुम्भ पर महर्षि को भारत का एक लघुचित्र देखने को मिला । जिस से प्रभावित होकर उन्होंने केवल एक लंगोट रखने का व्रत लिया और ईश्वर चिन्तन से शक्ति बढ़ाने के हेतु घोर तपस्या करने लगे । यहाँ तक कि बोलना चालना भी बन्द कर बैठे और अपनी कुटी में समय बिताने लगे, परन्तु सत्य के पुजारी और धर्म प्रचारक देव दयानन्द को शीघ्रातिशीघ्र मौन व्रत त्यागते ही बना । तत्पश्चात् उस महान् ऋषि ने जो संसार का कायाकल्प कर दिया यह विश्वविदित है ।

परम हंस परिव्राजकाचार्य व स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज को उस चित्र लिखित पुरुष से उपमा दी जा सकती है जिसे किसी ओर से देखा जाये वह हमारी ओर ही देख रहा होगा। वह सर्वतोमुखी थे । पाखण्ड विनाशक, वेदोद्धारक, धर्मसंशोधक, वैदिक सभ्यता तथा वैदिक संस्कृति प्रचारक, आर्य भाषा प्रसारक, कुरीति निवारक, अनाथ रक्षक, विधवा सहायक, गोपालक, अछूतोद्धारक, नारी सुदशा प्रवर्त्तक, समाज सुधारक, स्वराज्य के सर्वप्रथम आन्दोलन आदि कौन से रूप की झलक उनके जीवन में नहीं मिलती ? योग शास्त्र के समाधिपाद सूक्त २१ 'तीव्र संवेगानामासन्न' के अनुसार पूर्व जन्म के उत्कृष्ट संस्कारों के कारण ही वह अद्वितीय प्रतिभाशाली योगी ईश्वर विश्वास पर अद्भुत कार्य द्वारा संसार को आश्चर्य चकित कर गये । अकेले वे पर करोड़ों से अधिक काम कर गये ।

आखिरकार काम कर निकला,
न चाहे पास पैसा था ।
उसे 'दौलत' की परवाह क्या,
प्रभु जिसका सहेला था ।

अपने आचार्य के किस-किस उपकार का वर्णन करूं तो भी कुछ एक या उल्लेख नीचे किया जाता है-

(१) लोग वेद के नाम तक से अपरिचित थे । मेरे स्वर्गीय पिता बताते थे कि उनके गुरुजी कहा करते 'स्वा० दयानन्द अमृतसर में व्याख्यान देते समय वेद मन्त्रों का उच्चारण करते थे तो बड़े बड़े पण्डित बोल उठते कि साधु स्वयं मन्त्र बनाकर वेद का नाम ले रहा है । एक बार ब्रह्म-

समाज के एक नेता से महर्षि ने वेद मांगे तो उन्होने उपनिषद् प्रस्तुत किये। ऋषि ने जर्मनी से वेद मंगाकर यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण और ऋग्वेद का आधे से कुछ अधिक किया।

(२) भारतवासी अंग्रेजी साहित्य पर मोहित थे परन्तु ऋषि ने कहा वेदो की ओर लौटो और संस्कृत साहित्य का अध्यापन कर वेद तक पहुंचने का यत्न करो।

(३) ऋषि सन्तान वैदिक संस्कृत और वैदिक सभ्यता को तिलांजलि देकर (माई डियर वाइफ) लिखने मे गौरव और 'मेरी प्यारी धर्म पत्नी' मे मान हानि समझती थी। हम अंग्रेजी बोलते, लिखते पढ़ते, खाते पीते और पहिनते थे। विदेशी भाषाओ के पढ़ने में हमें जो आनन्द आता था वह आर्य भाषा मे नहीं। ऋषि ने हमे आर्य मर्यादाओ का पालन करना सिखाया। गुजराती होते हुये उन्होंने अपने सब ग्रन्थ आर्य (राष्ट्र) भाषा मे लिखकर हमारे सम्मुख भारतीय भाषा को अपनाने का उदाहरण रखा।

(४) नारी को ढोल, गवार और पशु की कोटि मे माना जाता और पाव की जूती के सदृश समझा जाता था। यहां तक कि स्वा० शंकराचार्य कृत 'प्रश्नोत्तरी' मे नारी को नरक का द्वार, मदिरा के समान मोहने वाली, त्याज्य, बन्धन, अमृत के समान विदित होने वाला विष और अविश्वनीय कहा गया है। एक स्थान पर 'त्याज्य सुख किम् ?' के उत्तर मे लिखा है, स्त्रियमेव। 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्' कपोल कल्पित श्रुति का प्रमाण देकर देवियों को विद्याधिकार से वंचित रखा जाता था। मातृशक्ति का ऐसा घोर अपमान महर्षि के लिए असह्य था अतः दयावतार दयानन्द का हृदय द्रवीभूत हुआ और उन्होंने नारी पूजा के पक्ष में मनुस्मृति का प्रसिद्ध श्लोक—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः,
यत्रै ता तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया।

बता कर नारियों का खोया हुआ मान प्राप्त कराया। यजुर्वेद के २६वें अध्याय के दूसरे मन्त्र 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम' और' इम मन्त्र पत्नी पठेत्' श्रोत सूत्रादि से स्त्रियो के वेदाधिकार की पुष्टि की।

(५) बाल विवाह के दुष्परिणाम स्वरूप लाखों विधवाएँ विद्यमान थीं। महर्षि बाल विवाह का खण्डन कर और पुनर्विवाह की रीति चला कर विधवाओं के दुःख मिटा गये।

(६) निरक्षर भट्टाचार्य, उर्दू के काइदे से विवाह संस्कार कराने वाले, 'हा ! निमन्त्रण' का पाठ करने वाले और भिश्ती बावर्ची घर का काम करने वाले अजन्मना ब्राह्मण होने का दम भर रहे थे। महर्षि ने उन्हें जन्माभिमान त्याग कर गुण कर्मों की योग्यता प्राप्त करने के लिए कहा।

अपने पथ प्रदर्शक के अगणित उपकारो के सम्बन्ध मे उर्दू के कवि के निम्नलिखित शब्दों में कहना पर्याप्त है—

गिने जायें मुमकिन है सहरा के जर्रे,
समुद्र के कतरे फलक के सितारे।
स्वामी दयानन्द मगर तेरे उपकार,
न गिनती में आये कभी हम से सारे।

धन्य दयानन्द ! आपके ऋण से उऋण होने का यही एक ढग है कि हम ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त ऋषियों के आपके द्वारा बताये गये वैदिक सिद्धान्तों का पालन करें अन्यथा आपके गुण गाते रहना और काम विपरीत करना हमें सदा ऋणी बनाये रखेगा।

आओ आर्य भाइयों ! ऋषि निर्वाण के मांगलिक प्रसग पर हम स्वयं आर्य बनकर संसार को आर्य बनाने का व्रत धारण करें और

आओ ! अन्तः दीप जलावें

[श्री वेदानन्द जी वेदवागीश, गुरुकुल झज्जर, रोहतक]

'दीपावली' वर्ष की प्रतीक्षा के पश्चात् नई उमगे लेकर पुन सजधज के साथ बाह्य कान्ति छिटकाते हुए आ गई है । जहाँ भारत का प्रत्येक घर साफ सुथरा कूडे कचरे से शून्य नयी आभा दिखा रहा है, नये नये परिधान मे आबाल वृद्ध उज्ज्वल, मनोरम आकर्षण लिये हुए है, ज्वार-बाजरा, मक्का, धान का आगमन है, वहाँ इस प्रसन्नता में दीपो की आलोकित मालाओ से गाव-गॉव, नगर-नगर, घर घर का कोना कोना जग मगा उठा है । कहीं भी तो दरिद्र नारायण के वा अन्धकार के दर्शन नहीं हैं । सभी लोग आज धनी हैं, सभी प्रसन्न हैं, सभी आनन्द मना रहे हैं । आओ ! आज के दिन भीतर के दीप भी जला लें । आज से अच्छा दिन इस काम के लिए और कौन-सा होगा । जब कि सर्वत्र प्रसन्नता ही प्रसन्नता छाई हुई है । भगवान् कृष्ण कहते है—

प्रसादे सर्वदु खाना हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि· पर्यवतिष्ठते ।।

जब प्रसन्नता होती है, तो दु ख नहीं रहता । ऐसी दशा मे प्रसन्नमन वाले की बुद्धि सब ओर से खिच कर केन्द्रित रहती है । तो आज सबकी बुद्धि मे निर्मलता है । रजोगुण और तमोगुण से शून्य होकर सत्वगुण विराजमान है । बस आज के दिन इस सत्वगुणी बुद्धि में भीतरी दीप बहुत अच्छे जलेंगे । जहाँ हमारा सब कुछ आज बाहर से प्रकाशमान है, वहाँ भीतरी अन्त करण इन्द्रियें भी प्रकाशित हो उठेंगी ।

निकाल दो—भीतर के राग द्वेषो को बाहर । फेंक दो—मन की कालिमा को दूर । काट दो—मोह के बन्धन आज । छोड दो—जाति-पॉति को अब । बहा लो—प्रेम की गगा भीतर । ले लो—वेद की वाणी अन्दर । बन जाओ सब के राजा आज ।

सचमुच भीतर के दीप जलाने के लिए ही हम महर्षि को स्मृति पटल पर ला रहे हैं । हमारे स्वामी ने हमे भीतर से जगमगा देने के लिए ही इस ससार मे जन्म धारण किया था और बाहर से जगमगाती दीवाली के दिन भीतर भी प्रकाश-मान हो जाने के लिए ठीक इसी समय ही महा-प्रयाण किया था । अभागे हैं वे जो इस बात को नहीं समझ पाये और बाहर दीपक जलाकर भीतर अधेरा किये रहे । आधा अधेरा, आधा उजाला । बात न बनेगी पूरी लाला । बाहर का उजाला कल न रहेगा, भीतर का उजाला सदा रहेगा । इसलिए भीतर दीप जलाओ और पूरी दिवाली मनाओ ।

बाहर के दिये जलाना हम नहीं सिखाते, उसे सब जानते हैं । वे सब के घरों मे भगवान् की दया से जलते रहें । भीतर के दिये जलाना

जो कहते हैं यह करके दिखा दें जिससे मेरे कुन्दन जैसे स्वामी का नाम उज्ज्वल हो । व्रतपति परमात्मा हम आर्य समाजियों को इस व्रत के पालन करने की सामर्थ्य दें ।

सिखाते हैं, जो सीख लेंगे, सदा आनन्द मे रहेंगे। सुनो-हृदय को स्वच्छ कर दो। राग द्वेष, ईर्ष्या क्रोध, लोभ लालच को छोड दो। प्रेम का प्रसार कर दो। भ्रातृ-भाव बढ़ाओ। परस्पर के लड़ाई-झगड़े शान्त करो। स्वय जीओ और दूसरो को जीने दो। आपत्ति में दूसरे की सहायता करो। ईश्वर को कभी न बिसराओ। प्रतिदिन प्रातः सायं उससे अपने कारो-बार की सफलता के लिए प्रार्थना करो। उसके गुणगान करो। दोनों समय सन्ध्या-हवन अवश्य करो, धनक्षीण नहीं होगा। सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय नियमित क्रमशः करो, जिसमें सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्य रत्नमाला, व्यवहार-भानु, संस्कार-विधि, ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि प्रमुख हैं। हो सके तो उपनिषद् और दर्शन ग्रन्थों को भी देख जाओ और इनमे बताई एक एक बात का पालन करो। दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिये कहो। आपके भीतरी आलोक से दूसरों का अंधेरा दूर हो जायेगा। व्यक्ति का निर्माण होकर समाज का उत्थान होगा। आपकी यशः पताका दिग्दिगन्त मे फहरायेगी। आओ! भीतर के दीप जलावें! भीतर के दीप जलावें!! भीतर के!!!

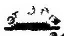
आर्यसमाज लश्कर का उत्सव

आर्यसमाज लश्कर का ७२ वा वार्षिकोत्सव २६ से २६ अक्तूबर तक मनाया जा रहा है।

—मन्त्री

आर्यसमाज देहरादून का उत्सव

आर्यसमाज देहरादून का ६४ वां वार्षिक उत्सव २६ से २८ अक्तूबर तक समारोह से मनाया जा रहा है। —मन्त्री



दीपावली और दयानन्द

[श्री पं० यज्ञप्रिय जी समस्तीपुर]

महर्षि दयानन्द सरस्वती जिनकी पुण्य तिथि दीपावली के दिन देश और विदेश में मनाई जायगी, आज हमारे ही लिए नहीं, बल्कि सारे विश्व के लिए अनुकरणीय बन गया है। सारा आस्तिक जगत् महर्षि के इस निर्वाण दिवस पर उनके द्वारा निर्देशित वेद मार्ग पर कर्त्तव्यारूढ़ होकर विश्व मे मानवता एवं सार्वभौम वैदिक संस्कृति सभ्यता एवं शिक्षा के प्रसार व प्रचार की प्रतिज्ञा धारण कर अपनी अपनी श्रद्धा के सुमन भेंट करेंगे। आइए, हम और आप भी अपनी-अपनी श्रद्धा के कुछ फूल महर्षि के चरणों में अर्पित करें।

महर्षि का निर्वाण सम्पूर्ण विश्व के जन-जन के लिए आज जागृति का सन्देश लेकर आया है। ३० अक्तूबर सन् १८८३ ई० कार्तिक बदी अमावस १९४० विक्रमी मंगलवार के दिन, जब सारा देश दीपावली के दीप शिखा से आलोकित हो रहा था, स्वा० दयानन्द सरस्वती ने भी एक अपूर्व अमर ज्योति जलाकर विश्व के लिए दीपावली का एक पावन सन्देश हमारे लिए छोड़ गये। उनकी प्रज्वलित की हुई दीप शिखा (आर्य समाज) अभी तक अपना प्रकाश बराबर फैला रही है।

'आनन्द-सुधासार-दयाकर खिला गया,
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया।
'शंकर' दिया बुझाय दीवाली को देह का,
कैवल्य के विशाल-बदन में बिला गया।

धन्य है महर्षि दयानन्द सरस्वती जिनकी मृत्यु का अन्तिम क्षण भी व्यर्थ नहीं गया, बल्कि परोपकार में ही लगा। अपने समय के महान् वैज्ञानिक गुरुदत्त विद्यार्थी जिनके लेख नास्तिकवाद पर दुनियां के तमाम अखबारों में तहलका मचा रहे थे, महर्षि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु के अन्तिम दृश्य को देखकर कट्टर आस्तिक बन गये, और ऋषि के भक्त बनकर सम्पूर्ण जीवन उन्होंने वेद प्रचार के लिए अर्पित कर दिया।

मृत्यु के पूर्व महर्षि ने प्रथम संस्कृत और हिन्दी मे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की, फिर गायत्री मन्त्र का जाप करते-करते समाधिस्थ हो गये। थोड़ी देर के लिए आंखें खोलीं, और बोले—हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है। अहा! तूने अच्छी लीला की! परमात्म देव। तेरी इच्छा पूर्ण हो! और 'ओ३म्' का उच्चारण करते हुए श्वास को बाहर निकालकर जीवन लीला समाप्त कर दी। वैदिक परम्परा में ऐसे महान् व्यक्तियों की मृत्यु पर शोक मनाने की परिपाटी नहीं है। महर्षि तो परम पद-मोक्ष को प्राप्त हुए, और हमारे लिए एक आदर्श छोड़ गये। महर्षि की इस पुण्य तिथि पर हमें उनका गुणगान करना चाहिए, और उनके बताये पथ पर चलकर अपना जीवन धन्य करना चाहिए।

स्वा० दयानन्द का व्यक्तित्व अपने आप में जितना महान् था, संभवतः दुनिया आज तक उसको भूल गई होती यदि स्वामी जी अपने अमर

ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश', 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका न लिख गये होते। स्वामी जी का कर्तृत्व जहाँ हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ हैं, वहाँ उनका पावन व्यक्तित्व भी हमारे जीवन विकास के लिए आदर्श स्वरूप हैं। न जाने यह कैसी परम्परा चल पड़ी है कि जब कोई महान् व्यक्ति इस संसार क्षेत्र मे आकर कोई महान् कार्य कर जाता है, तो बाद में उनके शिष्य ही उनके बताये मार्ग को भूलकर नाना प्रकार के अपने अपने मन्तव्यों को मिलाकर उस महान् व्यक्ति के मूल उपदेश को समाप्त कर देते हैं, और यही कारण है कि कालान्तर मे लोगों की आस्था उस व्यक्ति से परे हो जाती है। परन्तु स्वा० दयानन्द का सिद्धान्त अजर और अमर रहेगा, उसमे किसी प्रकार का मिलावट संभव नहीं। इसका एकमात्र कारण स्वामी जी का स्वलिखित सत्यार्थ प्रकाश आदि है। यदि आज स्वामी जी यही लिख गये होते कि वह क्या मानते हैं, और क्या नहीं मानते हैं, तो उनके भी शिष्य आज उनके सिद्धान्तों को भानुमति का पिटारा बनाकर छोड़ दिये होते।

अद्भुत दूरदर्शितापूर्ण नेत्र से स्वा० दयानन्द सरस्वती ने इन सारी स्थितियों का अवलोकन किया था।

सैकड़ों वर्ष की दासता की बेड़ी में जकड़ा हुआ, भारत अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति को भूल चुका था। नाना प्रकार के कुपन्थ, अंध विश्वास, व अंध परम्पराओं में अपने को जकड़ कर यह आर्य जाति मृत-प्राय हो चुकी थी। संस्कृत जो संसार की समस्त भाषाओं की जननी है, एक मृत भाषा मानी जाने लगी। संस्कृत व्याकरण को तो ऐसा दुरूह बना दिया गया था कि यदि कोई इच्छुक व्यक्ति संस्कृत [illegible] तो उसे लघु कौमदी, सिद्धान्त कौमदी, मनोरमा की व्याख्या, शब्देन्द्र शेखर आदि के पढ़ने मे ही अपनी सारी आयु लगा देनी पड़ती थी, उसे और कुछ पढ़ने का अवसर ही नहीं मिलता था। ऐसे समय मे स्वा० दयानन्द भटकते भटकते दण्डी स्वामी प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द की कुटिया के द्वार पर मथुरा पहुँचे। गुरु जी का आदेश हुआ कि जो कुछ तुमने अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया है, उन्हें यमुना में प्रवाहित कर दो और ऋषिकृत ग्रन्थ पढ़ो। दयानन्द जी ने वैसा ही किया, और गुरु चरणों मे बैठकर अष्टाध्यायी महाभाष्य एवं अन्य आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया, और फिर गुरु आज्ञा से शुद्ध वैदिक ज्ञान के प्रसार व प्रचार के लिए निकल पड़े। प्रारम्भ मे स्वामी जी सर्वत्र संस्कृत मे ही भाषण आदि करते थे, परन्तु जनता में कहीं कहीं उनका हिन्दी अनुवाद गड़बड़ किया जाने लगा, तो उन्होंने हिन्दी भाषा सीखी और फिर हिन्दी में भाषण करना शुरू कर दिया। संस्कृत की महत्ता पर उनके भाषण सुनकर तथा वेद की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालते हुए देखकर पश्चिमी विद्वान् चकाचौंध मे पड गये, और जो लोग वेद को कभी 'गडरियों के गीत' कहते थे, अब वेदों की ओर लौटो कहने लगे। जादू वह जो सिर पर बोले। ऋषि क्रान्तिदर्शी थे। उन्होंने अपने ज्ञान चक्षु से देखा कि सम्पूर्ण देश की अखण्डता के लिए यह आवश्यक है कि एक राष्ट्र भाषा हो, और यही कारण है कि उन्होने तब से अपने सर्वत्र लेखन तथा व्याख्यान हिन्दी मे करना प्रारम्भ कर दिये। अपना अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा। ऋषि दयानन्द एक समाज सुधारक के साथ साथ महान् क्रान्तिकारी साधु भी थे। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा



कि—'अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही कहनी है, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियो से पादाक्रान्त हो रहा है। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियो को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई कितना भी करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वप्रिय उत्तम होता है। मत-मतान्तरो के आग्रह रहित अपने पराये के पक्षपात से शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।' इस प्रकार अनेक घटनाएँ मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि महर्षि ने ही स्वाधीनता संग्राम का सर्वप्रथम मन्त्र स्वातन्त्र्य सेनानियो मे फूका था। श्रीमती एनी-बेसेन्ट ने कहा था कि भारतवासियों को मानसिक दासता से मुक्त कराने वाला प्रथम व्यक्ति महर्षि स्वा० दयानन्द जी ही थे। भारतीय लोक सभा के भूतपूर्व अध्ययक्ष और बिहार के राज्यपाल पद को सुशोभित करने वाले माननीय श्री अनन्त शयनम् आयगार जी ने भी कहा था कि यदि गांधी जी देश के राष्ट्र पिता हैं, तो जगत् गुरु राष्ट्रोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज राष्ट्र के पितामह है।

महर्षि दयानन्द की आन्तरिक अभिलाषा थी कि ऋषियों की पवित्र भूमि भारत शीघ्र ही स्वतन्त्र हो, और विदेशियों के चगुल से पूर्ण मुक्त हो और यह अपनी पुरानी सस्कृति के अनुसार पुनः एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे विकसित हो। इसके लिए उन्होंने सदैव धार्मिक विषमता तथा जातीय भेद भाव को जड़ से उखाड़ फेंकने का सतत् प्रयत्न किया तथा राष्ट्रीय एकता का पुनः प्रस्थापित करने के लिए उन्होंने राष्ट्र और समाज समाज सम्बन्धी बुराइयों, पाखण्डों को उखाड़ फेंकने का प्रथम निश्चय किया। इतिहास साक्षी है कि इसमें उन्हें सफलता मिली।

क्रान्तिकारी योगी दयानन्द की इन्हीं क्रान्तिकारी भावनाओ के कारण ही भारत का तत्कालीन वायसराय नार्थब्रुक ने देखा कि भारत की प्रसुप्त जनता मे यह लगोट बन्द सन्यासी जान फूंक रहा है, तो उसने लदन इण्डिया आफिस को भारत का समाचार भेजते हुए लिखा था कि 'इस विद्रोही फकीर पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि सरकार को रखनी चाहिए।'

क्रान्तिकारियों के पिता कहे जाने वाले श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा स्वा० दयानन्द के ही शिष्य बनकर और उनसे प्रेरणा लेकर इगलैण्ड गये थे।

उनके बाद तो क्रान्तिकारी स्वातन्त्र्य सेनानियों की बाढ़-सी आ गई। और आश्चर्य यह जानकर होता है कि सबके सब स्वा० दयानन्द के शिष्य निकले। लाला लाजपतराय, स्वा० श्रद्धानन्द, महात्मा हसराज, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, मदन सिंह धींगरा, स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, भाई परमानन्द, अर्जुन सिंह, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी आदि-आदि। यह तो स्वामी दयानन्द जी महाराज का एक रूप है, परन्तु इन सबसे ऊपर उनका एक और रूप स्वामी जी का था जो सारे ससार के कल्याण के लिए था, सार्वभौम था। सन्यासी ससार मात्र के लिए होता है और यह हम स्वा० दयानन्द के जीवन में प्रत्येक स्थान पर देखते हैं। उन्होंने वैदिक धर्म प्रचारक सस्था आर्य समाज की जब स्थापना की तो उसके नियमों में एक नियम यह भी लिखा कि 'ससार का

उपकार करना' इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वामी जी ने भारत के साथ-साथ विश्व को एक नई दिशा दी। प्राचीन पद्धति गुरुकुल प्रणाली पर उन्होंने विशेष बल दिया। आज जो शिक्षण संस्थाओं में चरित्र-हीनता एवं अनुशासन भंग की घटनाएँ आये दिन देखने को मिलती हैं, यह सब गुरुकुल पद्धति की शिक्षा से समूल नष्ट किया जा सकता है। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में भी स्वामी के मन्तव्यानुसार देश में पुत्री पाठशालाओं का जाल-सा बिछ गया।

कई कुरीतियों से स्वामी जी ने जमकर संघर्ष लिया। जैसे—बाल विवाह, बे मेल विवाह, मूर्तिपूजा, अनेक ढोंग पाखण्ड आदि-आदि। विधवा-विवाह की व्यवस्था देकर इस देश का बहुत बड़ा उपकार उन्होंने किया। स्वामी दयानन्द जी के जीवन की कुछ झांकियाँ—

(१) अनूप शहर में ऋषि को पान में विष दे दिया गया, परन्तु महर्षि ने योग क्रिया द्वारा विष को प्रभाव शून्य कर दिया। इस पर उनके भक्त तहसीलदार ने अपराधी को पकड़ कर ऋषि के सामने लाये और दण्ड देने की इच्छा प्रकट की। महर्षि का उत्तर था—"मैं दुनिया को कैद कराने नहीं आया, वरन् कैद से छुड़ाने आया हूं।"

(२) एक दिन ऋषि ने एक नाई भक्त के यहाँ प्रेम पूर्वक भोजन लिया। इस पर कट्टर पंथी एक ब्राह्मण ने कहा कि—महाराज आपने नाई की रोटी खा ली है? स्वामी जी का उत्तर था—'नाई की नहीं गेहूं की रोटी खाई है।'

(३) एक दिन एक भक्त जो धुनिया था ऋषि से पूछा—मुझ जैसे अज्ञानी के कल्याण का भी कोई—उपाय है, महर्षि ने आदेश दिया—
—'ओ३म् का जापकरो, व्यवहार शुद्ध रखो, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।'

(४) बरेली में व्याख्यान देते हुए महर्षि ने कहा—'लोग कहते हैं, सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, अरे, चक्रवर्ती राजा ही क्यों न हो हम तो सत्य ही कहेंगे।'

(५) एक बार जोधपुर नरेश को वेश्या के संग देखकर स्वामी जी ने फटकारा—'सिंह कभी कुतियों के पीछे नहीं दौड़ा करते।' फिर कई दिन तक राजधर्म पर व्याख्यान होते रहे। इस पर नन्हीं जान वेश्या ने ऋषि को षडयन्त्र करके कांच मिला विष दूध में दिलवा दिया जिससे ऋषि का असमय में ही देहावसान हो गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक सिद्धान्त का जो रूप संसार के सामने रखा उस पर संसार आज भी नतमस्तक है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि उनके धार्मिक सिद्धान्त वे ही हैं जिनको ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त सारे ऋषि मुनि मानते चले आये हैं। 'वेद' के अमंगल भाष्य पर जहाँ हम कलंकित हुए, स्वा॰ दयानन्द के वेद भाष्य ने हमें पुनः प्रतिष्ठा के पद पर प्रस्थापित किया। सायण, महिधर, रावण, उब्बट जैसे आचार्यों के वेद भाष्य को देखकर वेद पर आस्था क्या होगी वहां तो लज्जा को भी लज्जा लगे, ऐसा अनर्गल प्रलाप किया गया है। नमूना के लिए ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पढ़ें।

वेदोद्धारक स्वा॰ दयानन्द के ऋण से सच-मुच हम सभी लदे पड़े हैं। आइए, ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिये वेद प्रचार में हम भी अपनी विद्या बुद्धि और शक्ति का अधिकांश लगायें, तभी हमारा आपका सबका कल्याण हो सकता है। प॰ आर्यमुनि के शब्दों में—

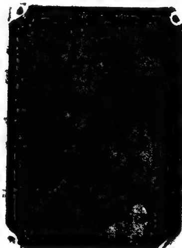
'दिन रात जगाये रहे हमको,
दु:ख नाश करना पिता जो हमारे।
शोक यही हमको अब है,
जब नींद खुली तब आप सिधारे॥'

शत्रु शासन और वैदिक संस्कृति

[डा० हरिदत्त जी शास्त्री एम०ए० पी एच डी० व्याकरणाचार्य]

अच्छिन्नस्य ते देव ! सोम ! सुवीर्यस्य
रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा
स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यजु० ७।१४

यजुर्वेद के इस मन्त्र द्वारा वेद भगवान् के किये गए उपदेश में संस्कृति का स्वरूप और संस्कृति का मूल निहित है। मन्त्र का शब्दार्थ तो सीधा-सादा है किन्तु इसके भावों की गम्भीरता तक पहुंचने के लिए वैदिक दृष्टि की आवश्यकता है। इस मन्त्र का अर्थ यह है—हे दिव्य गुण, दिव्य क्रिया और दिव्य ज्ञान वाले देव ! हे ज्ञानात्मक ज्ञानशक्ति और क्रिया शक्ति सम्पन्न सोम ! हम लोग आपके अविच्छिन्न रूप से अखण्डित पराक्रम, ज्ञान धन और गुणों को संसार में दूसरों को प्रदान करने वाले या इस संसार में प्रसार करने वाले बनें। पर शर्त यह है कि वह धन, ज्ञान का, धन का और सम्पत्ति का पोषक होगा, मारक न हो, क्योंकि आपके अनादि किसी भी प्राणी की हानि नहीं करते। अतः हम मानव भी ऐसा ही करना और सोचना सीखें। इस प्रकार का स्वभाव या अभ्यास डालना ही विश्व के द्वारा वरणीय या चाही गई संस्कृति का स्वरूप है। जो मनुष्य इसे अपनाता है वह संसार के प्रथम-श्रेष्ठ पुरुषों में अग्रगण्य है। इस संस्कृति के वरुण, मित्र और अग्नि बनने की शक्ति भी है या इसे वरुण, मित्र और अग्नि स्वरूप से जाता है। इस मन्त्र का गूढार्थ यह है—इस मन्त्र के आदि के दो चरणों में प्रजापति द्वारा उपदिष्ट 'द' का स्वरूप बतलाया गया है, जो कलियुग का प्रधान गुण है, जैसा कि प्रसिद्ध है कि 'दानमेकं कलौयुगे।' इस वाक्य का अर्थ साधारण व्यक्ति



श्री डा० हरिदत्त जी शास्त्री आचार्य एम०ए०

केवल धन का देना लेना ही लेते हैं। पर वेद तो धन उसे कहता है जिसका दान रायस्पोष है तथा जिस भूमि, वस्त्र, रुपया पैसा आदि का दान विविध पुष्टि-कारक है, जिस के कारण आजकल जो हानिकारक आणविक शक्तियों का परीक्षण किया जा रहा है, वह ज्ञान संस्कृति ही नहीं कहा जा सकता, उसको विश्ववरणीय कहना तो दूर की बात है। यह संस्कृति राजनीति और धर्मनीति दोनों को ही आत्मसात् करती है।

हमारे कुछ राजनीतिज्ञों ने कहा है–

आत्मोदय परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती ।
एतदाशिवष्य कविभिर्वाचस्पत्य प्रनायते ॥

अपना उदय और शत्रु की हानि वाली राजनीति का मूलधार भूत तत्व है । जिसका विवरण उक्त मन्त्र में वरुण मित्र-अग्नि शब्दों से किया गया है । 'वरुण' शब्द आचार शुद्धि के अर्थ में प्रयुक्त है, क्योंकि आचार को ही कर्मों द्वारा वरण किया जाता है । 'मित्र' शब्द व्यवहार शुद्धि का वाचक है–क्योंकि मित्रों से ही व्यवहार या लेने देने का विचारों या अर्थों का आदान प्रदान होता है । अतः 'मित्र' शब्द व्यवहारार्थक है । 'अग्नि' शब्द आत्मशुद्धि के लिये प्रयुक्त है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा के रागादि मलों को हटाकर संस्कृति के परमलक्ष्य भगवद्दर्शन को करना चाहिये । महाभाष्यकार ने भी लिखा है कि 'चतुर्भिः प्रकार विद्या उपयुक्ता-भवति स्वाध्यायकालेन–आगम कालेन व्यवहार-कारयेन प्रवचनकालेनेति ।' संस्कृति भी काय-वाङ्-मनों से (या वरुण, मित्र, अग्नियों से) प्रकट की जाती है । संस्कृति विकास के परि-पन्थियों का तिरस्कार, अपाकरण, या विना करने के लिए वेद की आज्ञा है कि–

अस्माकमिन्द्र समृतेषुध्वजेषु,
अस्माकं या इषव स्त जयन्तु,
अस्माक वीरा उत्तरे भवन्तु ।
अस्मांर उदेवा अवता हवेषु ।
यजुः १७।४३

जब हम शत्रु को परास्त करने के लिए ध्वजा फहराते हुए चलें तो हमारे शस्त्र व अस्त्र उन्हें विनष्ट करें, पराजित करें, हमारे वीर विजयी बनें देवशक्ति संग्राम मे हमारी रक्षा करे । इसी प्रकार अग्रिम मन्त्र में वेद की आज्ञा है कि–

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती,
गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु,
शोकैरन्धेनाऽमित्राः सचन्ताम् । १७ ४४

हम शत्रुओं के चित्तों को भ्रान्तियुक्त करती हुई चकमा देती हुई हमारी सेना या बुद्धि विष कन्या आदि के प्रयोग द्वारा शत्रुओ को भगा दे । अग्नि पास जाकर इनके हृदयों को दग्ध करे तथा शत्रुगण शोकान्धकार मे निमग्न हो जायें । इन मन्त्रों में शत्रु ध्वंस की स्पष्ट आज्ञा है । सन्ध्या के मन्त्रों में 'योऽस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्त वो जम्भेदध्म.' यह प्रतिदिन दो बार प्रार्थना की जाती है 'वयं जयेम' का उपदेश वेद दे ही रहा है । यजुर्वेद के १६वें अध्याय में 'रुद्र' का वर्णन शत्रु विनाश के लिए है, इस प्रकार संस्कृति के बाह्यशत्रुओं का विनाश करना ईश्वर की आज्ञा का पालन ही कहा जायगा, अनेकों स्थलों पर इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन देव और असुरों के संग्राम का प्रतीक है । यह संग्राम जहाँ बाह्य जगत् में चल रहा है वहाँ आन्तर-जगत् में भी दिखाई देता है । गीता में जो दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन है वह एक मात्र आसुरी सम्पत्ति या दुर्गुणों के परित्याग या विनाश के लिए तथा दैवी सम्पत्ति या सद्गुणों को लेने के लिए है । मन रूपी कुरुक्षेत्र में आसुरी सम्पत्ति यदि अपना अधिकार जमाती है तो उसे मार भगाओ तथा–

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोग व्यवस्थितिः,
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्,
भवन्ति सम्पद दैवीमभि जातस्य भारत।

इन गुणों को मन में बार बार स्थान देने का यत्न करो। सारांश यह कि 'भारतीय संस्कृति पलायन वाद को नहीं सिखाती, अपितु वैदिक ज्ञान के प्रसार के लिए शत्रुओं का नाश भी बतलाती है, केवल अहिंसा या तितिक्षा के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करना मुनियों का काम है, संस्कृति के पुजारियों का नहीं। महाकवि भारवि ने ठीक ही कहा है कि—'शमेन सिद्धि मुनयो-नभूभृतः।' इस संस्कृति के प्रचार के लिए वाग्-युद्ध करना पड़े या देह युद्ध करना पड़े तो उससे पीछे हटकर कदापि नहीं थमना चाहिए। अतएव 'आर्यत्व' की स्थापना के लिए या संस्कृति के प्रचार के लिए जो लोग दान दया दमन शून्य राक्षस प्रवृत्ति के लिए वेद का घोष है कि—'अप-घ्नन्तोऽराव्णः' शत्रुओं को विध्वंस करते ही 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यह लक्ष्य पूरा किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। ————

आर्यसमाज का अन्तर्राष्ट्रिय संगठन

[श्री मोहनलाल जी मोहित प्रधान आर्य सभा मोरिशस, ५ पोर्टलुई]

वि० संवत् २०३० के दीप महोत्सव पर आर्य समाज का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को शक्तिशाली बनाने की योजना को सक्रिय रूप देने का प्रत्येक आर्य व्रत लें। श्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली और उससे सम्बन्धित प्रतिनिधि सभाएँ, और आर्य परोपकारिणी सभा अजमेर इन संस्थाओं के तपोधन मनीषी आर्य संन्यासी और नेताओं से विनम्र निवेदन है कि वृहत्तर भारत का निर्माण की योजना में ध्यान दें। अभी से ऐसा सबल प्रयत्न किया जाय, जिससे आगामी २०३१ का वि० दीपोत्सव तक आर्य समाजों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की नींव सुदृढ़ बन जाय।

ध्यान रहे। पिछले एक शती में आर्य समाज का क्रांतिकारी आंदोलन ने मत पंथों के गढ़ को निर्मूल बना दिया है। मूढ़ मान्यता में आस्था नहीं रही। शिक्षा का विस्तार और विज्ञान युग ने मानवीय मस्तिष्क को विवेक पूर्वक हिताहित सोचने के लिए विवश कर दिया है। लौकिक सुख समृद्धि और आध्यात्मिक शान्ति की दिशा में जन मन बड़ी छान बीन के साथ पग उठाना सीखने लगे हैं। अन्धविश्वासी मत पंथ की कटका कीर्ण मार्ग की अपेक्षा वैदिक धर्म का राज पथ स्वभावतः लोक प्रिय है, केवल हार्दिक प्रोत्साहन एवं सस्नेह निर्देश की आवश्यकता है। अतः आर्य समाज की शिरोमणि सभा के प्रबन्ध से चुने गिने आर्य विद्वानों को वेद प्रचार और आर्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए विदेशों में भेजने का पूरा प्रयत्न किया जाय। सुविशाल भारत तथा बाहर के प्रदेशों में बसे भारतीयों के सहयोग से धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में वृहत्तर भारत का निर्माण हो सकता है। मोरिशस, फिजी, सुरिनाम, गायना, त्रिनिदाद, केनिया, युगाण्डा और दक्षिण अफ्रिका, इत्यादि आदि प्रदेशों में जो आर्य प्रतिनिधि सभाएं हैं। उन सबका सार्वदेशिक संगठन सुदृढ़ किया जाय।

१—उपदेशक महा विद्यालय—इस महा विद्यालय में कम से कम विश्व की १० प्रमुख भाषाओं में वैदिक सिद्धान्त का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले महोपदेशकों में जो विशेष सुवक्ता और बहुभाषी सुवक्ता है। उन्हें विदेशों में प्रचारक नियुक्त किया जाय।

२—अनुसंधान विभाग—इस विभाग मे समस्त प्राचीन और अर्वाचीन वैदिक तथा लौकिक साहित्य का विपुल संग्रह उपलब्ध हो, और यहाँ से विद्वान् विशेषज्ञ वेदों पर अनुसंधान करके संसार हितार्थ ज्ञान विज्ञान को विश्व की प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित करें।

३—प्रकाशन विभाग—एक विशाल प्रकाशन विभाग हो, जहाँ से वैदिक और लौकिक साहित्य को संसार की प्रमुख भाषाओं में शुद्ध प्रकाशन प्रचुर मात्रा में हो, और वैदिक धर्म प्रचार सम्बन्धी साहित्य को लागत मूल्य पर ही बेचने का प्रयास किया जाय। उपरोक्त तीनों विभाग के कार्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के दृष्टि कोण से सुसम्पन्न



दिव्य ज्योति



[श्री श्याम दत्त पाण्डय रंगून, ब्रह्मदेश]

एक दिव्य ज्योति से असंख्य दीप जल रहे,
अंधकार मानव के मानस से टल रहे,
एक दिव्य

रजनी अज्ञान की धरती पर छा गई,
कालो की चादर समय ही बिछा गई,
एक दिव्य ज्योति जो प्रयाण के निकट थी,
दे गई प्रकाश तो असंख्य दीप जल रहे,
एक दिव्य

एक दिव्य ज्योति दयानन्द के हृदय से,
अंधकार मस्तिष्क से जड़ता हृदय से,
लुप्त हुए दोनों ही, और हम सचेत बन,
देश जाति सेवा में लग गये, सफल रहे,
एक दिव्य

कौन कह रहा है, निर्माण मिला आज ही,
ज्योति मिली ज्योति प्रमाण मिला आज ही,
[illegible] से [illegible] है दीप्त आर्य का समाज,
ऋषि [illegible] के प्रकाश में सफल रहे,
एक दिव्य

रूढ़िवाद का प्रभाव जाति औ, समाज मे,
[illegible] था महान धर्म निर्माण कार्य मे,
इसीलिए इसका समूल नाश कर दिया,
[illegible] पर घातक प्रहार सह अटल रहे,
एक दिव्य

भ्रान्त चित्त आय जाति वेद से विरक्त थी,
ढोंग मे प्रपञ्च मे प्रलाप मे ही रत थी,
इसलिए ही वेद के विशुद्ध अर्थ, भाव के,
ऋषि दयानन्द जी प्रचार मे अचल रहे,
एक दिव्य

जाति और समाज का प्रवेश द्वार बन्द था,
थी दीवाल मे दरार जाना स्वच्छन्द था
खोलकर प्रवेशद्वार गर्ज उठे दयानन्द,
'छूत और अछूत आय जाति मे सकल रहे',
एक दिव्य

सर्वेभवन्तु सुखिन की भावना जगा गए,
आयजाति एकता का वृक्ष वे लगा गए,
एकमात्र कामना महर्षि की सदा रही,
आर्य जाति के प्रदीप्त झोपडी महल रहे,
एक दिव्य

*   *   *   *   *

कोटि कोटि मानव के प्राणप्रिय नेता थे,
मन के विजेता और धर्म के प्रणेता थे,
अतः दयानन्द सा मनुष्य जन्म के लिए
आदमी तो आदमी है देवता मचल रहे,
एक दिव्य ज्योति से असंख्य दीप जल रहे,

*   *   *   *   *

[illegible] के [illegible] किये जाएं। इन कार्यों को [illegible] और [illegible] कम से कम एक करोड़ [illegible] की आवश्यकता है। भारत और विदेशों [illegible] विविध समाज और [illegible] का [illegible] से [illegible] धन प्राप्त कर लेना [illegible] है [illegible] शताब्दी समारोह का समय लागत डेढ़ वर्ष ही सामने है।

धन संग्रह और शताब्दी समारोह के कार्यक्रम को भारत और विदेशों के कोने कोने मे प्रसारित कर जन-सम्पर्क बढाने और उनसे सहयोग लेने के लिए प्रत्येक ऋषि भक्त को बडी तन्मयता से लग जाना चाहिये।

———

भारत एक राष्ट्र है : इस मन्त्र का मन्त्र दाता महर्षि दयानन्द सरस्वती

(शेष पृष्ठ १६ का शेष)

'रामकृष्ण परमहंस जहाँ गया, वहाँ भारत नहीं गया। अंग्रेजी की प्रभुता को उसने दृढ़ किया, और ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया। पोर्ट लुइस (मारीशस) में हुए आर्य सम्मेलन ने ही यह कहने का साहस किया कि संयुक्त राष्ट्र (यू० एन ए०) की पांचवी भाषा हिन्दी मानी जाये, स्वीकार की जाये। यह है, ऋषि दयानन्द की महिमा और गौरव। भारत की किसी संस्था ने किसी राजनीतिक पार्टी ने जिस हिन्दी को विश्व भाषाओं में स्थान देने की मांग करने की कल्पना तक नहीं की, वह विचार ऋषि दयानन्द के स्थापित आर्य समाज ने साहस के साथ प्रकट किया। भारत की शासक पार्टी ने भारत का विभाजन ही स्वीकार नहीं किया, बल्कि नागरी लिपि से नागरी अंकों का ही बहिष्कार कर दिया, और इस गलती का संशोधन करने तक की आवश्यकता नहीं समझी, यही नहीं वर्तमान प्रधान मन्त्री ने अंग्रेजी की प्रभुता को 'यावच्चन्द्र दिवा करौ' कायम रहने की गारण्टी दे दी है। पट्टा लिख दिया है। यही कारण है, रामेश्वरम पुल बनाने की परियोजना केन्द्रीय है, परन्तु इसकी नींव में जो शिला रखी गई है, जिसका शिला न्यास विभक्त भारत के प्रधानमन्त्री ने किया है, उस पर उत्कीर्ण सन्दर्भ तमिल और अंग्रेजी में है, संस्कृत और हिन्दी में नहीं। इससे पहले नागार्जुन सागर बांध की नींव के पत्थर में हिन्दी को स्थान दिया गया है। यदि भारत और उसके स्थापित आर्य समाज उसके निर्दिष्ट पथ वैदिक मार्ग पर दृढ़ता से चलता तो वह प्रचार के लिए विदेशी अभारतीय भाषा उर्दू का पूंछ न पकड़ता न वह भारत भूमि के प्रति भक्ति से ऊपर अर्थ प्रेम को स्थान देता। इस वास्ते यह खैबरघाटी से लेकर रावी तट तक का भाग खाली कर प्राण बचाकर भाग निकला। फलतः ऋषि दयानन्द की महिमा से स्तुति से भारत का आकाश नहीं गूंजा।

जब भारतीय तलवार की नोंक हिन्दुकुश पर्वत पर जाकर टिकी थी, तब पुराणों ने लिखा था, और गाया था—

भारत अश्वारोही वीरों के घोड़ों की टाप से भारत का आकाश अहर्निश गूंजता रहता है।

भारत भूमि और भारत का आकाश उसी व्यक्ति का, समाज का, समूह समुदाय का जयगान करता है, जो भारत भूमि की विजय पताका दिगन्त में फहराता है। यदि ऋषि की महिमा को नहीं पहचाना गया, तो उसके लिए आर्य समाज स्वतः जिम्मेदार है। क्योंकि वह महात्मा गांधी और उनके भक्तों व अनुयायियों के समान अमर ऋषि के इस अमर सन्देश को भूला रहा।

यावती द्यावा पृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे। तावन्तमिन्द्र तेग्रहमूर्जा ग्रहणाम्यक्षितं मयिगृह्णाम्यक्षितम्। (यजु० ३८·२६) इसकी विस्मृति के कारण पिछले २७ सालों में कितना अनर्थ हुआ, और कितना विनाश हुआ, और अभी वह जारी है, इसके लिए हमारे सिवाय क्या कोई और जिम्मेदारी है। ऋषि का दिया, अनमोल अक्षय निधि वेद को यदि हमने भुला दिया, तो महर्षि को इसके वास्ते जिम्मेदार नहीं बताया जा सकता। उसको आचार्य गुरु मानने वालों का कर्तव्य है कि वह ऋषि ऋण ब्याज समेत उतारें।

ऋषि ऋण उतारने का एक ही मार्ग है कि हम भारत भूमि के प्रति इस देश के सामान्य जन में भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न करें, और भारत को एक" करने और बनाने को सर्वोपरि स्थान दें। क्योंकि भारत का अस्तित्व कायम किए गए, बगैर वेद भी तिरस्कृत विराकृत और उपेक्षित रहेगा। मनु के शब्दों में यह देश नास्तिक रहेगा—

'नास्तिको वेद निन्दकः।'

वेद की पूजा, वेद की उपासना, वेद का अध्ययन अध्यापन उस समय तक अहिर्नेश भारत भूमि में न होगा, जब तक भारत भूमि के प्रति भक्ति उत्पन्न न होगी, और हम भारत माँ के आह्वान का उस ऋषि वाणी को स्मरण न करेंगे—

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम। ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्। (ऋ० १०।१८।१०)

भारत की प्रगति का मार्ग बन्द है। राष्ट्रीय आय शून्य प्रतिशत हर साल बढ़ रही है। क्योंकि भारत का शासक ऋषियों की इस वाणी का आदर नहीं करता—

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना। माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि।(ऋ०१०।१८।११) जिस हालैंड को १६२८ और १६३२-३६ में हाकी के जादूगर वीर ध्यानचन्द कप्तान ने ४ से अधिक गोलों से हराया था, उसी हालैंड से उसका पुत्र अशोक कुमार हार गया, और स्वर्ण कप खो बैठा। पुत्र पिता से अधिक पराक्रमी और यशस्वी क्यों नहीं निकला? क्योंकि उसने गाय का छौंआ पान नहीं किया। गाय का घी आयु बढ़ाता है, बल वीर्य बढ़ाता है। परन्तु इस देश की सरकार इसके नेताओं ने मुर्गी खाने स्थापित किये हैं, गौशालायें स्थापित नहीं की। इस दशा में भारत भक्ति और गौ सेवा को भुलाकर विजय पाने की आशा करना गूलर के फूल के समान है। भारत में विजय भी नहीं आई, क्योंकि भारत ने ऋषि की इस बात का निरादर किया।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्। ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र। ऋ० १०-१८ १२

दिवाली की सन्ध्या और टिमटिमाते दीपक पुन ऋषि दयानन्द के इस अमर सन्देश को सुना रहे हैं। क्या हम इसको ध्यान से सुनेंगे? इस महान् भारतीय को शतश शतश प्रणाम है।

आर्यसमाज आगरा नगर का उत्सव

आर्यसमाज आगरा नगर का ३६ वाँ वार्षिक उत्सव ८ से ११ नवम्बर तक मनाया जा रहा है। ८ नवम्बर को शोभा-यात्रा निकलेगी। —मन्त्री

आवश्यकता

एक सुयोग्य तथा अनुभवी अध्यापक जो प्राथमिक विद्यालय तक सब विषय पढ़ा सके तथा आर्यसमाज का पुरोहित कार्य करा सके। वैदिक सिद्धान्तों की पूर्ण जानकारी हो। न्यूनतम स्वीकार्य वेतन भी लिखें। प्रार्थना पत्र योग्यता सहित १०-११-७१ तक आने चाहिये।

डा० आर्यकुमार प्रबन्धक
आर्य प्राथमिक विद्यालय बिलासपुर
जि० रामपुर, उ० प्र०

दयानन्द वाणी

सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार-विधि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्याभिविनय, व्यवहार भानु एवं गोकरुणानिधि का निचोड़। ऋषि दयानन्द के लगभग ६०० अमूल्य वचनों का बड़े टाइप में २८० पृष्ठों में सुन्दर संग्रह। दो रंग में आर्ट कागज पर मय ऋषि के चित्र के प्रकाशित। मूल्य केवल २) रु० ५० पैसे।

बाल सत्यार्थ प्रकाश

(ले०-प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार)

बालकों के लिये अत्यन्त उपयोगी इस पुस्तक का संशोधित व स्वामी जी के तीन रङ्ग में चित्र सहित आकर्षक रूप में नवीन प्रकाशन--मूल्य १.२५ पैसे।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी का प्रामाणिक जीवन चरित्र

बाबू देवेन्द्रनाथ जी उपाध्याय द्वारा संग्रहीत तथा बाबू घासीराम जी द्वारा अनुदित २ भागों में पूर्ण सचित्र व अनेकों घटनाओं व पूर्ण चित्रों से युक्त। मूल्य ६) रु० प्रति भाग।

जीवन की नींव

ले०-सम्पूर्णनाथ 'हुक्कू' सेवक, भूमिका लेखक श्री आनन्द स्वामी सरस्वती। जीवन की सफलता कुञ्जी, छात्रों युवकों तथा युवतियों के लिये विशेष उपयोगी। आकर्षक मुख पृ० मू० २) रु०।

भारतीय समाज शास्त्र

(ले०-पं० धर्मदेव सिद्धान्तालंकार, विद्यावाचस्पति)

शास्त्रीय वर्णाश्रम व्यवस्था, भारतीय सभ्यता, स्त्रियों की स्थिति, सामाजिक शिक्षा आदि विषयों का धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से तुलनात्मक अनुशीलन—मूल्य २.५० पैसे।

धार्मिक परीक्षाएं

भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद् की विद्या विनोद, विद्यारत्न, विद्या विशारद व विद्या वाचस्पति की परीक्षायें मण्डल के तत्वावधान में प्रतिवर्ष होती हैं। इन परीक्षाओं की समस्त पुस्तकें अन्य पुस्तक विक्रेताओं के अतिरिक्त हमारे यहाँ भी मिलती हैं।

चारों वेद भाष्य, स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ तथा आर्य समाज की समस्त पुस्तकों का प्राप्ति स्थान –

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड

श्रीनगर रोड अजमेर

ग्रन्थों का सूचीपत्र परीक्षाओं पाठ्यविधि मुफ्त मंगावें।

दो विचारधाराओं के आर्य नेता—



अमरशहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज



श्री महात्मा हंसराज जी

* * * * * * *